जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

भाग ४

(श-ह)

क्षु. जिनेन्द्र वर्णी



भारतीय ज्ञानपीठ

छठा संस्करण : 2000 🛘 मूल्य : 150 रुपये

भारतीय ज्ञानपीठ

(स्थापना : फाल्गुन कृष्ण 9; वीर नि. सं. 2470; विक्रम सं. 2000; 18 फरवरी 1944)

पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी की स्मृति में साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित एवं

उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रमा जैन द्वारा सम्पोषित

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कञ्चड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन साहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उनका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन-भण्डारों की ग्रन्थसूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, कला एवं स्थापत्य पर विशिष्ट विद्वानों के अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इस ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रहे हैं।

ग्रन्थमाला सम्पादक (प्रथम सस्करण) डॉ. हीरालाल जैन एवं डॉ. आ. ने. उपाध्ये

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

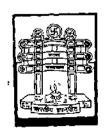
18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003 भुद्रक नागरी प्रिटर्स, नवीन शहादरा, दिल्ली-110 032

JAINENDRA SIDHĀNTA KOŚA

VOL. 4

(श -ह)

by Kshu. JINENDRA VARNI



BHARATIYA JNANPITH

Sixth Edition: 2000 Price: Rs. 150

BHARATIYA JNANPITH

(Founded on Phalguna Krishna 9; Vira N. Sam. 2470; Vikrama Sam. 2000; 18th Feb. 1944)

MOORTIDEVI JAIN GRANTHAMALA

FOUNDED BY

Sahu Shanti Prasad Jain

In memory of his illustrious mother Smt. Moortidevi and promoted by his benevolent wife Smt. Rama Jain

In this Granthamala critically edited jain agamic, philosophical, puranic, literary, historical and other original texts in Prakrit, Sanskrit, Apabhramsha, Hindi, Kannada, Tamil etc. are being published in original form with their translations in modern languages.

Also being published are catalogues of Jain bhandaras, inscriptions, studies on art and architecture by competent scholars and also popular

Jain literature.

General Ediotrs (First Edition)

Dr. Hiralal Jain & Dr. A.N. Upadhye

Published by **Bharatiya Jnanpith**

18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110 003

Printed at Nagri Printers, Naveen Shahdara, Delhi-110 032

संकेत-सूची

अ.ग.पा,/ ↔	अमितगति श्रावकाचार अधिकार सं /श्लोक सं., पं, वं शीधर शोलापुर, प्र.सं,, वि.सं, १६७६
अन.ध.⋯/⋯/∼	अनगारधर्मामृत अधिकार सं./ श्लोक सं./१ष्ट संपं. खूबचन्द बोलापुर, प्र. सं., ई. १.६.१६२७
था.अनु. ··	अरमानुशासन रहीक सं
खा,प. <i>!!</i>	अल्लापपद्धति अधिकार सं /सूत्र सं /पृष्ठ सं , चौरासी मथुरा, प्र, सं,, की. नि, २४१६
अप्तर-प ···/···/···	आग्नपरीक्षा स्लोक सं /प्रकरण सं /पृष्ठ सं , बीरसेना मन्दिर सरसाना, प्र. सं., वि. सं. २००६
आप्त.मी	आप्तमीमांसा श्लोक सं.
इ.उ./म्.···/···	इष्टोपदेश/मृत् या टीका रखो-सं /पृष्ठ सं (समाधिशतक के पीछे) पं.आशाधरजी कृत टीका, वीरसेमा मन्दिर दिस्री
事.97/5//	कवायपाहुड् पुस्तक सं. भाग सं./इप्रकरणसं /पृष्ठसं-/पंक्ति सं., विगम्बर जैनसंघ, मधुरा,प्र.सं.,वि.सं.२०००
का.अ./मृ	कार्तिकेयानुत्रेक्षा/सूच या टोका गाथा सं., राजचन्द्र प्रन्थमाला, प्र.सं .ई.११६०
कृरल. <i>∙∙ो∙∙</i>	कुरस काक्य परिच्छेद सं./रत्तोक सं., पं. गोबिन्दराज जैन शास्त्री, प्र.सं., बी.नि.सं. २४८०
施.本, //	कियाकलाप मुख्याधिकार सं -प्रकरण सं /श्लोक सं /पृष्ठ सं ., पन्नालाल सोनी शास्त्री आगरा,वि.सं १११३
क्रि.को,…	क्रियाकोश श्लोक सं, पं, दौलतराम
क्ष.सा./मृ.···/···	क्षपणसार/मूल या टीका गाथा सं./पृष्ठ सं., जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता
गुण.भा,•••	गुणभद श्रावकाचार प्रत्नोक सं.
गो.क./मू/	गोम्मटसार कर्मकाण्ड/मूल गाथा सं./पृष्ठ सं., जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता
गो.क./जी.प्र/	गोम्मटसार् कर्मकाण्ड/जीव तत्त्व प्रदोपिका टोका गाथा सं /पृष्ठ सं ,/पंक्ति सं , जैन सिद्धान्त प्रका, संस्था
गो,जी./मू/	गोमद्रसार जीवकाण्ड/मूल गाथा सं./पृष्ठ स , जनसिद्धान्स प्रकाशितो संस्था, कलकसा
नो,जी-/जी.प्र/	गोमहसार जीवकाण्ड/जीव तत्त्वप्रदीपिका टीका गाथा सं./पृष्ठ सं ,/पंक्ति सं ,जैनसिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था
ह्या. //	झानार्ण द अधिकार सं-/दोहक सं./१ष्ठ सं- राजचन्द्र ग्रन्थमाला, प्र.सं. ई. ११०७
ह्या सा …	ह्यानसार रलोक सं,
चा.पा./मृ ···/··	चारित्त पाहुड्/मूल या टोका गाथा सं /पृष्ठ सं, माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, वस्वई, प्र.सं., वि.सं. ११७७
चा,सा.⊷∤∙∙∙	चारित्रसार पृष्ठ सं /पंक्ति सं, महावीर जी, प्रसं, बी.नि २४८८
ज.प/	जंबूदोवपण्णिसंगहो अधिकार सं./गाथा सं., जैन संस्कृति संरक्षण संघ, शोलापुर, वि.सं.२०१४
जै.सा.⊶/⊶	जैन साहित्य इतिहास खण्ड सं /पृष्ठ सं., गणेशाप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, बी.नि. २४८१
जै,पी,⋯	जैन साहित्य इतिहास/पूर्व पीठिका पृष्ठ सं, गणेशपसाद वर्णी ग्रन्थमाला, बा.नि, २४८१
त.अनुः…	त्रवानुशासन श्लोक सं, नागसेन स्रिकृत, बीर सेना मन्दिर देहली, प्र.सं., ई. ११६३
ধ.ৰূ,//	तस्वार्थवृत्ति अध्याय सं /मूत्र सं /पृष्ठ सं /पं क्ति सं , भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस, प्र.सं , ई. ११४६
त.सा.···/···/··	तच्यार्थसार अधिकार सं./श्लोक सं./पृष्ठ सं.,जैनसिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था कलकत्ता, प्र.संई.स.१६२६
त.सू.···/···	तत्त्वार्थसूत्र अध्याय सं./सूत्र सं.
ति.प.··/	तिलोयपण्णि अधिकार सं./गाथा सं,, जीवराज यन्थमाला, द्योसापुर, प्र.सं., वि.सं. १६६६
त्ती	तोर्थं कर महाबीर और उनकी आचार्य परम्परा, पृष्ठ सं., दि. जैन विद्वद्वपरिषद्व, सागर, ई. ११०४
त्रि.सा,•••	त्रिलोकसार गाथा सं., जैन साहित्य वस्वई, प्र₊ सं., १११८
द.पा,/सू,⋯/⋯	दर्शनपाहुड्/मूल या टीका गाथा सं./पृष्ठ सं., माणिकचन्द्र प्रश्यमाला, बम्बई, प्र.स., वि.सं. ११७७
र,सा.•••	दर्शनसार गाथा सं., नाश्वराम प्रेमी, मम्बई, प्र.सं., वि. १६७४
द्र.सं./मू.···/···	द्रक्यसंग्रह/सूत् या टीका गाथा सं./पृष्ठ रं., देहली, प्र.सं. ई. १६५३
ध.प	धर्म परीक्षा श्लोक सं
घ/॥/…/…	धवला पुस्तक सं /खण्ड सं , भाग, सूत्र/पृष्ठ सं ,/पंक्ति या गाथा सं , अमरावती, प्र. सं.
न च.बृ	नयसक बृहद्द गाथा सं्थोदेमेवनाचार्यकृत, माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, मम्बई प्र. सं., वि. सं. १६७७
न,च./भुत/…	नयचक्र/श्रुत भवन दीपक अधिकार सं /पृष्ठ सं., सिद्ध सागर, शोलापुर
नि.सा./मू	नियमसार/मूल या टीका गाथा सं.
नि.सा /ता.वृ/क…	नियमसार/तात्पर्य वृत्ति गाथा सं ,/कलश सं,
न्या.की/§//	न्यायदीपिका अधिकार गं./ १प्रकरण सं /पृष्ठ सं./पंक्ति मं. वीरसेवा मन्दिर देहती. प्र.सं. वि.सं २००६
न्या, वि./म्	न्यायिनदृ/मूल या टीका श्लोक सं., चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस
न्या.वि./म्///	न्यायविनिश्चय/मृत या टीका अधिकार सं./श्लोक रं./पृष्ठ सं./पंक्ति सं., ज्ञानपीठ बनारस
न्धा.स्./म्.··/··/··/··	न्यायदर्शन सूत्र/मूल या टीका अध्याय सं /आहिक/सूत्र सं /१९८ सं . मुजपफरनगर, हि. सं . ई. १६३४
पं्काः./मू.···/•••	वंचास्तिकाय/मूल या टीका गाथा सं./पृष्ठ सं., परमश्रुत प्रभावक मण्डल, बम्बई, प्र.सं., वि. १६७२
पं,धः/पू,	ंचाध्यायी/पूर्वार्ध श्लोक सं., पं. देवकीनन्दन. प्र. सं., ई. १९३२ पंचाध्यायी/उत्तरार्ध श्लोक सं., पं. देवकीनन्दन, प्र.सं. ई. १९३२
र्ष,घ./ज.··· मं कि/	प्रचारक्षावा/क्षत्रस्य रहाक है, २, प्रविधानस्य , अ.स. १. १८१९ कुल्लिक संज्ञानिक अधिकार से स्थितिक संस्थित के स्थानक स्थानक स्थानक स्थानक स्थानक स्थानक स्थानक स्थानक स्थानक
षं ,बि,/ वं कं कि/	पद्मनन्दि पंचिविशतिका अधिकार सं./श्लोक सं. जीवराज ग्रन्थमात्ता, शोलापुर, प्र.सं., ई. १९३२ पंचसंग्रह/प्राकृत अधिकार सं /गाथा सं ज्ञानपीठ , मनारस प्र. सं. ई. १९६०
पं.सं ,/प्रा.···/···	पश्चसम्बद्धाः अपने कार्याः । त्राच्याः तः, श्वापाः । वर्षाः स्वतः सः, सः, सः, सः, सः, सः, सः, सः, सः, सः
ਸੰ. सੰ./ सं. <i>\-</i>	पंचसंग्रह/संस्कृत अधिकार सं./श्लोक सं., पं. सं./प्रा. की टिप्पणी. प्र. सं., ई. ११६०

पद्मपुराण सर्ग/श्लोक सं., भारतीय ज्ञानपीठ बनारस, प्र.सं., विन्सं, २०१६ ष.षु.००/०० परीक्षामुख परिच्छेद सं./सूत्र सं./पृष्ठं सं., स्याद्वाद महाविद्यालय, काशी, प्र. सं. *ष,मु.•••/•••/*••• परमात्मप्रकाश/मूल या टीका अधिकार सं /गाथा सं /१ष्ठ सं., राजवन्द्र प्रनथमाला, द्वि.सं., वि.सं. २०१७ प.प्र./मू.../--/--पाण्डवपुराण सर्ग सं./श्लोक सं., जीवराज प्रन्थमाला, शोलापुर, प्र.सं., ई. १६६२ षा.पु.../... पुरुषाथ सिद्धध्युपाय एलोक सं. पू.सि 👵 प्रवचनसार/पूल या टीका गथा सं./१४ सं. प्रसानम् .../... प्रतिष्ठासारोद्धार अध्याय सं./श्लोक सं. प्रति,सा,⋯/⋯ **ब**ारस अणुवेबखा गाथा सं. मा.अ.... बोधपाहुड्/मूल या टीका गाया सं./पृष्ठ सं. माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, बश्बर्ड, प्र. सं., वि. सं. १६७७ को.पा./मू.···/·· बृहत जैन शब्दार्ण व/द्वितीय खंड/पृष्ठ सं., मूलचंद किशनदास कापड़िया, सूरत, प्र. सं.,वी,नि, २४६० बृ. जे. श · · · भगवती आराधना/मूल या टीका गाथा सं /पृष्ठ सं /पंक्ति सं , सखाराम दोशी, सोलापुर, प्र.सं., ई, १६३६ भ आः/मू. ः/ /… भाव पाहुड्/मूल या टीका गाथा सं ./पृष्ठ सं., माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, बम्बई, प्र.सं., वि सं. १६७७ भा.पा./मृ.../... महापुराण सर्ग सं./श्लोक सं., भारतीय ज्ञानपीठ. बनारस, प्र. सं., ई. १६५१ म.पु,…/··· महावन्ध पुस्तक सं./ई प्रकरण सं./पृष्ठ सं., भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस, प्र.सं., ई. १६६१ म.बं,···/§···/· मुलाचार गाथा सं्, अनन्तकीर्ति ग्रन्थमाला, प्र. सं्, वि. सं. १९७६ मृता.… मोक्ष पंचाशिका एसोक सं. मो.पं,… मोक्ष पाहुड्/मूल या टोका गाक्षा सं./पृष्ठ सं., माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, बम्बई, प्र. सं., वि. सं. १६७७ मो पा /मु . . . / . . . मोक्षमार्गप्रकाशक अधिकार सं./पृष्ठ सं./पंक्ति सं., सस्ती प्रन्थमाला, देहली, द्वि.सं., वि. सं. २०१० मो.मा.त्र....*।-...* युक्त्यनुशासन श्लोक सं., वीरसेवा मन्दिर, सरसावा, प्र. सं , ई. १९५१ यु.अनु,… योगसार खमितगति अधिकार सं /श्लोक सं.. जैनसिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था, कलकसा, ई.सं. १९९८ यो,सा.अ.--/---योगसार योगेन्द्रदेव गाथा सं,, परमारमप्रकाशके पीछे छपा यो सा यो रत्नकर्ण्ड भावकाचार श्लोक सं. र्,क.शाः∙∙∙ रयणसार गाथा सं. र.सा.… राजवार्तिक अध्याय सं /सूत्र सं /पृष्ट सं /पंक्ति सं., भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस, प्र.सं., बि.स. २००० रा.बा.…/…/… राजवार्तिक हिन्दी अध्याय सं./पृष्ठ सं./पंक्ति सं. रा,वा.हि.../…/… लिधसार/मून या टीका गाथा सं./१ष्ठ सं., जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता, प्र, सं. स्ताः/मू.../... लाटी संहिता अधिकार सं /श्लोक सं ,/98 सं . सा.सं.*ःः∤;ः∤*⋯ लिंग पाहुड्/मूल या ट्रोका गाथा सं /पृष्ठ सं.. माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला. प्र.सं . वि. सं. १६७७ लि.पा<u>./मृ</u>/---/---बसुनन्दि श्रावकाचार गाथा सं , भारतीय ज्ञानपीठ ,बनारस, प्र. सं., बि. सं. २००७ वसु.धाः... वैशेषिक दर्शन/अध्याय सं./आहिक/सूत्र सं./पृष्ठ सं., देहली पुस्तक भण्डार देहली, प्र सं., वि.सं. २०१७ वै.*द.०न*०न ने शील पाहुड्/मूल या टीका गाथा सं./पंक्ति सं., माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला मम्बई, प्र. सं., बि.सं. १६०० शी.पा.**/मृ** ···/·· श्लोकवार्तिक पुस्तक सं./अध्याय सं./सूत्र सं./वार्तिक सं./पृष्ठ सं., कुन्थुसागर ग्रन्थमाला शोलापुर, प्र.सं., श्लो,वा.../--/--/--र्हे. १६४६-१६५६ षर्खण्डागम पुस्तक सं /खण्ड सं., भाग, सूत्र/पृष्ठ सं. ष्:खं:••/////•• सप्तभङ्गोतरिङ्गनी पृष्ठ सं /पिक्ति सं , परम अत प्रभावक मण्डल, व्रि.सं, वि.सं. १६७२ स भं.त.../... स्याद्वादमञ्जरी श्लोक सं /१ष्ठ सं ./पंक्ति सं .. पाम श्रुत प्रभावक मण्डल, प्र. सं. १६६९ स,म,…/…/… समाधिशतक/मूल या टीका श्लोक सं./पृष्ठ सं., इष्टोपदेश युक्त, वीर सेवा मन्दिर, देहली, प्र.सं., २०२१ स.श./मू.···/·· समयसार/मूल या टोका गाथा सं./पृष्ठ सं /पंक्ति सं., अहिंसा मन्दिर प्रकाशन, वेहली, प्र.सं.३१.१२.११६६ स.सा,/मू,···/···/ समयसार/आत्मरूयाति गाथा सं /कलश स. स.सा./आ.../क सर्वार्थिसिद्धि अध्याय सं./सूत्र सं./पृष्ठ सं., भारतीय ज्ञानपोठ, बनारस, प्र.सं. ई. ११५५ स,सि,…/…/… स्वयमभू स्तोत्र श्लोक सं , वीरसेवा मन्दिर सरसावा, प्र. सं , ई. १६४१ स. स्तो... सागार धर्मामृत अधिकार सं,/श्लोक सं. सा.घ.⋯/⋯ सामाधिक पाठ अमितगति श्लोक सं-सा,पा.,••• सिद्धान्तसार संग्रह अव्याप सं,/श्लीक सं,, जीवराज जैन प्रन्थमाला, शीलापुर, प्र. सं. ई. १६४७ सि,सा.सं.··/· सिद्धि विनिश्चय/मूत या दोका प्रस्ताव सं /श्लोक सं /पृष्ठ सं /पंक्ति सं ,भारतीय झानपीठ, प्र.सं ,ई.१६४१ सि.वि./मू,···/··/··/ सभाषित रतन सदोह द्वोक सं. (अमितगति), जेन प्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता, प्र.सं.. ई. १६१७ **मु**.र.स , · · · सूत्र पाहुड़/मूल या टीका गाथा सं./पृष्ठ सं.. मा णकवन्द्र प्रन्थमाला बन्बई, प्र.सं , वि.सं. १६७७ सू.पा./मू.../... हरिवंश पुराण समें/श्लोक/सं. भारतीय ज्ञान के, बनारस, प्र.सं. ह.पु.../---

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश [भाग ४]

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

[क्षु० जिनेन्द्र वर्णी]

[श]

शंकर वेदांत-इसका अपरनाम ब्रह्माद्वेत-दे० वेदान्त./२।।

शंकराचार्य — ब्राह्मण जातिके थे। हिन्दू धर्मके (विशेषतः अद्वेत-बादके) महान् प्रचारक थे। गौड़पादके शिष्य गोबिन्दके शिष्य थे। ब्रह्माद्वेतमतके संस्थापक थे। केवल २८ वर्षकी आयु थी। ई. ७८८ में मालावारमें जनम हुआ था। मृत्यु ई. ५१६।

रांकरानंद — बहुत बड़ा तार्किक व नैयायिक एक बौद्ध साधुथा। कृति—अपोहसिद्धि, प्रतिबन्धसिद्धि । समय—ई, प्रः० (स्याद्वाद सिद्धि। प्र, पृ, २० पं, दरबारीलाल)।

वंका -- १ नि. सा./ता. वृ./४ शंका हि सकलमोहरागद्वेषादयः। -- शंका अर्थात् सकल मोहराग द्वेषादिक (दोष)।

पं. घ./उ./४८१ शंका भी' साध्वसं भीतिर्भयमेकाभिधा अमी । चशंका, भी, साध्वस, भीति और भय ये शब्द एकार्थ वाचक हैं।

द. पा./पं, जयचन्द/२/१० शंका नाम संशयका भी है और भयका भी । और भी दे. निशंकित । २, सामान्य अतिचारका एक भेद—दे. अतिचार । ३ लघु व दीर्घ शंका विधि—दे. समिति/१/७ ४. सम्यग्दर्शनके शंका अतिचार व संशय मिध्यास्व में अन्तर—दे. संशय ।

शंकाकार शिखा—Super-incumbent cone (धृ./प्र. ४ प्र./२८)।

शंकित - आहारका एक दोष-दे, आहार/11/४/४।

शंकित विपक्ष वृत्ति हेत्वाभास- हे. व्यभिचार ।

शंकुसमुच्छिन्नक—Frustrum of cone (ज. प./प्र. १०८) ।

रांख — १. चक्रवर्तीकी नवनिधियों में से एक — दे. शलाकापुरुष/२। २. प्रतिमाके १०८ उपकरणों में से एक — दे. चैरय/१/११। ३. यादव-वंशी कृष्णका २३वाँ पुत्र — दे. इतिहास१०/१०; ४. लवण समुद्र में स्थित एक पर्वत — दे. लोक/१/६ ६ अपर विदेहस्थ एक क्षेत्र — दे. लोक/२/२;६. आशीविष वशारका एक क्ट व उसका रक्षक देव — दे. लोक/१/४।

शंख परिणाम—एक ग्रह्—दे, ग्रह ।

शंख रतन-रुचक पर्वतस्थ एक कूट-दे. लोक/१/१३।

रोख वज्र — विजयार्घ पर्वतकी दक्षिण श्रेणीका एक नगर — दे. विद्याधर ।

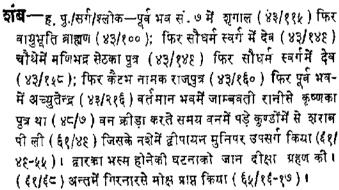
शंखवर - मध्यत्रोकका बारहवाँ द्वीप व सागर-दे. लोक/६/१।

शंखवर्ण-एक ग्रह-दे, ग्रह ।

शंखाकार आकृति-

ज. प./प्र. ८५ । क्षेत्रफल — दे. गणित/ II/ ७/७ ।

शंखावतं योनि--दे, योनि ।



शंबरदेव — भगवात् पार्श्वनाथका पूर्व भवका भाई था। इसने भग-वात् पर घोर उपसर्ग किया (म.पु./७३/१३७) अन्तमें परम्पराका केर छोड़कर भगवात्की स्तुति की (७३/१६८) यह कमठका उत्तरका नवमाँ भव है--दे० कमठ।

शंदूक प्र./४२/२लोक — रावणकी बहन चन्द्रनखाका पुत्र था।
सूर्यहास खड्गको सिद्ध करनेके लिए १२ वर्षका योग वंशस्थल पर्वत
पर धारण किया (४६-४०) वनवासी लक्ष्मणने खड्गकी गन्ध्रसे
आश्चर्यान्वित हो, खड्गकी परखके अर्थ शम्बूक सहित वंशके
बीड़ेको काट दिया (४६-६६) यह मरकर नरकमे गया।

शक-इसका वर्समान नाम बैविट्रया है। (म. पु./प्र. ६०)।

शकटि—घ. १४/६, ६, ४१/३८/७ लोहेण बढणेमि~तुंब महाचक्का लोहबढछुह्यपेरंता लोणादीणं गरुअभरुव्वहणस्त्रमा संयडा नाम। —जिनकी धुर गाड़ीकी नाभि और महाचक्र लोहेसे बँधे हुए हैं, जिनके छुह्य पर्यन्त लोहसे बँधे हुए है, जो नमक आदि भार ढोनेमें समर्थ हैं वे शकट कहलाते हैं।

शकटमुखी — विजयार्घकी दक्षिण श्रेणीका एक नगर ।

--दे. विद्याघर ।

शक वंश मगध देशकी राज्य वंशावलीके अनुसार यह एक छोटी सी जाति थी। इस जातिका कोई भी एकछत्र राज्य नहीं था। इस वंशमें छोटे-छोटे सरदार होते थे जो धीरे-धीरे करके भारतवर्षके किन्ही-किन्हीं भागोंपर अपना अधिकार जमा कैठे थे. जिसके कारण मौयवंशी विक्रम/दित्यका राज्य छिन्न-भिन्न हों गया था। भृत्यवंशी गौतमी पुत्र साक्कणी (शालिबाहन) ने बी. नि. ६०६ में शक संबद प्रचलित किया था। जो पीछेसे शक संबद कहलाने लगा। इसके सरदारोंका नाम इतिहासमें नहीं मिलता है। हाँ, आगमकारोंने उनका उक्लेख किया है जो निम्न प्रकार है—

१, पुष्यमित्र वी. नि. २५५-२८५; ई. यू. २७१-२४६

२. बसुमित्र २०४-३१४; ., ., २४६-२११

३. अग्निमित्र ,, ,, ३१६-३४६; ,, ,, २१९-९⊏९

४. गर्दभिच्स ,, ,, ३४६-४४६; ,, ,, १८१-८१

४. नरवाहन ,, ,, ४४६-४८६; ,, ,, ८९- ४९

(विशेष-दे, इतिहास/मगधके राज्य वंश) नरवाहन की वी, नि, हैं०१ में शालिवाहन द्वारा हारनेकी संगतिके लिए भी--दे, इति-हास/३/४।

शक संवत्—दे. इतिहास/२/४,१०। कोश 1/ परिशिष्टं/६३ । शक्ति—शक्तिके भेद व लक्षण—दे. स्वभाव।

शक्तिकुमार--गृहिलोत बंशका राजा था। पाशुपत धर्मका अनु-ग्रायी था। परन्तु कुछ-कुछ जैनधर्मका भी विश्वास करता था। समय-ई. श. १०-११। (जैन साहित्य इतिहास/पृ. २६६ प्रेमी जी) (ति. प./प्र. ८ A.N. Up.)

शक्ति तत्त्व-- दे. शैव दर्शन।

शक्तितस्तय--दे तप।

शक्तितस्त्याग-दे. साम ।

इाक्ति भूपाल — बंश वंशका राजा था। इसके राज्यमें ही पद-नन्दीने जम्बूद्वीप प्रक्षिकी रचना की थी। सम्भवतः गुहिलोत वंश-का शक्तिकुमार ही यह शक्ति भ्रुपाल था। समय—ई. १० का अन्तिम चरण (ज. प./प्र. १४ A.N. Up., हीरालाल)।

शक्यप्राप्ति—न्याः सू./टी./१/१/३२/३३/२३ प्रमातुः प्रमाणानिं प्रमेयाधिगमार्थानि सा शक्यप्राप्तिः । —प्रमेयोंके जाननेके लिए जो प्रमाताके प्रमाण हैं, उसीको शक्यप्राप्ति कहते हैं।

शक्रपुरी—विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीका एक नगर।—दे. विद्याधर। शक्रादित्य—श्रोद्ध मतानुयायी राजा था। इसने नालन्दामें मठ बनवाये थे। समय—ई. श. १।

शतक — (दे. परिशिष्ट)।

शतक चूणि-दे पूर्ण तथा कोश !! का परिशिष्ट ।

शतपदा - रुचक पर्वत निवासिनी दिवकुमारी देवी-दे. लोकश्रशः।

शतपर्वा—एक विद्या—दे, विद्या।

शतभागा-भरत क्षेत्रस्थ आर्य खण्डकी एक नदी-दे० मनुष्य/४।

शतिम्या एक नक्षत्र - दे० नक्षत्र ।

शतमिति — म पू./स. श्लोक-ऋषभदेवके पूर्व (१/२००) भवके महावल की पर्यायका मिथ्यादृष्टि मन्त्री था (४/१६१) नैरारमवादी था (१/४४) मर कर नरक गया (१०/२२)। शतमुख--भगवात् वासुपूज्यका शासक यक्ष-दे. तीर्थं कर/४।

शतहर-विजयार्घकी दक्षिण श्रेणीका एक नगर-दे० विद्याधरः।

श्रातानीक — कुरुवंशी राजा था। पांचाल देशका राजा तथा जनमे-जयका पुत्र था। प्रवाहण जेबलिका पिता था। समय—ई. पू. १४२०-१४०० — दे. इतिहास/३/३।

शतार - १. करपवासी देवोंका एक भेद-दे, स्वर्ग/३ । २. करप-स्वर्गीका ग्यारहवाँ पटल-दे. स्वर्ग/४/२।

शत्रुंजय—विजयार्धकी उत्तर श्रेणीका एक नगर—दे. विद्याधर। शत्रु—सच्चा शत्रु मोह है—दे. मोहनीय/१/४।

शासु हन --- १. ह. पु./सर्ग/श्लोक -- पूर्वभव भव सं. ६ में भानुदत्त सेठ-का पुत्र शूरदत्त था (३४/६७-६८) फिर मिणचूल नामक विद्याधर हुआ (३४/१३२-१३३) पूर्व भवमें गंगदेव राजाका पुत्र मुनन्द था (३४/१४२) वर्तमान भवमें वसुदेवका पुत्र कृष्णका भाई था (३४/३)। कंसके भयसे जन्मते हो किसी देवने उसको उठाकर सुदृष्टि सेठके घर पहुँचा दिया (३४/७)। दीक्षा ग्रहणकर घोर तप किया (६६/१९६-१२०) अन्तमें गिरनारसे मोक्ष प्राप्त किया (६६/१६-१७)। २. प. पु./सर्ग/ श्लोक सं. दशरथका पुत्र तथा रामका छोटा भाई था (२६/३६) मधु-को हराकर मथुराका राज्य प्राप्त किया (७६/१९६)। अन्तमें दीक्षा ग्रहण की (१९६/३८)।

शनि—१. एक ग्रह—दे, ग्रह। २. इसका लोकमें अवस्थान—दे. क्योतिष लोक।

शन्मुख--भगवान् वासुपूज्यका शासक यक्ष-दे, तीर्थ कर/१/३।

रिबर---मीमांसा दर्शनमें जैमिनी सूत्रके मूल भाष्यकार शाबर-भाष्यके रचियता। समय-ई. श. ४--दे. मीमांसा दर्शन।

दाबल-अमुर भवनवासी देव-दे. अमुर ।

शब्द--- १. शब्द सामान्यका कक्षण

स. सि./२/२०/१७८-१७६/१० शब्दनत इति शब्दः। शब्दनं शब्द इति। ⇒जो शब्द रूप होता है वह शब्द है। और शब्दन शब्द है। (रा. वा./२/२०/१/१३२/३२)।

रा. वा /१/२४/९/४८१/१०। श्राप्त्यर्थमाह्नयति प्रत्याययति, शप्यते येन, शपनमात्रं वा शब्द:। च्लो अर्थवो शपति अर्थात् कहता है, जिसके द्वारा अर्थ कहा जाता है या शपन मात्र है, वह शब्द है।

ध. १/१.१.३३/२४७/७ यदा द्रव्यं प्राधान्येन विवक्षितं तदेन्द्रियेण द्रव्यमेव संनिकृष्यते. न ततो व्यतिरिक्ताः स्पर्शादयः केचन सन्तीति एतस्यां दिवक्षायां कर्मसाधनत्वं शब्दस्य युज्यत इति, शब्यत इति शब्दः । यदा तु पर्यायः प्राधान्येन विवक्षितस्तदा भेदोपपत्तेः औदासीन्यावस्थितभावकथनाद्भावसाधनं शब्दः शब्दनं शब्द इति । = जिस समय प्रधान रूपसे द्रव्य विवक्षित होता है उस समय इन्द्रियों के द्वारा द्रव्यका हो ग्रहण होता है । उससे भिन्न स्पर्शादिक कोई चीज नहीं है । इस विवक्षामें शब्दके कर्मसाधनपना वन जाता है जैसे शब्दते अर्थात् जो ध्विन रूप हो वह शब्द है । तथा जिस समय प्रधान रूपसे पर्याय विवक्षित होती है, उस समय द्रव्यसे पर्यायका भेद सिद्ध होता है अत्तर्व उदासीन रूपसे अवस्थित भावका कथन किया जानेसे शब्द भावसाधन भी है जैसे 'शब्दनं शब्दः' अर्थात् ध्विन रूप क्रिया धर्मको शब्द कहते हैं ।

पं. का./प्र. प्र./७१ वाह्यभवणेन्द्रियावलिम्बती भावेन्द्रियपरिच्छेद्यो ध्वनिः शब्दः। = अन्ह्यः अवणेन्द्रिय द्वारा अवलम्बित, भावेन्द्रिय द्वारा जानने योग्य ऐसी जो ध्वनि वह शब्द है।

* कायोत्सर्गका एक अतिचार— हे. ब्युत्सर्ग/१।

२. शब्दके भेद

- स. सि./१/२४/२६४-२६५/१२ शब्दो द्विविधो भाषालक्षणो विपरीत-श्चित । अभाषात्मनो द्विविधः प्रायोगिको वैस्रसिकश्चेति । प्रायोगिकश्चतुर्धा तत्वितत्वनसौषिरभेदात । — भाषारूप शब्द और अभाषारूप शब्द इस प्रकार शब्दोंके दो भेद हैं। अभाषारमक शब्द दो प्रकारके हैं — प्रायोगिक और वैस्रसिक । अत्या तत, वितत, घन और सौषिरके भेदसे प्रायोगिक शब्द चार प्रकार है। (रा. वा./१/२४/२-१/४५१/२१), (पं. का./ता. वृ./७१/१३५/६), (द्र. सं./टो./१६/१२/२)।
- ध. १३/५,५,२६/२२१/६ छन्त्रिहो तर-विदद-घण-मुसिर-घोस-भास भेरण। =वह छह प्रकार है—तत वितत, घन, मुधिर, बोष और भाषा।

* माषात्मक शब्दके भेद व कक्षणं—हे. भाषा ।

३. अमावास्मक शब्दोंके कक्षण

- स. सि./४/२४/२६५/३ वैस्रसिको वलाहकादिप्रभवः तत्र चर्मतनननिमित्तः पुष्करभेरीदर्दु रादिप्रभवस्ततः। तन्त्रीकृतवीणासुघोषादिसमुद्रभवो विततः। तालघण्टालालनाचिभाषातजो घनः। वंशराङ्कादिनिमित्तः सौषिरः। मेघ आदिके निमित्तसे जो शब्द उत्पन्न होते
 हैं वे वैस्रसिक शब्द हैं। चमझेसे मढ़े हुए पुष्कर, भेरी और दद्दु रसे
 जो शब्द उत्पन्न होता है वह तत शब्द हैं। ताँत वाले वीणा और
 सुघोष आदिसे जो शब्द उत्पन्न होता है वह वितत हैं। ताल, घण्टा
 और लालन आदिके ताइनसे जो शब्द उत्पन्न होता है वह धन शब्द
 है तथा बांसुरी और शंख आदिके पूँकनेसे जो शब्द उत्पन्न होता
 है वह सौषिर शब्द हैं। (रा. बा./४/२४/४-४/४०)।
- ध, १३/४,४,२६/२२१/७ तरथ तदो णाम बीणा-तिसरिआलावणि-व व्वीस-खुक्खुणादिजणिदो। वितदो णाम भेरी-सुर्दिगपटहादि-समुब्धूदो । घणो णाम जयघंटादिघणदव्याणं संघादुद्वाविदो। सुसिरो णाम वंस-संख-काहलादिजणिदो। घोसो णाम घस्समाण-दक्ष्यजणिदो। =बीणा, त्रिसरिक, आलापिनी, वव्बीसक और खुक्खुण आदिसे उरपन्त हुआ शब्द तत है। भेरी, मृदंग और पटह आदिसे उरपन्त हुआ शब्द वितत है। जय घण्टा आदि ठोस द्रव्योंके अभिवातसे उरपन्त हुआ शब्द घन है। बंश, शंख और काहल आदि-से उरपन्त हुआ शब्द सौधिर है। घर्षणको प्राप्त हुए द्रव्यसे उरपन्त-हुआ शब्द घोष है।
- पं का./ता. वृ./७१/१३ १/१ ततं वीणादिकं हो यं विततं पटहादिकं। घनं तु कंसतालादि सुषिरं वंशादिकं विदुः। वेश्नसिकस्तु मैघादि-प्रभवः। = बीणादिके शब्दको तत, ढोल आदिके शब्दको वितत, मंजीरे तथा ताल आदिके शब्दको पन और बंसी आदिके शब्दको सुषिर कहते हैं। स्वभावसे उरपन्न होनेवाला वैश्वसिक शब्द बादल आदिसे होता है। (द्र. सं./टो./१६/१२/६)।
 - * व्रव्य व भाव वचन--दे० वचन।
 - क्रियाधाची व गुणवाची अःदि शब्द─-३. नाम/३।

४. शब्दमें अनेकों धर्मोंका निर्देश

स्या. म./२२/२००/१७ शन्देष्यपि जवात्तानुदात्तस्यितिविष्ठतसंष्ठतभोष-बदयोषताच्पप्राणमहाप्राणताद्यः तत्तदर्धप्रत्यायनश्वरयादयश्चाद-सेयाः। = पदार्थीको तरह शब्दोंमें भी जवात्त. अनुदात्त, स्वरित, विषृत, संवृत, घोष, अश्रोष, अश्वप्राण, महाप्राण आदि पदार्थीके ज्ञान करानेको शक्ति आदि अनन्त धर्म पाये जाते हैं।

५. शब्दके संचार व श्रवण सम्बन्धी नियम

- घ. १३/६.६.२६/२२२/१ सद्द-पोग्गला सगुप्पतिपवेसादो उच्छलिय दसदिसासु गच्छमाणा उक्कस्तेण जाव लोगंतां ताव गच्छं ति। •••सब्के ण गच्छं ति, थोवा चेव गच्छं ति। तं जहा—सद्दप्जजाएण परिणद-पदेसे अणंता पोग्गला अवद्वाणं कुणंति। विदियागासपदेसे तत्तो अणंतगुणहीणा। तिंदियागासपदेसे अणंतगुणहीणा। चउत्थागासपदेसे अणंतगुणहीणा। एवमणंतरोवणिधाए अणंतगुणहीणा होदूण गच्छं ति जाव सक्वदिसासु वादवलयपेरंतं पत्ताति। परदो किण्ण गच्छं ति। धम्मात्थिकायाभावादो। ण च सब्वे सद्द-पोग्गला एगसमएण चेव लोगंतं गच्छं ति ति णियमो, केसि पि दोसमए आर्दि कादूण जहण्णेण अंतोमुहुत्तकालेण लोगंतपत्ती होदि सि उवदेसादो। एवं समयं पि सद्दप्जजाएण परिणद्वोग्गलाणं गमणाबहुाणाणं पर्ववणा
- ध. १३/१.४,२६/गा. २/२२४ भासागदसमसेडि सह' जिंद सुणि निस्सयं सुणि । उस्सेडि पुण सह' सुणेहि णियमा पराघादे । ३:
- ध, १३/५,५,२६/१२६/१ समसेडीए आगच्छमाणे सह-पोरगले परघादेण अपरघादेण च सुणदि । तं जहा—जदि परघादो णरिथ तो कंडुज्जु-बाए भइए कण्ण छिद्दे पतिहु सह-पोग्गले सुणदि । पराघादे संते वि मुणेदि, दो समसेडीदो पराघादेण उस्सेडि गंत्रण पुणी परांघादेण समसेडीए कण्णक्तिहै पविद्वाणं सहं-पौरगलाणं सवणुवलंभाहो। उस्सेडिं गदसद्द-पोग्गले पुण पराघादेणेव मुणेदि, अण्णहा तेसिं सवणाणुववसीदो । 🖚 १, संचार सम्बन्धी – शब्द पुद्गाल अपने उत्पत्ति प्रदेशसे उछलकर दसों दिशाओं में जाते हुए उत्कृष्ट रूपसे लोकके अन्त भाग तक जाते हैं।...सन नहीं जाते थोड़े ही जाते हैं। यथा---शब्द पर्यायसे परिणत हुए प्रदेशमें अनन्तपृद्धगल अवस्थित रहते हैं। (उससे लगे हुए) दूसरे आकाश प्रदेशमें उनसे अनन्त गुणे हीन पुद्दगल अवस्थित रहते हैं। तीसरे आकाश प्रदेशमें उससे लगे हुए अनन्तगुणे होन पुद्रगत्न अवस्थित रहते हैं। चौथे आकाश प्रदेशमें उससे अनन्तगुणे हीन पुद्दगल अवस्थित रहते हैं। इस तरह वे अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा वातवलय पर्यन्त सम दिशाओं में उत्तरोत्तर एक-एक प्रदेशके प्रक्षि अनन्तगुणे होन होते हुए जाते हैं। प्रश्न--आगे क्यों नहीं जाते। उत्तर--धर्मास्तिकायका अभाव होनेसे वातवलयके आगे नहीं जाते हैं। ये सब शब्द पुद्दगल एक समयमें ही लोकके अन्त तक जाते हैं, ऐसा कोई नियम नहीं है। किन्तु ऐसा उपदेश है कि कितने ही शब्द पुद्दगल कमसे कम दो समयसे लेकर अन्तर्मृहर्त कालके द्वारा लोकके अन्तको प्राप्त होते हैं। इस तरह प्रत्येक समयमें शब्द पर्यायसे परिणत हुए पुद्गलोंके गमन और अवस्थानका कथन करना चाहिए।

२. श्रवण सम्बन्धी—"भाषागत समश्रीणरूप शब्दको यदि सुनता है तो मिश्रको ही , नता है। और उच्छ्रे णिको प्राप्त हुए शब्दको यदि सुनता है तो अमसे परघात के द्वारा सुनता है"। श सम- श्रीण द्वारा आते हुए शब्द पुइगलोंको परघात और अपरघात रूपसे सुनता है। यथा— यदि परघात नहीं है तो माणके समान ऋजुगतिसे कर्ण छिद्रमें प्रविष्ठ हुए शब्द पुइगलोंको सुनता है। पराघात होनेपर भी सुनता है क्योंकि, समश्रीणसे पराघात द्वारा उच्छ्रे णिको प्राप्त होकर पुनः पराघात द्वारा समश्रीणसे कर्ण छिद्रमें प्रविष्ठ हुए शब्द पुद्रगलोंको अनता है पराघात द्वारा समश्रीणसे कर्ण छिद्रमें प्रविष्ठ हुए शब्द पुद्रगलोंका श्रवण उपलब्ध होता है। उच्छ्रे णिको प्राप्त हुए शब्द पुद्रगलोंका श्रवण उपलब्ध होता है। उच्छ्रे णिको प्राप्त हुए शब्द पुतः पराघातके द्वारा ही सुने जाते हैं अन्यथा उनका सुनना नहीं बन सकता है।

डोड आदिके शब्द कथंचित् मापारमक हैं

घ. १४/१.६.८३/६१/१२ कथं काहलादिसद्दाणं भासाववएसो । ण, भासो व्य भासे ति उवयारेण कालादिसद्दाणंपि तव्यवएससिद्धीदो । ज्यप्रत—नगरा आदिके शब्दोंकी भाषा संज्ञा कैसे है। (अथित् इन्हें भाषा वर्गणासे उत्पन्न क्यों कहते हो) १ उत्तर—नहीं, विधौकि, भाषाके समान होनेसे भाषा है इस प्रकारके उपचारसे नगारा आदिके शब्दोंकी भी भाषा संज्ञा है।

७. शब्द पुर्गलकी पर्याय है आकाशका गुण नहीं

- वं. का./मू./७६ सहो स्कंध्रियभवो खंधो परमाणुसंगसंघादो । पुट्ठेसु
 तेसु जायदि सहो उपपादिगो णियदो ।७६१ = शब्द स्कन्ध्रजन्य
 है। स्कन्ध्र परमाणु दलका संघात है, और वे स्कन्ध्र स्पर्शित
 होनेसे—टकरानेसे शब्द उत्पन्न होता है; इस प्रकार वह (शब्द)
 नियत रूपसे उत्पाद्य है।७६। अर्थात पुह्रगलकी पर्याय है। (प्र.
 सा./मू./१३२)।
- रा. वा./१/१९/१६/१६८/४ शब्दो हि आकाशगुणः वाताभिवातनाहानिमित्तवशात् सर्वत्रोत्पद्यमान इन्द्रियप्रस्यक्षः अन्यद्रव्यासंभवी
 गुणिनमाकार्श सर्वगतं गमयित, गुणानामाधारपरतन्त्रस्वादिति;
 तन्नः किं कारणम् । पौइगलिकस्वात् । पुद्रगलद्रव्यविकारो हि सब्दः
 माकाशगुणः । तस्घोपरिष्टात् युक्तिविक्ष्यते । —प्रश्न—शब्द आकाश
 का गुण है, वह वायुके अभिघात आदि बाह्य निमित्तोंसे उत्पन्न
 होता है, इन्द्रियप्रस्यक्ष है, गुण है, अन्य द्रव्योमें नहीं पाया
 जाता, निराधार गुण रह नहीं सकते अतः अपने आधारभूत गुणी
 आकाशका अनुमान कराता है ! उत्तर—ऐसा नहीं है क्योंकि शब्द
 पौद्रगलिक है। शब्द पुद्रगल द्रव्यका विकार है आकाशका गुण नहीं ।
 (और भी दे, मूर्त/६)।
- प्र. सा./त. प्र./१३२ शब्दस्यापी न्द्रिययाहारवाहगुणस्यं न खल्वाहाङ्क-ः अनेकद्रव्यात्मकपुद्गासपर्यायत्वेनाम्युपगम्यमानत्वाद् । ···न ताबद्मूर्तद्रव्यगुणः शब्दः···अमूर्तद्रव्यस्यापि श्रवणेन्द्रिय-बिषयस्वापत्तेः। "मूर्तद्रव्यगुणोऽपि न भवति। "ततः कादा-चिरकस्योत्स्वातिनित्यस्वस्य न दाब्दस्यास्ति गुणस्वस् । ...न च पुद्गलपर्यायस्वे शब्दस्य पृथिवीस्कन्धस्येव स्पर्शनादीन्द्रियविष-यरबम् । अपां ब्राणेन्द्रियाविषयत्वात् । 🗕 १. ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए कि शब्द भी इन्डिय ब्राह्य होनेसे पुण होगा; क्यों कि वह विचित्रताके द्वारा विश्वरूपस्व (अनेकानेक प्रकारस्व) दिखलाता है, फिर भी उसे अनेक द्रव्यारमक पुद्रगल पर्यायके रूपमें स्वीकार किया गया है। २, शब्द अमूर्त द्रव्यका गुण नहीं है क्योंकि, …अमूर्त द्रव्यके भी श्रवणेन्द्रियकी विषयभूतता आ जायेगी। ३. शब्द मूर्त द्रव्यका गुण भी नहीं है ... अनित्यस्वसे निरयत्वके उत्थापित होनेसे (अर्थात् शब्द कभी-कभी ही होता है और निष्य नहीं है, इसलिए) शब्द गुण नहीं है। ४, यदि शब्द पुद्रगतकी पर्याय हो तो वह पृथिवी स्कन्धकी भौति स्पर्शनादिक इन्द्रियोंका विषय होना चाहिए अर्थात् जैसे पृथिवी स्कन्धरूप पुरुगल पर्याय सर्वे इन्द्रियोंसे ज्ञात होती है उसी प्रकार शब्दरूप पुद्दगल पर्याय सभी इन्द्रियोंसे ज्ञात होनी चाहिए (ऐसा तर्क किया जाये तो) ऐसा भी नहीं है क्यों कि पानी (पुद्दगलकी पर्याय है, फिर भी) झाणेन्द्रियका विषय नहीं है। (प्र. सा./ता. वृ./१३८/१८६/११) ।

८. शब्दको जाननेका प्रयोजन

- पं. का./ता. वृ./७१/१३४/१० इदं सर्वं हेयतत्त्वमेतस्माद्भिन्तं शुद्धारम-तत्त्वमुपादेयमिति भावार्थः । = यह सर्व तत्त्व हेय है । इससे भिन्न शुद्धारम तत्त्व ही उपादेय है ऐसा भावार्थ है ।
 - * शब्दकी अपेक्षा द्रव्यमें भेदाभेद--दे. सप्तभंगी/१/=।
 - * बाब्द भरूप हैं और अर्थ अनन्त हैं--- दे. आगम/४।

शब्द अर्थ सम्बन्ध — दे, आगम/४।

राज्य कोरा — जैनाचार्यीन कई शब्दकोश बनाये हैं — १. था. पूज्यपाद (ई. श. १) कृत शब्दावतार । २. १वे. हेमचन्द्रसूरि (ई. १०८८-११७३) कृत सिद्धहेम शब्दानुशासन । ३. १वे. हेमचन्द्रसूरि (ई. १०८८-११७३) कृत अभिधानचिन्तामणि कोश (हैमी नाममाला कोश)। ४. १वे. हेमचन्द्रसूरि (ई. १०८८-११७३) कृत अनेकार्थसंग्रह। ६. १वे. हेमचन्द्रसूरि (ई. १०८८-१९७३) कृत वेशीनाममाला। ६. पं. आशाधर (ई. ११७२-१२४३) कृत 'अमरकोषकी टीका' रूप क्रिया-कलाप। ७. आचार्य शुभ-चन्द्र (ई. ११९६-११४६) द्वारा रचित शब्द चिन्तामणि। ८. था० भट्टाकलंक द्वि. (ई. १६०४) द्वारा रचित शब्द चिन्तामणि। ८. पं. अनारसीदास (ई. ११८५-१६४४) कृत १७६ दोहा प्रमाण भाषा नाम माला। (ती./४/२६२)। १०. मा. बिहारी जाल (ई. १६२४-१६६४) कृत वृहद् क्रिन शब्दाण्व।

शब्द नय-दे नय/III/६।

शब्दपुनरुक्त निग्रह स्थान — हे. पुनरुक्त ।

शब्द प्रमाण-दे. अरगम ।

शब्द स्रह्म - दे. ब्रह्म।

शब्द लिंगज ज्ञान—दे. श्रुतकान/III ।

शब्दवान्—हैमवत क्षेत्रके बहुमध्य भागस्य क्टके आकार वाला नाभिगिरि पर्वत — दे. लोक/४/३।

शब्द समय—दे. समय।

शब्दाकुलित आलोचना ।

शब्दाद्वैत-- दे. अहैतवाद ।

शब्दानुपात—स. सि./७/३१/६३६/१० व्यापारकरान्प्रक्षान्प्रत्य-भ्युरकात्सिकादिकरणं शब्दानुपातः। —जो पुरुष किसी उद्योगमें जुटे हैं उन्हें उद्देश्य कर घोसना आदि शब्दानुपात है। (देशबतके अतिचारके प्रकरणमें), (रा. वा./७/३१/३/४६६६)।

शब्दानुशासन — दे. शब्दकोश ।

शब्दावतार—दे. शब्दकोशा ।

राम — प्र. सा./ता. वृ./अ/१/१० स एव धर्मः । स्वात्मभावनोत्थसुखा-, मृतशीतलजलेन कामक्रोधादिरूपाग्निजनितस्य संसारदुखदाह-स्योपशमकत्वात शम इति । ∞वह धर्म ही शम है, वयोंकि स्वात्म-भावनासे उत्पन्न सुखामृत शीतल जलके द्वारा कामकोधादिसे उत्पन्न संसार दुखकी दाहको विनाश करनेवाला है।

शयनासन शुद्धि—हे, शुद्धि।

शाया परिषह — स. सि./६/६/४२३/११ स्वाध्यायध्यानाध्वश्रमपरिलेदितस्य मीह तिकी लरिविषम्प्रचुरशकराक्षपानसङ्कृष्टातिशीतोकोषु भूमिप्रदेशेषु निद्रामनुभवतो यथाकृत कपार्श्वदण्डायितादिशायिनप्राणिकाधापरिहाराय पतितदारुवद्द व्यपगतासुवदपरिवर्तमानस्य ज्ञानभावनावहितचेतसोऽनुष्टितव्यन्तरादिविविधोपसर्गादण्यचितविद्यहस्यानियमितकानां तत्कृतवाधां श्रममाणस्य श्रय्यापरिषहक्षमा कथ्यते। — जो स्वाध्याय ध्यान और अध्व श्रमके कारण
थककर कटोर, विषम तथा प्रचुर मात्रामें कंकड़ और खप्परिके
दुकशेंसे व्याप्त ऐसे अतिशीत तथा अत्युष्ण भूमि प्रदेशोंमें एक सुदूर्त
प्रमाण निद्राका अनुभव करता है, जो यथाकृत एक पार्श्व भागसे
या दण्डायित आदि रूपसे श्रयन करता है, करवट नेनेसे प्राणियोंको होनेवानी वाधाका निवारण करनेके न्यार जो गिरे हुए लकड़ीके

कुन्देके समान या भुदकि समान करवट नहीं बदनता, जिसका चित्त ज्ञान भावनामें लगा हुआ है, व्यन्तरादिकके द्वारा किये गये नाना प्रकारके उपसर्गीसे भी जिसका शरीर चलायमान नहीं होता और जो अनियतकालिक तत्कृत बाधाको सहन करता है उसके शय्या परिषहजय कही जाती है। (रा. वा./१/१/१६/६१०/१८), (चा. सा./१९६/३)।

शरण — रा. वा./१/७/२/६००/१६ शरणं द्विविधं-लीकिकं लोकोत्तरं चेति । तत्त्रत्येकं विधा — जीवाजीविमश्रकभेदात । तत्र राजा देवता वा लीकिकं जीवशरणम्, प्राकारादि अजीवशरणम् । ग्राम-नगरादि मिश्रकम् । पञ्च गुरवो लोकोत्तरजीवशरणम् । तत्प्रति-विम्वाद्यजीवशरणम् । सधर्मोपकरणसाधुवर्णो मिश्रकशरणम् । चशरण दो प्रकारका है — एक लौकिक दूसरा लोकोत्तर । तथा वे दोनों ही जीव, अजीव और मिश्रकके भेदसे तीन-तीन प्रकारके हैं । राजा देवता आदि लौकिक जीवशरण हैं । कोट, शहर, पनाह आदि लौकिक अजीव शरण हैं और कोट खाई सहित गाँव नगर आदि लौकिक प्रश्न शरण हैं । पाँचों परमेश्रो लोकोत्तर जीव शरण हैं । इन अरहंत खादिके प्रतिबंब आदि लोकोत्तर आवि शरण हैं । धर्म सहित साधुओंका समुदाय तथा जनके उपकरण आदि लोकोत्तर मिश्र शरण हैं । (चा. सा./१७०/४)

शरावती — वर्तमान श्रावस्ती जो अयोध्याके पास है। (म.प्र./प १० पं. पन्नालाल)

शरीर जीवके शरीर पाँच प्रकारके माने गये है - औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस व कार्माण ये पाँचों उत्तरोत्तर मृक्ष्म हैं। मनुष्य तिर्यंचका शरीर औदारिक होनेके कारण स्थूल व दृष्टिगत है। देव नारिकयों का वैक्रियिक शरीर होता है। तैजस व कार्मण शरीर सभी संसारी जीवों के होते हैं। आहारक शरीर किन्हों तपस्वी जनों के ही सम्भव हैं। शरीर यचिष जीवके लिए अपकारी है पर मुमुक्ष जन इसे मोक्षमार्गमें लगाकर उपकारी बना लेते हैं।

शरीर व शरीर नामकर्म निर्देश ŝ शरीर सामान्यका लक्षण । ₹ शरीरोंकी उत्पति कर्माधीन है। ¥ —दै. कर्म। शरीर नामकर्मका लक्षण । ₹ शरीर व शरीर नामकर्मके भेद ŧ औदारिकादि शरीर * —दे. वह वह नाम। मत्येक व साधारण शरीर । चे. बनस्पति । शायक व च्युत, च्याचित तथा त्यक्त शरीर । * **—वे.** निक्षेप/३। शरीर नामकर्मकी बन्ध जदय व सत्त्व प्रकृपणाएँ * तथा तत्सम्बन्धी शंका समाधान । ---दे, वह बहुनाम । जीवका शरीरके साथ बन्ध विषयक । * ---- दे, सन्धा जीव व शरीरकी कथंचित् पृथक्ता। — दे, कारक/२ जीवका शरीर प्रमाण अवस्थान । —दे. जीव/३ 8 शरोरोंमें प्रदेशोंकी उत्तरोत्तर तरतमता । शरीरोंमें परस्पर उत्तरोत्तर स्कष्मता तथा तत्सम्बन्धी 4 शंका समाधान।

शरीरों के लक्षण सम्बन्धी शंका समाधान। शरीरों की अवगाहना व स्थिति।-दे, वह वह नाम। * शरीरोंका वर्ण व द्रव्य लेश्या — दे. लेश्या/३ (शरीरकी घातु उपधातु । -- दे. औदारिक। शरीरमें करण (कारण) पना कैसे सम्भव है। जीवको शरीर कहनेकी विवक्षा। --दे, जीव/१/३। द्विचरम शरीर । ---दे. चरम । देह प्रमाणस्य शक्तिका लक्षण शरीरोंका स्वामित्व ş एक जीवके एक कालमें शरीरोंका स्वामित्व। शरीरोंके स्वामित्वको आदेश मरूपणा । तीर्थंकरों व शङाका पुरुषोंके शरीरको विशेषता। --दे. वह वह नाम । मुक्त जीवोंके चरम शरीर सम्बन्धी। -दे. मोक्षाप्र। साधुओंके मृत शरीरकी क्षेपण विधि। -दे. सक्लेखना/६/१। महामत्स्यका विशाल शरीर। —दे. संमूच्छीन। शरीरोंकी संघातन परिशातन कृति । (ध.१/३५५-४५१) पाँचों शरीरोंके स्वामियों सम्बन्धी सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शेन, काळ, अन्तर, भाव, अल्प बहुत्व प्ररूपणाएँ। --दे. वह वह नाम। शरीरके अंगोपांगका नाम निर्देश । -- दे. अंगोपांग । शरीरका कथंचित् इष्टानिष्टपना ŧ शरीरको कथंचित् इष्टता अनिष्टता । —दे. आहार/II/६/२। ₹ शरीर दुखका कारण है। शरीर वास्तवमें अपकारी है। ₹ धर्मार्थीके लिए शरीर उपकारी है। Ę शरीर ग्रहणका भयोजन । ሄ शरीर बन्ध बतानेका प्रयोजन । ч योनि स्थानमें शरीरोत्पत्तिकम । --- दे. जन्म/१ । शरीरका अञ्जूचिपना । **—दे.** अनुप्रेक्षा/शर्द ।

१. शरीर व शरीर नामकर्म निर्देश

१. शरीर सामान्यका कक्षण

- स. सि./१/३६/१११/४ विशिष्टनामकर्मोदयापादितकृत्तीनि शीर्यन्त इति शरीराणि। — जो विशेष नामकर्मके उदयसे प्राप्त होकर शीर्यन्ते अर्थात् गत्तते हैं वे शरीर हैं।
- भ, १४/४,६,४१२/४३४/१३ सरीरं सहावो सीलमिदि एयहो । ... खणंताणं -तपोरगलसमवाओ सरीरं। - शरीर, शील और स्वभाव ये एकार्थ-वाची शब्द हैं। ... अनन्तानन्त पुहनलोंके समवायका नाम शरीर है।
- द्र. सं./टी./१६/१०७/३ शरीर कोऽर्थः स्वरूपस्। चशरीर शब्दका अर्थ स्वरूप है।

२. शरीर नामकर्मका लक्षण

स.सि./८/११/३८६/६ यदुदयादास्मनः शरीरनिर्वृ तिस्तच्छरीरनाम । = जिसके उदयसे आत्माके शरीरकी रचना होती है वह शरीर नाम-कर्म है। (रा. वा./८/११/३/४७६/१४) (गी. क./जी. प्र./३३/२८/२०)।

ध. ६/९.६-१.२-/५२/६ जस्स कम्मस्स उदएण ब्राहारवग्गणाए पोग्गज-रूधा तेजा-कम्मइयवग्गणपोग्गलखंघा च सरीरजोग्गपरिणामेहि परिणदा संता जीवेण संबज्भाति तस्स कम्मक्खंधस्स शरीरमिदि सण्णा। — जिस कर्मके उदयसे आहार वर्गणाके पुद्रगल स्कन्ध तथा तेजस और कार्मण वर्गणाके पुद्रगल स्कन्ध शरीर योग्य परिणामोंके द्वारा परिणत होते हुए जीवके साथ सम्बद्ध होते हैं उस कर्म स्कन्ध-की 'शरीर' यह संझा है। (ध. १३/४,४,४०९/३६३/१२)

3. शरीर व शरीर नामकर्मके भेद

ष. खं, ६/१,१-१/सू, ३१/६८ जं तं सरीरणामकम्मं तं पंचिविहं ओरालियसरीरणामं वेउिवयसरीरणामं आहारसरीरणामं तैया-सरीरणामं कम्मइयसरीरणामं चेित १३१ = जो शरीर नामकर्म है वह पाँच प्रकार है—औदारिक शरीरनामकर्म, वैकियिक शरीर नामकर्म, आहारकशरीर नामकर्म, सैंजस शरीरनामकर्म और कार्मण शरीर नामकर्म १३१ (ष, खं. १३/६,६/सू. १०४/३६०) (ष, खं. १४/६,६/सू. ४४/४६) (प्र. सा./सू./१०१) (त. सू./२/३६) (सं. सि./५/११/३०६) (पं. सं./२/४/४०/६) (रा. वा./४/२४/४८) (रा. वा./४/२४/४८) (रा. वा./४/२४/४८) (रा. वा./४/२४/४८)

४. शरीरोंमें प्रदेशोंकी उत्तरोत्तर तरतमता

त. सू./२/३८-३६ प्रदेशोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ।३८। अनन्त-गुणे परे ।३६।

स. सि./२/३५-३६/१६२-१६३/८,३ औदारिकादसंख्येयगुणप्रदेशं बैकि
यक्ष्मं । बैकियिकादसंख्येयगुणप्रदेशमाहारकिमिति । को गुणकारः ।
पत्योपमासंख्येय भागः । (१६२/५) आहारकात्तेजसं प्रदेशतोऽनन्तगुणस्, तेजसारकार्मणं प्रदेशतोऽनन्तगुणिमिति । को गुणकारः ।
अभव्यानामनन्तागुणः सिद्धानामनन्तभागः । चतेजससे पूर्व तीन
तीन शरीरोंमें आगे-आगेका शरीर प्रदेशोंकी अपेक्षा असंख्यातगुणा
है ।३८। परवर्ती दो शरीर प्रदेशोंकी अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं
।३६। अर्थात औदारिकसे बैकियिक शरीर असंख्यातगुणे प्रदेशवाला है, और बैकियिकसे आहारक शरीर असंख्यातगुणे प्रदेशवाला है । गुणकारका प्रमाण पच्यका असंख्यातवाँ भाग है (१६२।६)
परन्तु आहारक शरीरसे तेजस शरीरके प्रदेश अनन्तगुणे हैं, और
तेजस शरीरसे कार्मण शरीरके प्रदेश अनन्तगुणे अधिक हैं । अभव्यो
से अनन्तगुणा और सिद्धोंका अनन्तवाँ भाग गुणकार है । (रा. वा./
२/३५-२६/४,१/१४८/४,१६) (ध. ६/४,२/३७/१) (गो, जी./जी,
प्र./२४६/४,१९०) और भी दे, अव्यक्तुत्व)

५. शरीरोंमें परस्पर उत्तरोत्तर सूक्ष्मता व तस्सम्बन्धी शंका समाधान

त, सू /२/३७,४० परं परं सृक्ष्मम् ।३७। अप्रतिचाते ।४०।

स. सि.च/३०/१६२।१ औदारिकं स्थूलम्, ततः सूक्ष्मं नैक्रियिकम्, ततः सूक्ष्मं आहारकम्, ततः सूक्ष्मं तेजसम्, तैजसम्, तैजसारकार्मणं सूक्ष्मिति।
— आगे-आगेका शरीर सूक्ष्म है।३०। कार्मण व तैजस शरीर प्रतीचात
रहित हैं।४०। अर्थात् औदारिक शरीर स्थूल है, इससे नैकिधिक
शरीर सूक्ष्म है। इससे आहारक शरीर सूक्ष्म है, इससे तेजस शरीर
सूक्ष्म है और इससे कार्मण शरीर सूक्ष्म है।

गो. जी./जी. प्र./२४६/११०/११ यद्यो वं तर्हि वैक्रियिकादिशरीराणां उत्तरोत्तरं प्रदेशाधिक्येन स्थूलत्वं प्रसज्यते इत्याशङ्क्य परं परं सूक्ष्मं भवतीत्युक्तं । यद्यपि वैक्रियिकाद्द्युक्तरोत्तरशरीराणां बहुपरमाणु-संचयत्वं तथापि बन्धपरिणतिविशेषेण सूक्ष्मसूक्ष्मावगाहनसंभवः कार्पसपिण्डायःपिण्डवत्र विरुध्यते स्वित्वति निश्चेतव्यं । —प्रत—यदि ओदारिकादि शरीरोंमें उत्तरोत्तर प्रदेश अधिक हैं तो उत्तरोत्तर अधिकाधिक स्थूलता हो जायेगी । उत्तर—ऐसी आशंका अयुक्त है, क्योंकि वे सब उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं। यद्यपि वैक्रियक आदि शरीरों-में परमाणुओंका संचय तो अधिक-अधिक है तथापि स्कन्ध बन्धनमें विशेष है। जैसे—कपासके पिण्डसे लोहेके पिण्डमें प्रदेशपना अधिक होनेपर भी क्षेत्र थोड़ा रोकता है तैसे जानना।

शरीरके छक्षण सम्बन्धी शंका समाधान

रा. बा./२/३६/२-३/१४६/२६ यदि शीर्यन्त इति शरीराणि घटादीनामपि
विशरणमस्तीति शरीरत्वमतिप्रसज्येतः, तद्रः, किं कारणस्। नामकर्मनिमित्तत्वाभावातः।२। विग्रहाभाव इति चेतः, नः रूढिशब्दैष्विप व्युत्पत्तौ क्रियाश्रयात् ।३। व्यग्रस्त—यदि जो शीर्ण हों वे शरीर हैं, तो घटादि पदार्थ भी विशरणशोल हैं, उनको भी शरीरपना प्राप्त हो जायेगा। उत्तर—नहीं, व्योंकि उनमें नामकर्मोदय निमित्त नहीं है। प्रश्त—इस लक्षणसे तो विग्रहगतिमें शरीरके अभावका प्रसंग आता है। उत्तर—रूढिसे वहाँपर भी कहा जाता है।

७. शरीरमें करण(कारण)पना कैसे संम्भव है

घ. १/४.१.६८/३२४/१ करणेसु जं पढमं करणं पंचसरीरप्मर्यं तं मूलकरणं। कधं सरीरस्स मूलत्तं। ण, सेसकरणाणमेदम्हादो पउत्तीए शरीरस्स मूलत्तं पर्डिविरोहाभावादो । जीवादो कत्तारादो अभिण्यत्तेण कत्ता-रत्तमुपगयस्स कथं करणत्तं। ण जीवादो सरीरस्स कथंचि भेद्रवर्तं-भादो । अभेदे वा चैयणत्त-णिच्चतादिजीवगुषा सरीरे वि हौति । ण च एवं, तहाणुवलंभादो । तदो सरीरस्स करणत्तं ण विरुज्भते । सेसकारयभावे सरीरम्मि संते सरीरं करणमेवेसि किमिदि उच्चते। ण एस होसी, मुत्ते करणमेवे ति अवहारणाभावादो । - करणों में जो पाँच शरीररूप प्रथम करण है वह मूल करण है। प्रश्न-शरीरके मुलपना कैसे सम्भव है। उत्तर--चूँ कि शेष करणोंकी प्रवृत्ति इस शरीरसे होती है अतः शरीरको मुल करण माननेमें कोई विरोध नहीं आता। प्रश्न-कर्ता रूप जीवसे शरीर अभिन्न है, अतः कर्तापनेको , ब्राप्त हुए शरीरके करणपना कैसे सम्भव है। उत्तर – यह कहना ठीक नहीं है। जीवसे भ्रारीरका कथंचित भेद पाया जाता है। यदि जीवसे हारीरको सर्वथा अभिन्न स्वीकार किया जाने तो चेतनता और नित्यस्य आदि जीवके गुण शरीरमें भी होने चाहिए। परन्तु ऐसा है नहीं, क्यों कि शरीरमें इन गुणोंकी उपलब्धि नहीं होती। इस कारण दारीरके करणपना विरुद्ध नहीं है। प्रश्न-रारीरमें शेष कारक भी सम्भव हैं। ऐसी अवस्थामें शरीर करण ही है, ऐसा क्यों कहा जाता है ! उत्तर—यह कोई दोष नहीं है, क्यों कि, सूत्रमें 'शरीर करण ही है' ऐसा नियत नहीं किया गया है।

८. देह प्रमाणस्य शक्तिका छक्षण

पं. का./त. प्र./२८ अतीतानन्तरशरीरमाणावगाहपरिणामरूपं वेह-मात्रस्वं। = अतीत अनन्तर (अन्तिम) शरीरानुसार अवगाह परि-णामरूप वेहप्रमाणपना होता है।

२. शरीरोंका स्वामित्व

1. एक जीवके एक कालमें शरीरोंका स्वामित्व

त. सू./२/४३ तदादीनि भाषयानि युगपदेकस्मिन्द्र चसुभ्यः ।४३।

स. सि./२/४३/१६६/३ युगपदेकस्यात्मनः। कस्यचिद्व द्वे तैजसकार्मणा । अपरस्य त्रीणि औदारिकतैजसकार्मणानि वैक्रियिकतैजसकार्मणानि वा। अन्यस्य चरवारि औदारिकाहारतैजसकार्मणानि विभागः क्रियते। व्यक्त साथ एक जीवके तैजस और कार्मणसे लेकर चार शरीर तक विकल्पसे होते हैं।४३। किसीके तैजस और कार्मण ये दो शरीर होते हैं। अन्यके औदारिक तेजस और कार्मण, या वैक्रियक तेजस और कार्मण ये तीन शरीर होते हैं। किसी दूसरेके औदारिक तेजस और कार्मण तथा आहारक ये चार शरीर होते हैं। इस प्रकार यह विभाग यहाँ किया गया। (रा. वा./२/४३/३/१६०/१६)

दे. ऋद्धि /१० आहारक वैकियिक ऋद्धिके एक साथ होनेका विरोध है।

२. शरीरींके स्वामित्वकी आदेश प्ररूपणा

संकेत-अप- = अपर्याप्त; े आहा, = आहारक; औद. = औदारिक; छेदो. = छेदोपस्थापना; प. = पर्याप्त; बा. = अप्टर; नै कि. = नै किथिक; सा. = सामान्य; सृ. = सृक्ष्म ।

ष. खं. १४/४,६/सु. १३२-१६६/२३८-२४८)

प्रमाण	मार्गणा	संयोगी विकरप	औदारिक	क्रे क्रिटिक	आहारक	ते जस	कार्मण
े. १. गरि	ते मार्गेषा—					 	
१३२-	नरकसा, विशेष	₹,३	×	1,	×	1,	57
१३३							
१३४	तिर्यंच सा. पंचें, पं. } तिर्यंचनी प. }	₹,₹,४	"	71	×	ļ "	**
१३४	तियंच पंचे अप	2,3	,,	×	×	,,	••
१३६	मनुष्य सा. प. } मनुष्यणी अप. }	₹,₹,8	1,	11	**	. +1	,,
१३७	मनुष्य अप.	२,३	17	×	×	11	١,,
१३८-	देव. सा॰ विशेष	",	×	,,	×	77	**
359)]) 	
२. इनि	द्रय मार्गणा—	ĺ					
१४०	ऐकेन्द्रियं सा. व वा. प	२,३, ४	**	, ,,	×	57	71
] ,,	पंचेन्द्रिंसा प्	,,,	19	19	×	,,	71
१४१	एकेन्द्रि, वा. अप,	२,३	"	×	×	**	11
	एकेन्द्रि,सृ.प. अप. 🧕]]			
۱,,	एकेन्द्रि, बा. अप. एकेन्द्रि, सु. प. अप. विकलेन्द्रि, प. अप.	1 11	",	×	×	17	11
! _ `	1 41.74, 41.0	. [- [[
३, का	य सार्गणा—		ļ	İ	Í		
१४३	तेज बायु सा.	२,३,४	,,	,,	×	٠,,	,,
	तेज वायुसा. ,, ., बा.प.	}	-		ļ		
۱۰,	त्रस सा, प.	"	17	٠,	••	77	,,
१४२	शेष सर्व प. अप	₹,३	٠, إ	×	×	٠,٠	"
•	। मार्गणा —	}	1	- ['	
\$88	पाँची मन वचन थोग	3.8	,,	*1	"	,,]	17
१४६	काय सामान्य	3,3,8	*	••	٠,	" }	,,
१४४	औदारिक औदारिक मिश्र	3,8	*	41	"	"	"
१४६	आदारकामश्र वैक्रि,वैक्रि,मिश्र	\$ 3	" X	×	×	"	"
" १४৩	आहा. आहा. मिश्र	ર	1	"	×	"	11
186	कार्मण	7 7,3	"	×	".∫	77	71
,,,,,		14 ₹	17	<u> </u>		"	71

प्रम्(ण	मार्गणा	संयोगी विकल्प	औदारिक	वैक्रियक	आहारक	तेजस	कार्मण
५. वेद	: मार्गणा—				i 	 	
१४६) पुरुष वेद	2,3,8	1,	77	1,	11	11
51	स्त्री, नपुंसक	111	. ,,	11	×	,,	,,
१६१	अपगत बेंदी	3	,, [×	×	11	91
६. क	ाय मार्गणा—						
१५०	चारों कषाय	2,3,8	,,	,,	٦,	٠,,	11
848	अकषाय	3	,,	x	×	,,	17
	न मार्गणा —		''				
१५२	मतिश्रुत अज्ञान	7,3,8	١,,	11	×	77	13
843	विभंग ज्ञान	3,8	``\	,,	×	,,	11
१५४	मति, श्रुत, अवधिज्ञान	₹,₹,8	,,	,,	,,	,,	19
१५३	मनः पर्यय	3,8	,,	"	×	51	11
१६५	केवलज्ञान	3	,,	×	×	*1	11
	म सार्गणा						
१५६	{ संयत सा. सामायिक छेदो., परिहार, सूक्ष्म	3,8	,,	11	11	11	,,
११७	यथारूयात	3		×	×	,,	••
	संयतासंयत	3,8	1"	,,	×	11	11
	असंयत	2,3,8	77	"	×	`,	11
	न मार्गणा—	797,0	71	"		"	
288	चधु अचधु दर्शन	7,3,8		Ţ		_,[13
.	अवधि		"	-'1	17	,,	11
γξ ₀]	केवलदर्शन	3	11	"	×	"	,,
	ध्या मार्गणा	}	, "	- {	1	"	•
	कृष्ण, नीस, कापोत	3,3,8			×	7,	**
	पी त, पद्म, शुक्त		71	"		,	99
	व्यत्व मार्गणा—	11	"	"	3.1	11	-
१६२	भव्य	२,३,४	1				79
14,	অস্ব্য		"	71	'' X	"	11
	म्यक्त मार्गणा	"	15	11	\ ^`	"	
१६ ३	सम्यग्दृष्टि सा	980				Ì	
į.	सामिक, उपश्म, वेदक	२,३,४	31	"	'	"	11
"	सासादन	,1	"	"	" ×	''	17
268	मिश्र	्र १,४	"	"	×	19	1,
	भिष्यादृष्टि -	7,3,8	"	"	~	"	17
•	डी मार्गेषा	,,,,,,	"	"		"	11
864	संज्ञी	3,3,8				ļ	
1	तशः असंज्ञो		*	"	" ×	"	17
., / 2∨ 2⊺	जनश हार क मार्गणा —	'"	"	"	^	"	11
		2.0	}		Ì		
१६६	आहारक अनाहारक	3,8	"	"	"	**	"
11	A-vicita,	२,३	11]	<u> </u>	<u> </u>	" ["

३. शरीरका कथंचित् इष्टानिष्टपना

१. वारीर दु:खका कारण है

स. श./म्./१५ मुर्ल संसारदुः खस्य देह एवारमधीस्ततः । त्यक्तवैनां प्रविशेदन्तमं हिरच्यापृतेन्द्रियः ।१६। = इस शरीरमें आत्मबुद्धिका

होना संसारके दुःखोंका मूल कारण है। इसलिए झरीरमें आत्मत्वको छोड़कर बाह्य इन्द्रिय विषयोंसे प्रवृत्तिको रोकता हुआ आत्मा अन्त-रंगमें प्रवेश करें।१६।

आ.अनु./११६ आदौ तनोर्जननमत्र हतेन्द्रियाणि काङ्क्षन्ति तानि विष-यात् विषयाश्च मानहानिष्रयासभयपापकुयोनिदाः स्यु-र्भूतं ततस्त-नुरनर्थपरंपराणाम् ।११६१ - बारमभमें शरीर उत्पन्न होता है, इससे दुष्ट इन्द्रियाँ होती हैं, वे अपने-अपने विषयोंको चाहती हैं। और वे विषय मानहानि, पश्चिम, भय, पाष एवं दुर्गतिको देनेवाने हैं। इस प्रकारसे समस्त अनर्थोंकी मूल परम्पराका कारण शरीर है।१९६४।

हा.२/६/१०-११ शरीरमेतदादाय त्वया दुःखं विसह्यते। जन्मन्यस्मिस्तन्ति तस्तद्धि निःशेषानथंमन्दिरम् ।१०। भवोद्भवामि दुःखानि यानि यानीह देहिभिः। सह्यन्ते तानि तान्युच्चैर्वपुरादाय केवलम् ।११। = हे आत्मनः। त्वे इस संसारमें शरीरको ग्रहण करके दुःख पाये वा सहे हैं. इसीसे त् निश्चय जान कि यह शरीर ही समस्त अनर्थोंका घर है, इसके संसर्गसे मुखका लेश भी नहीं मान ।१०। इस जगत्में संसारसे उत्पन्न जो-जो दुःख जीवोंको सहने पड़ते हैं वे सब इस शरीरके ग्रहणसे ही सहने पड़ते हैं, इस शरीरसे निवृत्त होनेपर कोई भी दुःख नहीं है।११।

२. श्रारीर वास्तवमें अपकारी है

इ. ज./१६ यज्जीवस्योपकाराय तद्भदेहस्यापकारकं। यद्भ देहस्योपकाराय तज्जीवस्यापकारकं।१६। = जो अनशनादि तप जीवका उपकारक है वह शरीरका अपकारक है, और जो धन. वस्त्र, भोजनादि शरीरका उपकारक है वह जीवका अपकारक है।१६।

अन. ध./४/१४१ योगाय कायमनुपालयतोऽपि युक्स्या, क्लेश्यो ममस्व-हतये तब सोऽपि शक्स्या । भिक्षोऽन्यथाक्षमुखकीवितरम्भलाभात, तृष्णा सरिद्विधुरयिष्यति सत्तपोदिस् ११४१। — योग-रत्नत्रयात्मकः धर्मकी सिद्धिके लिए संयमके पालनमें विरोध न आवे इस तरहसे रक्षा करते हुए भी शक्ति और युक्तिके साथ शरीरमें लगे ममस्वको दूर करना चाहिए। क्योंकि जिस प्रकार साधारण भी नदी जरासे भी छिद्रको पाकर दुर्भेच भी पर्वतमें प्रवेशकर जर्जरित कर देती है उसी प्रकार तुच्छ तृष्णा भी समीचीन तप रूप पर्वतको छिन्न-भिन्नकर जर्जरित कर छातेगी। १४१।

भर्मार्थीके लिए शरीर उपकारी है

ह्या. २/६/६ तैरेव फलमेतस्य गृहीतं पुण्यकर्मभिः । विर्जय जन्मनः स्वार्थे यैः शरीरं कदिश्वतम् ।६। =इस शरीर्के प्राप्त होनेका फल जन्होंने लिया है, जिन्होंने संसारसे विरक्त होकर, इसे अपने कल्याण मार्गमें पुण्यकर्मोंसे क्षीण किया ।६।

अन. ध./४/१४० शरीर धर्मसंयुक्तं (सितव्यं प्रयत्मतः । इत्याप्तवाच-स्त्वग्देहस्त्याज्य एवेति तण्डुलः ।१४०। = 'धर्मके साधन शरीरकी प्रयत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिए', इस शिक्षाको प्रवचनका तुष सम-भना चाहिए । 'आत्मसिद्धिके लिए शरीररक्षाका प्रयत्न सर्वथा निरुपयोगी है।' इस शिक्षाको प्रवचनका तण्डुल समभना चाहिए।

अन. घ./७/६ शरीमार्च किल धर्मसाधनं, तदस्य यस्येत् स्थितसेऽश-नादिना। तथा यथाक्षाणि वशे स्युरुत्पर्धं, न वानुधावन्त्यनुबद्धतृष्ट्-वशात्।६। = रत्नरूप धर्मका साधन शरीर है अतः शयन, मोजनपान आदिके द्वारा इसके स्थिर रखनेका प्रयत्न करना चाहिए। किन्तु इस बातको सदा लक्ष्यमें रखना चाहिए कि भोजनादिकमें प्रवृत्ति ऐसी और उतनी हो जिससे इन्द्रियाँ अपने अधीन रहें। ऐसा न हो कि अनादिकालकी वासनाके वश्वती होकर उन्मार्गकी तरफ दौड़ने लगें।६।

४. शरीर ग्रहणका प्रयोजन

आ. अनु./७० अवश्यं नश्वरेरेभिरायुः कायादिभियंदि । शाश्वतं पद-मायाति सुधायातमवैहि ते ।७०। = इसलिए यदि अवश्य नष्ट होने-वाले इन आयु और शरीरादिकोंके द्वारा तुभे अविनश्वर पद प्राप्त होता है तो तु उसे अनायास ही आया समभ/७।

शरीर बन्ध वतानेका प्रयोजन

पं, का./ ता. वृ./३४/७३/१० अत्र य एवं देहाद्भिन्नोऽनन्तज्ञानादिगुणः शुद्धातमा भणितः स एव शुभाशुभसंकरपविकरपपरिहारकाले सर्वत्र प्रकारेणोपादेयो भवतीत्यभिन्नायः। — यहाँ जो यह देहसे भिन्न अनन्त ज्ञानादि गुणोंसे सम्पन्न शुद्धात्मा कहा गया है, वह आत्मा ही शुभ व अशुभ संकर्ण विकर्णके परिहारके समय सर्वप्रकारसे उपादेय होता है, ऐसा अभिनाय है।

द्र, सं [टी [१०/२०]० इदमत्र तारपर्यम्—देहममत्वनिमित्तेन देहं गृहीस्वा संसारे परिभ्रमित तेन कारणेन देहादिममत्वं त्यव्स्वा निर्मोहनिज-शुद्धात्मिन भावना कर्तव्येति । चतात्पर्य यह है—जीव देहके साथ ममत्वके निमित्तसे देहको ग्रहणकर संसारमें भ्रमण करता है, इसलिए देह आदिके ममत्वको छोड़कर निर्मोह अपने शुद्धारमार्मे भावना करनो चाहिए ।

शरोर पर्याप्ति—दे. पर्याप्ति। शरीर पर्याप्ति काल—दे. काल/१। शरीर मद—दे. मद। शरीर मिश्र काल—दे. काल/१।

शकराप्रभा—१, स. सि./३/१/२०१/८ शर्कराप्रभासहचरिता भूमिः शर्कराप्रभा। ...एसाः संज्ञा अनेनोपायेन न्युत्पाद्यन्ते। —िजसकी प्रभा शर्कराके समान है वह शर्कराप्रभा है। ... इस प्रकार नामके अनुसार न्युत्पति कर लेनी चाहिए। (ति. प./२/२१): (रा. वा./२/१/३/१८१): (ज. प./११/१२१)। २. शर्कराप्रभा पृथिनीका लोकन्में अवस्थान। दे. नरक/६/११३३. शर्कराप्रभा पृथिनीका नकशा। दे. लोक/२/६ं।

शकरावती—भरत क्षेत्रस्थ आर्य खण्डकी एक नदी-दे मनुष्य/४। शिलाका जो निवक्षित भाग करनेके अर्थ किच्छा प्रमाण करपना की जिये ताका नाम यही शताका जानना। विशेष—दे गणित/II/२

शिका पुरुष — तिर्थं कर चक्रचर्ती आदि प्रसिद्ध पुरुषों को शलाका पुरुष कहते हैं। प्रश्चेक कर्ष्यकालमें ६३ होते हैं। प्रश्चेक कर्ष्यकालमें ६३ होते हैं। प्रश्चेकर, १२ चक्रवर्ती, १ बलदेव, १ नारायण, १ प्रतिनारायण। अथवा १ नारद, १२ रुद्ध २४ कामदेव, व १६ कुलकर आदि मिलानेसे १६१ शलाका पुरुष होते हैं।

शलाका पुरुष सामान्य निर्देश

- ६३ शलाका पुरुष नाम निदेश।
- २ । १६९ शलाका पुरुष निर्देश ।

Ş

* | शलाका पुरुषोंकी आयु बन्ध योग्य परिणाम ।

-- दे. आयु/३ ।

कौन पुरुष मरकार कहाँ उत्पन्न हो और क्या गुण प्राप्त करे। --दे, जन्म/६।

```
शलाका पुरुषोंका मोक्ष प्राप्त सम्बन्धी नियम ।
 ₹
       शलाका पुरुषोंका परस्पर मिलाप नहीं होता।
 ४
       शलाका पुरुषोंके शरीरकी विशेषता ।
 ۹
       एक क्षेत्रमें एक ही तज्जातीय शळाका पुरुष होता है।
                                -दे. विदेह/में त्रि. सा ।
      चरम शरीरी चौथे कालमें ही उलन्न होते हैं।
 ¥
                                         —दे, जन्म/५ ।
      अचरम शरोरी पुरुषोंका अकाल मरण मी सम्भव है।
                                        -- दे, मरण/४।
      तीर्थंकर ।
 *
                                       --- दे. तीथ करः
      गणधर चौथे कालमें ही उत्पन्न होते हैं।
 *
                                        —दे जन्म/४।
      द्वादश चक्रवर्ती निर्देश
 ₹
 १
      चक्रवर्तीका छक्षण ।
      नाम व पूर्व भन परिचय।
 २
      वर्तमान भवमें नगर व माता पिता ।
 ₹
      वर्तमान भव शरीर परिचय।
 8
 ч
      कुमार कालादि परिचय ।
 ξ
      वैभव परिचय ।
 Ġ
      चौदह रत्न परिचय सामान्य।
      चौदह रत्न परिचय विशेष ।
 ¢
 ९
      नवनिधि परिचय ।
१०
      दश प्रकार भीग परिचय ।
११
      चक्रवर्ती की विभृतियेंकि नाम ।
१२
      दिग्विजयका स्वरूप।
१३
      राजधानीका स्वरूप
१४
      हंडावसर्पिणीमें चक्रवर्तीके उत्पत्ति कालमें कुछ अन्तर ।
      चक्रवतींके शरीरादि सम्बन्धी नियम ।
                           —दे. शलाका पुरुष/१/४.६ ।
      नव बळदेव निर्देश
ŧ
ξ
     पूर्व भन्न परिचय ।
₹
     वर्तमान भवके नगर व माता-पिता ।
₹
     वर्तमान भव परिचय।
     बलदेवका वैभव ।
४
     बलदेवों सम्बन्धी नियम ।
4
      नव नारायण निर्देश
8
₹
     पूर्व भव परिचय ।
₹.
     वर्तमान भवके नगर व माता-पिता।
     वर्तमान शरीर परिचय ।
₹
     कुमार कालादि परिचय ।
¥
     नारायणोका वैभव
ષ
     नारायणीकी दिग्विजय ।
દ્
ی
     नारायण सम्बन्धी नियम ।
```

24	नव प्रतिनारायण निर्देश
2	नाम व पूर्वभव परिचय।
२	वर्तमान भव परिचय ।
₹	प्रतिनारायणों सम्बन्धी नियम ।
Ę	नव नारद निर्देश
१	वर्तमान नारदोका परिचय ।
3	नारदों सम्बन्धो नियम ।
•	प्रशादश सद निर्देश
१	नाम व शरीरादि परिचय।
২	कुमार कालादि परिचय ।
₹	रुद्री सम्बन्धी कुछ नियम ।
*	रुद्र चौथे कालमें ही उत्पन्न होते हैं। —दे. जन्म/६।
6	चौबीस कामदेव निर्देश
8	चौतीस कामदेवोंका नाम निर्देश मात्र ।
*	कामदेव चौथे कालमें ही उत्पन्न होते हैं।
	—दे. जन्म/५ ।
٩	सोछह कुछकर निर्देश
१	वर्तमान कालिक कुरुकर परिचय ।
ঽ	कुळकरके अपरनाम व उनका सार्थक्य ।
₹	पूर्वभव सम्बन्धी नियम ।
8	पूर्वभवमें संयम तप आदि सम्बन्धी नियम।
ч	उलित्त व संख्या आदि सम्बन्धी नियम ।
9 •	मावि शलाका पुरुष निर्देश
?	कुलकर, चक्रवर्ती व बलदेव निर्देश ।
२	नारायणादि परिचय ।

१. शलाका पुरुष सामान्य निर्देश

१. १३ शलाका पुरुष नाम निर्देश

ति. प./४/११०००१११ पत्तो सलायपुरिसा तेसही सयलभवणिवस्वादा। जायंति भरहखेते णरसीहाकेण १६१०। तित्थयर चक्रवलह रिपिडसत्तु णाम विस्सुदा कमसो। विडणियवारसवारस पयत्थणिधिर धसंखाए १६११ — अव यहाँसे आगे (अन्तिम कुलकरके पश्चात्) पुण्योदयसे भरतक्षेत्रमें मनुष्योंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण लोकमें प्रसिद्ध तिरेसठ शलाका पुरुष जत्यत्र होने लगते हैं १६१०। ये शलाका पुरुष तीर्थं कर २४, चक्रवर्ती १२, बलभद्र ६, नारायण ६, प्रतिशेत्रु ६, इन नामोंसे प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार उनकी संख्या ६३ है। १११। (त्रि, सा./८०३), (ज. प./२/१७६-१८४), (गो. जी./जी. प्र./३६१-३६१/-७७३/३)। ति. प./४/१६१६: १६१६: हं इत्वसिष्पणी स। एक्काः। १६६१। दुस्सम- सुसमे काले अद्वावणा सलायपुरिसा य। १६११। — हं डावसिष्णी काल- में ६८ ही शक्षाका पुरुष होते हैं।

२. १६९ शकाका पुरुष निर्देश

ति, प./४/१४७३ तित्थयरा तरगुरओ चक्कीबलकेसिरुद्दणारहा । अंगज-कुलियरपुरिसा भविया सिज्मीत णियमेण ११४७३। = १४ तीर्थं कर,

उनके गुरु (२४ पिता, २४ माता), १२ घळवर्ती, ६ बलदेव, ६ नारा-यण, ११ रुद्र, ६ नारद, २४ कामदेव और १४ कुलकर ये सब भव्य होते हुए निग्रमसे सिद्ध होते हैं ।१४७३। (इनके अतिरिक्त ६ प्रति-नारायण ऊपर गिना दिये गये हैं। ये सब मिलकर १६६ दिव्य पुरुष कहे जाते हैं।)

३. शळाका पुरुषोंका मोक्ष प्राप्ति सम्बन्धी नियम

ति. प./४/१४७३ तिथ्ययरा तग्गुओ चक्कीबलकेसिरुहणारहा। अंगज-कुलियरपुरिसा भविया सिल्फंति णियमेण ११४७३। —तीर्थं कर, उनके गुरु (पिता व माता), चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, रुद्र, नारद, कामदेव और कुलकर ये सब (प्रतिनारायणको छोड़कर १६० दिव्य पुरुष) भव्य होते हुए नियमसे (उसी भवमें या अपले १, २ भवोंमें) सिद्ध होते हैं।१४७३।

४. शलाका पुरुषोंका परस्पर मिछाप नहीं होता

ह. पु,/४४/५१-६० नान्योन्यदर्शनं जातु चक्रिणां धर्मचक्रिणाम्। हिलनां वासुदेवानां त्रैलोक्ये प्रतिचिक्रिणाम्।५१। गतस्य चिक्कमात्रेण तव तस्य च दर्शनम् । शङ्खस्फोटनिनादैश्च रथ ध्वजनिरीक्षणैः।६०। —तीन लोकमें कभी चक्रवर्ती-चक्रवर्तियोंका, तीर्थंकर-तीर्थं-करोंका, बलभद्र-वलभद्रोंका, नारायण-नारायणोंका और प्रलिनारा-यण-प्रतिनारायणोंका परस्पर मिलाप नहीं होता। तुम (धालको खण्डका कपिल नामक नारायण) जाओगे तो चिक्क मात्रसे हो उसका (कृष्ण नारायणका) और तुम्हारा मिलाप होगा। एक दूसरेके शंखका शब्द मुनना तथा रथोंकी ध्वलाओंका देखना इन्हीं चिह्नोंसे तुम्हारा उसका साक्षारकार हो सकेगा। ५१-६०।

५. शलाका पुरुषोंके शरीरकी विशेषसा

ति. प्र./४/१३७१ आदि मसंहण्ण जुदा सन्वे तवणिज्जवण्णवरदेहा। स्यतसुलक्षण भरिया समच्छरस्संगसंठाणा।१३७१। = सभी वज्रभूषभ नाराच संहननसे सहित, सुवर्णके समान वर्णवाले, उत्तम
श्रीरके घारक, सम्पूर्ण सुलक्षणोंसे युक्त और समचतुरस रूप शरोरसंस्थानसे युक्त होते हैं।१३७१।

को, पा, दी, दिर्दर्श पर उइध्रत — देवा वि य गेरह्या हलहरचक्की य तह स तित्थयरा। सब्दे केसव रामा कामानिक चिया होति। म्सर्व देव, नारकी, हलधर (बलदेव), चक्रवर्ती तीथ करं, केशव (नारायण) राम और कामदेव मूँख-दाढ़ीसे रहित होते हैं।

२. द्वादश चक्रवर्ती निर्देश

१. चक्रवर्तीका रूक्षण

ति. प./१/४८ छक्षं ह भरहणादो बत्तीससहस्समउडमद्भपहुदीओ। होदि हु सयलं चक्की तित्थयरो सयलभुवणवई।४८। च्लो छह खण्डरूप भरतक्षेत्रका स्वामी हो और बत्तीस हजार मुकुट बद्ध राजाओंका तेजस्वी अधिपति हो वह सकल चक्री होता है।…।४८। (ध. १/१. १.१/गा.४३/४८) (त्रि. सा./६८४)

२. नाम व पूर्वमव परिचय

	नःम		पूर्वभव नं, २		पूर्वभव
म. पु./सर्ग/श्लो.	१, ति. प./४/४१६~४१६ २. त्रि. सा./८१६ ^० ३. प.पु./२०/१२४-११३	ૄ. વ. પુ./ ૨. મ. પુ./	र् २०/ १२४− १ ६३ पूर्ववद		१. प.पु./२०/१२४-१६३ २, म. पु./पूर्ववत
	४. ह.पु./६०/२८६-२८७ ४. म.पु./पूर्ववत्	नाम् राजा	नगर	दीक्षागुरः	स्वर्ग
	भरत	पीठ	पुण्डरी किणी	कुशसेन	{ सर्वार्थसिद्धि २ अच्युत
8⊏\ € ६ -७⊏	सगर	{ विजय {२ जयसेन	पृथिवीपुर	यशोधर	विजय वि०
६१/६१-१०१	मधवा	शिशिशभ १ नरपति	⁷ पुण्ड र िकणी	विमत्त	ग्रै वेयक ∫ माहेन्द्र
६२/१०१/१०६	सनरकु०	धर्मरुचि	महापुरी	सुप्रभ	२ अच्युत
ई३/३८४	शान्ति*	→	दे० तीर्थं कर	_ ←	←
ई४/१२ –२२	कुम्धुः	>	,,	←	←
₹ ∤/१४-३०	अर *	_ ′ →	27	←	←-
र्दश/४६	सुभौम	कनकाभ २ भ्रुपाल अस्ति । स्रिक्षाल स्रिक्षाल	धान्यपुर	{ विचित्रगुप्त २ सम्भूत	्र जय≠त वि० २ महाशुक्र
६६/७६-=०	' पद्म §	र्विन्त २ प्रजापाल	{ वीतशोका { २ श्रीपुर	{ सुप्रभ { २ शिवगुप्त	{ ब्रह्मस्वर्ग २ अच्युत
६७/६४–६३	हरिषेण	महेन्द्रदत्त	विजय	न हेंदन	्री माहेन्द्र { २ सनस्कुमार
६१/७ द⊸८०	र्ड जयसेन ४ जय	{ अमितांग {२ वसुन्धर	{ राजपुर { २ श्रीपुर	{ मुधर्ममित्र { २ वररुचि	ब्रह्मस्यर्ग २ महाशुक्र
७२/२८७–२८८	ब्रह्मदत्त	सम्भूत	काशी	स्वतन्त्रलिंग	कमलगुरम मि०

शं शान्ति कुन्थु और अर ये तीनों चक्रवर्ती भी थे और तीर्थंकर भी।

[§] प्रमाण नं, २,३,४ के अनुसार इनका नाम महापद्म था। यह राजा पद्म उन्हीं विष्णुकुमार मुनिके बड़े भाई थे जिन्होंने ७५० मुनियोंकी राजा बिल कृत उपसर्गेसे रक्षा की थी। जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

६. वर्तमान मवमें नगर व माता पिता

 क्रम	म, पु./सर्ग	वर्तः	मान नगर	वर्तम	ान पिता	वर्तम	ान माता	तीर्थं कर
	र सोक 	१, प, पु.। २. म, पु.	/२०/१२४-१६३ /पूर्ववत्	१, ५, पु./ २. म. पु.	२० /१२४-१ ६३ /पू र्ववस्	१. प. पु. २. म. पु.	/२०/१२४-१६३ /पूर्ववत्	
,		सामान्य	विशेष	सामान्य	विशेष	सामान्य	বিহীপ	
			प. यू.		य. पु.		ч. पु .	}
*	ļ	अयोध्या		ऋषभ	1	यशस्वती	भरुदेवी	
२	४८/६१-७८	11		विजय	समुद्र विजय	सुमं गला	सुवाता	ļ
3	६१/६१-१०१	श्रावस्ती	अयोध्या	मुमित्र		भद्रवती	भद्रा	}
S	६१/१०४-१०६	हस्तिनापुर	11	विजय	अन'सबीर्य	सहदेवी	•	
Ł	६३/३८४,४१३	-	→	दे० तीर्थं कर		←	-	तीथं कर्
Ę	६४/१२-२२		→	11		←	_	ਜੂਸ ਹਵਾਲੇ
9	€ ₹/१४-३०		→	11.0		←	-	10°
ሪ	६१/४६.१४२	हशावती	् अयोध्या	कीर्तिवीर्य	सहस्रवाहु	तारा	चित्रमती	
3	€€/9६-=0	हस्तिनापुर	वाराणसी	पद्मरथ	पद्मनाभ	मयुरी]	
१०	६७/६४ -६४	काम्पिषय	भोगपुर	पद्मनाभ	हरिकेलु	वप्रो	एरा	
११	03-30/33	15	कौशस्त्री	विजय	•	यशोवती ।	प्रभाकरी	
१२	७२/२८७-२८८	11	×	ब्रह्मरथ	मह्या	चूला	चूड़ादेवी	

४. वर्तमान मव बारीर प्रिचय

ħ. }		वर्ण	संस्थान	संहनन		<i>वारी रोस</i> िध		1	ঞা	g g		
म. यु./सर्ग/श्वो. सं.		ति	. प./४/१३७१		२ त्रि. स ३. ह. पू.	१. ति. प./४/१२६२-१२६३ २ त्रि. सा./८१८-८१६ १. ह. पु./६०/३०६-६०६ ४. म. पु./पूर्व द्यिषंनत			१. ति. म./४/१२६४-१२६६ २. त्रि. सा/८१६-८२० ३. ह. पु./६०/४६४-४१६ ४. म. पु./पूर्व शीर्षवस्			
}	A				सामान्य	प्रभाग नं,	ভিহীঘ	सामान्य	प्रमाण नं.	विशेष		
۶ م		स्बर् <i>;</i> ••	समचतुरस	वज्रमुश्म नाराच	घनु. ५०० ४५०		धनु.	द्धश्रासः पूर्वः ७२ ., भू	8	७० लाख पूर्व		
} }		19	11	71	४२ है	{ 8	४१ <u>२</u> ४१ २	। १ सास्य वर्ष ३ ., ,,				
3	शीर्षवत्	 स्वर्ण	-	→ → ->	दे० तीर्थं कर		(शाम्ति) (कुन्थु) (अरह)	← ← ←	-	— —		
	्रक इन्द्र	*: *: *:	समचतुरस	वज्र ऋषभनाराच ,, ,,	द्र- २२ २० १*	8	૨ ૪ ૧ ૪	\$0,000 at \$ \$0,000 ., \$0,000 .,	97	६ ४००० वर्ष २६००० वर्ष		
₹		11	••	,,,	હ	8	ξo	900 11				

न, कुमारकाल आदि परिचय

ला = लाखः यू० = पूर्व

क्रम	कुमार काल	मं हली क	दि ग्विजय	राउ	य क(ल	संयम काल	मर कर	कहाँ गये	
	ति, प./४/- १२६७-१२६६ ह. पु./६०/- ४६४-५१६	ति. प./४/- १३००-१३०२ ह. पु./६०/- ४६४-६१६	ति, प्,/४/- १३६८-१३६१ ह, पु./६०/- ४१४-५९६		ति. प./४/१४०१-१४ <i>०५</i> ह. पु./६०/४६४-५१ ६		ति. प./४/१४१० त्रि. सा./५२४ प. पु./२०/१२४-१६३ म. पु./दे. शीर्षक सं. २		
		į		सामान्य	ৰি থীত্ব		सामान्य	विशेष	
8	৩৬,০ ^{০০} ন্ধ্	१००० वर्ष	६०००० अर्थ	{ ६ ता.पू. ६१००० वर्ष	ह. पु. ६ सा. पू. १ पु०	१ ला.पू.*	मोक्ष	म, पु.	
२	¥4,000 ++ '§ (₹a,000 m \$	30,000 11	्र ३०००० वर्ष	{ ६६७०००० पू. + ६६६६६ पूर्वांग+=३ स्ता.वर्ष	ξ 1, 1,	**		
ş	₹£,000 ++	२५ ००० ,,	१०,००० 11	,, 00003\$	•	५०००० वर्ष	सनत्कुमार स्वर्ग	मोक्ष	
\$ \$ £ 9	ko ooo "'	\$0000 ··	₹° , , ,,	£0 000 11		१ ला. ••	,,,	17	
6	K 000 11	4 000 ,1 8§	် နှစ်စ နောင်း	४६५०० व.	देश्६०० वर्ष		७ वें नरक	ļ	
٤	५०० व.	५०० वर्ष	₹00 m	82000 "	}	१०००० वर्ष	मोक्ष	}	
१०	३२ ५ •,	ſ	१ <u>५</u> 0 ,,	CC\$0 "	३५१७५ "	340 "	11	सर्वार्थ सिद्धि	
१ १ १ २	३०० २८ म	300 ., KÉ .,	१०० ,, १६ ,,	₹800 · · ·		800 "	्र ७ वें नरक	अयन्त	

[&]quot; ह. पु. में भरतका संयम काल १ ला + (१ पूर्व --- १ पूर्वांग) + व १०६० वर्ष दिया है।

६. वैसव परिचय

१ (ति. प./४/१३७२-११६७); २ (त्रि. सा./६८२); ३ (ह. पु./११/१०८-१६२); ४. (म. पु./३७/२३-३७,६६-८१, १८१-१८४); ४. (ज. प./७/४३-६४, ६६-६७)।

咸 中	ं नाम	गणना सामान्य	प्रमाण नं•	गणना विशेष	क्रम	नाम	गणना सामःस्य	प्रमाण 'सं•	गणना विशेष
१ २	रत्म निधि	१४ १	(वे. (.,	(अरमे) }	k	पुत्र पुत्री	संख्यात स ह स	4	भरतके ५०० पुत्र थे
i i	रानियाँ आर्य खण्डकी राजकन्याएँ	\$ 2 ,000	 					8	सगरके ६०,००० पुत्र पद्मके = पुत्री
	विद्याधर राजकन्याएँ	३२०००	} ;	<u>;</u>			*5 ***		भी
iii	म्लेच्छ राजकन्याएँ	32,000 8 6, 000			ڊ ق	गणमञ्ज्ञ वेन सनुरक्षक देव	\$ २, ००० १६ ०	3,8	1 \$000
8	पटरानी 	१			켮	रसोष्ट्ये	इ ६ ०	ļ	,

[§] ह. पु. व म. पु. में सगरका कुमार व मण्डलीक काल १८ साख पूर्व दिया गया है।

^{§§} ह. पु. की अपेक्षा सुभीम चक्रवर्तीको राज्यकाल प्राप्त ही नहीं हुआ।

那म.	नाम	गणना सामान्य	प्रमाण <u>लं</u>	गणना विशेष	कम —	नाम	नणना सामान्य	प्रमाण न-	गणना विशेष
ً ع	यक्ष '	३२			হও 🏻	नाटयशाला	इ२०००		
१०	यक्षरिका अन्धु कुल	३५० लाख		· 1	२८	संगीतशाला	३२०००		İ
११	भेरी	१२			२१	पदाति	४८ करोड़		j
१२	पटह (नगाड़े)	१२		l	३०	देश	३२०००		•
१३	शंख	२४		j	३१ [ग्राम्	१६ करोड़		}
48	हर्स	१ को ड़ाकोड़ी	ह. पु.	१करोड़	३२	नगर	७६०००	B	७२०००
Ì			8	१लाकरोड़	, 1			.	२६०००
१५	गी	३ करोड़			६३	खेट	१६०००		
१६	गौशाला		y	३ करोड़	રૂજ	खर्ब ट	28000	k	38000
१७	थातियाँ	१ 11	8	١, ١	34	मटंब	8000	,	J
. ₹ =	हंडे	•		Ì	₹	पट्टन	86000		}
38	गुज	=४ लाख	İ	Ì	રૂહ	द्रोणभुख	00033		
२०	रथ	•		ļ	३ूद	संबाहन	88000]
२ १	अश्व	१= करोड़	l	<u> </u>	38	अ <i>न्तर्द्वी</i> प	44		ļ
22	योद्धा	۲8		j	૪૦	कुक्षि निवास	300		
23	विद्याधर	अनेक ग		į	४१	दुर्गदिवन	२५०००		
28	म्लेच्छ राजा	4400 0	y	१८०००	પ્રર	पताकाएँ	į .	S	४८ करोड़
24	चित्रकार	88000	ą	00033	83	भोग	१० प्रकार	}	
२६	मुकुट बद्ध राजा	3200	"	``	88	पृथिवी	षट् खण्ड	į .	1

७. चौदह रत्न परिचय सामान्य

	नि	र्दे श		संज्ञा	उ रप	ति		
	१. ति, प./४/१३७६-१३८१ २. त्रि. सा./=२३ ३. ह. प्र./१९/१०=-१०६ ४. म. प्र./३७/=३-=६		सा./ ५२३ २. वे. आगे बोर्ष कंसं. ११ इ./१९/१० म-१०६ इ./३७/म इ-म				हिष्टि भेद	विशेषता
·	नाम	न्या है	सामान्य	ৰি হী থ	सामाध्य	विशेष		
\$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$	चक छत्र खड्ग कण्ड काकिणी मणि चर्म सेनापति गृहपति गज अरव पुरोहित स्थपि सुवसी	आयुध छतरी आयुध अस्त्र अस्त्र ररन तम्बू भण्डारी हाथी तक्षक (मद्र्हें) पटरानी	सुदर्शन सूर्यप्रभ भद्रसुख प्रभुद्धवेग चिन्ता जननी चूड्डामणि आयोध्य भद्रसुख विजयगिरि पवनंजय बुद्धिसागर कामधृष्टि सुभद्रा	प्रमाण नं० २ सीनन्दक भण्डवेग कामवृष्टि (ह. पु./११/१२३)	आगुधशाला '' श्री गृह '' राजधानी '' राजधानी '' राजधानी	प्रमाण न ० २ विजयार्थ ''	ति. प./शारश्टर किन्हों अमचायोंके मतसे इनकी उत्पत्तिका नियम नहीं । यथायोग्य स्थानोंमें उत्पत्ति ।	दे. पृग्हाः शीर्षक ।

८. चौदह रत्न परिचय विशेष

९. नव निधि परिचय

玮.	नाम	জীব প্রজীব	काहे से बने	विशेषताएँ
			770	१, ति. प./४/गः,; २ त्रि, सा./ ^द २३
		९. ति. प./४/१३७७-१३७६ २. म. पु./३७/⊏४		३. म. पु./३७/१स्तो.: ४.ज. प./७/गा.
	}	%}/જ ક્રું/જ	ति. प./४/१३प१	
	1 1	od d	5	
		d⊑ h	45	
	! !	<u></u>	<u> </u>	
የ	चक	अजीव	वज्र	शत्रु संहार
२	- ভ্রেপ	**	"	१२ योजन लम्बा और इतना ही
				चौड़ा है। वर्षासे कटक की रक्षा
_				करता है ।४/१४०-१४१।
3	লেভ্গ	11	**	शतु संहार विकास गामा तार वहारत
ጸ	द०ड	**	**	विजयार्थ गुफा द्वार उद्घाटन ।१/१३३०:२/४/१२४। गुफाकेकांटी
				आदिका शोधन ।३/१७०। वृषभा-
				चतपर चक्रवर्तिका नाम लिखना।
				१/१३५४।
ŧ	का किणी	11		विजयार्घकी गुफाओंका अन्ध-
`	"	,,	**	कार दूर लरना ।१/१३३६;३/१७३।
				वृषभाचलपर नाम लिखना।२।
¢	मणि	,,	,,	विजयार्धकी गुफामें उजाला करना।
ø	चर्म	11	1 199	म्तेच्छ राजा कृत जलके ऊपर तैरकर
			म, पु./	अपने उत्पर सारे कटकको आश्रय
	1 1		३७/१७१	देता है। (२:३/१७१; ४/१४०)
5	सेनापति	জীৰ		
3	गृह्दित	17		हिसाम किताम आदि रखना ।३/१७६।
ę۰	गज	**		
११	अश्व	,,	1	देवी उपद्रवोंकी शान्तिके अर्थ
१२	पुरोहित	,		् अनुष्ठान करना (३/१७४)
4 2	स्थपति			नदीपर पुल म नाना (१/१३४२: ४/१३१
१३	स्यपात	**	1	मकान आदि बनाना ।३/१७०।
१४	युवसी		1	नोट-ह. पु./११/१०१।
ζ0	8401	12	İ	इन ररनों में से प्रत्येक को एक एक
	ļ ļ			हजार हैव रक्षा करते थे।
				Q-117 (4 (XII 4)7 (4 1 1
ı				
			-	
				·
				[
_	٠			

	A 70 3	····					_		
{	१ निर्देश	२ उत्	र्गात	३ क्या प्रदा	निक	रती हैं 			
_	१. ति. प./	१. ति.प	४/१३८४	ू. १. ति. प्	/8 / 8	ş ⊏ξ			
珎.		२ ति.प.		२. त्रि. सा./८२२					
	२. त्रि,सा,/			३. ह. पु./	•		विशेष		
	⊏२१,		!	४. म. पु./३७/७ १- ⊏२					
	३. ह.पु./११/			, , , , , , , ,					
	१-११०-								
	१११				-h-		-		
	४. म .पु ./३७/	दृष्टि सं	दृष्टि सं. ∤	सामान्य	प्रमाणसं	विशेष			
	<i>\9</i> ६-≈२	*	२		<u> </u>				
8	काल	श्रीपर	नदीमख	त्र् तुकेअनु-	3,8	निमित्त, न्याय,			
l `				सार पुष्प		व्याकरण आदि			
1] '	फल आदि		विषयक अनेक			
			i			प्रकारके शास्त्र			
				l Í	8	नौंसुरी, नगाड़े			
			!			आदि पंचेन्द्रिय			
	Í		:		i '	के मनोज्ञ विषय			
२	महाकाल	,,	,,	भाजन	ş	पंचलोह् आदि			
			"		,	घासुर	मीन		
	-				8	असि, मसि			
1						आदिके साधन-	AU.		
						भूत द्रव्य			
3	पाण्डु	10	,,	धा न्य	8	धान्य तथा			
						गट ूरस			
B	मानव	25	,,,	अा ग्रुघ	४	नीति व अन्य			
		Ì			! 	अनेक विषयों के]		
						दाास्त्र -			
k	इांख	,,,	,,	बादित्र	Ì				
Ę	पद्म	19	,,	बस्त्र					
હ	नै सर्प	"	32	हर्म्य	3,8	शय्या, आसन,			
	ļ			(भवन)	l	भाजन आदि			
	بے					उपभोग्य वस्तुएँ			
<u>-</u>	पिंगल 🚽	**	"	आभरण		1			
3	नानारत्न	"	92	अनेक प्रकार	1				
	1	1	<u>L</u>	के रत्न आदि	l .	<u> </u>]		

४. विशेषताएँ

ह. पु./११/१११-११३,१२३ अमी गिनिध्योऽनिधना नव। पालिता निधिपालारुयैः सुरै लोकोपयोगिनः ११११ शकटाकृतयः सर्वे चतुरक्षाष्ट्रचक्रकाः। नवयोजनिवस्तीणि द्वादशायामसंमिताः ११११ ते चाष्ट्रयोजनागधा बहुवक्षारकुक्षयः। निरयं यक्षसहस्रोण अध्येकं रिक्षिते क्षिताः ११११ कामवृष्टिवशास्तेऽमी नवापि निधयः सदा। निष्पादयन्ति निःशेषं चक्रवितमनी पित्तम् ११२३। च्ये सभी निधियाँ अविनाशी थीं। निधिपाल नामके देवीं द्वारा सुरक्षित थीं। और निरन्तर लोगोंके उपकारमें आती थीं। १११। ये गाड़ीके आकारकी थीं। ह योजन चौड़ी, १२ योजन लम्बी, च्योजन गहरी और वक्षार गिरिके समान विशाल कुक्षिसे सहित थीं। प्रत्येककी एक-एक हजार यक्ष निरन्तर देखरेख रखते थे। ११२-११३। ये नौ की नो निधियाँ कामवृष्टि नामक गृहपति (१वाँ रत्न) के अधीन थीं। और सदा चक्रवर्ती के समस्त मनोरधोंको पूर्ण करसी थीं। १२३।

१०. दश प्रकार मोग परिचय

ति. प./४/१३६७-दिव्यपुरं रेयणणिहिं चमुभायण भोयणाइं सयणिज्जं। आसणवाहणणहा दसंग भोगा इमे ताणं।१३६७। = दिव्यपुर (नगर), रत्न, निधि, चमू (सैन्य) भाजन, भोजन, शय्या, आसन, बाहन, और नाट्य ये उन चक्रवित्योंके दशांग भोग होते हैं।१३६७। (ह. पु./१९/१३१); (म. पु./३७/१४३)।

११. मरत चक्रवर्तीकी विभूतियोंके नाम

म, पु./३७/श्लोक सं.

ļ	3.1 4.16/11/2	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	,
क्रम	श्लोक सं.	विभूति	नाम
<u>-</u> ا	१४६	घरका कोट	क्षितिसार
२	,,	गौशाला	सर्वतोभद्र
3	१४७	छावनी	नन्दावर्तः
8	,,	ऋतुओं के लिए महत्त	वैजय≄त
¥	,,,	सभाभूमि	दिग्वस तिका
Ę	१४८	टहलनेकी लकड़ी	सुविधि
છ	485	दिशाप्रेक्षण भवन	गिरि क्टक
ς.	,,	नृत्यशाला	वर्धमानक
3	१५०	शीतगृह	घारा गृह
१०	,,,	वर्षा ऋतु निवास	गृहक्टक
११	१५१	निवास भवन	पुष्करावती
१२	१५१	भण्डार गृह	कुबेरकान्त
₹ 3	१५२	कोठार	वसुधारक
१४	,,	स्नानगृह	जीम्नुत
१५	१ ६३	रत्नमाला	अवतं सिका
१६	, «	चाँदनी	देवरम्या
१७	१५४	शय्या	सिहवाहिनी
१द	। १६६	चमर	अनुपमान
११	१५६	छत्र	सूर्यप्रभ
२०	१५७	कुण्डल	विद्य_रप्रभ
२१	१६<	खड़ाऊँ	विष मोचिका
२२	१५६	कथच	अभेख
२३	१६०	रथ	अजितंजय
२४	१६९	धनुष	वज्रकाण्ड
२५	१६२	ब्राण	अमोघ
२६	१६३	शक्ति	वज्रतुण्डा
२७	१६४	माला	िसिघाटक
२⊏	१६५	<u>छ</u> री	नोह वाहिनी
३६	१६६	कण्प (अस्त्र विशेष)	मनोवेग
, ३ ०	१६७	तलवार	सीनन्दक
38	१६=	खेट (अस्त्र विशेष)	भ्तमुख
३२	१ईं६	चेक्र	सुदर्शन
33	_ १७०	दण्ड	चण्डवेग ,
38	१७२	चिन्तामणि रत्न	चूड़ामणि
₹4	१७३	काकिणी (दीपिका)	चिन्ताजन नी
३६	१७४	सेनापति	अयोध्य
३७	१७६	पुरोहि त	बुद्धिसागर
3८	१७६	गृहपति	कामवृष्टि
36	१७३	शिलावट (स्थपति)	भद्रमुख

क्रम	श्लोक सं,	विभूति	नाम
۸۰	१७८	गज	विजयगिरि (धवल वर्ण
४१	309	अश्व	पवनं जय
४२	१⊏०	स्त्री	सुभद्रा
४३	१=२	भेरी	आनुन्दिनी (१२ योजन
			शब्द) (म. पु./३७/
			१द२)
88	१८४	श्ंख	गम्भीरावर्त
४४	१८६	कड़े	वीरानन्द
8\$	१८७	भोजन	महाकल्याण
ઝુહ	१८५	खाद्य पदार्थ	अमृतगर्भ
४८	१⊏ह	स्वाद्यपदार्थ	अमृतकल्प
38	१=१	पेय पदार्थ	अमृत
	<u> </u>		

१२. दिग्विजयका स्वरूप

ति. प./४/१३०३-१३६६ का भावार्थ-आयुधशालामें चक्रको उत्पत्ति हो जानेपर चक्रवर्शी जिनेन्द्र पूजन पूर्वक दिग्विजयके लिए प्रयाण करता है। १३०३-१३०४। पहले पूर्व दिशाकी ओर जाकर गंगाके किनारे-किनारे उपसमुद्र पर्यन्त जाता है।१३०६। रथपर चढ़कर १२ योजन पर्यन्त समुद्र तटपर प्रवेश करके वहाँसे अमोघ नामा बाण फोंक्ता है, जिसे देखकर मागध देव चक्रवर्तीकी अधीनता स्वोकार कर लेता है। १३०६-१३१४। यहाँसे जम्बूद्वीपकी वेदीके साथ-साथ उसके बैजयन्त नामा दक्षिण द्वारपर पहुँचकर पूर्वकी भाँति ही वहाँ रहनेवाले बरतनुदेवको वश करता है ११३१४-१३१६। यहाँसे वह पश्चिम दिशाकी ओर जाता है और सिन्धुनदीके द्वारमें स्थित प्रभासदेवको पूर्ववत् ही वश करता है।१३१७-१३१८। तस्पश्चात् नदीके तटसे उत्तर मुख होकर विजयार्ध पर्वत तक जाता है। और पर्वतके रक्षक वैताद्य नामा देवको वदा करता है।१३१६-१३२३। तत्र सेनापति दण्ड रत्नसे उस पर्वतकी खण्डप्रपात नामक पश्चिम गुफाको खोलता है। १३२५-१३३०। गुफामें से गर्म हवा निकलनेके कारण वह पश्चिमके म्लेच्छ राजाओंको वश करनेके लिए चला जाता है। छह महोनेमें उन्हें बश करके जब वह अपने कटकमें लौट आता है तब तक उस गुफाकी वायुभी शुद्ध हो चुकती है। १३३१-१३३६। अब सर्व सैन्यको साथ लेकर वह गुफामें प्रवेश करता है, और काकिणी रस्तुसे गुफाके अन्धकारको दूर करता है। और स्थपति रत्न गुफार्मे स्थित जन्मग्नजला नदीपर पुल बाँघता है। जिसके द्वारा सर्व सैन्य गुफासे पार हो जाती है।१३३७-१३४१। यहाँपर सेनाको ठहराकर पहले सेनापति पश्चिम खण्डके म्लेच्छ राजाओं-को जीतता है।१३४४-१३४८। तत्परचात् हिमवान पर्वतपर स्थित हिमवानदेवसे युद्ध करता है। देवके द्वारा अतिघोर वृष्टि की जानेपर अत्र रत्न व चर्म रत्नसे सैन्यकी रक्षा करता हुआ, उस देवको भी जीत लेता है। १३४१-१३५०। अब वृषभगिरि पर्वतके निकट आता है। और दण्डरत्न द्वारा अन्य चक्रवर्तीका नाम मिटाकर वहाँ अपना नाम लिखता है ।१३५१-१३५६। यहाँसे पुनः पूर्वमें गंगा नदीके तटपर आता है, जहाँ पूर्वश्रत् सेनापति दण्ड रत्न द्वारा तिमसा गुफाके द्वार-को खोत्तकर छह महीनेमें पूर्व खण्डके म्लेच्छ राजाओंको जीतता है। ।१३५६-१३५-। विजयार्घकी उत्तर श्रेणीके ६० विद्याधरोंको जीतनेके पश्चात् पूर्ववत गुफा द्वारसे पूर्वतको पार, करता है ।१३४६-१३६४।

यहाँसे पूर्व खण्डके म्लेक्ष राजाओंको छह महीनेमें जीतकर पुनः कटकमें लीट आता है।१३६६। इस प्रकार छह खण्डोंको जीतकर अपनी राजधानीमें लौट आता है। (ह. पु./११/१-५६); (म.पु./२६-१६ पर्व/पृ. १-२२०); (ज. प./७/११६-१५१)।

१३. राजधानीका स्वरूप

ति. सा./७१६-७१७ रयणकवाडवरावर सहस्सदलदार हेमपायारा । बार-सहस्सा वीही तत्य चउप्पह सहस्सेवकं ।७१६। णयराण वहिं परिदो वणाणि तिसद ससिट्ठ पुरमज्के । जिणभवणा ण्रवइ जणनेहा सोहंति रयणमया ।७१७। चराजधानीमें स्थित नगरोंके (दे. मनुष्य/ ४) रत्नमयी किवाड़ हैं। उनमें बड़े द्वारोंकी संख्या १००० है और छोटे ४०० द्वार हैं। सुवर्णमयो कोट है। नगरके मध्यमें १२००० वीथी और १००० चौपय हैं। ७१६। नगरों के बाह्य चौगिर्द ३६० बाग हैं। और नगरके मध्य जिनमन्दिर, राजमन्दिर व अन्य लोगों के मन्दिर रत्नमयी शोभते हैं।---।७१७।

१४. हुंडावसर्पिणीमें चक्रवर्तीके उत्पत्ति काळमें कुछ भपवाद

ति. प./४/१६१६-१६१ प्राम्यसमदुस्समकालस्स ठिदिम्मि थोअवसेसे ।१६१६। तकाले जायते ... पढमचकी य ।१६१७। चिकस्सिविजयभंगो । = हुण्डावसिपणी कालमें कुछ विशेषता है। यह यह कि इस कालमें चौथा काल शेष रहते ही प्रथम चक्रवर्ती उत्पन्न हो जाता है। (यद्यपि चक्रवर्तीकी विजय कभी भंग नहीं होती। परन्तु इस कालमें उसकी विजय भी भंग होती है।)

३. नव बलदेव निर्देश

१. पूर्व मव परिचय

২ ১=/	/c {	सामान्य	विशेष	नाम			प्रथम पूर्व भव (स्वर्ग १, प. पु./२०/- २३६-२३७ २. म. पु./पूर्ववत		
২ ১=/	/={	A	,	1	नगर	दीक्षा गुरु	स्व र्ग		
_	J	विजय	प. पु.	वत (विशाखभूति)	पुण्डरी किणी	अमृतसर	∫अनुत्तर विमान {२ महासुक्र		
	\co- <u>e\$</u>	अचल		मारुतवेग	पृथ्वीपुरी	मह⊦सुबत	υ		
३ ५६	/७१,१ ० ६	धर्म	भद्र	न न्दिमित्र	थानन्दपुर -	सुव्रत	»		
	/k=-43	सुप्रभ्		महाब्रु	नन्दपुरी	ऋषभ	सहस्रार		
	/৩০,≂৩	सुदर्शन		पुरुषर्वभ	वीतशोका	प्रजापाल	27		
	/१७४-१७ ६	नन्दीषेण	नन्दिमित्र	सुदर्शन	विजयपुर	समब् र	»		
9 66/	/१०६-१ ०७	नन्दिमित्र	न न्दि षेण	बसु न्धर	मुसीमा	सुधर्म	्र हा २ सौधर्म		
F 6	७/१४≈-१४६	राम	पद्म	(श्रीचन्द्र	ि क्षेमा	अर्णव	्र ब्रह्म इस्		
	2/938			२ विजय	🕻 २ मलय		र सनत्कुमार		
<u>ا</u> ع		पद्म	य ल	संविसञ्च	हस्तिनापुर	विद्रुम	महाशुक्र		

२. वर्तमान भवके नगर च माता पिता

귦.		नगर	पिता	मा	ांता	गुरु	तीर्थ	
	म. पु./सर्ग/श्लो.	म, पु./	/पूर्व वद	१. प. पु./२०/२ [।] २, म. पु./पूर्ववर		१. प. पु./२०/- २४६्-२४७		
				सामान्य	(विशेष	२. म. पु./पूर्ववत्		
8	k%/={ k=/८०-८३ k=/८०-८३ k5/७१,१०६ ६०/४=-६३ ६१/७०,=७ ६४/१७४,१७६	पोदनपुर द्वारावती " खगपुर चक्रपुर वनारस	प्रजापति ब्रह्म भद्र सोमष्रभ सिंहसेन वरसेन अग्निशिख	म, पु. भद्राम्भोजा सुभद्रा सुवेषा सुदर्शना सुप्रभा विजया	म, पु, जयवती सुभद्रा " जयवन्ती विजया वैजयन्ती अपराजिता	सुवर्णकुम्भ सत्कीति सुधर्म मृगांक श्रुतिकीति सुमित्र २. शिवघोष भवनश्रुत	हे. तीथंकर	
3	{ ६०/१४≖-१ ४६	" पीछे अयोध्या	दशस्थ (१६४) नष्ठदेव	अपराजिता (कौशिल्या) रोहिणी	सुनाला	सुनत सुसिद्धार्थ		

३. वर्तमान मव परिचय

			शरीर		<u> </u> 	उत्सेध			आयु		 निर्गमन
क. म. पु./- सर्ग/श्लो.			प <i>-1४/</i> १३	·	त्रि. ह. १	प./४/१८१८ सा./८२६ पु./६०/३१० पु./पूर्ववत		१. ति. प २. त्रि. स ३. म पु.	./४/१४१६- ा./=३१ /पूर्ववद	-१४२०	ति. प./४११४३७ ति. सा./=३३ प. पु./२०/२४६
		व्यो	संस्थान	संहनम	सामान्य धनु	प्रमाण	विशेष धनुः	सामान्य	प्रमाणसं.	विशेष	ति. य ति. स
२ ४८/= ३ ४६/- ४ ६०/६ ४ ६१/७	८-६६ १ ७७-१७ <i>=</i>	ति. प. ≕स्वर्ण, म. पु. ≖सफेद	समचद्धरस	वंज ऋषमे नार्वाच	८०० ६०० ४४ २२ १०	३ ३,४ ३,४	१५ ४० २ <i>६</i> १३	वर्ष ८७ लाख १७ ,, १७ ,, १७ ,, १७००० वर्ष ३७००० ,, १९००० ,,	מי אי פי פי פי פי קי	वर्ष ८४ लाख ३० '' १० '' ६६००० वर्ष ३२००० '' १३००० '' १२०० '' कृष्णके र्त	मोक्ष " " " " " " " ब्रह्म स्वर्ग

४. बळदेवका वैभव

म.पु./६ = /६६७ - ६७४ सीतायष्टसहस्राणि रामस्य प्राणवन्त्रभाः । द्विगुणा-ष्टसहस्राणि देशास्तावनमहीभुजः । ६६७। श्रून्यं पञ्चाष्टरन्ध्रोक्तस्याता द्रोणमुखाः स्मृताः । पत्तनानि सहस्राणि पञ्चनिशतिसंख्यया । ६६ = । कर्वटाः खत्रयद्वचेकप्रमिताः, प्राथितार्थदाः । मटम्बास्तत्प्रमाणाः स्युः सहस्राण्यष्ट खेटकाः । ६६१। श्रून्यसप्तकवस्वन्धिमिता ग्रामा महा-फलाः । अष्टाविशमिता द्रोपाः समुदान्तर्वतिनः । ६७०। श्रून्यपञ्चक- पक्षािक्धमितास्तुङ्गमतङ्गाः । रथवर्यास्तु तावन्तो नवकोट्यस्तु-रङ्गमाः ।६७१। खसप्तकद्विविध्युक्ता युद्धशौण्डाः पदातयः । देवा-श्राष्टसहस्राणि गणवद्धाभिमानकाः ।६७२। हलायुधं महारत्मपरा-जितनामकम् । अमोधात्व्याः शरास्तीक्ष्णाः संज्ञया कौमुदी गदा ।६७३। रत्नावतंसिका माला रत्नान्येतानि सौरिणः । तानि यक्ष-सहस्रण रक्षितानि पृथक्-पृथक् ।६७४। =रामचन्द्र जी (बलदेव) के ८००० रानियाँ, १६००० देश, १६००० मर्गंब, ५००० खेटक,

४८ करोड़ गाँव, २८ द्वीप, ४२ लाख हाथी, ४२ लाख रथ; हे करोड़ घोड़े, ४२ करोड़ पदाति, ५००० गणबद्ध देव थे।६६६-६७२। राम-चन्द्र जीके अपराजित नामका 'हलायुध' अमीध नामके तीक्षण 'बाण', कौ मुदी नामकी 'गदा' और रत्नावतं सिका नामकी 'माला' ये चार महारत्न थे। इन सब रत्नोंकी एक-एक हज़ार यक्ष देव रक्षा करते थे।६७२-६७४। (ति, प./४/१४३६), (त्रि. सा./५९६); (म. प्र./६७/६०-६४)।

५. बलदेवों सम्बन्धी नियम

ति.प./४/१४३६ अणिदाणगदा सन्वे बत्तदेवा केसवा णिदाणगदा। उड्ढं-गामी सन्वे बत्तदेवा केसवा अधोगामी ।१४३६। — सब बत्तदेव मिदान-से रहित होते हैं और सभी बत्तदेव ऊर्ध्वगामी अर्थात स्वर्ग व मोक्षको जाने वाले होते हैं । (ध. १/१,६-६,२४३/४००/६); (ह. पु./६०/२६३)।

श्रलाका पुरुष/१/२-५ बलदेबोंका परस्पर मिलान नहीं होता, तथा एक क्षेत्रमें एक समयमें एक ही बलदेब होता है।

४. नव नारायण निर्देश

१. पूर्व सव परिचय

	٩,	, नाम		२. द्वितीय पूर्वभव		३. प्रथम पूर्वभव
क्र.	१. ति. प./४/११ २. त्रि. सा./८२ ३. प• पु./२०/२ ४. ह• पु./६०/२ ६. म• पु./सर्ग/	१ २७ टिप्पणी प्य-२५१	१. प. पु./२० २. म. पु./पू नीचे वाले नाग में कुछ अन्तर	१. प. पु./२०/- २१८-२२० २. म पु./पूर्ववत्		
		नाम	नाम	नगर्	दीक्षा गुरु	स्वर्ग
2	६७/८३-८६	রি পৃষ্ট	विश्वनन्दी	हस्तिनाषुर	सम्भूत	महायुक
۹ ¦	46/68	রি গৃষ্ট	पर्वत	अयोध्या	सुभद	प्राणत
3	48/=k-=E	स्वयंभू	धन मित्र	श्रावस्ती	वसुदर्शन	सान्तव
B	€0/ € €.40	पुरुषोत्तम	सागरदत्त	कौशाम्बी	श्रेयांस	सहस्रार
ķ	₹१/७१, <i>च</i> ४	पुरुषसिंह	विकट	पोदनपुर	सुभू ति	ब्रह्म (२ माहेन्द्र)
Ę	£4/808-60£	पुरुषपंडरीक	प्रिय मि त्र	शैलनगर	वसुभृति	माहेन्द्र (२ सौधर्म)
e	£\$/80\$-800	दत्त (२,५ पुरुषदत्तः)	मानसचे ष्टित	सिंहपुर	् घोषसेन 	सीधर्म
=	६७/१५०	नारायण (३,४ लक्ष्मण)	पुनर्वेसु	कौशाम्त्री	पराम्भोधि	सनत्कुमार
3	90/355	arca.	गंगदेव	हस्तिनापुर	दुमसेन	महाशुक्र

२. वर्तमान सबके नगर व माता पिता (प. पु./२०/२२१-२२८), (म. पु./पूर्व शोर्षवत)

	8.	नगर	Ł	पिता	६. माता	७. पटरानी	≂∙तीर्थ
东.	प पु.	म• पु.	म∙ पु.	ч. у.	ष, पु. व म. पु.	प्रपु. व म. पु.	
१	पोदनपुर द्वापुरी	पोदनपुर द्वारावती	प्रजापति झह्य	प्रजापति ब्रह्मभूति	मृगावती माधवी (ऊषा)	मुप्रभा रूपिणी	
7 30 A 40	हस्तिनापुर " चकपुर कुशाग्रपुर	" " खगपुर चक्रपुर	भद्र सोमप्रभ सिंहसेन वरसेन	रौद्रनाद सोम प्ररूपात शिवाकर	पृथिवी सीता अम्बिका सङ्मी	प्रभवा मनोहरा सुनेत्रा विमलसुन्दरी	. तीय कर
4	मिथिना अयोध्या	ननारस " (पोझे अयोध्या) ६७/१६४	अग्निशिख दशरथ	सममूर्था जिननाद दशरथ	को दिश्नी कैंकेयी	आनन्दवती प्रभावती	กรั
8	मथुरा	मथुरा	बसुदेव	वसुदेव	देवकी	रु विसणी	

३. वर्तमान शरीर परिचय

-			ह. शरीर	1		१ ० उत्संध		११, अस्यु	
_	म• पु./सर्ग/श्लो		ति. प./४/१३७ म. पु./पूर्ववत्	75	₹. 1	ति, पनिश्वश्वर त्रि, सान/८२६		ति. प./४/१४२१-१४२२ २. त्रि. सा./=३० ३. ह. पु./६०/५१७-५३३ म. पु./पूर्ववत	
क.	4. 8./4.7/4.			संहनन		इ. यु./६० / ३१०-३ म. यु./पूर्ववद	१२ 		
		40		1	सामान्य	प्रमाण सं.	বিহাত		
8 C 8	\$49/= &- & 0 \$44/= & 6 \$44/= &	ति.प. —स्वर्णवद्य/म.पु. — नील व कृष्ण	ति. प.—समचतुरस संस्थान	ति.पक्ज्रमुषभ नाराच संहत्तन	50 धनुव 90 " ६० " १० " ११ " १६ " १६ "	तार का पूर्व क्यू	११ घनुष ४० " २६ " १२ "	८४ लाख वर्ष ७२ ,, ,, ६० ,, ,, १० ,, ,, १० ,, ,, १००० ,, ३२००० ,, १२००० ,,	

४. कुमार काक आदि परिचय

		१२.कुमार काल	१३- मण्डलीक व	हाल	१४- बिजथ काल	१६. राज्य	। काल	'१६- निर्गमन	
晒.	म. पु./- सर्ग/श्लो•		१. ति, प./४/११ २, ह. पु./६०/४	-		१. ति. प./४/१४२१–१४३६ २. ह. पु./६०/५१७–५३३		ति,प./४/१४३८ त्रि. सा./८३२	
			सामान्य	_ विशेष		सामान्य	विशेष		
 و	<i>६७</i> / <i>≂६-</i> -६०	२४००० वर्ष	२५००० वर्ष	ह. पु. ×	१००० वर्ष	বৰ্ষ	₹. g.	सप्तम नरक	स्कर्म
२	46/68	, "	'n	Î	₹00 m	७१४१६०० न्द्र४६०००	द३७४०००	सप्तम नरक षष्ठ "	167
30	५१/- ६०/६=-६१	१२६०० वर्ष ७०० "	१२६०० वर्ष १३०० "		٤٥ " ده ي	५६७४६ १ ० २६ १७ ६२०		1, ,,	भी सप्तम हैं ।
X Ex	६१/७१ ६४/१७७–१७=	₹00 " ₹ ५ 0 "	१२५० " २५० "	१२५	to "	68889 65=3=0	१९१०५	. 32 13	अपेक्षा सभी गये हैं।
9	₹ €/१०=	२०० "	ξο »·		10 "	38000		पंचम् "	की अप् ।
ξ	७१/१२३ <i>७१</i> /१५१ <i>–</i> १५४	₹00 ,, ₹€ ,,	\$00 " *& "	×	80 ,,	११५६० ६२०	११८६०	चतुर्थ ,, तृतीय ,,	म.पु./को

५. नारायणोंका वैभव

म. पु./६८/६६६.६७६-६७७ पृथिबीसुन्दरीसुरुयाः केदावस्यं मनोरमाः।
द्विगुणाष्टसहस्राणि देव्यः सरयोऽभवन् श्रियः।६६६। चकं सुदर्शनारुयानं कौमुदीरयुदिता गदा। असिः सौनन्दकोऽमोघमुखी शक्ति
शरासनम् ।६७६। शाक्ष पश्चमुखः पाञ्चजन्यः शङ्को महाध्वनिः।
कौस्सुभं स्वप्रभाभारभासमानं महामणिः।६७६। रश्नान्येतानि
सप्तैव केशवस्य पृथक्-पृथक्। सदा यक्षसहस्रोण रक्षितान्यमितयुतेः।६७०। =नारायणके (लक्ष्मणके) पृथिवीसुन्दरीको आदि

लेकर संश्मीके समान मनोहर सोलह हजार पतिवता रानियाँ थीं ।६६६। इसी प्रकार मुदर्शन नामका चक्र, कौमुदी नामकी गदर, सीनन्द नामका खड्ग, अमोधमुखी शक्ति, शार्क नामका धनुष, महास्विन करने वाला पाँच मुखका पाञ्चजन्य नामका शंख और अपनी कान्तिके भारसे शोभायमान कौस्तुभ नामका महामणि ये सात ररन अपरिमित कान्तिको धारण करने वाले नारायण (सक्ष्मण) के थे और सदा एक एक हजार यक्ष देव उनकी पृथक् पृथक् रहा। करते थे ।६७६-६७०। (ति. प./४/१४३४); (चि सा./५२६); (म. पु./६०/६०-६४); (म.पु./७९/१२४-१२८)।

६ . नारायण की दिग्विजय

म. पु./६-/६४३-६५६ लंकाको जीतकर लक्ष्मणने कोटिशिला उठायो और वहाँ स्थित सुनन्द नामके देवको वश किया।६४३-६४६। तत्पश्वात् गंगाके किनारे-किनारे जाकर गंगा द्वारके निकट सागरमें स्थित
मागधदेवको केवल बाण फेंक कर वश किया। ६४७-६४०। तदनन्तर
समुद्रके किनारे-किनारे जाकर जम्बूद्वीपके दक्षिण वैजयन्त द्वारके
निकट समुद्रमें स्थित 'वस्तनु देव' को वश किया। ६४१-६४२।
तदनन्तर पश्चिमकी ओर प्रयाण करते हुए सिन्धु नदीके द्वारके
निकटवर्ती समुद्रमें स्थित प्रभास नामक देवको वश किया।६४३-६४४।
तत्पश्चात् सिन्धु नदीके पश्चिम तटवर्ती म्लेच्छ राजाओंको जीता।६४६।
इसके पश्चात् पूर्व दिशाकी ओर चले। मार्गमें विजयार्घकी दक्षिण
श्रेणीके ४० विद्याधर राजाओंको वश किया। फिर गंगा तटके पूर्ववर्ती मलेच्छ राजाओंको जीता।६४६-६५७। इस प्रकार उसने १६०००
पट बन्ध राजाओंको तथा ११० विद्याधरोंको जीतकर तीन खण्डोंका
आधिपत्य प्राप्त किया। यह दिग्विजय ४२ वर्ष में पूरी हुई।६४०।

म. पु /६</ अरथ-७२४ का भावार्थ -वह दक्षिण दिशाके अर्धभरत क्षेत्रके समस्त तीन खण्डोंके स्वामी थे।

७. नारायण सम्बन्धी नियम

ति. प./४/१४३६ अणिदाणगदा सब्वे कलदेवा केसवा णिदाणगदा। उड्ढंगामी सब्वे बलदेवा केसवा अधोगामी ११४३६। ⇒•••सब

- नारायण (केशव) निदानसे सहित होते हैं और अधीगामी अथित नरकमें जाने वाले होते हैं ११४३६। (ह, पू./६०/२६३)
- ध. ६/१,१-६,२४३/६०१/१ तस्स मिच्छत्ताविणाभा विणिदाणपुरंगमत्तादो । = वासुदैव (नारायण) की उत्पत्तिमें उससे पूर्व मिथ्यात्वके अविना-भावी निदानका होना अवश्यभावी है । (प. पु./२०/२१४)
- प.पु./२०/२१४ संभवन्ति बलानुजाः ।२१४। = ये सभी नारायण वलभद्रके छोटे भाई होते हैं।
- त्रि. सा./८३३ ···किण्हे तित्थयरै सोवि सिज्भेदि ।८३३। = (अन्तिम नारायण) कृष्ण आगे सिद्ध होंगे।
- दे, शलाका पुरुष/१ दो नारायणोंका परस्परमें कभी मिलाप नहीं होता। एक क्षेत्रमें एक कालमें एक ही प्रतिनारायण होता है। उनके शरीर मूँछ, दाढ़ीसे रहित तथा स्वर्ण वर्ण व उत्कृष्ण संहमन व संस्थानसे युक्त होते हैं।
- प. प्र./टी./१।४२/४२/६ पूर्वभवे कोऽपि जीवो भेटाभेटरत्नत्रयाराधनं कृत्वा विशिष्टं पुण्यबन्धं च कृत्वा पश्चादञ्चानभावेन निदानबन्धं करोति, तदनन्तरं स्वर्गं गत्वा पुनर्मनुष्यो भूत्वा त्रिखण्डाधिपति-वांसुदेवो भवति । च अपने पूर्व भवमें कोई जीव भेदाभेद रत्नत्रयकी आराधना करके विशिष्ठ पुण्यका बन्ध करता है। पश्चाद अज्ञान भावसे निदान बन्ध करता है। तदनन्तर स्वर्गमें जाकर पुनः मनुष्य होकर तीन खण्डका अधिपति वासुदेव होता है।

५. नव प्रतिनारायण निर्देश

१. नाम व पूर्वमव परिश्वय

		ξ.	नाम निर्दे	হা '	२. कई भव	पहिले	३. वर्तमान	भवके नगर
क क	म. पु /सर्ग श्लो.	. पु /सगे श्लो. १. ति. म./४/१४१३. ४१६ २. त्रि. सा./८२५ ३. प. पु./२०/२४४-२४४ ४. ह. पु./६०/२६१-२६२ ५. म. पु./पूर्ववत		: // //	ਸ. ਯੂ./ਸੂ	र्भवत्	प. पु./२०/२४२-२४३ म. पु./पूर्ववेद	
		सामान्य	सं.	বিহীঘ	नाम	नगर	ч. у.	म. पु.
2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2	\$\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\	अश्वग्रीव सारक मेरक मधुकैटभ निशुम्भ बलि प्रहरण रावण जरासंघ	*********	मधु मधुसूदन मधुक्री इ निशुम्भ प्रह्लाद नलीड दशानन	विशाखनन्दि विन्ध्यशक्ति चण्डशासन राजसिंह मन्त्री तरदेव	राजगृह मलय श्रावस्ती मलय सारसमुच्चय	असका मिजयपुर नन्दनपुर पृथ्वीपुर हरिपुर सूर्यपुर सिंहपुर लंका राजगृह	अलका भोगवर्ध न रहनपुर बाराणसी हस्तिनापुर चक्रपुर मन्दरपुर लंका

२. वर्तमान सव परिचय

	<u>,, , , , , , , , , , , , , , , , , , ,</u>	४ तोर्थ		८ इारीर	-	६. उरसे	ध	9.	आयु	'८, निर्गमन
काम	म. पु./सर्ग प्रलो.		ति, पः/	/४/१३ ७ १		१, ति. प,/१ २, त्रि, सा./ ३, ह. पु,/६०	८२६	१ ति. म./१ २ त्रि. सा./ ३ ह. पु./ई ४ म. पु./पू	प्र _{वे} ० ०∫३२०-३२१	ति, प./४/१४३६ त्रि.सा./८३९-८३३ म, पु./पूर्वबन्
			वर्ण	संस्थान	संहनन	सामान्य	वि रो ष	सामान्य	विशेष	~ ~ ~
* * * * * * * * * * * * * * * * * * *	\$\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\	दे. तीय कर	रि. प.—स्वर्णवर्ण, म. पु. – ×	समचतुरस संस्थान	वज्र ऋषभ नाराच संहनन	धनुष ८० ६० ६० ४० ४४ २६ २२ १६ १०	ह- पु. ४० ६६ २६	वर्ष. ८४ लाख ७२ ,, ६० ,, १० ,, १० ,, ६४,००० १२,०००	म. पु. १४०००	नर्क सप्तम षष्टम षष्ठ (३ सप्तम) षष्ठ " पंचम चतुर्थ नृतोय

३. प्रति नारायणीं सम्बन्धी नियम

ति. प./४//१४२३ एदे णवपडिसत्तु णवाव हरथेहिं वासुदेवाणं । णिय-चक्केहि रणेसुं समाहदा जंति णिरयखिदि ।१४२३। चये नौ प्रति-शत्रु सुद्धमें नौ वासुदेवोंके हाथोंसे निज चक्रोंके द्वारा मृत्युकी प्राप्त होकर नरक भूमिमें जाते हैं।१४२३।

वे, शलाका पुरुष/१/४-६ दो प्रतिनारायणोंका परस्परमें मिलान नहीं होता। एक क्षेत्रमें एक कालमें एक ही प्रतिनारायण होता है। इनका शरीर दाढ़ी मूँछ रहित होता है।

६. नव नारद निर्देश

१. वर्तमान नारदोंका परिचय

ĺ	१. नाम	निर्देश	२, ख	रसेध	₹.	आयु	४.वर्गनाकाल	४. निर्गमन १ ति. प./४/१४७० २ त्रि. सा./-३४ ३ ह. पु./६०/४४७	
帝 邦	१ ति. प./४/१४ २ ति, सा./२३४ ३ ह. प्र./१०/४४	}	ति. प./४ /१४७१	ह. पु./६० /४४६	१, ति. व./१ २,€. पु./ईः	०/ <i>६४६</i> ४/ <i>१४७१</i>	त्रि. सा./न्दर् ह.पु./६०/५४६		
}					१	२	~ ~	सामान्य	विशेष
* * * * * * * * * * * * * * * * * * * *	भीम महाभीम रुद्र महारुद करल महाकाल दुर्मुख नरकमुख अधोमुख	ह. पु. चतुर्मुख नरवक्त्र उन्मुख	उपदेश उपलक्ष नहीं है	तात्कानिक नारायणोंके दुल्य है	उपदेश उपलब्ध नहीं है	तात्कालिक नारायणींके तुख्य है	लारायणीके समयमें ही होते हैं	नारायणॉबर्य सरकर्गतिको प्राप्त होते हैं	महाभव्य होनेके कारण परम्परा मक्त होते हैं।

२. नारदों सम्बन्धी नियम

ति. प्/४/१४७० रुद्दावइ अइरुद्दा पावणिहाणा हवं ति सब्वे दे। कलह
महाजुरुफपिया अधोगया बामुदेव व्व ।१४७०। च्ये सब अतिरुद्ध होते
हुए दूसरोंको रुसाया करते हैं और पापके निधान होते हैं। सभी
नारद कलह एवं महायुद्ध प्रिय होनेसे बामुदेवके समान अधोगति
अर्थात् नरकको प्राप्त हुए ।१४७०।

प. पु./१९/१९६-२६६ ब्रह्मरुचिस्तस्य कुर्मी नाम कुटुम्बिनी (११७) प्रस्ता हारकं शुभं ।१४६। यौवनं चः ।१८६। आप्य क्षुक्तकचारित्रं जटामुकुटमुद्रह्न् । ।६६६। कन्दर्पकौरकुच्यमौल्य्यात्यन्तवस्यलः ।१६६। जवाचिति मरुश्ववच किं प्रारम्धिमहं नृप। हिंसच् । प्राणिवर्गस्य द्वारं । ।१६६। नारदोऽपि ततः कांश्चिन्मुव्यमुद्द्रगरताडने : । ।१६७। अत्वा रावणः कोपमागतः । । । । । व्यमोचयन् द्यायुक्ता नारदं वात्रपञ्जरात् । १६६। च्ब्रह्मरुचि ब्राह्मणने तापसका वेश धारण करके इसको (नारदको) उरपन्न किया था। यौवन अवस्थामें ही क्षुत्वकके व्रत लिये । १६३। कन्दर्प व कौरकुच्य प्रेमी था। १६६। मरुखान् यद्यमें शास्त्रार्थं करनेके कारण (१६०) पीटा ग्या। १६६। रावणने उस समय रक्षा की। १६६। (ह. पु./४२/१४-२३) (म. पु./६७/३४१-४४१)।

त्रि. सा./८३४ कलहिष्यमा कदाइंधम्मरदा वासुदेव समकाला। भव्वा णिरयगिंद ते हिंसादोसैण गच्छांति। ५३४। = ये नारद कलह प्रिय हैं. परन्तु कदाचित् धर्ममें भी रत होते हैं। वासुदेवों (नारायणों) के समय में ही होते हैं। यद्यपि भव्य होनेके कारण परम्परासे मुक्तिको प्राप्त करते हैं, परन्तु हिंसादोषके कारण नरक गतिको जाते हैं।८३४। (ह. पु./६०/५४६-५४०)।

७. एकादश रुद्र निर्देश

१. नाम व शरीरादि परिचय

	१- नाम नि	देश	تق	३, उत्सेध	४- आयु		
क्रम	१ ति. प./४/१ ५२०-५२१ २ त्रि. सा./¤३ ३ ह. पू./६०/५	Ę Į	3. तीर्थ	१ ति, प./४/- १४४४-१४४५ २ त्रि, सा./८३= ३ ह, पु./६०/-	१ ति. प./४/- १४४६-१४४७ २ त्रि. सा./५३६ ३ ह. पु./६०/		
				१३४-१३८	५३६-५४५		
6 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5	भी मावलि जितशत्रु रुद्ध वैश्वानर सुप्रतिष्ठ अचल पुण्डरीक अजितंधर अजितनाभि पोठ	त्रि, सा, विद्यालनयन बल जितनाभि	दे. तीर्थं कर	१०० थनुष १०० " " १०० " " " १०० " " " " " " १०० " " " "	द सा		
११	सात्यकि पुत्र			७ हाथ	4६ वर्ष		

२. कुभार काक आदि परिचय

	१. कुमार काल	६. संयमकाल	७ तप भंगकाल	≂. निर्ममन
!	१ ति. प./४/१	४४६-१४६७]	१ ति. प./४/
	२ ह. 9./६०/६	३ ६-५४५		१४६⊏
क्रम			[;	२ त्रि. सा./५४०
			Ì	३ ह. पु./६०/-
	<u> </u>		!	५४ ६-५४७
8	२७६६६६ पूर्व	२७६६६८ पूर्व	२७६६६६ पूर्व	सप्तम नरक
२	२३६६६६ "	२३६६६६ 🖘	२३६६६६ %	37 99
ą	६६६६ "	६६६६	\$\$\$\$\$	षष्ठ ७
8	22323 "	\$\$\$\$% ²	३३३३३ ु.,	93 23
ķ	२५ लाख वर्ष	२⊏ लाख वर्ष	२८ लाख वर्ष	. u 17
ŧ	30 " "	२० " "	२० " "	n 11
او	१६६६६६६ वर्ष	१६६६६६ वर्ष	१६६६६६६ वर्ष	y) 1)
1	(ह. पु. १६ ६६ -	(ह. पु. १६६६-	i	
	६ ⊏ वर्ष)	६६६ वर्ष		
۳ ا	१३३३३३३ वर्ष	१३३३३३४ वर्ष	१३३३३३३ वर्ष	पंचम् "
3	656646	६६६६८ ,,	44444 ,	चतुर्थ "
	(ह. पु. ६६६६-	(ह. पु./६६६६-		
	ई८ वर्ष)	(६६ वर्ष)	j . i	
१०	३३३३३३ वर्ष	३३३३३४ वर्ष	३३३३३३ मूर्व	12 td
११	ও ধর্ম	३४ वर्ष	२ वर्ष	त्तोय "
		(इ.पु. २०वर्ष)	(ह. पु./३४ वर्ष)	
<u> </u>			<u> </u>	

३. रहीं सम्बन्धी कुछ नियम

ति, प./८/१४४०, १४४२ पीढो सच्चइपुत्तो अंगधरा तित्थकत्ति-सम-एम्रा । । १४४०। सक्ष्ये दसमे पुर्वे रुद्धा भट्टा तवाउ विसयत्थं। सम्मत्तरयणरहिदा बुड्डा घोरेम्रु णिरएमुं । १४४२। = ये ग्यारह रुद्ध अंगधर होते हुए तीर्थं कर्ताओं के समयों में हुए हैं। १४४०। सन् रुद्ध दशमें पूर्वका अध्ययन करते समय विषयों के निमित्त तपसे अष्ट होकर सम्यक्स्य रूपी रहनसे रहित होते हुए घोर नरकमें दूव गए । १४४२।

ह. पु.!६०/४४० · · · भूर्यसंयमभाराणां रुद्राणां जन्मभूमयः। च्चन रुद्रांके जीवनमें असंयमका भार अधिक होता है, इसलिए नरकगामी होना पडता है।

त्रि. सा./८४१ विज्ञाणुवादपहणे विष्ठुफला णह संजमा भववा । कदिचि
भवे सिर्फ्मित हु गहिबुज्भिय सम्ममहियादो ।८४१। —ते रुद्र
विद्यानुवाद नामा पूर्वका पठन होते इह लोक सम्बन्धी फलके भोक्ता
भए । बहुरि नष्ट भया है, अङ्गीकार किया हुआ संजम जिनका ऐसै
है। बहुरि भव्य है, ते प्रहण करके छोड़ा जो सम्यक्त्व ताके माहारम्यसे केतेइक पर्याय भये सिद्ध पद पार्वेगे।

८. चौबीस कामदेव निर्देश

१. चौबीस कामदेवींका निर्देश मात्र

ति. प /४/१४७२ कालेसु जिणवराणां चडवीसाणां हवं ति चडवीसा। ते बाहुबिलप्पमुहा कंदण्पा णिरुवमायारा ।१४७२। चचौबीस तीथँ -करोंके समयों में अनुपम आकृतिके धारक वे बाहुबिल प्रमुख २४ काम-देव होते हैं।

<. सोलह कुलकर निदेश १. यतमानकान्त्रिक कुळकरोंका परिचय

	1			_	-					-	-		_				,IC				-
. इ. पटरामी १. ति.म./४/गा.				स्वयप्रभा	यशस्यता	सुनन्दा	विमला	मनोहरी	यशोधरा	मुमति	_		10	श्रीमती	प्रभावती	सत्यः।	अमितमति	मरुदेवी		···	
			다. 규.	% %	₩ Ж	0 88	20 20 402,	\$ \$	888	333		30 my	30 30 30	868	888	۵ ۵ ۵	**				·
			हिद्दि संव २	१/१० पश्च	अमम	अटर	जुटित	कमस	मलिन	দ্ব	,	पद्मांग	कुमुद	कुमुद्गि	- महुत	न्युतांप	पव	१ करोड़ पूर्व	- 		
	İ	प्रमाण	₩.	₩ 1		:	÷	£	=	۲.		f	=		F	:	=	:			
र खायु १. ति.प./४/गा, १. ति. सा./७६६ ३. म.प्र./प्रुवंत्रत	8. tā,a,/४/६०२-६०३ ६. ह.मु./७/१४८-१७०		इष्टिं सं	hab 08/8	003/3	160000	1/60,000	१/रसाख्	8/80 " "	M		१/१०करोड्ड "	8/600	\$/\$000 th "	€/ €0,000 mm	१/१ला. क.,	8/80	\$/800	किंचिट्रन १ पहय		
or or or or	25 3√ 25 160		ति. य	82.8	≫ ***	880	38 88	% %	≫ ≫	30 34 13		> 10	200	000	30%	828	88	888		1	↑
७. जन्मान्तरात . ति.प./४/गा. . त्रि.सा./७६७		તિ. વ.		पत्य, शेष में	१/८० पस्य	11 005/3	1/5000	8/E0,000	१/≍ लाख ,,	8/40 ., ,,		१/८ करोड़ "	07/3	8/coo " "	** " 00007/}	\$/ C0000 ++ #	१/८ ला. " "	{/€0 " " "	१/द पहरा		ı
o. जन्माम्त्रसा १, ति.प./४/गा. २, त्रि सा./७१७		 -	_			~ ~	262	≯%¢	हे जे क	9.3% 8	•	\$.	≫ ₩ ₩	% ₩	ž	% %	32%	22		3	ति
६, उत्सेष १, दि.प./४/गा. २, त्रि.सा /०६६ ३, इ.प्र./६०/९७९-	१७२ ४. म.षु /पूर्वश्रद			१८०० म०	\$300 tt	2000	* ***	" ০ গূঁৱ	350	1000		: *0\$ *	m,	* * * * * * * * * * * * * * * * * * *	£00;	* * * * * * * * * * * * * * * * * * * *	: 0) X	4.3.k		् देखोतीर्थकर	देखो चक्रभती
के कि के कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि	>> 표 한명		ति. म	% %	×	888 888	%	30 30 30	8 3 8	ს ჯ	•	o~ ;	X TO	S S S	3 500	≫ n	9 ₹8	3 38 88		l	
k. anf k, fa.a./y/m, 2, fa.m./oec 3, g.y./o/ko8-eou				×.	स्वण	•	;	=	×	स्वर्ण		÷,	स्यणं *	‡	**	;	*	. =		1	↓
१. वर्ण १. ति.प./४/ २. त्रि.सा./७ ३. ह.यु./७/१			ъ. Р.		နို	0 %	>> >> >> 402.			ध १		-	*W*	\$0.5 80.5	30 m	چ پې	03×	3 32			
부부경환·정 홍아상(의)	ĝ 'ĝ					_	1.8	<u>az</u>	Ēψ.	FF3	4 4	<u>. [2]</u>	<u></u>	t b Ì	5 L	βf	444			_~~	
1./9/803 H	. jž						ŀ,	4 4 A	Ę Į	şFI₁ -	\$≯j±	P)	42	Ъ	₽ f	k E					· · · · · ·
w. 15 oe9-459/e	l,ÿ.≸			•	١	ğ	eĥ!	<u> </u>	ÞŖ	èg 1	€ €	3L d	5年	<u> </u>	12	ηE	1 <u>P</u> 1	ık		•	· <u> </u>
१. नाम निर्देश १. ति.प./४/गाथा २. ति.स.।,/७६२-९६३ १. प.मु./३/७५-६५	. ह.पु./७/१२५-१७० म.पु./पूर्वयत			प्रतिश्राद	सन्मीत			सीमंकर	सीमंधर	विमह	बहिन	ं चक्षुरमात्	यशस्त्री	अभिचन्द्र	बन्द्राभ	मरुद्वेव	प्रसेनजित्	नाभिराय		अवभर	भरत
त्र माम स्याप्त मिस्स्य स्थाप्त माम	र. म. म. जुन जुन		다. 다.	200	% %	× × × × × × × × × × × × × × × × × × ×	30 30 30 30	288	30 37 107	9) %	-	0 0 0 0 0	**************************************	20°	*§%	స్ట	#2% %	838			
テキテ −3۶۶ . f破 3 /5/.			9	£9-1-7-3	2 C	100	\$04-k08	}}}-ao}	484-886	384-388			25/-358			188-388		848-863		434	
# #			,		P (1634	D a	-34	w	9	,	J	w	2	~	8	50	\$ \$		*	40

नोट--१, पय पुराण में विमलवाहम नाम नहीं दिया है और यशस्वीसे आगे 'बिपुल' नाम देकर कमी पूरी कर दी है।

२. मे. पु. की अपेशा ऋषम व भरतकी गणना भी कुलकरों में करके उनका प्रमाण १६ दर्शाया गया है।

* त्रि.सा, की अपेक्षा नं.८व १ का वर्ण श्याम तथा सं. १९ व १३ का धवल है। ह.पु. की अपेक्षा ८,६,१३ का श्याम तथा सं. ११ का धवल है।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

			१०- नाम	११. दण्ड विधान		१२. तारकालिक परिस्थिति	१३. उपवेश
新 o	दि. प./४/मा.	म, पु./३/१खो.	प्रमाण देखो पीछे	१.ति.म्./४/४६२-४७४ २. त्रि. सा./४६८ ३. ह.पु./७/१४१-१७६ ४. म. पु./पुर्वेवत्		१. ति. प./पूर्ववत् २. त्रि. सा./७१६-=०२ ३. प. पु./३/७५-== ४. ह. पु./७/१२५-१७० ४. म. पु./पूर्ववत	१. ति. प./पूर्ववत् २. त्रि. सा./७६६-८०२ ३. प. पु./३/७५-८८ ४. ह. पु./७/१२५-१७० ५. म. पु./पूर्ववत्
?	8२ ३–४२ 	\$3- 94	प्रतिश्रुति	ति.प./४६२ हा.		चन्द्र सूर्यके दर्शनसे प्रजा भयभीत थी	कारण अब दीखने लगे हैं। यह पहले भी थे पर दीखते न थे। इस प्रकार उनका परिचय देकर भय दूर
२	४३२-४३८	७ई-≂१	सन्मति	,,		तेजांग जात्तिके कक्ष बृक्षांका लोप । अन्धकार व तारागणका दर्शन ।	करना। अन्धकार व ताराओंका परिचय देकर भय दूर करना।
∌	884-883	६०-१०१	क्षेमंकर	17		व्याधादि जन्तुओं में क्रूरताके दर्शन।	क्रूर जन्तुओंसे बचकर रहना तथा गाय आदि जन्तुओंको पालनेकी शिक्षा।
૪	४४ ६–४४७	१०२-१०६	क्षेमन्धर	,,	1	ठयाधादि द्वारा मनुष्योंका भक्षण ।	अपनी रक्षार्थ दण्ड आदिका प्रयोग करनेकी शिक्षा।
ا پو	४४१-४५३	१०७-१११	सीमंकर	ति.प./४७४	İ	करुप वृक्षींकी कमीके कारण उनके स्वामित्व पर परस्परमें भगड़ा।	कल्प बृक्षोंकी सीमाओंका विभाजन ।
ŧ	४४५–४५६	१ १२–११६	सीमंधर	1 1	बनकार	वृक्षोंकी अत्यन्त हानिके कारण कलहमें वृद्धिः।	वृश्रोंको चिहित करके उनके स्वामित्वकाविभाजन।
છ	४५६	११६-११६	विमलवाहन 		ख के 	गमनागमनमें बाघाका अनुभव ।	अश्वारोहण व गजारोहणकी शिक्षा तथा वाहनौंका प्रयोग ।
۷	४६२−४६३	१२०-१२४	चक्षुष्माच्	15	य; मा≕ मतकर; षिक्≂ बिक्कार	अनसे पहले अपनी सन्तानका मुख देखनेसे पहले ही माता-पिता मर जाते थे। पर अन सन्तानका मुख देखनेके पश्चात् मरने लगे।	सन्तानका परिचय दे कर भय दूर करना।
8	४६७-४६=	१२५-१२=	यशस्वी	,,	हाय;	बालकोंका नाम रखने तक जीने लगे।	
१०	<i></i>	१२ ६- १३३	अभिचन्द्र	, l	[일 1일 1일 1일 1일 1일 1일 1일	मासकों का बोलनाव खेलना देखने (सक जीने लगे।	बालकोंको बोलना व खेलना सिखानेको शिक्षा।
११	४७=-४८१	१३४-१३=	चन्द्राभ	त्रि.सा. हा, मा, धिक्		पुत्र-कलत्रके साथ सम्बे काल तक जीवित रहने संगे। शीत वायु चलने लगी।	सूर्यकी किरणोंसे शीत निवारणकी शिक्षा।
१२	४८४-४८६	१३६-१४५	मरुह्देव	11		मेघ, वर्षा, विजली, नदी व पर्यंत आदिके दर्शन।	नौका व छातोंकी प्रयोग विधि तथा पर्वतपर सीढ़ियाँ बनानेकी शिक्षा।
	४६१	१४६-१५१	प्रसेनजित्	,,		बालकोंके साथ जरायुकी उत्पत्ति।	जरायु दूर करनेके उपायकी शिक्षा।
	856-400	१ ५२ [–] १६३	नाभिराय	**1		१. नाभिनाल अस्यन्त सम्भा होने लगा। २. कलपद्रुमोंका अस्यन्त अभाव। औषधि, घान्य व फलों आदिकी उत्पत्ति।	 नाभिनाल काटनेके उपायकी शिक्षा। औषधियों व धान्य आदिकी पहचान व विवेक कराया तथा उनकाव दूध आदिका प्रयोग करनेकी शिक्षा दी।
१५ १६			ऋषभदेव भरत	**		स्व जात धान्यादिमें हानि । मनुष्योंमें अविवेककी उत्पत्ति ।	कृषि आदि षट् विद्याओं की शिक्षा। वर्ण व्यवस्थाकी स्थापना।

२. कुलकरके अपर नाम व उनका सार्थक्य

ति. प./४/६०७-६०६ णियजोगसुदं पिढदा खीण आउम्हि ओहिणाण जुदा। उप्पिज्ञानूण भोगे केई णरा ओहिणाणेणं १६०७। जादिभरणेण केई भोगमणुस्साण जीवणोवायं। भासंति जेण तैणं मणुणो भिणदा सुणिदेहि १६००। कुन्दारणादु सब्वे कुन्त शरणामेण भुवणिवन्दादा। कुन्त करणिम य कुन्त जा कुन करणामेण सुपिछ्जा। १०६। = अपने योग्य श्रुतको पढकर इन राजकुमारोँ मेंसे कितने ही आयुके श्रीण होनेपर अवधिज्ञानके साथ भोगभूमिमें मनुष्य उत्पन्न होकर अवधिज्ञानसे और कितने ही जाति स्मरणसे भोगभूमिज मनुष्योंको जीवनके उपाय बत्ताते हैं, इसलिए सुनोन्द्रोंके द्वारा ये मनु कहे गये हैं १६०७-६०८। ये सब कुलोको धारण करनेसे कुन्तधर और कुनोंके करनेमें कुन्नत होनेसे 'कुन्तकर' नामसे भी लोकमे प्रसिद्ध हैं १६०६। (म. पु./ ३/२१०-२१९)।

३. पूर्वभव सम्बन्धी नियम

ति. प./४/५०४ एदे चउदस मणुओ पदिसुदिपहुदी हु णाहिरायंता । पुञ्य भविम विदेहे राजकुमारा महाकुले जादा ।५०४। = प्रतिश्रुतिको आदि लेकर नाभिराय पर्यन्त ये चौदह मनु पूर्वभवमें विदेह क्षेत्रके भीतर महाकुलमें राजकुमार थे ।५०४।

४. पूर्वमवर्मे संयम तप आदि सम्बन्धी नियम

ति. प /४/५०६-५०६ कुसला दाणादीसुं संजमतबणाणवंतपत्ताणं । णिय-जोगा अणुद्राणा मह्वअज्जवगुणेहिं संजुत्ता १५०५। मिच्छत्तभावणाए भोगाउं बंधिकण ते सन्वे। पच्छा लाइयसम्मं गेण्हंति जिणिदचलण-मूलिम्ह १६०६। मने सब संयम तप और झानसे युक्त पात्रोंके लिए दानादिकके देनेमें कुशल, अपने योग्य अनुष्ठानसे युक्त, और मार्दव, आर्जन गुलोंसे सहित होते हुए पूर्वमें मिध्यास्त्र भावनासे भोगभूमिन की आयुको बाँधकर पश्चात् जिनेन्द्र भगवादके चरणोंके समीप क्षायिक सम्यवस्वको ग्रहण करते हैं १६०६-६०६। (त्रि. सा./८१४)।

प. उत्त्वति व संख्या आदि सम्बन्धी नियम

ति. प./४/११६६ वाससहस्से सेसे उप्पत्ती कुलकराण भरहम्मि । अथ चोइसाण ताणं कमेण णामाणि बोच्छामि । म्हस कालमें (पंचम-काल प्रारम्भ होनेमें) १००० वर्षोंके शेष रहनेपर भरत क्षेत्रमें १४ कुलकरोंकी उत्पत्ति होने लगती हैं । (कुछ कम एक प्रयक्ते प्वें भाग मात्र तृतीयकालके शेष रहनेपर प्रथम कुलकर उत्पन्न हुआ। — दे० शलाका पुरुष/१।१)।

म. पु./३/२३२ तस्मात्राभिराजश्चतुर्देशः। वृष्भो भरतेशश्च तीर्थचक-भृतौ मन् ।२३२। चौदहर्षे कुलकर नाभिराय थेः इनके सिवाय भगवान् ऋषभदेव तीर्थंकर भी थे और मनु भी, तथा भरत चक्रवर्ती भी थे और मनु भी थे।

त्रि. सा./७१४ ... खइयसंदिट्ठी । इह खत्तियकुत्तजादा केइउजाइन्भरा ओही ।७१४। = क्षायिक सम्यग्टिष्ट जीव सुलकर उपजते हैं। और भी श्रत्रिय कुत्तमें जन्मते हैं। (यहाँ क्षत्रिय कुत्तका भावीमें वर्तमान का उपचार किया है।)। ते कुतकर केइ तौ जाति समरण संयुक्त है, और कोई अवधिज्ञान संयुक्त है।

१०. भावि शलाका पुरुष निर्देश

कुलकर चक्रवर्ती व बळदेव

		१. कुत्तकर		२. चक्रवर्ती		३. वसदेव	३. बलदेव				
झम	१. ति. प./४/१५७० २. ह. पु./६०/४५५ ३. म. पु./७६/४६३-	- ૯૬૭		१. ति. प./४/१६८७-१६८८ २. ति. सा./८७७-६७५ ३. ह. यु./६०/४६२-६६१ ४. म. यु./७६/४८२-४८४	१. ति. प./४/१४=६-१४६० १. त्रि. सा./८७=-५०६ ३. ह. पु./६०/४६=-४६६ ४. म. पु./७६/४=६-४=६						
	सामान्य	प्रमाण सं०	विशेष	で (な () × ()	सामान्य	प्रम ण सं.	विशेष				
१	कनक			भरत	चरद						
२	कनकप्रभ			दीर्घदन्त	मह।चन्द्र						
ş	कनकराज			मुक्तदन्त	चन्द्रधर	8	चक्रधर				
8	कनकध्यज			(३ जनमदत्त) गूढदन्त	बरचन्द्र	₹,\$,8	हरिचन्द्र ×				
ķ	कनकपुंख	२,३	। अञ्चलपंगव	श्री षेण	सिंहचन्द्र						
Ę	न तिन ँ			श्रीभृति	हरिचन्द्र	२,४	वरचन्द्र				
છ],, ਸ਼ਮ			श्रीकान्त	श्रीचन्द्र	2,8	पूर्ण चन्द्र				
4	,, राज			पद्म	पूर्णचन्द्र '	२	शुभचन्द्व				
3	,, হয়জ			महापद्म	मुचन्द्र	٦,٧	श्रीचन्द्र				
१०	,, पुंख	२,३	निलिन पंगव	चित्रवाहन		3	बाल च म्द्र				
११		₹	पदा	विमल व≀हन	ļ		1				
१२	पदाप्रभ			(४ विचित्रवाहन)		ļ	1				
१३	पद्मराज			अरिष्टसेन							
\$8	पद्मध्वज						हु, पु. में १ वाँ वरवन्द्र				
१ <u>१</u> १६	पद्मपुंख	२३	पद्मपुंगत	नाम नहीं दिया	है। अन्तमें बालचन्द्र	नाम देकर कमी	पूरी कर दी है।				
१६]	, \$	महापदा								

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

Jain Education International

२. मारायणादि परिचय

	, <u>, , , , , , , , , , , , , , , , , , </u>	नारायण		प्रति नारायण	रुद्र
荫和	१ ति. प्./४ १ ति. सा / १ ह. पु./६० ४ म. पु /७६	502-55 1455-45	9	ति.प./४/१४६२ २ त्रि.सा./८८० १ ह. पु./६०/- ४६६-४७०	ह. पु/६०/- ५७१ - ५७२
	सामान्य	प्रमाण सं.	विशेष	•	
m A Gamer to Adams	नन्दी नन्दिभित्र नन्दिषेण नन्दिश्वृति बल महाबल अतिबल त्रिपृष्ठ द्विपृष्ठ	क्ष त्य त	नन्दिन नन्दि भूतिक अचल	श्रीकण्ठ हरिकण्ठ नीलकण्ठ अश्वकण्ठ सुकण्ठ शिखिकण्ठ अश्वधीव हयधीव मयूरधीव	प्रमद संमद हर्ष प्रकाम कामद भव हर मनोभव मार काम
	नोड-ह. पु कुछ अन्तर			রা য় রা য়ুর	

शलाका निष्ठापन—Log filling (ज. प्र./प्र. १०८)।

शल्य-1. शल्य सामान्यका सक्षण

स. सि./१/८/३५६/६ शृणाति हिनस्तीति शक्यम्। शरीरःनुप्रवेशि काण्डादि प्रहरणं शक्यमिव शक्यं यथा तत् प्राणिनो वाधावरं तथा शारीरमानसवाधाहेतुस्वात्कर्मोदयिकारः शब्यमिरयुपचर्यते । = 'शृणाति हिनस्ति इति शब्यम्' यह शक्य शब्द की व्युत्पत्ति है। शक्यका अर्थ है पीड़ा देनेवाली वस्तु। जन शरीरमें काँटा आदि चुभ जाता है तो वह शब्य कहलाता है। यहाँ उसके समान जो पीड़ा-कर भात्र वह शब्य अब्देसे लिया गया है। जिस प्रकार काँटा आदि शक्य प्राणियोंको बाधावर होती है उसी प्रकार शरीर और मन सम्बन्धी बाधाका कारण होनेसे कर्मोदय जनित विकारमें भो शब्यका उपचार कर लेते हैं। अर्थात् उसे भी शब्य कहते हैं। (रा. वा / १/८/१-२/४४/२६)।

२, शल्य के भेद

भ, आ /पू./१२६-१३१/०१४-७११ मिच्झादंसणसक्तं मायासक्तं णिदाण-सक्तं च । अहमा सक्तं दुनिहं दृव्वे भावे य नौध्व्वं १६३६। तिविहं तु भावसक्तं दंसणणाणे चरित्तजोगे य । सच्चित्ते य मिस्सगे वा वि दंक्विम्म १६६१ - १. मिध्यादर्शनशक्य, मायाशक्य और निदान-शक्य ऐसे शक्यके तोन दोष हैं। (भ. आ./पू./१२१४/१२१३); (स. सि./७/१८/३४८/८); (रा. वा./७/१८/१४४/१३); (भ. आ./वि /-२६/८८/२४); (द्र. सं/टी./४२/१८३/१०)। २. अध्वा द्रव्य शक्य और भःवशक्य ऐसे शक्दके दो भेद जानने चाहिए १६६८। (भ. आ./वि./ २६/८८/२४)। ३. भाव शक्यके तीन भेद हैं—दर्शन, ज्ञान, चारित्र और योग । द्रव्य शक्यके तीन भेद हैं—सिचत्रशक्य अचित्रशक्य और मिश्रशक्य १६३६।

शल्यके भेदोंके लक्षण

- भ. आ./वि./२५/२८/२४ मिथ्यादर्शनमायानिदानशस्यानी कारणं कर्म द्रव्यशस्यं। = मिथ्यादर्शन, माया, निदान ऐसे तीन शक्योंकी जिनसे उत्पत्ति होती है ऐसे कारणभूत कर्मको द्रव्यशस्य कहते हैं। इनके उद्यसे जीवके माया, मिथ्या व निदान ऋप परिणाम होते हैं वे भावशस्य हैं।
- म. आ /वि./१३१/७५६/१३ दर्शनस्य शब्यं शक्कांवि । ज्ञानस्य शब्यं अकाले पठनं अविनयादिकं च । चारित्रस्य शब्यं समिति—गुण्योर-नादरः । योगस्य-असंयमपरिणमनं । तपसप्रचारित्रे अन्तर्भाव-विनस्या तिविहमित्युक्तम् । अचित्त द्रव्यशब्य दासादि । अचित्त द्रव्यशब्यं सुनणिति । अचित्त द्रव्यशब्यं सुनणिति । अचित्त अति अविनयादिकं करना ज्ञानके शस्य हैं । अकालमें पढ़ना और अविनयादिकं करना ज्ञानके शस्य हैं । समिति और गुप्तियोमें अनादर रहना चारित्रस्थ हैं । असंयममें प्रवृत्ति होना योगशस्य हैं । तपश्चरणका चारित्रमें अन्तर्भाव होनेसे भावशब्यके तीन भेद वहे हैं । दासादिकं सचित्त द्रव्य शस्य है , सुनणि वगैरह पदार्थ अचित शस्य हैं और धामादिकं मिश्र शस्य है ।
- द्र. सं./टी./४२/१०३/१० महिरङ्गमकवेषेण यक्कोकरञ्जनां करोति तन्मायाशक्यं भण्यते । निजनिरञ्जनिन्दींषपरमारमैयोपोदेय इति रुचिरूपसम्यन्द्वाद्विलक्षणं मिश्याशक्यं भण्यते । ... रुष्टभुतानुभूत-भागेषु यन्नियतम् निरन्तरम् चित्तम् ददाति तन्निदानशरूयमभि-धीयते । म्यह जीव वाहरमें नगुले जैसे वेषको धारणकर, लोकको प्रसन्न करता है, वह माया शक्य कहलाती है। अपना निरंजन दोष रहित परमात्मा ही उपादेय हैं। ऐसी रुचि रूप सम्यवस्थते विलक्षण मिथ्याशक्य कहलाती है। ... देखे, सुने और अनुभवमें आये हुए भोगों में जो निरन्तर चित्तको देता है, वह निदान-कृष्य है। और भी -- दे० वह वह नाम।

४. बाहुबिकिजीको भी शस्य थी

- भा. पा./मू./४४ देहादिचत्त संगो माणकसःएण कलुसिओ धीर । अत्ता-वणेण जादो बाहुबली कित्तियं कालं ।४४। = बाहुबलीजीने देहादिक-से समस्त परिग्रह छोड़ दिया और निर्मन्थ पद धारण किया। तौ भी मान कषाय रूप परिणामके कारण कितने काल आतापन योगसे रहनेपर भी सिद्धि नहीं पायो ।४४।
- आः अनु ./१९७ चर्क विहाध निजदिशण माहुसंस्थं यस्त्र । व्लेशं तमाप किल माहुसती चिराय मानो .मनागिप हिंत महतीं करोति ।११७। अअपनी दाहिनी भुजापर स्थित चक्रको छोड़कर जिस समय माहुसतीने दीक्षा धारण की थी उस समय उन्हें तपके द्वारा मुक्त हो जाना चाहिए था। परन्तु वे चिरकाल उस क्लेशको प्राप्त हुए। सो ठीक है थोड़ा सा भी मान वड़ी भारी हानि करता है।
- म. पु./१६/६ सुनन्दायां महाभाहुः अहमिन्द्रो दिवोऽप्रतः । च्युत्था बाहुबलीत्यासीत कुमारोऽमरसंनिभः ।६।
- म, पु /६६/रलोक श्रुतक्कानेन विश्वाक्षपूर्विविस्ता ।१४६।
 परमाविधमुल्लक्ष्यस सर्वविधिमासदस् । मनःपर्यस्रोधे च | संप्रापद्व
 विपुलां मित्रम् ११४७। संवित्तष्टोभरताधीशः सोऽस्मत इति येत्किल ।
 ह्वास्य हार्व तेनासीत तत्यूजाऽपेक्षि केवलम् ११८६। = आनम्द पुरोहितका जीव जो पहले महामाहु था सर्वाधिसिद्धिसे च्युत होकर सुनन्दाके वाहुबली हुआ १६। (अतः नियमसे सम्यग्दृष्टि थे) बाहुबलीकी दीक्षाके पश्चात् श्रुतज्ञान बढ़नेसे समस्त अंगों तथा पूर्वोको जाननेकी शक्ति बढ गर्या थी।१४६। वे अवधिज्ञानमें परमाविधको उक्तंधन वर सर्वाविधको प्राप्त हुए थे तथा मनःपर्य स्थानमें विपुलमित्र मनःपर्यय ज्ञानको प्राप्त हुए थे ११४७। (अतः सम्यग्दर्शनमे कभी

मताना युक्त नहीं)। वह भरतेश्वर मुक्तमे संवतेशको प्राप्त हुआ यह विचार बाहुवलीकें इदयमें विद्यमान रहता था, इसलिए केवलज्ञानने भरतको पूजाको अपेक्षां की थो ।१८६।

🛪 अन्य सम्बन्धित विषय

१. सशल्य मरण

—दे० मरण/१ ।

२. व्रती संशल्य नहीं होता ।

—दे० बती।

डास्य - पा. पु./सर्ग/श्लोक-यह एक विद्याधर था। कौरवींकी तरफ-से पांण्डवींके साथ लड़ाई की (१६/१९६) उस युद्ध में युधिष्ठिरके हाथों मारा गया (२०/२३६)।

सिक्सि निजयार्थकी उत्तर श्रेणीका एक नगर !— दे. विद्याधर । शास्ति हैं . कुरुबंशकी वंशावली सं०१ के अनुसार शान्ति पेणका पुत्र तथा भृत व्यासका पिता था । महाभारत कालसे बहुर्त पहले हुआ था । —दे. इतिहास/श्रेष्ट । २. कुरुवंशकी वंशावली स०२ के अनुसार पराशरका पिता था, तथा महाभारतके समय हुआ ।—दे. इतिहास /७/४ । ३. यादव वंशकी वंशावलीके अनुसार मथुराके राजा बीरका पुत्र तथा महासेनादि छः पुत्रोंका पिता था। —दे. इतिहास/७/१० ।

हातिनु -- यादव वंशकी वंशावलीके अनुसार कृष्णके भाई बलदेवका १४ वाँ पृत्र -- दे इतिहास१०/१०।

शांतभद्र —ई. स. ७०० में नियाय निन्दु। के टीकाकार एक बीद्ध मतानुयायी था। (सि. नि./३३ पॅ. महेन्द्र)।

शांति - दे. सामाधिक/१/१।

इांशि की ति १ निहसंघ मलारकारगण, मेमचन्द्र के शिष्य मेरुकी ति के गुरु। समय-न्शक, ३९७-१४२ (ई. ७०४-७२०)। वे. इतिहास/७/२। २, शान्तिनाथ पुराण के रचयिता एक कन्नइ कवि। समय – ई. १४१६। (ती./४/३११)।

शांति चक्रः पूजा-वे. पूजापाठ ।

शांति चक्र यंत्रोद्धार - दे. यंत्र।

शांतिनाथ — (म. पु./सर्ग/श्लोक — पूर्व भव सं. ११ में मगधदेशका राजा श्रीपेग था (६२/१४०) १० वें में भीगभूमिमें आर्य हुआ (६२/३६०) ६ वें में सीधर्म स्वर्गमें श्रीप्रभ नामक देव (६२/३०६) व वें में सीधर्म स्वर्गमें श्रीप्रभ नामक देव (६२/३०६) व वें में तैरहवें स्वर्गमें रिवचूल नामक देव हुआ (६२/४१०) छठेमें राजपुत्र अपराजित हुआ। (६२/४१२-४१३) पाँचवें में अच्युतेन्द्र (६३/२६-२०) चीथेमें पूर्व विदेहमें बजायुध नामक राजपुत्र (६१/३०-१६)तोसरेमें अध्यो प्रवेम्म अहिमन्द्र (६३/१४०-१४१) दूसरेमें राजपुत्र मेंवरथ (६३/१४०-१४३) पूर्वभवमें सर्वार्थ सिद्धिमें अहिमन्द्र था। वर्तमान भवमें १६वें तोर्थ कर हुए हैं। (६१/६०४) युगपत सर्वभव (६२/६०४) वर्तमान भव सम्बन्धी विशेष परिचय—है० तीर्थ कर/६।

शांतिनाथ पुराण-१. किन असम द्वारा (ई हन्द) द्वारा रिचित हिन्दी महाकाव्य । (तो./४/१३) । २. आ. श्रीधर (ई. ११३२) कृत अपभ्रंश काव्य । (तो./३/१८८) ३. सक्ककिति (ई. १४०६-१४४२) । कृत ३४७६ संस्कृत पद्म प्रमाण प्रत्य । (ती./३/३३०) । ३. सुमकीति (ई. श. १६ पूर्वार्ध) कृत अपभ्रंता काव्य । (ती./१/४१३) ।

शांति यंत्र —_{देः यन्त्र ।}

शांति विधान यंत्र—हे, यन्त्र ।

वार्षितागर आप दक्षिण देशके भोज ग्राम (बेलगाम) के रहने वाले थे। क्षित्रय वंशसे सम्बन्ध रखते थे। आपके पिताका नाम भीमगौड़ा और माताका नाम सत्यवती था। आपका जन्म आषाढ़ कु. ६ वि. सं. १६२६ को हुआ था। ६ वर्षकी अवस्थामें आपका विवाह हो गयाथा परन्तु छह माह परचात् हो आपकी परनीका देशन्त हो गया। पुनः विवाह न कराया। सं. १६७२ में आपने देवेन्द्रकी ति मुनिसे शुक्तक हः क्षा घारण वर ली। और सं. १६७६ में उन्हीं से मुनि दीक्षा ले ली। उस समय आपकी आग्रु ४७ वर्षकी थी। आपके चारित्रसे प्रभावित होकर आपकी शिष्य मण्डली बढ़ने लगी। यहाँ तक कि अब आप वि. १६८४ में ससंब सम्मद शिखर पधारे तो आपके संघमें सात मुनि और शुक्तक व महाचारी आहि थे। वर्तमान ग्रुगमें आपके समान कठोर तपश्चरण करनेवाला अन्य कोई हो सकेगा यह वात ह्रदय स्वीकार नहीं करता। आप वास्तवमें हो चारित्र चक्रवर्ती थे।

इस कलिकालमें भी आपने आदर्श समाधिमरण किया है यह बड़ा आश्चर्य है। भगवती आराधनामें उपिदष्ट मार्गके अनुसार आपके १२ वर्षकी समाधि धारण की। सं. २००० (ई. १६४३) में आपने भक्त प्रश्यास्त्र्यान बत धारण कर लिया और १४ अगस्त सन् १६४६ में आकर वुन्युलगिरि क्षेत्रपर इंगिनी बत धारण कर लिया।—१९ सितम्बर सन् १६४६ रविवार प्रातः ७ मजकर १० मिनटपर आप इस नश्वर देहको लागकर स्वर्ग सिधार गये।

२४ अगस्त १६४६ को आप अपने सुयोग्य शिष्य बीर सागर जी को आचार्य पद देकर स्वयं इस भारसे मुक्त हो गये थे। इस प्रकार आपका समय — बि. १६७६-२०१२) ई. १६९६-१६५६); (चा, सा./प्र./ म. श्रीलाल)।

शांतिसेन-१, पुन्नाट संघकी गुर्बावलीके अनुसार आप भी जयसेनके गुरु थे। समय - वि.श. (१०-१८)। (ती. /२/४१९)। - दे, इतिहास/७/८: २, लाड़ नागड़ संघकी गुर्वावलीके अनुसार आप धर्मसेनके शिष्य तथा गोपसेनके गुरु थे। समय-वि. १८० (ई० ६२३)-दे, इतिहास/७/१०।

जारियष्टकः — आ. पूज्यपाद (ई. श. ६) द्वारा रचित संस्कृतके ८ श्लोकोंमें निकद्ध शान्तिपाठ।

शांत्याचाये — १, सौराष्ट्र देशके वक्लभीपुर नगरमें इनके शिष्य जिनचन्द्रने इन्हें मारकर स्वेताम्बर संघकी स्थापना की । समय— त्रि. १३६-१५६ (ई, ७६-६६) विशेष — वे, स्वेताम्बर । २, ई. ६६३-११६ में जैन तर्क वार्तिक वृक्तिके क्ला जैनाचार्य ! थे। (सि. बि. प्र. ७६ पं महेन्द्र)।

शाकटायन न्यास-आ, प्रभावन्द्र (ई. १५०-१०२०) द्वारा संस्कृत भाषामें रिवत न्याय विषयक प्रनथः। (दे. प्रभाचनद्वः)

शाकल्य---एक अञ्चानवादी -वे, अञ्चानवाद ।

शांखां—School. (घृ./६/प्र, २९) ।

शासंकर आरण स्वर्गका प्रथम पटल व इन्द्रक दे, स्वर्ग/४/३।

शाप रा. वा./४/२०/२/२३६/१३ झापोऽनिष्टापादनम् । - अनिष्ट गःत कहना शाप है ।

शामकुंड -- आप तुम्बुद्धर आचार्यसे कुछ ही पहले हुए हैं। आपने वट् खण्डके प्रथम पाँच खण्डोंपर पद्धितिनामुकटीका लिखी है। समय-है, शा ३ का अवरार्ध । (व. खं. १/प्र. १ ध. L. Jain)।

शामिला यव मध्य--हे यव।

शालगुहा-भरत क्षेत्रका एक नगर-दे. मनुष्य/४।

शालिभद्र-भगवान् बीरके तीर्थमं अनुत्तरोपपादक हुए हैं।--दे, अनुत्तरोपपादक।

शास्त्रिवाहन १, भृत्य वंशके गोतमी पुत्र सातकणीका हो दूसरा प्रसिद्ध नाम शासिवाहन था। इसने वी, नि. ६०६ (ई. ५०) में शक वंशके अन्तिम राजा नरवाहनको परास्त करनेके उपलक्ष्यमें शक संवद चलाया था। यह भृत्य वंशका दूसरा राजा था। मगघ देशकी राज्य वंशावलीके अमुसार इसका समय—वी. नि. ६००-६४६ (ई. ७४-१२०) विशेष—दे, इतिहास/३/४)। २, शास्तिवाहन विक्रम संवद शक संवदको ही कहते हैं—दे, इतिहास/२/६तथा कोशा रंपरिशिष्ट।

ज्ञालि सिक्थ मत्स्य—हे, संमूर्च्छन/०।

शालमा वृक्ष --- देवकुरुमें स्थित अनादि शालमालीका वृक्ष । यह पृथिकीकायका है ।--दे, बृक्ष ।

शाल्मली वृक्षस्थल - देवकुरुमें स्थित एक भू भाग जिसमें शाल्मली वृक्ष व उसके परिवार वृक्षीका अवस्थान - दे. लोक/३/१३/

शाश्यत उपादान कारण—दे उपादान।

शास्त्रतासंख्यात--दे. असंस्थात ।

शासन — १. स्या. म./२१/२६३/७ आ सामस्टयेनातन्तधर्मिविशिष्टतया इायन्तेऽवयुद्धधन्ते जीवाजीवादयः पदार्था यया सा आज्ञा आगमः शासनं । — जिसके द्वारा समस्त रूप अनन्तानन्त धर्म विशिष्ट जीवाजीवादिक पदार्थ जाने जाते हैं वह आज्ञा या आगम शासन कहलाता है। २० आत्माको जानना समस्त जिन शासनका जानना है। — दे. श्रुतकेवली/२/६।

शासन दिवस--दे, महाकीर/२.

शास्त्र- १. कल्प शास्त्रादिका लक्षण

भ. आ./वि./१६०/३०७/१४ कक्ण्यते अभिश्वीयते येन अपराधानुक्तवो दण्डः स कल्पः ।

भ. आ./बि./६१२/०१२/० स्त्रीपुरुष (क्षणं निमित्तं, उसोतिर्झानं, छन्दः अर्थशास्त्रं, वेदां, लौकिकवैदिकसमयाश्च बाह्यशास्त्राणि। = १. जिसमें अपराधके अनुरूप दण्डका विधान कहा है उस शास्त्रको करूपशास्त्र कहते हैं। २. स्त्री पुरुषके लक्षणोंका वर्णन करनेवाले शास्त्रको निमित्तशास्त्र कहते हैं। ३. ज्योतिर्झान, छन्दशास्त्र, अर्थशास्त्र, वेद्यक शास्त्र, सौकिक शास्त्र, मन्त्रवाद आदि शास्त्रोंको बाह्यशास्त्र कहते हैं।

म् आ /भाषा./१४४ । ४ व्याकरण गणित आदि सौकिक शास्त्र हैं। १. सिद्धान्त शास्त्र वैदिक शास्त्र कहे जाते हैं, ई. स्याद्वाद न्याय शास्त्र व अध्यारम शास्त्र सामाधिक शास्त्र जानना।

२. शास्त्र छिलने व पहनेसे पूर्व षद् आवश्यक

ध. १/गा. १/७ मंगल-णिमित्त-हेउ परिमाणं णाम तह य कत्तारं। वागरिय छ प्पि पच्छा वश्खाणड सत्थमाइरियो। चमंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम, कर्ता इन छह अधिकारोंका व्याख्यान करनेके परचात आचार्य शास्त्रका व्याख्यान क्रें/१।

है. अन्य सम्बन्धी विषय

५ बास्त्रायंके विधि निषेध सम्बन्धी

१. शास्त्र सामान्यका रुक्षण व निषय — दे. आगम।
२. शास्त्र व देवपूजामें कथंचित समानता — दे. पूजा/३।
३ शास्त्रमें कथंचित देवत्व — दे. देव/1/१।
४ शास्त्र श्रद्धानका सम्यग्दर्शनमें स्थान — दे०सम्यग्दर्शन/11/१।

शस्त्रज्ञान--दे आगम ।

शास्त्रदान-दे. दान ।

शास्त्र वार्ता समुच्यय - श्वेताम्बराचार्य यशोविजय (ई. १६२८-१६८८) द्वारा संस्कृत भाषामें रचित न्याय विषयक प्रनथ ।

शास्त्रसार समुच्खय ─माधनिस्य योगीन्द्र(ई.श. १२ उत्तरार्ध) कृत १६६ संस्कृत सूत्र प्रभाण सिद्धान्त प्रनथ। (ती./१/२८६)।

शास्त्राभ्यास—दे. स्वाध्याय ।

शिकार--दे आखेट।

शिक्षा — भ. आ./वि./६०/१६४/६ शिक्षाश्रुतस्य अध्ययनिष्ठ शिक्षाश्रु हैनोच्यते। जिजबमणं कलुसहरं अहो य रत्ती य पढि-देश्विमिति। — शास्त्राध्ययन करना यह शिक्षा शब्दका अर्थ है। जिनेश्वरका शास्त्र पाप हरनेमें निपुण है अतः उसको दिनरात पढ़ना चाहिए।

शिक्षाकाल - दे. काल/१।

शिक्षा गुरु—हे, गुरु/१।

शिक्षा सत — भ. आ./म्./२०६२-२०६३ भोगाणं परिसंखा सामाहय-मितिहिसंविभागो य। पोसहिवधी य सक्वो चतुरो सिक्खाउ बुत्ताओ ।२०६२। आसुक्कारे मरणे अक्वोच्छिणणाए जीविदासाए। णादीहि वा असुक्को पच्छित्मसक्लेहणमंकासी ।२०६३। ⇒भोगोपभोग परिमाण, सामायिक, प्रोषधोपवास, अतिथि संविभाग ये चार शिक्षावत हैं ।२०६२। इन बतोंको पालनेवाला गृहस्थ सहसा मरण आनेपर जीवितको आशा रहनेपर, जिसके बन्धुगणने दीक्षा लेनेकी सम्मित नहीं दी है ऐसे प्रसंगमें सक्लेखना धारण करता है। (स. सि./७/२९.२४/३४६,३६३/७.९)।

र. क. आ./११ देशावकाशिकं वा सामायिकं प्रोवधीयवासी वा । वैया-वृत्यं शिक्षावतानि चरवारि शिष्टानि ।११। = देशावकाशिक तथा सामायिक, प्रोवधीयवास और वैयावृत्य ये चार शिक्षावत कहे गये हैं।

चा. पा./मू./२६ सामाइयं च पढमं विदियं च तहेव पोसई भणियं। तइयं च अतिहिषुक्ज चडस्य सल्लेहणा अंते। = पहला सामायिक शिक्षावत, दूसरा प्रोवधवत, तीसरा अतिथिषूजा और चौथा शिक्षावत अन्त समय सल्लेखना है। २६।

बसु, श्रा./२१७-२१६,२७० भोगविरति, परिभोग-निवृत्ति तीसरा अतिथि सर्विभाग व चौथा सक्तेखना नामका शिक्षा व्रत होता है।

शिखंडी - द्रुपद राजाका पुत्र था। इसके काणींसे ताहित होकर भीष्म पितामहने संन्यास धारण कर लिया। (पा. पु/११/२४३)।

शिखरी — रा. वा./३/११/१९/१८४/१ शिखराणि क्टान्यस्य सन्तीति शिखरीति संज्ञायते । अन्यवापि तत् सद्भावे रूदिवशाद्विशेषे वृत्तिशिखण्डिवद = जिसके शिखर अर्थात् क्ट हो उसकी शिखरी संज्ञा है । यह कृढ संज्ञा है जैसे कि मोरकी शिखंडी संज्ञा रूढ है । (यह ऐरावत क्षेत्रके दक्षिणमें स्थित पूर्वापर सम्बाधमान वर्षधर पर्वत है)। विशेष - दे, जोका(४/३५ २, शिखरी पर्वतस्थ एक कृट व उसका स्वामी देव — दे, लोका(४/४) ३. पद्म हस्में स्थित एक कृट — दे, लोक/४/७।

शिखाचारण ऋद्धि—हे ऋदि/४।

शिप्रा — भरत क्षेत्र आर्य खण्डकी एक नदी — दे. मनुष्य/४।

शिरःकंप — कालका परिमाण विशेष। अपरनाम श्रीकल्प — दे.
गणित/1/१।

---दे, व≀द

शिरोम्नति-ः दे, नमस्कार ।

शिला-नरककी तृतीय पृथिबी-दे. नरक/१।

ह्यिल्पकर्म-- दे. सावध/३ ।

शिलिप संहिता-आ. बीरनन्दि २ (ई.६६०-११६) की एक रचना है। -दे,|बीरनन्दि ।

शिवंकर- विजयार्थकी उत्तर श्रेणीका एक नगर-दे. विदाधर ।

शिव--भूतकालीन तैरहवें तीर्थंकर-दे. तीर्थंकर/४।

शिव स. श./टी.२/२२/२५ शिवं परमसीख्यं परम कल्याणं निर्वाणं चोच्यते। = परम कल्याण अथवा परम सौख्यमय निर्वाणको शिव कहते हैं।

स. सा./ता, वृ./३०३-३०२/४६२/१८ वीतरागसहजपरमानन्दरूपं शिव-शब्दवाच्यं सुखं स्वीतराग परमानन्द रूप सुख शिव शब्दका बाच्य है। (प. प्र./टी./२/६)।

म्र, स्./हो./१४/४७ पर उद्ध्वत-शिवं परमकल्याणं निर्वाणं ज्ञानमक्षयम्।
प्राप्तं मुक्तिपदं येन स शिवः परिकीर्तितः।१। इति श्लोक कथित•
सक्षणः शिवः। =शिव यानी परम कल्याण निर्वाण पदं अक्षय ज्ञान स्तप मुक्त पदको जिसने प्राप्त किया वह शिव कहलाता है।

भा. पा./टो./१४१/२१३/६ शिवः परमकस्याणभूतः शिवति लोकामे गच्छतीति शिवः। = शिवः अर्थात परम कस्याणभूत होता है, और लोकके अम्र भागमें जाता है वह शिव है।

शिवकुमार---१. पण्तव वंशी शिव स्कन्दका दूसरा नाम था। इनकी राजधानी कांचीपुर (कांजीवरम्) थी। पंचास्तिकायकी रचना इन्हींके लिए हुई थी। तदनुसार इनका समय ई. श. २ आता है (प्रोफ़े. ए. चक्रवर्ती नायनार M. A. L. T.) दे. शिव स्कन्द।

शिव कुमार वेलावत सर्व साधारण विधिमें ७-८ व १३-१४ का बेला तथा ६, १६ का पारणा। इस प्रकार प्रतिमास ४ बेले व ४ पारणा। यदि शक्ति हो तो १ बेला व १ पारणाका कम १००० वर्ष (1) तक निभाये। नमस्कार मन्त्रका त्रिकाल जाप करे। (बत विधान सं./पृ. १११)।

शिवकोटि- १. त्रेमीजो के अनुसार यापनीय संघी दिगम्बरा-च।र्य। भ. आ./सू/२१६५-२१६५ पढ़ने से ऐसा अनुमान होता है कि यह उस समय हुए थे जब कि जैन संघ में कुछ शिधिलाचारका प्रवेश हो चुकाथा। कोई-कोई साधुपात्र भी रखने लग गए थे तथा घरों से माँगकर भोजन लाने लग गये थे। परन्तू यह संध अभी अपने मार्ग पर हुढ़ था. इसलिये इन्होंने अपने नाम के साथ पाणि-पात्र। हारी विशेषण सुगाकर उल्लेख किया है। शिवनन्दि, शिवगुप्त, शिवकोटि, शिवार्स इनके अपर नाम हैं। यद्यपि किसी भी गुर्वावली में आपका नाम प्राप्त नहीं है तदपि भगवती आराधनाकी उक्तगाथाओं में जिननन्दि गणी, आर्य सर्वग्रप्त और आर्य मिश्रनन्दि का नाम दिया गया है जो इनके शिक्षागुरु प्रतीत होते हैं। यदापि आराधना कथाकोश में इन्हें अध्समन्तभद्र (ई.श.२) के शिष्य कहा गया है तद्रिप प्रेमीणी को यह बात स्वीकार भहीं है। श्रवणबेलगोलके शिलालेख ने १०५ के अनुसार तत्त्वार्थ सूत्रके एक टीकाकार भी शिवकौटि हुये हैं। बही सम्भवतः आ समन्तभद्रवे शिष्य रहे होंगे। कृति - भगवती आरोधनः समय-वि.श.१। (भ. था./प्र.श्रेमीजी), (ती,/१/१२२)। २. रश्न-माला तथा तस्वार्थ मुत्र की टीका के रचियता एक शिथलाचारी अभागि समय – यशस्तिलक (वि. १०१६) के पश्चात् कभी। (भ. आ /प्र. ७-६)। ३ - बाराणसीके राजा थे। शैव थे। समन्त-भद्र आचार्यके द्वारा स्तीत्रके प्रभावसे शिव लिएका फटना व उसमेंसे

चन्द्रप्रभु भगवात्की प्रतिमाका प्रगट होना देखकर उनके शिष्य बन गुत्रे थे। पोछे उनसे ही जिन दीशा से ली थी। समन्तभड़के अनुसार इनका समय ई. श. २ आता है। (प्रभाचन्द्र व नैमिदत्तके कथाकांशके आधारपर भ. आ./प्र. ४ प्रेमीजी)।

शिष्य तथा अहं इन लिके गुरु थे। समय - वी, नि. १६० (ई. ३३)— दे, इतिहास /७/८ !

रिवितत्त्व — दे. ध्यान/४/१ शिवतत्त्व बास्तवमें आत्मा है।

हा /२१/१० ... गुगपस्त्राहुर्भू सानन्तचेतुष्ट्यो धनप्टलिविगमे सिवतुः

प्रतापप्रकाशाभिवयक्तिवत् स खल्बयमारमेव परमारमव्यपदेशभाग्भवित । अगुगपत् अनन्तज्ञान-दर्शन-सुख-बीर्यरूप चतुष्ट्य जिसके
ऐसा, जैसे — मेध पटलोंके दूर होनेसे सूर्यका प्रताप और प्रकाश गुगपत प्रकट होता है, उसी प्रकार प्रगट हुआ आत्मा ही निश्चय करके

परमात्माके व्यपदेशका धारक होता है। (शही शिवतत्त्व है)

शिवदत्त - मूलसंघकी पट्टावलीं के, अनुसार भगवान महावीरकी मूल परम्परामें लोहाचार्यके पश्वात्वाले चार आचार्योमें आपका नाम है। समय - वी. नि. १६४-५-५ ई. ३८-५-। - दे. इतिहास/४/४।

शिवदेव जनण समुद्रस्थ उदक व उदकाभास पर्वतका स्वामी देव। दे. लोक/४/१

शिवदेवी-भगवास् नेमिनाथकी माता-दे. तीर्थंकर/१।

शिव मंदिर—१. विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीका एक नगर।—दे. विद्याधर। २. विजयार्धकी उत्तर श्रेणीका एक नगर—दे. विद्याधर।

शिवमत--दे, वैशेषिक मत।

शिवमार द्वि० — ई. ८१०में गंगवंशी नरेश श्रीपुरुषके उत्तराधि कारी थे। (सि. वि./३६ पं. महेन्द्र)

शिव मृगेशवर्म आप कदम्ब वंशी राजा थे। चालुक्य वंशी राजा की तिवर्य द्वारा बादामी नगरी में श्र. सं. ५०० में कदम्ब वंशका नाश हुआ था। अतः कदम्बवंशी इनका समय लगभग श्र. सं. ४५० ५०० (वि. ६८५) (ई० ६२८-५७८) आता है। (जै. सि. प्र./के समय प्राभृतमें K.B. Pathak)

शिवलाल (पं०)—आप एक उच्चकोटिके निद्वान् थे। अनैक प्रत्यों की देश भाषामय टीकाएँ लिखी हैं। यथा—अगवती आरा-धना, रत्नकरण्ड था. चर्चासंग्रह, बोधसार, दर्शनसार, अध्याश्म तरंगिनी आदि ग्रन्थों की भाषा टीका। समय—वि. १८९८ (ई. १७६१); (भ, आ./प्र. २५ प्रेमीजी)।

शिवशर्म— हे० परिशिष्ट ।

दिश्व सागर—आप आचार्य शान्तिसागरजीकी आम्नायमें तीसरे नम्बरपर आते हैं। आप-आ, शान्ति सागरजीके शिष्य थे। और आप आचार्य धर्मसागरजीके गुरु थे। कि २००६ पें दीक्षा जी थी। और वीरसागरजीके पश्चात् वि. २०१४ में आचार्य-पदपर आसीन हुए। समय - वि. २००६ । (ई. ११४६ ।)।

इस्य स्कंद — पण्तव वंश (वि. श. १) के राजा, अपर नाम शिव-कुमार, राजधानी कांजीपुरम, मर्यारडवीलुजा दानपत्र के दाता। कुन्दकुन्द ने इनके लिये पंचास्तिकाय ग्रन्थ की रचना की। समय — कुन्दकुन्द के अनुसार ई. श. १। (त्रो, ए. चक्रवर्ती नायनार); (जै./१/११४)।

शिवार्य — वास्तवमें इनका ही नाम शिवकोटि था, क्यों कि भग-विज्ञनसेनने आदि पुराणमें इसी नामका उण्लेख किया है। आर्य तो इनका विशेषण था जैसे कि स्वयं इन्होंने अपने सीनों गुरुओं के नामके साथ आर्थ त्रिशेषण जोड़कर उक्तेख किया है। (म. पू./प्र./ ४६ पं. पन्नालाल) दे० शिक्कोटि।

शिविका—ध. १४/५,४,६१/३६/२ माणुमेहि बुन्भमाणा सिविया गाम। —को मनुष्योंके द्वारा उठाकर से जायी जाती हैं वे शिविका कहताती हैं।

शिशुपाल — १. इसके साथ पहले क्रिनिमणीका सम्बन्ध हो गया था (ह. पु. /४६/१३) कृष्य द्वारा रुनिमणीके हर लिये जानेपर युद्धमें भारा गया (ह. पु./४२/१४)। २. पाटली पुत्रका राजा था। (बी. नि. ३) के पश्चाद इसके चतुर्मुख नामका पुत्र हुआ, जो कि अत्याचारी होनेसे कल्की सिद्ध हुआ। (म. पु./७६/४००) ३. मगध देशकी राज्य वंशावलीके अनुसार यह राजा इन्द्रका पुत्र व चतुर्मुख (किल्क)का पिता था। यद्यिप इसे किल्क नहीं कताया गया है, परन्तु जैसा कि वंशावलीमें कताया गया है यह भी अत्याचारी व कल्की था, हूणवंशी तोरमाण ही शिशुपाल है। समय—बी, नि. १००० १०३३ (ई. ४७४-५०७) विशेष—दे. इतिहास/१४।

शिष्य-पुरु शिष्य सम्बन्ध-दे, गुरु/२।

श्रीत -तीसरे नरकका दूसरा पटल-दे. नरक/४/११ ।

शीलगृह भरत क्षेत्रमें मलयगिरिके निकट एक पर्वत — दे. महुष्य/४ शीलगरीषह — स. सि./६/१/४९१/३ परित्यक्तप्रच्छादनस्य क्रिं-वदनवधारितालयस्य दृक्षमूलपथिशिलातलाविषु हिमानीपतनशितला-निलसंपाते तत्प्रतिकारशामि प्रति निवृत्तेच्छस्य पूर्वानुभूतशीत-प्रतिकारहेतुवस्तुनामस्मरतो झानभावनागर्भागारेवसतः शीतवेदना-सहनं परिकीर्यते। — जिसने अ.वरणका स्थाग कर दिया है, पृक्षीके समान जिसका आवास निश्चित नहीं है, वृक्षमूल, चौपथ और शिलातल आदिपर निवास करते हुए कर्फके गिरनेपर और शीतल हशका भोंका आनेपर उसका प्रतिकार करनेकी इच्छासे जो निवृत्त हैं, पृहले अनुभव किये गये प्रतिकारके हेतुभूत वस्तुओंका जो स्मरण नहीं करता और जो झान भावनाळ्यो गर्भागारमें निवास करता है उसके शीत वेदन(जय प्रशंसा योग्य है। (रा. वा./६/६/६/६/६/४); (चा. सा./१९१/४)।

शीतभोग तप—दे, कायक्लेश ।

शीतयोनि-दे. योनि।

रोतिलनाथ — (म, पु./१६/१लोक) पूर्वभव सं. २ में सुसीमा नगर-का राजा पदागुरुम था (२-३) पूर्वभवमें आर्णेन्द्र था (१७-१८) वर्त-मान भवमें १० वें तीर्थंकर हुए (२०-२७) इस भव सम्बन्दी विशेष परिचय—दे, तीर्थंकर/१।

शीतलप्रसाव (अ०) — आप अग्रवाल जातिमें गोग्रल गोत्री आवक श्री मक्खनलाल जीके सुपुत्र थे। आपका जनम बि. सं. १९६५ ई. १९७८ में हुआ था। आपने अनेकों ग्रम्थ रचे और समाजमें बड़ा भारी काम किया। बास्तवमें आपने इस अन्धकारमय ग्रुगमें ज्ञानका अद्वितीय प्रकाश किया। आप स्वयं अस्यन्त विशागी व कर्मठ व्यक्ति थे। आपके लिए जैन समाज अस्यन्त आभारी है। आपका मरण ई. १६४८ में हुआ था।

शील-१. शीलवतका छक्षण

स. सि./७/२४/२६५/६ वतपरिरक्षणार्थं शोलमिति विग्विरत्यादीनीह शोलप्रइणेन गृहान्ते । — वर्तोकी रक्षा करनेके लिए शोल हैं, इस-लिर यहाँ शोल वदके ग्रहणसे विग्विरति आदि लिये जाते हैं। (रा. वा./७/२४/१/६६३/२)।

२. शीलवतके भेद

चा. सा./१२/६ गुणवतत्रयं शिक्षावतचतुष्टयं शीलसप्तकमिरयुच्यते । विश्विरतिः देशिवरतिः, अनर्थदण्डिवरतिः सामायिकं, मोषघोपवासः उपभोगपरिभोगपरिमाणं अतिथिसंविभागश्चेति । —तीन गुणवत व चार शिक्षावतींको शील सप्तक कहते हैं। उनके नाम निम्न हैं - विश्विरति, देशिवरति, अनर्थदंड विरति, सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोगपरिभोग परिमाण और अतिथि संविभाग वत ।

३. शीकवतेष्वनतिचार मावनाहा कक्षण

स, सिं./६/२४/२३८/६ अहिंसाविषु जतेषु तत्प्रतिपाननार्थेषु च क्रोध-वंजनादिषु शीलेषु निरवया वृत्तिः शीलजतैष्वनतीचारः । = अहिंसा-दिक वत हैं और इनके पालन करनेके लिए क्रोधादिकका त्याप करना शील है। इन दोनोंके पालन करनेमें निर्दोष प्रवृत्ति करना शीलवता-नित्वार है। (रा. वा./६/२४/३/६२६/१६); (चा. सा./६२/२), (प्रा. पा./टी./७७/२२१/६)।

ध. = /३.४१/८२/४ सीलक्वतेमु णिरविचारवाए चेव तिरथयरणामकममं मडमह । सं जहा--हिंसालिय-चोज्जन्मधपरिग्गहेहितो विरदी वदं णाम । वदपरिरक्षणं शीलं णाम । मुराबाण-मासभक्षण-कोह-माण-माया - लोह - हस्स - रइ-सोग-भय-दुर्गृद्धिस्थ-पुरिस-णब्रंसयवेया - परिच्चागो अदिचारो, एवेसि विणासो णिरविचारदा संपुण्णदा, तस्स भावो णिरविचारदा । तीए सीलम्बदेमु णिरविचारदाए तित्थयर-वम्मस्स बंधा होदि । = शील-व्यतोमें निरतिचारतासे ही तीर्थं कर नामकर्म बाँधा जाता है । वह इस प्रकारसे — हिसा, असरय, चौर्य, अबह्य और परिप्रहसे विरत होनेका नाम वत है । वतोंकी रक्षाको शील वहते हैं । मुरापान, मांसभक्षण, कोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रित, शोक, भय, जुगुण्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद एवं नपुंसक वेद, इनके त्याग न करनेका नाम अतिचार और इनके विनाशका नाम निर्रतिचार या सम्पूर्णता है, इसके भावको निरतिचारता कहते हैं । शील-वरोंमें इस निरतिचारतासे तीर्थं कर कर्मका बन्ध होता है ।

४. इस एकमें शेष १५ मावनाओंका समावेश

घ. ६/३, ४१/८२/६ कघमेरथ सेस्वण्णरसण्णं संभवो । ण, सम्मद्दंसणेण खग-सबपडिबुरफण-सद्विसंबेगसंपण्णत्त-साहुसमाहिसंधारण खेरला -वच्चजोगजुत्तत्त - पासुअपरिच्छाग - अरहंत - बहुसुदपवयण-अस्ति -पवयण-पहावणलक्षण सुद्धिजुत्तेण विणा सीलब्बदाणमणदि चारत्तरस अणुत्रवत्तीदो । असंखेजजगुणाए सेडीए कम्मणिजजरहेदू घदं णाम । ण च सम्मत्तेण विणा हिंसालिय पोउजटबंभ अपरिग्नहविरहमेत्तेष गुणसेडिणिज्ञरा होदि, दोहितो चेबुवज्जमाणकज्जस्स तरथेक्कादो समुप्पत्तिविरोहादो । होतु गाम एदेसि संभवी, ग गाण-विणयस्स । ण, छद्वत्र-णवपदस्थसमृह-तिहुवंणविसएण अभिवादण-मभिक्खणमुबेजोगविसयमापङ्जम। येण जाजविजएण विजा सीलव्दर-णिबंधणसम्बन्तुष्पत्तीए अणुववत्तीदो। ण तत्थ चरणविणयाभावो जहाथाम-त्वाबासयापरिहीणस-प्वयणवस्छलस्ववस्यणचरण-विजएण विणा सीलव्वदिणरदिचारकाणुववक्तीदो । तम्हा तदियमेदं तित्ययरणामकम्मवंघस्स कारणं।=प्रश्न-इसमें शेष १६ भावना**ध**ी की सम्भावना कैसे हो सकती है। उत्तर-- यह ठीक नहीं है, क्यों कि क्षण-लब-प्रतिबुद्धता, लब्धि-संबेगसम्पन्नता, साधु समाधि धारण, वैयात्रत्ययोगयुक्तसा, प्राप्तुक परित्याग, अरहत भक्ति, बहुशुत भक्ति, प्रवचन भक्ति और प्रवचन प्रभावना लक्षण शुद्धिते युक्त सम्यग्दरानिके थिना कील वर्तोकी निरतिचारता यन नहीं सकती, दूसरी बात यह है कि जो असल्यात गुणित श्रेणीसे कर्म निर्जराका कारण है वही बत है। और सम्यग्दर्शनके मिना हिसा, असत्य- चौर्य, अन्नहा, और परि-ग्रहसे विरक्त होने माक्से वह गुणश्रेणि निर्जरा हो नहीं सकती, नयों कि दोनांसे ही उरपन्न होनेवाले कार्यकी उनमेंसे एकके द्वारा उरपित्तका विरोध है। प्रंशन—इनकी सम्भावना यहाँ भले ही हो, पर ज्ञान विनयकी सम्भावना नहीं हो सकतो। उत्तर—ऐसा नहीं है, खाँ कि छह द्रव्य, नौ प्दार्थों के समूह और त्रिभुतनको विषय करनेवाले एवं भार-मार उपयोग विषयको प्राप्त होनेवाले ज्ञान विनयके निना श्रीसवरों के कारण भूत सम्यग्दर्शनकी उरपत्ति महीं वन सकती। श्रीसवर्तों के कारण भूत सम्यग्दर्शनकी उरपत्ति महीं वन सकती। श्रीसवर्तों के विषयक निरित्तचारतामें चारित्र विनयका भी अभाव नहीं कहा जा सकता है, क्यों कि यथाशक्तित्य, आवश्यकापरिहीनता और प्रश्चनवरस्त्रता लक्षण चारित्र विनयके निना शील वत विषयक निरित्तचारताकी उपपति ही नहीं बनती। इस कारण यह तीर्यंकर नामकर्त के मन्धका तीसरा कारण है।

* किसी एक ही भावनासे तीर्थंकरत्व सम्मव —दे० भावना/२।

* ब्रह्मचर्य विषयक शीखन्त दे० ब्रह्म वर्या १।

शील कथा - किन भारामल (ई. १७६६) रचित हिन्दी भाषा कथा।

इिल कल्याणक वत है. कल्याणक इत ।

शील पाहुड़ — आ. कुन्दकुन्द (ई. १२७-१७६) कृत ज्ञान व चारित्र-का समन्वयात्मक, ४० (प्रा.) गाथा निश्रद्ध ग्रन्थ है। इसपर केवल पं. जयचन्द्र छात्रड़ा (ई. १७६७) कृत भाषा वचनिका उपलब्ध है।

शोल जित - प्रतिवर्ष वैद्याख शु. ६ के दिन (अभिनन्दन नाथ भग-वान्का मोक्ष करयाणक दिवस) उपवास । इस प्रकार १ वर्ष पर्यन्त करे । 'ऑ हों अभिनन्दनजिनाय नमः' इस मन्त्रका त्रिकाल जाप करे । (बतविधान सं./पृ. ८९)।

शीलवतेष्वनतिचार भावना—दे. शील

शील समनी सत — सात वर्ष प्रयन्त प्रतिवर्ष भाइपद शु. ७ को उपवास करें। तथा नमस्कार मन्त्रका त्रिकाल जाप करें। (व्रत विधान सं./पृ. १०४) (कथाकोष)।

द्गीलॉक- 'नवांग बृत्ति' के रचयिता एक श्वेताम्बराचार्छ । समय-

र्युभी — पूर्वविदेहस्थ रमणिया क्षेत्रकी मुख्य नगरी – दे. लोक/७ ।

शुक्ति— भरत क्षेत्रमें शुक्तिमती नदीपर स्थित एक नगर—दे.
मनुष्य/४।

शुक्तिमती-भरतक्षेत्र आर्य खण्डकी एक नदी-दे. मनुष्य/४।

पुक - १ औदारिक शरीरमें शुक्रधातुकांनिर्देश - दे. औदारिकः/१/७: २. एक प्रह्-दे. प्रह; ३. शुक्र प्रह्का लोकमें अवस्थान - दे. ज्योतिष्लोक; ४ करपवासी बोंका एक भेद - दे. स्वर्ग/३; ६, कल्प स्वर्गीका नवमां कल्प - दे, स्वर्ग/४/२; ६, शुक्र स्वर्गका प्रथम पटल व इन्द्रक - दे. स्वर्ग/६/३।

शुक्त ध्यान करते हुए साधुको बुद्धिपूर्वक राग समाप्त हो जानेपर जो निर्विकलप समाधि प्रगट होती है, उसे शुक्तध्यान या रूपातीत ध्यान कहते हैं। इसकी भी उत्तरोत्तर वृद्धिगत चार श्रेणियाँ हैं। पहली श्रेणीमें अबुद्धिपूर्वक ही शानमें श्रेय पदार्थों की तथा श्रोग प्रवृत्तियों की संक्रान्ति होती रहती है, अगली श्रेणियों में यह भी नहीं रहती। रस्न दीपककी उयोत्तिकी भौति निष्कंप होकर उहरता है। स्वास निरोध इसमें करना नहीं पड़ता अपितु स्वयं हो जाता है। यह ध्यान साक्षात मोक्षका कारण है।

भेद्व कक्षण

Ý

₹

१ | शुक्लध्यान सामान्यका लक्षण

शुक्लध्यानमें शुक्ल शब्दकी सार्थकता

- दे. शुक्तध्यान/१/१।

शुक्लध्यानके अपरनाम

—दे, मोक्षमार्ग/२/५।

२ 🏻 शुक्लध्यानके भेद

३ | बाह्य व आध्यात्मिक शुक्लध्यानका लक्षण

४ | जून्य ध्यानका रूक्षण

५ । पृथक्त्व वितर्क विन्नारका स्वरूप

६ | एकत्व वितर्कअविचारकास्वरूप

७ | सङ्गिकिया अप्रतिपातीका स्वरूप

🗸 | समुच्छिन्न क्रिया निवृत्तिका स्वरूप

ञ्चक्कध्यान निर्देश

^६ िध्यानयोग्य द्रव्य क्षेत्र आसनादि 🔝 — दे. कृतिकर्म/३ ।

* । धर्म व शुक्लध्यानमें कथंचित् भेदाभेद

—हे, धर्मध्यान/३।

शुक्रुध्यानमें क्यंचित् विकल्पता व निविकल्पता
 व क्रमाक्रमवर्तिपना — दे. विकल्पः

शुक्रध्यान व रूपातीत ध्यानकी एकार्थता

--दे, पद्धति ।

शुक्ल ध्यान व निर्विक्तिप समाधिकी पकार्थता

- दे. पद्धति ।

शुक्लध्यान व शुद्धात्मानुभन्न की एकार्थता—हे, पद्धति ।

* । शुद्धातमानुभव

ŧ

्र —वे, अनुभव।

🛪 । शुक्लध्यानके बाह्य चिह्न

—दे. ध्याता/४ ।

१ | शुक्लध्यानमें इंत्रासोच्छ् त्रासका निरोध हो जाता है।

२ पृथक्तवितकीमें प्रतिपातीपना सम्भव है।

💲 | एकत्व त्रितक्सें प्रतिपातका विधि निषेध ।

४ चारों शुक्लध्यानोंमें अन्तर ।

५ । शुक्छध्यानमें सम्भव भाव व लेख्या

शुक्कध्यानमें संहनन सम्बन्धी नियम — दे. संहनन ।

पंचमकालमें शुक्राध्यान सम्भव नहीं - दे, धर्मध्यान/१।

शुक्लध्यानीका स्वामिश्व व फल

ह्युक्लध्यानके योग्य जघन्य उत्कृष्ट ज्ञान

-दे. ध्याता/१।

१ | पृथक्त वितर्क विचारका स्वामित्व

प्रकारत वितर्भ विचारका स्त्रामित्व

३ विपशान्त कषायमें एकत्व वितर्क कैसे

४ सङ्ग किया अप्रतिपाती व सङ्ग क्रिया निवृत्तिका स्वामित्व ।

५ स्त्रीको शुक्छध्यान सम्भव नहीं ।

६ | चारों ध्यानींका फल ।

For Private & Personal Use Only

ß

₹

शुक्ल व धर्मध्यानके फलमें अन्तर

- दे. धर्मध्यान/३/५।

* ध्यानकी महिमा

--दे. ध्यान/२।

शंका-समाधान

- संक्रान्ति रहते ध्यान कैसे सम्मव है।
 - प्रथम शुन्रुध्यानमें उपयोगकी युगपत् दो धाराएँ —दे. उपयोग/II/१/१।
- २ | योग संक्रान्तिका कारण।
- ३ | योग संक्रान्ति बन्धका कारण नहीं रागादि है।
 - प्रथम शुक्लध्यानमें राग अन्यक्त है --दे. राग/३।
 - केवळीको शुक्ळध्यानके अस्तित्व सम्बन्धी शंकाएँ

-दे, केवली/ई।

१. भेद व लक्षण

१. ञुक्कध्यान सामान्यका कक्षण

- स. सि./१/२८/४४१/११ शुचिगुणयोगाच्य्रुक्लम्। (यथा मलद्रव्यापा-यात् शुचिगुणयोगाच्छ्रकः वस्त्र तथा तद्दगुगसाधन्यांदारमपरिणाम-स्वरूपमपि शुक्लमिति निरुच्यते। रा. वा.)। — जिसमें शुचि गुणका सम्बन्ध है वह शुक्ल ध्यान है। [जैसे मैल हट जानेसे वस्त्र शुचि होकर शुक्ल कहलाता है उसी तरह निर्मल गुणयुक्त आत्म परिणति भी शुक्ल है। रा. वा.) (रा वा./१/२८/४/६२०/३१)।
- ध. १३/४,४,२६/७७/६ कुदो एदस्स सुक्कत्तं कसायमलाभावादो । = कषाय मलका अभाव होनेसे इसे शुक्लपना प्राप्त है।
- का. अ,|मू,|४८३ जस्थपुणा सुविसुद्धा उपसम-खमणं च जस्थ कम्माणं । लेक्सावि जस्थ सुका तं सुक्कं भण्णदे फाणं १४८३। च्लहाँ गुण अति-विशुद्ध होते हैं, जहाँ कमींका स्थ और उपशम होते हैं, जहाँ सेश्या भी शुक्ल होती है उसे शुक्लध्यान कहते हैं १४८३।
- हा ./४२/४ निष्कियं करणातीतं ध्यानधारणवर्जितम्। अन्तर्मूखं च यच्चित्तं तच्छुक्लिमिति पठवते ।४। शुचिगुणयोगाच्छुक्लं कषायरजसः क्षयादुपशमाद्वा । वै डूर्यमणिशिखा इव सुनिर्मलं निष्पकम्पं च । व्र १० जो निष्क्रिय व इन्द्रियातीत हैं। 'मैं ध्यान करूं' इस प्रकारके ध्यान-की धारणासे रहित हैं. जिसमें चित्त अन्तर्मुख है वह शुक्तध्यान है। ४। २, आत्माके शुचि गुणके सम्बन्धसे इसका नाम शुक्त पड़ा है। कषायरूपी रजके क्षयसे अथवा उपशमसे आत्माके सुनिर्मल परिणाम होते हैं, वही शुचिगुणका योग है। और वह शुक्तध्यान वै डूर्यमणिकी शिखाके समान सुनिर्मल और निष्कप है। (त. अनु./ २२९-२२२)।
- द्र. सं./मू./१६ मा चिट्ठह मां जंपह मा चिन्तह कि विजेण हो इ थिरो।
 अप्पा अप्पान्म रखो इणमेव परं हुने जमाणे।१६६ हे मध्य ! कुछ
 भी चेष्टा मत कर, कुछ भी मत बोन, और कुछ भी चिन्तवन मत कर, जिससे आत्मा निजातमामें तल्लीन होकर स्थिर हो जावे, अत्मामें सोन होना ही परम ध्यान है।१६।
- नि. सा./ता वृ./१२३ ध्यानध्येयध्यातृतत्फन्नादिविविधविकन्पनिर्मु-कान्तर्मुलाकारनिखिलकरणप्रामगोचर्निरंजननिजपरमतत्त्वाविचन

- स्थितिरूपशुक्तध्यानम्। =ध्यान-ध्येय-ध्याता, ध्यानका फल आदिके विविध विकर्णोसे विमुक्त, अन्तर्मुखाकार, समस्त इन्द्रिय समूहके अगोचर निरंजन निज परमतत्त्वमे अविचल स्थितिरूप वह निरचय शुक्तध्यान है। (नि, सा./ता.वृ./८१)।
- प्र.सा./ता. वृ./८/१२ रागादिविकन्परहितस्वसवेदनज्ञानमागमभाषया शुक्लध्यानम् । = रागादि विकल्पसे रहित स्वसंवेदन ज्ञानको आगम भाषामें शुक्लध्यान कहर है।
- द्र. सं./टी./४८/२०६/३ स्वशुद्धात्मिन निर्धिक व्यसमाधिल क्षणं शुक्ल-ध्यानस्। = निज शुद्धाःमा में विकल्प रहित समाधिकःप शुक्लध्यान है। भा. पा. टी./७८/२२६/१८ मलरहितात्मपरिणामोद्भवं शुक्लस्। = मल रहित आत्माके परिणामको शुक्ल कहते हैं।

२. शुक्लध्यानके भेद

- भ. आ./मू./१९७०-१८९६ उक्ताणं पृथत्तस्वित्तक्षस्विचारं हवे पढममुक्कं ।
 सिवतक्षेक्कतावीचारं उक्ताणं विदियमुक्कं ।१८७० मुहुमिकिरियं खु
 तिदयं मुक्कज्भाणं जिणेहिं पण्णत्तं । बेंति चउत्थं मुक्कं जिणा
 समुच्छिण्णिकिरियं तु ।१८७६। = प्रथम सिवतकं सिवचार शुक्लध्यानः
 द्वितीय सिवतर्केकत्ववीचार शुक्लध्यानः तीसरा सूक्ष्मिक्रया नामक शुक्लध्यानः चौथा समुच्छित्र किया नामक शुक्लध्यान कहा गया है । (सू. आ./४०४-४०५): (त. सू./१/६१); (रा. वा./१/७/१४/४०/१६): (घ. १३/५.४,२६/७०/१०); (ज्ञा./४२/१-१९); (द. सं./टो./४८/२०३/३)।
- चा, सा /२०३/४ शुक्लध्यानं द्विविधं, शुक्लं परमशुक्लमिति। शुक्लं द्विविधं पृथक्तवितर्कवीचारमेकत्विवितर्कवीचारमेकत्विविद्यार्गिति। परमशुक्ल द्विविधं सृक्ष्मिक्रयाप्रतिपातिसमुच्छित्रक्रियानिवृत्तिभेदात्। तक्लक्षणं द्विविधं, बाह्यमध्यात्मिकमिति। = शुक्लध्यानके दो भेद हैं एक शुक्ल और दूसरा परम शुक्ल। उसमें भी शुक्लध्यान दो प्रकारका है पृथक्तवित्तर्कविचार और दूसराएकत्वितिर्क्र अविचार। परम शुक्ल भी दो प्रकार का है सृक्ष्मिक्रयाप्रतिपाती और दूसरा समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति। इस समस्त शुक्लध्यानके लक्षण भी दो प्रकार हैं एक बाह्य दूसरा ऑध्यात्मिक।

बाह्य व आध्यास्मिक शुक्लध्यानका लक्षण

चा. सा./२०३/१ गात्रनेत्रपरिस्पन्द निरहितं जुम्भजृम्भोइगारादिवर्जितमनिभव्यक्तप्राणापानप्रचारत्वमुच्छित्रप्राणापानप्रचारत्वमुप्तित्वतं नाहां, तदमुमेयं परेषामात्मनः स्वसंवेचमाध्यात्मिकं तदुच्यते। = शरीर और नेत्रोंको स्पन्द रहित रखना, जैमाई जम्भा उद्गार आदि नहीं होना, प्राणापानका प्रचार व्यक्त न होना अथवा प्राणापानका प्रचार व्यक्त न होना अथवा प्राणापानका प्रचार व्यक्त न होना अथवा प्राणापानका प्रचार नष्ट हो जाना बाह्य शुक्लध्यान है। यह बाह्य शुक्लध्यान अन्य लोगोंको अनुमानसे जाना जा सकता है तथा जो केवल आरमाको स्वसंवेदन हो वह आध्यात्मिक शुक्लध्यान कहा जाता है।

४. शून्यध्यानका लक्षण

इतिसार/३७-४७ कि बहुना सालम्बं परमार्थेन ज्ञास्ता। परिहर कुरु पश्चात् ध्यानाभ्यासं निरालम्बस् ।३७। तथा प्रथम तथा द्वितीयं तृतीयं निश्चेणिकायां चरमानाः । प्राप्नोति समुचयस्थानं तथायोगी स्थूलतः शून्यास् ।३६। रागादिभिः वियुक्तं गतमोहं तत्त्वपरिणतं ज्ञानम् । जिनशासने भणितं शून्यं इदमीद्दश मनुते ।४१। इन्द्रियविषयातीतं अमन्त्रतन्त्र-अध्येय-धारणाकस् । नभःसदशमपि न गगनं तत शून्यं केवलं ज्ञानम् ।४२। नाहं कस्यापि तनयः न कोऽपि मे अस्त अहं च एकाकी । इति शून्य ध्यानज्ञाने लभते योगी परं स्थानम् ।४३। मन-वचन-काय-मस्सर-ममस्वतनुष्ठनकज्ञादिभिः शून्योऽहम्। इति शून्य-

ध्यानयुक्तः न लिप्यते पुण्यपापेन १४४१ शुद्धात्मा तनुमात्रः ज्ञानी चेतन-मुजोऽहम् एकोऽहम् । इति ध्याने योगी प्राप्नोति परमात्मकं स्थानम् ।४४। अभ्यन्तरं च कृत्वा बहिरर्थमुखानि कुरु श्चन्यतनुम्। निश्चिन्त स्तथा हंसः पुरुषः पुनः केवली भवति । ४०। = बहुत कहनेसे क्या ! परमार्थसे सालम्बन ध्यान (धर्मध्यान) को जानकर उसे छोड़ना चाहिए तथा तत्पप्रचात् निरालम्बन ध्यानका अभ्यास करना चाहिए ।३७। प्रथम हितीय आदि श्रेणियोंको पार करता हुआ वह योगी चरम स्थानमें पहुँचकर स्थूलतः श्रून्य हो जाता है।३८। क्योंकि रागादिसे मुक्त, मोह रहित, स्वभाव परिणत ज्ञान ही जिनशासनमें शुन्य कहा जाता है। ४१। इन्द्रिय विषयोंसे अतीत. मन्त्र, तन्त्र तथा घारणा आदि हतप ध्येयोंसे रहित जो आकाश न होते हुए भी आकाशवत निर्मल है, वह झान मात्र शुन्य कहलाता है। ४२। मैं किसीका नहीं, पुत्रादि कोई भी मेरे नहीं हैं. मैं अकेला हूँ शून्य ध्यानके ज्ञानमें योगी इस प्रकारके परम स्थानको प्राप्त करता है ।४३। मन, वचन, काय, मत्सर, ममत्व, शरीर, धन-धान्य आदिसे मैं शुन्य हूँ इस प्रकारके शुन्य ध्यान-से युक्त थोगी पुण्य पापसे लिप्त नहीं होता ।४४। 'मैं शुद्धात्मा हूँ, शरीर मात्र हूँ, ज्ञानी हूँ, चैतन गुण स्वरूप हूँ, एक हूँ, इस प्रकारके ध्यानसे योगी परमात्म स्थानको प्राप्त करता है। ४६। अस्यन्तरको निश्चित करके तथा बाह्य पदार्थों सम्बन्धी मुखों व शरीरको शून्य करके हंस ह्मप पुरुष अर्थात् अध्यन्त निर्मल आत्मा केवली हो जाता है।४७।

आचारसार/७७-८३ जायन्ते बिरसा रसा विघटते गोष्ट्रीकथा कौंतुकं शीर्यन्ते विषयास्तथा विरमणात् प्रीतिः शरीरेडिप च । जोषं वागपि घारयत्वविरतानन्दारमनः स्वारमनश्चिन्तायामपि यातुमिच्छति मनोदोषैः समं पञ्चताम्।७७। यत्र म ध्यानं ध्येयं ध्यातारौ नेव चिन्तनं किमपि। न च धारणा विकल्पस्तं शून्यं सुन्ठ भावये।७८। शून्यध्यानप्रविष्टां योगी स्वसद्भावसंपञ्चः।परमानन्दस्थितो भृतावस्थः स्फुटं भवति ।७१। तस्त्रिकमयो ह्यारमा अवशेषालम्बनैः परिमुक्तः। उक्तः स तेन श्रुन्यो ज्ञानिभिर्न सर्वथा श्रुन्यः ।८०। यावद्विकरपः कश्चिद्दपि जायते योगिनो ध्यानयुक्तस्य । तानत्र श्रुन्यं ध्यानं चिन्ता वा भावनाथवा। ८१। = सब रस विरस हो जाते हैं, कथा गोशी व कौतुक विधट जाते हैं, इन्द्रियोंके विषय मुरमा जाते हैं, तथा शरीर-में प्रीति भी समाप्त हो जाती है व बचन भी मौन धारण कर लेता है। आत्माको आनन्दाभू ति है काल में भन के दोषों सहित स्वारम विषयक विन्ता भी शान्त होने समती हैं जिला जहाँ न ध्यान है, न ध्येथ है, न ध्याता है, न कुछ चिन्तवन है, न धारणाके विकल्प हैं, ऐसे सून्यको भली प्रकार भाना चाहिए।७८। शून्य ध्यानमें प्रविष्ठ योगी स्व स्व-भावसे सम्पन्न, परमानन्दमें स्थित तथा प्रगट भरिताबस्थावत् होता है ।७१। ज्ञानदर्शन चारित्र इन तीनों मयी आत्मा निश्चयसे अवशेष समस्त अवलम्बनींसे मुक्त हो जाता है। इसलिए वह श्रुन्य कहलाता है, सर्वथा श्चन्य नहीं । पान प्रक्त योगीको जॅब तक कुछ भी विकलप उत्पन्न होते रहते हैं, तब तक वह शून्य ध्यान नहीं, वह या तो चिन्ता है या भावना।

५. पृथक्त वितर्क बीचारका स्वरूप

भ. आ / मू / १८८०, १८८२ र व्वाइं अणेयाइं लाहि वि जोगेहि जेण-उभायं ति । उवसंतमोहणिज्जा तेण पुधत्तंत्ति तं भणिया । १८८०। अस्थाण वंजाणाण य जोगाण य संकमो हु वीचारो । तस्स य भावेण तयं सुत्ते उत्तं सवीचारं । १८८२। — इस पृथवस्व वितर्क वीचार ध्याम-में अनेक द्रव्य विषय होते हैं और इन विषयों का विचार करते समय उपशान्त मोह सुनि इन मन वचन काय योगों का परिवर्तन करता है । १८८०। इस ध्यानमें अर्थ के वाचक शब्द संक्रमण तथा योगों का संक्रमण होता है। ऐसे वीचारों (संक्रमणों का) का सहभाव होनेसे इसे सवीचार कहते हैं। अनेक द्रव्यों का ज्ञान करानेवासा जो शब्द श्रुत वाक्य उससे यह ध्यान उत्पन्न होता है, इसिलए इस ध्यानका पृथवस्ववितर्क सवीचार ऐसा नाम है । १८८२।

- त. सू./१-४१-४४ एकाश्रये सिवितर्कवीचारे पूर्वे ।४१। वितर्कः श्रुतम् ।४३। वीचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः ।४४। चपहलेके दो ध्यान एक आश्रयवाले. सिवितर्क, और सवीचार होते हैं ।४१। वितर्कका अर्थ श्रुत है ।४३। अर्थ, व्यंजन और योगकी संक्रान्ति वीचार है ।४४। भावार्थ पृथवस्य अर्थात् भेद रूपसे वितर्क श्रुतका वीचार अर्थात् संक्रान्ति जिस ध्यानमें होती है वह पृथवस्य वितर्क वीचार नामका ध्यान है । (ध. १३/४,४,२६/७७/११); (क. पा. १/१,१७/६३१२/३४४/६) (ज्ञा./४२/१३,२०-२२)।
- स. सि./१/४४/४५६/१ तत्र द्रव्यपरमाणु भावपरमाणु वा ध्यायन्ना-हितबितर्कसामर्थः अर्थन्यञ्जने कायव चसी च पृथवत्वेन संक्रामता मनसापर्याप्तवालोत्साहबद्व्यवस्थितेनानिशितेनापि शस्त्रेण चिरा-त्तरं छिन्दरिनव मोहप्रकृतीरुपश्मयन्ध्रपपंश्च पृथक्तववितर्कवीचार-ध्यानभाग्भवति । [पुनर्वीर्धविशेषहानेर्योगःयोगान्तरं व्यर्जना-द्वयञ्जनान्तरमथदिथन्तिरमाभयन् ध्यानविधृतमोहरजाः ध्यान-योगान्तिवर्तते इति। पृथक्तववितर्कवीचारम् [रा.वा.]। = जिस प्रकार अपर्याप्त उत्साहसे बालक अव्यवस्थित और मौथरे शस्त्रके द्वारा भी चिरकालमें वृक्षको छेदता है उसी प्रकार चित्तकी सामर्थ्य को प्राप्त कर जो द्रव्यपरमाणु और भावपरमाणुका ध्यान कर रहा है यह अर्थ और व्यंजन तथा काय और बचनमें पृथक्तकरी संक्रमण करनेवाले मनके द्वारा मोहनीय कर्मकी प्रकृतियोंका उपकाम और क्षय करता हुआ पृथवत्व वितर्क बीचार ध्यानको धारण करने-वाला होता है। फिर शक्तिकी कमीसे योगसे योगान्तर, व्यंजनसे व्यंजनान्तर और अर्थ से अर्थान्तरको प्राप्त कर मोहरजका विधुनन-कर ध्यानसे निवृत्त होता है यह पृथक्त्ववितर्क वीचार ध्यान है। (रा. वा./१/४४/१/६३४/२४); (म. पु./२१/१७०-१७३)।

ध १३/४, १,२६/गा. ४५-६०/७६ वञ्चाइमणेगाइं ती हि वि जोगेहि जेण जमायंति । उवसंतमोहणिज्जा तेण पुधत्तं ति तं भणितं ।४८। जम्हा सुदं विदक्कं जम्हा पुञ्चगयअत्थकुसली य । जमायदि जमाणं एदं-सिवदक्कं तेण तं जमाणं ।४६। अत्थाण वंजणाण य जोगाण य संक-मो हु वीचारो । तस्स य भावेण तगं सुत्ते उत्तं सवीचारं ।६०।

थ. १३/४,४,२६/७८/८ एकदव्वं गुणपङ्जायं वर पढमसमए बहुणयगहण-णिलीणं सुदरविकिरणुज्जोयवलेण जमाएदि। एवं तं चेव अंतोसुहूत्त-मेत्तकालं ज्ञाएदि । तदो परदो अत्थंतरस्स णियमा संकमदि । अधवा तिम्ह चैव अरथे गुणस्स पज्जयस्स वा संक्रमित । पुविबल्लजोगाजी गोर्गतरं विश्वसिया संकमदि । एगमत्थमत्थंतरं गुणगुणंतरं वजाय-पजायतरं च हेड्डोवरि द्वविय पुणो तिर्णिण जोगे एगपंतीए ठविय द्सं-जोग-तिसजोगेहि एत्थ पुघन्तविद्वकनीचारङभाणभंगा मादालीस १४२। उप्पारदञ्या । एवमंत्रोमुहुत्तकस्त्रमुवसंतकसाओ मुक्कलेस्साधी पुधत्तविदक्कवीचारङभाण' छद्द्य-णवपयत्थ विस्पर्मतो मुहुत्तकालं ज्मायह । अत्यदो अत्यंतरसंकमें संति वि ण ज्माण विणासो, चिसं-तरमम्णाभावादो । = १. यतः उपशान्त मोह जीव अनेक द्रवयोका सीनों ही योगों के आलम्बनसे ध्यान करते हैं इसलिए उसे पृथवत्व ऐसाकहा है। ४८। यतः वितर्कका अर्थश्रुत है और यतः पूर्वगत अथेमें कुराल साधु ही इस ध्यानको ध्याते हैं, इसलिए इस ध्यानको स्वितर्क कहा है। १६। अर्थ, ब्यंजन और योगोंका संक्रम बीचार है। जो ऐसे संक्रमसे युक्त होता है उसे सूत्रमें सनिचार कहा है ।६०। (त. सा./७/४६-४७)। २. इसका भावार्थ कहते हैं...एक द्रव्य या गुण-पर्यायको भूत रूपी रविकिरणके प्रकाशके बलसे ध्याता है। इस प्रकार उसी पदार्थको अन्तर्मृहुर्त काल तक ध्याता है। इसके बाद अथन्तिरपर नियमसे संक्रमित होता है। अथवा उसी अर्थ के गुण या पर्यायपर संक्रमित होता है। और पूर्व योगसे स्याव योगान्तरपर संक्रमित होता है इस तरह एक अर्थ-अर्था-न्तर, गुण-गुणान्तर और पर्याय-पर्यायान्तरको नीचे छपर स्थापित करके फिर तीन योगोंको एक पंक्तिमें स्थापित करके

दिसंग्रोगी और त्रिसंग्रोगीकी अपेक्षा यहाँ पृथक्तविद्यक्त वीचार ध्यानके ४२ भंग उत्पन्न करना चाहिए। इस प्रकार शुक्तेलेश्या वाला उपशान्तकषाय जीव छह द्रव्म और नौ पदार्थ विषयक पृथक्ति विद्यक्त वीचार ध्यानको अन्तर्मृहूर्त कालतक ध्याता है। अर्थसे अर्थान्तरका संक्रम होनेपर भी ध्यानका विनाश नहीं होता, क्योंकि इससे चिन्तान्तरमें गमन नहीं होता। (चा. सा./२०४/१)।

द्र. सं./रो./४८/२०३/६ पृथवस्विवतर्कविचारं तावस्कथ्यते। द्रव्य-गुणपर्यायाणां भित्रत्वं पृथवत्वं भण्यते. स्वशुद्धाःभानुभूतिलक्षणं भावश्रुतं तद्वाचकमन्दार्जल्यवचनं वा वितको भण्यते, अनीहितवृत्त्या-र्थान्तरपरिणमनम् वचनाद्वचनान्तरपरिणमनम् मनोवचनकाययोगेषु योगाचोगान्तरपरिणमनं बीचारो भण्यते । अयमत्रार्थः - यद्यपि ध्याता पुरुषः स्वशुद्धारमसंवेदनं विहाय बहिरिचन्तां न करोति तथापि यावतांशेन स्वरूपे स्थिरखं नास्ति तावतांशेनानीहितवृत्त्या विकल्पाः स्फुरन्ति, तेन कार्णेन पृथवरवितर्कवीचारं ध्यानं भण्यते। = द्रव्य. गुण और पर्यायके भिन्नपनेका पृथवस्य कहते हैं। निजशुद्धात्माका अनुभव रूप भावश्रुतको और निज-शुद्धात्माको कहने वाले अन्तर्जन्परूप वचनको 'वितर्क' कहते हैं। इच्छा विना ही एक अर्थ से दूसरे अर्थ में, एक बचनसे दूसरे बचनमे, मन बचन और काय इन तीनों योगों मेसे किसी एक योगसे दूसरे योगमें जो परि-णमन है, उसको बीचार कहते हैं। इसका यह अर्थ है-यदापि ध्यान करनेवाला पुरुष निज शुद्धारम संवेदनको छोड़कर बाह्य पदार्थोंकी चिन्ता नहीं करता, तथापि जितने अंशोंसे स्वरूपमें स्थिरता नहीं है उतने अंशोंसे अनिच्छित बृत्तिसे विकल्प उत्पन्न होते हैं, इस कारण इस ध्यानको पृथक्त वितर्क बीचार कहते हैं।

एकःव वितर्क अवीचारका स्वरूप

- भ. आ./मू./१८८३/१६८६ जेणेगमेव दव्बं जोगेणेगेण खेण्णदरेण । खीण-कसायो जभायदि तैणेगत्तं तयं भणियं १९८८३। = इस ध्यानके द्वारा एक ही योगका आध्य लेकर एक ही द्रव्यका ध्याता चिन्तन करता है। इसलिए इसको एकत्व वितर्क ध्यान वहा गया है।१८८३।
- स. सि./१/४८/४८/६/४ संएवंपुनः समूलत्वं मोहनीयं निर्विधक्षद्यनन्तगुण विशुद्धियोगिवशेषमांत्रियं बहुत्तराणां झानावरणीय सहासीधृतानां प्रकृतीनां बन्धं निरुन्धन् स्थिति हासक्षयौ च कुर्धन् शृतझानोपयोगो निवृत्तार्थव्यञ्जनयोगसंकान्ति अविचित्तितमनाः श्रीणक्षायो वैद्ध्य-मणिरिव निरुपलेपो ध्यात्वा पुनर्न निवर्तत इत्युक्तमेकत्ववितर्कम् । = पुनः जो समूल मोहनीय कर्मका दाह करना चाहता है, जो अनन्त-गुणी विशुद्धि विशेषको प्राप्त होकर बहुत प्रकारकी झानावरणीकी सहायभूत प्रकृतियोंके बन्धको रोक रहा है, जो कर्मोकी स्थितिको न्यून और नात्त कर रहा है, जो श्रुतझानके उपयोगमे युक्त है, जो अर्थ, व्यंजन और योगकी संक्रान्तिसे रहित है। निश्चलमन वाला है, शीणकषाय है और वैद्ध्यमणिके समान निरुपलेप है,…इस प्रकार एकरव वितर्क ध्यान कहा गया है। (रा. वा./१/४४/१/६२४/३१)।
- घ. १२/४,४,२६/गा. ६१-६३/७६ जोणेगमेव दव्यं जोगेणेक्केण अण्णदरएण । लीणकसाओ उम्मायद तेणेयलं तमं भणिदं ।६१। जम्हा मुदं विद्वकं जम्हा पुरुवगयअरथकुसलो य । उमायदि माणं एदं सविद्वकं तेण तज्माणं ।६२। अरथाण वंजणाण य जोगाण य संक्रमो हु विचारो । तस्स अभावेण तगं उमाणमवीचारमिद बुत्तं ।६३।
- त. १२/६.४.२६/८०/१ णवपपत्थेसु द्व्व-गुण-पज्जयथं द्व्व-गुण-पज्जय-भेदेण उक्षाएदि, अण्णवरजोगेण अण्णदराभिधाणेण य तत्थ एगम्हि द्व्वे गुणे पज्जाए वा मेरुमहियरोव्व णिच्चलभावेण अवद्वियचित्तस्स असंखेजनगुणसेडीए कम्मक्षंधे मालयंतस्स अणंतपुणहीणाए सेडीए कम्माणुभागं सोसयंतस्स कम्माणं द्विदोयो एगजोग-एगाभिहाणज्काणेण घादयंतस्स अंतोषुहुत्तमेत्तकाको गच्छति

तदो सेसखीणकसायद्वमेस्तहिदीयो मोत्तूण उवरिमसव्बहिदियो घेत्रण उदयादिगुणसेहिसरूबेण रिचय पुणो द्विदिखंडएण विणा अधिद्विरिगल्णेण असंखेज्जगुणसेडीए कम्मनखंधे घादंतो गच्छिदि जाव कीणकसायचरिमसमओ चि । तत्थ खीणकसायचरिमसमए णाणावरणीय-दसणावरणीय-अंतराइयाणि विणासेदि । णिट्टेसु केवलणाणी केवलदंसणी अणंतवीरियो दाण-लाह-भोगुव-भौगेसु विग्धविज्ञियो होदि सि घेत्तव्वं । 🗕 १. यतः शीणकषाय जीव एक ही द्रव्यका किसी एक योगके द्वारा ध्यान करता है, इसलिए उस ध्यानको एकत्य कहा है। ६१। यतः वितर्कका अर्थ श्रुत है और इसलिए पूर्वगत अर्थमें कुशल साधु इस घ्यानको ध्याता है. इसलिए इस ध्यानको समितक कहा है।६२। अर्थ, व्यंजन और योगोके संक्रमका नाम वीचार है। यतः उस विचारके अभावसे यह ध्यान अबीचार कहा है ।६३। (त. सा./७/४८-५०); (क. पा. १/१, १७/६ ३१२/३४४/१६); (ज्ञा./४२/१३-१६)। २. जो जीव नौ पदार्थीं में से किसी एक पदार्थका द्रव्य, गुण और पर्यायके भेदसे ध्यान करता है। इस प्रकार किसी एक योग और एक शब्दके आलम्बनसे वहाँ एक द्रव्य, गुण या पर्यायमें मेरु पर्वतके समान निश्चल भावसे अवस्थित चित्तवाले, असंख्यात गुणश्रेणि क्रमसे कर्मस्कन्धोंको गलाने-वाले. अनन्त गुणहीन श्रेणिक्रमसे कर्मीके अनुरागको शोषित करने-वाले और कमीकी स्थितियोको एक योग तथा एक शब्दके आल-म्बनसे प्राप्त हुए ध्यानके बलसे घात करनेवाले उस जीवका अन्त-मूहर्त काल रह जाता है। तदनन्तर शेष रहे शीणकषायके कालका प्रमाण स्थितियोंको छोड़कर उपरिम सन स्थितियोंकी उदयादि श्रीण रूपसे रचना करके पुनः स्थिति काण्डक घातके जिना अध-स्थिति गतना आदि ही असंख्यात गुणश्रेणि क्रमसे कर्म स्कन्धोंका घात करता हुआ शीण कषायके अन्तिम समयके प्राप्त होने तक जाता है। वहाँ क्षीण कषायके अन्तिम समयमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तरायका घात करके केवसज्ञानी, केवलदर्शनी, अनन्तवीर्य-धारी तथा दान-लाभ-भोग व उपभोगके विध्नसे गहित होता है। (चा. सा /२०६/३)।

द्र. सं./टी./४८/२०४/४ निजशुद्धात्मद्रव्ये वा निर्विकारात्मसुखसंविति पर्यामे वा निरुपाधिस्वसंवेदनगुणे वा यत्रैकस्मिन् प्रवृत्तं तत्रैव वितर्कसं होन स्वसंवित्तिलक्षणभावश्रुतनलेन रिथरीभ्र्यावीचारसं होणद्रव्यपर्यायपरावर्त्तनं न करोति यत्त्रदेकत्ववितकविचारसं हो शिणकषायगुणस्थानसंभवं द्वितीयं शुक्तस्यानं भण्यते । तेनैव केवलज्ञानोत्पत्तिः इति। — निज शुद्धात्म द्रव्यमें या विकार रहित आत्मसुख अनुभवस्य पर्यायमें, या उपाधि रहित स्व संवेदन गुणमें. इन तीनों मेंसे जिस एक द्रव्य गुण या पर्यायमें प्रवृत्त हो गया और उसीमें वितर्क नामक निजात्मानुभवस्य भाव श्रुतके क्लसे स्थिर होकर अवीचार अर्थात् द्रव्य गुण पर्यायमें परावर्तन नहीं करता वह एकत्व वितर्क नामक गुणस्थानमें होनेवाला दूसरा शुक्तस्यान कहलाता है जो कि केवल ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण है।

सृक्ष्म क्रिया अप्रतिपातीका स्वरूप

भ. आ./म्./१८८६-१८८७ अवितनकमनीचारं सुहुमिकिरियनंधणं तियम्
सुनकं। सुहुमिम्म कायजोगे भिणिदं तं सन्नभानगरं।१८८६। सुहुमिम्म कायजोगे नहंतो केनली तिरयसुक्कम्। भायदि णिरु भिदुंजे
सुहुमत्तणकायजोगंपि।१८८७। = वितर्क रहित, अवीचार, मूक्ष्म
किया करनेनाले आत्माके होता है। यह ध्यान सुक्ष्म काय योगसे
है।१८८६। प्रवृत्त होता है। जिकाल विषयक पदार्थौको युगपद प्रगट
करनेनाला इस सुक्ष्म काययोगमें रहनेनाले केनली इस तृतीय सुन्नध्यानके धारक हैं। उस समय सुक्ष्म काययोगका ने निरोध करते हैं
।१८८७। (भ. आ./मू./१९१६), (ध. १३/४, ४, २६/गा. ७२-७३/८३),
(त. सा./०/६१-४२), (ज्ञा /४२/४१)।

- स,सि./१/४४/४६/८ एवमेकरावितर्कशुक्तध्यानवैश्वानस्तिर्ध्यवातिकर्मेन्धनः स्य यदान्तर्मुहृत् शेषायुष्कः तदा सर्वं वाङ्मनस्योगं
 बादरकाययोगं च परिहाप्य सूक्ष्मकाययोगालम्बनः सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यानमास्कन्दितुर्मर्हतीति । स्यमिकृतस्थितिशेषकर्मचतुष्ट्यः
 पूर्वशरीरप्रमाणो भूत्वा सूक्ष्मकाययोगेन सूक्ष्मिक्रियाप्रतिपाति ध्यामं
 ध्यायति । इस प्रकार एकत्व वितर्क शुक्तध्यानरूपी अपिनके द्वारा
 जिसने चार वातिया कर्म रूपी इंधनको जला दिया है। स्वहं जब
 आयु कर्ममे अन्तर्मृहृतं काल शेष रहता है स्ति सब प्रकारके वचन
 योग, मनोयोग, और बादर काययोगको त्यागकर सूक्ष्म काययोगका
 आलम्बन लेकर सूक्ष्मि क्रिया प्रतिपाती ध्यानको स्वीकार करते हैं।
 परम्तु जब उनकी सयोगी जिनकी आयु अन्तमुहूर्त शेष रहती है। स्ति (सशुद्ध्यातके द्वारा) चार कर्मोकी स्थितिको समान करके अपने
 पूर्व शरीर प्रमाण होकर सूक्ष्म काययोगके द्वारा सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति
 ध्यानको स्वीकार करते हैं (रा. बा./१/४४/१/६३४/१), (ध. १३/६, ४, २६/-३-८४/१२), (चा. सा./२००/३)।
- य १३/५,४,२६/५३/२ संपष्टि तदिय सुक्कडकाणपरूवणं कस्सामो। तं जहा-क्रिया नाम योगः। प्रतिपतितुं शीलं यस्य तत्प्रतिपाति। तरप्रतिपक्षः अप्रतिपाति । सूक्ष्मक्रिया योगो यस्मिन् तत्सूक्ष्मक्रियम् । सृक्ष्मिक्रयं च तदप्रतिपाति च सूक्ष्मिकयाप्रतिपाति ध्यानम् । केवल-ज्ञानेनापसारितशुतज्ञानस्वात् तदवितर्कम् । अर्थान्तरसंक्रान्त्यभा-वात्तदवीचारं व्यञ्जन-योगसंक्रान्त्यभावाद्वा । कथं तत्संकान्त्यभावः । तदवष्टमभवलेन विना अक्रमेण जिकालगोचराशेषावगतेः । = अव तीसरे शुक्त ध्यानका कथन करते हैं यथा-क्रियाका अर्थ योग है वह जिसके पतनशील हो बह प्रतिपाती कहलाता है, और उसका प्रति-पक्ष अप्रतिपाती कहलाता है। जिसमें क्रिया अर्थात् योग सृक्ष्म होता है वह सूक्ष्मिक कहा जाता है, और सूक्ष्मिक य होकर जो अप्रति-पाती होता है वह सूक्ष्मिक्रया अप्रतिपाती ध्यान कहलाता है। (इ. सं./टी /४८/२०४/८) यहाँ केवलज्ञानके द्वारा श्रुतज्ञानका अभाव हो जाता है, इसलिए यह अनितर्क है और अर्थातरको संक्रान्तिका अभाव होनेसे अवीचार है, अथवा व्यंजन और योगकी संक्रान्तिका अभाव होनेसे अविचार है। प्रश्न-इस ध्यानमें इनकी संक्रान्तिका अभाव कैसे है। उत्तर—इनके अवलंगनके जिना ही युगपत् जिकाल गोचर अशेष पदार्थीका ज्ञान होता है।

८. समुच्छिन्न किया निवृत्तिका स्वरूप

- भ. आ./मू./१८८८, २१२३ अनियक्कमनीचारं अणियिष्टिमिकिरियं च सीलेसि। जमाणं णिरुद्धयोगं अपच्छिम उत्तमं मुक्तं।१८८८। देह-तियमंधपरिमोक्खत्थं केवली अजोगी सो। उनयादि समुच्छिण्ण-किरियं तु भाणं अपडिवादी।२१२३। —अन्तिम उत्तम शुक्तध्यान वितर्क रहित है, बीचार रहित है, अनिवृत्ति है, क्रिया रहित है, शैलेशी अनस्थाको प्राप्त है और योग रहित है। (ध. १३/६, ४, २६/गा, ७७/८७) औदारिक शरीर, तैजस व कार्मण शरीर इन तीन शरीरोंका बन्ध नाश करनेके लिए वे अयोगिकेवली भगनात् समुच्छिन्न क्रिया निवृत्त नामक चतुर्थ शुक्तध्यानको ध्याते हैं (त. सा./७/१३-१४)।
- स. सि./१४४/४६७/६ ततस्तदनन्तरं समुच्छिन्नक्रियानिर्वित्त्व्यानमार-भते । समुच्छिन्नप्राणापानप्रचारसर्वकायवाङ्मनोयोगसर्वप्रवेशपरि-स्पन्दक्रियाव्यापारत्वास समुच्छिन्ननिवृत्तीरग्रुच्यते । — इसके बाद चौथे समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति ध्यानको प्रारम्भ करते हैं । इसमें प्राणापानके प्रचार रूप क्रियाका तथा सब प्रकारके काययोग वचनयोग और मनोयोगके द्वारा होनेवाली आश्म प्रदेश परिस्पन्द रूप क्रिया-का उच्छेद हो जानेसे इसे समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति ध्यान कहते हैं (रा. वा./१/४४/१/६३४/१९१) । (चा. सा./२०१/३)।

- धः १३/६,४,२६/०% समुच्छिन्निक्या योगो यस्मिन् तरसमुच्छिन्नक्रियस् । समुच्छिन्निक्यं च अपतिपाति च समुच्छिन्निक्रयाप्रतिपाति
 ध्यानम् । श्रुतरिहत्यात् अवितर्कस् । जीवप्रदेशपरिस्पन्दाभावादबीचारं अर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्त्यभावाद्वा । = जिसमें क्रिया अर्थात् योग सब प्रकारसे उच्छिन्न हो गया है वह समुच्छिन्न क्रिय है और समुच्छिन्न क्रिया होकर जो अप्रतिपाती है वह समुच्छिन्निक्रयाप्रतिपाति ध्यान है । यह श्रुतज्ञानसे रहित होनेके कारण अवितर्क है, जीव प्रदेशोंके परिस्पन्दका अभाव होनेसे अविचार है, या अर्थ, व्यंजन और योगकी संक्रान्तिके अभाव होनेसे अविचार है।
- द्र. सं./टी./४८/२०४/६ विशेषेगोपरता निवृत्ता किया यत्र तंद्र व्युपरत-क्रियं च तदनिवृत्ति चानिवर्तकं च तद्द व्युपरतिक्रयानिवृत्तिसंज्ञं चतुर्थशुक्तध्यान । —विशेष रूपसे उपरत अर्थात दूर हो गयी है क्रिया जिसमें वह व्युपरतिक्रय है; व्युपरतिक्रय हो और अनिवृत्ति हो वह व्युपरतिक्रयानिवृत्ति नामा चतुर्थ शुक्तध्यान है।

२. शुक्लध्यान निर्देश

१. ग्रुक्ल ध्यानमें स्वासोच्छ्वासका निरोध हो जाता है

- प, प्र./पू./२/१६२ णास-विणिग्गड सासडा अंवरि जेत्थु विलाइ। सुट्टह मोहु तड क्ति तिहि मणु अत्थवणहं जाइ।१६२। = नाकसे निकला जो श्वास वह जिस निर्विकत्प समाधिमें मिल जावे. उसी जगह मोह शोध नष्ट हो जाता है, और मन स्थिर हो जाता है।१६२।
- भ, आ./वि./१८८८/१६१/४ अकिरियं समुच्छित्नप्राणापानप्रचारः ।

 = इस (समुच्छित्न क्रिया निवृत्ति) ध्यानमें सर्व श्वासोच्छ्यासका
 प्रचार वन्त्र हो जाता है ।

२. पृथक्त वितर्कमें प्रतिपातपना सम्मव है

ध. १३/६,४,२६/पृ. पंक्ति तदो परदो अत्थंतरस्स णियमा संक्रमित (७८/१०) उवसंतकसाओ ... पुधक्तिविदक्कवीचार उमाणं ... उत्ते मुहुक्त-कार्ल जमायइ (७८/१४) एवं एदम्हादो णिव्जुइपमणाणुवलंभादो (७६/१) उवसंत । = अर्थसे अर्थान्तरपर नियमसे संक्रमित होता है !... इस प्रकार उपशान्त कवाय जीव पृथक्त वितर्क वीचार ध्यानको अन्तर्भृहूर्त कालतक ध्याता है !... इस प्रकार ... इस ध्यानके फलसे मुक्तिको प्राप्ति नहीं होती ।

३. एकःव वितर्क में प्रतिपातका विधि निषेध

- स.सि./१/४४/४६६/८ ध्यात्वा पुनर्न निवर्तत इत्युक्तमेकत्ववितर्कम् । चवह ध्यान करके पुनः नहीं सौटता। इस प्रकार एकत्व वितर्क ध्यान कहा।
- घ, १३/६,४,२६/८१/६ उबसंतकसायिम् भवद्याखएहि कसाएमु णिव-दिव्मिम पष्टिकाबुबलंभादो । चलपशान्त कषाय जीवके भवस्य और कालस्यके निमित्तसे पुनः कषायोंके प्राप्त हानेपर एकरव वितर्क-अविचार घ्यानका प्रतिपात देखा जाता है।

४. चारों शुक्छध्यानोंमें अन्तर

भ. आ,/बि./१९८४-१८९६६०/२० एकद्रक्यालम्बनत्वेन परिमितानेक-सर्वपर्यायद्रक्यालम्बनात प्रथमध्यानात्समस्तवस्तुविषयाभ्यां तृतीय-चतुर्थाभ्यां च विलक्षणता द्वितीयस्यानया गाथया निवेदिता । क्षीण-कषायग्रहणेन उपशान्तमोहस्वामिकत्वात् । सयोग्ययोगकेवलिस्वा-(मिकाभ्यां च भेदः पूर्ववदेव । पूर्वक्यायणितवीचाराभावादवीचा-रत्वं । च सह ध्यान (एकत्व वितर्क ध्यान) एक ब्रक्यका ही आश्रय करता है इसलिए परिमित अनेक पर्यायों सहित अनेक द्रव्योंका आश्रय लेनेवाले प्रथम शुक्लध्यानसे भिन्न है। तीसरा और चौथा ध्यान सर्व वस्तुओंको विषय करते हैं अतः इनसे भी यह दूसरा शुक्ल ध्यान भिन्न है, ऐसा इस गाथासे सिद्ध होता है। इस ध्यानका स्वामित्व श्रीण कषायवाला मुनि है पहले ध्यानका स्वामित्व उपशान्त कषायवाला मुनि है और तीसरे तथा चौथे शुक्लध्यानका स्वामित्व सयोग केवली तथा अयोग केवली मुनि है। अतः स्वामित्व-की अपेक्षासे दूसरा शुक्लध्यान इन ध्यानोंसे भिन्न है। (भ, आ./ वि./१८५८/१४)।

५. शुक्ल ध्यानमें सम्मव भाव व लेखा

चा. सा./२०६/१ तत्र सुक्लतरलेश्याबलाधानमन्तर्मुहूर्तकालपरिवर्तनं क्षायोपशिमकभावम् । = यह ध्यान शुक्लतर लेश्याके बलसे होता है और अन्तर्मुहूर्त कालके बाद बदल जाता है! यह क्षायोपशिमक भाव है।

३. शुक्लध्यानोंका स्वामित्व व फल

1. पृथक्त वितर्कवीचारका स्वामित्व

- भ. आ./मू.१८८१ जम्हा सुदं वितवकं जम्हा पुरुवगद अतथ कुसलो य। जमायदि जमाणं एदं सवितवकं तेण तं माणं ११८८१। — इस ध्यानका स्वामी १४ पूर्वोंके ज्ञाता सुनि होते हैं। (त. सू./१/३७) (म. पू/ २१/१७४)।
- स. सि./१/४१/४४४/११ उभयेऽपि परिप्राप्तश्रुतज्ञानिमिष्ठेनारम्ये ते इत्यर्थः। चित्रने सम्पूर्णश्रुत ज्ञान प्राप्त कर जिया है उसके द्वारा ही दो ध्यान आरम्भ किये जाते हैं। (रा. वा./१/४१/२/६३३/२०); (ज्ञा./४२/२२)।
- ध, १३/४.४.२६/७८/७ जनसंतकसायनोयरायछदुमरथो चोद्दस-दस-णन-पुटनहरो पसत्थतिनिहसंघडणो कसाय-कलंकत्तिण्णो तिसु जोगेसु एकजोगम्हि बट्टमाणो।
- ध. १३/४,४.२६/८१/८ ण च खीणकसायद्वाए सब्बन्ध एयत्तविदक्षा-नीचार उभाणमेन ...। = १. चौदह, इस, नौ पूर्वोका धारी, प्रशस्त तीन संहतनवाता, कषाय कलंकसे पारको प्राप्त हुआ और तीनों योगों में किसी एकमें विद्यमान ऐसा उपशान्त कषाय जीतराग-छद्मस्थ जीव । २. क्षीणकषायगुणस्थानके काल में सर्वत्र एकत्व वितर्क अविचार ध्यान ही होता है ऐसा कोई नियम नहीं है । (अर्थात् वहाँ पृथवस्य वितर्क ध्यान भी होता है। दे. शुक्तध्यान/३/३।
- चाः साः/२०६/१ चतुर्दशदशनवपूर्वधरयतिवृष्मिनिषेवयमुपशान्तक्षीण-कषायभेदात् । =चौदह पूर्वः दशपूर्व अथवा नौ पूर्वको धारण करने-वाते उत्तम मुनियोंके द्वारा सेवन करने योग्य है और उपशान्तकषाय तथा क्षीणकषायके भेदसेग्गा
- द्र. सं./टो./२०४/१ तस्चोपशमश्रीणिविवशायामपूर्वोपशमकानिवृत्युपशमकसूक्ष्मसाम्परायोपशमकोपशान्तकषायपर्यन्तगुणस्थानचतुष्टये
 भवति । क्षपकश्रेण्यां पुनरपूर्वकरणक्षपकानिवृत्तिकरणक्षपकसूक्ष्मसाम्परायक्षपकाभिधानगुणस्थानवये चेति प्रथमं शुक्तध्यानं
 व्याख्यातं। च्यह प्रथम शुक्तध्यान उपशम श्रेणिकी विवक्षामें
 अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्परायउपशमक तथा उपशान्तकषाय इन चार गुणस्थानोमें होता है। क्षपक श्रेणिकी विवक्षामें
 अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण व सूक्ष्मसाम्परायक्षपक इन तीन गुणस्थानोमें होता है।

२. एकःविवर्क भवीचार ध्यानका स्वामित्व

भ, आ,/सू,/२०१६/१८१२ तो सो खीणकसाधी जायदि खीणासु लोभ-किट्डीसु। एयत्त वितकाशीचारं तो जमादि सो भाणं — जब संज्यसन

- लोभकी सूक्ष्मकृष्टि हो जाती है, और क्षीणक्षाय गुणस्थान प्राप्त होता है तन मुनिराज एकत्व वितर्क ध्यामको ध्याते हैं। (ज्ञा./४२/२५)।
- दे, शुक्लध्यान/३/१ में. स. सि. पूर्विक ज्ञाताको ही यह ध्यान होता है।
- धः १२/४,४,२६/७६/१२ खीणकसाओ सुक्कतेस्सिओ ओघवतो ओघसूरो वज्जरिसहबहरणारायणसरीरसंघडणो अण्णदरसंठाणो चोदसपुटवघरो दसपुटवहरो णवपुटवहरो वा खह्यसम्माइट्ठी खविदासेसकसाय-वर्गो।
- धं. १३/१,४,२६/८१/७ उबसंतकसायिम्म एयत्तविदकाविचारं। =१. जिसके शुक्त लेश्या है, जो निसर्गसे बलशाली है, निसर्गसे ख्र है, वज्रश्चमनाराच सहननका धारी है, किसी एक संस्थानवाला है, चौदह पूर्वधारी है, दश पूर्वधारी है या नौ पूर्वधारी है, क्षायिक सम्यग्हिष्ट ही समस्त कषाय वर्गका क्षय कर दिया है ऐसा क्षायिक सम्यग्हिष्ट ही समस्त कषायोंका क्षय करता है। २, उपशान्त कषाय गुणस्थानमें एकत्ववितर्क-अवीचार ध्यान होता है।
- चा. सा./२०६ पूर्वोक्तक्षीणकषायाविशष्टकालभूमिकम् · · · = पहिले कहे हुए क्षीणकषायके समयसे बाकी बचे हुए समयमें यह दूसरा शुक्ख-ध्यान होता है।
- द्र. सं./दी/४८/२०४/७ क्षीणकषायगुणस्थानसंभवं द्वितीयं शुक्लध्यानं । =दूसरा शुक्लध्यान क्षीणकषाय गुणस्थानमें ही सम्भव है।

३. उपशान्त कषायमें एकःववितर्क कैसे

एंयत्त विवक्षवीचारसंते घ. १३/४,४,२६/८१/७ **उवसंतकसायम्मि** 'उबसंतो द्रुपुधत्तं' इच्चेदेण विरोहो होदि ति णासंकणिज्जं, तत्थ पुधत्तमेवे त्ति णियमाभावादो । ण च खीणकसायद्वाए सन्वत्थ एयत्त-विदक्कावीचार्डभाणमेव, जोगपरावत्तीए एगसमयपरूबणण्णहाणुवव-त्तिबलेण तदब्रादीए प्रधन्तविदक्षवीचारस्स वि संभवसिद्धीदो। प्रश्न-यहि उपशान्त कषाय गुणस्थानमें एकत्व वित्तकं वीचार ध्यान होता है तो 'उबसंतो दु पुधत्तं' इत्यादि गाथा वचनके साथ विरोध आता है। उत्तर-ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, न्योंकि उपझान्त कषाय गुणस्थानमें केवल पृथवस्य वितर्क वीचार ध्यान ही होता है, ऐसा कोई नियम नहीं है। और क्षीणकषाय गुणस्थान कालमें सर्वत्र एकत्व अवितर्क ध्यान ही होता है, ऐसी भी कोई नियम नहीं है, क्योंकि वहाँ योग परावित्तका कथन एक समय प्रमाण अन्यथा बन नहीं सकता। इससे क्षीणकषाय कालके प्रारम्भमें पृथवत्ववित्तर्कवीचार ध्यानका अस्तित्व भी सिद्ध होता है।

४. स्क्ष्मिक्रया अप्रतिपाती व समुच्छित्र क्रिया निवृत्तिका स्वाभित्व

- त, सू./१/३८, ४० परे केवलिनः ।३८। स्योगायोगानाम् ।४०।
- स. सि./१/४०/४६४/७ काययोगस्य सूक्ष्मिक्रियाप्रतिपाति, अयोगस्य व्युपरतिक्रयानिवर्तीति । चकाययोगवाले केवलिके सूक्ष्मिक्रयाप्रति-पाति ध्यान होता है और अयोगी केवलीके व्युपरतिक्रयानिवर्तिध्यान होता है । (स. सि. १/३८/४६३/१); (रा. वा./१/३८,४०/१,२/८,२९)।
- है. शुक्तध्यान/१/७.८ सयोगकेवली गुणस्थानके अन्तिम अन्तमुंहूर्त कालमें जब भगवान् स्थूल योगोंका निरोध करके सूक्ष्म काययोगमें प्रवेश करते हैं तब उनको सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति नामका तीसरा शुक्तध्यान होता है। और अयोग केवली गुणस्थानमें योगोंका पूर्ण निरोध हो जानेपर समुच्छिल्ल क्रियानिवृत्ति नामका चौथा शुक्तध्यान होता है।

५. स्त्री को शुक्छध्यान सम्भव नहीं

सू. पा./मू./२६ चित्तासीहिण तेसि ढिल्लं भावं तहा सहावेण । विज्जिदि मासा तेसि इथ्थीमुण संकया भाणा ।२६।—स्त्रीके चित्तकी शुद्धि नहीं, और स्वभावसे ही शिथिल परिणाम हैं। तथा तिनके प्रति मास रुधिरका साब होता है. उसकी शंका बनी रहती है इसलिए स्रीके ध्यानकी सिद्धि नहीं है। २६।

चारों ध्यानोंका फक

१. पृथक्त्व वितक वीचार

ध. १३/१.४.२६/७६/१ एवं संवर-णिज्जरामरसुहफलं एदम्हादो णिव्जु-इगमणाणुबलंभादो । = इस प्रकार इस ध्यानके फलस्वरूप संवर, निर्ज्रा और अमरसुख प्राप्त होता है, क्योंकि इससे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती ।

चा. सा./२०६/२ स्वर्गापवर्गगतिफलसंवर्तनीयमिति । = यह ध्यान

स्वर्ग और मोक्षके सुखको देनेवाला है।

दे धर्मध्यान/३/१/२ मोहनीय कर्मको सर्वोपशमना होने पर उसमें स्थित रखना पृथ्वत्व वितर्कविचार नामक शुवलध्यानका फल है।

ज्ञा./४२/२० अस्याचिन्त्यप्रभावस्य सामश्यात्स प्रशान्तधीः । मोह-मुन्मूलयत्येव शमयत्यथवा क्षणे ।२०। = इस अचिन्त्य प्रभाववाले ध्यानके सामर्थ्यसे जिसका चित्त शान्त हो गया है, ऐसा ध्यानी मुनि क्षण भरमें मोहनीय कर्मका मुलसे नाश करता है अथवा उसका उपशम करता है।२०।

२, एकत्व वितर्क अवीचार

दे. धर्मध्यान/३/४/२ तीन घाती कर्मीका नाहा करना एकस्व वितर्क अवीचार शुक्लध्यानका फल है।

३. स्क्ष्मिक्रया अप्रतिपाती

- ध. १३/५,४,२६/गा. ७४,७४/न६,०७ तोयिमव णालियाए तत्तायसभाय-णोदरत्थं वा। परिहादि कमेण तहा जोगजलं उमाणजलणेण ।७४। तह बादरतण्विसयं जोगविमं उमाणमंतवलजुत्तो। अणुभाविमा णि-रुंभदि अवषेदि तदो वि जिणवेज्जो ।७६। = जिस प्रकार नाली द्वारा जलका क्रमशः अभाव होता है या तपे हुए लोहेके पात्रमें क्रमशः जलका अभाव होता है. उसी प्रकार ध्यानरूपी अग्निके द्वारा योग-रूपी जलका क्रमशः नाश होता है ।७४। ध्यानरूपी मन्त्रके बलसे युक्त हुआ वह स्योगकेवली जिनरूपी वैद्य बादर शरीर विषयक योग विषको पहले रोकता है और इसके बाद उसे निकाल फेंकता है ।७६। ४. सम्मुच्छिन क्रिया निवृत्ति
- ध. १३/५.४.२६/प्प-/१ सेलेसियआद्वाए उभीणाए सञ्चकम्मविष्पमुक्को एगसमएण सिद्धिं गच्छदि । =शैलेशी खबस्थाके कालके क्षीण होने-पर सब कमौंसे मुक्त हुआ यह जीव एक समयमें सिद्धिको प्राप्त होता है।

४. शंका समाधान

१. संक्रान्ति रहते ध्यान कैसे सम्मव है

- स. सि./१/४५/४५/१३ की टिप्पणी संक्रान्ती सत्यां कथं ध्यानमिति चेत् ध्यानसंतानमित ध्यानमुख्यते इति न दोषः। **= प्रश्न**— संक्रान्तिके होनेपर ध्यान कैसे सम्भव है ? उत्तर—ध्यानकी सन्तिति-को भी ध्यान कहा जाता है इसमें कोई दोष नहीं है।
- रा. वा./१/२७/१६.२१/६२६-६२०/३६ अथमेतत् एकप्रवचनेऽपि तस्या-निष्टस्य प्रसङ्गतुष्य इति: तन्नः किं कारणम् । आभिमुख्ये सति पौनःपुन्येनापि प्रवृत्तिज्ञापनार्थस्वात् । अपं मुखिमिति स्नुच्यमानेऽनेक-मुख्यः निवित्तितं एकमुखे तु संक्रमोऽभ्युपगत एवेति नानिष्टप्राप्तिः ।१६। अथवा अङ्गतोरयममात्मेरयर्थः। द्वयपर्थतमैकस्मिन्नारमन्यप्रे चिन्तानिरोधो ध्यानम् । सतः स्ववृत्तिस्वात् नाह्यध्येप्रप्राधान्यापैक्षा

निवक्तिता भगति ।२१! = प्रश्न - यदि ध्यानमें अर्थ व्यंजन योगकी संक्रान्ति होती है तो 'एकाग्र' वचन कहनेमें भोअनिष्टका प्रसगसमान, हो है ! उत्तर - ऐसा नहीं क्यों कि अपने विषयके अभिमुख होकर पुनः पुनः उसीमें प्रवृत्ति रहती है । अग्रका अर्थ मुख्य होता है, अतः ध्यान अनेकमुखी न होकर एकमुखी रहता है और उस मुखमें ही संक्रम होता रहता है । अथवा 'अङ्गतीति अग्रम् आत्मा' इस व्युत्पित्तमें द्रव्यस्परे एक आत्माको सक्ष्य बनाना स्वोकृत ही है । ध्यान स्ववृत्ति होता है, इसमें बाह्य चिन्ताओं से निवृत्ति होती है ।

ध. १३/४,४.२६/गा. १२/७६ अंतोमुहुत्तपरदो चिंता-उम्माणंतरं व होज्जाद्धि । सुचिरं पि होज्ज बहुवस्थुसंकमे उम्माणसंतालो ।१२।

- ध. १३/१.४,२६/७१/१ अत्थंतरसंचासे संजादे वि चित्तंतरगमणाभावेण जमाणविणासाभावादो । भ-१ अन्तर्मुहूर्तके बाद चिन्तान्तर या ध्यानान्तर होता है, या चिरकाल तक बहुत पदार्थीका संक्रम होनेपर भी एक ही ध्यान सन्तान होती है ।१२३ २, अर्थान्तरमें गमन होनेपर भी एक विचारसे दूसरे विचारमें गमन नहीं होनेसे ध्यानका विनाश नहीं होता ।
- हार./४२/१८ अर्था दिषु यथा ध्यानी संक्रामत्यवित्तम्बितम् । पुनव्यवित्तिते तेन प्रकारेण स हि स्वयम् ।१८। = जो ध्यानी अर्थ व्यंजन आदि योगों में जैसे शीवतासे संक्रमण करता है, वह ध्यानी अपनेआप उसी प्रकार जीट आता है।

प्र. सा./ता. वृ./१०४/२६२/१२ अव्यकासस्वात्परावर्त्तनरूपध्यानसंतानी न घटते। ऋअव्य काल होनेसे ध्यान सन्तति की प्रतीति नहीं होती।

- भा. पा./टी./७५/२२७/२१ यद्यप्यर्थव्यञ्जनादिसंक्रान्तिरूपतया चलनं वर्तते तथापि इदं ध्यानं। कस्मात्। एवं विधस्यैवास्य विवक्षित-त्वातः । विजातीयानेकविकरूपरहितस्य अर्थादिसंक्रमेण चिन्ता-प्रबन्धस्यैव एतद्भवानस्वेनेष्टरवात् । अथवा द्रव्यपर्यायारमनो वस्तुन एकस्वात् सामान्यरूपतया व्यञ्जनस्य योगानां चैकीकरणादेकार्थ-चिन्तानिरोधोऽपि घटते। द्रव्यात्पर्यायं व्यञ्जनाद्वयञ्जनान्तरं योगाद्योगान्तरं विहाय अन्यत्र चिन्तावृत्तौ अनेकार्धता न द्रव्यादेः पर्यायादौ प्रवृत्तौ । = यदापि पृथवत्व वितर्क वीचार ध्यानमें योगकी संक्रान्ति रूपसे चंचलता वर्तती है फिर भी यह ध्यान ही है नयों कि इस ध्यानमें इसी प्रकारकी विवक्षा है और विजातीय अनेक विकल्पों से रहित तथा अर्थादिके संक्रमण द्वारा चिन्ता प्रबन्धक इस ध्यानके ध्यानपना इष्ट है। अथवा नयों कि द्रव्य पर्यायात्मक वस्तुमें एकपनर पाया जाता है इसलिए व्यंजन व एकीकरण हो जानेसे एकार्थ चिन्ता निरोध भी घटित हो जाता है। द्रव्यसे पर्याय, व्यंजनसे व्यंजनान्तर और योगसे योगान्तर इन प्रकारोंको छोड़कर अन्यत्र चिन्तावृत्तिमें अनेकार्थता या द्रवयं व पर्याय आदिमें प्रवृत्ति नहीं है।
- पं. धा /उ./८४१-८५१ ननु चेति प्रतिज्ञा स्यादयिदयिन्तरे गतिः। आत्मनोऽन्यत्र तत्रास्ति ज्ञानसंचेतनान्तरम्। १४१। सत्यं हेतोर्विपक्षत्वे वृत्तित्वाद् व्यभिचारिता। यतोऽत्रान्यात्मनोऽन्यत्र स्वात्मनि ज्ञानचेतना। अवयुच्छित्नत्रवाहेण यद्वाखण्डेकधारया । १५१। = प्रश्न यदि ज्ञानका संक्रमणात्मकपना ज्ञानचेतना वाधक नहीं है तो ज्ञान चेतना में भी मित्ज्ञानपनेके कारण अर्थसे अर्थान्तर संक्रमण होनेपर आत्मानके इतर विषयों में भी ज्ञानचेतनाका उपयोग मानना पड़ेगा! उत्तर— ठीक है कि हेतुकी विपक्षमें वृत्ति होनेसे उसमें व्यभिचारीपना आता है। क्यों कि परस्वस्व परपदार्थ से भिन्न अपने इस स्वात्मामें ज्ञानचेतना होती है। तथा सम्पूर्ण सम्यग्ड हियों के धारा प्रवाहमें अथवा अखण्ड धारासे ज्ञान चेतना होती है।

२. योग संक्रान्तिका कारण

रा. बा, हि/१/४४/७६८ उपयोग क्षयोपशम रूप है सो मनके द्वारा होय प्रवर्ते है। सो मनका स्वभाव चंचल है। एक द्वायमें ठहरे नाहीं। याही तै इस पहिले ध्यान विषे, अर्थ व्यंजन योगके विषय उपयोगकी पलट्नी जिना इच्छा होय है।

योग संक्रान्ति बन्धका कारण नहीं रागादि हैं

पं.ध./ज./८८० व्याप्तिर्बन्धस्य रागाद्यं मीव्याप्तिविकल्पे रिव। विकल्पेर-स्य चाव्याप्ति में व्याप्तिः किल तैरिव। व्या = रागादि भावोके साथ बन्धकी व्याप्ति है किन्तु जैसे ज्ञानके विकल्पोके साथ अव्याप्ति है वैसे ही रागादिके साथ वन्धकी अञ्चाप्ति नहीं, अर्थात् विकल्पोंके साथ इस बन्धकी अन्याप्ति ही है. किन्तु रागादिके साथ जैसी बन्धन की व्याप्ति है ऐसी बन्धके विकरणोंके साथ व्याप्ति नहीं हैं।८८०।

शुचि --१. रा. वा /१/०/६/६०२/४ शुचित्रं द्विविधम् -- लौ किकं लोकोत्तरं चेति । तत्रारमनः प्रक्षालितकर्ममलक्तङ्कस्य स्वारमन्य-वस्थानं लोकोत्तरं शुचित्वम्, तत्साधनं च सम्यग्दर्शनादि तद्वन्तश्च साधवः तदधिष्ठानानि च निर्वाणभूम्यादोनि तत्प्राद्रशुपायत्वाच्छ्न-चिन्यपदेशमहं न्ति । लौकिकं शुचिखमण्टविधम् कालाग्निमस्म-मृत्तिकागोमयसिलिज्ञानिनिविचिकित्सत्वभेदात्। च्लौकिक और लोकोत्तरके भेदसे श्रुचिश्व दो प्रकारका है। कर्ममल-कर्तको को-कर आत्माका आत्मामें ही अवस्थान सोकोत्तर शुचित्व है। इसके साधन सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रयधारी साधुजन तथा उनसे अधिष्ठित निर्वाणभूमि आदि मोक्ष प्राप्तिके उपाय होनेसे शुचि हैं। काल, अग्नि, भस्म, मृत्तिका, गोबर, पानी, ज्ञान और निर्विचिकित्सा— ग्लानिरहितपना, इस प्रकार लौकिक—लाक प्रसिद्ध शुचित्व आठ प्रकार का है (चा. सा /१६०/६)।

रा. वा./६/१२/१०/४२३/४ लोभप्रकाराणामुपरमः शीचम्। ≔लीभके प्रकारों से निवृत्ति शीच है। २. पिशाच जातीय व्यन्तर देवोंका एक भेद-दे. पिशाच।

शुतभुंग-ई. श. ७ के उत्तरार्धमें मान्यखेटके राजा थे। (सि. वि/ प्र. ११ पं. महेन्द्र)।

গুৱ—

१. गुद्धका लक्षण

घ. १३/५.४.५०/२८६/११ वचनार्थगतदोषातीतस्त्राच्छ्रद्वः सिद्धान्तः । च्चवचन और अर्थगत दोषोंसे रहित होनेके कारण सि**द्धान्तका** नाम शुद्ध है।

आ. प /६ शुद्धं केवलभावम् । – शुद्ध अर्थात् केवलभाव ।

- दे. तत्त्व/१/१ तत्त्व, परमार्थ, द्रवय, स्त्रभाव, परमपरम, ध्येय शुद्ध और परम एकार्थवाची हैं।
- स. सा./आ./६ अशेषद्रव्यान्तरभावेभ्यो भिन्नत्वेनोपस्यमानः सुद्ध इरयभिलप्यते । = समस्त अन्य द्रव्योंके भावांसे भिन्न उपासित होता हुआ। 'शुद्ध' कहताता है।
- स. सा, ता. वृ./१०२/१६२/१६ निरुपाधिरूपमुपादानं शुद्धं, पीतत्वादि-गुणानां सुवर्णवत्ः अनन्तज्ञानादिगुणानां सिद्रजीववत् । = निरुपाधि रूप उपादान शुद्ध कहलाता है जैसे -- सुवर्णके पीतत्व आदि गुण, की भौरित सिद्धा जीव के अनन्त ज्ञान आदि गुण 🖟
- प. प्र./टो./१/१३ शुद्धो रागादिरहितो । ≔ सुर्द्ध अथित रागादि रहित ।
- द्र. सं./टो./२८/८०/१ की चूलिका—निध्यात्वलगादिसमस्तविभाव-रहितरवेन सुद्ध इत्युच्यते । अमिथ्यास्य, राग आदि भावों से रहित होनेके कारण आत्मा शुद्ध कहा जाता है।
- पं. घ./उ./२२१ शुद्धं सामाप्यमात्रस्वादशुद्धं तद्विशेषतः। 🖛 वस्तु सामान्य रूपसे अनुभवमें आती है तब यह शुद्ध है, और विशेष भेदों। की अनेक्षाने अशुद्ध कहलाती है।

२. अन्य सम्बन्धित विषय

१. जीवमें कार्यचित् शुद्धत्व व अशुद्धत्व ।

-- दे. जीव/३।

२. शुद्धाशुद्ध पारिणामिक भाव ।

-दै, पारिणामिक।

शुद्ध चेतना—हे. चेतना/१।

शुद्धद्रव्याथिक नय—_{हे. नय/17/२ ।}

बुद्धनय—हे. नय/I/४/४।

शुद्ध निश्चयनय—हे. नय/V/१।

शुद्ध पर्यायाथिक नय—३_{. नय/1∨/४।}

शुद्धमिति — भूत कालीन द्वार्विशति तीर्थंकर — दे. तीर्थं कर/४।

शुद्धात्म दर्शन— } निर्विकल्प समाधिके अपरनाम । शुद्धात्म स्वरूप— } —दे, मोक्षमार्ग/२/४।

शुद्धाद्वेत—दे, वेदान्त/७ ।

शुद्धाभदेव- भूतकातीन पाँचवें तीर्थं कर-दे. तीर्थं कर/४।

शुद्धि-जैनामनायमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भोजनादि आदि रूप अनेक प्रकारकी शुद्धियोंका निर्देश है जिनका विवेक यथायोग्य प्रत्येक धमन्त्रिष्ठानमें रखना योग्य है।

१. शुद्धि सामान्यका लक्षण

स. सा./ता. वृ./३०६-३०७/३८८/१३ दोषे सति प्रायश्वित्तं गृहीत्वा त्रिशुद्धिकारणं शुद्धिः । ≔दोष होनेपर प्रायश्चित्त लेकर विशुद्धि वरनाशुद्धिकहलाती है।

२. शुद्धिके भेद

१. संयमकी आठ शुद्धियाँ

रा. वा /१/६/१६/१६६/१ अपहतसंयमस्य प्रतिपादनार्थः गुद्धचष्टकोपदेशो दष्टव्यः । तथ्यभा, अष्टौ शुद्धयः —भावशुद्धिः, कायशुद्धिः, विनयशुद्धिः, ईयपिथश्द्रिः, भिक्षाशुद्धिः, प्रतिष्ठापनशुद्धिः, शयनासनशुद्धिः, वाक्य-शुद्धिश्चेति । = इस अपहृत संयमके ,प्रतिपादनके लिए ही इन आठ शुद्धियोंका उपदेश दिया गया है--भाव शुद्धि, कायशुद्धि, विनय-शुद्धि, ईथपिथ शुद्धि, भिक्षाशुद्धि, प्रतिष्ठापन शुद्धि, शयनासनशुद्धि और वाक्यशुद्धि । (रा. वा./प/१/३०/४६४/२६); (चा. सा./७६/१); (अन. ध /६/४१)।

२. सल्लेखना सम्बन्धी अन्तरंग व बहिरंग शुद्धियाँ

भ. आ./मू./१६६-१६७/३७१-३८० आसोयणाए सेज्जसंथारुवहीण भत्त-पाणस्सः वेजजावच्चकराण य सुद्धी खलु पंचहा होइ।१६६। अहवा दंसणणाणचरित्तसुद्धी य विणयसुद्धी य । आवासयसुद्धी वि य पंच वियव्या हवदि सुद्धी ११६७। = आलोचनाकी शुद्धि, शय्या और संस्तरकी शुद्धि, उपकरणोंकी शुद्धि, भक्तपान शुद्धि, इस वैयावृत्त्यकरण युद्धि पाँच प्रकारकी है। १६६। अथवा दर्शन युद्धिः ज्ञानशुद्धिः चारित्र शुद्धिः विनयशुद्धिः और आवश्यक शुद्धि ऐसी पाँच प्रकारकी है ।१६७। 🗕 (अन. घ./८/४२)।

३ स्वाध्याय सम्बन्धी चार शुद्धियाँ

ध, ६/४,१.५४/२५३/१ एरथ वनखणंतिष्टि मुणंतिष्टि वि दव्य-खेत्त-काल-भ वसुद्धीहि वक्खाण परणवाबारी कायठवी। 🕶 यहाँ इयारियान करनेवाले और मुननेवालोंको भी द्रव्यशुद्धि, क्षेत्रशुद्धि, कालशुद्धि और भावशुद्धिसे व्याख्यान करनेमें या पढ़नेमें प्रवृत्ति करना चाहिए । (विशेष-दे, स्वाध्याय/२); (अन, ध./१/४/८४७)।

४. लिंग व व्रतकी १० बुद्धियाँ

मू. आ./७६१ लिंगं वदं च सुद्धी वसदि विहारं च भिक्रतणाणं च। उज्मलसुद्धी य पुणो वक्कं च तवं तथा भाणं ।७६१। = लिंगशुद्धि, बतशुद्धि, वसतिशुद्धि, विहारशुद्धि, भिक्षाशुद्धि, ज्ञानशुद्धि, उज्मण-शुद्धि, वाक्यशुद्धि, तपशुद्धि और ध्यानशुद्धि ।

५ छौकिक आठ शुचियों

दे. शुचि । काल, अग्नि, भस्म, मृतिका, गोबर, जल, ज्ञान और निर्वि-चिकित्साके भेदसे आठ प्रकारकी लौकिक शुचि है।

३. मन, वचन व काय शुद्धियोंका रुक्षण

भ, आ./वि./१६७/३८०/१३ टष्टफलानपेक्षिता विनयशुद्धिः। तस्या सत्यामुपकरणादिलोभो निरस्तो भवति। =कीर्ति आदर इत्यादि लौकिक फर्सोकी इच्छा छोड़कर साधर्मिक जन, गुरुजन इत्यादिकों-का विनय करना विनय शुद्धि है, इसके होनेसे उपकरण आदि सोभका अभाव होता है।

नि. सा./मू./११२ महमाणमायलोहिविविज्जिय भावो दु भावसुद्धि ति । परिकहियं भव्याणं सोयासोयप्पदरिसीहिं ॥=(असोचना प्रकरणमे) मद, मान, माया और लोभ रहिल भाव वह भाव शुद्धि है। ऐसा भव्योंको लोकालोकके द्रष्टाओं ने कहा है १११२। (सू. आ./२७६)

नोट--वचनशुद्धि---दे, समिति/१।

रा. बा / १/६/१६/११७/४ तत्र भावशुद्धिः कर्मक्षयोपशमजनिता मौक्ष-भार्गरुच्याहितप्रसादा रागाद्युपप्सवरहिता। तस्यां सत्यामाचारः पकाशते परिशुद्धभित्तिगतचित्रकमवत् । कायशुद्धिनिरावरणाभरणा निरस्त्स स्कारा यथाजातमल धारिणी निराकृताङ्ग विकारा सर्वत्र प्रयतकृतिः प्रशमसुखं युतिभिव प्रदर्शयन्तीति । तस्यां सरयां । न स्त्रतोऽन्यस्य भयमुपजायते नाप्यन्यतस्तस्य । विनयशुद्धिः अहेदादिषु परमगुरुषु यथाई पूजा प्रवणाः, ज्ञानादिषु च यथाविधि भक्तियुक्ताः गुरोः सर्वत्रानुक्लवृत्तिः, प्रश्नस्वाध्यायवाचनाकथाविज्ञप्त्यादिषु प्रतिपत्तिकुशला, देशकासभावावबोधनिषुणा, आचार्यानुमतचारिणी । तन्भूताः सर्वसप्दः सैषा भूषा पुरुषस्य, सैव नौः संसारसमुद्रतरणे । =भावशुद्धि-कमके क्षयोपशमसे जन्य, मोक्षमार्गकी रुचिसे जिसमे विशुद्धि प्राप्त हुई है और जो रागादि उपद्रवोंसे रहित है वह भाव-शुद्धि है। इसके होनेसे आचार उसी तरह चमक उठता है जैसे कि स्वच्छ दिवासपर आसेखित चित्र : कायगुद्धि—यह समस्त आवरणः और आभरणोंसे रहित, शरीर संस्कारसे शून्य, यथाजात मलको धारण करनेवाली, अंगविकारसे रहिस, और सर्वत्र यहनाचार पूर्वक प्रवृत्ति रूप है। यह मुर्तिमान् प्रशमसुखकी तरह है। इसके होनेपर न तो दूसरों से अपनेको भय होता है और न अपनेसे दूसरो को। विनयशुद्धि-अर्हन्त आदि परम गुरुओंमें यथायोग्य पूजा-भक्ति आदि तथा ज्ञान आदिमें यथाविधि भक्तिसे युक्त. गुरुओं मे सवेत्र अनुक्त वृत्ति रखनेवाली, प्रश्न स्वाध्याय, वाचना, कथा और विज्ञप्ति आदिमें कुशल, देश काल और भावके स्वरूपको समभानेमें तत्वर तथा आचार्यके मतका आचरण करनेवाली विनयशुद्धि है। समस्त सम्पदाएँ विनयमूलक हैं। यह पुरुषका भूषण है। यह संसार समुद्रसे पार उतारनेके लिए नौकाके समान है।

घ. १/४,१,५४/२५४/१० अवगयराग-दोसाहं कारट्ट-रुद्दुज्फाणस्स पंच-महब्बयकतिदस्स तिगुत्तिगुत्तस्स णाण-दंसण-चरणादिचारणविड्ड-दस्स भिक्खुस्स भावसुद्धी हांदि । = राग, द्वेष, अहंकार, आतं व रौद्र ध्यानसे रहित, पाँच महावर्तों से युक्त, तीन गुप्तियों से रक्षित. तथा ज्ञान दर्शन व चारित्र आदि आचारसे वृद्धिको प्राप्त भिक्षुके

भावशुद्धि होती है।

वसु. था./२२६-२३० चइ छ.ण अहरुद्दे भणसुद्धी होइ कायञ्चा ।२२६। सन्बस्थसपुडंगस्स होइ तह कायसुद्धी वि ।२३०। =आतं, रौद्र ध्यान छोड़कर मनःशुद्धि करना चाहिए। २२६। सर्व ओरसे संपुटित अर्थात विनीत अंग रखनेवाले दातारके **कायशुद्धि** होती है।

४, द्रव्य, क्षेत्र व काल शुद्धियोंके लक्षण

मू आ /२७६ रुहिरादि पूर्यमंसं टब्बे खेत्ते सदहत्थपरिमाणं । =लोही, मल, मूत्रः बीर्यः, हाड, पीव मांसरूप द्रव्यका शरीरसे सम्बन्ध करना। उस जगहरे चारों दिशाओं में सौ सौ हाथ प्रमाण स्थान छोड़ना कमसे द्रव्य व क्षेत्रशुद्धि है।

- **ध.** १/४,१,५४/गा. १०३-१०७/२५६ प्रमितिररत्निशतं स्यादुच्चार-विमोक्षणस्रितेराराद । तनुसत्तिलमोक्षणेऽपि च पञ्चाशदरात्नरेवातः। । १०३ । मानुषशरीरलेशायसबस्याप्यत्र दण्डपञ्चाशतः । संशोध्याः तिरहचां तदर्द्धमात्रेव भूमिः स्याद ।१०४। क्षेत्रं संशोध्य पुनः स्वहस्त-पादौ विशोध्य शुद्धमनाः। प्राशुकदेशावस्थो गृहीयाद्व वाचना पश्चात् ।१०७। = मल छोड्नेकी भृमिसे सौ अर्रातन प्रमाण दूर, तनु-सलिल अर्थात् मुत्र छोड़नेमें भी इस भूमिसे पचास अरहिन दूर, मनुष्य शरीरके लेशमात्र अवयवके स्थानसे पचास धनुष तथा तिर्यचिके शरीर सम्बन्धी अवयवके स्थानमे उससे आधी मात्र अर्थात् पच्चीस धनुष प्रमाण भूमिको शुद्ध करना चाहिए।१०३-१०४। क्षेत्रकी शुद्धि करनेके पश्चात अपने हाथ और पैरोंको शुद्ध करके त्रदनन्तर विशुद्ध मन युक्त होता हुआ प्राप्तुक देशमें स्थित होकर बाचनाको ग्रहण करे ।१०७।
- दे, आहार/11/२/१ उद्देशम्, उत्पादन्, अहान्, संयोजना, प्रमाण, अंगार्, धूम, कारण-इन दोशोंसे रहित भोजन प्रहण करना वह आठ प्रकार-को पिंड (इब्य) शुद्धि है।
- ध, १/४,१,५४/२५३-२५४/३ तत्र ज्वर-कुश्चि-शिरोरोग-दुःस्वव्न-रुधिर-विण्-मूत्र-लेपातीसार-पूयसावादीनां शरीरे अभावो द्रव्यशुद्धः। व्याख्यातृव्यावस्थितप्रदेशात चतसृष्विप दिक्ष्वप्राविश्तिसहस्राया-तासु-विण्मुत्रास्थि-केश नख-खगाद्यभावः पष्टातीतवाचनातः आरा-त्पञ्चेन्द्रियदारीराद्रास्थि-त्वङ्मांसासृवसंबन्धाभावश्च क्षेत्रशुद्धिः । विद्युदिन्द्रधनुग्रेहोपरागाकालवृष्ट्यभ्रगर्जन - जीमूतबातप्रच्छाद -दिग्दाह - धुमिकापात - संन्धास-महोपवास-नन्दीश्वरजिनमहिमाद्य-भावः कालशुद्धिः। अत्र कालशुद्धिकारणविधानमभिधास्ये। तं जहा-पच्छियरत्तिसज्भागं खमाविय नहि णिक्कत्तिय पासुवै भूमिपदेसे काओसग्येण पुटवाहिमुहो द्वाडदूण गवसाहापरियट्टणकालेण पुटवदिस सोहिय पुणो पदाहिणेण पन्नटिय एदेणेन कालेण जम-नरुण-सोम-दिसासु सोहिदासु छत्तीसगाहुचारणकालेण (३६) अद्वसदुरसास-कालेण वा कालसुद्धी समप्पदि (१०८) अवरण्हे वि एवं चेव कालसुद्धी कायव्या । णवरि एवकेवकाए दिसाए सत्त-सत्त गाहापरियष्ट्रणेण परि-च्छिण्णकाला ति णायव्या। एरथ सव्यगाहापमाणमद्वायीस (२८) चउरासीदि उस्सासा (५४) पुणो अणस्थमिदे दिवायरे खेत्तसुद्धि कादूण अत्यमिरे कालसुद्धि पुट्यं व कुडजा । णवरि एत्थ कालो वीसगाहुचा-रणमेत्तो (२०) सट्टिउस्सासमेत्तो वा (६०) = १. द्रव्यशुद्धि — ज्वर कुक्षि-रोग, शिरोरोग, कुस्सित स्वप्न, रुधिर, विष्टा, मूत्र, लेप, अतिसार और पीचका बहना इत्यादिकोका शरीरमें न रहना द्रव्यशुद्धि कही जाती है। २, क्षेत्रशुद्धि—व्याख्यातासे अधिष्ठित प्रदेशसे चारों ही दिशाओं में अट्टाईस हजार (धनुष) प्रमाण क्षेत्रमें विष्ठा, मूत्र, हड्डी, केश, नख और केश तथा चमड़े आदिके अभावको; तथा छह अतीत वाचनाओं से (१) समीपमें (या दूरी तक) पर्चेन्द्रिय जीवके शरीर सम्बन्धी गीली हड्डी, चमड़ा, मांस और रुधिरके सम्बन्धके अभावको क्षेत्रशुद्धि कहते है (मू. आ./२७६)। ३. कालशुद्धि---विजली, इन्द्रधनुष, सूर्य चन्द्रका ग्रहण, अकाल वृष्टि, मेघगर्जन,

मैघोंके समूहसे आच्छादित दिशाएँ, दिशादाह, धूमिकापात, (कुहरा), संन्यास, महोपवास, नन्दीश्वर महिमा और जिनमहिमा इरयादिके अभावको कालशुद्धि कहते हैं। यहाँ कालशुद्धि करनेके विधानको कहते हैं। वह इस प्रकार है - पश्चिम रात्रिके सन्धिकालमें क्षमा कराकर बाहर निकल प्राप्तक भूमिप्रदेशमें कायोत्सर्गसे पूर्वाभिमुख स्थित होकर नौ गाथा खोके उचारणकाल-से पूर्व दिशाको शुद्ध करके फिर प्रदक्षिणा रूपसे पलट कर इतने ही कालसे दक्षिण, पश्चिम व उत्तर दिशाओंको शुद्ध कर लेनेपर ३६ गाथाओं के उचारण कालसे अथवा १०८ उच्छ्वास कालसे कालशुद्धि समाप्त होती है। अपराह कालमें भी इस प्रकार ही कालशुद्धि करना चाहिए। निशेष इतना है कि इस समयकी कालशुद्धि एक-एक दिशाओं में सात-सात गाथाओं के उचारण कालसे सीमित है, ऐसा जानना चाहिए। यहाँ सन गाथाओंका प्रमाण २८ अथवा उच्छ्वासोंका प्रमाण ८४ है। पश्चात् सूर्यके अस्त होनेसे पहले क्षेत्र शुद्धि करके सूर्यके अस्त हो जानेपर पूर्वके समान कालशुद्धि करना चाहिए। विशेष इतना है कि यहाँ काल बीस २० गाथाओं के उचारण प्रमाण अथवा ६० उच्छ्वास प्रमाण है। (अथित प्रत्येक दिशामें ५ गाथाओं का उचारण करे)। (मू. खा /२७३)।

क्रिया कोष/ प्रथम रसोईके स्थान चक्की उस्तरी ह्रय त्रय जात। चौथो अनाज सोधने काज जमीन चौका पंचम मह ॥ छठमें आटा छनने सोय सप्तम थान सयनका होय। पानी थान सु अष्टम जान सामायिकका नवमों थान।

भ. दर्शन ज्ञान व चारित्र शुद्धियोंके लक्षण

म्, आ./गथा सं. चलचवलचवलजीविदिमणं णाऊण माणुसत्तणम-सारं। णिवित्रण्यकामभोगा धम्मिम् उबद्दिसदीया १७७३। णिम्मा-लियसुमिणावियधणकणयसमिद्धबंधवजणं च । पयहाति वीरपूरिसा विरत्तकामा गिहावासे १७७४। उच्छाहणिच्छिदमदी वर्वासद्वयसाय-बद्धकच्छा य । भावाणुरायरताः जिण्प°णत्तिम्म ध्म्मम्मि ।७७७। अपरिग्गहा अणिच्छा संतुष्टा सुद्विदा चरिक्तम्मि। अवि णीएवि सरीरेण करंति मुणी ममत्ति ते १७८३। ते लक्कणाण चक्ख् ण।णुज्जो-एण दिद्वपरमट्टा । णिस्संकिदणिव्यदिणिञ्चादवस्परवक्मा साध्र ।५२५। उवलद्धपुण्णपावा जिणसासणगहितसुणिदपञ्जासा । कर-चरणसंबुडंगा भाणुवजुत्ता सुणी होति । ५३४। ते छिण्णगेहबंधः णिण्लोहा अप्पणो सरीरम्मि। ण करंति किंचि साह परिसंठप्पं सरीरम्मि ।८३६। उप्पण्णम्मि य बाही सिश्वेयण कुनिखवेयणं चेव । अधियासिति सुधिदिया कायतिमिछ ण इच्छति। ५३१। णिच्चं च अप्पमत्ता संजमसमिदीसु भाषजोगेसु । तत्रचरणकरणजुत्ता हवं ति सबणा समिदपावा ।८६२। विसएस पधावता चवला चंडा तिदंड-गुर्सेहिं। इंदियचीरा घोरा नसम्मि ठिनदा ववसिदेहिं। १७३। य च एदि विणिस्सरिदुं मणहत्थी काण वारिबंधणीयो । बद्धो य पयइंडो विरायरज्जूहि धीरैहि। ८७६। एदे इंदियतुरया पयदीदोसेण चोइया संता । अम्मरगं णेंति रहं करेइ मणपरगहं बलियं ।५७६। 🛥 १. तिंग शुद्धि-अस्थिर नाशसहित इस जीवनको और परमार्थ रहित इस मनुष्य जन्मको जानकर खी आदि उपभोग तथा भोजन आदि भोगों से अभिलाषा रहित हुए, निग्रेन्थादि स्वरूप चारित्रमें दढ़ बुद्धिवाले. घरके रहनेसे विरक्त चित्तवाले ऐसे बीर पुरुष भोगमें आये फूलोंकी तरह गाय, घोड़ा आदि --धन-सोना इनसे परिपूर्ण ऐसे बान्धव जनोंको छोड़ देते हैं 199३-७७४। त्वपमें तस्तीन होनेमें जिनकी बुद्धि निश्चित है जिन्होंने पुरुषाथे किया है, कमें के निमूल करनेमें जिन्होंने कमर कसी है, और जिनदेव कथित धर्ममें पर-मार्थभूत मक्ति उसके प्रेमी हैं, ऐसे मुनियोंके लिंगशुद्धि होती है।७७७। २. व्रतशुद्धि-आश्रय रहित, आंशा रहित, सन्तीषी चारित्रमें तत्पर ऐसे मुनि अपने शरीरमें ममत्व नहीं करते। ७८३।

३. ज्ञानसुद्धि - जिन्होंने इ।न नेत्र पा लिया है, ऐसे साधु हैं, ज्ञान-रूपी प्रकाशसे जिन्होंने सब लोकका सार जान लिया है, पदार्थीं में शंका रहिता, अपने बलके समान जिनके पराक्रम है ऐसे साधु हैं। ।८२८। जिन्होंने पुण्य-पायका स्वरूप जान लिया है, जिन मतमें स्थित सब इन्द्रियोंका स्वरूप जिन्होंने जान लिया है, हाथ, पैर, कर से ही जिनका शरीर ढँका हुआ है और ध्यानमें उथमी हैं।८३६। ४. उज्भणशुद्धि-पुत्र-स्त्री आदिमें जिनने प्रेमरूपी बन्धन काट दिया है और अपने शरीरमें भी ममृता रहित ऐसे साधु शरीर-में कुछ भी – स्नानादि संस्कार नहीं करते। पश्की ज्वर रोगादिक उत्पन्न होनेपर भी मस्तकमें पीड़ा, उदरमें पीड़ा होने पर भी चारित्रमें इड परिणाम बालें वे मुनि पीड़ाको सहन कर लेते हैं, परन्तु झरोरका उपचार करनेकी इच्छा नहीं करते। १३६। १. तप-शुद्धि -वे मुनीस्वर सदा संयम, समिति, ध्यान और योगोंमें प्रमाद रहित होते हैं और तपचरण तथा तैरह प्रकार के करणों में उद्यमी हुए पापोंके नाश करने वाले होते हैं। व्हरा ६, ध्यान शुद्धि करा, रसादि विषयों मैंदी इते चंचल क्रोधकों प्राप्त हुए भयंकर ऐसे इन्द्रिय रूपी चीर मन बचनकाय गुप्तिशाले चारित्रमें उद्यमी साधुजनीने अपने कशमें कर लिये हैं। ८७३। जैसे मस्त हाथी बारिबन्धकर रोका गया निकलनेको समर्थ नहीं होता. उसी तरह मन रूपी हाथी ध्यान-रूपी बारिबन्धको प्राप्त हुआ धीर अति प्रचण्ड होने पर भी मुनियाँ कर वैरागरूपी रस्से कर संयम बन्धको प्राप्त हुआ निकसने में समर्थ नहीं हो सकता। ५७६। ये इन्द्रिय रूपी घोड़े स्वाभाविक राग-द्वेष कर प्रेरे हुए धर्मध्यान रूपी रथको विषयरूपी कुमार्गमें ले जाते हैं, इसलिए एकाग्र मनरूपी लगामको बलवान करो ।८७६।

भ. आ./वि./१६७/३८०/१ काले पठनिमत्यादिका ज्ञानशुद्धिः, अस्यां सत्यां अकालपठनाद्याः क्रिया ज्ञानावरणमूलाः परित्यक्ता भवन्ति । पञ्चविशति भावनाश्चारित्रशुद्धिः सत्यौ तस्यां अनिगृहीतमनः-प्रचारादिशुभपरिणामोऽभ्यन्तरपरिग्रहस्त्यक्तो भवति । . . . भनसावद्य-योगनिवृत्तिः जिनगुणानुरागः बन्चमानश्रुतादिगुणानुवृत्तिः कृताप-राधविषया निन्दा, मनसा प्रत्याख्यानं, शरीरासारानुपकारित्व-भावना, चेत्यावश्यकशुद्धिरस्यां सत्यां अशुभयोगो जिनगुणाननु-रागः श्रुतादिमाहात्म्येऽनादरः, अपराधाजुष्सा, शरीरममता चेत्यमी दोषा परिग्रहनिराकृता भवन्ति। = १, ज्ञान-शुद्धि-योग्य कालमें अध्ययन करना, जिससे अध्ययन किया है ऐसे गुरुका और शास्त्रका नाम न छिपाना इत्यादि रूप झान-शुद्धि है। यह शुद्धि आत्मामें होनेसे अकाल पठनादिक क्रिया जो कि ज्ञानावरण कमीसवका कारण है त्यागी जाती है। २. चा स्थि-शुद्धि - प्रत्येक वतकी पाँच-पाँच भावनाएँ हैं, पाँच वतोंकी पचीस भावनाएँ हैं इनका पालन करना यह चारित्रशुद्धि है। इन भाव-नाओंका त्याग होनेसे मन स्वच्छन्दी होकर अशुभ परिणाम होते हैं। ये परिणाम अभ्यन्तर परिग्रह रूप हैं। बतों की पाँच भावनाओंसे अम्यन्तर परिग्रहोंका रयाग होता है। ३, आवश्यक शुद्धि - सावदा योगोंका त्याग, जिन गुणोंपर प्रेम, बंद्यमान आचायदिके गुणोका अनुसरण करना, किये हुए अपराधोंकी निन्दा करना, मनसे अपराधों-का त्याग करना, शरीरकी असारता और अपकारीपनेका विचार करना यह सब आवश्यकशुद्धि है। यह शुद्धि होनेपर अशुभ योग, जिन गुणोंपर अप्रेम, आगम, आचार्यादि पूज्य पुरुषोंके गुणोंमें अप्रीति, अपराध करनेपर भी मनमें पश्चात्ताप न होना, अपराधका त्यागन करना, और शरीरपर ममता करना ये दोष परिग्रहका त्याग करनेसे नष्ट होते हैं।

६. सल्छेखना सम्बन्धी शुद्धियोंके लक्षण

भ. था./बि./१६६/३७१/२ मायामृषार्राहतता आलोचना सुद्धिः।...

उद्गामोरगदने पणादोष्र हितता समेदं इत्यपरिप्राहाता च वसति-संस्तरयोः सुद्धिस्तामुपगतेन उइगमादिदोषोपहतयोर्नसतिसंस्तर-सोस्स्यागः कृत इति सबस्युपिष्ट्यागः । उपकरणादीनामपि उइगमा-दिरहितता शुद्धिस्तस्यां सत्यां उइगमादिदोषदृष्टानां असंयमसाध-नानां ममेदं भावपूलानां परिग्रहाणां त्यागोऽस्त्येव । संयत्वे यावृत्य-क्रमज्ञता वैयावृत्यकारिशुद्धिः सत्यां तस्यां असंयता अक्रमज्ञारच न मम बैयावृत्यकरा इति स्वीक्रियमाणास्त्यक्ता भवन्ति ।=१. आसोचना शुद्धिः - माया और असत्य भाषणका त्याग करना यह आखोचना शुद्धि है। २. शब्या व संस्तर शुद्धि-उइगम, उत्पादन, रेषणा दोषोंसे रहित यह मेरा है ऐसा भाव वसतिकामें और संस्तरमें होना यह वसति-संस्तरशुद्धि है। इस शुद्धिको जिसने धारण किया है उसने उद्गगम उत्पादनादि दोषगुक्त वसतिकाका स्याग किया है, ऐसा समभना चाहिए। इसलिए इसमें उपधिका भी रयाग सिद्ध हुआ समभना चाहिए। ३. उपकरण शुद्धि-पिछी, कमण्डल वर्षेरह उपकरण भी उद्गमादि दोष रहित हों तो वे शुद्ध हैं, उद्गाम आदि दोषोंसे अशुद्ध उपकरण असंयमके साधन हो जाते हैं। उसमें ये मेरा है ऐसा भाव उत्पन्न होता है अतः वे परिग्रह हैं, उनका रयाग करना यह उपकरणशुद्धि है। ४ वैयावृत्यकरण शुद्धि—साधु जनकी वैयावृत्त्यकी पद्धति जान लेना यह वैयावृत्य करने वालोंकी शुद्धि है यह शुद्धि होनेसे असंयत लोक अक्रमज्ञ लोग मेरा वैयावृत्य करनेवाले नहीं हैं ऐसा समक्षकर रयाग किया जाता है।

🕸 अन्य सम्बन्धित विषय

१. आहार शुद्ध —दे. आहार/1/२।
 २. मिक्षा शुद्ध —दे. मिक्षा/१।
 ३. मिक्षापन हैर्याण व तत्त्व रुदि —दे मिक्षि/१।

३. अतिष्ठापन, ईर्यापथ, व दचन शुद्ध -दे, समिति/१।

४. शयनाशन शुद्धि —दे. वसतिका।

शुद्धोदन-- महात्मा बुद्ध के पिता थे (द, सा./२७ प्रेमी जी.)।

शुद्धोपयोग — हे. उपयोग/11/२।

ज्ञुभ-१. ग्रुम व अशुभ नामकर्मका लक्षण

स. सि./८/११/३६२/१ यदुदयाद्रमणीयत्वं तच्छ्वभनाम । तद्विपरीत-मशुभनाम । — जिसके उदयसे रमणीय होता है वह शुभ नामकर्म है। इससे विपरीत अशुभ नामकर्म है। (रा. वा./८/११-२७-२८/ ५७६/६); (गो. क./जी. प्र./३३/३०/६)।

ध, ६/१.६.१.२८/६४/८ जस्स कम्मस्स उदएण अंगीवंगणामकम्मोदय-जणिद अंगणमुवंगाणं च मुहत्तं होदि तं मुहं णाम। अंगोवंगाणम-मुहत्त णिव्यत्तयममुहं णाम। = जिस कर्मके उदयसे अंगोपांग नाम-कर्मीदय जनित अंगों और उपांगोंके शुभ (रमणीय) पना होता है, वह शुभनामकर्म है। अंग और उपागोंके अशुभताको उत्पन्न करने-वाला अशुभ नामकर्म है।

ध. १३/५.५.१०१/६६४/१२ जस्स कम्मस्सुद्रण चक्कविट्टिबल्देव-वासुदेव-तादिरिद्धीणं सूचया संखंकुसारविदादओ अंग-पच्चंगेसु उप्पज्जंति तं सुहणामं । जस्स कम्मस्सुद्रएणं असुहलक्ष्णाणि उप्पज्जंति तम-सुहणामं ।= जिस कर्मके उदयसे चक्रवित्तिव, बल्देवत्व, और वासु-देवत्व आदि मृद्धियोंके सूचक शंख. अंकुश और कमल आदि चिह्न अंग-प्रत्यंगोंमें उत्पन्न होते हैं वह शुभ नामकर्म है। जिस् कर्मके उदयसे अशुभ लक्षण उत्पन्न होते हैं वह अशुभ नामकर्म स्थण है।

२. अन्य सम्बन्धित विषय

१. अशुभसे निवृत्ति शुभमें प्रवृत्तिका नाम ही चारित्र है —(दे. चारित्र/१/१२)।

२. मनःशुद्धि ही बास्तविक शुद्धि है। — दे, साधु/३।

३. शुभ-अशुभ प्रकृतियोंको बन्ध, उदय, सत्त्व प्ररूपणाएँ ।

--दे. वह वह नाम ।

४. पुण्य-पाप प्रकृति सामान्य

- दे. प्रकृतिबंध/२।

शुभकोति—काष्ठा संघ के माधुरगच्छ में देवकीर्त के शिष्य। कृति—शान्तिनाह चरिछ। समय--देवकीर्ति ने वि. ११४१ में मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई। तदलुसार वि. श-१४। (ती./३/४१२)।

शुभवद्र-- १.आप राजा मुख्ज तथा भर्तृ हरिके भाई थे, जिनके लिये विश्वभूषण भट्टारक ने अपने 'भक्तामर चरित्र' की उत्थानिका में एक सम्मी-बौड़ी कथा सिखी है। ये पंचित्रितिकार पद्मनन्दि (ई.श.११ का उत्तरार्ध) के शिक्षा गुरु थे। कृति - ज्ञानार्णव। समय - वि १०६०-११२६ (ई. १००३-१०६८)। (आ. अनू /प्र. १२/ए एन. उप.); (ती./३/१४८,१५३)। २, नन्दिसंघ देशीयगण, दिवाकश्मन्दिके शिष्य और सिद्धान्तदेव के गुरु। पोयसल नरेश विष्णुवर्धन के मन्त्री गंगराज ने इनके स्वर्गवास के पश्चात् इनकी निषद्यका मनवाई और इन्हें 'धवला' की एक ताइपत्र लिपि भेंट की। समय-ई. १०६३-११२३ व. सं./प्र./H. L. Jain); (दे. इतिहास/७/४) । ३. नन्दि-संघ के देशीयगणमें मेधचक भैविद्य के शिष्य जिनकी समाधि ई. ११४७ में हुई। (दे. इतिहास/अ/१)। ४. तत्वानुशासन के कर्सा तथा नागसेन के शिक्षागुरु तथा देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य । समय- वि.१२२० (ई. १९६३) में स्वर्गवास । अतः चि. १२९४ (ई. ११५८-११८५)। (ती./३/१४८); (दे इतिहास/७/६) । ५, 'नरपिंगल' के रचयिता एक कन्नड़ आयुर्वेदिक विद्वात् । समय—ई. श. १२ का अन्त । (ती./४/-३११)। दै नन्दि संघ देशीयगण में गण्डविमुक्त मक्लधारी देव के शिष्य । समय – श, १९८० (ई. १२६८) में स्वर्गवास । (ती /३/१४८)। (दे. इतिहास/७/५)। ७. पद्मनन्दि पण्डित नं. ८ के गुरु। समय-वि **१३७० में स्वर्गवास । तदनुसार वि. १३४०-१३७०** (ई. १२८३-१३१३) (पं.वि./प्र.२८/A.N.Up) द.निदसंघ बलात्कार गणकी गुर्वावलीके अनुसार आप विजय कीर्ति के शिष्य और लक्ष्मीचन्द्र के गुरु थे। षट्भाषा कविकी उपाधिसे युक्त थे। न्याय, पुराण, कथा-पूजा आदि विषयोंपर अनेक ग्रन्थ रचे थे। कृति – १ प्रकृत व्याकरण, २ अंग पण्णिति, ३ शब्द चिन्तामणि, ४ समस्या वदन विदारण, ५ अपशब्द खण्डन, ६ तत्त्व निर्णय, ७ स्याद्वाद, ८ स्वरूप सम्बोधन वृत्ति, ६ अध्यात्म पद टीका, १० सम्यक्त्व कौमुदी, ११ सुभाषितार्णव, १२ सुभाषित रत्नावली, १३ परमाध्यात्मतरंगिनीकी संस्कृत टीका, १४ स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी संस्कृत टीका (माघ वि. १६१३) १५ पाण्डबपुराण (बि. १६०८, ई. १५६१), १६ करकण्ड **चरित्र** (ई. १५५४), १७ चन्द्रप्रभाचरित्र, १८ पद्मनाभ चरित्र, १६ प्रद्युमन चरित्र, २० जीवन्धर चरित्र, २१ चन्दन कथा, २२ नन्दीरवर कथा, २३ पाष्ट्यनाथ काव्य पंजिका. २४ त्रिश्क चतुर्विद्यति पूजा, २५ सिद्धाचेन, २६ सरस्वतीपूजा, २७ चिन्तार्माण पूजा, २८ कमे दहन विधान, २६ गणधर बलय विधान, ३० पल्योपम विधान, ३१ चारित्र शुद्धि विधान, ३२ चतुस्त्रिशद्धिकद्वादशशत ब्रतोचापन, ३३ सर्वतोभद्र विधान, ३४ समबक्षरण पूजा, ३४ सहस्रनाम, ३६ विमान शुद्धि विधान, ३७ प. आशाधरपूजा वृत्ति कुछ स्तोत्र आदि। समय-वि. १४७३-१६१३ (ई. १५१६-१४४६); (प. प्र./प्र. ९१८ A.N.Up.); (द्र. सं./प्र. ११ पं. जवाहरलाल); (पा. पु/प्र.१. A.N Up.); (जै./१/४५६)।—दे. इतिहास/७/४ ।

शुभनन्दि आप बप्पदेवके शिक्षा गुरु तथा षट्खण्डागमके ज्ञाता थे। रविनन्दिके सहचर थे। समय-डा. नेमियन्द्र के अनुसार वी. नि-श. ५-६ (ई. श. १)। (दे. परिकिष्ट)।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

Jain Education International

श्चभयोग--हे. योग/२।

शुभोषयोग--दे. उपयोग/11/४।

शुर्जि --- भरतक्षेत्रक। एक नगर - दे. मनुष्य/४।

गु^{6क}---भरतक्षेत्र आर्य खण्डकी एक नदी--दे. मनुष्य/४।

शूद्र — दे. वर्णव्यवस्था/४।

सून्य-१, सर्व द्रव्योंका अभाव शून्य दोष कहलाता है। (पं. ध./ पू./१४.६१३); २० जीवको कथंचित शून्य कहना—दे. जीव/१/३, ३. साध्य साधन व उभय विकल दृष्टान्त—दे. दृष्टांत ।

श्रुन्यनय - श्रुन्याश्र्न्य नय-दे. नय/1/६।

श्रुन्यध्यान---दे, शुक्लध्यान/१।

शून्य परिकर्माष्टक—हे. गणित/II/१/२३११

शन्यवाद-- १. मिथ्या शून्यवादका स्वरूप

यु, अनु./२६ व्यतीत-सामान्य-विशेष-भावाह विश्वाभिनापार्थ -विकन्पश्चन्यम् । खपुष्पवस्त्यादसदेव तत्त्वं प्रबुद्धतत्त्वाद्भवतः परेषाम् ।२६। = हे प्रबुद्ध तत्त्व बीर जिन ! आप अनेकान्तवादीसे भिन्न दूसरोंका सर्वथा सामान्य भावसे रहित, सर्वथा विशेष भावसे रहित तथा सामान्यविशेष भाव दोनोंसे रहित जो तत्त्व है वह सम्पूर्ण अभिनाषों तथा अर्थ विकल्पोंसे श्चन्य होनेके कारण आकाश-पुष्पके समान अवस्तु हो है। (और भी — दे. बौद्ध दर्शनमें महायान)।

भूर---१, भरत क्षेत्र आर्य खण्डका एक देश-दे. मनुष्य/४। २० राजाः यदुका पुत्र था तथा नेमिनाथ भगवान्का बाबा था। इसने शौर्यपुर बसाया था।--दे. इतिहास १०/१०।

श्रूरसेन — मथुराका समीपवर्ती प्रदेश । गोकुल वृन्दावन और आगरा इसीमें है (म, पु./प्र∙ २० पन्नालाल)।

दोषवत् अनुमान — हे, अनुमान/१।

दीखवती — रुचक पर्वत निवासिनी दिवकुमारी देवी — दे. लोक १/१३।

शैक्षे — स. सि./१/२४/४४२/० शिक्षाशीनः शैक्षः। – शिक्षा शीन (साधुः) शैक्ष कहनाता है।

रा. वा./१/२४/६/६२२/१७ श्रुतज्ञानशिक्षणपरः अनुपरव्रतभावनानिपुणः शैक्षक इति । = श्रुतज्ञानके शिक्षणमें तत्पर और सतत व्रतः भावनामें निपुण (साधु) शैक्ष है (चा. सा./१५१/२)।

शेल-सुनेरु पर्वतका अपरनाम-दे. सुमेरु ।

शैलकर्म--- दे. निक्षेप/४।

शैल भद्र - यक्ष जातिके व्यन्तर देवोंका एक भेद-दे, यक्ष।

शिला-नरककी तृतीय पृथिवी-दें, नरक/१।

शैवदर्शन---१, शुद्धाद्वैतका अपर नाम ।--दे, वेदान्त/७। २. वैदिक दर्शनका स्थूलसे सूक्ष्मको ओर विकास--दे, दर्शन (षड् दर्शन)।

शोक-. शोक व शोक नामकर्मका लक्षण

- स. सि./६/११/३२८/१२ अनुप्राहकसंबन्धविच्छेदे वैक्तव्यविशेषः शोकः।
- स. सि./-/१/३-६/१ पद्धिपाकाच्छोचनं स शोकः। -१ उपकार करनेवालेसे सम्बन्धके दूट जानेपर जो विकलता होती है वह शोक है (रा. वा./६/११/२/५११/२१)। र. जिसके उदयसे शोक होता है वह शोक (नामकर्म) है। (रा. वा./-/१/४/४७४/९८), (ध. ६/ १,६-१,२४/४७/-), (ध. १३/५,४,१६/३६१/१२)।

२. शोक अरति पूर्वक होता है

घ. १२/४,२.७,१००/६७/२ कुदो। अरिवपुरगमत्तादो। कथमरिदपुर-गमत्तं। अरदीए विणा सोगाणुष्यत्तीए। =क्योंकि, यह (शोक) अरित पूर्वक होता है। प्रश्न - वह अरित पूर्वक कैसे होता है। उत्तर-क्योंकि, अरितिके बिना शोक नहीं उत्पन्न होता है।

३. शोकका उरकृष्ट छद्य काल

ध, १२/४,२,७,१०१/६७/४ सोगो उबस्सेण छम्मासमेत्तो चेव। - शोक-का उत्कृष्ट उदय काल छह् मास पर्यन्त ही है।

★ अस्य सम्बन्धित विषय

१. शोक देव है

--दे. कषाय/४ :

२. शोक पञ्चतिके बन्ध योग्य परिणाम

-दे. मोहनीय/१/६ १

शोधित --- गणितकी व्यक्तन विधिमें मूल राशिको ऋणराशि करि शोधित कहा जाता है --- दे. गणित/11/१/४।

शोन-पूर्वी उत्तर आर्य खण्डको एक नदी-दे. मनुष्य/४।

शौच-- १. शौच सामान्यका लक्षण

स. सि./१/१३/३३१/४ लोभप्रकाराणासुपरमः शौचम् । = लोभके प्रकारों-का त्याग करना शौच है (रा. ना./१/६/१०/४२३/४)।

२. शौच धर्मका उक्षण

- ना, अ,/७५ कंलाभावणिविस्ति किच्चा वेरगभावणाजुत्तो । जो वहिंद परममुणी तस्स दु धम्मी हवे सौचं १७५। = जो परममुनि इच्छाओं को रोककर और वैराग्य रूप विचारोंसे युक्त होकर आचरण करता है उसको शौच धर्म होता है।
- स. सि./ $\epsilon/\epsilon/\delta < 2/\xi$ प्रकर्षप्राप्तलोभान्निवृत्तिः शौचम् । = प्रकर्ध प्राप्त लोभका त्याग करना शौचधर्म है। (रा. वा./ $\epsilon/\epsilon/\epsilon/\epsilon < 2$), (चा. सा./ $\epsilon < 2/\delta$)।
- भ. आ./बि./४६/१५४/१४ द्रव्येषु ममेदं भावमूलो व्यसनोपनिपातः सकल इति ततः परित्यागो लाघवं। =धनादि वस्तुओंमें ये मेरे हैं ऐसो अभिलाष बुद्धि ही सर्व संकटोंमे मनुष्यको गिराती है इस ममस्वको हृदयसे दूर करना ही लाधव अर्थाद शौच धर्म है।
- त. सा./१/१६-१७ परिभोगोपभागतवं जी वितेन्द्रियभेदतः ।१६। चतु-विधस्य लोभस्य निवृत्तिः शौचमुच्यते ।१७। =भौग व उपभोगका, जीनंका, इन्द्रियविषयोंका; इन चारों प्रकारके लोभके त्यामका नाम शौचधर्म है।
- का. अ./मू./१६७ सम-संतोस-जलेण जो धोविद तिब्ब-लोह मल पुंज । भोयण-गिद्धि-विहीणो तस्स सउच्चं हवे विमल ।३६७। क्लो सम-भाव और सन्तोष रूपी जलसे तृष्णा और लोभ रूपी मलके समूहको घोता है, तथा भोजनकी गृद्धि नहीं करता उसके निर्मल शीच धर्म होता है।
- पं. वि./१/६४ यत्परदारायादिषु जन्तुषु निःस्पृहमहिसकं चेतः।
 दुश्छेदयान्तर्मसहत्तदेव शौचं ५रं नात्यत्।६श = चित्त जो परस्त्री
 पवं परधनकी अभिलाषा न करता हुआ षट् काय जीवोंकी हिंसासे
 रहित होता है, इसे ही दुर्भेश अभ्यन्तर कलुषताको दूर करनेवासा
 जत्तम शौचधमं कहा जाता है, इससे भिन्म दूसरा शौचधमं नहीं
 है।६४।

३. गंगादिमें स्नान करनेसे शौचधर्म नहीं

पं. नि./१/१६ गङ्गासागरपुष्करादिषु सदा तीर्थेषु सर्वेष्विप स्नातस्यापि न जायते तनुभृतः प्रायो निशुद्धिः परा । मिध्यात्वादिमत्तीमसं यदि मनो नाहों विशुद्धोदके धींतः कि बहुशोऽिष शुद्धयति सुरापूरप्रपूर्णी घटः १६६। अयदि प्राणीका मन मिण्यात्वादि दोषोंसे मिलिन हो रहा है तो गंगा. समुद्र एवं पुष्कर आदि सभी तीथोंमें सदा स्नान करने पर भी प्रायः करके वह अतिशय विशुद्ध नहीं हो सकता (ठीक भी है—मखके प्रवाहसे परिपूर्ण घटको यदि नाह्यमें अतिशय विशुद्ध जल- में महुत नार धीया जावे तो भी क्या वह शुद्ध हो सकता है। अर्थात नहीं १६६।

४, शीचधर्मके चार भेद

रा. वा,/१/६/=/५१६/५ अतस्ति ज्ञिष्टित स्थणं शौचं चेतुर्विध मवसेयम्।
—(जीवन लोभः, इन्द्रियलोभः, आरोग्य लोभ व उपयोग लोभके
भेद्रश्चे लोभ चार प्रकार है – दे, लोभ) इस चार प्रकारके लोभका त्याग
करनेसे शौच भी चार प्रकारका हो जाता है (चा, सा./६३/२)।

. ५. शीच व त्याग धर्ममें अन्तर

रा. बा./ह/६/२०/१६ = /१० शौचनचनात् (त्यागस्य) सिद्धिरिति चेतः न तत्रासरयपि गर्छोपपत्तेः ।२०। असंनिहिते परिग्रहे कर्मोदयवशात् गर्ध उत्पद्धते, तित्रवृत्त्यर्थं शौचमुक्तस् । त्यागः पुनः संनिष्टितस्या-पागः दानं वा स्वयोग्यस्, अथवा संयतस्य योग्यं ज्ञानादिदानं त्याग इत्युच्यते । = प्रश्न — शौच वचनसे ही त्याग धर्मकी सिद्धि हो जाती है, अतः त्याग धर्मका पृथक् निर्देश व्यर्थ है। उत्तर-नहीं क्योंकि शौधधमें परिग्रहके न रहनेपर भी कर्मोदयसे होनेवाली तृष्णाकी निवृत्ति की जाती है पर त्यागमें विद्यमान परिग्रह छोड़ा जाता है। अथवा त्यागका अर्थ स्व योग्य दान देना है। संयतके योग्य ज्ञानादि दान देना त्याग है।

६. शीच व आकिंचन्य धर्ममें अन्तर

रा. बा./१/६/७/४१६/१ स्यादेतत्-आर्किचन्यं बक्ष्यते. तत्रास्यावरोधात् शौचप्रहणं पुनरुक्तमिति; तन्नः किं कारणस् । तस्य नैर्मम्यप्रधान-श्वात् । स्वदारीरादिषु संस्काराखपोहार्थमाकिञ्चन्यमिष्यते । -प्रश्न-आणे आर्किचन्यः धर्मका कथन करेंगे, उसीसे इसका अर्थ भी घेर लिया जानेसे शौच धर्मका ग्रहण पुनरुक्त है । उत्र-ऐसा नहीं है, क्योंकि आर्किवन्यधर्म स्वश्रीर आदिमें संस्कार आदिकी अभिनाषा दूर करके निर्ममत्व बढ़ानेके लिए है और शौच धर्म नोभ-की निवृत्तिके लिए अत. दोनों पृथक् हैं।

७. शीचधर्म पाळनाथं विशेष मावनाएँ

- म, आ,/मू,/१४२६-१४३६-/१३६६ लोमे कर वि धार्योण होइ पुरिसस्स अपिडमोगस्स । अकर वि हब दि लोमे अत्थो पिडमोगबंतस्स ।१४३६। सठवे वि जए अत्था परिगहिंदा ते अणंतखुत्तो मे । अत्थेमु इत्थ कोमक्स विभयो गिष्टदिवजडेमु ।१४३७। इह य परत्तए लोए दोसे बहुए य आवहृह लोभो । इदि अप्पणो गणित्ता णिउजेद्वा हबदि लोभो ।१४३६। लोभ करनेपर भी पुण्य रहित मनुष्यको द्वय मिलता नहीं है और न करनेपर भी पुण्यवानको धनकी प्राप्ति होती है । इसलिए धन प्राप्तिमें आसक्ति कारण नहीं, परन्तु पुण्य ही कारण है ऐसा विचारकर लोभका त्याग करना चाहिए ।१४३६। इस त्रेलोक्यमें मैंने अनन्तवार धन प्राप्त किया है, अतः अनन्तवार अहण कर र्याग हुए इस धनके विषयमें आश्चर्यं चिकत होना फजूल है ।१४३७। इह पर लोकमें यह लोभ अनेकों दोषोंको उत्पन्न करता है ऐसा समफकर लोभ कषायपर विजय प्राप्त करना चाहिए।
- ा, बा /१/६/२७/५११/१६ शुच्याचारिमहापि सन्मानयन्ति सर्वे । विश्रम्भात्यश्च गुणाः समधितिष्ठन्ति । लोभभावनाकान्तहृदये नावकाशं लभनते गुणाः इह चामुत्र चाचिन्त्यं व्यसनमावश्नृते ।

= शुचि आचार वाले निर्लोभ व्यक्तिका इस लोकमें सन्मान होता है। विश्वास आदि गुण उसमें रहते हैं। लोभीके हृदयमें गुण नहीं रहते। वह इस लोक और परलोकमें अनेक आपक्तिओं और दुर्गति-को प्राप्त होता है। (अन. घ./६/२७)

ज्ञा./११/६१-७१ शाकेनापीच्छया जातु न भर्तु मुदर क्षमाः। लोभात्तथापि बाव्छन्ति नराइचक्रेश्वरिश्रयम्।६१। स्वामिगुरुश्वन्धृवृद्धानवलावालांश्च जीर्ण दीनादोन् । व्यापाच विगतशङ्कां लोभातों वित्तमादत्ते
।७०। ये केचिरिसद्धान्ते दोषाः स्वश्रस्य साधकाः प्रोक्ताः। प्रभवन्ति
निर्विचारं ते लोभादेव जन्तुनाम् ।७१। — अनेक मनुष्य यद्यपि अपनी
इच्छासे शाकसे ,पेट भरनेको कभी समर्थ नहीं होते तथापि लोभके
वशसे चक्रवर्तीकी सी सम्पदाको वाँछते हैं।६१। इस लोभकषायसे
पीड़ित हुआ पुरुष अपने मासिक, गुरु, बन्धु, वृद्ध, स्त्री, बातक, तथा
श्रीण, दुर्वल, अनाथ, दीनादिको भी निशंकतासे मारकर धनको ग्रहण
करता है।७०। नरकको से जानेवासे जो जो दोष सिद्धान्त शास्त्रमें
कहें गये हैं वे सब जीवोंके निश्वंकत्या लोभसे प्रगट होते हैं।७१।
(अन. ध./६/२४-२६,३१)।

🛨 अन्य सम्बन्धित विषय

१. बौचधर्म व मनोगुक्षिमें अन्तर । —दे गुप्ति/२/१। २. दब्धधर्म निर्देश । —दे धर्म/२।

शोरपुर — कुशय देशका एक नगर। — दे० मनुष्य/४।
इयामकुमार — अप्तरकुमार (भवनवासी देव) — दे. अप्तर।
इयामवर — मध्य लोकका तरहवाँ द्वीप व सागर। — दे. लोक/४/१।
शृंखलित — कामोत्सर्गका एक अतिचार। — दे. व्युत्सर्ग/१।

अद्धान — नोक्ष्मार्गमें चारित्र आदिकी मूल होनेसे श्रद्धाको प्रधान कहा है। यद्यपि अन्ध श्रद्धान अकिचिरकर होता है तथापि सूक्ष्म पदार्थोंके विषयमें आगमपर अन्ध श्रद्धान करनेके अतिरिक्त कोई चारा नहीं। सम्यग्दिष्टका यह अन्ध श्रद्धान ईषद् निर्णय लक्षणवाला होता है, पर मिष्यादृष्टिका अपने पक्षकी हठ सहित।

१. श्रद्धान निर्देश

१. श्रद्धानका कक्षण

दे. प्रत्यय/१ दष्टि, श्रद्धा, रुचि, प्रत्यय ये एक। र्थवाची हैं।

- स. सा./आ./१७-१८ तथेति प्रस्ययस्थणं श्रद्धानमुरप्सवरंग्यः = इस आरमाको जैसा जाना वैसा ही है 'इस प्रकारकी प्रतीति है स्थण जिसका' ऐसा श्रद्धान उदित होता है।
- ह, सं./टी./४१/१६/१९२ श्रद्धानं रुचिनिश्चय इदमेबेत्यमेवेति निश्चय-बुद्धिः सम्यादर्शनम् । — (सप्त तत्त्वोमें चलमलादि दोषों रहित) श्रद्धान रुचि निश्चय, अथवा जो जिनेन्द्रने कहा तथा जिस प्रकार कहा है उसी प्रकार है, ऐसी निश्चय रूप बुद्धिको सम्यादर्शन कहते हैं।
- पं, ध./उ./४१२ तत्त्वार्थाभिमुखी बुद्धिः श्रद्धाः। = तत्त्वार्थीके विषयमें उन्मुख बुद्धिको श्रद्धा कहते हैं।

२. श्रद्धानके अनुसार चारित्र होता है

स. श./१४-१६ यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तत्रैव जायते । यत्रैव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रैव लीयते ।१४। यत्रानाहितः पुंसः श्रद्धा तस्मात्रि-वर्तते । यस्मान्निवर्तते श्रद्धा कुत्रश्चित्तस्य तल्लयः ।१६। = जिस किसी विषयमें पुरुषकी दत्तावधान बुद्धि होती है उसी विषयमें उसको श्रद्धा होती है और जिस विषयमें श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है

उस विषयमें उसका मन सीन हो जाता है। १५। जिस विषयमें दत्तावधान बुद्धि नहीं होती उससे रुचि हट जाती है। जिससे रुचि हट जाती है उस विषयमें सीनता कैसे हो सकती है।

इ. चारित्रकी शक्ति न हो तो श्रद्धान तो करना चाहिए

- नि.सः /मू. /१५४ जिद सकदि कादुं जे पिडकमणार्दि करेज्ज भाणमयं। सांत्ति होणो जा जह सद्दहणं चेश कायञ्यं ११५४। = यदि किया जा सके तो अहो १ ध्यानमय, प्रतिक्रमणादि कर; यदि तु शक्ति विहीन हो तो तन्नतक श्रद्धान ही कर्त अय है।
- द-पा./मू./२२ ज सकइ तं कीरइ जं चण सक्केइ तं च सद्दहणं।
 केवलिजिणेहि भणियं सद्दृमाणस्स संमत्तं।२२। ∞ जो करनेको
 (त्याग करनेको) समर्थ हो तो करिये, परन्तु यदि करनेको समर्थ
 नहीं तो अद्धान तो कीजिए, क्योंकि श्रद्धान करनेवालोके केवली
 भगवान्ने सम्यवत्व कहा है।२२।
- नि. सा./ता. वृ./१५४/क. २६४ कलि विस्तिते पापबहुले। ... अतोऽ-ध्याश्मं ध्यानं कथिम्ह भवेत्रिमं तिथ्यां। निजातमश्रद्धानं भवभयहरं स्वीकृतिमदम्। —पापसे बहुल कलिकालका विलास होनेपर... इस कालमें अध्यातम ध्यान कैसे हो सकता है। इसलिए निर्मल बुद्धि-वाले भवभयका नाश करनेवाली ऐसी इस निजातम श्रद्धाको अंगो-कार करते हैं।

४. यथार्थ श्रद्धान न करे तो अभव्य है

प्र. सा./सू./६२ णो सङ्ग्रंति सोक्खं सुहेसु परमं ति विगवधादीणं।
सुणिदूण ते अभवना भवना वा तं पिडच्छं ति ।६२। = जिनके वातिकर्म नष्ट हो गये हैं, उनका सुख (सर्व) सुखोंमें उत्कृष्ट है, यह सुनकर
जो धद्धा नहीं करते वे अभवय हैं और भव्य उसे स्वीकार करते हैं—
उसकी श्रद्धा करते हैं।

भ. अन्य सम्बन्धित विषय

- १. श्रद्धानमें सम्यक्तवकी प्रधानता । —दे, सम्यग्दर्शन/II/२,३।
- २. श्रद्धानमें अनुभवकी प्रधानता। —दे, अनुभव/३।
- ३. श्रद्धान व सम्यग्दर्शनमें कथंचित् मेदामेद ।
 - —दे. सम्यग्दर्शना।/१।
- ४. दर्शनका अर्थ श्रद्धान । —दे, सम्यन्दर्शन/1/१।
- भ. श्रद्धानमें भी कथंचित् शानपना । —दे सम्यादर्शन/I/४।
- the state of the s
- श्रद्धान व शानमें पूर्वोत्तरवर्तीपना । दे. ज्ञान/III/३ ।
 श्रान व श्रद्धानमें अन्तर । दे. सम्यग्दर्शन/I/४ ।

२. अन्ध श्रद्धान निदेश

* श्रद्धानमें परीक्षाकी प्रधानता—दे. न्याय/२/१ ।

२. परीक्षा रहित अन्ध श्रद्धान अकिंचित्कर

- क. पा. १/०/३ जुत्तिविरिहयपुरुवयणादो पयट्टमाणस्स पमाणाणुसारित्त-विरोहादो । = शिष्य युक्तिकी अपेक्षा किये बिना मात्र गुरु वचनके अनुसार प्रवृत्ति करता है उसे प्रमाणानुसारी माननेमें विरोध आता है।
- मो. मा. प्र./७/३११/७ जो निर्णय करनेको विचार करतें ही सम्य-वरतको दोष लागै, तो अष्टसहसीमें आञ्चाप्रधानतें परीक्षा प्रधानको उत्तम क्यों कहा ?
- मो. मा. प्र./१८/३८१/१३ जो मैं जिन उचन अनुसारि मानी हों तो भाव भासे निना अन्यथापनो होय जाय ।

सत्ता स्वरूप/पृ. १०२ (जिसकी सत्ताका निश्चय नहीं हुआ वह परीक्षा

वालोंको किस प्रकार स्तवन करने योग्य है। इससे सर्वकी सत्ता सिद्ध हो, यहीं कर्मका मूल है। ऐसी जिनकी आम्नाय है।

भद्रबाहु चरित्र/प्र. ६ पक्षपातो न में बीरे न होषः किपलादिषु । युक्तिमह्-बचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः । = न तो मुक्ते बीर भगवान्का कोई पक्ष है और न किपलादिकोंसे होष है जिसका भी बचन युक्ति सहित है, उस हो से मुक्ते काम है ।

English Tatwarth Sutra/Page 15- Right Belief is not identical with blind faith, Its authority is neither External nor autocratic

=सम्यादर्शन अन्ध श्रद्धानकी भाँति नहीं है। इसका अधिकार न तो बाह्य है और न रूढ़ि रूप ही है।

२. अन्धश्रद्धान ईषत् निर्णय लक्षण वाला होता है

- वै॰ आगम/३/६ आगमकी विरोधी दो बातोंका संग्रह करने बाला संद्यय मिथ्यादृष्टि नहीं होता, क्योंकि संग्रह करने वालेके यह 'सूत्रकथित है' इस प्रकारका श्रद्धान पाया जाता है, अतएव उसे सन्देह नहीं हो सकता।
- गो. जी./जी. प्र./१६१/१००६/१३ तच्छू द्वानं आञ्चया प्रमाणादिभिर्विता आध्वचनाध्येण ईषित्रिणयलक्षणयाः । = विना प्रमाण नय आदि-के द्वारा विशेष जाने, जैसा भगवात्ने कहा वैसे ही है, ऐसे आप्त वचनोंके द्वारा सामान्य निर्णय है लक्षण जिसका ऐसी आज्ञाके द्वारा श्रद्धान होता है।

३. सूक्ष तूरस्थादि पदार्थोंके विषयमें अन्य श्रद्धान करनेका आदेश

- भ. आ./मू./३६/१२८ धम्माधम्मागासाणि पोग्गला कालद्दव्य जीने य । आणाए सद्दृत्तो समत्ताराहुओ भणिदो ।३६। == धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्रगल काल व जीव इन छह द्रव्योंको जिनेश्वरकी आह्वासे श्रद्धान करने वाला आत्मा सम्यवस्वका आश्राधक होता है ।३६।
- द्र, सं./टी./४८/२०२ पर उद्द्यृत स्वयं मन्द्रबुद्धित्वेऽपि विशिष्ठोषाद्यायाभावे अपि शुद्धजीवादिपदार्थानां सूक्ष्मत्वेऽपि सति सूक्ष्मं
 जिनोदितं वाक्यं हेतुभियंत्र हन्यते । आज्ञासिद्धं तु तद्द्याद्यां
 नान्यथावादिनो जिनाः ...। = स्वयं अवपबुद्धि हो विशेष ज्ञानी
 गुरुकी प्राप्ति न हो जब शुद्ध जीवादि पदार्थोकी सूक्ष्मता होने
 पर-श्री जिनेन्द्रका कहा हुआ जो सूक्ष्मतत्त्व है, वह हेतुओंसे
 खण्डित नहीं हो सकता, अतः जो सूक्ष्मतत्त्व है उसे जिनेन्द्रकी
 आज्ञाके अनुसार ग्रहण करना चाहिए। (द, पा./टी./१२/१२/२८/पर उद्दश्वत)।
- पं. वि./१/१२८ निश्चेत्वयो जिनेन्द्रस्तदतुलवचसां गोचरेऽथें परोक्षे।
 कार्यः सोऽपि प्रमाणं वदत किमपरेणालं कोलाहलेन। सत्यां छद्मस्थतायामिह समयपथस्वानुभूतिप्रबुद्धा। भो भो भव्या यत्रव्यं हगवगमनिधावास्मनि प्रीतिभाजः ।१२८। चहे भव्य जीवो! आपको
 जिनेन्द्रदेवके विषयमें व जनकी वाणीके विषयभूत परोक्ष पदार्थोके
 विषयमें उसीको प्रमाण मानना चाहिए, दूसरे व्यर्थके कोलाहलसे
 क्या प्रयोजन है। अतएव छद्मस्थ अवस्थाके रहने पर सिद्धान्त
 मार्गसे आये हुए आत्मानुभवसे प्रबोधको प्राप्त होकर आप सम्यव्यर्शन व ज्ञानकी निधि स्वरूप आत्माके विषयमें प्रीतियुक्त होकर
 आराधना की जिए ।१२८।
- अन, घ./२/२६ धर्मादीनधिगम्य सच्छू तनयन्यासानुयोगैः सुधीः, श्रद्वध्यादिवदाञ्चयैव सुतरां जीवांस्तु सिद्ध्धेतरात् ।२६। = विशिष्ट झानके धारकोंको समीचीन, प्रमाण-नय-निक्षेप और अनुयोगोंके द्वारा धर्मादिक द्रव्योंको जानकर उनका श्रद्धान करना चाहिए। किन्तु मन्दञ्चानियोंको केवल आज्ञाके अनुसार ही उनका ज्ञान व श्रद्धान करना चाहिए।

ष्ठ. सं./टी./२२/६०/६ कालद्रव्यमन्यद्वा परमागमाविरोधेन विचारणीयं परं किन्तु वीतरागसर्वज्ञवचनं प्रमाणमिति मनसि निश्चित्य हिन्चारो न कर्त्तव्यः । ···विवादे रागद्वेषौ भवतस्ततश्च संसारवृद्धि-रिति । =काल द्रव्य तथा अन्य द्रव्यके विषयमें परमागमके अवि-रोधसे हो विचारना चाहिए । 'वीतराग सर्वज्ञका वचन प्रमाण है' ऐसा मनमें निश्चय करके उनके कथनमें विवाद नहीं करना चाहिए । क्योंकि विवादमें राग-द्वेष व इनसे संसारकी वृद्धि होती है ।

र्ष. ध./इ./४८२ अर्थवशादत्र सूत्रे (सूत्रार्थे) शङ्का न स्यानमनीषि-णाम्। सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः स्युस्तदास्तिक्यगोचराः ।४८२। क्ष्म्सम्, दूरवर्ती और अन्तरित पदार्थ सम्यग्दृष्टिके आस्तिकाके गोचर हैं अतः उनके अस्तिस्व प्रतिपादक आगममें प्रयोजनवश कभी भी शंका

नहीं होती ।४८२।

दे० आगम/३/१ छग्नस्थोंको विरोधी सुत्रोंके प्राप्त होनेपर विशिष्ट ज्ञानीके अभावमें दोनोंका संग्रह कर लेना चाहिए।

दे० सम्यग्दर्शन/I/१/२ तत्त्वादिपर अन्धश्रद्धान करना आज्ञान सम्यक्त्व है।

इ. क्षयोपश्चमकी हीनतामें तस्व सूत्रोंका मी अन्ध श्रद्धान कर लेना योग्य है

का. अ./३२४ जो ण विजाणदि तच्चं सो जिणवयणे करेदि सदहणं। जं जिणवरेहि भणियं तं सब्बमहं समिच्छामि।३२४। = जो तत्त्वों~ को नहीं जानता किन्तु जिनवचनमें श्रद्धान करता है कि जिन भगवान्ने जो कुछ कहा है उस उस सबको में पसन्द करता हूँ। बह भी श्रद्धावान् है।३२४।

यं. वि./१/१२४ मः कल्पयेत किमिष सर्वविदोऽपि वाचि संदिह्य तत्त्वमसमञ्जसमात्मबुद्धवा । खे पित्रणां विचरतां सुद्दशेक्षितानां संख्यां प्रति प्रविद्धाति स वादमन्धः ।१२४। = जो सर्वज्ञके भी वचनमें सन्दिग्ध होकर अपनी बुद्धिसे तत्त्वके विषयमें अन्यथा कुळ कल्पना करता है, वह अज्ञानी पुरुष निर्मल नेत्रों वाले व्यक्तिके द्वारा देखे गये आकाशमें विचरते हुए पिक्षयोंकी संख्याके विषयमें विवाद करने वाले अन्धेके समान आचरण करता है ।१२४। (पं. वि./१३/३४)।

४. अन्ध श्रद्धानकी धिधिका कारण व प्रयोजन

दे० आगम/६/४ अतीन्द्रिय पद।थेंकि विषयमें छ्यस्थ जीवोंके द्वारा कल्पित युक्तियोंसे रहित निर्णयके लिए हेतुता नहीं पायी जाती। इसलिए उपदेशको प्राप्त करके निर्णय करना चाहिए।

पं ध्, डि. १९०४६ सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रागेवात्रापि दर्शिताः । नित्यं जिनोदिते विक्ये ज्ञातुं शक्या न चान्यथा ।१०४६ = पहने भी कहा है कि परमाणु आदि सूक्ष्म पदार्थं, राम-रावणादिक सुदीर्घं अतीत कासवर्ती और मेरु आदि दूरवर्ती पदार्थं सदैव जिनवाणीके द्वारा ही जाने जा सकते हैं किन्तु अन्यथा नहीं जाने जा सकते ।१०४६।

३. सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टिके श्रद्धानमें अन्तर

मिथ्यादष्टिकी प्ररूपणापर सम्यग्दष्टिको श्रद्धान नहीं होता।

पं. ध /उ./४६१ सूक्ष्मान्तिरितवूरार्थे दिश्विऽपि कुदृष्टिभिः । नावप-स्ततः स मुद्येत कि पुनश्चेद्दकहुश्रुतः १६९१ = मिश्यादृष्टियों द्वारा सूक्ष्म, दूरस्य व अन्तरित पदार्थोंके दिलानेपर भी अवपद्मानी सम्य-ग्दृष्टि मोहित नहीं होता है। यदि बहुश्रुत धारक हुआ तो फिर भला क्योंकर मोहित होगा।

- * मिथ्यादिष्टिका धर्म सम्बन्धी श्रद्धान श्रद्धान नहीं। ~दे० मिथ्यादिष्टि/४ ।
- * सम्यग्दृष्टिके श्रद्धानमें कदाचित् शंकाकी सम्मावना । —दे० मि:शंकित/३।

२. सूक्ष्मादि पदार्थोंके अश्रद्धानमें मी सम्यग्दर्शन सम्मव है।

भ. आ./बि./३७/१३१/२१ यदि नाम धर्मादिद्रव्यापरिज्ञानात् परिज्ञान-सहचारि श्रद्धानं नोरपन्तं तथापि नासौ मिध्यादिष्टर्दर्शनमोहोद-यस्य अश्रद्धानपरिणामस्याज्ञानिवषयस्याभावात । न हि श्रद्धान-स्यानुत्पत्तिरश्रद्धानं इति गृहीतं श्रद्धानादन्यदश्रद्धानं इदमिरधिमिति श्रुतनिरूपितेऽरुचिः। —यद्यपि धर्मादि द्रव्योंका ज्ञान न होनेसे ज्ञानके साथ होनेवाली श्रद्धा उत्पन्न नहीं हुई तो भी वह सम्य-ग्दष्टि ही है, मिध्यादिष्टि नहीं है, क्योंकि दर्शन मोहनीय कर्मके उद्यसे उत्पन्न हुआ जो अश्रद्धान जो कि अञ्चानको विषय करता है वह यहाँ नहीं है। मिथ्यादर्शनसे उत्पन्न हुआ जो श्रद्धान व अरुचि रूप है अर्थात् यह वस्तु स्वरूप इस त्रहसे है ऐसा जो आगममें कहा गया है उस विषयमें अरुचि होना यह मिथ्यादर्शन रूप अश्रद्धान है और प्रकृत विषयमें ऐसी अश्रद्धा नहीं है। प्रन्तु जिनेश्वरके प्रतिपादित जीबादि सच्चे हैं, ऐसी मनमें प्रीति-रुचि उत्पन्न होती है।

२. गुरु नियोगसे सम्यग्दष्टिके भी असत् वस्तुका श्रद्धान सम्भव है।

भ. आ./मू./३२/१२१ सम्मादिष्टी जीवो उवहर्ठ प्ययणं तु सहहइ। सहहइ असन्भावं अयाणमाणो गुरुणियोगा।६२। स्सम्यग्दिष्ट जीव जिन उपदिष्ट प्रवचनका तो श्रद्धान करता ही है, किन्तु कदाचित्, (सद्भावको) नहीं जानता हुआ गुरुके नियोगसे असद्भावका भी श्रद्धान कर सेता है।३२। (क. पा./सुत्त/१०/गा१००/६३७); (पं. सं./प्रा./१/१२); (घ.१/१,१,१३/गा.११०/१७३); (घ.१/१,६-८,१/गा.१४/२४२), (गो. जी./मू./२०/१६)।

त. सा./मू./१०४/१४४ सम्मुद्ये चलमलिणमगाहं सदृहदि तच्चयं अत्थं। सदृहदि असन्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ।१०३। =सम्यक्त्व मोहनीयके उदयसे तत्त्व श्रद्धानमें चल, मल व अगाह दोष लगते हैं। वह जीव आप विशेष न जानता हुआ अज्ञात गुरुके निमित्तें असत्का भी श्रद्धान करता है। परन्तु सर्वज्ञको आज्ञा ऐसे ही है ऐसा मानकर श्रद्धान करता है, अतः सम्यग्हिष्ट ही है।

४. असत्का श्रद्धान करनेसे सम्यक्ष्वमें वाधा नहीं भाती।

भ, आ./वि./२२/१२२/१ स जीवः सम्माहिष्टी ... प्रतीतपदार्थं करवमा-दिशतं । अञ्चहित अञ्चानं करोति असत्यमप्यर्थं अयाणमाणे अनव-गच्छन् । कि । विपरीतमनेनोपिहिष्टमिति । गुरोवर्यास्यातुरस्यायमर्थ इति कथनान्नियुज्यते प्रतिपत्त्यां श्रोता अनेन वचनेन इति नियोगः कथनं । सर्वज्ञप्रणीतस्यागमस्यार्थः आचार्यपरंपरमा अविपरीतः शुतो-ऽवधृतथानेन सूरिणा उपदिष्टी ममेति सर्वज्ञाज्ञाया रुचिरस्यास्तीति । आज्ञारुचितया सम्यग्दष्टिर्भवस्येवेति भावः । न्यह सम्यग्दष्टि जीव असत्य पदार्थका भी अद्धान करता है, परन्तु वह तबतक असस्य पदार्थके उपर श्रद्धान करता है जबतक वह 'गुरुने मेरेको असत्य पदार्थका श्रद्धान करता है जबतक वह 'गुरुने मेरेको असत्य पदार्थका श्रद्धान करता है तब तक उसने आचार्य परम्पराके अनुसार जिनागमके जीवादि तस्वका स्वस्त्य कहा है और जिनेन्द्र भगवान्त्रकी आज्ञा प्रमाणभूत मानना चाहिए ऐसा भाव हृदयमें रखता है अतः उसके सम्यादर्शनमें हानि नहीं है, वह मिथ्यादृष्टि नहीं गिना जाता है। सर्वज्ञकी आज्ञाके ऊपर उसका प्रेम रहता है, वह आज्ञा रुचि होनेसे सम्यादृष्टि ही है, ऐसा भाव सम्भना। (और भी दे, आगम/४)।

गो. जी, जी. प्र./२०/५६/१२ असझावं — अतत्त्वमिष स्वस्य विशेषज्ञान-श्वन्यत्वेन केत्रलगुरुनियोगात् अर्हदादाज्ञातः अद्द्याति सोऽपि सम्यग्दिष्टरेव भवति तदाज्ञाया अनितकमात् ।२०। = अपने विशेष ज्ञानका अभाव होनेसे गुरुके नियोगसे 'अरहंत देवका ऐसा ही उपदेश है' ऐसा समभक्तर यदि कोई पदार्थका विपरीत भी श्रद्धान कर लेता है तो भी वह सम्यग्दिष्ट ही है, वयों कि उसने अरहंतका उपदेश समभकर उस पदार्थका वैसा श्रद्धान किया है। उनकी आज्ञाका अतिकम नहीं किया।

५. सम्यक् उपदेश मिळनेपर भी हठ न छोडे तो मिथ्यादृष्टि हो जाये

भ. आ./मू.३३,३६ सत्तादो तं सम्मं दरसिज्जंतं जदा ण सद्दृहि । सो चेव हवह मिच्छादिट्ठी जीवो तदो पहुदि ।३१। पदमक्लरं च एक्कं पि जो ण रोविति सुत्तिणिद्द्रिं। सेसं रोजंतो वि हु मिच्छादिट्ठी सुणेयक्तो ।३६। = १. सूत्रसे आलार्यादिकके द्वारा भने प्रकार समभाये जानेपर भी यदि वह जोव विपरीत अर्थको छोड़कर समीचीन अर्थका श्रद्धान नहीं करता, तो उस समयसे वह सम्यग्दृष्टि जीव मिध्यादृष्टि हो जाता है। (ध, १/१,१,३६/गा, १४३/२६२); (गो. जी./मू./२८); (ल. सा./मू./१०६/१४४) २. सूत्रमें उपदृष्ट एक अक्षर भी अर्थको प्रमाण मानकर श्रद्धा नहीं करता वह माकीके श्रुतार्थ वा श्रुतांशको जानता हुआ भी मिध्यादृष्टि है। क्योंकि कड़े पात्रमें रखे दूधको छोटी सी भी विष कणिका मिगाड़ती है। इसी प्रकार अश्रद्धा-का छोटा सा अंश भी आत्माको मिलन करता है। इसी प्रकार अश्रद्धा-

क्योंकि मिथ्यादृष्टिके ही ऐकान्तिक पक्ष होता है

भ. आ./मू./४०/१३८ मोहोदयेण जीवो उवइट्ठं प्रयणं ण सहहित । सहहित असन्भावं उवइट्ठं अणुवइट्टं वा १४० : क्ट्रीन मोहनीय कर्मके उदय होतेसे यह जीव कहें हुए जीवादि पदार्थीके सच्चे स्वरूपपर श्रद्धान करता नहीं है। परन्तु जिसका स्वरूप कहा है अथवा कहा नहीं ऐसे असत्य पदार्थीके उपर वह श्रद्धान करता है १४०।

क, पा. सू./१०-/पृ. ६३७ मिच्छाइट्ठी णियमी उबइट्ठं पवयणं ण सहहिद । सहहिद असन्भावं उवइट्ठं वा अणुवहट्ठं ।१०-। = मिथ्यादृष्टि जीव नियमसे सर्वज्ञके द्वारा उपदिष्ठ प्रवचनका तो श्रद्धान नहीं करता है, किन्तु असर्वज्ञ पुरुषोंके द्वारा उपदिष्ठ या अनुपदिष्ठ असद्भावका अर्थात् पदार्थके विपरीत स्वरूपका श्रद्धान करता है।१०=। (ध. ६/१,१-=१/गा. १४/२४२)।

★ सम्यग्दिको पक्षपात नहीं होता—हे. सम्यग्हिष्टि।

७. एकान्त श्रद्धान या दर्शन बादका निर्देश

् १. मिथ्या एकान्तको अपेका

हा./४/२४ केश्चित् की चिता मुक्तिर्दर्शनावेव केयलम्। वादिनां खलु सर्वेषामपाकृत्य नयान्तरम् ।२४। कर्क् वादियोते अन्य समस्त बादियोके अन्य नयपक्षीका निराकरण करके केवल दर्शनसे ही मुक्ति होनी कही हैं ।२४।

२. सम्यगेकान्तको अपेक्षा

दे, विज्ञानवाद/२ ज्ञान किया व शक्का तीनों ही मिसकर प्रयोजन-वास् हैं। दे. सम्यादर्शमं/I/६ जो सम्यादर्शनसे भ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं। क्योंकि सम्य-व्दर्शनके निना ज्ञान व चारित्र नियम पूर्वक नहीं होते।

श्रद्धान प्रायदिचल — दे. प्रायदिचल/१ ।

अद्धावान-१, अपर विदेहका एक वक्षार-दे लोक/१/३। २. उस वक्षारका एक कृट तथा उस कृटका रक्षक देव, दे. लोक/१/४।

असण — १ न. च. व. १. १३२ सम्मा वा मिच्छा विय तथोहणा समण तह य अणयारा। होति विराय सराया जिदिसिमुणिणो य णायव्वा १३३२ १ — अमण तथा अनगार सम्यक् व मिथ्या दोनों प्रकारके होते हैं। सम्यक् अमण विरागी और मिथ्या अमण सरागी होते हैं। उनको ही यिति, ऋषि, मुनि और अनगार कहते हैं। १३२१ (प्र. सा./ता, वृ./२४६); (विशेष— दे. साधु) २. अमणके १० करपोंका निर्देश—साधु/२।

अमण-- १ एक ग्रह-दे. ग्रह। २. एक नक्षत्र-दे. नक्षत्र।

शिष्टि — विवेकवान विरक्तित्त अणुवती गृहस्थको श्रावक कहते हैं। ये तीन प्रकारके हैं — पाक्षिक, नैष्ठिक व साधक। निज धर्मका पक्ष मात्र करनेवाला पाक्षिक है और वतधारी नैष्ठिक। इसमें वैराग्य-की प्रकर्षतासे उत्तरोत्तर ११ श्रेणियाँ हैं। जिन्हें ११ प्रतिमाएँ कहते हैं। शक्तिको न छिपाता हुआ वह निचली दशासे क्रम पूर्वक उठता चला जाता है। अन्तिम श्रेणीमें इसका रूप साधुसे किचित न्यून रहता हैं। गृहस्थ दशामें भी विवेक पूर्वक जीवन वितानेके लिए अनेक क्रियाओंका निर्देश किया गया है।

भेद्व कक्षण

१ । आत्रका सामान्यके लक्षण ।

२ श्रावकके भेद।

1

ŧ

ч

१. पाक्षिकादि तीन भेदः

२, नैष्ठिक श्रावक के ११ भेद;

३, ग्यारहर्बी प्रतिमाके दो भेद।

🛊 पृथकर्-पृथक् ११ मितमार्षः — दे, बहबहनामः।

पाक्षिकादि श्रावकोंके रूक्षण।

श्रावक सामान्य निर्देश

🚽 गृहस्थ धर्मकी प्रधानता ।

२ 📗 श्रावकः धर्मके योग्य पात्र ।

🧸 । विवेकी गृहस्थको हिसाका दोष नहीं।

४ शावकको भव धारणकी सीमा।

शावकके मोक्ष निषेधका कारण ।

* अात्रकाके पढने न पढ़ने योग्य शास्त्र 🗇 दे. श्रोता ।

श्रावकमें विनय व नमस्कार योग्य व्यवहार

--दे, विनय/३।

सम्यग्दृष्टि भी आवक् पूज्य नहीं

—दे. विनय/४। —दे. आचार्म/२।

श्रावक ही वास्तवमें ब्राह्मण है

—दे, झाह्मण ≀

श्रावकको गुरु संज्ञा नहीं

गृहस्था चाये

—दे, गुरु/१ ।

प्रत्येक तीर्थकरके तीर्थमें श्रात्रकोंका प्रमाण

---दे. तीर्थं कर/४।

3	पाक्षिकं व नैष्ठिक श्रावक निर्देश
*	संयतासंयत गुणस्थान —दे. संयतासंयत ।
१	नैष्ठिक श्रावकर्मे सम्यक्तवका स्थान ।
*	सम्यग्दृष्टि श्रावक सिथ्यादृष्टि साधुसे ऊँचा है
*	—दे, साधु/४। सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टिके व्यवहार धर्ममें अन्तर
•	—दे, मिथ्याहष्टि/४।
२	ग्यारह प्रतिमाओंमें उत्तम मध्यमादि विभाग।
*	भुल्छ कादे. श्रुल्लक ।
₹	ग्यारह प्रतिमाओंमें उत्तरोत्तर व्रतीकी तरतमता।
¥	पक्षिक श्रावक सर्वथा अविरति नहीं ।
ц	पाक्षिक श्रावककी दिनचर्या।
٤	पाँचों वर्तोंके एक देश पालन करनेसे वर्ती होता है।
وب	पक्षिक व नैष्ठिक श्रावकर्मे अन्तर।
*	श्रावकके योग्य छिंग — दे. हिंग/१।
,	
૪	श्रावकके मूळ व उत्तर गुण निर्देश
8	अष्ट मूरु गुण अवश्य धारण करने चाहिए।
२	अष्टमूळ गुण निदेशका समन्वय ।
. *	अष्ट मूल गुण विशेष व उनके अतिचार
ą	~ दे. वह वह नाम । अष्ट मूळ गुण व सात व्यसनोंके त्यागके विना
`	अष्ट पुळ गुण व सात व्यसनाक त्यागक ।वनाः नामसे भी श्रात्रक नहीं।
*	X
¥	अविकास १२ वृत्ता —दे. वृत्त/१। अष्टमूल गुण वृत्ती व अवृती दोनोंको होते हैं।
uş	म्लगुण साधुको पूर्ण व श्रावकको एक देश होते हैं।
Ę	श्रावकके अनेकों उत्तरगुण
	१ श्रावकके दो कर्तव्य ।
ļ	२ आवक्रके ४ कर्तव्य ।
1	३ श्राबकके ६ कर्त्वय ।
ļ	४ अपनक के ६ कर्त व्या
	१ श्रावकको ५३ क्रियाएँ। * श्रावककी २५ क्रियाएँ। — दे. क्रिया।
	* भावककी २५ कियाएँ। — दे. क्रिया। * गर्भान्वय आदि १० या ५३ क्रियाएँ—दे. संस्कार/२।
છ	श्रावकके अन्य कर्तव्य।
*	श्रानककी स्नान विधि —दे, स्नान ।
*	दान देना हो गृहस्थका प्रधान धर्म है—दे. हान/३।
*	वैयावृत्य करना गृहस्थका प्रधान धर्म है
	— दे, वैयाष्ट्रय/=,।
*	सावय होते भी पूजा व मन्दिर आदि निर्माणकी आशा
*	—दे. धर्म/४/२। श्रावकोंको सल्लेखना धारने सम्बन्धी
44.	—दे.सक्तेखना/१ व ३ ।

अणुव्रतोंमें भी क्यंचित् महाव्रतत्व

सामायिकके समय श्रावक भी साधु-दे, सामाधिक/३।

*	साधु व श्रावक्रके धर्ममें अन्तर दे. धर्म/६।
樤	साधु व श्रावकके ध्यान व अनुभवमें अन्तर
1	—दे. अनुभव/६ ।
6	आत्रश्यक कियाओंका महत्त्व ।
९	जुङ निषद्ध कियाएँ ।
१०	सब कियाओंमें संयम रक्षणीय है।
米	श्रावकको भी समिति गुप्ति आदिका पालन करना
	चाहिए। —दे. बत/२/४।
 *	श्रावकको स्थावर वध आदिकी भी अनुमति नहीं है
	—दे. वत/ ३ ।
<u> </u>	

१. भेद व लक्षण

१. श्रावक सामान्यके उक्षण

स. सि./१/४५/४५८/६ स एव पुनश्चारित्रमोहकमिविकन्पप्रत्याख्याना-चरणक्षयोपश्चमिनिमत्तपरिणामप्राप्तिकाले विशुद्धिप्रकर्षयोगाद् श्रावको…। चह ही (अविरत सम्यग्दष्टि ही) चारित्र मोह कर्मके एक भेद अप्रत्याख्यानावरण कर्मके क्षयोपश्चम निमित्तक परिणामौ-की प्राप्तिके समय विशुद्धिका प्रकर्ष होनेसे श्रावक होता हुआ…।

सा. ध /१/१६-१६ मूलोत्तरगुणिनष्ठामधितिष्ठत् पञ्चगुरुपदशरण्यः । दानयजनप्रधानो, ज्ञानसुधां श्रावकः पिपासुः स्यातः ।१६। रागादि-क्षयतारतम्यविकसन्क्षद्धारमसंविश्युख 🐪 स्वादारमस्ववहिर्बहिस्त्रसव धाद्य होव्यपोहात्मसु । सद्दहण् दर्शनिकादिदेशविरतिस्थानेषु चैका-दश-स्वेकं यः अयते यतिवतरतस्तं शहधे शावकम् ।१६१ = पंच परमेष्ठीका भक्त प्रधानतासे दान और पूजन करनेवाला भेद ज्ञान रूपी अमृतको पीनेका इच्छ्रकं तथा मूलगुण और उत्तरगुणोंको पालन करनेवाला व्यक्ति आवक कहलाता है ११६। अन्तरंगमें रागादिकके क्षयकी हीनाधिकताके अनुसार प्रगट होनेवाली आत्मानुभूतिसे उत्पन्न मुखका उत्तरोत्तर अधिक अनुभव होना ही है स्वरूप जिन्होंका ऐसे और बहिरंगमें त्रस हिंसा आदिक पाँचों पायोंसे विधि पूर्वक निवृत्ति। होना है स्वरूप जिन्होंका ऐसे ग्यारह देशविरत नामक पंचम गुण-स्थानके दर्शनिक आदि स्थानों—दरजोंमें मुनिवतका इच्छ्रक होता हुआ जो सम्यादृष्टि व्यक्ति किसी एक स्थानको धारण करता है उस-को शायक मानता हुँ अथवा उस आवकको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता हूँ। सा, घ /स्वीपज्ञ -टीका/१/१६ शुणीति गुनीबिभ्यो धर्ममिति शावकः।

=जो श्रद्धा पूर्वक गुरु आदिसे धर्म श्रवेण करता है वह शावक है। इ. सं./टी./१३/३४/५ स पञ्चमगुणस्थानवर्ती शावको भवति । --पंचम गुणस्थानवर्ती शावक होता है।

२. श्रावकके भेद

१. पाक्षिकादि तीन भेद

चा सा,/४१/३ साधकरत्रमेवं पक्षादिभिश्विभिर्हिसाशुपचितं पापस् अपगर्तं भवति । =इस प्रकार पक्ष चर्या और साधकत्व इन तीनोंसे गृहस्थीके हिंसा आदिके इकट्टे किये हुए पाप सब नष्ट हो जाते हैं।

साः घ./१/२० पाक्षिकाविभि जेघा आवकस्तत्र पाक्षिकः। • • • नै ष्टिकः साधकः • • ।२०। = पाक्षिक, नै ष्टिक और शाधकके भेदसे आवक तीन प्रकारके होते हैं।

—दे. ब्रत्/३।

- सा. घ./३/ई प्रारच्धो घटमानो निष्पन्नाश्चाईतस्य देशयमः। योग इव भवति यस्य त्रिधा स योगीव देशयमी।ई। = जिसे प्रकार प्रारच्ध आदि तीन प्रकारके योगसे योगी तीन प्रकारका होता है. उसी प्रकार देशयमी भी प्रारच्ध (प्राथमिक), घटमानो (अभ्यासी) और निष्पन्नके भेदसे तीन प्रकारके हैं।
- पं, घ./उ./७२१ किं पुनः पाक्षिको यूढो नै ष्ठिकः साधकोऽथवा ।७२१। '=पाक्षिक, पुढ, नै ष्ठिक अथवा साधक श्रावक तो कैसे।

२. नैष्ठिक शावकके ११ मेद

- वा. अणु./६६ दंसण-वय-सामाइय पोसह सच्चित्त राइभत्ते य। वंभा-रंभपरिग्गह अणुमण उद्दिष्ठ देसविरदेदे ।१३६। =दार्शनिक, ब्रिक, सामयिकी, प्रोषघोपवासी, सचित्तविरत, रात्रिभुक्तविरत, ब्रह्मचरी, आरम्भविरत, परिग्रह विरत, अनुमति विरत और उद्दिष्टविरत ये (आवकके) ग्यारह भेद होते हैं ।१३६। (चा. पा./मृ./२२); (पं. सं./ प्रा /१/१३६), (ध. १/१,१,२/गा. ७४/१०२), (ध. १/१,१,१२३/गा. १६३/३७३), (ध. १/४,१,४५/गा. ७८/२०१), (गो. जी./मृ./४७७/८८४), (वसु. आ./४), (चा. सा./३/३), (ब. सं./टी./१३/३४ पर उद्दृष्ट्त), (पं. वि./१/१४)।
- द्र, सं./ही./४४/१६४/६ दार्शनिक अवितः अतिकालसामिक प्रवृत्तः, प्रोषधोपवासे, सिचत्तपरिहारेण पञ्चमः, दिवालहाचर्येण षष्ठः, सर्वथा ल्रह्मचर्येण सम्मः, आरम्भनिवृत्तोऽष्टमः अदिमालहिन्तो नवमः अवुमतिनिवृत्तो दशमः उद्दिष्टाहारिनवृत्त एकादशमः । = दार्शनिक, वती, सामियकी, प्रोषधोपवासी, और सिचत्त विरत तथा दिवा मैथुन विरत, अल्रह्म विरत, आरम्भनिरत और परियह विरत, अनुमति विरत और उद्दिष्ट विरत शावकके ये ११ स्थान हैं (सा. ध./३/२-३)।

३. ग्यारहर्वी प्रतिमाके २ भेद

बसु, शा./३०१ एथेरसिम्म ठाणे उक्किट्ठो सावओ हवे दुविओ।
वश्येकधरो पहमो कोबीणपरिग्महो बिदिओ।३०१। च्य्यारहवें
अर्थात् उद्दिष्ट विरत स्थानमें गया हुआ मनुष्य उरकृष्ट आवक कहलाता है। उसके दो भेद हैं— प्रथम एक वस्त्र रखनेवाला (श्रुश्तक), दूसरा कोपीन (खंगोटी) मात्र परिग्रहवाला (ऐलक) (गुण. था./१८४), (सा. ध./७/३८-३६)।

३. पाक्षिकादि आवकाँके स्थाण

१. पाक्षिक श्रावक

चा. सा./४०/४ असिमिषक्विषवाणिज्यादिभिर्गृहस्थानां हिंसासंभवेऽिष पक्षः ।= असि, मसि, कृषि, वाणिज्य आदि आरम्भों कर्मौसे गृहस्थों-के हिंसा होना सम्भव है तथापि पक्ष चर्या और साधकपना इन तीनोंसे हिंसाका निवारण किया जाता है। इनमैसे सदा अहिंसा रूप परिणाम करना पक्ष है।

सा, ध./२/२,१६ तत्रादी श्रद्ध्यज्जैनीमाज्ञां हिसामपासितुम्। मद्यमासमधून्युज्मेत, पञ्च क्षीरिफलानि च १२। स्थूल हिसानृतस्तैयमैथुनग्रन्थवर्जनम्। पापभीरुतयाभ्यस्येद्ध-बजवीर्धनिगुहकः ।१६।

उस गृहस्थ धर्ममें जिनेन्द्र देव सम्बन्धी आज्ञाको श्रद्धान करता
हुआ पाक्षिक श्रावक हिसाको छोड़नेके लिए सबसे पहले मद्य, मांस,
मधुको और पंच उद्दुम्बर फलोंको छोड़ देवे।२। शक्ति और सामध्यको नहीं छिपानेवाला पाक्षिक श्रावक पापके उससे स्थूल हिसा,
स्थूल क्ष्रुठ; स्थूल चोरी, स्थूल कुशोल और स्थूल परिग्रहके त्यागका
अभ्यास करे।१६। (पाक्षिक श्रावक देवपूजा गुरु उपासना आदि कार्यको शक्त्यनुसार नित्य करता है—दे. नह वह नाम) सदावत खुलवाना
(दे. पूजा/१) मन्दिरमें फुलवाड़ी आदि खुलवाना कार्य करता है (दे.
चैत्य चैरयालय)। रात्रि भोजनका त्यागी होता है, परन्तु कदाचितः

रात्रिको इलाइची आदिका प्रहण कर लेता है—दे. रात्रि भोजना (३/३)। पर्वके दिनोंमें प्रोषधोपवासको करता है—दे. प्रोषधोपवास (३/१)। त्रत खण्डित होनेपर प्रायश्चित्त ग्रहण करता है (सा ध./२/७६)। आरम्भादिमें संकल्पी आदि हिंसा नहीं करता—(दे. शावक/३/इस प्रकार उत्तरोत्तर वृद्धिको पाता प्रतिमाओंको धारण करके एक दिन मुनि धर्मपर आरुढ होता है। दे. पक्ष। मैत्री, प्रमोद, कारूण्य और माध्यस्थ्य भावसे वृद्धिको प्राप्त हुआ समस्त हिसाका त्याप करना जैनोंका पक्ष है।

२. चर्या श्रावक

चा.सा./४०/४ धर्माथ देवतार्थमन्त्रसिद्धवर्थमीषधार्थमाहारार्थ स्वभोगाय च गृहमेधिनो हिंसां न कुर्वन्ति । हिंसासंभवे प्रायश्चित्तविधिना विश्वकः सन् परिग्रहपरिस्यागकरणे सति स्वगृहं धर्म च वेश्याय समर्प्य यावद गृहं परिस्यजति तावदस्य चर्या भवति । च धर्मके लिए, किसी देवताके लिए, किसी मन्त्रको सिद्ध करनेके लिए, औषधिके लिए और अपने भोगोपभोगके लिए, कभी हिंसा नहीं करते हैं। धिंद किसी कारणसे हिंसा हो गयी हो तो विधिपूर्वक प्रायश्चित्त कर विश्वकता धारण करते हैं। तथा परिग्रहका स्थाग करनेके समय अपने घर, धर्म और अपने वंशमें उत्पन्न हुए पुत्र आदिको समर्पण कर जबतक वे घरको परिस्थाग करते हैं तबतक उनके चर्या कहलाती है। (यह चर्या दार्शनिकसे अनुमित विस्त प्रतिमा पर्यन्त होती है (सा. ध./१/१६)।

३. नैष्टिक शावक

सा. ध./३/१ देशयमध्नकषाय-क्षयोपश्रमतारतम्यवशतः स्यात्। दर्श-निकायोकादश-दशावशो नैष्टिकः मुलेश्यंतरः ११। म्रदेश संयमका बात करनेवाली कषायोंके क्षयोपशमकी क्रमशः वृद्धिके वशसे श्रावक-के दर्शनिक आदिक ग्यारह संयम स्थानोंके वशीभूत और उत्तम खेश्या वाला व्यक्ति नैष्ठिक कहलाता है।१।

४. साधक श्रावक

म, पु./३१/१४६ जिनितान्ते तु साधनम्। देहादेहितस्यागात् ध्याम-शुद्धात्मशोधनम् ।१४१। क्लो धावक आनन्दित होता हुआ जीवनके अन्तमें अर्थात् मृत्यु समय शरीर, भोजन और मन, वचन कायके व्यापारके त्यागसे पवित्र ध्यानके द्वारा आत्माकी शुद्धिको साधन करता है वह साधक कहा जाता है। (सा. ध./१/१६-२०/८/१)।

चा सा /४१/२ सकलगुणसंपूर्णस्य शरीरकम्पनोच्छ् वासनोन्मीलनिविधि परिहरमाणस्य लोकाग्रमनसः शरीरपरित्यागः साधकत्वम् । = इसी तरह जिसमें सम्पूर्ण गुण विद्यमान हैं, जो शरीरका कंपना, उच्छ्वास लेना, नेत्रोंका खोलना आदि क्रियाओंका त्याग कर रहा है और जिसका चित्त लोकके ऊपर विराजमान सिद्धोंमें लगा हुआ है ऐसे समाधिमरण करनेवालेका शरीर परित्याग करना साधकपना कहलाता है।

२. श्रावक सामान्य निर्देश

१. गृहस्य धर्मकी प्रधानता

कुरल /६.८ गृही स्वस्यैव कर्माणि पालयेद्व यत्नतो यदि । तस्य नावश्य-का धर्मा भिन्नाश्रमनिवासिनाम् ।६। यो गृही नित्यमुखुक्तः परेषां कार्यसाधने । स्वयं चाचारसंपन्नः पूतात्मा स भूपेरिण । = यदि मनुष्य गृहस्थके समस्त कर्तव्योंको उचित रूपसे पालन करे, तब उसे, दूसरे आश्रमोंके धर्मोंके पालनेकी क्या आवश्यकता ? ।६। जो गृहस्थ दूसरे लोगोंको कर्तव्य पालनमें सहायता देता है, और स्वयं भी धार्मिक जीवन व्यतीत करता है, वह ऋषियोंसे अधिक पवित्र है ।८। वं. ति./१/१२ सन्तः सर्वमुरामुरेन्द्रमहितं मुक्तः परं कारणं रत्नानां दश्वति त्रमं त्रिभुवनप्रयोति कामे सित । वृत्तिस्तस्य यदुन्नतः परमया भवरमार्पिताज्जायते तेषां संद्रगृहमेधिनां गुणवतां धर्मो न कस्य प्रियः १११ = जो स्त्तत्रय समस्त देवेन्द्रों एवं अमुरेन्द्रोंसे पूजित है, मुक्तिका अद्वितोय कारण है तथा तीनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाला है उसे साधुजन शरीरके स्थित रहनेपर ही धारण करते हैं। उस शरीरको स्थिति उत्कृष्ट भक्तिसे दिये गये जिन सद्दगृहस्थाँके अन्तसे रहती है उन गुणवान् सद्दगृहस्थाँका धर्म भला किसे प्रियं न होगा। अर्थात् सवको प्रियं होगा।

२. श्रावक धर्मके योग्य पात्र

सा. ध./१/११ न्यायोपात्तधनो, यजनगुणगुरूत्. सह्मी स्त्रिवर्गं भजननन्योन्यानुगुणं, तदर्हगृहिणी-स्थानालयो होमयः। युक्ताहारिवहारआर्यसमितिः, प्राज्ञः कृतज्ञो वशी, शृज्वन्धमिविधं, दयास्तरभोः,
सागारधमं चरेत ।११। = न्यायसे धन कमानेवाला, गुणोंको, गुरुजनोंको तथा गुणोंमें प्रधान व्यक्तियोंको पूजनेवाला, हित मित और
प्रियका बक्ता, विवर्गको परस्पर विरोधरहित सेवन करनेवाला,
विवर्गके योग्य स्त्री, ग्राम और मकानसहित लज्जावान् शास्त्रके
अनुक्ष आहार और विहार करनेवाला, सदाचारियोंको संगति
करनेवाला, विवेकी, उपकारका जानकार, जितेन्द्रिय, धर्मको विधिको सुननेवाला दयावान् और पापोंसे डरनेवाला व्यक्ति सागार धर्मको
पालन कर सकता है।११।

विवेकी गृहस्थको हिंसाका दोष नहीं

म. पु./११/१४३-१४४,९४० स्यादारेका च षट्कर्मजीविनां गृहमेघिनाम्। हिसादोषोऽनुषक्को स्याज्जैनानां च द्विजन्मनाम् ।१४३। इत्यत्र ब्रूमहे सत्यं अल्पसावचसक्कृतिः। तत्रास्त्येव तथाप्येषां स्याच्छ्वद्विः शास्त्र-दिशता ।१४४। त्रिष्वतेषु न संस्पशों वधेनाहृद्विद्विजन्मनाम् । इत्यात्म-पक्षनिक्षिप्रदोषाणां स्याज्ञिराकृतिः ।१४०। — यहाँपर यह शंका हो सकती है कि जो असि-मधे आदि छह कर्मोसे आजीविका करनेवाले जैन द्विज अथवा गृहस्थ हैं उनके भी हिसाका रोष लग सकता है परन्तु इस विषयमें हम यह कहते हैं कि आपने जो कहा है वह ठीक है, आजीविकाके करनेवाले जैन गृहस्थोंके थोड़ीसी हिसाको संगति श्रृंबर्य होती है, परन्तु शास्त्रोंमें उन रोषोंकी शुद्धि भी तो विखलायी गयी है ।१४३-१४४। अरहन्तदेवको माननेवालेको द्विजोंका पक्ष, चर्या और साधन इन तोनोंमें हिसाके साथ स्पर्श भी नहीं होता--।१५०।

४. श्रावकको भव धारणकी सीमा

वसु. आ./५३६ सिज्भइ तइयिम्म भवे पंचमए कोवि सत्तमहुमए।
भुंजिवि सुर-मणुयसुहं पावेइ कमेण सिद्धपयं १५३६। — (उत्तम
रीतिसे श्रावकोंका आचार पालन करनैवाला कोई गृहस्थ) तीसरे
भवमें सिद्ध होता है। कोई क्रमसे देव और मनुष्योंके सुखोंको भोगकर पाँचवें, सातवें या आठवें भवमें सिद्ध पदको प्राप्त करते हैं।५३६१

५. श्रावकको मोक्ष निषेधका कारण

मो. पा./१२/३१३ पर उहधृत-खण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुंभ प्रमार्जनी ।
पञ्च सूना गृहस्थस्य तेन मोशंन गच्छति । = गृहस्थोंके उखली,
चक्की, चूल्ही, घड़ा और भाड़ू थे पंचसूना दोष पाये जाते हैं। इस
कारण उनको मोश नहीं हो सकता।

३. पाक्षिक व नैष्ठिक श्रावक निर्देश

1. नैष्टिक श्रावकमें सम्यक्तका स्थान

बसु, श्रा./१ एयारस ठाणाई सम्मत्त विविज्ञिय जीवरस । जम्हा ण संति तम्हा सम्मत्तं सुणह वोच्छामि ।१। == (श्रावकके) ग्यारह स्थान चूँकि सम्यग्दर्शनसे रहित जीवके नहीं होते, अतः में सम्यक्तका वर्णन करता हूँ। हे भव्यो ! तुम सुनी ।१।

द्र. सं./दी./४६/१६६/३ सम्यवत्वपूर्वकेन---दार्शनिकश्रावको भवति। =सम्यक्तवपूर्वक---दार्शनिकश्रावक होता है। (ला. सं./२/६)।

२. ग्यारह प्रतिमाओंमें उत्तम मध्यमादि विमाग

चा. सा./४०/३ आचास्तु षट् जवन्याः स्युमध्यमास्तदनु त्रयः । केशे द्वादुत्तमाचुत्ती जैनेषु जिनशासने । = जिनागममे ग्यारह प्रतिमाओ मेंसे पहलेको छह प्रतिमा जघन्य मानी जाती हैं. इनके नादकी तीन अर्थात सातवीं, आठवीं और नौबीं प्रतिमाएँ मध्यम मानी जाती हैं। और नाकीकी दशबीं, ग्यारहबीं प्रतिमाएँ उत्तम मानी जाती है। (सा. ध./३/२-३); (इ. सं./टी./४६/१/१६/११); (इ. पा./टी./१८/१७)।

३. ग्यारह प्रतिमाओंमें उत्तरोत्तर वर्तीकी त्रतमता

चा. सा./३/४ इत्येकादेशनिखया जिनोदिताः शावकाः क्रमशः वतादयो गुणा दर्शनादिभिः पूर्वगुणैः सह क्रमश्रवृद्धा भवन्ति । चिनेन्द्रदेवने अनुक्रमसे इन ग्यारह स्थानोंमें रहनेवाले ग्यारह प्रकारके श्रावक बतलाये हैं। इन शावकोंके बतादि गुण सम्यग्दर्शनादि अपने पहलेके गुणोंके साथ अनुक्रमसे बढ़ते रहते हैं।

सा. ध्र./३/६ तद्वद्द्श निकादिश्च, स्थैर्य स्वे स्वे बतेऽबजन् । लभते पूर्व-मेवार्थाइ, व्यपदेशं न त्त्तरम् ।१। = नै ष्टिक श्रावककी तरह अपने-अपने बतों में स्थिरताको प्राप्त नहीं होनेवाले दर्शनिक आदि शावक भी वास्तवमें पूर्व-पूर्व की ही संज्ञाको पाता है, जिन्तु आगेकी संज्ञाको नहीं ।६।

४. पाक्षिक श्रावक सर्वथा अवती नहीं

ला. सं./२/४७-४६ नेत्थं यः पाक्षिकं कश्चिह ब्रह्मभावादस्त्यवती। पक्षमात्रावसम्बी स्याह वतमात्रं न चाचरेत् ।४७। यतोऽस्य पक्षप्राहि-त्वमसिद्धं नाधसंभवात् । लोपारसवेविदाज्ञायाः साध्या पाक्षिकता कुतः ।४८। आज्ञा सर्वविदः सैव क्रियावान् श्रावको मतः। कश्चि-त्सर्वनिकृष्टोऽपि न त्यजेत्स कुलक्रियाः ।४१। = प्रश्न - १ पाक्षिक श्रावक किसी बतको पालन नहीं करता, इसलिए वह अवती है। बह तो केवल बत धारण करनेका पक्ष रखता है, अतएव रात्रिभोजन त्याग भी नहीं कर सकता। उत्तर-ऐसी अश्वांका ठीक नहीं क्यों कि रात्रिभोजनत्याग न करनेसे उसका पाक्षिकपना सिद्ध नहीं होता। सर्वझदेव द्वारा कही रात्रिभोजनत्याग रूप कुर्लाकथाका त्यागन करनेसे उसके सबज्जदेवकी आज्ञाके सोपका प्रसंग आता है, और सर्वज्ञकी अक्षाका लोप करनेसे उसका पाक्षिकपना भी किस प्रकार उहरेगा ? 1४७-४८। २. सर्वज्ञकी आज्ञा है कि जो कियाबाच् कुल-क्रियाका पालन करता है यह शावक माना गया है। अतएव जो सबसे कम दर्जेके अभ्यासमात्र मूलगुणोंका पालन करता है उसे भी अपनी कुलक्रियाएँ नहीं छोड़नी चाहिए।४१।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

Jain Education International

- ला सं /३/१२६. १६९ एनगेव व सा चेत्स्यात्कुलाचारक्रमात्परम् । विना नियमादि तावत्त्रीच्यते सा कुलक्रिया १९६१ दर्शनदितमा नास्य गुणस्थानं न पञ्चमम् । केवलं पाक्षिकः सः स्याइगुणस्थानादसंयतः । १९३१ = ३. यदि ये उपरोक्त (अष्टमूलगुण व सप्रव्यसनत्याग) कियाएँ विना किसी नियमके हों तो उन्हें वत नहीं कहते बल्कि कुलक्रिया कहते हैं १९२६। ऐसे ही इन कुलक्रियाओंका पालम करने-वाला न दर्शन प्रतिमाधारी है और न पंचम गुणवर्ती । वह केवल पाक्षिक है और उसका गुणस्थान असंयत है ।१३१।
- दे. थावक/४/२ [अष्ट सूलगुण तथा सप्त व्यसन त्यागके विना नाममात्र-को भी श्रायक नहीं ।]
- दे. भावक/४/४ [ये अष्ट मूलगुण बती व अवती दोनोंको यथायोग्य रूपमें होते हैं।]
- दे. भावक/१/१/१ [अष्ट मूलगुण धारण और स्थूल अणुवलोंका शक्त्य-नुसार पालन पासिक भावकका लक्षण है ।]

५. पाक्षिक श्रावककी दिनवर्या

सा- घ./६/१-४४ नाह्यो मुहूर्त्त उत्थाय, वृत्तपञ्चनमस्कृतिः । कोऽहं को मम धर्म' कि, वतं चेति परामृशेत ।१। = ब्राह्म मुहूर्तमें उठ करके पदा है नमस्कार मन्त्र जिसने ऐसा शावक में कौत हूँ. मेरा धर्म कौन है, और मेरा बत कौन है. इस प्रकार चिन्तवन करे ।१। बाववके अति दुर्लभ धर्ममें उत्साहकी भावना ।२। स्नानादिके पश्चात् अष्ट प्रकार अहेन्त भगवान्की पूजा तथा बन्दनादि कृतिकर्म (३-४) ईस्री समितिसे (६) अध्यन्त उत्साइसे (७) जिनासयमें निस्सही शब्दके उच्चारणके साथ प्रवेश वरे (८) जिनालयको समबसरणके रूपमें ग्रहण करके (१०) देव शास्त्र गुरुकी विधि अनुसार पूजा करे (११-१२) स्वाध्याय (१३) दान (१४) गृहस्थ संबन्धित कार्य (१५) मुनिव्रतकी धारणकी अभिलाषा पूर्वक भीजन (१७) मध्याह्रमें अर्हन्त भगवान्की आराधना (२१) पूजादि (२३) तत्त्व चर्चा (२६) सन्ध्यामें भाव पुजादि करके सोबे (२७) निद्रा उच्टनेपर वैराग्य भावना भावे (२८-२३)। स्त्रीकी अनिष्ठताका त्रिचार करे (३४-२६) समता व मुनिवतको भावना करे (३४-४३)। आदर्श आवकों की प्रशंसा तथा धन्य करे (४४)। (ला. सं,/६/१६२-१८८)।

६. पाँची अतीके एकदेश पालन करनेसे अती होता है

- स. सि./७/११/३६ = १ अत्राह कि हिंसादोतामन्यतमस्माद्यः प्रतिनिवृत्तः स खल्वागारी वती। नेवम्। कि तहि। पञ्चतय्या अपि विरते-वैंकल्येन विविश्तः। = प्रश्न-जो हिंसादिकमेंसे किसी एकसे निवृत्तः है यह क्या अगारी वती है ? उत्तर-ऐसा नहीं है। प्रश्न-तो वयः हैं । उत्तर-जिसके एक देशसे पाँचींकी विरति है वह अगारी है। यह अर्थ यहाँ विविश्ति है। (रा. वा./७/१६/४/-४४७/१)।
- रा. वा./७/११/१४४६/३१ यथा गृहापवरकादिनगरदेशैर्निकासस्यापि नगरावास इति शब्दाते, तथा असकलब्रतोऽपि नैगमसंग्रहव्यवहार-नयिववक्षापेक्षया बतीति व्यपदिश्यते। ≈ जैसे—धरके एक कोने या नगरके एकदेशमें रहनेवाला भी व्यक्ति नगरवासी कहा जाता है उसी तरह सकल वृतोंको धारण न कर एक देशवतोंको धारण करनेवाला भी नैगम संग्रह और व्यवहार नगोंकी अपेक्षा वृती कहा जायेगा।

७. पाक्षिक व नैष्ठिक श्रावकमें अन्तर

ा. घ./३/४ दुर्लेश्यामिभवाज्जातु, विषये क्रचिदुत्सुकः। स्वलन्निष कापि गुणे, पाक्षिकः स्थान्न नैष्ठिकः ।४। स्कृण्ण, नील व कापीत इन लेश्याओं मेसे विसी एकके वेगसे किसी समय इन्द्रियके विषयमें उत्कण्डित तथा किसी मूलगुणके विषयमें अतिचार लगानेवाला गृहस्थ पाक्षिक कहलाता है नैष्ठिक नहीं।

४. श्रावकके मूल व उत्तर गुण निर्देश

५०

९, अष्ट मूळगुण अवश्य धारण करने चाहिए

- र. क. शा /६६ मदामांसमधुरयागैः सहः णुव्रतपञ्चकम् । अष्टी मूलगुणा-नाहुर्गृहिलां अमलोक्तमाः ।६६। ⇔मदा, मांस और मधुके रयाग सहित पाँचों अणुवलोंको श्रष्ट मुनिरास गृहस्थीके मूलगुण कहते हैं।६६। (सा. घ.)
- पु. सि. उ./६१ मदं मासं श्रौद्रं पञ्चोदुम्बरफलानि यश्नेन । हिसा व्युपरित्कामैमोक्तिक्यानि प्रथममेव ।६१। चिसा स्थापकी काम्ना-बाले पुरुषोंको सबसे पहले शराब, मांस, शहद, ऊमर, कठूमर आदि पंच चडुम्बर फलोंका त्याग करना योग्य है।६१। (पं.बि./६/२३), (सा. घ./२/२)।
- चा सा./३०/३ पर उद्धृत—हिंसासस्यस्तेयादनहापरिग्रहाच बादर-भेदात । च तान्मांसान्मकाहिरित्मृ हिणोऽष्ट सन्त्यमी मुलगुणाः। —स्थूल हिसा, स्थूल भूठ, स्थूल चोरी, स्थूल अन्नहा व स्थूल परि-ग्रहसे विरत्त होना तथा जूआा, मांस और मचका त्याग करना मे आठ गृहस्थोंके मूलगुण कहलाते हैं। (चा.सा./३०/३), (सा. घ/२/३)।
- सा, घ./२/१८ मदाग्तमधुनिशाशन पञ्चकतीविरति पञ्चकाष्टनुती ।
 जीवद्याजलगालनमिति च क्रचिद्ष्यसूलगुणाः ।१२। = किसी
 आचार्यके मतमे मदा, मांस, मधु, रात्रि भोजन व पंच उदुम्बर
 फलोंका त्याग, देववन्दना, जीव दया करना और पानी छानकर पीना मे सूलगुण माने गये हैं ।१८। (सा. घ./पं. लाल राम/फुट नोट पू. ६२)।

२. अष्ट मूळगुण निर्देशका समन्वय

रा, बा, हिं,/७/२०/११ कोई शास्त्रमें तो आठ मृल गुण कहे हैं, तामें पाँच अणुव्रत कहे, मध, मांस, शहदका लाग कहा, ऐसे आठ कहे। कोई शास्त्रमें पाँच उदुम्बर फलका त्याग, तीन प्रकारका त्याग, ऐसे आठ कहे। कोई शास्त्रमें अन्य प्रकार भी कहा है। यह तो विवक्षाका भेद है, तहाँ ऐसा समफना जो स्थुत्तपने पाँच पाप ही का त्याग है। पंच उदुम्बर फलमें तो त्रस मक्षणका त्याग भया, शिकारके त्यागमें त्रस मारनेका त्याग भया। चोरी तथा परस्त्री त्यागमें होड वत भए। च त कमीदि अति तृष्णाके त्याग तै असत्यका त्याग तथा परिष्रहकी अति चाह मिटी। मांस, मच, और शहदके त्याग तै त्रस क्षं मार किर भक्षण करनेका त्याग भया।

३. अष्ट मूळगुण व सप्त व्यसनीके व्यागके विना नामसे भी श्रावक नहीं

- दे. दर्शन प्रतिमा/२/४ पहली प्रतिमामें ही श्रावकको अष्ट मूलगुण व सप्त व्यसनका स्थाग हो जाता है।
- सा.धः /टिप्पणी/पृ. ८२ एतेऽष्टौ प्रगुणा गुणा गणधरै रागारिणां की तिता।
 एकेनाप्यमुना विना यदि भवेड्सूतों न गेहाश्रमी। अगठ मुलगुण
 श्रावकोंके लिए गणधश्देवने कहे हैं, इनमेंसे एकके भी अभावमैं
 श्रावक नहीं कहा जा सकता।
- पं. ध./७./७२४-७२८ निसर्गाद्वा कुलाम्नायादायातास्ते गुणाः स्फुटम् । तद्विना न वर्त यावरसम्यवस्यं च तथाङ्गिनाम् १७२४। एतावता विनाष्येष शावको नास्ति नश्चमतः । किं पुनः पाक्षिको

गूढो नै व्हिकः साधकोऽथवा १७२५। मचमांसमधुरपागी रमक्ती-कुम्बरपञ्चकः। नामतः श्रावकः रूयातो नान्यथाऽपि तथा गृही। उ 109६। यथाशक्ति विधातव्यं गृहस्थैव्यंसनोडमनस् । अवस्यं तद्वतस्थै स्तै रिच्छ द्भिः श्रेयसीं कियाम् ।७२७। त्यजेहोर्गान्तु तत्रो-क्तात् सूत्रोऽतीचारसंज्ञकात् । अन्यथा मद्यमांसादीत् श्रावकः कः समाचरेत ।७२८। =आठों मूलगुण स्वभावसे अथवा कुल परम्परा-से भी आते हैं। यह स्पष्ट है कि मूचगुणके बिना जीवोंके सब प्रकारका वत और सम्यवस्य नहीं हो सकता ।७२४: मूलगुणोंके बिना जीव नामसे भी श्रावक नहीं हो सकता तो फिर पाश्चिक, यूढ मैठिक अथवा साधक श्रावक कैसे हो सकता है।७२४। मद्य, मांस, मधुव पंच उदुम्बर फलोंका त्याग करनेवाला गृहस्थ नामसे शावक कहलाता है, किन्तु मद्यादिका सेवन करने वाला गृहस्थ नामसे भी शाबक नहीं है। ७२६। गृहस्थोंको यथाराक्ति व्यसनोंका स्थान करना चाहिए, तथा कल्याणप्रद क्रियाओं के करनेकी इच्छा करनी चाहिए। ब्रती गृहस्थको अवस्य ही व्यसनोंका त्याग करना चाहिए १७२७। और मूलगुणोंके लगनेवाले अतिचार नामक दोषोंको भी अवस्य छोड्ना चाहिए अन्यथा साक्षाद रूपसे मदा, मांस आदिको कौनसा थानक खाता है।७२८। (सा. सं./२/६८), (सा. सं./-३/१२६-१३०) ।

४. अष्ट मूळगुण वती अवती दोनोंको होते हैं

पं. ध./उ./७२३ तत्र मूलगुणाश्चाष्टी गृहिणां वतधारिणाम्। कचिद-विता यस्माद सर्वसाधारणा इमे ।७२३। = उनमें जिस कारणसे वतो गृहस्थोंके जो आठ मूलगुण हैं वे कहीं-कहीं पर अवती गृहस्थों-के भी पाये जाते हैं इसलिए ये आठों ही यूलगुण साधारण है ।७२३। (ता. सं./३/१२७-१२८)।

प. साधुको पूर्ण और श्रावकको एकदेश होते हैं

पं, ध्र./उ /७२२ मुलोत्तरगुणाः सन्ति देशतो वेश्मवर्तिन।स् । तथा-नगारिणां न स्युः सर्वतः स्युः परेऽथ ते ।७२२। च्लैसे गृहस्थोंके मूल और उत्तरगुण होते हैं वैसे मुनियोंके एकदेश रूपसे नहीं होते हैं किन्द्र वे मूलगुण तथा उत्तरगुण सर्व देश रूपसे हो होते हैं। (विशेष दे. बत/२/४)।

६. श्रावकके अनेकों उत्तर गुण

- १. श्रावकके २ कर्तव्य
- र. सा./११ दार्ण पूजा मुक्त सावमधम्मे ए सावमा तैण विणा ! क्चार प्रकारका दान देना और देवशास्त्र गुरुकी पूजा करना श्रावकका मुख्य कर्तव्य है, इंनके बिना वह श्रावक नहीं है।
 - २. श्रावकके ४ कर्तव्य
- क, पा./६ ८२/१००/२ दःणं पूजा सीलमुबबासो चेदि चउठित्रहो सावय-धम्मो । चदान, पूजा, शील और उपवास ये चार श्रावकके धर्म हैं। (अ.ग. श्रा./१/१), (सा.ध./७/५१), (सा.ध./पं:लाला-राम/फुटनोट पृ. १४)।

३, श्रावकके ५ कर्तेच्य

कुरल./६/३ मृहिणः पञ्च कर्माणि स्वोन्नतिई वपूजनम् । जन्धु साहाय्य-मातिथ्यं पूर्वेषां कीर्तिरक्षणम् ।३। = पूर्वजोकी कीर्तिकी रक्षा. देव-पूजन, अतिथि सरकार, अन्धु-बान्धवोकी सहायता और आरमो-न्नति ये गृहस्थके पाँच कर्तव्य हैं ।३।

- ४. शावकाके ६ कार्तव्य
- चा. सा /४३/१ गृहस्थस्येज्या, वार्ता, दत्तिः, स्वाध्यायः, संग्रमः, तप इत्यार्येषट्कर्माणि भवन्ति । —इज्या, वार्ता, दत्ति, स्वाध्याय, संग्रम और तप ये छह गृहस्थोंके आर्य कर्म कहताते हैं।
- पं, बि./६/७ देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संगमस्तपः। दानं चेति
 गृहस्थानां षट्कमणि दिने दिने ।७। = जिनपूजा, गुरुकी सेवा.
 स्वाध्याय, संयम और तप ये छह कर्म गृहस्थांके लिए प्रतिदिनके
 करने योग्य आवश्यक कार्य हैं।७।
- अ. ग. शा./≈/२६ सामाधिकं स्तवः पाज्ञैर्वन्दना सप्रतिक्रमा । प्रत्या-रूयानं तन्त्रसर्गः घोढावश्यकमीरितम् ।२६। च्यामधिक, स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्यारूयान ऐसे छह प्रकारके आवश्यक पण्डितोंके द्वारा कहे गये हैं ।२६।
 - ५. श्रावककी ५३ कियाएँ
- र. सा./१६३ गुणवयतवसमपिडमादाणं जलगालण अणस्थिमियं। दंसणणाणचिरित्तं किरिया तैवण्ण सावया भणिया।१६५३६ च् गुणवत्तः, अणुवतः ६. शिक्षावतः ४, तप १२, ग्यारह प्रतिमाओं का पालन ११. चार प्रकारका दान देना ४, पानी छानकर पीना १, रातमें भोजन नहीं करना १, रतनत्रयको धारण करना ३, इनको आदि लेकर शास्त्रों में आवकों की तिरेपन क्रियाएँ निरूपण की हैं उनका जो पालन करता है वह शावक है।१६३।

७. श्रावकके अन्य कर्तन्य

- त. सू./%/२२ मारणान्तिकीं सक्तेखनां जोषिता।२२।=तथा वह (श्रावक) मारणान्तिक संतेखनाका प्रीतिपूर्वक सेवन करनेवाला होता है।२२। (सा. ध./%/५%)।
- वसु, शा./३१६ विणयो विष्णां विच्चां कायिक तेसी य पुज्जणविहाणं। सत्तीर जहजीगां कायव्यं देसविरएहिं।११६। = देशिवरत धावकोंको अपनी शक्तिके अनुसार यथायोग्य विनय, वैयावस्य, कायक्तेश और पूजन विधान करना चाहिए।११६।
- पं, वि./६/१६, २६, ४२, ६६ पर्वस्वथ यथाशक्ति भुक्तितामादिकंतपः।
 वस्त्रपूर्तं जिनेतीयं .. ।२१। विनयश्च यथायोग्यं कर्तव्यः
 परमेष्ठिषु। दृष्टिनोधचरित्रेषु तद्वरसु समयाश्रितैः ।२६। द्वादशापि
 चिन्त्या अनुप्रेशा महारमितः.. ।४२। आयोक्तमक्षमा यत्र यो धर्मो
 दशभेदभाक्। श्रावकैरि सेव्योऽसौ यथाशक्ति यथागमम् ।६६।
 = पर्वके दिनोमें यथाशक्ति भोजनके त्यागक्त्य अनशनादि तपोंको
 करना चाहिए। तथा वस्त्रसे छना जल पीना चाहिए।२६। श्रावकोंको
 जनागमके आश्रित होकर पंच परमेष्ठियाँ तथा रत्नत्रयके धारकोंको
 यथायोग्य विनय करनी चाहिए।२६। महात्मा पुरुषोंको अनुप्रेक्षाऔंका चिन्त्व करना चाहिए।४२। श्रावकोंको भी यथाशक्ति और
 आगमके अनुसार दश्चभिका पालन करना चाहिए।६६।
- सा. ध./ टिप्पणी/२/२४/पृ. १५ आराध्यन्ते जिनेन्द्रा गुरुषु च विनितिधार्मिके प्रीतिरुच्चैः। पात्रेभ्यो दानमापित्तहतजनकृते तच्च कारुण्यबुद्ध्या । तत्त्वाभ्यासः स्वकीयवत्ररितरमलं दर्शनं यत्र पूज्यम् । तद्गाहंस्थ्यं बुधानामितरिद्द पुनर्दुःखदो मोहपाशः । = जिनेन्द्रदेवकीः
 आराधना, गुरुके समीप विनय, धर्मारमा लोगोपर प्रेम, सत्पात्रोंको
 दान, विपत्तिग्रस्त लोगोपर करुणा, बुद्धिसे दुख दूर करना, तत्त्वोंका
 अभ्यास, अपने व्रतोंमें लीन होना और निर्मल सम्यग्दर्शनका
 होना, ये कियाएँ जहाँ त्रिकरणसे चलती हैं वही गृहस्थधर्म
 विद्वानोंको मान्य है, इससे विपरीत गृहस्थ लोक और परलोकमें
 दुख देनेवाला है।
- सा. घ./श्रर्वः १६ स्वाध्यायमुत्तमं कृष्वित्तुप्रशाश्च भावयेत् । यस्तु मन्दायते तत्र, स्वकार्ये सः प्रमाद्यति । ११। यत्प्रागुक्तं मुनीन्द्राणां, वृत्तं

तदि सेव्यताम्। सम्थङ् निरूप्य पदवीं, राक्ति च स्वामुपासकैः।१६। म्थावक आत्महितकारक स्वाध्यायको करे, बारह भावनाओंको भावे। परन्तु जो श्रावक इन कार्योमें आतस्य करता है वह हित कार्योमें प्रमाद करता है।१६१। पहले अनगार धर्मामृतमें कथित मुनियोंका जो चारित्र, उसको भी अपनी शक्ति व पदको समफ्तर श्रावकोंके हारा सेवन किया जाय।१६।

- पं. धः/उः/०३६-७४० जिनचे त्यगुहादीनां निर्माणे सामधानत्या। यथासंपद्विभेयास्ति दूष्या नावचलेशतः ।७३६। अय तीर्थादियात्रामु
 विद्ध्यात्सोद्यतं मनः। श्रावकः स तत्रापि संयमं न विराध्येत ।७३६।
 संयमो द्विविधश्चेतं विधेयो गृहमेधिभिः। विनापि प्रतिमारूपं
 वर्तं यद्वा स्वराक्तितः ।७४०। = अपनी सम्पक्तिके अनुसार मन्दिर
 बनवानेमें भी सावधानता करनी चाहिए, क्योंकि थोड़ा सा भी
 पाप इन कार्योमें निद्य नहीं है ।७३६। और वह श्रावक तोर्थादिककी
 यात्रामें भी मनको तत्यर करे, परन्तु उस यात्रामें अपने संयमको
 विराधित न करे ।७३६। गृहस्थोंको अपनी शक्तिके अनुसार प्रतिमा
 रूपसे वा विना प्रतिमारूपसे दोनों प्रकारका संयम पालन करना
 चाहिए ।७४०।
- ला. सं./४/१८६ यथा समितयः पठ्य सन्ति तिस्रश्च गुप्तयः। अहिंसा-वतरक्षार्थं कर्त्तव्या देशतोऽपि तैः १९८६। च्यहिंसरणुवतकी रक्षाके लिए पाँच समिति तथा होन गुप्तियोंका भी एक देशरूपसे पालन करना चाहिए १९८६।
- दे वत/२/४ महाब्रतकी भावनाएँ भानी चाहिए।
- दे. पूजा/२/१ अईन्तादि पंच परमेष्ठीकी प्रतिमाओंकी स्थापना करावें। तथा नित्य जिनविम्ब महोत्सव आदि क्रियाओंमें उत्साह रखे।
- दे. चैत्यचैत्यालय/१/८ औषधालय, सदावतशालाएँ तथा प्याक स्वत-वावे। तथा जिनसन्दिरमें सरोवर व फुलवाड़ी आदि लगवावे।

८. आवस्यक क्रियाभीका महत्त्व

- थे, दान/४ चारौ प्रकारका दान अत्यन्त महत्त्वशाली है।
- र. सा./१२-१३ दाणुण धम्मुण चागुण भोगुण बहिरण्यो पर्यंगो सो।
 जोहकसायिगमुहे पिडलमिरिजण संदेहो।१२। जिल पूजा मुणिराणं करेह जो देह सिक्तवेल। सम्माइट्ठी सावय धम्मी सो होइ मोक्ल-मग्गरओ।१३। जो शावक सुपात्रको दान नहीं देता, न अष्टम्लगुण, पुणवत, संयम पूजा आदि धमका पालन करता है, न मीतिपूर्वक भोग भोगता है वह मिथ्यादृष्टि है। जैन धर्म धारण करनेपर भी लोभको तीव अग्निमें पत्रंगेके समान जड़कर मरता है। जो शावक अपनो शक्ति अनुसार प्रतिदिवस देव, शास्त्र, गुरु पूजा तथा सुपात्रमें दान देता है, वह सम्प्रदृष्टि श्राप्तक इससे मोक्षमार्गमें शीध गमन करता है।१२-१३।
- म. पु./३६/६६-१०१ ततोऽधिगतसज्जातिः सहगृहित्वमसी भजेत ।
 गृहमेश्री भवनार्यषद्कर्माण्यनुपालयम् ।६६। यदुक्तं गृहचर्यायाम्
 अनुष्ठानं विशुद्धिमतम् । तदाप्तविहितं कृत्स्नम् अतन्द्रालुः समाचरेत् ।१००। जिनेन्द्रावलन्धसज्जन्मा गणेन्द्ररनुशिक्षितः । स धत्ते परमं
 ब्रह्मवर्षसं द्विजसत्तमः ।१०१ः = जिसे सज्जाति क्रिया प्राप्त हुई है ऐसा
 बह भव्य सद्दगृहित्व क्रियाको प्राप्त होता है । इस प्रकार जो सद्दगृहित्व होता हुआ आर्थ पुरुषोंके करने योग्य छह कर्मोका पालन
 करता है, गृहस्थ अवस्थामें करने योग्य जो जो विशुद्ध आचरण कहे
 गये हैं अरहन्त भगवान्के द्वारा कहे गये उन-उन समस्त आचरणोंका
 जो आलस्य रहित होकर पालन करता है, जिसने श्री जिनेन्द्रदेवसे
 उत्तम जन्म प्राप्त किया है, गणधर देवने जिसे शिक्षा दी है ऐसा वह
 उत्तम द्विज उत्कृष्ट क्रह्मतेज-आत्मतेजको धारण करता है।६६-१०१।

९. कुछ निषिद्ध क्रियाएँ

- पु. सि. ज./०० स्तोकैकेन्द्रियघाताइगृहिणां संपन्नयोग्यविषयाणाम्। शेषस्थावरमारणविरमणमपि भवति करणीयम् १७७। च्हिन्द्रयोके विषयोको न्याय पूर्वक सेवन करनेवाले श्रावकोंको कुळ आवश्यक एकेन्द्रियके घातके अतिरिक्त अवशेष स्थावर-एकेन्द्रिय जीवोंके मारनेका त्याग भी अवश्यमेव करने योग्य होता है ।७७।
- दे. सावच/२ खर कर्म आदि साबच कर्म नहीं करने चाहिए।
- वसु. श्रा./३१२ दिणपडिम-बीरचिरया-तियासकीगेषु णित्य अहियारो ।
 सि३धंत-रहस्साण श्रि अज्मयणं देसविरदाणं ।३१२। = दिनमें प्रतिमा
 योग्य धारण करना अर्थात् नग्न होकर कामोत्सर्गं करना, त्रिकालयोग-गर्मीमें पर्वतोंके ऊपर, बरसातमें वृक्षके नीचे, सर्दीमें नदीके
 किनारे ध्यान करना, बीरचर्या—सुनिके समान गोचरो करना,
 सिद्धान्त प्रन्थोंका—केवली श्रुतकेवली कथित, गणधर, प्रत्येक बुद्ध
 और अभिन्न दशपूर्वी साधुओंसे निर्मित प्रन्थोंका अध्ययन करना
 और रहस्य अर्थात् प्रायश्चित्त शास्त्रका भी अध्ययन करना
 इतने कार्योंमें देश विरित्योंका अधिकार नहीं है ।३१२। (सा. ध./
- सा, धः/४/१६ गवायों ने ब्लिको वृत्ति, त्यजेद् बन्धादिना विना । भोग्याच् वा तानुपेयात्तं, योजयेद्वा न निर्देयम् ।१६ = नै ब्लिक श्रावक गौ बैल आदि जानवरोके द्वारा अपनी आजीविकाको छोड़ें अथवा भोग करनेके योग्य उन गौ आदि जानवरोंको बन्धन ताड़न आदिके बिना ग्रहण करें, अथवा निर्देयता पूर्वक बन्धन आदिको नहीं करें।१६।
- ला. सं /१/२२४, २६४ अश्वादारोहणं मार्गे न कार्यं व्रतधारिणास्। ईर्यान् समितिसंशुद्धिः कृतः स्थात्त्र कर्मण (२२४) छेद्यो नाशादिखिद्रार्थः काष्ठमुलादिभिः कृतः । तावन्माशातिरिकतं तिव्ञिधियं प्रतिमानिवतः ।२६४। = अणुवती आवकको घोड़े आदिकी सवारीपर चढ़कर चलनेमें उसके इर्या समितिकी शुद्धि किस प्रकार हो सकती है ।२२४। प्रतिमा रूप अहिंसा अणुवतको पालन करनेवाले आवकोंको नाक छेदनेके लिए सूई, सूआ वा लकड़ी आदिसे छेद करना पड़ता है, वह भी उतना ही करना चाहिए जितनेसे काम चल जाये, इससे अधिक छेद नहीं करना चाहिए।२६४।

१० सब क्रियाओं में सबम रक्षणीय है

- दे. श्रावक/४/७ में पं. ध-वह श्रावक तीर्थ यात्रादिकमें भी अपने मनको तत्पर करें, परन्तु उस यात्रामें अपने संयम्, को विराधित करें।
- आविकासीरे— आवकोंके आचारके प्रस्तपक कई ग्रन्थ आवक्षाचार नामसे प्रसिद्ध हैं यथा—१. आ. समन्तभद्र (ई. श. २) कृत रत्नकरण्ड आवकाचार। २. आ. योगेन्द्रदेव (ई. श. ६) कृत नवकार आव-काचार। ३. आ. अमितगति (ई. १८१-१०२३) कृत आवकाचार। ४. आ. वसुनन्दि (ई. १०४३-१०६३) कृत आवकाचार।
 - १ आ. सकतकीर्ति (ई. १४२३-१४४२) कृत प्रश्नोत्तर आवकाचार । ६, पं. आशाधर (ई. ११७३-१२४३) कृत सागार धर्मामृत । ७, आ. पद्मनन्दि नं. ७ (ई. १३०४) कृत आवकाचार । ५०० ।
- श्रावण द्वादशी वत बारह वर्ष पर्यन्त प्रतिवर्ष भावपद शु. १२ को उपवास । तथा नमस्कार मन्त्रका विकास जाप्य (वत विधास सं./पृ. ८८)।
- भिति भ. आः /मू./१७१/३८८ जा उवरि-उवरि गुणपडिवत्ती सा भावदो सिदी होदि । दब्बसिदी णिस्सेणी सोवाणं आरुहंतस्स ।१७१। सम्प्रपदर्शन आदि शुद्ध गुणोंकी गुणित रूप उत्तरोत्तर उन्नता-बस्थाको शाप्त कर सेना यह भाव रूप भिर्ति है। और कोई उच्च स्थानमें स्थित ,पदार्थ सेना चाहे तो निश्रेणीका अवसम्बन सेकर एक-एक सोपान पंक्ति क्रमसे चढ़ना बह द्रव्य शिति है।

श्री—१. विजयार्धकी दक्षिण श्रेणोका एक नगर दे:विद्याध्यः; २. हिंम-बास् पर्वतस्य एक क्ट-दे. लोक १/४;३, हिमवास् पर्वतस्य पसहदकी स्वामिनी देवी—दे. लोक १/१;४. रुचक पर्वत निवासिनी दिवकुमारी देवी—दे. लोक १/१३;६. भरतके आर्य खण्डस्य एक पर्वत—दे. मनुष्य/४।

श्रीकंठ—१. इसको राक्षस वंशीय राजा कीर्तिधनलने वानर द्वीप दिया था, जिससे आगे जाकर इसकी सन्तितिसे वानर वंशकी उत्पत्ति हुई।—दे. इतिहास/७/१२। २. वेदान्तकी शिवाद्वैत शास्त्राके प्रवर्तक—दे. वेदान्त/७।

अकिटन --- भरतक्षेत्रस्थ आर्य खण्डके मत्तय पूर्वतके निकटस्थ एक पूर्वत-दे, मनुष्य/४।

श्रीकरिप --- कालका प्रमाण विशेष। अपरनाम शिरःकंप। -- दे. गणित/ 1/१/४।

श्रीकांता — मुमेरु पर्वतके नन्दनादि बनोंमें स्थित वापियाँ। — दे, लोक/७।

श्रीचंद्र — पुराणसार संग्रह तथा दंसणकहारयणकर ह के कर्ता अप-भ्रंश कि । गुरु परम्परा-नित्संघ देशीयगण में श्रीकी ति, भ्रुत-कीर्ति, सहस्रकीर्ति, बीरचन्द्र, श्रीचन्द्र । समय — ग्रन्थ रचनाकास बि, ११२३ (ई. १०६६) । (ती./४/१३१) ।

श्रीदर्त - १. भूतकालीन सप्तम तीर्थंकर - दे. तीर्थंकर/१ । २. भगवान् महाबीर की मूल परम्परा में लोहाचार्य के पश्चात एक अङ्गधारी। समय - वी. नि. १६१-१८ (ई. ३८-१८)। (दे. इतिहास/४/४)। ३. एक प्रसिद्ध जैन तार्किक दिगम्बराबार्य जिनका नामो- एलेख आ विद्यानन्दि ने श्लोकवार्तिक में किया और आ पूज्यपाद (ई. इ. ६) एक ने जिनका स्मरण किया। कृति—जस्प निर्णय। समय - वि. . इ. ४-१ (ई. ११. ४ का उत्तरार्ध)। (ही./२/४४१)

श्रीघर — १, गणित तथा ज्योतिष विद्या के विद्यान् दिगम्बराचार्य। कृति—गणितसार संग्रह. ज्योतिक्वानिविधि, जातक तिलक, लीलावती (कन्नड़)। समय—रचनाकाल ई. ७६६-८६६। (ती./३/१६१) २. 'सुकुमाल चरिज' के कर्ता अपभ्रंत किव। समय—ग्रन्थ रचना-काल ई. ११५१। (ती./३/१८८)। ३. पासणाह चरिज तथा वह्दमाण चरिज के रचियता एक भाग्य व पुरुषार्थ जभयवादी। हरियाणा-वासी बुध गोण्ड के पुत्र। समय—ग्रन्थ रचनाकाल वि. १९८६। (ती./४/१३४)। ४. 'भविसयन्त चरिज' के रचियता अपभ्रंत्रा किंवि दिगम्बर सुनि। माथुरवंशीय नारायण के पुत्र। समय—ग्रन्थ रचना-काल वि १२००। (ती./४/१४६)। ६. 'सुकुमाल चरिज' के रचियता एक अपभ्रंत्रा किंवि गृहस्थ। साहू पाथी के पुत्र। समय—ग्रन्थ रचना-काल वि. १२०८। (ती./४/१४६)। ६. सेनसंघी सुनिसेन के शिष्य, काव्य शास्त्रज्ञ। कृति—विश्वलोचन कोश। (ती./३/१८८)। ७. भविष्यदत्त चरित्र तथा श्रुतावतार के रचितता। समय—ई. श. १४। (ती./३/१८८)।

भी भर्गः म.पु./५६/ श्लोक — धरणी तिलक नगरके स्वामी अतियेग विद्याधरकी पुत्री थो। अलका नगरके राजा दर्शकसे विवाही गयी (२२८-२३०)। अन्तमें दीक्षा प्रहण कर तप किया (२३२) पूर्व भवके वैरो अजगरने इसे निगल लिया। (२३७) मर कर यह रुचक विमानमें उरपन्न हुई (२३८)। यह मेरु गणधरका पूर्वका छठाँ भव है – दे, मेरु।

श्रीनंदन- १, पु./६२/श्लोक नं. श्री मन्यु अदि सप्तत्राचियोंके पिता थे (४) प्रीतिकर भगवानुके केवलज्ञानके समय एक पुत्रकी राज्य

देकर सातों पुत्र सहित दीक्षा प्रहण कर ली (६)। अन्तमें मोक्ष प्राप्त की (६)।

श्रीनंदि — निन्द संघ देशीयगण के अनुसार आप सकल-चन्द्रके शिष्य तथा नयनन्दिके गुरु थे। आपके लिए ही श्री पद्मनन्दिने जम्बूदीय पण्णत्ति लिखी थी। अपरनाम रामनन्दि था। समय—वि. १०२६-१०८० ई. ६६-१०२३), (ज. प./प्र. १३ A. N. Up.)। दे. इतिहास/७/४।

श्रीनाथ-अग्रोहाके राजा थे। समय-ई. १८६।

श्रीनिकेत — विजयार्धकी उत्तर श्रेणीका एक नगर—दे. विद्याधर ।

श्रीनिचय-१, पदाहद भें स्थित एक कूट। -दे. लोक/ १/७; २. सप्तभृषियोमेंसे एक -दे. सप्तभृषि।

श्रीनिवास — विजयार्धकी उत्तर श्रेणीका एक नंगर-दे, विद्याधर।

श्रोपाल---१, म. पु./सर्ग/श्लोक-पूर्व विदेहमें पुण्डरीकिणी नगरीका राजा था (४७/३-४) । पिता गुणपालके ज्ञानकल्याणमें जाते समय मार्गमें एक विद्याधर घोड़ा बनकर उड़ाकर ले गया, जाकर वनमें छोड़ा (४७/२०) घूमते-चूमते विदेशमें अनेको अवसरों व स्थानोंपर कन्याओंसे विवाह करनेके प्रसंग आये परन्तु 'मैं माता आदि गुरु-जनके द्वारा प्रदत्त कन्याके अतिरिक्त अन्य कन्यासे भोग न करूँगां' इस प्रतिज्ञाके अनुसार सक्को अस्वीकार कर दिया (४४/२८-१५०) । इसके अनन्तर पूर्वभवकी माता यक्षी द्वारा प्रदत्त चक्र, दण्ड, छत्र आदि लेकर, उनके प्रभावसे पिताके समवसरणमें पहुँचा (४७/१६०-१६३) । इसके अनन्तर चक्रवर्तीके भोगोंका अनुभव किया (४७/१७३) । अन्तमें दोक्षा ग्रहणकर मोक्ष प्राप्त किया (४७/४४-४६)। २. चम्पापुर नगरके राजा अरिदमनका पुत्र था। मैना सुन्दरीसे विवाहा गया। कोढ़ो होनेपर मैना सुन्दरी कृत सिद्धचक विधानके गन्धोदकसे कुष्ठ रोग दूर हुआ। विदेशमें एक विद्याधरसे जलतरंगिणी व शत्रु निवारिणी विद्या प्राप्त की । धवल सेठके रुके हुए जहाजोंको चोरोंसे छुड़ाया। इनको रैनमंजूषा नामक कन्याकी प्राप्ति होनेपर धवल सेठ उसपर मोहित हो गया और इनको समुद्रमें गिरा दिया। तब ये सकड़ीके सहारे तिरकर कुंकुमद्वीपमें गये। वहाँपर गुणमाला कन्यासे विवाह किया। परन्तु धवलसेठके भाटों द्वारा इनकी जाति भाण्ड अतादी जानेपर इनको सूलीकी सजामिली। तब रैनमंजूषाने इनको छुड़ाया। अन्तमें दीक्षा ग्रहणकर मोक्ष प्राप्त किया (श्रीपाल चरित्र)। ३. पंचस्तूप संव में बीरसेन स्वामी (ई. ७७०-८२७) के शिष्य और जिनसेन (ई. ८१८-८७८) के सधर्मा । समय--(सगभग ई. ८००-८४३) बि. श. ६। (ती./२/४६२) (दे. इतिहास/७/७)। ४. द्रविड संघी ः गोणसेन के शिष्य और देवकीर्ति पण्डित के गुरु। अनन्तवीर्य के सधर्मा। समय – ई, १७५-१०२४। (सि, बि./-प्र./७७/पं. महेन्द्र)। ५. एक राजा जिनके निमित्त नैमिचन्द्र सिद्धान्तिकदेव ने द्रव्य सप्रहकी रचनाकी थी। समय-वि, ११००-११४० (ई, १०४३-१०८३) (ज्ञा./म. २/पं. पन्न(लाल) ।

श्रीपाल चरित्र—१. सकलकोतिकृत संस्कृत छन्दोबद्ध । समय— ई. १४०६-१४४२ । (ती./३/१३३) । २० भट्टारक श्रुतसागर (ई. १४८७-१४६६) कृत संस्कृत गण रचना । (ती./३/४००) । ३० कि परिमक्त (ई. १४६४) कृत । ४. ल. नेमिदक्त (वि. १४८५, ई. १४२८) कृत ॥ (जी./३/४०८) । १० वादिचन्छ (वि. १६३७-१६६४) कृत हिन्दी गीत काव्य । (ती./४/७२) । ६. पं. दौलत राम (ई.१७२०-१७७२) कृत भाषा प्रन्थ । श्रोपाल वर्णी इन्होंने शुभवन्द्राचार्यको अध्यात्म तरंगिनी लिखनेमें सहायता दी थी। समय निव. १६११ (ई. १४४४), (का, अ./ प्र. ८३। A. N. Up.)।

श्रीपुर—विजयार्घकी दक्षिण श्रेणीका एक नगर—दे. विद्याधर ।

श्रीपुरुष राजा पृथिवी कोङ्गणिका दूसरा नाम श्रीपुरुष था। आप गंगवंशी नरेश थे। समय - वि. ५३३ (ई. ७६६), (भ.आ./प्र. १६ प्रेमी जी)।

श्रीप्रभ - १. विजवार्धकी दक्षिण श्रीणका एक नगर-दे, विद्याधर; २. दक्षिण पुष्कर समुद्रका रक्षक व्यंतर देव-दे, व्यंतर/४।

श्रीभद्र-भृतकालीन २३ वें तीर्थं कर - वे, तीर्थं कर/६।

श्रीभद्रा—सुमेरु पर्वतके नन्दनादि बनोंमें स्थित वापी
—दे लोक/६/६।

श्रीभूषण - शान्तिनाथ पुराण, पाण्डन पुराण, द्वादशांग पूजा तथा प्रमोध चिन्तामणि के कत्तर एक भट्टारक । समय-वि. १६३६-१६७६। (तो./४/४११)।

श्रीमंडप भूमि—समवशरणकी आठवीं श्रुमि—दे, समवशरण।

श्रीमति---१, म पु./सर्ग/हलोक--पुण्डरीकिणी नगरीके राजा वज्र-दन्तकी पुत्री थी (६/६०)। पूर्वभवका पति मरकर इसकी बुआका लड्का हुआ। जातिसमरण होनेसे उसको दूँ उने आयी (६/११)। जिस किस प्रकार खोज निकालकर उससे विवाह किया (६/१०५)। एक दिन मुनियोंको आहार देकर भोगभूमिकी आयुका बन्ध किया (८/१७३)। एक समय शयनागारमें सुगन्धित द्रवयके घुटनेसे आक-स्मिक मृत्यु हो गयी (१/२७)। तथा भोगभूमिमें जन्म लिया (८/३३)। यह श्रेयांस राजाका पूर्वका सातवाँ भा है। -दे. श्रेयांस; जिनदत्त चरित्र/सर्ग/श्लोक—सिंघल द्वीपके राजा धनवाहनकी पुत्री थी। इसको ऐसा रोग था जो इसके पास रहता वह मर जाता था। इसी कारण इसके िताने इसे पृथक् महल दे दिया (४/८) एक दिन एक बुढ़ियाके पुत्रकी बारी खानेपर जिनदत्त नामक एक लड़का स्वयं इसके पास गया। और राजिको इसके मुँहमें से निकले सपंको मारकर इसको बिकाहा (८/१६-२६)। इसपर मोहित होकर सागरदत्तने जिनदत्तको समुद्रमें गिरा दिया। यह अपने शीलपर इह रही और मन्दिरमें रहने सपी (४/८)। कुछ समय पश्चाद इसका पति आ गया (७/२४) अन्तर्ने दोक्षा धारण कर सी। समाधि-पूर्वक कापिष्ठ स्वर्गमें देव हुई (१/११२)।

श्रीमन्यु—सप्तऋषियोंमेंसे एक—दे. सप्तऋषि ।

श्रीमहिता — सुमेरु पर्वतके नन्दमादि बनोमें स्थित वापी। — दे, लोक/शंह।

ओवंश एक पौराणिक राजवंदा-दे. इतिहास/१०/१४।

श्रीवर्मा — म. पु./१४/रलोक — पुण्कर द्वीपके पूर्व मेरुकी पश्चिम दिशामें सुपन्धि नामक देशके श्रीपुर नगरके राजा शीषण (६/३७) का पुत्र था (६८)। एक समय विरक्त हो दीक्षा ते ली. तथा संत्यास मरणकर (६०-६१) स्वर्गमें देव हुआ (८२)। यह चन्द्रप्रभ भगवान्का पूर्वका पाँचवाँ भव है। — दे. चन्द्रप्रभ।

अविल्लभे — दक्षिणमें लाट देशके राजा कृष्णराज प्रथमका पुत्र था.
तथा भुव राजाका बड़ा भाई था । कृष्णराज प्रथमका नाम गोविन्द
प्रथम था, इसी कारण इनका नाम गोविन्द द्वितीय भी। था। यह
वर्धमानपुरको दक्षिण दिशामें राज्य करता था। अमोधवर्षके पिता
जगतुंगने इसे इन्द्रराजकी सहायतासे युद्धमें परास्त करके इसका
राज्य छीन लिया था। इसीके समयमें आ, जिनवेणने अपना

हरिवंश पुराण लिखना प्रारम्भ किया था। समय — श. ६१४-७१६ (ई. ७७२-७१४); (ह. पु./६६/१२-५३); (ह. पु./प्र. ५ पं. पन्ता-काल)।—दे. इतिहास/३/४।

श्रीविजय — म. पु./६१/१ लोक त्रिपृष्ठ नारायणका पुत्र था (११३)। एक नार राज्य सिंहासन पर वज्रपात गिरनेकी भविष्यवाणी सुनकर (१७२-१७३) सिंहासन पर स्फटिक मणिकी प्रतिमा विराजमान कर ही। और स्वयं चैत्यालयमें जाकर द्यान्ति विधान करने लगा। (२१६-२२१)। फिर सात हैं दिन वज्रपात यक्षमूर्तिपर पड़ा (२२२)। एक समय इनकी स्त्रीको अञ्चलिकोव विद्याधर उठाकर ले गया और स्वयं सुताराका वेष बनाकर बैठ गया (२३३-२३४) तथा बहाना किया कि मुभे सर्पने इस लिया, तब राजाने विताकी तैयारी की (२३५-२३७)। इसके साले अमिततेजके आश्रित राजा संभिन्नसे ठीक-ठीक वृत्तान्त जान (२३०-२४६) अञ्चलिकोव साथ युद्ध किया (६०-००)। अन्तमें शत्रु समवशरणमें चला गया, तब वहींपर इन्होंने अपनी स्त्रीको प्राप्त किया (२०४-२०५)। अन्तमें समाधिमरण कर तैरहवें स्वर्गमें मणिचूल नामक देव हुआ (४१०-४९१)। यह ज्ञान्तिनाथ भगवान्तके प्रथम गणधर चक्रायुधका पूर्वका १०वाँ भव है। —दे. चक्रायुध।

श्रीवृक्ष--- १. कुण्डल पर्वतस्थ मणिक्टका स्वामी नागेन्व देव- दे. लोक/१/१२: २. रुचक पर्वतस्थ एक क्ट--दे. लोक/१/१३।

श्रीशल हनुमान्का अपरनाम है - दे. हनुमान्।

श्रीषेण म पु./६२/रलोक मगध देशका राजा था (३४०)। आदित्य-गति नामक मुनिको आहार देकर भोगभूमिका बन्ध किया (३४०-३६०)। एक समय पुत्रोंका परस्पर युद्ध होनेपर विष खाकर मर गन्ना (१६२-३६६)। यह शान्ति नाथं भगवांत्का पूर्वका ३१वॉ भव है। – दे. शान्तिनाथ।

श्रीसंचय- पद्महदके बनमें स्थित एक कूट-दे. लोक/६/७।

श्रीसौध - विजयार्धकी उत्तर शेणीका एक नगर ।-दे, विद्याधर ।

श्रीहर्ष- वेदान्त सिद्धान्तमें खण्डनखण्डखाद्य नामक प्रनथके कर्ता। समय-ई. ११६० !-- दे. वेदान्त ।

श्रुतकीति—१. निष्यसंघ मलात्कारगण त्रिभुवस कीति के शिष्य। कृतिमें-हरिवंश पुराण, धर्म परीक्षा, परमेष्ठी प्रकाशसार, धोगसार। समय-कहरिवंश रचनाकाल वि. १६/२। वे. इतिहास/७/४): (ती./३/४३०)। २. निष्टसंघ देशीयगण, माधनिष्ट कोण्हापुरीय के शिष्य एक महावादी। ध्वेताम्बराचार्य देवेन्द्र सुरि को परास्त किया। कृति-काव्य राधव पाण्डवीय। समय-(ई. ११३६-११६३)। (दे. इतिहास/७/१); (ष. सं. २/प.४/मा.../аіп)।

श्रुतकेवली जान स्वस्प होतेके कारण आत्मा स्वयं ज्ञेयाकार स्वस्प है। इसलिए आत्माको जाननेसे ही सकल विश्व प्रत्यक्ष रूपसे जाना जाता है। अतः केवल आत्माको जाननेवाला अथवा सक्लश्रुत-को जाननेवाला हो भुतकेवली है। इसीसे १० या १४ अंगोके जानने-से भी भुतकेवली कहलाता है और केवल समिति गुप्तिरूप अष्ट प्रव-चन मात्रको जाननेसे भी श्रुतकेवली कहलाता है।

१. दश व चतुर्दश पूर्वी निर्देश

चतुर्देश पूर्वीका लक्षणः

ति. प /४/१००१ सयनागमपारगया सुदकेव लिणामसुप्पसिद्धा जे । एदाण वृद्धिरिद्धी चोद्दसपुव्वि त्तिणामेण ।१००१। — जो महर्षि सम्पूर्ण आगमके पारंगत हैं और शुतकेवली नामसे प्रसिद्ध हैं उनके चौदहर पूर्वी नामक बुद्धि ऋदि होती है।१००१।

. रा. बा./३/२६/३/२०२/६ सम्पूर्ण श्रुतकेविता चतुर्दशपूर्वित्वस्। चपूर्णश्रुतकेवली हो जाना चतुर्दशपूर्वित्व है। (ध. १/४,१,१३/-७०/७)।

चा. सा./२१४/२ भुतकेवितनां चतुर्दशपूर्वित्यम् । = शुतकेवितिके चतुर्दशपूर्वित्व नामकी ऋद्धि होती है।

२. दशपूर्वीका सक्षण

ति. प./४/१६८-१००० रोहिणिपहुदीणमहाविज्जाणं देवदाछ पंचसया।
अंगुट्ठपसेणाइं खुद्दअविज्जाण सत्तस्या।१६८। एत्तूण पेसणाइं दसमपुन्वपढणिम्मः। णेच्छंति संजमता ताओ जेते अभिण्णदसपुन्ती।
१६६६। भुवणेसु सुप्पसिद्धा विज्जाहरसमणणामपज्जाया। ताणं मुणीण
बुद्धी दसपुन्ती णाम बोद्धन्ता।१०००। = दसवें पूर्वके पढनेमें रोहिणो
प्रभृति महाविद्याओंके पाँच सौ और अंगुष्ठ प्रसेनादिक (प्रश्नादिक)
सुद्ध विद्याओंके सात सौ देवता आकर आज्ञा माँगते हैं। इस समय
जो महर्षि जितेन्द्रिय होनेके कारण उन विद्याओंकी इच्छा नहीं
करते हैं, 'वे विद्याश्रमण' इस पर्याय नामसे भुवनमें प्रसिद्ध होते हुए
अभिन्नदशपूर्वी कहलाते है। उन मुनियोंकी बुद्धिको दशपूर्वी जानना
चाहिए।१६९-१०००।

रा. वा./३/३६/३/२०२/७ महारोहिण्यादिभिस्तिरागताभि प्रत्येकमास्मीयरूपसामध्यीविष्करणकथनकुश्वाभिर्वेगवतीभिविद्यादेवताभि रिवचलितचारित्रस्य दशपूर्वदुस्तरसमुद्रोत्तरणं दशपूर्वित्वम् ।

—महारोहिण्यादि लौकिक विद्याओंके प्रलोभनमें न पड़कर दशपूर्वका पाठी होता है वह दशपूर्वित्व है । (चा. सा./२१४/१)।

३. भिन्न व अभिन्न दशपूर्वीके लक्षण

घ. १/४,१,१२/६१/५;७०/१ एतथा दसपुठिवणो भिण्णाभिण्णाभेएण दुविहा होति । तत्थ एकारसंगाणि पढिदूण पुणो परियम्म-प्रुत्त-पढमाणियोग-पुन्त्रगयचूलिया ति पंचाहियारणिद्धाद्धिट्ठिवादे पढिज्ञमाणे उप्पादपुरवमादि कादूण पर्कत्ताणं दसपुर्वीए विज्ञाणु-पनादे समत्ते रोहिणीआदिपंचसयमहाविज्ञाओ अंगुट्ठपरीणादि सत्तसयदहरविजाहि अणुगयाओ कि भयवं आणवेदि ति दुक्कंति। एवं दुक्काणं सब्बविज्ञाणं जो लोभं गर्इछद्धि सो भिण्णदसपुब्बी। जो ण तासु लोभं करैदि कम्मक्खयत्थी होंतो सो अभिग्णदसपुठकी णाम (६६/४) । ण च तेसि (भिण्णदसपुठवीणं) जिल्लसमृत्थि, भगगमहत्र्वरसु जिलक्ताणुववक्तीदो 🏣 यह भिन्न और अभिन्नके भेदसे दशपूर्वी दो प्रकार हैं। उनमें १९ अंगोंको पढकर पश्चात् परिकर्म सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका इन पाँच अधिकारोंमें निबद्ध दृष्टिबादके पढ़ते समय उत्पाद पूर्वको आदि करके पढ़ने वालेके दशमपूर्व विद्यानुवादके समाप्त होनेपर अंगुष्ठ प्रसेनादि साल भी क्षुद विद्याओं से अनुगत रोहिणी आदि पाँच सौ महा विद्यार 'भगवान् क्या आज्ञा देते हैं' ऐसा कहकर उपस्थित होती हैं। इस प्रकार उपस्थित हुई सब विद्याओं के लोभको प्राप्त होता है वह भिन्न-दशपूत्रों है। किन्तु जो कमेक्षयका अभिसाषी होकर उनमें लोभ नहीं करता है वह अभिन्नदशपूर्वी कहलाता है। भिन्न-दशपूर्वियोंके जिनस्व नहीं हैं. न्छोंकि जिनके महावत नष्ट हो चुके हैं उनमें जिनत्व घटित नहीं होता। (भ.खा./बि./३४/-

थ. चतुर्दशपूर्वीको पीछे नमस्कार स्थी

धः १/४,१,१२/७०/३ चोहसपुञ्जहराणं णमोक्कारो किण्ण कहो। ण, जिणवयणपद्मयट्ठाणपदुष्पायणदुकारेण दसपुञ्जोणं चागमहप्पपदि-सण्टं पुञ्जं तण्णमोक्कारकरणाहो। सुदपरिवाडीए वा पुञ्जं दस-पुञ्जीणं णमोक्कारो कुदो। च्याशन-चौदह पूर्वोके धारकोंको पहले नमस्कार वयों नहीं किया! उत्तर-नहीं, वयोंकि जिनवचनोंपर प्रस्यय स्थान अर्थात विश्वास उरपादन द्वारा दश्पूर्वियोंके स्यागकी महिमा दिखलानेके लिए पूर्वमें उन्हें नमस्कार किया है। अथवा भुतकी परिपाटीकी अपेक्षासे पहले दश्पूर्वियोंको नमस्कार किया गया है।

५. चौदहपूर्वी अप्रतिपाती हैं

ध. १/४,९,१३/७१/६ चोह्सपुटबहरो मिच्छत्तं ण गच्छिति, तिम्ह भवे असंजमं च ण पडिबर्जाति, एसो एदस्स विसेसो । =चौदह पूर्वका धारक मिध्यात्वको प्राप्त नहीं होता. और उस भवमें असंयमको भी नहीं प्राप्त होता, यह इसकी विशेषता है।

२. निश्चय व्यवहार श्रुतकेवली निर्देश

१. श्रुतकेवलीका अर्थ आगमज

स. सा./मू./१० जो सुयणाणं सञ्बं जाणइ सुयकेवितं तमाहु जिणा।
णाणं अप्पा सञ्बं जमहा सुयकेविती तम्हा।१०। — जो जीव सर्व शुतज्ञानको जानता है उसे जिनदेव शुतकेविती कहते हैं, वयोंकि ज्ञान सब आत्मा ही है इसलिए वह शुतकेवितीके हैं।१०।

स. सि./१/२७/४६३ ४ पूर्वविदो भवतः श्रुतकेवलिन इत्यर्थः। = पूर्व-

विद् अयस्ति श्रुतकेवलीके होते हैं।

म, पु./२/६१ प्रत्येक्षरच परोक्षरच द्विधा ते ज्ञानपर्ययः । केवलं केविल-न्येकस्ततस्त्वं भुतकेवली ।६१। = (श्रीणिक राजा गौतम गणधरकी इस प्रकार स्तुति करते हैं।) हे देव । केवली भगवान्में मात्र एक केवल ज्ञान ही होता है और आपमें प्रत्यक्ष परोक्षके भेदसे दो प्रकारका ज्ञान विद्यमान है। इसलिए आप शुतकेवलो कहलाते हैं।६१।

भ. आ,/बि./३४/१२६/१२ सुदकेवितणा समस्तशुत्रधारिणा कथितं चेति। = द्वादशांग श्रुतज्ञानको धारण करने वाले महिषयोंको श्रुत-

केवलि कहते हैं। (और भी दे० श्रुतकेवली/९/१)।

२, श्रुतकेवकीका अर्थ आत्मज्ञ

स. सा./सू./१ जो हि सुएण हि गच्छइ अप्पाणिमणं तु केवलं सुद्धं। त सुग्रकेवितिमसिणो भणंति लोयप्पईवयरा ११। — जो जीव निश्चयसे (वास्तवमें) श्रुतञ्चानके द्वारा इस अनुभवगोचर केवल एक शुद्ध आत्माको सम्मुख होकर जानता है, उसे लोकको प्रगट करने वाले ऋषीश्वर श्रुतकेवलो कहते हैं। १।

प्र. सा./पू./३३ जो हि सुदेण विजाणिद अप्पाण जाणगं सहावेण। तं सुमकेव लिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवकरा १३३१ = जो वास्तवमें श्रुतज्ञानके द्वारा स्वभावसे ज्ञायक (ज्ञायस्वभाव) आत्माको जानता है उसे लोकके प्रकाशक मुधीस्वरंगण श्रुतकेवली कहते हैं।

३. श्रुतकेवकीके उत्दृष्ट व जघन्य ज्ञानकी सीमा

- स. सि./१/४०/४६९/- श्रुतं पुलाकनकुशर्मातसेनाकुशीला उत्कर्षेणाभिन्नाक्षरदश्चपूर्वघराः । कथायकुशीला निर्मन्याद्मसुद्दशपूर्वघराः ।
 जघन्येन पुलाकस्य श्रुतमाचारबस्तु । मकुशकुशीला निर्मन्थानां
 श्रुतमधी प्रत्रचनमातरः । स्नातका अपगलश्रुताः केवलिनः । = श्रुतपुलाक, मकुश और प्रतिसेवना कुशील उत्कृष्ट रूपसे अभिन्नाक्षर
 दश पूर्वघर होते हैं। कथाय कुशील और निर्मन्थ चौदह पूर्वधर
 होते हैं। जवन्य रूपसे पुलाकका श्रुत आचार वस्तु प्रमाण होता
 है। मकुश, कुशील और निर्मन्थोंका श्रुत आठ प्रयचन मातृका
 प्रमाण होता है। स्नातक श्रुतज्ञानसे रहित केवली होते हैं। (रा.
 वा /१/४७/४/६६८/१), (चा.सा./१०३/४)।
- दे ध्याता/१ उत्सर्ग रूपसे १४ पूर्वोंके द्वारा और अपनाद रूपसे अष्ट प्रवचन मातृकाका मात्र ज्ञानसे ध्यान करना सम्भव है।

दे० शुक्लध्यान/३/१,२ पृथवस्य व एकस्य वित्तर्क ध्यान १४,१० व १ पूवान को होते हैं।

४. मिथ्यादृष्टि साधुको ११ अंग तक माव ज्ञान सम्भव है

ला. सं./४/१८-२० एकादशाङ्गपाठीणि तस्य स्याइ द्रव्यरूपतः। आत्मानुभूतिश्चन्यत्वाद्दभावतः संविदुज्भितः ।१८। न वाच्यं पाठमाचरवमस्ति तस्येह नार्थतः । यतस्तस्योपदेशाद्वे ज्ञानं विन्दन्ति केचन १९६। ततः पाठोऽस्ति तेषृच्चैः पाठस्याप्यस्ति ज्ञातृता । ज्ञातृ-तार्या च श्रद्धानं प्रतीती रोच्चनं क्रिया।२०। चकोई 'मिध्यादृष्टि मुनि ११ अंगके पाठी होते हैं, महामतादि क्रियाओंको बाह्यरूपसे पूर्णतथा पालम करते हैं, परन्तु उन्हें अपने शुद्ध आत्माका अनुभव नहीं होता, इसलिए वे परिणामोंके द्वारा सम्यक्तानसे रहित हैं । १८। ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए कि 'मिथ्यादृष्टिको ११ अंग-का ज्ञान केवल पठन मात्र होता है, उसके अर्थीका ज्ञान उसको नहीं होता ! क्यों कि शास्त्रों में यह कथन आता है कि ऐसे मिध्या-हृष्टियोंके उपदेशसे अन्य कितने ही भन्य जीवोंको सम्यग्दर्शन पूर्वक सम्यग्ज्ञान हो जाता है।१८। इससे सिद्ध होता है कि ऐसे मिध्यादृष्टि मुनियोंके ग्यारह अंगोंका ज्ञान पाठमात्र भी होता है और उसके अर्थीका ज्ञान भी होता है, उस ज्ञानमें श्रद्धान होता है, प्रतीति होती है, रुचि होती है और पूर्ण किया होती है।

🖈 श्रुतज्ञानीमें भावश्रुत इष्ट है—दे० श्रुतकेवली/२/४।

५. भृतज्ञान सर्वप्राहक कैसे

घ. १/४,९,७/१७/१ णासेसपयत्था सुदणाणेण परिच्छिङजंति,—पण्णव-णिजनः भावा अणंतभागो दुअणभित्तव्यालं । यण्यवणिजनाणं पुणः अणंतभागो सुदणिबद्धो ।१७। इदि वयणादो त्ति उत्ते होदु णाम सयलप्यस्थाणमणं तिमभागों ह्रव्यसुदणाणविस्त्रो, भावसुदणाण-विसओ पुण सयलपयत्था; अण्णहा तित्थयराणं नागदिसयत्ता भाव-प्पसंगादो । [तदो] बीजपदपरिच्छेदकारिणी बीजबुद्धि ति सिद्धं । =प्रश्न-श्रुतज्ञान समस्त पदार्थोंको नहीं जानता है, क्यों कि, अचनके अगोचर ऐसे जीवादिक पदार्थों के अनन्तवें भाग प्रज्ञापनीय अर्थाव् तीर्थं करकी सांतिज्ञय दिव्यध्वनिमें प्रतिपादा होते हैं। तथा प्रज्ञापनीय पदार्थींके अनन्तवें भाग द्वादर्शांग श्रुतके विषय होते हैं ! इस प्रकारका वचन है ! उत्तर-इस प्रश्नके उत्तर-में कहते हैं कि समस्त पदार्थीका अनन्तर्यों भाग द्रव्य श्रुतज्ञानका विषय भत्ते ही हो, किन्तु भाव श्रुतझानका विषय समस्त पदार्थ है, क्यों कि ऐसा माननेके बिना तीर्थं करोंके वचनातिशयके अभावका प्रसंग होगा। (इसलिए) बीजनदोंको ग्रहण करनेवाली बीजबुद्धि है, यह सिद्ध हुआ।

६, जो एकको जानता है वही सर्वको जानता है

स. सा./मू./१६ जो पस्सिदि अप्पाणं अवद्धपुद्ठं अणण्णमिनसेसं। अप-देससुत्तमकमं प्रसिद्ध जिलसासणं सन्त्रं।१६। — जो पुरुष आत्मा-को अबद्ध स्पृष्ट, अनन्य अविशेष (तथा उपलक्षणसे नियत और असंयुक्त) देखता है— वह जिन शासन नाह्य श्रुत तथा अभ्यन्तर ज्ञान रूप भाव श्रुतवाला है।१६।

यो. सां, यो./६६ जो अप्पा सुद्ध वि सुणइ असुइ सरीरविभिण्णु। सो जाणइ सध्य इं समल सासय-सुवलहं लीणु।६६। - जो आत्माको अशुच्चि शरीरसे भिन्न समभता है, वह शाश्वत सुलमें लीन होकर समस्त शास्त्रोंको जान जाता है।६६। न.च./श्रुत./३/६८ पर एको भावः सर्वभावस्वभावः । सर्वे भावा एकभावः । स्वभावाः । एको भावस्तत्त्वतो येन बुद्धः सर्वे भावास्तत्त्वतस्तेन बुद्धाः १११ = एक भाव सर्व भावोंके स्वभावस्वस्प है और सर्व भाव एक भावके स्वभावस्वस्प है; इस कारण जिसने तत्त्वसे एक भावको जाना उसने समस्त भावोंको यथार्थत्या जाना । (ज्ञा./३४/१३/१. ३४४ पर उह्नध्त)।

का. अ./मू./४६४ जो अप्पाणं जाणदि अमुइ-सरीरा दु तच्चदो भिष्णं । जाणग-रूव सरूवं सो सदयं जाणदे सववं ।४६४। = जो अपनी आत्मा-को इस अपवित्र शरीरसे निश्चयसे भिन्न तथा ज्ञापक स्वरूप जानता है वह सब शास्त्रोंको जानता है १४६४।

* जो सर्वको नहीं जानता वह एकको भी यथार्थ नहीं जानता —हे, केवलज्ञान/४/१।

७. निरुचय ब्यवहार श्रुतकेवस्रीका समन्वय

प. प्र./प्र./१/१६ जोइय अप्पें जाणिएण जगु जाणियस हवेइ। अप्पह केरइ भावडइ विभिन्न जेण वसेइ। — हे योगी ! एक अपने आरमाके जाननेसे यह तीन लोक जाना जाता है, क्योंकि आरमाके भावस्त्र केवलज्ञानमें यह लोक प्रतिविभित हुआ बस रहा है।

स. सा./आ./१-१० यः श्रुतेन केवलं शुद्धमात्मानं जानाति स श्रुत-केवलीति तावत्परमार्थी, यः श्रुतज्ञानं सर्वं जानाति स श्रुतकेवलीति तु व्यवहारः। तदत्र सर्वमेव ताक्षत् झानं निरुप्यमाणं किमात्मा किंमनारमा । न ताबदनारमा समस्तस्याप्यनारमनश्चेतनेतरपदार्थ-पञ्चतयस्य ज्ञानतादारम्यानुपपत्तेः। ततो गरयन्तराभावात् ज्ञानमा-त्मेत्रायाति । अतः श्रुतज्ञानमप्यारमैव स्याद् । एवं सति यः आत्मानं जानाति स शुतकेवलीत्यायाति, स तु परमार्थ एव । एवं ज्ञानज्ञानि-नोर्भे देन व्यपीदशता व्यवहारेणापि परमार्थमात्रमेव प्रतिपायते, न किचिदप्यतिरिक्तम् । अथ च यः श्रुतैन केवल शुद्धमात्मानं जानाति स श्रुतकेवलीति परमार्थस्य प्रतिपादयितुमशक्यव्वाद्यः श्रुतज्ञानं सर्वं जानाति स श्रुतकेवलीति व्यवहारः परमार्थप्रतिपादकःवैना-त्मानं प्रतिष्ठापयति ।१-१०। -प्रथम, जो भूतसे केवल शुद्धात्माको जानते हैं ने अुतकेवली हैं वह तो परमार्थ है; और जो सर्व श्रुतज्ञान-को जानते हैं वे श्रुतकेवली हैं यह व्यवहार है। यहाँ दो पक्ष लेकर परीक्षा करते हैं - उपरोक्त सर्वज्ञान आत्मा है या अनात्मा ? यदि अनात्माका पक्ष लिया जाये तो यह ठीक नहीं है; क्यों कि जो समस्त जड़ रूप अनारमा आकाशादिक पाँच द्रव्य हैं, उनका ज्ञानके साथ तादारम्य बनताही नहीं। (क्योंकि उनमें झान सिद्ध नहीं है) इसलिए अन्यपक्षका अभाव होनेसे 'छान आरमा ही है, यह पक्ष सिद्ध हुआ। इसलिए श्रुतज्ञान भी आत्मा ही है। ऐसा होनेसे जो आस्मा-को जानता है वह शुतकेवली है' ऐसा ही घटित होता है; और वह तो परमार्थ ही है। इस प्रकार ज्ञान और ज्ञानीके भेदसे कहनेवाला जो व्यवहार है, उससे भी परमार्थ मात्र हो कहा जाता है; उससे भिन्न कुछ नेहीं कहा जाता । और जो श्रुत्तसे केवल शुद्ध आत्माको जानते हैं वे श्रुतकेवलो हैं, इस प्रकार परमायका प्रतिपादन करना अञ्चय हो नेसे, 'जो सर्व श्रुतज्ञानको जानते हैं वे श्रुतकेवली हैं' ऐसा व्यवहार परमार्थ के प्रतिपादकत्वसे अपनेको दढ़ता पूर्व क स्थापित करता है।

पं. वि./१/१४८ इतनं दर्शनमप्यशेष विषयं जीवस्य नार्थान्तरं — शुद्धादेश-विवक्षया स हि ततिश्चिष्ट्रप इत्युच्यते । पर्यायेश्च गुणैश्च साधु विदते तिस्मन् गिरा-सङ्गुरोङ्गातं कि न विकोकितं न किमथ प्राप्तं न कि योगिभिः ११६८। = शुद्ध नयकी अपेक्षा समस्त पदार्थोंको विषय करनेवाला झान और दर्शन ही जीवका स्वरूप है- जो उस जीवसे पृथक् नहीं है। इससे भिन्न कोई दूसरा जीवका स्वरूप नहीं हो सकता है। अतएव वह चिद्रप अर्थात् चेतनं स्वरूप ऐसा कहा जाता है। उसम गुरुके उपदेशसे अपने गुणों और पर्याथोंके साथ उस ज्ञान हर्शन स्वरूप जीवके भर्ते प्रकार जान तेनेपर योगियोंने क्या नहीं जाना, क्या नहीं देखा, और क्या नहीं प्राप्त किया १ अर्थात् सब कुछ, जाना, देख व प्राप्त कर लिया ।१५११

स.स./ता. वृ./ह-१०/२२/ह अयमत्रार्थः — यो भावशुतरूपेण स्वसंवेदन-स्नानम्बेन शुह्धात्मानं जानाति स निश्चयशुतकेवली भवति । यस्तु स्वशुह्धात्मानं न संवेदयति न भावयति बहिर्विषयं द्रव्यश्रुतायं जानाति स व्यवहारश्रुतकेवली भवतीति । च्यहाँ यह ताल्पर्य है कि—जो भावश्रुत रूप स्व संवेदन ज्ञानके नलसे शुद्ध आत्माको जानता है वह निश्चय श्रुतकेवली है। और जो शुद्धात्माका न संवेदन करता है — न भावना भाता है, परन्तु बाह्य द्रव्य श्रुतको जानता है वह व्यवहार श्रुतकेवली है।

प. प्र./रं^{थ.}/१/६१/६४/६ बोतरार्भनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानेन परमात्मतत्त्वे झाते सति समस्तद्वादशाङ्गस्वरूपं ज्ञातं भवति । कस्मात् । यस्मा-द्वाघनपाण्डवादयो महापुरुषा जिनदीक्षां गृहीत्वा द्वादशाङ्गः पठित्वा द्वादशाङ्गाध्ययनफलभूते निश्चयरत्नत्रयात्मके परमात्मध्याने तिष्ठन्ति तेन कारणेन वीतरागस्वसंवेदनज्ञानेन निजात्मनि ज्ञाते सति सर्वे ज्ञातं भवतीति । अथवा निर्विकस्पसमाधिसमुस्पन्नपरमानन्दसुख-रसास्वादे जाते सति पुरुषो जानाति। कि जानाति। वेत्ति मम स्वरूपमन्यइदेहरागादिकं परमिति तेन कारणेनात्मनि ज्ञाते सर्वे बातं भवति। अथवा आरमा कर्ता श्रुतज्ञानरूपेण व्याप्तिज्ञानेन कारणभूतेन सर्व लोकासोकं जानाति हैन कारणेनात्मनि ज्ञाते सर्व ज्ञातं भवतोति । अथवा बीतरागनिर्विकल्पत्रिगुन्निसमाधिवलेन केवल्रज्ञानोस्पत्तित्रीजभूतेन केवलज्ञाने जाते सति दर्पणे विस्ववद् सर्वं लोकालोकस्वरूपं विज्ञायत इति हेतोरात्मनि ज्ञाते सर्व ज्ञातं भवतीति। = बीतराग निविकरपस्वसंवेदन ज्ञानसे शुद्धारम तत्त्वके जाननेपर समस्त द्वादशांग शास्त्र जाना जाता है। क्यों कि जैसे---१. रामचन्द्र, पाण्डव, भरत, सगर आदि महान् पुरुष भी जिनराजकी दीक्षा लेकर द्वादशांगको पढ़कर द्वादशांग पढ़नेका फल निश्चय रत्नत्रय स्वरूप शुद्ध आत्माके ध्यानमें लीन हुए थे। इसलिए बीतराग स्वसंवेदन ज्ञानसे जिन्होंने अपनी खात्माको जाना उन्होंने सबको जाना।२. अथवा निर्विकल्प समाधिसे उत्पन्न हुआ जो परमानन्द सुख रस उसके आस्वाद होनेपर ज्ञानी पुरुष ऐसा जानता है कि मेरा स्वरूप पृथक् है, और देहरागादिक मेरेसे दूसरे हैं, इसलिए परमारमाके जाननेसे सब भेद जाने जाते हैं, जिसने अपने आत्माको जाना उसने सर्व भिन्न पदार्थ जाने । ३. अथवा आत्मा शुतज्ञान रूप व्याप्ति ज्ञानसे सब लोकालोकको जानता है, इसलिए आत्माके जाननेसे सब जाना गया। ४. अथवा बीतराग निर्विकल्प परम समाधिके बलसे केवलज्ञानको उत्पन्न करके जैसे दर्मणमें घट पर आदि पदार्थ भलकते हैं, उसी प्रकार ज्ञानरूपी दर्गणमें सब लोकालोक भासते हैं। इससे यह बात निश्चित हुई कि आत्माके जाननेपर सब जाना जाता है।

दे. अनुभव/५ अन्य भूमिकामें कथं चित्र शुद्धारमाका अनुभव होता है।

दे. दर्शन/२/७ दर्शन द्वारा आत्माका झान होनेपर उसमें प्रतिश्विमिनत सब पदार्थीका झान भी हो जाता है।

दे. केवलज्ञान/६/६ (ज्ञेयाकारोंसे प्रतिक्रिम्बत निज आत्माको जानता है)

* पूर्व श्रुतकेवलीवत् वर्तमानमं भी सम्भव है ।

—दे. अनुभव/१/८ ।

अतिज्ञान — इन्द्रियों द्वारा विवक्षित पदार्थको ग्रहण करके उससे सम्बन्धित अन्य पदार्थको जानना श्रुतज्ञान है। वह दो प्रकारका है—अर्थ लिंगज व राष्ट्रियाज । पदार्थको जानकर उसमें इष्टता अनि-ष्ट्रताका ज्ञान अथवा धूमको देखकर अग्निका ज्ञान अर्थ लिंगज श्रुतज्ञान है। बाचक शब्दको मुनकर या पढ़कर बाच्यका ज्ञान शब्द-लिंगज है। यह लौकिक भी होता है लोकोत्तर भी। लोकोत्तर श्रुतज्ञान १२ अंग १४ पूर्वों आदि रूपसे अनेक प्रकार है। पहला अर्थलिंगज तो श्रुद्र जीवोंसे लेकर क्रमसे वृद्धियत होता हुआ मृद्धि-घारी मुनियों तकको होता है। पर दूसरा अर्थलिंगज व शब्द-लिंगज संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंको ही सम्भव है। श्रुतकेवलीको यह उत्कृष्ट होता है।

श्रुतज्ञान सामान्य निर्देश भेद व लक्षण ₹ श्रुतज्ञान सामान्यका छक्षण । शब्द व अर्थेलिंग रूप मेद व उनके लक्षण। ₹ द्रव्यभाव श्रुत रूप मेद व उनके लक्षण । सम्यक् व मिथ्या श्रुतृशानके रुक्षण । ¥ सम्यक् रुब्धि व भावना रूप भेद। अष्टांग निमित्त ज्ञान । -दे, निमित्त/२। अष्ट भवचन माताका लक्षण । —दे. प्रवचन । स्थित जित आदि श्रुतशानोंके रुक्षण । —दे, निक्षेप/६/८। भारावाही **शा**न निर्देश । श्रुतशानके असंख्यात भेद । —दे, ज्ञान/१/४। श्रुतज्ञानमें भेद होनेका कारण । श्रुतज्ञान निर्देश ₹ श्रुतज्ञानके पर्यायवाची नाम । ₹ श्रुतशानमें कथंचित् मति आदि शानोंका निमित्त । श्रुतशान सम्बन्धी दर्शन --दे. दर्शन/६ । श्रुतज्ञानमें मनका निमित्त । ş श्रुतज्ञान अधिगम हो होता है। – दे, अधिगम । श्रुतज्ञानका विषय । ሄ द्रव्य श्रुतकी अल्पता —दे, आगम/१/११ श्रुतद्यानको त्रिकालद्यता । मोक्षमार्गमें मतिश्रुत शानको प्रधानता । एक आत्मा जानना ही सर्वको जानना है —दे. श्रुतकेवती/६। शब्द व अर्थेलिंगजर्मे शब्दलिंगज श्वान प्रधान । द्रव्य व मात्रश्रुतमें भात्रश्रुतको प्रधानता । ሬ श्रुतज्ञान केवल शब्दज नहीं होता। ९ द्रव्य व भाव श्रुतज्ञान निर्देश — दे. आगम/२। श्रुतशानके अतिचार —दे, आगम/१ । वस्तु स्वरूपके निणेयका उपाय -दे. च्याय, अनुमान, आगम व नया। श्रुतशासका स्वामित्व —दे, ज्ञान/I/४ । एकेन्द्रियों व संशियोंके श्रुतशान कैसे --दे संज्ञी। श्रुतज्ञान क्षयोपरामिक कैसे है औदयिक क्यों नहीं —दे, मतिज्ञान/२/४।

_		
1	*	श्रुतशानकी ओप व आदेश २० प्रस्पणाएँ - दे सत्।
	*	श्रुतद्यानके स्त्रामित्व सम्बन्धी सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन,
ĺ		काल, अन्तर, मात्र, अल्पबहुत्व रूप आठ प्ररूपणाएँ
		दे. बह बह नाम ।
1	*	सभी मार्गका स्थानोंमें आयके अनुसार व्यथ होनेका
		नियम दे. मार्गणा।
	Ą	मतिज्ञान व श्रुवज्ञानमें भन्तर
į	₹	दोनोंमें कथंचित् एकता।
į	२	मति व श्रुतशानमें भेदः।
;	. ફ	श्रोतज मतिशान व श्रुतशानमें अन्तर ।
į	ጸ	मनोमित द्यान व श्रुतद्यानमें अन्तर ।
1	ц	ईहादि मतिशान व श्रुतशानमें अन्तर ।
	*	स्मृतिसे अनुमान तकके शानोंकी उत्पत्तिका ऋम
i		—दे. मतिज्ञान/३।
i	*	अनुमान उपमान आदि सब श्रुतज्ञानके विकल्प हैं
Ì	'	— दे. वह वह नाम ।
ļ	ઇ	श्रुतज्ञान व केवलज्ञानमें कथंचित् समानता-
ļ		असमानता
Ì	१	अतरान भी सर्व पदार्थ विषयक है।
ļ	ર	दोनोंमें प्रत्यक्ष परोक्षका अन्तर है।
Ì	*	श्रुतज्ञान क्रथंचित् त्रिकाल याहक है
ļ		—दे. श्रुतज्ञान/1/२/६ १
[ŧ	समन्त्रय ।
ļ	પ્	मति श्रुतज्ञानकी कथंचित् प्रत्यक्षता-परीक्षता
ļ	₹ :	मतिथुत शान कथंचित् परोक्ष हैं।
ļ	*	श्रुतज्ञान परोक्ष है — दे, परोक्ष/४।
Ì	*	मतिज्ञान सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष हैदे प्रत्यक्ष/१/४।
ĺ	२	इन्द्रिय शानको प्रत्यक्ष माननेमें दोष ।
١	ş	परोक्षता व अपरोक्षताका समन्वय ।
١	*	श्रुतद्यानकी कथंचित् निर्विकल्पता -दे विकल्प।
	11	अर्थिलिगज श्रुतज्ञान विशेष निर्देश
Ì	9	भेद व उक्षण
	१	अर्थलिगन २० प्रकारका है।
ļ	২ ়	अर्थ लिगके २० मेर्दिके नाम निर्देश ।
ĺ	\$	वीस मेदोंके लक्षण।
1	¥	उपरोक्त शानीको वह संशाएँ क्यों।
	ų	अक्षर ज्ञानमें कौनसा अक्षर इष्ट है।
	२	अर्थिकगन्न निर्देश
Ì	₹	लब्ध्यक्षर शानका प्रमाण ।
1	2	लब्ध्यक्षर शान सदा निरावरण होता है।
1	_	कर्णक अपने कर्णोंने अस्ति अस विकास ।

पर्याय आदि शानोंमें चृद्धि क्रम विकास ।

III	शब्द लिंगज श्रुतज्ञान विशेष
3	भेद व ळक्षण
\$ 8	ठोकोत्तर शब्द छिगजके सामान्य भेद ।
₹	आगम सामान्य व विशेषके लक्षण ।
₹	अंग प्रविष्ट व अंग बाह्यके भेदः।
8	अंग प्रविष्टके मेदीके लक्षण ।
٠ ي	अंगबाह्यके मेदोंके लक्षण ।
२	शब्द किंगज निर्देश [।]
*	श्रुत तीर्थकी उत्पत्ति -दे. इतिहास/४/४।
*	श्रुतज्ञानका क्रमिक ह्रास —दे. इतिहास/४/६।
8	बारह अगोमें पद निदेश।
२	दृष्टिवाद अंगोंमें पद संख्या निर्देश ।
₹	चौदह पूर्वोमें पदादिकी संख्या निर्देश ।
8	र्जग बाह्यके चौदह मेदोंमें पद संख्या निर्देश ।
ا بع	यहाँपर मध्यम पदसे प्रयोजन है।
ξ	इन ज्ञानीका अनुयोग आदि ज्ञानीमें अन्तर्भाव।

I श्रुतज्ञान सामान्य निर्देश

१. भेद व लक्षण

श्रुतज्ञान सामान्यका लक्षण

१. सामान्य अर्थ

स. सि./अ./मू./पू./पं. श्रूयते अनेन तद शृणोति अवणमात्रं वा भुतम् (१/१/१४/१) श्रुतशब्दोऽयं भवणमुपादाय व्युत्पादितोऽपि रूढ़िवशास कस्मिश्चिज्ञानविशेषे वर्तते । यथा कुशत्तवनकर्म प्रतीस्य च्युस्पादितोऽपि कुशलश्रब्दो रूढिवशास्पर्यवदाते वर्तते (१/२०/१२०/ ४) श्रुतञ्जानविषयोऽर्थः श्रुतम् (२/२१/१७१/७)। विशेषेण तर्कण-मूहनं वितर्कः श्रुतज्ञानमित्यर्थः (१/४३/४६५/६)।=१. पदार्थ जिसके द्वारा मुना जाता है, जो सुनता है या मुनना मात्र श्रुत कहलाता है (रा वा./१/१/२/४४/१०)। २. यह श्रुत शब्द सुनने रूप अर्थकी मुरुषतासे निष्पादित है तो भी रूढिसे उसका बाच्य कोई ज्ञान विरोप है। जैसे - कुशल शब्दका व्युत्पत्ति अर्थ कुशाका छेदना है तो भी रूडिसे उसका अर्थ पर्यवदात अर्थात् विमल या मनोझ लिया जाता है। (रा. बा./१/२०/१/७०/२१); (ध. १/४,१,४५/१६०/४); (गो. जो /जो. प्र./३१४/६७३/१७) ३. श्रुतज्ञानका विषय भूत अर्थ श्रुत है। (रा. वा. |२|२१|-|१३४|१८) ४. विशेष रूपसे तर्कणा करना अर्थात् छहा करना वितकं अर्थाद शुतज्ञान कहलाता है। (रा. वा./१/ ४३/-६३४/६), (त. सा./१/२४), (अन. ध./१/१/५ पर उद्दर्शत) ।

का. अ /मू./२६२ सब्बं पि अणेयतं परोवख-रूवेण जं पयासेदि । तं सुय-णाणं भण्णदि ससय-पहुदीहि परिचत्तं ।२६२। = जो परोक्ष रूपसे सब् वस्तुओंको अनेकान्त रूप दर्शाता है, संशय, विपर्यय आदिसे रहित उस ज्ञानको शुसज्ञान कहते हैं ।२६२।

अन. घ /श्र स्वावृत्त्यपायेऽविस्पष्टं यन्नानार्थप्ररूपणम् । ज्ञानं ...
तच्छ्रतम । १। = श्रुतज्ञानावरण कर्मका श्रयोपदाम होनेपर नाना पदार्थोके समीचीन स्वरूपका निश्चय कर सकनेवाले अस्पष्ट ज्ञानको श्रुत कहते हैं। १।

द्र. सं /टी /४/१६/१० भुतज्ञानावरणक्षयोपरामात् ... मूर्त्तामूर्त्तवस्तुलोका-लोकन्याप्रिज्ञानरूपेण यदस्पष्टं जानाति तत्...भुतज्ञानं भण्यते ।

-श्रुत ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे ...जो मूर्तिक अमूर्तिक वस्तुको क्लोक तथा अलोकको व्याप्ति ज्ञान रूपसे अस्पष्ट जानता है उसको ः अपूराज्ञान कहते हैं ।

गो, जी./जी. प्र./३११/६७३,१६ श्रूयते श्रोत्रेन्द्रियेण गृहाते इति श्रुतः . शब्दः, तस्मादुरपन्नमर्थज्ञान श्रुतज्ञानमिति व्युरपत्तरपि अक्षरारमक-प्रधान्याश्रयणात् । =जो सुना जाता है उसको शब्द कहते हैं, शब्दसे अरमत्र ज्ञानको शुतज्ञान कहते हैं। इस अर्थ में अर्थारमक शुतज्ञान ही प्रधान हुआ, अथवा श्रुत ऐसा रूढि राज्द है।

२. अयेसे अर्थान्तरका महण

पं. सं /प्रा./१/१२२ अत्थाओ अत्थंतर उनलंभे तं भणंति सुयणाणं । =मितज्ञानसे जाने हुए पदार्थके अवलम्बनसे तरसम्बन्धी दूसरे पदार्थका जो उपलम्भ अथित झान होता है, उसे भुतझान कहते क्षे 182र। (ध. १/१.१.११५/गा. १८३/३५६); (गो. जी./सू./३१५/-६७३); (न. च./गवा/३६/६)

इन्द्रियानिन्द्रियबलाधानात रा, बा./१/१/२७-२१/पृ./पं. मुक्तन्धेऽथे नोइन्द्रियप्राधान्यात यदुत्पवाते ज्ञानं तत् शुतस् (४०/-२६)। एकं घटमिन्द्रियानिन्द्रियाम्यां निश्चित्यायं घट इति तज्जा-तीयमन्यमनेकदेशकालरूपादिविलक्षणमपूर्वमधिगच्छति यत्तत् श्रुहम् (४८/३४)। अथवा इन्द्रियानिन्द्रियाभ्यामेकं जीवमजीवं चोपलभ्य तत्र सत्सरुया अविभिः प्रकार रर्थप्रकारणे कर्त्तव्ये यत्समर्थं तत श्रुतम् (४६/१)। =१, शब्द सुननेके वाद जो मनकी ही प्रधानतास अर्थ ज्ञान होता है वह श्रुत है। २. एक घड़ेको इन्द्रिय और मनसे जानवर तज्जातीय विभिन्न देशकालवर्ती घटोंके सम्बन्ध जाति आदिका जो विचार होता है वह श्रुत है। ३. अथवा श्रुतज्ञान इन्द्रिय और मनके द्वारा एक जीवको जानकर उसके सम्बन्धके सत् संख्या ...आदि अनुयोगों के द्वारा नाना प्रकारसे प्ररूपण करनेमें जो समथे होता है वह शुतज्ञान है।

ध, १/१,१,२/६३/५ सुदकार्ण जाम मदि-पुठवं मदिणाणपडिगहिय-मत्थं मोत्तृणण्णत्थि मह वावदं सुदणाणावरणीय-सवयोवसम-जाणदं । - जिस ज्ञानमें मतिज्ञान कारण पड़ता है, जो मतिज्ञानसे प्रहण किये गये पदार्थको छोड़कर तत्संग्रन्धित दूसरे पदार्थमें व्यापार करता है। और श्रुतज्ञानावरण कमेके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है, उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। (ध. १३/४.४,२१/२१०/४; ५.६,४३/४४४/४); (क. पा-१/१-१/६२८/४२/६); , (क, पा, १/१-१५/६३०५/-३४०/५);

(ज. प./१३/७७); (गो. जी./जी. प्र./३१५/६७३/११)।

२. शब्द व अथे छिंग रूप भेद व उनके छक्षण

क. पा. १/१-१६/१ ३०८-३०६/३४०-३४१/६ तं दुविहं – सहसिंगजं, अत्थ-लिंगजं चेदि । तत्थ तं सहलिंगजं तं दुविहं लोइयं लोउसरियं चेदि । सामण्णपुरिसवयणविणिग्नयवयणकत्तावजणियाणं सोइयसहजं। असच्चक।रणविणिम्युक्कपुरिसव्यणविणिग्गयवयणवसावज्ञणियः सुद्द-णाणं लोउत्तरियं । धूमादिअत्थलिगजं पुणअणुमाणं नाम । = श्रुत-ज्ञान शब्दलिंगज और अर्थलिंगजने भेदसे दो प्रकारका है। उनमें भो जो शब्द लिंगज श्रुतज्ञान है वह लीकिक और लोको सरके भेदसे दी प्रकारका है। सामान्य पुरुषके मुखसे निक्ले हुए वचन समुदायसे जो ज्ञान उरपन्न होता है वह लौ किक शब्द लिंगज श्रुतज्ञान है। असत्य बोतनेके कारणोंसे रहित पुरुषके मुखसे निकले हुए बचन समुदायसे को श्रुतज्ञान उरान्न होता है वह सोकोत्तर शब्द सिंगज श्रुतज्ञान है। तथा धूमादिक पदार्थरूप लिंगसे जो श्रुतहान उत्पन्न ह।ताहै वह अथे जिंगज श्रुतज्ञान है। इसका दूसरा नाम अनुमान भी है।

ध- ६/१.६-१,१४/२१/६ तत्थ सुदणाणं णाम इंदिएहि गहित्थादी तदी प्रथभूदरथग्गहणं, जहा सद्दाहो चडादीयमुवसंभी, धूमादी अग्गिस्सुव-लंभो वा। = इन्द्रियोंसे प्रहण किये पदार्थसे उससे पृथग्भूत पदार्थ- का ग्रहण करना श्रुतज्ञान है। जैसे शब्दसे घट आदि पदार्थीका जानना । अथवा धुमादिसे अग्निका ग्रहण करना । (घ. १/१,१,११४/ २६७/८); (घ. १३/४,४,२१/२१०/५; ४.४ ४३/२४४/४); (ज. **प**./**१३/** ७८-७६) { द्र. सं./टो ़/४५/१८५/२) ।

गो. जी./जी. प्र./३१६/६७६/३ अुतज्ञानस्य अनक्षरात्मकाशसरात्मकी द्वी भेदी। = अनंभरात्मक और अभरात्मकके भेदसे शुतज्ञानके दो भेद हैं। [बाचक दाव्दपरसे बाच्यार्थका ग्रहण अक्षरात्मक श्रुत है, और शोतादि स्पर्शमें इष्टानिष्टका होना अनक्षरात्मक श्रुत है। दे. श्रुतज्ञान/३/३]

३. दब्य-माव श्रुतरूप भेद व उनके लक्षण

गो. जी,/जी, प्र./३४८-३४६/७४४/१६ अङ्गबाह्यसामायिकादिचतुर्दं श-प्रकीर्णकभेदद्रव्यभावातमकशुतं पुद्रगलद्रव्यरूपं वर्णपदवाच्यात्मकं द्रवयश्रुतं, तच्छूवणसमुत्पन्नश्रुतङ्गानपर्यायरूपं भावश्रुतं। 🗕 आचा-रांग आदि नारह अंग. उत्पादपूर्व आदि चौदह पूर्व और चकारसे सामायिकादि १४ प्रकीणंक स्वरूप द्रव्यश्रुत जानना, और इनके मुननेसे उर्भन्न हुआ जो ज्ञान सो भाषश्रुत जानना । पुद्दगलद्रवयस्वरूप अक्षर पदादिक रूपसे दृश्यशुक्त है, और उनके सुननेसे भूतज्ञानकी पर्धाय रूप जो उरपन्न हुआ ज्ञान सो भावश्रुत है। (द्र. सं./टो./५७/-२२५/११) ।

द्र. सं./दी./४८/२३६/१० वर्तमानपरमागमाभिधानद्रव्यश्रुतेन तदाधारोरपञ्जनिविकारस्वसंवेदनक्षानरूपभावश्रुतेन …। =वर्तमान परमागम नामक द्रव्यश्रुत से तथा उस परमागमके आधारसे उत्पन्न निर्विकार स्व-अनुमव रूप भावश्रुतसे परिपूर्ण · · · ।

४. सम्बक् व मिथ्याश्रुतज्ञानके लक्षण

नोट- [सम्यक् भूतके लिए-दे. श्रुतज्ञान सामान्यका लक्षण ।] पं. सं./प्रा /१/११६ आभीयमासुरक्ता भारह-रामायणादि उवएसा। तुच्छा असाहणीया सुयअण्णाण त्ति णं विति ।११६। =चौरदाास्त्र, हिसा शास्त्र तथा महाभारत, रामायण आदिके तुच्छ और परमार्थ-शून्य होनेसे साधन करनेके अयोग्य उपदेशोंको शुताज्ञान कहते हैं। (घ. १/१.१.११६/मा. १८१/३५६); (मो. जी./मू./३०४/६५६) ।

पं.का./त. प्र./४१ यत्तदावरणश्योपशमादनिन्द्रियावलम्ब।च्च मुत्रीमूतं-द्रव्यं विकलं विशेषेणावबुध्यते तत् शुतज्ञानम् । . . मिथ्यादर्शनोदय-सहचरितं श्रुतज्ञानमेव कुश्रुतज्ञानम्। = उस प्रकारके (अथिंध श्रुतज्ञानके } आवरणके क्षयोपशमसे और मनके अवलम्भनसे सूर्त-अमूर्त द्रव्यका विकरण रूपसे विशेषतः अवयोधन करता है वह भूत-ज्ञान है। ... मिध्यादर्शनके उदयके साथ श्रुतज्ञान ही कुश्रुतज्ञान है।

५. उपयोग लब्धि व भावना रूप भेद निर्देश

पं. का /प्रक्षेपक गा /४३-२/व्ह सुदणाणं पुण णाणी भणंति ससी य भावणा चेत्र । उवअंगणयवियप्पं णाणेण य वस्यु अस्यस्स ।४३-२। -- ज्ञानीको शुतज्ञान लव्धि व भावनारूपसे दो-दो प्रकारका होता **है** अथवा प्रमाण व नयके भेदसे दो प्रकारका होता है। सकल वस्तुको ब्रहण करनेवालेके प्रमाणरूप और बस्तुके एकदेश ब्रहण करनेवालेके न्य रूप होता है।

६. घाराबाही ज्ञान निर्देश

न्या. दी /१/६ १६/१३/७ एकस्मिननेव घट त्रिषयाज्ञान विघटनार्थ माव ज्ञाने प्रवृत्त तेन घरप्रमितौ सिद्धायां पुनर्घरोऽयं घरोऽयमिरयेवसुरप-ब्रान्युक्तरोत्तरज्ञानानि ललु धाराबाहिकज्ञानानि भवन्तिः। 🗢 एक ही घटमें घट विषयक अज्ञानके निराकरण करनेके लिए प्रवृत्त हुए पहले यट ज्ञानसे घटकी प्रमिति हो आनेपर फिर 'यह घट है' 'यह घट है' इस प्रकार उरास्त हुए झान धाराबाहिक झान हैं।

७. श्रुतज्ञानमें भेद होनेका कारण

रा. बा./१/२०/१/७२/१ मित्यूर्ब कत्वाबिशेषात् श्रुताबिशेष इति चेतः न.
कारणभेदान्तद्दभेद्सिद्धेः ।१। अतिपुरुषं हि मित्युतावरणक्षयीपश्मो बहुषा भिन्नः तद्दभेदाद् बाह्यनिमित्तभेदाच्च श्रुतस्य प्रकर्षाः
प्रकर्षयोगो भन्नति मित्तपूर्वकत्वाविशेषेऽपि । प्रश्न प्रमित्वहान पूर्वक
होनसे सभी श्रुतज्ञानों में अविशेषता है, अर्थात् कोई भेद नहीं हैं।
उत्तर-नहीं; वयों कि कारण भेदसे कार्यके भेदका नियम सर्व सिद्ध
है। चूँकि सभी प्राणियों के अपने-अपने क्षयोपश्च मके भेदसे, बाह्य
निमित्तके भेदसे, श्रुतज्ञानका प्रकर्षापकर्ष होता है, अतः मित्यूर्वक
होनेपर भी सभीके श्रुतज्ञानों में विशेषता बनी रहती है। (ध. १/४, १,४५/१६१/१)।

२. श्रुतज्ञान निर्देश

१. श्रुतज्ञानके पर्यायवाची नाम

षं. रहं १३/६.६/मू. ५०/२०० पावयणं पवयणीयं पवयणट्ठो गदीष्ठ मग्गणदा आदा परंपरतदी अणुत्तरं पवयणं पवयणी पवयणद्धा पव-यणसण्णियासो णयविधी णयंतरविधी भंगविधी भंगविधिविसेसो पुच्छाविधी पुच्छाविधिविसेसोतच्चं भूदं भव्वं भवियं अवितथं अविहृदं वेदं णायं सुद्धं सम्माहर्ठी हेदुवादो ण्यवादो पवरवादो मग्गवादो सुदवादो परवादो लोह्यवादो लोगुत्तरीयवादो अग्गं मग्गं जहाणुमग्गं पुव्वं जहाणुपुव्वं पुठ्वादिपुठ्वं चेदि १५०।

ध.१३/४.४.४०/२८४/१२ कथं श्रुतस्य विधिव्यपदेशः। सर्वनयविषयाणामस्तित्विषिधायकत्वात्। —१, प्रावचन, प्रवचनीय, प्रवचनीर्थ,
गितयोंमें मार्गणता, आत्मा, परम्परा लिब्ध, अनुत्तर, प्रवचन, प्रवचनी, प्रवचनाद्धा, प्रवचन संनिकर्ष, नयिष्धि, नयान्तरविधि, भंगविधि, भंगविधिविशेष, पृच्छाविधि, पृच्छाविधि विशेष, तत्त्व,
भूत, भव्य, भविष्यत, अवित्य, अविहृत, वेद, न्याय, शुद्ध, सम्यग्हृष्टि, हेतुवाद, नयवाद, प्रवरवाद, मार्गवाद, श्रुतवाद, परवाद,
सौकिकवाद, लोकोत्तरीयवाद, अग्रय, मार्ग यथानुमार्ग, पूर्व, यथानुपूर्व और पूर्वित्वपूर्व ये श्रुत्कानके पर्याय नाम हैं। १०। २. प्रश्न-श्रुतकी विधि संज्ञा केसे हैं। उत्तर-चूँकि वह सब नयोंके विषयके
अस्तित्वका विधायक है, इससिए श्रुतकी विधि संज्ञा उचित ही है।

२. श्रुतज्ञानमें कथंचित् मति आदि ज्ञानींका निमित्त

त. मू./१/२० शुतं मितपूर्वं द्वयनेकद्वादशभेदम् ।२०।

स. सि./१/२०/१२०/७ मेतिः पूर्वमस्य मित्रपूर्वं मित्रकारणिमस्यर्थः।

=१. शुत्रज्ञान मित्रज्ञान पूर्वक होता है। ।।।२०। २, मित् जिसका
पूर्व अर्थात् निमित्त है वह मित्रपूर्व कहलाता है। जिसका अर्थ
मितिकारणक होता है। तास्पर्य यह है कि जो मित्रज्ञानके निमित्तसे
होता है उसे भुत्रज्ञान कहते हैं। (पं, सं, ।पा, ।१/१२२), (रा. का./१/२०/२), (दे. शुत्रज्ञान/१/१/२), (ध. १/४.१,४५/१६०/७),

(ध. १३/४.४,२१/२१०/७), (इ. सं./टी./४४/१८८/२), (पं, ध./पू ।७०३, ७१७)।

श्लो. वा, /२/१/७/६/५१०/७ अविधमनः पर्ययिविशेषस्वानुषङ्गात्। यथैव हि मत्यार्थं परिच्छिद्य श्रुतङ्गानेन परामृशन्तिर्देशादिभिः प्ररूपमति तथाविधमनः पर्ययेण वा। न चेवं श्रुतङ्गानस्य तत्पूर्वकरवप्रसङ्गः साक्षात्तस्यानिन्द्रियमितपूर्वकरवात परम्परयातु तत्पूर्वकरवं नानि-हम्। — प्रश्न — अविध और मनः पर्ययसे प्रत्यक्षकरकेष्ठस पदार्थका श्रुतङ्गान द्वारा विचार हो जाता है तो मितपूर्वकपनेके समान अविध मनः पर्ययम्बकं भी श्रुतङ्गानके होनेका प्रसंग आयेगा। उत्तर — नहीं, वयों कि अव्यवहित पूर्ववर्ती कारणकी अपेक्षासे श्रुतङ्गानका कारण मितिङ्गान ही है। हों, परम्परासे तो उन अविध और मनः पर्ययक्षको कारण मानकर श्रुतङ्गानकी प्रवृत्ति होना अनिष्ट नहीं है। रतो. वा. ३/१/२०/रतो. २०/६०६ मितसामान्यनिर्देशान्न श्रोत्रमित्र पूर्वकं। श्रुतं नियम्यतेऽशेषमित्रपूर्वस्य वीक्षणात् । = सूत्रकारने मित्र पूर्व ऐसा निर्देश कहकर सामान्य रूपसे समपूर्ण मितज्ञानोंका संग्रहा कर लिया है। अतः केवल श्रोत्र इन्द्रियजन्य मितज्ञानको हो पूर्ववसी मानकर श्रुतज्ञान उत्पन्न होय ऐसा नियम नहीं किया जोश्व सकता है।

क. पा. १/१-१/६३४/५१/४ ण मदिलाणपुठवं चेत सुदलाणं सुदलाणादो ति सुदलाणुप्पत्तिरंसणादो। न्यदि कहा जाय कि मतिज्ञानपूर्वक हो श्रुतज्ञान होता है सो भी कहना ठीक नहीं है। न्यों कि श्रुतज्ञानहे. भो श्रुतज्ञानकी उत्पत्ति देखी जाती है।

३. श्रुतज्ञानमें मनका निमित्त

त. सु./२/२१ श्रुतमिनिद्रयस्य ।२१। = श्रुत मनका विषय है।

- . दे. मतिज्ञान/३/१ ईहा दिको मनका निमित्तपना उपचारसे है पर श्रुतज्ञान नियमसे मनके निमित्तसे ही उत्पन्न होता है।
- स् भं. तः /४७/१३ अतिनिद्रयमात्रजन्यस्वं श्रुतस्य स्वरूपम्। = मन मात्रसे जत्पन्न होना श्रुतस्रानका स्वरूप है।

४. श्रुतज्ञानका विषय

दे, मतिज्ञान/२/२ सर्व द्रव्योंकी असर्व पर्यायों में वर्तता है।

- रा. वा./१/२६/४/८७/२२ काब्दाश्च सर्वे संख्येया एव द्रव्यपर्यार्थः पुनः संख्येयासंख्येयानन्तभेदाः, न ते सर्वे विशेषाकारेण ते विषयी-कियन्ते। ≈ सर्वे शब्द संख्यात ही हैं और द्रव्योंकी पर्यायें संख्यात और अनन्त भेदवाली हैं। अतः संख्यात शब्द अनन्त पदार्थोंकी स्थूल पर्यायोंको ही विषय कर सकते हैं, सभी पर्यायोंको नहीं। कहा भी हैं [प्रज्ञापनीय भाव अनन्त हैं और शब्द अत्यन्त अवप हैं। दे, आगम/१/११]।
- वे, भुतकेवली २/१ (द्रव्य भुतका विषय भने अल्प हो पर भावश्रुतका विषय अनन्त है।)
- वे. श्रुतज्ञान/२/४ (परोक्ष रूपसे सामान्यतः सर्व पदार्थीको प्रहण करनेसे केवलज्ञानके समान है, पर विशेष रूपसे ग्रहण करनेसे अल्पज्ञता है।)

५. श्रुतज्ञानकी त्रिकाळज्ञता

- न. च. वृ./१७३ में उद्दश्व गाथा सं. २ कालत्त्र यसंजुतं दव्यं गिहुणेइ केवलणाणं। तत्थ ण्येण वि गिहुण्ड भूदोऽभूदो य वहुमाणो वि ।२। —तीनों कालोंसे संयुक्त द्वयको केवलज्ञान ग्रहण करता है और नय-के द्वारा भी भूत, भविष्य और वर्तमान कालके पदार्थोंको ग्रहण किया जाता है।
- दे, निमित्त/२/३ अष्टांग महानिमित्त इतन त्रिकालयाही है।
- दे. द्ववय/१/६;२/२ भविष्यत परिणामसे अभियुक्त द्ववय द्ववयनिक्षेपका विषय है।

🤻 मोक्षमार्गमें मति श्रुत ज्ञानकी प्रधानता

श्लो. वा. २/१/३/६२/१४ केवलस्य सक्तश्रुतपूर्वकरवोपदेशात् । = सम्पूर्ण पदार्थोको जाननेवाले केवलङ्गानको उत्पत्ति तो पूर्ववर्ती पूर्ण द्वादशांग

श्रुतज्ञान रूप कारणसे होती हुई मानी है।

पं. धं./पू./७१६ अपि चारमसंसिद्धवै नियतं हेतु मतिश्रुती हाने।
प्रान्त्यद्वयं विना स्यान्मोक्षो न स्याहते मतिहेतम्। — आस्म सिद्धिके
लिए मति श्रुतज्ञान निश्चित कारण है क्योंकि अन्तके दो ज्ञानोके
बिना मोक्ष हो सकता है किन्तु मति, श्रुत ज्ञानके बिना मोक्ष नहीं
हो सकता।

७. शब्द व अर्थ स्तिंगलमें शब्द सिंगल ज्ञान प्रधान

गो, जी./जी, प्र./३१५/६७३/१५ शब्दर्जिलङ्गजयोः श्रुतज्ञानभेदयोः मध्ये शब्दजं वर्णपदवानसारमकशब्दजनितं भूतज्ञानं प्रमुखं प्रधानं दत्त-

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोशः

ग्रहणशास्त्राध्ययनादिसकलव्यवहाराणां तन्मूलस्वात्। अनक्षरात्मकं लिङ्गजं श्रुतज्ञानं एकेन्द्रियादिषञ्चेन्द्रियपर्यन्तेषु जीवेषु विद्यमानमपि व्यवहारानुषयोगित्वादप्रधानं भवति। = श्रुतज्ञनके भेदोंके मध्य-शब्द लिगज अर्थात् अक्षर, वर्ण, पद, बाक्य आदि रूप शब्दसे उत्पन्त हुआ जो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान वह प्रधान है. क्योंकि लेना, देना, शास्त्र पढ़ना इत्यादि सर्व व्यवहारोंका सूल अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। और जो लिगसे अर्थात् चिहसे उत्पन्न हुआ श्रुतज्ञान है वह एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तकके जीवोंसे होता है किन्तु उससे कुछ व्यवहारकी प्रवृत्ति नहीं होती, इसलिए वह अप्रधान होता है।

८. द्रम्य व मावश्रुतमें मावश्रुतकी प्रधानता

श्लो. बा. ३/१/२० श्लो. १७/६०० सुरूपा ज्ञानात्मका भेदप्रभेदास्तस्य सूत्रिताः । शब्दारमकाः पुनर्गीणाः श्रुतस्यिति विभिन्नते । — इस सूत्र- में श्रुतज्ञानके भेदप्रभेद सुरूय रूपसे तो ज्ञान स्वरूप सूचित किये जाते हैं। हाँ, फिर शब्दारमक भेद तो गौण रूपसे कहे गये हैं। इस प्रकार श्रुतके सुरूयरूपसे ज्ञानस्वरूप और गौण रूपसे शब्द स्वरूप विशेष भेद लेने चाहिए।

🗣 अनुतन्तान केवरू शब्दज नहीं होता

श्लो. बा./३/१/२०/०६/६३४/२२ अथ शब्दानुयोजनादेव अुतिनिति नियमस्तदा श्रोत्रमतिषूर्वकमेव श्रुतं न चक्षुरादिमतिपूर्वकमिति सिद्धान्तविरोधः स्यात् । सौव्यवहारिकं शाब्दं ज्ञानं श्रुतमित्यपेश्रया तथा नियमे तु नेष्टनाधास्ति चक्षुरादिमतिपूर्वकस्यापि श्रुतस्य परमार्थताम्युपगमात् स्वसमयसंप्रतिपत्तेः ।

श्लो. बा∙ ३/१/२०/११६/६५२/१४ श्रुतं शब्दानुयोजनादेव इत्यवधारण-स्याकलङ्काभिप्रेतस्य कदाचिद्विरोधाभावातः तथा संप्रदायस्या-विच्छेदाद्युक्य्यनुग्रहाच्च सर्वमतिपूर्वकस्यापि श्रुतस्याशरज्ञानस्त्-व्यवस्थितेः। 🖛 १. प्रष्टन-शब्दकी अनुयोजनासे ही अुत होता है, इस प्रकार नियम किया जायेगा तब तो श्रोत्र इन्द्रियजन्य मतिक्कास-स्वरूप निमित्तसे हो तो श्रुतज्ञान हो सकेगा। चक्षु आदि इन्दियोंसे श्रुतज्ञान नहीं हो सकेगा। उक्त प्रकार सिद्धान्तसे विरोध आविगा। उत्तर-सांव्यवहारिक शब्द ज्ञान श्रुत है। इस अपेक्षासे नियम किया जायेगा, तब तो इष्ट सिद्धान्तसे कोई बाधा नहीं आती है। क्योंकि चक्षु अ।दिसे उत्पन्न हुए महिज्ञानको पूर्ववर्दी कारण मानकर जरपन्न हुए भी भुतोंको परमार्थ रूपसे श्री अकलंक देदने स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार अपने सिद्धान्तकी प्रतिपत्ति हो जाती है। २. शब्दकी अनुयोजनासे ही श्रुत होता है, इस प्रकार श्री अकलंक दैवको अभिप्रेत हो रहे अध्धारणका कभी भी विरोध नहीं पड़ता है। ... पूर्व से चली आ रही तिस प्रकारकी आम्मायींकी विच्छित्ति नहीं हुई है। इस कारण सम्पूर्ण मतिज्ञानोंको पूर्ववर्ती कारण मानकर भुतको अभरज्ञानपना व्यवस्थित हो गया है।

३. मतिज्ञान व श्रुतज्ञानमें अन्तर

१. दोनोंमें कथंचित् एकता

दे. अ तज्ञान/1/२/२ (मति पूर्वक उरपन्न होला है ।)

रा. वा./१/६/६५/४%/२% मतिशुतयोः परस्परापरित्यागः-ध्यत्र मतिस्तत्र श्रुतं यत्र श्रुतं तत्र मितः' इति । —मिति श्रुतका विषयः कराकर है और दोनो सहभावी हैं, जहाँ मिति है, वहाँ श्रुत है, जहाँ श्रुत है वहाँ मिति है।

रा. वा./१/३०/४/६०/२५ एते हि मतिश्रुते सर्वकालमञ्यभिचारिणी नारदपर्वतवत् । तस्पादनयोरन्यत्रमहणे इतरस्य महणं संनिहितं भवति । —मति और श्रुत सदा अञ्यभिचारी हैं, नारद पर्वतकी तरह एक दूसरेका साथ नहीं छोड़ते, अतः एकके महणसे दूसरेका महण हो हो जाता है।

२. मति व श्रुतज्ञानमें भेद

स. सि./१/२०/१२०/व यदि मतिषूर्वं श्रुतं तदि मत्यात्मकं प्राप्नोति कारणसद्दर्ग हि लोके कार्य दृष्टम् इति । नैतदैकान्तिकम् । दण्डादि-कारणोऽयं वटो न दण्डाचारमकः। अपि च सति तस्मिस्तदभावात्। सत्यपि मतिज्ञाने बाह्यश्रुतज्ञाननिमित्तसंनिधानेऽपि प्रवलश्रुतावरणो-दयस्य श्रुताभावः। श्रुताबरणक्षयोपकामप्रवर्षे तु सति श्रुतज्ञान-मुत्पदात इति मतिज्ञानं निमित्तमात्रं ज्ञेयम्। = प्रश्न-यदि श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है तो वह शुतज्ञान भी मत्यात्मक ही प्राप्त होता है; क्यों कि लोकमें कारणके समान ही कार्य देखा जाता है ! उत्तर-यह कोई एकान्त नियमं नहीं है कि कारणके समान काय होता है। यद्यपि घटकी उत्पत्ति दण्डादिकसे होती है तो भी वह दण्डाखारमक नहीं होता। दूसरे, मित-ज्ञानके रहते हुए भी श्रुतज्ञान नहीं होता। यदापि मतिज्ञान रहा आता है और भुतज्ञानके नाह्य निमित्त भी रहे आते हैं तो भी जिसके श्रुत-ज्ञानावरणका प्रवल उदय पाया जाता है, उसके श्रुत-ज्ञान नहीं होता। किन्तु श्रुतज्ञानका प्रकर्ष क्षयोपशम होनेपर ही श्रुतज्ञान होता है इसलिए मतिज्ञान श्रुतज्ञानकी उत्पत्तिमें निमित्त-मात्र जानना चाहिए । (रा. वा./१/२०/३-४/७०/२५:७-५/-७१/३१) ।

रा, वा-/१/१/२१-२६/४०/६ मतिशुतयोरेकत्वम्; साहचयदिकत्राव-स्थान।चाविशेषातः ।२१। नः अतस्तिःसद्धेः । यत एव मतिशृतयोः साहचर्यमेकत्रावस्थानं चोच्यते अत एव विशेषः सिद्धः। प्रतिनियत-विशेषसिद्धयोहि साहचयेमेकत्रावस्थानं च युज्यते, नान्यथेति ।२२। तरपूर्वकरवाच । ततश्चानयोविशेषः । यरपूर्वे यश्च पश्चात्तयोः कथमविशेषः । १२३। तत एवाविशेषः, कारणसदृशस्त्रात् युगपद्द-वृत्तेश्चेति. चेत्…तत्रः कि कारणम् । …द्वयोहि सादश्यं युगपई-वृत्तिश्चेति ।२४। स्यादेतत्-विषयाविशेषात् मतिश्रुतिरैकत्वस्। एवं हि वक्ष्यते—''मतिश्रुतयोनिबन्धो द्रव्येव्यसवंपर्यायेषु (त, सू./१/२६) इति; तब्नः कि कारम्। प्रहणभेदात्। अन्यथा हि मर्या गृह्यते अन्यथा श्रुतेन ।२६। ...स्यादेतत् - उभयोरिन्द्रियानिन्द्रिय-निमित्तस्वादेकस्वस्। …तत्रः कि कारणस्। असिद्धस्वात्। जिह्वा हि राज्दोच्चारक्रियाया निभित्तं न ज्ञानस्य. अवणमपि स्यविषय-मतिज्ञाननिमित्तं न श्रुतस्य, इत्युभयनिमित्तत्वमसिद्धम् । = प्रश्न --चुंकि मिल्लान और शुतल्लान दोनों सहचारी हैं, और एक व्यक्ति-में युगपत् पाये जाते हैं, अतः दोनों में कोई विशेषता न होनेसे दोनोंको एक ही कहना चाहिए ! उत्तर - साहचर्य तथा एक व्यक्ति-में दोनोंके युगपत रहनेसे ही यह सिद्ध होता है कि दोनों जुदै-जुदे हैं, क्योंकि दोनों वासें भिन्न सत्तावाले पदार्थीमें ही होती है। मतिपूर्वक भूत होता है, इसलिए दोनोंकी कारण-कार्यरूपसे विशेषता सिद्धध है ही। प्रश्न - कारणके सदश ही कार्य होता है, चूं कि श्रुत मति पूर्वक हुआ है, अतः उसे भी मतिरूप ही कहना चाहिए। सम्यादर्शन होनेपर कुमति और कुशुतको युगपत् इत-व्यपदेश होता है अतः दोनों एक ही कहना चाहिए। उत्तर-यह प्रश्न ठीक नहीं है, क्योंकि जिन कारण सहशस्त्र और युगपद्वस्ति हेतुओंसे आप एकत्व सिद्ध करना चाहते हो उन्होंसे उनमें भिन्नता सिद्ध होती है। साहश्य और ग्रुगपद्दृष्टित पृथक्सिद्ध पदार्थीमें ही होते हैं। प्रश्न-मति और श्रुतज्ञानका विषय एक होनेसे दोनोंमें एकत्व है-ऐसा कहा गया है कि-मतिज्ञान व श्रुतज्ञानकी सम्पूर्ण इटयों में एक देश रूपसे प्रवृत्ति होती है। (त. सू./१/२६) उत्तर-ऐसा नहीं है, क्यों कि दोनों के जाननेके प्रकार जुदा-जुदा हैं। प्रश्न-- मति और श्रुत दोनों इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न होते हैं, इसलिए दोनों में एकत्व है। उत्तर्—एक कारणता असिद्ध है। अक्ताकी जीभ शब्दके उच्चारणमें कारण होती है न कि ज्ञानमें।

श्रोताका ज्ञान भी शन्द प्रत्यक्षरूप मितज्ञानमें निमित्त होता है न कि अर्थ ज्ञानमें, अतः श्रुतमें मनोनिमित्तता असिद्ध है।

रा. वा./१/२०/१/०१/११ नायमेकान्तोऽस्ति-कारणसद्द्यमेव कार्यस् इति। कुतः। तत्रापि सप्तमङ्गीसंभवात । कथस्। घटवत्। यथा घटः कारणेन मृत्विण्डेन स्यास्सद्द्यः स्याद्ध सहश् इत्यादि। स्याः अतं सामान्यादेशात् स्याःकारणसद्द्यं यतो मतिरपि ज्ञानं अतुत्पपि। अत्रविहिताभिमुख्यप्रहणनानाप्रकारार्थप्ररूपणसामध्यिदिप्यां योवात्ते स्यात्त कारणसद्द्यम्। चयह कोई नियम नहीं है कि कारणके सद्द्या ही कार्य होना चाहिए। क्योंकि यहाँपर भी सप्तभंगी की योजना करनी चाहिए। घड़ेकी भाँति जैसे पुद्दगल हच्यकी दृष्टिसे मिट्टी रूप कारणके समान घड़ा होता है। पर पिण्ड और घट पर्यायोंकी अपेक्षा दोनों विन्नक्षण हैं। उसी तरह चैतन्य द्रव्यकी मति और शुत दोनों एक हैं, क्योंकि मति भी ज्ञान है और शुत भी ज्ञान है। किन्तु तत्तत् ज्ञान पर्यायोंको इत्रुसे दोनों ज्ञान जुदा-जुदा हैं।

रतो. वा./२/१/१/२०/२४/२२ न मतिस्तस्यास्तर्कात्मिकायाः स्वार्थानु-मानात्मिकायाश्च तथा भावरहित्रवात् । न हि यथा श्रुतमनन्त-व्यञ्जनपर्यायसमाकान्तानि सर्वद्रव्याणि गृह्णाति न तथा मतिः । =तर्कस्वरूप अथवा स्वार्थानुमानस्वरूप भी उस मतिज्ञानमें श्रुतज्ञानके समान सर्व तत्त्वोका ग्राहकपना नहीं है, जिस प्रकार अनन्त व्यंजन पर्यायासे चारों और घिरे हुए सम्पूर्ण द्रव्योको श्रुतज्ञान ग्रहण करता है, तिस प्रकार मतिङ्गान नहीं जानता ।

श्रांतज मितिञ्चान स श्रुतज्ञानमें अन्तर

रा, बर, १/६/२०/४६/४ शुत्का यदवधारयति तत् श्रुतमिति केचिन्म-न्यन्ते; तत्र युक्तम्: कुतः। मितिझानप्रसङ्गत्। तदिष शब्दं श्रुत्या 'गोशब्दोऽयम्' ,इति प्रतिपाद्यते। ...श्रुतं पुनस्तस्मित्निन्द्रयानि-न्द्रियगृहोतागृहोत्तपर्यायसम्बहात्मिन शब्दे तदिभिषेये च श्रोजेन्द्रिय-व्यापारमन्तरेण जीवादौ नयादिभिरिधगमौपार्ययायास्म्येनाऽवनोधः।

रा. बा./१/२०/६/७१/२६ स्यादेतत्-भोत्रमतिपूर्वस्यैव श्रुतत्व प्राप्नोति । कुतः। तदर्थस्वातः । श्रुत्वा अवधारणाद्धिः श्रुतमित्युच्यते, तेन चक्षुरादिमतिपूर्वस्य श्रुतस्वं न प्राप्नोति; तन्नः । क कारणम् । उक्त-मेतत्-'श्रुतशब्दोऽयं रूढिशब्दः' इति । कुढिशब्दाश्च स्वोत्यस्ति-निमित्तकियानपेक्षाः प्रवर्तन्त इति सर्वमितिपूर्वस्य शुत्रविसिधि-र्भवति। **≈१. प्रश्न-सुनकर निश्चय करना श्रुत है**? **उत्तर-**-ऐसा कहना युक्त नहीं है। यह तो मतिज्ञानका लक्षण है, क्यों कि वह भी शन्दको सुनकर 'यह गो शब्द है' ऐसा निश्चय करता हो है। किन्तु श्रुतज्ञान मन और इन्द्रियके ज्ञान द्वारा गृहोत या अगृहीत पर्याय बाले शब्द या उसके बाच्यार्थका श्रान्त्रेन्द्रियके व्यापारके जिना ही नय आदि योजनाके द्वारा विभिन्न विशेषोंके साथ जानता है। २. प्रश्न -श्रोत्रेन्द्रिय जन्य मतिज्ञानसे जो उत्पन्न हो उसे ही भुत कहना चाहिए, क्यों कि सुनकर जा जाना जाता है वही श्रुत होता है। इस प्रकार चक्षु इन्द्रिय आदिसे श्रुत नहीं हो सकेगा। उतर-भृत शब्द भृतज्ञान विशेषमें रूढ़ हानेके कारण सभी मतिज्ञान पूर्वक हानैवाले अनुतज्ञानोंमें ववाप्त है। (भ. आ./-बि./१६४/४०६/२१) ।

रखो. वा./३/१/१/३३/२०/३ केचिदाहुर्मतिश्रुत्यं रेक्श्वं अवणितिमित्त-रवादिति, तेऽपि न युक्तिवादिनः । श्रुतस्य साक्षाच्छ्रशणिनिम्त्तस्या-सिखेः तस्यानिन्दियवत्त्वादृष्टार्थसजातीयनानार्थपरामक्नस्यभाव-तया प्रसिद्धस्यात् । —प्रश्न-कर्ण इन्द्रियको निमित्त पाकर् मतिज्ञान और श्रुतज्ञान होते हैं, इस कारण दोनोंका एकपना है । जत्तर-आप युक्तिवादी नहीं हैं, क्योंकि कर्ण इन्द्रियको साक्षात्त निमित्त मानकर श्रुतज्ञानका उत्पन्न होना असिख है। ... श्रुतज्ञान की अनिन्द्रियवान्पना यानी मनको निमित्त मानकर और प्रसक्षसे नहीं देखे गये सजातीय और विजातीय अनेक अर्थोंका विचार करना रूप स्वमावींसे सहितपने करके प्रसिद्धि हो रही है।

गो, जी,/जी, प्र./३१६/६७३/१६ तत्र जीवीऽस्तीस्युक्ते जीवीऽस्तीति शब्दहानं श्रोत्रेन्द्रियप्रभवं मतिहानं भवति ज्ञानेन जीवोऽस्तीति शब्दबाच्यरूपे आत्मास्तित्वे बाच्यवाचकसंबन्धसंकेतसंकलनपूर्वकं यत ज्ञानमुत्पवते तदश्रारमकं श्रुतज्ञानं भवति, अक्षरारमकशब्द-समुरपन्नत्वेन कार्ये कारणोपचारात् । बात्रशीतस्पर्शज्ञानेन बात-प्रकृतिकस्य तरस्पर्शे अमनोज्ञज्ञानमनश्ररात्मकं तिङ्गजं श्रुतज्ञानं भवति, शब्दपूर्वकरवाभावात्। = 'जीवः अस्ति' ऐसा शब्द कहने-पर कर्ण इन्द्रिय रूप मतिज्ञानके द्वारा 'जीवः अस्ति' यह शब्द ग्रहण किया। इस शब्दसे जो 'जीव नाम पदार्थ है' ऐसा ज्ञान हुआ सो अतुत्रज्ञान है। शब्द और अर्थके ऐसा बाच्य बाचक सम्बन्ध है। सो यहाँ 'जोब: अस्ति' ऐसे शब्दका जानमा हो मति-इपन है, और उसके निमित्तमे जीव नामक पदार्थका जानना सो श्रुतज्ञान है। ऐसे ही सर्व अक्षरात्मक श्रुतज्ञानका स्वरूप जानना । अक्षरात्मक शब्दसे समुख्यन्त ज्ञान, उसको भी अक्षरा-रमक कहा। यहाँपर कार्यमें कारणका उपचार किया है, परमार्थ-से छान कोई असर स्वय नहीं है।' जैसे--शीतल पत्रनका स्वर्श होनेपर 'तहौँ शीतल पबनका जाननातो मतिज्ञान है, और उस ज्ञानसे वायुकी प्रकृतिवालेको यह पवन अनिष्ट हैं' ऐसा जानना शतज्ञान है, सो यह अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है, क्यों कि यह अक्षरके निमित्तसे उत्पन्न नहीं हुआ है।

४. मनोमति ज्ञान च श्रुतक्रानमें अन्तर

पं. का./ता. वृ./४३/ प्रक्षेपक १.२/५४/१६ तन्मित्ह्यानं तच्च पुनिस्त्रिविधं उपलिष्यभिवता तथीपयोगश्च ... अर्थ प्रहण्यात्ति स्पादि

प. ईहादि मतिज्ञान श्रुतज्ञानमें अन्तर

रा. बा./१/६/२-/४-/११ स्यादेततः ईहादीनामपि श्रुत्व्यपदेशः प्राप्तः, तेऽप्यानिद्रयानिमत्ता इ:तः तकः कि कारणम्। अवगृहीतमानिवयप्यत्तिः इन्द्रियेणावगृहीतो योऽर्थस्तन्मात्रविषय ईहादयः, श्रुतं पुनर्न तिह्रष्यम्। कि विषयं तिह् श्रुत्तम्। अपूर्वविषयम्। नप्रश्न - ईहा आदि ज्ञानका भी श्रुतं व्यपदेश शाह होता है, व्योक्ति वे भी मनके निमित्तसे उत्पन्न होते हैं। उत्तर - ऐसा नहीं है वयों कि वे मात्र अवगृहके द्वारा गृहीत ही पदार्थको जानते हैं, जमकि श्रुत्ज्ञान अपूर्व अर्थको विषय करता है। (क. पा./१/१-१६/१३०८/३४०/१): (ध. ६/१.६-१४/१७/४)।

रलो. बा./ ३/१/१/२२/२६/२२ नहि मादशमती न्द्रियनिमित्तत्वमहीयो-स्तादशं शुतस्यापि। = यद्यपि ईहा मतिझान और शुतज्ञान दोनों ही मनसे होते हैं, किन्तु जिस प्रकार ईहा ज्ञानका निमित्तपन मनको प्राप्त है, उस सरीखा शुतज्ञानका भी निमित्तपना मनमें नहीं है। केवल सामान्य स्पमे उस मनका निमित्तपना तो मति और श्रुतके तदारमकपनका गमन हेतु,नहीं है।

दे. मतिज्ञान/३/१ ईहादिको अनिन्दियका निमित्तत्व उपचारसे है पर

अ_{धुत्रञ्जा}न अनिन्दिय निमित्तक ही है।

४. श्रुतज्ञान व केवलज्ञानमें कथंचित् समानता-असमानता

🧤 श्रुत भी सर्व पदार्थ विषयक है

- दे मृद्धि/२/२/३ केवलज्ञानके विषयभूत अनन्त अर्थको श्रुतज्ञान परोक्ष रूपसे ग्रहण कर लेता है।
- दे श्रुतज्ञान/२/१ केवलज्ञानको भाँति श्रुतज्ञान भी मनके द्वारा विकाली पदार्थीको प्रहण कर लेता है।
- प्र. सा./त. प्र./२३४ अमणामा होयरवमापखन्ते स्वयमेव, विचित्रगुणपर्यायविशिष्टसवद्भव्यव्यापकानेकान्तारमकश्रुतज्ञानोपयोगी भूयो
 विपरिणमनात्। अत! न किंचिद्ध्यागमचश्रुषामदृश्यं स्यात्। = वे
 (विचित्रगुणपर्यायों सिहत समस्त पदार्थ) अमणोंको स्वयमेव
 होयभूत होते हैं, वयोंकि अमण विचित्र गुणपर्यायवाले सर्वद्रव्योंमें
 व्यापक अनेकान्तारमक श्रुतज्ञानोपयोग रूप होकर परिणमित होते
 हैं। इससे (यह कहा है कि) आगम चश्रुओंको आगम रूप चश्रु
 बालोंको कुछ भी अदृश्य नहीं है।
- प्र. सा./ता. वृ./गा./पृ./ पं. अत्राह शिष्यः--आत्मपरिज्ञाने सति सर्व-परिज्ञानं भवतोस्यत्र व्याख्यानं, तत्र तु पूर्वसूत्रे भणितं सर्वपरिज्ञाने सरधारमपरिज्ञानं भवतीति । यद्येवं तर्हि छद्मस्थानां सर्वपरिज्ञानं नास्त्यातमपरिज्ञानं कथं भविष्यति । आत्मपरिज्ञानाभावे चात्म-भावना कथ । तदभावे केवलज्ञानोत्पृत्तिनस्ति।ति । परिहारमाह-परोक्षप्रमाणभूतश्रुतज्ञानेन सर्वपदार्था ज्ञायन्ते। कथमिति चेत-लोकालोकादिपरिज्ञानं व्याप्तिज्ञानरूपेण छ्यस्थानामपि विद्यते, तच्च व्याप्तिज्ञानं परोक्षाकारेण केवलज्ञानविषयग्राहकं कथंचिए।-रमेव भण्यते । (४६/६६/१३) सर्वे द्रव्यगुणपर्यायाः परमागमेन ज्ञायन्ते। कस्मात् । आगमस्य परोक्षरूपेण केवलज्ञानसमानत्वात् पश्चादागमाधारेण स्वसंबेदनज्ञाने जाते स्वसंबेदनज्ञानवलेन केवल-ज्ञाने च जाते प्रत्यक्षा अपि भवन्ति । (२३४/३२४/१३ः) ।≔ प्रश्न − आत्माके जाने, जानेवर सर्व जाना जाता है, ऐसा यह व्याख्यान है, और पूर्वसूत्रमें सर्वका ज्ञान होनेपर आत्माका ज्ञान होता है, ऐसा है तो छ बस्थों के सर्वका ज्ञान तो होता नहीं है. तो आत्मक्कान कैसे होगा ! और आत्मज्ञानके अभावमें आत्माकी भावनांकी सेसम्भव है, तथा भावनाके अभावमें नेवलज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकतो है। उत्तर-परोक्ष प्रमाणभूत श्रुतज्ञानके द्वारा सर्व पदार्थ जाने जाते हैं, नयों कि लोकालोकका परिज्ञान ब्याप्ति रूपसे छइन्स्थौंके भी पाया जाता है। और वह केवलज्ञानको विषय करनेवाला व्याप्ति ज्ञान परोक्ष रूपसे कथंचित आत्मा ही है। सर्व द्रवय गुण और पर्याय परमागमसे जाने जाते हैं, क्योंकि आगमके परोक्षरूपसे केवलज्ञानसे समानपना होनेके कारण, आगमके आधारसे पीछे स्वसंवेदन ज्ञानके हो जानेपर, और स्वसंवेदन झानके बलसे केवलझानके हो जानेपर समस्त पदार्थ प्रत्यक्ष भी हो जाते हैं।
- पं. का./ता. वृ./१६/१५१/१४ यत्पुनद्विद्शाङ्गचतुर्दशपूर्वरूपपरमागम-संज्ञं तच्च मृतीमृतीभयपरिच्छित्तिविषये व्याप्तिज्ञानरूपेण परोक्ष-मपि केवलज्ञानसदशिमत्यभित्रायः। - द्वादशांग अर्थात् १२ अग चौदह पूर्वं रूप परमागम संज्ञावाला द्रव्य श्रुत है, वह मूर्त और अमृत दोनों प्रकारके द्रव्योंके ज्ञानके विषयमें परोक्ष होनेपर भी व्याप्त ज्ञान रूपसे केवलज्ञानके सदश है, ऐसा अभित्राय है।
- दे, श्रुतज्ञाम/!/२/४ श्रुतज्ञान सर्व पदार्थ विषयक है।

🤰 दोनोंमें प्रत्यक्ष परोक्ष मात्रका अन्तर है

आप्त, मो./१०४ स्याद्वादकेवतज्ञाने सर्वतत्त्रवे प्रकाशने । भेदः साक्षाद-साक्षाच्च, ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत् ।१०६। = स्याद्वाद और केवलज्ञान दोनों सर्व तत्त्वोंका प्रकाशन करनेवाले हैं । इन दोनों में केवल परोक्ष व प्रत्यक्ष रूप जानने मात्रका भेद है । इन दोनों में से यदि एक हो, और अन्यतम न हो तो, वह अवस्तु ठहरें । (गो. जी./मू./१६६/७६४)। दे. अनुभव/४ शुतज्ञानमें केवल ज्ञानवद् प्रत्यक्ष अनुभव होता है।

इ्समन्त्रय

ध, १५/१/४/४ मदिसुदणाणाणं सठवद्दाविसयत्तं किण्ण वुच्चदे, तासि मुत्तामुत्तासेसद्द्वेषु वावारुवलभादो। ण एस दोसो, तेसि द्व्वाण-मणतेसु पद्माएसु तिकालिबसएसु तेहि सामण्णेणावगएसु विसेस-सद्ध्वेण वावाराभाबादो। भावे वा केवलणाणेण समाणतं तेसि पावेद्या। ण च एवं, पंचणाणुवदेसस्स अभावद्यसंगादो। = प्रश्न — मतिज्ञान व श्रुतज्ञान समस्त द्वच्योंको विषय करनेवाले हैं, ऐसा क्यों नहीं कहते, क्योंकि उनका मूर्त व असूर्त सर्व द्वच्योंको विषय करानेवाले हैं, ऐसा प्या जाता है। उत्तर—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, उन द्वच्योंको त्रिकाल विषयक अनन्त पर्यायोमें उन ज्ञानोंका सामान्य द्वपेस स्वीकार की जाय तो वे दोनों ज्ञान केवलज्ञानकी समानताको प्राप्त हो ज्ञेषे। परन्तु ऐसा सम्भव नहीं है, क्योंकि, वैसा होनेपर पाँच ज्ञानोंका जो उपदेश प्राप्त है उसके अभावका प्रसंग आता है।

५. मति श्रुत ज्ञानको कथंचित् प्रस्यक्षता-परोक्षता

१. मित श्रुत ज्ञान कथंचित् परोक्ष हैं

- प्र. सा./मू./१७ परवन्तं ते अक्लाणेत्र सहातोत्ति अप्पाणो भणिदा। उनलद्भं तेहि कथं पच्चत्रतं अप्यणो होति ११७। = ने इन्द्रियौँ पर द्रव्य हैं, उन्हें आत्मस्वभाव स्वरूप नहीं कहा है। उनके द्वारा झात आत्माका प्रत्यक्ष केंसे हो सकता है।
- स. सि./१/११/१०१/६ अतः पराणीन्द्रियाणि मनश्च प्रकाशोपदेशादि च बाह्यनिमित्तं प्रतीरय तदावरणकर्मक्षयोपशमापेक्षस्यात्मनो मतिशुतं उत्पद्यमानं परोक्षमित्याख्यायते । = मतिझानावरण और शुतज्ञाना-वरण कर्मके क्षयोपशमकी अपेक्षा रखनेवाले आत्माके इन्द्रिय और मन तथा प्रकाश और उपवेशादिक बाह्य निमित्तोंकी अपेक्षा मतिज्ञान और श्रुतज्ञान उत्पन्न होते हैं अतः ये परोक्ष कहकाते हैं। (रा.वा./१/१९/६/४/२४)(और भी दे परोक्ष/४)।
- क पा,/१/१-१/९१६/२४/३ मिति-सुदणाणाणि परोक्खाणि, पाएण तत्थ अविसदभावदंसणादो । समिति और श्रुत ये दोनों ज्ञान परोक्ष हैं, क्यों कि इन दोनों में प्राप्तः अस्पष्टता देखी जाती है।

२. इन्द्रिय ज्ञानको प्रत्यक्ष माननेमें दोष

स. सि./१/१२/१०३/७ स्यान्मतिमिन्दियव्यापारजनितं ज्ञातं प्रत्यक्षं व्यतीतेन्दियविषयव्यापारं परोक्षमिन्य्येतद्विसंवादि लक्षणमभ्युपगन्तव्यमिति । तद्युक्तम्, आप्तस्य प्रत्यक्षज्ञानाभावप्रसङ्गात् । यदि
इन्द्रियनिमित्तमेव ज्ञानं प्रत्यक्षमिष्यते एवं सति आप्तस्य प्रत्यक्षज्ञानं न स्यात् । न हि तस्येन्द्रियपूर्वोऽयाधिगमः । अथ तस्यापि करणपूर्वकमेव ज्ञानं कव्य्यते, तस्यासर्वज्ञत्वं स्यात् । तस्य मानसं प्रत्यक्षमिति चैतः । मनःप्रणिधानपूर्वकत्वात् ज्ञानस्य सर्वज्ञत्वाभाव एव ।
आगमतस्तत्तिसिद्धिरिति चेत् । नः तस्य प्रत्यक्षज्ञानपूर्वकत्वातः ।
योगिष्रत्यक्षमन्यज्ज्ञानं दिव्यमप्यस्तीति चेत् । न तस्य प्रत्यक्षत्वः इन्द्रियनिमित्तवाभावादः अक्ष्मक्षं प्रति यद्वते ते तत्रत्यक्षमित्यम्यु-

पगमात् । 😑 प्रंपन —जो ज्ञान इन्द्रियोंके व्यापारसे उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष है और जो इन्द्रियों के व्यापारसे रहित है वह परोक्ष है। प्रत्यक्ष व परोक्षका यह अविसंवादी लक्षण मानना चाहिए ! उत्तर-कहना ठीक नहीं है, क्यों कि उक्त लक्षणके माननेपर आग्नके प्रश्यक्ष ज्ञानका अभाव प्राप्त होता है। यदि इन्द्रियोके निमित्त होनेबाले ज्ञानको प्रत्यक्ष कहा जाता है तो ऐसा माननेपर आप्तके प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सकता क्यों कि आप्तके इन्द्रियपूर्वक पदार्थका ज्ञान नहीं होता। कदाचित उसके भी इन्द्रिय पूर्वक ही ज्ञान पाया जाता है तो उसके सर्वज्ञता नहीं रहती। प्रश्न-उसके मानस प्रत्यक्ष होता है। उत्तर-मनके प्रयश्नसे ज्ञानकी उत्पत्ति माननेपर सर्वज्ञरवका अभाव ही होता है। प्रश्न-आगमसे सर्व पदार्थीका ज्ञान हो जायेगा ! उत्तर-नहीं, क्यों कि सर्वज्ञता प्रत्यक्षज्ञान पूर्वक प्राप्त होती है। परन - योगी-प्रत्यक्ष नामका एक अन्य दिव्यज्ञान है! उत्तर-उसमें प्रत्यक्षता नहीं बनती, क्यों कि वह इन्द्रियों के निमित्त-से नहीं होता है। जिसकी प्रवृत्ति प्रत्येक इन्द्रियसे होती है वह प्रत्यक्ष है ऐसा आपके मतमें स्वीकार भी किया है। (रा. वा./१/१२/६-६/-

३, परोक्षता व अपरोक्षताका समन्त्रय

न्या. दो./२/६ १२/३४/१ इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः 'सांव्यव-होरिकम्' । इदं चामुख्यप्रत्यक्षम्, उपचारसिद्धत्वातः । वस्तुतस्तु परोक्षमेव, मित्त्वानत्वात् । व्यक्तित्व और मनके निमित्तसे होने-वाला एक देश स्पष्ट सांक्यवहारिक प्रत्यक्ष ज्ञान अमुख्य प्रत्यक्ष है— गौण रूपसे प्रत्यक्ष है, क्यों कि उपचारसे सिद्ध होता है, वास्तवमें तो परोक्ष हो है।

दे. परोक्ष/४ (इन्द्रिय ज्ञान परमार्थसे परोक्ष है व्यवहारसे प्रस्यक्ष है ।)

दे, अनुभव/ ४ वह बाह्य विषयोंको जानते समय परोक्ष है और स्वसंवे-दनके समय प्रत्यक्ष है।

II अर्थीलगज श्रुतज्ञान विशेष निर्देश

१. भेद व लक्षण

१. अर्थ लिंगज २० प्रकारका है

प. खं. १३/४, १/सू. ४०/२६० तस्सेन सुदणाणावरणीयस्स कम्मस्स वीसदिविधा पर्कवणा कायव्या भवदि १४७। पुट्वं संजोगन्खरमेत्ताणि सुदणाणावरणीण मरुविदाणि । संपिह ताणि चेव सुदणाणावरणाणि वीसदिविधाणि ति भण्णभाणे एदस्स सुत्तस्स पुञ्चसुत्तेण विरोहो किण्ण जायदे । ण एस दोसो, भिण्णाहिष्पायंतादो । पुव्विल्लसुत्तन्त मन्दरणिवंधणभेदपरूवयं, एदं पुण खओवसमगदभेदमस्सदूण आवरणभेदपरूवयं । तम्हा दोसो णिष्य ति धेत्तव्यो ! =श्रुतज्ञानावरणीय कर्मकी २० प्रकारकी प्रस्तपणा करनी चाहिए १४७। प्रश्न पहले जितने संयोगाक्षर होते हैं जतने श्रुतज्ञानावरण कर्म कहे गये हैं । अब वे ही श्रुतज्ञानावरण २० प्रकारके हैं, ऐसा कथन करनेपर इस सुत्रका पूर्व सुत्रके साथ विरोध क्यों नहीं होता । उत्तर—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि भिन्न अभिप्रायसे यह सुत्र कहा गया है । पूर्व सुत्र अक्षर निमित्तक श्रुतभेदीका कथन करता है, परन्तु यह सूत्र अथर निमित्तक श्रुतभेदीका कथन करता है, परन्तु यह सूत्र अथर निमित्तक श्रुतभेदीका कथन करता है, परन्तु यह सूत्र अथर निमित्तक श्रुतभेदीका कथन करता है, परन्तु यह सूत्र अथर निमित्तक श्रुतभेदीका कथन करता है, परन्तु यह सूत्र अथर करता है। ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए ।

२. अर्थ लिंगजके २० मेदोंका नाम निर्देश

ष. खं, १३/१.४/गा. १ व सू. ४८।२६० पज्जय-अक्खर पद-संघादय-पडिवित्त-जोगदाराई । पाहुडपाहुडवरथू पुठ्यसमासाय बोद्धव्या ११ पज्जयावरणीयं पञ्जयसमासावरणीयं अवखरावरणीयं अक्खरसमा- सावरणीयं पदानरणीयं पदसमासावरणीयं संघादावरणीयं संघात-समासावरणीयं पडिवत्तिञावरणीयं पडिवत्तिसमासावरणीयं अणि-योगद्दारावरणीयं अणियोगद्दारसमासावरणोयं पाहुडपाहुडावरणीयं पाहुइपाहुडसमासावरणीयं पाहुडावरणीयं पाहुडसमासावरणीषं वत्थु-आवरणीयं वत्थुसमासावरणीयं पुठवावरणीयं पुठवसमासावरणीयं चेदि ।४८। १. पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास, पद, पद-समासः, संघात, संघात समास, प्रतिपन्ति, प्रतिपत्तिसमास, अनुयाग-द्वार, अनियोद्वारसमास, प्राभृतप्राभृत, प्राभृत-प्राभृतसमास, प्राभृत, प्राभृतसमास, वस्तु, वस्तुसमास, पूर्व और पूर्व समास, ये शुतञ्चानके नीस भेद जानने चाहिए। १। २. पर्याय ज्ञानावरणीय, पर्यायसमास ज्ञानावरणीय, अधरावरणीय, अक्षरंसमासावरणीय, पदावरणीय, प्रसमासानरणीय, संघातावरणीय, 'संघातसमासावरणीय, प्रति-पत्ति-आवरणीय, प्रतिपत्तिसम्।सावरणीय, अनुयोगद्वारावरणीय, अनुयोगद्वारसमासावरणीय, प्राभृतप्राभृताबरणीय, समासावरणीय, प्राभृतावरणीय, प्राभृतसमासावरणीय, आवरणीय, वस्तुसमासावरणीय, पूर्वावरणीय, पूर्वेसमासावरणीय, ये भुतावरणके बीस भेद हैं ।४८। (ह. पु./१०/१२-१३); (ध. ६/९. ६-१.१४/२१/८); (घ. १२/४,२.१४,४/४=०/१२); (गो. जी.**/मृ./** ३१७-३१८/६७७) ।

३. बीस भेटोंके छक्षण

ह पु./१०/१४-२६ श्रुतज्ञानविकस्पः स्यादेकहस्बाक्षरात्मकः । अनन्ता-नन्तभेदाणुपुद्वतस्कन्धसंचयः । १४। अनन्तानन्तभागेस्तु भिचमानस्य तस्य च । भागः पर्याय इत्युक्तः श्रुतभेदो ह्यनन्पराः १९६। सोऽपि सूक्ष्मनिगोदस्यालच्धपर्याप्रदेहिनः। सम्भवी सर्वथा तावान् श्रुता-वरणवर्जितः ।१६। सर्वस्यैव हि जीवस्य तावन्मात्रस्य नावृतिः। आवृतौ तु न जीवः स्यादुपयोगिवयोगतः ।१७। जीवोपयोगशक्तश्र न विनाशः संयुक्तिकः । स्यादेवात्यभ्ररोधेऽपि सूर्याचन्द्रमसोः प्रभा ।१८। पर्यायानन्तभागेन पर्यायो युज्यते यदा । स पर्यायसमासः स्यात श्रुतभेदो हि सावृतिः ।१९। अनन्त्सङ्ख्यसङ्ख्येयभागवृद्धि-क्षयान्वितः। सङ्ख्येयासङ्ख्यकानन्तगुणवृद्धिक्रमेण च ।२०। स्या-त्पर्यायसमासोऽसौ यावदक्षरपूर्णता। एकैकाक्षरवृद्धवा स्यात् तत्स-मासः पदावधिः ।२१। पदमर्थपदं क्षेयं प्रमाणपदिमत्यपि । मध्यमं पदिमिरयेवं त्रिविधं तु पदिस्थतम् । २२। एकद्वित्रिचतुःपञ्च पद्सप्ता-क्षरमर्थवत् । पदमायं द्वितोयं तु पदमष्टाक्षरात्मकम् ।२३। कोदचश्चैव चतुर्स्त्रिशत् तच्छतान्यपि षोहशः। त्र्यशीतिश्च पुनलेक्षाः शतान्यष्टौ च सप्ततिः।२४। अष्टाशीतिश्च वर्णाः स्युर्मध्यमे तु पदे स्थिताः। पूर्वाङ्गपदसङ्ख्या स्यान्मध्यमेन पदेन सा ।२५। एकैकाक्षरबृद्ध्या सु तरसमासभिदस्ततः । इत्थं पूर्वसमासान्तं द्वादशाङ्कं श्रुतं स्थितम् । ।२६। 🗢 श्रुतज्ञानके अनेक विकल्पोमें एक विकल्प एक हस्व अक्षर रूप भी है। इस विकल्पमें द्रव्यकी अपेक्षा अनन्तानन्त पुर्गल पर-माणुओं से निष्पन्न स्कन्धका संचय होता है। १४। इस एक हस्वाक्षर रूप विकल्पने अनेक बार अनन्तानन्त भाग किये जावें तो उसमें एक भाग पर्याय नामका भूतज्ञान होता है ।१६। वह पर्यायः ज्ञान सूरम निगोदिया लच्ध्यपर्याप्तक जीवके होता है और श्रुतज्ञानावरणके आवरणसे रहित होता है १११६। सभी जीवोंके उतने ज्ञानके ऊपर कभी आवरण नहीं पड़ता। यदि उसपर भी आवरण पड़ जाने तो ज्ञानोपयोगका सर्वथा अभाव हो जायेगा और ज्ञानोपयोगका अभाव होनेसे जीवका अभाव हो जायेगा १९७१ यह निश्चयसे सिद्ध है कि जीवकी उपयोग शक्तिका कभी विनाश नहीं होता। जिस प्रकार कि मेधका आवरण होनेपर भी सूर्य और चन्द्रमाकी प्रभा कुछ अंशोंमें प्रगट रही आती है उसी प्रकार श्रुतज्ञानका आवरण होनेपर भी पर्याय नामका ज्ञान प्रकट रहा आता है।१८। जब यही पर्याय ज्ञान पर्याय ज्ञानके अनन्तवें भागके साथ मिल जाता है तब यह

पर्याधसमास नामका भुतज्ञान कहत्ताने लगता है, यह शुतज्ञान आवरणसे सहित है। ११। यह पर्याय-समास-ज्ञान अनन्तभागवृद्धि. असंख्यभाग वृद्धि, संख्यातभागवृद्धि तथा अनन्तभाग हानि, असंख्यात भागहानि एवं संख्यात भाग-हानिसे सहित हैं। पर्यायज्ञानके ऊपर संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और असन्तग्ण वृद्धिके ऋमसे वृद्धि होते-होते जनतक अक्षर ज्ञान पूर्णता होती है तब तकका ज्ञान पर्याय समास ज्ञान कहलाता है। उसके बाद अशरसमासज्ञान प्रारम्भ होता है उसके ऊपर पद ज्ञान तक एक-एक अक्षर की वृद्धि होती है। इस वृद्धि प्राप्त ज्ञानको अक्षर-समास ज्ञान कहते हैं। अक्षर समासके बाद पदज्ञान होता है। ।२०-२१। अर्थपद, प्रमाणपद, और मध्यम पदके भेदसे पद तीन प्रकारका है।२२। इनमें एक, दो, तीन, चार, पाँच और छह व सात अक्षर तकका पद अर्थपद कहलाता है। आठ अक्षर रूप प्रमाण पद होता है और मध्यम पदमें सोलह सौ चौंतीस करोड़ तिरासी साख सात हजार आठसी अठासी अक्षर होते हैं, और अंग तथा पूर्वीके पदकी संख्या इसी मध्यम पदसे होती है।२३-२४। एक अक्षरकी वृद्धिकर पद समास लेकर पूर्व-मास पर्यन्त समस्त द्वादशीम श्रुत स्थित है ।२६। (घ. १३/४,४,४८/२६२-२७१); (घ. ६/१,६-१,१४/२१-२४०); (गो. जी./मू./३२२-३४६) ।

४, उपरोक्त ज्ञानोंकी वह संज्ञाएँ क्यों

- ध. ६/१.६-१.१४/२७/७ कधमेदस्स अक्लस्त्रवरसो । ण, एव्यसुदप्डि-मद्भोयस्वरुप्पणस्स उत्रयारेण अक्लस्ववरसादो । = प्रश्न--- उक्त प्रकारके इस श्रुतझानकी 'अक्ष्र' ऐसी संझा कैसे हुई । उत्तर--- नहीं, क्यों कि, द्रश्य श्रुत प्रतिबद्ध एक अक्षरसे उत्पन्त श्रुतझानकी उपचार-से 'अक्षर' ऐसी संझा है।
- ध, १३/४,४,४८/पृ./पं, कथं तस्स अक्खरसण्णाः खरणेण विणाएग-सस्येण अवट्ठाणादो । केवलणायमक्खरं, तत्थ विड्ढ-हाणीयम-भावादो । दञ्बर्ठियणए सुहुमणिगोदणाणं तं चेवे स्ति व अक्खरं । (२६२।४) को परजाओ णामः जाणाविभागपडिच्छेदपबखेवी परजाओ णाम । तस्स समासो जैसु णाणट्ठाणेसु अस्यि तेसि णाणट्ठाणाणं पज्जयसमासो ति सण्णा (२६४।२)। = प्रश्न - इसकी (सूक्ष्म निगोदियाके ज्ञानकी) अधर संज्ञा किस कारणसे हैं ! उत्तर-क्यों कि यह ज्ञान नाशके जिना एक स्वरूपसे अवस्थित रहता है। अथवा केवलज्ञान अक्षर है, क्योंकि उसमें दृद्धि और हानि नहीं होती । इट्याधिक नयकी अपेक्षा चूँ कि सुक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक-का ज्ञान भी वही है, इसलिए भी इस झानको अक्षर कहते हैं। प्रश्न=पर्याय किसका नाम है। उत्तर→ज्ञानाविभागप्रतिच्छेदोंके प्रक्षेपका नाम पर्याय है। उनका समास जिन ज्ञानस्थानोंमें होता है उन ज्ञानस्थानों में पर्याय समास संज्ञा है। परन्तु जहाँ एक ही प्रशेष होता है उस ज्ञानको पर्याय संज्ञा है, क्यों कि, एक पर्यायमें उनका समास नहीं बन सकता।
- वे. पद/६ एक पदके १६२४८२०७८८ अक्षरों से होनेके कारण ज्ञानको उपचारसे पद ज्ञान कह देते हैं।

५. अक्षर ज्ञानमें कौन सा अक्षर इष्ट है

ध. १३/४.४.४८/२६४/४ एदेसु तिसु अक्लरेसु केणेत्थ अक्लरेण पयदं। लिख अक्लरेण, ण सेसेहि, जडत्तादो। —प्रश्न—इन तीन अक्षरों मेंसे (सब्हयक्षर, मिर्जू सक्षर, और संस्थानाक्षरमेंसे) प्रकृतमें कौनसे अक्षरसे प्रयोजन है। उत्तर किन्न अक्षरसे प्रयोजन है, बोध अक्षरोंसे नहीं। क्योंकि वे जड़ स्वक्षप हैं।

२. अर्थिलगज निर्देश

९. लब्ध्यक्षर ज्ञानका प्रमाण

ध. १२/४.४-४न/२६२/७ किमेदस्स पमाणं । केवलणाणस्स अणंतिमभागो । —प्रश्न —इसका (लब्ध्यक्षर श्रुतज्ञानका) प्रमाण क्या है । उत्तर---इसका प्रमाण केवल-ज्ञानका अनन्तवाँ भाग है ।

२. लड्ध्यक्षर ज्ञान सदा निरावरण होता है

- घ, १३/५,५,४८/२६२/७ एवं जिरावरणं, 'अस्तरस्साणंतिमभागो णिच्चुग्धाडिओ' ति वयणादो एदम्मि आवरिदे जीवाभावण्यसंगादो वा। एदम्हि लद्धि अस्तरे स्व्वजीवरासिणा भागे हिदे स्व्वजीव-रासीदो अणंतगुणणाणाविभागं,पडिच्छेदा आगच्छंति। स्यह (स्व्यप्रश्तर) ज्ञान निरामरण है, क्योंकि अधुरुका अनन्तवौ भाग नित्य उद्धादित (प्रगट) रहता है। ऐसा आगम वचन है। अथवा इसके आवृत होनेपर जीवके अभावका प्रसंग आता है। इस स्वष्टमक्षर ज्ञानमें सब जीव राशिका भाग देनेपर सब जीव राशिसे अनन्तगुणे ज्ञानाविभागप्रतिच्छेद होते हैं (१३/४,२,१४,४/४७६/४), (और भी दे. श्रुतज्ञान/11/१/३)।
- गो. जी./मू./३१६-३२० सुहुमणिगोदअपउजत्तस्स जादस्स पढमसमयिम्ह । हवदि हु सञ्ज्ञाहण्णं णिच्चुग्घाडं णिरावरणं ।३१६। सुहमणिगोद अपउजत्त्रगेसु सगसंभवेसु भिक्तणः चिरमापुण्णतिवद्याणादिमवद्यहिषेव हवे ।३२०। —सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यप्यसिक जीवके
 उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें सबसे जघन्य ज्ञान होता है। इसीको
 प्रायः लब्ध्यक्षर ज्ञान कहते हैं। इतना ज्ञान हमेशा निवारण तथा
 प्रकाशमान रहता है।३१६। सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यप्यसिक जीवके
 अपने अपने जितने भव (६०१२) सम्भव हैं जनमें भ्रमण करके अन्तके
 अपर्याप्त शरीरको तीन मोड़ाओं के द्वारा ग्रहण करनेवाले जीवके
 प्रथम मोड़ा के समयमे सर्वजघन्य ज्ञान होता है।

३. पर्याय आदि ज्ञानोंमें वृद्धि क्रम

ध, ६/१,६-१,१४/२१/११ तस्स (केवलणाणस्स) अर्णातमभागो पज्जाओ-णाम मदिणाणं । तं च केवलणाणं व णिरावरणमक्खरं च । एदम्हादो सुह्मणिगोदस द्विअवस्वरादो जसुष्पउजइ सुदणाणं तं पि पज्जाओ उच्चदि,…तदो अणंतभागवड्ढी असंखेजभागवड्ढी संखेज-सं खेजजगुणवह्दी असंखेडजगुणवहरूी. गुणबर्दी ति एसा एका छवड्ढी। एरिसाओ असंखेउजलीग-मेत्तीओ छवड्ढीओ गंतुण पज्जायसमासमुदणाणस्स अपच्छिमो वियम्पो होदि। तमणंतिहि क्षवेहि गुणिदे अवखरं णाम सुदणाणं होदि।...धदस्सवरि अन्खरवड्ढी चेत्र होदि, अवराओ वड्ढीओ णित्थ ति आइरियपरंपरागतुबदैसादो । केई पुणं आइरिया अक्लर-मुदणाणं पि छन्निहाए बङ्ढीए बङ्ढिद ति भणंति, णेदं घडदे, सयस-मुदणाणस्य संखेजजदिभागादो अन्तवरणाणादो उवरि छवड्ढीणं संभवाभावा । ⇒केवलज्ञान अक्षर कहलाता है उसका अनन्तवाँ भाग पर्याय नामका मतिज्ञान है, वह पर्याय नामका मतिज्ञान केवलज्ञान-के समान निरावरण है और अविनाशो है। इस सूक्ष्म निगोद सन्धि अक्षरसे जो भुतज्ञान उत्पन्न होता है वह पर्याय ज्ञान है. पर्याय श्रुतज्ञानसे जो अनन्तर्वे भागसे अधिक श्रुतज्ञान होता है वह पर्याय समास कहलाहा है। अनन्त भागवृद्धि, भागवृद्धि, असंख्यात, भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, असंख्यात गुणवृद्धि, और अनन्तगुणवृद्धि होती है इस प्रकार की षड्वृद्धियाँ ऊपर जाकर असंख्यात लोक प्रमाण समास नामक श्रुतज्ञान का अन्तिम विकन्प होता है। उस

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

अन्तिम विकथ्पको अनन्त रूपोंसे गुणित करनेपर असर-नामक भुतज्ञान होता है। एवं असर अप्तज्ञानके उपर एक एक असरकी वृद्धि होती है। अन्य वृद्धियाँ नहीं होती हैं, इस प्रकार परम्परागत उपदेश पाया जाता है। कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि असर-शुतज्ञान भी अह प्रकारकी वृद्धिसे बढ़ता है। किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि समस्त शुतज्ञानके संख्यातवें भागरूप असर-ज्ञानते उपर अह प्रकारकी वृद्धियोंका होना सम्भव नहीं है।

ध, १३/५,५,४८/२६८/३ अनलरणाणादो उनरि छ विनहन डि्ड परू निद-वैयणात्रक्लाणेण सह किण्ण विरोहो । ण, भिण्णाहिप्यायत्तादो । एय-क्ष्वरक्षाओवसमादो जेसिमाइरियाणमहिष्पाएण उवरिमवलाओव-समा छ विबह्ब इढीए विड्ढिसा अस्थि तमस्सिय तं बक्लाणं तस्थ परुविदं । एगन्खरमुदणाणं जेसिमाइरियाणमहिष्पाएण समलसुद-णाणस्स संखेजनिक्षाणो चेव तेसिमहिन्पाएणेर्स वक्खाणं । तेण ण दोण्णं विशेहो । = प्रश्न--अंक्षर-ज्ञानके ऊपर छह प्रकारकी वृद्धिका कथन करनेवाले वेदना अनुयोगद्वारके व्याख्यानके साथ इस व्याख्यानका विरोध वयो नहीं होता । उत्तर-नहीं, क्योंकि उसका इससे भिन्न अभिप्राय है। जिन आचार्योंके अभिप्रायानुसार एक अपरके क्षयोपश्मसे आगेके क्षयोपशम छह वृद्धियों द्वारा वृद्धिको लिये हुए होते हैं उन आचार्योंके अभिष्यको ध्यानमें रखकर वेदना अनुयोगद्वारमें यह व्याख्यान किया है। किन्तु जिन अध्वायिके अभित्रायानुसार एक अक्षर शुतज्ञान समस्त शुतज्ञानके संख्यातवे भागप्रमाण ही होता है। उन आचार्योंके अभिप्रायानुसार यह व्याख्यान किया है, इसलिए इन दोनों व्याख्यानोंने बिरोध नहीं है।

गो. जी./मू /३२२-३३२ अवरुवरिम्मि अणंतमसंखं संखं च भागवड्ढीए। संखमसंखमणंतं गुणवड्ढी होंति हु कमेण ।३२२। जीवाणं च य रासी असंबन्धोगा वरं खु संखेजजं। भागगुणिम्ह य कमसो अवट्ठिदा हों ति छहु।णा ।३२३। उञ्ज्ञकं चडर्रकं पणछस्सत्तंक अहुअंकं च । छव-ड्ढोर्ण सण्णा कमसो संदिद्धिकरणट्ठं ।३२४। अङ्गुलअसंखभागे पुट्यं-गवड्ढोगदे दुपरवड्डी। एकं वारं होदि हु पुणो पुणो चरिम-उड्डिती ।३२६। आदिमछट्ठाणिम्ह य पंच य बड्ढी हवंति सेसेसु । छञ्जब्दीओ होति हु सरिसा सन्बन्ध पदसंखा।३२६। छट्ठाणाणं आदि अट्ठंकं होदि चरिममुब्बंकं । जम्हा जहण्णवाणं अट्ठंकं होदि जिणदिट्ठं ।३२७। एककं खलु अट्ठंकं सत्तं कंडयं तदो हेट्ठा । रूवहियकंडएण य गुणिदकमा जाबसुव्वंकं 1३२८। सव्वसमासी णियमा रुवाहियकंडयस्स वग्गस्स। विदस्स य संवग्गो होदिस्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।३२१। उक्कस्ससं क्ष्मेस तत्त्विचरथेकदाल-छप्पण्यं । मतदसमं च भागं गंद्वण य लद्धिअक्खरं दुगुणं ।३३०। एवं असंख्जोगा अणव्रवरूपे हवंति छहु।णाः ते पञ्जायसमासा अक्खरगं उत्ररि वोच्छामि । १३१। चरिमुञ्बंकेण बट्टित अत्थक्खरगुणिदचरिम-मुञ्बंकं। अत्थब्खरं तुणाणं होदित्ति जिणेहि णिह्निट्ठं ।३३२। 🛥 सर्वजपन्य पर्याय ज्ञानके ऊपर क्रमसे अनन्तभाग वृद्धि, असंख्यात भागवृद्धि, मंख्यातभागवृद्धिम, संख्यातगुणवृद्धिम, असंख्यातगुण-बृद्धिः, अनन्तगुणवृद्धिः ये छह् बृद्धिः होती हैं। १२२। अनन्तभाग वृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि इनका भागहार और गुणाकार समस्त जीवराशि प्रमाण अवस्थित है। असंख्यातभाग वृद्धि और असंख्यात गुणवृद्धि इनका भागहार और गुणाकार असंख्यात लोकप्रमाण अवस्थित है। संख्यात भागवृद्धि संख्यातगुणवृद्धिध इनका भागहार और गुणाकार उत्कृष्ट संख्यात अवस्थित है।३२३। लघुरूप संदृष्टिके लिए क्रमसे छह वृद्दिधयोंकी ये छह संज्ञा हैं। अनन्तमाग वृद्धिकी उर्बक, असंख्यात भागवृद्धिकी चतुर्द्ध,

संख्यात भागवृद्धिकी पञ्चाक्क, संख्यात गुणवृद्धिकी पडक्क, असं-रुयात गुणवृह्धिकी सप्ताञ्ज, अनन्तगुण वृद्धिचकी अष्टांक १३२४। सुच्छंगुलके असंख्यातचें भाग प्रमाण पूर्व वृद्धिः होनेपर एक चार उत्तर वृद्धि होती है। यह नियम अन्तकी वृद्धि पर्यन्त समभना चाहिए ।३२५। असंख्यात सोक प्रमाण षट्स्थानीमेंसेप्रथमषट्स्थानीमें पाँच ही वृद्धि होती हैं, अष्टांक वृद्धि नहीं होती। शेष सम्पूर्ण षट्स्थानोंमें आष्टांक सहित छह वृद्धि होती हैं। सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भाग अवस्थित है इसलिए पदोंकी संख्या सब जगह सदश ही समभानी चाहिए।३२६। सम्पूर्ण षट्स्थानोंने आदिके स्थानको अष्टांक, और अन्तके स्थानको उनैक कहते हैं, क्यों कि जधन्य पर्यं य ज्ञान भी अगुरुलघु गुणके अविभाग प्रतिच्छेदीकी अपेक्षा अष्टांक हो सकता है।३२७। एक षट्स्थानमें एक ही अष्टांक होता है। और सप्तांक सुच्यंगुतके असंख्यातमें भागमात्र होते हैं। इसके नीचे षडंक, पंचाक, चतुरंक, उर्वक ये एक एक अधिक नार सूच्यं गुलके असंख्यातवें भागसे पुणित कम हैं।३२०। एक अधिक काण्डकके वर्ग और घनको परस्पर गुणा करनेसे जो प्रमाण सन्ध आवे उतना ही एक षट्स्थान पतित वृद्धियोंके प्रमाणका जोड़ है। ३२१। एक अधिक काण्डकसे गुणित सुच्यंगुलके असंख्यातवें भागप्रभाण अनन्त भाग वृद्धिके स्थान, और सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यात भागवृद्धिके स्थान, इन दो वृद्धिशोंको जधन्य ज्ञानके ऊपर हो जानेपर एक बार संख्यात भागवृद्धिका स्थान होता है, इसके आगे उक्त कमानुसार उत्कृष्ट सरुवात मात्र पूर्वोक्त 'संख्यातवृद्धिके हो जानेपर उसमें प्रक्षेपक वृद्धिषके होनेसे लब्ध्यक्षरका प्रमाण दूना हो जाता है।३३०। इस प्रकारसे अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके असंख्यात ज्ञोकप्रमाण षट्स्थान होते हैं, ये सब ही पर्याय समास ज्ञानके भेद हैं 1३३१। और भी दे० श्रुतज्ञान/II/१/३। अन्तके उर्वकका अर्थाक्षर समूहमें भाग देनेसे जो लब्ध आवे उसको अन्तके उर्वक्से गुणा करनेपर अर्थाक्षर ज्ञानका प्रमाण होता है ।३३२। (विशेष-दे. नीचे यंत्र) एक स्थानकी संदृष्टि तदनुसार है :--

								· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·
3 3 8	338	33 4	338	3 38	334	338	828	331
388	334	হহ এ	338	338	334	338	338	331
338	33 8	334	338	338	339	338	338	330
328	338	334	338	338	334	338	3 38	331
338	338	334	338	32 x	334	358	338	331
338	<u>3</u> 38	334	334	338	334	338	338	339
338	338	334	<u>33</u> 8	338	33°4	338	338	331
338	338	334	338	338	33 4	328	338	331
338	338	334	33x	338	334	3 38	338	334

(क. पा. ४/४-१२/६४७२/पू. ३४२); (गो. जी-/भाषा,/३२६/६६४) ।

III शब्द लिंगज श्रुतज्ञान विशेष

१. भेद व लक्षण

१, लोकोत्तर शब्द लिंगजके सामान्य भेद

त. स./१/२० श्रुतं ...द्वयनेकद्वादशभेदम् ।२०।

स. सि./१/२०/१२३/२ अङ्गबाह्यमङ्गप्रविष्टमिति । ज्यः श्रुतज्ञानके दो भेद—अंग बाह्य व अंग प्रविष्ट मे दो भेद हैं। (रा. वः./१/२०/११/ ७२/२३): (क. पा. १/१-१/६१७/२४/१): (ध. १/१,१,२/१६/६); (ध. १/१,१,११४/३४७/०); (ध. १/४,१,४४/१८८/१२)। २. अथवा अमेक भेद और बारह भेद हैं।

३, अंग सामान्य व विशेषके लक्षण

१. अंग सामान्यकी व्युत्पत्ति

ध. १/४,१,४६/१६३/१ अंगमुदिमिदि गुणणामं, अङ्गति गच्छिति व्याप्नोति त्रिज्ञालगोचराशेषद्रव्य-पर्यायमित्यङ्गशब्दिनिष्पत्ते । न्यंगश्रुत यह गुणनाम है. न्योंकि, जो लोनों कालकी समस्त द्रव्य वा पर्यायोंको 'अङ्गति' अर्थात् प्राप्त होता है या व्याप्त करता है वह अंग है, इस प्रकार अंग शब्द सिद्ध हुआ है।

गो. जी./जी. प्र./३५०/७४७/१७ अङ्ग्यते मध्यमपदैलं क्ष्यते इत्यङ्गं । अथवा आचारादिद्वादशशास्त्रसमृहरूपभुतस्कन्धस्य अङ्गं अवयव एकदेश आचाराचे केकशास्त्रमित्यर्थः । = 'अङ्ग्यते' अर्थात् मध्यम पदोंके द्वारा जो लिला जाता है वह अंग कहलाता है । अथवा समस्त भुतके एक एक आचारादि रूप अवयवको अंग कहते हैं । ऐसे अंग शब्दकी निरुक्ति है ।

२, अंग बाह्य व अंग प्रविष्ट

- रा. षा./१/२०/१२-१३/पृ./पंक्ति आचारादि द्वादशिवधमङ्गप्रविष्ट-मित्युच्यते (७२/२६) यद्वगणधरशिष्यप्रशिष्यैरारातोयैरधिगतश्रुतार्थ-तत्त्वैः कालदोषादल्पमेधायुर्वज्ञानां प्राणिनामनुप्रहार्थमुपनिबद्धं संक्षिप्राङ्गार्थवचनविन्यासं तदङ्गबाह्मस्। (७=/३) = आचारांग आदि १२ प्रकारका ज्ञान अंगप्रविष्ट कहलाता है। (७२/२६) गणधर देवके शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा अल्वायु-बुद्धि नजवाले प्राणियोंके अनुग्रहके लिए अंगोंके आधारसे रचे गये संक्षिप्त ग्रन्थ अंगबाह्म हैं।
- दे. श्रुतज्ञान/11/१/३ पूर्व ज्ञानका लक्षण ।
- दे, अवायणी/अव्ययणीके लक्षणका भावार्थ।

३, अंग प्रविष्ट व अंग बाह्य के भेद

१. अंगप्रविष्टके मेद

स. सि./१/२०/१२३/३ अङ्गप्रविष्टं द्वादशिवधम्। तयथा, आचारः स्त्रकृतं स्थानं समवायः व्याख्याप्रज्ञाप्तिः ज्ञातृधर्मकथा उपासका-ध्ययनं, अन्तकृतदशं अनुत्तरोपपादिकदशं प्रश्नव्याकरणं विपाकसूत्रं दृष्टप्रवाद इति । = अंगप्रविष्ठके बारह भेद हैं — आचार, सूत्रकृत, स्थान, समग्रय, व्याख्याप्रज्ञाप्ति, ज्ञातृधर्मकथा, उपासकाष्ययन, अन्तकृदश, अनुत्तरोपपादिकदश, प्रश्न व्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्ट्वाद। (रा. वा /१/२०/१२/७२/२६); (ध. १/१.१.२/६६/१); (ध. १/१.४४/१६८); (ध. १/१.४४/१६८); (ध. १/१.४४/१६८); (ध. १/१.४४/१६८); (ध. १/१.४४/१६८); (ध. १/१.४४/१६८);

२. दृष्टिवादके पाँच मेद

स. सि./१/२०/१२३/६ दृष्टिबादः पञ्चित्विधः —परिकर्म सूत्रं प्रथमानुयोगः पूर्वगतं चूलिका चेति । —दृष्टिबादके पाँच भेद हैं. —परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका। (रा. वा./१/२०/१३/७४/१०); (ह. पु./१०/६१); (घ. १/१.१.२/१०१/४); (घ. १/४.१.४०/२०४/ ११); (क. पा. १/९-१/§११/२६/५); (गो. जी./मू./३६१-३६२/ ७३२)।

३. पूर्वगतके १४ मेद

स. सि./१/२०/१२३/६ तत्र पूर्वगतं चतुर्दशविधम् — उत्पादपूर्वं, आग्राय-णीयं, वीयिनुत्रवादं अस्तिनास्तिप्रवादं ज्ञानप्रवादं सत्यप्रवादं आत्म-प्रवादं कर्मप्रवादं प्रत्याक्त्याननामधेयं विद्यानुप्रवादं कल्याणनामधेयं प्राणावायं क्रियाविशालं लोकिबन्दुसारमिति । — पूर्वगतके चौदह भेद हैं — उत्पादपूर्वं, अग्रायणीय, वीयिनुवाद, अस्तिनारित प्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याक्ताननामधेय, विद्यानुवाद, कल्याणनामधेय, प्राणावाय, क्रियाविशाल, और लोक-किन्दुसार । (रा. वा./१/२०/१२/७४/११); (घ. १/१,१,२/११४/६); (घ. ६/४,१,४५//२१२/४); (क. पा. १/१-१/६२०/२६/७); (गो. जो./मू /२४५-३४६/७४१)।

चूलिकाके पाँच भेद

ह,पु,/१०/१२३ जनस्थलगताकाशरूपमायागता पुनः। चूलिका पञ्चधान्त-र्थ संज्ञा भेदवती स्थिता।१२३। चच्चिका पाँच भेदवाली है--जनगता, स्थवगता, आकाशगता, रूपगता और मायागता। ये समस्त भेद सार्थ क भेदवाले हैं।१२३। (ध. १/१.१.२/११३/१); (ध. १/४,१,४६/ २०६/१०)।

५. अग्रायणी पूर्वके भेद

घ, १/१,१,२/१२३/२ तस्स अगेणियस्स पंचिवहो उवक्रमो, आणुपुन्वी णामं पमाणं वत्तव्वदा अश्याहिचारो चेदि । = अग्रायणीय पूर्वके पाँच उपक्रम हैं — अञ्जूष्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता, अथिकार । (ध. १/४,१,४४/२९१/६)।

६. अंग बाह्यके भेद

- रा. वा./१/२०/१४'७८/६ तदक्षवाह्यमनेकविधम्-कालिकमुरकालिकमिरयेवमादिविकल्पात् । स्वाध्यायकाले नियतकालं कालिकम् ।
 अनियतकालमुरकालिकम् । तद्दभेदा उत्तराध्ययमादयोऽनेकविधाः ।
 —कालिक, उरकालिकके भेदसे अंग बाह्य अनेक प्रकारके हैं । स्वाध्याय कालमें जिनके पठन-पाठनका नियम है उन्हें कालिक कहते
 हैं, तथा जिनके पठन पाठनका कोई नियत समय न हो वे
 उरकालिक हैं । उत्तराध्ययन आदि ग्रन्थ अंगबाह्य अनेक प्रकार हैं ।
 (स. सि./१/२०/१२३/२)।
- ध. १/१,१,१/६६/६ तस्थ अगन्नाहिरस्स चोह्स अत्थाहियारा । तं जहा, सामाइयं चउनीसत्थओ वंदणा पिडक्समणं वेण्ड्यं किदियम्मं दस-वेयालियं उत्तरुक्तयणं वष्पञ्चवहारो वष्पाकिष्यं महाकृष्पयं पुंडरीयं महापुंडरीयं णिसिहियं चेदि । — अंगन्नाहाके चौदह अर्था-धिकार हैं । वे इस प्रकार हैं — सामायिक, चतुर्विशतिः तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैन्यिक, कृतिकर्म, दशकेनासिक, उत्तराध्ययन, करप-व्यवहार, करप्याकरूप, महाकरूप, पुण्डरीक, महापुण्डरीक और निश्व दका । (ध. ६/४.१,४६/१८०/१२), (क. पा./१/१-१/-१९/२६/१), (गो. जो./मू./३६७-३६८/७८६)।

४. अंग प्रविष्टके भेदोंके लक्षण

१. १२ अंगोंके छक्षण

रा.बा./१/२०/१२/-७२/२० से ७४/६ तक-आचारे चयिवधाः शुद्धध-ष्टकपञ्च समितित्रिपुप्तिविकवर्षं कथ्यते । सूत्रकृते ज्ञानविनयप्रज्ञापना करप्याकरप्यच्छेदोपस्थापना व्यवहारधर्मक्रियाः प्ररूप्यन्ते । स्थाने अनेकाश्रयाणामर्थानां निर्णयः क्रियते । समवाये सर्वपराधानां

समरायश्चिन्त्यते । स चतुर्विधः-द्रव्यक्षेत्रकालभावविकवपैः। तत्र धर्माधर्मास्तिक(यह)काकाशैकजीवानां त्रस्यासंख्येयप्रदेशस्यात् एकेन प्रमाणेन दृष्याणां समबायनाइ द्रव्यसम्बायः। ...व्याख्या-प्रक्रप्ती षष्टिज्याकरणसहस्राणि 'किमस्ति जीवः, नास्ति' इत्येवमा-दीनि निरूप्यन्ते । ज्ञातृधर्मकथायाम् आरूयानोपारुयानानां बहु-प्रकाराणां कथनम् । उपासकाध्ययने श्रावकधमंत्रक्षणम् । · · ऋषभा-दीनां तोर्धेषु -- दश दशानागरा दशदश दारुणानुषसर्गन्निजित्य कुरस्नकर्मक्षयादन्तकृतः दश अस्यां वर्ण्यन्ते इति अन्तकृदशा। 🕶 एकमृषभादीनां∙ःतीर्थेषुः व्हा दश अनागरा दश दश दारणानुप+ सर्गान्निजित्य विजयाद्यनुत्तरेषुत्पन्ना इत्येवमनुत्तरौपपादिकाः दशास्यां मण्यन्त इत्यनुत्तरौपपादिकदशा । ग्प्यश्नामा व्याकरणं प्रश्नव्याक-रणम्, सस्मिल्लौकिकवैदिकासामर्थामां निर्णयः विपाकसूत्रे सुकृतद्-ष्कृतानां विषाकश्चिन्त्यते । द्वादशमङ्गं दृष्टिबाद इति । …इष्टि-शतानां त्रयाणां त्रिषष्टबुत्तराणां प्ररूपणं निग्रहरच दृष्टिवादे क्रियते । **≖आचारांगमें** चर्याका विधान आठ शुद्धि, पाँच समिति, तीन गुप्ति आदि रूपसे बणित है। सूत्रकृतांगमें ज्ञान-विनय, स्या करण्य है न्या अकरप्य है, छेदोपस्थापनादि, व्यवहारधर्मकी क्रियाओंका निरूपण है। स्थानांगमें एक-एक दो-दो आदिके रूपसे अर्थीका वर्णन है। सम्बन्धार्गमें सब पदार्थीकी समानता रूपसे समत्रायका विचार किया गया है। जैसे धर्म-अधर्म लोकाकादा और एक जीव-के तुरुय असंख्यात प्रदेश होनेसे इनका द्रव्यरूपसे समयाय कहा जाता है। (इसी प्रकार यथायोग्य क्षेत्र, काल, व भावका समवाय जानना) व्यारूपाप्रशासिमें 'जीव है कि नहीं' आदि साठ हज़ार प्रश्नोंके उत्तर हैं । ज्ञातृधर्मकथामें अनेक आख्यान और उपारुयानी-का निरूपण है। उपासकाध्ययनमें श्रावकध्मका विशेष विवेचन किया गया है। अन्तकदृशांगमें प्रत्येक तीर्थं करके समयमें होने माले उन दश-दश अन्तकृत् केवलियोंका वर्णन है जिनने भयंकर उपसर्गोंको सहकर मुक्ति प्राप्त की मन्अनुत्तरोपपादिकदशांगमें प्रत्येक तीर्थंकरके समयमें होनेवाले उन दश-दश मुनियोंका वर्णन है जिनने दारूण उपसर्गीको सहकर…पाँच अनुत्तर विमानोंमें जन्म लिया। प्रश्न व्याकश्यमें युक्ति और नयोंके द्वारा अनेक आक्षेप और विक्षेप रूप प्रश्नोंका उत्तर दिया गया है। विपाक-सुत्रमें पुण्य और पापके विपाकका विचार है। बारहवाँ दृष्टि प्रवाद खंग है. इसमें ३६३ मतोंके निरूपण पूर्वक खण्डन है (३६३ मतोंके लिए दे० एकान्त/१/२)। (ह पु./१०/२७-४६), (ध. १/१.९.२/-६६-१०६), (ध. ६/४,६,४६/१६७-२०३), (गो. जी./जी. प्र./३६६-३६७/७६०-७६६) ।

२. दृष्टिवादके प्रथम तीन भेदोंके लक्षण

परिकर्मके पाँच भेद है। चन्द्रप्रज्ञप्ति नामका परिकर्म चन्द्रमाकी आयु, परिवार, ऋद्धि, गति और विम्बको ऊँचाई आदिका वर्णन करता है। सूर्यप्रक्विप्त सूर्यकी आधु, भोग, उपभोग, परिवार, भृद्धि. गति. निम्नकी ऊँचाई आदिका वर्णन करता है। जम्मू-द्वीप प्रज्ञाप्ति जम्बुद्वीपस्थ भोगभूमि और कर्मभूमिमें उत्पन्न हुए माना प्रकारके मनुष्य तथा दूसरे तिर्यंच आदिका पर्वत, इह, नदी आदिका वर्णन करता है। सागर प्रज्ञाप्ति नामका परिकर्म द्वीप और समुद्रोंके प्रमाणका तथा द्वीयसागरके अन्तर्भूत नाना-प्रकारके दूसरे पदार्थीका वर्णन करता है। व्याख्याप्रज्ञप्ति पृद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल भव्यसिद्वध और अभव्यसिद्वध जीव, इन सबका वर्णन करता है। सूत्र नामका अर्थाधिकार जीव अवन्धक ही है, अवलेपक ही है, अकर्ता ही है, अभोक्ता ही है, इत्यादि रूपसे ३६३ मतीका पूर्वपक्ष रूपसे वर्णन करता है। (३६३ मतोंके लिए दे० एकान्त/४/२) प्रथमानुयोग पुराणोंका वर्णन करता है। (ह. पु./१०/६३-७१), (घ. १/४,१,४४/२०६-२०१), (गो. जी./ जी, प्र./३६१-२६२/७७२) ।

दृष्टिवादके चौथे मेदः पूर्वगतिक १४ मेदः व लक्षण

रा. बा./१/२०/१२/--७४/११ से ७८/२ तक तत्र पूर्वगत चतुर्द शप्रकारम् । ···कालपुद्दगलजीकादीनां यदा यत्र यथा च पर्यायेणोरपादो वर्ण्यते तदुरपादपूर्व । क्रियावादादीनां प्रक्रिया अद्यायणीव अङ्गादीनां स्य-समयविषयक्ष यत्र रव्यापितस्तद्यायणम् । छद्रस्थकेवलिनां वीर्य-सुरेन्द्रदैरयाधिपाना ऋद्धयो नरेन्द्रचक्रधरमतदेवानां च वीर्यताभो द्रवयाणां सम्यव्यवस्थां च यत्राभिहितं तद्वीर्यप्रवादम् । पञ्चानामस्ति-कायानामधी नयानां चानेकपर्यायैः अत्रावभासितं तदस्तिनास्ति-प्रवादस् । ...पञ्चानामपि ज्ञानानां ... इन्द्रियाणां च प्राधान्येन यत्र विभागो विभावितः तज्ज्ञानप्रवादम् । वाग्गुप्तिसंस्कारकारणप्रयोगो द्वादशघा भाषावकारश्चानेकप्रकारमृषाभिधानं --- यत्र प्ररूपितः तद सत्यप्रवादम् । . . यत्रात्मनोऽस्तित्वनास्तित्व . . . धर्माः षड्जीवनिकाय-भेदारच युक्तितो निर्दिष्टाः तदार्मप्रवादस्। जन्धोदयोपशमनिर्दरा-पर्याया---स्थितिश्च ...यत्र निर्दिश्यते तत्कर्मप्रवादम् । वत-नियम-प्रतिक्रमणः शामण्यकारणं च परिमितापरिमिताद्रव्यभावप्रत्या-रूयानं च यत्राख्यातं तत्प्रत्याख्याननामधेयम्। ... अष्टौ महा-निमित्तानि तद्विषयो रज्जुर।शिविधिः क्षेत्रं श्रेणी लोकप्रतिष्ठा संस्थानं समुद्र्यातरच यत्र कथ्यते तृ तिव्यानुवादस् । "रिवशिश-ग्रहनक्षत्रताराणां चारोपपादगतिबिपर्ययफलानि शकुन-याहतम् अर्हद्र-बलदेव-बासुदेव-चक्रधरादीनां गर्भावतरणादिमहाकरमाणानि च यत्रोक्तानि तत् कल्याणनामधेयम् । कायचिकित्सादाष्टाङ्ग-आयुर्वेदः भूतिकर्म-जाङ्गुलिकप्रक्रमः प्राणापानविभागोऽपि यत्र विस्तारेण वर्णितस्तत् प्राणावायम् । लेखादिकाः कलाहासप्ततिः, गुणारचतुःषष्टिस्त्रेणाः, शिल्पानि काठ्यगुणदोषक्रियाद्यन्दोविचिति-कियाफसोपभोक्तारश्चयत्र व्याख्याताः तरिकयाविशासम्। यत्राष्ट्री व्यवहाराश्चरवारि बीजानि परिकर्मराशिकियाविभागश्च सर्वश्रुत-संपदुपदिष्टा तस्वत्व कोकिबन्दुसारम् । 🗕 पूर्वगतके उत्पादपूर्व आदि चौदह भेर हैं-उत्पादपूर्वमें जीव पुर्वगन्नादिका जहाँ जन जैसा उत्पाद होता है उस संबंका वर्णन है। अग्रावणी पूर्वमें क्रियावाद आदिकी प्रक्रिया और स्वसमयका विषय विवेचित है। बीर्यप्रवादमें छत्रस्य और केवलीकी शक्ति सुरेन्द्र असुरेन्द्र आदिकी त्रुद्धियाँ नरेन्द्र चक्रवर्ती अलवेव आदिकी सामर्थ्य द्रव्योंके लक्षण आहिका निरूपण है। अस्तिनास्तिप्रवादमें पाँची अस्तिकायोंका और नयों-का अस्ति-नास्ति आदि अनेक पर्यायों द्वारा विवेचन है। ज्ञान-प्रवादमें पाँचों ज्ञानों और इन्द्रियोंका विभाग आदि निरूपण है। ···सत्यप्रवाद पूर्वमें वाग्युप्ति, वचन संस्कारके कारण, अधन प्रयोग बारह प्रकारकी भाषाएँ, दस प्रकारके सत्य, बक्ताके प्रकार आदि-

का विस्तारसे ब्रिवेचन है। ...आतम प्रवादमें आतम द्रव्यका और छह जीव निकायोंका अस्ति नास्ति आदि विविध भंगोंसे निरू-पण है। कर्मप्रवादमें कर्मोंकी बन्ध उदय उपराम आदि दशाओंका और स्थिति आदिका वर्णन है। प्रयाख्यान भवादमें बत-नियम, प्रतिक्रमण, तप, आराधना आदि तथा मुनिस्वमें कारण द्रव्योंके ह्याग आदिका विवेचन है। विद्यानुवाद पूर्वमें समस्त विद्याए " बाठ महा निमित्त, रज्जुराशिविधि, क्षेत्र, श्रेणी, लोक प्रतिष्ठा, समुद्रघात आदिका विवेचन है। कस्याणवाः पूर्वमे सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारागणोंके चार क्षेत्र, खपपादस्थान, गति, वक्रगति तथा उनके फलोंका, पक्षोके शब्दोंका और अरिहन्त अर्थात् तीर्थंकर, बलदेव, वासुदेव और चक्रवर्ती आदिके गर्भावतार आदि महाकश्याणकोंका वर्णन है। प्राणावाय पूर्वमें शरीर चिकित्सा आदि अष्टांग आयुर्वेद, भूतिकर्म, जांगुलिककर्म (विषविद्या) और प्राणायामके भेद-प्रभेदोंका विस्तारसे वर्णन है। क्रिया विशास पूर्वमें लेखन कला आदि बहत्तर कलाओंका, स्त्री सम्बन्धी चौंसठ गुणोंका, शिक्पकलाका, काव्य सम्बन्धी गुण-दोष विधिका और छन्द निर्माण कलाका विवेचन है। लोकबिन्दुसारमें आठ व्यवहार, चार बीज, राशि परिकर्म आदि गणित तथा समस्त श्रुत-सम्पत्तिका वर्णन है । (ह. पु./१०/७६-१२२); (घ. १/१,१,२/-११४-१२२), (घ. ६/४,१,४६/२१२-२२४/१२); (गो. जी./जी. प्र./-**६६५~६६६/७७**≈) 1

४. दृष्टिवादके ५वें भेद रूप ५ चूलिकाओंके लक्षण

ध. १/१,१,२/११३/२ जलगया ... जलगमण-जलत्यभण कारण-मंत-तंत-तबच्छरणाणि वण्णेदि । थलगद्या णाम अधिन-गमण-कारण-मंत-तंत-तबच्छरणाणि बत्थु-बिज्बं भूमि-संबंधमण्णं पि सुहासुह-कारणं बण्णेदि । मायागया ः इंदजालं वण्णेदि । रूवगया ः सीह-हय-हरिणादि-रूबायारेण परिणमण-हेदु-मंत-तंत-तबच्छरणाणि चित्त-कहु-लेप्प-लेण-कम्मादि-लक्ष्वणं च वण्णेदि । आयासगया णाम... आगास-गमण णिमित्त-मंत-तंत तवच्छरणाणि वण्णेदि । ≕जलगता चुलिका-जनमें गमन, जलस्तम्भनके कारण भूत मन्त्र तनत्र और तपरचर्या रूप अतिराध आदिका वर्णन करती है। स्थलगता चुलिका -पृथिबीके भीतर गमन करनेके कारणभूत मन्त्र, तन्त्र और तपरचरणरूप आश्चर्य आदिका तथा बास्तु विद्या और भूमि सम्बन्धी दूसरे शुभ-अशुभ कारणोंका वर्णन करती है। मायागता चूलिका---इन्द्रजाल आदिके कारणभूतु मन्त्र और तपश्चरणका वर्णन करती है। रूपगता चूलिका—सिंह, घोड़ा और हरिण खादिके स्वरूपके आकार रूपसे परिणमन करनेके कारणभूत मन्त्र-तन्त्र और तप-श्चरण तथा चित्र-काष्ठ-लेप्य-लेन कर्म आदिके लक्षणका वर्णन करती है। आकाशगता चूलिका-आकाशमें गमन करनेके कारण-भूत मन्त्र, तन्त्र और तपश्चरणका वर्णन करती है। (ह. पु./१०/-१२४): (ध. ६/४,१,४४/२०६-२१०); (गो. जी./जी. प्र./३६१-३६२/७७३/५) ।

५. अंग बाह्यके भेदोंके लक्षण

ध, १/१.९,२/१६-१८ जं सामाइयं तं णाम ट्ठवणा-द्ववलेक्त-काल-भावेमु-समत्तविहाणं वण्णेदि । चउवीसत्यओ चउवीसण्हं तित्थय-राणं वेदण-विहाण-तण्णाम संठाणुस्सेह-पंच-महाक्क्षाण-चोसीस-अइसयस्कवं तित्थयर-वंदणाए सहस्तत्त च वण्णेदि । वंदणा एग-जिण-जिणालय-विसम-वंदणाए णिरवज्ज-भावं वण्णेह् । पिटक्कमणं कालं पुरिसं च अस्सिज्ण सत्तविह-पिडक्कमणाणि वण्णेह् । वेण्वस्यं णाण-दंसण-चरित्त-सवीवयारविणए वण्णेह् । किद्यममं अरहंत-सिद्ध-आइरिय-बहुमुद-साहूणं पूजाविहाणं वण्णेह् । दसवैयालियं आयार-गोयर-विह्नं वण्णेह् । उत्तर्यभ्यणं उत्तर-पदाणि वण्णेह् । कप्पववहारो साहूणं लोग्णाचरणं अकप्प-सेवणाए पायिन्छतं च

वण्णेइ। कप्पाकिप्ययं साहूणं जंकप्पदि ज च ण कप्पदि तं सब्बं वण्णेदि । महाकिष्पर्यं कालसंघडणाणि अस्सिऊण साहु-पाओरग-दन्त्र-खेत्तादीणं वण्णणं कुणइ। पुंडरीयं चउन्तिह देवेसुववादकारण-अणुट्टाणाणि वण्णेइ। महापुंडरीयं समसिंद-पडिइंदे उप्पत्तिकारणं वण्णेह । णिसिहियं बहुविह-पायिन्छत्त-विहाण-वण्णणं कुणह :== सामायिक नामका अंगबाह्य समता भावके विधानका वर्णन करता है। चतुर्विशति स्तव चौभीस तीर्थं करोंकी वन्दना करनेकी विधि, उनके नाम, संस्थान, उत्सेघ, पाँच महाकल्याणक, चौतीस अतिशयोके स्वरूप और तीर्थं करों की बन्दनाकी सफलताका वर्णन करता है। **वन्द्रना** एक जिनेन्द्र देव सम्बन्धी और उन एक जिनेन्द्र देवके अबलम्बनसे जिनालय सम्बन्धी यन्दनाका वर्णन कर्ता है। सात प्रकारके प्रतिक्रमणोंका प्रतिक्रमण वर्णन करता है। वैनियक पाँच प्रकारकी विनयोंका वर्णन करता है। कृतिकर्म अरहन्त, सिद्ध आचार्य और साधुकी पूजाविधिका वर्णन करता है। दश वैका-लिकोका दशवैकालिक वर्णन करता है। तथा वह मुनियोकी आचार विधि और गोचरविधिका भी वर्णन करता है। जिसमें अनेक प्रकारके उत्तर पढनेकी मिलते हैं उसे उत्तराध्ययन कहते हैं। इसमें चार प्रकारके उपसर्ग कैसे सहन करने चाहिए। माईस प्रकारके परिषहोंको सहन करनेकी विधि क्या है ? इत्यादि प्रश्नोंके उत्तरोंका वर्णन किया गया है। करूप्य व्यवहार साधुओं-के यांग्य आचरणका और अयोग्य आचरणके होने पर प्रायश्चित्त विधिका वर्णन करता है। कल्प्याकरूप्य द्रवय, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा मुनियोंके लिए यह योग्य है और यह अयोग्य हैं इस तरह इन समका वर्णन करता है। महाकल्प्य काल और संहननका आश्रय कर साधुके योग्य द्रव्य और क्षेत्रादिका वर्णन करता है। पुण्डरीक भवनवासी आदि चार प्रकारके देवोंमें उत्प_{ितके} कारण रूप, दान, पूजा, तपश्चरण आदि अनुष्ठानोंका वर्णन करसा है। महापुण्डरीक समस्त इन्द्र और प्रतीन्द्रों में उत्पत्तिके कारण स्द्रप तपो विशेष आदि आचरणका वर्णन करता है। निषिद्धि अथित महूत प्रकारके प्रायश्चित्तके प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रको निविद्धिका कहते हैं। (ह. पु./१०/१२६-१३८); (ध. ६/४.१,४५/१८८ १६१); (गो. जी./जी. प्र./३६७-३६८/७८६) ।

२. शब्द लिंगज निर्देश

१. बारह अंगोंमें पद संख्या निर्देश

(ह. पु./१०/२७-४४); (ध. १/१,१,२/६६-१०७), (ब. १/४,१,४६/१६७-२०३); (गो. जी./जी. प्र./३६६-१६०/७६०-७७०)।

짜.	नाम	ग्दसंख्या	雨.	नाम	पद संख्या
مار ومر اوم	आचारांग सूत्रकृतांग स्थानांग	१८००० ३६००० ४२०००	9 & 8	उपासक।ध्ययन अन्तकृद्दशांग अनुत्तरोपपादिक-	११७००० २३२८०००
ß	समवायांग	१६४०००	१०	दशांग प्रश्न व्याकरण	६२४४००० १३१६०००
ķ	व्याख्या प्रव (१वे भगवतीसूत्र)		११ १२	विपाक सूत्र दृष्टियाद	१०५६८५६० <u>५</u>
ŧ	ज्ञात्धर्मकथा	४५६०००		कुलपद	११२८३४८०४

२. दृष्टिवाद अंगमें पद संख्या निर्देश

(ह. पु./२०/६३-७१, १२४); (घ. १/१,१,२/१०६-११३); (घ. ६/४,१,४५/ २०६-२१०); (गो. जी./मू./३६३-३६४/७७४)।

١~	[1]
豖,	नाम	भद संख्या	殐.	नाम	पदसंख्या
8	परिकर्म-		8	पूर्वगत्	देखोॐगला शीर्षक
7 93	र चन्द्र प्रक्षप्ति २ सूर्य प्रकृष्ति ३ जम्बू द्वीप ,, ४ द्वीप समुद्र ,, १ व्याख्या ,, सूत्र प्रथमानुयोग	\$\$00000 \$₹000 \$₹\$000 \$\$\$000 \$\$\$000 \$\$\$0000	**	चू लिका- १ जलगता २ स्थलगता ३ आकाशगता ४ स्थगता ४ स्थगता १ मायागता कृत जोड़	₹०ह७६२०५ ,, ,, ,, ,, ,, ,,

३. चौदह पूर्वोंमें पदादि संख्या निर्देश

(ह. पु./१०/७६-१२०): (घ. १/१,१,२/११४-१२२); (घ. १/४,१,४६/२१२-२२४,२२१); (क. पा. १/१-१/६२०/२६/१०); (गो. जी./सू/३६६-३६६/७७)।

	नाम	वस्तुगत	प्राभृत	पद संख्या
]	l	िद्ध स्थे	! 	
1 8	उत्पाद पूर्व	₹0 T	२००	80000000
٦ ا	अप्रायणीयपूर्व	48	२८०	£\$00000
Ę	वीयांनुवाद पूर्व	1 6	१०८	9000000
પ્ર	अस्तिनास्ति प्रवाद	\ \8= \	3≈0	£000000
8	ब्रानि प्रवाद	१२	२४०	333333
ξ	सस्यप्रवाद	१२	go	१०००००६
৬	आरम प्रवाद	१६	३२०	240000000
۳ ا	कर्म प्रवाद	२०	800	१८०००००
3	प्रत्याख्यानप्रवाद	३० २०	ξoo	5800000
१०	विद्यानुवाद	१५	\$00	११००००००
११	कल्याण नामधेय	१०.	२००	न्द्रैक्यक्वक
१२	प्राणावाय	१०	₹ 0 0	\$\$0000000
१३	क्रिया विशाल	₹0 {	२००	80000000
68	लोक विन्दुसार	१० २०	200	१२५००००००

४. अंग बाह्यके चौदह भेदोंमें पद संख्या निर्देश

ह. पु./१०/१२७-१२८ त्रयोदश सहस्राणि पञ्चशरयेकविशतिः। कोटो च पदसंख्येयं वर्णाः सप्तेव वर्णिताः ।१२७। पञ्चविशतिलक्षारच त्रयस्त्रिशच्छतानि च। अशीतिः रलोकसंख्येयं वर्णाः पच्चदशत्र च।१२८। च्यंगवाह्य श्रुतज्ञानके समस्त अभरोका संग्रह आरु करोड़ एक लाख आठ हजार एक सो पच्हत्तर प्रमाण है (६०१०८१७४) ।१२७। और इसके समस्त रलोकोंकी संख्या पच्चीस लाख तीन हजार तीन सी अस्सी तथा श्रेष पन्द्रह अक्षर प्रमाण है ।१२८। (२४०३३८० + १४ अक्षर)।

५. यहाँपर मध्यम पदसे प्रयोजन है

घ. १३/४.६.४८/२६६/७ एदेसु केण पदेण पयदं । मिडिक्समपदेण । बुत्तं च-ति बिहं पदमुद्धित् प्रमाणपद्दमरथमिडिक्समपदं च । मिडिक्समपदेण बुत्ता पुट्ट्यां पद्दिवसागो ।१६ — प्रश्न— इन पदों (अर्थ पद, प्रमाणपद, मध्यमपद) मेसे प्रकृतमें किस पदसे प्रयोजन है । उत्तर— मध्यम पदसे प्रयोजन है, कहा भी है— पद तीन प्रकारका कहा गया है अर्थपद, प्रमाणपद और मध्यमपद । इनमेसे मध्यम पदके द्वारा पूर्व और अंगोंका पदिवभाग कहा गया है ।१६।

६, इन ज्ञानींका अनुयोग आदि ज्ञानोंमें अन्तर्माव

ध. १३/४,४,४८/२७६/१ अंगबाहिरचोइसपङ्ग्णयक्माया आयारादिएका-रसंगाष्ट्रं परियम्म-मुत्तपढमाणियोगचूलियाओ च कत्थं तन्मार्थः गच्छंति। ण अणियोगद्दारे तस्स समासे वा. तस्स पाहुड-शहुडपडि-बद्धत्तादो । ण पाहुङ्पाहुङे सस्समासे वा, तस्स पुन्वगयअवयवसादो । ण च परियम्मसुत्त-पहमाणियोग-चूलियाओ एकारस अंगाई वा पुञ्जगयात्रयता। तदो ण ते कस्य विलयं गच्छंति। ण एस दोसो, अणियोगद्वार-तस्समासाणं च अंतन्भावादो । ण च अणियोगद्वार-तस्समासेहि पाइडपाहडावयवेहि चेव होदव्यमिदि णियमो अत्थि, विष्पृडिसेहाभावादो । अधवा, पृडिवित्त-समासे एदेसिमंत्रमानो वसद्यो। पच्छाणुद्वीए पुण विविक्तियाए पुटवसमासे अंतरभावं गच्छंति त्ति वत्तव्यं। =प्रश्न-अंगबाह्य, चौदह प्रकीर्णकाध्याय, आचार आदि ११ अग, परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और चूलिका, इनका किस श्रुतज्ञानमें अन्तर्भाव होता है। प्रथमानुखीगया अनुयोगद्वारसमासमें तो इनका अन्तर्भाव हो नहीं सकता, वयो कि ये दोनों प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञानसे प्रतिबद्ध हैं। प्राभृतप्राभृत या प्राभृत-प्राभृतसमासमें भी इनका अन्तर्भाव नहीं हो सकता, नयों कि ये पूर्वगतके अवयव हैं। परन्तु परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, चूलिका और ११ अंग ये पूर्व गतके अवयव नहीं हैं। इसलिए इनका किसी भी अतुत्रज्ञातके भेदमें अन्तर्भाव नहीं होता है। उत्तर-यह कोई दोष नहीं है, क्यों कि, अनुयोगद्वार और अनुयोगद्वारसमासमें इनका अन्तर्भाव होता है। अनुयोगद्वार और अनुयोगद्वारसमास प्राभृत-प्राभृतके अवयव होने चाहिए, ऐसा कोई नियम नहीं है, क्यों कि इसका कोई निषेध नहीं किया है। अथवा प्रतिपत्तिसमास शुतज्ञानमें इनका अन्तर्भाव कहना चाहिए। परन्तु पश्चादानुपूर्वीकी विवक्षा करनेपर इनका पूर्वसमास श्रुतज्ञानमें अन्तर्भाव होता है, यह कहना

श्रुतज्ञान अत- इस मतकी विधि दो प्रकारसे वर्णन की गयी है-लघुव बृहहः ।

- १, समु विधि—१२ वर्ष व प्रमाह पर्यन्त सोलह पडिमाके, तीन तीजके, ४ पीथके, ६ पंचमीके, ६ छठके, ७ सप्तमीके, प्रश्निके, ६ नवमीके, १० दशमीके, ११ एकादशीके, १२ द्वादशीके, १३ त्रयोदशोके, १४ चतुर्दशीके, पन्द्रह पूर्णिमाओं के और १६ अमा-वस्याओं के, इस प्रकार कुश १४० उपवास करे। प्रयोक उपवासके साथ १ पारणा आवश्यक है। कुल उपवास १४० करे। तथा 'ओं हीं द्वादशां पश्चलक्षानाय नमः' इस मन्त्रका त्रिकाल जाप करे। (किशान सिंह कृत कियाकोष); (व्रत्विधान सं./पृ. १७१)।
- २. बृहद् बिधि—६ वर्ष ७ माह पर्यन्त निम्न प्रकार उपवास करें।
 मित्रज्ञानके २८ पिडमाके २८ उपवास २८ पारणा; ग्यारह अंगोंके
 ११ एकादशियोंके ११ उपवास ११ पारणा; परिकर्मके २ दोजके
 २ उपवास २ पारणा; ८८ सूत्रके ८८ अष्टिमयोंके ८८ उपवास ८८
 पारणा; प्रथमानुष्योगका १ नवमीका १ उपवास १ पारणा; १४ पूर्वके
 १४ चतुर्दशियोंके १४ उपवास १४ पारणा; पाँच चूल्किकाके १

पंचिमियोंके १ उपवास । पारणाः अवधिज्ञानके ६ पष्टियोंके ६ उपवास ६ पारणाः मनःपर्यय ज्ञानके २ चौथोंके २ उपवास २ पारणा, केत्रलज्ञानके १ दशमीका १ उपवास १ पारणा। इस प्रकार कुल १६८ उपनास करे। तथा 'ओं हीं श्रुतज्ञानाय नमः' इस मन्त्रका त्रिकाल जाप करे । (वत निधान सं./१३२); (सुदृष्टि तरंगिनी) ।

श्रुत **ज्ञानावरण** — दे. ज्ञानावरण।

श्रुत जानी--दे. श्रुतकेवली ।

श्रुत तीर्थं — दे. इतिहास्/४।

श्रत पंत्रमी त्रत - पाँच वर्ष तक प्रतिवर्ष ज्येष्ठ शुक्ला १ को भूतावतार्के उपलक्षमें उपवास करें।'ओं ही द्वादशांगशुतज्ञानाय नैन:' इस मन्त्रकी त्रिकाल जाप करें। (बत विश्वान सं./पृ. १०)।

श्रतं भावना-- दे. भावना/१।

ध्रुत मूढ—६, मुढ ।

श्रुतवाद — ध. १३/४,४,४०/२८७/१२ श्रुतं हिविधं-अङ्गप्रविष्टमङ्ग-बाह्यमिति । तदुच्यते कथ्यते अनेन वचनकलापेनेति श्रुतवादो प्रव्य-_{धतम् ।} सुदबादो त्ति गर्दा =शुत्त दो प्रकारका है - अंग प्रविष्ट और अंगनाह्य। इसका कथन जिस वचन कलापके द्वारा किया जाता है वह द्रव्यशुत भुतवाद कहलाता है। इस प्रकार भुतवादका कथन किया।

श्रुतसागर---निदसंघ महारकार गणः की सूरत रोग्ला धर्मे । (है. इतिहास) आप विद्यानन्दि सं. २ के शिष्य तथा श्रीचन्द्रके गुरु थे। कृति-यशस्तिलक चम्पूकी टीका यशस्तिलकचन्द्रिका, तत्त्वार्थवृत्ति (श्रुतसागरो). तत्त्वत्रय प्रकाशिका (ज्ञानाणवके गद्य भागकी टीका), प्राकृत व्याकरण, जिनसहस्रनाम टीका, विक्रम-प्रवन्धकी टीका, औदार्थाचन्तामणि, तीर्थदीपक, श्रीपाल चरित, यशोधर चरित, महाभिषेक टीका (पं. आशाधरके नित्यमहोद्योतकी होका); श्रुतस्कन्ध पूजा, सिद्धचक्राष्ट्रकपूजा, सिद्धभक्ति, बृह्द कथा-कोष, षट् प्राभृतकी टीका । ब्रत कथाकोष । समय – महाभिषेक टीका वि. १५८२ में लिखी गयी है। तदनुसार इनका समय वि. १६४४ -१५६० (ई. १४८७-१६३३); (सभाव्य तत्त्वार्थाधिगम/प्र./२ टिप्पण प्रेमीजी); (पं. वि./प्र. ३६/A.N. Up); (प्.पुप्र./ई३ A.N. Up): (ती./३/३६१); (जै /२/३७६) (दे. इतिहास/७/४) ।

श्रुतस्कंध पूजा —_{दे. यूजापाठ ।}

श्रुतस्कध सत—इस वतको विधि उत्तम, मध्यम व जघन्यके भेद-से तीन प्रकारको है- उत्तम विधि-भाद्रपद कृ. १ से आश्विन कृ. २ तक ३२ दिनमें एक उपनास एक पारणा क्रमसे १६ उपनास करे। मध्यम-विधि-भाइपद कृ ६ से शुक्ला १६ तक २० दिनमें उपरोक्त ही प्रकार १० उपनास करे। लघुविधि—भादपद शुक्ला १ से आरिवन कृ. १ तक १६ दिनों में उपरोक्त ही प्रकार म उपनास करे। तीनों ही विधियोंमें 'ओं हीं श्रीजिनमुखोइभूतस्याद्वादनयगभितद्वादशौगः श्रुतज्ञानाय नमः 'इस मन्त्रका त्रिकाल जाप करे। (वत विधान सं,/७०); (किशनसिंह कृत क्रिया कोष) ।

भुतावतार—१. भगवान महावीरके पश्चात केवली व श्रुतकेव-लियों की सूत परम्पराको ही श्रुतावतार नामसे वहा गया है। — दे. इतिहास/४/१। २. आ., इन्द्रनन्दि (ई. श. १०-११) द्वारा रचित प्राकृत गाथाबद्ध भगवाच् महाबीरके निर्वाणसे ६८३ वर्ष पर्यन्तकी मुलसंघकी पट्टावली। ३. आ। श्रीधर (ई. श. १४) द्वारा रचित माकृत छन्दबद्ध ग्रन्थ ।

श्रुतिगम्य--रा. बा./४/४२/१४/२४८/२७ अनपेक्षितवृत्तिनिमित्तः

श्रुति-मात्र-प्रापितः श्रुतिगम्यः । ≈अनपेक्षित रूपसे प्रवृत्तिमें कारण व श्रुतिमात्रसे मोधित श्रुतिगम्य है।

श्रुतिकल्याण व्रत--दे, कल्याणक व्रतः।

श्रोति-Arithmetical and Geometrical progression.

श्रेणिक—म, पु./७४/रखोक सं. पूर्व भव सं. २ में खदीरसार नामक भील था। ३८६। पूर्व भवमें सौधर्म स्वर्गमें देव था (४०६) वर्तमान भवमें राजा कुणिकका पुत्र था (४१४) मगधदेशका राजा था। उज्जैकी राजधानी थी। पहले मौद्ध था, पीछे अपनी रानी चेलनाके उपदेश-से जैन हो गया था। और भगवात् महावीरका प्रथम भक्त बन गया था। जिनधर्मपर अपनी दढ़ आस्थाने कारण इसे तीर्थं कर प्रकृति-का मन्ध हो गया था। इसके जीवनका अन्तिम भाग महुत दुखद बीता है, इसके पुत्रने इसे बन्दी बनाकर जेलमें डाल दिया था और उसके भयसे ही इसने आत्महत्या कर ली थी, जिसके कारण कि यह प्रथम नरकको प्राप्त हुआ । और वहाँसै आकर अगले युगमें प्रथम तीर्थं कर होगा। भगवाच् बीरके अनुसार इसका समय बी, नि. २० वर्ष से १० वर्ष पश्चात तक माना जा सकता है। ई, पू. ४४६-४९६)

श्रोणी — Series (ज. प./प्र. १०८)।

अंगी - श्रेणी नाम पंक्तिका है। इस शब्दका प्रयोग अनेक प्रकरणों में आता है। जैसे आकाश प्रदेशोंकी श्रेणी, राजसेनाकी १८ श्रेणियाँ, स्वर्गव नरकके श्रेणीबद्ध विभान व बिल, शुक्लध्यान गत् साधुकी उपराम व क्षपक श्रेणी, अनेन्तरोपनिधा व परम्परोपनिधा श्रेणी प्ररू-पणा आदि। उपशम श्रेणीसे साधुनीचे निर जाता है, पर क्षपक श्रेणीसे नहीं । वहाँ उसे नियमसे मुक्ति होती है ।

श्रेणी सामान्य निर्देश

- Ş श्रेणी प्ररूपणाके मेद व मेदोंके लक्षण ।
- राजसेनाकी १८ श्रीणयोका निर्देश। २
- ₹ आकाश प्रदेशीकी श्रोणी निर्देश ।
 - श्रेणिबद्ध विमान व विरू ।

ጸ

- 4 उपशम व क्षपक श्रेणीका रुक्षण ।
- Ę उपराम व क्षपक श्रेणीमें गुणस्थान निर्देश ।
- अपूर्वे करण आदि गुणस्थान । 🗕 दे. बह वह नाम ।
 - सभी गुणस्थानौर्मे आयके अनुसार ही व्यय होनेका
- नियम् । -हे. मार्गणा। श्रेणी आरोहणके समय आचार्यादि पद छूट जाते है।
 - —दे, साध्/६ ।
- * श्रेणी मांडनेमें संहत्तन सम्बन्धी । —दे. संहनन ।
 - ठपशम व क्षपक श्रेणीके स्वामित्व सम्बन्धी सत्,
 - संख्या, क्षेत्र, सर्शन,साल,अन्तर,भाव,अल्पबहुत्व रूप आठ मरूपणाएँ । - दे, वह बह नाम।

₹ क्षपक श्रेणी निर्देश

- चारित्रमोहका क्षपण विधान । - दे. क्षम।
- अवदायुष्क को ही क्षपक श्रेणीकी सम्भावना ।
- २ क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही मांड सकता है।
 - क्षपकोंकी संख्या उपरामकोंसे दुगुनी है
 - क्षपक श्रेणीमें मरण सम्भव नहीं। दे, मरण/३।

₹

ź

क्षपक श्रेणीसे तक्कव मुक्तिका नियम।

—दे, अपूर्वकरण/४।

क्षपक श्रेणीमें आयुक्तमैंकी प्रदेश निर्जरा ही होती है। —देश निर्जरा/श/२।

उपशम श्रेणी निर्देश

- चारित्र मोहका उपशमन विधान। —दे, उपशम।
- * यदि मरण न हो तो ११वाँ गुणस्थान अववय प्राप्त
 - होता है। —दे, अपूर्व करण/४ :
- डपशम व क्षायिक दोनों सम्यक्त्वमें सम्मव है ।
 उपशम श्रेणीसे नीचे गिरनेका नियम ।
- ३ उपशान्त कषायसे गिरनेका कारण व विधान ।
- * उपशम श्रेणीमें भरण सम्भव है, मरकर देव ही
- होता है। दे मरणा३।
- * द्वितीयोपशम सम्यक्त्वसे सासाइन गुणस्थानको प्राप्ति सम्बन्धी दो मत । —हे सामादन/३।
- ्रसम्बन्धा दा मत्। —दे, सामादन/२। ४ शिरकर असंयत होनेवाले अल्प हैं।
- * अधिकसे अधिक उपराम श्रेणी मांड्नेकी सीमा।
 - ं---दे. संयम/२≀
- ५ पुन: उसी दितीयोपशमसे श्रेणी नहीं मांड सकता है।
 - गिर जानेपर भी अन्तर्भुहूर्त पर्यन्त दितीयोपश्चम

सम्यक्तव रहता है।

—दे. मरण/३/

१. श्रेणी सामान्य निर्देश

१. श्रेणी प्ररूपणाके भेद व भेदोंके लक्षण

ष, खं./११/४,२.६/सू. २४२ व टी./३४२ तेसि दुविधा सेडिपस्त्रणा अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा १२६१। जत्थ णिरंतरं थोवजहुत्त-परिवला कीरदे सा अणंतरोवणिधा। जत्थ दुगुण-चदुगुणादि परि-क्ला कीरदि सा परंपरोवणिधा। न्थेणीप्ररूपणादो प्रकार की है — अनम्तरोपिधा और परम्परोपिधा।२४२। (ध. १०/४,२,४,२८/६३/१) जहाँ पर निरन्तर अन्पबहुत्वकी परीक्षा की जाती है वह अनम्तरोपिधा कही जाती है। जहाँपर दुगुणत्व और चसुगुणत्व आदिकी परीक्षा की जाती है। वह परम्परोपिधा कहनाती है।

२. राजसंनाकी १८ श्रे णियोंका निर्देश

ति. प./२/४३-४४ करितुरयरहाहिवई सेणवईपदित्तसेद्द्रदंडवई।
सुद्दक्तित्त्वव्हसा हवंति तह महयरा पवरा १४३१ गणरायमं तितलवरपुरोहियामत्त्यामहामत्ता। बहुविह पदण्णया य अट्ठारस होति
सेणीओ १४४१ = हस्ती. तुरग (घोड़ा), और रथ, इनके अधिपति,
सेनापति, पदाति (पादचारीसेना), श्रेष्ठि (सेठ), दण्डपति, शुद्ध,
श्रविय, वैश्य, महत्तर, प्रवर अर्थात् बाह्यण, गणराज, मन्त्री, तलवर
(कोतवाल), पुरोहित, अमाव्य और महामाव्य, वह बहुत प्रकारके
प्रकीर्णक ऐसी अठारह प्रकारकी श्रेणियाँ हैं १४३-४४। (घ॰ १/१,१,१/गा. ३६/४०)।

ध. १/१,१,१/गा. ३७-३८/५७— हय-हिथ-रहाणहिना सेणानइ-मंति-सेटि्ठ-दंडनई। सुद्द-क्लिय चम्हण-बदसा तह महयरा चैन।३७। गणरायमच्च-तलवर-पुरोहिया दिप्या महामत्ता । अट्ठारह सेणीओ पयाइणामीलिया होति ।३६ १ च्छोड़ा, हाथी, रथ, इनके अधिपति, सेनापति, मन्त्री, श्रेष्ठी, दण्डपति, श्रूह, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैरय, महत्तर, गणराज, अमात्य, तलवर, पुरोहित, स्वाभिमानी, महामात्य और पैदत सेना, इस तरह सक मिलाकर अठारह श्रेणियाँ होती हैं। १३७-३८।

३. आकाश प्रदेशोंका श्रेणी-निर्देश

- स. सि./२/२६/१८३/७ लोकमध्यादारम्य ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च आकाश-प्रदेशानां क्रमसंनिविष्टानां पर्क्तिः श्रेणी इत्युच्यते । —लोकमध्यसे लेकर ऊपर नीचे और तिरछे क्रमसे स्थित आकाश प्रदेशोंकी पंक्ति-को श्रेणी कहते हैं। (रा. वा./२/२६/१/१३७/१६); (ध. १/१.१.६०/-३००/४)।
- धः १/४,९,४४/२२३/३ पटसूत्रवञ्चमावयववद्वानुपूर्विवणोध्विधिस्तर्य-ग्व्यवस्थिताः आकाशप्रदेशपङ्क्तयः श्रेणयः । = वस्त्र तन्तुके समान अथवा चर्मके अवयवके समान अनुक्रमसे ऊपर नीचे और तिर्छे रूपसे व्यवस्थित आकाश प्रदेशोंकी पंक्तियाँ श्रेणियाँ कहलाती हैं।

४. श्रेणिबद्ध विमान व बिरू

- द्र.सं./टो /१९६/१ . विदिक्च तुष्ट्ये प्रतिदिशं पङ्क्तिरूपेण यानि । विद्यानि (विभानानि वा) --- तेषामत्र श्रेणी बद्धसंद्या । --- चारौँ विदिशाओं में-से प्रत्येक विदिशामें एंक्ति रूप जो --- विश्वामें विभान) हैं --- उनकी श्रेणी बद्ध संज्ञा है।
- त्रि. सा /पं, टोडरमल/४७६ पटल-पटल प्रति तिस इन्द्रक विमानकी पूर्विक स्थारि दिशानिविषे जे पक्तिकंध विमान (अथवा बिल) पाईए तिनका नाम श्रेणीबद्ध विमान है।

विशेष दे नरक/१/३; स्वर्ग/१/३.६ ।

५. उपशम व क्षपक श्रेणीका लक्षण

रा. वा./१/१/९८/५१०/१ यत्र मोहनीयं कर्मीपशमयत्तारमा आरोहित सोपशमकश्रेणी। यत्र तत्क्षयमुपगमयन्तुद्गच्छति सा क्ष्पकश्रेणी। —जहाँ मोहनीयकर्मका उपशम करता हुआ आरमा आगे बढता है वह उपशम श्रेणी है, और जहाँ क्षय करता हुआ आगे जाता है वह क्षपक श्रेणी है।

६. उपशम व क्षपक श्रेणीमें गुणस्थान निर्देश

रा. वा./१/१९/६९/७ इत ऊर्ध्व गुणस्थानाना चतुर्णा हे श्रेण्यी भवतः—उपशमकश्रेणी क्षपकश्रेणी चेति।—इसके (अप्रमत्त संयतसे) आगेके चार गुणस्थानोंकी दो श्रेणियाँ हो जाती हैं—उपशमश्रेणी, और क्षपकश्रेणी। (गो. क./जी. प्र./६१६/४८%) ।

२. क्षपक श्रेणी निर्देश

१. अबद्धायुष्कको ही अपक श्रेणीकी सम्भावना

धः १२/४.२ १३,६२/४१२/८ बद्धाउआणं खनगरेडिमारुहणाभावादो । ≔बद्धायुष्क जीवीके क्षपक श्रीणपर आरोहण सम्भव नहीं है ।

गो. क./जो. प्र./३२६/४८७/८ चतुर्गुणस्थानेष्वेकत्र क्षपितत्वासरकिर्तर्य-ग्देवायुषां चाबद्धायुष्कत्वेनासत्त्वास् । — जिसने असंयतादिक गुण-स्थानमेंसे किसी एकमें (प्रकृतियोंका) क्षय किया है, और देव, तिर्यंच और नरकायुका जिसके सत्त्व न हो, और जिसके आयुक्त्य नहीं हुआ हो वही क्षपक भ्रेणिको माँउता है।

२. क्षायिक सम्यग्दष्टि ही मॉड सकता है

घ. १/१.९.१६/१८२/६ सम्यवस्वापेक्षया तु अपकस्य आयिको वा भावः दर्शनमोहनीयक्षयमविधाय अपकश्रेण्यारोहणानुपपत्तेः। - सम्यक्-

दर्शनकी अपेक्षा तो क्षपकके क्षायिकभाव होता है, क्योंकि, जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं किया है वह क्षपक श्रेणीपर नहीं चढ़ सकता है। (ध. १/१,१,१८८/१८८/२)।

३. क्षपकोंकी संख्या उपशमकोंसे दुगुनी है

ध १/९,5,२४६/३२३/१ णाणवेदादिसञ्जिनियम्पेस उवसमसेखि चर्डत-जीविहितो खबगसेखि चर्डतजोवा दुगुणा त्ति आइरिओवदेसादो। --ज्ञानवेदादि सर्व विकल्पोंमें उपशम श्रेणोपर चढ़ने वाले जोवोंसे स्वपंक श्रेणीपर चढ़नेवाले जीव दुगुने होते हैं, इस प्रकार आचार्योंका उपदेश पाथा जाता है।

३. उपराम श्रेणी निर्देश

१. उपराम व क्षायिक दोनों सम्यक्त्वमें सम्भव हैं

ध. १/१.१.१६/१८२/९ उपशमकस्यीपशमिकः क्षायिको वा भावः, वर्शनमोहोपशमक्षयाभ्यां विनोपशमक्षेण्यारोहणानुपलम्भात्। —उपशमकके औपशमिक या क्षायिक भाव होता है, वयाकि जिसने वर्शनमोहनीयका उपशम अथवा क्षय नहीं किया है, वह उपशम श्रेणीपर नहीं चढ सकता।

य, १/१,१.१८/१८८/३ उपशमकः औपश्विमकगुणः क्षायिकगुणो वा द्वाभ्यामिष सम्यक्त्वाभ्यामुपशमश्रीण्यारोहणसंभवात् । — उपशम श्रीणी वाला औपशमिक तथा क्षायिक इन दोनों भावोंसे युक्त है, वयोंकि दोनों ही सम्यक्त्वोंसे उपशम श्रीणीका चढ़ना सम्भव है।

२. उपराम श्रेणीसे नीचे गिरनेका नियम

रा. वा./१०/१/३/६४०/८ उपशान्तकषाय आयुषः क्षयात श्रियते । अथवा पुनरपि कषायानुदीरयन् प्रतिनिवर्त्तते । अथवा फिर कषायो-कषायका आयुके क्षयसे मरण हो सकता है। अथवा फिर कषायो-की उदीरणा होनेसे नीचे गिर जाता है।

ध. ६/१.६-ं-,१४/३१%)६ जोनसिमयं चारित्तं ण मोक्तकारणं, अंतो-सुहुत्तकालादो उगरि णिच्छएण मोहोदयणिश्रंधणतादो। - औप-शमिक चारित्र मोक्षका कारण नहीं है, व्योंकि, अन्तर्मृहूर्त कालसे ऊपर निश्चयतः मोहके उदयका कारण होता है।

ल. सा./मू. व जी. प्र./३०४/३८४ अंतोमुहुत्तमेत्तं उवसंतकसायवीय-रायदा । ...।३०४।...ततः परं कषायाणां नियमेनोदयासंभवात् । इव्यक्तमेदिये सति संवतेशपरिणामलक्षणभावकर्मणः तयो कार्य-कारणभावप्रसिद्धः । ← उपशान्त कषाय बीतराम ग्यारहाँ मुण-स्थानका काल अन्तर्मृहूर्त है, इसलिए तत्पश्चात् इव्यक्तमेके उदयके निमित्तसे संवतेश रूप भाव प्रगट होते हैं।

३. उपशान्त कषायसे गिरनेका कारण व मार्ग

ध. ६/१,६-८,१४/३१७/८ उबसंतकसायस्स पडिवादो दुविहो, भव-क्वयणिणंघणो उबसामणद्वाखयणिणंघणो चेदि। तथ भवक्वएण पडिवदिदस्स सञ्जाणि करणाणि देवेषुऽपण्णपढमसम् चेव उपघाडि-दाणि। ...उबसंतो अद्धाखएण पटंतो लोभे चेव पडिवददि, सुहुम-सांपराइयगुणमणंत्रण गुणंतरगमणाभावा। —उपशान्त कषायका व बह प्रतिपात दो प्रकार है—भवक्षयनिनम्धन और उपधामनकास-क्षयनिनम्धन। इनमें भवक्षयसे प्रतिपातको प्राप्त हुए जीवके देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें हो बन्ध, ...। (गिरकर असंग्रत गुण-स्थानको प्राप्त होता है। —दे० मरण/३) उपधान्त कषाय कालके क्षयसे प्रतिपातको प्राप्त होने वाला उपशान्त कषाय जीव लोभमें अर्थात् सूक्ष्म साम्परायिक गुणस्थानमें गिरता है, क्योंकि सूक्ष्म साम्परायिक गुणस्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानों जानेका अभाव है। गो. क./जी. प्र./१६०/०४३/१ उपशान्तक थाये आ तचरमसमयं कांमणावसरत् अप्रमत्तपुणस्थानं गतः । प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्ति सहसाणि कुर्वन् सक्तेशवशेन प्रत्यारूपानावरणोदयादेशसंयतो भ्रत्वा पुनः अप्रत्यारूपानावरणोदयादसंयतो भ्रत्वा पुनः अप्रत्यारूपानावरणोदयादसंयतो भ्रत्वा च । — उपशान्त क्षायके अन्तसमय पर्यन्त अप्रमत्ते उत्तर अप्रमत्त गुणस्थानको प्राप्त हुआ । तहाँ अप्रमत्तसे प्रमत्तमे हजारों बार गमनागमन कर, पिछ संक्तेश वश प्रत्यारूपानावरण कर्मके उदयसे देशसंयत होकर अथवा अप्रत्यारूपानके उदयसे असंयत होकर ।।

ल. सा./जी. प्र./३०५,३१०/३१० उपशान्तकषायपरिणामस्य द्विविधः प्रतिपतिः भवक्षयहेतः उपशमनकालक्षयनिमित्तकश्चेति । ...आयुः-क्षये सति उपशान्तकषायकाले मृत्वा देवासंयत्गुणस्थाने प्रतिपतित् । एवं प्रतिपतिते तस्मिन्नेवासंयतप्रथमसम्ये सर्वाण्यपि बन्धनी-दीरणासंक्रमणादीनि कारणानि नियमेनोद्धारितानि स्वस्वरूपेण प्रवृत्तानि भवन्ति। यथारुयातचारित्रविशुद्धिवलेनोपशान्तकषाम संक्लेशवद्येनानुपशमनरूपो-उपशामितानां तेषां पुनर्वेवासंयते द्वचाटनसंभवात ।२०८१ आगुषि सत्यद्धा क्षयेऽन्तर्मुहूर्तमात्रोपशान्त-कवायगुणस्थानकालावसाने सति प्रतिपतन् स उपशान्तकवायः प्रथम नियमेन सुक्ष्मसोपरायगुणस्थाने प्रतिपत्तति। ततोऽनन्तरम-निवृत्तिकरणगुणस्थाने प्रतिपत्ति । तदन्वपूर्वकरणगुणस्थाने प्रति-पत्ति । ततः पश्चादप्रमत्तगुणस्थाने अधःप्रमत्तकरणपरिणामे प्रतिपतिति । एवमधःप्रवृत्तकरणपर्यन्तमनेनैव कमेण नान्यथेति निश्चेतव्यम् । = उपशान्त कषाग्रसे प्रतिपात दो प्रकार है-एक आयु क्षयमे, दूसरा कालक्ष्यमे । १ उपशान्त कषायके कालमें प्रथमादि अन्त पर्यन्त समयों में जहाँ-तहाँ आयुके विनाशसे मरकर देव पर्याय सम्बन्धी असंयत गुणस्थानमें गिरता है। तहाँ असंयत-का प्रथम समयमें नियमसे बन्ध, उदीरणा, संक्रमण आदि समस्त करण उचाइता है। अपने-अपने स्वरूपसे प्रगट वर्ते है। यथारूगत विशुद्धिके नतसे उपशान्त कथाय गुणस्थानमें जो उपशम किये थे. उतका असंयत गुणस्थानमें संक्लेशके ब्लसे अनुपरामन रूप उघा-इना सम्भव है ।३०८। २. श्रीर आयुक्ते शेष रहनेपर कालक्ष्यसे अन्तर्मृहर्त मात्र उपशान्त कषायका काल समाप्त होनेपर वह उप-शामक गिरकर नियमसे सूक्ष्मसाम्बराय गुणस्थानको प्राप्त होता है। फिर पीछे अनिवृत्तिकरणको प्राप्त होता है। और इसके पश्चात क्रमसे अपूर्वकरण, अधःप्रवृत्तकरण रूप अप्रमत्तको प्राप्त होता है। अधःप्रवृत्तकरण तक गिरनेका यही निश्चित क्रम है। [आगे यदि विशुद्धि हो तो ऊपरके गुणस्थानमें चढ़ता है, यदि संक्लेशतायुक्त हो तो नीचेके गुणस्थानको प्राप्त होता है। कोई नियम नहीं है। (दे॰ सम्यग्दर्शन/IV/३/३)]।

क्रमशः —

त. सा /जी. प्र./२१०-२४४ का भाषार्थ — संब्लेश व विशृद्धि उपशाम्त कथायसे गिरनेमें कारण नहीं है क्यों कि वहाँ परिणाम अवस्थित विशृद्धिता लिये हैं। वहाँसे गिरनेमें कारण तो आयु व कालक्षय ही है 1३९०१ इन १०,६,८ व ७ गुणस्थानों में पृथक्-पृथक् क्रिया-विधान उत्तरते समय प्रतिस्थान आरोहककी अपेक्षा दूनी अवस्थिति वा तूना अनुभाग हो है। स्थिति बन्धापसरणकी बजाय स्थिति-वन्धात्सरण हो है। अर्थाव् आरोहकके आठ अधिकारोंसे उत्तरा कम है।

क्रम्शः—

ल, सा./जी. प्र./३४६/४३६/१ विरताविरतगुणस्थानाभिमुखः सन् संविदेशवरोन प्राक्तनगुणश्चेण्यायामान् संख्यातगुणं गुणश्रेण्यायामं करोति पुनः स एव यदि पेरावृत्योपरामकक्षपकश्रेण्यारोहणाभिमुखो भवति तदा विशुद्धिवरीन प्राक्तनगुणश्रेण्यायामान् संख्यातगुणहानं गुणश्रेण्यायामं करोति । = उपशामक जीव गिरकर यदि विरताविरत

गुणस्थानको सन्मुल होय तो संक्तेशताके कारण पूर्व गुणश्रीण आयामसे संख्यात गुण बंधता गुणश्रीण आयाम करता है। और यदि पलट कर उपशाम व क्षपक श्रेणी चडनेको सन्मुल होय तो विशुद्धिके कारण संख्यात गुणा घटता गुणश्रीण आयाम करता है।

४. गिर कर असंयत होनेवाले अल्प हैं।

घ. ४/१,३,८२/१२६/४ उबसमसेढोदो ऑदरीय उबसमसम्मत्तेण सह असंजमं पष्टिकणाजीवाणं संखेडजल् बलंभादो। = उपशम् श्रीणिसे उत्तरकर उपशम सम्बन्धके साथ असंयम भावको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी संख्या संख्यात हो पायी जाती है।

. ५. पुनः उसी द्वितीयोपशमसे श्रेणी नहीं मांड सकता

ध. १/१,६,३७४/९७०/२ हेट्ठा ओइण्णस्स वेदगसम्मत्तमपडिविज्जय पुञ्चेत्रसमसम्मत्तेणुवसमसेटोसमारुहणे संभवाभावादो । तं पि कुदा उवसमसेडी समारुहणपाओरणकालादो सेसुवसमसम्मत्तद्वाए त्थोबत्तु-बलंभादो । —उपशम श्रेणीसे नं चे उत्तरे हुए जोवके वेदक सम्यवस्वको प्राप्त हुए विना पहलेबाले उपशम सम्यवस्वके द्वारा पुनः उपशम श्रेणीपर समारोहणकी सम्भावनाका अभाव है। प्रश्न—यह कैसे जाना जाता है। उत्तर—क्योंकि, उपशम श्रेणीके समारोहण योग्य कालसे शेष सम्यवस्वका काल अरुप है।

श्रेणीचारण ऋद्धि--दे. मृद्धि ।

श्रेणीबद्ध — वित दे० नरक/१/३; स्वर्ग विमान -- दे. स्वर्ग /१/३। श्रेणीबद्ध करूपना -- classify (ध. १/४, २०)।

श्रेयस्कर---तीकान्तिक देवोंका एक भेद-दे. लीकांतिक।

श्रीयांस — म. पु./सर्ग/श्लोब — पूर्व के दसवें भवमें धातको खण्डमे एक गृहस्थकी पुत्रो थी। पुण्यके प्रभावसे नवमें भवमें विणक् मुता निर्नामिका हुई। वहाँसे वतों के प्रभावसे आठवें भवमे श्रीप्रभ विमानमें देवी हुई (८/१८५-१८८); (अर्थात सृष्भदेवके पूर्व के आठवें भवमें सितागदेवकी स्त्री) सातवें भवमें शोभती (६/६०) छठेमें भोगभूमि में (८/१३) पाँचवें में स्वयंत्रभदेव (८/१८६) चौथेमें केशव नामक राजकुमार (१०/१८६) तीसरेमें अच्युत स्वर्गमें प्रतीन्द्र (१०/१७१) दूसरेमें धनदेव (११/१४) पूर्व भवमें अच्युत स्वर्गमें अहमिन्द्र हुआ (१०/१७२)। (इनके सर्वभव सुषभदेवसे सम्बन्धित हैं। सर्व भवोंके लिए दे. ४०/३६०-३६२)। वर्तमान भवमें राजकुमार थे। भगवान् ऋषभदेवको आहार देकर दानप्रवृत्तिके कर्ता हुए (२०/८८,१२८) अन्तमें भगवान्के समवश्राणमें दीक्षा ग्रहण कर गणधर पद प्राप्त किया (२४/१७४) तथा मोक्ष प्राप्त किया (४७/६६)।

श्रीयांस नाथ — म. पु./४०/१ तोक — पूर्वके दूसरे भवमें निलन प्रभ राजा थे (२-३) । दीक्षा सेकर सोसह कारण भावनाओं वा चिन्तवन कर तीर्थं कर प्रकृतिका बन्ध किया । अन्तमें समाधि मरण कर पूर्व भवमें अच्युतेन्द्र हुए (१२-१४) । वर्तमान भवमें ११वें तीर्थं कर हुए । विशेष — दे. तीर्थं कर/५ ।

श्रोता—वीतराम वाणीको सुननेकी योग्यता आहमकल्याणकी जिल्लासाके जिला नहीं होती। अतः वे ही शास्त्रके वास्त्रविक श्रोता हैं तथा उपदेशके पात्र हैं अन्य लौकिक व्यक्ति उपदेशके अयोग्य हैं।

अन्युत्पन्न आदिकी अपेक्षा श्रोताओंके भेद व लक्षण

ध. १/१.१.११२०/७ त्रिविधाः श्रोतारः, अव्युत्पननः श्रवगतावशेषिवविध्त-पदार्थ एकदेशतोऽवगतिविविध्तपदार्थ इति । तत्र प्रथमोऽव्युत्पन्त-स्वान्नाध्यवस्यतीति । विविध्तपदस्यार्थं द्वितीयः संशेते कोऽर्थोऽस्य पदस्याधिकृत इति, प्रकृतार्थादन्यमर्थमादायः विपर्यस्प्रति वा । दितीयवचृतीयोऽपि संशेते विपर्यस्यति वा । —श्रोता तीन प्रकारके होते हैं—पहना अव्युत्पन्न अर्थात वस्तु स्वरूपसे अनिभन्न, दूसरा सम्पूर्ण विवक्षित पदार्थको जाननेवाला और तीसरा एकदेश विवक्षित पदार्थको जाननेवाला। इनमेसे पहला भोता अव्युस्पन्न होनेके कारण विवक्षित पदार्थके अर्थको कुछ भी नहीं समम्भता है। दूसरा 'यहाँपर इस पदका कौनसा अर्थ अधिकृत है' इस प्रकार विवक्षित पदार्थके अर्थमें सन्देह करता है, अथवा प्रकरण प्राप्त अर्थ-को लोडकर दूसरे अर्थको ग्रहण करके विपरीत सममता है। दूसरी जातिके समान दीसरी जातिके श्रोता भी प्रकृत पदके अर्थमें या तो सन्देह करता है अथवा विपरीत निश्चय कर खेता है (गो. क./जी. प्र./१०/११/३)।

२. मिट्टी आदि श्रोताके भेद व लक्षण

म. पु./१/१३६ मृख्वासिन्यजमार्जारशुककङ्कृशिलाहिभिः । गोहंसमहिष-च्छिदघटनं शजलौककैः ।१३६।= मिही, चलना, बकरा, बिलाव,तोता, बगूला, पाषाण, सर्प, गाय, हंस, भैंसा, फूटा धडा, डांस और जॉक इस तरह चौदह प्रकारके श्रोताओं के रष्टान्त समभने चाहिए। भावार्थ – १. जैसे मिट्टी पानीका संसर्ग रहते हुए के मल रहती है बादमें कठोर हो जाती है, उसी प्रकार जो श्रोता शास्त्र सुनते समय कोमल परिणामी रहते हैं बादमें कठार परिणामी हो जाने वे श्रीता मिट्टोंके समान हैं। २ जिस प्रकार चलनी सारभूत अप्टेको नीचे गिरा देती है और छोकको बचा लेती है, उसी प्रकार जो श्रोता वक्ताके उपदेशमेंसे सारभुत तक्त्रको छोड़कर निस्सार तक्त्वको ग्रहण करते हैं वे चलनीके समान श्रोता हैं। ३. जो अत्यन्त कामी हैं अर्थात् शास्त्रके उपदेशमें शृंगारका वर्णन सुनकर जिनके परिणाम शुंगार रूप हो जावें वे अज़के समान श्रोता है। ४० जैसे अनेक उपदेश मिलनेपर भी बिलाब अपनी हिंसक प्रवृत्ति नहीं छोड़ता, सामने आते हो चूहेपर आक्रमण कर देता है उसी प्रकार जो श्रोता बहुत प्रकारसे समकानेपर भी करताको नही छोड़ें, अवसर आनेपर कर प्रवृत्ति करने लगें, वे मार्जारके समान हैं। ४. जैसे तोता स्वयं ज्ञानसे रहित हैं, दूसरोंके समफानेपर कुछ शब्द मात्र प्रहण वर पाते हैं वे शुक्रके समान थोता हैं। ई. जो बगुलेके समान बाहरसे भद परिणामी म!खूम होते हैं, परन्तु जिनका अन्तरंग दुष्ट हो वे बगुलाके समान श्रोता हैं। ७. जिनके परिणाम हमेशा कठोर रहते हैं. तथा जिनके हृदयमें समभाये जानेपर भी जिनवाणी रूप जलका प्रवेश नहीं हो पाता वे पाषाणके समान श्रोता हैं। 🗷 जैसे साँपको पिलाया हुआ। दूध भी विष रूप हो जाता है, वैसे हो जिनके सामने उत्तमसे उत्तम उपदेश भी खराब असर करता है वे सर्पके समान श्रोता हैं। ह, जैसे गाय तुण जाकर दूध देती है, बैसे ही जो थोड़ा सा उपदेश सुनकर बहुत लाभ लिया करते हैं वे गायके समान शोता हैं। १०. जो केवल सार वस्तुको ग्रहण करते हैं वे हंसके समान शोता हैं। ११, जैसे भेंसा पानी तो थोड़ा पौता है पर समस्त पानी को गंदला कर देता है इसी प्रकार जो श्रीता उपदेश तो अल्प ग्रहण करते हैं. परन्तु अपने कृतकोंने समस्त सभामें शोभ पैदा कर देते हैं ने भैंसाके समान थोता हैं। १२. जिनके हृदयमें कुछ भी उपदेश नहीं ठहरे वे सिछद्रघटके समान है ११३. जो उपदेश तो विसकुत ही ग्रहण न करें परन्तुसारी सभ की जितकुल व्याकुल कर दें वे डाँसके समान श्रोता हैं। १४. जो गुण छोड़कर सिर्फ अत्रगुणों को ही ग्रहण करें वे जोंकके समान श्रोता है'।१३६।

३. मिही आदि उत्तम, मध्यम, जघन्य विभाग

 म. पु./१/१४०-१४१ श्रोतारः समभावाः स्युरुत्तमाधममध्यमाः । अन्या-दशोऽपि सन्त्येव तित्क तेषामियत्त्रया ।१४०। गोहंससदशान्प्राहुरुत्त-मान्मृच्छुकोपमात् । माध्यमान्विदुरन्यैश्च समक्क्योऽधमो मतः । ।१४१। = ऊपर कहे हुए श्रोताओंके उत्तम, मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन-तीन भेद होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी भेद हैं, उनकी गणना करतेसे क्या लाभ ११४०। इनमें जो श्रोता गाय और हंसके समान हैं. वे उत्तम कहलाते हैं, जो मिट्टी और तोताके समान हैं वे मध्यम कहलाते हैं। बाक्रीके सब श्रोता अथम माने गये हैं।१४१।

_{8. स}च्चे श्रीताका स्वरूप

- क. पा. १/१/०/३ ण च मिस्तेषु सम्मत्तिथत्तम सद्धं, अहेवृदिद्विताद-सुणगण्णहाणुववत्तीरो तेसि तदिश्यत्त सिद्धीरो। = शिष्यों में सम्मक् श्रद्धाका अस्तित्व असिद्ध है सो बात नहीं है, क्यों कि अहेतुवाद ऐसे दृष्टिवाद अंगका सुनमा सम्यव्यवे बिना बन नहीं सकता है। इस-निए उनमें सम्यव्यवका अस्तित्व सिद्ध है।
- थ, १२/४,२,१३,६६/४१४/१० घारणगहणसमत्थाणं चेव संजदाणं विण-यासंकाराणं ववस्वाणं कादब्बमिदि भणिदं होदि। ⇒धारण व अर्थबहणमे समर्थ तथा विनयसे अलंकृत ही संयमीजनोंके लिए ब्याख्यान करना चाहिए, यह अभिप्राय है।
- म. पु./१/१४५ १४६ श्रोता शुश्रूषतायोः स्वैर्पुणे प्रेक्तः प्रशस्यते। ::

 ११४१ शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं घारणं तथा। स्मृत्यूहापोहनिर्णोतीः
 श्रोतुरष्टी गुणान् विदुः ११४६। च्लो श्रोता शुश्रूषा आदि गुणोसे

 गुक्त होता है वही प्रशंसनीय माना जाता है ११४६। शुश्रूषा, श्रवण,

 ग्रहण, घारण, स्मृति, ऊह, अपोह और निर्णीत (तत्त्वाभिनिवेश सा.

 ध.) ये श्रोताओं के आठ गुण जानने चाहिए ११४६। (सा. घ./१/९)।

पु. सि उ./७४ अष्टाविनष्टदुस्तरदुरितायतनान्ययुनि परिवज्ये । जिनधर्मदेशनाया भवन्ति शुद्धा धियः ।७४। च्दुखदायक, दुस्तर और पापोंके स्थान इन आठ पदार्थीको परित्याग करके निर्मत्त बुद्धिवाते पुरुष जिनधर्मके उपदेशके पात्र होते हैं।

- आ. अतु / अव्याः किं कुश्लं ममेति विमृशन् दुःखाह् भृशंभी तिवान्, सौरुयैषो अवणादिबुद्धिविभवः शुरवा विचार्य स्फुटम् । धर्म शर्मकरं दयागुणमयं युक्त्यागमाम्यां स्थितं गृह्णन् धर्मकथाश्रुताविषकृतः शास्यो निरस्तायहः । अ चलो भव्य है, मेरे लिए हित्कारक मार्ग कौन सा है इसका विचार करनेवाला है, दुःखसे अत्यन्त इरा हुआ है, यथार्थ सुलका अभिलाषो है, अवण आदि रूप बुद्धिसे सम्पन्त है, तथा उपदेशको सुनकर और उसके विषयमे स्पष्टतासे विचार करके जो युक्ति व आगमसे सिद्ध ऐसे सुलकारक द्यामय धर्मको ग्रहण करनेवाला है, ऐसे दुराग्रहसे रहित शिष्य धर्मकथाके सुननेका अधि-कारो माना गया है। अ
- सा, घ./२/१६ यावज्जीविमिति त्यवत्वा, महापापानि शुद्धधीः। जिन-धर्मश्रुतैयोंग्यः स्यात्कृतोपनयो द्विजः ११६। = अनन्त संसारके कारण-भूत मद्मयानादिक पापोको जीवनपर्यम्तके लिए छोड़कर, सम्यवत्वके द्वारा विशुद्ध बुद्धिवाला और किया गया है यज्ञोपवीत संस्कार जिसका ऐसा ब्राह्मण, वैश्य व श्रुत्रिय जैनधर्मको सुननेका अधि-कारी होता है ।१६।
- न्या. दी./३, \$ ९२४/४ सदुषदेशास्त्राक्तनमञ्चानस्वभावं हन्तुमुपरि-तननयमर्थ ज्ञानस्वभाव स्वीकर्तुं च यः समर्थः आत्मा स एव शास्त्रा-धिकारीति । — समी चीन उपदेशसे पहलेके अज्ञान स्वभावको नाज्ञ करने और आगेके तत्त्वज्ञान स्वभावको प्राप्त करनेमें ज्ञो समर्थ आत्मा है वही शास्त्रका अधिकारी है।

५. उपदेशके अयोग्य पात्र

- ध. १२/४,२.१३.६६/गा, ४/४९४ बुद्धिविहीने श्रोतिर वक्तृत्वमनर्थकं भवति पुंसाद् । नेत्रविहीने भर्तार विलासलावण्यवस्म्त्रीणाम् ।४१ जिस प्रकार पतिके अन्धा होनेपर स्त्रियोंका विलास व सुन्दरता व्यर्थ है, इसी प्रकार श्रीताके सूर्व्व होनेपर पुरुषोंका वक्तापना व्यर्थ है।
- सा. थ./१/१ कुछर्मे स्थोऽपि सद्यमं तषुकर्मत्या द्विषत् । भद्रः स देश्यो दञ्जत्वान्नाभद्रस्तद्विपर्ययात् ।१। = मिथ्यामतमें स्थित जीव

मिथ्यात्त्रकी मन्द्रामं जैनवर्मसे द्वेष न करनेवाला व्यक्ति भद्र है वह उपदेशका पात्र है, उससे विपरीत अभद्र है तथा उपदेश पानेका अधिकारी नहीं है। १९

६. अनिष्णातको सिद्धान्त शास्त्र सुनना योग्य नहीं

- भ. आ./वि /३६१/६७५ पर उह्नभृत—सञ्वेण वि जिलवयणं सोदञ्च सिंदु-देण पुरिसेण । छेदमुदस्स हु अत्थो ण हो दि सञ्जेण णादञ्जो ।४६९। =श्रद्धावात् सर्व पुरुष जिनवचन मुन सकते हैं, परन्तु प्रायश्चित्त शास्त्रका अर्थ सर्व लोगोंको जाननेका अधिकार नहीं है।
- दे. श्रावक/४/६ गणधर. प्रत्येक बुद्ध अ। हि द्वारा रचित प्रायश्चित्त शास्त्र-का देशवतीको पढनेका अधिकार नहीं है।
- ध. १/१.१.२/१०६/३ विक्खेवणी णाम कहा जिलवयणमयाणंतस्स ण कहेयव्या । = जिसका जिन वचनमे प्रवेश नहीं है, ऐसे पुरुषको विक्षेपणी कथाका उपदेश नहीं करना च।हिए।
- सा. ध्र, १७/४० स्यान्नाधिकारी सिद्धान्त-रहस्याध्ययने Sपि च १६०। = सिद्धान्त शास्त्र और प्रामृश्चित्त शास्त्रों के अध्ययन करनेके विषयमें शाकको अधिकार नहीं है।

७. निष्णातको सर्वशास्त्र पदने योग्य है

- ध १/१.१.२/१०६/१ गहिद-समणस्स तब-सील-णियम-जुत्तस्स पच्छा विवस्तेवणी कहा कहेयव्या । चित्रसने स्व समयको जान लिया है .. जो तप, शोल और नियमसे युक्त है, ऐसे पुरुषको ही परचात विक्षेपणी कथाका (भी) उपदेश देना चाहिए।
- सा. घ./२/२१ तत्त्वार्धं प्रतिपद्य तीर्थकथन।दादाय देशवतं. तद्दीक्षाय-धृतापराजितमहामन्त्रोऽस्तदृहैंवतः । आङ्गं पौर्वमधार्थसंग्रहमधी-त्याधीतशास्त्रान्तरः, पर्वान्ते प्रतिमासमाधिमुण्यन्, धन्यो निहन्त्यं-हसी।२१। =धर्माचार्य या गृहस्थाचार्यके उपदेशसे सातौं तत्त्वोंको ग्रहणकर, एकदेशबतकी दीक्षाके पहले धारण किया है महामन्त्र जिसने ऐसा छोड़ दिया है मिथ्यादेवोंका आराधन जिसने, ऐसा द्वादशांग सम्बन्धी और चतुर्वशपूर्व सम्बन्धी शास्त्रोंको ण्ढकर, पढ़े हैं न्याय आदिक शास्त्र जिसने ऐसा पर्वके दिन प्रतिमायोगको धारण करनेवाला पुण्यात्मा द्वत्र्य व भाव पापोको नष्ट करता है।२१।

८. शास्त्र श्रवणमें फलेच्छाका निषेध

म पु./१/१४३ श्रोता न चेहिकं किंचिरफत्तं बाञ्छेत्कथाशुतौ । नेच्छेद्वस्ता च सत्कारधनभेषजसिक्तम्याः ।१४३. = श्रोताओंको शास्त्र सुननेके बदले किसी सांसारिक फलकी चाह नहीं करनी चाहिए, इसी प्रकार बका-को भी श्रोताओंसे सत्कार, धन, औषधि और आश्रय (घर) आदि को इच्छा नहीं करनी चाहिए।

श्रोत्र इन्द्रिय--- हे. इन्द्रिय/१।

दलक्षणकूलां — शिखरी पर्वतस्थे एक क्टब तन्तिवासी एक देव। —दे. लोक/७।

रुषेष - औदरिक शरीरमें श्लेष (कफ) का निर्देश । -दे. औदरिक/१।

- इलेज संबन्ध व. खं /१२/६,६/सू. ४३/४१ जो सो संसिलेसबंधों णाम तस्स इमो णिद्देसो जहा कहु-जदूणं अण्णोण्णसंसिलेसिदाणं बंधो संभवदि सो सब्दों संसिलेसबंधो णाम १४३ = जी संश्लेष बन्ध है उसका यह निर्देश है जैमे परस्पर संश्लेषको प्राप्त हुए काष्ठ और लाखका बन्ध होता है वह सब संश्लेषवनन्ध है।४३।
- रा. वा./k/२४/१/४८८/३ जनुकाष्टादिसंश्लेषणात् संश्लेषमन्धः । --साख काठ आदिका संश्लेष बन्ध है ।
- धः १२/५.६.३६/३७/६ रजजु-त्रस्त्र-कट्ठादीहि विणा अल्लीबणविसेसेहि विणा जी चिक्कग-अचिक्कगद्व्वाणं चिक्कणदन्त्राणं वा परोष्परेण नंधो

सो संसित्तेसकंधो णाम । = रस्सी, वस्त्र और काष्ट्र आदिकके बिना तथा अवसीवणविशेषके बिना जो चिक्रण और अचिक्रण द्रव्योंका अथवा चिक्रण द्रव्योंका परस्पर बंध होता है वह संश्लेषकंध कह-लाता है।

स. सा,/ता. वृ./४७/१६/९५ ्क्षीरनीरसंश्लेषस्तथा । च्दूध और जलका परस्पर सम्बन्ध संश्लेष है।

इलोक वार्तिक-आ. उमास्वामी कृत तत्त्वार्थमूत्रकी आ. विचा-नन्द (ई. ७३५-८४०) कृत विस्तृत टीका है। (तो./१/३६१)।

इस्रोहित-एक ग्रह-दे. ग्रह ।

इवस्ना--भरत क्षेत्रस्थ आर्य खण्डकी एक नदी--दे. मनुष्य/४।

श्वला धारणा-दे. वासु ।

इवासोच्छ्वास—१.—दे. उच्छ्वास; २. कालका एक प्रमाण विशेष । अपरनाम उच्छ्वास. वा निःश्वास । —दे, गणित/1/१।

दवेतकुमार--वैशट राजाका पुत्र था। भीष्म द्वारा युद्धमें मारा गया था। (जा. पु./१६/१६१-१६३)।

इवेतकेतु - विजयार्घकी दक्षिण श्रेणीका एक नगर नदे, विद्याधर।

इवेतपंचमी सत—आशाढ़, कार्तिक व फाल्गुन, सीनों में-से किसी भी मासमें प्रारम्भ करके ६४ महीनों तक वशाबर प्रत्येक मास शु. ४ को उपवास करें। तथा नमस्कार मन्त्रका जिकाल जीए करें। (वसुनन्दि श्रावकाचार/३४३-३६२), (धर्मपरीक्षा/२०/१४), • (बतु-विधान संग्रह/१, ८८)।

इवेतवाहन चम्पा नगरीका राजा था। दीक्षा धारण कर एक मासका उपवास किया। चर्धामें 'मेरे पुत्रने गृहस्थोंको मेरे लिए आहारदान करनेको मना किया है' ऐसा सुनकर वापस जौट आये। श्रेणिक महाराज द्वारा शंका निवारण कर विये जाने पर इनका रोष दूर हुआ। अनन्तर केवसज्ञान प्राप्त किया। (दे० म. पु./७६/-६-२६)।

द्वेताम्बर — दिगम्बर मान्यताके अनुसार भगवात् वीरके पश्चात् मूल संघ दिगम्बर ही था। पीछे कुछ शिथलाचारी साधुओंने श्वेताम्बर संघकी स्थापना की। श्वेताम्बर मान्यताके अनुसार जिन करूप व स्थावर करूप दोनों ही प्रकारके संघ विद्यमान थे। जम्बू स्वामीके पश्चात् काल प्रभावसे जिनकरपका विच्छेद हो गया और स्थावर करूप ही शेष रह गया। पीछे शिवभूति नामक एक साधु जिनकरपके जुनशवर्तनके उद्देश्यसे नगुन हो गया। उसके द्वारा ही दिगम्बर मतका प्रचार हुआ। श्वेताम्बरमें-से ढूं दिया मत-की उत्पत्तिके विदयमें दोनों ही सम्प्रदाय सहमत हैं।

- १ वितानबर मतका स्वरूप ।
- २ दिगम्बरके अनुसार व्वेताम्बर मतकी उत्पत्ति ।
- 🔾 अर्थ फारुक संवकी उत्पत्ति ।
- ४ इवेताम्बरोंके विविध गच्छ ।
- ५ अर्थं फालक व व्वेताम्बर विषयक समन्वय ।
- ६ पवर्नको विषयक समन्वय ।
- ७ उत्पत्तिकाल विषयक समन्वय ।
- ८ दिगम्बर मतकी प्राचीनता।

- ९ 🕴 व्वेताम्बरके अनुसार दिगम्बर मतकी उत्पत्ति ।
 - १. द्विविध करप निर्देश।
 - २. जिन कश्पका विच्छेद ।
 - ३. उपकरण व उनकी सार्थ कता।
 - थे. दिगम्बर मत प्रवर्तक शिवभूति मुनिका परिचय।
 - ४, शिवभूति द्वारा दिगम्बर मतेकी उत्पत्ति ।
- १० | ढूंढिया पन्था।
 - १. दिगम्बरके अनुसार उत्पत्ति।
 - २. श्वेताम्बरके अनुसार उत्पत्ति।
 - ३. स्वरूप ।

१. श्वेताम्बर मतका स्वरूप

- स. सि./५/१/६ सप्रन्थः निर्धन्थः । केवली कवलाहारी । स्त्री सिध्यति । एविनित्यादि विपर्ययः । — सप्रन्थको निर्धन्थ मानना, केवलीको कवलाहारी मानना और स्त्री सिद्ध होती है इत्यादि मानना विप-रीत मिथ्यादर्शन है। (रा. वा./५/१५६४/२०), (त. सा./-६/६)।
- द. सा./मू./१३-१४तेण कियं मयमेयं इत्थीणं अत्थि तन्भवे मीनलो।
 केवलणाणीण पुण अण्णवस्ताण तहा रोगो।१३। अंभरसहिको वि जई।
 सिरुफाई बीरस्स गुन्भचारत्तं। परिलिगे विय मुत्ते फासुमभोरुजं व
 स्ववत्था १४।
 उसने (आचार्य जिनचन्द्रने)
 यह मत चलाया कि खियोंको तद्भवमें मोक्ष प्राप्त हो सकता है।
 केवलझानी भोजन करते हैं तथा उन्हें रोग भी होता है।१३।
 वश्चारी तथा अन्य लिंग वाले भी मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। भगवात् वीरके गर्भका संचार हुआ था। अर्थात पहले एक ब्राह्मणीके
 गर्भमें आये और पीछे श्रवियाणीके गर्भमें चले गये। मुनिजन
 किसीके वर भी प्राप्तक भोजन कर सकते हैं।
- द. पा./टी./११/११/११ श्वेतवाससः सर्वत्र भोजनं गृह्वन्ति. प्रासुकं मांसभक्षिणौ गृहे दोषो नास्तीति वर्णसोपः कृतः। =श्वेताम्बर साधु सर्वत्र भोजन करना उचित मानते हैं। उनकी समफर्में मांस भक्षकोंके यहाँ भी प्रासुक भोजन करनेमे दोष नहीं है।
- गो, जी./जी. प्र./१६ इन्द्रः श्वेताम्बरगुरुः तदादयः संशयितिमध्या-दृष्टयः। चन्द्रन्त श्वेताम्बरोंका गुरु था। जनको आदि लेकर संशयित मिथ्यादृष्टि हैं।
- द, सा /प्र./५० प्रेमी जी दुर्जनसार प्रम्थमें तथा गोम्मटसारकी टीकार्में जो श्वेताम्बरोंकी गणना सौदायिक मिथ्यादृष्टियों में की सो ठीक नहीं है। बास्तवमें उनकी गणना विषयीत मतमें हो सकती है ऐसा उपरोक्त सविधिसिद्धिके उद्धरणसे स्पष्ट है।

२. दिगम्बरके अनुसार स्वेताम्बर सतकी उत्पत्ति

दिगम्बर मतके अनुसार श्वेताम्बर मतको उत्पत्ति कैसे हुई, उसके सम्बन्धमें ही नीचे दो कथाएँ दो जाती हैं।—

द. सा./मू./११-१२ ं एक्कसप छ सीसे विककमरायस्स मरणपत्तस्स ।
सोरष्टुं वलहीए उप्पण्णो सेवडो संघी । ११ । सिरि भहनाहुगणिनोः
सीसो णामेण संति बाइरिखो । तस्स य सीसो बुद्धो जिल्लबंदो
मंदबारिसो । १२ । तेण कियं मयमेयं • • । १३ । — इसी बात को
और भी विस्तृत रूपसे इन्हीं देवसेनाचार्यने अपने भावसंग्रह नामक
ग्रन्थमें एक कथाके रूपमें दिया है। उसका संक्षिप्त सार निम्न हैं —

भावसंग्रह/४२-७५ विक्रम संवत् १३६ में सौराष्ट्र देशके बल्लभीपुर नगरमें श्वेताम्बर संघ उरपन्न हुआ। इस संघके प्रवर्तक भद्रवाह गणी जी एक निमित्तज्ञानी थे (पंचम शुतकेवलीसे भिन्न थे) उनके शिष्य शान्त्याचार्य, तथा उनके भी शिष्य जिनचन्द्र थे। उन्जैनी नगरीमें १२ वर्षीय दुर्भिक्षके सम्बन्धमें आचार्य भद्रबाहुकी भविष्य-बाली सुनकर सर्व आचार्य अपने-अपने संघको लेकर वहाँसे विहार कर गये ११३-११। भद्रबाहुके शिष्य शान्ति नामके आचार्य सौराष्ट्र देशके बरलभीपुर नगरमें आये ।१६। परन्तु वहाँ भी भारी दुष्काल पडा १६७। परिस्थितियश सिंह वृत्ति छोड़कर साधुओंने बस्त्र, पात्र आदि धारण कर लिये और वसतिकामें-से भोजन माँग कर लाने लगे ।४८-४१। दुर्भिक्ष समाप्त हो जाने पर जन शान्त्याचार्यने पुनः उन्हें सद्ध चारित्र पालनेका आदेश दिया तो उनके शिष्य जिनचन्द्रने छन्हें जानसे मार दिया और स्वयं संघ नायक बन गया । ६०-६८। शान्त्याचाये मरकर व्यन्तर हुआ और संघ पर उपद्रव करने लगा, जिसे शान्त करमेके लिए जिन्धन्द्रने उसकी एक कुलदेवताके इदपमें पूजा प्रचलित कर दी। जो आज तक श्वेताम्बर सम्प्रदायमें चली आ रही है। ७०-७५।

३. अर्धफालक संधकी उत्पत्ति

भद्रबाह् चरित्र/तृ परिच्छेद-निलकुल उपरोक्त प्रकारकी कथा कुछ उचित परिवर्तनोंके साथ भट्टारक श्री रतननिवने भद्रवाहु चरित्रमें दी है। उसका सारांश यह है कि- "पंचम श्रुतकेवली श्री भद्रकाहु स्वामीके मुखसे उज्जैनीमें पड़ने वाले १२ वर्षीय द्भिक्षके सम्बन्धमें मुनकर भी तथा अन्य संघोंके दक्षिणको और विहार कर जाने पर भी रामल्य, स्थूलभद्र व स्थूलाचार्य नामके आचार्योंने जाना स्बीकार न किया। दुर्भिक्ष पड़ा और परिस्थिति वश उन्होंने कुछ शिथिलाचार अपना लिये। वे लोग पात्र ग्रहण करके भोजन माँगने-के लिए वसतिकामें जाने लगे और अपनी नग्नताको उतने समय छिपानेके लिए, एक वस्त्रका टुकड़ा भी अपने पास रखने तगे, जिसे बसिकामें जाते समय ने अपने आगे हँक लेते थे और लौटनेपर पृथक्कर देते थे भ्डस कारण इस संघका नाम अर्थफालक पड गया तःपरवात् सुभिक्ष हो जाने पर जन दक्षिणसे वह मूल संघ लौट आया तम स्थूलाचार्य ने अपने संघर्त पुनः पहला मार्गअपनानेको कहा। संघने उन्हें जानसे मार दिया। वे. उयन्तर हो गये और संघ पर उपद्रव करने लगे, जिसे शान्त करनेके लिए संघने उनकी अपने कुलदेवताके रूपमें पूजा करनी प्रारम्भ कर दी। ४५० वर्ष तक यह संघ इसी अर्धफालकके रूपमें घूमता रहा। तरारचात् बि. सं. १३६ में सौराष्ट्र देशकी वल्लभीपुरी नगरीको प्राप्त हुआ। उस समय इस संधके आचार्य जिनचन्द्र थे। बल्लभीपुर नरेशकी रानी उज्जॅनी नरेशकी पुत्रो थी। उडजैनीमें रहते उसने इन्हीं साधुआंके पास विद्याध्ययन किया था। अतः विनयपूर्वक अपने यहाँ बुलानेकी हैच्छा करने लगी। परन्तु राजाको उनका बह वेष पसन्द न था. अतः उसने उन साधुअोंके पास कुछ वस्न भेज दिये, जिसे जिनचन्द्रने राजा व रानीको प्रसन्नताके अर्थ ग्रहण करनेकी आज्ञा. दे दो। बस तभी इस संघका नाम श्वेताम्बर पड़ गया।

हिरियेग कृत कथा कोष/१८-११/३, ३१८ "याजन शोभनः काल. जायते साधनः स्फुटम्। ताबच्च वामहस्तेन पुरः कृत्वाऽर्धभालकम् १९८। भिक्षापात्रं समादाय दक्षिणेन करेण च। गृहीत्वा नक्तमाहारं, कुरु-ध्वं भोजनं दिने १६६।" =१२ वर्षीय दुभिक्ष के समय १२००० साधुओं के साथ भूतकेवली भद्रवाहु और विशालाचार्य (चन्द्र गुप्त) दक्षिण-पथ को चले गए और अपने संघ को यह आवेश दिया कि जब तक सुभिक्ष न हो जाये तब तक साधुओं को चाहिए कि वे अपना वायाँ हथ आगे करके उस पर एक अर्धफालक (कपड़ेका दुकड़ा) लटका लें। तथा दायें हाथसे भिक्षा द्वारा आहार ग्रहण करके, उसे दिन

के समय अपनी वसितका में कैठ कर खालें।

४. स्वेताम्बरोंके विविध गुच्छ

श्वेताम्बरों में विविध गच्छ प्रसिद्ध हैं, यथा—चैत्यवासी गच्छ, उपवेदागच्छ, खरतर गच्छ, तथा गच्छ, पार्श्वचन्द्र गच्छ, सार्धापौर्ण मीयक गच्छ, आंचलिक गच्छ, आगिसक गच्छ आहि। इनमेंसे आज खरतर, तथा व आंचलिक गच्छ ही उपलब्ध होते हैं। प्रत्येक गच्छको समाचारी जुदी है तथा उनके श्रावकोंकी सामायिक प्रतिक्रमण आदि विषयक विधियाँ भी जुदी हैं। कोई कल्याणकके दिन छह मानता है तो कोई पाँच। कोई पर्युषणका अन्तिम दिन भाइपद शु. ४।

'धर्मसागर' कृत पहावजीके अनुसार बी. नि. ५०२ में चैरय-बास प्रारम्भ हुआ। 'जिन बल्लभ सूरि' कृत संघपट्टकी भूमिकामें भी चैरयवासका कुल इतिहास उच्लिखित है। अनेकान्त वर्ष ३ अंक ५-१ के 'यति समाज' शीर्षकमें श्री अगरचन्द नाहटाने स्वेता-म्बर चैरयवासियों पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

अगहिलपुर पट्टण राजा दुर्लभदेवकी सभामें वर्द्ध मान सूरिके शिष्य जिनेस्वर सूरि द्वारा परास्त हो जाने पर यह चैत्यवासी गच्छ ही खरतर नामसे पुकारा जाने लगा।

ि. सं. १२८६ में श्री जगच्चन्द्र सूरिके उग्र ज़पसे प्रभावित होकर मेवाड़के राजाने उसके गच्छको 'तुषा गच्छ' नाम प्रदान किया।

मुखप्टीके नदले अंचलका अर्थात वस्त्रके छोरका उपयोग किया जानेके कारण 'आंचित्तिक गच्छ' प्रसिद्ध हुआ है।

५. अर्धफालक व इवेताम्बर विषयक समन्वय

द्सा,/प्र/६० प्रेमी जी-अब इस बातपर विचार करना है कि भाव-संग्रहकी कथामें (भद्रवाहु चरित्रके कर्ताने) इतना परिवर्तन वयौ किया। हमारी समफर्में इसका कारण भद्रबाहुका और श्वेताम्बर सम्प्रदायकी उत्पत्तिका समय है। भाव संप्रहके क्रानि तो भद्रकाहुको केवल निमित्तज्ञानी लिखा है। पर रत्ननन्दि उन्हें (श्रुतावतारके अनुसार) पंचम श्रुतकेवली लिखते हैं। दिगम्बर प्रन्थोंके अनुसार श्रुतकेवलोका शरीरान्त वी. नि. १६२ में हुआ है। (दे इतिहास/ ४/१ और श्वेताम्बरों की उत्पत्ति बी, नि. ६०६ (वि. १३६) में बतायों गयी है। दोनों के बीचमें इस ४५० वर्ष के अन्तरको पूरा करनेके लिए ही रत्ननन्दिने श्वेताम्बरसे पहले अधेकालक उत्पन्न होनेकी कल्पना की है। दूसरे श्वेताम्बर मत जिनचन्द्रके द्वारा ब्रह्मी-पुरमें प्रगट हुआ था, अत्ररव यह आवश्यक हुआ कि दुर्भिक्षके समय जो मत पगट हुआ था उसका स्थान व प्रवर्ते क इससे भिन्न मलाया जाये। इसलिए अर्घफालकको उत्पत्ति उज्जैनीमें बतायी गयी और इसके प्रवर्तक आचार्यका नाम भी स्थूलभद्र रखा, जी कि स्वेताम्बर आम्नायमें अति प्रसिद्ध है। उडजैनी नगरीमें बी, नि. १६२ में उत्पन्न होनेके पश्चात वह संघ अर्घफालकके रूपमें ४५० वर्ष तक विहार करता रहा। अर्थफालक संघवाले साधु जन वस्तिकार्मे भोजन लेने जाते थे. तो एक बस्त्रके टुकड़ेको वे अपनी बायौँ भुजापर लटका कर रखते थे, जिससे उनकी नग्नता छिप जाये। चयसि लौटनेपर उस वस्त्रको पुनः पृथक् करके वे दिगम्बर हो जाते थे। यही संघ कालयोगसे थी, नि. ई०ई में बल्लभीपुरीमें प्राप्त हुआ। उस समय उस संधका आचाय जिनचन्द्र था, जिसने उपरोक्त कथनानुसार इसे श्वेताम्बरके रूपमें प्रवर्तित कर दिया। इस प्रकार इसकी संगति भदवाहु श्रुतकेवली तथा १२ वर्षीय दुर्भिक्षके साथ भी बैठ जाती है। श्वेताम्बरोंके खादि पुरु स्थूलभद्रके साथ वन्सभीपुरके साथ, भावसंग्रह वेदर्शनसारके अनुसार जिनचन्द्र के साथ व बी. नि, ६०६ के साथ भी बेंठ जाती है। यदापि प्रेमीजी रतननन्दि

भहारककी इस कल्पनाकी तिर्चूल मताते हैं, और कहते हैं कि अर्ध-फालक नामका कोई भी सम्प्रदाय नहीं हुआ (द. सा./प्र./६१) परन्तु जनका ऐसा कहना योग्य नहीं, क्योंकि मथुराके कंगाली टीलेसे उपलब्ध कुशन कालीन (ई. २४०-३२० बी. नि. ६६७-५४०) कुछ प्राचीन आयाग पर्ट मिले हैं। जिनको पुरातत्त्व किभागने अर्ध-फालक मतका सिद्ध किया है। क्योंकि उनमें कुछ नग्न साधु अपने बायें हाथपर एक कपड़ाडाल कराजस काड़ेके द्वारा अपनी नग्नता छिपाते दिखाये गये हैं। वे साधु कपड़ा तो अपने बायें हाथपर लटकाये हैं और कमण्डल या भिक्षापत्र अपने दाहिने हाथमें लिये हुए हैं (भद्रवाह चरित्र/प्र. उदयलाल) Dr. Buhler in Indian antiquity. Vol 2, Page 136 At his (Nemisha's) left knee stands a small nacked male characterised by the cloth in his left hand as an ascetic with uplifted right hand.

अर्थात् उसके बायीं और एक छोटी-सी नग्न पुरुषाकृति है जिसके बायों हाथपर एक वपड़ा है और एक साधुके रूपमें उसका दायाँ हाथ ऊपरको उठा हुआ है। जैन सिद्धान्त भास्कर भाग १० खण्ड २ पृ. ८० के फुटनोटमें डॉ बायुदेवशरण अथवालके अनुसार पहमें नीचे एक स्त्री और उसके सामने एक नग्न श्रमण अंकित है। वह एक हाथमें सम्मार्जिनी और बायें हाथमें एक कपड़ा लिये हुए है। शेष शरीर नग्न है।

भद्रवाहु चरित्र /प. उदयलाल — आगे चलवर वि. १३६ (वी.नि. ६०६) में वह प्रगट रूपसे श्वेताम्बर सम्प्रदायमें प्रवर्तित हो गया । प्रारम्भमें उसका उक्तेख 'निर्धन्थ श्वेतपट्ट महाश्रमण संघ' के नामसे होता था। उपरान्त बही श्वेताम्बर कहलाया। इसी प्रकार दिगम्बर सम्प्रदाय भी पहलें 'निर्धन्थ श्रमण संघ' के नामसे पुकारा जाता था। उप-रान्त वह दिग्वास और फिर दिगम्बर कहलाने लगा।

६. प्रवर्तकों विषयक समन्वय

दिगम्बर प्रन्थ दर्शनसारके अनुसार इवेताम्बर सम्प्रदायके प्रवर्तक शान्त्याचार्यके शिष्य तथा भद्रवाहु प्रथम (पंचम श्रुतकेवली) के प्रशिष्य जिनचन्द्र थे। मन्दी संघ की गुर्वविली के अनुसार जिनचन्द्र भद्रवाहु हि. के प्रशिष्य थे प्रथम के नहीं। मे कुन्दकुन्द के गुरु थे। (दे. इतिहास ७/२) परन्तु स्वेताम्बर प्रन्थोंमें इस नामके आचार्योंका कहीं भी उच्लेख नहीं मिलता। दूसरी तरफ स्वेताम्बर आम्नायके अनुसार दिगम्बर सम्प्रदायके प्रवर्त्तक शिवभृति या सहस्रमायके अनुसार है, परम्बु दिगम्बर प्रन्थोंमें इस नामके आचार्योंका कहीं पता नहीं चलता। भद्रवाहु चरित्रके कर्ता रत्ननन्दि 'रामध्य' व स्थूलभद्रको इसका प्रवर्तक बताते हैं। इन्द्रः स्वेताम्बरगृष्टः तदादयः संश्वपिश्वाहष्टयः (गो, की./जी, प्र./१६) में टोकाकारने स्वेताम्बर सम्प्रवायका प्रवर्तक 'इन्द्र' नामके आचार्यको त्ताया है। सेमी जी को गोम्मटसारके टोकाकारका मत इह है(द,सा./प्र.६०प्रेमी जी)।

७. उत्पत्ति काल विषयक समन्वय

द. सा./प्र. ६० प्रेमीकी — दिगम्बर व श्वेताम्बर सम्प्रदाय क्व हुए यह विषय बहुत ही गहरी अन्धेरीमें छिपा हुआ है। श्रुतावतारमें बतायी गयी गुर्वावलीमें गौतमसे लेकर जम्बू स्वामी तककी परम्परा दौनो हो सम्प्रदायको जूँ की तूँ मान्य है। इससे आगेके १ श्रुतकेव लियों- के नाम दिगम्बर सम्प्रदायमें कुछ और श्वेताम्बर सम्प्रदायमें कुछ और है। परन्तु भद्रवाहुको अवश्य दोनों स्वीकार करते हैं। इससे पता चलता है कि भद्रवाहुको अवश्य दोनों स्वीकार करते हैं। इससे पता चलता है कि भद्रवाहुको अवश्य दोनों जुवा जुवा हो गये हैं। दुसरी बात यह भी है कि श्वेताम्बर सान्य सुत्र अन्योकी रचनाका काल वी. कि. १०० वि. सं. ११० के सगभग है। उस समय वे वश्वभीपुरमें देवधिंगणी अमाअमणकी अध्यक्षतामें परिस्थित वश्व संगृहोत किये गये थे श्वेताम्बर्गक अनुसार संकलन का यह कार्य

क्यों कि वि. श. २ में किया गया था इस लिए उसकी उत्पत्ति का काल वि. १३६ भी माना जा सकता है। संघ को स्थापना के तुरन्त पश्चात् अपनी मान्यताओं को वैध सिद्ध करने के लिये सूत्र संग्रह का विचार महुत संगत है।

[दिगम्बराचार श्वेताम्बरोंकी उत्पत्ति वि. सं. १३६ (वी. नि. ६०६) में बता रहे हैं और श्वेताम्बराचार्य दिगम्बरोंकी उत्पत्ति वि. सं. १३६ (वी. नि. ६०६) में बता रहे हैं। १२ वर्षीय दुर्भिक्ष जो कि संघ विभेदमें प्रधान निमित्त है वी. नि. ६०६ (वि. सं. १३६) में पड़ा था। इन सब बातोंको देखते हुए भद्रबाहु चरित्रकी मान्यता कुछ युक्त जँबती है, कि वि. पू. ३२० में अर्धफालक संघ उत्पन्न हुआ, और धीरे-धीरे वि. सं. १३६ में श्वेताम्बर के स्पमें परिवर्तित हो गया। श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें दिगम्बर मतको उत्पत्ति सो समय (वि. १३६) में बताया जाना भी इसी बातकी सिद्धि करता है कि वि. सं. १३६ में ही वह उत्पन्न हुआ था। अपने उत्पन्न होते ही उन्हें अपनेको मूलसंघी सिद्ध करनेके लिए दिगम्बरकी उत्पत्तिक सम्बन्धमें यह कथा गदनी पड़ी होगी। इसके अतिरिक्त भी दिगम्बर मतकी प्राचीनता निम्नमें दिये गये प्रमाणोंसे सिद्ध होती है।]

८ दिगम्बर मतकी प्राचीनता

- १. श्वेलाम्बर मान्य कथाको स्वीकार कर लें तो शिवभृतिने जिनकरण (दिगम्बर मत) को स्वीकार किया था, उसका कारण इसके
 अतिरिक्त और वया हो सकता है कि जिनकरणी मार्गसे भ्रष्ट साधुओं में
 फिरसे जिनकरण (दिगम्बरता) का प्रचार किया जाये। कथाके
 अनुसार शिवभृति गुरुके सुखसे जिनकरणका उपदेश सुनकर उसे
 धारण करनेमें निश्चनाप्रतिज्ञ हुए थे। इससे पता चलता है कि
 शिवभृतिसे पहले भी जिनकरण अवश्य था जो इस समय शिथिल
 हो चुका था। २. श्वेताम्बर प्रत्थों मे ऐसा उरलेख पाया जाता है—
 'संयमो जिनकरणस्य दु साध्योऽयं ततोऽधुना। नतं स्थितरकरणस्य
 तस्मादस्याभिराशितम्। तथा- दुर्धरो मुलमार्गाऽयं न धर्मुं शब्यते
 ततः।'' इस उद्धरणसे स्पष्ट कहा गया है कि जिनकरण हो मूलमार्ग है,
 परन्तु कालको करालताके कारण आज उसका धारण किया जाना
 शक्य नहीं है। इसीलिए इमने स्थिरकरणनाका आश्रय लिया है।
 इसर तो श्वेताम्बराचार्य ऐसा लिखते हैं दूसरी तरफ दिगम्बराचार्य
 क्या कहते हैं—
- र. क. आ./१० विषयाशावशातीलो निरासम्भोऽपरिग्रहः । ज्ञानध्यान-तपारक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ।१०। — जो विषयोकी आशाके वश न हो और परिग्रहसे रहित तथा ज्ञान-ध्यान-तपमें सबसीन हो वह तपस्वी गुरु प्रशंसनीय है। ३ इसके अतिरिक्त विक्रशादित्यकी सभाके नवरत्नों में से वराहमिहिर भी नम्न साधुओंका उन्लेख करते देखे जाते हैं —

विष्णोभीगवतामयश्व सवितुर्वित्रा विदुर्बाह्मणः मातूणामिति मातृमण्डलविदः शंभोः समस्माइद्विनः ।। शाक्याः सर्व हिताय शान्तमनसी नगना
जिनामां विदुर्ये यं देवसुपात्रिताः स्वविधिना ते तस्य कुर्युः क्रियास्।"

= भाव यह है कि वैष्णव लोग विष्णुकी प्रतिष्ठा करें, सूर्योपजीवी
लोग सूर्यकी उपासना वरें; वित्र लोग ब्रह्माकी करें; ब्रह्माणी व
इन्द्राणी प्रभृति सप्त मातृमण्डलकी उनके माननेवाले अर्ची करें,
बौद्ध लोग बुद्धकी प्रतिष्ठा वरें, नगन (दिगम्बर साधु) लोग जिन
भगवास्की पर्युपासना वरें। थोड़े शब्दोमे यो कहिए कि जिस-जिस
देवके जो उपासक हैं वे उस उसकी अपनी-अपनी विधिसे उपासना
करें। ४. महाभारत जो कि वेदश्यास जी द्वारा ईसत्री पूर्व बहुत
प्राचीन कालमें रचा गया था, वह भी दिगम्बर मत्का उन्लेख करता
है। यथा—

श्साध्यामस्ताव दित्युवरवा प्रातिष्ठतोत्त द्वस्ते कुष्डले गृहीत्वा सोऽपश्य-दथ पथि नग्नं क्षपणकमागच्छेन्तं मुहुर्मुहुर्द श्यमानमदश्यमानं च। (महाभारत परिच्छेद ३) = इसके अतिरिक्त भी महापुराणअश्व-मेधाधिकारमे ४६।४।ए. ६२०१ पर दिगम्बरत्व व अस्नानत्वका स्पष्ट उन्लेख मिलता है। तथा ४६।१८।ए. ६१६६ पर दिगम्बर साधु सरीखी ही आहार विहार चर्या आदि सम्बन्धी उन्लेख पाया जाता है। ४. इसके अतिरिक्त भी दिगम्बराम्नायमें कुन्दकुन्द प्रभृति आचार्यों-कृत ईसवी पहिली शताब्दीके ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, जब कि श्वेताम्बरोंके इतने प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त नहीं हैं।

९, इवेताम्बरके अनुसार दिगम्बर मतकी उत्पत्ति

यह सारा विषय उत्तराध्ययन सूत्र/अध्याय ३/चूर्ण सूत्र १७८ की श्री शांति सूरिकृत संस्कृत वृत्तिके तथा उसमें उद्धृत विविध आग-मोक्त गाथाओं अधार १र संकतित किया गया है।

१. द्वित्रिध कल्प निर्देश

हिगम्बर मतकी उत्पत्तिसे पूर्व दिगम्बर व श्वेताम्बर ऐसे दो सम्प्र-दायोंका नाम नहीं था. परम्तु साधुओंके दो कल्प अवश्य थे —स्थिविर कल्प व जिन कल्प, जिनके तथुण व भेद निम्न प्रकार हैं।

उत्तराध्ययन टीका/पृ. ''स्थिवराश्च स्थिशीकरणकारिण'। (पृ. १४२)। यः स्याज्जिन इव प्रभुः। (पृ. १७६ पर उद्गृश्वत श्लोक)। स च प्रथमसँहनन एव (टीका पृ. १७६)।''—त्त्रिपर्य यह कि--

विकल्प	स्थविर कल्प	जिन केस्प
8	होन संहननधारी	उत्तम संहतनधारी
٦	अपवादानुसारी मृदु आचार-	्जिनेन्द्र प्रभुवत् उत्सर्ग मार्गा-
ļ	वा न्	नुसारी कठोर आचारवान् ।
3	मन्दिर मठ आदिमें ससंघ	एकाकी वन विहारी
1	आवास	
8	श्रावकोंके भोजन कालमें	श्रायकजन ला पीकर निवृत्त
į	मिक्षावृत्ति ।	हो चुकें ऐसे तीसरे पहरमें
		भिशावृत्ति। नदा खुचा
Ì		मिलातो ले लिया अन्यथा उपवास किया।
إ	रोग आदि होनेपर उसका	. उपचार न करते हैं न कर-
`	उपचार करते हैं	बाते हैं
ξ	ऑखमें रजाणु पड़ जानेपर	न निकासते हैं न निकसवाते
Ì	अथवा पॉवमें द्यूल लग जाने-	8
	पर उसे निकालते या निकल-	
	बाते हैं	
৩	सिंह आदिके समक्ष आ जाने-	वहाँ ही ध्यानस्थ होकर खड़े
	पर भागकर अपनी रक्षा करते	रह जाते हैं।
	हैं।	
5	साँक पड़नेपर भी उचित	जहाँ दिन छिपा बही खड़े हो
	स्थान की खोज करते हैं	जाते हैं।

इस प्रकारके शक्तिकृत भेदके अतिरिक्त इनमें बाह्य वेषकृत कोई भेद नहीं होता। बाह्य वेषकी अपेक्षा दोनों ही चार-चार प्रकारके होते हैं। यथा---

उत्तराध्ययन/पृ. १७१ पर उद्दध्त गाथा — जिणक व्पिया व दुविहा पाणि – पाया पिडिग्गहधरा य । पाउरजमया उरणा एक के का ते भवे दुविहा । य एताच् वर्ज वेद्दोषान् धर्मीपकरणादते । तस्य स्वग्रहणं युक्तं, यः स्याज्जिन इव प्रभुः । = जिनकल्पो साधु चार प्रकारके होते हैं —संवस्त पाणिपात्राहारी, अवस्व पाणिपात्राहारी, सबस्व पात्रधारी और अवस्व परन्तु पात्रधारी । जो आचार विषयक निम्न दोषोंको बिना उपकरणोंके ही टालनेको समर्थ है, उनके लिए दो इनका न प्रहण करना ही योग्य है, परन्तु जो ऐसा करनेको समर्थ नहीं वे उपकर्ण ग्रहण करते हैं।

२. जिनकल्पका विच्छेद

उत्तराध्ययन/टोका/पृ. एष ब्युच्छिन्न । (१७६)। न चेदानी तद-स्तीति · · · । (१८०)। = बीर निर्वाणके ६२ वर्ष पश्चात जम्बू स्वामी-के निर्वाण पर्यन्त ही जिनकल्पकी उपलब्धि होती थी। उसके पश्चात इस कालमें उत्तम संहनन आदिके अभावके कारण उसकी ब्युच्छित्ति हो गयी है।

३. उपकरण व उनकी सार्थकता

उत्तराध्ययन/पृ. १७६ पर उद्दधृत -- "जन्तवो बहबस्संन्ति दुर्द र्शा मांस-चक्षुषाम् । तेभ्यः समृतं दयार्थं तु रजोहरणधारणम् ।१। सन्ति संपा-तियाः सत्त्वाः सुक्ष्माश्च व्यापिनोऽ॰रे । तेषां रशानिमित्तं च विज्ञेया मुखबिक्का । ३। किंच-भवन्ति जन्तवो यस्यात्रपानेषु केषुचित्। तस्मात्तर्वा परीक्षार्थं पात्रग्रहणिष्यते । अपरं च -सम्यक्त्वज्ञान-शोलानि तपश्चेतीह सिद्धये । तेषामनुग्रहाथीय स्मृतं चीवरधारणस् ।५। शीतवातातपैद शमशकेश्चापि खेदितः। मा सम्यक्रवादिषु ध्यानं न सम्यक् संविधास्यति । ई। तस्य त्वप्रहुणे युत्त स्थात् क्षुद्रशाणि-विनाशनम्। ज्ञानाध्यानः पघातो या महान् दोषस्तदैव तु ।७।" बहुतसे जन्तु ऐसे होते है जो इन चमंचक्षुओसे दिखाई नहीं देते। विहार शय्या आसन आदि रूप प्रवृत्तियों में उनकी रक्षाके अर्थ रजोहरण है। बायुमण्डलमें सर्वत्र ऐसे सूक्ष्म जीव व्याप्त है जो मुखमें अथवा भोजन पान आदिमें स्वतः पड़ते रहते हैं। उनकी रशाके लिए मुखबिखका है। बहुत सम्भव है कि भिक्षामे प्राप्त अन्न पान आदिकमें कदाचित कोई जन्तु पड़े हों। अत. ठीक प्रकारसे देख शोधकर खाने-के लिए पात्रोंका ग्रहण इष्ट है। इनके अतिरिक्त सम्यवस्य, ज्ञान, शील व तपकी सिदिके अर्थ वस्त्र ग्रहण की अपना है, ताकि ऐसा न हो कि कही शोत वात आतप डांस व अवस्वी आदिकी वाधाओं से खेदित होनेपर कोई इनमे ठीक प्रकारसे ध्यान व उपयोग न रख सके। ये सभी पदार्थ बाह्याभ्यन्तर संयमके उपकारी होनेसे उपकरण संज्ञाको प्राप्त होते हैं, जिनका ग्रहण न करनेपर, क्षुद्र प्राणियों का विनाश तथा ज्ञान ध्यान आदिका उपवात रूप महान् दोष प्राप्त होते हैं।

उत्तराध्ययन/टीका/पृ. १७६ "धर्मोंपकरणमेंदैतत न तु परिग्रहस्तथा।" दश वैकालिक सूत्र/अ. ६ गा. १६ "जं पि वर्थं य पायं वा. केवल पाय-पूंछणं। तेऽपि संजमलज्जट्ठा, धारेन्ति परिष्ठरन्ति य।"—अर्थात— मूच्छरिहित साधुके लिए ये सब धर्मोपकरण है न कि परिग्रह, क्योंकि मूच्छिको परिग्रह संज्ञा प्राप्त होती है वस्तुको नहीं। वस्र व पात्रादि इन ज्पकरणोंको साधुजन संयमकी रक्षार्थ तथा सज्जा निवा-रणके लिए धारण करते हैं, और उनके प्रति इतने अनासक्त रहते हैं कि समय आनेपर जीर्ण तृणकी भाँति वे इनका स्याग भी कर देते हैं।

४. दिगम्बर मत प्रवर्तक शिवभूतिका परिचय

उत्तराध्ययन/चूर्णसूत्र १६४ का उपोइघात/पृ. १५१ ''जमानिप्रभृतीनां निद्धगानां शिष्यास्तद्भक्तियुक्तितया स्वयमागमानुसारिमतयोऽपि गुरुप्रत्ययाद्विपरीतमर्थं प्रतिपन्नः।'

उत्तराध्ययन/चूर्णसूत्र १७८/पृ. १७६ पर उद्दश्वत "छव्वाससएहि णवोस-रेहि सिद्धिगयस्स बोरस्स । तो बोडियाण दिट्ठी रहवीपुरे समु-पणा ।" = स्वेताम्बर आगममें यत्र तत्र जमाति आदि सात तथा शिवसूति नामक अष्टम निह्नबोंका कथन अत्यन्त प्रसिद्ध है । निह्नब संज्ञाको प्राप्त ये स्थिवरकल्पी साधु तथा इनके शिष्य यद्यपि आगमके प्रति भक्ति गुक्त होनेके कारण स्वयं आगमानुसारी बुद्धिवाले होते हैं, परन्तु गुरु आज्ञासे निपरीत अर्थका प्रतिपादन करनेके कारण संघसे विहिष्कृत कर दिये जानेपर स्वयं स्वष्ट्यन्द रूपसे अपने-अपने मतींका प्रसार करते हैं, जिनसे विभिन्न सम्प्रदायों न मतमतान्तरोंकी उत्पत्ति होती है। भगवान् वीरके निर्वाण होनेके ६०६ वर्ष पश्चात् अर्थात् वि. सं. १३६ में 'रथवीपुर'नामक नगरमें वोटिक (दिगम्बर) मतवाला अष्टम निह्नव शिवधृति उत्पन्न हुआ।

उत्तराध्ययन/चूणेसूत्र १७८/पृ, १७६-१८० का भावार्थ = यह शिवभूति अपनी गृहस्थावस्थामें अत्यन्त स्वच्छन्द वृत्तिवाला एक राजसेवक था, जिसने किसी समय राजाके एक शत्रुको जीतकर राजाको प्रसन्न किया और उपलक्ष्यमें उससे नगरमें स्वच्छन्द घूमनेकी आज्ञा प्राप्त कर ली। वह रात्रिको भी इधर-उधर घूमता रहता था, जिसके कारण उसकी स्त्री व माता उससे तंग आ गर्यों, और एक रात्रिको ,जब वह वर आया तो उन्होंने द्वार नहीं खोले। शिवभूति कुद्ध होकर उपा-अयमें चला गया और गुरुके मना करनेपर भी 'खेल मक्षक' नामक किसी साधुसे दीक्षा लेकर स्वयं केशलोंच कर लिया। कुछ काल पश्चात् ससंघ विहार करता हुआ जब वह पुनः इस नगरमें आया तो राजाने अपना प्रिय जान उसे एक रत्न कम्बल भेंट किया। गुरुकी आज्ञाके बिना भी उसने वह रत्न कम्बन ग्रहण कर लिये और उसे गुरुसे छिपाकर अपने पास रखता रहा। एक दिन जब वह भिक्षा-चयकि लिए बाहर गया था, तब गुरुने इस परिग्रहसे उसकी रक्षा करनेके लिए उसकी पोटलीमें से वह कम्बल निकाल लिया और बिना पूछे उसमेसे फाड़कर साधुओं के पाँव पोंछनेके आसन बना दिये। अतः शिवभूति भीतर ही भीतर गुरुके प्रति रुष्ट रहने लगा।

शिवभृतिसे दिगम्बर मतको उत्पत्ति :

उत्तराध्ययन/चूर्ण सूत्र १७८/पृ. १७६—''इत्यादि सो (सिवधूइ) कि एस एवं ण कोरइ। ते हिं भणियं —एष ० पुन्छितः। मम न ठ युन्छि द्वते इति स एव परलोकाधिना कर्त्तन्यः।

उत्तराध्ययन/चूर्ण सूत्र १७८/१०० "न चेदानों तदस्तीत्यादिकया प्रागु-क्तमा च युक्थोच्यमानोऽसौ कर्मोद्दयेन चीवरादिकं त्यक्ता गतः । . . . तस्योत्तरा भगिनी, उद्याने स्थितं वन्दिका गता, तं च दृष्ट्वा तयापि चीवरादिकं "।वं त्यक्तं, तदा भिक्षाये प्रविष्टा गणिकया दृष्टा । मास्मामु लोको विरङ्क्षीत इति उर्रास तस्याः पोतिका बद्धा । सा नेच्छति, तैन भणितं — तिष्ठतु एवा तब देवता दत्ता । तेन च द्वौ शिष्यौ प्रविज्ञतौ —कौण्डिन्यः कोटिवीरश्च, सतः शिष्याणां परम्परा स्पर्शी जातः ।"—

उत्तराध्ययन। चूर्णसूत्र १७८/पृ. १८० पर उद्गधृत→"उहाए पण्णत्तं नोडियसिवभूइ उत्तरा हि इमं । मिच्छादंसणमिणमो रहवीपुरे समु-ब्पण्णं।१। बोडियसिवभूइओ नोडियलिंगरुस होई उप्पक्ती। कोडिण्ण-कोहबीरा परंपराफासमुष्पन्नः ।२।''= एक दिन गुरु जब पूर्वोक्त प्रकार जिनकत्पके स्वरूपका कथम कर रहे थे, तब शिवभूतिने उनसे पूछा कि किस कारणसे अब आप साधुओंको जिनकल्पमें दीक्षित नहीं करते हैं। 'वह मार्ग अब व्यु क्लिन्न हो गया है', गुरुके ऐसा कहनेपर वह बोला कि भले ही दूसरोंके लिए ब्युच्छित्र हो गया हो, परन्तु मेरे लिए वह व्युच्छिन्न नहीं हुआ है। सर्वथा निष्परिग्रही होनेसे परलोकार्थीके लिए वही प्रहण करना कर्त्तव्य है।-"होन संहननके कारण इस कालमें वह सम्भव नहीं है ", गुरुके पूर्वोक्त प्रकार ऐसा सममानेपर भी मिथ्यात्व कर्मोद्यवंश उसने गुरुकी बात स्वीकार नहीं की, और वस्त्र त्यागकर अकेला वनमें चला गया। उसके पीछे उसकी बहन भी उसकी बन्दनार्थ उद्यानमें गंजी और उसे देखकर वस्त्र त्याग नग्न हो गयी। एक दिन जब वह भिक्षार्थ नगरमें प्रवेश-कर रही थी, तो एक गणिकाने उसे एक साड़ी पहना दी, जिसे देवता प्रदत्त कहकर शिक्भृतिने प्रहण करनेकी आज्ञा दे दी। शिवभूतिने कौडिन्य व कोटिबोर नामक दो शिष्योंको दीक्षा दो जिनकी परम्परामें ही यह बोटिक या दिगम्बर सम्प्रदाय उत्पन्न हुआ है।

१०. ढ्ंडिया पंथ

१. दिगम्बरके अनुसार उत्पत्ति :

कुछ काल पश्चात् इसी भवेताम्बर संघमेंसे हूं हिया पंथ अपरनाम स्थानकवासी मतकी उत्पत्ति हुई। यथा—

मद्रबाहु चरित्र /४/१६०/१६१ मृते विक्रमभूपासे सप्तविंशतिसंयुते। दशपञ्चशतेऽव्हानामतीते शृणुतापरम् ११६०। छङ्कामतमभूदेकं लोपकं धर्मकर्मणः। देशेऽत्र गौर्जरे स्व्याते विद्वत्ताणितिनर्जरे ११६०। अणहिल्लपत्तने रम्धे प्राग्वाटकुसजोऽभवतः। छङ्काऽभिधो महामानी स्वेतांशुकमहाश्रयी।१६६। दृष्टात्मा दृष्टभावेन कुपति पापमण्डितः। तीव्रमिध्यात्वपाकेन छङ्कामतमकरपश्रतः।१६०। तन्मतेऽपि च ध्रयांसे मतभेदाः समाश्रिताः ११६१। ⇒विक्रमकी मृत्युके १६२० वर्ष बाद धर्म कर्मका सर्वथा नाश करनेवाला एक छङ्कामत (द्वं विया मत्) प्रगट हुआ। इसीकी विशेष व्याख्या यों है कि—गुर्जर देश (गुजरात) में एक अणहिल नामका नगर है। उसमें प्राग्वाट (कुलम्बी) कुलमें सुङ्का नामका धारक एक श्वेताम्बरी हुआ है। उस दृष्ट आत्माने कुपित होकर तीव मिध्यात्वके उदयसे खोटे परिणामौंके द्वारा छङ्कामत चलाया। उनमें भी पीछे अनेक भेद हो गये।

द् पा./टी./११/११/१२ तन्मध्ये श्वेताम्बराभासा उत्पन्नाः। = उनमेंसे (श्वेताम्बरियोंमेंसे) ही श्वेताम्बराभास (ह्रंडिया मत) उत्पन्न हुआ।

२ इवेताम्बरायाम्नायके अनुसार उत्पत्ति :

विक्रम सं. १४७२ में इस मतके संस्थापक लॉकाशाहका जन्म हुआ।

यह व्यक्ति अहमदानादमें प्रन्थ लिखनेका व्यवसाय करता था। एक
बार एक प्रन्थ लिखनेकी उजरतके विषयमें किसी यतिसे उसकी
कहा मुनी हो गयी, जिसके कारण उसने सूर्तिपूजाको तथा कुछ
आचार विचारोंको आगम विरुद्ध बताकर एक स्वतन्त्रमतका प्रचार
करना प्रारम्भ कर दिया उसने २२ शिष्योंको दीक्षित किया,
जिनकी परम्परामे 'लॉकागच्छ'की उत्पक्ति हुई। पीछे इसमें भी
अनेकों भेद प्रभेद उत्पन्न हो गये।

स्रतके एक साधुने इस लोंकामतमें भी कुछ सुधार करके 'द्वांदिया' नामक एक नये समप्रदायको जन्म दिया, जिससे कि पूर्ववर्ती भी सभी लोंकानुयायी द्वादिया नामसे प्रसिद्ध हो गये। स्थानकोंमें रहनेके कारण इसके साधु स्थानकवासी कहलाने हैं। इसी समप्रदायमें आचार्य भिक्षुने तेरहपन्थकी स्थापना की

३. स्त्ररूप

भद्रबाहु चरित्र/४/१६१ सुरेन्द्राची जिनेन्द्राची तत्पूजो दानसुत्तमस्। समुत्थाप्य स पापातमा प्रतापो जिनसूत्रवतः ११६१ । चिन सूर्यसे प्रतिकृत होकर, देवताओं से भी पूजनीय जिन प्रतिमाकी पूजा दानादि सब कर्मीका उत्थापन करके वह पापारमा जिन भगवान्के व्रतीसे प्रतिकृत हो गया ।

द, पा./टी./११/११/१२ तन्मध्ये श्वेताम्बराभासा उत्पन्नास्ते त्वतीव पापिष्ठाः देवपूजादिकं किन्न पापकर्मेदमिति कथयन्ति, मण्डलयस्पर्वत्र भाण्डप्रक्षालनोदकं पिवन्ति इत्यादि, बहुदोषबन्तः (=छन (श्वेता-म्बरों) मेंसे श्वेताम्बराभासी (द्वंद्विया मती) उत्पन्न हुए। वे तीव पापिष्ठ होकर देव पूजादिकको भी पापकर्म बताने लगे। मण्डल मत्तकी भाँति वर्तनोंके धोवनका पानी पीने लगे। इस प्रकार बहुत दोषवन्त हो गये।

नोट—यह सम्प्रदाय श्वेताम्बर मान्य आगम सूत्रोंमेंसे ३२ को मान्य करता है। परन्तु श्वेताम्बराचार्यों कृत उनकी टीकाएँ इसे मान्य नहीं हैं।

[a]

षंड — दे, नपूंसक।

षडावर्यक दे आवश्यक ।

षट् कर्म - दे. सावध/३।

षट् काय- हे, काय।

घट् काल-दे, कात/४।

धट्खंड — भरतादि १०० कर्मभूमियों रूप क्षेत्रों में से प्रत्येकमें दो-दो निंदगाँ व एक-एक विज्ञार्ध पर्वत हैं। जिनके कारण वह छह लण्डों में विभाजित हो जाता है। इन्हें हो घट खण्ड कहते हैं। इनमें-से एक आर्थ व शेष पाँच म्लेच्छ खण्ड हैं। इन्हीं घट् खण्डोंको चक्रवर्ती जीतता है। विज्ञयार्थ तथा आर्थ खण्ड सहित तीन खण्डों-को अर्ध चक्रवर्ती जीतता है।—दे म्लेच्छ खण्ड।

षट् खंडागम -- यह कर्म सिद्धान्त विषयक प्रन्थ है। इसकी उत्पत्ति मूल द्वादशांग श्रुतस्कन्धसे हुई है (दे. श्रुतज्ञान) । इसके छह सण्ड हैं—१ जीवड्राण, र खुहाबन्ध, ३ बन्धस्वामिरव विचय, ४ वेदना, ४ वर्गणा, ६ महाबन्ध । मूल ग्रन्थके पाँच खण्ड प्राकृत भाषामें सूत्र निबद्ध हैं। इनमें पहले खण्डके सूत्र पुष्पदन्त (ई.१०६-(३६) आचार्यके भनाये हुए हैं। पीछे उनका शरीरान्त हो जानेके कारण शेष चार खण्डोंके पूरे सूत्र आ. भूतम लि (ई!र३६-९१६) ने ननायेथे। छठा खण्ड सविस्तर रूपसे आ, भूतन्नलि द्वारा ननाया गया है। अतः इसके प्रथम पाँच खण्डोंपर तो अनेकों टीकाएँ उपलब्ध हैं, परन्तु छठे खण्डपर वीरसेन स्वामीने संक्षिप्त व्याख्याके अतिरिक्त और कोई टोका नहीं की है। १. सबं प्रथम टीका आर. कुन्दकुन्द (ई, १२७-१७६) द्वारा इसके प्रथम तीन खण्डोंपर रची गयी थी। उस टीकाका नाम 'परिकर्म' था। २. दूसरी टीका आ. समन्तभद्र (ई. श. २) द्वारा इसके प्रथम पाँच छण्डोंपर रची गयी। ३ तीसरी टीका आ. शामकुण्ड (ई. श. ३) द्वारा इसके पुर्व पाँच लण्डोंपर रची गयी है। ४ चौथी टीका आ, बीरसेन स्वामी (ई. ७.७०-≍२७) कृत है। (वि**दीय दं०** परिश्विष्ट)।

षट्गुणहानि वृद्धि—१. अविभाग प्रतिच्छेदोंमें हानि वृद्धिका नाम ही षट्गुण हानि वृद्धि है

पं. का ति, प्र./=४ धर्मः (द्रव्य) अगुरुत्युभिगृजै रगुरुत्तयुखाभिधानस्य स्वस्वपतिष्ठत्विन्यस्य स्वभावस्याविभागपरिच्छेदैः प्रतिसमय-संभवत्वप्रद्र्यानपतितवृद्धिहामिभिरनन्तैः सदा परिणतस्वा-दृत्पादव्यपत्वेऽपि । र्ध्यमे (धर्मास्तिकाय) अगुरुत्यपुणों रूपसे अर्थात अगुरुत्यपुणों रूपसे अर्थात अगुरुत्यपुत्व नामका जो स्वरूपप्रतिष्ठत्वके कारणभूत स्वभाव उसके अविभागपतिच्छेदौं स्व जो कि प्रतिसमय होनेवाली वर्थानपतित वृद्धि हानिवाले अनन्त हैं उनके रूपसे सदैव परिण-मित होनेके उत्पाद-व्यय स्वभाववाला है।

गो. जो./जो. प्र /१६६/१०१६/१ धर्मधिमिदीनां अगुरुत्वधुगुणाविभागप्रतिच्छेदः स्वद्रव्यर्वस्य निमित्तभूत्राक्तिविशेषाः षड्वृद्धिभिवर्धमानवड्हानिभिश्च हीयमानाः परिणमन्ति । --धर्म और अधर्म
द्रव्योक्ते अपने द्रव्यत्वको कारणभूत ,शक्ति विशेष रूप जो अगुरुत्वधु
नामक गुणके अविभाग प्रतिच्छेद्रसे अनन्त भाग वृद्धि आदि, तथा
षट्स्थान हानिके द्वारा वर्धमान और हीयमान होता है।

२. एक समयमें एक ही वृद्धि या हानि होती है

थ. खं, १०/४,२,४/सू. व टी./२०२-२०५/४६६ 'तिण्णिवङ्बितिण्णि-हाणीओ केवचिरं कालादी होंति। जहण्णेण एगसमयं ।२०२।--- असंखेजजभागवङ्ढीए जहण्लेण एगसमयमन्छिद्रणं विदिए समए सेसतिण्णं वड्ढीणमेगवडिं्ढ चदुण्णं हाणीणमेगतमहाणि वा गरस्स असंबेडजभागवाङ्ढिकालो जहण्णेण एगसम्ओ होदि । एवं सेसदो-बह्दीणं तिष्णिहाणीणं च एनसमयपुरूवणा कादध्वा। 'उक्कस्सेण आवित्याए असंखेजजदिभागो ।२०३: '--एका जीवी जिम्ह किम्ह वि जोगर्ठाणे द्विदो असंखेज्जभागवङ्ढिजोगं गदो । तत्थ एकसमय-मिक्छदूण विदियसमए ततो असंखेजजदिभागुत्तरजोगं गदो। एवं दोण्णमसंखेरजभागवङ्हिसमयाणसुवलद्भी जादा । 'असंखेरजगुण-वड्ढिहाणी केवचिरं कालादो होंति। जहण्येण एगसमओ ।२०४१'-असंखेनजगुणविद्धमसंखेनजगुणहाणि वा एगसमयं काऊण अणिप-दबड्ढि-हाणीणं गदस्स एगसमञ्जो होदि। 'उनकस्सेण अंतो मुहूत्तं ।२०६।' ='तीन वृद्धियाँ और तीन हानियाँ कितने काल तक होती हैं! जघन्यसे एक समय होती हैं।२०२१--असंख्यात भाग वृद्धि होनेपर जबन्यसे एक समय रहकर द्वितीय समयमें शेष तीन वृद्धिमें किसी इद्धि अथवा चार हानियोंमें किसी एक हानिको प्राप्त होनेपर असंख्यात भागवृद्धिका काल जधन्यसे एक समय होता है। इसी प्रकार शेष दो बृद्धियों और तीन हानियोंके एक समयकी प्ररूपणा करनी चाहिए। 'उत्कर्षसे उक्त हानि-वृद्धियोंका काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है।२०३।'-- एक जीव जिस किसी भी योगस्थानमें स्थित होकर असंख्यात भागवृद्धिको प्राप्त हुआ। वहाँ एक समय रहकर दूसरे समयमें उससे असंख्यातवें भागसे अधिक योगको प्राप्त हुआ ! इस प्रकार असंख्यात भाग वृद्धिके दो समयोंकी उपलब्धि हुई। (इसी प्रकार तीन आदि समयोंमें आवली पर्यन्त लाग्न कर लेना) । 'असंख्यात गुणवृद्धि और हानि िलने काल तक होती है। जबन्यसे एक समय होती है।२०४। अस्यात पुणवृद्धि अथवा असंख्यात गुण हानिको एक समय करने अविपक्षित वृद्धिया हानिको प्राप्त होनेपर एक समय होता है। 'उक्त हुहिए व हानि उत्कर्षसे अन्तर्मुहुर्त काल तक रहती है ।२०५।

३. स्थिति आदि बन्धोंमें वृद्धि-हानि सम्बन्धी नियम

घ. ६/१.६-४.३/१८३/१ एत्यगुणहाणीओं गतिथ, पिलदोवमस्स असं-लेख्जिदिभागमेत्त द्विषि विणा गुणहाणीए असंभवादो । =यहाँ अर्थात इस जधन्य स्थितिमें गुणहानियाँ नहीं होती हैं, क्योंकि, पत्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिके बिना गुण-हानिका होना सम्भव नहीं है ।

ध- १२/४,२,१३,२६६/४६१/१३ खिविदकप्रमंसिए जिट सुट्टु बहुगी दक्ववड्ढी होदि तो एगसमग्रपनइधमेत्ता चेव होदि त्ति गुरुवएसादो। =श्रिपत कर्मीशिकके यदि बहुत अधिक द्रव्यक्: (प्रदेशीकी) वृद्धि होती है तो वह एक समय प्रवह्ध प्रमाण ही होती है, ऐसा गुरुका उपदेश हैं।

🛨 अन्य सम्बन्धित विषय

१. छह वृद्धि हानियाका क्रम, अर्थ, संहनानी व यन्त्र ।

—दे. शुतज्ञान/II/२/६।

२. अनुभाग काण्डकोंमें षड्गुण हानियाँ।

—दे. घ. १२√१५७-२०२ ।

२. अध्यत्रसाय स्थानीमें चृद्धि हानियाँ। -दे बह बह नाम।

४. व्यंजन पर्यायमें अन्तर्लोन अर्थ पर्याय। 💢 🗕 दे, पर्याय/३/८ ।

५. अशुद्ध पर्यायोंमें भी एक दो मादि समयोंके

पश्चात् हानिवृद्धि होती है। —दे. अवधिज्ञान/२/२। पड्क-संख्यात गुण वृद्धिकी संज्ञा है।—दे. श्रुतशान 11/२/३। पड्क-एक स्वर—दे, 'स्वर'।

षड् दर्शन -- दे. दर्शन ।

षड् दर्शन समुख्यय - रवेताम्बराचार्य हरिभद्रसूरि (ई. ४००-१२८) द्वारा रचित संस्कृत सूत्र बहुध प्रन्थ है। इसमें जैन, बौद्ध स्वार्थक, न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग और मोमांसक इन छह दर्शनोंका संक्षिप्त वर्णन है।

पड्रसी-यत उत्कृष्टारं ४ वर्ष , मध्यम १२ वर्ष व जघन्य १ वर्ष में ज्येष्ठ कृ १ से ज्येष्ठ पूर्णिमा तक —कृ. १ को उपवास, २-१४ तक एकाशन वरे। 'ओं हीं श्री वृषमजिनाय नमः' इस मन्त्रका त्रिकाल जाप करे। (वत विश्वान सं./४३)।

षण्णवित प्रकरण—आ. सोमदेव (ई, १४३-१६८) कृत न्याय विषयक एक ग्रन्थ है।

षष्ठभक्त-दो उपवास-दे. प्रोपधोपवास/१।

पष्ठ बेला — बेला अर्थात् दो उपनासको धष्ठ भक्त कहते हैं।
— दे. बेलावत ।

पाठी सत- ६ वर्ष तक प्रतिवर्ष आवण शु. ६ के दिन उपवास करे। तथा 'ओ' ही श्री नेमिनाथाय नमः' इस मन्त्रका जिकाल जप करे। (वत विधान सं./१२२)।

षाष्ट्रिक पद्धति—Sexagesimal Measure (ज. प./प्र.१०८)।

षोडशकारण धर्म चक्रोद्धार यन्त्र—दे यन्त्र।

षोडशकारण भावना-दे, भावना ।

षोडश कारण भावना द्वत — १६ वर्ष तक, वा ५ वर्ष तक, अथवा जबन्य एक वर्ष तक प्रतिवर्ष भाद्रपद, माध व चैत्र, इन तीनों महीनों में कृ. १ से लेकर अगले महीने की कृ. १ तक ३२ दिन तक क्षमशः ३२ उपवास, वा १६ उपवास, १६ पारणा, अथवा जबन्य विधिसे ३२ एकाशना करे।

जाप्य-'ओं हीं दर्शविशुद्धवादिषोडशकारणेश्यो नमः।' इस मन्त्रका त्रिकाल जाप करे। (व्रत विधान सं./पृ. ३८)।

[स]

संकट हरण दात तीन वर्ष तक प्रतिवर्ष भाइपर, माघ व चैत्र-मासमें शु. १३ से शु. १६ तक उपवास । तथा 'ओं हाँ, हाँ हाँ हाँ हः असि आ उसा सर्व शान्ति कुरु कुरु स्वाहा' इस मंत्रका जिकाल जप करे। (इत विधान सं./४२)।

संकर दोष — स्या. मं /२४/२६२/१० येनातमना सामान्यस्याधि-करणं तेन सामान्यस्य विशेषस्य च, येम च विशेषस्याधिकरणं तेन विशेषस्य सामान्यस्य चेति सङ्करदोषः! — स्याद्वादियोके मत्में अस्तित्व और नास्तित्व एक जगह रहते हैं। इसलिए अस्तित्वके अधिकरणमें अस्तित्व और नास्तित्वके रहनेसे, और नास्तित्वके अधिकरणमें नास्तित्व और अस्तित्वके रहनेसे स्याद्वादमें संकर दोष आता है। (ऐसी शंकामें संकर दोषका स्वस्थ प्रकट होता है।)

स. भं. त /८२/६ सर्वेषां युगपरमाप्तिः संकरः । = (उपरोक्तवत्) सम्पूर्ण स्वभावोंकी युगपत् प्राप्ति हो जाना संकर है। (श्लो. वा. ४/न्याः ४५६/४५१/९८ पर भाषामें उद्दश्त)।

संकलन Addition जमा करना १ दे, गणित/II/१/३।

संकलन धन— हे, गणित/II/१/३।

संकलन वार—हे. गणित/11/१। संकलित घन—Sum of series (ज. ५./प्र. १०८)।

संकरप पं. का./ता. वृ./७/१६/७ बहिर्द्रव्ये चेतनाचेतनिमश्रे ममेदिमित्यादि परिणामः संकल्पः । = चेतन-अचेतन-मिश्रः, इन बाह्य पदार्थीमें 'ये मेरे हैं' ऐसी कल्पना करना संकल्प है।

प.प्र./टी./१/१६ बहिर्द्रव्यविषये पुत्रकलत्रादिचेतनाचेतनरूपे ममेद-मिति स्वरूपः संकल्पः। —स्प्री-पुत्र आदि चेतन, अचेतन, बाह्य पदार्थौंमें 'ये मेरे हैं' ऐसा विचारना सो संकल्प हैं। (द्र. सं./टी./-४१/१७४/१)।

संकुट - जीवको संकुट कहनेकी विवक्षा-दे. जीव/१/३ ।

संकेत Symbol Notation (ध. १/प्र. २८)। २. गणित सम्बन्धी विशेष शब्दों की सहनानियाँ -दे. गणित///२।

संकेत क्रम —Scale of Notation (ध. ४/प्र. १८)।

संकोच - जीवकी संकोच विस्तार शक्ति-दे. जीव/३।

संक्रमण — जीवके परिणामोंके वशसे कर्म प्रकृतिका बदलकर अन्य प्रकृति रूप हो जाना संक्रमण है। इसके उद्वेलना आदि अनेकों भेर हैं। इनका नाम वास्तवमें संक्रमण भागाहार है। उपचारसे इनको संक्रमण कहनेमें आता है। अतः इनमें केवल परिणामोंकी उत्कृष्टता आदि होके प्रति संकेत किया गया है। उँचे परिणामोंसे अधिक द्रव्य प्रतिसमय संक्रमित होनेके कारण उसका भागाहार अवप होनर चाहिए। और नीचे परिणामोंसे कम द्रव्य संक्रमित होनेके कारण उसका भागाहार अधिक होना चाहिए। यही बात इन सब भेदोंके लक्षणोंपर से जाननी चाहिए। उद्वेलना विध्यात व अधःप्रवृत्त इन तीन भेदोंमें भागहानि कमसे द्रव्य संक्रमाया जाता है, गुणकेणी संक्रमणमें गुणश्रेणी रूपसे और सर्व संक्रमणमें अन्तका बचा हुआ सर्व द्रव्य युगपत संक्रमा दिया जाता है।

संक्रमण सामान्यका लक्षण

- १ संक्रमण सामान्यका रुक्षण ।
- २ संक्रमणके मेद।

٩

ş

₹

- पॉचों संक्रमणोंका क्रम ।
- ४ सम्यन्तव व मिश्र प्रकृतिको उद्देलनामें चार संक्रमणी-का कम ।
- 🗯 विसंयोजना ।

- दे. विसंयोजना।

संक्रमण योग्य प्रकृतियाँ

- ধ 🖟 केवल उद्देलना योग्य प्रकृतियाँ ।
- २ क्रेन्स्ट विध्यात 🚜 🔻
- ३ किवल अधः प्रवृत्त ,, ,
 - केवल गुणसंक्रमण योग्य प्रकृतियाँ।
- ५ ∤ केवल सर्व संक्रमण ,, ,,
- ६ विध्यात व अधः प्रवृत्तं इन दोके योग्य ।
- ७ । अधःप्रवृत्त व गुण इन दोके योग्य ।
- ८ े अधः प्रवृत्त और सर्व इन दो के योग्य।
- 🤇 | विध्यात अधःप्रवृत्त व गुण इन तीनके योग्य ।

		-		
१०	अधः मनृत्त गुण व सर्व इन तीनके योग्य ।		Ę	3
88	विध्यातगुण व सर्वे इन तीसके योग्य ।		٤	34
१२	उद्देलनके विना चारके योग्य।	į	*	्रेक्
१३	विध्यातके बिना चारके योग्य।		}	}
१४	पाँचोंके योग्य ।	}	₹	} यः
3	प्रकृतियोंमें संक्रमण सम्बन्धी कुछ नियम व	į	₹ .	िम
	शंका		*	शे
ę	बध्यमान व अवध्यमान प्रकृतियों सम्बन्धी ।			-
*	दर्शन मोहमें अवध्यमानका भी संक्रमण होता है।		8	स
	—दे. संक्रमण /३/१।			*
₹	मूल प्रकृतिवामें परस्पर संक्रमण नहीं होता।		19	गु
*	स्वजाति उत्तर प्रकृतियोंमें संक्रमण होता है।	{	1	गुष
	—दे. संक्रमण/३/२।		*] ગુષ
₹	उत्तर प्रकृतियोमें संक्रमण सम्बन्धी कुछ अपवाद।		२	व
*	चारों आयुओंमें परस्पर संक्रमण सम्मन नहीं।		*	मि
	-दे, संक्रमण/३/३। दर्शन चारित्र मोहर्ने परस्पर संक्रमण सम्भव नहीं।	-	{	
*	्रे संक्रमण/३/३। —दे, संक्रमण/३/३।		ŧ	्र गुप
*	क्षाय नोक्षयमें परस्पर संक्रमण सम्भव है।		8	गुष
	दे. संक्रमण/३/३ ।		4	गु
К	दर्शन मोह त्रिकका स्व उदयकालमें ही संक्रमण नहीं		े १	गुण
	होता ।		े २	गुष
ч	मकृति व प्रदेश संक्रमणमें गुणस्थान निर्देश ।		3	गुष
ह्	संक्षमण द्वारा अनुदय प्रकृतियोंका भी उदय।		x	110
19	अच्छाविष्ठ पर्यन्त संक्रमण सम्भव नहीं।		u,	गु
6	संबन्धण परचात् आवली पर्यन्त प्रकृतियोकी अचलता।		દ્દ	गुर
*	संक्रमण विषयक सत् संख्यादि आठ प्ररूपणार्थे।	,	v	ग
	-—दे, वह यह नाम ।		6	अ
*	मङ्गतियोंके संक्रमण व संक्रामकों सम्बन्धी काल अन्तर		١٩	30
	आदि मरूपणार्षे।दे. बहु बहु नाम।		20	अन
A	उद्देलना संक्रमण निर्देश	}	११	नुष
₹	उद्रेलना संक्रमणका रुक्षण ।	}	*	गुण
*	उद्देखना संक्रमण दिचरम काण्डक पर्यन्त होता है।	\ ;		}
_	— दे. संक्रमण/१/४।		१२	Ŋo
3	मार्गणा स्थानोमें उद्देलना योग्य मङ्कतियाँ।	{	₹ ३	गुव
₹	मिथ्यात्व व मिश्र प्रकृतिकी उद्देखना योग्य काछ।	<u> </u>	\$ 8	नो
Υ .	यह मिथ्यात्व अवस्थामें होता है।	! }	٩	स
*	सध्यक् व मिश्र मक्किकी उद्रेलनामें चार संक्रमणींका		8	सर्व
	कम। -दे, संक्रमण/१/४।		*	चर
*	यह काण्डक बात रूपसे होता है।—दे. संक्रमण/६/२।			· `
પક પક	सम्यक् व मिश्र प्रकृतिको उद्देलनः का क्रमः विध्यात संक्रमण निर्देश		90	अ
	-		१	आ
?	विध्यात संक्रमणका छक्षण ।	{	غ د	भा स्ति
*	बन्ध त्युच्छिति होनेके पश्चात् उन मञ्जतियोंका ४-७		*	33.5
:	गुणस्थानोंमें विध्यात संक्रमण होता है।	}	*	~,

```
अधःप्रवृत्त संक्रमण निर्देश
मधःप्रवृत्त संक्रमणका रुक्षण ।
प्राप्डक्षधात व अपवर्तनाघातमें अन्तर ।
                              -- दे. अकर्षण/४/६।
ाह नियमसे वातिरूप होता है।
मध्यास्त्र प्रकृतिका नहीं होता।
रि मकृतियोंका व्युच्छित्ति पर्यन्त होता है।
                             --दे. संक्रमण/१/३।
म्यक् व मिश्र प्रकृतिके अधः प्रवृत्त संक्रमण योग्य
काला।
एए संक्रमण निर्देश
ण संक्रमणका छक्षण ।
ण संक्रमणका स्वामित्व ।
                             —दे. संक्रमण/१/३।
न्धवाछी प्रकृतियोंका नहीं होता।
(श्यात्वके त्रिधाकरणमें गुण संक्रमण ।
                                —दे, उपशम/२ ।
ण संक्रमण योग्य स्थान ।
ण संक्रमण कालका लक्षण ।
णिश्रेणी निर्देश
णश्रेणी विधानमें तीन पर्वोंका निर्देश (
णश्रेणि निर्जराके आवश्यक अधिकार ।
णश्रेणिका छक्षण ।
षश्रेणि निर्जराका रुक्षण ।
णश्रीण शीर्षका रूझण 1
णशेणि आयामका रुक्षण ।
छितावशेष गुणश्रेणि आयामका सक्षण ।
वस्थिति गुणश्रेणि आयामका लक्षण ।
णश्रेणि आयामीका यन्त्र ।
न्तर स्थिति व दितीय स्थितिका रुक्षण ।
पश्रेणि निक्षेपण विधान ।
णश्रेणि निर्जराका ११ स्थानीय अल्पबहुत्व ।
                         -दे. अरुपबहुरव/३/१०।
णश्रेणि निर्जरा विधान ।
पश्चेणि विधान विषयक यन्त्र ।
किमैकी गुणश्रेणि निर्जरा नहीं होती।
ार्व संक्रमण निर्देश
र्व संक्रमणका लक्षण ।
रम फालिका सर्वसंक्रमण ही होता है।
                          -वे, संक्रमण/१/३/४।
गनुपूर्वी व स्तिबुक संक्रमण निर्देश
ानुपूर्वी संक्रमणका रुक्षण ।
तबुका संक्रमणका लक्षण 🔾
नुदय मक्कतियाँ स्तिनुक सेन्नमण द्वारा उदयमें
  आती हैं।
                            -दे. संक्रमण/३/६।
```

-दे. संक्रमण/१।

१. संक्रमण सामान्य निर्देश

१. संक्रमण सामान्यका रुक्षण

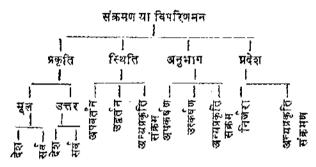
क. भा. १/१, १९/६३१६/३ अंतरकरणे कए जं गवुंसयवेयन्खणं तस्स 'संक्रमणं' ति सण्णा। = अन्तरकरण कर सेनेपर जो नपुंसकवेदका (क्षपकके जो) क्षपण होता है यहाँ उसकी (उस कासकी) संक्रमण संज्ञा है।

गो. क./जो. प्र./४३८/५६९/९४ परप्रकृतिरूपपरिणममं संक्रमणस् । ज्जो प्रकृति पूर्वमें बँधी थी उसका छन्य प्रकृति रूप परिणमन हो जाना संक्रमण है। (गो. क/जी. प्र./४०६/४७३/४)।

२. संक्रमणके भेद

१. सामान्य संक्रमणके भेद

घ. १६/२८२-२९४



गो. जो /मू./१०४/१०३ संकमणं सट्ठाण स्ट्ठाणं हो दि। ज्संक्रमण दो प्रकारका है—स्वस्थान संक्रमण और परस्थान सक्रमण [इसके अतिरिक्त आनुपूर्वी संक्रमण (ल. सा./मू./२४१), फालिसंक्रमण और काण्डक संक्रमण (गो. क./जी. प्र/४१२/५७६) का निर्देश भी आगममें पाया जाता है।]

२. भागाहार संक्रमणके मेद

घ. १६/गा. १/४०६ उब्वेलण विज्ञाहो अधापवसो गुणो य सब्बो य। (संक्रमणं) ...।४०६। च्छसके (भागाहार या संक्रमणके) उद्गेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुणसंक्रम, और सर्वसंक्रमणके भेदसे परंच प्रकार हैं।४०६। (गो. क./मू./४०६)।

३. पाँचों संक्रमणोंका क्रम

गो, क./मू, व, जी, प्र /४९६ बंधे अधापवत्तो विजमादं सत्तमोत्ति ह अबंधे। एक्तो गुणो अबंधे पयडीणं अप्पसंत्याणं ।४१६ं। प्रकृतीनां बन्धे-सति स्वस्वनन्धव्युच्छित्तिपर्यन्तमधः ब्रह्तसक्रमणः स्यात न मिथ्या-रबस्य । ...नन्धव्युच्छितौ सस्यामसंयताच्य्रमसपर्यन्तं बिध्यात-संक्रमणं स्यात्। इतः अप्रमत्तगुणस्थानादुपर्युपञान्तकषायपर्यन्तं बन्धरहिताप्रशस्तप्रकृतीनां गुणसंक्रमणं स्यात् । तत्।ऽन्यत्रापि प्रथमो-पश्चमसम्यन्त्वप्रहणप्रथमसमय।दन्तर्मृहूर्त पर्यन्तं पुनः मिश्रसम्यन्त्व-प्रकृत्योः पूरणकाले निध्यास्त्रश्चपणायामपूर्वकरणपरिणामान्मिध्यास्त्र-वरम्काण्डकद्विकवरमफालिपर्यन्तं च गुणसंक्रमणं स्यात्। वरमफालौ सर्वसंक्रमणं स्यात्। = प्रकृतियोंके बंध होनेपर अपनी अपनी बंध व्युक्तिञ्चत्ति पर्यन्त अधाप्रवृत्त संक्रमण होता है परन्तु मिर्ध्यास्व प्रकृतिका नहीं होता। और अन्यकी व्युच्छित्ति हं।नेपर असंयतसे सेकर अवमत्तर्यन्त विध्यातनामा संक्रमण होता है। तथा अवमत्तसे आगे उपशान्त कषाय पर्यन्त बन्ध रहित अप्रशस्त प्रकृतियोका गुण-संक्रमण होता है। इसी तरह प्रथमीपशम सम्यक्त्य आदि अन्य जगह भी गुणसंक्रमण होता है ऐसा जानना। तथा मिश्र और सम्यक्तव प्रकृतिके पूरण कालमें और मिध्यात्वके क्षय करनेमें अपूर्व-करण परिणामोके द्वारा मिध्यात्वके अन्तिम काण्डककी उपान्त्य फालिपर्यन्त पुणसंक्रमण और अन्तिम फालिमें सर्व संक्रमण होता है।

४. सम्यक्त्व व मिश्र प्रकृतिकी उद्वेलनामें चार संक्रमणों-का क्रम

गो. क./मू./४११-४१३ मिच्छेसिमस्साणं अधावनतो मुहुत्त अंतीति। अव्वेत्तणं तु तत्तो दुचरिमकंडोत्ति णियमेण १४१२। उव्वेतणपयडीणं गुणं तु चरिमिह कंडये णियमा। चरिमे फालिस्मि पुणो सव्वं च य होदि संकमणं १४१३। चिम्पादव गुणस्थानको प्राप्त होनेपर सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्रमोहनीयका अन्तर्मृहूर्त पर्यन्त तक अधःप्रवृत्त संकमण होता है। और उद्देतन नामा संकमण द्विचरम काण्डक पर्यन्त नियमसे प्रवर्धता है १४१२। उद्देतन प्रकृतियोंका अन्तके काण्डकमें नियमसे गुण संकमण होता है। और अन्तको फालिमें सर्व संक्रमण होता है। ४१३।

२. संक्रमण योग्य प्रकृतियाँ

१. केवल उद्देलना योग्य प्रकृतियाँ

पं. सं./प्रा./२/= आहारय-वेजिवय-णिर-णर-देवाण होति जुगलाणि।
सम्ममुच्चं मिस्सं एया उब्बेलणा-पयडी।=आहारक युगल (आहा-रक शरीर-आहारक अंगोपांग). वैक्रियिक युगल (वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक-अंगोपांग), नरक युगल (नरकगति, नरक गत्यानुपूर्वी), नरपुगल (मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी), देवयुगल, (देवगति, देवगत्यानुपूर्वी), सम्यक्त प्रकृति, मिश्रप्रकृति और उद्यगोत्र ये तेरह उद्वेलन प्रकृतियाँ हैं। (गो. क./मू./४१६/४७७)

२. केवल विध्यात योग्य प्रकृतियाँ

गो. क./मू./४२६ सम्मत्त्रणुव्वेलणथीणतितीरां च दुवस्ववीसं च । बद्धा-रालदुतित्थं मिच्छं विज्ञादसत्तद्द्दी।४२६। = सम्यक्त्व मोहनीयके क्षिमा उद्देलन प्रकृतियाँ १२ (दे. संक्रमण/२/११), स्त्यानगृद्धि तीन आदिक ३० प्रकृतियाँ (दे. संक्रमण/२/११), असाता वेदनीय आदिक २० प्रकृतियाँ (दे. संक्रमण/२/१), बद्धपंभनाराचसंहनन, औदारिक युगल, तीर्थंकर प्रकृति और मिध्यात्व प्रकृति ये (१२+३०+२०+ ६=) ६७ प्रकृतियाँ विष्यात संक्रमणवाली है।

३. केवल अधःप्रवृत्त योग्य प्रकृतियाँ

गो. क./मू/४१६-४२०/४८० सहुमरम बंधघादी सार संजनणनीहर्णचिदी।
तेजनुसमवण्यच्छ अगुरुनहुपरघादचरसासं १४१६। सत्थगदी तसदसयं
णिमिणुगुदाने अधापवची दु ।...४२० = मूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानमें
अंघवगुन्छित्र हानेनानी घातिया कमों की १४ प्रकृतियाँ (दे. प्रकृति-अंध,/७/२) साता वेदनीय, संज्वनन नाम, पंचेन्दिय जाति, तेजस, कामण, समचनुरस, वर्णादि ४, अगुरुनषु, परवात, उच्छ्वास, प्रशस्तिबहायोगति, त्रस आदि १० (दे. उदय/६/१) और निर्माण इन ३६ प्रकृतियों में अधःप्रवृत्त संक्रमण है।

गो. क /मू /४२%/६८४ मिच्छूणिगिवीससर्य अधापवत्तस्य होति पय-होओ :...।४२% = मिथ्यात्त्र प्रकृतिके त्रिना १२१ प्रकृतियाँ अधाप्रवृत्त संक्रमणकी होती हैं।

४. केवल गुण संक्रमण योग्य प्रकृतियाँ

गो. क./मू./४२७-४२८/१८४-१०१ - सहुमस्स चंधवादिष्पहुदी उगुदा**ख-**रालदुगित्तत्थं ।४२७। बच्चं पंसंजलणीत ऊणा गुणसंकमस्स पयडीओ ।

पणहत्तरिसंखाओ पगडोणियमं विजाणाहि। ४२ म स्थ्य साम्पर्मा में बँधनेवाली घातिया कमोंकी १४ प्रकृतियोंको आदि लेकर (दे, संक्रमण/२/३ में केवल अधःप्रवृत्त सक्रमणमें योग्य) ३६ प्रकृतियाँ, औदारिक शरोर, औदारिक अंगोपांग, तीर्थं कर, वज्र प्रमाराच, पुरुषवेद, संजरवन क्रोधादि तीन, (३६ + ८) ४७ प्रकृतियों को कम करके (१२२ -४७) शेष ७३ प्रकृतियाँ गुण संक्रमण की हैं। ४२७-४२८।

५ केवल सर्वसंक्रमण योग्य प्रकृतियाँ

गो, क./मू /४१७/१७६ तिरियेपारु वेबल णपयडो संजल णतो हसम्मिमस्मूणा मो हा थीण तिर्णं च य नावण्णे सञ्चसंक्रमणं ।४१६ सिर्यगेकादश (दे. उदय/६/१), उद्वेलनको १३ (दे. संक्रमण/२/१),
संज्वलन लोभ. सम्यन्त्व मोहनोय, मिश्र, इन तीन के निना
मोहनीयकी २५ और स्त्यानगृद्धि आदिक ३ (स्त्यानगृद्धिः, प्रचलाप्रचला, निद्रानिद्रा) प्रकृतियाँ, ये (११ + १३ + २५ + ३) ५२ प्रकृतियाँमें सर्वसंक्रमण होता है ।४१७।

६, विध्यात व अधःप्रवृत्त इन दोके योग्य

गो.क./मू./४२१/५८३ ओरालदुगे वज्जे तिस्ये विज्ञादधापवत्तो य १४२६। = औदारिक शरीर-अंगोपांग, वज्जपभनाराच संहमन तीर्यंकर प्रकृति – इन चारोंमें विध्यातसंक्रमण और अधःप्रवृत ये दो संक्रमण हैं।

७. अधःप्रवृत्त व गुण इन दो के योग्य

गो, क./मू./४२१-४२२/१८१ ... णिहा पयला असुहं वण्णचलकं च उब-बादे १४२१। सत्तण्हं गुणसंकममधापवत्तो य।४२२। — निद्वा, प्रचला, असुभ वर्णादि चार, और उपघात, इन सात प्रकृतियों के गुणसंक्रमण और अधःप्रकृत संक्रमण पाये जाते हैं।

८. अधःप्रवृत्त और सर्व इन दोके योग्य

गो. क./मू./४२४/४८३ संजलगतिये पुरिसे अधापवत्तो य सब्बो य ४४२४। = संज्वलन कोध, मान, माया तथा पुरुषवेद इन चारोंमें अधःप्रवृत्त और सर्व संक्रमण ये दो ही संक्रमण पाये जाते हैं।

९. विध्यात अधःप्रवृत्त व गुण इन तीनके योग्य

गो, क,/मू, ४२२-४२३ (... दुबलम सुहगदी । संहदि संठाणदसं जीचापुण्ण-थिरछक्कं च ।४२२। वोसण्हं विच्फाहं अधापवत्तो गुणो य ।...।४२३। = असाता वेदनीय, अप्रशस्त विहायोगति, पहस्के बिना पाँच संहनन व पाँच संस्थान ये १०, नीचगोत्र, अपयास और अस्थिरादि ६, इस प्रकार २० प्रकृतियोंके विध्यातसंक्रमण, अधःप्रवृत्त संक्रमण, सर्वसंक्रमण ये तीन हैं।

९०. अधःप्रवृत्त गुण व सर्व इन तीनके योग्य

गो. क./मू./४२६/४८३ हस्सरिंद भयजुगुच्छे अधापवस्तो गुणो सब्बी ।४२४। चहास्य. रति, भय और जुगुन्सा—इन चार प्रकृतियोंमें अधः-प्रवृत्त, गुण और सर्वसंक्रमण ये तीन संक्रमण पाये जाते हैं ।४२४।

११. विध्यात गुण और सर्व इन तीनके योग्य

गो. क./मू./४२३/४८२ विज्ञक्षादगुणे सन्वं सम्मे•••।४२३। व्यास्व प्रकृतिमें विध्यात, गुण और सर्वसंक्रमण ये तीन हैं।४२३।

१२. उद्वेलनाके बिना चारके योग्य

गो. क./सू./४२०-४२१/५८१ थीणतिबारकसाया संहित्थी अरह सोगो य ।४२०। तिरियेयारं तीसे उज्जेलणहीणचारि संकमणा !…१४२१। = स्त्यानगृह्धि, निदानिद्रा, प्रचलाप्रचला, (संज्वलनके बिना) १२ कषाय, मपुंसक वेद, स्त्रोवेद, अरति, शोक, और तिर्यक् एकादशकी ११ (दे. उदय ६/१) इन तीस (३०) प्रकृतियों में उद्वेलन संक्रमणके बिना चार संक्रमण होते हैं।

१३. विध्यातके बिना चारके योग्य

गो. क./मू. ४२३/१८२ सम्मे विज्ञादपरिहीणा ।४२३। ज्यम्यक्रव मोहनीयमें विष्यातके बिना सर्व संक्रमण पाये जाते हैं।

१४. पाँचींके योग्य

गो, क./मू./४२४/१८३ संजलणितये पुरिसे अधापवत्तो य सन्वो य ।४२४। =सम्यक्त्र मोहनोयके त्रिना १२ उद्वेलन प्रकृतियों में (दे, संक्रमण/ २/१) पाँचों ही संक्रमण होते हैं।

३. प्रकृतियोंके संक्रमण सम्बन्धी कुछ नियम व शंका

१. बध्यमान व अबध्यमान प्रकृति सम्बन्धी

ध. १६/४०६/४ बंधे अधापमत्तो 'बंधे अधापवत्तो' जत्य जासि पय-डीणं बंधो संभवदि तत्थ तासि पयडीणं बंधे संते असंतो वि अधापमत्तसंकमो होदि। एसो णियमो बंधपयडीणं, अबंधपयडीणं णित्य । कुदो । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेष्ठ वि अधापमत्तसंकप्रुय-चंभादो ।

धः १६/४२०/१ तिण्णि संजलण-पुरिसवेदाणमधापवत्तसंकमां सव्वसंकमो चेदि दीण्णि संकमा होति। तं तहा — तिण्णं संजलणाणं पुरिसवेदस्स मिच्छाइद्विप्पहुंडि जाव अणियदि ति अधापवत्तसंकमो। — १. बन्ध-के होनेपर अधःप्रवृत्त संक्रमण होता है। (पो. क./मू./४१६) २. 'बंधे अधापवत्ता'का स्पष्टीकरण करते हुए बतलाते हैं कि जहाँ जिन प्रकृतियोंका बन्ध संभव है वहाँ उन प्रकृतियोंके बन्धके होनेपर और उसके न होनेपर भी अधःप्रवृत्त संक्रमण होता है। यह नियम बन्ध प्रकृतियोंके लिए हैं. अबन्ध प्रकृतियोंके लिए नहीं है, क्योंकि सम्प्रवृत्त और सम्यिग्ध्यात्व इन दो अनुन्ध प्रकृतियोंकें भी अधःप्रवृत्तसंक्रमण पाया जाता है। ३. तीन संज्वलन और पुरुष्वेदके अधःप्रवृत्तसंक्रम और सर्व-संक्रम ये दो संक्रम होते हैं। यथा—तीन संज्वलन कषायों और पुरुष वेदका मिथ्यादिष्ठसे लेकर अनिवृत्तिकरण तक अधःप्रवृत्त सक्रम होता है। (गो. क./मू./४९४)।

गो. क./मू. व जी. प्र./४१० वंधे संकामिजजिद णोवधे ।४१०। वंधे विध्यमानमात्रे संकामित इत्ययमुत्सर्गविधः कचिदवध्यमानेऽपि संकमात्, नोबन्धे अवन्धे न संकामित इत्यनर्थकवचनादर्शनमोहनीयं विना शेषं कर्म मध्यमानमात्रे एव संकामतीति नियमो ज्ञातव्यः। किस प्रकृतिका बन्ध होता है, उसी प्रकृतिका संक्रमण भी होता है यह सामान्य विधान है क्योंकि कहींपर जिसका बन्ध नहीं उसमें भी संक्रमण देखा जाता है। जिसका बन्ध नहीं होता उसका संक्रमण भी नहीं होता। इस वचनका ज्ञापन सिद्ध प्रयोजन यह है कि दर्शनमोहके किना शेष सब प्रकृतियाँ बन्ध होनेपर संक्रमण करती हैं ऐसा नियम जानना।

२. मूल प्रकृतियोंमें परस्पर संकम नहीं होता

ध. १६/४०८/१० जं परेसम्मं अण्णपयिं संकामिज्जिदि एसो परेस-संकमो। एदेण अहुपरेण मूलपयिंडसंकमो णिरिथ। उत्तरपयिंड संकमे पयदं। — जो प्रदेशाय अन्य प्रकृतिमें संकान्त किया जाता है इसका नाम प्रदेश संक्रम है। इस अर्थप्दके अनुसार मूलप्रकृति संक्रम नहीं है। उत्तरप्रकृति संक्रम प्रकरण प्राप्त है।

गो. क./मू, व जी, प्र./४१०/४७४ णित्य मूल्पयडीणं । . . संक्रमणं ।४१०।
मूलप्रकृतीनां परस्परसंक्रमणं नास्ति, उत्तरप्रकृतीनामस्तीत्यर्थः ।

- मूल प्रकृतियोंका परस्पर संक्रमण नहीं होता। अर्थाद झानावरणी कभी दर्शनावरणी रूप नहीं होती। साराश वह हुआ कि उत्तर प्रकृतियोंमें ही संक्रमण होता है।

३. उत्तर प्रकृतियोमें संक्रमण सम्बन्धी कुछ अपवाद

- ध. १६/१४१/१ इंसणमोहणीयं चारित्तमोहणीए ण संकमित, चारित्त-मोहणीयं पि इंसणमोहणीए ण संकमित । कुदो । साभावियादो ! चदुण्णमाउआणं संकमो णित्य । कुदो । साभावियादो । चदर्शन मोहनीय चारित्र मोहनीयमें संकान्त नहीं होती, और चारित्र मोहनीय भी दर्शनमोहनीयमें संकान्त नहीं होतो, क्योंकि ऐसा स्वभाव है । अवारों आयुकर्मका संक्रमण नहीं होता क्योंकि ऐसा स्वभाव है । (गो. क./मृ./४१०/४७४)।
- क.पा. ३/३,२२/§४११-४१२/२३४/४ दंसणमोहणीयस्स चारित्तमोहणीय-संकमाभावादो । कसायाणं णोकसाएमु जोकसायाणं च कसाएमु कुदो संकमो। ण एस दोसो, चारित्तमोहणीयभावेण तेसि पचचा-सत्तिसंभवादो । मोहणीयभावेण दंसणचारित्तमोहणीयाणं पच्चासत्ति अदिथ ति अण्णोण्णेम् संकमो किण्ण इच्छदि। ण, पडिसेज्भमाण-दंसणचारिसाणं भिण्णजादिसणेण तेसि पच्चासत्तीए अभावादी। =दर्शनमोहनीयका चारित्र मोहनीयमें संक्रमण नहीं होता है। प्रश्न-कषायोंका नोकषायों में और नोकषायोंका कषायों में संक्रमण किस कारणसे होता है। उत्तर—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि दोनों चारित्रमोहनीय हैं, अतः उनमें परस्परमें प्रत्यासक्ति पायी जाती है, इसिंखए उनका परस्परमें संक्रमण हो जाता है। प्रश्न 🗝 दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय ये दोनों मोहनीय हैं, इस रूप-से इनकी भी प्रत्यासन्ति पार्यी जाती है, अतः इनका परस्परमें संक्रमण क्यों नहीं स्वीकार किया जाता है ! उत्तर-महीं, क्यों कि परस्परमें प्रतिषेध्यमान दर्शनमोहनीय और चारिव मोहनीयके भिन्न जाति होनेसे उनकी परस्परमें प्रत्यासित नहीं पायी जाती, अतः इनका परस्परमें संक्रमण नहीं होता है।

४. दर्शनसोह त्रिकका स्व उदय कालमें ही संक्रमण नहीं होता

गो, क./मू /४११/६७६ सम्मं मिच्छ मिस्सं सगुणट्ठाणमिन णेश संकमित । । । । । अ११। = सम्यक्त मोहनीय, मिश्यात्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय अपने-अपने असंयतादि गुणस्थानों में तथा मिश्यात्व गुणस्थानमें और मिश्रमें नहीं संक्रमण करती ।

५. प्रकृति च प्रदेश संक्रमणमें गुणस्थान निर्देश

- क. पा. ३/३,२२/६३४८/३८८/१० ण, तस्य दंसणमोहणीयस्स संक्रमाभावेण सम्मस्स-मामिच्छत्ताण्मः चसम्यग्मिध्यादिष्ठं गुणस्थानमें दर्शन-मोहनीयका संक्रमण नहीं होताः।
- गो. क/मू. व जी. प्र./४११/६७४ सामणिमस्ते णियमा इंसणिय-संकमो णित्थ ।४११।...सामादनिमश्रयोनियमेन दर्शनमोहत्रयस्य संक्रमणं नास्ति । असंयतादिचतुर्ध्वस्तीत्यर्थः । =सामादन गुण-स्थानमें नियमसे दर्शनमोह त्रिकका संक्रमण नहीं होता । असंयतादि (४-७) में होता है।
- गो, क./मू./४२६ बंधपदैसाणं पुण संकमणं सुहुमरागोत्ति ।४२६।
- गो. क./मू. व टी./४४२/६६४ अग्रिमसत्तेव तदो मुहुमकसायोत्ति संकमेण विणा। छच्च सजोगित्ति । । । १४२। । । तत्रापि सक्रमकरणं विना षडेत्र सयोगपर्यन्तं भवन्ति । = बन्धरूप प्रदेशोंका संक्रमण भी सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान पर्यन्ते हैं। वयोंकि 'बंधे अधापवची' इस गायासूत्रके अभिप्रायसे स्थितिकथ पर्यन्त ही संक्रमण संभव है। १४२६। उस अपूर्वकरण गुणस्थानके ऊपर सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान पर्यन्त

आदिके सात ही करण होते हैं। उससे आगे सयोग केवली तक संक्रमणके बिना छह ही करण होते हैं। ४४२।

६. संक्रमण द्वारा अनुद्य प्रकृतियोंका भी उदय

क. पा. ३/३,२२/६४३०/२४४/१ उत्याभावेण उत्यित्तिसेयिहिंदी परसक्ष्वेण गदाएनमा = जिस प्रकृतिका उदय नहीं होता उसकी उदय निषेक स्थितिके उपान्त्य समयमें पररूपसे संक्रामित हो जाती है।

७. अचलावली पर्यन्त संक्रमण सम्मव नहीं

क. पा. ३/३,२२/६४११/२३३/४ अचलाविलयमेत्त कालं बद्धसोत्तस-कसायाणमुक्कस्सट्ठिरीए णोकसाएम् संकमाभावारो। कुरो एसो। णियमो ! साहावियारो । — नंधी हुई सोसह कवायोंकी उत्कृष्ट्वी स्थितिका अचलावली काल तक नौकवायोंमें संक्रमण महीं होता। प्रश्न — विविक्षित समयमें बंधे हुए कर्मपुंजका अचलावली कालके अनन्तर ही पर प्रकृतिक्षपसे संक्रमण होता है ऐसा नियम क्यों १ उत्तर्—स्वभावमें ही यह नियम है।

८. संक्रमण परचात् आवली पर्यन्त प्रकृतियों की अचलता

ध, ६/१, १-५,१६/गा. २१/३४६ संकामेदुळडिद जे अंसे ते अविद्वा होंति । आविषयं ते काले तेण परं होंति भजिदव्या १२१। ≈ जिन कर्म प्रदेशोंका संक्रमण अथवा उरकर्षण करता है वे आविलीमात्र काल तक अवस्थित अर्थात् क्रियान्तर परिणामके बिना जिस प्रकार जहाँ निक्षिप्त हैं उसी प्रकार ही वहाँ निश्चल भावसे रहते हैं। इसके पश्चाद उक्त कर्मप्रदेश वृद्धि, हानि एवं अवस्थानादि क्रियाओंसे भजनीय हैं 1२१।

४. उद्वेलना संक्रमण निर्देश

१. उद्वेलना संक्रमणका लक्षण

- मोर-[करण परिणामों अर्थात् परिणामों की विशुद्धि व संक्लेशसे
 निरपेक्ष कर्म परमाणुओं का अन्य प्रकृतिरूप परिणमन हो जाना,
 अर्थात् रस्सीका कट लोलनेवत् उसी प्रकृतिरूप हो जाना जिसमें
 कि संक्रम कर पहले कभी इस प्रकृतिरूप परिणमन किया था, सो
 उद्वेतना संक्रमण है। इसका भागाहार अंगुल/असं. है, अर्थात् सबसे
 अधिक है। अर्थात् प्रत्येक समय बहुत कम द्रव्य इसके द्वारा परिणमाया जाना सम्भव है। यह बात ठीक भी है, क्यों कि बिना परिणामों
 रूप प्रयत्न विशेषके धीरे-धीरे हो कार्यका होना सम्भव है।
- जो प्रकृति उस समय नहीं बँधती है और नहीं उसको बाँधनेकी उस जीवमें योग्यता है उन्हों प्रकृतियोंको उद्वेशना होती है। मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही होती है। यह काण्डकरूप होती है अर्थात् प्रथम अन्तर्मृहूर्तकाल द्वारा विशेष चयहीन क्रमसे तथा द्वितीय अन्तर्मु-हूर्तमें उससे दुगृने चयहीन क्रमसे होती है। अधःप्रवृत्त पूर्वक ही होती है। उपान्त्य काण्डक पर्यन्त ही होती है। यह प्रकृतिके सर्वहीन निषेकोंको परिणमाने र होता है, थोड़े भाजपर नहीं। प्रत्येक काण्डक प्रय/असं. स्थिति वाला होता है।
- गो. क./जो. प्र./३४६/६०३/२ वन्वजरज्जुभाविनाश्यत् प्रकृतेरुद्वेरुसनं भागाहारेणापकृष्य परप्रकृतिलां नीत्वा विनाश्यमुद्वेरुसनं १३४६। च जैसे जेवड़ी (रस्सी)के बटनेमें जो बत दिया था पीछे उत्तटा धुमानेसे वह बत निकास दिया। इसी प्रकार जिस प्रकृतिका बंध किया था, पीछे परिणाम विशेषसे भागाहारके द्वारा अपकृष्ट करके, उसको अन्य प्रकृतिरूप परिणमाके उसका नाश कर दिया। फल-उद्धमें नहीं आने दिया, पहले ही नाश कर दिया।) उसे उद्वेत्तन संक्रमण कहते हैं।

मो. क./जी. प्र./४९३/५७६/८ करणपरिणामेन विना कर्मपरमाणूनी परप्रकृतिरूपेण निक्षेपणसुद्धेव्हनसंक्रमणं नाम। = अधःप्रकृत आदि तीन करणरूप परिणामीके बिना ही कर्मप्रकृतियोंके परमाणुओंका अन्य प्रकृतिरूप परिणमन होना वह उद्वेजन संक्रमण है।

२, मार्गणा स्थानोंमें उद्देलना योग्य प्रकृतियाँ

गो. क-/मू./३६१, ६१३, ६१६ चदुगतिमिच्छे चउरो इगिविगले छप्पि ति विण तेउ दुने । १०१३ ११। वेदगजोगी काले आहार उवसमस्स सम्मत्तं । सम्मामिच्छं चेगे विगलेवेगुव्वछक्कं तु । ई१४। तेउदुगे मणुबद्गं उच्चं उठवेरलदे जहण्णिदरं । परलासंखेजजदिमं उन्वेरलण-कालपरिमाण । ६१६। अचारों गतिवाले मिध्यादृष्टि जीवोंके चार (आहारक द्विक, सम्यन्त्व, मिश्र) प्रकृतियाँ, ्ष्टुः, अप्, वनः, तथा विकलेन्द्रियों में देवद्वि., वै. द्वि., नरकद्वि ये छह प्रकृतियाँ, तेजकाव व वायुकाय इन दोनोंके (उच्चगोत्र, मनुष्य द्विक) ये तीन प्रकृतिमाँ उद्देलनके योग्य हैं।३५१। वेदक सम्यक्त्व योग्य कालमें आहारक द्विककी उद्देशना, उपशम कालमें सम्यवस्य प्रकृति वा सम्यग्मिध्यारवप्रकृतिकी उद्वेलना करता है। और एकेन्द्रिय तथा विकरीन्द्रिय पर्यायमें वैक्रियिक षट्ककी उद्वेतना करता है। ६१४। तेजकाय और वायुकायके मनुष्यगति युगल और उच्चगोत्र -- इन तीन-की उद्देलना होती है, उस उद्देलनाके कालका प्रमाण अवस्य अथवा उत्कृष्ट परवके असंख्यादवें भाग प्रमाण है ।६१६।

३. मिथ्यात्व व मिश्र प्रकृतिकी उद्वेलना योग्य काल

क.पा.२/२.२२/६८२३/१०६/१ एइंदिएसु सम्मत्त-सम्मामिन्छत्तविहत्ती० जह० एगसम्भ्रो, उक्क० पित्रदेवमस्स असंखे० भागो । एकेन्द्रियोंमें सम्यक्षकृति व सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पर्वयोपमके असंख्यातवें भागमात्र है। वियोंकि यहाँ उपशम सम्यक्त्व प्राप्तिकी योग्यता नहीं है, इसलिए इस कालमें वृद्धि सम्भव नहीं। यदि सम्यवश्व प्राप्त करके पुनः नवीन प्रकृतियों-की सत्ता कर ले तो क्रम न टूटनेके कारण इस कालमें वृद्धि होनी सम्भव है। यदि ऐसा न हो तो अवश्य इतने कालमें उन प्रकृतियोंकी उद्देशना हो जाती है। जिन मार्गणाओं ने इनका सत्त्व अधिक कहा है वहाँ नवीन सत्ताकी अभेक्षा जानना। है. अन्तर/२।

थः ५/९,६,०/९०/८ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तिह्रदीर पिलदीवमस्स असंखेडलिक्भागमेत्तकालेण विणा सागरीवमस्स वा सागरीवमपुधत्तस्स वा हेट्ठा पदणाणुववत्तीदो । ⇒सम्यवस्य और सम्यवस्विभध्यास्य प्रकृतिकी स्थितिका, पत्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालके निना सागरीपमके, अथवा सागरीपमपृथवस्वके नीचे पत्तन नहीं हो सकता है।

गो. क./मू /६१७/८२१ पन्तासंखेडजिन निमं ठिरिमुट्नेन्ति मुहुत्त अतेण ।
संखेडजसायरिटिं पन्तासंखेडजकालेण । चपन्यके असंख्यातनें
भाग प्रमाण स्थितिको अन्तर्मृहूर्त कालमें उद्वेलना करता है । अतएन
एक संख्यात सागरप्रमाण मनुष्यद्विकादिकी सत्तास्त्व स्थितिकी
चेद्वेलना जैराशिक निधिसे पन्यके असंख्यातनें भागप्रमाण कालमें हो
कर सकता है, ऐसा सिद्ध है ।

४. यह मिथ्यात्व अवस्थामें होता है

क. पा. २/२.२२/हर २७/१२६/२ पंचिदियतिरि० अपन्ज० सन्वपयडीणं णित्य अंतरं । एवं "सम्मादि० खद्य० वेदग० उवसम० सासण० सम्मामि० मिच्छादि० अणाहारएति वत्तव्वं । च्यंचेन्द्रिय तिर्यंच लिख अपर्याप्तकोंके सभी प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वेदक सम्यग्दृष्टि, उपश्म सम्यग्दृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिश्मादृष्टि, मिश्यादृष्टि, "अौर अनाहारक जीवोंके कहना चाहिए । । इस प्रकरणसे यह जाना

जाता है कि इन दो प्रकृतियोंको जिंद्वेलना मिध्यात्वमें ही होती है, वेदक सम्यवत्वायस्थामें नहीं, और उपशम सम्यवत्व हुए बिना मिथ्यात्वायस्थामें ही इनका पुनः सत्त्व नहीं होता। नही इनका सत्त्व प्राप्त हो जानेपर उपशम सम्यवत्व हुए बिना मार्गमेंसे ही युनः मिथ्यात्वको प्राप्त होता है। और भी दे. अयला शीर्षक]।

५. सम्बक् व मिश्र प्रकृतिकी उद्वेलनाका कम

क, पा. २/२,२२/६२४-/१११/६ अट्ठावीससंतकिम्भओ उन्वेलिद-सम्मत्तो मिन्छाइट्ठी सत्तावीसिवहित्तिओ होदि। =अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिण्याहिष्ठ जोव (पहले) सम्यक्तव प्रकृतिकी उद्वेतना करके सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला होता है [तत्पश्चास सम्यग्मिण्यात्वकी भी उद्वेलना करके २६ प्रकृति स्थानका स्वामी हो जाता है।](क. पा. ३/६६७३/२०४/१)।

५. विध्यात संक्रमण निर्देश

१. विध्यात संक्रमणका लक्षण

नोट—[अपकर्षण विधानमें चताये गये स्थिति व अनुभाग काण्डक व गुणश्रेणीरूप परिणामों में प्रवृत्त होना विध्यात संक्रमण है। इसका भागाहार भी यचिप अंगुल/असंख्यात भाग है, परन्तु यह उद्वेजनाके भागाहार असंख्यात गुणहीन है, अतः इसके द्वारा प्रति समय उठाया गया द्रव्य बहुत अधिक है। मिथ्यात्व व मिश्र मोह इन दो प्रकृतियोंको जब सम्यक्षकृतिरूपसे परिणमाता है तब यह संक्रमण होता है। वेदक सम्यक्षकृतिरूपसे परिणमाता है तब यह संक्रमण होता है। वेदक सम्यक्षको तो सर्व ही अपनी स्थिति कालमें वहाँ तक होता रहता है जब तक कि क्षपणा प्रारम्भ करता हुआ अधःप्रवृत्त परिणामका अन्तिम समय प्राप्त होता नहीं। उपशम सम्यक्षक भी अपने सर्व कालमे उसी प्रकार होता रहता है, परन्तु यहाँ प्रथम अन्तर्मृहुर्त में गुणसंक्रमण करता है पश्चाद उसका काल समाप्त होनेके पश्चात विध्यात प्रारम्भ होता है।]

गो. क./जो. प्र./४१३/५७६/८ विध्यातिषशुद्धिकस्य जीवस्य स्थिरमनु-भागकाण्डकपुणश्रेण्यादिपरिणामेष्वतीतेषु प्रवर्तनाद्धिध्यातसंक्रमणं णाम । = मंद विशुद्धतावाले जीवकी. स्थिति अनुभागके घटाने रूप भूतकालीन स्थिति काण्डक और अनुभाग काण्डक तथा गुणश्रेणी आदि परिणामों में प्रवृत्ति होना विध्यात संक्रमण है।

६. अधःप्रवृत्त संक्रमण निर्देश

1. अधःप्रवृत्त संक्रमणका लक्षण

नोट—[सत्ताभूत प्रकृतियोंका अपने-अपने अंघके साथ संभवती प्रथा-योग्य प्रकृतियोंमें उनके बंध होते समय ही प्रवेश पा जाना अध:-प्रवृत्त है। इसका भागाहार पन्य/असंख्यात, जो स्पष्टतः ही विध्यातसे असंख्यातगुणा होन है। अतः इसके द्वारा प्रतिक्षण ग्रहण किया गया द्रव्य विध्यात की अपेक्षा बहुत अधिक है।

बंधकालमें या उस प्रकृतिकी बंधकी योग्यता रखनेपर उस ही गुणस्थानमें होता है जिसमें कि वह प्रकृति बन्धसे व्युच्छिन्न नहीं हुई है, थोड़े दक्पका होता है सर्व द्रव्यका नहीं, क्योंकि इसके पीछे उद्वेसना या गुण संक्रमण या विध्यात संक्रमण प्रारम्भ हो जाते हैं। कोधको प्रत्याच्यानादि स्व जाति भेदोंमें अथवा मान आदि विजाति भेदोंमें प्रिरणमाता है। यह नियमसे फालीरूप होता है। अन्तर्मृहूर्त पर्यन्त हो होता है। काण्डकरूप संक्रमण और फालिरूप संक्रमणमें इतना भेद है कि फालिरूपमें तो अन्तर्मृहूर्त पर्यन्त बराबर भागाहार हानि क्रमसे उठा-उठाकर साथ-साथ संक्रमाता है और काण्डक रूपमें वर्तमान समयसे लेकर एक-एक अन्तर्मृहूर्त काल बीतने-पर भागाहार क्रमसे इकट्ठा द्रव्य उठाता है अर्थत संक्रमण करनेके

निष् निश्चित करता है। एक अन्तर्भृहूर्त तक संक्रमानेके लिए जो द्रव्य निश्चित किया उसे काण्डक कहते हैं। उस द्रव्यको अन्तर्भृहूर्त-काल' पर्यन्त विशेष चय हानि क्रमसे खपाता है। उसके समाग्र हो जानेपर अगले अन्तर्भृहुर्तके लिए अगला काण्डक उठाता है।

गो. क./जी. प्र./४९६/१७६/१ बन्धप्रकृतीनां स्वबन्धसंभवविषये यः प्रदेशसंक्रमः तदधःप्रवृत्तसंक्रमणं नाम । क्वंध हुई प्रकृतियोंका अपने बंधमें संभवती प्रकृतियोंमें परमाणुओंका जो प्रदेश संक्रम होना वह अधःप्रवृत्त संक्रमण है।

२. यह नियमसे फालीरूप होता है

गो. क./जो. प्र./४१२/६७६/७ तत्राधः प्रवृत्तसंक्रमः फालिरूपेण उद्वेतन-संक्रमः काण्डकरूपेण वर्तते । — (मिथ्यास्व गुणस्थानको प्राप्त होने-पर सम्यक् व मिश्रका अन्तर्मुहूर्तके पश्चात उपान्त काण्डक पर्यन्त) अधः प्रवृत्तसंक्रमण फालिरूपसे प्रवर्तता है और उद्वेतना संक्रमण काण्डक रूपसे प्रवर्तता है ।

३. मिथ्यात्व प्रकृतिका नहीं होता

गो. क./जो. प्र./४१६/५७८/७ अधःप्रवृत्तसंक्रमणः स्यात् न सिध्यात्वस्य, 'सम्मं मिटलं मिस्सं सगुणद्वाणिम णेव संकमदीति' निषेधात् (गो. क./४११) = (प्रकृतियों के मन्ध होनेपर अपनी-अपनी व्युच्छित्ति पर्यन्त) अध प्रवृत्त संक्रमण होता है, परन्तु मिध्यात्व प्रकृतिका नहीं होता। क्यों कि 'सम्मं मिटलं मिस्सं' इत्यादि गाधा-के द्वारा इसका निषेध पहले बता चुके हैं (दे, संक्रमण/१/४)।

४.सस्यक् व मिश्र प्रकृतिके अधःप्रवृत्त संक्रम योग्य काल

गो. क./मू./४१२/५७५ मिच्छे सम्मिस्साणं अधःपवन्तो मुहुन्तअंतोत्ति । = भिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त होनेपर सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्रमोहनीयका अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त तक अधःप्रवृत्त संक्रमण होता है।

७. गुण संक्रमण निर्देश

९. गुण संक्रमणका लक्षण

नोट—[प्रति समय असंख्यात गुणश्रेणी क्रमसे परमाणु प्रदेश अन्य प्रकृतिरूप परिणमाने सो गुण संक्रमण है। इसका भागहार भी यद्यपि पन्य/असंख्यात है परन्तु अध्यप्रवृत्तसे असंख्यात गुणहोन होन है। इसलिए इसके द्वारा प्रतिसमय ग्रहण किया गया द्रव्य बहुत ही अधिक होता है। उपान्त्य काण्डक पर्यन्त विशेष हानि क्रमसे उठाता हुआ चलता है। (यहाँ तक तो उद्देलना संक्रमण है), परन्तु अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालि पर्यन्त गुणश्रेणी स्वपसे उठाता है।

जिन प्रकृतियोंका बन्ध हो रहा हो उनका गुण संक्रमण नहीं हो सकता, अबन्धरूप प्रकृतियोंका होता है और स्व जातिमें ही होता है। अपूर्वकरणके प्रथम समयमें गुण संक्रम् नहीं होता। अनन्तामुबन्धीका गुण संक्रमण विसंयोजना कहलाता है।

गो, क./जो. प्र./४१३/४७६/१ प्रतिसमयमसंख्येयगुणक्षेणिकमेण यदप्रदेश-संक्रमणं तह गुणसंक्रमणं नाम । = जहाँपर प्रतिसमय असंख्यात गुणक्षेणीक्रमसे परमाणु-प्रदेश अन्य प्रकृतिरूप परिणमे सो गुण-संक्रमण है।

२. बन्धवाली प्रकृतियोंका नहीं होता

त्त. सा./जी. प्र./७६/१०६/१७ अप्रशस्तानां बन्धो जिमतप्रकृतीनां द्रव्यं प्रतिसमयमसंख्येयगुणं बध्यमानसजातीयप्रकृतिषु संक्रामित । पूर्व-स्वरूपं गृह्वातीत्पर्थः। =बन्ध अयोग्य अप्रशस्त प्रकृतियोंका द्रव्यः, समय-समय प्रति असंख्यातगुणा क्रम लिये जिनका बन्ध पाया जाता

- है ऐसी स्वजाति प्रकृतियों में संक्रमण करता है, अपने स्वह छोडकर तदस्य परिणमन करता है।
- ल. सा./जी. प्र./२२४/२८०/८ अन्धवरप्रकृतीनी पृणसंक्रमी नाति -जिनका अन्ध पाया जाता है ऐसी प्रकृतियोंका संक्रमण : होता।

३. गुण संक्रमण योग्य स्थान

ल. सा./जी. प्र./७६-७६/१०६/१९०/१६ गुणसंक्रमः अपूर्वकरणप्रथमसः
नास्ति तथापि स्वयोग्यावसरे भविष्यतः (७६) एवं विधं प्रतिसः
यमसंख्येयगुणं संक्रमणं प्रथमकष्याणामनन्तानुकिन्छनां विसंयोव
वर्तते । मिध्यात्विभश्रकृत्योः क्षपणायां वर्तते । इतरासां प्रकृती
नामुभयश्रेण्यामुपश्मकश्रेण्यां क्षपकश्रेण्यां च वर्तते ।७६। —गुण संक्र
मण अपूर्वकरणके पहले समयमें नहीं होता है। अपने योग्यकालां
होता है।७६। असंख्यातगुणा क्रम लिये जो हो उसको गुण संक्रमण
कहते हैं। सो अनन्तानुवन्धी कषायोंको गुणसंक्रमण उनकी विसंयोजनामें होता है। मिध्यात्व और मिध्यकृतिका गुण संक्रमण
उनकी क्षपणामें होता है, और अन्य प्रकृतियोंका गुणसंक्रमण उपशम
व क्षपक श्रेणीमें होता है।

४. गुण संक्रमण कालका लक्षण

ल. सा./भाषाः/१२=/१६६/६ मिश्र मोहनीय (या विविधित प्रकृतिका) गुण संक्रमण कर यावत् सम्यक्त्वं मोहनीयरूप (या यथा योग्य किसी अन्य विविधित प्रकृतिरूप) परिणमै तावत् गुणसंक्रमण काल कहिये।

८. गुणश्रेणी निर्देश

गुणश्रेणी विधानमें तीन पर्वोंका निर्देश

त. सा./मू./१=३/६६४ गुणसेढि अंतरिट्ठिंद विदियद्ठिंद इदिह्वंति पञ्जितिया । ...।१=३। = गुणश्रेणीमें तीन पर्व होते हैं — गुणश्रेणी, अन्तर स्थिति और द्वितीय स्थिति । अपकृष्ट किया हुआ द्रव्य इन तीनों में विभक्त किया जाता है।

२. गुणश्रेणी निर्जराके आवश्यक अधिकार

नोट —[गुणक्षेणी क्षीर्व, गुणक्षेणी आयाम, गल्लितावरोषगुणक्षेणी आयाम और अवस्थित गुणक्षेणी आयाम इतने अधिकार हैं :]

३. गुणश्रेणीका लक्षण

ध. १२/४,२,०,१०५/=०/६ गुणो गुणगारो, तस्स सेडी ओली पंती गुणसेडी णाम। दंसणमोहुबसामयस्स पढमसमए णिज्जिण्णदञ्बं थोवं।
विदियसमए णिज्जिण्णदञ्बमसंखेज्जगुणं। तिदयसमए णिज्जिण्णदञ्बमसखेज्जगुणं। एवं णेयञ्बं जाव दंसणमोहउवसामणचिरमसमयो त्ति। एसा गुणागारपंत्ती गुणसेडि क्ति भणिदं। गुणसेडीए
गुणो गुणसेडिगुणो, गुणसेडिगुणगारो त्ति भणिदं होदि। —गुण
राब्दका अर्थ गुणकार है। तथा उसकी श्रेणी, आबलि या पंत्तिका
नाम गुणशेणी है। दर्शनमोहका उपराम करनेवाले जीवका प्रथम
समयमें निर्जराको प्राप्त होनेवाला द्रञ्य स्तोक है। उसके द्वितीय
समयमें निर्जराको प्राप्त हुआ द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे तीसरै
समयमें निर्जराको प्राप्त हुआ द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे तीसरै
समयमें निर्जराको प्राप्त हुआ द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे तीसरै
समयमें निर्जराको प्राप्त हुआ द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे तीसरै
समयमें निर्जराको प्राप्त हुआ द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे तीसरै
समयमें निर्जराको प्राप्त हुआ द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे तीसरै
समयमें निर्जराको प्राप्त हुआ द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे तीसरै
समयमें निर्जराको प्राप्त हुआ द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे तीसरै
समयमें निर्जराको प्राप्त हुआ द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे तीसरै
समयमें निर्जराको प्राप्त के अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए। यह
गुणकार पंत्ति गुणशेणि श्रेणगुण अर्थात गुणशेणि गुणकार कहलाता है।

स. सा./मू./१८-३/६१४ सहुमगुणादो अहिया अविट्ठिदुर्यादि गुणसेढी ।१८३। स्यावत् अपकृष्ट किया द्रव्य सूक्ष्मते लेकर असंख्यातगुणा

क्रम लिये अवस्थितादि आयाममें दिया जाता है उसका नाम गुण-श्रेणी है।

४. गुणश्रेणी निर्जराका लक्षण

गी. जी./भाषा/६७/१७४/११ उदयाविस कालके पीछे अन्तर्मृहूर्त मात्र जो गुणश्रीणका आयाम कहिए काल प्रमाण ताविषे दिया हुआ इव्य सो तिस कालका प्रथमादि समयविषे जे पूर्वे निषेक थे, तिनकी साथि कमते असंख्यातगुणा असंख्यातगुणा होइ निर्जर है सो गुणश्रेणी निर्जरा (है।)

५. गुणश्रेणी शीर्षका लक्षण

ध. ६/१.१-८.१२/२६१/११ सम्मत्तस्स चरिमट्ठिदिलंडगे पढमसमयआगाइदे ओवट्टियमाणसु ट्ठिद्धि जं पदेसग्गसमुद्दर दिज्जिद तं
थोवं. से काले असंखेज्जगुणं। ताव असखेज्जगुणं जाव ट्ठिदिखंडयस्स जहण्णियाए वि ट्ठिदीए चरिमसमयं अपत्तं ति। सा चैव
ट्ठिदी गुणसेडी सोसयं जादा। = सम्यक्त्व प्रकृतिके अन्तिम स्थिति
काण्डकके प्रथम समयमें ग्रहण करनेपर अवर्तन की गयी स्थितियोंमें-से जो प्रदेशाय उदयमें दिया जाता है, वह अल्प है, अनन्तर
समयमें असंख्यात गुणित प्रदेशायोंको देता है। इस क्रमसे तब तक
असंख्यात गुणित प्रदेशायोंको देता है। इस क्रमसे तब तक
असंख्यात गुणित प्रदेशायोंको देता है जब तक कि स्थितिकाण्डककी
जबन्य भी स्थितिका अन्तिम समय नहीं प्राप्त होता है। वह स्थिति
हो गुणश्रेणिशीर्ष कहलाती है।

स. सा./भाषा/१३४/१८६/४ गुणश्रीण आयामका अन्तका निषेक ताकौ

इहाँ गुणश्रेणि शीर्ष कहते हैं।

६. गुणश्रेणी आयामका लक्षण

क्ष. सा./३१८-/भाषा उदयावित्तिसे बाह्य गिलितावशेष रूप जो यह गुण-श्रीण आयाम है ता विषे अपकर्ष किया द्रव्यका निक्षेपण हो है।

७, गलितावशेष गुणश्रेणी आयामका लक्षण

ल. सा./भाषा/१४३/१६८/२-- उदयादि वर्तमान समय तै लगाय यहाँ गुणश्रेणी आयाम पाइये तातै उदयादि कि हिये, अर एक एक समय व्यतीत होते एक एक समय गुणश्रेणि आयाम विषे घटता जाय (उपरितन स्थितिका समय गुणश्रेणी आयाममें न मिले) तातै गिलतावशेष कहा है। ऐसे गिलतावशेष गुणश्रेणी आयाम जानना।

ल. सा./वचिनका/२२/४ गिलतावशेष गुणश्रेणीका प्रारम्भ करनेकौं प्रथम समय विषे जो गुणश्रेण आयामका प्रमाण था./ तामें एक- एक समय व्यतीत होते ताकै द्वितीयादि समयनिविषे गुणश्रेण आयाम कमतें एक-एक निषेक घटता होइ अवशेष रहें ताका नाम गिलतावशेष है। (ध. ६/१,६-८,६/२३० पर विशेषार्थ)।

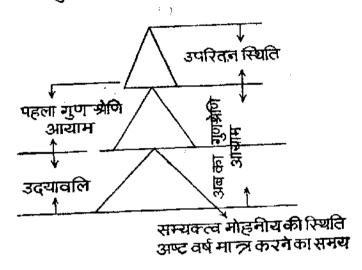
८. अवस्थित गुणश्रेणि आयामका रुक्षण

ल, सा./जी. प्र./१३०/१७१/६ सम्यवस्व प्रकृतेर ष्टवर्ष स्थितिकरणसमयादू-ध्वमिष न केवल मण्डवर्ष मात्र स्थितिकरणसमय एवी दयाद्यवस्थिति गुण-श्रेणिरित्यर्थः । स्सम्यवस्व मोहनीयकी अष्ट वर्ष स्थिति करनेके समयते लगाय उपरि सर्व समयनि विषे उदयादि अवस्थिति गुण-श्रेणि आयाम है।

ल. सा./भाषा/१२८/१६६/१८...इहां ते पहिले (सम्यक्त्व मोहकी. स्पणा विधानके द्वारा, अड्डवर्ष स्थिति अवशेष रखनेके समय ते पहिले) तो उदयावलि ते नाह्य गुणश्रेणि आयाम था। अन इहां ते लगाइ उदयस्प वर्तमान समय ते लगाइ ही गुणश्रेणि आयाम भया ताते याको उदयादि कहिये। अर (उदयादि गुणश्रेणी आयाम ते) पूर्वे तो समय ज्यतीत होते गुणश्रेणि आयाम घटता होता जाताथा, अत्र (उदयावलिमें-से) एक समय (उदय विषे) व्यतीत होते उपरितन स्थितिका एक समय मिलाय गुणश्रेणि आयामका प्रमाण समय व्यतीत होतें भी जेताका तैता रहै। तातें अवस्थित कहिये तातें याका नाम उदयादि अवस्थिति गुण-श्रेणि आयाम है।

ल.सा./वचितका/२२/७ अवस्थित गुणश्रेणि आयामका प्रारम्भ करने-का प्रथम समय द्वितोबादि समयनिविधे गुणश्रेणि आयाम जेता-का तेता रहै। उधुँ उधुँ एक एक समय व्यतीत होइ रधुँ रधुँ गुणश्रेणि आयामके अनन्तरिवर्ती ऐसा उपरितन स्थितिका एक एक निषेक गुणश्रेणि आयाम विषै मिलता जाइ तहां अवस्थित गुण-श्रेणि आयाम कहिये है।

९. गुणश्रेणी आयामींका यन्त्र



१०. अम्तरस्थिति व द्वितीय स्थितिका लक्षण

स.सा./भाषा/१८३/६६१/१६ ताके उपरिवर्ती (गुणश्रेणिके ऊपर) जिनि निषेकनिका पूर्वे अभाव किया था तिनका प्रमाण रूप अन्तर-स्थिति है। ताकै उपरिवर्ती अवशेष सर्वस्थिति ताका नाम दितीय स्थिति है।

३१. गुणश्रेणि निक्षेपण विधान

क्ष. सा./५ म्ह्/ह्ह्म-७०० का भावार्थ - प्रथम समय अपकर्षण किया द्रवय ते द्वितीयादि समयमि विषे असंख्यात गुण द्रवय तिये समय प्रति-समय द्रवयको अपकर्षण करे है और उदयावली विषे, गुणश्रेण आयाम विषे और उपरितन (द्वितीय) स्थिति विषे निक्षेपण करिये है। अन्तरायामके प्रथम स्थितिके प्रथम निषेक पर्यन्त गुणश्रेण श्रीण शीर्षपर्यन्त तो असंख्यात गुणकम लिये द्रवय दीजिये है, ताकै उपरि (अन्तर स्थिति व द्वितीय स्थितिमें) संख्यातगुणा भटता द्रवय दीजिये है।

१२. गुणश्रेणी निर्जरा विधान

ध. ६/१,६-८,६/१२४८-२२०/६ उदयपयडीणमुदयावित्यवाहिर ट्रिड-ट्रिडीण परेसग्मोकडुणभागहारेण खंडिदेयखंडं असंखेजलोगेण भाजिनेगभागं चेत्रूण उदए बहुगं देदि । विदियसम् विसेसहीणं देदि । एवं विश्वेसहीणं विसेसहीणं देदि जाव उदयावित्यचरिम-समझो ति । एस कमो उदयपयडीणं चेव, ण सेसाणं, तेसिमुद-यावित्यव्यव्यवित्यव्यवित्यवाहिरहिदीमु द्वित्योकडुणभागहारेण खंडिदेगखंडं घेत्रूण उदयावित्यवाहिरद्वितिम्ह असंखेजसमय-प्रबद्धे देदि । तदो उवरिमद्वितीए तत्तो असंखेजनुणे देदि ।

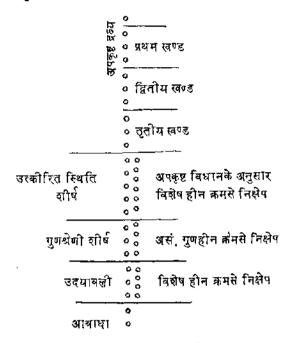
तदियट्डिदोए तत्तो असंखेज गुणे देदि । एवमसंखेजगुणाए सेडीए णेदव्वं जाव गुणसेडीचरिमसमुओ ति । तदो उवरिमाणंतराए द्विदीए असंखेजागुणहीणं दृव्वं देदि। तदुवरिमद्विदीए विसेसहीणं देदि । एवं त्रिसेसहोणं निसेसहीणं चेव पदेसरगं णिरंतरं देदि जान अप्पप्पणो उक्कोरिदद्विदिमान्नस्यिकालेण अपन्तोत्ति । णवरि उदयाव लियबा हिर दि दिमसं खेज्जाल भेग लंडिदेगलंडं समऊ णा-विलयाए वे त्तिभागे अइच्छाविय समयाहियत्तिभागे णिक्खिवदि पुरुषं व विसेसहीणकमेण । तदो उवरिमहिदीए एसो चेव णिवखेवो । णवरि अइच्छावणा समउत्तरा होदि। एवं प्रेयठवं जाव अइच्छा-वणा आवलियमेत्ता जादा ति । तदो उवरिमणिवखेवो चैव वड्ढदि जाव उक्तस्सणिवखेबं पत्तो ति । जासि द्विरीणं परेसग्गस्स उदया-विज्ञयदर्भ तरे चेद णिवलेवो तासि परेमग्यस्स ओकडूणभागाहारो असंखेळा लोगा । एवमुवरिमसव्वसमएमु कीरमाणगुणसेडीणमेसी चेत्र अत्थो वसक्वो । = उदयमें आयो हुई प्रकृतियोंकी उदयावली-से बाहर स्थित स्थितियोंके प्रदेशायको निषेकोंको) अपकर्षण भागाहार (परय/असं) के द्वारा खण्डित करके, एक खण्डको असं-रुवात लोकसे भाजित करके एक भागको ग्रहण कर उदयमें बहुत प्रदेशायको देता है। दूसरे समयमें विशेष हीन प्रदेशायको देता है। इस प्रकार उदयावलोंके अन्तिम समय तक विशेष होन देता हुआ चला जाता है। ... यह क्रम उदयमे आयी हुई प्रकृतियों का ही है, शेष (सत्तावाली) प्रकृतियोंका नहीं, क्योंकि उनमे उदयावली-के भीतर आने वाले प्रदेशायोंका अभाव है।

उदयमें आयी हुई और उदयमें नहीं आयी हुई प्रकृतियों के प्रदे-शायों को तथा उदयावलों के बांहरकी स्थिति में स्थित प्रदेशायों को (पूर्वोक्त प्रकार) अपकर्षण भागाहारके द्वारा खण्डित करके एक खण्डको ग्रहण कर असंख्यात समय प्रबद्धों को उदयावती के बाहर-की स्थितिमें देता है। इससे उपरकी स्थितिमें उससे भी अस-ख्यात गुणित समय प्रबद्धों को देता है। तृतीय स्थितिमें उससे भी असंख्यात गुणित समय प्रबद्धों को देता है। इस प्रकार यह कम असंख्यात गुणित श्रेणी के द्वारा गुणश्रेणी के अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए।

उससे ऊपरकी अनन्तर स्थितिमें असंख्यात गुणित हीन द्रव्यको देता है। उससे ऊपरकी स्थितिमें विशेषहीन द्रव्यको देता है। उससे ऊपरकी स्थितिमें विशेषहीन द्रव्यको देता है। इस प्रकार विशेष होन विशेष हीन ही प्रदेशायको निरन्तर तब तक देता है, जब तक कि अपनी अपनी उत्कीरित स्थितिको आमिल मात्र कालके द्वारा प्राप्त न हो जाये। विशेष बात यह है कि उदयावित्र बाहरको स्थितिके एक समय कम १/३ का अतिस्थापन करके (प्रारम्भ का) एक समय अधिक आवित्रके तिभागमें पूर्वके समान विशेषहीन कमसे निक्षिप्त करता है। उसमे उपरक्ती स्थितिमें (भी) यही (विशेष हीन कम बाला) निशेष हैं। केवल विशेषता यह है कि अतिस्थापना एक समय अधिक होती है। इस प्रकार यह कम तब तक ले जाना चाहिए जब तक कि अतिस्थापना पूर्णावली मात्र हो जाती है। उससे उपर उपरिभ विशेष ही उत्कृष्ट निक्षेप प्राप्त होने तक बढ़ता जाता है।

जिन स्थितियों के प्रदेशाग्रोंका उदयावली भीतर ही निक्षेप करता है, उन स्थितियों के प्रदेशाग्रोंका अपकर्षण भागहार असंख्यात लोक प्रमाण है। इस प्रकारसे सर्व समयोमे की जाने वाली गुणश्रेणियों का यही अर्थ कहना चाहिए। (ल.सा./जी.प्र/-६८-७४) विशेषता यह है कि प्रथम समग्रमें अपकर्षण दे० अपकर्षण।

१३. गुणश्रेणी विधान विषयक यंत्र



१४. नोकर्मकी गुणश्रेणी निर्जरा नहीं होती

ध. १/४.१,७१/३६२/१ जोकम्मस्स गुजसेडीए जिज्जराभावादो । चनी-कर्मकी गुजश्रेजी रूपसे निर्जरा नहीं होती ।

९. सर्व संक्रमण निर्देश

१. सर्व संक्रमणका लक्षण

नोट—[अन्तकी फालीमें शेष बचे सर्व प्रदेशोंका अन्य प्रकृतिरूप होना सर्व संक्रमण है। क्योंकि इसका भागाहार एक है।]

गो, क./जी. प्र./४१३/४७६/१० चरमकांडकचरमफालेः सर्वप्रदेशायस्य यत्संक्रमणं तत् सर्वसंक्रमणं णाम । चर्अन्तके काण्डकको अन्तकी फालिके सर्व प्रदेशों मेंसे जो अन्य प्रकृतिस्वप नहीं हुए हैं उन परमा-णुओंका अन्यप्रकृति रूप होना वह सर्व संक्रमण है।

१०. आनुपूर्वी व स्तिबुक संक्रमण

१. आनुपूर्वी संक्रमणका लक्षण

त. सा./जी. प्र. /२४६/३०६/१ स्तीनपंसकवेदप्रकृत्योर्डव्यं नियमेन पुंवेद एव संक्रामित । पुंवेदहास्यादिषण्णोकषायाप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान-कोधप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानमान संज्वलनकोध एव संक्रामित । संज्वलन-कोधप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानलोभद्रयद्रव्यं संज्वलन संक्रामित संज्वलनमायाप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानलोभद्रयद्रव्यं संज्वलन लोभेएव नियमतः संक्रामितिख्दत्यानुपूर्व्यां संक्रमे। = जो स्ती. नपुंसक वेद प्रकृतिके द्रव्यको तो पुरुषवेदमें हो संक्रमण करता है। और पुरुष, हास्यादि छह, तथा अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान कोधका संज्वलन कोधमें, संज्वलन कोध, अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान मान-का संज्वलन मान ही संक्रमण करता है। और संज्वलन मान व अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान मायाका संज्वलन मायामें ही संक्र-मण करता है। सं वलन माया अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान लोभका संज्वलन लोभ होमें नियमगे संक्रमण होता है, अन्यथा नहीं होता है, यह आनुपूर्वी संक्रमण है।

₹

३

२. स्तियुक संक्रमणका रूक्षण

ल. सा./जो. प्र./२७३/३३०/६ संजवलनकोधस्य समयो नो च्छिष्टावलि-मात्रनिषेकद्रव्यमपि संजवलनमानस्योदयावच्यां समस्थितिनिषेकेषु प्रतिसम्यमेकैकनिषेककमेण संक्रम्य उदयमागमिष्यातः । संज्वलनकोधोच्छिष्टाविनिषेकाः मानोदयाविनिषेकेषु संक्रम्य अनन्तर-समयेष्द्यमिच्छन्तीति तारपर्यम् । अयमेत्र थिउकसंक्रम इति भण्यते। —संज्वलन कोधका एक समय कम उच्छिष्टाविलमात्र निषेक द्रव्यभी, अपनी समान स्थिति लिये जे संज्वलन मानको उदयाविलोके निषेक उनमें समय-समय एक एक निषेकके अनुक्रमसे संक्रमण होकर अनन्तर समयमें उदय होता है। ताल्पर्य यह है कि उच्छिष्टाविल प्रमाण संज्वलन कोधका द्रव्य मानको उदयाविल निषेकों संक्रमण करके अनन्तर समयमें उदयमें आते हैं। यह ही थिउक (स्तिबुक) संक्रमण है।

घ. १/१,७.१८/२११/८ विशेषार्थ -- गति जाति आदि विंड प्रकृतियों मेंसे जिस किसी विवक्षित एक प्रकृतिके उदय आनेपर अनुदय प्राप्त शेष प्रकृतियों का जो उसी प्रकृतिके संक्रमण होकर उदय आता है, उसे स्तित्रुक संक्रमण कहते हैं। जैसे -- एकेन्द्रिय जीवोंके उदय प्राप्त एकेन्द्रिय जाति नामकर्ममें अनुदय-प्राप्त द्वीन्द्रिय जाति आदिका संक्रमण होकर उदयमें आना।

संक्रांति १. स. सि-/१/४४/४६/१० संक्रान्तिः परिवर्तनम् । इन्यं विहाय पर्यायमुपै ति पर्यायं त्यवत्वा द्रव्यमित्यर्थं संक्रान्तः । एकं श्रुतवचनमुपादाय वचनान्तरमालम्बते तदिप विहायान्यदिति व्यञ्जनसंक्रान्तिः । काययोगं स्थवत्वा योगान्तरं गृह्णाति योगान्तरं च त्यवत्वा काययोगमिति योगसंक्रान्तिः । च संक्रान्तिका अर्थ परिवर्तन है । द्रव्यको छोड़कर पर्यायको प्राप्त होता है और पर्यायको छोड़कर द्रव्यको प्राप्त होता है । एक श्रुत वचनका आलम्बन लेता है और उसे भी त्यागकर अन्य वचनका आलम्बन लेता है यह व्यंजन संक्रान्ति है । काययोगको छोड़कर दूसरे योगको स्वीकार करता है और दूसरे योगको छोड़कर काययोगको स्वीकार करता है । यह योग संक्रान्ति है । (रा. वा./१/४४/१/६१४/१०), (भा. पा /१)./७०/२२७), २. ध्यानमें योग संक्रांति सम्बन्धी शंका समाधान —दे. शुक्लध्यान/४।

संक्लिष्ठ हस्तकर्म-हे, हस्तकर्म।

संक्लेश--- हे, विशुद्धि।

संक्षेप सम्यग्दर्शन--हे, सम्यग्दर्शन/ [/१]

संख्या को कमें जीव किस-किस गुणस्थान व मार्गणा स्थान आदिमें कितने कितने हैं इस बातका निरूपण इस अधिकारमें किया गया है। तहाँ अन्य संख्याओं का प्रतिपादन तो सरल है पर असंख्यात व अनन्तका प्रतिपादन क्षेत्रके प्रदेशों व कालके समयों के आध्यपर किया जाता है।

९ | संख्या सामान्य निर्देश

- १ | संख्या व संख्या प्रमाण सामान्यका रुक्षण ।
- * अक्षसंचारके निमित्त शब्दोंका परिचय —हे. गणित/11/३
- २ | संख्या प्रमाणके भेद ।
- * 🎚 संख्यात असंख्यात व अनःतर्मे अन्तर ।—दे. अनन्त/२।
- 🤻 े संख्या व विधानमें अन्तर ।
- ४ | कोड़ाकोड़ी रूप संख्याओंका समन्त्रय ।
- 💌 संख्यात, असंख्यात व अनन्त 👚 🗕 दे बह बह नाम ।

संख्या प्ररूपणा विषयक कुछ नियम

- १ बालकी अपेक्षा गणना करनेका तात्पर्य ।
- २ | क्षेत्रकी अपेक्षा गणना करनेका तात्पर्यं ।
- 🤏 । संयम मार्गणामें संख्या सम्बन्धी नियम ।
- 😮 🖟 उपराम व क्षपक श्रेणीका संख्या सम्बन्धी नियम ।
- 🕓 े सिद्धींका संख्या सम्बन्धी नियम ।
- ६ । संयतासंयत जीव असंख्यात कैसे हो सकते हैं।
- ७ सम्बन्दृष्टि दो तीन ही हैं ऐसे कहनेका तात्पर्य ।
- ८ े लोम कषाय अवकोंसे स्क्ष्म साम्परायकी संख्या अधिक क्यों।
- ९ ें वर्गणाओंका संख्या सम्बन्धी दृष्टि मेद ।
- १० जीवोके प्रमाण सम्बन्धी दृष्टिभेद ।
- सभी मार्गणा व गुणस्थानोंमें आयके अनुसार
 व्यय होनेका नियम

े संख्या त्रिषयक प्ररूपणाएँ

- १ । सारणीमें प्रयुक्त संकेत सूची।
- २ जीवोंकी संख्या विषयक ओघ प्ररूपणा--
 - १, जीव सामान्यकी अपेक्षा ।
 - २, तीर्धकरों आदि पुरुष विशेषोंकी अपेक्षा।
- 🤻 े जीबोंकी संख्या विषयक सामान्य विशेष मरूपणा ।
- 😮 े जीवोंकी स्वस्थान भागाभाग रूप आदेश प्ररूपणा ।
- 🤏 🖟 चारी गतियोंकी अपेक्षा स्व पर स्थान भागाभाग ।
- ६ । एक समयमें विवक्षित स्थानमें प्रवेश व निर्गमन करनेवाले जीवोंका प्रयाण ।
 - ् इन्द्रोंकी संख्या
- _⊭ द्वीप समुद्रोंकी संख्या —दे. लोक/२,'११।
- इयोतिष मण्डलकी संख्या —दे. ज्योतिष/२।
- तीर्थंकरोंक तीर्थमें केवलियों आदिको संख्या
 - —दे. तीर्थंकर/१।

-- दे. इन्द्र ।

- द्रत्योंकी संख्या —दे, द्रव्य/२।
- * द्रव्योंके प्रदेशोंकी संख्या -- दे, वह वह द्रव्य।
- जीत्रों आदिकी संख्यामें परस्पर अल्पबहुत्व
- —दे. अन्वबहुरव । अन्य विषयों सम्बन्धी संख्या व भागाभाग सूत्री ।
- ८ कर्म वन्धकोंकी अपेक्षा संख्या व मागामाग सूची।
- मोहनीय कर्म सत्त्रकी अपेक्षा संख्या व भागाभाग सूची।

१. संख्या सामान्य निर्देश

- १. संख्या व संख्या प्रमाण सामान्यका लक्षण
- स. सि./१/=/२१/६ सरुपा भेदगणना । संख्यासे भेदोंकी गणना ली जाती है। (रा. वा./१/८/३/४१ '२६)।
- थ. १/६,८,७/गा. १०२/१६६ अस्यित्तस्स य तहेव परिमाणं (१०२) (होका) संताणियोगिन्ह जमस्थितं उत्तं तस्स पमाणं परूवेदि इव्वाणियोयो । ≈सत् प्रसूपणामे जो पदार्थोका अस्तिस्व कहा गया

है उनके प्रमाणका वर्णन करनेवाली संख्या (द्रव्यानुयोग)परूपणा करती है।

२. संख्या प्रमाणके भेद

ति, प./४/३०६/१७६/१ एतथ उक्कस्ससंखेज्जयजाणणिमित्त जंबूदीव-वित्यारं सहस्रजोयण उठनेधपमाणचन्तारिसरावया कादञ्बा। सलागा पिंडसलागा महासलागा ऐदे तिगिण वि अवद्विदा च उत्थो अणवद्वितो। एदे सब्वे पण्णाए ठिवदा । एत्थ चडत्थसरावयअन्भंतरे दुवे सरिसवे-स्थ्रदेतं जहण्णं संखेजयं जादं। एदं पहमित्रयप्पं तिण्णि सरिसवे-च्छ्रद्रधे अजहण्णमणुक्रत्ससंखेज्जयं । एवं सरावर पुण्णे एदमुवन्त-मजिमम्बियप्पं । ...सदो एगरूवम्बणीदे जादमुकस्ससंखङ्ज अ। जिम्ह जिम्ह संखेजजयं मिगजजिद तिम्ह-तिम्ह य जहण्ण मणुक्र सैस-सखेरजयं गंतूण घेत्रव्यं । तं कस्स विस्थो । चोइसपु व्विस्स । = अहाँ उत्कृष्ट संख्यातके जाननेके निमित्त जम्बूद्वीपके समान विस्तारवाले (एक साख योजन) और हजार योजन प्रमाण गहरे घार गड्डे करना चाहिए। इनमें शहाका, प्रतिश्लाका और महाशलाका ये तीन गड्ढे अवस्थित और चौथा अनवस्थित है। ये सब गड्ढे बुद्धिसे स्थापित किये गये हैं। इनमेसे चौथे कुण्डके भोतर दो सरसीके डालगेपर बह जयन्य संख्यात होता है। यह संख्यातका प्रथम विकल्प है। लीन सरसोंके डालनेपर अजधन्यानुस्कृष्ट (मध्यम) संख्यात होता है। इसी प्रकार एक-एक सरसोंके डालनेपर उस कुण्डके पूर्ण होने तक यह तोनसे उत्पर सब मध्यम संख्यातके विकल्प होते हैं। (रा वा./३/ ३८/४/२०६/१८)। दे. गणितां । १६ ।

३. संख्या व विधानमें अन्तर

रा, वा./१/८/१४/४३/४ विधानग्रहणादेव संख्यासिद्धिरितिः, तन्नः, किं कारणम् । भेदगणनार्थस्वात् । प्रकारगणनं हि तत्, भेदगणन र्थायद-मुच्यते-उपशमसम्यग्दष्टय इयन्तः, क्षायिकसम्यग्दष्टय प्रताबन्तः इति । = प्रश्न --विधानके ग्रहणसे हो संख्याकी सिद्धि हो ज्ञाती है । उत्तर ऐसा नहीं है क्योंकि विधानके द्वारा सम्यग्दश्चित्तः प्रकारोंकी गिनती की जाती है -- इतने उपशम सम्यग्दिष्ट हैं , इतने क्षायिक सम्यग्दिष्ट हैं आदि ।

४. कोडाकोडी रूप संख्याओंका समन्वय

ध. ७/२,४.२१/२४८/३ एसो उबदेसी कोडाकोडाकोडाकोडिए हंट्टढ़ा सि स्तोण कर्ष ण विरुज्यते । ण, एपकोडाकोडाकोडाकोडिमाधि कादूण जाव स्वूगदसकोडाकोडाकोडाकोडि सि एवं सब्धं पि को शकोडा-कोडाकोडि सि गहणादो । = प्रश्न---यह उपदेश कोडाकोड़ाकोड़ा-कोड़ी नीचे इस सूबसे कैसे विरोधका प्राप्त न होगा । उत्तर -- नहीं, क्योंकि, एक कोड़ाकोड़ाकोड़ीको आदि करके एक कम दश कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोडी तक इस सबको भी कोड़ाकोड़ाकोड़ाकाड़ी स्पसे ग्रहण किया गया है।

२. संख्या प्ररूपणा विषयक कुछ नियम

कालकी अपेक्षा गणना करनका 'तारपर्यः

ष . खं. ३/१.२/स्. ३/२७ अणं कृषंताहि ओस व्यिण-उम्सव्यणीहि य अबहिर ति कालेण ।३३

थः १९,२.१/२८/६ कथं कालेण मिणिड जंते मिच्छाइ ही जीवा। अणंताणंताणं ओसिप्पणि-उरस्रिपणीणं सम्रूप ट्वेदूण मिच्छाइ हिरासि
च ठवेड ज्या काल म्हि एगो समयो मिच्छाइ हिरासि म्हि एगो जीवो
अवहिरि ज्यादि। एवमव हिरि उजमाणे अवहिरि उजमाणे सब्वे समया
अवहिरि ज्यादि। एवमव हिरि उजमाणे अवहिरि उजमाणे सब्वे समया
अवहिरि ज्यादि। एवमव हिरासी ण अवहिरि उजमाणे से व्यास्था
अविश्वा मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त अवस्षिणियों और उत्सिपणियों के द्वारा अपहृत नहीं हाते हैं। ३। २ प्रमा-काल प्रमाणकी
अपेश मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण के से निकाला जाता है। उत्तर-

एक और अनन्तानन्त अवस्पिणियों और उस्स्पिणियं के समयों को स्थापित करके और दूसरी और मिथ्याइष्टि जीवों की राक्षिको स्थापित करके कालके समयों में से एक-एक समय और उसी के साथ मिथ्याइष्टि जीव राज्ञिके प्रमाणमें से एक-एक जीव कम करते जाने चाहिए। इस प्रकार उत्तरोत्तर कालके समय और जीव राज्ञिके प्रमाणको कम करते हुए चले जानेपर अनन्तानन्त अवस्पिणियों और उत्प्रिणियों के सब समय समाप्त हो जाते हैं, परन्तु मिथ्या-इष्टि जीव राज्ञिका प्रमाण समाप्त नहीं होता!

२. क्षेत्रकी अपेक्षा गणना करनेका तात्पर्य

ष. खं. ३/१,२/मू. ४/३२ खेतेण अणंदाणंता सोगा ।४।

घ. ३/१,२.४/३२-२३/६ खेलेण कधं मिच्छाइहिरासी मिणिउजदे।
बुच्चरे—जधा पत्थेण जब-गं धूमादिरासी मिणिउजदि तथा लोएण
मिच्छाइहिरासी मिणिज्जदि (३२/६) एववेकम्मि लोगागासपदेसै
एक्केक्क मिच्छाइहिजीवं णिवखेविकण एको लोगो इदि मणेण
संकष्पेयव्यो । एवं पुणो पुणो मिणिज्जमाणे मिच्छाइहिरासी अणंतलोगमेलो होदि । =१. क्षेत्र प्रमाणकी अपेसा अनन्तानन्त लोकप्रमाण
मिथ्यादृष्टि जीव राशिका प्रमाण है ।४। २, प्रम् — क्षेत्र प्रमाणके द्वारा
मिथ्यादृष्टि जीव राशिका प्रमाण है ।४। २, प्रम् — क्षेत्र प्रमाणके द्वारा
मिथ्यादृष्टि जीव राशिका प्रमाण है ।४। २, प्रम् — क्षेत्र प्रमाणके द्वारा
मिथ्यादृष्टि जीव राशिका प्रमाण होता जाती है। उत्तर—
जिस प्रकार प्रस्थमे गेहूँ, जो आदिकी राशिका माप किया जाता है,
जसी प्रकार लोकप्रमाणके द्वारा मिथ्यादृष्टि जोवराशि मापी अर्थाव
जानी जाती है (३२/६) लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक-एक
मिथ्यादृष्टि जीवको निक्षिप्त करके एक लोक हो गया इस प्रकार मनसे
संकवप करना चाहिए इस प्रकार पुन:-पुन: माप करनेपर मिथ्यादृष्टि
जीवराशि अनन्तानन्त लोकप्रमाण होती है।

३. संयम मार्गणामें संख्या सम्बन्धी नियम

ध. ७/२.११,१७४/५६८/१ जस्स मंजमम्स तिहिद्वाणाणि बहुआणि तत्थ जीवा वि बहुआ चैव, जस्थ थोवाणि तन्थ थोवा चैव 'होंति चि । = जिस संयमके लव्धिस्थान बहुत हें उसमें जीव भी बहुत ही हैं. तथा जिस संयममें लिब्धस्थान थोड़े हैं उसमें जीव भी थाड़ ही है।

४. उपशम व क्षपक श्रेणीका संख्या सम्बन्धी नियम

ध. १/१.८.२४६/३२१/१ णाण वेदादिसन्विविधणेसु उत्रसमसेडि चर्डत-जीवेहितो स्वयगमेडि चर्डतजीवा दुगुणा सि आइन्छिवदेसादो । = ज्ञान वेदादि सर्व विकल्पोमें उपराम श्रेणीपर चढ्नेवाले जीवोंसे क्षपक श्रेणीपर चढ्नेवाले जीव दुगुणे होते हैं, इस प्रकार आचार्योंका उपदेश पाया जाता है।

५ सिद्धोंकी संख्या सम्भन्धी नियम

घ. १४/४,६.११६/१४३/१० सञ्चकालमदीदकालस्स सिद्धा असक्षेत्रजदि भागो चेव: अम्मासमंतरिय णिव्युद्दगमनणियमादो । = सिद्ध जीव सर्वदा अतीतकालके असंख्यातर्थे भागप्रमाण ही होते हैं, क्योंकि छह महोनेके अन्तरसे मोक्ष जानेका नियम है।

इ. संयतासंयत जीव असंख्यात कैसे हो सकते हैं

घ. १/१.८.१०/२४८/४ माणुसखेत्तःभंतरे चेय संजदासंजदा होति. यो मिहुझा; भोगभूमिम्ह संजमासंजमभाविरोहा। या माणुसखेत्तक्मंतरे असंखेज्जाणं संजदासंजदायमित्थ संभवं। तेत्तियमेत्तायमेत्थाबहायविरोहा। तदो संखेजजपुणेहि संजदासंजदेहि होटक्वमिदि। या सर्यपहपद्यदपरभागे असंखेज्ज जोप्ययित्थडे कम्मभूमिपिडभाए तिरिक्खायमसंखेज्जाणं संजमासंजमगुणसहिद्यायमुक्तभा।
=प्रमान-संयत्तासंयत मनुष्यक्षेत्रके भीतर हो होते हैं, बाहर नहीं,
क्योंकि, भोगभूमिमें संयमासंयमके उत्त्य होनेका विरोध है। तथा
मनुष्य क्षेत्रके भीतर असंख्यात संयतासंयनोवा पाया जाना सम्भव

www.jainelibrary.org

नहीं है, क्यों कि, उतने संयतासंयतों का यहाँ मनुष्य क्षेत्रके भीतर अवस्थान माननेमें तिरोध आता है। इसलिए प्रमत्त संयतों से संयतासंयत संख्यात गुणित होना चाहिए। उत्तर—नहीं, क्यों कि, असंख्यात योजन विस्तृत एवं कर्म भूमिके प्रतिभागरूप स्वयंप्रभ पर्वतके परभागमें संयमासंयम गुणसहित असंख्यात तिर्थंच पाये जाते हैं।

७, सम्यग्दप्टि २, ३ ही हैं ऐसा कहनेका प्रयोजन

का. आ./मू. ब टीका/२०१ विरला णिसुणहि तच्चं विरला जाणंति तच्चं। दच्चं। विरला भावहि तच्चं विरलाणं धारणा हो दि ।२०११-- विद्यन्ते कित नारमवोधविसुखाः संवेहिनो देहिनः, प्राप्यन्ते कितिचित् । आत्मलाः परमप्रवोधसुखिनः प्रोन्मीलदन्तर्द शो, द्वित्राः स्युर्वहवो यदि त्रिचतुरास्ते पञ्चधा दुर्लभाः। —जगत्में विरले ही ममुष्य तत्त्वको सुनते हैं, विरले ही जानते हैं, उनमेंसे विरले ही सदस्की भावना करते हैं, और उनमेंसे तत्त्वकी धारणा विरले ही ममुष्योंको होती है।२५१।—पहा भी है—आत्म झानसे विद्यले और सन्वेहमें पड़े हुए प्राणी बहुत हैं, जिनको आत्माके विद्यमें जिल्लासा है ऐसे प्राणी ववचित कराचित् ही मिलते हैं, किन्तु जो आत्मप्रदेशोंसे सुली हैं तथा जिनको अन्तर्द ष्टि खुली है ऐसे आत्मज्ञानी पुरुष दो तीन अथवा बहुत हुए तो तीन चार ही होते हैं, किन्तु जाँचका होना दुर्लभ है। (अर्थात् अत्यव्य होते हैं)।

८. लोम कषाय क्षपकोंसे सूक्ष्मसाम्परायकी संख्या अधिक क्यों-

ष . खं. व धवला टी./१.८/मू. १६६/३१२ जेवरि विसेसा, लोभकसाईसु मुहुमसांपराइय-उबसमा विसेसाहिया ।१११।—दोजबसामयपवेसए-हितो संविक्तगुणे दोगुणद्वाणपवेसयम्बर पेनिखदूण कर्ध मुहमसांपरा-इयउबसामया विसेसाहिता। ण एस दोसी, लोभकसाएण खबएसु पबिसंतजीवे पेक्खिद्रण तेसि सुहुमसावराह्यउवसामएसु पवि-संताणं चउवण्यपरिमाणाणं विसेसाहियसाविरोहा । कुदौ । लोभ-कसाईसु ति विसेसणादो । - केवल विशेषता यह है कि लोभ-कवायी जीवोंमें क्ष्यकोंसे सुक्ष्मसाम्परायिक उपशामक विशेष अधिक हैं।१९६। प्रस्न-अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दो उपशासक गुणस्थानोंमें प्रवेश करनेवाले जीवोंसे संख्यातगुणित प्रमाणवासे इन्हीं दी गुणस्थानों में प्रवेश करनेवाले क्षपकों को देखकर अर्थात् उनकी अनेक्षासे सूक्ष्मसाम्पराधिक उपशामक विशेष अधिक हैसे हो सकते हैं। उत्तर - यह कोई दोष नहीं, क्यों कि सोभक्षायके उदयसे क्षपकों में प्रवेश करनेवाले जीओं की देखते हुए लोभक्षायके उदयसे सुश्म साम्पराधिक उपशामकों में प्रवेश करनेवाले और चौपन संख्या रूप परिमाणवाले उन लोभकषायी जीवोंके विशेष अधिक होनेमें कोई विरोध नहीं है, कारण कि 'लोभकषायी जीवोंमें' ऐसा विशेषण पद दिया गया है।

९, वर्गणाओंका संख्या सम्बन्धी दृष्टिभेद

ध, १४/६,६,१९३/१६८/१ बादरणियोदनगणाए सव्वेगसे हिवगणाओं असंकिजगुणाओं असे हेन आहरिया असंकिजगुणाओं असे हेन आहरिया असंकिजगुणाओं असे हेन आहरिया असंकिजगुणाओं असे हेन आहरिया असंकिजगुणाओं असे गुणगारों सि भणोति तण्ण घडदे; चुलिया- मुलेण सह विरोहादों। ब्लादरिनियोद वर्गणाकी सब एकश्रेणि वर्गणाएँ असंख्यात गुणी हैं। अज्ञाश्रीणके असंख्यात में भाग प्रमाण गुणकार हैं। अकितने ही आचार्य असंख्यात प्रतरावित भाग गुणकार हैं ऐसा कहते हैं, परन्तु वह घटित नहीं होता, च्योकि चूलिका मुत्रके साथ विरोध आता है।

१०. जीवोंके प्रमाण सम्बन्धी दृष्टिभेद

दे. स्वर्ग/३/२ [एक इष्टिसे स्वर्गवासी इन्द्र व प्रतीन्द्र १४ और दूसरी इष्टि से १६ हैं]।

- ध, ३/१.२.१२/गा. ४६-४६/१४ ति. वि वदंति केई चउरुत्तरमध्यषं चमं केई। उनसामगेसु एवं खबराणं जाण तह्दुगणं १४६। चउरुत्तरतिणिनस्यं पमाणसुबसामगाण केई तुः। तं चेव य पंचूणं भणंति केई तुः परिमाणं १४६। = कितने ही आचार्य उपशासक जीवोंका प्रमाण २०० कहते हैं। कितने ही आचार्य २०४ कहते हैं, और कितने ही आचार्य २०६ कहते हैं। इस प्रकार यह उपशासक जीवोंका प्रमाण है. क्ष्यकोंका इससे दूना जानो १४६। कितने ही आचार्य उपशासक जीवोंका प्रमाण ३०४ कहते हैं और कितने ही आचार्य उपशासक जीवोंका प्रमाण ३०४ कहते हैं और कितने ही आचार्य उपशासक जीवोंका
- ध. २/१.३.८०/१३०/२ के वि आइरिया सलागरासिस्स अबे गदे तेजका-इयगसी उपपज्जित कि भणंति । के वि तं णेच्छंति । कुदो । अइधुहरासिसमुदयस्स वग्गसमुट्ठिदत्ताभावादो । चित्रते आचार्य चौथी बार स्थापित ज्ञालकाराशिके आधे प्रमाणके व्यतीत होनेषर तेजस्कायिक जीवराशि उत्पन्त होतो है, ऐसा कहते हैं । परन्तु कितने ही आचार्य इस कथनको नहीं मानते हैं. क्योंकि साढ़े तीन बार राशिका समुदाय वर्गधारामें उत्पन्त नहीं है।
- गो. जी./मू./१६३ तिगुणा सत्तगुणा वा सव्वट्ठा माणुसीयमाणदो । ममुष्य स्त्रियोंका जितना प्रमाण है उससे तिगुना अथवा सत्तगुणा सर्वार्थसिद्धिके देवोंका प्रमाण है।

३. संख्या विषयक प्ररूपणाएँ

१. सारणीमें प्रयुक्त संकेत सूची

खंतर्मु, अन्तर्मृह्तं [आ./असं] (ध. ७/२,४,४४/२६७/१) अनं, मध्यम अनन्तानन्त (ध. ७/२,४,१९७/२८४/४) अनं, लो, अनन्तानन्त लोक (विशेष दे. संख्या/२/१) अनपहत (दे. संख्या/२/१) अप. अपर्याप्त अपहत प्रतिसमय एक एक जीव निकासते जानेपर विविधत

भारत भारतम्य एक एक पाव निकासत् जानस् विवासतः कालके समय समाप्त हो जाते हैं और उसके साथ जीव भी समाप्त हो जाते हैं।

वासं. मध्यम व्यसंख्यातासंख्यात (ध. ३/१,२.१४/१२६/६)

आ./असं, आवर्ती/असं. हृत असंख्यात आवती (ध. ७/ २.४.६६/ पत्य./अन्तर्म, पत्य क्यां. रूप असं आवती २६१/१) या पत्य/असं. (ध. ७/२.४.४४/२६७/१) उत्त, अव. उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी

उत्तरोत्तर असं. अपनेसे पूर्ववाली राशिके अवशेष उतनेवाँ भाग या सं. महभाग

उप.	उपशामक	텔. ,	पृथवत्व अर्थात् ३ से १ तक
एके,	एके न्द्रिय		अथवा नरक पृथिकी
+ কুজ	विविक्षित राशिसे	पृथि,	पृथिवीकायिक
યુ. સ.	कुछ अधिक गुणस्थान	बन,	ब नस्पतिकायिक
યુ. લ. ચંદ્રુ.	युगस्यान चतुरिन्दिय	त्रहु.	बहुभाग
"शु∙ जा,प्र	जगत्प्रतर जगत्प्रतर	बहुभाग	राशि भागाहार
्. जल	जलका यिक	ৰ্য.	नागहार बादर
ज. श्रे.	जगधेलो	मनु.	मनुष्य
तियं.	तियंच	यो.	योनिमति तियँच
तेज	तेजकायिक	ल, पृ.	लक्ष पृथवस्व
^{भ-} त्री.	श्री न्द्रिय	बाधु,	चायुकायिक
त्रा, ब्री.	द्वी न्द्रिय	सं.	संख्यात
a।- नि.	नियोद शरीर	सा.	सामान्य
।न. प्र	ामकाद शरार प् य प्ति	सःधाः	साधारण शरीर
पंचे.	पंचे न्द्रिय	स्तु.	स्क्ष

२. जीवोंकी संख्या विषयक ओघ प्ररूपणा

१. जीव सामान्यकी अपेक्षा

प्रमाण-१ व. तं. ३/१.२/सूत्र/पृष्ठ; २. घ. ३/१.२,६/गा. ३८-४०/८०; ३. घ. ३/१.२/पृष्ठ; ४. घ. ३/१. २, १२/गा. ४५-४८/१४-६६;

१. मो. जी./मू. व डो./६२४-६४२/१०७७-१०१४।

अंक-ा संदृष्टि—पस्य = ६४१३६; अन्तर्मुहूर्त = सासादनके योग्य ३२: मिश्रयोग्य १६; असंयत योग्य ४; संयतासंयत योग्य १२८।

			मूल प्ररूपणा			विशेष प्ररूपणा
₹.	गुणस्थान	ष.खं./ ३/सू-/पृ.	संस्वया	प्रमाण सं•	अपेक्षा	विशेष विवरण -
१	मिथ्यादृष्टि	२/१०	લાનં.	3/ २६	द्रव्य	मध्यम अनंतानंत
{	:	३/२७	अनं, उत्त अवसे अनपहत	३/२⊏	क(स	(दे. संकेतं सूची)
1		४/३२	अनं. लो	३/३२	क्षेत्र	(11 (11)
:		१/३ ⊏	लोनोंका ज्ञान	3/३٤	भाव	द्रवय, क्षेत्र व काल प्ररूपणाका ज्ञान
२	सासादन	₹/ξ३	पल्य	<u> </u>		पुरुष (विशेष दे, संकेत सूची) स्व योग्य अन्तर्मुः
]]	असं.	सूत्र	काल	
{ }	1 ,] .		[२	अंक-	ई५५३६÷३२ = २०४८ (दे. उपरोक्त संकेत)
ł į		ļ., !	r	1	संदृष्टि	
3	मिध	\$/45 }	<u> पल्य</u>	२	अंक-	ई१५३६÷१६≔४०६६
8	अविरस		असं	ļ	संदृष्टि	&483&+8= 8&3<8
, k	संयतासंयत संयतासंयत] "	11	"	"	£
`	(वरासिवरा		"	"	"	[स्वयं भूरमण द्वीप सागरकी अपेक्षा— दे. संख्या/२/६१]
Ę	प्रमत्त	9/55	कोटि पृ.	3/58	गणना	५१३१८२०६
٠	अप्रमृत्त	3310		3/80	22	२१६१९०३ (प्रमत्तसे आधे)
. .	चारो ७५	5160	१-५४	3/80	,	उपशम श्रेणीयोग्य लगातार व ही समय उत्कृष्ट होते
	`वेशापेक्षा (विशेष]] "	हैं। तहाँ प्रथमादि समयों में जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यन्त
•	दे अगला उपशीर्षक)	į				क्रमसे—१-१६: १-२४: १-३०; १-३६; १-४२: १-४८
•	4, 9/10/10/10/14/14	1			ŀ	ब १~ १४ जीव प्रवेश करते हैं ।
	संचयापेक्षया	१०/६१	सं.	8	,,	२९९ या ३०० या ३०४ (विशेष दे. संख्या/२/१०)
3	चारी क्षपक			1	ŀ	į
1	प्रवेशापेक्षा (विशेष	११/83	१-१०=	₹/१२	गणना	उपशामकॉसे दूने (दे. संरूया/२/४+उपरोक्त उप-
1	दे अगला उपशीर्धक)				l	शामकोंकी प्रस्पणा)
ì	संचयापैक्षा	₹२/६३	स.	8) v	उपशामकोंसे दुगुने अर्थात ५६८ या ६०० या ६०८
1	1					(उपरोक्तवत)
१०	सयोगी	Ţ	ļ	1		
	प्रवेशापेक्षा	१३/६६	•	3/84	37	उपरोक्त क्षपकवत्
1	संचयापेक्षा	१४/१५	स∙ पृ.	8	, ,,	८६८५०२
१र	अयोगी	1				
	प्रवेशापेक्षा	११/१२				——⇒ उपरोक्त क्षपकोंबस ←—
1	संचयापेक्षा	१२/१३			9	——⇒ उपरोक्त क्षपकीवत ←——

२. तीर्यंकर आदि पुरुष विशेषोंकी अपेक्षा

(ध. ४/१, ५, २, २४६/३२३/१)

सं.	नाम	युगपत् उपशम- श्रेणीमें प्रवेश	युगपत् क्षपक- श्रेणीमें प्रवेश	सं.	नाम	युगपत् जपशम श्रेणीमें प्रवेश	युगपत् क्षपक- श्रेणीमें प्रवेश
2	तीर्थं कर	ą	ů,	Ę	जघ्न्य अवगाष्ट्रना	२	૪
२	प्रत्येकबुद्ध	ķ	१०	હ	पुरुष वेदोदय सहित	५४	₹0⊏
3	मोधित बुद्ध	48	१०द	5	स्त्री वैदोदय सहित	१०	२०
8	उत्कृष्ट अवगाहना	۲ ا	ર	3	नपुंसक वेदोदय सहित	ļ ķ	१०
بد	मध्यम अवगाहना	8	•			<u> </u>	

	म भ	h
<u> </u>	ΙC	p.
Ý X	†	ċ
₩ ₩	iti Ti	7
₹	7	₹
र, वादाका सक्या विषयक सामान्य विशय भारत प्रक्रिया	प्रसंक में स्थान है है। व्यास में में	2
- য	į	5
<u>.</u>	 E	-
Ī	. }	
ê	TV I	यमें ज्य
₹ 8	Ha.	Dr
ŭ.	់ជ	•
<u>.</u>	में सम्प्रति । विद्वाद की स	-
E E	-	9
_	C.	<u>-</u>
<u>o</u>	ū	ř
<u>-</u>	. (B	
'n	Ţ	,

	गुर्ध	Rea	प्रवयकी अपेश्वा		सेत्रकी अपेक्षा			कालकी अपेक्षा
मुराका	स्याम	, eë.	प्रमाण	ष (षं	яніо	असे, का प्रमाण	ं खं व	प्रमाण
१ मित मार्गणा				•				
१. सरक गति. —	(सि. म	1/3/884-308); ((कि. ग./२/१६६-२०१); (गो जी./मू. व जी. प./१५३-१५४/३७६)	(इंक्ट्रेक्ट्रिकंड-हर्ने		1 1		
सामान्य		(8) N/N N/N	शसं	10 X X X X X X X X X X X X X X X X X X X	असं. जगभेगी	x 190	ত হব ত হব	थतं, उत्. थवं, से अपहत
प्रथम पृथियी		9 × 6	1	!	→ सामाम्य बत् ←-	<u>.</u>	1	ľ
२-७ में प्रत्येक पृ.		(S)	असं.	त्र क्षा काल काल	ज, थ, – छत्त	अस.करोहयोजन	એ જે જે	असं. उत. अव, से अपहुत
हितीय पृथिकी		5	‡	(6283	ज शे - ज्ये का १२वां वर्ष्यस	·	Ξ	£ ⁻
त्तीय पृथिको		;	7	(को टोका	五. 4. 4. 4. 3. 50 :: 50 :: 5		:	F
चतुर्थं पृथिनो		;	5	F	20. 七年, 四 " " "	•	£	<i>*</i>
दंचम पृथिवी		;	*	;	一月,如一月,如,二		:	Ŧ.
मन्द्र पृथियो		.	;	;	到,如小国,如, 以 二 二		; .	£
सप्तम पृथिनो		ţ	\$;	国、如、中国、如、 、 、 、 、 、 、 、 、 、 、 、 、 、 、 、 、 、 、		:	÷
सामान्य	ov	5 pr 6 pr 6 pr	थसं,	9 kg 6 kg 6 kg	क्रमं, ब. म.	हैं. स	us a le mils [a	असं. उत्, अब, से अपहत
**	32 hr	در جاري دراير	1	J	→ अविषद् ←	्रम् इस्	}	1
प्रथम पुथिनी	<i>;</i>	0 kg	ł]	↓ :	í]	1
२-७ वृथियी (प्रत्येक)	•	6.6.6.0.0.0.0.0.0.0.0.0.0.0.0.0.0.0.0.0	असं.	8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8	ज, थे, न धर्म	अस.करोड्योजन	الله مراهد مراهد	असं. वतं. अन्. से अपहत
	ů, X	حه ماره ماره هاره	ì	;	→ औषत्रेस ←	 	 	,
() 			(विशेष दे. भागाभाग) -					
र. तियंचे गति: सामान्य		tiv.	a, wi, y,/१५६-१६६/	(025-395	स्य स्या		ا ص) ع	अस. अस. अस. से समयम
		0 अ अ 9		و و و و و و و و و و و و و و و و و و و			र 5 ४ १	אשרויא וא יוא יוא
ंचे. तियं, सामान्य		8 4 4 4 4 8 4 8 4 8 4 8 4 8 4 8 8 8 8 8	अस्	জ প্র ব্যুক্ত ম	ज, प्र, ÷ देव अवहार काल असं		س خاه سام ع ع	थसं- उत्, थन, से अपहुत
, વયષ્ટિ		;	*	ş	ज प्र. देव अन्हार काल		,	;
योनिमति		:		,	ज. प्र. → (देड अवहार काल ×सं.)	_ ,.	:	•
		: :			ज. प्र. + (रेब अवहार कोत×अस)		: : :	÷

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

# 1701	Hits	हरू	इन्यको अपेक्षा		सेत्रकी अपेसा			कालकी अपेक्षा
	ग्रैवार्ट	म. ति.	प्रमृति	ক ড	Юlнк	अम, का प्रमाण	# # · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	प्रमाव
साम्रान्य	**	س دراند ماریز ماریز	ļ	[→ ओधबत ←	<u> </u>	ı	ı
पंचे, तिये, सामान्य		તક. હ્યું આ આ	असं.	स्क क क ह	ज प्र + वेत्र अमहार काल अस.		123. 14',41 10' 10'	असं. उत. अत्र, से अपहत
	*	ณ. เก.แก. กุกก	पल्य/असं.	1				प्रय/जर्स = प्रत्य ÷ जर. असे,
पमिश्	~	હક. ઉત્ત્રીપ ભાગ જા	ल ख ख	ന യിറ് കിസ്	ज. प्र. के केव अवहार काल म		m alu o lu b	थसं, उत. अत्र, से अपहत
	*	.स. स्थाप स्थाप	f	l	्रे आध्वत् ←	 	i	
., योनिम्हि	~	ත ^{්ත} , ත්තේ (अ <i>सं</i> .	പു ബിധ ചിര	ज प (देव अवहार कालु×से.)		olu Solu Jo Jo	अस. उत. अव. से अपहत
·	* *	w. 1, 2, 6)	1	1	→ ओधवत् ←-	l 	1	4
पचें, तिर्थं, पशिप्त	-~ -—	111 1210 1210 1210 1210	थसं.	ult. o.lu. (o.	ज. प्र.		60 0 0 0 0 0	असं. उत्. अयं. से अपहत
३. मनुष्य गति		(गो. जी./मृ. ब	जीव प्र,					•
सामान्य		જ' પ્રાપ્ત જ	ल	# 자 자 가 다 가 다 가 다 가 다 가 다 가 다 가 다 가 다 가 다 가 다	ज, थ, + धर्म,	अस करोड योजन	হ ১৯ ১৯ ১৯ ১৯ ১৯ ১৯ ১৯ ১৯ ১৯ ১৯ ১৯ ১৯ ১৯	असं उत् अम. से अपहत
मनु, अपर्याप्त		1 o		;	:		Ē	٤
मनु, पर्याप्त		න (ප් ම	काड़ाकाड़ाकाड़ा थ कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ी भेटीन					
	<u>-</u> -	टी./२५७	क माचन अर्थात्	हर्ययन है देव हैं इस्त्रे के किस्त्रे के किस्त्रे के स्वर्ध	—ቌዸዸዾቭ፟፟፟፟፟ዸቘጞዸዿጞፙዸዸቘቇዀጜኯ፟ዀቇቇ፟፟፟፟ዀዀጜዿ 	-		
मनुष्यणी		टो./२४१	उपरोक्त × छ ==	्र ५६४२११२४	(५९४५९१२९ व्यन् ५६६५१५७६६२७६१ (कि. १.४४११६६)	[(3535/K/-b		
पुरुष व नपंसक			उपरोक्त x 🕏 🗂	৳ৡ৹য়৹ঌ৹ᠴঽ৳]	[(১৮৫/৪/৪৫ - ১৯ ১৯ ১৯ ১৯ ১৯ ১৯ ১৯ ১৯ ১৯ ১৯ ১৯ ১৯ ১৯	F./8/2839)		
मनुष्य सामान्य	•	જો જોજ જોજ જોજ જોજ	असं.	(3) (1) (4) (4) (4)	अ थे. + असे.	असंकरोड् योजन) () () () ()	असं उत अव. से अपदत
•	<u>*</u>	44 44 519 4	to da	, ,			5 3 V	
	or	(1	१ २ करोड़	[मतान्तरकी अ	[मतान्तरकी अपेक्षा १० करोड़]			
	nar 	/285 /285	** %0%	्रिमतान्तरको अ	[मतान्तरको अपेक्षा १०० करोड़]			
	5 0 -	F.91 133-	o					
	×	= } 'li 'è 'ls	:					•
))						

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

The state of the s	YILLE	Filt	हें इंद्र	द्रव्यकी अपैसा		क्षेत्रकी अपैक्षा		क	कालको अनेसा
हर के कुर्युट को क्रांक्राक्रीक्री के क्रांक्राक्रीक्री के क्रांक्राक्रीक्री के क्रांक्राक्रीक्री के क्रांक्राक्रीक्री के क्रांक्राक्रीक्री के क्रांक्राक्रीक्री के क्रांक्राक्रीक्री के क्रांक्राक्रीक्री के क्रांक्राक्रीक्रीक्री के क्रांक्राक्रीक्रीक्री के क्रांक्राक्रीक्रीक्रीक्री के क्रांक्राक्रीक्रीक्रीक्री के क्रांक्राक्रीक्रीक्रीक्रीक्रीक्रीक्रीक्रीक्रीक्री		.Lates	ष. सरं.	प्रभाज		प्रमाव			ዝዝነ
२५ ११६ स. (वयरोक मनुष्य साथ-वया सामान्य साथ-वयाने २०१४ गुणस्यानी साथ है) २६ ११६ स. २६ १८६ स. २६ १८६ स. २६ १८६ स.	मनुष्य सामान्य मनुष्य पर्याप्त त	20 2 44r	전 조 전 조 전 조 전 조 전 조 전 조 전 조 전 조 전 조 전 조	न कोड़ाक(ड़ामोड़ी व	l	अ} धवत्	1	1	1
হা, বৈহত মন্ত্ৰ মা, তাৰ — — — — — — — — — — — — — — — — — — —			źì./9 <u>4</u> %	को की बमें के की बमें अथित	(उपरोक्त मनुष्य	. सामान्य रास्थि—अपने २-१४ गुष्	 स्थानोका जोड)		
रेट्ट कोड़ाकोड़कोड़ी ब कोड़ाकोड़कोड़ी के बीचमें सेट्ट के कोड़ाकोड़कोड़ी के बीचमें सेट्ट के कोड़ाकोड़कोड़ी के बीचमें सेट्ट के सेट्ट के सेटिंग के सेटिंग के सेटिंग के स्थापकार सिंग कर स्थापकार के सेटिंग के स		å,	س. کواند مراثر اهر	ें		×			
१ १६६० को बाको प्रकार को बाको प्रकार को का का का का का का का का का का का का का			ZÌ./3&c	महु. सा. ज्व					
र १९६० मोझमोड़कोड़ी ब मेडीचार स्टेड्ड स्टेड स्टेड्ड स्टेड स्ट स्टेड स्ट स्ट स्ट स्ट स्ट स्ट स्ट स्ट स्ट स्ट			us Sim Sim	1	į	खोधबत	1		l
स्कृत्यान को बाम के बान के बा		~	اره سائل مادر سائد سائد	कोड़ाकोड़ाकोड़ी ब	-		<u>-</u>		
र-१४ देव्हु सुर्वाप्त प्रतिस्थान प्यतिस्थान प्रतिस्थान	,	. /	, ,	नोड़ाकोड़ाकरेड़ाकोड़ी के बीचमें					
२-१४ से. सं.			£1;'3₹0	अर्थात	:इपरोक्त मनुष्य	गी सामान्य राशि - अपने २-१४	गुणस्थान्त्रैका अहे 		
ाधि ः १ देश्वर पुणस्थान प्रतिपक्ष उपरोक्त महत्य + संस्थान मिनो नियो नहीं सियो स्थाप असे, क्यों है व्यक्त असे, क्यों किया मिनो नियो नहीं मिनो मिनो मिनो मिनो मिनो मिनो मिनो मिनो	F	83-6	U. (0,000)	,					••••
ाधि .१ देई हु असे. हे देई हैं ज. थे. में असं. यांजन यांजन यांजन यांजन यांजन यांजन यांजन यांजन यांजन यांजन यांजन विकेत हैं जि. प. / देह १० १६ १० १६ १० १६ १० १० १० १० १० १० १० १० १० १० १० १० १०			टो, रिक्	नुनस्थान प्रतिषक्ष छपरोक्त	मनुष्य 🛨 सुंख्यान	ा किसी निन्नेनत राशिका इफ्	কা দায়ে নাইশ ই		•
७३२ असं, प्रदेश हैं । ७३५ असं, प्रदेश हैं । ७३६ असं, प्रदेश हैं । ७३६ असं, प्रदेश हैं । ७३६ असं, प्रदेश हैं । ७४२ असं, प्रदेश हैं । ७४६ असं, प्रदेश हैं । ७४६ असं, प्रदेश हैं । ७४६ असं, प्रदेश हैं । ७४६ असं, प्रदेश हैं । असं, प्रदेश हैं । असं, प्रदेश हैं । असं, प्रदेश हैं । असं, प्रदेश असं, सं, प्रदेश हैं ।	मनुच्य अपयधि	۰.	olm ola vis	ल लंभ सं	ങ് മിയ ഉസ് സ	ब. थ अस.	अतं. करोड योजन	عبادر عبادر العبا عبد	असं, उत. अर. से अपहत .
७३५ असं, ७३६ अ. म. न (२५६ म्हम्पुन) ७३६ असं, एउँ ५५६ म्हम्पुन) ७३६ असं, ७३६ अ. म. न (सं, शो माजम) ७५६ ७४४ -> देव सामान्यवत ६- -> देव सामान्यवत ६- ७४६ -> देव सामान्यवत ६- ७४६ असं, एउ५,४४ असं, उपाय, प्रमाण असं, म. म.	४. देवगति			(ति. ५./५/६११-६:४).		इ खो, प्र /१६०-१६३)			
6 2 दे दे दे दे दे दे दे दे दे दे दे दे दे	सामान्य सामान्य		ਘ ଟାର୍ଟ ଟାର୍ଚ ଟ୍ର	असं,	ા જાંક જોજ જો	ज, ≕(२५६ सृष्टर्पेणुल) ^द		o भ्राप भ्राप (क	उठ, अय. से
$68\sqrt{2}$ 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3	भगनगासी		ja గా గా లో లో					්ධ භූත කැක කු	2
6 देह हो माग्यवत र- मान उद्हेह अप्रहेह	बानव्यन्तर		ক জাল স্থান প্ৰ	लं	क स्रोत स्रोत राज्य	ज. प्र. ५ (सं. सो याजम)र		ق بابر ها تا ها	F
७४६ जाम, अस्त-४६ जाम, प्रमाण असं. ज. अ. ७२६४	जगीतकी		(m) 100 km 100 k	l	i	देव सामान्यवत	······································	l	I
	सौधर्म ईशान		જ જ્યુ જો	, й,	2 5 3 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5			か シマ かって の	अरुं, उत. थ्रत, से अपहत

	FI	ici lux	द्रव्यकी अपेश्।		सेत्रकी अपेशा			म्यासकी अपेस्रा
मायवा	र}कार्ट	ष	HILLER I	्षं (अं	<u>ини</u>	असं का प्रमाण	म. खं,	ស្នាម្
सनस्कृमार-सहसार आनत-अपराजित	i	डि के लाक लाक ज्ञार डाव 9 9	महर्म (अर्म	l 	→ संग्रम नरकडत् ←-	(ار سام این این این این این این این این این این	— (पस्य/अंतुमुं) से अपहत अंतर्मुं = थां. (दो.यु.२६७)
सर्वाधीसिद्धि देव सामान्य	~ [%]	के प्रभाव का कि व्याप्त का कि का कि का कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि	असं. असं. — → ओषत्रत मागाहार=असंयन सध्यन्धि सामान्यका मागहार + यहो	इ.५.६.८ 	च्यांगुल } ³ ← मागाहार÷	(A) (A) (A) (A) (A) (A) (A) (A) (A) (A)	ν Σων Σ α	अमं, उत्, अभिते अपहते —
	: 672	; • •	,, =थसगतसम	क्षग्ट्रिका उपरोत्त	= अस्यत सम्याद्धिका उपरोक्त भागाहार× अस			
मत्रनशसी	~ ~ ?	හාය හාය දුරු ඉති දුරු ඉති දුරු ඉති	., =तीसरे गुणरः अमं, —	=तीसरे गुणस्थानका उपरोक्त भागहार×सं. ३ क्षुठ ज. प्र./अ -> उपा	ागहार×सं. ज. प्र./असं, प्रमाण असं. ज.ते. → उपरोक्त सामाध्यवत ←	ı	कर इ.च. १० (असं. खत. अभसे अपद्वत
डेग्रन्त्	° ′ °	സം ന പിരുത്ത വിരുത്ത	असं. पत्य/असं.	්ත් හ[ම සැල් අප	ज, प. + (सं, सौ योजन) र		ዜ . አዜ የ4	पर्याख्यां उत्ति कामस अपहृत एस्य/आसं = युप्य ÷ असं.
स्प्रोतिष सौधमे-ईशान	20 00	x Ux Ux মিল্যু জাম জিইড়া জাম জি মু লি		ம். நிற் நிற்	 ⇒ देवसामान्यवद ← ज. प./असंप्रमाण असंज, थे. → देवसामान्यवद ← 	! !	## 9 9 mir mr	— असं. उत. अन्से अपहत —
सनत्कुमार-सहस्रार सनकमार-माहेन्द	» ~ .	us in all all all all all all all all	1 I	======================================	सप्तम पृथिवीवत् थे./असं	_		ļ
प्राप्त । प्रमान । प	/ ~ ~ ~			: : :	: : :	(संस्) अस्त्रे भे		
कृतार-सहस्रार सनद्कुमारमे सहस्रार द्वानत-उपरिम ग्रैवेदक	»	टी (वंदर इक्टन इट्टन	मंडिय/यम्	; l	ः सप्तम नरकवत् ←-	ا آه ا	कर कीप कि	पुरुष/जेतुमूँ अपहृत पुरुष/केतुमूँ निरुष्य — आ.

मार्गणा अनुदिश-अपराजित सर्वार्थिसद्धि	L	Š	द्रव्यका अप्सा		このとう こもたむ			कास्की अपेसा
अनुदिश-अपराजित सर्वार्थितदि	रीवा≨श्र	ब	प्रभाव	च च	प्रमाण	असे का प्रमाण	(d)	inlæs
सर्वार्थिसिद	· >>	র ১৯৬ ১৯৬ ১৯	परय/असं,				80 80 80 80 80 80 80 80 80 80 80 80 80 8	(पस्य/अंतम्) से अपहत
	>∞	# 10 mio cr 9,14 fo	सं. मनुष्यणीसे सिगुने—[१७८२६५६५७०१४७५१६५=५४७३===७५५६]	०८३०० <i>)</i> - 	[\$740==e084=734			न परंग/अतुम = पन्य ÷
२. इन्द्रिय सार्गेषा :-		। (गो.जी./मूब	। (गो. जी./मू व टी./१७६−१ ^८ ०), (ति. प./ <u>१</u> /२ ^६ ०)	i. ष./४/२६०)				
एकेन्द्रिय सामान्य		19 ሁኔታ ታት ይ	थनं.	\ ok ok 9	છાં. હાં.		8) 8) 8)	ביהומה לרוש אני ליות
एकेन्द्रिय पर्यप्ति		<i>.</i>	:	, ;	*		ka :	787 15 0 15 170 115
भ अपयोग		;	ŗ	F	F		: :	; - ;
ना. एक. सामान्य सम्बन्ध	×	まい	7	:	f		£	÷ ‡
11 11 1418 	х	•	*	ŗ.	£			F
सुरुम , सामान्य	×	;	ŧ	s :				*
ं , पर्याप्त		; ;	.	£ ;	<i>;</i> ;		ŧ,	ŗ .
भ अपयोष्ट		: :	: ;		· •		÷ :	F #
द्वीन्द्रिय सामान्य		ම ඇ දැක ප	असं.	्र १४ १४ ७ (©	ज, प्र.÷(सूच्यंगुल/असं)र	आ./असं.		असं उत्, अभ. से अपहत
• मधित		- ≠	ī	F	ज. प्र. + (सूच्टांगुल/सं)?		λ τ α τ	:
,, अपर्याप्त	· · ·	······	*	•	ज. प.÷(सुच्यंगुत्त/असं) ³	आ./असं,	£	;
त्रीन्दिय सामान्य		ŧ	5	;	द्वीन्दिय सामान्यवत्		2	.
•• मयसि		ŧ	÷	:	., मयप्ति ,,		<i>‡</i>	· •
,, अपयोध		<i>‡</i>	£		., अपर्याप्त .,			÷
चेतुरिन्दिय सामान्य		÷	£	2	,, सामान्य ,,		5	:
., पर्याप्त	-	ŗ	z	;	,, पश्चित्र ,,		;	:
,, अपयग्नि		ī	:	£	., अपर्याप्त ,,		£	;

म्य सामान्य (पुर्देश अस्तं (पुर्धे) द्वानित्ता । स्वाना स्तंत्रं (पुर्धे) द्वानित्ता । स्वानान्य (पुर्देश अस्तं (पुर्धे) द्वानित्ता । स्वानान्य (पुर्देश अस्तं (पुर्वे) द्वानान्य । स्वानान्य (पुर्वे) द्वानान्य । स्वानान्य (पुर्वे) स्वानान्य (पुर्वे) स्वानान्य (पुर्वे) स्वानान्य (पुर्वे) स्वानान्य (पुर्वे) स्वानान्य (पुर्वे) स्वानान्य (पुर्वे) स्वानान्य (पुर्वे) स्वानान्य (पुर्वे) स्वानान्य (पुर्वे) स्वानान्य (पुर्वे) स्वानान्य (पुर्वे) स्वानान्य (पुर्वे) स्वानान्य (पुर्वे) स्वानान्य (पुर्वे) स्वानान्य (पुर्वे) स्वानान्य स्वानान्य (पुर्वे) स्वानान्य		सेत्रकी अपैश्रा		कालको अपेश्रा
य सामान्य पर्वहर्द्द अस्तं पर्वहर्द्द व स्वांतान्य पर्वाप्त ।	 	प्रमाण व्यसंका प्रमाण	ज के खें	प्रमाण
अपयोगि	ত গুলুহ	य सामान्यवर्त	o wan	असं, उत्. बाब, से अपहृत
स्कि उपरोक्त १ 335 द अने. 355 है कियके उपरोक्त १ 350 असे. ७% असे. ७% असे. ३५ ३५ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १	# ;		: -	*
िस्पके उपरोक्त १ ३७% असे. ७% असे. १५८% असे. १५८% असे. १५८% असे. १५८% असे. १५८% असे. १५८% १५८% भागीया:- १८०% असे. १५८% १५८% १५८% १५८% १५८% १५८% १५८% १५८%	പം ഉത്ര എഗ		- 5 0 5 0 10	अनं. उत. अव. से अनपहुत
प्रधासान्य १ ३ <u>८०</u> असं. ३५६२ प्रधास :	#N or or oy oy	क सामास्य विकल्पोबत्	മം ഉന്ന വ്രം	अस. उत. थन, से अपहत
मार्गणा :- काधिक सामान्य धर्डु है स. ३/१,२/=७/१३४-३४=) (मृ. आ./१९०५-९२ काधिक सामान्य पश्रि जमर्याष्ठ सामान्य पश्रि जम्याष्ठ पश्रि जम्याष्ठ पश्रि जम्याष्ठ समान्य पश्रि जम्याष्ठ समान्य पश्रि जम्याष्ठ समान्य पश्रि जम्याष्ठ समान्य समान्य समान्य समान्य समान्य समान्य समान्य समान्य समान्य	ंच ें संस ज्या च्या लग च्या का का	+· +· · · · · · · · · · · · · · · · · ·	nts us ntw ntw ce ste	असं. उत. थन, से अपहत — असं, उत. अन, से अपहत
कायिक सामान्य ७५५ है ।	_ ~ _	(ति. प./५/२०७);	(मो. जो./मृ./२०४-२१४/४६२-४६६)	
वयष्ठि ७६ ड वस. ७६ड. आप्यष्ठि ७६ड वस्तान. प्राप्तान. प्राप्तान. प्राप्तान. सामान्य	थ, २/पृ. ३३४	।का कोई उपाय नहीं 	at 3/d. 338	प्ररूपणांका कोई उपाय नहीं
	660 5605 8. 2/9. 838	+ (सूच्यंपुत्त/अस) रे सका कोई जनात सन्दे	. din . √	**
भ भ भ्यमि	:		8	प्रस्पणाका कोड् उपाय मही
भ भ अनुयासि "	;			: :
4		=	:	=
अष् कार्यक सामान्य । । ।	 		£	:

	n Tarini	<u>,</u>	FlR	K	द्रव्यकी अपैक्षा		क्षेत्रको अपेक्षा			कालकी अपेक्षा
	<u>.</u>		र्गेगा€	ब.सं	प्रमाण	स.खं.	प्रमाण	असं, का प्रमाण	Э.	श्रभाण
भादर	ल र्	अप् काधिक सामान्य		ව කැප ක ව ල	थसं. वोक	क्षं के हैं के	प्ररूपणाका कोई उपाय नहीं		घ.३/ए.३३४	प्ररूपणाना कोई उपाय नहीं
:	;	पयप्ति		6 20 40 40 40 40 40 40 40 40 40 40 40 40 40	श्रम्.	6 8 8 8 8 8 8	ज, प्र. + (सूच्यंगुल/असं.)		ত জন্ম জন জন	असं. उत. अवसे अपद्वत
£	:	" अपर्याप्त		9 w x 9	असं. लोक	ध.३/५ ३३४	प्रस्पणाका कोई उपाय नहीं		4.3/g.338	. प्रस्पणांका कोई उपाय नहीं
सुरुम	;	" स्।मान्य	 -	F	:	F	2		:	· *
=	ŧ.	ग पर्याप्त		f		<u>.</u>	:	•	:	
ŧ	· 2	" अपयम्		;	;	;	2		ţ	*
ज		'' सामान्य		:	:	7	F		:	τ
नादर	15	;				:	;			: :
ŧ	:	,, पर्वाप्त		ය ලිනු - ය න ලින ම න	(असं. थावती) (आ ^{. ३} से मीचे)	:	*		f	: :
:	;	• अपसिप्ति		3) 10 (1) 10 (1) 10 (1)	असं तोक	;	=	è	;	F
1. 1.	ī	" सामान्य		£	£	:	.		F	=
· £	ž	ո, գաքը		:	7	F	=		ř	:
;	2	ः अपर्याप्त		:	<i>:</i>	:	.		F	£
ক বি		भ साम,न्य		; 	:	:	.•		‡	5
मादर	न न	£ .		;	÷	: :	<i>\$</i>		*	:
ş	=	" पयधि		ନ ବ୍ୟ ବ୍ୟ ବ୍ୟ ବ୍ୟ	असं.	20.00 D	लोक/असं प्रमाण असं ख.प्र.) 9 9 9 9	थसं. एत. अबसे अपहत
:	2	ः अपर्याप्त		տ Ծ Ծ Ծ	असं. लोक	य.३/ज्ञ.३३% व.३/ज्ञ.३३%	प्रस्तपणाका कोई उपाय नहीं		8:2/h/2/h	प्रस्पणांका कोई उपाय नही
4%.	í	" सामान्य		:	;	· £	;			
\$	£	" पर्याध्	_		;	Ţ	\$		\$	
•	2	" अपर्याप्त	<u>-</u>	:	‡		:		.	: #
त्रनस्पति	عار	भ सामा न ्य	- 	১ ১ ১ ১ ১ ১	खम	ନ୍ଧ ଜ୍ୟ ଜ୍ୟ ଜ୍ୟ	थनं, लोक		ン で で り で り で り	अनं, उत् अवसे अनपहुत
बादर	न नस्पति "			:		÷	=		\$	F
;	2	भ पर्याप्त ्र	<u> </u>	:	•	f	\$:	ŧ
=	:	., अपयशि		; 	:	:	7		÷	*
तुरुम	£	¹, साम्।न्ध		: 	*	*	\$:
;	2	., पयग्नि		:	;	•	;		<i></i>	t de
;	:	•• अष्याध		:	;	;	£	-	;	F
निगोद	÷	ः सामान्य		:	<i>5</i>	:	;		5	•

संस्था प्रमुक्ति । स्था । समाज वस. का समाज वस. वा समाज वस. का समाज वस. वा सम		Fik	র্বধ্য	द्रव्यको अपेसा		क्षेत्रको अपैहा।			कातको धपेक्षा
त्र मिनोह बामान्य (95,6 पूर्व कार्न, लोक (95,5 पूर्व कार्न, लोक (95,5 पूर्व कार्म) (95,5 पूर्व कार्म, लोक (95,5 पूर्व कार्म, लोक (95,5 पूर्व कार्म, लोक (95,5 पूर्व कार्म, लोक (95,5 पूर्व कार्म, लोक (95,5 पूर्क कार्म, लोक (95,5 पूर्व कार्म, लोक (95,5 पूर्व कार्म, लोक (95,5	मागणा	र्यवा£	ब स	प्रमाण	ক্ ছে:	प्रमीध	अंस. का प्रमाण	म. ह्यं.	प्रमाण
प्रपति	साहर निगोद सामान्य		क १५० १५०	अनं, सीक	ખ જાત જાય જ	थनं, लोक		ゴ # ១ いか ・シ	अने. उत्. अवसे अनग्हत
 म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रायक्षि म प्रा			\$	ī	1			:	:
म सामन्य	अपयोष्ट			;				;	£
अपगिति अपगिति अपगिति अपगिति अपगिति अपगित	:		.			£		<i>;</i>	;
अपर्याष्ठ स्थापि स्थ	:		5	4	;	•			
 म. मारीक सामान्य भ कुर्तुक्व म. मारीक म. मारीक म. मारीक म. मारीक म. माराव्य माराव्य /ul>	;		* .	£		;		;	
प्रविक्त (क्टूडिक (क्ट	क्त.		10 m	असं. लोक	भ.३/व.३३४	प्रक्रमणाका कोई उपाय नहीं		848.9/4.B	प्रस्पणाका कोई उपाय मही
जम्बर्गंग ७६६६ असं. लोक म्ह. १९१३३४ प्रहरणाका कोई उपाय महीं ←	:		ام ام ام ام	, अस्	ଜ୍ୟ ବାଦ ଅ	ज, प्र.+ (सुरुर्गगुल/अर्स.)		জু জুজ জুজ জুজ জুজ জুজ জুজ জুজ জুজ জুজ	असं उत अवसे अपहत
ा प्रयोध प्रयोध प्रयोध ् च्यां ् च्यां ् ् च्यां ् च्यां ् च्यां ् च्यां ् च्यां ् च्यां	:		- 19 (10 () (10 ()	असं. लोक	855.5/E.B	प्ररूपणाका कोई उपाय मही		ध.३/५.३३%	प्रस्पणाका कोई उपाय नहीं
पर्याप्त प्रयप्ति प्रयप्ति प्रयप्ति प्रयप्ति प्रयप्ति प्रयप्ति प्रयप्ति प्रयप्ति प्रयप्ति ् अप्रयप्ति प्रयप्ति च्यापित च्यापित			· m	l	1	वंचिन्द्रिय सामान्यवत्	↓	J	ţ
ात्र कार्याप्त क्ष्य्याप्त स्वय्याप्त स्वयंत्र			ku 19 In 3	ţ	1	प्यपि	<u>,</u> ,	t	{
ात्र कार्यक्रीके उपरोक्त सर्व विकल्प सर्व सर्व विकल्प सर्व सर्व विकल्प सर्व सर्व विकल्प सर्व सर्व विकल्प सर्व सर्व विकल्प सर्व सर्व विकल्प सर्व सर्व विकल्प सर्व सर्व विकल्प सर्व सर्व विकल्प सर्व सर्व विकल्प सर्व सर्व विकल्प सर्व क्षेत्र	;		` ;		î	अषयीय	ļ	i	ţ
सर्व विकल्प सर्व विकल्प स्वीयक सामान्य १ ३३६ - असं, हे३६६ - पर्याप्त १ ३३६२ - स सा. व प्याप्त १ ३३६२ - स सा. व प्याप्त १ ३३६२ - त सायिक अप् १ ३३६२ - त सायिक अप् १ ३३६२ - त सोमार्गणा— (गो. औ./२५६-२३०/२७१-५८६) न प्रोप्ताणा— (गो. औ./२५६-२३०/२७१-५८६) न प्रोप्ताणा— (गो. औ./२५६-२३०/२७१-५८६)	Ripan		11 6 6 6	i	1	सर्वत उपरोक्तवत्	ţ	1	1
कायिक सामान्य १ ३३६ अस. वर्ष. वर्ष. व. प्र. + (सूच्यंगुल/असं.) र पर्याप्त १ ३३६२ अस ज. प्र. + (सूच्यंगुल/असं.) र ज. पर्याप्त १ ३३६२ — ♦ योषवत ← अोववत क्षेत्र अप. (या विकले न्यिय अप. (या विकले न्यिय अप. + प्रचित्य अप. (या विकले न्यिय अप. + प्रचित्य अप. (या विकले न्यिय अप. + प्रचित्य अप. (या विकले न्यिय अप. + प्रचित्य अप. (या विकले न्यिय अप. + प्रचित्य अप. (या विकले न्यिय अप. + प्रचित्य अप. (या विकले न्यिय अप. + प्रचित्य अप. (या विकले न्यिय अप. + प्रचित्य अप. (या विकले न्यिय अप. + प्रचित्य अप. (या विकले न्यिय अप. + प्रचित्य अप. (या विकले न्यिय अप. + प्रचित्य अप. (या विकले न्याप्त अप. + प्रचित्य अप. (या विकले न्याप्त अप. + प्रचित्य अप. (या विकले न्याप्त सं.) । अप (या व्याप्त सं.) ।	 स्थानर काम्यकाक उपराक्त सर्वे विकल्प 	<u>-</u>	7376-3467			1			
पर्याप्त १ ज. म. + (स्व्यंतुव/से.) है स्थाप्त से के के के के के के के के के के के के के	कायिक		տ. Ծ.ա խ	असं.	un o ho o lo	ज. प. ÷ (सुच्यंगुल/असं.) र		cel·lus cel·lin)	बसं. उत्. अबसे अपहत
प्यप्ति २-१४ ३३६२ → अभिवत् ← अभिवत् ← अभिवत् ।	:	0 /	, , =	:	F	ज. प्र. + (सृच्यंतुल/सं.)		£	ī
ा, १ ३ <u>९०२</u> (गो. औ./२४६-२३०/२७१-५ [⊏] ६) ७६५५ ७६७७ असं. ७६६८ ज. म. (सुच्यगुज/सं.) ^२	सा. व पर्याप्त	\$	or for or for or for	ĭ	1	ओघवत	ţ	1	1
— (गो. औ./२६६–२७०/२७९-५८६) ৬২জিড देखेड देन सा/असं ডেইজিড असं. ৬ইউিত ল. ম. (মুক্যগুল/सं.) ^२	त्रस काथिक अप.	9.7	64 54 60 66 64 67 64 6	i	1	मंचेन्द्रिय अप. (या विकलेन्स्	 प्रअप. + प्वेक्टिय	। अप.) बत्	1
७६% ७६% असं. ७६६ म. (मुच्यंगुल/सं.) ^२	४. योगमार्गणा		(मो. औ./२५६-व	(3=3-395/06)					
७६७७ असं. ७६६८ ज. म. (सुच्यंगुल/सं.) ^२	वाँबाँ मनोयोगी		9 5(9 6)	देन सा/अस					
	बचन योगी सा		9 9 9 9	असं.	20 20 20 20 20 20	ज. प. (सृच्यमुल/सं.)र		(9) (9) (9)	असं. उता. अमसे अपहत

			4			,		
मार्गला	Fjkj	o Trox	स्व्यका खनसः		क्षत्रको धनस्य			कासकी अविहा
	بآما	ष. (लं.	प्रमाण	न् व,	प्रमाण	वसं.का प्रमाण	्यः (व)	प्रमाण
सस्य ब्दन्योगी		હ આપ જો હ	देव. सा/असं.					
असरय ,,		÷			~			
उमय **		\$;					
ਯੂਰੂਸਧ ,,		ନ ଜୁନ ଜୁନ	स्मृ	७ य ७ ८ ४ ७ ८	च. प्र.÷(सूच्यंगुल/सं.)²		હ ઇય જોય જો	असं. उत्त. अव से अपहत
काय योगी सामान्य		କ୍ଷ୍ମ କ୍ୟ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ୟ କ୍ଷ୍ମ କ୍ୟ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ୟ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ୟ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ୟ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ୟ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ୟ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ୟ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ୟ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ୟ କ୍ୟ କ୍ୟ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ୍ଷ୍ମ କ	क्षम्,	ত মাত ভাগ ভ	खन, सोक		9 N N N N N N N	थनं उत्, अब्से अनम्हत
औदारिक काषयोगी		£	. =		.		,	<u>,</u>
औदारिक मिश्र		F	ţ	F	=		: ;	
वैक्तियक -		કો જોડ કોઇ જ	हेन/सं.से कम		×		.	
वैक्रियक मिश्र "	^	9 N N N N N	देव/सं.			 ,		,
आहारक "		ଜୁନ ବ୍ୟୁଦ୍ଧ ବ୍ୟୁଦ	70 34					
आहारक मिश्र		6 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5	म, (२७)					
कार्मण		એ હોઇ હોઇ ફિલ્મ	थानं,	ရာ လူများ လူများ	थनं. लोक		60 A	थनं. उत. जब.से अनपहत
पौंचों सनोखोगी	~	80 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0	देव/सं.					
	%}-€	108-20 E	I	1	ओघनद	↓	ţ	*
वचनयोगी सामान्य		#/2/2 F E	श्रमं	0/0 0/0 6 m	ं ज. प्र.÷(सृच्यंतुल/सं,)		ଲ ବାର ଚାନ ଚାନ	ब्रसं. उता. अय्से अपहत
£	3-62	න් ල න් ල න් ල	1	<u></u>	मनोयोगी बत्	1	i	1
्रसारय असाय म	~	ന്ന് ഗോ ന	देग/सं.					
ै उभय वचनयोगी	% 	the.	 	î	ओघनत	Ţ	į	ı
							;	

		Fig	ъ Бо	द्रव्यको अपैश्रा		क्षेत्रकी अपेक्षा			कालको धपैक्षा
सबस्तमांती () वेहुंद्रेट तार्ते वार्ते in is lik		a	प्रमाण	व व	la!hK	असै का प्रम	Б	प्रभाण	
स्परित्र १ स्टेडिंद — — — ममोयोगीयद ← — — — मनोयोगीयद ← — — — — मनोयोगीयद ← — — — — मनोयोगीयद ← — — — — मनोयोगीयद ← — — — — — मनोयोगीयद ← — — — — — — — — — — — — — — — — — —	अनुभय वचनयोगी	~	88. €(8) 6(7) €(5)	असं,	us eku ojn Ne	। ज.प्र.÷(सूच्यंगुल/सं) ²		my のい のい	असं, उत्. अत्र, से अपहत
स्वास्त्रम्य १ १ ३३६६ — — — अजीवस्त् ← — — — अजीवस्त् ← — — — अजीवस्त् ← — — — अजीवस्त् ← — — — अजीवस्त् ← — — — अजीवस्त् ← — — — अजीवस्त् ← — — — अजीवस्त् ← — — — अजीवस्त् ← — — — अजीवस्त ← — — — अजीवस्त् ← — — — — अजीवस्त् ← — — — — अजीवस्त् ← — — — — अजीवस्त् ← — — — — अजीवस्त् ← — — — — — — — — — — — — — — — — — —	· •	4-8x	44. 6 0. 0 0.	I	ł	→ मनोयोगीवत्		ſ	i
काग्रमोती १ विशेष्य विशेष्य	काय योगी सामान्य	•~	(K) 年(K) 年(A)	l	į		 		1
कायपोती १ विशेष विशेष		200	ধ্যু ক্রম ক্রম	1	{			(ı
निम्न १ स्ट्रेड्ड		D	44 6 (4) 6 (5)	ł	i		., .		!
किछ		2-2	# (5 # (6) # (6)	l	١		.l.	1	i
		•~	us e la e la e, la	ŧ	I				1
3,473 १३ टी/३६° ४० [कपाट समुखातमें जारोहण करनेवाले च्या लगाहण करनेवाले च्या १३ १३ १३ १४ ८० १५,४ १५८० १८ ८० ८० ८० १५,४ १५८० ८० ८० ८० ८० १५,४ १५८० ८० ८० ८० ८० १५,४ १५८० ८० ८० ८० ८० १३ १५८० ८० ८० ८० ८० ११३ १३ १० ८० ८० ८० ११३ १३ १० ८० ८० ८० ८० ११३ १० ८० १० ८० ८० ८० ८० १० ४० ८० १० ८० ८० ८० ८० ८० १० ४० ८० <td>,</td> <td>ď</td> <td>ଜନ କଲ କାଦ ଆନ୍ତି</td> <td>1</td> <td>ŀ</td> <td>->औदारिक मिश्र सामान्यव</td> <td>! →<u></u></td> <td>1</td> <td>ļ</td>	,	ď	ଜନ କଲ କାଦ ଆନ୍ତି	1	ŀ	->औदारिक मिश्र सामान्यव	! → <u></u>	1	ļ
(१३ ट्री/इस्ट ४० (कपाट समुद्धातमें बारोहण करनेवाले करने		8,83	44 (3) (4)						
स्र-क्ष न्युक्ति स्वाहित स		E .	दो/३६−		गर समुद्धातमे बार्	हिष करनेवाले 🕶 २० तथा अब	रोहण करनेवाले ≖ं	[o]	
निम्म १ स्वर्व के क्विस् च्यांचवत्		~	න්\ය ලේහ හැක	देन/सं.				··	
स्पु. १ देवु देवु देवु देवु देवु देवु देवु देवु		20	60) 60) 60) 60)	ļ	1	थोघबत्		1	i
स.अ केडिडेने — — — — — — — सिम्प : केडिडेन सं. (२७) — — > अधिवाद — — > अधिवाद —		~	44. 60. 80.	सेव/सं.					
िम्थ द् क्रिकेट्य सं. (२७) र क्रिकेट्य सं. (२७) र क्रिकेट्य सं. (२७) र क्रिकेट्य सं. (२७) र क्रिकेट्य सं. (२७) र क्रिकेट्य सं. (२०) र क्रिकेट्य सं. (२०) सामीपा। × ७२०ट्य संन मुख्य सं. (२०) र क्रिकेट्य संन मुख्य सं. (२०) र क्रिकेट्य संन मुख्य सं. (७३०ट्य सन. सं. सं. सं. (७३०ट्य सन. सं. सं. सं. सं. (७३०ट्य सन. १०००ट्य सन. (०३०ट्य सन. १०३०ट्य सन. १०३०ट्य सन. (४३०ट्य सन. १०३०ट्य सन. १०३०ट्य सन. १०३०ट्य सन. १०३०ट्य सन. (४३०ट्य सन. १०४०ट्य सन. १०४०ट्य सन. (४३०ट्य सन. १०४०ट्य सन. १०४०ट्य सन. (४३०ट्य सन. १०४०ट्य सन. १०४०ट्य सन. (४३०ट्य सन. १०४०ट्य सन. १०४०ट्य सन. (४४०ट्य सन. १०४०ट्य सन. १०४०ट्य सन. (४४०ट्य सन. १०४०ट्य सन. १०४०ट्य सन. (४४०ट्य सन. १०४०ट्य सन. १०४०ट्य सन. (४४०ट्य सन. १०४०ट्य सन. १०४०ट्य सन. (४४०ट्य सन. १०४०ट्य सन. १०४०ट्य सन. (४४०ट्य सन. १०४०ट्य सन. (४४०ट्य सन. १०४०ट्य सन. (४४०ट्य सन. १०४०ट्य सन. (४४०ट्य		20	# 10 # 10 # 10 # 10	ľ	ŀ	औषभत्		1	ı
िम्थ द स्टेडिट सं. (२७) — → अधिकष्ट ← — — अधिकष्ट ← — — अधिकष्ट ← — — — अधिकष्ट ← — — — अधिकष्ट ← — — — सं. सं. सं. सं. सं. मं. मं. सं. सं. सं. सं. सं. सं. सं. सं. सं. स		, حيه	4 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6	3,					
र, ४ देहेटेड्ड सं. — → अपेषवत् ← — — अपेषव्य ← — — स्थेटेड्ड सं. — — → अपेषवत् ← — — — सं. — — — — — — — — — — — — — — — — — — —	मिश	405	0 kg 6 kg 6 kg 6 kg 6 kg 7 kg 7 kg 8 kg 8 kg 8 kg 8 kg 8 kg 8 kg 8 kg 8	सं. (२७)			· - , <u>-</u> ,		
१३ ३५८३ १३ ३५८३ १३ ३५८३ १३ १५८० १३ १५८० १३ १८८० १३ १८८० १३ १८८० १३ १८८० १८८० १८८० १८८० १८८० १००० १८८० १००० १८८० १००० १८८० १००० १८८० १००० १८८० १००० १८८० १००० १८८० १००० १८८० १००० १८८० १००० १८८० १००० १८८० १००० १८०० १००० १८०० १००० १८०० १००० १८०० १००० १८०० १००० १८०० १००० १८०० १००० १८०० १००० १८०० १००० १८०० १००० १८०० १००० १८०० १००० १८०० १००० १८०० १००० १८०० १००० १८०० १००० १८०० १००० १८०० १००० </td <td>क्रीमेण</td> <td>~</td> <td>6 130 6 130 6 130</td> <td>ı</td> <td>1</td> <td>औषनस</td> <td></td> <td> </td> <td>1</td>	क्रीमेण	~	6 130 6 130 6 130	ı	1	औषनस			1
सागेणा (गो. जी. मि. न टी. १५७७-१८१/६१६-६०३) x ७५ २९ १ ६४ १ ६६-६०३ । x ७६ २९ १ ६४ १ ६६-६०३ । x ७६ २९ १ ६४ १ ६६ १ ६८ । x ७६ २० १ ६४ १ ६६ १ ६८ । x ७६ २० १ ६४ १ ६६ १ ६४ । x ७६ २० १ ६४ १ ६४ १ ६४ । x ७६ २० १ ६४ १ ६४ । x ७६ २० १ ६४ १ ६४ । x ७६ २० १ ६४ १ ६४ । x ७६ २० १ ६४ १ ६४ १ ६४ १ ६४ १ ६४ १ ६४ १ ६४ १ ६		\$	10, 0,0 0,10					<u> </u>	
Hilian		&- ₩-	us. e. jo b. jo w.jo] ' ਛ ੇ	!	;			j
मागेणा X ७५०३ देवी+कुछ X ७५२३ देव+कुछ X ७५२३ देव+कुछ दो X ७५२३ दो X ७५३३ दो X ७५३३ दो X ७५३३ दो X ७५३३				ई० - [प्रत	र समुद्धातमें २०, ल	तिकपूरणमें २०, तथा उत्तरते हु	ह ३०।}		
X 6월03 ই대十월8 X 6월25 ই대+য়য় X 6월08 अन, 6월08 X 6월25 3 अन, 6월25 4 3 3 4 3 3 4 3 3 5 3 3 6 3 3 6 3 3 6 3 3 6 3 3 6 3 3 6 3 3 7 4 3 8 3 4 9 4 4 9 4 4 1 4 4 1 4 4 1 4 4 1 4 4 1 4 4 1 4 4 1 4 4 1 4 4 1 4 4 1 4 4 1 4 4 1 4 4 1 4 4 1 4 4 2 4 </td <td>५. वेद मार्गणा</td> <td></td> <td></td> <td>। टी./२७७-२८१/५६६-६</td> <td>(80</td> <td></td> <td></td> <td></td> <td></td>	५. वेद मार्गणा			। टी./२७७-२८१/५६६-६	(80				
X 6 के देव के प्रकार दी X 6 के देव के प्रकार के देव के प्रकार के के देव के प्रकार के के देव के प्रकार के के देव के प्रकार ती X 6 के देव के प्रकार	ं स्त्री मेही	×	e to the color of	देवी + कुछ				· ·	
X 6 40 % X 6 40 %	पुरुष वेसी	×	6 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0	देन + कुछ					
X ७३२३ थन.	मर्पसक वेदो	×	9 % 6 % 9 %	क्षन्,	9 0 0 0 0 0 0	खनं सोक		11 (c) (c) (c) (c) (c) (c) (c) (c) (c) (c)	थनं-उत्त-धवते अनपहत
	अपगत वेदी	×	\$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$	थनं.				·	

	File	lex lex	द्रब्यकी अपेक्षा			होनकी अपेक्षा				कासको अपैक्षा
म्भागवा	गुक€ः	ष, खं.	प्रमाण	ष्. स्रं.		द्रमाण		असं, का प्रमाण	. खे	WHIW
स्त्री वेदी	•- p	. 사 (전 주 (작 다 (전 전 (전 전 (전 전 (전 전 (전 전 (전 전 (전 전 (전	देमी + कुछ		1	स्मा स्रो	1	ı	,	ı
	, w	> m/s m c/s m c/s m c/s m c/s	l he	 	<u> </u>	7 5 5	, .			
पुरुष बेदी	•	0.00 0.00 0.00	दैन + कुछ							
	ĩ	ناب ماره ماره]	I	1	आधिवत्	↓	1	ı	ı
नप्सक वेदी	**	ক জুকু জুকু জুকু	а	1						
·	در\ ا س	0 6 6 6 5 6 7 6 5 6 7 6	.				•			
	n,	दी/क्षरह	चेत रूर्! अंत= ६०							
ं अपगत बेसी उप.	* -	us.	23						ლ. გეი ც(ს, ს, ი	ं च*
		•	(विद्योष दे. धांघ)							
क भ्रम्भ	8-8	mio mir o ix o	i	í	↑	क्षोघनत्	1	1		i —
	£	क होत होत होत होत होत होत होत होत होत होत	l	ļ	1	ŧ	↓	ì	i	1
	20	enio enio enio	20 00 00 00 00 00 00 00 00 00 00 00 00 0	l	1	£	1	ı	I	1
६. क्षषाय मार्गेषाः		(गो. जो./सू.	# 27./226.28c/680-6	(88	- N Ingo		•			
वारों कथायवाले पृथंक पृथक		の[か を[ひ を]か の う	्र स्म [*]	5 >> কাও কার কার প্র	_	अन्, सोक			و م م م م م	क्षमं, उत्, अव, से अनपक्षत
अकथायी		69 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20	खनं.				_			
चारों कषायी	. 🛴	5 120 6 120	1	I	1	औषवस	↓	ļ	1	I
		49 49 40 40 40 40 40 40 40 40 40 40 40 40 40	4.							
लोभ कषायी	္	ক্ষ ক্ষুত্র ক্ষুত্র	l	ı	1	अोघनंत्	↓	<u> </u>	ı	Ţ
अक्षायी	33	e lo	l	ı	1	ŗ	↓	;	1	1
	æ	(M) ଜାନ୍ଧ କାର	1	1	↑	F	↓	1	ĺ	١
	65.	ole me me me me	ì	1	1	ŧ	1	i	1	ı
ं ७, शान मार्गेषा		(गो, जो./मृ.	गो. जो./मृ. म टी./४६१-४६३/८७२)						-	
मति यज्ञानी		115 60 115 115	नुप्सक वेदीवत्					· 		
**************************************	- -	- 1					-		-	

भा० ४-१४

Fir	iu Io	द्रव्यकी अपेक्षा		*60*	क्षेत्रको अपेशा				कालकी अपेक्षा
	स	प्रसाण	प. खं		प्रमाण		असे का प्रमाण	व खं.	प्रमृशि
	රැර ආශ නේ න්	मप्सक वेदीबत्				- , , , .		· · · · · ·	
	ত্ব থান থান জ	त्व + कुछ				_		9	
	رة باري باري باري باري باري باري باري باري	प <i>ल्य/अ</i> स.				,		mlの だい た[か の	(पश्य/अंतर्मुं,) से अपहत संबर्भ — कार/सम
	Į			- <u> </u>					・ジョーラ + ・・・・・・・・・・・・・・・・・・・・・・・・・・・・・・・・・・・
	2 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0	' #'		 _		-		-	·
	8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8	खनं.							
	ም fte >>\mathre	J	}	<u>↑</u>	अोधवर	↓	í	1	1
	سا مراع ربام هابی	क्षेत्र । कुछ				,			
	ഡ. കിമ കുറ	i	1	1	ओषवत्	↓	 	ŀ	Ì
	სა. გ.[ჯ. ჯ.გ. ჯ.ნ.გ.		1	<u>↑</u>	:	\		1	l
	5 o- > > o- >> o-	'म' '		. <u></u>					
	2 × × × × × × × × × × × × × × × × × × ×	'4'				 ,			
	200 200 200 200 200 200 200 200 200 200	1	ì	<u>↑</u>	औषवत्	-	1	1	ì
	(गो. जी./मृ.	(गो. जी./षु. व टी./४४०-४५१/८८६)						,	
	6 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2	कोटि. यु.							
	ŧ	£					•		
	6225	सहस. ५.							
	8 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2	शत. पृ.							
	•						•		

	2				т Б	संत्रका अन्छ।				कातकी अपेक्षा
	Ĵai∉	je p	प्रमाण	म् अः		प्रमाण		असं. का प्रमाण	(a)	whr
यथान्यात		5 10 mly 5 10 9	ग्तसहस्र पृ.							
संयतासंयत		9 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0	पन्य/असं.						७५३८ (म	(पन्य/यन्तर्म,) से अपहत
असयत		ഡ്. ബിയ ഗ്.	1	i	म ↑	मति अज्ञानी बद	↓	1	1	बन्तर्मु वा/वस्.
संयत् सामान्य	£-63	(1% (1%) (1%)	l	1	1	औषवत	†	ļ	i	I
सामायिक-छद्रोपस्थापकः		2 4	ı	ŀ	1	2	-	{	i	1
September 1	ans.	0 9 0 20 100 100	1	-	1	£	1	1	į	1
पारहार विशुद्धि	9	62 2 2 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3	₩.			•		-		
,		टी./४४६	2000		[u. 3/t,	[घ. ३/१,२,१५०/मा. ७६/४५०]	{ (0X8/3			
सुस्म साम्पराय.	2	e- ∞ >- ∞ ∞]	ł	1	औषवत्	↓	ŀ	l	1
(८५. म ंक के		टी./४४६	ಶಕ್ತಿ		[E. 2/4	[H. 3/8.2,848/08/240]				
यथारूयात	83-22	W. Lo Ma	1	i	1	अोषवत्	1	1	I	1
संयतासंगत	*	m 0 513 F)0 m	ł	ŀ	1		1	ì	ł	1
असंयत	3-	> 0 > 15 = > e > m^	1	ŀ	1	: :	1		ŀ	1
९. दर्शन मार्गणा		þŕ	4 27./×co-×/.529)				_ ~			· •
ब क्षदर्शनी			खसं,	න දැන් ලේක ලේක	+ 	ज, प्र.+(सृच्यंगुस)			rio Xie Oly O	असं, उत्, अव. से अपहत
अचक्षदर्शनी		> 0 > 0 0 0	· 1		↑	असंयत्वस्	1	1	1	1
अनधिदर्शनी	·	ত ক্র ক্রান্ত ক্রান্ত ক্রান্ত	ļ	1	ਲੋਂ ↑ ——	अमधिक्षानीवद्	1	- 	l	t
केवल दर्शनी		ক্ষাপ্ত প্রতি প্রতি	1	Į	# ↑	केवसञ्जानीयत्	1	1	1	I
चक्षुदर्शनी	۰-	212 212 212	असं.	om 2 2 • ∞	स स	ज. प. ÷ (सुच्यंगुत)²	84.		21. 21.2 21.3 21.0	आसं, उत्, अव, मे अपहत
•	₹-₹3	رايا چابد ماري ماري	J	į	↑	खोधनत्	\	1	i	1
अवक्ष दर्शनी	4-13	2 5 5 6 7 6 7 6 7	1	1	1	आधिवत्	1	1	ı	!
अवधि दर्शनी	×-44	015 405 405	ļ	1	िक ↑	अवधिज्ञानीवत्	↓	í	ļ	ļ
केबल दर्शनी	83-88	क ter क 5 क 30 हार	ì	t	1 ↑	केवसङ्गानीबद	1	j	l	1
१०. लेखा मार्गणा		(मो. जी./म	# El. / \$30- £82/ E32)				<u>-</u>	- 		
कृष्ण नीत कापोत		5 (a) (a) (b) (b)	1	ı	1	असंयतवत्	1	,	ì	1

- Line	Elh	स्वर	हत्यकी अपेक्षा	; ;	क्षत्रका अप्ता		6	कालको अपैक्षा
in the second	નુજાદ	म.खं.	inlin K	म् खं	प्रमांण	असं. का प्रमाण	# 'B	प्रमाण
तेलो सेस्या		8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8	देव + कुछ					
पदा लेश्या	- \-	ଚ∭ ୫% ଜୁନ	(संद्यी-पंच-दियं.	टी./रह३	ज• प्र.÷सं. प्रतरीगुल	٠,		
कुनल लेश्या		5 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6 6	यानि]/स. प्रथा/असं.				ን ያ ያ ያ ያ	िन्द्र (पन्य/अन्दार्म,) से अपहर
कृ, नीत. काषोत,	%- >	Us. e.)0 æ(2 u, o,	[ŀ	→ अशिवस ←	1	I	— कन्तमें ≔ अ./असं.
तेजो लेग्या	~	us. a ba a m a m	देव + कुछ					
	*	us. V. da da da As da As da	1	ł	→ अगेधनत् ←	1	ł	ı
	§}	سار مواهد عواهد	'd					
पर्जी लेश्या	~	Us. • Do m lm m lm	(संझी. पंचें. तियं,					
	* <u>*</u>	65. 6. X 6. X	योति,) ÷ सं.		नीयवन 🚺	1	;	
	9- 4	us, a ja ia ja ir ja	. આ જો જ જો જ જો 11 જો 11	!				l
शुक्त सेरया	ž	0.00 m m m m	पक्य/असं.				218 6- (X) 6- (X)	। पन्य∫अन्तर्भे, से अपहृत
•	an 5)	0 5 9 kg	'n				,	अन्तर्मु = जा / असं,
	-63	9 kg	i	1	→ अगोघनत ←	ı	ľ	
११. मब्यत्व मार्गेणाः—		(m) sh /m.	¥ £Î, /⟨€0/858)					
hen		2 00 00 00 00 00 00 00 00 00 00 00 00 00	खर्न,	ሁኔ ይዩላ ዩኒር	अनं सोक		ত ক্রম ক্র	अनं, उत्, अन् से अपहत
अभड्य		0 5 0 W 0 W	व्य	•				
भव्य	83-3	ሙ ድሙ ይ/ወ	l	ı	→ अरोषत्र ←	ı	ı	ı
अभड़त	~	(1) (1) (1) (1) (1)	ल ा ल					
१२. सम्यक्त्व मार्गेणाः		(गो. जो./मू.	लो. जो./सू. व.टी.//६१७-६५६/११०३)					
सम्प्रश्टि सा.		erico infeci eripri	पस्य/असं.				6 km	पस्य/अन्तर्मु, से अपहर
तीनों सम्य (प्रत्येक)		T.	:				•	—अन्तर्म, = आ /अस
सासादन सम्य		ŗ	*					:
सम्मग्मिध्यादृष्टि		:	,					

Through of the stand of the												
Fig. 1, 66, 10, 10, 10, 10, 10, 10, 10, 10, 10, 10	######################################	Flb	Roz	की अपेक्षा			क्षेत्रकी अपेक्षा			e l	लकी अपेक्षा	
X V V V V V V V V V		ग्रैवा€		प्रमाण	थ. लं.		भ्रमाण		असं, का प्रभाण			माण
# 19 19 19 19 19 19 19 19 19 19 19 19 19	मिर्याहिष्टि	×	જાવ જાવ જાવ જ	Į.	,	1	असंयत व	, } ↓	1	ı		1
# 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1	सम्यग्हिश सा.	× - ×	43 6 K	1	ì	1		1	1	ļ		ı
सिक १-११ व कुछकु से से कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि	क्षायिक सम्यग्हष्टि	20	20 PC	ł	ì		;		 I	١	·- · -	
प्रक ट.५१ व व व व व व व व व व व व व व व व व व व	:	** -\-	41 816 816 810	H.							·	•
13	.	2-8-7	9986 8	j	i	↑	अरियम्स	↓	1	{		1
#		23	us e (b) 6 (d) 6 (m)	I	ł	↑ 		1	ŀ	ļ		ł
# 6		20	913 919 616	l	!	↑ 	ţ	↓	1	j		j
8.6 से. से. <td>ं वेदकः सम्प्रगृहकि</td> <td>9-%</td> <td>ড ১৯ ১৯</td> <td>ı</td> <td>}</td> <td>1</td> <td>:</td> <td>1</td> <td>1</td> <td>ļ</td> <td></td> <td>Ī</td>	ं वेदकः सम्प्रगृहकि	9-%	ড ১৯ ১৯	ı	}	1	:	1	1	ļ		Ī
१ ३५६१ ३५६३ स. १ ३५६३ १ ३५६३ १ ३५६३ १ ३५६३ १ ३५६३ १ ३५६३ १ ३५६३ १ ३५६३ १ ३५६३ १ ३५६३ १ ३५६३ १ ३५६३ १ ३५६३ १ ३५६३ १ ३६६६ १ ३६६६ १ ३६६० १ ३६६० १ ३६६० १ ३६६० १ ३६० १ <	उषशाम सम्यग्हि	ა ჯ	oju vje s (v	l	!	↑ 	-	1	}	t		í
२ ३५६६२ — <td< td=""><td></td><td>4b</td><td>619 619 619</td><td>'u'</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td></td<>		4b	619 619 619	'u '								
्र क्षेत्र के क्षेत्र करी, हिंका १९०८) (तो. जो.) पू. ज टी.) हिंका १९०८) (त) जो.) पू. ज टी.) हिंका १९०८) (त) जो. जो. जि.) है के के के के के के के के के के के के के		حى	ক জন্ম জন্ম	7	1	↑ _.		1	1	}		í
१ विशेष्ठ १ १० ५ ६६७ १० ५ ६६७ १० ५ ६६७ १० ६६५११००० १० ६६६७ १० ६६६००० १० ६६६००० १० १६८००० १० १६८००० १० १६८००० १० १६८००० १० १६८००० १० १६८००० १० १६८००० १० १६८००० १० १६८००० १० १६८००० १० १६८००० १६८००० १० १६८००० १८ १६८०००० १६८०००० १८ १६८००००० १८ १८००००० १८ १६८०००००००००० १८ १८०००००००००००० १८ १८००००००००००००००००००००००००००००००००००	सम्बर्गिश्याहरिष्ट	m	તમ જોજ હોગ હોગ	ı	1	↑ 	ŧ	↓	•	ļ		1
(गो. जो./प्. ज दो. है हैश ११०००) (हे कु कु कु कु कु कु कु कु कु कु कु कु कु	मिण्याहर्षि	•	१९ १९१४ ४१ च	ı	1	↑	<i>‡</i>	↓	1	1		;
१ विक्रिक्ट देव+कुछ — — — — — १ विक्रक्ट — — — — — १-१२ विक्रक्ट — — — — — १ विक्रक्ट — — — — — १ विक्रक्ट — — — — — १ विक्रक्ट — — — — — १ विक्रक्ट — — — — — १ विक्रक्ट — — — — — १ विक्रक्ट — — — — — १ विक्रक्ट — — — — — १ विक्रक्ट — — — — — १ विक्रक्ट — — — — — १ १००००००००००००००००००००००००००००००००००००	१३. संजी मार्गणाः		(मो. जो./मू.	म दी./ ६६३/११०८)								
१ १५६% — — — असंयत्वत् — — — असंयत्वत् — — — असंयत्वत् — — — — अस्यत्वत् — — — — — — — — — — — — — — — — — — —	संद्यो		න ල කැල ක	देव + कुछ			,				··	
१ ३५ हु १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १	<u>बसंखी</u>		2) 2 k 2 k 3 b	Į		↑		↓	ļ	ı	·	i
२-१२ ३ <u>%८६ ३,%८३ अमं</u> अध्वत ← — — अश्वत क्व. में अन्त में अप्ता कार्यागीवत ← — — अश्वत क्व. में अन्त कार्यागीवत ← — — अग्वत क्व. में अन्त कार्यागीवत ← — — — अग्ववत ← — — — अग्ववत ← — — — — अग्ववत ← — — — — अग्ववत ← — — — — अग्ववत ← — — — — — अग्ववत ← — — — — — — — — — — — — — — — — — —	संझी	~	ભ ત્યું. ત્યું.જ	देव + कुछ								
र ३५ दूर । अपन्ति ।		3-43	44 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20	!		↑ - - -	ओधवत्	↓	ſ	ł		ţ
(मो. जो./मु. म टो./ ६७९/१९१४) 9-१३ मुक्ट जाने. १-१३ मुक्ट जाने. १,२,५,१३, मुक्ट जाने. १८,२,५१३, मुक्ट जाने. १८,२,५१३, मुक्ट जाने. १८,२,५१३, मुक्ट जाने. १८,२,५१३, मुक्ट जाने. १८,२,५१३, मुक्ट जाने. १८,२,५१३, मुक्ट जाने. १८,२,५१३, मुक्ट जाने. १८,२,५१३, मुक्ट जाने. १८,२,५१३, मुक्ट जाने. १८,२,५१३, मुक्ट जाने.	अतं श् री	~	গ্ৰহ থাৱ প্ৰক	\$			अनं सोक			tron polya m	। अन्, बत्. ् ं	अन, से अनपहत
8-83 39 8 3 3 8 5 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8	१४. आहार मार्गणा		(गो. जो./मू.	# 27.1 QUE/ 1888)						l		,
१-१३ ३४२.३ १,३,४,१३, ३४६.३ १४ ३४८.३ — →कार्मण काययोगीवद् ← — — व्योषवत् ← — — — — — — — — — — — — — — — — — —	बाहार्क		ଧାର ଜ୍ଞାର ଜ୍ଞାର	खन,	6 to 6 to 6 to 6 to 6 to 6 to 6 to 6 to	· ·· · · · · · ·	अमं, लोक					अव, से अनपहत -
१-१३ २४२.३ १,२,४,१३, ३४६.३ १४ ३५ <u>२२,</u> — — कामंण काययोगीवर्स — — — व्योधवर्स ← — —	अनाहारक		:	£	: :		\$					*
१,२,४,१३, ३,३,६३, १४ ३,३,६३, — — — जोषवत ← — — जोषवत ← — —	आहारक	\$ - \$	MA SIN SIN SIN	1	١	1	औषवत्	1	1	i		Ţ
१४ मुकुद्र — — जोष्ठवत ← — —		3,8,83,	e'> ⊍\v ep	í	l 	₩	र्मण कास्ययोगीः		ł	1		1
		%	ল ক্রাণ ক্রাণ	i	}	1	क्रोधवत्	1	i	i		1

४. जीवोंकी स्वस्थान भागाभागरूप आदेश प्ररूपणा

(घ. खं. ७/२,१०/सू, सं./पृष्ठ सं.); (घ. ३/१,२, सूत्र (दे. नीचे नोट)/पृष्ठ सं.)

नीट--संख्या विषयक आदेश प्रस्तपणामें उस उस मार्गणा सम्बन्धी सूत्रोंमेंसे अन्तिम सूत्रोंकी टीकामें उस उस मार्गणा सम्बन्धी भागाभाग प्रस्तपणा की गयी है।

मार्गणा	गु, स,	ष. खं./ सृ./पृ.	धः/पृः	भागाभाग	मार्गणा	गु. स.	ष. <i>खं. </i> सू./पू•	탁, 달 ,	भागाभाव
१. गति मार्गणा			,		सौधर्म युगल	3		२८६	शेषका सं बहु.
१, नरक गति ¦		í !	1	1	*1 11	र ।		5 5	12 12 13
नारकी सा		४ २ ५		सर्व जीव + अनं.	सनव्-सहस्रार	४,३,२		••	स्वर्गक्रमसे उत्तरो-
१-७ प्रत्येक पृ.		<u> ३</u>		उपरोक्त ≉त			}.	ŀ	त्तर प्रत्येक स्वर्गमें
· '		४९५		,	ज्योतिषी ४,३,२	,,			सौधर्म युगलबद
प्रथम पृ.	१		२०७	नरक सा.का असं, बहु,		1,	i	19	उत्तरोत्तर असंबहु.
र-७ ए .	१		२०⊏	उत्तरोत्तर असं, पहुः	व्यंतर ४.३.२	1 1		11	22 12 52
प्रथम पृ.	8		,,	शेषका अस, बहु,	भवनवासी ४,३,३] i	-11	37 37 84
1	3		.,	14 33 45	{ आनत्त-उपरिम } ग्रैवेयक	8] [*,	ı, सं. <u>,,</u>
j	₹ ,,		**	, , सं न					
२–७ पृ.	४,३,२	}	,,	उत्तरोत्तर क्रमसे	आनत से. 	₹	! }	१८७	1+ 11 14
		İ		प्रथम पृथिबीवस्	उपरिमग्रै.			ľ	
२. तियंच गति		- 104	l		अनुदिश	ß		,,	शेषका 🔑 👊
द्विर्यं. सा	ı	<u>४</u> ९ ७	ļ	सर्व जीवका अनं. महु,	ৰিজ্ঞ আৰি	"	[Ì	79 PJ 79
पंचें, सा. [.]		840	ļ	सर्वजीव⊹-अनं-	चारों अनुत्तर			ļ	
प., यो., अप.		,,	ļ	उपरोक्तवद्	थानत से.	₹]	••	उत्तरोत्तर ,, ,,
एकें + विक.	ę	, "	२४०	तियं. सा,का अनं, मह	उपरिम ग्रै.	1	ļ		
पंचें. अप.	8		}	शेषका सं नहु.	11	२	 	·• }	11 11 11
पंचें. तियें. प.	Ŕ	1	11	1	सर्वार्थ, सि.	<i>B</i>	ţ	ייר ייר	शेष एक भाग
11) (-)	ę	-	19	., असं,	२. इन्द्रिय मार्गणा				
पंचे प, सा.	S S		11	j	एके सा	!	<u>१ ३</u> ४ ६ ५	ı	सर्व जीवके अनं, बहु,
14 7, 516			"	्रासंग्र	वा∙ एकें, सा]	सर्व जीव÷असं.
	B7 87	j	73	्रास्ता, पुरुषसंग्र	Į.	j	<u>१४</u> ४००	}	स्वजाय÷अस,
	i k		11	शेष एक भाग शेष एक भाग	., ., ५, अ.प]	*,		"
३. मनुष्य गति	*	ì	•	4(4) 44) 41(1)	सू. ,, सा.		9 <u>8</u>	i i	49
२, मञ्जूष्य नात मनु, सा,		80.0	}) { सर्वजीव÷अनं•	,, ,, ч.		<u>१८</u> ५० ५	j	सर्व जीवके सं. नहुः
			}	् सम् जाय म्लागः । उपरोक्तावत्			F 1		सर्व जीव + सं.
,, प्.		,"	Į	1	., ,, अप,	!	<u>२०</u> ६	-[
मनुष्यनी		,"	ł	' '	विकलें∙ सा∴	<u>}</u>	<u> २२</u> ५०२	!	सर्वजीवके अनं, बहु,
मनु. अप,		1 27	j	। । एक सामाधीने बट	., ৭, ঞ্চব.		,,	l	15
मनु, अप्.	8		२६४	। मनु, सा,का अस, बहु, । शेषका सं, बहु,	र्पचें, सा	1	i ,,	ì	16
मनुष्यनी	\		,,	→=+}= -	,, ৭. এঘ.	}	1,1	j	**
मनु, प,	8.8	-	,,,	l	सू, एकें, प	ę		३१८	सर्वजीवके सं. बहु.
	3,7		••	31 19 99	,, ,, अप,	8	;]	**	शेषके असं, नहु,
	k-0		,,,	,, ,, ,,			}	}	(असं = असं, लोक)
	·C-68		13	19 17 19	बा. ,, अ.प.	१	1 1	11	शेषके असं, बहु,
४. देव गति		<u>८ दंट</u>		المنصيف	٠, ,, प,	į		,,	,, ેસર્વ, ,,
देव सा,		i]	सर्व जीव 🕂 अनं.	अनिन्दिय			395	45 44 47
भवन-सर्वार्ध.		हैंदेट		उपरोक्तवत्	त्रस राशि	१		15	शेष (महय/असं.)
ज्योतिष	*		र⊏६	देव सा.का असं. बहु,	{		[
व्यन्तर, भवन	į		,,	उत्तरीत्तर ,, ,,	नोट—[त्रस राशिके	असंबह	भागकेचा	र समान	खण्ड करके द्वीन्द्रि-
सौधर्म युगल	į	()	,,	दोषका , ,	यादि प्रत्येकको र	-∵ उक्राप्ट	खण्ड हैं।	तहाँ स	गान भागोंकी सह -
सनव्-सहस्रार	₹ .		,,	उत्तरोत्तर ""					व' राशिका उत्तरो-
सौधर्म युगल	પ્રે		,,	शेषका , ,	त्तर असं बहमा	गद् वीन्दि	य आहि	के प्रवित्त	'क' में जोड़ना।
	-	1 /		., .,	असं ⇒आ/असं]			d	

मार्गणा	गु. स.	षं. स्वं./	ध /पृ.	<u> </u>	माार्गण	गु∙ स.	ਬ. ਫ ਂ ./	ध,/पू.	भागाभाग
द्वी. सा. त्रो. सा. चतुर्रि. सा.	१ १ १		388	क+स्वका असं. महु, क+शेषका ,, ,, क+ ,, ,, ,,	भागके चार समा	न खण्ड	करके सू.	. पृ. आ	राशिके असं, बहु- दि चारोंको एक एक -'क'; बीष भागकी
चतुरः चाः पंचें. साः द्वीः अपः	१		,,, ,, ,,	क + शेष एक भाग इो. सा. के असं. बहु.	सहनानी ≕'खं'।	पुनः इस	'ख' रादि	हका उत्त	रोत्तर असं. बहुभाग महाना । असं≖असं
,, प. त्री, अप•	₹. ₹		g*	शेष, एक भाग त्री. सा. के असं. बहु, शेष एक भाग	स्तीक] सू,वाग्रुसा. [₹	j	३६ ३	क + ख्का असं. बहु
न्नी. प. चतु. अप. ,, प्	8 8 8		77	चतु, सा, के असं, बहु, शेष एक भाग	,, अप. ,, ,, पृ, ,, तेज ,,	१ १		₹8 ''	क + चोष ,, ,, क + ,, ,, ,, क + चोष एक भाग
ਰੰਚੋਂ, ਗ਼ਾਧ, , ਧ, ਧੰਚੋਂ, ਧ,	१ १		,, ३२०	पंचें सा,के असं, बहु, शेष एक भाग परय	सृ. वायु, पर्याप्त ,, ,, अप्याप्त	र १		77 74	सू.वायु सा.का असं. बहु रोष एक भाग
44, 1. n n	ફ−₹ 8		,,,	युर्य के असं महु असं उत्तरोत्तर ,, ,,	सू, अवद्गपर्याप्त ,, ,, अस्पर्याप्त सू, पृ, पर्याप्त	१ १		19 41 19	स् अप्-सा, का असं- महु शेष एक भाग सू. पृ. सा.का असं- महु
३. काय मार्गणा					.,., अपर्याप्त सु. तेज पर्याप्त	१ १		11	शेष एक भाग सू, तेज सा,का असं. बहु शेष एक भाग
पृथिकी. सा		३ <u>४</u> ५ ० २		सर्वे जीव÷अनं,	ा ा अपर्याप्त मा. निगोद से अतिरिक्त मा. राशि	१		₹₹	अस. लोक (पृथक् स्थापित)
,, प्अप- ना.पृ.सः, प. अप् सू. ১, ১, ১,		11 11 14		19 39 39	ना, वायु अपर्याप्त	१		३६४	असं लोक प्रमाण बादर राशिका असं मृहु। असं. च असं. लोक
हें प्रकार आपः ह "तेज अन्, सा		्र ,, २६		,, ,, सर्वजीवोंके अनं, महु	ना. अप् अपर्याप्त ,, पृ. ,,	₹ ₹		₹ ₹ ४	शेषका असं बहु
भा. वन. सा. , , प.अप.		डे के २ दिख्य १ दिख्य		,, असं <u>,,</u>	,, निगोद प्रतिष्ठित प्रत्येक बन अपर्याप्त बा. बन प्रत्येक अप	R R	·	17	11 17 19 11 11 11
नाः निगोदः साः ,, ,, प्राप्ताः		**		11 17 19 12 19 11 12 14 17	., तेज अपर्याप्त ., वायु पर्याप्त ., अप्,	१ १		,, ,,	79 99 19
बा. बन. अरुग्रेक सा , , , , , प. अप.	,	₹ ¥ 14 0 7		सर्वजीव+अर्न.	ा, पृ.ः ∫वा, शतिष्ठित	\$ [१		17 17 57	פר פר פר פר פר פר פר פר פר
स् वन सा, , , पर्याप्त		" उ <u>०</u> उ <u>०</u> उ		्र सर्वजीवींके असं अहु	र्शित्येक बन पर्याप्त बा. बन प्रत्येक पर्याप्त त्रसः अपर्याप्त	१ १		1, 3 ξ £	19 21 23
, , अपर्याप्त , निगोद सा,		308		,, सं., ,, अमं,,	., पर्याप्त .* ''	१ ४		"	11 17 59
., ., पर्याप्त ., ., अपर्याप्त		3 2 8 3 5 8		,, ,, ।, ,, सं ,,	" " बा. तेज पर्याप्त त्रस पर्याप्त	३,२,६ १ ६		11 11 19	शेषके ,, ,, ,, सं,,
त्रस्य, साः ., पृक्षपर्याष्ठ		2 X 2 2		सर्व जीव + अर्न	11 11 3 _	७–१४	J	,,	े उत्तरोत्तर ,, ,,
स्. नियोद पर्याप्त ,, ,, अपर्याप्त ना. ,, ,,	१ १ १		\$ & \$	सर्व जीवोंके सं. नहु शेषके असं.,,	४. योग मार्गणा पाँची मनोयोगी	1	3 % 4 0 9	[ं सर्व जीव÷अन
१ ग पर्याप्त अकायिक	Ŷ Ŗ		74	,, প্রন্,,,	पाँचों वचनयोगी काययोगी सा		1, 3 <u>स</u> ५०७		सर्वजीवके अनं, बहु
स्, पृ. आहि	*		,,	थेष-असं. स्रोक	औदारिक काय		<u>40</u> 5		,, सं ,,

मार्गगा	गुणस्था.	ig. (g),	ध./द.	भागाभाग	मार्गणा	गुजस्था	A A	й./y.	भागाभाग
औदारिक मिश्र	1	४२ ५० द		सर्वजीव ÷ सं	∫उपरोक्त कमसे	\$~9		1,	ओ वके आधार पर
वैक्रियक व सिश्र		360		,, ÷এন	{सर्वयोग			-	जान सैना
आहारक व ,,		17			५. वेद मार्गणा-	 -			
कार्मणकाय		<u>४४</u> ५ <u>०</u> ४		'' '' सर्व जीव÷असं	∫ स्त्री, पुरुष व		12 0 E		सर्वजीव - अनं.
औदारिक काय		401	४०४	सर्व जीवींके सं. बहु	अपगत बेदी			i	
, मिश्र	ि १ १		4.	शेष , असं.,	नपुंसक बेदी		<u> </u>		सर्व जीवोंके अनं. बहु.
कार्मण कार्य	8		17	,, ,, अपने,,	नपुंसक ,,	1		४२१	शेषके
सिद्ध जीव	,		,,	11 13 57 77	अपगत ,,		i	1,	1, 4, 4, 4, 4, 4, 4, 4, 4, 4, 4, 4, 4, 4,
গুরুশয বন্ধন	۱ و	! i ,	,,	., ., असं.,	स्त्री 🚜	१		47	,, असं.,
,बैक्रियक काय	१		૪૦૪	शैषके सं. महु	पुरुष , तीनों वेदी	3	j	,,	, , ,
उभग्रवचन	8	·	**	., असं,	, ताना वदा	8 4~£		1,	79 17 19
असरय ,,	*		,,	,, स.,,,	"	1		••	अरोधवत् .
े सत्य ;,	१		,•	יו ע יי	६, कषाय मार्गण	! 	i	}	सर्व जेय कुछ क्रम
अनुभय मन उभय ,,	8	ļ	, " <u> </u>	17 11 11	क्रोधी मानीमायी		पु ७ पु १ ०		8 , 3,52 3,4
A-2	3		"	11 71 19	स्रोभ कथायी		4 2 4 9 0		सर्वजीव ४ से कुछ अधिक
सत्य ,	\ \text{\chi}	}	"	99 99 19 92 99 19	अक्षायी	<u> </u>			1
वैक्रि. मिश्र	è		808	,, अरसं,			<u>तं दे व</u>	1	सर्व जीव ÷ अतं. सर्व जीवके अनं. बहु.
वैक्रि.काय	8		,,	,, सं,,	, चारों क षा यो (क्टनसम्बद्ध	8		४३१	शेष एक भाग
अनुभय वचन	8		,,	91 11 11	(अक्षायी 🕂	२-१०)		75	चित्र देशा कार्य
ਚਮੌਧ ,,	8		,,	+1 47 39		7-3 e			forth and married
असत्य ,,	8		۱ 😽	14 99 19					शिके असं महभागके कको दीजिये। इस
सत्य ,,	8		٠,	11 11 11					गकी सहनानी = ख।
्रिउपरोक्त क्रमसे	8	{	"	उत्तरोत्तर., ,,					को चारोंकी क राशि-
वार मनोयोगी वैक्रि, कायं] ,			शेषके ,, ,,	में मिलाना। अर				,
जिपरोक्त कमसे	Ş 3		"	शक्क ५, ५, उत्तरोत्तर,, ,,		[1	-	,	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·
चार बचनयोगी	\ \	}	! "	7	लोभ कषायी	१		४३२	क + खका असं. नहुः
(उपरोक्त क्रमसे	3		४०६	11 17 17	माया ,	8		"	क+शेषका ,, ,,
चार मनोयो,		'	,		क्रोध ,,	1 *		••	क 🕂 🔒 🤫 भ
्रेबैकि, कास	२		,,	दोषके ,, ,,	मान अकषायी	१	,	11	उपरोक्त अकषायी 🕂
्र उपरोक्त क्रमसे	7		,,	उत्तरोत्तर. "	अस्तराजा			"	२१० गुणस्थानकी
(चारवचन			1		1	1		Ì	सर्वराशिके अन्. बहु.
्रिपरोक्तः क्रमसे	२		,,	99 79 17	(ऋमसे लोभ-	8		**	उत्तरोत्तर संबहु.
्रे चार मन औदा. काय	8	1		दोषके असं. महु.	र्माया, मान् व कोध कवायी]		1
भ	3 8	i	"	, सं. ,	इ.सम्प क्याला		•) }
,,,	×		1"	, असं, ,	11 19	3		77	47 47 11
,,	\ \ \k		\ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \	,, ਚੰ. ,,	,,	3		४३३	ग्रेषके असं महु,
📗 🕻 उपरोक्त कमसे	k		",	उत्तरोत्तर., ,,	चारों कषाय	1 4		į **	त्रीषके असं. महु,
्रिवार वचन			j		नोट-जपरोक्त नो	टकी भौ	ति यहाँ	संघतास	यतको अपेशा 'क' व
उपरोक्त क्रमसे	k		,,	17 15 17	'ख' राशि जान				-
{ चार मन	}			r .	लोभ कषायी	1 .	1	848	क+खका असं. बहुः
् _{वै क्रि} . मिश्र	8	1	১৯০৩ া	शेषके असं. महु.	माया %	*		7,	क+शेषका ,, ,,
कार्मण काय	8		,,	,, t ₁ ,,	क्रोध ,,	*		",	南十 ,, ,, ,, ,,
औदा. मिश्र	1 2		,,,	,, ,, ,,	मान् ,			,,	क 🛨 रोष एक भाग
वैकि मिश्र	``				उपरोक्त क्रमसे	€ −₹0		••	सयतासंयतके क्रमसे
कार्मण काय	1		19	31 21 11	चारों				यथा योग्धः
	\ <u>`</u>		1 "	, , , , ,	<u> </u>		<u> </u>	1	

मार्गणा	गुणस्था.	म् ख	म्,/दृ.	भागाभाग	मार्गणा	गुणस्था.	्रहें इंड	ध./षृ.	भागाभाग
७. ज्ञान मार्गणा-	_				सामायिक व छेदोपस्थापना	ξ− ξ		४५१	शिषके सं. बहु.
मति श्रुत अज्ञानी		<u> ५६</u>		सर्वजीवोंके अनं, बहु.	यथाख्यात	११-१४		1,	11 11 11
विभंग ज्ञानी		<u>षद्</u>		सर्वजीय÷अर्न,	परिहार वि. सूक्ष्मसाम्पराय	ξ-ε ε ο		7 54	रोष एक भाग
पाँचों ज्ञानों में- से प्रत्येक		,		19	९. दर्शन मार्गण			91	
मति श्रुत अज्ञानी	ŧ		४४२	सर्वजीवोंके अनं, बहु	चक्षरशनी		हु ४ ज न 3		सर्व जीव÷अनं,
केवलज्ञानी			,,	रीषके असं भहु.	अवधि दशनी		17		11
विभंग	. t		91	59 59 59	केवल "	ļ	"		11
मति श्रुत ज्ञानी	8		77	11 11 11	अचक्षु "		<u>इह</u> प्रदेश		सर्व जीवोंके अनं. बहु.
ঞাৰঘি জ্বানী	8	j	17	मतिश्रुत ज्ञानीके असं,	1) n	8		გ ۲@	19 19 17 15
	•	-		बहु(असं)= आ. असं-	केवल "	i		11	दोषके ,,
मति श्रुत मिष	ş			रोपके सं बहुः	ਚਲੂ "	ું ૧		**	., असं. ,,
भारत भूत अवधि मिति भूत अवधि	3		77	मतिश्रुत मिश्रके	चक्षु अचक्षु दर्शनी	8		13	77 77 17
्रिमश्र	•		"		अवधि "	8		11	चक्षुअचक्षुका असं. बहु. रोषके सं. बहु.
C inter				असं. बहु(असं)≔ <u>आ.</u> असं.	चंधु अचधु "	३		11	man'
मति श्रुत अज्ञानी	२	}	883	शेषके असं. बहु.	25 25	7		71	,,
विभंग ज्ञानी	₹		7)	मति श्रुत अज्ञानीके	, , অণ্টি ,	*] :	17	17 17 11
मंति श्रुत ज्ञानी	, k	1	17	असं, बहु(असं) = <mark>आरं.</mark> असं,	उपरोक्त तीन,	१ ६ १२		४४८	उपरोक्त संयतासंयत- बत्त अथायोग्य
		ļ.		शेषके असं बहु.	<i>*</i>	l			। वस्त्रुवयान स्य
अवधिज्ञानी	६		,,	91 99 7 99	१०. छेश्या मार्गः	गा			
दूसरे प्रकारसे—			,	:	कु ^इ ण लेश्या	Ì	हें ट प्रश्		सर्वजीवसे कुछ अ धक
मति श्रुत अज्ञानी	१		. ,,	सर्व जीवों के अनं. बहु.			দেশ স্থ		1 .8
केत्रलज्ञानी			11	शेषके ,, ,,	नील, कापोल		ড০ ঘ্ৰম্ব		सर्वजीव से कुछ व म
विभंगज्ञानी	₹	 	j,	" असं. <u>"</u>					
तीन इतान वाले	૪	İ	91	31 77 95	तेज, पदा, शुक्त +		<u> </u>	_	सर्व जीव + अनं
17 17 11	ş		11	,, सं,	कृ. + नील + कापोत			४६६	सर्व जीवोंके अनं, बहु
94 99 91	2		"	,, अ.स.,,	अनेश्य			31 ⁷	दोषके ,, ,,
दो ज्ञान वाले	े ४ ३		,,	·, ·, ·, ·,	तेजो लेश्या			٠,	,, सं. ,,
. 39 99 99	े २]), 1,	1	पद्म " शुक्ल "			11	्र, असं.,, होष एक भ∤ग
			"	्रा, अस्त _{, १} ,		¦ तरकिर≕ी	== ਛੋਕਸਾਤੋ ====================================	u Erommi	। श्रेष एक नाग मैं इंन्द्रिय मार्गणायत
तीन ज्ञान वाले	į.		,,	19 37 17					म शास्त्रया महावास्य प्रा/असं, विशेषता यह
∫मनःपर्यय सहित	,	ļ	,,	संयतासंयतके क्रम	कि यहाँ चारकी				•
{२,३,४ ज्ञानवाले			Ì	से यथायोग्य	. कृ. चैश्या	, <u>.</u>		४६६	क+स्वकाअसं, बहु.
८. संयम मार्गणा	i • _	•		·	-3-			•	क-[-शेषुका,,
ट. सथम मागणा		l u _			काषोत			11	क 🕂 शेष एक भाग
संयत सा		<u>६०</u> ५१२		सर्व जीव÷अनं.	कापोत "	१	<u> </u>	19	कापोत्तराशिका अन् बह
पाँचों संयत		,,		11	לנו מ	8		"	शेषका असं बहु
संयतासंयत		٠,		,,	25 25	3	, !	૪ ફ ંહ	सं,
असंयत		' টুছ দৃষ্ট		सर्वजीवोंके अर्न, बहु.	33 33	٦		51	दोषका एक भाग
असंयत	१		४५१	सर्वजीवॉके अन बहु	नील "	१५,४			र्इनील राशिमेंसे
सिद्ध			#1	शेषके अनं, कहु.		₹,२			कापोतके क्षमवत
,,	8		**	., असं ,,	कृष्ण सेश्या	१, ४,		,•	्रिकृष्ण राशिमेंसे
p (3		,,	,, ਚੰ,,		₹, ₹			कापोतवत
. "	२		,,	,, લાર્સ .,	तेज "	*		11	तज राशिका असं, बहु
संयतासंयत	ŧ		,,	17 17 17	. 12 %	ß		43	शेष ग, ग,

भा० ४-१५

For Private & Personal Use Only

मार्गणा	मुणस्या.	ু হ	4./g.	भागाभाग	मार्गणा	मुजस्था.	ष व	ध., ¹ पृ.	भागाभाग
तैज लेश्या	3		४६७	,, ,, सं. ,,	असंज्ञी			ያሪ३	सर्वजीवोंके अनं, बहु.
D 19	२	.	71	., ,, असं. ,,	संझी असंझी			11	दोषका ₁, ₄,
" »	.		71	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	रहित -/-ी-				
) » 	€- 0		11	शेष एक भाग पद्म लेश्या राशिमें	संज्ञी	ا ا		17	ः,, असं, ओव भागाभागवत्
पद्म "	१७		**	पद्म श्रद्धाः राश्यमः से सर्व क्रम तेजो	37	१ २–१४		**	अस्य मागस्मरावद्य
				त सब अस् ताजा लेश्यावत्	१४. आहारक म	∏गेणा—			
शु∻ल "	8		**	शुक्ल राशिका सं. बहु.	आहारक]	८ ६ प्रट		सर्व जीवोंके असं, सहू.
	i		21	शेषका असं. ,			<u>८८</u> ५१३		ľ
, , , , , , , , , , , , , , , , , , ,	3		11	,, सं, ,,	अनाहारक		प्रविद		सर्व जीव÷असं•
, ,	े । २		**	., असं, .,	आहारक	१		४०६	सर्व जीवोंके असं बहुर शेषका अनंत
,, ,	ક		17	,, ,, ,,	बन्ध मुक्त अना-			**	शषका अनत्त 🗤
,, ,,	६-१२		17	शेषकाएक भाग	हारक अवस्थक अनाम				
११. भव्यत्व मार	កំហា—	j			हारक हारक	:		11	17 17
A Section of the	, -, i — — {			<u> </u>	अहारक	ષ્ટ્ર			,, असं ,,
भव्य	* .	७४ ५१५		सर्व,जीवोंके अनं , महु,	n n	8	į	11	,, सं, ,,
এম ক্ষ		اعر ع 6 م		सर्व जीव + अनं.	97	र		73 71	,, असं. ,
ਸਰਧ		- , , ,	४७३	सर्व जीव + अनं	77	¥		"	,, ,,
भव्य अभव्यसे			91	रोधका अनं. बहुः	अनाहारक	8		17	97 197 99
अतीत					93	। २		1,	19 31 11
अभव्य	!	ļ	**	1, 1, 1,	आहारक अना-	. €		77	ੂ,, ਚੰ,,
भव्य	૪	·	91	., असं	आहारक	<i>1</i> 9−2		91	दोष एक भाग
»	1 4-68	ا ا	**	ओघ भागभागवत्			•		
१२, सम्यक्त्व म	ार्गणा—								
सम्बग्द्धि सा.		<u> </u>		सर्व जीव÷अनं.					
क्षायिक		,,	\ <u>}</u>			!	ļ		
वेदक		,,		,, ,,		-			
उपशम		11		,,		ļ	!		
सासादन	i	,,		,,			İ		
सम्यग्मिथ्यस्व	j	1,	į	,,		:	Į į		İ
मि ण्यादष्टि	į	্ দুও ্ দ্ৰহ		सर्व जीवोंके अनं. बहु.		İ			
14-41616		~ 7 ~	४७=	11 11 11 11 11			1	! 	
सिद्ध			٠,,	देखका , ,					
बे दक	R	İ	1.	,. असं. ,,					1. 1
क्षायिक	8	[٠,,	11 11 17		İ			
उ पशम	8	_	71	11 77 78			1	, 1	!
सम्यग्भिश्यास्व	় ३		४७६	,, सं.,,					
सासादन	, २		11	ु ,, असं,					
वेदक	į		17	71 11					:
उपशम				19 19 15	Ţ			i	
क्षायिक	<u> </u>			ी शेषके सं बहु.	<u> </u>		}		i I
तोनी सम्य.	ξ		}		1				
" " उपशम क्षायिक	!		1	यथा योग्य					
१३. संभी मार्ग		•		111 -11 -7					
संज्ञी		<u> ५</u> २ ५१७		सर्व जीव÷अनं.					
i	ĺ	58 592		सर्व जीवॉके अनं, नहु.					
असंज्ञी	[। प्रद		त्रज जानाम अग.नहु.	1		<u> </u>		

मःगणा :	गुण स्थान	भागाभाग	मार्गणा	्राण स्थान	भागाभाग
	·	ISTER MERCHINE	मनुष्य पर्याप्त	₹	शेषका सं युगलवत्
५. चारों गतियोंको अपेक्षा स्वपर स्थान भागाभाग			59 15	२	12 24 25 17
(घ. ३/१.२,७३/२१५-२९७)			37 41	\ x	71 17 27 12
	ļ ,		,, 11	Ę	33 44 17 19
एके न्द्रिय + विकलेंद्रिय	१	सर्व जीवोंके अनं, बहु	71 91	ا ق	24 19 59 15
सिद्ध जीव		शेषके ,, ,,	सयोगकेवली	१ ३	51 11 17 19
पंचेत्दिय अपर्याप्त	8	., " असं. "	चारों क्षपक	८-१२	55 55 15 15 .
11 19	8	, , सं सं • ,,	चारौँ उपशामक	2-88	19 19 11 19
ज्योतिषी देव	8	.5 fs 15 55	अग्रोगकेवज्ञी		रोष एक भाग
(इयन्तर देव)	8	., ., असं- ,,	<u>-</u>	1	
भवनवासी	. १	17 17 17 97			
प्रथम पृथिवी	1	17			
सौधर्म ऐशान	1 8	1) 2 11 11			
द्वितीय पृथिवी	2	11 11 11 11			
सनत्कुमार माहेन्द्र	2	19 71 77 79	६. एक समयमें विश	वक्षित स्था	नमें प्रवेश व निर्गमन
तृतीय पृथिवी	१	17 97 19 19	-		*** - * * ** - * * * * * * * * * * * *
ब्रह्म ब्रह्मोत्तर	१	79 17 79 79	करनेवाले जीवोंका प्र	H [V[
चतुर्थ पृथिवी	. १	71 11 11 21	(घ. १/४,१,६६/२७ ७-२ ७८)	
ज्ञांतव कापिष्ठ	ं १	47 19 95 41			!
वंचम पृथिवी	8	11 79 31 91	मार्गणाः	ध./पृ.	संख्या
शुक्र महाशुक	१	21 12 21 31	•		
शतार सहस्रार	१	92 93 39 39	6 24-23 -23 -2430-24		
षष्ठम पृथियी	१	15 12 23 27	१. सचयको अपेक्षा	5.00	
सप्तम पृथिवी 📑	े १	14 31 45 14	मनुष्य अपर्याप्त) ২৩৩	१.२ या अधिक्
सौधर्म ऐशान	8	** ** ** *	वैक्रियक मिश्र	''	19
91 79	3	,, ,, सं _{• ,,}	आहारक द्विक	17	14
,1 11	२	., ., असं. ,,	सूक्ष्मसाम्परायिक	''	71
🕻 सतःकुमार युगलसे शतार	િષ્ઠ	उत्तरोत्तर सौधर्म युगलवत	उपश्म सम्यग्दष्टि	,,	11
युगल तक प्रत्येक युगलमें	3	-	सासादन सम्यग्हिष्टि सम्यग्मिश्यादृष्टि	\ \'1	15
	3	; 	सम्याग्म व्याहा ह	11	",
ज्योतिषी	8,3,3	,,,			
व्यन्तर -	7,	••	प्रमत्त संयत		५ <u>१६३१</u> न् २०६
भवनवासी	71	71	अप्रमत्त संयत	संख्या/३/२	प्रमत्त्तसे आबे २१६ या
तिर्यंच सामान्य	, ,,	1,5	चारौँ उपशासक	- म्या/	३०० या ३०४
सातीं पृथिवियों मेसे प्रत्येक पृ,	, ",	11	चारों क्षपक	सं,	उपशामकों से दुगुन
थानत-प्राणत	۳,	शेषके सं. बहु भाग	सयोग केवली	nor :	म्हम् <u>यू</u> ०व
आरण-अच्युत	\ <u>\</u> \	71 11 11 19	अयोग केवली		क्षपकों वत्.
१-६ ग्रैवेपक	\ \ \	उत्तरोत्तर ,, ,,		\ ~~	
नव अनुदिश	8	। शेषके ,, ,,	२. प्रवेशकी अपेक्षा		
विजय आदि चार अनुत्तर	8	,, ,, असं- ,,	सर्व नारकी	২৩ব	१.२ या अधिक
आनत-प्राणत	13	,,,, ਜਂ.,,	सर्व तिर्यंच	11	19
) ą	शेषण संबहु ,,	सर्व देव	,,	"
आरण अच्यत		उत्तरानर,	मनुष्य सा.	,,	11
अ≀रण अच्युत १-६ ग्रैवेसक	1 2			I	4.5
आरण अच्युत १-६ ग्रै वेयक आनत-प्राणत	े २	। १ दोषक। ५, ,,)	मनुष्य प्रयाश	২্ড=	१.२ या अधिक
१-६ ग्रै वेसक आनत-प्राणत	२	होषक। ५५ ५०	मनुष्य पर्याष्ठ मनुष्यकी	300	१,२ या आधक
१-६ ग्रै वेसक	1	ì		ļ	-
१-६ ग्रै वेयक आनत-प्राणत अरुण-अस्प्रत	२ २	41 55 14 51	मनुष्यणी	,,	71
१-६ ग्रै वेयक आनत-प्राणत अरण-अच्छुत १-८ ग्रै वेयक	R R R	,, ,, ,, ,, उत्तरोत्तर ,, ,,	मनुष्यणी एकेन्द्रिय	11	71
१-६ ग्रै वेयक आनत-प्राणत खारण-अच्छुत १-८ ग्रैवेयक नवौ ग्रैवेयक	* * * *	., ,, ,, उत्तरोत्तर ,, ,, शेषका असं , ,,	मनुष्यणी एकेन्द्रिय सम विकत्तेन्द्रिय	99 99 31	**

मार्गणा	ध./पृ.	संख्या	मार्गणा	घ./पृ.	संख्या
ना. तेजकायिक	२७६	१,२ या अधिक	३. चरम समयमें अवस्थानकी उ	पिक्षा	
ना, वायुकायिक	۱,,	97	भव्य सिद्धिक	२८०	१,२ या अधिक
बा,बन,प्रस्येकपन	1,	,,	अचक्ष दर्शनी	100	र्₁र्था आधक
त्रस सामान्य	1,	91	. •	',1	11
.		_	्रइन दो स्थानोंके अति- र्	,,,	१,२ नहीं होते। 🤾
त्रस पर्याप्त	,,	11 -	रिक्त उपशीर्षक नं. २		२ से अधिक नहीं ∫
त्रस अपयप्ति	,,	19	(में कथित सर्व स्थान		
पांची मनोयोगी	11	,, ,		··	
पाँची वचनयोगी	١,	*1			
काय योगी सा.	"	**			
वैक्रियक काय यो.	,,,	19			
स्त्री बेदी	11	٠.	७ अन्य विषयों सम्बन्धी र	इंख्या व	भागाभाग सूची
पुरुषवेदी	,	17			
नपुंसक वेदी	,,	17	संकेत —भागा,= भागाभाग; (ध	(पृ./पाक्त)	
अपगत वेदी	, ,,	٠,		संख्या	
अक्षायी ''	, ,	17	विषय	या भागा	प्रमाण '
आठों ज्ञान	,,	,,	7		
स्नूक्ष्म सम्पराय जिना ४ संयम	[,,	,,	१ 🛭 ज. उ. योगस्थानमें	संख्यात	ध. १०/६१/१३
संयमासंयम	· ,,	,,	े 🕽 अवस्थित जीव	भागाः	घ. १०/६५/१
संयम सा	5,	*1	र्	संख्यात	ष. खं. १०/ सू. १८७/४८०
चक्षु दर्शनी	,,	,	र र प्रथक् पृथक् योग स्थान	17,7410	4. (4. (4) \$. () 800
अवधि दर्शनी	,,	,			
केवल दर्शनी	,,	,,	३ रिक्ष्ष्टादि क्षेत्रोंके	79	घ. १ १/३ २/४
तेज पद्म शुक्त लेश्या	"	,,	र् (स्वामी	भागाः	ध. ११/३२/१६
सम्यग्दृष्टि सा.	1	,,	∫ अधः कर्म आदि	! संख्यात	ध. ३/१३/ ६३-६⊏
क्षायिक, वेदक सम्यग्हिष्ट	31	,,	४ कमीं के स्वामी		4. 4114164 6
मिथ्यादृष्टि			ु उत्कृष्टादि अवग्रहमा	भागाव	ध. <i>११/२७</i> /११
संज्ञी, असंज्ञी	"	**	T	संख्यात	व. १४/१५४-५६० ध. १४/१५४
शेष सर्व स्थान	२७१	१,२ के प्रवेशका अभाव है।	है वर्गणाओं में परमाणु	भागाः	
	1,76	अधिकका ही होता है।		1	घ, १४/१६०-१६३
		MIMPHE ELECTION	७ रिंच शरीर योग्य जधन्य व उत्कृष्ट पुद्रगत स्कन्ध	संख्यात	ध. १/३४८-३६४
			का संधातन परिशातन	ĺĺ	
चारों उपशामक			८ (पंच शरीरों सम्बन्धी	**	ष. रहं - १४/सू. २४६-२१३
arvi A idinia	1	प्रथम समयमें १-१६	र,३,४ शरीरोंका		३३६)
	~	ब्रि. ,, ,, १−२४	(स्वामित्व		••••
	दे. संख्या/३/२	तृ. ,, ,, १∼३०	3.335.5	,	ष. खं. १४/सू. २४२ <i>-२</i> ४४
	H (32	चतु, ,, १−३६	६ पच शराराक प्रदर्ग	* '	३३a
	7	पंचमा,, ,, १४२	१० र पंच शरीरोंके एक	**	व. खं. १४/सू. २४६-२५३
	1	षष्ठ ,, ,, १-४८	१० पंच शरीरांके एक समय प्रवह्म प्रदेश		
		संसम ., ., १-५४	l ` .		33 6-3 38
			११ { स्थितिनन्ध अध्यवसाय स्थान	** . j	घ. ११/३४६-३५२
			१२ े अष्टकर्म बद्धप्रदेश	11	ध- १२/१०४-११०
	3/2)		१३ आनुभाग वन्ध अध्यव- साय स्थानकी यवमध्य	91	घ. १२/२०२-२०५
चारों क्षपक संयोगी, अयोगी	(हे. सरुया/३/२)	उपशामकोंसे दूने	१४ उपरोक्त स्थानींके स्वामी	7,	ष, खं. १२/सू. २६१-२७१
प्रयाम ः अवाया	ا∓ ئما	क्षपक वत्	1 1		₹8२
	1 "		१५ कर्म बन्धकी समय प्रव-	भागाः	ष. खं १२/अ. ६/सू, १२
			द्वार्थता व क्षेत्र प्रयास		६०१-५०=
	•				
	i	1			. 1

मृल

उत्तर

भागा.

संख्या

भागा.

संख्या

८ कमें बन्धकोंको अपेक्षा संख्या व भागाभाग सूची (म. बं./पुस्तक सं./पु. सं.)। संकेत-भागा=भागाभाग

		 			
ाल या उत्त प्रकृति	र संख्या या भागाभाग	सामान्य	जघन्य उत्कृष्ट स्थान	भुजगारादि मद	संख्यात भागादि वृद्धि
१ अष्ट क	र्म प्रकृति बन्धव	म जीव —			
उत्तर	भागा. संख्या	१/२०४-२४६ /१ ४१ १/२४७-२८०/१७६			
२ अष्टकर्म	अनुभाग बन्ध	क्त जीव			
मूल उत्तर	भागा. संख्या भागाः		२/१४१-१५७/८=-६१ २/१४=-१६०/६१-६५ ३/४४६-४५१/२०४	२/३०२-३०८/१५६ २/३०२-३०८/१५६ ३/५६८-७६६/३६३	२/३=६/१६६ २/३=७/१६६-१६७ ३/६९६-६९=/४४६
_	संख्या 🖠		३/४५२-४७०/२०६	३/७७०-७७१/३६४	३/१९८-१२=/४४=
३ अष्टकर्म	अनुभाग बन्ध	ক জী ৰ —			
मृत	भागा. संख्या		४/१८६-१८६/८६ ४/१६०-२०२/८३	४/२८६/१३२ ४/२ ^{८६} /१३३	४/३ ६५/१६ ४ ४/३६६/१ ६ ६
उत्तर	भागा. संख्या		४/३१४/ <i>९२६</i> १/३१६-३३७/ <i>१</i> ३१	५/४६=/२७= ५/४६६-५०६/२७६	४।६१८।३६३ ४/६११/३६४
४ अष्टकार्म	प्रदेशवन्धक उ	तीव			

\$|\$00-808|\$88

है/६७२-५६२/३५६

ई/१२७/ईई

4/22-220/40

९ मोहनीय कर्म सत्त्वको अपेक्षा संख्या व मागाभाग सूची

\$/**१**\$4-**१**\$७/८७

(क. पा./पुस्तक सं./§ सं./पृ. सं.)। संकेत -भागा = भागाभाग ।

मुख या उत्तर प्रकृति	संख्या या भागा भाग	सत्त्वासत्त्व	जवन्य उत्कृष्ट स्थान	भुजगार।दि वन्ध	असंख्यात भाग आदि वृद्धि
१ मकृति स	स्वकी अ पेक्ष	T			
मूल	भागा• संख्या	२/६७-६१/४७ २/७०-७६/४१-५३			
उत्तर	भागा. संख्या	२/१६०/१६७/१५१ २/१६य-१७४/१५७	* २/३६०-३६३/ <i>३</i> १६ २/३६४-३६१/३१६	२/ ४४०-४५२/४०६ २ / ४४६-४४६/४०४	ચ/ફ∘⊏-દ્રશ/પ્રદેશ ચ/દ્રશ/દ્રશ/પ્રદેશ
कषाय	भागा. संख्या	१/३८०-३८२/३ <i>६६</i> १/ <i>३७</i> ८-३ <i>७</i> ६/३६२			
२ स्थिति स	त्त्वकी अपेक्ष	Ţ -	1	{ 	
मृत उत्तर	भागा. संख्या भागा,		\$ \$=-\$0\$ \sc \$ \$08-\$\$\$ \$\$ \$ \sc \$0\$ 3\s	३/२६=-१६६/१९३ ३/२००-२०२/११४ ४/१०४-१८=/५५	३/२६४-२६८/१६४ ३/२६६-३०५/१६६ ४/३६४-३६७/२२७
्। ३ अनुभाग	संख्या सत्त्रको अपे	: क्षा	₹/६०४-६१६/३५=	४/१०६-११३/५७	४/३६ं व-२७३/२२व
भूत	भागा. संख्या	हतहत समुत्पात्तक स्थान १/१८७/१२७	\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\	k/8k8/808 b/8k8-8k6/808	४/१७६/१२० ४/१=०/१२१
उत्तर	भागा. संख्या	•	१/३४१-३६०/२२० १/३५ १ -३५६/२२४	\$\\860-863\\3cc	\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\

संख्यात-दे, संख्या।

संख्यातुल्य चात-Raising of number to its own Power (ध. ४/८. २५)

संख्या व्यक्तिचार—हे. नय./111/६/८।

संगति — मनपर संगतिका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक होनेके कारण मोक्षमार्गमें भी साधुओं के लिए दुर्जनों, ख्रियों व आर्यिकाओं आदि-के संसर्गका कड़ा निषेध किया गया है और गुणाधिककी संगतिमें रहनेको अनुमति दी है।

१. संगतिका प्रभाव

भ. था./मू./३४३ जो जारिसीय मेत्ती केरह सो होह तारिसो चेव। वासिज्जह च्छुरिया सा रिया वि कणयादिसंगेण १३४३१ - जैसे छुरी सुवर्णादिककी जिल्हई देनेसे सुवर्णादि स्वरूपकी दीखती है वैसे मनुष्य भी जिसकी मित्रता करेगा वैसा ही अर्थात दुष्टके सहवाससे दुष्ट और सज्जनके सहवाससे सङ्जन होगा १३४३।

२. दुर्जनकी संगतिका निषेध

भ. आ./सू./३४४-३४८ दुर्जनसंसरगोए १जहिद णियगं पुणं खु सजनो वि । सीयलभावं उदयं जह पजहिंद अगिगजोएण १५४४। सुजणो वि होइ सहुओ दुज्जणसंमेलणाए दोसेण। माला वि मोल्लगरुया होदि लहु मडयसंसिद्धा ।३४५। दुज्जणसंसम्मीए संक्रिज्जदि संजदो वि दोसेण। पाणागारे दुद्धं पियंतओ वंभणो चेव।३४६। अदिसंजदो वि दुज्जणकएण दोसेण पाउणइ दोसं। जह धूमकए दोसे इंसो य हुओ अपायो वि ।३४८। =सज्जन मनुष्य भी दुर्जनके संगरे अपना उज्ज्वल गुण छोड़ देता है। अग्निके सहवाससे ठण्डा भी जल अपना ठण्डापना छोड़कर नया गरम नहीं हो जाता । अर्थात् हो जाता है ।३४४। दुर्जनके दोषोका संसर्ग करनेसे सज्जन भी नीच होता है, बहुत कीमतकी पुष्पमासा भी प्रेतके (शबके) संसर्गसे कौड़ोकी कीमतकी होती है। ३४६। दुर्जनके संसर्गसे दोष रहित भी मुनि लोकोंके द्वारा दोषयुक्त गिना जाता है। मदिरागृहमें जाकर कोई बाह्मण दूध पीने तो भी मद्यपी है ऐसा लोक मानते हैं। ३४१। महान् तपस्यी भी दुर्जनोंके दोषसे अनर्ध में पड़ते हैं अर्थात् दोष तो दुर्जन करता है परन्तु फल सज्जनको भोगना पड़ता है। जैसे उल्लूके दोष-से निष्पाप हंस पक्षी मारा गया ।३४८।

२. लौकिकजनोंकी संगतिका निषेध

- प्र. सा./मू /२६= णिच्छिद मुत्तत्थपदो सिमदकसाओ तवोधिगो चावि। लोगिगजणसंसग्गं ण चयदि जिंद संजदो ण हवदि। = जिसने सूत्रोंके पदोंको और अर्थोंको निश्चित किया है, जिसने कवायोंका शमन किया है और जो अधिक तपवान् है ऐसा जीव भी यदि लौकिक-जनोंके संसर्गको नहीं छोड़ता, तो वह संयत्त नहीं है। १६८।
- र. सा./मू./४२ लोइयजणसंगादो होइ मइसुहरकुडिलदुन्भावो । लोइय-सग तहमा जोइ वि चित्रिक्षेण मुंचाओ ।४२। चलैकिक मनुष्योंको संगतिसे मनुष्य अधिक बोलनेवाले वक्षड कुटिल परिणाम और दुष्ट भावोंसे अत्यन्त कूर हो जाते हैं इसलिए लीकिकजनोंकी सगतिको मन-वचन-कायसे छोड़ देना चाहिए।
- स. श्राम् /७२ जनेभ्यो वाक् तर्तः स्पन्दो मनसश्चित्तविभ्रमाः। भवन्ति तस्मारसंसर्गं जनैयोंगी ततस्यजेत् ।७२। = लोगोंके संसर्गसे वचनकी प्रवृत्ति होती है। उससे मनकी व्ययता होती है, तथा चित्त-की चंचलतासे चित्तमें नासा विकल्प होते हैं। इसलिए योगी लौकिकजनोंके संसर्गका त्याग करे।
- भ. वि./वि./६०६/८०७/१६ उपवेशनं अथवा गोचरप्रविष्टस्य गृहेषु निषद्या कस्तत्र दोष इति चेत् ब्रह्मचर्यस्य विनाशः स्त्रीभिः सह संवाः

साद्। मोजनार्थिनां च विष्तः। कथिमव यतिसमीपे भुजिकियां संपादयामः । किमर्थमयमत्र दाराणां मध्ये निषण्णो यतिर्भुङ्क्ते न यातीति । — आहारके सिए श्रावकके घरपर जाकर वहाँ मैठना यह भी अयोग्य है। स्त्रियोंके साथ सहवास होनेसे ब्रह्मचर्यका विनाश होता है। जो भोजन करना चाहते हैं उनको विष्न उपस्थित होता है, मुनिके सिक्षधिमें आहार खेनेमें उनको संकोच होता है मां यित स्त्रियोंके वीषमें व्यों बैठते हैं, यहाँसे क्यों अपने स्थानपर जाते नहीं ?'' घरके लोग ऐसा कहते हैं।

पं. घ./उ./६४१ सहासंयमिभिलेकिः संसर्गं भाषणं रतिस्। कुर्यादाश्वारं इत्येके नासौ सूरिनं चाईतः।६४१। = आचार्य असंयमी पुरुषोके साथ सम्बन्ध, भाषण, प्रेम-व्यवहार, करे कोई ऐसा कहते हैं, परन्तु वह आचार्य न तो आचार्य है और न अईतका अनुयायी ही।६४१।

४. तरुणजनोंकी संगतिका निषेध

भ. आ./मू./१०७२-१०८४ स्त्रोभेदि पत्यरो जह दहे पडंतो पसण्यमि पंकं। खोभेइ तहा मोहं पसण्णमित तरुणसंस्ग्गी।१०७२। संडय संसरगीर जह पादुं सुंडओऽभिलसदि सुरं। विरुप तह पयडीए संमोहो तरुणगोट्टीए ।१०७८। जादो खु चारुदत्तो गोट्टोदोसेण तह विणीरो नि । गणियासत्तो मज्जासत्तो कुलदूसओ य तहा ।१०५३। परिहरइ तरुणगोट्टी विसंव बुद्धासले य आयदणे। जो वसइ कुणइ गुरुणिहेसं सो णिच्छरह बंभं ।१८८४। = जैसे बड़ा पत्थर सरोबरमें डालनेसे उसका निर्मल पानी उछलवर मलिन बनता है वैसा तरुण संसर्ग मनके अच्छे विचारोंको मलिन बनाता है ।१०७२। जैसे मदापी-के सहवाससे मद्यका प्राहान न करनेवाले मनुष्यको भी उसके पानकी अभिलाषा उरपन्न होती है बैसे तरुणोके संगसे बृद्ध मनुष्य भी विषयोंकी अभिलाषा करता है। १०७८। ज्ञानी भी चारुदत्त कुसंसर्गसे गणिकामें आसक्त हुआ, तदनन्तर उसने मधर्मे आसक्ति कर अपने कुलको दूषित किया ।१०८२। जो मनुष्य तरुणोंका संग विष तुरुय सममकर छोड़ता है, जहाँ वृद्ध रहते हैं, ऐसे स्थानमें रहता है, गुरुकी आज्ञाका अनुसरण करता है वही मनुष्य ब्रह्मचयेका पासन करता है।

* सल्लेखनामें संगतिका महस्व— दे सल्लेखना/६

५. सत्संगतिका माहात्म्य

- भ. आ./मू /२५०-२५२ जहदि य णिययं दोसं पि वुज्जणो सुयणवहसर-गुणेण । जह मेरुमिलयंतो काखो णिययच्छवि जहि ।३५०। कुसमम-गंधमिन जहा देवयसेसस्ति करिदे सीसे। तह सुयणमज्भनासी नि वुज्जणो पूइओ होइ ।३५१। संविष्याणं मज्मे अध्ययधम्मो वि क्यसो वि णरो । उज्जमदि करणचरणे भावणभयमाणलज्जाहि ।३४२। संविग्गोवि य संविग्गदरो संवेगमङक्षारम्मि। होइ जह गंधदुत्ती पयडिसुरभिदव्यसंजोए ।३५३। च्दुर्जन मनुष्य सज्जनोंके सहवाससे पूर्व दोशोंको छोडकर गुणोंसे युक्त होता है, जैसे-कौवा मेरुका आश्रय लेनेसे अपनी स्वाभाविक मलिन कान्तिको छोड्कर सुवर्ण कान्तिका आश्रय लेता है।३५०। निगन्ध भी पुष्प यह देवताकी वोषा है-प्रसाद है ऐसा समभकर लोक अपने मस्तकपर धारण करते हैं वैसे सज्जनोंमें रहनेवाला दुजेन भी पूजा जाता है।३६१। जो मुनि संसारभीर मनुष्योंके पास रहकर भी धर्म प्रिय नहीं होते हैं है तो भी भावना, भय, मान और लज्जाके वश पाप क्रियाओं को वे त्यागते हैं ११४२। जो प्रथम ही संसारभीरु हैं वे संसारभीरुके सहवाससे अधिक संसार भीरु होते हैं। स्वभावतः गन्धयुक्त कस्तूरी, चन्दन वर्गेरह पदार्थोंके सहबाससे कृत्रिम गन्ध पूर्वसे भी अधिक सुगन्धधुक्त होता
- भ आ ./मू /१०७३-१०८३ कलुसीकटंपि उदयं अच्छं जह होइ कदय-जीएण। कलुसो वितहा मोहो उवसमदि हु बुक्टसेवाए ।१०७३।

त्रका वि बुढ़ुसोली होदि णरो बुढ़ुसंसिओ अचिरा । लजजा संकामाणावमाण भयधम्म बुढ़ुहि ।१०७६। तरुणस्स वि वेरणं पण्हाविज्जदि णरस्स बुढ्ढेहि । पण्हाविज्जइ पाडच्छीवि हु वच्छरस्य फरुसेण ।१००३। — जैसे मिलन जल भी कतक फलके संयोगसे स्वच्छ होता है वैसा कलुष मोह भी शील बुद्धोंके संसर्गसे शान्त होता है ।१०७३। बुद्धोंके संसर्गसे तरुण मनुष्य भी शीघ ही शील गुणोकी वृद्धि होनेसे शीलबुद्ध बनता है । लज्जासे, भीतिसे, अभिमानसे, अपमानके डरसे और धर्म बुद्धिसे तरुण मनुष्य भी बृद्ध बनता है ।१०७६। जैसे बछड़िके स्पर्शसे गौके स्तनों में दुग्ध उत्पन्न होता है वैसे ज्ञानबुद्ध, वयोबृद्ध और तपोबृद्धोंके सहवाससे तरुणके मनमें भी वैराग्य उत्पन्न होता है ।१०८६।

कुरत/४६/६ मनसः कर्मणश्चापि शुद्धेर्मूलं सुसंगतिः । तिद्विशुद्धौ यतः सत्यां संशुद्धिर्जायते तयो ।६। = मनकी पित्रता और कर्मोंकी पित्रता आदमीकी सगतिकी पित्रतापर निर्भर है ।६।

इा./१६/१६-३६ वृद्धानुजोबिनामेव स्युश्चारित्रादिसंपदः। भवत्यपि च निर्लेपं मनः क्रोधादिकश्मलम्।१६। मिटयारवादि नगोनुङ्गशृङ्गभङ्गाय कल्पितः। विवेकः साधुसङ्गोरयो वज्राद्ध्यलयो नृणाम्।२४। एकैव महतां सेवा स्याज्जेत्री भुवनत्रये। ययैव यमिनामुच्चैरन्त-ज्योंतिविज्म्भते।२७। दृष्ट्वा श्रुरवा यमी योगिपुण्यानुष्ठानम् जिन्तम्। आक्रामति निरातङ्कः पदवीं तैरुपासिताम्।२८। चृद्धांकी सेवा करने वाले पुरुषोंके हो चारित्र आदि सम्पदा होती हैं और क्रोधादि कषायोसे मैला मन निर्लेप हो जाता है।१६। सत्पुरुषोंकी संगतिसे उत्पत्र हुआ मनुष्योंका विवेक मिथ्यारवादि पर्वतोंके ऊचे शिखरोंको खण्ड-खण्ड करनेके लिए वज्रमे अधिक अज्य है।२४। इस त्रिभुजनमें सत्पुरुषोंकी सेवा हो एकमात्र जयनशील है। इससे मुनियोंके अन्तरमे ज्ञानरूप जयोतिका प्रकाश विस्तृत होता है।२७। संयमी मुनि महापुरुषोंके महापवित्र आचरणके अनुष्ठानको देखकर या मुनकर उन योगीश्वरोंकी सेयी हुई पदवीको निरुपद्व प्राप्त करता है।

अन. ध./४/१०० कुशीलोऽपि सुशील स्यात सङ्गोष्ट्या मारिदचवत । -कशील भी सङ्गोष्ठीसे सुशील हो जाता है, मारिदचकी भाँति ।

६. गुणाधिकका ही संग श्रेष्ठ है

प्र. सा./मू./२७० तम्हा समं गुणादो समणो समणे गुणेहि वा अहियं।
अधित्रसदु तिम्ह णिच्चं इच्छिदि जिद दुवस्वपिरमोक्खं ।२७०।
—(लौकिक जनके संगसे संयत भी असंयत होता है।) इसलिए
यदि अमण दुखसे परिमुक्त होना चाहता हो तो वह समान गुणों
वाले अमणके अथवा अधिक गुणों वाले अमणके संगमें निवास
करो ।२७०।

७. स्त्रियों आदिकी संगतिका निषेध

भ आ , मू , १३३४/६४४ सञ्चत्थ इत्थिवागिम अप्पमत्तो समा अवीसत्थो। णित्थरदि बंभचेरं तिव्यवरीदो ण णित्थरदि ॥३३४॥ = सम्पूर्ण स्त्रोमात्रमें मुनिको विश्वास रहित होना चाहिए, प्रमाद रहित होना चाहिए, तभी आजन्म ब्रह्मचर्म पालन कर सकेगा, अन्यथा ब्रह्मचर्य-को नहीं निभा सकेगा।

म. आ./मू./१०६२-१९०२ संसरगोए पुरिसस्स अप्पसारस्स लडममरस्स। अगिसमीचे लक्खेत्र मणो लहुमैच वियलाइ १९०६२। संसग्गीसम्मूढो मेहुगसहिदो मणो हु दुम्मेरो । पुट्वाबरमगणंता लंबेज्ज
सुसीलपायारं १९०६३। मादं सुदं च भगिणीमैगंते अव्लियंतगस्स
मणो । खुट्भइ णरस्स सहसा कि पुण सेसासु महिलासु १९०६६। जो
महिलासंसग्गी विसंव दट्ठूण परिहरइ णिच्चं। णिट्थरड बंभचेरं
जात्रजीवं अकंपो सो १९९०२। = खोके साथ सहगमन करना.

एकासनपर बैठना, इन कार्योसे अलप धेर्य बाले और स्वच्छन्दसे बोलना-हँसना वगैरह करने बाले पुरुषका मन अग्निके सभीप लाखकी भाँति पिघल जाता है।१०६२। स्त्री सहवाससे मनुष्यका मन मोहित होता है, मैथुनकी तील इच्छा होती है, कारण-कार्यका विचार न कर शील तद उल्लंघन करनेको उतारू हो जाता है।१०६३। माता, अपनी लड़की और बहन इनका भी एकान्तमें आश्रय पाकर मनुष्यका मन क्षुब्ध होता है, अन्यका तो कहना ही क्या।१०६६। जो पुरुष स्त्रीका संसर्ग विषके समान समभकर उसका नित्य त्याग करता है वही महारमा यावज्जीवन ब्रह्मचर्यमें इड़ रहता है।१९०२।

म्. आ./१७६ तरुणी तरुणीए सह कहा व सल्लावणं चंजिद कुज्जा।
आणाकीवादीमा पंचिव दौसा कदा तेण ११७६। = युवावस्था वाला
मुनि जवान खीके साथ कथा व हास्यादि मिश्रित बार्तालाप करे तो उसने आज्ञाकीम आदि पाँची ही दोष किये जानमा।

को, पा /म्./६७ पसुमहिलासढसग कुसीलसंगं ण कुणइ विकहाओ... पत्रज्जा एरिसा भणिया ।६७। = जिन्न प्रवज्यामें पशु, महिला, नपुंसक और कुशील पुरुषका संग नहीं है तथा विकथा न करे ऐसी प्रवज्या कही है।६७।

लि. पा./मू./१७ रागो करेदि णिच्चं महिलावग्गं परं च दूसेइ। दंसण णाणिवहीयो तिरिक्खजोणी ण सो समणी १९७। = जो लिंग घारण-कर खियोंके समूहके प्रति राग करता है, निर्दोधीको दूषण लगाता है, सो मुनि दर्शन व ज्ञान कर रहित तिर्यंच यो निसं। पशुसम है।

८. आर्थिकाकी संगतिका निषेध

अ /मू./३३१-३३६ थेरस्स वि तबसिस्स वि बहुस्युदस्स वि पमाणभूदस्स । अज्जासंसग्गीए जणजंपणयं हवेज्जादि ।३३१। जिद्द वि
सय थिरबुद्धी तहा वि संसिग्गलद्धपसराए । अग्गिसमीवे व घदं
विलेज्ज चित्तं खु अज्जाए ।३३३। खेलपिडदमप्पाणं ण तरिंद जह
मिळ्या विमोचेदुं । अज्जाणुचरो ण तरिंद तह अप्पाण विमोचेदुं
।३३६। —मुनि, बृद्ध, तपस्थी, बहुशुत और जनमान्य होने पर भी
यदि आयिकाका सहवास करेगा तो वह लोगोंकी निन्दाका स्थान
बनेगा ही ।३३१। मुनि यद्यपि स्थिर बुद्धिका धारक होगा तो भी
मुनिके सहवाससे जिसका चित्त चंचल हुआ है ऐसी आर्यिकाका
मन अग्निके समीप घी जैसा पिघल जाता है ।३३३। जैसे मचुष्यके
कफमे पड़ी मक्खी उससे निकलनेमे असमर्थ होती है वैसे आर्यिकाके
साथ परिचय किया मुनि ब्रुटकारा नहीं पा सकता ।३३६।

मू. आ /१७७-१८५ अज्जागमणे काले ण अस्थिदव्वं तहेव एवकेण। ताहि पुण सन्ताको ण य कायठवो अकडनेण ११७७। तासि पुण पुच्छाओ एकस्से णय कहेजा एको दु। गणिणी पुरओ किचा जदि पुच्छइ तो कहेद्व्यं ।१७८। णो कष्पदि विरदाणं विरदीमुवासयम्हि चिट्ठेटु । तस्थ णिसेज्जउबद्दणसज्भाहारभिवस्ववोसरणे ।१८०। कण्णं विधर्यं अंतेष्ठ रेयं तह सइरिणी सिलंगं वा। अचिरेणस्लिय-माणो अनवारं तत्थ पप्पोदि ।१८२। = आर्थिका आदि स्त्रियोंके अनिके समय मुनिको बनमे अकेला नहीं रहना चाहिए और उनके साथ धर्म कार्यादि प्रयोजनके जिना बोले नहीं ।१७७। उन आर्थि-काओं में से यदि एक आधिका कुछ पूछे तो निन्दा के भयसे अकेला न रहे। यदि प्रधान आर्थिका अमाङ्गी करके कुछ पूछे तो कह देना चाहिए ।१७८। संयमी मुनिको आधिकाओंकी वस्तिकामें ठहरना. बैठना, सोना, स्वाध्याय करना, आहार व भिक्षा ग्रहण करना तथा प्रतिक्रमण व मलका त्यागकरना आदि क्रियानहीं करनी चाहिए ।१८०। कन्या, विधवा, रानी वा विसासिनी, स्वेच्छाचारिणी तथा दोक्षा धारण करने वाली, ऐसी ख्रियोंके साथ अणमात्र भो वार्ता-साप करता मुनि लोक निन्दाको पाता है।१५६।

९. आर्थिकाको साधुसे सात हाथ दूर रहनेका नियम

म्. आ./१६५ पंच छ सत्त हत्ये सूरी अज्ञावनी य साध्या । परिहरि अण्जाओ गवासणेणेव बंदंति ।१६५। = आर्थिकाएँ साधुसे पाँच हाथ दूरसे, उपाध्यायको छह हाथ दूरसे और साधुओंको सात हाथ दूरसे गौ आसनसे बैठकर नमस्कार करती हैं ।१६५।

१. कथंचित् एकान्तमें आर्थिकाकी संगति

प. पु./१०६/२२६-२२८ प्रामो मण्डलिको नाम तमायात. मुदर्शनः । भुनिमुद्यानमायातं वन्दित्वा तं गता जनाः ।२२६। सुदर्शनां स्थितां तत्र
स्वसारं सहचो ब्रुवन् । ईशितो वेदवरयाऽसौ सत्या अमणया
तया ।२२६। ततो प्रामोणलोकाय सम्यग्दर्शनतत्परा । जगाद
पश्यतेष्टश्चं श्रमणं ब्रूथ सुन्दरम् ।२२७। मधा सुयोषिता सार्क
स्थितो रहसि वीक्षितः । तत. कैश्वित् प्रतीतं तत्र तु कैश्चिह्चक्षणः ।२२८। = उस प्राममें एक सुदर्शन नामक सुनि आये । वन्दना
कर जब सब लोग चले गये तब उनके पास एक सुदर्शना नामकी
आर्थिका जो कि सुनिकी बहन थी बैठी रही और सुनि उसे
सहचन कहते रहे । अपने आपको सम्यग्दृष्टि बताने वाली
वेदवती (सीताके, पूर्व भवकी प्रयाय) ने गाँवके लोगोंसे कहा कि
मैंने उन साधुओंको एकान्तमें मुन्दर स्तीके साथ बैठे देखा है।

* पाइवंस्थादि मुनि संग निषेध—दे० साध्/ k ।

११. मित्रता सम्बन्धी विचार

१. मित्रतामें परीक्षाका स्थान

कुरल/८०/१.३,१० अपरीक्ष्येव मैत्री चेत कः प्रमादो हातः परः । भद्राः ग्रीति विधायादी न तां मुखनित किहिचित् ।१। कथं शीलं कुलं किं कः संबन्धः का च योग्यता । इति सर्वं विचार्येव कर्तत्र्यो मित्रसंग्रहः ।३। विशुद्धहदेशेरायेंः सह मैत्रीं विधेहि वै । उपयाचितदानेन सुखस्वानार्यमित्रताम् ।१०। क्रइससे बढ़कर अप्रिय बात और कोई नहीं है कि बिना परीक्षा किये किसीके साथ मित्रता कर ली जाय, क्योंकि एक बार मित्रता हो जाने पर सहदय पुरुष फिर छोड़ नहीं सक्ता ।१। जिस मनुष्यको तुम अपना मित्र बनाना चाहते हो उसके कुलका, उसके गुण-दोषोंका, किन-किनके साथ उसका सम्बन्ध है, इन सब बातोंका विचार कर, पश्चात् यदि वह योग्य हो तो मित्र बना लो ।३। पवित्र लोगोंके साथ बड़े चावसे मित्रता करो, लेकिन जो अयोग्य हैं उनका साथ छोड़ हो, इसके लिए चाहे तुम्हें कुळ भी देना पड़े ।००।

२. मित्रतामें विचार स्वतन्त्रताका स्थान

कुरल/८१/२,४ सत्यरूपात् तयोमेंत्री वर्तते विज्ञसंमता । स्वाधिती यत्र पशी द्वी भवतो नापि बाधकः ।२। प्रगादिमत्रयोरेकः किमप्यनुमिति विना । कुरुते चेद् द्वितीयोऽपि सख्यमाध्याय हष्यति ।४। —सस्वी मित्रता वही है जिसमें मित्र आपसमें स्वतन्त्र रहें और एक-दूसरेपर दबाव न डालें । विज्ञजन ऐसी मित्रताका कभी विरोध नहीं करते ।२। जब कि जिन दो व्यक्तियों में प्रगाद मैत्री है उनमेंसे एक दूसरेकी अनुमतिके बिना ही कोई काम कर लेता है तो दूसरा मित्र आपसके प्रेमका ध्यान करके उससे प्रसन्न ही होगा।४।

३. अयोग्य मित्रकी अपेक्षा अकेळा रहना ही अच्छा है

कुरत/२२/४ पलायते यथा युद्धात् पात्यित्वाश्ववारकम् । कुरस्यसप्ति-स्तथा मायो का सिद्धिस्तस्य संख्यतः ।४। = कुछ आदमी उस अवलड् घोड़ेको तरह होते हैं कि जो युद्धक्षेत्रमें अपने सवारको गिरा- कर भाग जाता है। ऐसे लोगोंसे मैची रखनेसे तो अकेला रहना ही हजारपुषा अच्छा है। ४१

स्बि मिधुद प्राणीसे लेकर मनुष्य व देव तक सभी संसारी जीवोंमें अ।हार, भय, मैथुन व परिग्रह इन चारके प्रति को तृष्णा पायी जाती हैं उसे संज्ञा कहते हैं। निचलो भूमिओंमें ये व्यक्त होती हैं और उपरकी भूमिकाओंमें अव्यक्त ।

१. संज्ञा सामान्यका रुक्षण

- १. नामके अर्थमें
- स-सि./२/२४/१०१/१० संज्ञा नामेत्युच्यते । ≔संज्ञाका अर्थनाम है। (रा.बा./२/२४/४/११३६/१३)।
 - २. ज्ञानके अर्थमें
- दे. मितज्ञान/१ मिति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता ये सर्व सम्यग्ज्ञानकी संज्ञाएँ हैं।
- स. सि./१/११/१०६/१ संज्ञानं संज्ञा। = 'संज्ञानं संज्ञा' यह इनकीं व्युत्पत्ति है।
- गो. जो./मू /६६० णो इंदियआवरणस्त्रओवसमं तज्जबोहणं सण्णा। == = नोइन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशमको या तज्जन्य ज्ञानको संज्ञा कहते है।

३. इच्छाके अर्थमें

- स. सि./२/२४/१८२/१ आहाराविनिषयाभिलाषः संज्ञेति । च्याहारादि निषयोंकी अभिलाषाको संज्ञा कहा जाता है। (रा. ना./२/२४/७/ १३६/१७)।
- पं. सं /पा. /१/४१ इह जाहि बाहिया वि य जीवा पावंति दारुणं दुवस्तं । सेवंता वि य उभर गार्थ। चिजनसे साधित होकर जीव इस लोकमें दारुण दु:खको पाते हैं, और जिनको सेवन करनेसे जीव दोनों ही भवोंमें दारुण दु:खको प्राप्त करते हैं उन्हें संज्ञा कहते हैं। (पं. सं./ सं./१/३४४); (गो. जी./मू/१३४)।
- गो. जो./जो. प्र./२/११० आगमप्रसिद्धा वाञ्छा संज्ञा अभिलाष इति । --- आगमर्मे प्रसिद्ध वाञ्छा संज्ञा अभिलाषा ये एकार्यवाची हैं । (गो. जो./जी. प्र./१३४/३४७/१६)।

२. संज्ञाके भेंद

षः २/१.१/४१३/२ सण्णा चउिवहा आहार-भय-मेहुणपरिग्गहसण्णा चेदि।—खीणसण्णा वि अत्थि (पृ. ४१६/१)। —संज्ञा चार प्रकार-की है; आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिप्रहसंज्ञा। क्षीण संज्ञांवाले भी होते हैं।(घ. २/१,१/४१६/१); (नि. सा./ ता. वृ./ ६६); (गो. जी./जी. प्र/ १३४/३४७)।

३. आहारादि संजाओंके रूक्षण

- गो. जों./जी. प्र./१३६-१३६/३४८ ३६१ आहारे-विशिष्टात्रादी संज्ञा— वावळा आहारसंज्ञा (१३६-३४६) मयेन उत्पन्ना पलायनेच्छा भयसंज्ञा (१३६/३४६) मेथुने-मिथुनकर्मण सुरतव्यापाररूपे संज्ञा—वावळा मेथुनसंज्ञा (१३५/३६०) परिग्रहसंज्ञा—तदर्जनादि बावळा जायते। (१३८/३५१) = विशिष्ट अन्नादिमें संज्ञा अर्थात् वावळाका होना सो आहारसंज्ञा है। (१३६/३४८) अरयन्त भयसे उत्पन्न जो भागकर छिप जाने आदिकी इच्छा सो भयसंज्ञा है। मेथुनरूप क्रियामें जो वावळा उसको मेथुनसंज्ञा कहते हैं। धन-धान्यादिके अर्जन करने रूप जो वावळा सो परिग्रहसंज्ञा जाननी।
- ध. २/१,१/४१६/३ एदासि चउण्डं सण्णाणं अभावो खीणसण्णाणाम । = इन चारों संज्ञाओं के अभावको क्षीणसंज्ञा कहते हैं।

४, आहारादि संज्ञाओंके कारण

ं सं./प्रा./१/५२-५६ आहारदंसणेण य तस्युवयोगेण फणकुट्ठेण। साहिदरुदीरणाए होदि हु आहारसण्णा दु १५२। अह भीमर सणेण य तस्मुवअोगेण कणसत्तेण । भयकम्मुदीरणाए भयसण्णा जायदे चउहि १६३। पणिदरसभोयणेण य तस्युवअोगेण कुसोलसेवणाए । वेदस्सु-दीरणाए मेहुणसण्णा हवदि एवं १५४। उत्तयरणदंसणेण य तस्सुव-ओगेण मुच्छियाए व । लोहस्सुदीरणाए परिग्गहे जायते सण्णा १५५। ≖बहिरंगमें आहारके देखनेसे, उसके उपयोगसे और उदररूप कोष्ठ-के खाली होनेपर तथा अन्तरंगमें असाता बेदनीयकी उदीरणा होने-पर आहारसंज्ञा उत्पन्न होती है। १२। बहिरंग अति भीमदर्शनसे, उसके उपयोगसे, शक्तिकी हीनता होनेपर, अन्तरंगमें भयकमेकी जदीरणा होनेपर भयसंहा जत्पन्न होतो है। १३। अहिरंगमें गरिष्ठ, स्वादिष्ठ, और रसयुक्त भोजन करनेसे, पूर्व-भुक्त विषयोंका ध्यान करनेसे, कुशीलका सेवन करनेसे तथा अन्तरंगमें वेदकर्मकी उदीरणा होनेपर मेथुनसंज्ञा उत्पन्न होती है। १४। वहिरंगमें भोगोपभोगके साधनभूत उपकरणोंके देखनेसे, उनका उपयोग करनेसे, उनमें मूर्छाभाव रखनेसे तथा अन्तरंगमें लोभकर्मकी उदीरणा होनेपर परित्रहर्सन्ना उत्पन्न होती है ।५६। (गो, जी,/मू./१३६-१३८); (प. सं-/सं./१/३४८-३५२)।

५. संज्ञा व संज्ञीमें अन्तर

स. सि./२/२४/१८१/८ ननु च संज्ञिन इत्यनेनैव गतार्थत्वात्समनस्का इति विशेषणमनर्थकम् । यतो मनोव्यापारहिताहितप्राप्तिपरिहार-परीक्षा। संज्ञापि सैवेति। नैतन्नुक्तम्, संज्ञाशब्दार्थव्यभिचारात। संज्ञा नामेरयुच्यते । तद्दवन्तः संज्ञिन इति सर्वेषामतित्रसङ्गः । संज्ञा ज्ञानिमिति चेत्, सर्वेषां प्राणिनां ज्ञानारमकत्वादतिप्रसङ्गः। आहा-रादिविषयाभिलाषः संज्ञेति चेत्। तुर्यं तस्मारसमनस्का इत्युच्यते। मश्न सुत्रमें 'संज्ञिनः' इतना पद देनेसे ही काम चल जाता है. अतः 'समनस्काः' यह निशेषण देना निष्फल है, न्यों कि हितकी प्राप्ति और अहितके त्यागकी परीक्षा करनेमें मनका व्यापार होता है यही संज्ञा है। उत्तर-यह कहना उचित नहीं है, क्यों कि संज्ञा शब्दके अथे में व्यभिचार पाया जाता है। संज्ञाका अर्थ नाम है। यदि नाम वाले जीव संज्ञी माने जायें तो सभी जीवोंको संज्ञीपने-का प्रसंग प्राप्त हो जायेगा। संज्ञाका अर्थ यदि ज्ञान मान लिया जाता है तो भी सभी प्राणी ज्ञान स्वभावी होनेसे सबको संज्ञीपनेका प्रसंग प्राप्त होता है। यदि आहारादि विषयोंकी अभि-लाधाको संङ्गो कहा जाता है तो भी पहलेके समान दोष प्राप्त होता है। चेंकि यह दोष प्राप्त न हो अतः सूत्रमें 'समनस्काः' ग्रह पद रखा है। (रा. वा./२/२४/७/१३६/१७)।

६. वेद व मैथुन संज्ञामें अन्तर

ध. २/१,१/४१३/२ मैथुनसंज्ञा वेदस्यान्तर्भवतीति चेन्त, वेदत्रयोदय-सामान्यनिबन्धनमेथुनसंज्ञाया वेदोदयविशेषलक्षणवेदस्य चैकस्यानु-पपत्तेः। - प्रश्न-मैथुन संज्ञाका वेदमें अन्तर्भाव हो जायेगा! उत्तर- नहीं, क्यों कि तीनों वेदों के उदय सामान्यके निमित्तसे उत्पन्न हुई मैथुन संज्ञा और वेदके उदय विशेष स्वरूप वेद, इन दोनों में एकस्य नहीं बन सकता है।

७. लोम व परिग्रह संज्ञामें अन्तर

थ. २/१.१/४१३/४ परिष्रहर्षं झापि न लोभेने करवमास्कन्दति; लोभो-दयसामान्यस्यालीढबाह्यार्थलोभतः परिष्रहसं झामादधानतो भेदात्। =परिष्रह संज्ञा भी लोभ कषायके साथ एकत्वको प्राप्त नहीं होती है; क्योंकि बाह्य पदार्थीको विषय करनेवाला होनेके कारण परिष्रह सज्ञाको धारण करनेवाले लोभसे लोभकषायके उदयह्न सामान्य लोभका भेद है। (अर्थात् बाह्य पदार्थोंके निमित्त से जो लोभ विशेष होता। है उसे परिग्रह संज्ञा कहते हैं।) और लोभ क्षायके उदयसे उरिपन्न परिणामोंको लोभ कहते हैं।

८. संज्ञाओंका स्वामित्व

गो. जी./जी. प्र./७०२/११३६/ह मिथ्यादृष्टगादिषमत्तान्त...आहारादि चतसः संज्ञा भवन्ति । षष्ठगुणस्थाने आहारसंज्ञा व्युच्छिता । शेषास्तिसः अप्रमत्तादिषु...अपूर्वकरणा — तत्र भयसंज्ञा व्युच्छिता । अनिवृत्तिकरणप्रथमसवेदभागान्तं...मेथुनपरिग्रहसंज्ञे स्तः । तत्र मेथुनसंज्ञा व्युच्छिता । सूक्ष्मसाम्पराये परिग्रहसंज्ञा व्युच्छित्ना । उपरि उपशान्तादिषु कार्यरहिता अपि संज्ञान सन्ति कारणाभावे कार्यस्याप्यभावाद । = मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर प्रमत्त पर्यन्त चारों संज्ञार होती हैं । षष्ठ गुणस्थानमें आहार संज्ञाका व्युच्छेद हो जाता है । अपूर्वकरण पर्यन्त शेष तीन संज्ञा हैं तहाँ भय संज्ञाका विच्छेद हो जाता है । अनिवृत्तिकरणके सवेद भाग पर्यन्त मैथुन और परिग्रह दो संज्ञार हैं । तहाँ मैथुनका विच्छेद हो गया । तब सूक्ष्म साम्परायमें एक परिग्रहसंज्ञा रह जातो है, उसका भी वहाँ विच्छेद हो गया । तब उपरके उपशान्त आदि गुणस्थानमें कारणके अभावमें कार्यका अभाव होता है, अतः वह कार्य रहित भी संज्ञा नहीं है ।

९. अप्रमत्तादि गुणस्थानों में संज्ञा उपचारसे हैं

धं. २/१,१/४१२,४३३/६,३ यदि चतसोऽपि संज्ञा आलीढबाह्यार्थाः, अप्रमत्तानां संज्ञाभावः स्यादिति चेन्न, तत्रोपचारतस्तत्सत्त्वाभ्युप-गमात् ।४१३/६। (कारणभूद-कम्मोदय-संभवादो उवयारेण भयमेहुण-परिग्गहसण्णा अत्थ (४३३/३)। = प्रश्न—यदि ये चारो ही संज्ञाएँ बाह्य पदार्थों के संस्पासे उत्पन्न होती हैं तो अप्रमत्त गुणस्थान-वर्ती जीवोके संज्ञाओं का अभाव हो जाना चाहिए ! उत्तर—नहीं, क्यों कि अप्रमत्तों में उपचारसे उन संज्ञाओं का सहभाव स्वीकार किया गया है। भय आदि सज्ञाओं के कारणभूत कर्मों का उदय संभव है इसलिए उपचारसे भय और मैथून संज्ञाएँ हैं।

गो. जी./मू./७०२ छट्ठोत्ति पढमसण्णा सकडल सेसा य कारणावेबस्ता।
=िमध्यात्वसे लेकर अप्रमत्त पर्यन्त चारों ही संज्ञाएँ कार्यरूप होती
हैं। किन्तु उत्परके गुणस्थानोंमें तीन आदिक संज्ञाएँ कारणरूप होती हैं। (गो. क. /मृ./१३६)।

१०. संज्ञा कर्मके उदयसे नहीं उदीरणासे होती है

- .ध. २/१.१/४३३/२ आसावावेदणीयस्स उदीरणाभावादो आहारसण्णा अप्यमत्तसंजदस्स णिच्य । = अमाता वेदनीय कर्मकी उदीरणाका अभाव होनेसे अप्रमत्त संयतके आहार संज्ञा नहीं है ।
- दे, संज्ञा/४ चारों संज्ञाओं के स्वस्व कर्मकी उदीरणा होनेपर वह वह संज्ञा उरपन्न होती है।
 - ★ संज्ञाके स्वामित्व सम्बन्धी गुणस्थान आदि २० प्ररूपणाएँ !—हे. सत्।
 - \star संज्ञा प्ररूपणाका कषाय मार्गणामें अन्तमोव । — दे. मार्गणा।

संज्ञासंज्ञ — क्षेत्रका एक प्रमाण विशेषाः अपरनाम सञ्चासन्न — दे.
गणित/1/१।

संशी मनके सञ्जावके कारण जिन जीवों में शिक्षा ग्रहण करने व विशेष प्रकारसे विचार, तर्क अधि करनेकी शक्ति है वे संज्ञी कहलाते हैं। यद्यपि चींटी आदि सुद्र जन्तुओं में भी इष्ट्र पर्दर्श्व की प्राधि के प्रति मनन और अनिष्ट पदार्थों से हटनेकी बुद्धि देखी जाती है पर उपगेक्त सक्षणके अभावमें वे संज्ञी नहीं कहें जा सकते !

१. संज्ञी-असंज्ञी सामान्यका रुक्षण

१. शिक्षा आदि याहीके अर्थमें

- पं. सं./श./१/१७३ सिक्लाकिरिओवएसा आलावगाही मणीवलंबेण। जो जीवो सो सण्णी तिव्ववरीओ असण्णी य १९७३। = जो जीव मनके अवलम्बनसे शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलापको ग्रहण करता है उसे संज्ञी कहते हैं। जो इससे विपरीत है उसको असंज्ञो कहते हैं। (ध. १/१,१,४/गा. ६७/१५२); (त.सा./२/६३); (गो. जी./मू./६६१); (पं. सं./सं./१२१६)।
- रा. वा./१/७/१९/६०४/१७ शिक्षािकयाताप्रमाही संज्ञी, तिष्टिपरीतो-ऽसंज्ञी ।=जो जीव शिक्षा, क्रिया, जपदेश और आलापको महण करता है सो संज्ञो और उससे विपरीत असंज्ञी है। (ध. १/१.१,४/११४); (ध. ७/२,१,३/७/७); (ध. का./ता. वृ./१९७/१८०/१३)।

२. मन सहितके अर्थमें

- त. सू./२/२४ संज्ञिनः समनस्काः ।२४। = मनवाले जीवसंज्ञी होते हैं। (ध. १/१,२,३५/२५६/६)।
- पं. सं./प्रा./१/१७४-१७५ मीमंसइ जो पुठवं करुजमकर जं चतत्त्वमिदरं च। सिनखइ णामेणेदि य समणो अमणो य विवरीओ।१७४। एवं कए मए पुण एवं होदि त्ति करुज णिष्पत्ती। जो दु विचारइ जीवो सो सिण्ण असण्ण इयरो य।१७५। जो जीव किसी कार्यको करनेसे पूर्व कर्तव्य और अक्तं व्यको मीमांसा करे, तत्त्व और अत्तवका विचार करे, याग्यको सीखे और उसके नामको पुकारनेपर आवे सी समनस्क, है उससे विपरीत अमनस्क है। (गो. जी./मू /६६२) जो जीव ऐसा विचार करता है कि मेरे इस प्रकार कार्यके करनेपर कार्यकी निष्पत्ति होगी, वह संज्ञी है और इससे विपरीत असज्ञो है।
- रा, बा./२/६/४/१०६/१३ हिताहितापरीक्षां प्रत्यसामर्थ्यं असंज्ञित्वम् । = हिताहित परोक्षाके प्रति असामर्थ्य होना सो असंज्ञित्व है ।
- घ. १/१ १,४/१६२/३ सम्यक् जानातीति संज्ञं मनः, तदस्यास्तीति संज्ञी। = जो भली प्रकार जानता है उसको संज्ञ अर्थात् मन कहते हैं, वह मन जिसके पाया जाता है उसको संज्ञी कहते हैं।
- गो, जो,/मू,/६६० णोइं दिय आवरणत्वओवसमं तज्जवोहणं सण्णा। सा जस्सा सो दु सण्णो इररो सेसिदियअवबोहो। च्नोइन्द्रिय कर्मके क्षयोपशमसे तज्जन्य ज्ञानको संज्ञा कहते हैं वह जिसको हो उसको संज्ञो कहते हैं और जिनके यह संज्ञान हो किन्तु केवल यथासम्भव इन्द्रिय ज्ञान हो उसको असंज्ञी कहते हैं।
- पं.का./ता. वृ./११७/१००/१६ नोइन्द्रियावरणस्यापि क्षयोपशमला-भारसंज्ञिनो भवन्ति । चनोइन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशमसे जीव संज्ञी होते हैं।
- द्र. सं/टो./१२/३०/१ समस्तशुभाशुभिवकरपातीतपरमात्मद्रव्यविज्ञक्षणं नामाविकरपजालरूपं मनो भण्यते, तेन सह ये वर्तन्ते ते समनस्काः सिज्ञनः, तिद्वपरीता अमनस्काः असंज्ञिनः ज्ञातव्याः। =समस्त शुभाश्चम विकरपोसे रहित परमात्मरूप द्रव्य उससे विजञ्जण अनेक तरहके विकरपजाल रूप मन है, उस मनसे सिहत जीवको संज्ञों कहते है। तथा मनसे श्चन्य अमनस्क अर्थात् असंज्ञी है।

२. संज्ञी मार्गणाके भेद

ष. खं. १/१,१/मू १७२/४०८ सिष्णियाणुवादेण अतिथ सण्णी असण्णी ।१७२। [णेव सिष्ण ऐव असिष्णणो वि अतिथ घ./२]। संज्ञी मार्गणोके अनुवादसे संज्ञी और असंज्ञी जीव होते हैं।१७२। संज्ञी तथा असंज्ञी विकल्प रहित स्थान भी होता है। (रा. वा./१/७/११/६०४/१८); (ध. २/१,१/४११/११); (द्र. सं./टी./१३/४०/३)।

३. संज्ञी मार्गणाका स्वामित्व

१. गति आदिकी अपेक्षा

- पं. का./सू./११९ मणपरिणामिवरहिंदा जीवा एइंदिया णेया १११। - मन परिणामसे रहित एकेन्द्रिय जीव जानने ।
- रा. वा /२/११/३/१९६/२७ एकद्विजिचतुरिन्द्रियाणां पञ्चेन्द्रियेषु च केषिश्चित् मनोविष्यविशेषव्यवहाराभावात अमनस्क ।=एक, दो, तीन,चार और पाँच इन्द्रिय जीवोंमें कोई जीव मनके विषयभूत विशेष व्यापारके अभावसे अमनस्क हैं।
- द्र. सं टो./१२/३०/४ संझ्यसं ज्ञिपञ्चेन्द्रियास्तर्मञ्च एव, नारव मनुष्यदेवाः सं ज्ञिपञ्चेन्द्रिया एव । . . . पञ्चेन्द्रियास्तकाशात् परे सर्वे द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः । . . . बादरसूक्ष्मा एकेन्द्रियास्तेऽपि असं ज्ञिन एव ।

 —पञ्चेन्द्रिय जीव संज्ञी तथा असंज्ञी दोनों होते हैं, ऐसे संज्ञी तथा
 असंज्ञी ये दोनों पचेन्द्रिय । तिर्धेच हो होते हैं। नारकी मनुष्य
 और देव संज्ञी पंचेन्द्रिय ही होते हैं। पंचेन्द्रियसे भिन्न अन्य सब
 द्वीन्द्रिय, जीन्द्रिय, और चतुरिन्द्रिय जीव मन रहित असंज्ञी होते
 हैं। बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रिय हैं वे भी . . . असंज्ञी है।
- गो. जो./जो. प्र./६६०/११३३/८ जोवसमासौ सं ज्ञिपर्याप्तापर्यापी हो।
 तु-पुनः असं ज्ञिजीवः स्थावरकायाद्यसं ज्यन्तं मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने एव
 स्याज्ञियमेन तत्र जीवसमासा द्वादशसं ज्ञिनो द्वयाभावातः । सं ज्ञीमार्गणामें पर्याप्त और अपर्याप्त मे दो जीवसमास होते हैं। असं ज्ञीजीव स्थावरकायसे लेकर असं ज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त होते हैं। इनमें
 एक मिथ्यास्व गुणस्थान तथा जोवसमास सं ज्ञी सम्बन्धी पर्याप्त और
 इन दोको छोडकर शेष बारह होते हैं।

२. गुणस्थान व सम्यक्तवकी अपेक्षा

- ष. खं. १/१ १/सू. १७३/४०८ सण्णी मिच्छाइट्टि-प्पहुडि जाव खीण-कसाय-वीयराय-छदुमत्था ति ।१७३। = संज्ञो जीव मिध्याइष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय, वीतराग, छबस्थ गुणस्थान तक हते हैं।
- ति, प./१/२६६ तेत्तीसभेदसंजुद तिरिक्खजीवाण सब्बकालिम्म । मिच्छत्तगुणद्वाणं वोच्छां सण्णीण तं माणं ।२६६। ⇔संज्ञी जीवोंको छोड्कर शेष तैतीस प्रकारके भेदोंसे युक्त तिर्यंचोंके (दे, जीवसमास) सर्व कालमें एक मिध्यारव गुणस्थान रहता है।
- गो. जो,/मू./६१७ सण्णो सण्जिप्पहुदी खीणकसाओित्त होदि णियमेण ।

 -संज्ञी जीव संज्ञी मिथ्यादष्टिसे जैकर शीणकषाय पर्यन्त होते हैं।
- दे. संज्ञी/३/१ में गो. जो. असंज्ञी जीवॉमें नियमसे एक मिध्यात्व गुणस्थान होता है।
- गो. क./जी. प्र./१५१/७५३/४ सासादनरुचौ असंज्ञिसंज्ञितियंड्-मनुष्येषु ः । = सासादनसम्यवत्वमें ः संज्ञी असंज्ञी वियंच व मनुष्यों में ः ।

४. एकेन्द्रियादिकमें मनके अभाव संबंधी शंका समाधान

- रा. वा. /५/११/३०-३१/४७२/२६ यदि मनोऽन्तरेण इन्द्रियाणां वेदनावममो न स्यात एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणामसङ्घिषच्चेन्द्रियाणां च वेदनानगमो न स्यात ।३०००० पृथगुपकारानुपलम्भात् तदभाव इति चेतः नः गुणदोषविचारादिवर्शमात ।३१००० अतोऽस्त्यन्तःकरणं मनः । म्यदि मनके बिना इन्द्रियोंमें स्त्रयं मुख-दुःखानुभव न हो तो एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोको दुःखका अनुभव नहीं होना चाहिए। प्रश्न—मनका (इन्द्रियोंसे) पृथक् उपकारका अभाव होनेसे मनका भो अभाव है ! उत्तर—नहीं, गुण-दोष विचार आदि मनके स्वतन्त्र कार्य है इसिलए मनका स्वतन्त्र अस्तित्व है ।
- ध. १/१.१ ७३/३१४/४ विकलेन्द्रियेषु मनसोऽभावः कृतोऽवसीयत इति चेदार्षात् । कथमार्षस्य प्रामाण्यमिति चेरस्वाभाव्यारप्रस्यक्षस्येव ।

=प्रश्न - विकलेन्द्रियोंमें मनका अभाव है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है। उत्तर-आगम प्रमाणसे जाना जाता है। और आगम प्रमाणसे काना जाता है। और आगम प्रमाण है।

वं. का /ता. वृ./११०/१८०/१६ श्योपशमिवकन्परूपं हि मनो भण्यते तत्तेषामन्यस्तीति कथमसंज्ञिनः । परिहारमाह । यथा पिपीलिकाया गन्धविषये जातिस्वभावेनैवाहारादिसंज्ञारूपं पटुरवमस्ति न चान्यत्र कार्यकारणव्याप्तिज्ञानिवषये अन्येषामप्यसिज्ञनौ तथैव । = प्रश्न — श्योपशमके विकल्परूप मन होता है । वह एकेन्द्रियादिके भी होता है, फिर वे असंज्ञो कैसे हैं । उत्तर—इसका परिहार करते हैं । जिस प्रकार चींटी आदि गन्धके विषयमें जाति स्वभावसे ही आहारादि हम संज्ञामें चतुर होती है, परन्तु अन्यत्र कारणकार्य व्याप्ति- हम विषयमें चतुर नहीं होती, इसी प्रकार अन्य भी असंज्ञी जीवोंके जानना ।

५, मनके अभावमें श्रुतज्ञानकी उत्पत्ति कैसे

ध. १/१,१,३६/२६१/१ अथ स्यादयि जोकमनस्कारच क्षुभ्यः संप्रवर्तमानं स्वन्नानं समनस्केष्ट्रपलभ्यते तस्य कथममनस्केष्ट्राविभाव इति नैष दोषः भिन्नजातित्वात्। = प्रश्न-पदार्थ, प्रकाशः, मन और चक्षु इनसे उत्पन्न होनेवाला रूप ज्ञान समनस्क जीवों में पाया जाता है, यह तो ठीं क है, परन्तु अमनस्क जीवों में उस रूप ज्ञानकी उत्पत्ति क से हो सकती है। उत्तर-यह कोई दोष नहीं हैं, क्यों कि समनस्क जीवों के रूप ज्ञानसे अमनस्क जीवों क रूप ज्ञानसे अमनस्क जीवों के रूप ज्ञानसे अमनस्क जीवों के रूप ज्ञानसे अमनस्क जीवों का रूप ज्ञान भिन्न जातीय है।

श. १/१.१,७३/३१४/१ मनसः कार्यत्वेम प्रतिपन्नविज्ञानेन सह तत्रतन-विज्ञानस्य ज्ञानत्व प्रत्यविशेषानमनोनिषन्धन्तवमनुमीयत इति चेन्न, भिन्नजातिस्थितविज्ञानेन सहाविशेषानुष्पतः। = प्रश्न-मनुष्योप्ते मनके कार्यरूपसे स्वीकार किये गये विज्ञानके साथ विकलेन्द्रियोप्ते होनेवाले विज्ञानकी ज्ञान सामान्यकी अपेक्षा कोई विशेषता नहीं है, इसलिए यह अनुमान किया जाता है कि विकलेन्द्रियोका विज्ञान भो मनसे उत्पन्न होता होगा। उत्तर-नहीं, क्योंकि भिन्न-जातिमें स्थित विज्ञानके साथ भिन्न जातिमें स्थित विज्ञानकी समानता नहीं घनती।

. १/१.१.११६/३६१/२ अमनसा तदि कथिमिति चेन्न, मनोऽन्तरेण वनस्पतिषु हिताहितप्रवृत्तिमिवृत्त्युपलम्भतोऽनेकारतात । —प्रश्न— मन रहित जोवोंमें भुतन्नान कैसे सम्भव है । उत्तर—नहीं, क्योंकि, मनके बिना बनस्पतिकायिक जीवोंके हितमें प्रवृत्ति और अहितसे निवृत्ति देखी जातो है, इसलिए मन सहित जीवोंके ही श्रुतन्नान माननेमें उनसे अनेकारत दोष आता है । (और भी दे. अगला शोर्ष ।)

६. श्रोत्रके अभावमें श्रुतज्ञान कैसे

त्र. १/९,१.१९६/३६१/६ कथमेकेन्द्रियाणां श्रुतज्ञानमिति चेत्कथं च न भवात । श्रोत्राभावात्र शब्दावगतिस्तदभावात्र शब्दाथिवगन इति; नैष दौषः, यतो नायमेकान्तोऽस्ति शब्दाथिवश्रेध एव श्रुतमिति । अपि तु अशब्दरूपदिपि लिङ्गालिङ्गिज्ञानमपि श्रुतमिति । चप्रश्न — एकेन्द्रियों के श्रुतज्ञान कसे हो सकता है । उत्तर — कसे नहीं हो सकता है । प्रश्न — एकेन्द्रियों के श्रोत्र इन्द्रियका अभाव होनेसे शब्दका ज्ञान नहीं हो सकता है, शब्दज्ञानके अभावमें शब्दके विषयभूत अर्थका भी शान नहीं हो सकता, इसलिए उनके श्रुतज्ञान नहीं होता यह कात सिद्र है । उत्तर —यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यह एकान्त नियम नहीं है कि शब्दके निमित्तसे होनेवाले पदार्थके ज्ञानको हो श्रुत कहते हैं । किन्तु शब्दके भिन्न रूपादिक लिंगसे भी जो लिंगीका ज्ञान होता है उसे भी श्रुतज्ञान कहते हैं।

. १३/५,५,२९/२९०/६ एइं दिएसु सोत-णोइं दियबिज्जिएसु कथं सुदणा-णुप्पत्ती । ण, तत्थ मणेण विणा वि जादिविसेसेण सिंगिविसयाणा-णुप्पत्तीप विरोहाभावादो । अध्यन —एकेन्द्रिय जीव श्रोत्र और नोइन्द्रियसे रहित होते हैं. उनके श्रुतज्ञानकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है। उत्तर – नहीं, क्यों कि वहाँ मनके बिना भी जोतिशिषके कारण विंगी विषयक ज्ञानकी उत्पत्ति माननेमे कोई विरोध नहीं आता।

७. संज्ञीमें क्षयोपशम भाव कैसे है

ध. ७/२.१.६२/१११/१० णोइं दियावरणस्स सब्बधादिफद्दयाणं जादिव-सेण अणंतगुणहाणीए हाइदूण देसघादित्तं पाविय उवसंताणसुद्दण सण्णित्तदंसणादो । —नोइन्द्रियावरण कर्मके सर्वघातो स्पर्धकों के अपनी जाति विशेषके प्रभावसे अनन्तगुणी हानिरूप घातके द्वारा देशघातित्वको प्राप्त होकर उपशान्त हुए पुनः उन्हींके उदयसे संझित्व उत्पन्न होता देखा जाता है।

८. अन्य सम्बन्धित विषय

१. संशाद संशीमें अन्तर। —दे० संज्ञा।

२. संशी जीव सम्भूच्छन भी होते हैं। —दे० सम्मूच्छन।

३. असंशी जीवोंमें वचन प्रवृत्ति कैसे सम्भव है।

--दे० योग/४।

४. असंशिवोंमें देवादि गतियोंका उदय व तत्सम्बन्धी शंका-समाधान । —दे० उदय/४।

५. संशित्वमें कौन सा भाव है। --दे० भाव/२।

६. मंद्यीके ग्रुणस्थान, जीत्रसमास, आदिके स्त्रामित्व सम्बन्धी २० प्ररूपणाएँ। - — दे० वह वह नाम ।

७. संज्ञीके सत्, संख्या, क्षेत्र आदि सम्बन्धी ८ प्ररूपणाएँ। --- दे० वह वह नाम ।

८. सभी मार्गणामें आयके अनुसार व्यय होनेका नियम।
--दे० मार्गणा।

संग्रह-म. पु./१६/१७६ दशग्राम्यास्तु मध्ये यो महान् ग्रामः स संग्रहः। =दश गाँवोंके कीच जो एक वड़ा भारी गाँव होता है, उसे संग्रह (जहाँ हर वस्तुओंका संग्रह रखा जाता हो) कहते हैं।

संग्रह कृष्टि—हे, कृष्टि। संग्रह नय—हे, नय/III/४।

संघ-१. संघका रुक्षण

स. सि./६/१३/३३१/१२ रतनत्रयोपेतः अन्यगगणः संघः ।

स. सि./१/२४/४४२/१ चातुर्वर्णश्रमणनिष्ठहः संघः । = २२नत्रयसे युक्तः श्रमणोंका समुराय संघ कहलाता है। (रा. वा./६/१३/१/१२३) चार प्रणोंके श्रमणोंके समुदायको संघ कहते हैं। (रा. वा./१/२४/-४४२/१); (चा. सा./१/१४); (प्र. सा ता. वृ./२४१/३४३/१०)

दे, नियानृत्य/२ आचार्यसे लेकर गण पर्यन्त सर्व साधुओंकी व्याघि पूर करना संघ नैयावृत्य कहलासा है।

मा, पा./टी./७८/२२६/१ ऋषिमुनियस्यनगरनिवहः संघः अथवा ऋष्यायिकाशावकशाविकानिवहः संघः। च्ऋषि, मुनि, यति और अनगरके समुदायका नाम संघ है। अथवा ऋषि, आर्थिका, आवक और श्राविकाके समुदायका नाम संघ है। (और भी वे, अगला द्यिक)

¥ संघके भेद—हे, इतिहास/१।

१. एक सुनिको असंघपना हो जायेगा

रा. बा./६/११/४/४/१ स्यादेतत् सङ्घो गणो वृन्दमित्यनथान्तरं सस्य कथमैकस्मिन् वृन्तिरिति । सन्नः कि कारणम् । अनेकव्रतगुण- संहत्त्रादेकस्थापि सङ्वद्वसिद्धेः। उक्तं च — संघो गुणसंघादो कम्माणिवमोधदो हबदि संघो। दंसणणाणचित्त्ते संघादितो हबदि सघो। = प्रश्न — संघ, गण और समुदाय ये एकार्थवाची हैं. तो इस कारण एक साधुको संघ कैसे कह सकते हैं। उत्तर — ऐसा नहीं है, क्योंकि एक व्यक्ति भो अनेक गुणवतादिका धारक होनेसे संघ कहा जाता है। कहा भी है — गुण संघातको संघ कहते हैं। कर्मीका नाश करने और दर्शन, ज्ञान और चारित्रका संघटन करनेसे एक साधु को भी संघ कहा जाता है।

संघात-- १. संघात सामान्यका रूक्षण

- स. सि./४/२६/२६८/४ पृथग्भूतानामेकस्वापत्तिः संघातः। = पृथग्भूत हुए पदार्थोके एकरूप हो जानेको संघात कहते हैं। (रा. वा./४/२६/-२/४६३/२४)
- ध, १४/४.६.६८/१२१/३ परमाणुपोरगलसमुदायसमागमो संघादो णाम । = परमाणु पुद्दगलोका समुदाय समागम होना संघात है।

२. भेद संघातका लक्षण

ध, १४/५.६.६८/१२१/४ भेंदं गंतूण पुणो समागमो भेदसंधादो णाम।

⇒भेदको प्राप्त होकर् पुनः संघात अर्थात् समागम होना भेद संघात
है।

३. संघात नामकर्मका लक्षण

- स. सि./८/११/३६०/१ यदुदयादी दारिका दिश्रीराणां विवररहितान्यो-ऽन्यप्रदेशानुप्रवेशेन एकत्वापादनं भवति तत्सं घातनाम। = जिसके उदयसे औदारिका दिश्रीरोंकी छिद्र रहित होकर परस्पर प्रदेशोंके अनुप्रवेशन द्वारा एकरूपता आती है वह संवात नामकर्म है। (रा. वा./=/११/७/१७/१७); (गो. क./जी. प्र/३६/२६/२)
- ध, ६/१.६-१.२५/१३/३ जेहि कम्मस्तंधेहि उद्यं पत्ते हि बंधणणामकम्मो-दएण बंधमाग्याणं सुद्धीरपोरगलवस्तं घाणं महत्तं कीरदे तेसि सरीर-संघादसण्णा। जदि सरीरसंघादणामकम्मजीवस्स ण होउज, तो तिलमोअओ व्य अबुदुसरीरां जीवो होउज। — उदयको प्राप्त जिन कर्म स्वन्धोंका मृष्टत्व अर्थात छिद्र रहित संश्लेष किया जाता है उन पुद्दगल स्कन्धोंको 'शरीरसंघात' यह संझा है। यदि शरीर संघात नामकर्म सङ्गा न हो, तो तिलके मोदकके समान अपुष्ट शरीरवाला जीव हो जावे। (ध. १३/१,१.१०१/३६४/२)

४. शरीर संघातके भेद

ष. खं, ६/१.६-१./सू. १३/७० जं तं सरीरसंघादणामकम्मं तं पंचिवहं, ओरांलियसरीरसंघादणामं वेउ व्वियसरीरसंघादणामं आहारसरीर-संघादणामं तेजससरीरसंवादणामं कम्महयसरीरसंघादणाम चेदि। च्यो शरीर संघात नामकर्म है, वह पाँच प्रकार है — औरारिक शरीर संघात नामकर्म, वैक्रियकशरीर संघात नामकर्म, आहारकशरीर-संघातनामकर्म, तैजसशरीर संघातनामकर्म, और कार्मणशरीर-संघातनामकर्म। (ष. खं. १३/४.६/सू. १०६/३६७)

संघात -- दृसरे नरकका दसवाँ पटल -- दे० नरक/६/११/ संघात ज्ञान--- दे० श्रुतज्ञान/।।

संघातन---१. संघातन कृतिका लक्षण

ध. १/४.१.६१/३२६/६ तत्थअप्पिदसरीरपरमाणूणं णिजजराए विणा जो संचक्षो सा संवादणकदी णाम । = (पाँचौँ शरीरोमेंसे) विव-क्षित शरीरके परमाणुओंका निर्जराके विना जो संचय होता है उसे संघातन कृति कहते हैं।

२. संघातन-परिशातन (उभय रूप) कृतिका लक्षण

- धः १/४.१.६१/३२७/२ अप्विदसरीरस्स पोग्गलक्लंधाणमागम-णिज्ज-राओ संघादण-परिसादणकदी णाम। = (पाँचों शरीरोंमे-से) विविक्षित शरीरके पुद्रगल स्कन्धोंका आगमन और निर्जराका एक साथ होना संघातन-परिशातन कृति कही जाती है।
 - पाँचों शरीरोंकी संधातन-परिशातन कृति ।
 वै० (घ, १/३१४-४११) ।

संघात समास ज्ञान-३० शुतज्ञान/11 ।

संघातिम-दे निक्षेप/१/१।

संघायणी-- बृहरसंग्रहणी सूत्रका अपरनाम है। -दे० वृहरसंग्रहणी सूत्र।

संचया — पूर्व विदेहस्थ मंगलावती क्षत्रकी मुख्य नगरी। —दे० लोक/७।

संचार---१. एक अक्ष या भंगको अनेक भंगनि विषै क्रमसे पलटना।
--दे० गणित/11/३।

२. न्याः वि./वृ./१/२०/२१७/२६ असंचारः असंप्रतिपत्तिः । =असं-चार अर्थात् प्रतिपति_यानी निश्चयका न होना ।

संचेतन — स. सा./आ./क. २२४ पं. जयचन्द्र — किसीके प्रति एकाय होकर उसका ही अनुभव रूप स्वाद लिया करना उसका संचेतन कहलाता है।

संजयत — म. पु./११/२लोक सं. पूर्व भव सं. ७ में सिंहपुर नगरका राजा सिंहसेन (१४६) छठेमें सक्लकी बनमें अश्वानिष्ठोष नामक हाथी हुआ (१६७)। १वेंमें रिवप्रभ विमानमें देव (२१८-२१८) चौथेमें राजपुत्र रश्मिदेव तीसरेमें काषिष्ठ स्वर्भों देव (२१८-२१८) चूर्यरेमें राजा अपराजितका पुत्र (२६६) पूर्व भवमे सर्वार्थ सिद्धिमें देव था (२७३)। वर्तमान भवमे गन्धमालिनी देशमें वीतशों के नगरके राजा वैजयन्तका पुत्र था (१०६-११०) विरक्त होकर दीक्षा ग्रहण की (११२)। ध्यानस्थ अवस्था में एक विष्यु द्रष्ट्र नामक विद्याधरने इनको उठाकर इला पर्वतपर नदीमें डुना दिया। तथा पर्थरों की वर्षा की। इस धोर उपसर्गको जीतने के फलस्वरूप मोक्ष प्राप्त किया (१९६-१२६)। (म. पु./४१/२०६-३०७), (प. पु./४/२७-४४)।

संजयंत नगरी—विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीका एक नगर --दे॰ विद्याधर।

संजय एक परिवाजक था। जिसने मौदगसायन व सारिपुसको बुद्धका शिष्य होनेसे रोका था।

संज्वलन-१. संज्वलनका लक्षण

- स. सि./८/१/३८६/१० समेकीभावे वर्तते। संयमेन सहावस्थानावेकीभूय जवलन्ति संयमो वा जवलत्येषु सत्स्वपीति संज्वलनाः क्रोधमानमायालोभाः। = 'सं' एकीभाव अर्थमें रहता है। संयमके साथ
 अवस्थान होनेसे एक होकर जो जवलित होते हैं अर्थात् चमकते
 हैं या जिनके सङ्गावमें संयम चमकता रहता है वे संज्वलन, क्रोध,
 मान, माया और लोभ हैं। (रा, वा,/५/१४/४८/४), (गो, क./जी. प्र./३२/२८/४), (गो. क./जी. प्र./४४/१३)।
- धः १२/६,६,६५/३६०/१२ सम्यक् शोभनं ज्वलतीति संज्वलनः । ज्जो सम्यक् अर्थातः शोभन रूपसे 'ज्वलति' अर्थातः प्रकाशित होता है वह संज्यलन कपाय है।
- गो. जी./जी. प./२८१/६०८/१६ संज्यलनांस्ते यथारूयातचारित्रपरिणामं कपन्ति, सं समीचीनं विशुद्धं संयमं यथारूयातचारित्रनामधेगं

जवलन्ति दहन्ति इति संजवलनाः इति निरुक्तिस्वलेन तदुदये सत्यिप सामायिकादीतरसंयमाविरोधः सिद्धः । ⇒संजवलन कोधादिक सकल कषायके अभाव रूप यथाल्यातं चारित्रका यात करते हैं। 'सं' कहिए सभीचीन निर्मल यथाल्यात चारित्रको 'जवलि' कहिए दहन करता है, तिनको संज्वलन कहते हैं, इस निरुक्तिसे संज्वलनका उदय होने पर भी सामायिक आदि चारित्रके सद्भावका अविरोध सिद्ध होता है।

२. संज्वलन क्षायमें सम्यक्षना क्या

ध. ६/१.६-१.२३/४४/६ किमत्र सम्यक्ष्वम् । चारित्रेण सह जबसनम् । चारित्तमविणासेता उदयं कुणेति ति जं उत्तं होदि । -प्रश्न-इस संज्वलन कषायमें सम्यक्ष्यना क्या ! उत्तर-चारित्रके साथ असना ही इसका सम्यक्ष्यना है अर्थात् चारित्रको विनाश नहीं करते हुए भी ये उदयको श्रप्त होते हैं, यह अर्थ कहा है !

भः १३/४,४.६४/३६९/९ कुतस्तस्य सम्यक्तम् । रत्नत्रयातिरोधात् । = प्रत्न -- इसे (संज्ञालनको) सम्यक्षमा केसे है ! उत्तर---रत्नत्रयका अविरोधी होनेसे ।

३. यह कषाय यथाख्यात चारित्रकी घातती है

पं. सं./प्रा./१/११६ घउरथो जहाबायप्राईया । = संज्यलन कथाय यथा-स्थात चारित्रकी धातक है। (और भी दे. शीर्षक सं. १); (पं. सं./प्रा./१/११०); (गो. जो./२८३); (गो. क./मू./४१); (पं सं./ सं./१/२०४)।

४ इसके चार भेद कैसे

ध. १३/१.१.६५/२६१/१ लोह-माण-माया-लोहेसु गादेक्कं संजलणणिहेसो किमट्ठं करो। एदेसि बंघोदया पुध पुध विगद्धा, पुन्तिश्कृतिय चउक्कस्सेव अक्रमेणण विणद्धा क्ति जाणावणहरे। —प्रश्न-कोध, मान, माया और लोभमें-से प्रत्येक पदके साथ संज्वलन शब्दका निर्देश किस लिए किया गया है। उत्तर-इनके बन्ध और उदयका विनाश पृथक्-पृथक् होता है, पहली तीन कथायोंके चहुक्के समान इनका युग्यत् विनाश नहीं होता, इस बातका ह्यान करानेके लिए कोधादि प्रत्येक पदके साथ संज्वलन पद निर्देश किया गया है। (ध, ६/१८-१-१३/४४/६)।

५. इसको चारित्र मोहनीय कहनेका कारण

भः ६/१.६-१.२३/४४/६ चारित्तमिविणासेंता उदयं कुणंति चि जं उतं होहि । चारित्तमिवणासेंताणं संजुतणाणं कथं चारित्तावरणसं जुज्जदे । ण. संजमिष्ट मलमुव्वाइय जहावखादचारित्तुप्पत्तिपिट-बंधयाणं चारित्तावरणत्ताविरोहा । —चारित्रको विनाश नहीं करते हुए.ये (संज्वलन) कथाय प्रगट होते हैं । प्रश्न—चारित्रको नहीं नाश करने वाले संज्वलम कथायोंके चारित्रावरणता कैसे बन सकती है ! उत्तर—नहीं, क्योंकि ये संज्वलम कथाय संयममें मलको उत्पन्न करके यथारूयात चारित्रकी उत्पत्तिके प्रतित्रमधक होते हैं, इसलिए इनके चारित्रावरणता माननेमें विरोध नहीं है ।

६. संज्वलन कषायका वासना काल

गो. क./मू. व टी./४६/४७ अंतरेमुहुत्तः संजन्नणमवासणाकालो दु णिय-मेण १४६। उदयाभावेऽपि तरसंस्कारकालो वासनाकालः स प संज्वनतनानामन्तर्मृहूर्तः। —उद्यका अभाव होनेपर भी कपायका संस्कार जितने काल तक रहे उसका नाम वासना कान्न है। सो संज्वनन कपायोंका वासना कान्न अन्तर्मृहूर्त है।

७. अन्य सम्बन्धित विषय

संज्वलन प्रकृतिके बन्ध उदय सस्व सम्बन्धी नियम व
 वंका समाधानादि । —दे० वह वह नाम ।

कषायोंकी मन्दता संज्वलनके कारणसे नहीं बल्कि
 लेक्यांके कारणसे है।
 न्दे० कषाय/३।

संज्वलनमें दशों करण सम्भव हैं। — दे० करण/२।

४. संप्वलन मञ्जितका देशवातीपना । 👚 देव अनुभाग/४।

संज्वलित-तोसरे नरकका आठवाँ पटल । - दे० नरक/४/११ १

संतलाल सिद्धचक्रपाठ व दशलक्षिक अंकके कर्ता एक जैन कवि। (वि. श. १८का मध्य: ई. श. १७-१८) हि. जै. सा. इ./-१६६ कामता।

संततता-Continuum (ज. प./प्र. १०६)।

संतान-एक ग्रहा-प्रहा

संतोष भावना—_{दे० भावना ।}

संथारा--दे॰ संस्तर।

संविग्धानेकान्तिक हेस्वाभास--दे० व्यभिचार।

संविग्धासिद्ध हेत्वाभास-विश्वसिद्ध ।

संदृष्टि—Symbol (ज. प./प्र. १०६)।

संधि-- १. एक ग्रह-- दे० ग्रह । २. औदारिक शरीरमें सन्धियोंका प्रमाण-- दे० औदारिक/१/७।

संपराय — स. सि./१/१२/४३१/३ संपरायः कषायः। = १. संपराय कषायको कहते हैं। (ध. १/१.१,१७/१=४/४) दे, आस्त्रवाश्रीः २. संपराय संसारको कहते हैं।

संपृच्छिनीदोष--दे, भाषा ।

संप्रज्विश्वित न्तीसरे नरकका नवम पटल - दे. नरक/४।

संप्रति-- मगधराज अशोक का प्रीत्र, अपर नाम चन्द्र गुप्त द्वि.। समय--ई. पू. २२०-२११। (द्वि. इतिहास/३/४)।

संप्रवास कारकि—१, प्र. सा./पं. जयचन्द्र/१६ कर्म जिसको देनेमें आवे अर्थाद जिसके लिए करनेमें आवे सो सम्प्रदान। २, अभिन्नः कारकी व्यवस्थामें सम्प्रदानका प्रयोग— दे. कारक/१।

संप्रदान शक्ति — स. सा./बा./परि./शक्ति ४४ स्वयं दीयमान-भावोपेयत्वमयो संप्रदान शक्तिः। = अपने द्वारा दिया जाता जो भाव उसके उपेयत्वमय (उसे प्राप्त करनेके योग्यपनामय, उसे लेनेके पात्रपनामय) सम्प्रदान शक्ति।

संबंध - १. संबंध सामान्यका सक्षण

न, च. वृ./२२४ संबंधो संसिलेसौ णाणीणं णाणणेय मादीहि च्झानीका झान और झेयका संसिलेश सो सम्बन्ध है।

ना. वा./हिं.१/७/६४ प्रत्यासत्ति है सो ही सम्बन्ध है।

रा. या. हिं/४/४२/२०/११९७ जहाँपर अभेद प्रधान और भेद गौण होता है वहाँपर सम्बन्ध समभना चाहिए।

२. सम्बन्धक भद

[आगममें अनेकों सम्बन्धोंका निर्देश पाया जाता है। यथा - १ क्वीय-क्वायक सम्बन्ध, प्राह्म-प्रशत्क सम्बन्ध (स. सा./आ./३१); भाव्य-भावक सम्बन्ध (स. सा./आ./३२, ८३); तादारम्य सम्बन्ध (स.

सा./आ./४७.६१); संश्लेष सम्बन्ध (स. सा./ता. वृ./४७); व्याप्य- 🗋 व्यापक सम्बन्ध (स. सा./आ./७५): आधार-आधिय सम्बन्ध (स. सा,/आ./१८१-१८३); (पं. घ./पू./३४०); आश्रय-आश्रयी (पं. घ./ प्,/७६): संयोग सम्बन्ध । सो दो प्रकारका है-देश प्रत्यासिक संयोग सम्बन्ध; और गुण प्रत्यासिक संयोग सम्बन्ध (ध. १४/ २.६.२३/२७/२); (पं. ध./पू /७६); धर्मे धर्मिमें अविनामात्र सम्बन्ध (पं. ध./पू./७, ४४६, ४६९,६६,२४६); जक्ष्य-लक्षण सम्बन्ध (पं.ध./ पू/१२. ८८. ६१६); साध्य-साधक सम्बन्ध (प. ध./पू./४४५); दण्ड-दण्डी सम्बन्ध (थं. ध्./पू/४१); समवाय (पं. घ./पू./७६); भविष्याभाव सम्बन्ध (स. म./१६/२१७/२४);] [इनके अतिरिक्त बाध्य-बाधक सम्बन्ध, बध्य-वातक सम्बन्ध, कार्य-कारण सम्बन्ध, बाच्य-बाचक सम्बन्ध, उपकार्य-उपकारक सम्बन्ध, प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकं सम्बन्ध, पूर्वीपर सम्बन्ध, द्योत्य-छोतक सम्बन्ध, व्यंग्य-व्यंजक सम्बन्ध, प्रकेश्य-प्रकाशक सम्बन्ध,उपादीन-उपादेय सम्बन्ध, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध इध्यादि अनेकों सम्बन्धोंका कथन आगममें अनेकों स्थलींपर किया गया है।]

३. सम्बन्धके भेदींके लक्षण

१. भाव्य-भावक

स, सा./आ./३२ भावकत्वेन भवन्तमपि दूरत एव तहमुबृत्तेरात्मनो भाव्यस्य व्यावर्तनेन —। —(मोहकर्म) भावकपनेसे प्रगट होता है तथापि तदमुसार जिसकी प्रबृत्ति है ऐसा जो अपना खात्माभाव्यः ।।।

२. व्याप्य-व्यापक

स. सा./आ./७१ घटमृत्तिकयोरित व्याप्यव्यापक भाव...। = वड़े और मिहीके कृयाप्य-व्यापकभावका सद्भाव...।

न्या. दी./३/६६%/१०६/१ साह चर्यनियमरूपां व्याप्तिक्रयां प्रति यस्कर्म तद्ववाष्यम्...एतामेव व्याप्तिक्रियां प्रति यस्कर्त् सद्व्यापकम्...एवं सति धूममिंग्नव्याप्नोति...धूमस्तु न तथाऽग्नि व्याप्नोति । -साहचर्य नियमरूप व्याप्तिक्रियाका जो कर्म है उसे व्याप्य कहते हैं,...व्याप्तिका जो कर्म है -विषय है वह व्याप्य कहलाता है।... अग्नि धूमको व्याप्त करती है, किन्तु धूम अग्निको व्याप्त नहीं करता।

३. शेय शयक न आध-धाहक

त् सा./अः./३१ प्राह्मणाहकलक्षणसंभन्धप्रत्यासस्तिवशेन...भावेन्द्रया-वगृह्यमानस्पर्शादीनीन्द्रियार्थां... हो यज्ञायक संकरदो षत्वेने द । घ्रम् प्राह्मणाहक सक्षण वाले सम्बन्धकी निकटताके कारण...भावेन्द्रियों के द्वारा (प्राह्क) प्रहण किये हुए, इन्द्रियों के विषयधूत स्पर्शादि पदार्थों को (प्राह्म पदार्थों को)...। होय (बाह्म पदार्थ) हायक (जाननेवाला) आत्मा-संकर नामक दोष...।

४. आधार-आधेय सम्बन्ध

स. सा./आ./१८१-१८६ न खण्वेकस्य द्वितीयमस्ति द्वयोभिन्नप्रदेशस्य-नै कसत्तानुपपत्तेः, तदसस्ये च तैन सहाधाराधेयसम्बन्धोऽपि नास्त्येय, ततः स्वरूपप्रतिष्ठित्वलक्षण एवाधाराधेयसंबन्धोऽपितिष्ठते।— बास्तवमें एक नस्तुकी दूसरी बस्तु नहीं है, क्योंकि दोनोंके प्रवेश भिन्न हैं. इसलिए उनमें एक सत्ताकी अनुपपत्ति है, इस प्रकार जबकि एक वस्तुकी दूसरी बस्तु नहीं है तब उनमें परस्पर आधार (जिसमें रहा जाये) आधेय (जो आध्यय सेवे) सम्बन्ध भी नहीं है। स्व स्वरूपमें प्रतिष्ठित वस्तुमें आधार-आधेय सम्बन्ध है।

४, अन्य सम्बन्धित विषय

१. संयोग आदि अन्य सम्बन्धींके लक्षण । —दे. वह वह नाम ।

२, संइलेष सम्बन्ध । — दे. श्लेष ।

३. सम्बन्धकी अपेक्षा वस्तुमें भेदाभेद । -रे, सप्तभंगी/१।

४ भिन्न द्रव्योमें आध्यात्मिक भेदाभेद । — दे. कारक/२ ।

प्रव्य गुण पर्यायोंमें युत सिद्ध व समवाय सम्बन्धका निषेध ।

 —दे, द्रव्य/४ ।

संबंध कारक-- दे कारक/२।

संबंध शक्ति — स. सा./आ./परि./शक्ति/४७, स्वभावमात्र स्वस्वा-मित्वमयी संबन्धशक्तिः। = स्वभावमात्र स्वस्वामित्वमयी सम्बन्ध शक्ति। (अपना भाव स्व है और स्वयं उसका स्वामी है ऐसी सम्बन्धमयी सम्बन्ध शक्ति है।)

संभव---१. एक ग्रह- दे, ग्रह; २. असत वस्तुओंकी भी कथंचित् सम्भावना--दे. असत ।

संभवनाथ — म. पु./४१/१लोक सं. पूर्वभव सं. २ में कच्छ देशके क्षेमंकरपुरका राजा विभलनाइन था (२)। पूर्वभवमें ग्रीवेयकके सुदर्शन विमानमें अहिमन्द्र (१)। वर्तमानभवमें तीसरे तीर्थं कर थे (११)। विशेष परिचय — दे. तीर्थं कर/४।

संभवयोग---दे, योग/१।

संभावना सत्य-दि, सत्य/रा

संभाषण—१. हितमित अथवा मिष्ट व कटु संभाषणकी इष्टता-अनिष्टता—हे. सत्य/३; २. व्यर्थ संभाषणका निषेध- हे. सत्य/३।

संभिन्नमित—म. पु./सर्ग/श्लोक महावल (ऋषभदेवका पूर्वका नवमा भव) राजाका एक मिध्यादृष्टि मन्त्री था (४/१११)। इसने राजसभामें नास्तित्व मतकी सिद्धिकी थी (४/३७-३८)। अन्तमें मरकर निगोद गया (१०/७)।

संभिन्न श्रोतृत्व ऋद्धि — वे. ऋदि/२।

संभ्रान्त-प्रथम नरकका छठा पटल-देः नरक/६/११ तथः रस्तप्रभा । संमत सत्य-देः सत्य/१।

संमृहिर्छम-१. संमृहिर्छम का लक्षण

स. ति./२/३१/१८७/३ त्रिषु लोकेषु विमधस्तिर्यक् च देहस्य समन्ततो सूर्च्छनं संसूर्च्छनमवयवप्रकल्पनम्। क्तीनों लोकोंमें ऊपर, नीचे, और तिरछे देहका चारों ओरसे सूर्च्छन् अर्थात् प्रहण होना सम्मूर्छन है। (अर्थात् चारों ओरसे पुद्रगलोंका प्रहण कर अवयवोंकी रचना होना); (रा. वा./२/९१/१४०/२३)।

गो. जी. जी. प्र./म३/२०४/१७ सं समन्तात मूर्च्छनं जायमानजीवानु-ग्राहकाणां शरीराकारपरिणमनयोग्यपुद्गगलस्कन्धानां समुच्छ्रयणं सम्भूर्छनम्। = सं अर्थात समस्तपने, मूर्च्छनं अर्थात जन्म ग्रहण करता जो जीव, उसको उपकारी देसे जो शरीराकार भरिणमने योग्य पुद्गगल स्कन्धोंका स्वमेव प्रगट होना सो संभूर्छन जन्म है।

२. संमृष्टिक्रमजन्मका स्वामित्व

त, सू./२/३३ शेषाणां संसूच्छीनम् ।३३। च्यार्थज और उपपादज जन्म वालोंके अतिरिक्त शेष जीशोंका संभूच्छीन जन्म होता है।

ति. प्र/४/२१४८ उप्पंती मणुवाणं गन्भज सम्मुच्छिनं खु दुभेदा।
-- मनुष्योंका जन्म गर्भ व सम्मूच्छिनके भेदसे दो प्रकारका है।

For Private & Personal Use Only

- ति. प./१/२६३ उप्पत्ती तिरियाणं गम्भजसमुच्छिमो ति । कियंचोंकी उत्पत्ति गर्भ और संमूच्छंन जन्मसे होती है। (गो, जी./जी.प्र./६९/ २१३/४)।
- रा, बा./२/३३/११/१४४/२३ एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां पञ्चेन्द्रियाणां सिरश्चां मनुष्याणां च केषांचित्संयूच्छ् निर्मिति ... = एक. दो. तीन. चार इन्द्रियवाले जीवोंका, किन्हीं पञ्चेन्द्रिय तियंचीं तथा मनुष्यों- का संयूच्छ्न जन्म होता है।
- गो. जो./जी. प्र./८४/२०७/६ एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां केषांचित्तवची-न्द्रियाणां लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणां च संमूर्च्छनमेव जनमेति प्रवचने निर्दिष्टम् । एकेन्द्रीय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, कोई पंचेन्द्रिय तिर्यंच और लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य इनके सम्मूर्च्छन ही जन्म होता है. ऐसा प्रवचनमें कहा है। (गो. जी./जी. प्र./१०/२१२/११)

३. संमूर्च्छन मनुष्य निर्देश

भ आ./बि./७८१/६३७ पर उद्धृत गाथा—कर्मभूमिषु चकास्नहलभृद्वरियूभुजास्। स्कन्धामारसम्हेषु प्रस्वोच्चारभूमिषु ॥ शुक्रसियाणकश्लेष्मकर्णदन्तमलेषु च। अरयन्ताशुचिदेशेषु सद्यः सम्सृच्छंनेन ये॥
भूत्वाङ्गुलस्यासख्येयभागमात्रशरीरकाः। आधु नश्यन्त्यपर्धाप्ति
स्युः सम्मृच्छंना नराः॥ —कर्मभूमिमें चक्रवर्ती, अलभद्र वगैरह बड़े
राजाओं के सैन्यों में मलसूत्रों का जहाँ क्षेपण करते हैं ऐसे स्थानों पर,
बीर्यः नाकका मल, कफ, कान और दाँतों का मल और अरयन्त
अपितत्र प्रदेश इनमें तो तत्काल उत्पन्न होते हैं। जिनका शरीर
अंगुनके असंख्यात भाग मात्र रहता है। और जो जन्म लेनेके बाद
शीध नष्ट होते हैं और जो लब्ध्यपयिष्ठक होते हैं उनको सम्मृच्छंन
मनुष्य कहते हैं।

४. संमूर्च्छम तिर्यंच संज्ञी भी होते हैं तथा सम्यक्त्वादि प्राप्त कर सकते हैं

घ. ४/१,६,१८/३६०/२ सण्ण पंचिवियतिरिक्खसंमुच्छिमपन्जत्तएसु
मच्छ-कच्छव-मंडूकादिसु उववण्णो । सव्वलहूष्ण अंतोमुहुत्तकालेण
सव्वाहिपज्जत्तीहि पज्जत्तयको जादो । विसंतो । विसुद्धो होदूण
संजमासंजमं पिडवण्णो । पुव्वकोडिकालं संजमासंजममणुपालिदूणमदो सोधम्मादि-आरणच्छुदंतेसु देवेसु उववण्णो । = संज्ञो पंचिन्द्रिय
और पर्याप्तक, ऐसे संभूच्छन तिर्यंच, मच्छ, कच्छप, मैंढकादिकोंमें
उत्पन्न हुआ, सर्व लघु अन्तर्मुह्तकाल द्वारा सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्तपनेको प्राप्त हुआ। पुनः विश्वाम लेता हुआ, विशुद्ध हो करके संयमासंयमको प्राप्त हुआ। वहाँपर पूर्वकोटि काल तक संयमासंयमको
पालन करके मरा और सौधर्म कच्पको आदि लेकर आरण, अच्युतान्तकश्योंमें देवोंमें उत्पन्न हुआ। (ध. ४/१,६,२३४/११४/६)

५ परन्तु प्रथमोपशमको नहीं प्राप्त कर सकते

धः ६/१.६ १२१/७३/३ सिण्यसम्मुच्छिम-पंचिदिएसुप्पाइयः पढम-सम्मत्तरगहणाभावा । चसंज्ञी पंचिन्द्रिय सम्मुच्छिन जीवोंमें प्रथम सम्यवस्वके ग्रहणका अभाव है । (धः ६/१.६,२३७/१९८/११)।

६. संसूर्विछमोंमें संयमासंयम व अवधिज्ञानकी प्राप्ति सम्बन्धी दो मत

- व. ४/१.६.२३४/१९४/११ अट्ठाबीससंतकम्मिज्ञो सण्णि-समुच्छिम-पञ्जत्तएमुः विसुद्धो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो तदो अंतोमुहुत्तेण ओषिणाणी जादो।
- ध. ५/९,६.२३७/१९८/११ सिक्निसमुच्छिमप्रज्ञस्यम् संजमासंजमस्सेव ओहिणाणुवसमसम्मत्ताणं संभवाभावादो । तं कथं जव्बदे । 'पंचि-दिएसु उवसामेंतो गब्भोववकंतिएसु उवसामेदि, जो सम्मुच्छियेसु'

चि चुलियामुचारो। = १, मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता-वाला संज्ञी सम्मूर्च्छम पर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ (... विसुद्धि हो वेदक सम्यक्षको प्राप्त हुआ। पश्चाद श्रवधिद्धानी हो गया। (ध. १/१, ६,२३४/११६,१९७)। २. संज्ञी सम्मूर्च्छम पर्याप्तकों में संयमासंयम-के समान अवधिज्ञान और उपशम सम्यक्ष्तको सम्भवताका अभाव है। = प्रश्न - यह कैसे जाता है। उत्तर - 'पंचेन्द्रियों में दर्शनमोह-का उपशमन करता हुआ गर्भोत्यन्त जीवों में ही उत्पन्न करता है। सम्मुच्छिमों में नहीं ', इस प्रकार चूलिका सुत्रसे जाना जाता है।

७. महामःस्यकी विशालकायका निर्देश

- ध. ११/४.२.५.०/१६/६ के वि आइरिया महामच्छो मुहपुच्छेमु सुटप्नु सण्हओ क्ति भणंति। एरथतणमच्छे दर्द्यण एदं ण घडदे, कहण्ति-मच्छोमु वियहिचारदंसणादो। अधवा एदे विकलं भुस्सेहा समकरण-सिद्धा क्ति के वि आइरिया भणंति। ण च सुद्ठु सण्णमुहो महामच्छो अण्णेगजोयणसदोगाहणतिमिणिलादिगिलण्लमो, विरोहादो := महा-मत्स्य मुख और पूँछमें अतिशय सूक्ष्म हैं, ऐसा कितने ही अचार्य कहते हैं। किन्तु यहाँके मत्स्योंको देखकर यह घटित नहीं होता. तथा कहीं-कहीं मत्स्योंके अंगींमें व्यभिचार भी देखा जाता है। अथवा ये विष्कम्भ और उत्सेध समकरणसिद्ध हैं, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। दूसरी बात यह है कि अतिशय सूक्ष्म मुखसे संयुक्त महामत्स्य एक सौ योजनको अवगाहना वाले अन्य तिमिणिल आदि मत्स्योंके निगलनेमें समर्थ नहीं हो सकता, क्योंकि विरोध आता है।
- ध. १४/६,६, ६८०/४६७-४६८/१० ण च महामच्छ उक्कस्सविस्सामुबचओ अणंतगुको होदि, जहण्यभादरणिगोदवग्गणादो उक्कस्ससुहुमिकिगोद-वग्गणार अर्णतगुणत्तप्पसंगादो। ... महामच्छाहारो पोग्गलकलाबौ पत्तेयसरीरबादर-सुहुमणिगीदवग्गणसहुममेस्रो ण होदि किंतु संभूदउद्वियकलावो सत्तो सम्मुच्छिदपस्थर-सङ्जङ्जुण-णिब-नयंबंब जंबु-जंबीर-हरि-हरिणादयो च विस्ससी-वचयंतम्भूदा द्हुव्या। ण च तस्य मट्टियादीणमुप्पसी असिद्धा, सइ-लोदर पदिदपण्णाण पि सिलाभावेण परिणामहंसणादो सुचिबुडपदि-दोदर्शिदूणं मुत्ताहलागारेण परिणामुवर्लभादो। ण च तत्थ सम्मु-च्छिमपंचिदियजीवाणमुप्पत्ती असिद्धा, पाउसयारंभवासजलघरणि-सबंधेण भेगंदर-मच्छ-कच्छादीणमुप्पत्ति इंसणादो । • • ण च एदेसि महामच्छत्तमसिद्धं, माणुसजडसप्पणगंडुबालाणं पि माणुसवबएसु-वर्त्तभादो । सन्वेसिमेदैसि गहणादो सिद्धं उद्घरसविस्साप्तुवचयस्स अणंतगुणत्तं । अधवा ओरात्तिय-तेजा-कम्मइयपरमाणुपीरगत्नाणं. बंधणगुणेण जे एयबंधणबद्धा पोरगला विस्सासुवचयसण्णिया तेसि सचित्तवागणाणं अंतव्भावो होदि। · · जे पुण · बंधणगुणेण त्रस् समवेदा पोग्गला जीवेण अणणुगय भावादो अलद्धसचित्तवागण-नवएसा ते एत्थ विस्सासुनुचया घेसञ्जा। ण च णिज्जीवविस्सासुनुच-याणं अत्थितमसिद्धः, रुहिर-यस-सुक-रस-सेंभ-पित्त-मुत्त-खरित्त-मरथुलिंगादीणं जीवन जिल्लाणं विस्सासुनचयाणसुवलंभादो । ण च दंतहड्ड बाला हव सब्बे विस्सासुवच्या णिज्जीवा पञ्चवस्वा चेत्र, अणुभावेण अणंताणं विस्सासुनचयाणं आगमचवखु गोग्रराण-मुवसंभादो । एरै विस्सामुबचया महामच्छदेहभूदछज्जीवणिकाय-विसया अणंतगुणा त्ति घेत्तव्वा। =प्रश्त-महामत्स्यका उत्कृष्ट विससोपचय अनन्तगुणा नहीं है, क्योंकि जवन्य बादर निगोद वर्गणासे उत्कृष्ट सुक्ष्म निगोद वर्गणाके अनन्तगुणे प्राप्त होनेका प्रसंग प्राप्त होता है ! उत्तर--महामत्स्यका आहार रूप जो पूहगल कलाप है. वह प्रत्येक शरीर, बादर-निगोद-वर्गणा और सुक्ष्मनिगोदवर्गणाका समुदायमात्र नहीं होता है किन्तु उसकी भीठपर आकर जमी हुई जो मिहीका प्रचय है वह और उसके कारण उत्पन्न हुए पत्थर, सर्ज नामके वृक्ष विशेष, अर्ज्न, नीम, कदम्ब, आम, जामुन, जम्बीर, सिंह और

हरिण आदिक ये सब विस्रसोपचयमें अन्तर्भृत जानने चाहिए। वहाँ मिट्टी आदिकी उत्पत्ति असिद्ध है यह कहना ठीक नहीं है, क्यों कि शैलके पानीमें गिरे हुए पत्तोंका शिलारूपसे परिणमन देखा जाता है तथा शुक्तिपुटमें गिरे हुए जलनिन्दुओंका मुक्ताफल रूपसे परिणमन उपलब्ध होता है। वहाँ पंचेन्द्रिय सम्यूच्छन जीवोंकी उत्पत्ति असिद्ध है यह बात भी नहीं है. क्यों कि वर्षकालके प्रारम्भमें वर्ष-कानके जल और पृथिवीके सम्बन्धसे मेंढक, चूहा, मछली और कछ्रआ आदिकी उत्पन्ति देखी जाती है...इनका महामरस्य होना असिद्ध है यह कहना भी असिद्ध नहीं है, क्यों कि मनुष्यके जठरमें उत्पन्न हुई कृमि विशेषको भी मनुष्य संज्ञा उपलब्ध होती है। इन सबके ग्रहण करनेसे उत्कृष्ट विस्नसोपचय अनन्तगुणा है यह बात सिद्ध होती है। अथवा औदारिक तैज स और कार्मण परमाणु पुद्दगलों के बन्धन गुणके कारण जो एक अन्धनबद्ध विश्वसोपचय संज्ञावाले पुद्दगल हैं उनका सिचल वर्गणाओं में अन्तर्भाव देखा होता है।... बन्धनगुणके कारण जो पुद्रगल बहाँ समवेत होते हैं...और जो सचित्त बगणाओंको नहीं प्राप्त होते. इसलिए यहाँ विससीपचय ह्मपरे ग्रहण करना चाहिए। निर्जीव विस्नसोपचयोंका अस्तित्व असिद्ध है यह कहना ठीक नहीं है, क्यों कि जीव रहित रुधिर, बसा. शुक्त. रस, कफ पित्त, मूत्र. खरिस, और मस्तकमेंसे निकत्तनेवाले चिकने द्रव्यरूप विस्तसोण्चय उपलब्ध होते हैं। दाँतोंकी हडि्डयोंके समान सभी विस्नसोपचय प्रत्यक्षरे निर्जीव होते हैं यह कहना ठीक नहीं है, क्यों कि अनुभावके कारण आगम चक्षुके विषयभूत अनन्त विससोपचय उपलब्ध होते हैं। महामत्स्यके देहमें उत्पन्न हुए छह जीव निकायोंको विषय करनेवाले ये विश्वसोपचय अनन्तगुणे होते हैं ऐसा यहाँ प्रहण करना चाहिए।

भ. आ./बि./१६४६/१४८६/७ उत्थानिका - आहारलोलुपतया स्वयं-भूरमणसमुद्रे तिमितिमिंगित्तादयो मत्स्या महाकाया योजनसहस्रा-यामाः भण्मासं विवृतवदनाः स्वपन्ति । निदाबिमोक्षानन्सरं विहि-ताननाः स्वजठरप्रविष्टमस्स्यादीनाहारोकृत्यः अवधिष्ठाननामधेयं नरकं प्रविशन्ति । तत्कणविलग्नमलाहाराः शालिसिन्थसंज्ञकाः यदीदशमस्माकं शरीरं भवेत्। किं निःसर्तुं एकोऽपि जन्तुर्रुभते। सर्वान्भक्षयामीति कृतमनःप्रणिधानास्ते तमेवावधिस्थानं प्रविशन्ति। स्वयंभूरमण समुद्रमें तिमि तिमिंगिलादिक महामरस्य रहते हैं. उनका शरीर बहुत बड़ा होता है। उनके शरीरकी लम्बाई हजार योजन की कही है। वे मरस्य छह मास तक अपना मुँह उघाड़कर नींद तेते हैं, नींद खुलनेके बाद आहारमें खुब्ध होकर अपना मुँह मन्द करते हैं, तन उनके मुँहमें जो मत्स्य आदि प्राणी आते हैं, उनको वे निगल जाते हैं। वे मरस्य आयुष्य समाप्तिके अनन्तर अवधिस्थान नामक नरकमें प्रवेश करते हैं। इन मरस्यों के कानमें शालिसिक्थ नामक मरस्य रहते हैं, वे उनके कानका मल लाकर जीवन निर्वाह करते हैं। उनका शरीर तण्डुलके सिक्थके प्रमाण होता है इसलिए उनका नाम सार्थक है। वे अपने मनमें ऐसा विचार करते हैं कि यदि हमारा शरीर इन महामत्स्यों के समान होता तो हमारे मुंहसे एक भी प्राणी न निकल सकता, हम सम्पूर्णको खा जाते। इस प्रकारके विचारसे उत्पन्न हुए पापसे वे भी अवधिस्थान । नरकमें प्रवेश करते हैं।

८. अन्य सम्बन्धित विषय

- संमूच्र्डन जीव नपुंसकवेदी होते हैं—दे. वेद/६/३।
- २. चीटी आदि संमूचिंछत कैसे हैं--हे. बेट/४/६।
- महामत्स्य मरकर कहाँ जन्म धारे इस सम्बन्धमें दो मत
 —दे. मरण/६/६।

४. मारणान्तिक समुद्घात गत महामत्स्यका विस्तार

—दे मरण/श/१,**१**।

प. बीजवाला ही जीव या अन्य कोई भी जीव इस योनि स्थानमें जन्म थारण कर सकता है—दे. जन्म/२।

संमोह-पिशाच जातिके व्यन्तर देवोंका एक भेद-दे. पिशाच।

संमोही भावना—भ.आ./मू./१८४/४०२ उम्मग्गदेसणो मग्गदूसणो मग्गविष्पिडवणी या । मोहेण या मोहितो संमोह भावणं कुणइ ११८४। —जो मिथ्यात्वादिका उपदेश करनेवाला हो, जो सच्चे मार्गको अर्थाद दर्शन, झान, चारित्ररूप मोक्षमार्गको दूषण सगाता हो, जो मार्गसे विरुद्ध मिथ्यामार्गको चलाता हो. ऐसा साधु मिथ्यास्व तथा मायाचारीसे जगतको मोहता हुआ सम्मोही देवोंमें उत्पन्न होता है। (मू. आ./६७)

संयतं बहिरंग और अन्तरंग आसवोंसे विरत होनेवाला महावती अमण संयत कहलाता है। शुभोषयोगयुक्त होनेपर वह प्रमन्त और आत्मसंवित्ति मे रत होनेपर अप्रमन्त कहलाता है। प्रमन्त संयत यद्यपि संज्वलनके तोबोदयवश धर्मोपदेश आदि कुछ शुभक्रिया करनेमें अपना समय गँवाता है, पर इससे उसका संयतपना घाता नहीं जाता, क्योंकि वह अपनी भूमिकानुसार हो वे क्रियाएँ करता है, उसको उन्लंघन करके नहीं।

वस्यकः 🕨
—दे. करण/४ ।
—दे. लब्धि/४ ।
के परिणाम अधः-
—दे, करण/४ ।
तत्व ।
—दे, भाव/२ ।
—दे, अनुभव/४।
r t
भाग ।
दे, गुणस्थान/१/४।
ोहण व अवरोहण
योपशम विधान ।
— दे. वह वह नाम ।
ग्यता सम्बन्धी ।
—दे, संयम/२।
मा ।
—दे, संयम/२ ।
—दे. जन्म/६,६।

भोगभूमिर्मे संयम न होनेका कारण। -दे, भूमि/१। प्रत्येक मार्गणार्से गुणस्थानोंके स्वामित्व सम्बन्धी शंका --दे. बह बह नाम। समाधान । दोनों गुणस्थानोंमें सम्भव जीवसमास मार्गणास्थान आदि २० प्ररूपणाएँ । ---दे. सत्। दोनों गुणस्थानों सम्बन्धी सत् संख्या क्षेत्र सरोन काल अन्तरभाव व अल्पबहुत्वरूप आठ प्ररूपणाएँ । - दे, बहुबहुनाम । सभी गुणस्थानोंभें आयके अनुसार व्यय होनेका -दे मार्गणाः दोनों गुणस्थानोंमें कर्म प्रकृतियोंका बन्ध, उदय, सत्त्व । --दे. वह वह नाम। संयत निर्देश सम्बन्धी शंकाएँ ą. प्रमत्त होते हुए भी संयत कैसे । ŧ सामायिक स्थित भी गृहस्य संयत नहीं । —दे, स∤मायिक/३ । वती भी मिथ्यादृष्टि संयत नहीं है। -दे. चारित्र/३/६३ अप्रमत्तसे पृथक् अपूर्वकरण आदि गुणस्थान क्या हैं। ₹ संयत्तोमें क्षायोपशमिक भाव कैसे । संज्वलनके उदयके कारण औदयिक क्यों नहीं। ጸ इन्हें उदयोपशमिक क्यों नहीं कहते। —दे, भघोपशम/२/३। सम्यक्तको अपेक्षा तीनों भाव हैं। ų फिर सम्यक्तवकी अपेक्षा इन्हें औपरामिकादि क्यों नहीं कहते। सामायिक व छेदोपस्थापना संयतमें तीनों भाव कैसे। (g प्रमादजनक दोष परिचय \$ आर्तध्यान व स्वलना होती है पर निरर्गल नहीं। ₹ साधु योग्य शुभ कार्योंकी सीमा ।

१. संयत सामान्य निदेश

ş

१. संयत सामान्यका लक्षण

ध. १/१,१,१२३/३६१/१ सम् सम्यक् सम्यग्दर्शनज्ञानानुसारेण यताः बहिरङ्गान्तरङ्गास्रवेम्यो विरताः संयताः। = 'सम्' उपसर्ग सम्यक् अर्थका वाची है, इससिए सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान पूर्वक 'यताः' अर्थात जो बहिर्ग और अन्तर ग आस्रवोंसे विरत हैं उन्हें संयत कहते हैं।

शुभोषयोगी साधु भव्यजनोंको तार देते हैं।

परन्तु फिर भी संयतपना घाता नहीं जाता ।

--- दे. धर्म/१/२∄

दे, संयम/१ वित समिति आदि १३ प्रकारके चारित्रका सम्यक्त्वयुक्त पासन करना संयम है। उस संयमको धारण करनेवाला संयत है।]

दे. अनगार [श्रमण, संयत, ऋषि, सुनि, साधु, बीतराग, अनगार, भवन्त, दान्त, यति ये सब एकार्थवाची हैं।]

दे. बती [घरके प्रति जो निरुत्सुक है, यह संयत है।]

दे. साधु/३/४ [कथाय हीनताका भाम चारित्र है और कषायसे असंयत होता है। इसलिए जिस व जितने कालमें साधु कषायोंका उपशमन करता है, उस व उतने कालमें वह संयत होता है।]

२. प्रमत्त संयतका रुक्षण

- पं. सं./प्रा./१/१४ व तावत्तपमाए जो वसइ पमत्तसंज्यो होइ। सयलगुणसीलकलियो महन्दर्श चित्तलायरणो ११४। = जो पुरुष सकल मूलगुणोंसे और शील अर्थात उत्तरगुणोंसे सहित है, अतएव महावती,
 तथा न्यक्त और अन्यक्त प्रमादसे रहता है अतएव चित्रल आचरणी है,
 वह प्रमत्त रंयत कहलाता है ११४। (ध. १/१.१.१४)गा. ११३/१७०);
 (गो. जी./सू./२३/६२); (इसका विवेचन दे. आगे)
- रा. वा./६/१/९/१६०/३ तन्य्ससाधनीयपादितीयजननं बाह्यसाधन-संनिधानाविर्मावमापद्यमानं प्राणेन्द्रियविषयभेदात् द्वितयीं वृत्ति-मास्कन्तं संयमोपयोगमारम्सारकुर्बन् पञ्चदशविधप्रमादवशात् किचि-रप्रस्वित्तचारित्रपरिणामः प्रमत्तसंयत् इत्याख्यायते । = उस संयम-लिध (दे. लिध्य/६/१) रूप अभ्यन्तर संयम परिणामोंके अनुसार बाह्य साधनोंके संतिधानको स्वीकार करता हुआ प्राणिसंयम और इन्द्रियसंयमको पालता हुआ भी पन्द्रह प्रकारके प्रमादोंके वदा कही कभी चारित्र परिणामोंसे स्वलित होता रहता है, अतः प्रमत्त संयत् कहलाता है।
- ध. १/१.१ १४/१७०/१० प्रकर्षेण मत्ताः प्रमत्ताः, सं सम्यग् यताः विरताः संग्रताः । प्रमत्ताश्च तै संग्रताश्च प्रमत्तसंग्रताः । = प्रकर्षमे मत्त जीय-को प्रमत्त कहते हैं. और अच्छी तरहमे विरत या संग्रमको प्राप्त जीवोंको संग्रत कहते हैं। जो प्रमत्त होते हुए भी संग्रत होते हैं, उन्हें प्रमृत्त संग्रत कहते हैं।
- गो. जी./मू./२२/६१ संजलपणोकसायाणुदयादो संजमो हवे जम्हा।
 मलजणणपमादो वि य तम्हा हु पमत्तविरदो सो (३२) चक्रोधादि
 संज्वलन कषाय और हास्यादि नोकपाय, इनके उदयसे उत्पन्न
 होनेके कारण जिस संयममें मलको उत्पन्न करनेवाला प्रमाट पाया
 जाता है, वह प्रमत्तविरत कहलाता है >
- द्र. सं./टो./१३/२४/६ स एव सहिष्टः प्रश्चमहावतेषु वर्तते यदा तदा दुःस्वप्नादिव्यक्ताव्यक्तप्रमादसहितोऽपि षष्ठगुणस्थानवर्ती प्रमक्त-संयतो भवति। = संयमासंयमको प्राप्त वही सम्यादृष्टि जत्र पंच महावतीं में वर्तता है: तब वह दुःस्वप्नादि व्यक्त या अव्यक्त प्रमाद सहित होता हुआ छठे गुणस्थानवर्त्ती प्रमक्तसंयत होता है।
- गो. जी./जी. प्र./३३/६३/४ प्रमत्तसंयतः चित्रलाचरण इत्युक्तम् । चित्रं प्रमाविमिश्रितं लातीति चित्रलं आचरणं यस्यासौ चित्रलाचरणः । अथवा चित्रलं लातीति चित्रलं आचरणं यस्यासौ चित्रलं लावरणः । अथवा चित्रं लातीति चित्रलं, चित्रलं अःचरणं यस्यासौ चित्रलाचरणः, इति विशेषव्युत्पत्तिरि ज्ञातस्या । म्प्रमत्त संयतको चित्रलाचरण कहा गया है । 'चित्रं' अर्थात प्रमावसे मिश्रितः 'लाति' अर्थात् ग्रहण करता है उसे चित्रल कहते हैं। ऐसा चित्रल आचरण बाला दित्रलाचरण है। अथवा चित्रल नाम चीतेका है, उसके समान चित्रकर्तरे आचरण बाला चित्रलाचरण है। अथवा चित्रल चरण है। अथवा 'चित्रं लाति' अर्थात् ममको प्रमावस्वरूप करे सी चित्रल, ऐसे चित्रल आचरणवाला चित्रलाचरण है। ऐसी विशेष निरुक्ति भी पाठान्तरकी अपेक्षा जाननी चाहिए।

३. अप्रमत्त संयत सामान्यका लक्षण

- पं. सं./श./१/१६ णट्ठासेसपमाओ वयगुणसी लो तिम खिओ णाणी। अणु-वसमओ अखवओ भाणणिलीणी हु अप्पमत्तो सो ११६१ = जो व्यक्त और अव्यक्तरूप समस्त प्रकारके प्रमादसे रहित है, महावत, मूल-गुण और उत्तरगुणोंकी मालासे मण्डित है, स्व और परके झानसे गुक्त है और कषायोंका अनुपशामक या अक्षपक होते हुए भी ध्यानमे निरन्तर लीन रहता है, वह अप्रमत्तस्य कहलाता है। (ध. १/१.१.९६/गा. ११६/१७६), (गो. जो./मू-/४६/६८)।
- रा. वा./१/१/१८/१८/६ पूर्ववत सयम्मास्कन्दत् पूर्वोक्तप्रमादिवरहात् अविचलितस्यमङ्क्तिः अप्रमत्तसंयतः समारूयायते । = पूर्ववत (दे० प्रमत्तसंयतका लक्षण) संयमको प्राप्त करके, प्रमादका अभाव होनेसे अविचलित संयमी अप्रमत्त संयत कहलाता है।
- ध. १/१.१.१५/१००/० प्रमत्तसंयताः पूर्वोक्तक्षणाः, न प्रमत्तसंयता अप्रमत्तसंयताः पञ्चदशप्रमादरहितसंयता इति यावत् । =प्रमत्त-संयतींका स्यरूप पहले कह आये हैं (दे० शोर्षक स./२)। जिनका संयम प्रमाद सहित नहीं होता है उन्हें अप्रमत्तसंयत कहते हैं। अर्थात् संयत होते हुए जिन जीवोंके पन्दह प्रकारका प्रमाद नहीं पाया जाता है, उन्हें अप्रमन्तसयत सममना चाहिए।
- गो. जी./मृ./४६/६७ संजलणणोकसायाणुदयो मदो जदा तदा होदि।
 अपमत्तगुणो तेण य अपमत्तो संजदो होदि। चिजन क्रोधादि संजन-लन कषाय और हास्य आदि नोकषाय इनका मन्द उदय होता है, तब अपमत्तगुण प्राप्त हो जानेसे यह अप्रमत्त संयत कहलाता है।४६। (द्र. सं./टी./१३/३४/९०)।

४. स्वस्थान व सातिशय अप्रमत्त निर्देश

- गो. जो./जो. प्र./४५/६७/८ स्वस्थानाप्रमत्तः सातिशयप्रमत्तश्चेति ही भेदौ । तत्र स्वस्थानाप्रमत्तसंयतस्वस्यं निरूप्यति । ज्यप्रमत्त संयतके स्वस्थान अप्रमत्त और सातिशय अप्रमत्त ऐसे दो भेद हैं । तहाँ स्वस्थान अप्रमत्तसंयतका स्वस्था कहते हैं । [मूल व उत्तर गुणोंसे मण्डित, व्यक्त व अव्यक्त प्रमादसे रहित, कवायोंका अनुपश्चामक व अक्ष्यक होते हुए भी ध्यानमें लीन अप्रमत्तसंयत स्वस्थान अप्रमत्त कहलाता है—गो, जी./मू./४६ (दे० शीर्षक नं. ३)] । ल.सा./मू./२०५/२५६ उवसमचरियाहिमुहो वेदगसम्भो अणं विजित्सा./मू./२०६/२६६ उवसमचरियाहिमुहो वेदगसम्भो अणं विजित्सा। अंतोर हुत्तकासं अधापवत्तो प्रमत्तो य ।२०६।
- ल. सा./जो. प्र., १२०/२०१/० चारित्रमोहोपदामने कर्त्तव्ये अधःप्रवृत्तकरणमपूर्वकरणमनिवृत्तिकरण चित्रष्टाधिकारा भवन्ति । तेष्वधःप्रवृत्तकरण सातिहायप्रमृत्तस्यतः अधा प्रथमोपदामसम्यक्ताभिमुखसगतशयमिथ्यादण्टेर्भणितानि । = उपशमचारित्रके सम्मुख
 वेदक सम्यग्दष्टि जीव (अप्रमृत्त गुणस्थानमें) अनन्तानुबन्धीका
 विसंग्रोजन करके अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त अध्यवन अप्रमृत
 कहलाता है।२०६। वारित्र मोहके उपशमनमें अध्यप्रवृत्तकरण,
 अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण आदि आठ अधिकार होते हैं। उनमेंसे
 जो अध्यप्रवृत्तकरण, अप्रमृत्तम्यत है वह सातिशय अप्रमृत्त कहलाता
 है, जिस प्रकार कि प्रथमोपदान सम्यव्यवके सम्भुख जीव सातिशय
 मिथ्यादृष्टि होता है।

५. दोनों गुणस्थानोंका आरोहण व अवरोहण कम

- १. अंममत्तपूर्वक ही प्रमत्त गुणस्थान होता है
- ध. ६/१.६.१२१/७४/८ उवसमसम्मसमण्यमत्तगुणं च जुनवं पडिवण्णो पमत्तो जादो हेट्टा पडिदूणंतरिदो सगद्विदि परिभमिय अपच्छिमे भवे मणुसो जादो । ...अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे अप्पमत्तो होदूण पमत्तो जादो । लद्धमंतरं ।

- ध. ६/१.६,१२१/७६/२ उबसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पष्टिवण्यो... अंतिरिदो---मणुस्सेष्ठ अववण्यो---अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे विष्ठको अप्पमत्तो जादो । तदो पमत्तो अप्पमत्तो ---।
- धः ५/१,६.३५६/१६६/३ एको सेडीदो ओदरिय असंजदो जादो। तथ्य अंतोमुहुत्तमन्छिय संजमासंजमं पडियण्यो। तदो अप्पमत्तो पमत्तो होदूय असंजदो जादो। लद्धमुक्कस्संतरं।
- ध. ५/१.६,३६३/१६७/३ एको सेडीदो ओदरिय संजदासंजदो जाहो। अंतो मुहूत्तमच्छिय अप्पमत्तो पमत्तो असंजदो च होदूण संजदासंजदो जादो । लद्धमुकस्संतरं । = १. (कोई जीव) उपरामसम्यन्त्व और अप्रमत्तर्सयतको एक साथ प्राप्त हुआ: पश्चात प्रमत्तसंयत हुआ। पीछे नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थिति प्रमाण परिभ्रमण कर अन्तिम भवमें मनुष्य हुआ। अन्तम्हत काल संसारमें अवशिष्टरहने पर अप्रमत्त संयत होकर पुनः प्रमत्तसंयत हुआ। इस प्रकार प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हुआ। २. (कोई जीव) उपकाम सम्यक्त्व व अप्रमत्त गुण-स्थानको युगपत् प्राप्त हुआ। पश्चात् अन्तरको प्राप्त हो मनुष्योमे उरपन्न हुआ। संसारके अन्तर्महूर्त अवशेष रहने पर विशुद्ध हो अप्रमत्त्रसंयत हुआ। पश्चात् प्रमत्तसंयत हो पुनः अप्रमत्त संयत हुआ। इस प्रकार अप्रमत्त संयतका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हुआ। ३. एक संयत उपशम श्रेणीसे उतरकर असंयत सम्यग्हिष्ट हुआ। वहाँ अन्तमुहूत रहकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ। पश्चात अप्रमत्त और प्रमत्त संयत होकर असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। इस प्रकार प्रकार उपराम सम्यग्दष्टि असंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हुआ। ४. एक संयत उपशम श्रेणीसे उतरकर संयतासंयत हुआ। अन्तर्मुहूर्त रहकर अप्रमत्तसंयत, प्रमत्तसंयत और असंयत सम्यग्द्रष्टि होकर पुनः संयतासंयत हो गया । इस प्रकार संयतासंयत उपशम सम्यग्दृष्टिका उरकृष्ट अन्तर प्राप्त हुआ। १. [इसी प्रकार काल व अन्तर प्रस्प-णाओं में सबे पहले अप्रमत्त गुणस्थान प्राप्त कराके पीछे प्रमत्त गुण-स्थान प्राप्त कराया गया है।] (और भी दे० गुणस्थान/२/१)।
 - २. आरोहण व अवरोहण सम्बन्धी कुछ नियम
- ध. ४/१.६.६/३४३/६ तस्स संकिलेस-विसोही हि सह पमतापुठवपुणे मोत्तूण गुणंतरममणाभावा। मदस्स वि असंजदसम्मादिष्टिन दिरित्त-गुणंतरगमणाभावा। = अप्रमत्तसयत जीवके संक्लेशकी वृद्धि हो तो प्रमत्त गुणस्थानको और यदि विशुद्धिकी वृद्धि हो तो अपूर्वकरण गुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुणस्थानोंमें गमनका अभाव है। यदि अप्रमत्त संयत जीवका मरणभी हो तो असंयतसम्यग्दिष्ट गुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुणस्थानोंमें गमन नहीं होता है। [ल.सा./मू. व जी. प्र /३४६/४३६)।
- दे॰ उपशीर्षक सं. १/१,२ [मिथ्यादृष्टि सीधा सम्यक्त व अप्रमत्त गुण-स्थानको युगपत प्राप्त कर सकता है। तथा संयतासंयतसे भी सीधा अप्रमत्त हो सकता है]।
- दे. गुणस्थान/२/१ [आरोहणको अपेक्षासे अनादि व सादि दोनों प्रकारके मिध्यादृष्टि, तीनों सम्यवत्वोसे युक्त सम्यव्दृष्टि, संयतास्यत क प्रमक्त संयत ये सब सीधे अप्रमक्त गुणस्थानको पाप्त कर सकते हैं। अवशेहणकी अपेक्षासे अपूर्व करण गुणस्थानवर्ती ही अप्रमक्तसंयतको प्राप्त होता है अन्य नहीं और अप्रमक्तसंयत ही प्रमक्तसंयतको प्राप्त होता है अन्य नहीं और अप्रमक्तसंयत ही प्रमक्तसंयतको प्राप्त है अन्य नहीं।
- दे. काल/६/२ [अपने उत्कृष्ट काल पर्यंत प्रमत्त संयत रहे तो नियमसे मिथ्यात्वको प्राप्त होता है।]

६. संयत गुणस्थानींका स्वामित्व

गो, जी./मू./७१० दुविहं पि अपज्जत्तं ओघे मिन्छेव होदि णियमेण। सासण अयद पमत्ते णिठवत्तिअपपुण्णगो होदि १७६०।

- गो. जी /जी. प्र./००३/६ प्रमत्ते मनुष्याः पर्याप्ताः साहारकद्धं यस्तु लभये। अप्रमत्तादिक्षीणकषायान्ताः पर्याप्ताः। = १. निर्वृत्ति व निष्ये वे दानों प्रकारके अपर्याप्त नियमसे मिण्यादृष्टि हो होते हैं। सासादन अस्यत् व प्रमत्तसंयतमें निर्वृत्त्यपर्याप्त आलाप तो होता है (पर लब्ध्यपर्याप्त नहीं)। २. प्रमत्तसंयत मनुष्य पर्याप्त होते हैं परन्तु आहारक ऋद्धि सहित पर्याप्त व अपर्याप्त (निर्वृत्यपर्याप्त) दोनों होते हैं और अप्रमत्तादि क्षीणकषाय पर्यंत केवल पर्याप्त ही होते हैं। (और भी दें./काय/र/४)।
- हे मनुष्य/२/२ [मनुष्यगतिमें ही सम्भव है।]
- दे, मनुष्य/३/२ [मनुष्य व मनुष्यनियाँ (भावसे स्त्रीवेदी और इन्यसे पुरुषवेदी) दोनों में सम्भव है। वहाँ भी कम्भूमिजों में ही सम्भव है भोगभूमिजों में तहाँ, आर्यखण्डमें हो सम्भव है म्लेच्छ खण्डों में नहीं, आर्यखण्डमें आकर मलेच्छ भी तथा उनकी कन्याओं से उरपन्न हुई सन्तान भी कदाचित संयत हो सकते हैं, विद्याओं का त्याग कर देने पर विद्याभरों में भी सम्भव है अन्यथा नहीं।
- दे. वह वह गति-[नरक तिर्थंच व देव गतिमें सम्भव नहीं।]
- हे, आयु/६/७ [देव आयुके अतिरिक्त अन्य तीन आयु जिसने पहिले माँघ सी है, उसको संयमकी प्राप्ति नहीं हो सकती । }
- दे. चारित्र/३/७-८ [मिथ्याइष्टि बतीको भी संयत नहीं कहा जा सकता है।]
- दे, वेद/७ -[द्रव्य स्त्री संयत नहीं हो सकती :]

संयत निर्देश सम्बन्धी शंकाएँ प्रमत्त होते हुए भी संयत कैसे

- ध, १/१,१,१४/१७६/१ यदि प्रमत्ताः न संयताः स्वरूपासंवेदनाद । अथ संयताः न प्रमत्ताः संयमस्य प्रमादपरिहार्रूपत्वादिति नैष दोषः, संयमो नाम हिंसानृतस्तेयाबद्धपरिब्रहेभ्यो विरत्तिः गुप्तिसनि-रयनुरक्षितः, नासौ प्रमादेन विनाश्यते तत्र तस्मान्मलोत्पत्तेः। संयमस्य मल्रेत्यादक एवात्र प्रमादी विवक्षिती न तद्विनाशक इति। क्तोऽबसीयत इति चेद् संयमाविनाशान्यथानुपपतेः। न हि मन्दतमः प्रमादः सणक्षयो संयमविनाञ्चकोऽसति विवन्धयंनुपनन्धेः। ≈प्रश्न -यदि छठे पुणस्थानवर्ती जीव प्रमत्त हैं तो संयत नहीं हो सकते हैं, वयों कि, उनको अपने स्वरूपका संवेदन नहीं हो सकता है। यदि वे संयत हैं तो प्रमत्त नहीं हो सकते हैं, क्योंकि संयम भाव प्रमादके अभावस्वरूप होता है ? उत्तर-यह कोई दोष नहीं है, नयों कि, हिसा, असरय, स्तेय, अन्नह्म और परिग्रह इन पाँच पापोंसे विरतिभावको संयम कहते हैं, जो कि तीन गुप्ति और पंच समि-तियों से अनुरक्षित हैं (दे, संयम/१)। वह संयम वास्तवमें प्रमादसे नष्ट नहीं किया जा सकता है, क्यों कि, संधममें प्रमादसे केवल मलको ही उत्पत्ति है। प्रश्न-ऐसा ही सूक्ष्म प्रमाद यहाँ विवक्षित है, यह कैसे जाना ! उत्तर-छठे पुणस्थानमें संयमका विनाश न होना अन्यथा वन नहीं सकता। बहाँ होनेवाला स्वस्य कालवर्ती मन्दतम प्रमाद संयमका नाश भी नहीं कर सकता है, क्यों कि, सकल संयमका उत्कररूपसे प्रतिकृत्ध करनेवाले प्रधारव्या-नावरणके अभावमें सयमका नाहा नहीं पाया जाता।
- गो. जी./जी. प्र./३३/६३/४ अत्र साक्रयं महत्त्वं च देशसंयतापेश्वया आतव्यं. ततः कारणादेव प्रमत्तसंयतः चित्रलाचरण इत्युक्तम् । स्यहाँ सकलचारित्रपना या महानतपना अपनेसे नोचेवाले देशसंयमको अपेशा जानना चाहिए अपनेसे उत्यस्य मुलस्थानोंकी अपेशा नहीं। इसलिए ही प्रमत्तसंयतको चित्रलाचरण कहा गया है।

२. अप्रमत्तसे पृथक् अपूर्वकरणादि गुणस्थान क्या हैं

ध, १/१,१,१६/१७ - शेषाशेषसं यतानामत्रेवान्तभीवाच्छेषसं यतगुण-स्थानानामभावः स्यादिति चेत्र. संयतानामुपरिष्ठास्प्रतिपद्यमान-विशेषणाविशिष्टानामस्तप्रमादानामिह ग्रहणात् । = प्रश्न- माकीके सम्पूर्ण संयतोका इसी अप्रमत्तसंत्रत गुणस्थानमे अन्तर्भाव हो जाता है, इसलिए शेष गुणस्थानोंका अभाव हो जायगा ! उत्तर-ऐसा नहीं है, क्योंकि, जो आगे चलकर प्राप्त होनेवाले अपूर्वकरण आदि विशेषणोंसे अविशिष्ठ हैं अर्थात् भैदको प्राप्त नहीं होते हैं और जिनका प्रमाद नष्ट हो गया है, ऐसे संयतोंका ही यहाँपर ग्रहण किया गया है, इसलिए आगेके समस्त गुणस्थानोंका इसमें अन्तर्भाव नहीं होता है।

३. संयतोंमें क्षायोपशमिक भाव कैसे

- ध. १/१.१,१३/१७६/७ पश्चसु गुणेषु कं गुणमाश्वित्यायं प्रमन्तसंयतगुण उत्पन्नस्वेत्संयमापेक्षया क्षायोपशमिकः । कथम् । प्रत्यारूपानावरणसर्वधातिस्पर्धकोदयक्ष्यात्तेषामेव सतामुद्रयाभावलक्षणोपशमात् संज्ञ्ञल्नोद्रयाच्च प्रत्यारूपानसमुत्पत्तेः । ⇒प्रम—पाँचौं भावोमेंसे किस भावका आश्रय लेकर यहं प्रमन्त संग्रत गुणस्थान उत्पन्न होता है । उत्तर—संयमको अपेक्षा यह क्षायोपशमिक है । प्रमन—क्षायोप-शमिक किस प्रकार है । उत्तर—१. नयोकि वर्तमानमें प्रत्यारूपान-वरणके सर्वधाती स्पर्धकोके उदय क्षय होनेसे और आगामी कालमें उदयमें आनेवाले सत्तामें स्थित उन्होंके उदयमें न आनेरूप उपशमसे तथा संज्वलन कषायके उदयसे प्रत्यारूपान अर्थात् संयम उत्पन्न होता है इसलिए क्षायोपशमिक है । [बिलकुल इसी प्रकार अप्रमत्त-गुणस्थान भी क्षायोपशमिक है—(ध. १/१,१,१६/१७६/२)] (ध. १/१,९,५/२०२/१) १
- थ, ७/२.१.४६/६२/४ कथं खओवसिमया लढ़ी। चदुसं ज्वलण-णवणोक-सायाणं देसवादिफह्याणमुद्येण संजमुत्पत्तीदो । कथमेदेसं उदयस्स खओवसमववएसो । सब्बृह्मादिफह्याणं (दे. श्रयोपशम/१/१) । ... एवं सामाइयच्छेदांबद्वाणसुं द्विसंजदाणं पिवत्तव्वं । = प्रश्न-१. संयत-के श्रायोपशमिक लव्धि कसे होती है । उत्तर—२. चारों संज्वलन कथायों और नौ नोकथायों के देशवाती स्पर्धकों के उदयसे संयमकी उत्पत्ति होती है, इस प्रकार संग्रत् के श्रायोपशमिक लव्धि पायी जाती है । प्रश्न-नोकथायों के देशवाती स्पर्धकों के उदयको श्रयोपशम नाम वयों दिया गया । उत्तर—[सर्वधाती स्पर्धकों के उत्तयको अनन्त गुणा होना ही श्रय है और देशवाती स्पर्धकों के रूपमें उनका अवस्थान उपशम है । दोनों के योगसे श्रयोपशम नाम सार्थक है (दे. श्रयोपशम/१/१)] इसी प्रकार सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धसंग्रतों के विषयमें भी कहना चाहिए।
- घ. ५/१.०.७/२०२/३ पच्छवलाणावरण-चतुसंजलणणवणोकसायाणमुदयस्स सद्विप्पणा चारिस्तिवणासणसत्तीए अभावादी तस्स लयसण्णा ।
 तेसि चेव उप्पण्णचारिसं सेडिवाबार तस्स उवस्मसण्णा । तेहि दोहिंतो उप्पण्णा एदे तिण्णि वि भावा लओवसिमिया जादा । = ३,
 प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन चतुष्क और नवतोकधायोके उद्यके
 सर्वप्रकारसे चारित विनाश करनेको शक्तिका अभाव है, इसलिए
 उनके उद्यक्ती क्ष्य संझा है, उन्हीं प्रकृतियोको उत्पत्र हुए चारित्रको
 अथवा श्रेणीको आवरण नहीं करनेके कारण उपशम मंझा है। क्षय
 और उपशम इन दोनोंके द्वारा उत्पत्र हुए ये उक्तः तीनों भाव
 (संयहास्यत, प्रमृत्तस्यत और अप्रमृत्तस्यत) भी श्रायोपशमिक
 हो जाते हैं।

--- ::

४. संज्वलनके उदयके कारण औदियक क्यों नहीं

घः १/१.१.१४/१००/१ संज्वलनोद्यात्संयमो भवतीत्यौदयिकठयपदेशोऽस्य कि न स्यादिति चेन्नः ततः संयमस्योत्पत्तं रभावातः । क तह व्याप्रियतः इति चेत्प्रत्याच्यानावरणसर्वचातिस्पर्धकोदयस्यसमुत्पन्नसंयममनोत्पादने तस्य व्यापारः । = प्रश्न — संज्वलन कषायके उदयसे संयम होता है, इसलिए उसे औदयिक नामसे क्यों नहीं कहा जाता है । उत्तर – नहीं क्योंकि, संज्वलन कषायके उदयसे संयमकी उत्पत्ति नहीं होती है । प्रश्न — तो संज्वलनका व्यापार कहाँ पर होता है । उत्तर — प्रत्याख्यानावरण कषायके सर्व-धाती स्पर्धकोंके उदयाभावी क्षयसे उत्पन्न हुए संयममें मन्नके उत्पन्न करनेमें संज्वलनका व्यापार होता है ।

५. सम्यक्तको अपेक्षा तीनों भाव हैं

ध. १/१,१,१४/१७७/४ संयमनिवन्धनसम्यक्त्वापेक्षया क्षायिकक्षयो॰
पश्मिकीपश्मिकगुणनिवन्धनः । स्यमके कारणभूत सम्यन्दर्शनकी अपेक्षा तो यह गुणस्थान क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक भावनिमित्तक है। (और भी दे. भाव/र/१०)।

६. फिर सम्यक्तवकी अपेक्षा इन्हें औपशमिकादि क्यों नहीं कहते

- घ. ५/१.७.७/२०३/१० दंसणमोहणीयकम्मस्स उवसमखय-खओवसमे अस्सिद्ण संजदासंजदादीणमोवसिमयादिभावा किण्ण पक्षविदा। ण, तदो संजमासंजमादिभावाणमुप्पत्तीए अभावादो। ण च एत्थ सम्मत्तिविसया पुच्छा अत्थि, जेण दंसणमोहणिबंधणओवसिमयादिभावे हि संजदासंजदादीणं ववएसो होउज। ण च एवं तथाणुवलंभा। = प्रश्न-दर्शनमोहनीयकर्मके उपशम, क्षय और क्षयोपशमका आश्रय करके संयतासयकादिवोंके औपशमिकादि भाव क्यों नहीं कताये गये! उत्तर-नहीं, क्योंकि. दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमादिसे संयमासंयम आदि भावोंकी उत्पत्ति नहीं होते। दूसरे, यहाँपर सम्यवत्विषयक पृच्छ (प्रश्न) भी नहीं है, जिससे कि दर्शनमोहनीय कमिक औपशमिकादि भावोंका व्यापदेश हो सके। ऐसा है नहीं, वयोंकि उस प्रकारकी व्याख्या नहीं पायी जाती है।
- दे. सान्निपातिक—[अथवा सान्निपातिक भावोंकी अपेक्षा करनेपर यहाँ औपरामिक. क्षायिक, क्षायोपरामिक व पारिणामिक इन चारौं भावोंके द्वित्र आदि संयोगी अनेक भंग बन जाते हैं]।

७. सामायिक व छेदोपस्थापनामें तीनों भाव कैसे

ध. ७/१,१,४६/१६/१ कधमेकस्स चिरत्तस्स तिष्णि भावा । ण एकस्स वि चित्तपर्यगस्स बहुवण्णदंसणादो । = [संयत सामान्य, सामायिक व छेदोपस्थापना संयम इनमें औपराधिक. क्षायिक व क्षायोपराधिक तोनों भाव मंभव हैं — दे. भाव/२/१०] । प्रश्न — एक ही चारित्रमें औपराधिकादि तोनों भाव कैसे होते हैं । उत्तर — जिस प्रकार एक ही बहुवर्ण पक्षीके बहुतसे वर्ण देखे जाते हैं, उसी प्रकार एक ही चारित्र नाना भावोंसे युक्त हो सकता है।

३. प्रमादजनक दोष परिचय

आर्तध्यान व स्थलना होते है पर निरर्गल नहीं

नोट-[साधुको प्रमाद वश आर्तध्यान होना सम्भव है-(दे आर्त-ध्यान/३)। परन्तु उसे रौद्रध्यान कदापि नहीं होता (दे रौद्र-ध्यान/८)। बकुश व प्रतिसेवना कुशील साधुको भी उपकरणोंमें आसक्ति होनेके कारण कदाचित आर्तध्यान सम्भव है (दे साधु/-

- श्रीर)। वह प्रमाद वश कवाचित चारित्रके परिणामोंसे स्वलित भी हो जाता है—(दे. संयत/१/२)। उसका आचरण चित्रल होता है— (दे. संयत/१/२)। परन्तु यह आर्तध्यान सर्वसाधारण नहीं होता। —(दे. आगले संदर्भ)]।
- र. सा./१९०-१९१ असहोपडिमोवयरणे गणगच्छे समयसंगजाइकुले।
 सिरसपडिसिरसछत्ते सुय्रजाते कष्पड़े पुच्छे।१९०। पिच्छे संथरणे
 इच्छासु लोहेण कुणइ ममयाइं। यावच अहरुद्दं ताव ण मुंचेदिण
 हु सोक्खं।१९१। = वसतिका, प्रतिमोपकरण, गण, गच्छ, समय,
 जाति, कुल, शिष्प, प्रतिशिष्प, विद्यार्थी, पुत्र, पौत्र, कपड़े, पुस्तक,
 पीछी, संस्तर, आदिमें लोभसे जो साधु ममत्य करता है, तथा ममत्व
 करनेके कारण जब तक आर्त और रौदध्यान करता है, तब तक क्या
 वह मोक्षसुखसे बंचित नहीं रहता।१९०-१९१।
- ज्ञा. १२६/४१-४२ इत्यार्तरीडे गृहिणामजसं ध्याने मुनिन्द्ये भवतः स्वतोऽिष । परिमहारम्भकषायदोषैः कलक्कितेऽन्तः करणे विश्व हुम् । १४१ वविषक्ति चिदमी भावाः प्रवर्तन्ते मुनेरिष । प्राक्किगौरता चित्रं प्रायः संसारकारणम् १४२। = इस प्रकार ये आर्त और रौदध्यान गृह-स्थियोंके परिग्रह आरम्भ और कथायादिके दोषसे मिलन अन्तः करणमें स्वयमेव निरन्तर होते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । ११। और कभी-कभी ये भाव पूर्वकर्मको विचित्रतासे मुनिके भी होता है । बाहुक्यसे ये संसारके कारण हैं । ४२।
- वे. गुरु/२/२ [कदाचित्र शिष्यको लात तक मार देते है।]
- दे. अपनाद/३ [परोपकारार्थ कदाचित मन्त्र तन्त्र व शस्त्रादि भी प्रदान करते हैं।]
- वै. अपवाद/४/३ [परन्तु पोग्य ही उपिका ग्रहण करता है अयोग्य-का नहीं ।]
- दे. साधु/२/२ [जिना सोधे आहारादिका ग्रहण नहीं करता, मैत्रीभाव-से रहित हो पेशुन्य आदि भाव नहीं करता। दूसरोंको पीड़ा नहीं देता. आरम्भ व सावच कार्य नहीं करता। मन्त्र तन्त्र आदिका प्रयोग नहीं करता इत्यादि।
- दे. तीसरा द्यीर्षक [यद्यपि संज्वलनके तीव उदयसे अनेकी प्रकारके शुभ कार्योमें रत रहता है, शुद्धात्म भावनासे च्युत हो जाता है, परन्तु फिर भी वह संयतपनेको उस्लंघन नहीं करता। }

२. साधु योग्य क्रुम कार्योंकी सीमा

प्र. सा /मू /गा. बालो वा बुड्ढो समिमहरो वा पुणो गिलाणो वा। चरियं चरद् सजोरगं मूलच्छेदो जधा ण हबदि ।२३०। अरहंतादिम् भत्ती बच्छलदा पवयणाभिजुत्तेसु । विज्जदि जदि सामण्णे सा सुह-जुत्ता भवे चरिया।२४६। बंदणणमंसणेहि अब्धुट्ठाणाणुगमणपडि-वत्ती । समगेषु समावणअगि लिहिदारायच्रियम्हि ।२४७। दंसण-णाणुबदेसो सिस्सग्गहणं च पोसणं तैसि । चरिया हि सरागाणं जिणिदपुजीबदेसी य १२४८। उबकुणदि जो वि णिट्च चाद्वबण्णस्स समणसंघस्स । कायविराधणरहिदं सो वि सरागप्यधाणो से ।२४६। जोण्हार्णं णिरवेक्स्वं सागारणगारचरियजुत्तार्णः। अणुकंपयोवयारं कुञ्बदु लेवो जदि वि अप्यो।२६१। रोगेण वा छुधाए तण्हाए वा समेण वा रूढं। दिट्ठा समणं साहू पडिवज्जिदु आदसत्तीए ।२५२। च बाल. वृद्ध, धान्त, या ग्लान अमण मूलका छेद जैसे न हो उस प्रकारसे अपने योग्य आचरण करो ।२३०। [अर्थात् युवाकी अपेक्षा बृद्धमें और स्वस्थकी अपेक्षा रोगी में यदापि अवश्य ही कुछ शिथि-लता होती है, और इसलिए उनकी कियाओं में भी तरतमता होती पर वह मूलपूर्णोंको उन्हों घन नहीं कर पाती]। शामण्यमें यदि अर्-हंतादिकोंके प्रति भक्ति तथा प्रवचनरत जीवीके प्रति वात्सस्य पाया जाता है, वह शुभयुक्त चर्या है ।२४६। अम्पोंके प्रति बन्दन, नमस्कार सहित अभ्युत्थान और अनुगमनरूप विनीत प्रवृत्ति करना तथा उनका

अम दूर करना रागचर्यामें निन्दित नहीं है। १४७। दर्शन हानका उपदेश, शिष्योंका ग्रहण तथा उनका पोषण और जिनेन्द्रकी पूजाका उपदेश नास्तवमें सरागियोंकी चर्या है। १४८। जो कोई सदा छह कायकी विराधनासे रहित चार प्रकारके अमणसंघका उपकार करता है, वह भी रागकी प्रधानतावाला है। १४६। यद्यपि अल्प लेप होता है तथापि साकार अनाकार चर्या गुक्क (अर्थात शुद्धातमाके ज्ञान-दर्शनमें प्रवर्तमान वृक्तिवाले) जैनोंका अनुकम्पासे निर्पेस्तया (शुभोपयोगसे) उपकार करो। १६६१। रोगसे, श्रुधासे, तृषासे अथवा अमसे आकान्त धमणको देखकर साधु अपनी शक्ति के अनुसार वैयावृत्ति आदि करो। २६१।

मू. आ./११६ पोसह उबओ परस्ते तह साहू जो करेदि णियदं तु । णाबाए करलाणं चादुम्मासेण णियमेण १११६। = जो साधु चातु-मासिक प्रतिक्रमणके नियमसे दोनों चतुर्दशी तिथियोमें प्रोषधी-पवास अवश्य करता है वह मुखका प्राप्ति अवश्य करता है।११६।

र. सा./१६ तचिवारणसीलो मोनखपहाराहणसहावजुदो। अण्वरसं धम्मकहापसंगदो होइ मुणिराखो।१६। चलो मुनिराज सदा आध्म-सत्त्वके विचार करनेमें लीन रहते हैं, मोक्षमार्गको आराधन करनेका जिनका स्वभाव हो जाता है, और जिनका समय निरन्तर धर्मकथामें हो लीन रहता है, वे हो यथार्थ मुनिराज कहाते हैं।

दे० संयम/१/६ (व्रत, समिति, गुग्नि, आदि शालन साधुका धर्म है और दानपूजा आदि गृहस्थोंका)।

दे, साधु/२/२ [पाँच महावत, पाँच सिमिति, पाँच इन्द्रियोंका रोध, केशलोंच, षड् आवश्यक, अचेलकत्व, अस्तान, भूमिशयन, अदंत-धोवन, स्थिति मोजन, एकभुक्ति ये तो साधुके २८ मूलगुण हैं और १८००० शील व ८४०००,०० उत्तर गुण इन सबका यथा योग्य पालन करता है।

दे. कृतिकर्म/४/१ [देव वन्दनाः आचार्य वन्दनाः स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान आदि साधुके नित्यकर्म हैं ।]

दे. वैयावृत्त्य/८ [वैयावृत्त्यके अर्थ लौकिक जनोंके साथ मातचीत करना निन्दा नहीं है ।]

है. अपवाद/३ [सन्तेखना गत क्षपकके लिए आहार वर्तन आदि माँगकर लाते हैं. जनको तेलमर्दन करते हैं. गर्मियोंमें शीतोपचार और सर्दियोंमें उच्जोपचार करते हैं. कदाचित उसको अनीमा लगाते हैं. क्षपकके मृत शरीरके अंग आदिका छेदन करते हैं, इत्यादि अनेकों अपवाद ग्रस्त कियाएँ भी कारण व परिस्थिति वश करता है।

३. परन्तु फिर भी संयतपना घाता नहीं जाता

प्र. सा./मू./२२१-२२२ किथ तिम्ह णरिथ मुच्छा आरंभो वा असंजमो तस्स । तथ परदनमिम रदो कथमण्याणं पसाधयदि ।२२१। छेदो जेण ण विज्जिदि गहणविसागोसु सेवमाणस्स । समणो तेणिह बट्टदुकालं खेलं वियणिता ।२१२। = प्रश्न- उपिके सञ्जावमें उस भिक्षके मुच्छी आरम्भ या असंयम न हो यह कैसे हो सकता है, तथा जो परद्रव्यमें रत् हो वह आत्माको कैसे साध सकता है।२२१। उत्तर-जिस उपिके ग्रहण विसर्जनमें, सेवन करनेमें, जिससे सेवन करनेवाले-के छेर नहीं होता, उस उपधियुक्त [अर्थात् कमण्डल पीछी व शास्त्ररूप लौकिक जनोंके द्वारा अप्रार्थनीय उपधियुक्त - दे अप-बाद/४/३] काल, क्षेत्रको जानकर इस लोकमैं श्रमण भन्ने वर्ले ।२२२। पं. घ./उ./६४७, ६८०-६८६ यद्वा मोहास्त्रमादाद्वा कुर्याद्य) लौकिकी क्रियाम् । ताबत्कालं स नाचार्योऽप्यस्ति चान्तवं ताच्च्युतः ।६५०। सति संज्यलनस्योच्चैः स्वर्धकाः देशघातिनः । तद्विवाकाऽस्त्यमन्दो · वा मन्दो हेतुः क्रमाइद्वयाः ६८०। संश्लेशस्तरश्रतिर्नृनं विशुद्धिस्तु तवक्षतिः। सोऽपि तरतमस्यांशैः सोऽप्यनेकैरनेक्या ।६८१। अस्तु यद्वा न शैथिवयं तत्र हेतुवशादिह । तथाप्येतावताचार्यः सिद्धो

नात्मन्यतत्परः । ६८२। तत्रावश्यं विशुद्धर्यशस्तेषां मन्दोदयादिति । संग्लेशांशोऽथवा तोबोदयान्नायं विधिः स्मृतः ।६८३। किन्तु दैवाद्वि-शुद्धधंशः संब्लेशांशोऽथवा क्वचित्। तद्विशुद्धधेर्विशुद्धधंशः संब्ले-शांशोदयः पुनः ।६वथ। तेषां तीबोदयस्ताबदेतावानत्र बाधकः । सर्वतश्चेत्प्रकोपाय नापराधोऽपरोऽस्त्यतः ।६८६। तेनात्रैतावता नूनं शुद्धस्यानुभवन्युतिः। कत्तुं न शन्यते यस्मादत्रास्त्यन्यः प्रयोजकः ।६८६। = जो मोहसे अथवा प्रमादसे जितने काल तक वह सौकिकी क्रियाको करता है उतने काल तक अन्तरंग बतोंसे च्युत होनेके कारण वह आचार्य नहीं है।६५७। वास्तवमें संज्वलन कषायका तीव या मन्द उदय ही चारित्रकी क्षति व अक्षतिमें हेतु है।६८०। संब्लेशसे क्षति होती है और असंक्लेशसे अक्षति । वह संक्लेश भी तरतमलाकी अपेक्षा अनेक प्रकारका है और वह तरतमता भी अपने कारणोंकी अपेक्षा अनेक प्रकारको है। ६८१। उस संक्लेश या विशुद्धिके योगसे आचार्यके शिथिलता होवे या न होवे परन्तु इतने मात्रसे उनकी आत्मामें अतत्परता सिद्ध नहीं होती।६८२। तथा उस संज्वसनके मन्दोदयसे होनेवाला विशुद्धि अंश और उसके तीबोदयसे होनेवाला संक्तेश अंश ये दोनों हो उस आचार्यपदके साधक या बाधक नहीं हैं. कर्मोदयवश कभी विशुद्धि अंश और कभी संबतेश अंश उनके पाये ही जाते हैं। ६८३-६८४। उसका तीव उदय वास्तवमें उस विशुद्धिका ही बाधक है, पर आचार्य पदका नहीं। यदि वह संवतेश आचार्य पदका ही बाधक हो जाय तो फिर उससे बड़ा कोई अपराध ही नहीं है। अथित फिर उसे मल दोषन कहकर अपराध कहना चाहिए।६०६। उस तीबोदयके द्वारा उनकी आत्मा शुद्धातमानुभवसे च्युत नहीं को जा सकतो, क्योंकि ऐसा करनेमें संज्वलनका तीव उदय नहीं बल्कि मिथ्यास्त्रका उदय कारण है।६८६।

- दे. संयत/२/१ [व्रत समिति गुप्ति रूप चारित्र प्रमादसे नष्ट नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसका प्रतिवन्धक प्रत्याख्यानावरण है, न कि संयतोंमें पाया जानेवाला संज्वलनका स्वव्पकालिक मन्दतम उदय।
- दे- संयत/२/४ [संज्ञलनके उदयसे संयममें केवल मल उराङ्ग होता है, उसका विनाश नहीं ।]
- दे. धर्म/६/६ [व्यवहाररूप शुभधर्म प्रायः गृहस्थोंको होता है, साधुओंके केवल गौणरूपसे पाया जाता है।]

संयतासंयत स्यंयम धारनेके अभ्यासकी दशामें स्थित कुछ संयम और कुछ असंयम परिणाम युक्त श्रावक संयतासंयत कहलाता है। विशेष दे. श्रावक।

१	संयतासंयतका रुक्षण ।
*	संयतासंयतका विशेष स्वरूप। — हे. श्रावक।
२	संयम व असंयम युगपत् कैसे।
*	संयतासंयतके ११ अथवा अनेक भेदा
{	—दे. श्रावक/१/२।
*	संयमासंयम आरोहण विधि । —दे, क्षयोपशम/३।
*	गुणस्थानोंमें परस्पर अनरोहण आरोहण कम ।
	—दे. गुणस्थान/र/१ ।
*	इसके परिणाम अधःपवृत्तिकरणरूप होते हैं।
,	—दे, करण/४ ।
3	इसके परिणासीने चतुःस्थानपतितहानि वृद्धि ।

इसके परिणामीम चतुःस्थानपतितहानि वृद्धिः
 इसमें आत्मानुमवके सङ्गाव सम्बन्धी।

— दे. अनुभव/५।

संयमासंयमका स्वामितव । मिथ्यादृष्टिको सम्भव नहीं । --दे. चारित्र/३/५। इसमें सम्भव जीवसमास मार्गणास्थान आदि २० मरूपणाएँ । -दे. सत् । मार्गणाओं में इसके स्त्रामित्व सम्बन्धी शंका-समाधान । — दे, बहुबहुनास । इस सम्बन्धी सत् संख्या क्षेत्र स्पर्शन काल अन्तर भाव व अल्पबहुत्वरूप ८ परूपणाऍ । — दे, वह वह नाम । सभी गुणस्थानोंमें आयके अनुसार न्यय । —हे. मार्गणाः। * भोगभूमिमें संयमासंयमके निषेधका कारण। ---दे, भूमि/६। शृद्रको क्षुलक दोक्षा सम्बन्धी । — दे वर्णव्यवस्था/४। इसके परचात् भव धारणकी सीमा । ч सर्वेलच् कालभें संयमासंयम धारणकी योग्यता । * -- दे, संयम/२ । पुनः पुनः संयमासंयम प्राप्तिकी सीमा । * - दे. संयम/२ : ξ संयतासंयतोंमें सम्भव भाव । इसमें झायोपशमिक भाव कैसे। (19 इसे औदयिकौपशमिक नहीं कह सकते । —दे. क्षायोपश**मिक/२/३** । सम्यय्दर्शनके आश्रयसे औपशमिकादि क्यों नहीं। * —दे संयत/२/६। इसमें कर्म प्रकृतियोंका बन्ध उदय सहव । ⊶दें बहवहनाम। एकान्तानुवृद्धि आदि संयतासंयत । —दे, लन्धि/४/८ । स्वर्गमें ही जन्मनेका नियम । —वे. जन्म/६/४। इसमें आत्मानुभव सम्बन्धी । ---दे, अनुभव/६।

९. संयतासंयतका रूक्षण

पं सं /प्रा./१/गा जो तसबहाउ विरदी को विरक्षो अन्ख्यावरवहाओ। पहिसमयं सो जीवो विरयाबिरओ जिलेक्कमई ।१३। जो ल बिरदो दु भावो थावरवहइंदियत्थदोसाओ। तसवहविरखो सोच्चिय संजमा-संजमो दिहो १९३४। पंच तिय चउविहेहि अणुगुण-सिक्खावएहि संजुत्ता। बुट्चंति देसविर्या सम्माइट्ठी भडियकम्मा ।१३४। = १. जो जीव एक मात्र जिन भगवानुमें ही मितिको रखता है, तथा त्रस जोवोंके घातसे विरत है, और इन्द्रिय विषयोंसे एवं स्थावर जीवींके घातसे विरक्त नहीं है, यह जीब प्रति समय विरताविरत है। अर्थात अपने गुणस्थानके कालके भीतर दोनों संज्ञाओं को युगपत धारण करता है ।१३। २. भावोंसे स्थावरवध और पाँचों इन्द्रियोंके विषय सम्बन्धी दोषोंसे विरत नहीं होने किन्तु त्रस वधसे विरत होनेको संयमासंयम कहते हैं, और उनका धारक जीव नियमसे संयमासंयमी कहा गया है ।१३४। ३, पाँच अणुवत, तीन गुणवत और चार शिक्षावतोंसे संयुक्त होना विशिष्ट संयमासंयम है। उसके धारक और असंख्यात गुणश्रेणीरूप निर्जराके द्वारा कर्मोंके फाड़ने-वाले ऐसे सम्यग्दष्टि जीव देशविरत या संयतासंयत कहताते हैं

- ा१३६। (घ. १/१,१,१२३/गा. १६२/३७३); (गो. जी./४७६/८८३) रा. बा./२/६/८/१०८/७ विस्ताबिस्तं परिणामः क्षायोपशमिकः संयमा-संयमः ।
- रा, बा./६/१२/७/६२२/२७ संयमासंयमः अनात्यन्तिकी विरत्तिः।
 —क्षायोपद्मिक विरताविरत परिणामको संयमासंयम कहते हैं।
 अथवा अनात्यन्तिकी विरक्तताको संयमासंयम कहते हैं।
- ध. १/१.१,१३/१७३/१० संयताश्च ते असंयताश्च संयतासंयताः। =जो संयत होते हुए भी असंयत होते हैं, उन्हें संयतासंयत कहते हैं।
- पु. सि. उ./४१ या त्वेकदेशविरतिनिरतस्तस्यामुपासको भवति । जो एकदेश विरतिमें लगा हुआ है वह श्रावक होता है।
- दे, बती [घरके प्रति जिसकी रुचि समाप्त हो चुकी है वह संगत है और गृहस्थी संग्रासंगत हैं।]
- दे, बिरताबिरत [बारह बतोंसे सम्पन्न गृहस्थ बिरताविरत हैं)]

२. संयम व असंयम युगपत् कैसे

ध. १/१,१,१३/१७३/१० यदि संग्रतः, नासावसंग्रतः । अथासंग्रतः, नासी संयत इति विरोधान्नायं गुणो घटत इति चैदस्तु गुणानां परस्पर-परिहारसक्षणो विरोधः इष्टत्वात्, अन्यथा तेषां स्वरूपहानिप्रसंगात्। न गुणानां सहानवस्थानलध्णो विरोधः संभवति, संभवेद्वा न बस्त्वस्ति तस्यानेकान्त्रनिबन्धनत्वात् । यदर्थक्रियाकारि तद्वस्तु । सा च नैकान्ते एकानेकाभ्यां प्राप्तनिरूपिताबस्थाभ्यामर्थक्रिया-विरोधात्। न न्वैतन्याचैतन्याभ्यामनेकान्तस्तयोगुणस्वाभावात्। सहभूबो हि गुणाः, चानयोः सहभूतिरस्ति असति विवन्धर्यनुप-सम्भात्। भवति च विरोधः समामनिषम्धनत्वे सति। न चात्र विरोधः संयमासंयमयोरेकद्रव्यवतिनोस्त्रसस्थावरनिवन्धन्त्वातु । - पश्न-जो संयत होता है, यह असंयत नहीं हो सकता है, और जो असंयत होता है वह संयत नहीं हो सकता है, क्योंकि, संयम-भाव और असंसमभावका परस्पर विरोध है, इसलिए यह गुणस्थान नहीं बनता है ! उत्तर--१. बिरोध दो प्रकारका है - परस्परपरि-हारलक्षण विरोध और सहानवस्थालक्षण विरोध । इनमेंसे एक दव्यके अनन्तगुणोंमें होनेवाला परस्पर परिहारलक्षण विशेध यहाँ इष्ट ही है, क्यों कि यदि एक दूसरेका परिहार करके गुणोंका अस्तिस्व न माना जाने तो उनके स्वरूपकी हानिका प्रसंग आसा है। परन्त इतने माजसे गुजोंमें सहानवस्थालक्षण विरोध सम्भव नहीं है। यदि नाना गुणोंका एक साथ रहना हो विरोधस्वरूप मान लिया जाये तो वस्तु का अस्तित्व ही नहीं बन सकता है, क्योंकि, वस्तुका सद्भाव अनेकान्त निमित्तक ही होता है। जो अर्थ क्रिया करनेमें समर्थ है है वह बस्त है और वह एकान्त पक्षमें बन नहीं सकतो, क्योंकि यदि अर्थ क्रियाको एक रूप माना जावे तो पुनः पुनः उसी अर्थ क्रियाकी प्राप्ति होनेसे, और यदि अनेकरूप माना जाने तो अनवस्था दोष आनेसे एकान्तपक्षमें अर्थ क्रियाके होनेमें विरोध आता है। २. ऊपरके कथनसे चैतन्य और अचैतन्यके साथ भी व्यभिचार नहीं आता है. क्यों कि, चैतन्य और अचैतन्य ये दोनों गुण नहीं हैं। जो सहभावी होते हैं उन्हें गुज कहते हैं, परन्तु ये दोनों सहभावी नहीं हैं, क्यों कि बन्धरूप अवस्थाके नहीं रहनेपर चैतन्य और अचैतन्य ये दोनों एक साथ नहीं पाये जाते हैं। ३. दूसरे विरुद्ध दो धर्मीकी उत्पत्तिका कारण यदि एक मान लिया जावे तो विरोध आता है, परन्तु संगम-भाव और असंयमभाव इन दोनोंको एक आत्मामें स्वीकार कर रोनेपर भी कोई निरोध नहीं आता है, क्योंकि, उन दोनोंकी उत्पत्तिके कारण भिन्न-भिन्न हैं । संयमभावकी उत्पत्तिका कारण त्रसहिंसासे विरति भाव है और असंयम भावकी उत्पत्तिका कारण स्थावर हिंसासे अविरति भाव है। इसलिए संयतासंयत नामका पाँचवाँ गुणस्थान बन जाता है।

१३५

३. इसके परिणामोंमें चतुःस्थान पतित हानि बृद्धि

ल. सा./मू./१०६/२२८ देशो समये समये सुज्मंतो संकिलिस्समाणो य।
चलविद्वहाणिदञ्यादञ्बद्धिं कुणिद गुणसेढि। = अथाप्रवृत्त देशसंयत जीव समय-समय विशुद्ध और संक्लिष्ट होता रहता है।
विशुद्ध होनेपर असंख्यातभाग, संख्यातभाग, संख्यातगुण व असंख्यातगुण इन चार प्रकारकी वृद्धि सहित, और संक्लिष्ट होनेपर
इन्हीं चार प्रकारकी हानि सहित द्वयका अपकर्षण करके गुणश्रेणीमें
निक्षेपण करता है। इस प्रकार उसके कालमें यथासम्भव चतुःस्थानपतित वृद्धि हानि सहित गुणश्रेणी विधान पाया जाता है।

४. संयमासंयमका स्वामित्व

है. नरक/४/१ [नरक गतिमें तम्भव नहीं।]

दे तिर्धंच/२/२-४ [केवल संज्ञो पंचिन्द्रिय तिर्धंचको सम्भव है, अन्य एकेन्द्रियसे असंज्ञो पर्धंतको नहीं, कर्मभूमिजोंको ही होता है भोग-भूमिजोंको नहीं, कर्म भूमिजोंको भी आर्यखण्डमें ही होता है, मसेच्छ-खण्डमे नहीं। वहाँ भी क्षायिक सम्यग्द्दृष्टि तिर्धंचको नहीं होता। सर्वत्र पर्याप्तकोंमें ही होता है अपर्याप्तकोमे नहीं।

दे. मनुष्य/३/२ [मनुष्यों में केवल कर्मभूमिजोंको ही सभव है भोग-भूमिजोंको नहीं. वहाँ भी आर्थ खण्डों में हो सम्भव है म्लेच्छ खण्डों में नहीं। विद्याधरोमे भी सम्भव है। सर्वत्र पर्याप्तकों में ही होता है अपर्याप्तकों में नहीं।]

दे, देव/11/३/२ [देव गतिमें सम्भव नहीं ।]

दे आयु/६/७ [जिसने पहिले देवायुके अतिरिक्त तीन आयुको नाँध चिया है ऐसा कोई जोव संयमास्यमको प्राप्त नहीं हो सकता।]

दे. सम्यादर्शन/IV/६/६ [क्षाधिक सम्यादृष्टि संयतासंयत मनुष्य ही होते हैं िवर्यंच नहीं ।]

५. संयमासंयमके पश्चाद भवधारणकी सीमा

बहु. शा,/६३६ सिज्मइ तह्यिम्म भवे पंचमए कोवि सत्तमट्ठमए।
भूं जिवि सुरमण्यसुहं पावेइ कमेण सिद्धपयं।६३६। = उपरोक्त रीतिमे
शावकों का आचार पालन करनेवासा (दे शावक)] तीसरे भवमें
सिद्ध होता है। कोई कमसे देव और मनुष्योके सुलको भोगकर
पाँचवें सातवे या आठवें भवमें सिद्ध पदको प्राप्त करते हैं। [यह
नियम या तो शायिक सम्यग्हिश्की अपेक्षा जानना चाहिए (दे.
सम्यग्दर्शन/1/६/४), और या प्रत्येक तीसरे मवमें स्यमासंयमको
प्राप्त होनेवालेकी अपेक्षा जानना चाहिए, अथवा उपचारसप जानना
चाहिए, वयों कि एक जोव पच्यके असल्यात्वें बार तक सयमासंयमकी प्राप्ति कर सकता है ऐसा निर्देश प्राप्त है (दे. संयम/२)]।

६. संयतासंयतमें स≠भव भाव

घ. १/१.१.१३/१७४/७ औदियकादिपञ्च मुणेषु कं गुणमाधित्य संयमा-संयमगुणः समुत्पन्न इति चेत् क्षायोपशिमकोऽयं गुणः । . . संयमा-संयमधाराधिकृतसम्यक्ति कियन्तोति चेत्क्षायिकक्षायोपशिमकी-पशिमकानि त्रीण्यपि भवन्ति पर्यायेण । = प्रश्न - औदियकहित पाँच भावोंमेमे किस भावके आध्रयसे संयमासंयम भाव पैदा होता है ! उत्तर—संयमासंयम भाव क्षायोपशिमक है । (और भी दे भाव/ २/६)। प्रश्न — संयमासंयमक्तप देशचारित्रकी धारासे सम्बन्ध रखने-वाले कितने सम्यन्दर्शन होते हैं ! उत्तर—क्षायिक, क्षायोपशिमक व औपशिमक इन तीनोंमेंसे कोई एक सम्यन्दर्शन विकल्प रूपसे होता है । (और भी दे, भाव/२/१२)।

७. इसमें क्षायोपशमिक भाव कैसे

रा. वा./२/६/८/१०८/६ अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानकषायाष्ट्रकोदयक्षयात् सदुपशमाञ्च प्रत्याख्यानकषायोदये संज्वलनकषायस्य देशधातिस्प-र्घकोदये नोकषायनवकस्य यथासंभवोदये च विरताविरतपरिणामः क्षायोपक्षमिकः । = अनन्तानुषन्धी और अपरयाख्यानावरण रूप आठ कषायोंका उदयक्षय और सदवस्थारूप उपक्षम, प्रत्याख्याना-वरण कषायका उदय, संज्वलनके देशधाति स्पर्यक और यथासंभव नोकषायोंका उदय होनेपर विरत-अविरत परिणाम उत्पन्न करने-वाला भाव क्षायोपशमिक है।

घ. १/१,१,१६/१७४/८ अप्रत्याख्यानावरणीयस्य सर्वधातिस्वर्धकानामुद्र-यस्यात् सतः चोपशमात् प्रत्याख्यानावरणीयोदयादप्रत्याख्यानो-रवत्ते । = अप्रत्याख्यानावरणीय कषायके वर्तमान कालिक सर्वधाती स्वर्धकोंके उदयभावी स्य होनेसे, और आगामी कालमें उदयमें आने योग्य उन्हींके सदबस्थाख्य उपशम होनेसे तथा प्रत्याख्यानावरणीय कषायके उदयसे संयमासंयमद्भव अप्रत्याख्यान-चारित्र उत्पन्न होता है। (गो. जी./मू./४६६/८०६)।

घ. ७/२.१.४१/१४/६ चदुसं जन्नण-णवणोकसायाणं खन्नोवसमसण्णिदेस-संजमासंजमुप्पत्तीदो घादिफह्याणमुद्दरण खओवसमलद्वीए सयमासयमो । तेरंसण्हं पथडीणं देसघादिफद्ययाणमुदक्षो संजम-नंभणिमित्तो कथं संजमासंजमणिमित्तं पडिवज्जदे । ण, पञ्चक्वाणा-वरणसञ्बद्धादिफद्याणमुदएण पडिहय चदुसंजलणादिदेसघादिफद्द-याणमुदयस्य संजनासंजमं मोत्तूण संजमुप्पायणे असमत्थादो। =चार संज्वलन और नवनोकषायोंके क्षयीपदाम संज्ञावाले देशघातीस्पर्धकोंके उदयसे संयमासंयमकी उत्पत्ति है, इसलिए क्षयोपराम लब्धिसे संयमासंयम होता है। (ध. ४/१,७,७/२०२/३) । प्रश्न-चार संज्यलन और नोकषाय, इन तेरह प्रकृतियोंके देशधाती स्पर्धकांका उदय तो संयमकी प्राप्तिमें निमित्त होता है (दे० संयत/२/३)। वह संययासंयमका निमित्त कैसे स्वीकार किया गया है ! उत्तर-नहीं, क्योंकि, प्रत्याख्यानावरणके सर्वघाती स्पर्धकोंके खद्यसे जिन चार संज्ञलनादिकके देशघाती स्पर्धकोंका उदय प्रतिहत हो गया है, उस उदयके संयमासंयमको छोड़ संयम उत्पन्न करनेका सामर्थ्य नहीं होता है।

दे॰ अनुभाग/४/६/६ [इससे प्रत्याख्यानावरणका सर्वघातीपना भी नष्ट नहीं होता है।]

संयम — सम्यक् प्रकार यमन करना अर्थात वत सिमिति-गुप्ति आदि रूपसे प्रवर्तना अथवा विशुद्धारमध्यानमें प्रवर्तना संयम है। तहाँ सिमिति आदि रूप प्रवर्तना अपहृत या व्यवहार संयम और दूसरा सक्षण उपेक्षा या निश्चय संयम है। इन्हीं दोनोंको बीतराग व सराग चारित्र भी कहते हैं। अन्य प्राणियोंकी रक्षा करना प्राणिक सयम है और इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त होना इन्द्रिय संयम है। सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सृक्ष्मसाम्पराय और यथाल्यात ऐसे इसके पाँच भेद हैं।

१ | भेदव छक्<u>षण</u>

१ संयमका रूक्षण ।

२ व्यवहार संयमका रुक्षण ।

र निश्चय संयमका रूक्षण ।

निञ्चय व्यवहार चारित्रकी कर्यचित् मुख्यता

गौणताः —दे० चारित्र/४/७।

्री संयम रुब्धिस्थान व एकान्तानुवृद्धि आदि संयम । —दे० सब्धि/५ ।

संयममार्गणाकी अपेक्षा भेद व लक्षण ।

सामायिकादि संयम । -दे० शीर्षक सं ४।

क्षायोपशमिकादि सयम निर्देश। —दे० भाव/२।

For Private & Personal Use Only

ų	निसेपोंकी अपेक्षा मेद व राक्षण ।
દ્	सक्छ व देशसंयमको अपेक्षा ।
*	सकल चारित्र देशचारित्रकी अपेक्षा है यथा-
	ख्यातकी अपेक्षा नहीं ।
	—दै० संयत/२/१ में गो. जी.।
y	अपहृत व उपेक्षा संयम निर्देश—
	१. लक्षण व उनकी बीतरागता सम्मधी विशेषताएँ।
6	पाणी व इन्द्रिय संयमके रूक्षण ।
۹,	माणि व इन्द्रियसंयमके १७ मेद।
-	
2	नियम व शंका समाधान
*	चारित्रमोहका डपशम क्षय व क्षयोपशम
	विधान। —दे०बहबहनाम।
*	सम्यक्त सहित ही होता है। —देव चारित्र/३।
*	वती भी मिथ्यादृष्टि लंबभी नहीं।
	−दे० चारित्र/३/८ ।
*	सवस्त्रसंयम निषेष। —दे० बेद/७/४।
१	संयम व विरतिमें अन्तर।
ર ફ	संयम गुप्ति व समिति आदिमें अन्तर ।
₹ *	चारित्र व संयम्भे अन्तर ।
*	उत्सर्ग व अपवादसंयम निर्देश । —दे० अपशाद/४। सयोगकेवलीके संयममें भी कथंचित् मलका
•	
*	सङ्गात । —दे० केवली/२/२। संयममें परीषहजयका अन्तर्भाव । —दे० कायक्लेश ।
Ÿ	इन्द्रियसंयममें जिह्या व उपस्थाकी प्रधानता ।
ų	इन्द्रिय व मनोजयका उपाय ।
ξ	क्षाय निम्रहका उपाय ।
و	संयम पालनार्थ भावना विशेष ।
6	पंचम कालमें सम्भव है।
*	निगोदसे निकलकर सीधे संयम माप्ति करने
-	सम्बन्धी। —दे० जन्म/४।
٩.	जन्म पश्चाद संयम प्राप्ति योग्य सर्वे छष्टकाछ
·	सम्बन्धी नियम ।
20	पुनः पुनः संयमादि शाप्तिकी सीमा ।
*	संयमी मरकार देवगतिमें ही जन्मता है।
	दे० जन्म/k/ई ।
*	संयममार्गणार्मे क्षायोपशमिक भाव सम्बन्धी।
	—दे॰ संयत/२।
3	संयमका स्वामित्व
_	
\$	सामायिक आदि संयमोंका स्वामित्व ।
૨ ∣	—दे० वह वह नाम । क्षायोपशमिकादि संयमोंका स्वामित्व (५-७
•	तक झायोपशमिक और आगे औपशमिक
	व क्षायिक)। —दे० वह वह गुणस्थान।

ą	गुणस्थानोंमें परस्पर संयमोंका आरोहण अव-
	रोहण कम । दे० सयत/१/४।
8	बद्धायुष्कोंमें केवल देवायु वाला ही संयम
	धारण कर सकता है। —दे० आयु/६।
ų	स्त्रीको या सचेलको सम्भव नहीं। —दे० बेद/७/४।
દ્	संयम मार्गणामें सम्भव जीवसमास मार्गणास्यान
	आदि रूप २० प्ररूपणाएँ । —दे० सत्।
છ	संयम मार्गणा सम्बन्धो सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन
	काल, अन्तर, भाव व अल्प बहुत्व रूप आठ
	प्ररूपणाऍ। —दे,वहवहनाम।
4	संयमियोंमें कर्मीका बन्ध-उदय-सत्त्व ।
	—दे. वह वह नाम (
९	समी मार्गणा स्थानोंमें आयके अनुसार व्यय
	होनेका नियम । — दे. मार्गणा ।

१. भेद व लक्षण

१. संयमका रूक्षण

घ ७/२,१,३/७/३ सम्यक् यमो वा संयमः । =सम्यक् रूपसे यम अर्थात नियन्त्रण सो संयम है।

दे० चारित्र/३/७ [संयमन करनेको संयम कहते हैं । अर्थात भावसंयम-ी से रहित इञ्चसंयम संयम नहीं है ।]

२. न्यवहार संयमका लक्षण

१. व्रत समिति गुप्ति आदिकी अपेक्षा

प्र. सा,/मू./२४० पंचसिमदो तिगुत्तो पंचे दिय संबुद्धो जिदकसाया । दंसणणाणसमन्तो समणो सो संजदो पणिदो ।२४०। = पंचसिमिति । युक्त, पाँच इन्द्रियोंके संबरवाला, तीन गुप्ति सहित, कथायोंको जीतने वाला, दर्शन ज्ञानसे परिपूर्ण जो अमण है वह संयत कहा । गया है ।

प्र. सा./प्रक्षेपक गा, मू./२४०-१ चागो व अणारंभो विसयविरागो खओ कसायाणं। सो संजयोत्ति भणिदो पञ्च्जाए विसेसेण। न्वाह्या-भयन्तर परिग्रहका त्याग, मन वचन कार्यरूप व्यापारसे निवृत्ति सो अनारम्भ, इन्द्रिय विषयोंसे विरक्तता. कषायोंका क्षय यह सामान्य-रूपसे संयमका नक्षण कहा गया है। विशेष रूपसे प्रवंज्याकी अव-स्थाएँ होती हैं।

चा. पा./मू./२८ पंचिदियसंवर्णं पंचवया पंचिवसिकिरियासु । पंचनं सिमिदि तथगुत्ती सजमचरणं णिरायारं ।२८। = पाँच इन्द्रियाँकाः सवर (दे. संयम/२) पाँच वतः और पचीस क्रिया, पाँच सिमिति, वित्ते गुप्ति इनका सद्भाव मिरागार संयमाचरण चारित्र है।

बा. अ,/७६ वदसमिदिपालणाए दंडचोएण हें दियजएण। परिणम-माणस्स पुणो संजमधम्मो हवें णियमा ।७६। = व्रत व समितियोंका-पालन, मन वचन कामकी प्रवृत्तिका त्याग, इन्द्रियजय यह सब जिसको होते हैं उसको नियमसे संयम धर्म होता है।

पं. स./प्रा. १२७ वदसि मिदिकसायाणं दंडाणं इंदियाणं पंचण्हं । धारणपालणिग्गह-चाय-जओ संजमो भिणओ।१२७। = पाँच महाव्रतींका धारण करना, पाँच सिमितियोंका पालन करना, धार-कषायोंका निग्रह करना, मन-वचन-काय स्त्युतीन दण्डोंका रथाण करना और पाँच इन्द्रियोंका जीतना (दे. संयम/२) सो संयम कहा गया है।१२७। (घ. १/१, १,४/ गा. ६२/१४६); (घ. ७/२,१, ३/७/२); (गो. जी./मू./४६५/५७६)।

दे० तप/२/१ [तेरह प्रकारके चारित्रमें प्रयत्न करना संयम है ।

३ निश्चय संयमका लक्षण

प्र. सा./त प्र./१४.२४२ सक्वषड् जीविनिकायिनशुम्भविकल्पाल् निर्देश्याभिलाषिकल्पाद्ध व्यावर्यात्मनः शुद्धस्वरूपे संयमनात् । ११४१ होयह्यानित्रक्तवयाप्रतीतिनक्षणेन सम्यग्दर्शनपर्यायेण होयद्यानुत्रस्वतथानुभूतिनक्षणेन ज्ञानपर्यायेण होयद्यानुक्षियान्तर्भिवृत्त्तिक्षणेन चारित्रपर्यायेण च त्रिभिरिष यौगपद्धयेन- । परिणतस्यात्मिन यदारमनिश्रत्ये
सति संयत्त्वं । २४२। = १. समस्त छह जीविनकायके हननके
विकल्पसे और पंचिन्द्रिय सम्बन्धी अभिलाषाके विकल्पसे
आत्माको व्यावृत्य करके अ। तमा शुद्धस्वरूपमें संयमन करनेसे
(संयमपुक्त है)। २. होयत्त्य और ह्यानुत्त्यक्ती तथा प्रकार प्रतीति,
तथा प्रकार अनुभृति और क्रियान्तरसे निश्चिक द्वारा रचित उसी
तत्त्वमें परिणति, ऐसे लक्षणवाले सम्यग्दर्शन ह्यान च चारित्र इन
तीनों पर्यायोंकी युगपतताके द्वारा परिणत आत्मामें आत्मिनिश्रता
होनेपर को संयत्पना होता है . । ।

र्ष. ध./उ /१९९७ शुद्धस्तात्मोपलन्धिः स्यातः संयमो निष्क्रियस्य च । —निष्क्रिय आत्माके स्वशुद्धारमाकी उपलन्धि ही संयम कहलाता है।

संयम मार्गणाकी अपेक्षा भेद व लक्षण

ष. छं. १/९.१/सूत्र १२३/३६८ संजमाणुवादेण अध्यि संजदा सामाइय-छेदोबट्ठावणस्ट द्विसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा सुहुमसांपराइयसुद्धि-संजदा जहानकादिविहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदा चेदि। ११३३ = संयम मार्गणाके अनुवादसे सामायिक शुद्धिसंयत, छेदो-पस्थापनांशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्पराय शुद्धिसंयत और यथालगातविहारशुद्धिसंयत ये पाँच प्रकारके संयत तथा संयता-संयत और असंयत जीव होते हैं ११३३। (द्व. सं./टो./१३/३५/२)।

दे. चारित्र/१/३ [सामाधिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सुक्ष्म-साम्पराय और यथारूबात ऐसे चारित्र वाँच प्रकारके हैं।]

नोट- [इनके लक्षणोंके लिए-दे. वह वह नाम।]

५. निक्षेपोंकी अपेक्षा भेद व लक्षण

ध. ७/१,१,४८/११/१ णायसंजमो ठवणसंजमो द्वावसंजमो भावसंजमो चेद चडिवहो संजमो १०००० त्वादिर त्त्वहवसंजमो संजमसाहण- पिच्छाहारकवलीपोत्थमाहीणि । भावसंजमो दुविहो आगमणो-आगमभेएण। आगमो गदो। णोखागमो तिविहो खह्ओ लकोवस- मिओ उवसमिओ चेदि। = नामसंयम, स्थापनासंयम, द्वायसंयम और भावसंयम। इस प्रकार संयम चार प्रकारका है। (नाम स्थापना आदि भेद-प्रभेद निक्षेपवत् जानने)। तद्वचितिरक्त नोआगमद्वय-संयम संयमके साधनभूत पिच्छिका, आहार, कमण्डलु, पुस्तक आदिको कहते हैं। भावसंयम आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है—आगमभावसंयम तो गया, अर्थात् निक्षेपवत् जानना। नोआगम भावसंयम तीन प्रकारका है—सायिक, क्षायोपश्चिक और औपश्चिक। [तहाँ ह्यायोपश्चिक संयमके लिए। —दे. संयल/२ और औपश्चिक व ह्यायिकके लिए—दे श्रेणी]।

६. सकल व देश संयमकी अपेक्षा

ता. पा./मू./२१ द्रुविहं संजमचरणं सामारं तह हवे णिरामारं । सामारं संगंधे परिग्नहा रहिय खलु णिरामारं ।२१। = संग्रम चरण चारित्र दो प्रकारका है – सामार तथा निरागार । सामार तो परिग्रहमहित श्रावक के होता है, बहुरि निरामार परिग्रहसे रहित सुनिके होता है। ११।

रे के. भा / ६० सकलं विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसंगविरतानाम् । अन-गाराणां विकलं सागाराणां ससंगानाम् । ६०। = वह चारित्र सकल और विकलके भेदसे दो प्रकारका है। समस्त प्रकारके परिप्रहसे रहित सुनियोंके सकल चारित्र और गृहस्थोंके विकल चारित्र होता है।

🎖 सि. उ./४० हिंसातोऽनृतवचनात्स्तेयादवस्रतः परिग्रहतः । कार्स्स्ये-

कदेशिवरतेश्चारितं जायते द्विविधम् ।४०। = हिसा, असस्य, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँचोंके सर्वदेश व एकदेश त्यागसे चारित्र दो प्रकारका होता है। (हे. बत/३/१)।

ल, सा /मू./१६८/२२१ दुविहा चरित्तलस्री देसे समले...। = चारित्रकी लब्ध सकल व देशके भेदसे दो प्रकार है ।

पं. का./ता. वृ./१६०/२३१/१३ चारित्रं तपोधनानामाचारादिवरणग्रन्थविहितमार्गण प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानयोग्यं पञ्चमहाव्रतपञ्चसमितित्रिगुप्तिषडावश्यकादिरूपम्. गृहस्थानां पुनरुपासकाध्ययनग्रन्थविहितमार्गण पञ्चमगुणस्थानयोग्यं दानशीलपुजीपवासादिरूपं दार्शनिक अतिकाखं कादशनिलयरूपं वा इति । — मुनियोंका चारित्र
आचारांग आदि चारित्र विषयक ग्रन्थोंमें कथित मार्गसे, प्रमत्त वअप्रमत्त इन दो गुणस्थानोके योग्य (दे, संयत) पंच महावत, पंच
समिति, त्रिगुप्ति, छह आवश्यक आदि रूप होता है (दे. संयम/१/२)
और गृहस्थांका चारित्र उपासकाध्ययन आदि ग्रन्थोंमें कथित मार्गसे,
पंचमगुणस्थानके ग्रोग्य (दे. संयतासंयत) दान, श्रीक, पूजा, उपवास आदि रूप होता है। अथता दार्शनिक प्रतिमा, वत्रितमा
आदि ११ स्थानोरूप होता है — (दे. श्रावक)।

सिद्धान्त प्रवेशिका/२२४-२२६ श्रावकके बतोंको देशचारित्र कहते हैं ।२२४। सुनियोंके बतोंको सकल चारित्र कहते हैं ।२२६।

७. अपहृत च उपेक्षा संयम निर्देश

१. लक्षण

रा. वा./१/६/१४/४१६/२१ संयमो हि द्विविध:--उपेक्षासंयमोऽण्हत-संयमश्चेति । देशकालविधानञ्जस्य परानुपरोधेन उत्सृष्टकायस्य त्रिधा गुप्तस्य रागद्वेषानभिष्यक्षलक्षण उपेक्षासंयमः। अपहतसंयम-स्त्रिविधः उत्कृष्टो मध्ममो जधन्यश्चेति । तत्र प्राप्तुकवस्त्याहार-मात्रबाह्यसाधनस्य स्वाधीनेतरङ्गानचरणकरणस्य बाह्यजन्त्रपनिपाते आत्मानं ततोऽपहृश्य जीवाच् प्रतिपालयत उत्कृष्टः, मृदुना प्रमृज्य जन्तून् परिहरतो मध्यमः, उपकरणान्तरेच्छया जघन्यः। 🗢 संयम दो प्रकारका होता है-एक उपेक्षा संयम और दूसरा अपहत सयम । देश और कालके विधानको समभनेवाले स्वाभाविक रूपमे शरीरसे विरक्त और तीन गुप्तियोंके धारक व्यक्तिके राग और देवरूप चित्त-वृत्तिका न होना उपेक्षासंयम है। अपहतसंयम उत्कृष्ट मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन प्रकार है। प्राप्तक, वसति और आहारमात्र हैं। बाह्यसाधन जिनके, तथा स्वाधीन हैं ज्ञान और चारित्ररूप करण जिनके ऐसे साधुका बाह्य जन्तुओं के आनेपर उनसे अपनेको बचाकर संयम पालना उत्कृष्ट अपहत संयम है। भृद् उपकरणसे जन्तुओं को बुहार देनेवाले मध्यम और अप्य उपकरणोकी इच्छा रखनेवालेके जघन्य अपहल संयम होता है। (चा. सा./६३/७-७६/२) (और भी दे. संग्रम/१/१)।

नि. सा./ता. व./६४ अपद्वतसंयिमनां संयमज्ञानाशु पकरणग्रहणविसर्गसमयसमुद्रश्वसिमितिप्रकारोक्तिरियम् । उपेक्षासंयिमनां न पुस्तककमण्डलुप्रभृतयः. अतस्ते परमिजिनमुनयः एकान्तको निरुष्टाः,
अतएव बाह्योपकरणनिर्मुक्ताः । व्यह अपहतसंयिमयोको संयमइत्नादिकके उपकरण लेते, रखते समय उत्पन्न होनेवाली समितिका
प्रकार कहा है। उपेक्षा संयमियोंको पुस्तकः, कमण्डलु आदि नहीं
होते, वे परम जिनम्नि एकान्तमें निरुष्ट होते हैं, इसलिए वे बाह्य
. उपकरण रहित होते हैं।

२. दोनोंकी वीतराग व सराग चारित्रके साथ एकार्थता

प. प्र./टी /२/६७/१८८/१६ अथवीपेक्षासंग्रमापहतस्यमौ वीतरागसरागा-परनामानौ ताविष तैषामेव संभवतः। = उपेक्षासंग्रम और अपहत-संमम् जिनको कि वीतराग व सराग संग्रम भो वहते हैं, ये दोनो भी उन शुद्धोपयोगियोंको ही होते हैं।

भा० ४-१८

- दे. चारित्र/१/१४.१६ (अपंबाद, व्यवहारनय, एकदेश परिस्थान, अप-हतसंयम, सरागचारित्र, शुभोपयोग ये सब शब्द, तथा उत्सर्ग, निश्चयनय सर्वपरिस्थान, परमोपेक्षासंयम, वीतरागचारित्र, शुद्धो-पयोग ये सब शब्द एकार्थवाची हैं।
 - ३. अपहतसंयमकी विशेषताएँ
- दे. संयम/२/२ [अपहत संयम दो प्रकारका है-इन्द्रिय सयम और प्राणि संयम ।]
- दे, शुद्धि/२ (इस अपहत संयममें भाव, काय, विनय आदिके भेदसे आठ शुद्धियोंका उपदेश हैं। }

८. प्राणि व इन्द्रिय संयमके लक्षण

- दे, असंयम [असंयम दो प्रकारका है प्राणि असंयम और इन्द्रिय असंयम । तहाँ घट्काय जीवोंकी विराधना प्राणि असंयम है और इन्द्रिय विषयोंमें प्रकृत्ति इन्द्रिय असंयम है। (इससे विपरीत प्राणि व इन्द्रिय संयम हैं - यथा)]
- मू. आ./४१८ पंचरस पंचवण्य दोगंधे अट्ठफास सत्तसरा। मणसा चोइसजीवा इदियपाणा य संजमो गेओ। ह्याँच रस, पाँच वर्ण, दो गन्ध, आठ स्पर्श, षड्ज आदि सात स्वर ये सब मनके २८ विषय हैं। इनका निरोध सो इन्द्रिय संयम है और चौदह प्रकारकी जीवों-की (दे, जीव समास) रक्षा करना सो प्राणिसंयम है।
- पं. सं./प्रा./१/१२८ सगवण जीवहिंसा अट्ठावीसिंदियस्थ दोसा य। तेहिंतो जो विरओ भावो सो संजमो भणिओ ।१२८। = पहले जीव-समास प्रकरणमे जो सत्तावन प्रकारके जीव बता आये हैं (दे. जीध-समास), उनकी हिंसासे तथा अठाईस प्रकारके इन्द्रिय विषयों के (दे. सन्दर्भ सं.१) दोषोंसे विरति भावका होना संयम है ।१२८।

स. सि./६/१९/३३१/११ प्राणी निद्रयेष्वश्भप्रवृत्ते विरक्षिः संयमः ।

- स सि./१/६/४१२/१ समितिषु प्रवर्तमानस्य प्राणी न्द्रियपरिहारस्संयमः।
 = १. प्राणियों व इन्द्रियोंके विषयों में अशुभ प्रवृत्तिके त्यागको संयम
 कहते हैं। (रा. त्रा./६/१२/६/५२२/२१)। २. समितियों में प्रवृत्ति
 करनेवाले मुनिके उनका परिभालन करनेके लिए को प्राणियोंका और
 इन्द्रियोंका परिहार होता है. वह संयम है। (रा. वा./१/६/१४/६६६/२६); (चा. सा./७/१); (त. सा./६/६८); (पं. वि./१/६६)
- रा. वा./१/६/१४/६१६/२७ एकेन्द्रियादिप्राणिपीडापरिहारः प्राणिसंयमः ।

 शब्दादिष्टिवन्द्रियार्थेषु रामानभिष्यङ्ग इन्द्रियसंयमः । = एकेन्द्रियादि

 प्राणियोंकी पीड़ाका परिहार प्राणिसंयम है और शब्दादि जो

 इन्द्रियोंके विषय जनमें रामका अभाव सो इन्द्रिय संयम है। (चा.

 स./७५/१); (अन. घ./६/३७-३८/५६१)
- का. अ./मू./३६६ जो जीवरवखणपरो गमणागमणादिसञ्चक ज्जेसु। तणछेदं पिण इच्छदि संजमधम्मो हवे तस्स। ⇒जीव रक्षामें तत्पर जो मुनि गमनागमन अपदि सब कार्थीमें तृणका भी छेद नहीं करना चाहता उस मुनिके (प्राणि) संयम धर्म होता है।३६६।
- नि. सा./ता. व./१२३ संयमः संकलेन्द्रियव्यापारपरित्यागः। =समस्त इन्द्रियोंके व्यापारका परित्याग सो संयम है।
- पं. ध /उ./१११८-११२२ पश्चानामिन्द्रियाणां च मनसस्य निरोधनात् । स्यादिन्द्रियनिरोधाल्यः संयमः प्रथमो मतः ।१११८। स्थावराणां च पश्चानां त्रसस्यापि च रक्षणात् । अधुसंरक्षणाल्यः स्यादृद्धितीयः प्राणसंयमः ।१११६। सस्यमक्षार्थसंबन्धाञ्ज्ञानं नासंयमाय यत् । तत्र रागादिबुद्धियां संयमस्तित्रिरोधनस् ।११२१। त्रसस्यावरजीवानां न वधायोग्रतं मनः । न बचो न वपुः क्वापि प्राणिसंरक्षणं स्मृतम् ।११२२। चपाँचौं इन्द्रियों व मनके रोकनेसे इन्द्रिय संयम और त्रस स्थावरोंकी एका प्राणसंयम है ।१११८-१११६। इन्द्रियों द्वारा जो अर्थविषयक ज्ञान हाना है वह असंयम नहीं है, बिलक उन विषयोंमें राग बृद्धिका न होना इन्द्रिय संयम है ।११२१। और इसी प्रकार त्रस

व स्थावर जीवोंमेंसे किसीके भी वधके लिए मन, वचन व काय उचत न होना सो प्राणिसंयम है।११२२।

९. प्राणि व इन्द्रिय संयमके १७ भेद

म्. अर./४१६-४९७ पुरु विद्गतेलका जनणप्र शेसंजमो य बोधव्यो विगतिचढुपं चे दिय अजीवका येसु संजमणं १४१६। अप्पिडलेहं दुप्र डिलेह मुवेक्तावहरण दुसंजमो चेव। मणवयणका यसंजम सत्तरस विध दुणादव्यो १४१७। —पृथिवी, अप्, तेज, वायु व वनस्पति ये पाँ स्थावरकाय और दो, तीन, चार व पाँच इन्द्रियवाले चार त्रस जी इनको रक्षामें ६ प्रकार तो प्राणि संयम है, सुखे तृण आदिका छेदः न करना ऐसा १ भेद अजीवकायकी रक्षारूप है १४१६। अप्रतिलेखन दुष्प्रतिलेखन, उपक्षासंयम, अपहृतसंयम, मन, वचन व काय संयम इस प्रकार कुल मिलकर १७ संयम होते हैं १४१७। (यहाँ पीछी इं इव्यका शोधन सो प्रतिलेख संयम है और अप्रमाद रहित यत्नपूर्वक शोधन दुष्प्रतिलेख संयम है।)

२. नियम व शंका-समाधान आदि

१. संयम व विरतिमें अन्तर

- घ. १४/४,६,१६/१२/१ संजम-विरईण को भेदो। ससमिदिमहव्वयाणुव्य-याई संजमो। समईहि विणा महव्वयाणुव्यया विरई। = प्रश्न--संयम और विरतिमें क्या भेद है! उत्तर-समितियों के साथ महाबत और अणुवत संयम कहलाते हैं। और समितियों के बिना महाबत और अणुवत विरति कहलाते हैं। (चा. सा./४०/१)
- दे. संबर/२/६ [विरति प्रवृत्तिरूप होती है और संयम निवृत्ति रूप]

२. संयम गुप्ति व समितिमें अन्तर

रा. वा./१/६/९१-९१/५६६/१५ अथ क. संयमः । कश्चिदाह –भाषादि-निवृत्तिरिति । न भाषादिनिवृत्तिः संयमः गुप्त्यन्तर्भावात् ।११। गुप्तिहि निवृत्तिप्रवणा, अतोऽत्रान्तभावात् संयमाभावः स्यातः। अपरमाह-कायादिप्रवृत्तिविशिष्टा संयम इति । नापि कायादि-प्रवृत्तिर्विशिष्टाः, समितिषसङ्गात् ।१२। समितयो हि कायादिदोध-निवृत्तयः, अतस्तवान्तभविः प्रसङ्यते । व्रसस्थावर्वधप्रतिषेधः आह्य-न्तिकः संयम इति चेत्, नः, परिहारविशुद्धिचारित्रान्तर्भावास् ।१२। ···कस्तहि संयमः। समितिषु प्रवर्तमानस्य प्राणीन्द्रियप्रिहारः संयमः ।१४। अतोऽण्हृतसंयमभेदसिद्धः ।१५। = १ कोई भाषादिकी निवृत्तिको संयम कहता है, पर वह ठीक नहीं है, क्यों कि उसका गुप्तिमें अन्तर्भाव हो जाता है। गुप्ति निवृत्तिप्रधान होती है इसलिए उपरोक्त लक्षणमें संयमका अभाव है। २. काय आदिकी प्रवृत्तिको भी संधम कहना ठीक नहीं है; क्यों कि काय आदि दोषोंकी निवृत्ति करना समिति है। इसलिए इस लक्षणका समितिमें अन्तर्भाव हो जानेसे यह संयम नहीं हो सकता। ३ त्रसस्थावर जीवोंके वधका आत्यन्तिक प्रतिषेव भी संयम नहीं है, क्यों कि परिहार विशुद्धि चारित्रमे अन्तर्भाव हो जाता है। ४, प्रश्न – तत्र फिर संयम क्या है ? उत्तर—समितियोंमें प्रवर्तमान जीवके प्राणिवधव इन्द्रिय विषयोंका परिहार संयम कहलाता है। इससे अपहृत संयमके भेदों-की सिद्धि होती है। (अर्थात अपहत संयम दो प्रकारका है-प्राण-संयम त्र इन्द्रिय संयम ।) (चा. सा./७६/१); (अन. घ./६/३७/-(93 k

३. चारित्र व संयममें अन्तर

रा, वा./१/१-/१/६१७/७ स्यादेतत् दशविधो धर्मो व्याख्यातः, तत्र संयमेऽन्तर्भावोऽस्य प्राप्नोतीतिः; तत्रः, किं कारणम् । अ ते वचनस्य कृत्स्नकर्मक्षयहेतुत्वात् । धर्मे अन्तर्भृतमपि चारित्रमन्ते गृहाते मोक्ष- प्राप्तः साक्षारकारणिमिति ज्ञापनाय । = प्रश्न - दश प्रकारका धर्म कहा गया है। तहाँ संयम नामके धर्ममें चारित्रका अन्तर्भाव प्राप्त होता है। उत्तर - नहीं, क्यों कि, सकलकर्मों के श्यका कारण होनेसे चारित्र मोश्लका साक्षारकारण है। और इसी लिए सूत्रमें उसका अन्तमें प्रहण किया गया है।

दे. चारित्र/१/६ [चारित्र जीवका स्वभाव है पर संयम नहीं ।]

४. इन्द्रिय संयममें जिह्ना व उपस्थकी प्रधानता

मू, आ,/हन्न-ह८६ जिन्मोवत्थणिमित्तं जीवो दुक्खं अणादिसंसारे।
पत्तो अणंतसो तो जिन्मोवत्थे जह दाणि १६८८। चदुरं गुला च जिन्मा
अप्रहा चदुरं गुलो उवस्थो वि। अर्हं गुलदोसेण दु जीवो दुक्खं हु
पण्पोदि १६न्हा = इस अनादिसंसारमें इस जीवने जिहा व उपस्थ
इन्द्रियके कारण अनन्त बार दुःख पाया। इसलिए अब इन दोनों को
जीत १६न्दा चार अंगुल प्रमाण तो अशुभ यह जिहा इन्द्रिय और
चार ही अंगुल प्रमाण अशुभ यह उपस्थ इन्द्रिय, इन आठ अंगुलों के
दोषसे ही यह जीव दुःख पाता है १६८६।

कुरत कावय/१३/७ अन्येषां विजयो मास्तु संयतां रसनां बुरु । असंयतो यतो जिह्ना कह्वपायैरधिष्ठिता ।७। = और किसो इन्द्रियको चाहे मृत रोको, पर अपनी जिह्नाको अवश्य लगाम लगाओ, क्योंकि बेलगामकी जिह्ना बहुत दुःख देती है ।७।

दे,रसपरित्याग/२ [जिह्नाके वश होनेपर सब इन्द्रियाँ वश हो जाती हैं।]

५. इन्द्रिय व मनोजयका उपाय

- भ. आ./मू./१८३७-१८३८ इंदियदुद्दंतस्सा णिरिघटपंति दमणाणस्त-लिणेहिं। उप्पहिगामी णिघिप्पंति हु स्वलिणेहि जह तुर्या ।१८६७। ऑणहुदमणसा इंदियसप्पाणि णिगेण्डिदुं ण तीर ति। विज्जामंती-संघहीणेणव आसीविसा सप्पा।१८३८। = उन्मार्गगामी दुष्ट घोड़ोंका जैसे लगामके द्वारा निग्रह करते हैं वैसे ही तत्त्वज्ञानकी भावनासे इन्द्रियस्पी अश्वोंका निग्रह हो सकता है।१८३७। विद्या, औषध् और मन्त्रसे रहित मनुष्य जैसे आशीविष संपीको वश करनेको समर्थ नहीं होते वैसे हो इन्द्रियं-सर्प भी मनकी एकामता नष्ट होनेसे ज्ञानके द्वारा नष्ट नहीं किये जा सकते।१८३८।
- चा. पा./मू./२६ अमण्णुण्णे य मणुण्णे सजीवदव्ये अजीवदव्ये य। ण करेंड् रायदोसे पंचें दियसंबरो अणिओ। = पाँचों इन्द्रियों के विषय-भूत अमनोज्ञ पदार्थों में तथा स्त्री-पुत्रादि जीवरूप और धन आदि अजीवरूप ऐसे मनोज्ञ पदार्थों में राग-द्रेषकान करना ही पाँच इन्द्रियों का संबर है। (सू. आ./१७-२१)।
- कुरल काव्य/३६/३ निग्रहं कुरु पञ्चानामिन्दियाणां विकारिणाम्। प्रियेषु त्यज संमोहं त्यागस्यायं शुभक्रमः।३। = अपनी पाँचों इन्द्रियोंका दमन करो और जिन पदार्थोंसे सुम्हें सुख मिलता है उन्हें बिलकुल ही त्याग दो।३।
- त. अनु./७१ संचिन्तयञ्चनुप्रेक्षाः स्वाध्याये नित्यमुद्यतः । जयत्येव मनः साधुरिन्द्रियार्थ-पराङ्मुखः ।७१। = जो साधु भन्ने प्रकार अनुप्रेक्षाओं का सदा चिन्तवन करता है, स्वाध्यायमे उद्यमी और इन्द्रिय विषयोंसे प्रायः मुख मोड़े रहता है वह अवस्य ही मनको जीतता है।७१।

६, कषाय निग्रहका उपाय

भ. आ./मू./१९३६ उवसमदयादमाउहकरेण रक्ला कसायचोरेहि। सक्का कार्ज आउहकरेण रक्ला व चोराणं ११८३६। च जैसे सशस्त्रपुरुष चोरोंसे अपना रक्षण करता है, उसी प्रकार उपशम दया और निग्रह रूप तीन शस्त्रोंको धारण करनैयाला कषायरूपी चोरोंसे अवस्य अपनी रक्षा करता है।

- भ. आ./मू./२६०-२६६ कोधं खयाएं माणं च मह्येणाड्जवं च मायं च । संतोसेण य लोहं जिणवु ख चत्तारि विकसाए १२६०। तं वर्थुं मोत्तव्वं जे पिंडउप्पड्जदे कसायिगा । तं वर्थुमिल्लएङ्जो जत्थोवसमां कसायाणं १२६२। तम्हा हु कसायग्गी पावं उप्पड्जमाणयं चेव । इच्छा-मिच्छादुक्कडवंदणसिल्लिण विज्ञाहि १२६०। चहे क्षपक ! तू क्षमारूप परिणामोंसे कोधको, मार्द्वसे मानको, आर्जवसे मायाको और सन्तोषसे लोभ कषायको जीतो १२६०। जिस बस्तुके निमित्तसे कषायरूपी अग्नि होती है वह त्याग देनी चाहिए और कषायका शमन करनेवाली बस्तुका आश्रय करना चाहिए १२६२। [घीरे-घीरे बढते हुए कषाय अनन्तानुबन्धी और मिध्यात्व तकका कारण बन जाती है] इसलिए यह कथायाग्नि अत्र पापको उत्पन्न करेगी ऐसा समक्तर उसके उत्पन्न होते ही, हे भगवन् । आपका उपदेश ग्रहण करता हूँ। मेरे पाप मिथ्या होवें में आपका बन्दन करता हूँ, ऐसे वचनरूप जलसे शान्त करना चाहिए १२६७।
- प. प्र./मू./२/१८४ णिठ हुर-ययषु सुणेषि जिय जइ मणि सहण ण जाइ।
 तो लहु भावहि बंधु परु जि मणु फिस्ति विलाइ।१८४। = है जीव। जो
 कोई अविवेकी किसीको कठोर बचन कहे, उसको सुनकर जो न
 सह सके तो कषाय दूर करनेके लिए परब्रह्मका मनमें शीव ध्यान
 करो।
- आ, अनु./२१३ हृदयसरिस याविज्ञर्म लेडिप्यत्यगाधे, वसति खलु कवाय-ग्राहचक्रं समन्तात् । शयित गुणगणोऽयं तन्न ताविज्ञाङ्कः, सयमशम-विशेषेस्तान् विजेतुं यतस्य । मिर्मल और अथाह हृदयरूप सरोवर-में जवतक कषायों रूप हिंस जलजन्तुओं का समूह निवास करता है, तब तक निश्चयसे यह उत्तम क्षमादि गुणों का ममुदाय निःशं क होकर उस हृदयरूप सरोवरका आश्रय नहीं लेता है। इसलिए हे भव्य! तू वतों के साथ तीव-मध्यमादि उपशम भेदोंसे उन कषायों के जोतनेका प्रयत्न कर ।२१३।
- स. सा /आ./२७६/क. १७६ इति वस्तुस्वभावं स्वं ज्ञानी जानाति तेन सः। रागादोन्नात्मनः कुर्यात्रातो भवति कारकः।१७६। = ज्ञानी ऐसे अपने वस्तुस्वभावको जानता है, इसिंखए वह रागादिको निजरूप नहीं करता, अतः वह रागादिकका कर्ता नहीं है।१७६। (दे. चेतना/३/२,३)।
- यो. सा./अ/६/७ विशुद्धदर्शनज्ञानचारित्रमयमुज्ज्वलम् । यो ध्यायत्या-त्मानात्मानं कषायं क्षपयत्यसौ छ। चअपनी आत्मासे ही विशुद्ध दर्शनज्ञान चारित्रमयी उज्ज्वलस्वरूप अपनी आत्माका जो ध्यान करता है वह अवस्य ही समस्त कषायोंका नाश कर देता है।
- दे, राग/६/३ [राग और द्वेषका मूल कारण परिग्रह है। अतः उसका त्याग करके रागद्वेषको जीत लेता है।]

७, संयमपालनार्थं भावना विशेष

रा, वा,/१/६२७/५११/११ संयमो ह्यारमहितः तमुतिष्ठतिहैव पूज्यते परत्र किमस्ति वाच्यम्। असंयतः प्राणिवधविषयरणेषु नित्यप्रवृत्तः कर्मा-शुभं संचिनुते। क्संयमी पुरुषको यहीं पूजा होती है, परलोकको तो बात ही क्या १ असंयमी निरन्तर हिंसा आदि क्यापारोंमें लिप्त होनेसे अशुभ कर्मीका संचय करता है।

पं. विं./१/१७ मानुष्यं किल दुर्लभं भवभृतस्तवापि जात्यादयस्तेष्वे-वाप्तवचः श्रुतिः स्थितिरतस्तस्याश्च इग्बोधने । प्राप्ते ते अतिनिर्मले अपि परं स्थातां न येनोजिभते, स्वर्मीक्षेकफलप्रदे स च कथं न श्लाध्यते संयमः ।१७। = इस संसारी प्राणीको मनुष्यत्व, उत्तम जाति आदि, जिनवाणी श्रवण, लम्बी आयु, सम्यग्दर्शन व सम्यग्लान ये सब मिलने उत्तरोत्तर अधिक अधिक दुर्लभ हैं। ये सब भी संयम-के श्विना स्वर्ग एवं मोक्षरूप अद्वितीय फलको नहीं दे सकते. इसिलए संयम कैसे प्रशंसनीय नहीं हैं। (और भी दे. अनुप्रेक्षा/१/११)।

८. पंचम कालमें भी सम्भव हैं

र. सा./२८ सम्मिक्सोही त्वगुणचारित्तसण्णाणदानपरिधाणं। भरहे दुस्समकाले मणुयाणं जायदे णियदः ।इन। = इस दुस्सह दुःलम (पंचम) कालमें भनुष्योंके सम्यव्हान सहित तप बत अठाईस मूलगुण, चारित्र, सम्यव्हान और सम्यव्हान खादि सब होते हैं।३न।

दें धर्मध्यान/६ [यद्यपि पंचन कालमें शुक्लध्यान सम्भव नहीं परन्तु अपनी अपनी भूमिकःनुसार तरतमता लिये धर्मध्यान अवश्य सम्भव है] ।

९. जन्म पश्चात् संयम प्राप्ति योग्य सर्वे लघुकाल

१. तिर्यचोंमें

ध. १/२,६,३७/३२/४ एत्थ वे उवदेसा। तं जहा~ितिस्क्लेसु वेमास-मुहुत्तपुधत्तस्मुविर सम्मत्तं संजमासंजमं जीवो पडिवज्जांद ।...एसा दिक्लणपिष्ठवत्ती ।...ितिरिक्लेसु तिण्णिपक्ल-तिण्णिदिवस-अंतो-सुहुत्तस्मुविर सम्मत्तं संजमासंजमं च पडिवज्जादि ।...एसा उत्तर-पडिवत्ती। = इस विषयमें दो उपदेश हैं। वे इस प्रकार हैं ─१. तियंचोंमें उत्पन्न हुआ जीव, को मास और मुहूर्त पृथक्लसे ऊपर सम्यक्त्व और संयमासंयमको प्राप्त करता है। यह दक्षिण प्रतिपत्ति है। २. वह तोन पक्ष, तोन दिवस और अन्तर्मृहूर्तके ऊपर सम्यक्त्व और संयमासंयमको प्राप्त होता है। यह उत्तर प्रतिपत्ति है।

दे सम्यग्दर्शन/IV/२/६ [तिर्यंचोमें उत्पन्न हुआ जीव दिवस पृथवत्वसे लगाकर उपरिमकालमें प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करता है नोचेके कालमें नहीं।]

२. मनुष्यमि

ध, ४/१,६,३०/३२/४ एश्य वे जबदेसा। तं जहा स्मणुसेष्ठ गव्भादि अट्ठबस्सेष्ठ अंतोमुहुत्तव्महिएष्ठ सम्मतं संजमं सजमासंजमं च पडिवज्जदि ति। एसा दिख्णपिडवत्ती। स्मणुसेष्ठ अहुवस्साणुविर सम्मत्तं संजमं संजमासंजमं च पडिवज्जदि ति। एसा उत्तरपिड-वत्ती। इस विषयमें दो उपदेश हैं —१. मनुष्योंमें गर्भकात्तसे प्रारम्भकर अन्तर्मृहृत से अधिक आठवर्षों व्यतीत हो जानेपर सम्यवत्व स्थम और संयमासंयमको प्राप्त होता है। यह दक्षण प्रतिपत्ति है। (ध, ४/१,६,६१/६२) २, वह आठवर्षों उत्तर प्रतिपत्ति है। संयमासंयमको प्राप्त होता है। यह उत्तर प्रतिपत्ति है।

घ. १/४,१,६६/३०७/६ मणुस्सेम् कासपुधत्तेण विणा मासपुधत्तव्मंतरे सम्मत्त-संजम-संजमासंजमाणं गहणाभावादो । = मनुष्योंमें वर्ष पृथक्तवके विना मास पृथवत्वके भीतर सम्यक्तव संयम और संयमा-संयमके ग्रहणका अभाव है।

घ. १०/४.२,४.६६/२०-/१२ गन्भादो णिक्संतपढमसमयप्पहुडि अट्टबस्सेमु गदेमु संजमग्गहणपाओगगो होदि, हेट्ठा ण होदि त्ति एसो भावत्यो । गन्भिम् पिद्दपढमसमयप्पहुडि अट्ठबस्सेमु गदेमु संजमग्गहणपाओगगो होदि ति के वि भणंति । त्रण्ण घडदे, जोणिणिक्सभणजम्भणेणेत्ति वयणण्णहाणुवत्तीदो । जित्र गन्भिम्म पिद्दपढमसमयादो अट्ठबस्साणि घेष्पंति तो गन्भवदणजम्भणेण अट्ठबस्सीओ जादो ति मुत्तकारो भणेज्ज । ण च एवं, तम्हा सत्तमासाहिय अट्टिह बासेहि संजमं पिड्विजित ति एसो चेव अश्यो घेत्तको; सञ्चसहुणिद्द सण्णहाणुववत्तीदो । =गर्भसे निकलनेके प्रथम समयसे लेकर आठ वर्ष बीस जानेपर संयम ग्रहणके योग्य होता है, इसके पहले संयम ग्रहणके योग्य नहीं होता. यह इसका भावार्थ है । गर्भमें आनेके प्रथम समयसे लेकर आठ वर्ष बीस जानेपर संयम ग्रहणके योग्य होता है ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं, किन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि, ऐसा माननेपर 'योनिविष्क्रमण रूप जन्मसे' यह सूत्रवचन (इसी पुस्तकके सूत्र नं. ७२,६६) नहीं वन सकता । यदि गर्भ-

में आनेके प्रथम समयसे लेकर आठ वर्ष ग्रहण किये जाते हैं तो 'गर्भ-पतनरूप जन्मसे आठ वर्ष का हुआ' ऐसा सूत्रकार कहते हैं। किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं कहा है। इसलिए सात मास अधिक आठ वर्षका होनेपर संयमको प्राप्त करता है, यही अर्थ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि अन्यथा सूत्रमें 'सर्वलघु' पदका निर्देश घटित नहीं होता।

दे. सम्यग्दर्शन/IV/२/४ | जन्म लेनेके पश्चात् आठ वर्षांके ऊपर प्रथम-सम्यक्त प्राप्त करता है, उसके नीचे नहीं ंो

३. सूक्ष्म आदि जीवोंमें

ध. १०/५.२,४५६/२७६/१ अपज्जत्ते हितो णिग्गयस्स सव्वत् द्वुएण कालेण संजमासंजमगहणाभावादो।आउकाइयपञ्जत्ते हितो मणुस्हेसुप्पण्णस्स सव्वत्तहुएण कालेण संजमादिगहणाभावादो।अपग्रिकोमेंसे निकले हुए जीवके सर्व लघुकाल द्वारा संयमासंयमके प्रहणका अभाव है। ... अप्काप्यक पर्याप्तकों मेसे मनुष्यों मे उत्पन्न हुए जीवके सर्वलघुकालके द्वारा संयम आदिका ग्रहण सम्भव नहीं है।

दे. जन्म/१/१ [सूक्ष्म निगोदियासे निकले हुए जीवके सर्व लघुकालं द्वारा संयमासंयम या संयमका ग्रहण। सूक्ष्म निगोदियासे निकलकर सीधे मनुष्य होनेवाले जीव ग्रुगपत् सम्यवस्व व संयमासंयम ग्रहण नहीं कर सकते, बीचमें एक भव जसका धारण करके मनुष्योमें उत्पन्न होनेवाले जीवके ही वह सम्भव है।]

१०. पुनः पुनः संयमादि प्राप्त करनेकी सीमा

ष. खं. १०/४.२,४/मूत्र ७१/२९४ एवं णाणाभवरगहणेहि अट्ठ संजमकड-अर्णि अणुपालइसा चतुवखुत्तो कसाए उवसामइता पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणि संजमासंजमकंडयाणि सम्मत्तकंडयाणि च अणुपालइत्ता एवं संसारिदूण अपि्छमे भवग्गहणे पुणरवि पुब्व-कोडाउएसु मणुसैसु उवनण्णो ।७१। = इस सूत्रके द्वारा संयम, संयमा-संधम और सम्यक्तवके काण्डकोंकी तथा कषायोपदामनाकी संख्या कही गयी है। यथा - चार-जार संयमको प्राप्त करनेपर एक संयम काण्डक होता है। ऐसे आठ ही संयम वाण्डक होते हैं (अर्थात अधिक-से अधिक ३२ बार ही सयनका ग्रहण होता है.। क्यों कि इससे आगे संसार नहीं रहता () इन आठ संयमकाण्डकोंके भीतर कषायोपशा-मनाके बार चार ही होते हैं। जीवस्थान चूलिकामें जो चारित्र मोह-के उपशामन विधानकी और दर्शनमोहके उपशामन विधानकी प्ररू-पणा की गयी है, उसकी यहाँ प्ररूपणा करनी चाहिए। परन्तु संयमा-संयम काण्डक परयोपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं (अथित् अधिकसे अधिक पत्य/असके चौगुने बार संयमासंयमका प्रहण होना संभव है। संयमासंयमकाण्डकोंसे सम्यक्त्वकाण्डक विशेष अधिक है, जो पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र है।

गो. क./मू./६१६-६१६/८२२ सम्मत्तं वेसलमं अणसंजोजणिविहि च जक्कस्सं। पव्लासंखेजज्वियं वारं पांडवज्जवे जीवो।६१६। चत्तारिः वारमुवसमसेढिं समरुहिद खिविदक्रमंसो। बत्तीसं वाराई संजममुब-लहिय णिट्वदि।६१६। = प्रथमोपराम सम्यक्त्व, वेदकसम्यक्ष्व, वेद्यसंयम और अनन्तानुबन्धीके विसंयोजनका विधान ये एक जीवमें उत्कृष्टतः पव्योपमके असंख्यात बार ही होते हैं।६१८। उपदामश्रेणी चार बार चढ़नेके पोछे अवश्य कर्मोंका क्षय होता है। संयम ३२ बार होता है, पीछे अवश्य निर्वाण प्राप्त करता है। (पं. सं./प्रा./टो./५/-४८८।

संयम— भूतकालीन १२ वें तीर्थं कर—दे. तीर्थं कर/१। संयमी—दे. संयत । संयोग—दे. सम्बन्ध । संयोग द्रव्य—दे. द्रव्य/१।

जैनेन्द्र सिद्धान्त् कोश

संयोगवाद--

गो. क./मू./८६२/१०७२ संजोगमेबेति वहंति तण्णा णेवेक्कचक्केण रहो पयादि। अंधो य पंसू य वर्ण पविद्वा ते संपजुत्ता णयइं पविद्वा ।८६२। = यथार्य झानी संयोग ही को सार्थक मानते हैं। उनका कहना है कि जैसे एक पहियेसे रथ नहीं चलता और वनमें प्रविष्ठ अन्धा और पांगला एक दूसरेके संप्रयोगसे हावाग्निसे अपनी रक्षा करके नगरमें प्रवेश कर जाते हैं, उसी प्रकार वस्तुओं के संयोगसे ही सर्वार्थ-सिद्धि होती है।८६२।

नोट - [उपरोक्त बात मिथ्या एकान्तरूप संयोगबादके सम्बन्धमें कहीं गयी है, पर बिलकुल यही बात इसी उदाहरण सहित सम्यग्दर्शन झान व चारित्रकी मैत्री दर्शानिके लिए आगममें कही गयी - दे. मोक्ष-मार्ग/१/२/रा. वा.]।

संयोग सम्बन्ध-१. लक्षण सामान्य

स. सि./६/१/३२६/७ संयुजाते इति संयोगी मिश्रीकृतम्। =संयोगका अर्थ मिश्रित करना अर्थात मिलाना है। (रा. वा./६/१/४१६/१)।

रा, वा./६/१६/२७/१२ अप्राप्तिपूर्विका हि प्राप्ति. संयोग । = अप्रवेक (बैशेषिकों के मतमें) अप्राप्ति पूर्वक प्राप्तिको संयोग कहा है। (स. म./२७/३०२/२६)।

- ध. १५/२४/२ को संजोगी । पुधप्पसिद्धाण मेलणं संजोगी । = पृथक् सिद्ध पदार्थों के मेलको संयोग कहते हैं।
- मू. आ./४८ की वसुनन्दि कृत टीका-अनारमीयस्यारमभावः संयोगः। = अनारमीय पदार्थीमें आरमभाव होना संयोग है।
- दे. द्रव्य/१/१० [पृथक् सत्ताधारी पदार्थीके संयोगसे संघोग द्रव्य बनते हैं, जैसे छत्री, मौली आदि]।

२. संयोगके भेद व उनके लक्षण

- ध. १४/५.६.२:/२०/३ तत्र संजोगो दुविहो वैसप्च्यासिकओ गुण-पच्चासित्तिकओ चेदि । तत्थ देसपचासिकओ णाम दोण्णं दठवाण-मवयवफासं काऊण जमच्छणं सो देसपचासिकओ संजोगो । च्यंयोग दो जमण्णोण्णाणुहरणं सो गुणपचासित्तिको संजोगो । च्यंयोग दो प्रकारका है—वेशप्रत्यासित्तकृत संयोगसम्बन्ध और गुणप्रत्यासित्त-कृत संयोगसम्बन्ध । देशप्रत्यासित्त कृतक काअर्थ है दो दठयोंके अव-यवाँका सम्बद्ध होकर रहना. यह देशप्रत्यासित्तकृत संयोग है । गुणों द्वारा जो परस्पर एक दूसरेको ग्रहण करना वह गुणप्रत्यासित्त-कृत संयोगसम्बन्ध है ।
 - * संयोग व बन्धमें अन्तर—हे, युति।
 - * द्रव्य गुण पर्यायमें संयोग सम्बन्धका निरास

--दे. द्रव्य/४ ।

संयोगाधिकरण— दे. अधिकरण । संयोजन —आहारका एक दोव—दे, आहार/II/४/४ । संयोजना सत्य—दे. सत्य/१ ।

संरंभ — स. सि./६/८/३२६/३ प्राणव्यपरोपणादिषु प्रमादवतः प्रयत्ना-वेद्यः संरम्भः । ⇒प्रमादो जीवोंका प्राणोंकी हिंसा आदि कार्यमें प्रयत्नशील होना संरम्भ है। (रा. वा/६/८/२/६१३/३२); (चा. सा./८७/४)।

संबद्धर---१. बीरसंबत, विक्रमसंबत, शकसंबत, ईस्वी संबत्, गुप्त संबत्तोंका निर्देश--दे. इतिहास/२। २. कालका एक प्रमाण विशेष। अपर नाम वर्ष--दे, पणित/1/१/४। संवर मिश्यात्व, अविरति, प्रमाद, कवाय और मन, वचन, काय की प्रवृत्ति ये सब कर्मोंके आनेके द्वार होनेसे आह्वव हैं। इनसे विपरीत सम्प्रक्श्व देश व महावत, अप्रमाद, मोह व कवायहीन शुद्धारम परिणति तथा मन, वचन, कायके ब्यापारकी निवृत्ति ये सब नवीन कर्मोंके निरोधके हेतु होनेसे संवर हैं। तहाँ समिति गुप्ति आदि रूप जीवके शुद्धभाव तो भाव संवर है और नवीन कर्मोंका न आना बच्य संवर है।

१. संवर सामान्य निर्देश

१. संवर सामान्यका रूक्षण

त. सू./१/१ अासविनरोधः संवरः ।१। = आसवका निरोध संवर है।

रा, वा./१/४/१९,१८/पृष्ठ/पंक्ति संवियतेऽनेन संवरणमात्रं वा संवरः (११/२६/६)। संवर इव संवरः । क उपमार्थः । यथा सुगुप्तसुस वृतहारकवरटं पृरं सुरक्षितं दुरासादमारातिभिर्भवति, तथा सुगुप्तिसमितिधर्मानुत्रेशापरीषहजयचारित्रात्मनः सुसंवृतेन्द्रियकवाययोगस्य
अभिनवकर्मागमद्वारसंवरणात् संवरः । (१८/२७/४)।

- रा, वा./१/१/२.६/१८० कमीगमीन मित्ता प्रावुर्ध् तिराह्मविन्तेष्ठाः ।१। तिन्तरोधे सित तत्पूर्वकर्मादानाभावः संवरः ।२। मिन्यादर्शनादि-प्रत्ययकर्मसंवरणं संवरः ।६। —१. जिनसे कमें रुकें वह कमीका रुकना संवर है।११। संवरकी भाँति संवर होता है। जैसे जिस नगरके द्वार अच्छी तरह बन्द हों, वह नगर शत्रुओंको 'अगम्य है, उसी तरह गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीष्ठ्रज्य और चारित्रसे कर ली है संवृत इन्द्रिय कथाय व योग जिसने ऐसी आत्मावे नवीन कमीका द्वार रुक जाना संवर है।१८। २. अथवा मिथ्यादर्शनादि जो कमीके आगमनके निमित्त है (दे० आह्मव) उनका अप्रावुर्भाव आह्मवका निरोध है।१। उसके निरोध हो जानेपर, उस पूर्वक जो कमीका ग्रहण यहंते होता था, उसका अभाव हो जाना संवर है।२। अर्थात मिथ्यादर्शन आदिकं निमित्तसे होने वाले कमीका रुक जाना संवर है।६।
- भ आ./वि./१८/१३४/१६ संब्रियते संरुध्यते मिथ्यादर्शनादिः परिणामो येन परिणामान्तरेण सम्यग्दर्शनादिना, गुण्य्यादिना वा स संवरः । =जिस सम्यग्दर्शनादि परिणामोसे अथवा गुप्ति, समिति आदि परिणामोसे मिथ्यादर्शनादि परिणाम रोके जाते हैं वे रोकनेवासे परिणाम संवर शब्दसे कहे जाते हैं।
- न. च. वृ /११६ रुं धिय छिद्दसहस्से जन्नजाणे जह जलं तु णासवि ।

 मिच्छ्रत्ताइखभावे तह जीवे संवरो होई १९४६। = जिस प्रकार नावके
 छिद्र रुक जानेपर जसमें जल प्रवेश नहीं करता, इसी प्रकार मिथ्यात्वादिका अभाव हो जानेपर जीवमें कर्मीका संवर होता है, अर्थाव
 नवीन कर्मीका आसव नहीं होता है।
 - संवरानुष्रेक्षाका रुक्षण—दे० अनुष्रेक्षा

२. द्रव्य व भाव संवर सामान्य निर्देश

- स. सि./६/९/४०६/६ स द्विविधो भावसंवरो प्रव्यसंवरश्चेति। तत्र संसारिनिमत्तिभानिवृत्तिभावसंवरः । तिन्नरोधे तत्पूर्वकर्मपुद्व-गलादानिविच्छोदो द्रव्यसंवरः । च्वह दो प्रकारका है – भावसंवर और द्रव्यसंवर । संसारकी निमित्तभूत कियाको निवृत्ति होना भावसंवर है, और इसका (उपरोक्त कियाका) निरोध होनेपर त्रपूर्वक होने वाले कर्मपुद्वमलोंके ग्रहणका विच्छेद होना द्रव्यसवर है। (रा. वा./६/१/७-६/६-८/६), (हा /२/८/१-३)।
- द्र, सं,/मू,/३४-३५ चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेंदू। सो भावसंवरो खळु दव्वासवरोहणे अण्णो १३४। वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुरेहा परीसहजओ य। चारित्तं बहुभेया णायव्वा भावसंवर-

विसेसा ।३१। = आत्माका जो परिणाम कर्मके आसवको रोकनेमें कारण है, उसको भाव संवर कहते हैं और जो द्रव्यासवको रोकने-में कारण है द्रव्य सवर है ।३४। पाँचवत, पाँचसमिति, तीनपृष्ठि, दशधर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाईस परीषहजय तथा अनेक प्रकारका चारित्र इस तरह ये सब भाव संवरके विशेष जानने चाहिए ।३६।

इ. सं./टी./१४/६६/१ निरासवसहजस्वभावरवात्सर्वकर्मसंवरहेतुरित्युक्तलक्षणः परमारमा तत्स्वभावेनोत्पन्नो योऽसौ शुद्धचेतनपरिणामः स
भावरंवरो भवति । यस्तु भावसंवरात्कारणभूतादुत्पन्नः कार्यभूतो
नवतरद्वव्यवर्मागमनाभावः स द्वव्यसंवर इत्यर्थः। = आस्रविदरहित सहजस्वभाव होनैसे सब कर्मोके रोकनैमें कारण, जो शुद्ध
परमात्मतत्त्व है उसके स्वभावसे उत्पन्न जो शुद्धचेतन परिणाम है
सो भावसंवर है । और कारणभूत भावसंवरसे उत्पन्न हुआ जो
कार्यक्तप नवीन द्वव्यकर्मोके आग्मनका अभाव सो द्वव्यसंवर है ।
यह गाथार्थ है ।

३. संवरके निरुचय हेतु

- स. सा./मू./१८०-१८६ अप्पाणमप्पणा रुंधिऊण दोषुण्णपावजोएसु। दंसणणाणिम्ह ठिदो इच्छाबिहदो य अण्णम्ह ११८७। जो सन्वसंगमुक्को भायि अप्पाणमप्पणो अप्पा। णिव कम्मं णोकम्मं चेदा चितेदि एयत्तं ११८६। अप्पाणमप्पणो अप्पा। णिव कम्मं णोकम्मं चेदा चितेदि एयत्तं ११८६। अप्पाणमेव सो कम्मविष्पमुक्को ११८६। [एथ संवरत्रकारः— स. सा./आ./१८६] = आत्माको आत्माके द्वारा जो पुण्यपापस्पी सुभाशुभ योगोंसे रोककर दर्शनज्ञानमें स्थित होता हुआ और अन्य वस्तुकी इच्छासे विरत होता हुआ ।१८७। जो आत्मा सर्वसंगसे रिहत होता हुआ अपने आत्माको आत्माके द्वारा ध्याता है और कर्म तथा नोकर्मको नहीं ध्याता एवं चेतियता (होनेसे) एकश्वको ही चिन्तवन करता है, अनुभव करता है।१८८। वह (आत्मा) आत्माको ध्याता हुआ दर्शनज्ञानमय और अनन्यमय होता हुआ अप्पकल्लों ही कर्मोंसे रहित आत्माको प्राप्त करता है।१८६। यह संवरकी विधि है।
- स. सा./आ./१८३/क. १२६ के पीछे भेदिविज्ञाना स्क्रुद्धात्मी पलम्भः प्रभवति । शुद्धात्मो पलम्भात रागद्वेषमो हाभावलक्षणः संवरः प्रभवति । स्भेद विज्ञानसे शुद्धात्माकी उपलब्धि होती है और शुद्धात्माकी उपलब्धिसे राग-द्वेष मोहका अाव जिसका लक्षण है ऐसा संवर होता है।
- द्र. सं./टी./२८/८४/१२ कमिलविनरोधसमर्थस्वसंवित्तिपरिणतजीवस्य शुभागुभकमीगमनसंवरणं संवरः। = कमौके आसवको रोकनेमें समर्थ स्वानुभवमें परिणत जीवके जो शुभ तथा अशुभ कमौके आने-का निरोध है वह संवर है। (पं. का/ता. वृ./१४४/२०६/१०)।

४. संवरके व्यवहार हेतु

त. सू./१/२ स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरिषहजयचारिकैः ।२। क्वह संवर गुप्ति, समितिः दशधर्मः, नारह अनुप्रेक्षाः बाईस परिषहजय और सामाधिकादि पाँच प्रकार चारित्र इनसे होता है। (रा. वा/१/७/१४/४०/१२); (का. अ/सू./६६); (दे. संवर/१/१)।

का. आ./मू. १६५,१०१ सम्मत्तं देसवयं महत्वयं तह जओ कसायाणं । एदे संवरणामा जोगाभावो तहा चेव ।१६। जो पुण विसयविरत्तो अप्पाणं सव्वदो वि संवरह । मणहर्रिवसपहिंतो तस्स फुडं संवरो होदि ।१०१। =१. सम्यक्त्व, देशवत, महावत, कषायोंका जीतना और योगोंका अभाव ये सब संवरके नाम हैं ।६६। (दे. संवर/२/२)- मिथ्यात्व अविरत्ति आदि जो गाँच अन्धके हेतु कहे गये हैं, उनसे विपरीत् ये सम्यक्त्व आदि संवरके हेतु सिद्ध हैं।] (दे. संवर/१/१)। २, जो मुन्न विषयोंसे विरत्ता होकर, मनको हरनेवाले पाँचों इन्द्रियों-

- के विषयोंसे अपनेको सदा दूर रखता है, उनमें प्रवृत्ति नहीं करता, उसी मुनिके निश्चयसे संवर होता है। १०१।
- दे. संवर/१/२/इ. सं. [उपरोक्त समिति गुप्ति आदि भाव संवरके विशेष हैं।]
- द्र. सं./दो./१४/१४६/६ निरासवशुद्धारमतत्त्वपरिणतिरूपस्य संवरस्य कारणभूता द्वादशानुप्रेक्षाः। =िनरासव शुद्धात्मतत्त्वकी परिणति-रूप जो सवर है उसकी कारणरूप बारह अनुप्रेक्षा है। [अर्थात् शुद्धात्मानुभूति तो संवरमें कारण है, और अनुप्रेक्षा तथा अन्य समिति गुप्ति आदि संवरके उस कारणके भी कारण हैं।]
- दे. तप/श/४[तप संबर व निर्फरा दोनांका कारण है।]
 - 🛨 कर्मीके संवरकी ओघ आदेश प्ररूपणा

—दे, प्रकृतिबन्ध/७।

- * निर्जरामें संवरकी प्रधानता—हे, निर्जरा/२।
- * संवर व निर्जराके कारणोंकी समानता-दे, निर्जरा/२/४।

२. निञ्चय व्यवहार संवरका समन्वय

१. निइचय संवरकी प्रधानतामें हेतु

- स, सा, मू, १९-६ [कथं शुद्धारमोपलम्भादेव संवर इति चेत्—(जत्था-निका)]—सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धं चेव अप्पयं लह्ड् जीको। जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लह्ड् ।१९-६। =प्रश्न-शुद्धारमाकी उपलब्धि ही संवर कैसे है ! उत्तर—शुद्धारमाको जानता हुआ, अनुभव करता हुआ जीव शुद्धारमाको ही प्राप्त करता है। और अशुद्धारमाको जानता हुआ जीव अशुद्धारमाको ही प्राप्त करता है। १९-६। (विशेष दे, संवर/१/३)
- पं. का./मू./१४२-१४३ जस्स ण विज्ञिद रागो दोसो मोहो व सञ्व-दब्वेसे । णासवित मुहं अमुहं सममुहदुक्कस्स भिवखुस्स ११४२। जस्स जदा खळु पुण्णं जोगे पावं च णिरिश विश्वस्स । संवर्णं तस्स तदा मुहास्ट्रक्वस्स कम्मस्स ११४३। — जिसे सर्वद्रव्योंके प्रति राग, द्वेष या मोह नहीं है, उस सममुख-दु.ख भिक्षुको शुभ और अशुभ कर्म आस्रवित नहीं होते ।१४२। जिसे विश्तुक्त वर्तते हुए योगमें अर्थाद मन, वचन, काय इन तीनोंमें ही जब पुण्य व पापमेंसे कोई भी नहीं होता है, तब उसे शुभ व अशुभ दोनों भावोंकृत कर्मका अर्थात पुण्य व पाप दोनोंका संबर होता है ।१४३।
- वा. अ./६३ सहजोगेस पिवसी संबरणं कुणि असहजोगस्स । सह-जोगस्स विरोहो सुद्धुवजोगेण संभविद । चनन, वचन, कायकी शुभ प्रवृत्तियोंसे अशुभयोगका संबर होता है और शुद्धोपयोगसे शुभयोगका भी संबर हो जाता है हिश (और भी दे संवर/२/४)
- दे धर्म/ः/१ [अन तक साधु आत्मस्वरूपमें लीन रहता है तब तक ही सकल विकल्पोंसे विहीन उस साधुको संवर व निर्फरा जाननी चाहिए । }

२. व्यवहार संवर निर्देशमें हेतु

- ना, आ /६२ पंचमहव्यसणसा अविरमणणिरोहणं हवे णियमा। कोहादि आसवाणं दाराणि कसायरिहयपछगेहिं(१)।६२। ⇒पाँच महावतोसे नियमपूर्वक पाँच अविरत्ति रूप परिणामोंका निरोध होता है और कवाय रहित परिणामोंसे क्रोधादि रूप आसवोंके द्वारा रुक जाते हैं।६२।
- ध. ७/२,१,७/गा. २/६ मिच्छत्ताविरदी विय कसायजोगा य आसवा होति ।२। ⇒मिध्यास्व, अविरति, क्षाय और योग ये कर्मोंके आसव हैं। तथा (इतसे विपरीत) सम्यग्दर्शन, विषयविरक्ति, क्षायनिग्रह, और मन, वचन, कायका निरोध ये सवर हैं।२।

- स, सि./१/सूत्रसं/पृष्ठ सं./पक्ति सं. कायादियोगनिरोधे सित तिन्निनित्ते कर्म नासवतीति संवरप्रसिद्धिरवगन्तव्या। (४/४११/६)। तथा प्रवर्तमानस्यासंयमपरिणामनिमित्तकमांसवात्संवरी भवति। (१/४१६/११)। तान्येतानि धर्मव्यपदेशभान्नि स्वगुणप्रतिपक्षदोषसद्धा-वनाप्रणिहितानि संवरकारणानि भवन्ति। (६/४१३/६)। एवमनित्य-स्वावनुप्रेक्षासंनिधाने उत्तमक्षमादिधारणान्महान् संवरो भवति। (७/४१६/७)। एवं परिषहान् असंकल्पोपस्थितान् सहमानस्या-संवत्ववेतसो रागादिपरिणामासवित्रोधान्महान्संवरो भवति। (१/४१८/१)।
- रा. बा./१/१८/१४/६१८/१ तदेतचारित्रं पूर्वासविनरोधकारणत्वास्परम-संबरहेतुरवसेयः। = १, काय आदि योगोंका निरोध होनेपर योग निमित्तक कर्मका आमव नहीं होता है, इसलिए गुन्निसे संवरकी सिद्धि जान लेमा चाहिए।४। (रा. वा./१/४/४११/२०); (त. सा (६/५) । इस प्रकार समितियों रूप प्रवृत्ति करनेवालेके असंयम-ह्मप परिणामोंके निमित्तरे होनेवाले कर्मीके आस्रवका संवर होता है ।६। ('रा. वा./१/६/६/६१४/३२); (ता. सा./६/१२) । इस प्रकार जीवनमें उतारे गये स्वगुण तथा प्रतिपक्षभूत दोषोंके [सङ्भावमें यह लाभ और यह हानि है, इस तरहकी भावनासे प्राप्त हुए ये धर्मसंज्ञावाले उत्तम क्षमादिक संवरके कारण हैं ।६। (रा.वा./१/ ६/२७/४८६/३२); (त. सा./६/२२)। इस प्रकार अनित्यादि अनु-प्रक्षाओंका साजिध्य मिलनेपर उत्तमक्षमादिके धारण करनेसे महात् संबर होता है।७। (रा. बा./१/७/११/६०७/५); (त. सा./६/२६)। इस प्रकार जो संकल्पके बिना उपस्थित हुए परिषहोंको सहन करता है, और जिसका चित्त संबतेश रहित है, उसके रागादि परिणामोंके आस्रवका निरोध होनेसे महान संबर होता है।१। (रा. वा./१/१/-२८/६१२/२१); (त. सा./६/४३)। २. यह सामायिकादि भेदरूप चारित्र पूर्व आसर्वोंके निरोधका हेतु होनेसे परमसंवरका हेतु है। (त. सा./६/५०)

३, व्रत वास्तवमें शुभास्रव हैं संवर नहीं

- स. सि./६/१ की उत्थानिका/३४२/२ आसवपदार्थी व्याख्यातः । तत्प्रा-रम्भकाले एवोक्तं 'शुभः पुण्यस्य' इति तत्सामान्येनोक्तम् । तिद्विशेष-प्रतिपत्त्यर्थं कः पुनः शुभ इत्युक्ते इदमुच्यते—हिंसानृतस्तैयाञ्चलपरि-ग्रहेभ्यो विरतिर्वतम् ।१। = आसव पदार्थका व्याख्यान करते समय उसके आरम्भमें 'शुभ योग पुण्यका कारण है' यह कहा है (त. सू./ ६/३)। पर वह सामान्य रूपसे ही छहा है अतः विशेषरूपसे उसका ज्ञान करानेके लिए शुभ क्या है ऐसा पूछनेपर आगेका सूत्र कहते हैं कि हिंसा आदिसे निवृत्त होना वत है।
- रा. बा, 19/१ की उत्थानिका 1/23१/४ कैस्ट किया विशेषाः प्रारम्यमाणा-स्तस्यास्रवा भवन्ती ति । अत्रोच्यते — वितिभाः । — प्रश्न-- वे किया विशेष कीन सी हैं, जिनके द्वारा कि उसके प्रारम्भ करनेवालों को पुष्यका आसव होता है १ उत्तर — वतस्त्रप कियाओं के द्वारा पुष्यका आसव होता है।
- दै. पुण्य/१/६ [जीव दया, शुभ योग व उपयोग, सरलता, भक्ति, चारित्रमें प्रीति, यम, प्रशम, बत, मैत्री, प्रमोद, कारण्य, माध्यस्थ्य, आगमाभ्यास, मुगुप्तकाय योग, व कायोत्सर्ग आदिसे पुण्य कर्मका आसव होता है।]
- दे. तत्त्व/२/६ [पुण्य और पाप दोनों तत्त्व आसवमें अन्तर्भृत हैं।]
- दे, बेदनीय/४ (सराग संयम आदि साताबेदनीयके आस्वके कारण हैं।)
- दे. आयु/२/११ [सराग संयम व संयमासंयम आदि देवायुके आसवके कारण हैं।]
- दे. चारित्र/१/४ [बत, समिति, गुप्ति आदि शुभ प्रवृत्ति रूप चारित्र है।]

दे. मनोयोग/१ [वत, सिमिति, शोल, संयम आदिको शुभ मनोयोग जानना चाहिए।]

४. व्रतादिसे केवल पापका संवर होता है

- पं. का,/मू,/१४१ इंदियकसायसण्णा णिग्गहिदा जेहि सुट्ठु मग्गम्मि । जावत्तावत्तेहिं पिहियं पात्रासविच्छदं। —जो भलीभाँति मार्गमें रहकर इन्द्रिय, कषाय और संज्ञाओका जितना निग्रह करते हैं जतना पापआसवका छिद्र जनका बन्द होता है।
- द्र. सं /टी./१५/१४९/६ एवं वतसमितिगुप्तिधर्मद्वादशानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्राणां भावसंवरकारणभूतानां ग्रह्व्याख्यानं कृतं. तत्र निश्चग्रस्तत्रयसाधकव्यवहार्रत्नत्रयरूपस्य शुभोपयोगस्य प्रतिपादकानि यानि
 वाक्यानि तानि पापास्रवसंवरणानि ज्ञासव्यानि । यानि तु व्यवहाररत्तत्रयसाध्यस्य शुद्धोपयोगलक्षणनिश्चयर्गतत्रयस्य प्रतिपादकानि
 तानि पुण्यपापद्वयसवरकारणानि भवन्तीति ज्ञातव्यम् । स्हस्
 प्रकार भावसंवर काकारणभूत वतःसमितिः गुप्ति, धर्म्, अनुप्रेक्षाः परीषहजय और चारित्र इन संबका जो पहले व्याख्यान किया है (दे.
 संवर/१/४) उस व्याख्यानमें निश्चय रत्नत्रयको साधनेवाला जो
 व्यवहार रश्नत्रयरूप शुभोपयोग है. उसका निरूपण करनेवाले जो
 वाक्य हैं वे पापास्रवके संवरमें कारण जानने चाहिए। और जो
 व्यवहार रत्नत्रयसे साध्य शुद्धोपयोग रूप निश्चय रत्नत्रयके प्रतिपादक वाक्य है वे पुण्य तथः पाप इन दोनों आस्रवोंके संवरके कारण
 होते हैं, ऐसा समफना चाहिए।
- दे. संवर/२/२ [शुभयोगरूप प्रवृत्तिसे अशुभयोगका संवर होता है और शुद्धोपयोगसे शुभयोगका भी] ।
- दे, निर्जरा/१/१ [सरागी जीवोंको निर्जरासे यद्यपि अशुभकर्मका विनाश होता है, पर साथ ही शुभकर्मोंका बन्ध हो जाता है। }
 - * सम्यग्दष्टिको ही संवर होता है मिथ्यादृष्टिको नहीं —दे मिथ्यादृष्टि/४/२।
 - ★ प्रवृत्तिके साथ भी निवृत्तिका अंश —ने चारित्र/श्०।

५. निवृत्यंशके कारण ही बतादि संवर हैं

- स. सि./७/१/३४३/७ ननु चास्य व्रतस्यासबहेतुत्वमनुषपन्नं संवरहेतुष्व-न्तर्भावात् । संवरहेतवो बङ्यन्ते गुप्तिसमित्यादयः । तत्र दशविधे धर्मे संयमे वा बतानामन्तर्भाव इति । नैष दोषः; तत्र संबरो निवृत्ति-लक्षणो वक्ष्यते । प्रवृत्तिश्चात्र दृश्यते: हिसानृतादत्तादानादिपरित्यागे गुप्त्यादिसंवरपरिकर्म-अहिंसासत्यवचनदत्तादानादिक्रियाप्रतीतेः। त्वाच्च । व्रतेषु हि कृतपरिकर्मा साधुः सुखेन संवरं करोतीति ततः पृथक्रवेनोपदेशः कियते। = प्रश्न - यह वत आसवका कारण है यह बात नहीं बनती क्यों कि संवरके कारणों में इसका अन्तर्भाव होता है। आगे गुप्ति, समिति आदि संवरके कारण कहनेवाले हैं। वहाँ दस प्रकारके धर्मों में एक संयम नामका धर्म बताया है। उसमें ब्रतीका अन्तर्भाव होता है। उत्तर - यह कोई दोष नहीं है, क्यों कि वहाँ निवृत्तिहरूप संवरका कथन करेंगे, और ग्रहाँ प्रवृत्ति देखी जाती है; क्यों कि, हिंसा, असत्य और अदत्तादान आदिका त्याग करनेपर भी अहिसा, असत्य, वचन और दत्तवस्तुका प्रहण आदिरूप क्रिया देखी जाती है। दूसरे ये वत, गुप्ति आदि रूप संवरके अंग हैं। जिस साधुने वर्तीकी मर्यादा कर ली है, वह मुख पूर्वक संवर करता है, इसलिए बतोंका अलगसे उपदेश दिया है। (रा. वा /७/१/१०-१४/५३४/१४)।
- त. सा./६/४३, ४१ एवं भावयतः साधोर्भवेद्धर्ममहोद्यमः। ततो हि निष्प्रमादस्य महान् भवति संवरः १४३। तपस्तु वश्यते लिद्ध सम्य-ग्भावयतो यतः। स्नेहश्रयात्तथा योगरोधाइ भवति संवरः १४१। = इस प्रकार १२ अनुप्रेक्षाओंका चिन्तवन करनेसे साधुके धर्मका महान् उद्योत होता है, ऐसा करनेसे उसके प्रमाद दूर हो जाते हैं

और प्रमाद रहित होनेसे कर्मीका महात् संवर होता है। ४३। तप आगे कहेंगे। उसकी यथार्थ भावना करनेवाले योगीका राम-द्वेष नष्ट हो जाता है, और योग भी रुक जाते हैं। इसलिए उसके संवर सिद्ध होता है। ४१।

दे. जपयोग/II/३/३ [जितना रागांश है जतना बन्ध है और जितना बीतरागाश है जतना संबर है।]

दे. निर्जरा/२/४ [जन तक आत्मस्वरूपमें स्थिति रहती है तब तक संवर व निर्जरा होते हैं।]

संविगत-वर्गत संवर्गितकरण विधि - दे. गणित/11/१/१।

संवाद--हे. बाद।

संवास अनुमति —दे. अनुमति।

संवाह —

- ध. १३/१ १.६२/२३६/२ यत्र शिरसा धान्यमारोज्यते स संवाहः। =जहाँपर शिरसे लेकर धान्य रखा जाता है उसका नाम संवाह है।
- म. पु./१६/१७३ संवाहस्तु शिरोब्यूढपान्यसंजय इष्यते ११७३। = जहाँ मस्तक पर्यन्त र्फंचे-ऊँचे धान्यके देर लगे हों वह संवाहन कह-साता है।
- त्रि, सा./६७४-६७६ संवाह ।६७४१...सिन्धुवेसावलियतः ।६७६। = समुद्रकी वेलासे वेष्टित स्थान संवाह कहलाता है ।

संवाहन ---

ति, पः । ४/१४०० संबाहणं ति बहु बिहुरः गमहासेस सिहरत्थं । १४००। = बहुत प्रकारके अरण्यों से युक्त महापर्वतके शिखरपर स्थित संबाहन जानना चाहिए।

संवित्—स्या. म /१६/२२१/२= सम्यग्नैपरीत्येन विद्यातेऽवगम्यते वस्तुस्वरूपमनयेति संवित । = जिससे यथार्थ रीतिसे वस्तुका ज्ञान हो उस ज्ञानको संविद् कहते हैं।

संविति-दे. अनुभव/१।

संवृत — स. सि./२/३२/१०७/११ सम्यावृतः संवृतः । संवृत इति दुरुपलक्ष्यप्रदेश इत्युच्यते । स्थले प्रकारसे जो ढका हो उसे संवृत कहते हैं। यहाँ संवृत ऐसे स्थानको कहते हैं जो देखनेमें न आवे। (विशेष दे, योनि); (रा. वा./२/३२/३/१४४/२६)

संवृति सत्य - दे सत्य/१।

संवेग- १. संसारसे मयके अर्थमें

स. सि./६/२४/३३८/११ संसारदुः लाखिरयभीरुता संवेगः स्संसारके दुःखोंसे नित्य डरते रहना संवेग है (रा. वा./६/२४/४/५२६/२५); (चा. सा /५३/६); (भा. पा./टी./७७/२२१/७)

भ.आ./वि /३६/१२७/१३ संविग्गो संसाराइ द्रव्यभावस्त्पात् परिवर्तन ति भयमुपगतः । =संवेग अर्थात् द्रव्य व भावस्त्रपः पंचपरिवर्तन संसारसे जिसको भय उत्पन्न हुआ है ।

२. धर्मोत्साहके अर्थमें

- ध. <a>८.४९/<
 ध. <a>८.४९/<
 श्रिम संतो संतो णाम । लद्धीए संवेगो लिद्धसंवेगो, तस्स संपण्णदा संपत्ती । <a>सम्पग्दर्शन, सम्यग्झान और सम्यक्चारित्रमें जो जीवका समागम होता है उसे लिब्ध कहते हैं, और हर्ष व सात्त्विक भावका नाम संवेग हैं । लिब्धिसे या लिब्धमें संवेगका नाम संवेग हैं । लिब्धिसे या लिब्धमें संवेगका नाम संवेग सम्पन्नताका अर्थ सम्प्राप्ति है ।
- द्ध. सं/दी./३६/११२/७ पर उद्दधृत धम्मे य धम्मफलिम्ह दंसणे य हरिसी य हुंति संवेगी। = धर्ममें, धर्मके फलमें और दर्शनमे जो हर्ष होता है, वह संवेग है।

- पं. धः/जः/४३१ संवेगः परमोक्षाहो धर्मे धर्मफले चित्तः। सधर्मेष्वनुरागो वा प्रोतिर्वा परमेष्टिषु ।४३१। =धर्ममें व धर्मके फलमें आतमाके परम जस्साहको संवेग कहते हैं, अथवा धार्मिक पुरुषोमे अनुराग अथवा पंचपरमेष्ठीमें प्रीति रखनेको सबेग कहते हैं।४३१।
 - * संवेगोत्पादक कुछ भावनाएँ--दे. वैराग्म/२।
 - अकेले संवेगसे तीर्थंकरत्वके बन्धकी सम्मावना

-वे भावना/२।

२. संवेगमें शेष १५ भावनाओं का समावेश

ध. =/३.४१/=६ /६ कधं लद्धिसंवेगसंपयाएं सेसकारणाणं संभवो। ण सेसकारणेहि विणा लद्धिसंवेगस्स संपया जुङ्जदे, विरोहादो। लद्धि-संवेगो णाम तिरयणदोहलओ, ण सो दंसणविमुङ्भदादीहि विणा संपुण्णो होदि, विष्पाञ्चमेहादो हिरण्णमुत्रण्णादीहि विणा अञ्चो व्या तदो अष्पणो अंतोखित्तसेसकारणा लद्धिसंवेगसंपया छट्टं कारणं। = प्रश्न - लिब्बसंवेग सम्पन्नतामें शेष कारणोंकी सम्भावना कैसे है १ उत्तर--क्योंकि शेष कारणोंके लिना विरुद्ध होनेसे लिब्धसंवेगकी सम्पदाका संयोग ही नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि रत्नत्रय जनित हर्षका नाम लिब्धसंवेग है। और वह दर्शनविशुद्धता-दिकोंके विना सम्पूर्ण होता नहीं है, क्योंकि, इसमें हिरण्य मुवर्णा-दिकोंके विना धनाढ्य होनेके समान विरोध है। अतएव शेष कारणों-को अपने अन्तर्गत करनेवाली लिब्धसंवेग सम्पदा तीर्थकर कर्म-बन्धका छठा कारण है।

संवेजनीकथा--_{दे कथा।}

संव्यवहरण--आहारका एक दोष-दे. आहार/11/४/४।

संशय यह सीप है या चाँदी इस प्रकारके दो कोटिमें भू तनेवाले झानको संशय कहते हैं। देव व धर्म आदिके स्वरूपमें यह ठीक है या नहीं ऐसी दोलायमान श्रद्धा संशय मिश्यात्व है। सम्यग्दर्शनमें क्षयोपशमकी हीनताके कारण संशय व संशयातिचार हो सकते हैं पर तत्त्वीपर इद प्रतीति निरन्तर बने रहनेके कारण उसे संशय मिश्यात्व नहीं होता।

१. संशय सामान्यका लक्षण

- रा. वा./१/६/१/३६/११ सामान्यप्रत्यक्षाइविशेषाप्रत्यक्षाइविशेषस्मृतेश्च संश्यः ।
- रा. वा./१/१६/१३/६१/२७ कि शुक्लमुद्ध कृष्णम् इत्यादि विशेषाप्रतिपत्तेः संश्यः । च१, सामान्य धर्मका प्रत्यक्ष होनेपर और विशेष धर्मका प्रत्यक्ष न होनेपर किन्तु उभय विशेषोंका स्पर्श होनेपर संशय होता है। (और भी दे. अनयह/२/१)। २. 'यह शुक्ल है कि कृष्ण' इत्यादिमें विशेषताका निश्चय न होना संशय है।
- न्या. दी./१/१६/६/६ विरुद्धानेककोटिस्पर्शिज्ञानं संशयः, यथा स्थाणुर्व पुरुषो वेति । स्थाणुपुरुषसाधारणोद्दर्धतादिधर्मदर्शनात्तद्विशेषस्य वक्रकोटरिशरःपाण्यादेः साधकप्रमाणाभावादनेककोट्यवकिम्बद्धं ज्ञानस्य । = विरुद्ध अनेक पक्षोंका अवगाहन करने वाले ज्ञानको संशय कहते हैं । जैसे—'यह स्थाणु है या पुरुष हैं,' स्थाणु और पुरुषमें सामान्य रूपसे रहने वाले ऊँचाई आदि साधारण धर्मोंके देखने और स्थाणुगत टेढ़ापन, कोटरत्य आदि तथा पुरुषगत शिर, पैर आदि विशेष धर्मोंके साधक प्रमाणोंका अभाव होनेसे नाना कोटियोंको अवगाहन करने वाला यह संशय ज्ञान उत्पन्न होता है । (स. भ. त /=0/8), (न्या. सू./टो./१/१/२९/२९/२६)।

स भ. तं./=/४ एकबस्तुविशेष्यकविरुद्धनानाधर्मप्रकारकज्ञानं हिं संक्षयः । =एक ही वस्तु निषयक, विरुद्ध नानाधर्म विशेषणक युक्त ज्ञानको संशय कहते हैं ।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

श्ली. वा /१/१/३३/न्या. ४५६/भाषाकार/६५१/९४ भेदाभेदात्मकत्वे सदसदास्मकत्वे वा मस्तुनोऽसाधारणाकारेण निश्चेतुमदान्यत्वं संशयः । —सम्पूर्ण पदार्थोको अस्ति-नास्तिरूप या भेद अभेदारमक स्वीकार करनेपर, वस्तुका असाधारण स्वरूप करके निश्चय नहीं किया जा सकता है, अतः संशय दोष आता है।

२. संशयके भेद व उनके लक्षण

न्या.स. व भाष्यका भाषार्थ/१/१/२१/२६-३० .समानानेकधर्मोपपत्तेर्वि-प्रतिपत्तेरुपलब्ध्यनुपलब्ध्यव्यवस्थातरन् विशेषापेक्षो विभर्शः संशयः। 🚁 १. समान धर्मके ज्ञानसे विशेषकी अपेक्षासहित अवमर्शको अंशय कहते हैं जैसे -द्र स्थानसे सूखा वृक्ष देखकर यह जया अस्तु है ! स्थाण है या पुरुष ! ऐसे अनिश्चित रूप ज्ञानको संशय कहते हैं। २, अनेक धर्मीका ज्ञान होनेपर यह धर्म किसका है ऐसा निश्चय न होना संदाय है। जैसे-यह सद् नामका धर्म द्रव्यका है, गुण-का है अथवा द्रवय गुण होनोंका है। ३, विप्रतिपत्ति अर्थात पर-स्पर विरोधी पदार्थीको साथ देखनेसे भी सन्देह होता है। जसे-एक शास्त्र कहता है कि आत्मा है, दूसरा कहता है कि नहीं, दोसें से एकका निरुषय कराने वाला कोई हेतु मिलता नहीं, उसमें तत्त्वका निश्चय न होना संद्राय है। ४, उपलब्धिकी अन्यवस्था-से भी सन्देह होता है, जैसे सत्य, जल, तालान आदिमें और असरय किरणींमें। फिर कहीं प्राप्ति होनेसे यथार्थके निश्चय कराने वाले प्रमाणके अभावसे क्या सत्का ज्ञान होता है या असत्का । यह सन्देह वा संशय होना । १. इसी प्रकार अनुपर्वान्धकी अव्यवस्था-से भी संशय होता है। पहले लक्षणमें तुरुष अनेक धर्म जानने योग्य बस्तुमें है और उपलब्धि यह ज्ञातामें है। इतनी विशेषता है।

३. संशय मिध्यात्वका लक्षण

स. सि./८/१/३७६/७ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि कि मोक्षमार्गः स्याद्धाः न वेरयन्यतरपक्षापरिग्रहः संदायः । स्तम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्रः ये तीनों मिलकर मोक्षमार्ग है या नहीं, इस प्रकार किसी एक पक्षको स्वीकार नहीं करना संदाय मिथ्यादर्शन है। (रा, वा,/८/१/२५/६४/२१), (त. सा,/७/६)।

भ. आ /वि./१६/१८०/२० संसयिदं संशयितं किंचित्तत्वमिति। तत्त्वानवधारणात्मकं संशयज्ञानसहवारि अश्रद्धानं संशयितम्। न हि संविहानस्य तत्त्विवयं श्रद्धानमस्ति इदमित्यमेवेति। निश्चयप्रस्थयसहभावित्वात् श्रद्धानस्य। — जिसमें तत्त्वौका निश्चय नहीं है ऐसे संशयज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाचे श्रद्धानकी सश्य मिध्यात्व कहते हैं। जिसको पदार्थोंके स्वरूपका निश्चय नहीं है उसको जोबादिकोंका स्वरूप ऐसा ही है अन्य नहीं है ऐसी तत्त्व विषयक सन्त्वी श्रद्धा नहीं रहती है। जब सन्त्वी श्रद्धा होती है तब निश्चय ज्ञान होता है।

घ. ८/३,६/२०/८ सब्बत्थ संदेहो चेन णिच्छओ णरिश्न ति अहिणिवेसो संसप्तमच्छत्तं। - सर्वत्र सन्देह ही है, निश्चय नहीं है, ऐसे अभि-निवेशको संशय मिथ्यात्व कहते हैं।

नि- सा./ता. वृ./४१ संशयः तावत् जिनो'वा शिक्षो वा देव इति। = जिनदेव होंगे या शिवदेव होंगे, यह संशय है।

गो. जी./जी प्र./१६/४१/४ इन्द्रो नाम स्वेतास्वरगुरुः तदादयः संशय-मिथ्यादृष्टयः। - इन्द्र नामक स्वेतास्वरोंके गुरुको आदि देकर संशय मिथ्यादृष्टि हैं।

ह, सं./टी./४२/१८०/६ सुद्धात्मतत्त्वादिश्रतिपादकमागमज्ञानं कि वीत-स्वग्रसर्वज्ञप्रणीतं भविष्यति परसमयप्रणीतं त्रेति, संशयः। = शुद्ध आत्मतत्त्वादिका प्रतिपादक तत्त्वज्ञान, त्रया वीतराग सर्वज्ञ द्वारा कहा हुआ सत्य है या अन्य मतियों द्वारा कहा हुआ सत्य है, यह संशय है।

४. संशय, बिपर्यय व अनस्यवसायमें अन्तर

न्या, दो./१/१/११ इदं हि नानाकोट्यवलम्बनाभावान्न संशयः विप-रीतैककोटिनिश्चयाभावान्न विपर्यय इति पृथगेव । स्यह (अन-ध्यवसाय) ज्ञान नाना प्रक्षोंका अवगाहन न करनेसे न संशय है और विपरीत एक पक्षका निश्चय न करनेसे न विपर्यय है।

५. शंका अतिचार व संशय मिथ्यास्वमें अन्तर

भ आ /बि /४४/१४३/१ ननु सति सम्यवस्ये तदतिचारो युज्यते। संशयरच मिथ्यात्वभावहति । तथाहि सिथ्यात्वभेदेषु संशयोऽपि गणितः। "सत्यप्र संश्रमे सन्यग्दर्शनमस्त्येवेति अतिचारता मुक्ता। कथं। श्रुतज्ञानावरणक्षयोष्क्रमविशेषाभाषात् ... यदि नामनिर्णयो नोपजायते। तथापि तु इदं यथा सर्वविदा उपलब्धं तथै वेति अद्-धेहमिति भावयतः कथं सम्यक्ष्यवहानिः। एवं भूतश्रद्धानरहितस्य को बेति किमन तत्क्विमिति ... तं मिन्छत्तं जमसहहणं तचाण होदि अत्थाण' मिति । - कि च छद्मस्थाना रज्जूरगस्थाणुपुरुषादिषु किमियं रज्जूरगः, स्थाणुः पुरुषो वा किमिरयनेकः संशयप्रत्ययो जायते इति ते सम्बन्द्रष्टयः स्युः । = प्रश्न - यदि सम्बन्दर्शन हो तो उसका शंका अतिचार भानना योग्य है यरन्तु संशय मिथ्यापनेको भारण करता है। । अभिध्यात्वके भेदोंमें आचार्यने इसकी गणना भो की है। उत्तर-आपका कहना ठीक है, संशायके सद्भावमें भी सम्यवस्य रहता ही है। अतः संशयको अतिचारपना मानना युक्तियुक्त है इसका स्पष्टोकरण ऐसा करते हैं। · · विशिष्ट क्षयोपशम त होता अइत्यादि कारणोंसे बस्तुस्वरूपका निर्णय नहीं होता. तो भो जैसा सर्वज्ञ जिनेश्वरने वस्तु स्वरूप जाना है वह वेसी ही है ऐसी मैं अद्धा रखता हूँ, ऐसी भावना करने वाले भव्यके सम्यक्तको हानि कैसे होगी. उसका सम्यग्दर्शन समल हागा परन्तु सष्टन होगा ! . . जपर्युक्त अद्भासे जो रहित है वह हमेशा संशयाकुलित ही रहता है, बास्तविक तत्त्वस्वरूप बया है। उसको कौन जानता है कुछ निर्णय कर नहीं सकते ऐसी उसकी मित रहती है ...संशय मिथ्यात्वसे सच्चे तत्त्वके प्रति अरुचि भाव रहता है । ... खदास्थोंको भी डोरी, सर्व, खूँट, मनुष्य इत्यादि पदार्थी में यह रज्जू है। या सर्प है। यह खूँट है या मनुष्य है इत्यादि अनेक प्रकारका संशय उत्पन्न होता है तो भी वे समयग्रहार हैं।

अन. घ 1२/७१ विश्वं विश्वविदा ग्राम्युपगतः शङ्कास्तमोहोदयाज्-ज्ञानावृत्त्युद्यान्म् तिः प्रवचने दोलायिता संशयः । दष्टि निश्वय-माश्रितां मिलनयेत्सा नाहिरज्ज्वादिगा-या मोहोदयसंशयात्त् दरुचिः स्यात्सा तु संशीतिहक् ।७१। — मोहोदयके उदयका अस्त होनेसे प्रथावत् विश्वास करनेवाले जीवको ज्ञानावरण कर्मके उदयसे तत्त्वोके विश्वयमें दोलायमान बुद्धिको संशय कहते हैं। इस संशयको ही शंका नामक अतिचार कहते हैं बही निश्चय सम्यादर्शनको मिलन करती है। सर्प रज्जु आदिके विषयमें उत्पन्न शंका उसको मिलन नहीं करती। अर्थात् जिस शंकासे सम्यादर्शन मिलन हो उसे शंका अतिचार कहते हैं। जो शंका मोहनीय कर्मके उदयसे उत्पन्न हो और जिससे सर्वज्ञोक्त तत्त्वोंमें अश्रद्धा हो उसको संशय मिथ्यात्व कहते हैं।

* संशास मिध्यास्त्र व मिश्र गुणस्थानमें अन्तर

— वे सिद्यार ।

* सम्यन्दृष्टिको भी कदाचित् पदार्थके स्वरूपमें संशय ---दे. निःशंकित ।

* सम्यग्दष्टिको संशयके समय कर्थचित् अन्धश्रद्धान ्या अश्रद्धान_{न्दि, श्रद्धान/२ ।}

संशयवचनी भाषा—_{हे. भाषा ।} संशयसमा जाति —

न्या. सू./मू. व भाष्य/१/११/१४/२१३/१३ सामान्यदृष्टान्तयोरिन्द्रिय-करवे समाने नित्यानित्यसाधम्यत्सिश्यसमः ११४। अनित्यः शब्दः प्रयत्नान्तरीयकत्वो धटवित्युक्ते हेतौ संशयेन प्रत्यविष्ठिते । सित् प्रयत्नानन्तरीयकत्वे अस्त्येवास्य नित्येन सामान्येन साधम्यमैन्द्रिय-कत्वमस्ति च घटेनानित्येनातो नित्यानित्यसाधम्यदिनिवृत्तः संशय-इति अस्योत्तरम् ११४। —सामान्य (शब्दत्व) और दृष्टान्त (घट) दोनोंके ऐन्द्रियकत्व समान होनेपर नित्य, अनित्योके साधम्यसै संशयसम प्रतिवेध उठा दिया जाता है ११४। जैसे —शब्द अनित्य है प्रयत्नसे उत्पन्न होनेवाले घटकी भाँति । ऐसा कहनेपर हेतुमें सन्देह लड़ा रहता है । प्रयत्नकी समानता रहनेपर भो इसका नित्य सामान्यके साथ ऐन्द्रियकत्व रूप साधम्य है और अनित्य घटके साथ भी समानधर्मता है, इसलिए नित्यानित्यके साधम्यसे संदेह निवृत्त न हुआ। (रलो, वा. र/१/१/न्या. ३८०/५०६/१३ में इसपर चर्चा)।

संशयानेकान्तिक हेत्वाभास—हे. व्यभिचार। संशयासिद्ध हेत्वाभास—हे. असिद्ध।

संश्लेश बन्ध--दे श्लेष।

- संसक्त सांधु र. भ. आ /मू /१३१३-१३१४ इंदियकसायदोसेहिं अथवा समण्णजोगपरितंतो । जो उन्वायदि सो होदि णियत्तो साधु-सस्थादो ।१३१३। इंदियकसायवसिया केई ठाणाणि ताणि सन्वाणि । पाविज्जते दोसेहि तेहि सन्वेहिं संसत्ता ११३१४। —इन्द्रिय और कषायों के दोषसे अथवा सामान्य ध्यानादिकसे विरक्त होकर जो साधु चारित्रसे भ्रष्ट होता है वह साधु सार्थ से अजग होता है ।१३१३। इन्द्रिय विषय और कषायके वशीभूत कितनेक भ्रष्ट मुनि सर्व दोषों से युक्त होकर सर्व अशुभ स्थानको प्राप्ति करानेवाले परिणामोंको प्राप्त होते हैं ।१३१४।
- भा आ /वि /११४०/१७२/२४ संसक्तो निरूप्यते—प्रियचारित्रे प्रिय-चारित्रः अप्रियचारित्रे हब्दे अप्रियचारित्रः, नटवदनेकरूप्याही संसक्तः, पञ्चिन्द्रियेषु प्रसक्तः विविधगौरवप्रसिबद्धः, स्त्रीविषये संबत्तेशसहितः, गृहस्थजनप्रियश्च संसक्तः। मसंसक्त मुनिका वर्णन— ऐसे मुनि चारित्रप्रिय मुनिके सहवासंसे चारित्रप्रिय और चारित्र-अप्रिय मुनिके सहवाससे चारित्र अप्रिय बनते हैं। नटके समान इनका आचरण रहता है। ये संसक्त मुनि इन्द्रियोंके विषयमें आसक्त रहते हैं, तथा तोन प्रकार गारवों में आसक्त होते हैं। स्त्रीके विषयमें इनके परिणाम संबत्तेश युक्त होते हैं। गृहस्थोंपर इनका विशेष प्रम होसा है।
- षा. सा./१४४/१ १० मन्त्रवैद्यकज्योत्तिष्कोपजीवी राजादिसेवकः संसक्तः ।
 जो मन्त्र, वैद्यक वा ज्योतिष शास्त्रसे अपनी जोविका करते हैं
 और राजा आदिकोंको सेवा करते हैं वे संसक्त सांधु हैं। (भा, पा./ टी./१४/१३७/२०)। २. संसक्त सांधु सम्बन्धी विषय— दे. सांधु/६।
- संस्यां १. स्या. म./२३/२०४/२८ संसर्गे तु भेदः प्रधानम् अभेदोगौण इति विशेषः। संसर्गमें भेदकी प्रधानता और अभेदकी
 गौणता होती है। (स. भं. त./३३/२१)। २. संसर्गकी अपेक्षा
 वस्तुमें भेदाभेद—दे. सप्तभंगी/४/८:।
- संसार --- संसरण करने अथित जन्म मरण करनेका नाम संसार है। अनादिकालसे जन्म मरण करते हुए इस जीवने एक-एक करके लोकके सर्व परमाणुओंको, सर्व प्रदेशोंको, कालके सर्व समगोंको, सर्व प्रकारके कषाय भावोंको और नरकादि सर्वभवोंको अनन्त-अनन्त-

बार ग्रहण करके छोड़ा है। इस प्रकार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ब भवके भेदसे यह संसार पंच परिवर्तन रूप कहा जाता है।

१. संसार सामान्य निर्देश

१. संसार सामान्यका रूक्षण

१. परिवर्तन

स. सि./२/१०/१६४/८ संसरणं संसारः परिवर्शनमित्यर्थः।

- स. सि./१/७/४१६/१ कर्म दिपाकवद्यादारमनो भवान्तरावाधिः संसारः।
 —१. संसरण करनेको संसार कहते हैं जिसका अर्थ परिवर्तन है।
 २. कर्मके विपाकके वदासे आत्माको भवान्तरकी प्राप्ति होना संसार है। (रा. वा./—२/१०/१/१२४/१६; १/१/८/८८/२; १/७/३/-६००/२८)।
- का. अ /मू / ३२-३३ एक चयदि सरीर अण्णं गिण्हेदि णवणवं जीवो ।
 पुणु पुणु अण्णं अण्णं गिण्हिदि मुंचेदि बहु मारं ।३२। एवं जं संसरणं
 णाणा-देहेसु होदि जीवस्स । सो संसारो भण्णदि मिच्छ-कसाएहि जुत्तस्स ।३३। — जीव एक शरीरको छोड़ता है और दूसरे नये शरीरको ग्रहण करता है । पश्चाद उसे भी छोड़कर दूसरा नया शरीर धारण करता है । इस प्रकार अनेक मार शरीरको ग्रहण करता है और अनेक मार उसे छोड़ता है । मिथ्यास्य कथाय वगैरहसे ग्रुक्त जीवका इस प्रकार अनेक शरीरोंमें जो संसरण (परिभ्रमण) होता है, उसे संसार कहते हैं।

२. कर्म

ध १३/५.४,१७/४४/१० संसरन्ति अनेन वातिकर्मकलापेन चतम्बु गतिः
जिन्नति वात्तिकर्मकलापः संसारः । - जिस वातिकर्म समूहके कारण
जीव चारों गतियोंमें संसरण करते हैं, वह घातिकर्म समूह
संसार है।

२. संसार असंसार आदि संसार निर्देश

रा. वा./१/७/३/६००/२८ चतुर्विधारमावस्थाः – संसारः असंसारः नो-संसारः तस्त्रितयव्यभायश्चेति । तत्र संसारश्चतसृषु गतिषु नाना-योनिविकल्पासु परिभ्रमणम् । अनागतिरसंसारः शिवपदपरमामृत-चतुर्ग तिभ्रमणाभावाद् सुलप्रतिष्ठा । नोसंसारसयोगकेवलिनः असंसारप्राप्त्यभावाच ईषरसंसारो नोसंसार इति । अयोगकेविसनः तुत्त्रित्यव्यपायः भवभ्रमणाभावात् सयोग्केवलिवत् प्रदेशपरिस्पन्दः विगमात् असंसारावाष्य्यभावाच । =आरमाकी चार् अवस्थाएँ होती हैं - संसार, असंसार, नोसंसार और इन सीनों से विलक्षण अनेक योनिवाली चारों पित्योंमें परिभ्रमण करना संसार है। फिर जन्म न लेनो—शिवप्रद प्राप्ति या परमप्तुख प्रतिष्ठा असंसार है। चतु-र्गतिमें परिभ्रमण न होनेसे तथा अभी मोक्षको प्राप्तिन होनेसे सयोगकेवलीकी जीवन्युक्त अवस्था ईष्टसंसार या नौसंसार है। अयोगकेवली इन तीनोंसे विलक्षण है। इनके चतुर्गति भ्रमण और असंसारको प्राप्ति तो नहीं है भर केवलोकी तरह शरीर परिस्पन्द भी नहीं है। जब तक शरीर परिस्पन्द न होनेपर भी आत्म प्रदेशींन का चलन होता रहता है तत्र तक संसार है। (चा.सा./१८०/३)।

३. द्रव्य क्षेत्रादि संसार निर्देश

रा. वा./१/७/३/६०१/४ द्रव्यनिमित्तसंसारश्वतुर्विधः कर्मनोकर्मवस्तु-विषयाश्रयभेदात् । तत्र क्षेत्रहेतुको द्विविधः—स्वक्षेत्रपरसेत्रविकल्पात् । लोकाकाशतुरुपप्रदेशस्यारमनः कर्मोदयवशात् संहरणियसर्पणधर्मणः हीनाधिकप्रदेशपरिणामावगाहित्वं स्वक्षेत्रससारः । सम्भूच्छ्रनगर्भो-पपादजन्मनत्रयोनिविकल्पाधालम्बनः परक्षेत्रसंसारः। कालो द्विविधः—परमार्थक्षपो व्यवहारक्षपश्चेति । तयोर्वक्षणप्राख्यारूयान्या तम । तत्र परमार्थकालवर्तितपरिस्पन्देतरपरिणामविकल्पः तत्पूर्वक-कासञ्यपदेशौपचारिककालद्रसवृत्तिः काससंसारम् । भवनिमित्तः संसारः द्वात्रिशद्विधः + पृथिव्यप्तेजोबायुकायिकाः प्रत्येकं चतुर्विधाः सृहम्बादर्पर्याप्तकापकार्ष्कभेदात् । बनस्पतिकाथिकाः द्वेधा-प्रत्येक-श्रीराः साधारणशरारोशचेति । प्रत्येकशरीरा द्वेधा-पर्याप्तका-साधारणदारीराश्चतुर्धा सूक्ष्मबादरपर्धाप्तका-प्यप्तिकविकरपात् । विकलेन्द्रिया प्रस्थेकं द्विधा पर्याप्तकापर्याक्षकवि करुवात् । पञ्चेन्द्रिशस्यतुर्धास्यस्य संज्ञिपसिकापर्याप्रकापेक्षयेति । संसारी द्वेधा स्वभावपरभावाशयात्। स्वभावी मिध्यादर्शनादि परभावी हानावरणादिवर्मरसादिः। 🖙 १. कर्म मोकर्म वस्त और विषयाश्रयके भेद्रसे द्रव्यसंसार चार प्रकारका है। २.स्वक्षेत्र , और परक्षेत्रके भेदसे **क्षेत्रसंसार** दो प्रकारका है। लोकाकाक्षके समान असंख्य प्रदेशी आत्माको कर्मोदयवश संहरण[बसपण स्वभावके कारण जो छोटे-बड़े शरीरमे रहना है वह स्वक्षेत्र संसार है। सम्मूर्छन गर्भ उपपाद आदि नौ प्रकारकी योनियोंके आधीन परक्षेत्र संसार है। ३, काल व्यवहार और पर-मार्थके भेदसे दो प्रकारका है :...परमार्थ कालके निमित्तसे होनेवाले परिस्पन्द और अपरिस्पन्दरूप परिणमन जिनमें व्यवहारकालका विभाग भी होता है कालसंसार है। ४, भवनिमित्त संसार बत्तीस प्रकारका है -सूक्ष्म, बादर और पर्याप्त व अपर्याप्तके भेदसे चार-चार प्रकारके-पृथियी, जल, तेज और बायुकायिक; पर्याप्तक और अपर्या-प्तक प्रत्येक बनस्पति - सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्तक से चार साधारण ननस्पति; पर्याप्तक और अपर्याप्तकके भेदसे दो दो प्रकार-के--होन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय: संज्ञी, असंज्ञी, पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये चार पंचेन्द्रिय इस प्रकार त्रचीस प्रकार भवसंसार हैं। १, भावनिमिक्तिक संसारके दो भेद हैं स्वभाव और परभाव । मिध्यादरीनादि स्वभाव संसार हैं तथा ज्ञानावरणादि कमीका रस परभाव संसार हैं।

प्र. सा./ता. प्र./ यस्तु परिणममानस्य द्वव्यस्य पूर्वत्तिरदशापरि-स्थागोपादानात्मकः क्रियारुक्षपरिणामः तरसंसारस्य स्वरूपम्। =परिणमन वरते हुए द्वव्यका पूर्वोत्तर दशाका त्याग-ब्रह्णात्मक क्रिया नामक परिणाम है सो वह (भाव) संसारका स्वरूप है।

प्र, सा./तः, वृ. /७/६:६ मिध्यात्वरागादिसंसरणक्ष्पेण भावसंसारे पतन्त···· = मिथ्यात्व रागादिके संसरणक्षप भाव संसारे•--

- * जितने जीव मोक्ष जाते हैं उतने ही निगोदसे निक-छते हैं—हे. मोक्ष/२।
- * निरन्तर मुक्त होते भी जोवोंसे संसार रिक्त नहीं होता--- दे. मोक्ष/६।

२. पंच परिवर्तनरूप संसार निर्देश

१. परिवर्तनके पाँच भेद

स. सि /१/१०, १६६/१ तत् परिवर्तमं पञ्चिवधं इव्धारिवर्तनं क्षेत्रपरि-वर्तनं कालपरिवर्तनं भवपरिवर्तनं भावपरिवर्तनं चेति । -परि-वर्तनके पाँच भेद हैं - इव्धारिवर्तनः क्षेत्रपरिवर्तनः, कालपरिवर्तनः, भवपरिवर्तन और भावपरिवर्तनः (स्. आ./७०४); (ध.४/१,६,४/ २२५/६); (गो. जी./जी. प्र./६६०/६८६१४)

२. द्रव्यपरिवर्तन आदिके उत्तर भेव

- स. सि./२/१०/१६५/२ द्रव्यपरिवर्तनं द्विविधम्-नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं कर्मद्रव्यपरिवर्तनं
- थ, ४/१,४,४/३२७/१० पोग्गलपरियहकास्तो तिविहोहो दि, अगहितगह= णद्धा गहिदगहणद्धा मिस्सयगहणद्धा चेदि। ≈१. द्रव्यपरिवर्तनके

दो भेद हैं—मोकर्म द्रव्यपरिवर्तन और कर्म द्रव्यपरिवर्तन। (ध. ४/१,६.४/३२६/७); (गो, जो,/जो. प्र./१६०/६८१/१४)। २. यह पुड्रगल (मोकर्म) परिवर्तनकाल तीन प्रकारका होता है— अगृहीत-ग्रहण काल, गृहीतग्रहण काल और मिश्र काल।

३. द्रव्यपरिवर्तन निर्देश

स. सि./२/१०/१६१/२ तत्र नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं नाम त्रयाणां शरी-राणां घण्णां पर्याप्तीनां च योग्या ये पुदुगला एकेन जीवेन एकस्मि-न्समये गृहीताः स्निन्धरूपवर्णगन्धर्गदिभिस्तीवमन्दमध्यमभावेन च यथावस्थिता द्वितीयादिषु समयेषु निजीर्णा अगृहीताननन्तवारान-तीत्य मिश्रकश्चानन्तवारानतीत्य मध्ये गृहीतांश्चानन्तवारानतं।त्य त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकर्मभावमापद्यन्ते यावत्ताः -बत्समुदितं नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम् । कर्मद्रव्यपरिवर्तनमुच्यते---एकस्मिन्समये एकेन जीवेनाष्ट्रविधकर्मभावेन ये गृहीताः पृद्दगलाः समयाधिकामावलिकामतीत्व द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णः, पूर्वोक्ते-नैय क्रमेणत एव तेनैव प्रकारेण तस्य जीवस्य कर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावस्कर्मद्रव्यपरिवर्तमं उक्तं च-"सब्वे वि पुग्नला खल्ल कमसो भुत्तु जिम्मेया य जीवेण। असई अणंत्रखुत्तो पुग्गलपरियट्ट-संसारे।" - नोकर्मद्रव्यवस्विर्धनका स्वरूप कहते हैं - किसी एक जीवने तीन शरीर और छह पर्याप्तियोंके योग्य पुद्रगलोंको एक समयमें ग्रहण किया। अनन्तर वे पुद्रगत्त स्निग्ध या रूक्ष स्पर्श तथा वर्णऔर गन्ध आदिके द्वारा जिस तीव, मन्द और मध्यम भावसे ग्रहण किये थे उस रूपसे अवस्थित रहकर द्वितीयादि समयोंमें निर्जीर्ज हो गमे । तत्परचात् अगृहीत परमाणुओंको अनन्तवार प्रहण करके छोड़ा, मिश्र परमाणुओं को अनन्त बार ग्रहण करके छोड़ा और बीचमें गृहीत परमाणुओंकों अनन्त बार ग्रहण करके छोड़ा। तत्पश्चात जत्र उसो जीयके सर्वप्रथम ग्रहण किये गये वे हो परमाणु उसी प्रकारसे नोकर्म भावको प्राप्त होते हैं, तब यह सब मिलकर एक नोकनं द्रव्यपरिवर्तन है। अन्न कर्मद्रव्यपरिवर्तनका कथन वरते हैं - एक जीवने आठ प्रकारके क्रमुखपसे जिन पुद्रगलोंको यहण किया वे समयाधिक एक आवलीकालके बाद द्वितीयादिक समयों में भर गये। पश्चात् जो क्रम नोकर्म द्रव्यपरिवर्तनमें बतलाया है उसी कमसे वे ही पुदुगल उसी प्रकारसे उस जीवके जब कर्मभाव-को प्राप्त होते हैं तथ यह सब मिलकर एक कर्म द्रव्यपरिवर्तन होता है। ''इस जीवने सभी पुद्रगलोंको क्रमसे भोगकर छोड़ा है। और इस प्रकार यह जीव अनन्तवार पुद्रगत परिवर्तनरूप संसारमें घूमता रहता है। (भा, पा,/मृ./२२); (बा. अनु /२४); (ध. ४/१.४.४/ ६२४ -३३); (का. छ./६७); (द्र. सं /टी,/३४/१०३/४); (गो. जी./ जी. प्र./४६०/६८६/१४)

४. क्षेत्रपरिवर्तन निर्देश 🕞

१. स्त्रक्षेत्र

गो. जी./जी. प्र/६०/१११/२० स्वक्षेत्रारिवर्त नमुस्यते— किष्णिक्षा सूक्ष्मिनगोरजवन्यावगाहनेनोरपन्नः स्वस्थिति जीवित्वा मृतः पुनः प्रदेशोत्तरावगाहनेन उत्पन्नः। एवं द्वयादिष्रदेशोत्तरक्षमेण महामत्स्यान् वगाहनपर्यन्ताः संख्यात् वनाङ् गुनप्रमित्रावगाहनविकल्पाः तेनैव जीवेन यावत्स्वीकृताः तत् सर्वं समुदितं स्वक्षेत्रपरिवर्तमं भवति। — स्वक्षेत्र परिवर्तन कहते हैं—कोई जोव सूक्ष्मिनगोदियाकी जवन्य अवगाहनासे उत्पन्न हुआ, और अपनी आयु प्रमाण जीवित रहकर मर गया। फिर वही जीव एक प्रदेश अधिक अवगाहना लेकर उत्पन्न हुआ। एक-एक प्रदेश अधिक अवगाहना लेकर उत्पन्न हुआ। एक-एक प्रदेश अधिक अवगाहना आंको कममे धारण करते-करते महामत्स्यकी उत्कृष्ट अवगाहना पर्यन्त संख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहनाके विकल्पोंको वही जीव जितने समयमें धारण करता है उतने कालके समुद्धायको स्वक्षेत्र परिवर्तन कहते हैं।

२. परक्षेत्र

बा. अणु./२६ सव्यम्हि लोयखेले कमसो तण्णस्य जण्ण उप्पण्णं। उप्पाहणेण बहुसो परिभमिदो खेलसंसारं।२६। = क्षेत्र परिवर्त नरूप संसारमें अनेकनार भ्रमण करता हुआ यह जीव तीनों लोकों में सम्पूर्ण क्षेत्रमें ऐसा कोई भो स्थान नहीं है, जहाँ पर अपनी अवगहमा वा परिणामको लेकर उत्पन्न न हुआ हो। (भा. पा./मू./२१); (स. सि./२/१० पर उद्धृत ; (प. प्र./मू./६६/प्रक्षेपक); (ध. ४/१,४.४/गा. २३/३३३); (का. अ./मू./२०); (द. सं./टी-/३६/१०३/७)।

क्षेत्रपरिवर्णनमुख्यते-सृक्ष्मनिगोदजीवो-स, सि १२/१०/१६५/१३ Sपर्याप्तकः सर्वजघन्यप्रदेशशारी सोकस्याष्टमध्यप्रदेशान् स्वशारीर-मध्ये कृत्वोत्पन्नः क्षुद्रभवेग्रहणं जीवित्वा मृतः । स एव पुनस्तेनैवाव-गाहेन द्विरुत्पत्रस्तथात्रि स्तथा चतुरित्येवं यावइ घनाङ्गुलस्यासंख्येय-भागप्रमिताकाशप्रदेशास्त्राधन्कृत्वस्त्रत्रेय जनित्वा पुनरेकैकप्रदेशाधिक-भावेत सर्जी लोक आत्मतो जन्मक्षेत्रभावमुपनीतो भवति यावचा-वरक्षेत्रपरिवर्तनस् । = जिसका इत्रीर आकाशके सबसे कम प्रदेशीपर स्थित है, ऐसा एक सुक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकजीव सोकंके आठ मध्य प्रदेशोंको अपने शरीरकें मध्यमें करके उरपंत्र हुआ और श्रुद्रभव ग्रहण कालतक जीवित रहकर भर गया। पश्चात् वही जीव पुनः उसी अवगाहनासे वहाँ दूसरी बार उत्पन्न हुआ। तीसरी बार उत्पन्न हुआ, चौथी वारं उत्पन्न हुआ। इस प्रकार अंगुलके असंख्यातवें भागमें आकाशके जिलने प्रदेश प्राप्त हो उतनी बार वहीं उत्पन्न हुआ। पुनः उसने आकाशका एक-एक प्रदेश बढ़ाकर सब लॉकको अपना जन्म क्षेत्र बनाया। इस प्रकार बहु सम्म मिलकर एक क्षेत्रपरिवर्तन होता है। (गो. जी /जी. प्र./६६०/११२/२)।

५. काल परिवर्तन निर्देश

- ना अणु,/२० अवसिपणि उस्सिपिण संमयाविसंयामु णिरवसेसामुं। जादो मुदो य नहुसो परिभमिदो कालसंसारे। —काल परिवर्तनरूप संसारमें भ्रमण करता हुआ उत्सेपिणी अवसंपिणी कालके सम्पूर्ण समयो और आविस्थिमिं अनेक नार जन्म धारणं करता है और मरता हैं। (भा. पा./यू./३६); (स. सि./२/०/१६६ पर उद्दश्वत); (ध, ४/९,६,४/गा. २४/३२२); (का. अ./मूं/६६); (द्रं. सं./टी./१५/००/१६)।
- स. सि./२/१०/१६६/६ कालपरिवर्तनमुच्यते उंरसर्पिण्याः प्रथमसमये जातः किश्विजीवः स्वाग्रुषः परिसमाप्तौ मृतः । स एव पुनिर्द्वतीयाया उत्सर्पिण्या द्वितीयासमये जातः स्वाग्रुषक्षयानमृतः । स एव पुनिर्द्वतीयाया उत्सर्पिण्यारतृतीयसमये जातः । एवमनेन क्रमेणोरसर्पिणी परिसमाप्ता । तथावसपिणी च । एवं जन्मनै रन्तर्यमुक्तम् । मरंणस्यापि नैरन्तर्यं तथेव याद्यम् । एतावरकालपरिवर्तनम् । = कोई जीव उत्सर्पिणीके प्रथम समयमें उर्पन्न हुआ और आंग्रुके समाप्त हो जाने-पर मर गया । पुनः वही जीव दूसरी उत्सर्पिणीके दूसरे समयमें उर्पन्न हुआ और अपमी आग्रुके समाप्त होनेपर मर गया । पुनः वही जीव तीसरी उत्सर्पिणोके तीसरे समयमें उत्पन्न हुआ इस प्रकारं इसने कमसे उत्सर्पिणोके तीसरे समयमें उत्पन्न हुआ इस प्रकारं इसने कमसे उत्सर्पिणो समाप्त की और इसी प्रकार अवसर्पिणो भी । यह जन्म नैरन्तर्य कहा । तथा इसी प्रकार मरणकां भी नैरन्तर्य लेना चार्य । यह सब मिजकर एक कालपरिवर्तन है । (गो, जो,/जी, प्र./१६०/६६२/१२)।

६. भच परिवर्तन निर्देश

ना, अणु./२८ णिरयां उजहण्णादिसुं जान दु उनरिंत्स वा [गा] दुगेने उजा मिक्छ त्रसंसिनेंग दु नहुसो /वि भनिट्ठ्दी क्मेमिसा ।२०। महस मिथ्यारव संयुक्त जीवने नरककी छोटीसे छोटी आयु लैकर ऊपरके ग्रैनेयक विमान तकको आयुक्रमसे अनेक बार पाकर भ्रमण किया है । (भा. पा./मू./२४); (स. सि./२/२०/१६७ पर उद्दश्त);(ध. ४/ १.४,४/गा, २४/३३३); (का. अ./मू./७०); (द्र. सं./टी./१३/-१०४/१)।

स. सि./२/१०/१६७/१ नरकगतौ सर्वजधन्यमायुर्देशवर्धसहस्राणि। तैनायुषा तन्नोरपद्मः पुनः परिभ्रम्य तेनैबायुषा जातः । एवं दशवर्षसह-स्राणां यात्रन्तः समयास्तावत्कृत्वस्तत्रैव जातो मृतः । पुनरैकैकसभया-धिकभावेन त्रयस्त्रिशस्सागरोपमाणि परिसमापितानि । ततः प्रच्युत्य तियंग्गताबन्तर्भुहृत्युः समुत्पन्नः । पूर्वोक्तेनै व क्रमेण त्रीण पण्योप-मानि तेन परिसमाप्तानि। एवं मनुष्यगतौ च। देवगतौ च नारकवर्त् । अयं तु विशेषः —एकत्रिशत्सागरोपमाणि परिसमाप्तानि यावत्तावह भवपरिवर्तनम्। = नरकगतिमें सबसे जधन्य आयु दस हजार वर्षकी है। एक जोब उस आधुसे वहाँ उत्पन्न हुआ पुनः घूम-फिरकर पुनः उसी आयुसे वहाँ उत्पन्न हुआ। इस प्रकार दस हजार वर्षके जितने समय हैं उतनी बार वहीं उत्पन्न हुआ और मर गया। पुनः आधुमें एक-एक समय बढाकर नरककी तैतीस सागर आधु समाप्तको । तदनन्तर नरकसे निकलकर अन्तर्मृहूर्त अध्युके साथ तिर्यंच गतिमें उरपन्न हुआ। और पूर्वोक्त क्रमसे उसने तिर्यंच गतिकी तीन परम आयु समाध की । इसी प्रकार मनुष्म गतिमें अन्तर्मृहूर्त से लेकर तीन परय आयु समाप्त की। तथा देवगतियों में नरक गतिके समान आयु समाप्त की । किन्तु देवगतिमें इतनी विशेषता है कि यहाँ ३१ सागर आयु समाप्त होने तक कथन करना चाहिए। [क्योंकि ऊपर नव अनुदिश आदिके देव संसार्में भ्रमण महीं करते] इस प्रकार यह सब मिलकर एक भवपरिवर्तन है। (गो. जी./जी. प्र./ k\$0/887/20)1

७. भाव परिवर्तन निर्देश

का. अनुं./२६ सक्ते पय जिद्विशि अणुभागप्पदेस बंधटु।णाणि। जीतों मिच्छं त्त्वसा भिनदो पुण भावसंसारे ।२१। = इस जीवने मिध्यास्त्रके वशमें पड़कर प्रकृति. स्थिति, अनुभाग और प्रदेशवन्धके कारणभूत जितने प्रकारके परिणाम वा भाव हैं, उन सबका अनुभव करते हुए भाव परिवर्तन रूप संसंदिमें अनेक बार भ्रमण किया है। (स. सि./ २/१०/१६६ पर उद्द्वशृत); (ध ४/१,५,४/गा. २६/३३३); (का. अ./ म /७९)।

स. सि./२/१०/१६७/१० भावपरिवर्तनमुच्यते-पञ्चेन्द्रियः सञ्ज्ञी पर्याप्त-को मिथ्यादृष्टिः कश्चिज्जीवः सर्वजधन्यां स्वयोग्यां ज्ञानावरण-प्रकृतेः स्थितिमन्तः कोदीकीदीसंज्ञिकामापद्यते । तस्य कषायाध्यं-वसायस्थानान्यसंख्येयलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि तस्स्थिति-योग्यानि भवन्ति । तत्र सर्वजधन्यकथायाध्यवसायस्थाननिमित्तान्यनु-भागांध्यवसायस्थानान्यसंख्येयलोकप्रमितानि भवन्ति। एवं सर्व-जधन्या स्थिति सर्वजधन्यं च कथायाध्यवस्थानं सर्वजधन्यमेवानु-भागबन्धस्थानमास्यन्दतस्तद्योग्यं सर्वजघन्यं योगस्थानं भवति। तेषामेव स्थितिकषायानुभागस्थानानां द्वितीयमसंख्येयभागवृद्धियुक्तं योगर्स्थानं भवति । एवं च तृतीयादिषु चतुस्थानपतितानि श्रेण्य-संख्येयंभागप्रमितानि योगस्थानानि भवन्ति । तथा तामेव, स्थिति तदेवं कवायाध्यवंसायंस्थानं च प्रतिपद्यमानस्य द्वितीयमनुभवाध्य-वसायस्थानं भवति । तस्य च योगस्थानानि पूर्ववद्वेदितव्यानि । एवं तृतीयां विष्वपि अनुभवाध्यवसायस्थानेषु आअसंरयेमलोकपरिसं-माप्तेः । एवं तामेव स्थितिमापचमानस्य द्वितीयं कषायाध्यवसाय-स्थानं भवति । तस्याप्यनुभवाध्यवसायस्थानानि च पूर्ववद्वेदित-व्यानि । एवं तृतीयादिष्वपि कषायाध्यवसायस्थानेषु आ असंस्थेय-लोकपरिसमाप्तेव द्विकेमो बेदितव्यः । उक्ताया जधन्यायाः स्थितेः समयाधिकायाः कषायादिस्थानानि पूर्वनत्। एवं समयाधिकक्रमेण आ उत्कृष्टस्थितेस्त्रिश्चरमागरीयमकौटीकौटीपरिमितायाः कषायादि-स्थानानि वैदितव्यानि । अनन्तभागवृद्धिः ... इमानि पर्द्वृद्धिस्थान नानि । हानिर्षि तथैव । अनन्तभागवृद्धयनन्तगुंगवृद्धिरहितानि

चरबारि स्थानानि । एवं सर्वेषां कर्मणां मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां च परिवर्तनकमो वेदितव्यः । तदेतत्सर्वं समुदितं भावपरिवर्तनम् । चभाव परिवर्तनका कथन करते हैं – पंचेंद्रिय संज्ञी पर्याप्तक विष्यादृष्टि कोई एक जीव ज्ञानावरण प्रकृतिकी सबसे जघन्य अपने मोग्म अन्तःकोड़ा-कोड़ी प्रमाण स्थितिको प्राप्त होता है उसके उस स्थितिके योग्य षट्स्थान पतित असंख्यात जीक प्रमाण कवाय अध्यवसाय स्थान होते हैं। और सबसे जघन्य इन कषाय अध्यवसाय स्थानीके निमित्तसे असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग अध्यवसाय स्थान होते हैं। इस प्रकार संबंधे जवन्य स्थिति, सबसे जधन्य कपाय अध्यवसाय स्थान और समसे जधन्य अनुभाग अध्यवसाय स्थानको धारण करनेवाले इस जीवके तथोग्य सबसे जघन्य योग स्थान होता है। तत्पश्चाद स्थिति कषाय अध्यवसाय स्थान और अनुभाग अध्यवसाय स्थान वहीं रहते हैं किन्तु योगस्थान दूसरा हो जाता है जो असंख्यात भाग वृद्धि संयुक्त होता है। इसी प्रकार तीसरे, चौथे आदि योग स्थानों में समक्तना चाहिए। ये सब योग-स्थान चार स्थान पतित होते हैं, और इनका प्रमाण श्रेणीके असंख्यातवें भाग है। तदनन्तर उसीं स्थिति और उसी कवाय अध्यवसाय स्थान-को धारण करनेवाले जीवके दूसरा अनुभाग अध्यवसायस्थान होता है इसके योगस्थान पहलेके समान जानना चाहिए। तात्वर्थ गह हैं कि यहाँ भी पूर्वोक्त तीनों नातें धुन रहती हैं किन्तु योगस्थान श्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं। इस प्रकार असंख्यात स्रोक प्रमाण अर्तुभाग अध्यवसाय स्थानीके होने तक तीसरे आदि अनुभाग अध्यवसाय स्थानों में जानना चाहिए। तात्पर्य यह है कि यहाँ स्थिति और कषाय अध्यवसायस्थान तो जघन्य हो रहते हैं। किन्तु अनुभाग अध्यवसाय स्थान क्रमसे असंख्यात लोक प्रमाण हो जाते हैं और एक-एक अनुभाग अध्यवसाय स्थानके प्रति जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान होते हैं। तत्पश्चात् उसी स्थितिको प्राप्त होनेवाले जोवके दूसरा कवाय अध्यवसाय स्थान होता है, इसके अनु-भाग अध्यवसाय स्थान और योगस्थान पहलेके समान जानना चाहिए। इस प्रकार असंख्यात लोक प्रमाण कषाय अध्यवसाय स्थानोंके होने तक तींसरे कषाय अध्यवसाय स्थानोंमें वृद्धिका कम जानना चाहिए। जिस प्रकार सबसे जबन्य स्थितिके कथायादि स्थान कहे हैं उसी प्रकार एक समय अधिक जघन्य स्थितिके भी कषायादि स्थान जानना चाहिए। और इसी प्रकार एक-एक समय अधिकके क्रमंसे तीस को झाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति तक प्रत्येक स्थिति विकल्पके भी कषायादि स्थान जानने चाहिए। अनन्तभागवृद्धि । ये वृद्धिके छह स्थान हैं तथा इसी प्रकार हानि भी छह प्रकारकी है। इनमेंसे अनन्तभागवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि इन दो स्थानों के कम कर देने पर चार स्थान ही ते हैं। इस प्रकार सर्व मुल व उत्तर प्रकृतियोंके परिवर्तनका क्रम जानना चाहिए। यह सब मिलकर एक भाव परिवर्तन होता है। (द सं/टो /३४/ १०४/न); (गो, जी,/जी, प्र./५६०/११२/२२) ।

८. पाँच परिवर्तनोंमें अल्पबहुत्व

ध.४/१.४,४/३३४/७ अदीदकाले एगस्स जीवस्स सन्वत्थो वा भावपरियट्ट-बारा। भवपरियट्टवारा अणंतगुणा। कालपरियट्टवारा अणंतगुणा। खेत्तपरियट्टवारा अणंतगुणा। पोग्गलपरियट्टवारा अणंतगुणा। सन्व-त्थोवो पोग्गलपरियट्टकालो। खेत्तपरियट्टकालो अणंतगुणो। कालपरि-यट्टकालो अणंतगुणो। भवपरियट्टकालो अणंतगुणो भावपरियट्टकालो अणंतगुणो। अद्युतिकालमें एक जीवके सबसे कम भावपरिवर्तन-के बार हैं। भव परिवर्तनके वार भावपरिवर्तनके वारोंसे अनन्तगुणे हैं। काल परिवर्तनके वार भव परिवर्तनके वारोंसे अनन्तगुणे हैं। क्षेत्र परिवर्तनके वार कालपरिवर्तनके वारोंसे अनन्तगुणे हैं। पुद्रगल परिवर्तनके वार क्षेत्र परिवर्तनके वारोंसे अनन्तगुणे हैं। दुइगल परिवर्तनका काल सबसे कम है। क्षेत्र परिवर्तनका काल पुड्गल परिवर्तनके कालसे अनन्तगुणा है। कालपरिवर्तनका काल क्षेत्र परिवर्तनके कालसे अनन्तगुणा है। भव परिवर्तनका काल, काल परिवर्तनके कालसे अनन्तगुणा है। भावपरिवर्तनका काल भव-परिवर्तनके कालसे अनन्तगुणा है। (गो. जी./जी.प्र./१६०/१६४/३)।

संसारानुप्रेक्षा--अनुप्रेक्षा।

संसारी—१. जीवोंका एक भेद—दे. जीव/१२. न. च. वृ./१०६ कम्मकलंकालीणा अलद्धससहावभावसन्भावा । गुणमग्गण जीविठया जीवा संसारिणी भणिया ।१०६। कर्म कलंकसे जो लिप्त हैं. स्व-स्वभावको जिन्होंने प्राप्त नहीं किया । गुणस्थान, मार्गणास्थान तथा जीवस्थानमें जो स्थित हैं वे संसारी जीव कहे गये हैं।

पं. का./ता. वृ./१०६/१७४/१२ कर्म चेतनाकर्म फलचेतनास्मकाः संसा-रिण: अशुद्धोपयोगयुक्ताः संसारिणः । — कर्म व कर्मफलचेतना-स्मक संसारी जीव हैं। ...संसारी जीव अशुद्धोपयोगसे युक्त हैं।

पं. थ./उ./३४ बद्धो यथा स ससारी स्यादन व्यस्वरूपवान् । मूर्विछतोऽ-नादितोऽष्टाभिज्ञानिद्यावृत्तिकर्मभिः । —जो अनादिकालसे आठ कर्मीसे मोहित होकर अपने स्वरूपको नहीं पाने नाला और वैधा हुआ वह संसारो जीव है।

संस्कार - उधिक जीवनकी सम्पूर्ण शुभ और अशुभ वृत्ति उसके संस्कारों के अधीन है, जिनमें से कुछ वह पूर्व भवसे अपने साथ लाता है, और कुछ इसी भवमें संगति व शिक्षा आदिके प्रभावसे उत्पन्न करता है। इसी लिए गर्भमें आनेके पूर्वसे ही बालकमें विशुद्ध संस्कार उरपन्न करनेकें लिए विधान बताया गया है। गर्भावतरणसे लेकर निर्वाण पर्यन्त यथावसर जिनेन्द्र पूजन व मन्त्र विधान संहित १३ कियाओंका विधान है, जिनसे बालकके संस्कार उत्तरीत्तर विशुद्ध होते हुए एक दिन वह निर्वाणका भाजन बन जाता है।

१. संस्कार सामान्य निर्देश

3. संस्कार सामान्यका लक्षण

सि. वि./वृ./१/६/३४/१४ वस्तुस्वभावोऽयं यत् संस्कारः स्मृतिबीजमा-दधीत । = वस्तुका स्वभाव ही संस्कार हैं। जिस्को स्मृतिका बीज माना गया है /

स. श./टी./३७/२३६/८ शरीरादी स्थिरात्मीयादिज्ञानान्यविद्यास्ता-सामभ्य सः पुनः पुनः प्रवृत्तिस्तेन जितताः संस्कारा वासनास्तैः कृत्या। =शरीरादिको शुचि स्थिर और आत्मीय मानने रूप जो अविद्या अज्ञान है उसके पुनः-पुनः प्रकृत्ति रूप अभ्याससे उत्पन्न संस्कार अर्थात् वासना द्वारा करके...।

पं. का./ता. वृ./परि./२६२/१६ निजपरमात्मिन शुद्धसंस्कारं करोति स आत्मसंस्कारः । = निज परम आत्मामे शुद्ध संस्कारं करता है यह आत्म संस्कार है।

२. पठित ज्ञानके संस्कार साथ जाते हैं

मृ. आ /२८६ विषएण सुदमधीदं जदिवि पमादेण होदि विस्सरिदं । तसुबद्वादि परभवे केवलणाणं च आवहादि ! = विनयसे पढ़ा हुआ । शास्त्र किसी समय प्रमादसे विस्मृत हो जाये तो भी वह अन्य जन्ममें स्मरण हो जाता है, संस्कार रहता है और क्रमेसे केवलज्ञान-को प्राप्त कराता है। (घ.१/४.१.९५/ग। २२/५२)।

ध, १/४,१,१८/८२/१ तत्थ जम्मंतरे चलिक्तंहणिम्मसमिदिश्रतेण विण-एणात्रहारिददुनाससंगस्स देवेसुप्पाज्जिय मणुस्सेसु अविणदुसंसकारेणु-प्पणस्स एरथ भवम्मि पढण-सुणण-पुच्छणवावारविरिह्यस्स अल-प्पत्तियाँ णाम । = उनमें (चार प्रकार प्रझाओंमें) जनमान्सर्में चार प्रकारकी निर्मत बुद्धिके बलसे विनयपूर्वक बारह अंगका अवधारण करके देवोंमें उत्पन्न होकर पश्चात् अविनष्ट सस्कारके साथ मनुष्योंमें उत्पन्न होनेपर इस भवमें पढ़ने-सुनने व पूछने आदिके व्यापारसे रहित जीवकी प्रज्ञा औत्पत्तिकी कहलाती है।

ल. सा./जो. प्र./६/४८/४ नारकादिभवेषु पूर्वभवश्रुतधारिततत्त्वार्थस्य संस्कारकतात् सम्यादर्शनप्राप्तिभवति । ⇒नरकादि भवोमे जहाँ उपदेशका अभाव है, वहाँ पूर्व भवमें धारण किये हुए तत्त्वार्थ-ज्ञानके संस्कारके बन्नसे सम्यादर्शनकी प्राप्ति होती है। (और भो दे० सम्यादर्शन/III)।

मो. मा. प्र./७/२०३/१० इस भवमें अभ्यास करि परलोक विषै तियंचादि
गतिविषें भी जाय – तौ तहाँ संस्कारके बनसे देव गुरु शास्त्र बिना
भी सम्यक्तव होय जाय। ''तारतम्यतें पूर्व अभ्यास संस्कारतें वर्तमान इनका निमित्त न होय (देव-शास्त्र आदि निमित्त न होय)
सौ भी सम्यक्तव होय सकै।

३, संस्कारके उदाहरण

स. श /मू./३७ अविद्याभ्याससंस्कार रवशं क्षिप्यते मनः । तदेव ज्ञान-संस्कारेः स्वतस्त स्वेऽवितिष्ठते ।३७। — अविद्याके अभ्यास रूप संस्कारोंके द्वारा मन स्वाधीन न रहकर विशिष्ठ हो जाता है। वही मन विद्यान रूप संस्कारोंके द्वारा स्वयं ही आत्मस्वरूपमें स्थिर हो जाता है।

घ. ६/१,६-१,२३/४१/१० एवेहि जीविम्ह जिलदसंसकारस्स अर्णतेसु भवेसु अवट्ठाणन्भुवगमादो । स्हन (अनन्तानुबन्धी) कथायोंके द्वारा जोवमें उत्पन्न हुए सृंस्कारका अनन्त भवोमें अवस्थान माना गया है।

ध. ४/३,३६/७६/१ तित्थयराइरिय-बहुमुद-पवयण-विसयरागजणिद -संसकाराभावादो । = वहाँ (अपूर्वकरणके उपरित्त सप्तत भागमें) तीर्थकर. आचार्य, बहुशुत और प्रवचन विषयक रागसे उत्पन्न हुए संस्कारोंका अभाव है।

ध. १/४.१,४६/१६४/३ आहितसंस्कारस्य कस्यचिच्छन्द्रप्रहणकाल एव तद्रसादिप्रययोग्पत्त्युपलम्भाच । = शब्द प्रहणके कालमें ही संस्कार युक्त किसी पुरुषके उसके (शब्दके बाच्यभूत पदार्थके) रसादि विषयक प्रत्ययकी उत्पत्ति पायी जाती है।

४. पूर्व संस्कारका महत्त्व

- स. श./मू./४६ जानत्रध्याहमनस्तत्त्वं विविक्तं भावयत्त्वि । पूर्वविश्रम-संस्काराह् श्रान्ति भूयोऽपि गच्छति । च्छुद्ध चैतन्य स्वरूपको जानता हुआ भी और अन्य पदार्थीसे भिन्न अनुभव करता हुआ भी पूर्व श्रान्तिके संस्कारवश पुनरपि श्रान्तिको प्राप्त होता है।
- द्र. सं./टी /३५/१५६-१६०/६ सम्यग्छ छि ... तत्र (शुद्धारमतस्ये) असमर्थः सन् ... २६म भक्ति करोति । तेन ... १ श्विष्ठ विदे हेषु गत्वा पश्यति ...
 समव शरणं ... पूर्व भवभाविति विशिष्ठ भेदञ्जानवासना (संस्कार) विलेन
 मोहं न करोति, ततो जिनदीक्षां गृहीत्वा ... मोहं गच्छति ।

 सम्यग्छ छि शुद्धारमभावना भानेमें असमर्थ होता है, तत्र वह
 परम भक्ति करता है । ... पश्चात् पंच विदे हों में जाकर समव शरणको देखता है । पूर्व जन्ममें भावित विशिष्ठ भेदञ्जानकी वासना
 (संस्कार) के बक्त मोह नहीं करता अतः दोक्षा धारण करके
 मोक्ष पाता है ।
 - * शरीर संस्कारका निषेध—हे० साधु/२/७ ।
 - * धारणा ज्ञान सम्बन्धी संस्कार--दे० घारणा ।
 - * रजस्वला स्त्री व स्तक पातक आदि—दे० स्तक।

२. संस्कार कर्म निर्देश

१. सर्भान्वयादि क्रियाओंका नाम निर्देश

म, पू./३८/११-६८ गर्भान्वयक्तियारचैव तथा दीक्षान्वयक्तियाः। कर्ज-न्वयक्रियारचेति तास्त्रिधैर्वं बुधैर्मताः ।५१। आधानायास्त्रिपञ्चारात् क्षेया गर्भान्वयक्रियाः । चत्वारिहादथाष्टौ च स्मृता दीक्षान्वय-किया । १२। कर्त्रन्वयिकयाश्चीय सप्त तज्हीः समुचिताः। तासा यथान्नमं नामनिर्देशोऽयमनुष्यते । १३। अङ्गानां सप्तमादङ्गाइ दुस्तरा-दर्णवादिप । श्लोकैरष्टभिरुन्नेच्ये प्राप्तं ज्ञानलवं म्या । ४४। (नोट --आगे केवल भाषार्थ)। = गर्भान्वय क्रिया, दीक्षान्वय क्रिया और कचेन्त्रय क्रिया इस प्रकार विद्वान् लोगोंने तीन प्रकारकी क्रियाएँ मानी हैं।५१। यभन्विय क्रिया आधानादि तिरपन (५३) जाननी चाहिए। और दीक्षान्यय कियाएँ अडतालीस (४८) समफना चाहिए। १२। इसके अतिरिक्त इस विषयके जानकार लोगोंने कर्न-न्वय क्रियाएँ सात (७) संग्रह की हैं। अब आगे यथा क्रमसे उनका नाम निर्देश किया जाता है। १३। जो समुद्रसे भी दुस्तर है, ऐसे १२ अंगोंमें सातवें अंग (उपासकाध्ययनांग) से जो कुछ मुक्ते ज्ञानका अंश प्राप्त हुआ है उसे मैं नीचे लिखे हुए श्लोकॉसे कहता हूँ १४४। केवल भाषार्थ — गर्भान्वयकी ५३ क्रियाएँ — १ गर्भाघान, २ प्रीति, ३ सुप्रीति, ४ धृति, ६ मोद, ६ प्रियोद्दभव, ७ नामकर्म, ८ बहियनि, १ निषद्या, १० प्राञ्चन, ११ व्युष्टि, १२ केशवाप, १३ लिपि संख्यान संग्रह, १४ उपनीति, १५वतचर्या, १६वतावरण, १७विवाह, १८वर्णलाभ, १६ कुलचर्याः, २०गृहीश्चिताः, २१ प्रज्ञान्ति, २२ गृहत्यागः, २३ दीक्षाद्यः, २४ जिन-स्तपता, २६ मौनाघ्ययन अतस्य, २६ तीर्थकृतभावना, २७ गुरुस्थानाभ्युपगमन, २६ गणोपप्रहण, २६ स्वगुरुस्थान संक्रान्ति, ३०० निःसंगत्वारमभावना, ३१ योगनिवणिसे प्राप्ति, ६२ योगनिवणिसाधन, ३३ इन्द्रोपपाद, ३४ अभिषेक, ३६ विधिदान, ३६ सुखोदय, ३७ इन्द्र-रयाग, ३८ अवतार, ३१ हिरण्यो स्कृष्टजनमता, ४० मन्दरेन्द्राभिषेक, ४१ गुरुपूजीपलम्भन, ४२ यौवराज्य, ४३ स्वराज, ४४ चक्रलाभ, ४६ दिग्विजय, ४६ चकाभिषेक, ४७ साम्राज्य, ४८ निष्क्रान्ति, ४६ योग-सन्मह, ६० आईन्रय, ६१ तिह्रहार, ६२ योगस्याग, ६३ अप्रनिवृत्ति । परमागममें ये गर्भसे लेकर निर्वाण पर्यन्त 4३ क्रियाएँ मानी गयी हैं। ।६२-६३। २. दोक्षान्वयकी ४८ क्रियाएँ – १ अवतार, २ वृत्तलाभ, ३ स्थानलाभ, ४ गणग्रह, ५ पूजाराध्य, ६ पुण्ययज्ञ, ७ हृढचर्या, 🗢 उपयोगिता। इन आठ क्रियाओं के साथ (गर्भान्वय क्रियाओं में-से) उपनीति नामकी चौदहवी क्रियासे अग्रनिवृत्ति नामकी तिरपनवी क्रिया तककी चालीम क्रियाएँ मिलाकर कुल अड्तालीस दीक्षान्वय क्रियाएँ कहजाती हैं।६४-६४। ३. कर्ज न्वयकी ७ क्रियाएँ -- कर्जन्वय कियाएँ वे हैं जो कि पुण्य करनेवाले लोगोंको प्राप्त हो सकती हैं, और जो समीचीन मार्गकी आराधना करनेके फलस्वरूप प्रवृत्त होती हैं ६६। ९ सज्जाति, २ सद्दगृहित्व, ३ पारिव्रज्य, ४ सुरेन्द्रता, ६ साझाज्य, ६ परमार्हन्त्य, ७ परमनिर्वाण। ये सात् स्थान तीनी लोकों में उत्कृष्ट माने गये हैं और ये सातों ही अर्हन्त भगवान्के वचनरूपी अमृतके आस्वादमसे जीवोंको प्राप्त हो सकते हैं। १७-६=। महर्षियोंने इन क्रियाओंका समूह अनेक प्रकार माना है अधिह अनेक प्रकारसे क्रियाओंका वर्णन किया है, परन्तु मैं यहाँ विस्तार छौड़कर संक्षेपसे जनके सक्षण कहता हूँ । है है।

२, सर्मान्वयकी ५३ कियाओंके छक्षण

म. पु./३८/७०-३१० आधार्त्र नाम गर्भादी संस्कारी मन्त्रपूर्वकः। परनीमृतुमती स्नाती पुरस्कृत्याई दिख्यमा ।७०।अत्रापि पूर्व-बद्दानं जेनी पूजा च पूर्ववत्। इष्टबन्धसमाञ्चानं समाशादिश्च लक्ष्यताम् ।६७। ...क्रियाग्रनिर्वृतिनीम परानिर्वाणमामुदः । स्वभाव- जिन्तामुर्ध्ववरुयामास्कन्दती मता १६०६। इति निवणिपर्यन्ताः क्रिया गर्भादिकाः सदा । भव्यारमभिरनुष्ठेयाः त्रिपञ्चाश्रत्समुचयात् ।३१०। १ गर्भाधान क्रिया- ऋतुमती स्त्रीके चतुर्थ स्नानके पश्चात. गर्भा-धानके पहले, अहन्तदेवकी पूजाके द्वारा मन्त्र पूर्वक जो संस्कार किया जाता है, उसे आधान किया कहते हैं। ७०। भगवान्के सामने तीन अन्नियोंकी अर्हन्तकुण्ड. गणधरकुण्ड. व केवली कुण्डमें स्थापना करके भगवान्की पूजा करें। तत्पश्चात आहुति हैं। फिर केवल पुत्रोत्पत्तिकी इच्छासे भोगाभिलाष निरपेक्ष स्त्रीसंसर्ग वरें। इस प्रकार यह आधानक्रिया विधि है। ७१-७६। २. प्रीतिक्रिया-गभिधानके पश्चाद तीसरे महीने, पूर्ववत् भगवान्की पूजा करनी चाहिए। उस दिनसे लेकर प्रतिदिन बाजे, नगाड़े आदि बजवाने चाहिए।७३-७१। ३. सुप्रीति क्रिया – गर्भाधानके पाँचवें महीने पुनः पूर्वोक्त प्रकार भगवान्की पूजा करे : = ०- = १। ४. धृति क्रिया — गर्भाधानके सातवें महीनेमें गर्भकी वृद्धिके लिए पुनः पूर्वोक्त विधान करना चाहिए। ११ मोदक्रिया - गर्भाधानके नवमें महीने गर्भकी पृष्टिके लिए पुनः पूर्वीक विधान करके, स्त्रीको गात्रिका-बन्ध, मन्त्रपूर्वक बीजाशर तेखन, व मंगलाभूषण पहनाना ये काये करने चाहिए।८३-८४। ई. प्रियोद्भव क्रिया - प्रसृति होनैपर जात कर्मरूप, मन्त्र व पूजन आदिका बड़ा भारी पूजन विधान किया जाता है। जिसका स्वरूप उपासकाध्ययनसे जानने योग्य है।८५-८६। ७. नामकर्म क्रिया—जन्मसे १२वें दिन, पूजा व द्विज आदिके सरकार पूर्वक, अपनी इस्छासे या भगवान्के १०८८ नामोमेंसे घटपत्र विधि-द्वारा (Ballat Paper System) बालकका कोई योग्य नाम छाँटकर रखना (८७-८६) ८. बहिर्यान क्रिया--जन्मसे ३।४ महीने पश्चात् ही बालकको प्रसृतिगृहसै बाहर जाना चाहिए। बालकको यथाशक्ति कुछ भेंट आदि दी जाती है।६०-६२। ६.निषद्या क्रिया-विद्यितिके पश्चात् सिद्ध भगवात्की पूजा विधिपूर्वक. बालकको किसी बिछाये हुए शुद्ध आसनपर बिठाना चाहिए। १३-१४। १०. अन्नप्राशन क्रिया - जन्मके ७/८ माह पश्चात पूजन विधि-पूर्वक वालकको अन्न खिलाये । हर्। ११, ब्युष्टि क्रिया- जन्मके एक अर्थ परचात जिनेन्द पूजन विधि, दान व बन्धुवर्गनिमन्त्रणादि कार्य करना चाहिए। इसे वर्षवर्धन या वर्षगाँठ भी कहते हैं। १६-१७। १२. केशवाप क्रिया — तदनन्तर किसी शुभ दिन, पूजा विधि -पूर्वक वालकके सिरपर उस्तरा फिरवाना अर्थात् मुण्डन करना, व उसे आशिर्वाद देना आदि कार्य किया जाता है। बालक द्वारा गुरुको नमस्कार कराया जाता है। १८-१०१। १३. लिपि संस्वात-पाँचवें वर्षे अध्ययनके लिए पूजा विधिपूर्वक किसी योग्य गृहस्थी गुरुके पास छोड़ना ।**१०२-१०३। १४. उपनीति क्रिया—आ**ठवें वर्ष यज्ञोपकीत घारण कराते समय, केशोंका मुण्डन तथा पूजा विधि-पूर्वक योग्य वत ग्रहण कराके बालककी कमरमें मुजकी रस्सी बाँधनी चाहिए। यज्ञोपत्रीत धारण करके, सफेद धोसी पहनकर, सिरपर चोटी रखनेवाला वह बालक माता आदिके द्वारपर जाकर भिक्षा माँगे। भिक्षामें आगत द्रव्यसे पहले भगवात्की पूजा करे, फिर शेष बचे अन्नको स्वयं खाये। अत्र यह बालक ब्रह्मचारी कहलाने लगता है।१०४-१०८। १६. ब्रतचर्या क्रिया -ब्रह्मचर्य आश्रमको भारण करनेवाला वह ब्रह्मचारी बालक अन्त्यन्त पवित्रव स्वच्छ जीवन विताता है। कमरमें रत्वत्रयके चिह्न स्वरूप तीन सरकी मुंजकी रस्सी, टाँगोंमें पवित्र अहेन्त कुलकी सूचक उज्ज्वन व सादी धोती. वशस्थलपर सात लरका यज्ञोपनीत, मन बचन व कायकी शुद्धिका प्रतीक सिरका मुण्डन-इतने चिह्न धारण करके अहिंसाण्-वतका पालन करता हुआ गुरुके पास विद्याध्ययन करता है। बह कभी हरी दाँतौन नहीं करता, पान खाना, अंजन लगाना, जनटनसे स्नान करना व पलंगपर सोना आदि वातोंका त्याग करता है। स्तच्छ जनसे स्नान करता है तथा अकेला पृथिवीपर सोता है।

अध्ययन क्रममें गुरुके मुखसे पहले श्रावकाचार और फिर अध्यारम शास्त्रका ज्ञान कर लेनेके अनन्तर व्याकरण, न्याय, छन्द, अर्जकार, गणित, ज्योतिष आदि विद्याओंको भी यथा शक्ति पहता है।१०६-१२०। १६. ब्रतावतरण क्रिया - विद्याध्ययन पूरा कर लेनेपर बारहवें या सोलहने वर्षमें गुरु साक्षीमें, देवपूजादि विधिपूर्वक गृहस्थ आश्रममें प्रवेश पानेके लिए उपरोक्त सर्व बतोंको त्यागकर, श्रावकके योग्य आठ मूलगुणों (दे. श्रावक) को प्रहण करता है। और कदाचित् क्षत्रिय धर्मके पालनार्थ अथवा शोभार्थ कोई शसत्र धारण करता है। 1१२१-१२६। १७ विवाह क्रिया – विवाहकी इच्छा होनेपर गुरु साक्षीमें सिद्ध भगवान् व पूर्वोक्त (प्रथम क्रियावत्) तीन अग्नियों-की पूजा विधिपूर्वक, अग्निकी प्रदक्षिणा देते हुए, कुलीन कन्याका थाणि ग्रहण करे। सात दिन पर्यन्त दोनों बह्मचयेसे रहें, फिर तीर्थ-यात्रादि करें। तदनन्तर केवल सन्तानीत्पत्तिके लिए, स्त्रीके ऋतु-कालमें सेवन करें। शारीरिक शक्तिहीन हो तो पूर्ण ब्रह्मचर्यसे रहें ।१२७-१३४। १८, वर्णलाभ क्रिया- यथोक्त पूजन विधिपूर्वक पिता उसको कुछ सम्पति व घर आदि देकर धर्मव न्याय पूर्वक जीवन निताते हुए पृथक् रहनेके लिए कहता है। १३६-१४१। १६. कुलचर्या क्रिया-अपनी कुल परम्पराके अनुसार देव पूजादि गृहस्थ-के षट्कर्मीको ग्रथाविधि नित्य पालता है यही कुलचर्या है। १४२-१४३। २०, गृहीशिता क्रिया – घार्मिक क्षेत्रमें तथा इ। नके क्षेत्रमें वृद्धि करता हुआ, अन्य गृहस्थोंके द्वारा सत्कार किये जाने योग्य गृहीश या गृहस्थाचाय होता है ।१४४-१४६ । २१. प्रशान्ति क्रिया-अपने पुत्रको गृहस्थका भार सौंपकर विरक्त चित्त हो विशेष रूपसे धर्मका पालन करते हुए झान्त चृत्तिसे रहने सगता है। १४७-१४६! २२, गृह त्याग किया- गृहस्थाश्रममे कृतार्थताको प्राप्त हो, योगिपूजः विधि पूर्वक अपने ज्येष्ठ पुत्रको धरकी सम्पूर्ण सम्पत्ति व कुहुम्क पोषणका कार्य भार सौंपकर, तथा धामिक जीवन वितानेका उपदेश करके स्वयं घर त्याग देता है।१५०-१६६। २३. दीक्षाच क्रिया-क्षुक्रक व्रत रूप उत्कृष्ट श्रावककी दीक्षा लेता है।१५७-१५८। **२४. जिन**-रूपता किया – क्रमसे यथा अवसर दिगम्बर रूपवाले मुनिवतकी दीक्षा ।१५६-१६०। २५. मौनाध्ययन वृत्ति क्रिया - गुरुके पास यथोक्त कालमें मौनपूर्वक शास्त्राध्ययनं करना ।१६१-१६३) २६. तीर्थ कुद्धावना क्रिया - तीर्थंकर पदकी कारणभूत सोलह भावनाओंको भाता है। २७. गुरुस्थानाभ्युपगमन क्रिया-प्रसन्नता पूर्वक उसे योग्य समभक्तर गुरु (आचार्य) अपने संघके आधिपत्यका गुरुंपद प्रदान करे तो उसे बिनय पूर्वक स्थोकार करना ।१६६-१६७: २८. गणोपग्रहण क्रिया-पुरुपदितष्ठ होकर चतुः-संघकी रक्षा व पालन करे तथा नवीन जिज्ञासुओं को उनकी शक्तिके अनुसार बत व दीक्षाएँ दे ११६८-१७१। २१, स्वगुरु स्थानावाप्ति किया--गुरुकी भाँति स्वयं भी अवस्था विशेषको प्राप्त हो जानेपर, संधमें से योग्य शिष्यको छाँटकर उसे गुरुपदका भार प्रदान करे। १७२-१७४। ३०, निःसंगत्वभावना क्रिया--एकस विहारी होकर अत्यन्त निर्ममता पूर्वक अधिकाधिक चारित्रमें विशुद्धि करना ।१७६-१७७। ३१. योगनिवार्णसंपाप्ति क्रिया आयु-का अन्तिम भाग प्राप्त हो जाने रर बैराग्यको उरकरेता पूर्वक एकत्व व अन्यत्व भावनाको भाता हुआ सल्लेखना धारण करके शरीर त्थाग करनेके लिए साम्यभाव सहित इसे धीरे-धीरे कृश करने लगता है।१७५-१८५। ३२, योग निर्वाण साधन क्रिया—अन्तिम अवस्था प्राप्त हो जानेपर साक्षात् समाधि या सल्लेखनाको धारणकर तिष्ठे ।१८६-१८१ ३३. इन्दोपपाद क्रिया—उपरोक्त तपके प्रभावसे वैमानिक देवोंकं इन्द्र रूपसे उत्पाद होना (१६०-१६४) ३४, इन्द्रा-भिषेक क्रिया - इन्द्रपद्पर आरूढ करनेके लिए देव लोग उसका इन्द्रिभिषेक करते हैं। १९५-१९८। ३४. विधिदान क्रिया – देवों को उन-उनके पदौपर नियुक्त करना । ११६। ३६, **सुखोदय क्रिया** —

इन्द्रके योग्य मुख भोगते हुए देवलोकमें चिरकाल तक रहना ।२००-२०१। ३७, इन्द्र स्थाग क्रिया-आयुके अन्तमें शान्ति पूर्वक समस्त वैभवका त्याग कर तथा देवोंको उपदेश देकर देवलोकसे च्युत होना ।२०२-२१३। ३८. इन्द्रावतार क्रिया—सिद्ध भगवान्को नमस्कार करके, १६ स्वप्नों द्वारा माताको अपने अवतारकी सूचना देना । २१४-२१६। ३१, हिरण्योत्कृत्य जन्मता — छह महीने पूर्वसे ही कुबेर द्वारा हिरण्य, सुवर्ण व रत्नोंकी वर्षा हो रही है जहाँ, तथा श्री ही आदि देनियाँ कर रही हैं सेना जिसकी, ऐसा तथा शुद्ध गर्मवाली माताके गर्भ में तीन ज्ञानोंको लेकर अवतार धारण करना १२१७-२२४। ४०. मन्दर।भिषेक क्रिया—जन्म धारण करते ही नवजात इस बालक-का इन्द्र द्वारा सुमेरु पर्वतपर अभिवेक किया जाना ।२२६-२२८। ४१. गुरु पुजन क्रिया -- जिना शिक्षा प्रहण किये तीनों जगत्के गुरु स्वीकारे जाना ।२२६-२३०। ४२. यौतराज्य क्रिया-पूजन अभिषेक पूर्वक युवराज पटका बाँधा जाना।२३१। ४३. स्वराज्य क्रिया — राज्याधिपतिके स्थानपर निष्ठ होना ।२३२। ४४. चक्रलाभ क्रिया — पुण्यके प्रतापसे नवनिधि व चक्ररत्नकी प्राप्ति ।२३३। ४५, दिशांजय किया – पट्खण्ड सहित समुद्रान्त पृथिवीको जीतकर वहाँ अपनी सत्ता स्थापित करना ।२३४। ४६, चक्राभिषेक क्रिया—दिग्बिजय पूर्ण कर नगरमें प्रवेश करते समय सक्रका अभिषेक करना । नगरके लोग चक्रवर्ती पदपर आसीन उनके चरणोंका अभिषेक कर चरणोदक-को मस्तकपर चढ़ाते हैं ।२३५-२,१२। ४७. साम्राज्य क्रिया - शिष्टोंका पालन व दुष्टोंका निग्रह करनेका तथा प्रेम व न्याय पूर्वक राज्य करने-का उपदेश अपने आधीन राजाओं को देकर मुखपूर्वक राज्य करना ।२४३-२६५। ४८. निष्क्रान्ति क्रिया—वैराग्य पूर्वक राज्यको त्यापना, लौकान्तिक देवों द्वारा सम्बोधनको प्राप्त होना। क्रमसे मनुष्यों, विद्याधरों व देवों द्वारा उठायी हुई शिविकापर आरूढ होकर वनमें जाना । वस्त्रालंकारको त्याग कर सिद्धोंकी साक्षीमें दिगम्बर व्रतको धारण कर पंचमुष्टि केश लौंच करना आदि क्रियाएँ ।२६६-२६४। ४६, योग सम्मह क्रिया -- ज्ञानाध्ययतके योगसे उत्कृष्ट तेज स्वरूप केवलज्ञानको प्राप्ति ।२६५-३००) ६०. आहें न्त्य क्रिया -- समबदारण-की दिव्य रचनाकी प्राप्ति ।३०१-३०३। ११, विहारक्रिया - धर्मे-चक्रको आगे करके भव्य जीवों के पुण्यसे प्रेरित, उनकी उपदेश देनेके अर्थ उन अहंन्त भगवान्का विहार होना ।३०४। ५२, योग त्याग क्रिया – केवलिसमुद्धात करके अन, वचन, काय रूप योगोंको अत्यन्त निरोध कर, अत्यन्त निश्चल दशाको प्राप्त होना ।३०६-३०७। १३, अग्रनिष्कि क्रिया - समस्त अघातिया कर्नोंका भी नाश कर, विनक्ष्वर शरीरसे सदाके लिए नाता तुड़ाकर उत्कृष्टव अविनक्ष्वर सिद्ध पदको प्राप्त हो, लोक शिखरपर अष्टम भूमिमे जा निर्वास करना 1306-3081

३. दीक्षान्वयकी ४८ क्रियाओंका रुक्षण

म. पु /१६/१-८० अथाववीइ द्विजनमभ्यो मनुदीक्षान्वयिक्तयाः ।११०० तदुन्मुखस्य या वृत्तिः पुंसो दीक्षेत्यसौ मता । तामन्विता किया या तु सा स्याइ दीक्षान्वया किया ।१००० यस्त्वेतास्तत्त्वतो ज्ञात्वा भव्यः समनुतिष्ठति । सोऽधिगच्छति निर्वाणम् अचिरात्मुखसाद्भवद् ।५०। इति दीक्षान्वय किया । चदीक्षान्वय सामान्य — खतको धारण करनेके सन्मुख व्यक्ति विशेषको प्रवृत्तिसे सम्बन्ध रखनेवाली कियाओंको दीक्षान्वय कियाएँ कहते हैं ११-६। १० अवतार किया— मिथ्यात्वसे दूषित कोई भव्य समीचीन मार्गको ग्रहण करनेके सम्मुख हो किन्हीं मुनिराज अथवा गृहस्थाचार्यके पास जाकर, यथार्थ देव शास्त्र गुरु व धर्मके सम्बन्धमें योग्य उपदेश प्राप्त करके, मिथ्या मार्गसे प्रेम हटाता है और समीचीन मार्गमें बुद्ध लगाता है । गुरु ही उस समय पिता है, और तत्त्वज्ञान रूप संस्कार ही गर्भ है । यहाँ यह भव्य

प्राणी अवतार धारण करता है।ई-३६। २. वृत्तिलाभ क्रिया - गुरुके द्वारा प्रदत्त बतीको धारण करना ।३६। ३. स्थानसाभ क्रिया-गृहस्थाचार्य उसके हाथसे मन्दिर जीमें जिनेन्द्र भगवान्के समवश-रणकी पूजा करावे। तदनन्तर उसका मस्तक स्पर्श करके उसे श्रावककी दीक्षा दे। पंच मुष्टि लौंचके प्रतीक स्वरूप उसके मस्तक-का-स्पर्शकरे। तत् पश्चात् विधि पूर्वक उसे पंच नमस्कार मन्द्र प्रदान करें।३७-४४। ४. गण ग्रहणक्रिया - मिथ्या देवताओं को शान्ति पूर्वक विसर्जन करता हुआ अपने घरसे हटाकर किसी अन्य योग्य स्थानमें पहुँचाना ।४६-४८। ६. युजाराध्य क्रिया - जिनेन्द्र देवकी पूजा करते हुए द्वादशांगका अर्थ ज्ञानी जनोंके मुखसे सुनना ।४६। 🕴 पुण्य यज्ञक्रिया—साधर्मी, पुरुषोंके साथ पुण्य वृद्धिके कारणभूत चौद्ह पूर्व विद्याओं का सुनना । ४०। ७. द**ढच्य**ि किया –शास्त्रके अर्थका अवधारण करके स्वमतमें दढता धारना । ११। प उपयोगिता क्रिया-पर्वके दिन उपवासमें अर्थात् रात्रिके समग्र प्रतिमा योग घारण करके ध्यान करना । ४२। १, उपनीति क्रिया— ब्रह्मचारीका स्वच्छ्यदेश व यज्ञीपवीत आदि धारण करके शास्त्रा-नुसार नाम परिवर्तन पूर्वक जिनमतमें श्रावककी दीक्षा लेना । १३-१६। १०. व्रतःचर्या किया - तदनन्तर उपासकाध्ययन करके योग्य अतादि घारण करना । १७। ११, अतावरण किया - विद्याध्ययन समाप्त हो जानेपर गुरुको साक्षीमें पुनः आधृषण आदिका ग्रहण करके गृहस्थमें प्रवेश करना।६८। १२, बिवाह क्रिया—स्व स्त्रीको भी अपने मतमें दीक्षित करके पुनः उसके साथ पूर्वरूपेण सर्व विवाह संस्कार करे। ५६-६०। १३. वर्णना भक्रिया —समाजके चार प्रतिष्ठित व्यक्तियों से अवनेको समाजमें सम्मिलित होनेकी प्रार्थना करे और वे विधि पूर्वक इसे अपने वर्णमें मिलालें ।६१-७१। १४.कुलचर्या क्रिय़ा - जेनकुलकी परम्पराभुसार देव पूजादि षट् आवश्यक क्रिया-ओं में नियमसे प्रवृत्ति करना ।७२। १४. गृहीशिता विधा - शास्त्रमें पूर्ण अभ्यस्त हो जानेपर तथा प्रायश्चित्तादि विधिका ज्ञान हो जानेपर गृहस्थाचार्यके पदको प्राप्त होना ।७३-७४। १**६. प्रशा**न्त**ता** किया-नाना प्रकारके उपवासादिको भावनाओंको प्राप्त होना १७५६ १७. गृहत्याग क्रिया- योग्य पुत्रको नीति सहित धर्माचारकी शिक्षा देकर, विरक्त बुद्धि वह द्विजोत्तम गृह त्याग कर देता है।७६। १८. दीक्षाच क्रिया—एक वस्त्रको धारण करके वनमें जा क्षुल्लककी दीक्षा लेना १७७। १६. जिनरूपता किया-गुरुके समीप दिगम्बरी दीक्षा भारण करना 1७८। २०-४८. भौनाध्ययन वृत्ति-से लेकर अप्रनिवृत्ति क्रिया तक ये आगेकी सर्व क्रियाएँ गर्भान्वय क्रियाओं में नं २५ से नं , ५३ तकको क्रियाओं वत् जानना ।७१-८०।

४. कर्त्रन्वयादि ७ क्रियाओंके लक्षण

- म. पु./३ = /६६ तास्तु कर्जन्वया ज्ञेया याः प्राप्याः पुण्यकर्तृ भिः। फल-रूपतया वृत्ताः सन्मार्गाराधनस्य वै।६६। = कर्तन्वय क्रियाएँ वे हैं जो कि पुण्य करनेवाले लोगोंको प्राप्त हो सकती हैं; और जो समीचीन मार्गकी आराधना करनेके फलस्वरूप प्रवृत्त होती हैं।६६।
- म, पु./३१/५०-२०७ अथातः संप्रवश्यामि द्विजाः कर्षन्वयिक्षयाः ।६१।
 तत्र सज्जातिरित्याद्या क्रिया श्रेयोऽनुबन्धिनी । या सा वासन्नभव्यस्य
 नृजन्मोपगमे भवेत ।५२।...कृत्स्नकर्ममलापायात् संशुद्धियाऽन्तरारमनः । सिद्धिः स्वारमोपलिष्धः सा नाभावो न पुणोच्छिदा ।२०६।
 इत्यागमानुसारेण प्रोक्ताः कर्ष्यन्वयिक्षयाः । सप्तेताः परमस्थानसंगतियत्र योगिनाम् ।२०७। = १. सज्जाति क्रिया रत्नत्रयकी सहज प्राप्तिका कारणभूत मनुष्य जन्म, उसमें भी पिताका उत्तम कुल और
 माताकी उत्तम जातिमें उत्पत्र हुआ कोई भव्य, जिस समय यह्नोपवीत आदि संस्कारोंको पाकर परव्रह्मको प्राप्त होता है, तब अयोनिज
 दिव्य ज्ञानरूपी गर्भसे उत्पत्र हुआ होनेके कारण सङ्जातिको धारण

करनेवाला समभा जाता है। ८१-६८। २. सदगृहित्व किया - भृहस्थ योग्य असि मसि आदि षट्कर्मोका पालन करता हुआ, पृथिनी-तलपर ब्रह्मतेजके वेद या शास्त्रज्ञानको स्वयं पढ़ता हुआ और दुसरीको पढ़ाता हुआ वह प्रशंसनीय देव-ब्राह्मणयनेको प्राप्त होता है। अईन्त उसके पिता हैं, रत्नत्रय रूप संस्कार उनकी उरपत्तिकी अगर्भज योनि है। जिनेन्द्र देवरूप ब्रह्माकी सन्तान है, इसलिए बह देव ब्राह्मण है। उत्तम चारित्रको धारण करनेके कारण वर्णोत्तम है। ऐसा सञ्चा जैन श्रावक ही सञ्चा द्विज व ब्राह्मणोत्तम है। मैत्री, प्रमोद, कारुण्य व माध्यस्थ्यादि पश्च तथा चर्या व प्रायश्चित्तादि साधनके कारण उनसे उद्योग सम्बन्धी हिसाका भी स्पर्श नहीं होता। इस प्रकार गुणोंके द्वारा अपने आध्माकी वृद्धि करना सद्दगृहित्व क्रिया है । ६६–१४४। ३, पारिव्राज्य किया — गृहस्थ धर्मका पात्तन कर घरके निवासमे विरक्त होते हुए पुरुषका जो दोक्षा ग्रहण करना है उसे परिवज्या कहते हैं। ममस्य भावको छोडकर दिगम्बररूप धारण करना यह पारिवाज्य क्रिया है।१३६-२००। ४, सुरेन्द्रता क्रिया — परिव्रज्याके फलस्वरूप छुरेन्द्र पदकी प्राप्ति।२०१। ६ – साम्राज्य क्रिया चक्रवर्तीका वैभव व राज्य प्राप्ति ।२०२। ई. आर्हन्त्य क्रिया-अर्हन्त परमेष्ठीको जो पंचकल्याणक रूप सम्पदाओंकी प्राप्ति होती है, उसे आईन्स्य क्रिया जानना चाहिए।२०३-२०४। ७. परिनिवृत्ति क्रिया-अन्तमें सर्वकर्म विमुक्त सिद्ध पदकी प्राप्ति ।२०६-०६।

★ इन सब क्रियाओंके लिए मन्त्र विधान—दे, मंत्र/१/७।

५. गृहस्थको ये फियाएँ अवश्य करनी चाहिए

- म, पु /३º/४१--५० तदेषां जातिसंस्कारं द्रख्यस्तित सोऽधिराट्। स प्रोवाच द्विजन्मेभ्यः क्रियाभेदानशेषतः ।४१। ताश्च क्रियास्त्रिधा-म्नाताः श्रावकाण्यायसंग्रहे। सह्दष्टिभिरनुष्ठिया महोदकाः शुभा-बहाः ।५०। -- इसके लिए इन द्विजों (उत्तम कुलीनों) की जातिके संस्कारको दृढ करते हुए समाट् भरतेश्वरने द्विजोंके लिए नीचे लिखे अनुसार क्रियाओंके समस्त भेद कहे ।४१। उन्होंने कहा कि श्रावका-ध्ययन संग्रहमें क्रियाएँ तीन प्रकारकी कही हैं। सम्यग्दृष्टि पुरुषोंको उन क्रियाओंका पालन अवश्य करना चाहिए। क्योंकि वे सभी उत्तम फल देनेवाली और शुभ करनेवाली हैं। १०।
 - * यज्ञोपवीत संस्कार विशेष—हे. यङ्गोपवीत ।
 - ★ संस्कार द्वारा अजैनको जैन बनाया जा सकता है
 ─ दे. यज्ञोपवीत/२ ।

संस्तनक - दूसरे नरकका दूसरा पटल - दे. नरक/६/११।

संस्तरं — भ. आ./मू./१४०-१४६/-४०--४६ पुढिविसिलामओ वा फलमओ तणमओ य संथारो। होदि समाधिणिमित्तं उत्तरसिर अहव पुठ्यसिरो। १६४०। अघसे समे असुसिरे अहिसुयअविने य अप्पाणे य। असिणि के घणपुत्ते उज्जीवे भूमिसंथारो। १६४६। विद्वत्थो य अफुडिदो णिक्कंपो सञ्जदो असंसत्तो। समपहो उज्जीवे सिलामओ होदि संथारो। १६४२। भूमि समरुं दलओ अकुडिल एगंगि अप्पमाणो य। अच्छिदो य अफुडिदो तण्हो वि य फलय संथारो। १६४३। णिस्संघी य अपोल्लो णिरुवहदो समिध वास्सणिज्बंतु। सुहपडिलेहो मज्जोतणसंथारो हवे चित्तमो। १६४४। जुत्तो पमाणरङ्यो उभयकालपडिलेहणामुद्धो। विधिविहिदो संथारो आरोह्ज्यो तिगुत्तेण। १४६। =पृथिवी, शिलामय, फलकमय, और तृणमय ऐसे चार प्रकारके संस्तर हैं। समाधिके निमित्त इनकी आवश्यकता पड़ती है। इन संस्तरोंके मस्तकका भागपूर्व व उत्तर दिशाको तरफ होना चाहिए। १४०। भूजिनसंस्तर—जो जमीन मृद् नहीं है, जो खिद्र रहित, सम, सुखी, प्राणिन

रहित. प्रकाशयुक्त, क्षपकके देहप्रमाणके अनुसार और गुप्त, और मुर-क्षित है ऐसी जमीन संस्तररूप होगी अन्यथा नहीं । ६४१। शिलामक संस्तर-शिलामय संस्तर अग्निज्वालसे दग्ध, टाँकीके द्वारा उकेश गया, वाविसाहुआा, होना चाहिए। यह संस्तर ट्रटा-फ्रटा न हो। निश्चल हो, सर्वतः जीवोंसे रहित हो, खटमस आदि दोषोंसे रहित, समतत और प्रकाशयुक्त होना चाहिए।६४२। **फलकमय संस्त्र**— चारों तरफसे जो भूमिसे संखरन है, रुन्द और हलका, उठाने रखनेमें अनायास कारक, सरल, अखण्ड, स्निग्ध, भृदू, अफूट ऐसा फलक संस्तरके लिए योग्य है। ६४३। तृणसंस्तर-तृणसंस्तर गाँठ रहित तृणसे बना हुआ, छिद्र रहित, न टूटे हुए तृणसे बना हुआ, जिसपर सोने व बैठनेसे खुजली न होगी ऐसे तृंसे बना हुआ. मृदुस्पर्शवाला. जन्तुरहित, जो सुखसे सोधा जाता है. ऐसा होना चाहिए।६४४। संस्तरके सामान्य लक्षण - चारों प्रकारके संस्तरोंमें ये गुण होने चाहिए। योग्य, प्रमाणयुक्त हो। तथा सूर्योदय व सूर्यास्तकातमें शोधन करनेसे शुद्ध होता है। शास्त्रोक्त विधिसे जिसकी रचना हुई है। ऐसे संस्तरपर मन वचन कायका शुद्ध कर आरोहण करना चाहिए । ६४४।

संस्तव--दे. भक्ति/३ .

संस्थान—१. संस्थान सामान्य व संस्थान नामकर्मका लक्षण

स. सि./६/२४/२१६/१ संस्थानमाकृतिः ।

- स. सि./८/११/३६०/३ यदुदयादौदारिकादिशरीराकृतिनिवृ त्तिभवित तत्संस्थानकाम॥ = १.भंस्थानका अर्थ आकृति है। (रा. वा./३/८/३/-१७०/१४)। २. जिसके उदयसे औदारिकादि शरीरोंकी आकृति भनती है वह संस्थाननामकर्म है। (रा. वा./८/१९/८/५७६/२६): (घ. ६/१.६-१.२८/५३/६): (घ. १३/५.५ १०९/३६४/३); (गो. क./जी. प्र./३३/२६/३)
- ैरा. बा./५/२४/१/४८५/१३ संतिष्ठते, संस्थीयतेऽनेनेति, संस्थितिर्वा संस्थानम्। —जो संस्थित होता है भा जिसके द्वारा संस्थित होता है या संस्थितिको संस्थान कहते हैं।
- क. पा. २/२-२२/\$१६/१/२ तंस-चडरंस-वट्टादीणि संठाणाणि। - त्रिकोण, चसुष्कोण, और गोल आदि (आकार)को संस्थान कहते हैं।

२. संस्थानके भेद

- च. खं. १/१,६-१/म्. ३४/७० जं तं सरीरसंठाणणामकम्मं तं छिविहं, समचउरससरीरसंठाणणामं णग्गोहपरिमंडलसरीरसंठाणणामं सादियसरीरसंठाणणामं खुज्जसरीरमंठाणणामं वामणसरीरसंठाणणामं हुंडसरीरसंठाणणामं चेदि । ⊶जो शरीर संस्थान नामकर्म है वह छह प्रकारका है —समचतुरस शरीरसंस्थाननामकर्म, न्यग्रोधपरिमण्डल-शरीरसंस्थाननामकर्म, स्वातिशरीरसंस्थाननामकर्म, कुब्जशरीर-संस्थान नामकर्म, वामनशरीरसंस्थाननामकर्म, और हुंडकशरीर-संस्थाननामकर्म । (घ. खं. ११/१, १/मृ. १०७/३६०); (स. सि./-८/११/३६०/३); (पं. सं./पा./१/४ को टीका); (इ. सं./१६/६१/-६); (भा पा./टी./६४/२-६/१३)
- सः सि./६/२४/२६६/१ तद्द (संस्थानं) द्विविधमित्थलक्षणमिनःथंलक्षणं चैति। == इस (संस्थान) के दो भेद हैं -- इत्थंलक्षण और अनित्धंन लक्षण।
- द्ध. सं./टी./१६/५३/८ वृत्तिकोणचतुष्कोणादिव्यक्ताव्यक्तरूपं बहुधः संस्थानम् । =गोल, त्रिकोण, चतुष्कोण आदि प्रगट अप्रगट अनेक प्रकारके संस्थान हैं।

Jain Education International

३. संस्थानके भेदोंके लक्षण

१. समचतुरस्र

- रा. वा./८/११/=/१%६/३२ तत्रोध्विधोमध्येषु समप्रविभागेन शरीरावसव-स निवेशव्यवस्थापनं कुशलशिलिपनिवित्तिसमस्थितिचक्रवत् अव-स्थानकर समचतुरससंस्थाननाम । चक्रपर नीचे मध्यमें कुशल शिल्पीके द्वारा बनाये गये समचक्रको तरह समान रूपसे शरोरके अवयवोंको रचना होना समचतुरस संस्थान है।
- ध. ६/१,६-१,३४/७१/१ सम चतुरसं समवतुरसं समविभक्तिमित्यर्थः। जस्स कम्मस्स उदएण जावाण समवउरस्ससंठाणं होदि तस्स कम्मस्स समवउरससठाणामिदि सण्णा। समान चतुरस्र अर्थात् समविभक्तको समचतुरस्र कहते हैं। जिस कमके उदयसे जोवोंके समचतुरस्रसंस्थान होता है उस कमकी समचतुरस्र संज्ञा है।
- ध. १३/६.६,१००/३६६/६ चतुरं शोभनम्, समन्ताचतुरं समचतुरम्, समानमानोन्मानमित्यर्थः। समचतुरं च तत् शरीरसंस्थानं च समचतुरशरीरसंस्थानम्। तस्य संस्थानस्य निवर्त्तकं यत् कर्म तस्याप्येषैव संज्ञा, कारणे कार्योपचारात्। =चतुरका अर्थ शोभन है, सम ओरसे चतुर समचतुर कहलाता है। समान मान और उन्मानवाला, यह उक्त कथनका तात्यर्य है। समचतुर ऐसा जो शरीरसंस्थान बह समचतुरसंशरीरसंस्थान है। उस संस्थानके निवर्त्तक कर्मकी भी कारणमें कार्यके उपचारसे यही संज्ञा है।

२. न्ययोध परिमण्डल

- रा. रा./८/१९/८/५७६/३३ नाभेरुपरिष्टाइ भूयसो देहसंनिवेशष्याधस्ता-चाल्पीयसी जनकं न्यग्राधपरिमण्डलसंस्थानम् । —बड्के पेड्की तरह नाभिके ऊपर भारी और नोचे लघुप्रदेशोंकी रचना न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान है।
- ध- ६/१.६-१.३४/७१/२ णग्गोहो वडरुवस्तो, तस्स परिमङ्लं व परिमङ्लं जस्स सरोरस्स तण्णग्गोहपरिमंडलं। णग्गोहपरिमंडलमेव सरीरसंठाणं णग्गोहपरिमंडलसरीरसंठाणं आयतवृत्तामित्यर्थः। = नयग्रोध वट वृक्षको कहते हैं, उसके परिमण्डलके समान परिमण्डल जिस शरीरका होता है उसे नयग्रोध परिमण्डल कहते हैं। नयग्रोध परिमण्डल स्वते हैं। नयग्रोध परिमण्डल स्वते हैं। नयग्रोध परिमण्डल स्वात्रे सोरानम्बन्ध हो जो शरीर संस्थान है, वह नयग्रोध परिमण्डल अर्थात आयतवृत्त शरीरनामकर्म है।
- ध. १३/५,६,१०७/३६८/७ नयप्रोधो वटवृक्षः समन्तान्मण्डलं परिमण्डलम्,
 नयप्रोधस्य परिमण्डलम् परिमण्डलं यस्य शरीरसंस्थानस्य तन्न्यप्रोधपरिमण्डलशरीरसंस्थानं नामः। अधस्तात् श्लक्षणं उपरि विशालं
 यच्छरीरं तन्न्यप्रोधपरिमण्डलशरीरसंस्थानं नामः। एतस्य यत्
 कारणं कर्म तस्याप्येषैव संज्ञाः, कारणे कार्योपचारात् चन्यप्रोधका
 अर्थ वटका वृक्ष है, और परिमण्डलका अर्थ सब ओरका मण्डलः।
 न्यप्रोधके परिमण्डलके समान जिस शरीर संस्थानका परिमण्डल
 होता है वह न्यप्रोध परिमण्डल शरीर संस्थान है। जो शरीर नीचे
 सूक्ष्म और ऊपर विशाल होता है वह न्यप्रोध परिमण्डल शरीर
 संस्थान है। कारणमें कार्यके उपचार इसके कारण कर्मकी यहो
 संज्ञा है।

.३. स्वाति

- रा, वा,/९/९/९/५७७/२ तद्विपरीतसंनिवेशकरं स्वातिसंस्थाननाम वन्मीकतुल्याकारम्। = न्ययोधसं उत्तदा उपर तधु और नीचे भारो, बाम्बीको रचना स्वाति संस्थान है। (ध. १३/४,४,४०७/३६८/१०)।
- ध, ६/१.६-१.२४/७१/४ स्वातिर्वण्मीकः शालमिलकि, तस्य संस्थानमिव संस्थानं यस्य शरीरस्य तरस्वातिशरीरसंस्थानम् । अही विसातं उवरि सण्णमिदि जं उत्तं होदि। = स्वाति नाम वनमीक या शालमती वृक्षका है। उसके आकारके समान आकार जिस शरीरका

हैं, वह स्वाति संस्थान है। अर्थाद यह शरीर नाभिसे नीचे विशास और ऊपर सूक्ष्म या होन होता है।

४. कुञ्ज

- रा. वा./५/१९/८/५७७/२ पृष्ठप्रदेशभाविबहुपुद्दगलप्रचयिवशेषलक्षणस्य निर्वर्तकं कुब्जसंस्थाननाम । चपीठपर बहुत पुद्दगलोंका पिण्ड हो जाना अर्थात् कुबड़ापन कुब्जक संस्थान है ।
- ध. ६/१.६-१,३४/७१/६ कुन्जस्य शरीरं कुन्जश्रीरम्। तस्य कुन्जश्रीरस्य संस्थानिम्ब संस्थानं यस्य तत्कुन्जश्रीरसंस्थानम्। 'जस्स कम्मस्स उदएण साहाणं दीहत्तं मज्भस्स रहस्सत्तं च होदि तस्स खुज्जश्रीरसंठणमिदि सण्णा।— कुन्ने शरीरको कुन्जश्रीर कहते है। उस कुन्जश्रीरके संस्थानके समान संस्थान जिस शरीरका होता है, बहु कुन्जश्रीर संस्थान है। जिस कर्मके उदयसे शाला-अने दिर्घता और मध्य भागके हस्वता होतो है, उसकी 'कुन्जश्रीर संस्थान' यह संज्ञा है। (ध. १३/४.४,१०७/३६८/१२)।

५. वामन

- रा. वा./८/११/८/६७७/३ सर्वाङ्गोपाङ्गहस्ववयवस्थाविशेषकारणं वामन-संस्थाननाम । = संभी अंग उपांगोंको छोटा बनानेमें कारण वामन संस्थान हैं।
- ध. ६/१,६-१, २४/७१/८ वामनस्य शरीरं वामनशरीरम् । वामनशरीरस्य संस्थानिम् संस्थानं यस्य तद्वामनशरीरसंस्थाभम् । अस्स
 कम्मस्स उदएण साहाणं जं रहस्सत्तं कायस्स दीहत्तं च होदि तं
 वामणसरीरसंठाणं होदि । चनौनेके शरीरको वामन शरीर कहते
 हैं । वामन शरीरके संस्थानके समान सस्थान जिससे होता है, वह
 वामन शरीर संस्थान है । जिस कर्मके उदयसे शाखाओं के हस्वता
 और शरीरके वीर्घता होती है, वह वामनशरीर संस्थान नामकर्म
 है । (ध. १३/५,४,१०७/३६५/१३)।

६. हुंडक

- रा. वा./प/११/८/६७७/४ सर्वाङ्गोपाङ्गानां हुण्डसंस्थितत्वातः हुण्डसंस्था-ननाम । प्तमी अंग और उपांगीका बेतरतीन हुंडकी तरह रचना हुंडक संस्थान है।
- घ. ६/१,१,१३४/७२/२ विसमपासाणभरियदइओ व्य विस्सदो विसम हुंडं। हुंडस्स शरीर हुंडशरीरं, तस्स सठाणमित्र सठाणं जस्स तं हुंडसरीरसंठाणणाम। जस्स कम्मस्स उदएण पुट्युसपंचसंठाणेहितो विदित्तमण्णसंठाणमुप्पज्जइ एकत्तीसभेदभिण्णं तं हुंडसंठाण-सण्णदं होदि ति णादव्यं।—विषम वर्धात् समानता रहित अनेक आकारवाले पाषाणोंसे भरी हुई मशकके समान सर्व ओरसे विषम आकारको हुंड कहते हैं। हुंडके शरीरको हुंड शरीर कहते हैं। उसके संस्थानके समान संस्थान जिसके होता है उसका नाम हुंड शरीर संस्थान है। जिस कर्मके उदयसे पूर्वोक्त पाँच संस्थानोंसे व्यतिरिक्त, इकतीस भेदि भिन्न अन्य संस्थान उत्पन्न होता है, वह शरीर हुंड-संस्थान संज्ञा वाला है, ऐसा जानना चाहिए। (ध. १३/६,६,१०६/ ३६१/१)।

४. इत्थं अनित्थं संस्थानके रूक्षण

स. सि./१/२४/२६६/१ वृक्त व्यस्त वतुरसायतपरिमण्डलादोना मिन्धं स्थान मने कि विध्य मिन्द्र मिति निरूप-णम् । अतोऽन्य न्मेषादोनां संस्थान मने कि विध्य मिन्द्र मिति निरूप-णाभावाद निर्देश स्थाम । — जिसके विषय में 'यह संस्थान इस प्रकार-का है' यह निर्देश किया जा सके वह इत्थं तक्षण संस्थान है। वृक्त, त्रिकोण, चतुष्कोण, आयत और परिमण्डल, आदि ये सब इत्थं तक्षण संस्थान हैं। तथा इसके अतिरिक्त मेघ आदिके आकार जो कि अनेक प्रकारके हैं और जिनके विध्य में 'यह इस प्रकारका है।' यह नहीं कहा

www.jainelibrary.org

जा सकता वह अनित्धंत्रक्षण संस्थान है। (रा.वा./६/२४/१३/ 8^{-} १८)।

१५५

५. गति मार्गणामें संस्थानींका स्वामित्व

म्बू-आ,/१०६० समच उरस णिग्गोहासादि य खुज्जा य वामणा हुंडा । पंचि-दियतिरियणरा देवा चउरस्स णारया हुंडा । — समचतुरस, न्ययोध, सातिक, कुञ्जक, वामन और हुंड ये छह संस्थान पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्योंके होते हैं, देव चतुरस संस्थान वाले हैं, नारकी सब हुंडक सस्थान वाले होते हैं।१०६०।

६. अन्य सम्बन्धित विषय

- १. प्केन्द्रियोंमें संस्थानका अभाव तथा तत्सम्बन्धी शंका समाधान ।

 -दे. उदय/६ ।
- २. विक्रेंग्टियोंमें हुंडक संस्थानका नियम तथा तत्सम्बन्धी शंका समाधान । —दे. उदय/६।
- विद्यहगतिमें जीवोंका संस्थान । दे. अवगाहना /१।
- अ. संस्थान नामकर्मकी बन्ध उदय सत्त्व प्ररूपणा तथा
 तस्सम्बन्धी नियम व शंका समाधान आदि । —दे बह बह नाम ।

संस्थान निर्माण कर्म—हे, निर्माणकर्म। संस्थान विचय धर्म ध्यान—हे, धर्मध्यान/१। संस्थानाक्षर—हे, असर।

संहनन-१. संहनन सामान्यका रुक्षण

स. सि./५/११/३६०/१ यस्योदयादस्थिबन्धनविशेषो भवति तत्संहनन-नाम । = जिसके उदयसे अस्थियोंका बन्धन विशेष होता है वह संहनन नामकर्म है। (रा. वा./५/११/६/५७७/६), (ध. ६/१, ६-१, २५/१४/६) (ध. १३/१,५,१०७/३६४/६), (गो. क./जी, प्र./३३/ २६/६)।

२. संहननके भेद

ष. लं. ६/१,६-१/स्. ३६/७३ जं तं सरीरसंघडणणामकम्मं तं छिविवहं, यज्जिरिसहवइरणारायणसरीरसंघडणणामं यद्धणारायणसरीरसंघड-णणामं णारायणसरीरसंघडणणामं अद्धणारायणसरीरसंघडणणामं लीलियसरीरसघडणणामं असपत्तसेवह्सरीरसंघडणणामं चेदि ।३६। —जोशरीर संहनन नामकमं है वह छह प्रकारका है— वज्रमृषभ-नाराचशरीरसंहनन नामकमं, वज्जनाराचशरीरसंहनन नामकमं, नारावशरीरसंहनन नामकमं, अर्धनाराच शरीरसहनन नामकमं, कीलकशरीरसंहनन नामकमं, और असंप्राप्त स्पाटिकाशरीरसंहनन नामकमं। (ष. खं. १२/६,६/सू. १०६/३६६), (स. सि /८/११/ ३६०/६), (पं. सं./पा./१/४ की टी.) (रा. वा./८/११/६/६७०/६), (गो. क./जी. प्र./२३/२६/६)।

३. संहननके भेदोंके लक्षण

रा. वा./=/११/१/५७७/७ तत्र वज्राकारोभयास्थिसन्धि प्रत्येकं मध्ये वलयवन्धनं सनाराचं मुसंहतं वज्रमुषभनाराचसंहननम् । तदेव वलयन् वन्धनिवरहितं वज्रनाराचसंहननम् । तदेवोभयं वज्राकारवन्धन-व्यपेतमवलयवन्धनं सनाराचं नाराचसंहननम् । तदेवेकपारवें सनाराचम् अर्धनाराचसंहननम् । तवुभयमन्ते सकोलं की लिकासंहननम् । अन्तरसंप्राप्तपरस्परास्थिसन्धि वहिः सिरास्नायुमांसविततम् असंप्राप्तस्थानस्य । स्वोनों हिड्डियों

की सन्धियाँ बज्राकार हों। प्रत्येकमें बल्यवन्धन और नाराच हों ऐसा मुसहत बन्धन बज्रर्षभनाराचसंहनन है। बल्य बन्धनसे रहित बही बज्रनाराच संहनन है। वही बज्राकार बन्धन और बल्य बन्धनसे रहित पर नाराच युक्त होनेपर सनाराच संहनन है। वही एक तरफ नाराच युक्त तथा दूसरी तरफ नाराच रहित अवस्थामें अर्थ नाराच है। जब दोनों हिंडुग्रीके छोरोंमें कील लगी हों तब बह कोलक संहनन है। जिसमें भीतर हिंडुग्रीका परस्पर बन्ध न हो मात्र बाहिरसे वे सिरा स्नायु मांस आदि लपेट कर संघटित की गयी हों बह असंप्राप्तस्पाटिका संहनन है। (ध.१३/५,४,९०६/ ३५६/९१)।

ध, ६/१,६-१,३६/७३/८ संहननमस्थिसंचयः, ऋषभो वजवदभेचात्वाद्वजमुषभः। वजवन्नाराचः वजनाराचः, तौ द्वाविष यस्मिन् वज्रशरीरसंहनने तद्वज्रऋषभवज्ञनाराचशरीरसंहननम् । जस्स कम्मस्स उदएण बज्जहङ्काइं बज्जबेट्टोण वेद्वियाइं बज्जणाराएण स्त्रीलियाइं च होंति तं वज्जरिसहवरणारायणसरीर संघडणमिदि उत्तं होदि । एसो चेव हड्डबंधो यज्जरिसहवज्जिओ जस्स कम्मस्स उदएण होदि तं कम्मं वज्जणारायणसरीरसंघडणमिदि भण्णदे। जस्स कम्मस्स उदएण वज्जविसेसणरहिदणारायणखीलियाओ हर्द्वसंधिओ हर्वति तं णारायणसरीरसंघडणं णाम । जस्स कम्मस्स उदएण हंडूसंघोओ णाराएण अद्भविद्धाओ हवंति तं अद्भणारायण-सरीरसंघडणं णाम । जस्स कम्मस्स उदएण अवज्जहड्डाइं खीलियाइं हवंति तं खोलियसरीरसघडणं णाम । जस्स कम्मस्स उदएण अण्णो-ण्णमसंपत्ताई सरिसिवहड्डाई व छिरावद्वाई हड्डाई हबंति तं असं-पत्तसेवृहसरीरसंघडणं णाम । ≔हङ्कियोंके संचयको संहनन कहते हैं। बैष्टनको ऋषभ कहते हैं। वज्रके समान अभेद होनेसे 'वज्रऋषभ' वह-लाता है। वज़के समान जो नाराच है वह वज़नाराच कहलाता है। ये दोनों अथीत वज़ऋषभ और वज़नाराच, जिस वज़ संहननमें होते हैं, वह वज्रऋषभ वज्रनाराच शरीर संहनन है। जिस कर्मके उदयसे वजमय हिंड्डियाँ वजमय वेष्टनसे वेष्टित और वजमय नाराचसे की लित होती हैं, वह वज्रभृषभनाराच शरीर सहनन है। ऐसा अर्थ कहा गया है। यह उपर्युक्त अस्थिबन्ध ही जिस कर्मके उदयसे बज़ ऋषभसे रहित होता है, वह कर्म बज़नाराचशरीर संहनन इस नामसे कहा जाता है। जिस कर्मके उदयसे बज्र विशेषणसे रहित नःराच की लें और हिंडू यों की संधियाँ होती हैं वह नाराच शरीर संहमन नामकर्म है। जिस कर्मके उद्यसे हाङ्ोंकी सन्धियाँ नाराच् से आधी निधी हुई होती हैं, वह अर्धनाराच शरीर संहनन नामकर्म है। जिस कमेंके उदयसे बज्र-रहित हड्डियाँ और की लें होती हैं वह कोलक शरीर संहनन नामकर्म है। जिस कर्मके उदससे सरीसृप अर्थात् सर्पकी हर्डियोंके समान परस्परमे असंप्राप्त और शिराबद्ध हिंडुयाँ होती हैं, वह असंप्राप्तासृपाटिका श्रीर संहनन नामकर्म है।

४. उत्तम संहननका तात्पर्यं प्रथम तीन संहनन

रा. वा./१/२७/१/६२६/११ आयं संहननत्रयमुत्तमम् ।१। वज्रवृषभ-नाराचसंहननं वज्रनाराचसंहननं नाराचसंहननिमारयेतित्वतयं संहननमुत्तमम् । कृतः । ध्यानादिवृत्तिविशेषहेतुत्वात् । — आदिके तीन उत्तम संहनन हैं अर्थात् वज्रम्र्यभनाराचसंहनन, वज्रनाराच-संहनन, नाराचसंहनन ये तीनों ध्यानकी वृत्ति विशेषका कारण होनेसें उत्तम संहनन कहे गये हैं । (भ. आ./वि./१६११/१४९)।

ध्यानके लिए उत्तम संहननकी आवश्यकता

रा. वा./१/२७/१,११/६२६-६२६/२० तत्र मोक्षस्य कारणमाद्यमेकमेव। ध्यानस्य त्रितयमपि (१/६२५) उत्तमसंहननाभिधानम् अन्यस्येय-रकालाध्यवसायधारणासामध्यति । ११/६२६। = उपरोक्त तीनों उत्तम संहननमेंसे मोक्षका कारण प्रथम संहतन होता है और ध्यानके कारण तो तोनों हैं।१। क्यों कि उत्तम संहननवाला ही इतने समय तक ध्यान धारण कर सकता है अन्य संहननवाला नहीं। (भ. आ./ बि./१६६६/१५२१/१४)।

्रमुक्रलेस्सिओः⊶वज्जरिसहयइरणारायणसरीर-ध. १३/६.४,२६/७६/१२ संधडणो : . खिबदासेसकसायवायो : : : चिसके शुक्त चेश्या है : : (जो) बज्रऋषभ नाराच संहननका स्वामी है ... ऐसा क्षीणकषाय जीव हो एकत्व वितर्क अविचार ध्यानका स्वामी है।

ज्ञा./४१/६-७ न स्त्रामित्वमतः शुक्ते विद्यतेऽत्यक्षचेतसाम्। आद्य-संहतनस्येव तल्प्रणीतं पुरातनैः । ६। छिन्ने भिन्ने हते दग्धे देहे स्विमिन दूरगम् । प्रपश्यन् वर्षनातादिदु:स्वैरिप न कम्पते । अ 🖚 पहले संहननवालेके ही शुक्लध्यान कहा है क्यों कि इस संहननवालेका ही चित्त ऐसा होता है कि शरीरको छेदने, भैदने, मारने और जलानेपर भी अपने आत्मको अत्यन्त भिन्न देखता हुआ। चलापमान नहीं होता. न वर्षाकाल आदिके दुःखोंसे कम्पायमान होता है ।६-७।

त. अनु,/देश यरपुनर्वज्रकायस्य ध्यानमित्यागमे वचः। श्रेण्योध्यानि प्रतीरयोवतं तन्नाथस्तन्भिषेधकम् ।८४। 🖚 चज्रकायस्य ध्यानं ऐसा जो वचन निर्देश है वह दोनों श्रेणियोंको सक्ष्य करके कहा गया है इसलिए वह नोचेके गुणस्थानवर्तियोंके लिए ध्यानका निषेधक नहीं है (पं. का./ता. वृ./१२६/२१२/१४), (द्र. सं./टी./५७/२३२/४) ।

द्ध. सं /टो./५७/२३२/६ उपश्रम**क्ष**पकश्रेण्योः सुक्लध्यानं भवति, तच्चोत्तमसंहननेनेव, अपूर्वगुणस्थानादधस्तनेषु गुणस्थानेषु धर्म-ध्यानं. तच्चादिमत्रिकोत्तमसंहननाभावेऽप्यन्तिमत्रिकसंहननेनापि भवति । = उपशम श्रेणी तथा क्षपक श्रेणीमें जो ध्यान होता है वह उत्तम संहतर से ही होता है, किन्तु अपूर्वकरण गुणस्थानसे नीचे-के गुणस्थानमें जो धर्मध्यान होता है वह पहले तीन उत्तर संहननके अभाव होने पर भी अन्तिमके तीन संहननसे भी होता है।

६. स्त्रीको उत्तम संहनन नहीं होती

मो. क /मु /३२ अंतिमतियसंहणणस्भुदक्षो पुण कम्मभूमिमृहिलाणं। आदिमतिगसंहडणं णरिथति जिणेहिं णिहिष्टं। - कर्म भूमिकी स्त्रियों के अन्तके तीन अर्द्धनाराच आदि संहननका ही उदय होता है, आदिके तीन वज्रऋषभनाराचादि सहननका उदय नहीं होता। (पं. का./ता, वृ./प्रक्षेपक/२२६-५/३०४ पर उद्दध्त) ।

७. अन्य सम्बन्धित विषय---

 किस संहननवाळा जीव मरकर कहाँ उत्पन्न हो तथा कौन सा गुण उत्पन्न करनेको समर्थ हो। -- दे. जन्म/६।

२. संहनन नाम कर्मकी बन्ध उदय सत्त्र प्ररूपणाएँ तथा तत्सम्बन्धो शंका समाधान । --दे. वह वह नाम । ३. सल्लेखनामें संहनन निर्देश ।

—दे• सक्लेखना/३।

सककापिर-भरतक्षेत्र दक्षिण आर्य खण्डका एक देश-है. मनुष्य/४ ।

सकलकीति - नन्दीसंघ बलात्कार गणकी ईडर गर्दी पर यह पयनन्दि नं १ के शिष्य तथा भुवनकीति के गुरु, संस्कृत एवं प्राकृत वाड्मय के संरक्षक, अनेकानेक प्रन्थों के रक्षियता। कृतियें मुलाकार प्रदोप, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, सिद्धान्तसार दीपक, तत्त्वार्धसार दीवक, आगमसार, द्वादशानुष्रेक्षा, समाधिमरणीत्साह दीवक, सार चतुर्विशतिका, सञ्जापितानली, परमात्मर ।ज स्तोत्र, पंचपरमेष्ठी पूजा, अध्टान्हिका पूजा, सौतहकारण पूजा, गणधरमत्तव पूजा, आहि पुराण, उत्तर पुराण, पुराणसार संग्रह, सुकुमाल, धन्यकुमार आदि अनेको चारित्र प्रन्थ । समय-जन्म बि.१४४३, पट्टाभिषेक बि.१४७६, समाधि वि. १४१६। (ई. १४२६-१४४२)। (ती./१/३२६); (वे, इतिहास ७/४) ।

स्कलचंद्र --- निवसंव देशीयगण, अभयननिव के शिष्य, मेध्यन्द्र त्रै विद्य के गुरु । समय—(ई. १४०-१०२०) । (दे. इतिहास/७/४) । सकलदोत्त - हे हान/१। **सकल परमात्मा**—दे परमारमा/१।

सकल विधि विधान -- दे, पूजापाठ। सकलादेश — १. सकलादेश निर्देश

रा. वा./४/४२/१३/२६२/२३ यदा तु तेषामेव धर्माणां कालादिभिरभेदेन वृत्तमात्मरूपमुच्यते तदैकेनापि शब्देन एकधमेत्रत्यायनमुखेन त्दारमकत्वमापन्नस्य अनेकाशेष्र्यपस्य प्रतिपादनसंभवाद यौगप्राम् । तत्र यदा यौगवद्यं तदा सकतादेशः. स एव प्रमाणमित्युच्यते। 'सकलावेशः प्रमाणाधीनः' इति वचनातः। 🗢 जब उन्हीं अस्तित्वादि धर्मीकी कालादिककी दृष्टिसे अभेद यिवक्षा होती है तब एक भी शब्दके द्वारा एक धर्ममुखेन तादातम्य रूपसे एकत्वको प्राप्त सभी धर्मीका अखंड भावसे युगपन कथन हो जाता है। यह सकतादेश कहताता है। सकलादेश प्रमाण रूप है। कहा भी है- सकलादेश प्रमाणाधीन है। (श्लो, बा. २/१/६/४४/४६१/१६), (स्या. म./**२३**/ २८३/१०) !

रलो,वा. २/१/६/१६/पृष्ठ एं./पंक्ति सं. धर्मिमात्रवचनं सक्लादेशः धर्म-मात्रकथनं तु विकलादेश इत्यप्यसारम्, सत्त्वाचन्यतमेनापि धर्मेणा-विशेषितस्य धर्मिणो वचनासंभवात्। धर्ममात्रस्य कविद्धर्मिण्य-वर्तमानस्य वक्तुमशक्तेः । स्याज्जीव एव स्यादस्त्येवेति धर्मिमात्रस्य च धर्ममात्रस्य वचनं संभवत्येवेति चेत्, न, जीवशब्देन जीवस्व-धर्मात्मकस्य जीववस्तुनः कथनादस्तिशब्देन चास्तित्वस्य क्रिचिद्व-शेष्ये विशेषणतया प्रतीयमानस्याभिधानात । (४५१/११) सकलाप्रति-पादकत्वात् प्रत्येकं सदादिवाच्यं विकतादेश इति न समीचीना युक्तिस्तत्समुदायस्यागि विकलादेशत्वप्रसंगाद ।४६०/२३। यदि पुनर्हितस्यादिधर्मसप्तकमुखेनादोषान्हितसप्तभङ्गीविषयानन्तधमेसप्तक -स्वभावस्य वस्तुनः कालादिभिरभेदेवृत्त्या भेदोपचारेण प्रकाशनात्स-दादिसप्तविकल्पारमकवान्यस्य सकेलादेशस्त्रसिद्धिस्तदा स्यादस्त्येव जीवादिवस्तिकस्यस्य सक्नादेशत्वमस्तु । विवक्षितास्तित्वमुखेन शेषानन्तधमरिमनो बस्तुनस्तथावृत्त्या कथनात् (४६२/१) = १. केवस धर्मीको कथन करनेवाला बाक्य सकलादेश है और केवल धर्मको कथन करना हो तो विकलादेश है। इस प्रकार⋯लक्षण साररहित है क्योंकि अस्तित्व नास्तित्वादि धर्मीमेंसे किसी एक भी धर्मसे. विशिष्ट नहीं किये गये धर्मीका कथन असम्भव है। अर्थात सम्पूर्ण धर्मों से रहित शुद्ध बस्तुक। निरूपण नहीं हो सकता है। किसी न किसी धर्मसे युक्त ही धर्मीका कथन किया जा सकता है। (स. भं. त./ १७/१) २ कथंचित जीव ही है, इस प्रकार केवल जीवद्रव्य रूप धर्मीको कहनेवाला वचन विद्यमान है, और 'कथं चित् है ही' ऐसे. केवल अस्तित्व धर्मको कहनेवाला वाक्यभी सम्भवता है। ऐसा कोई कटाक्ष करते हैं। सो ऐसा तो नहीं कहना खोंकि धर्मी बाचक जीव शब्द करके प्राणधारणरूप जीवरव धर्मसे तदात्मक हो रही जीव बंस्त कथन की गयी है केवल धर्मीका ही कथन नहीं। और धर्म-बाचक अस्ति शब्द करके किसी विशेष्यमें विशेषण होकर प्रतीत किये जारहे ही अस्तित्वका निरूपण किया गया है कोरे अस्तित्वधमंका नहीं।४५१/११। ३. अस्तित्व नास्तित्व आदि धर्मीको कहनेवालै, सातों भी बाक्य यदि प्रत्येक अकेले कोले जाँय तो। सकलादेश हैं इस् प्रकार दूसरे अन्यवादी कह रहे हैं। वे भी युक्ति और शास्त्र प्रमाणमें प्रवीण नहीं हैं क्यों कि युक्ति और आगम दोनोंका अभाव है। यो तीं उन सातों वाक्योंके समुदायको भी विकलादेशपनेका प्रसंग होगा : अस्तित्वादि साती वाक्य भी समुदित होकर भी सम्पूर्ण वस्तुभूत् अर्थके प्रतिपादक नहीं हैं।४६०/२३। ४. अस्तिस्व आदि सातों धमेकी

प्रमुखतासे शेष बचे हुए अनन्त सप्तभंगियोंके विषयभूत अनन्त संख्याबाले सातों धर्मस्वरूप वस्तुका काल, आत्म रूप आदि अभेद वृत्ति या भेदउपचार करके प्ररूपण होता है। इस कारण अस्तिस्व नास्तित्व आदि सप्त भेद स्वरूप वावयको सकलादेशपना सिद्ध हो जाता है ऐसा विचार होनेपर हम कहेंगे कि तब तो 'स्यात अस्ति एव जीवादि वस्तु'' किसी अपेक्षासे जोवादि वस्तु है हो। इस प्रकार इस एक भगको सकलादेशपन हो जाओ। वयों कि विवक्षा किये गये एक अस्तित्व धर्मको प्रधानता करके शेष बचे हुए अनन्त धर्म स्वरूप वस्तुका तिस प्रकार अभेद वृत्ति या अभेद उपचारसे कथन कर दिया गया है (४६९/१)।

- क. पा. १/१,१३-१४/§१७०/२०२/२ कथमेतेषां सप्तानां सुनयानां सकता-देशत्वम्; नः, एकधर्मप्रधानभावेन साकल्येन वस्तुनः प्रतिपादकत्वात् । सकलमादिशति कथयतीति सकलादेशः । न च त्रिकालगोचरानन्त-धर्मोपचितं वस्तु स्यादस्तीस्यनेन आदिश्यते तथानुपनम्भात् ततो नैते सक्लादेशा इति; न; उभयनयविषयीकृतविधिप्रतिषेधधर्म-व्यतिरिक्तजिकालगोचरानन्तधर्मानुपलस्भात्, ७५लस्मे वा द्रव्य-पर्यायार्थिकनयाभ्यां व्यतिरिक्तस्य तृतीयस्य नयस्यास्तित्वमास-जेत्, न चैवस् । चप्रन-इम सातों (स्यादस्ति आदि) सुनयस्य वाक्योंको सकलादेशपना कैसे प्राप्त है १ उत्तर-ऐसी आइंका करना ठीक नहीं है, क्योंक ये मुनय वाक्य किसी एक धर्मको प्रधान करके साकल्य रूपसे वस्तुका प्रतिपादन करते हैं, इसलिए ये सकलादेश रूप हैं; क्यों कि साकल्य रूपसे जो वस्तुका प्रतिपादन करता है वह सकलादेश कहा जातः है। प्रश्न-त्रिकालके विषयभूत अनन्त धर्मांसे उपचित बस्तु 'कथंचित् है' इस एक बाक्यके द्वारा तो कही नहीं जा सकती है, क्यों कि एक धर्मके द्वारा अनन्त धर्मात्मक वस्तुका ग्रहुण नहीं देखा जाता है। इसलिए उपर्यूक्त सातों नाम्य सकतादेश नहीं हो सकते हैं। उत्तर-नहीं, क्योंकि द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंके द्वारा विषय किये गये विधि और प्रतिषेध रूप धर्मीको छोड्कर इससे अतिरिक्त दूसरे त्रिकालवर्ती अनन्त धर्म नहीं पाये जाते हैं। अर्थात् वस्तुमें जितने धर्म हैं वे या तो विधिरूप हैं या प्रतिषेध रूप, विधि और प्रतिषेधसे बहिर्भूत धर्म नहीं है। तथा विधिरूप धर्मीको द्रव्यार्थिक नय विषय करता है। यदि विधि और प्रतिषेधके सिवाय दूसरे धर्मोंका सद्भाव माना जाय तो द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयोंके अतिरिक्त एक तीसरे नयको मानना पड़ेगा । परन्तु ऐसा है नहीं ।
- स. भं.त /पृष्ठ/पंक्ति—अत्र केचित ... अनेक धर्मारमक वस्तु विषयक वोधजनक वाकारवं सक लादेश त्वं !... तेषां प्रमाणवाका नां नयवाका नां च
 सम्विध त्व व्याघातः । (१६/३) । सिद्धान्त विदस्तु एक धर्म वोध नमुखेन
 तदारमकानेका शेषध मिरमक वस्तु विषयक वोधजनक वाक्यत्यम् । तदुक्तम् ः 'एक गुणमुखेना शेषव स्तु स्विध्यक वोधजनक वाक्यत्यम् । तदुच्यहाँपर कोई ऐसा कहते हैं ... सत्त्व असत्त्व आदि अनेक धर्म क्व
 जो वस्तु है उस वस्तु विषयक वोधजनक अर्थात् वस्तु के अनेक धर्मोंका झान करानेवाला सक लादेश है ।... उनके मत्र में प्रमाण वाका कि
 तथा नय वाक्यों के भी सात प्रकारका भेद नहीं सिद्ध होगा।
 (१६/३)। सिद्धान्त वेत्ता ऐसा कहते हैं कि एक धर्म के बोधन के मुखसे उसको आदि लेके सम्पूर्ण जो धर्म हैं उन सब धर्म स्वस्त्व जो वस्तु ताहश वस्तु विषयक बोधजनक जो वाक्य हैं उनको सक लादेश
 कहते हैं। इसी बातको अन्य आचार्यने भी कहा है। 'वस्तु के एक
 धर्म के द्वारा शेष सर्व वस्तुओं के स्वस्त्यों का' संग्रह कर नेसे सक लादेश
 कहता है।
- · * नय कथंचित् सकलादेश है--हे, सप्तमंगी/२।
 - ★ प्रमाण सकलादेश है—हे, नय/I/२।

सकलेन्द्रिय जीव-दे. इन्द्रिय/४।

सक्तिभ-एक ग्रह-दे, ग्रह।

सक्ता-जीवको सक्ता कहनेकी विवक्षा-दे. जीव/१/३।

सगर-- १. म. पु./सर्ग/श्लोक पूर्व भव न. २ में विदेहमें बरसकावती देशकाराजाजयसेन था (४८/४०) तथा पूर्वभवमें अच्युत स्वर्गमें महाकाल नामक देव था (४८/६८)। इस भवमें कौशल देशके इक्ष्याकुवशी राजा समुद्रविजयका पुत्र था (४८/७१-७२) तथा प. पु. १५/७४ की अपेक्षा इसके पिताका नाम विजयसागर था। यह द्वितीय चक्रवर्ती था (दे शलाकापुरुष)। दिग्विजय करके भौगोंमें आसक्त हो गया। यह देखकर पूर्व भवके मित्र मणिकेतु नामक देवने अनेक रष्टान्त दिखाकर इसको सबोधा । जिसके प्रभावसे यह विरक्त होकर मुक्त हो गया - (४५/१३६-१३७)। यह अजितनाथ भगवान्का मुख्य श्रोता था—दे० तीर्थंकर । २, म. पु./६७/श्लोक मुनिमुत्रतनाथ भगवान्के समयमें, भर्त चक्रवर्तीके बाद इक्ष्वाकुव श-में असंस्थात राजाओं के पश्चात् तथा दसवें चक्रवर्तीके १००० वर्ष पश्चात् अधोष्ट्यामें राजाहुआ था। उस समय रामचन्द्रका ५५वाँ कुमार काल था। एक त्रार मुलसा कन्याके स्वयंवरमें मधुपिंगलको छलसे वरके दुष्ट सक्षणींसे युक्त बता कर स्वयं मुक्तसासे विवाह किया। तत्र मधुर्पिगलने असुर त्रनकर पर्यत नःमक बाह्मण पुत्रकी सहायतासे (१४४-१६०) बैर शोधनके अर्थ यज्ञ रचा। जिसमें उसको बिल चढ़ा दिया गया (६७/३६४)।

सिचित्त - जीव सहित पदार्थोंको सिचत्त कहते हैं। सूखनेसे, अग्नि-पर पकनेसे, कटने छटनेसे अथवा नमक आदि पदार्थोंसे संसक्त होनेपर वनस्पति, जल आदि पदार्थ अचित्त हो जाते हैं। बती लोग सिचत्त पदार्थोंका सेवन नहीं करते।

१. सचित्र सामान्यका छक्षण

- स, सि,/२/३२/१८७/१० आस्मनश्चेतन्यविशेषपरिणामश्चित्तम् । सह चित्तेन वर्ततः इति सम्बितः ।
- स. सि./७/३६/३७१/६ सह चित्तेन वर्तते इति सचित्तं चेतनावइ द्रव्यम् । =१. आत्माके चैतन्य विशेषस्य परिणामको चित्तं कहते हैं। जो उसके साथ रहता है वह सचित्तं कहलाता है। (रा. वा./२/२९/१/-१४१/२२) २. जो चित्तं सहित है वह सचित्तं कहलाता है। (रा. वा./७/३६/१/१६६०)।

२. सचित्त त्याग प्रतिमाका लक्षण

- र, क. आ./१४१ मूलफलशाकशाखाकरीरकंदप्रसुननीजानि । नामानि योऽत्ति सोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः। —जो कच्चे मूल, फल, शाक, शाखा, करीर, जमीकन्द, पुष्प और नीज नहीं खाता है वह दयाको मूर्ति सचित्त त्याग प्रतिमाधारी है।१४१। (चा. सा./३८/१); (का अ./मू./३७६-३८०); (ला. सं./८/१६)।
- वसु. श्रा./२६६ जं विज्ञिज्ञ हिरियं तुय-पत्त-पवाल-कंदफलबीयं। अप्पासुग च सिललं सिचत्तिणिवित्रत्ति तं ठाणं। चलहौँपर हिरितः त्वक् (ञ्ञाल), पत्र, प्रवाल, कन्द, फल, बीज और अप्रासुक जल त्याग , किया जाता है वह सिचत्त विनिवृत्तिवाला पाँचवाँ प्रतिमा स्थान है। (गुण. श्रा./१७८); (द्र. सं./टी./४४/१६४/८)।
- सा. धः/अ/=-१० हरिताङ्कुरवीजस्य लवणाद्यप्रामुकं त्यजन् । जाग्रत्कृष्थ-दुर्निष्ठः. सम्बद्धिरतः स्मृतः । पारेनापि स्मृशन्नर्थ-वशाखोऽति ऋतीयते । हरितान्याश्रितानन्त-निगोतानि स भोक्ष्यते । १। अहो जिन्मेक्ति निर्णोतिरहो अक्षजिति. स्ताम् । नालक्ष्यजनस्विप हरित च्यासन्त्येतेऽसुक्षयेऽपि यत् । १०। = प्रथम चार प्रतिमाओंका पालक तथा

प्राप्तक नहीं किये गये हरे अंकुर, हरे बोज, जन, नमकादि पदार्थोंको नहीं खानेवाला दयामूर्ति श्रावक सचित्त विरत माना गया है । जो प्रयोजनवश पैरसे भो छूता हुआ अपनी निन्दा करता है वह श्रावक मिले हुए हैं अनन्तानन्त निगोदिया जीव जिसमें ऐसी बन-स्पितयोंको कैसे खायेगा । हा सज्जनोंका जिनागम सम्बन्धी निर्णय, इन्द्रिय विषय आश्चर्यजनक है, क्योंकि बेसे सज्जन दिखाई नहीं देते जो, प्राणोंका ह्य होनेपर भी हरी वनस्पतिको नहीं खाते। १०।

३. सचित्तापिधान आदिके लक्षण

स. सि./७/३६-३६/३७१/६ सचित्तं चेतनावद् द्रव्यम् । तदुपित्तष्टः संबन्धः । तद्व्यतिकीर्णः संमिशः ।३६। सचित्तं पमपत्रादौ निक्षेपः सचित्तनिक्षेपः । अपिधानमावरणम् । सचित्तेनैव सबस्यते सचित्ता-पिधानमिति ।३६। — सचित्तसे चेतना द्रव्य निया जाता है । इससे सम्बन्धको प्राप्त हुआ द्रव्य सम्बन्धाहार है । और इससे मिश्रित द्रव्य सम्मिश्र है ।३६। (रा वा./७/३६/२-३/६६-१४) । सचित्त कमल पत्र आदिमें रखना सचित्तनिक्षेप है । अपिधानका अर्थ दाँकना है । इस राज्यको भी सचित्त राज्यसे जोड़ लेना चाहिए जिससे सचित्ताः पिधानका सचित्त कमलपत्र आदिसे ढाँकना यह अर्थ फलित होता है । (रा. वा./७/३६/१-२/६६८/२०)।

४. भोगोपभोग परिमाण व्रत व सचित्त त्याग प्रतिमा-में अन्तर

चा, सा./३८/१ अस्योपभोगपरिभोगपरिमाणशीलवतातिचारो वर्त भव-तीति। चउपभोग परिभोग परिमाण शीलके जो अतिचार हैं उनका त्याग ही इस प्रतिमामें किया जाता है।

सा. घ,/७/११ सचित्तभोजनं यत्पाङ् मलत्वेन जिहासितम्। वतयत्यङ्गिञ्चत्व-चिकतस्तम् पञ्चमः।११। =वती श्रावकने सचित्त
भोजन पहले भोगोपभोग परिमाण वतके अतिचार रूपसे छोड़ा था
उस सचित्त भोजनको प्राणियोंके मरणसे भयभीत पंचम प्रतिमाधारी
वत रूपसे छोड़ता है।११।

ला. सं./अ१६ इतः पूर्वं कदाचित्वे सिचित्तं वस्तु भक्षयेत । इतः परं स नाशनुयारसिचत्तं तज्जलाद्यपि ।१६। चपंचम प्रतिमासे पूर्व कभी-कभी सिचित्त पदार्थोका भक्षण कर लेता था । परन्तु अत्र सिचत्त पदार्थोंका भक्षण नहीं करता । यहाँ तक कि सिचित्त जलका भी प्रयोग नहीं करता ।१६।

५. वनस्पतिके सर्वे भेद अचित्त अवस्थामें ग्राह्य हैं

दे, भक्ष्याभक्ष्य/४/४ [जिमिकंद आदिको सचित्त रूपमें खाना संसार-का कारण है।]

दे० सचित्त /२ [सचित्त विरत श्रावक सचित्त वनस्पति नहीं खाता]

दे. सचित्त/६ [आगपर पके व विदारे कंदमूल आदि प्राप्तुक हैं]।

मृ. आ./८२६-२२६ फलकंदमूलबीयं अणिरियवनं तु आमयं किंचि।
णवा अणेसणीयं णिव य पिडिन्छांति ते घीरा। १२६१। जं हबिद अभिव्यीयं णिविष्टमं फासुयं कयं चेव। णाऊण एसणीयं तं भिक्खं सुणिपिडिन्छंति। १२६१ च्यारिनमर नहीं पके, ऐसे कंद, मूल, बीज, तथा अन्य भी जो कचा पदार्थ उसको अभक्ष्य जानकर वे धीर बीर सुनि भक्षणको इन्छा नहीं करते। १२६१ जो निर्वीण हो और प्राप्तक किया गया है ऐसे आहारको खाने योग्य समक्ष सुनिराज उसके लेने-की इन्छा करते हैं। १२६।

ला, सं./२/१०४ विवेकस्यावकाशोऽस्ति देशतो विरतावि । आदेयं

प्रीप्तकं योग्यं नादेयं तिहिपर्ययम् ।१०४। = देश त्यागमे विवेककी नड़ी आवश्यकता है। निर्जीय तथा योग्य पदार्थीका प्रहण करना चाहिए। सचित्त तथा अयोग्य ऐसे पदार्थीको प्रहण नहीं करना चाहिए।१०४।

६. पदार्थीको प्राप्तक करनेकी विधि

मू, आ./८२४

सुवकं पवकं तत्तं अंबिल लवणेण मिस्सयं दव्यं । जं कंतेण य छिन्नं तं सव्यं पासुयं भणियं । प्रशः = सूखी हुई, पकी हुई, तपायी हुई, खटाई या नमक आदिसे मिश्रित वस्तु तथा किसी यंत्र अर्थात् चाक् आदिसे छिन्न-भिन्न की गयी सर्व ही वस्तुओं को प्राप्तक कहा जाता है।

गो,जो,जी,प्र./२२४/४८२/१४ शुष्कपनवध्वस्ताम्ललवणसंमिश्रदम्धादि द्वव्यं प्राप्तकं । = सूखे हुए, पके हुए, ध्वस्त, खटाई या नमक आहि-से मिश्रित अथवा जले हुए द्वय प्राप्तक हैं।

७. अन्य सम्बन्धित विषय

१. सिचत त्याग प्रतिमा व आरम्भ त्याग प्रतिमार्मे अन्तर।

—दे. आरम्भ ।

२. स्हो हुए भी उदम्बर फल निषद्ध हैं। — दे. भस्याभक्ष्य।

साधुके विहारके लिए अचित्त मार्ग । —दे. विहार/१/७ ।

४. मांसको प्राप्तक किया जाना सम्भव नहीं। - -दे. मांस/२।

प्रजनन्त कायिकको प्राप्तक करनेमें फल कम है और हिसा
 अधिक ।
 —दे. भक्ष्याभक्ष्य/४/३ ।

 इ. वहीं जीव या अन्य कोई भी जीव उसी बीजके योनि स्थानमें जन्म धारण कर सकता है।
 — दे. जन्म/२।

सचित्त गुणयोग—हे. योग।
सचित्त निक्षेप—हे. तिक्षेप।
सचित्त योनि—हे. योनि।
सचित्त संबंध—हे. सचित्त/है।

सचित्त समिश्र—दे. सचित्त/३।

सचित्तापिधान-हे. सचित्त/३।

सज्ज्ञनिचत्तं वर्ल्भ — आ. मिल्लियेण (ई. १०४७) द्वारा विर-चित अध्यारम उपवेश रूप संस्कृत छन्द नद्ध प्रनथ है। इसमें २५ श्लोक हैं।

सित् — सत्का सामान्य सक्षण पदार्थोंका स्वतः सिद्ध अस्तित्व है। जिसका निरन्वय नाश असम्भव है। इसके अतिरिक्त किस गति जाति व कायका पर्याप्त या अपर्याप्त जीव किस-किस योग मार्गणामें अथवा कषाय सम्यक्त्व व गुणस्थानादिमें पाने सम्भव हैं, इस प्रकार-की विस्तृत प्ररूपणा ही इस अधिकारका विषय है।

सत् निदेश 9 सत् सामान्यका रुक्षण । ۶ द्रव्यका लक्षण सत्। —दे• द्रव्य/१ **।** * सत् शब्दका अनेकों अर्थोंमें प्रयोग । ₹ सत् स्वतः सिद्ध व अहेतुका है। ₹ द्रव्यकी स्वतन्त्रता आदि विषयक । -दे. द्रव्य । सत् सदा अपने प्रतिपन्नीकी अपेक्षा रखता है। --दे. अनेकान्त/४ : सत्के उत्पाद व्यय धौव्यता विषयक । 🗕 दे. उत्पाद । * ,सत्का विनाश व असत्का उत्पाद असम्भव है। ሄ द्रन्य गुण पर्याय तीनों सत् हैं। -दे. उत्पाद/३/६। असत् वस्तुओंका भी कथित्रित् सत्त्र । — दे असत् । सत् ही जगत्का कर्ता हती है। ų सत्ताके दो भेद---महासत्ता व अवान्तर सत्ता। —दे अस्तित्व। सत् विषयक प्ररूपणाएँ ₹ सत् प्ररूपणाके भेद । ξ सत् व सत्त्वमें अन्तर। २ सत् प्ररूपणाका कारण व प्रयोजन । ₹ सारणीमें प्रयुक्त संकेत सूची। ¥ सत् विषयक्ष ओव मरूपणा । ч अधःकर्म आदि विषयक आदेश मरूपणा । Ę पाँची अरोरीकी संधातन परिशातन कृति सम्बन्धी ।

१. सत् निर्देश

१. सत् सामान्यका रुक्षण

स. सि./१/८/२१/६ सदित्यस्तिस्वनिर्देशः। =सत् अस्तित्वका सूचक है। (स. सि./१/३२/१३८/७); (रा. वा./१/८/४१/१६); (रा. वा./१/३०/८/४६/२८); (गो. क./जी. प्र./४३६-४६२)।

ष, १/१.१,८/१५६/६ सत्सत्त्विमत्यर्थः । स्तन्त्वः दोऽस्ति शोभननाचकः, यथा सदिभिधानं सत्यमित्यादि । अस्ति अस्तित्ववाचकः, सित सत्ये वतीत्यादि । अत्रास्तित्ववाचको ग्राह्यः । स्तत्का अर्थ सत्त्व है । स्त् सत् शब्द शोभन अर्थात् सुन्दर अर्थका वाचक है । जैसे, सदिभिदान, अर्थात् शोभनस्व कथनको सत्य कहते हैं । सत् शब्द अस्तित्वका माचक है ।

दे, द्रध्य/१/७ [सत्ता, सत्त्व, सामान्य, द्रव्य, अन्वय, वस्तु, अर्थ, विधि ये सर्व एकार्थवाची शब्द हैं।

दे, उत्पाद/२/१ [उत्पाद, व्यय, धुन इन तीनोंकी युगपद प्रवृत्ति सत् है।]

२. सत् शब्दका अनेकों अर्थीमें प्रयोग

- स. सि./१/८/२१/६ स (सत्) प्रशंसादिषु वर्तमानो नेह गृह्यते । = वह (सत्) प्रशंसा आदि अनेको अर्थों में रहता है...।
- रा, ना./१/८/१/४१/१६ सच्छब्दः प्रशंसादिषु वर्तते । तद्यथा प्रशंसायां तावत् (सत्रुरुषः, सदरवः) इति । क्वचिदस्तित्वे 'सन् घटः, सन् पटः' इति। क्वचित् प्रतिज्ञायमाने~प्रविज्ञतः सन् कथमनृतं ग्रूयात् । 'प्रव-जितः' इति प्रज्ञायमान इत्यर्थः । क्वचिदादरे 'सत्कृत्यातिथीन् भोजयतीति' 'आइत्य इत्यर्थः । क्सत् शब्दका प्रयोग अनेक अर्थोमें होता है जैसे 'सत्पुरुष, सदर्व' यह प्रशंसार्थक सत् शब्द है । 'सन् घटः, सन् पटः' यहाँ सत् शब्द अस्तित्व वाचक है । 'प्रवजितः सन्' प्रतिज्ञावाचक है ।'सत्कृत्य'में सत् शब्द आदरार्थक है (रा. वा./४/-२०/९/४६४/२४)।
- घ. १३/४,४,८८/३४७/१ सत् सुखम् । = सदका अर्थ सुख है ।

३. सत् स्वतः सिद्धः व अहेतुक है

- प्र. सा./त. प्र./गा. नं, यदिदं सदकारणतया स्वतः सिद्धमन्तर्ब हिर्मुखप्रकाशशा लित्या स्वपरपरिच्छेदकं मदीयं मम नाम चैतन्यम्
 । १०। अस्तित्वं हि किल इव्यस्य स्वभावः तत्युनरन्यसाधनित्येक्षत्वादनाद्यनन्तत्याहेतुक्रयेक रूपया वृत्त्याः। १६। न खलु इव्येद्वव्याननतराणामारम्भः, सर्वद्रव्याणां स्वभावसिद्धत्वात्। स्वभावसिद्धत्वं तु
 तेवामनादिनिधनत्वात् । अनादिनिधनं हि न साधनान्तरमपेक्षते
 । १८। चसत् और अकारण सिद्ध होनेसे स्वतः सिद्ध अन्तर्मुख-बहर्मुख
 प्रकाशवाला होनेसे स्वपरका झायक ऐसा जो मेरा चैतन्य---(१०)
 अस्तित्व वास्तवमें इव्यका स्वभाव है और वह (अस्तित्व) अन्य
 साधनसे निरपेक्ष होनेके कारण अनादि-अनन्त होनेसे अहेतुक, एक
 वृत्ति रूप---।१६। वास्तवमें द्रव्योसे द्रव्यान्तरकी उत्पत्ति नहीं होती,
 क्यों कि सर्व द्रव्य स्वभावसिद्ध हैं (उनकी) स्वभावसिद्धता तो
 जनको अनादि निधनतासे है। क्यों कि अनादि निधन साधनान्तरकी
 अपेक्षः नहीं रखता। १८।
- पं. ध /पू./ ह तत्त्वं सक्लाशणिकं सन्मात्रं वा यतः स्वतः सिद्धस्।
 तस्मादमादिनिधनं स्वसहायं निर्विकल्पं च । ८। इत्थं नो चेदसतः
 प्रादुर्भृतिनिरं कुशा भवति । परतः प्रादुर्भावो युत्तिसिद्धत्वं सतोविनाशो वा । १ । = तत्त्व का लक्षण सत् है । सत् ही तत्त्व है । जिस
 कारणसे कि वह स्वभावसे ही सिद्ध है इसलिए वह अनादि अनन्त
 है । स्वसहाय है, निर्विकल्प है । ६। यदि ऐसा न मानें तो असदकी
 उत्पत्ति होने लगेगी । तथा परसे उत्पत्ति होने लगेगी । पदार्थ, दूसरे
 पदार्थके संयोगसे पदार्थ कहलावेगा । सत्तके विनाशका प्रसंग
 आवेगा । ६।
- दे, कारण/II/१ [बस्तु स्वतः अपने परिणमनमें कारण है।]

४. सत्का विनाश व असत्का उत्पाद असम्मव है

- पं का /मू ./१६ भावस्स णरिथ णासो णरिथ अभावस्स चेव उप्पादो ।
 गुणपञ्जयेसु भावा उप्पादवए पकुटवंति । = भाव (सत्) का नाश
 ,नहीं है। तथा अभाव (असत्) का उत्पाद नहीं है। भाव (सत्
 द्वट्यों-) गुण पर्यायों में उत्पाद नग्नय करते हैं।१६।
- सं, स्तो./२४ नैवाऽसतो जन्म सतो न नाको, दीपस्तमः पुद्दगत्तभावतो-ऽहित ।४। —जो सर्वथा असत है उसका कभी जन्म नहीं होता और सत्का कभी नाका नहीं होता। दीपक बुभने पर सर्वथा नाका-को प्राप्त नहीं होता, किन्तु उस समय अन्धकार रूप पुद्दगत पर्यायको धारण किये हुए अपना अस्तित्व रखता है।२४।

पं, घ /पू./१८३ नैवं यतः स्वभावादसतो जन्म न सतो विनाशो वा। जत्पादादित्रयमपि भवति च भावेन भावत्या १९८३। = इस प्रकार शंका ठीक नहीं है। क्यों कि स्वभावसे असत्की जत्पत्ति और सत-का विनाश नहीं होता है किन्तु उत्पादादि तीनों में भवनशील रूप-से रहता है।

५. सत् ही जगत्का कर्ता-हर्ता है

पं. का./मू./२२ जीवा पुग्गलकाया आयासं अतिथकाक्ष्य सेसा। अमया अतिथत्तमया कारणभूदा हि लोगस्स ।२२। —जीव पुद्गलकाय आकाश और शेष दो अस्तिकाय अकृत हैं, अस्तिश्वमय हैं और वास्तवमें लोकके कारणभूत हैं।२२।

२. सत् विषयक प्ररूपणाएँ

१. सत् प्ररूपणाके भेद

ष. खं. व धवला/१/१,१/स्. प/११६ संतपस्तवणदाए दुविहो णिइदेसो जोवेण आदेसेण य । पन पन च प्रस्पणायास्तृतीयः प्रकारोऽस्ति सामान्यविशेषव्यतिरिक्तस्यानुपलम्भात् । स्राप्तस्यणामें ओघ जर्थात् सामान्यकी अपेक्षासे और आदेश अर्थात् विशेषकी अपेक्षासे इस तरह दो प्रकारका कथन है। पा इन दो प्रकारकी प्रस्पणाको छोड़कर वस्तुके विवेचनका तीसरा उपाय नहीं पाया जाता, क्योंकि वस्तुमें सामान्य विशेष धर्मको छोड़कर तीसरा धर्म नहीं पाया जाता।

२. सत् व सत्त्वमें अन्तर

रा. वा, ११/८/१२/१४/२५ नानेन सम्यन्दर्शनादेः सामान्येन सन्त-मुच्यते किन्तु गतीन्द्रियकायादिषु चतुर्दशसु मार्गणास्थानेषु 'कास्ति सम्यन्दर्शनादि, क नास्ति' इत्येवं विशेषणार्थं सद्वचनम्। = इस (सत्) के द्वारा सामान्य रूपसे सम्यग्दर्शन आदिका सन्त्वमात्र नहीं कहा जाता है किन्तु गतिइन्द्रिय न्याय आदि चौदह मार्गणा स्थानोंमें 'कहाँ है, कहाँ नहीं है' आदि रूपसे सम्यग्दर्शनादिका अस्तित्व सुचित किया जाता है।

३. सत् प्ररूपणाका कारण व प्रयोजन

- रा. वा./१/८/१२/४२/२ में स्वनिधकृता जीवपर्यायाः । क्रोधाद्यो में चाजीवपर्याया वर्णादयो घटादयश्च तेषामस्तित्वाधिगमार्थं पुन-वेचनम् । = अनिधकृत क्रोधादि या अजीव पर्याय वर्णादिके अस्तित्व सुचन करनेके लिए 'सत्' का ग्रहण आवश्यक है।
- दे, सत्। २/२ गति इन्द्रियादि चौदह मार्गणाओं में सम्यग्दर्शनादि कहाँ है कहाँ नहीं है यह सूचित करनेको सत् शब्दका प्रयोग है।
- पं.का./ता. वृ./=/२३/६ शुद्ध जीवद्रव्यस्य या सत्ता सैवोपादेया भव-तीति भावार्थः। ≒शुद्ध जीव द्रव्यकी जो सत्ता है वही उपादेय है ऐसा भावार्थ है।

४. सारणीमें प्रयुक्त संकेत सूची

এলা **এল**ান

अनाः अनाकार, अनाहारक

अनु. अनुभय

अप, अपर्याप्त, अपर्याप्ति, अपनायिक

अभ, अभव्य अब, अवधिज्ञान अबि. अविरस गुणस्थान अशु, अशुभ तेश्या आदि

असं. असंजी, असंयम आ. आहारक, आहारसंज्ञा

उ. उत्कृष्ट, उभय एके एकेन्द्रिय

औ. औदारिक काय्योग, औपश्रमिक सम्य,

का, कारीत लेख्या, कार्मण केवल. केवलझान, केवलदर्शन क्षयो. क्षयोपशिमक सम्य. क्षाया सम्यग्दर्शन

ল্লা, ল্লান

च. चतुर्गतिनिगोद छे. छेदोपस्थापना चारित्र

ति. तिर्यंचगति

ते. तेजोलेश्या (पीत.)

त्र. त्रसकाय दे. देवगति देश. सं. देशसंयम न. नरकगति नि. नित्यनिगोद पं. पंचेन्द्रिय

परि, परिग्रह, परिहार वि,

प्, पर्याप्त, पर्याप्त पृ. पृथिनीकाय

प्र. प्रतिष्ठित, प्रत्येक

म. ननस्पतिकाय

भ. भव्य

मनः मनःपर्यस्, मनोयोग

मनु. मनुष्यगति

मा. मानकषाय

मि. मिध्यास्व

मै. मैथुनसंज्ञा

यथा, यथारूयात

लो. लोभकषाय

न. नचनयोग वै. वैक्रियकयोग

शु. शुक्ललेश्या शु. शुरुज्ञान सं संजी

सं. संज्ञी सा. साधारण वनस्पति

सा. सामायिक, सासादन सुं, सूक्ष्म, सूक्ष्मसाम्पराय

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

५. सत् विषयक ओच प्रस्पणा ४.२/१,९/४२१-४४८

/ ['KY	मार्गणा निशेष									२० प्रस्तपणाएँ) _E				′							
प्रयास १८ प्रयास १९ अन्ययसि		गुण स्थान	जीव समास	पया हि	мім	संज्ञा	गित	pşelş	काय	योग	द्रेष्ट	দাদক	<u> </u>	संयम	दश्	म जिल्ला		भव्य	सम्य,	संज्ञिष्य	জাहा.	उपयोग
सामान्य—(पर्याप्त	1 Y "	(a. ± ∞	जीव सामान्य—(घ. २/१,१/४२१–४२३) पर्याप्त १४ ७ ५, ६.५.४	(-833) (-833) (-833) (-833) (-833)	\$/\$ \$0\6;2\0;	20	>	-34	40-	१९ होनो मिश ब कार्मण	1 . 102	क्षाय, व्य	N N	9	20	405		भठय,	725.	a	अ	न् साकार,
अपर्याप्तः (_	2	9 kg	६,५,४ अपर्याग्रि	8/8: \$/K:	ॐ हिंमेह	20	-54°	·uo-	किना ४ दोनौँ मिश्र ब कार्मण	अवगत् भू अप	असवाय द्वाबक	है ४ मन, विभाग सामा. जिमा छेयथा	४ सामा. छे.,यथा, असं यमें	≫	 क्रिके	m. 10 c 10	अभव्य २ भव्य, स्	१ सम्प्रीमध्या रहित	ल के ल		
सामान्य	, u	ष. <i>२/१.</i> १ मिध्याः	400	४२१) - ६,५-४ प. - ६,१-४ अप.	•	20	20	~	423	१३ आहा, द्वि.	m	ক স		१ शस्यम्	१ २ असंयम चस्रु., अनस्रु.	415	<u>स</u> ***	. अम	्र मिथ्या,	ं स	आहा	् न सामांस्
नयभि ।।	4	१ निध्याः	क क क म	्र. स्योस स्य	\$ (8; 8/3 \$0,5,2,0, \$,8)o	20	*	40	किना १० मन४, बैच्.४	602	30 BØ	अ अज्ञान अ	्रं अस् त्रम अस् त्रम	महः,अब्ध	4 0-		भ भठध,	मिथ्या.	अस्तु भूतः सं	(영) (영) (영) (영) (영) (영) (영) (영) (영) (영)	अनाकार २ साकार व्यनकार
अपर्याप्त	4	् मिध्या,	ඉ <mark>ප්</mark> ල	ह,५.४ अपर्याधि	9. er 9. er 9. 75	20	20	અ	w	अ.र.ब.र ३ ओ.सि.बै. मिश्र, कार्म.	to.	% अभ्रमिति अध्रत	l o	१ असंधाम च	नक्ष∴ख्ये अं•क्ष्ये	ल हैं की	Tur ("	भ २ भ स्थः अभः	१ मिथ्या.	असं, भ	२ आहा., अना,	
सादन सम्यन् १ सामान्य	10.	ट्टिष्टि—(१ सासा,	(4.3/k,8	सासादन सम्यग्द्धि—(घ.२/१,१/४२६-४२७) २ सामान्य १ २ ६पर्याप्ति सासा, सं.प. ६व्रयपत्ति	9, 08	>>	20	वी, ~	त्र %	्र १३ औ. हि. बिना	m	क ————————————————————————————————————	अ अ अ	१ असेवम चिथु	स्य • • • • • • • • • • • • • • • • • • •	419-		भव्य,	₹ सासा.	संख्	- २ असहा.	्र साकार
च्या प्त	•	१ सासा,	्र इ. ० म.	६ म्यासि	•	>∞	30	वाँ, ~	य ४	१० मन ४, धंच ४	tus.	 >>	३ अञ्चान <u>१</u> ३	१ असंग्रम चह्य., अचक्ष	२ स., अंचर्स.	«y-	**************************************	्र भव्य,	१ सासा,	4. (報)	्र अतिहास अतिहास	स्तिकार
अपयसि		१ सासा.	क्षेत्र ५ विषय	् अपमिसि अपमिसि	व के अप के	200	^३ नरक किंग	यं ~	म ∽	था, १, थ. १ ३ औरिमेंबे. मिश्र, कार्म.	m	ू रू	र कुमरिः, । कुश्रत	्र असेशम ब	म अ. अ. संस्	জৌ কা ত	wy	१ भव्य,	१ सासा.	(根) (型) (型)	२ अहा., अना,	

भा० ४-२१

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

					· · ·		
	डमयोग	२ साकार अनाः.	* 18	अता. श्रमाः भाषात्रा	अना. २ साकार अना.	२ अना. अना.	२ क्राकार अमा,
	आहा.	≫ ₩	ا ا	의 시 () 기 (용 (원) (원) (원) (원) (원) (원) (원) (원) (원) (원)	~ ₩	्र आहा.
}	स जिस्य	◆ 5/15/ Chr	→ 4	p •√6 Γ H	को ∼ क	म.स.	क क्षे
	सम्प्र	मू 🕶	m #	सा., क्षयो ने	समो. ३ औशा., समो.	. के संयो.	औ.,शन. सयो.
	भव्य	१	~ [ron ₩	•• क्र	* ex	भव्य
	क्षेत्रया म	MZ,	ws.	415	ar Fe Rij	or (E)	es ∰
. [#13.		<u> </u>		m.,	
	स् र्थम	म अन्य	(m)	मधुः प्रमुख म अमिधि भै	अवधि १ ३ असंयम् चक्षु, अचक्षु	३ चक्ष, अचक्ष, अगिष	है है सामा, चक्ष, अचक्ष, छे., अबिध
}	संयम	० अस्प्यम	٠ ا		्र असंयम	् संग्रमा- संग्रम	
•	श्चान	ृ तीमोँ हास व अज्ञान मिश	fer (माय, श्रुव, अवस्थि इ	अवधि १ १ १ मा विश्व स्थापन	^३ मि, श्रुत, अविध	४ मिरि, श्रुत, अब., मनः
	क्रवीय	≫	20	200	20	200	>0
२० प्रह्मयगाएँ	वी	W	m	tes.	के के म	m	αγ
30	योम	क विकास अपन्य १०० अपन्य विकास अपन्य विकास	ις 1	्र, द्र, द्र, श्रिमा १० मम× श्रेस	खी. १८ क. क्रिक्टिस	व सान्त्र ह सन्द्र, वच्छ अो. १	११ मन४, बच्छ औ. १, बाहा. २
Ì	काय	% ¼	• [F ~ #	~ #	~ K	% ₹#
	भाग रहे रहे	~ 'b⁺	~~*	, op.	· • • •	~. . р.	~ ·E.
	गति	20	, 2º	200	>=	के के	∾ ^{16°0} म
	祖朝	>>	29	24	>>	20	>0
	प्राज	°	٠ •	. % म्योगिके	ু কুট ১৯ চুট ড	0	१०/०१ १६ . मुर्च १६ . मुर्च
	स्मिष्टि	४२८) ६ पयरीप्ति	 ५. असंयत सम्यन्दृष्टि—(ष.२/१,१/४२६-४३१) १ ४ सामान्या १ । २ ६ पर्याप्ति १ म क ६ व्ययापित 	म स्	्र अपयासि	् वयिष्ठि	() {
, 	जोव समास	४. सम्योग्मध्यादृष्टि—(घ. १/९.१/४२८) १ ३ सा.च प. १ १ (अप. मिश्र सं. प. पठ	4.2/8,8/			ह. संयेतासंयत— १ ५ सा,पर्या, १ १ १ प्राप्त संयत—(स. २/० १/०२२)	सं अप
	मुण स्थान	(g) ~ (g)	B B B B B B B B B B		श्रीव		खुरा,
वशेष	पद्मधि अक्यक्षि	[म्मध्याद्वी सा,व प, (अप. नहीं है)	असंयत् सम्यन् ४ सामान्य	प्यमि	अपयमि	इ. संयतासंयत— १ ५ सा, पर्या,	सा.पर्याः
Ψ			ຸຄ <u>າ</u>				
मार्गणा विशेष	ग्रेत स्थान	D m	র্ন্ধ প	⊅ °	> 200 - >	र में,	•

<u> </u>	<u> </u>	h/ _:	₩ <u>.</u>	F. E.	K to . K to	~ # +
	उपयोग	. २ साकार अना.	साकार अना.	२ साकार अमा, २ साकार	स्याकार अना: अना: अना:	<u> </u>
	आहा. र	≈ <u>F</u>	* M 전 **	१ अगहा. शहा.	आहा. आहा. अहा.	# 제품
	स्रिक्षित्व	सं वी	संडी ~	के स	क्तं के द	ু দু ক
}	सम्ब	औ., सा., सयो.	न औ•, हा	ગે. સા. ગે. સા. શો., સા.	ર શ્રી. સા. શ્રી. સા.	अ औ., मा-
-	मश्र	भव्य	₩	भेड्य भ	% भव्य १००० भव्य	भः
-	 -	w ₽ >	•∕ k²	~ kỷ ~ kỷ	~ \$\disp \ \disp	क्षं भ
	1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1	w	*ur	W 437	to to	₩.
-	दर्शन	न सस. अन्छ. अन्छ	े वस, अन्धु, अन्धि	्यार्ष	अव। य स्था, अवस्था, अविध विश्व, अवस्थि,	ह चक्ष, अबधु, अव्यि
-	संयम	सा. परि.	सीमा, क्र	स्म प्रम	सामा , ख्रे.	त्र सामा, छे,
774	HE STATE OF THE ST	रू ४ अब, भनः	४ मिति, श्रुत, अव., मनः	४ मिति, धुत, अब., मनः ४ मिति, श्रुत,	अव्, मनः ४ मिति, श्रुत, अव, मनः ४ मिति, श्रुत,	४ ४ थब., मनः
३० प्रह्मवणाए	क्रमास	26	>>	> >	₩ _Б 릙୨ƙक 쓰 본 Æ	
2	- IU	m-	en/	or o Plib		
\[\]	मीग	ह मन् ४ ब्व.४ खौ. ९	मन,४,चचः४ औ.९	ह सन ४,वच,४ खौ. ९ ६ १	बी. १ ह सम.४. बच्.४ छो. १ १ मन.४, बच.४	रा. ८ १ मन.४.वच.४ थी. ९
	न अ	म् 💝	न न स	त्र अस्य अस्य अस्य अस्य अस्य अस्य अस्य अस्य	# * # *	* **
	इ न्द्रिय	۳.۴.	٠٠. او.	~ '	~.P. ~.P.	~ '₽•
	먑	क् म	क्रम	भू के के कि	थं ⊶ सं ⊶	मनुः
	स्द्रा	ड़ हड़ी र ,118	ट्ट तेड्रीत्र ा ध	4 th ~ th	की क	م ل ا م
	KTUK	۵	>	<u> </u>	° °	&
	मर्था ष्टि	38) E 42/fg	् ह सर्याप्ति	१०. अनिवृत्तिकरण— (ध. २/१,१/१३१-४३८) १ ६ पर्याप्त १ १ ६ ४. भाग १वाँ सं.प. पर्याप्ति २ १ दि. भाग १ १ ६	ह पर्याप्ति ह पर्याप्ति	ई पर्याप्ति
	जोम समास	र/१.५/४३ सं.प.	सं द	सं सं स	मं सं	₩. .
	मुख स्थान	(H.	(a, 2/8	प्र- (म. श्वाँ	मार का का का का का का का का का का का का का	~ #F
मार्गामावस्थ	पद्मप्ति अपद्मित्ति	 अप्रमच संगत—(ध. २/१,१/४३५) श्रे सा. प. १ १ १ १ पर 	९. अपूर्वकारण'—(घ. २/१.१/४३५) १ ८ पर्याप्त १ १ ८ पर्याप्त ८वाँ सं.प.	निवृत्तिकर। पद्मप्ति - प्र. भाग द्वि, भाग	त्.भाग चतुर्थ भाग	पंचम भाग
Linia	नाध्र करू	8 8 9	% वर्षा	₩ w w	w w	w
# \	* *	v ~	o' o'	2. 2. 0.	m >0	≫

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	उपयोग	र साकार् अना.	२ साकार, अमा,	२ साकार अना,	२ साकार, अना. ग्रुगपत्	र साकार, अना, युगष्व
	आहा. जि	अहा. स अ	अ आहा, स	्र स । ।	२ अशहा., स्	अना, स
						
	स्	क्षं भ	सं. ~	संभ	र ०म ०म ७	अनुभय
 	सम्प	अ, सा.	न और क्षा,	٠ لق 	~ ii	~ कें
	म्	भूष्य	१ भेव्य	भ≅य	त म	भुवय
	संस	ंत्र ~	~ k²	در افن در افن	~ কি	अभेश्या ०
	त्र. म	3 05	ws.	ut'	eno.	40-
	ब् श्ने	३ मध्य, अप्रक्षु :अनिध	है नश्र, अम् अन्दि	3 बहुर, अबस्थ अबस्थि	१ केब सद्यो	१ केबल दश्त
	संयम	१ सूक्ष्म सांप.	१ यथा,	य थे. यं थे.	4	४ यथा.
	झान	४ मिति, श्रुत, अव, मनः	४ मर्ति, श्रुत, अब, मनः	४ मति, श्रुत अव., मनः	के ब ख्रा न	्र केयल शान
	प्राक्षक	सुहम थाम 🗠	o kipak	o nibele	व क्षेत्रात ०	अक्षात ०
114	₽₽	o Pipp	ુ દ્યાન	o Dirpie	्र धेष्टिक	े द्वामक
३० प्रस्तपणाएँ	म्रोग	र मन४, वच्,४ औ, १	ह मन ४, बच्छ	र मन ४, बच्छ अौ. ९	७ मन २, बच्चर खी, २, का.१	o अयोग
	कारय	भू भूस	य ⊶	नंस ⊶	र्भ ४	त्र %
	इन्द्रिय	.₽.	٠٠.	~ p:	~ °b°	~ '0'
	महि	∾ में न	~ r°0 ¤	र्ज ⊶	र्भ ⊶	० में
	संद्या	~ फ़ि.ज़ी	व्यक्षान्त् संज्ञा ०	क्षीय संज्ञा	ं ग्रहमः गरिष्	े हिंछ क्षि
	ЯІФІ	\$	\$-	.	४/२ (४/३,२.१ हे. केनली/ ४/१०)	ेत ख ~
	क्य रिं	/४३६) ६ पर्याप्ति	880) E qaffg	o) है मय्रिसि	<i>६/६</i> पर्याप्ति सप्यक्ति	४४७) ६ मयिषि
	जीव समास	भ. २/९,१/४३६) १ १ सं. प. पर्या	4. 4. 4. 4. 4. 4. 4. 4. 4. 4. 4. 4. 4. 4	/k.\$/88	शृह,इ/४ सं. व.	क. र.१९,१/889 १ सं. प्
	मुवा स्थाम	ਚ (उपशान्त कथाय—(थ. ९/१,१/४४०) ११ पर्याप्त १ १ ६ १९ प्याप्ति १ १ ६	१३. दरीण कषाय—(घ. २/१,१/४४०) १ १२ पर्याप्त १ १ १२ प्रवा सं. प.	१४. सयोग मेन्नटो—(घ. २/१,१/४४६) १ १३ पर्याप्त १ २ १ १३वॉ सं. प. ६ १	(884 (841 (841 (841)
नशेष	स्थान स्थान जिल्लास्य	११. स्कुम साम्पराय- १ १० पर्याध १०	उपशान्त कथा ११ पर्यप्त	ा क्षाय− प्यक्ति	ग केबली पर्याप्त	अथान कन्छ। १४ चयम् । १४ चयम् । १४ चयम्
मार्गणा विशेष	गुण स्थान	رة. م	अर्थश्री इक्ट	<u>क</u> इ	र सबी -	₹ % *
H	, in	2	~ ~	m*	> ~	₹ ~

जैनेन्द्र सिद्धान्त कौश

	डपयोग	र साकार, अमार
	आहा.	% अना,
:	स्क्रिंब आहा. उपयोग	8 3. 3. 3. 3. 3. 3. 3. 3. 3. 3. 3. 3. 3.
	सम्य,	۶. وا
	 ਜ਼ਰਬ	o o o असेस्या अनुभय (३४/१९)
	⊨	
	हे. मा.	ु अ
	दश्	१ केबल दर्शन
	संयम	% अमु. (२७/२१)
	লূান	१ केबल झान
	<u> </u>	ু কাদ্
i	声	० प्रेमम्
२० प्रक्षपणाएँ	द्योग	, अयोग
જ	काय	o अपगत
 	इन्द्रिय	् अनि.
	गति	্ৰী গ্ৰ
	4章1	गङ्गं ड एग्रि
	प्राथ	(/१४४८) ० अपगत
	पर्वाप्ति	१६. सिद्ध—(ध. खं. ७/२,१/सू./मृ.); (घ. २/१,१/४४६) १ १ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०००००००
	जीव समास	वं. ७/२,१/मृ./मृ.) ० ° अपगत्त अपगत
	म् म्यास म्यास म्यास स्थान	खं, ७/२, ० असगत
झु	- मयसि प्रमयसि	, g
मार्गणा विश्वेष	अ च	
मार्गेष	ाँवा £दास च	\$ 8 €

६. सत् विषयक आदेश प्ररूपणा (ष. २/१.१/४४६-८५४)

	<u> </u>	· ·				
	डचयोग	२ साकार, अनाः	२ साकार, अना,	२ साकार अना,	२ साकार अन्ता,	२ साकार अना <u>.</u>
ļ	आहा.	े अस्ति: अमा,	% প্রান্ত্র্য	- अहा. अना.	१ अहि।.	४ असहा.
	संज्ञित्व	स- ४	सं अ	म् भ	सं ⊶	्मः.
	सम्य.	्र मिस्या.	१ मिच्या.	१ मिथ्या.	सासा	* #1
-	भवय	२ भव्य, अभव्य	२ भक्त्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य	र भव्य	भवस
	표 표	m .1510	ak <u>g</u> . ~	ag₽	m ·Bb	লগ্ৰ- শ
	सेस्या द्र, मा	wβ .1æकु	~ k².		~ k	~ €;
	दशन	म् १९० १५ १५ १६, १४, ३४	१ असंगम चञ्च., अच्छ	र २ नहीः, अबश्च	२ वशु., अवक्ष	२ मसु-, अब्
 	संयम	९ असंयम	्र असंमम	% %	्र असंयम	१ असंयम
	श्चि	क्ष खान	ঞ প্রস্তান	अमः, अ <u>ध्य</u> त	्र स्थाप स	³ शन, अंबा. मिश्र
<u> </u>	क्षाय	>>	29	20	200	20
३० प्ररूपणाएँ	क प	•• 'p''	~ ₽°	ەرىخ. مەر تا	, d	م. ب ه. م. بم.
30 V	मी	११ मन ४, बच. ४,	ि मन४,वष.४, के.९	新 · 并 · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	ह मन४,वच.४, वे. १	ि मन४, वच ८५, व• •
:	कांस	% %	मा २०	~ ₩	्र से अंस	# ~
į	इन्दिय	بار. مه	∾ "b [*]	~ ±	~ ₩	~ 't-'
}	गति	~ 11	र्ग ∼	क्र मं	~ 10°	में 🛰
	संद्या	20	20	20	20	20
	nik	१०/७ १० पर्याप्तके ७ अपर्याप्तके	.	•	&	o
	पर्याप्ति	है/६ १०/७ ६ पर्याप्ति १० पर्याप्तके ६ अपर्याप्ति १० सपर्याप्तके	<i>६</i> पर्याप्ति	क अपर्याप्ति	<i>ई</i> पर्याग्नि	द नयस्थि
	जीव समास	संस् संस् अप	т ч *	खं के खं	स ~ .त	ਦ ਸ਼
	ंगुष स्थान	् मिटमा	भिध्या	१ १ मिथ्या सं. अप.	क्षांसा -	≁ मि
मार्गणा विद्येष	पर्याप्त अपर्याप्त	सामान्य	पर्या ष्ठ	अपयप्ति	सामान्य (पर्याप्त ही)	सामान्य (पर्यप्ति हो)
व	रीवा स्थान	*	~	0.4	or .	P
_ <u>=</u>	.	>>	*	uu.	9	U

जैनेन्द्र सिद्धान्त भोश

		1	 	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·		
	उपयोग	२ साकार अमा.	२ साकार अनाः	र साकार अना.	२ साकार अना.	२ साकार अना,	२ साकार अना,
	आहा.	अ आहा. अना.	९ आह्ना.	आहा. अना.	२ आहा. अमा.	१ आहा.	२ आहा, अना,
	सं ज्ञिरत	ক গুলু শুলু	क्षं	#: 	संख्	क ्री जो	संजो
 -	सम्य	्र औ., सा., हयो.	३ औ., झा., सयो.	क्षाः, क्षयो,	uus-	*45*	३ श. क्षयो. मिष्या.
	भव्य	भव्य	ر ۲	₹	भव्य अभव्य	र भव्य अभव्य	२ भव्य अभव्य
	 	a191€	91 <u>6</u> 1. vo	m 'lèhe	~ ₽	~ <u> </u>	\$ & &
	हेस्या इ. मा.	w.₽.1क _{1.} क	~ €;	٠ الله الله الله الله الله الله الله الل	<u>ு. ழ</u> ,1कि.ச்	مہ افہ ا	ंक्ष के
	दश्न	है चस्रि, अचस्र अवधि	१ बस्य, अबस्य अनिध	३ बस्थ, अच्छ अवस्	३ चक्ष, अचक्ष अवधि	३ मस्य, अमध्य अव्यि	३ बस्ध, अचस्च अवधि
	संगम	्र असंयम	अ सं यम	्र अस्यम	ल संधम खर्भंधम	% र्	१ असंयम
	श्चांन	है मिति, शुत, अवधि	३ मति, श्रुत, अवधि	३ मति,श्रुत अवधि	क् इहाम, क्यान	ह ३ ज्ञान, ३ अञ्जान	्र १ ३ ज्ञान, कुमरि,
	क्षीत	20	20	20	20	20	∞
	. <u>Þ</u>	~ bo	o~ 'o" °	م بار م	ب م. بم.	्रवे. ~ म	رن عا م
प्रस्थनगाएँ	धोम	११ मनधः बचः ४, नप्	ह मन ४, बचन४, ^क .९	े विकास अपना के सिंग के कि	११ मन ४. बचन४,३,२,	ि मन४,बच्छ, के. ९	थे. मे,का.
ક	का स	त्रस ४	→ H	<u> </u>	* #¥ *	₹	⇒ ४
	इन्दिस	w 'b'	~ 'p*	~ 'b'	~ ÷	~ °b•	. चें च
	गत्ति	मै ⊶	⊶ lt°	∞ tr [*]	र्म ५०	~ 15	ev tr
	संज्ञा	3 0	>0	20	20	20	20
	भ्राण	१०/७ १० पर्याप्तके ७ अपर्याप्तके	ó.	9	१०/७ १० पर्या०के ७ अपर्या०के	°	9
	पर्याधि	<i>६/६</i> ६ पर्याप्ति ६ अपर्याप्ति	<i>६</i> प र्याप्ति	क् अपस्ति अपस्ति	捅	<i>६</i> पर्याप्ति	६ अपयािह
	जोब समास	स. म. स. अप.	 	सं अप	२. प्रथम पृथिवो—(घ. २/१,९/४६७-४६४) १ सामान्य ४ २ ६/६ १-४ स्. प. ६ ध्यि	चं. ~	सं, अप,
	मुण स्थान	१ १	% al:	% का. 8 था.	(a. 3	» [%]	۶٠ ۶۲۶
मार्थणा निशेष	दर्याध अपर्याध	सामान्य	न्यास	अपथ मि म	त पृथिवी- सामान्य	चर्चा	अपयधि
إطلا	ग्रैब £द्राम	20	20	20	<u> </u>		
H	'सः	ω	&	2	n² ~	er .	m² .

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

-1	<u> </u>	<i>₩</i> .	j.,	<i>₩</i>	Je .	<u>~</u>	h .	<u> </u>	W .
-	डपयोग	र साम्हार् अना,	स साकार अना.	्साकार् अना,	्साकार अना,	२ साकार अनाः	स् साकार अना,	् साकार अमा.	२ साकार अनाः
	આહા.	२ आह., खना,	% आहा. २	आहा. अना.	, अहि,	१ आहा.	अ अमा.	आहा.	अ आहा. अना.
	संज्ञित	संज्ञा 🕶	त्यं ~	संबो	संद्यो	संजी	संबंधि	सं 🎤	१ संद्यो
	ਜ਼ ^ਦ ਪ.	्र मिध्या.	१ मिच्या. १	मिथ्या.	र सासा,	मिश्र	३ क्षा., ह्ययो., औ.	३ शा., श्रमो., औ.	२ हा., हथो.,
-	भवत	२ भट्य, अभव्य	भट्य, अभट्य	मन्य,	भुरुष	~ 	भिड्य	₹ भठय	भठ्य
}-	<u>ਜ਼</u> ਿਸ਼	~ [e	~ ! ; ~		~ 	~ <u>¥</u>	~ [e	<u>~ [€</u>	~ ₩
[विस्था स्र.मा	as .[g.1क€.æ	ov He; u	. [g , læ ,	~ €	~ /g.	ლ. ფ. ფ	~ (€;	w
	स्थ्र न	२ चक्ष, अचक्ष	.त. चक्ष, अचक्ष	बहुर, अबहुह अबहुह कार्	म स्थ्र स्थ्र स्थ्र	र चसु, अचिधु	ः बहु, अचसु, अव्यि	ै चश्च, अच्हु, अवधि	े बक्ष, अचक्ष, अवधि
	स् म	१ असंयम	१ असंयम् १	असं यम	् असंयम	असंद्रम	्र बसंयम	्र असंयम	९ असंयम
4	E Se	अंशान अंशान	জ জান জ		र अज्ञान	३ इतामाह्याम मिश्र	्य स्त्री क	है मति, श्रुत, अवधि	३ मति, श्रुत, अवधि
१० प्रह्मवार्ष	hipa-	>>	> ×	•	~~~~~	70	20	20	29
£ 0≥	声	م. بار دم. م	्यं भ		~ 'b' ₀	ूम्	o. d. ∞	~ σ°	با دیا ہ
"	घोग	११ मन४, बच.४, के. २, का.१	मन्द्र हैं व्यक्ति के ब्रह्म व्यक्ति के ब्रह्म	ت	स्माधः बचाः के. ६	ह सम्ध्र बच्च ४	११ मन४, दच.४ है.२, का.१	ह मन्द्र, बच.४, जुद्	ये, मि., को.
	काय	्रम ~	•~ kr •	, H	~ # ~	₩ ₩	र में र	₩ ₩	र्भ ⊶
	अ निव्य	∾ .₽.	ov.p. ∘	~ tr •	~ .p.	~ 'ஏ்	₩ b	~ &	∾ tr
	गति	मं भ	~ मं ∾	र्या ५	~ Γ'	∾ It	~ tr`	~ It	~ /t
	संद्या	24	2e 2	× :	>>	20	>0	20	20
ļ	प्राण	१०/७ १० पर्या. के ७ अप. के	0 2	•	.	•	१०/७ १० पर्या, के ७ अपर्या, के	»	9
	पर्याप्ति	<i>ई।</i> हे पर्याप्ति हे अपर्याप्ति	क् मर्थाप्ति ह	अपर्याप्ति	न्यों <u>क्</u> रि	द्य पर्याप्ति	६/६ १०% ६ पर्याप्ति १०पर्या. ६ अपर्याप्ति ७ अपर्या.	६ पर्याप्ति	है अपर्याप्ति
	जीव समास	त्र संख्य	TF.	सं. क्षय.	म 'स' ~	~ . ₽,	सं. व.	्र.	१ सं, अप.
	मु ण स्थान	्र मिथ्या.	१ मिध्या.	मिथ्या, सं. अप.	सासा-	भिथ.	अवि,	ঞ জ	अवि
मागंजा। विशेष	पद्यप्ति अपव्यहि	सामान्य	पयसि		सामान्य (पर्या. हो)	सामान्य (पर्याध हो)	सीमान्य	मर्याप्त	अ पयशि
ग्रेवा	ग्रेज स्थाञ	ov			nr	pr	≫	20	20
	च							<u> </u>	<u></u>

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	長		र साकार, अमा,	२ साकार, अना,	२ साकार, अना.	२ साकार, अना,	F .:	E :
	. डिपयोग					अस क	स्याकार. अमा.	साकार अना.
	अगहा.		्याहा अना.	अगहा.	र आहा., अमा.	असाहा असाहा असाहा	्र आहे.	अहा, अना.
-	संज्ञिस्य		ক্ৰ	संखो	्यां भा	संडो	सं. अ अं. ~	संख्ये 🛰
	सम्य,		क् बिना किना	१ सा• के चिना	१ मिध्या <u>.</u>	१ मिच्या,	१ मिथ्या.	१ मिथ्या.
	ਮੁਤਧ		२ भह्य, अभव्य	२ भड्य. अभड्य	२ भव्य, अभव्य	२ भड्य, अमब्य	र भव्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य
	तेरया इ.भाः		~ F;	₩.	~	~ Ie	~ [€	₩.
	नेरया ह. भा		us[g., lateag	~ <u> </u> €	الله الله الله الله الله الله الله الله	w. ·15 •·14 •₹	~ ⊮,	ند ،ل§ ،.∏ ة
	द्शीन		३ बहु, अब्धु, अव्सि	३ मधु, अमस्रु, अवधि	२ चक्ष, अबक्ष	र चक्ष, अचक्ष	२ चक्ष, अचक्ष	र मह, अम्
	संयम		% असंयम्	असंयम	असंयम	१ असंधम	१ असंयम	१ असंयम
ا ج	श्री		্ ই জ্ঞান ই প্ৰজ্ঞান	क्ष क्ष क्ष क्ष ब्राच क	अस्माति, अध्यत	स्याप्त संबोध	े हैं अज्ञान	२ ङमिति, कुश्रत
<u>م</u>	क्रविध		50	20	20	⇒	.26	20
Allahus K ox			٠٠٠ ١٠ ٠ ٠٠٠ ٠٠٠ ٠٠٠ ٠٠٠ ٠٠٠ ٠٠٠ ٠٠٠ ٠٠٠ ٠٠٠	بار. دېم. م	~ † ?	ov .p.o	ूर् फ	∞ p°,
	म्रो	<u></u>	११ मन४, वच धनप् बे.१, का.९	भन ४, बच्च ४ के, ९	य स्थाप्त स्थाप्त का जुन्	११ मन४, बच्छ, बे, २, का. १	ें दें दें मानक्ष्य मानक्ष्य मानक्ष्य स्टान्	क मि. अ
	काय		→ ₩	अंस ~	¾ ₩	∞ #.	अं अ	या 🕶
	इन्दिय		٠, ٢	~ ' ⊱ '	ov .p.	∞ ъ́	م . ۴ <u>.</u>	م. به.
,	गति		or It	~ tr [*]	~ 10.	∞ lτ	~ F ⁺	or It
	祖室日		>>	200	20	70	*	20
	प्राण		१०/७ १० पर्या, के ७ बापर्या, के	»	9	१०/७ १० पर्या. के ७ अपर्या. के	0	9
	प यिसि	३. द्वितीय पृथिबी-(घ. २/६,१/४६५-४४०)	ई/ई ६ पर्याप्ति ६ अपर्याप्ति	है पर्याप्ति	है अपसींप्रि	६/६ ६ पर्याप्ति ६ अवयम्पि	दयिषि	<i>६</i> अपर्याप्ति
	जीव समास	થ. સ/ ૧, ૧	र सं. प. सं. अप.		सं अप.	सं प् सं, अप		.सं. अप
	गुज स्थान	बि—(ा	» **	20 20	् मिस्या,	१ मिच्या.	१ मिथ्याः	्र मिथ्या.
बहोष	पर्याप्त अपर्याप्त	तिय पृष्टि	सामान्य	क्यांस	अपयप्ति	सामान्य	पर्याप्त	अपयप्ति
मापंणा मिंबशेष	मीको स्थान	क्ष				•	~	~
1	THE THE	by.	**	or .	tu.	24	<i>ع</i> د	w.

भा० ४-२२

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

			- ಪ	<u> </u>	-				
	डपयोग	२ (साकार, अना,	न् साकार, अमा.	२ साकार, अना,	<u> </u>	·	 	<u> </u>	२ साकार, अना,
	લાहા,	१ आहा.	१ थाहा,	આહા.	কু শ্ব	ş	: ;	:	. अहा. अना.
	संज्ञित	संख्यों ~	सं श्री	संजो	द्वितीय				स अही असं हो है
	सम्य	१ सासा.	मिश्र	२ औ., श्रयो.		1 1	i l	1	4.gr
	ਮ <u>ੁ</u> ਰਧ -	१.	भक्स	भव्य		·			३ भव्य, अभव्य
	<u>म</u>		→	~ <u>₹</u>	카	ф. ф.	r Hei Hei	.	
1	हर मा	o~ 1€;	م افن	•~ 1€°	₩;		: :		40*
	दर्शन	न्यः अमक्ष	२ मस्र, अचस्र	3 चस्तु, अचस्रु अगिध	i	}		1	३ चक्ष, अचक्ष अब्रि
	संयम	१ असंद्रम	असंयम असंयम	१ असंघम					२ असंयम देश सं,
.	গ্রান	ल खाँ स्	३ हानाज्ञान मिश्र	्या ५	1	ſ		i	१ खान ३ अछान
-	<u>++414</u>	200	20	20		• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •			20
	- अह	بار دېل سو	دغ. ا	مر بم) ৰব				634
	धोग	मन४,विष्, द	म भ भ भ भ भ भ भ भ भ भ भ भ भ भ भ भ भ भ भ	म् भूभ ८, श्रे व्यं , ४ व्यः , १	 सर्वेत्र द्वितीय पृथिवी बद	Į.	F :	: =	११ मन४, वच४ थी.२, का. १
	भाय	भी 🕶	अ ~	्र स	त हा स				ma,
	स्य स्थापना है। इस्स्य	∾ b [*]	~ p*	er fr				·	٠.
	गति	∞ में	र्ग ५०	च र					~ Æ
	新	>>	>>	>∞					200
	inlik	02	8	¢.	1	[!!!	1	9016; ElG; =1£; 914; E/8; 813;
	मयसिम	क पथिति	पश्रीप्ति	^द पर्याप्ति	तृतीय से सप्तम पृथियो – (घ. २/९,१/४७०) तृतीय पृथियी	l	1 1	1	२. तियँच मति १. तियँच सामान्य—(य. २/१.१/४७२-४८२) १. सियँच सामान्य १ १४ १६ प./६ अप. १०/७: १/७: १ स./६ अप. १८/६: ७/६:
ľ	जीव समास	م. ند. به		सं. न)))				83
	मुण स्थान	१ सासा.	, 1	अधि	। पृथिवी ति				- 13 - (a.)
41.1411 14414	नर्धाप्त अवय्यि	सामान्य (पर्या, हो)	सामान्य (दयर्र. ही)	सामान्य (पर्या. हो)	्रतीय से सप्तम् । तृतीय पृथिबी			<u> </u>	२. तिर्वंच मति १. तिर्वंच सामान्य १
<u> </u>	रीय ६४१च	٨.	nir	20	त्रुंभी तृत्	· حوا - حوا	म व्य ख व	स्यम	
ŕί	- 	9	h	w	∞ •~	Ωr'	m x	> -31	n

For Private & Personal Use Only

	臣一	२ साकार, अना.	२ साकार, अना,	२ साकार, अना.	२ साकार, अना.	र साकार. अना.	२ साकार, अमा.	२ साकार, अना.
	. उपयोग				·			
	असहा.	अ । ।	्र आहा., अमा.	े आहा., अन्त.	প্রান্থা	्र आहा., अना.	्र आहाः अनाः	প্রাहা
	संज्ञित्व	म संज्ञी असंज्ञी	स्य स्थानी असंखी	२ संको अस्बो	र संबी असबी	२ संज्ञी असंख्ञी	~ \	सं अ
	सम्प	w	४ मि., सा., सा., सथो.	१ मिथ्या	१ मिथ्या	ू मिक्ष्य	्र सासा,	१ सासाः
	मृज्य	२ भड्य, अभड्य	२ मन्य, अभन्य	न मन्य, अभन्य	२ भव्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य	१ भव्य,	भुल्यं
	लेश्या द. मा.	w	od∮. ~	413*	erb.	w. <u>fel</u> e	103"	*up
	(E) lui	4127	د. ا ² دا≉	419	us .	ሌ ⋅ <u>የ</u> ያ ⊦·በኞ	w-	40-
	दश्न	्र मुद्ध, अमुद्ध, अन्धि	र् . चक्ष, अचक्ष, अन्धि	र चस्रु, अचस्रु	२ चशु, अबशु	र मधु, अम्बह्य	न्धः अवध	२ चस्रु, अबस्रु
	संगम	्यसंयम वेश सं	असं ² यम्	१ अंसं यम्	१ असंयम	% अस्यम	१ अस्यम्	अ स्यम
114	श्चाम	क् ३ ह्यान ३ अह्यान	१ कुमति,कुश्रुत मति,श्रुत, अवधि	अज्ञान	3 জন্ম	र कुर्मान,कुश्रुत	अज्ञाम	३ अज्ञान
२० प्ररूपणाए	प्रोप्टि	∞	200	>∞	>> ′	>>	3 0	∞
S	চৰ্	es.	tts.	(r)·	ω _r	gy.	W.	es.
	योग	ह मन.४,बच.४ औ. ९	२ खौं, मि., का.	११ मन.४.वच.४ औ. २, का.१	र मन.४,कच.४ औ. १	र औ. मि का.	११ मन्,ध्रनब्धः थो,२,का,९	ह मन.४,बच ४ थौ. १
į	क्षांत	44.5	415°	чу	ans.	uge	¾ ₩	¾ ~
	इन्दिय	×	y	.	er e	er e	พ ํษํ	«, ,p.
 	गति	~ £	◆ 痘	~ ₽	• €	~ ₽.	~ ¢Ė	्ते ⊶
	75到	20	∞	>∞	20	29	20	20
	माण	ນ໌ 30 ພ້າສູ້ ວູ້ ອົ	8/s: \$/k:	eolo: 810; =16; 914; 618; 813;	ر در م بر م بر م	७/७; ६/४; ४/३	१०/७ १० पर्या. के ७ अप, के	\$
	पर्याप्ति	६. १. ४ पर्याधि	६, ५, ४ अपयोधि	\$ 4., \$ 44., \$0/6; \$/6; \$ 4., \$ 44 =/\$; 9/\$; \$ 9., 8 44, \$ 4/\$;	६, १, ४ पर्याष्टि	६, ५, ४ अपयिष्टि	<i>६/६</i> ६ पयभि ६ अपयभि	है पर्याधि
	जीव समास	न्य <u>ां</u> वर्षाः	৯ প্	200	् प्यहें.	० ले	२ सं. प. सं. अप.	ેવ પા, **
	मुवा स्थान	34 0	* ***	१ मिष्ट्याः	१ मिथ्या.	् मिथ्या.	१ सासा.	१ साक्षा.
मार्गणा विशेष	पर्याप्त अपर्याप्त	पर्याप्त	अन्यक्ति	सामान्य	प्या प्ति	अपर्यक्ति	सामान्य	पश्चिम
न	ग्रेल स्थान	×	×	• • • • • • • • • • • • • • • • • • •	~	~	~	ď
F	l le	~	w	> = = ================================	×	N.jr	9	n

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

						-			
	उपयोग	२ साकार. अना, २	साकार, अना,	२ सांकार, अना.	र झाकार, अमा,	२ साकार, अना.	२ साकार, अना,	o	ुष्ट ज
	व्याहा.	अ आहा. अना. १	आहा.	र आहा. अना.	१ आहा.	अ अत्राह्म. अन्मा	१ आहा.	~	आहा., बना,
	स. श्रुप	्र ह्याँ	ন্ত্ৰ	# · **	संखी	संभू 🐣	जाः ⊶	a	वसं जी
	संस्य,	सासा, १	मिश्र	ब औ. क्षा. क्षयो.	३ थौ. सा. ह्मयो.	२ शा,, सयो.	र औ. क्षयो,	us	,
	भव्य	भ ज्य	भव्य	भव्य	भूठस	भुक्य	१	0	भव्य, अभव्य
ľ	# #	अंधु ५		w	w	~ ⊭	स स	413	
}	स्या प्र	क हैं के अ		w	90		ms.		7
	दश्न	न्युष्ट, ध्यन्युष्ट २ १	मंहु. अच्छु	३ नश्च, अनश्च अवधि	३ निह्न, धनस्य अवधि	ই বস্তু, এনস্তুলা, এমহি সূত্ৰ,	३ चक्ष, बचक्ष अन्धि	m	् बक्ष, अवधु, क्षनपि
	संधम	असंध्यम १	असंयम	असंयम्	१ ध संयम	९ असंघम	१ संयम् संयम	ń	असंयम देश. सं.
*	ख्या <u>न</u>	२ कुमिति,कुश्रुत असंध्मे ३	हानाहान निश्र	^३ मति, श्रुत, अव्यि	३ १ मति., शुत., असंयम अवधि	३ महि., शुत, अवधि	३ मति, श्रुत, अवधि	या	जो ज
4	क्रवांच	20 20		∞	>>	24	20)
३० श्रह्तपषाएँ	34	אנא אוא		ta.	m	o~ Þý	m	e	у
4	योग	ર શ્રી, મિ મા	मन४, थच४ औ. १.	१९ मन४,बच्च.४. औ.२, का.९	ह मन४, बच,४ औ, ९	्र औ. मि- का. ९	ह मन.४,बच.४ खी. ९	b.	मनध्र,वच्चु औ.२. का.१
	18	~ ** ~	त्रस	~ H	्यः यो 🕶	* 3H	₩ ₩	•	, tt
	क्षेत्र विकास	~ 't' ~	" р.	w 'p'	[*] ت م	~ ₽,	بر. م	94	· 'ਚ'
	गति	~ ति	fā.	ر آن	ئات. م	م آ <u>ت</u>	~ ₽	9.	. फ़ि
	顶笋	20 20		20	20	>0	20		o
	lalk	9 &		१०/७ १० पर्या. के ७ अप. के	÷	9	<u>.</u>	sy o sy o	9/02
	मर्याप्ति	६ अपयप्ति) ६	प्याधि	दं/ह ६ पर्याप्ति ६.अभ्यत्ति	ह. पर्याहि	६ अपस्तिमि	द पर्याप्ति	२. पंचेन्द्रिय तियँच—(घ. २/९,१/४८३-४६२)	۴ و., هو. ۴ و., هو.
	जीब समास	(4, 34)	म् म	सं. सं. व.	± '≠ '4; ~	स <u>्</u> अन्	~ '₽,	i. 3/8,8/8	सं. प., सं. अप. असं. प., असं. अप.
	मुण स्थान	१ सासा. १	मिथ	ल ~	अवि	अवि	\$ is \$ ×	ে ব	, <u>3</u> ,
मार्गणा विशेष	पर्याप्त अपर्याप्त	अपर्याप्त सामान्य	(पयमि हो)	सामान्य	पयमि	अ नयम्	सामान्य (पथ्रप्ति ही)	न्द्रय तिवँ भामान्या	
	ग्रेव स्थान	ar m		>∘	20	20	4	पंचे ि	
	, pt.	u 2		87	5	%	30	6. *	<u> </u>

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	उपयोग	२ साकार् अनाः	२ साकार, अना,	२ साकार, अना.	२ साकार अना.	२ साकार अना.
-	<u>.</u>	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·				
	अगहा.	५ आहे। धर्मा:	등 등 (왕)	अहाः अनाः	* E	२ आहा. अना.
_	संज्ञिल	* غَالَّا * عَالَى الْعَالَى الْعَالَى الْعَالَى الْعَالَى الْعَالَى الْعَالَى الْعَالَى الْعَالَى الْعَالَى ا		्यां ४	संजी	~ in
	सुरुत,	१ सासा,	मू स्	३ औ., शा., क्षयों	औ.,सा., हायो.	२ सा., श्रयो.
	भव्य	¥ञ्स	भ	भूक्त	भव्य	~ स्
	म से	ald: ~	415	ma.	dis,	~ Æ
<u>-</u>	nr	ুখ হু	40°		40-	क्ष भू
-	व्युम	१ १ असंसम्बद्ध, अप्वर्ध	. अ ज न ज न स	্ৰম্ভ: ১ ব্ৰম্ভ: প্ৰমু প্ৰয়ি	े श्वसु, अवस्र अव्यि	३ बह्य, अपक्ष अवधि
	- ਜ਼ਿਸ਼ -	१ असंयम	्र असंयम	१ असंयम	१ असंयम	अस् तम
	श्चीन	् कुमति, कुश्रुत	३ ज्ञानाञ्चान मिथ,	हे मति., श्रुत, अवधि	्रै मिति., श्रुत, अवधि	३ १ मिति., श्रुत., असिंगमे अव्यक्ति
	मिकि	>-	20	20	30	>>
)br _	₹	m>	ph-	· in	(b)	₩ 🖒
३० प्ररूपणाए	स्रो	्र औ., मि., ना.	हैं मनुष्ठ, बच्च.थू. खो. ९	११ मन४, बच.४, थ ै.१, का.१	भिन्छ, बच्च छु. औ. ९	्र औ. मि., काः
	काय	३ ∼	₹	¥ ~	~ ¥	¾ ~
-	व्िद्रय	٠٠٠ ١٤٠ .	∾ .Բ.	ب به	ج ب	e~ *p*
	गति	~ क्	~ ₽	~ ¢	ै वि	* i
	頂部	20	20	200	20	20
	nik '	9	\$ *	§ 0 €	\$	9
	पयरिश	६ अपयिसि	६ पर्यासि	<i>६/६</i> ६ पर्याप्ति ६ अपर्याप्ति	म्	अप धर्म सि अप धर्म सि
	जीव समास	सं. सं.		सं. अप.	 	सं अव.
	मुण स्थान	१ सासा.	→ FF	अ कि	लीं ∼	अ वि
बेशेष	क्य ि अक्या	अवयसि	सामान्य (क्र्या, हो)	समिन्य	पर्या प्त	अपर्याप्त
मार्गणा विशेष	गुँव स्थाम	pr .	w	2 0	>>	>=
🛱	, 1 2,	ev	\$	÷	\$	6.7°

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

-	<u> </u>	२ साकार, अना,	२ साकार, अना,	२ साकार, अना,	117, 11.	२ साकार. अना.
-	डक्योग				२ साकार, अना.	
	आहा.	्र आहा.	२ आहा. अमा.	अ आहा.	्र आहा. अना.	्र आना: अना:
	सं शिल	र्स.	.संडी. असंडी.	र संजी असंजी	२ संज्ञी, असंज्ञी	स् संब्रु, अस्त्रब्री,
	सस्य,	२ औ., सयो,	४ स. बिना	४ क्षा. क्षिना	२ मिथ्या. सासा.	१ मिथ्या
-	भव्य	भ क्ष भ क	भहेय. अभन्य	ि ^२ भव्य, अभव्य	२ भव्य, असव्य	२ भन्य, अभन्य
	तेस्या इ. मा.	۳ بر آه	NES.	ئىد	જ નેશેન્ જ	KL9*
	ब्र. मा.	m ₂	-us	ms.	(ঝ ৠ প	un,
	दश्न	3 मक्ष, अमक्ष अवधि	३ वस्थः, अच्छ अर्थाध	२ ३ असंग्रम चक्ष, अच्छ देश सं. अवधि	१ चिस्र, अच्छ	१ बसंयम चक्षु, अचक्षु
	संयम	क्षे भ	न असंधम देशसं	२ असंधम देश सं.		्बसं <i>य</i> म
	खान	३ मितः, श्रुत, देश मं. अवधि	्र श्राम ३ अज्ञाम १ अज्ञाम	হ ইছান হঞ্জান	२ १ २ कुमति,कुभुत असंयम चिसु, अचि	रू जा प
Ī	ें माहक -	>>	20	>>	20	>0
ا اعو	<u></u>	piv .	~ (F)	ू दू	र अ	۸ ۱ ۲ ۲ ۲ ۲ ۲ ۲ ۲ ۲ ۲ ۲ ۲ ۲ ۲ ۲ ۲ ۲ ۲ ۲ ۲
२० प्ररूपणाएँ	मोम	र मनश्रः बच्च , ४, औ. १	११ मन४, जब.१. औ. २, जा.१	ह मन.४,वच्डस्त्रो औ. १	२ औ मि. का.	१९ मन४,वच४. औरे,२,का.९
	ঞাল	₩ 	~ `# `	अं रू	्रस ∽	~ ₩
	इन्द्रिय	م ب	ָב' יש	ر م بي	~ 'b'	מי יש
İ	मि	~ \$\docume{\psi}	~ 4E	ू के	~ कि	* fr.
	刊表书	>>	200	20	20	20
	ыk	0 0 0 7 1 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2	9/3:5/02	3/0}	<u> </u>	9/2°
	पर्याप्ति	१३ १ सामान्य १ १ ६ १ ६ १० १० १० १० १० १० १० १० १० १० १० १० १०	६/१ ६ पर्याप्ति ६,अपर्याप्ति १ भग्नी	<i>है।</i> ६ ६ पर्या ।ष्टे १ पर्याप्ति	<i>६१</i> ६ ई अपग्रीप्रि १ अपग्रीप्रि	<i>६/५</i> ६ पर्या प्ति इ प्रयाप्ति इ प्रयाप्ति १ अपर्याप्ति
	जोब समास	म . म . म . म .	% सं. ७ असं. व. असं. व. असं. व.	्र स. प. थ्रमं, प.	२ २ मिध्या सं. अप. सामा अर्भ.	४ सं प् सं अप अमं प् असं.
	मुण स्थान	म स्र	37 N	ان ا ا ا	२ मिथ्या सामा	१ मिध्या
देवस	पर्याप्त अष्यिसि	सामान्य (पर्या. हो)	स म स	नयर् -	अपर्याप्त	सामान्य
मार्गणा दिवस	ग्रीय ६४।च	य				•
1	т	2° m	· ~	or	er	*

					7			
-	ड्रययोग	र साकार, अना,	र साकार, अना,	२ साकार, अना,	२ साकार, अना.	२ साकार, अना.	२ साकार, अना.	२ साकार, अना.
-		अलि।	र आहा, अमा,	अहा. अना,	~ — — — — — — — — — — — — — — — — — — —	अहा. अम्।	१ अहि.	্ৰ প্ৰান্ত ্ৰ
	संक्रिय	र संडी, असंडी	50 相, 20 (本) 如	* ##	~ ₩	संजी	सं श्री	१ संज्ञी
	ਜ਼ੁਸ਼ਾ.	्र मिध्या	१ मिथ्या	* ₩₩.	१ सासा,	सासा,	१ मिश्र	२ औ. क्षयो.
	भव्य	र भव्य अभव्य	२ भव्य, अभव्य	भव्य	भ व	भ ०त	१ भव्य	ह भव्य
	<u>म</u> ं स	415"	alg	4cr	445	લકી. પ્ય	ms.	
	म् मि	w	o[g .]æ	ulo	*w	or .g1de	412	40
	दश्न न	२ बहु, छन्हु	म् अन्यक्ष भ	२ नक्ष, अन्ध	बहुः अवह अवह	२ नहीं, अन्धि	२ बहु. अव्ह	३ नक्ष. अनक्ष. अम्
	संयम	असंयम	असयम	१ असंदाम	१ अस्यम	असंयम	१ असंग्रम बिधु.	१ अस्यम
३० श्रस्तवार्ष	ह्यान	ख्यान , ,	र कुमति,कुश्रुत अस्यम	ু প্রন্ <u>ভা</u> ন	ও প্রত্নান	्र इमति,कुथुत्त्वसंयम	३ श्रानाङ्गान. मिश्र	ক্ষ নি
8	nib#	20	20	20	20	%	20	200
	to to	2 €	स्त्री ~	्र चि	~ E	**************************************	~ <u>(x</u>	्रजे ~
	योग	ह मनक्ष, वस्र, औ. १	अौ मि.,का	११ मन४, बच.४स्त्री थौ.२, का.१	१ मन४, बच् _र ४स्त्रो औ, १	3, औ, मि., का.	ह १ मन४, बच्,४स्त्रो औ, १	१ मन४, बच.४स्त्रो अरे. १
	काय	₩ ~	% ¥ ~	(A → N)	न्त्र ~	₩	्रम जा~∞	त्रस
	ह- इन् इन	∾ ¹p*	* "b"	ov 'b'	~ ≠	مر من من الم	~ ⁺b [*]	بغ. مه
	गित	~ (E	~्री;	~ 4 <u>E</u>	~ 4 <u>E</u>	~ €	चं ⊶	~ ⊕
	संद्या	20	20	20	200	20	20	>0
	भ्राष	3/08	9 9 9	<i>5</i> /0}	°~	9	, , , , , , , , , , , , , , , , , , ,	03
	पयो पि	<i>ई/</i> १ ६ पर्याप्ति १ पर्याप्ति	<i>६/५</i> ६ अपर्धाप्ति १ अपर्धाप्ति	<i>६/६</i> ६ मधीप्रि ६ अप्यीप्रि	क् पर्याप्ति	है अपयासि	६ मर्थापि	ह पयोसि
	भीव समास	र सं. प. असं. प.	न्त्र सं, अप असं, अप	सं स अन्	, tr.	१ शासाः सं. अप.	्यं <u>,</u>	
	मुण स्थान	१ मिध्या	्र मिथ्या	श्रमासं.	१ सासा,	१ सासाः	मि	ক জু
मार्गणा निदोष	पर्याप्त अपर्याप्त	पयि ।	अपर्याप्त	सामान्य	प यम्	अवयधि	सामान्य (पर्याप्त	सामान्य (पर्याप्त हो।
191	गुज स्थान	B/	~	Gr.	~	or .	60-	20
 ਜ਼ਿੱ	, tar	~	w	9	V	w	e~	*

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

www.jainelibrary.org

_	E	२ साकार, अना,	ं साकार, अना,	२ साकार, अना , युनपद्	२ साकार अना, युगपद्	7 . E
-	डचयोग					र साकार अना. युगाःव
	अहा.	१ अहा.	्र आहा. अना.	्र अहिं अना.	अ शहा,	अत्याहा. अना.
	सं ज़िल	सं क	अस्य अत्य अत्य अत्य अत्य अत्य अत्य अत्य अत	भ संद्यो असंद्यो	र संज्ञी अनुभय	संज्ञी अनुभय
	सम्य.	अ.समो.	е fнелі.	415.	«up	% मि.,सा. (सा.,क्षयो,
	भव्य	भुख्य	र भव्य अभव्य	२ मब्य अभव्य	२ भव्य अभव्य	२ भव्य अभव्य
	म म	ر <u>م</u> ۳	લદીમ જા	-∾ n₹61e	व्यक्षेत्र राष	ans.
	म बहुता	*44*	ر باق .ا ه	· exp-		ω .β.1ሞ
	दश्ने न	हे चसु, अप्यक्ष, अन्धि.	ब इ.स. इ.स. इ.स. इ.स. इ.स. इ.स. इ.स. इ.स	20	>=	3 0
	स्यम	देश. सं. सं.	१ अस्यम	9	9	४ असंद्रम सा. हो.,यथा
२० प्ररूपणाएँ	श्चान	म् श्री	अभित्ति, अध्यत	V	n	है विभंग व मनः विश
14	h154	20	>>	o ripar	²⁰ irlb⊈fe	o kipak
	ब्रेट	* ************************************	1	a bree	व्यवस्य रू	_{መዶ}
	योस	ह मन४, बच.४स्त्री औ, १	ल्ला स्ट्रा ब्राह्म	१३ मन४, वच्.४ औरे.२,था.२, का. १	१० मनः,, बखः,४ औ.१, आ.१	औ. मि., आहा. मि., का.
	काय	₩ ₩	र्स ∼्र	त्र 🏎	₩ ₩	्र । अस
	क्षि इस	~ 'b'	w *a*	~ *p⁻	~ ₽	or 'b'
	म	~ E	~ €	र्ग म	ंग ~	थ्यं २०
	社会	~	>>	200	>>	200
	N IOLEX	°	9 9 9	5/02	>	9
	पर्याप्ति	क पयिष्टि	8. नक्ष्यवयम्तिक तियंच — (ध. २/१.१/६०१) १ सामान्य १ २ ६/१ (अष्यम् (भिष्यम् सं. अप. ६ अप्यक्ति ही) असं. १ अप्यक्ति इते) असं. १ अप्यक्ति	मनुष्य सामान्य—(ध. २/१.१/६०२-५१२) सामान्य १४ २ ६/६ सं. प. ६ पर्याप्ति	है पथिति	ह _ अपर्याप्ति
	जोत्र मपास	, k;	-(ध. २/१ १ सं. अप. असं.	3 3 4. 4. 4. 4. 4. 4. 4. 4. 4. 4. 4. 4. 4.	ंच 'च'	
	मुण स्थान	क क वॉ	तियं च — (ध. १ १ २ [मध्या: सं. अप. असं.	* (a	20.	75 m
मार्गणा विशेष	न्यां व्यव्यक्षि	सामान्य (पर्याप्त	सामान्य (अपग्र) (ही) सन्य गति-	सामान्य	च्या श्च	अपर्या <u>क्ष</u>
भंजा	म् माष्ठज्ञ एा	34	री म म	" E "		<u> </u>
∓	þ.	82	> ~ m	· • · •	P [*]	p.s.

भा० ४-२३

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

) 	 					
	उपयोग	स साकार अमा.	२ साकार अना,	२ साकार. अमा,	्र साकार. अना.	र साकार, अना.	र साकार अना २ साकार
	अमहा,	१ आहा. अना.	० आहा.	२ थाहा, अना.	२ अत्ति. अनाः	१ आहा.	अशहा. अमा. अशहा.
	सं ज्ञित्व	संजी ~	ধ্ ~	संबो	संखों संखो	म अ	संजी भ
	सस्य	१ मिध्या	् मिथ्या.	्र मिरुया	सासा.	स्तर्भाः	१ सासा, १ मिश
	ह्यू स	अस्य, अमस्य	२ भट्य, अभट्य	२ भन्दम, अभन्दा	ਮ ਰਯ,	१ भव्य,	१ भव्य भव्य
	च च	446	w	4gr w	43"	~~·	™ .gr
	ह मा	₹4*	w.	তে, টুটাক	ur. (• • • • • • • • • • • • • • • • • • •	W . 1910 m
*b>	दर्शन	ब्रुक्त ब्रुव्ह	स् द्ध, अ ब अ ब स्	न्स् नस्र, अब्ह्य	न स्र, अच्छ	न्छ, अवस्	सह, अवस्तु नहीं, अवस्तु
२० प्ररूपणाएँ	संयम	्र खर्स यम	० असंयम्	० असंगम	अंस् यम	असंयम	्र असंयम् असंयम्
30	क्ष	हा क स्था रह	अञ्चाम	र (कुमति,कुभूत अस्पम	अज्ञान	्छ श्री न	२ १ १ कुमिति,कुशुते आसंयम ३ १ ज्ञानाज्ञाम- असंयम मित्र
		200	20	20	<u> </u>	20	20 20
	}.e	m	m	m ²	ø	m	es es
	योग	१९ मन४, जच.४, औे २, का.९	र मन४, बच्च ४, औै. १	२ औ.सि., का.	हर सन्छ, वच्छ औ. २. का. १	१ मनप्र, बच.४, औ. ९	्री.मि., का ह मन४, बच्छ,
	काय	* E	~ H	्र अस	म् ∽	३ ₹	र्भ के रू
	क्षे निय	~ 'ở	* 'b'	~ '₽'	or 'b'	∞ .p.	w b a b
	मि	श्य ~	ज्य 🕶	ंचे ~	• धं° स	म स्त्र	रंग ५ रंग ५ म म
	संब्र	>0	20	20	>	70	70 20
	n) K	9/0} 9	•	9	s/o}	₽	9 0
	मर्याप्ति	६/६ ६ पर्याप्ति है अपर्याप्ति	द वर्षास	द अपर्यापि	<i>। दि</i> इ पर्याप्ति ह अपयोधि	म् यो स्म	द्र अपर्याप्ति द्र प्योप्ति
	जोब समास	से. प. सं. खप्	جا. م.	सं अप	सं सं सं सं अप	~ .i.	सं सं
	तुम स्थान	१ भिष्या,	्र मिस्या,	भिध्या	१ सासा.	१ सासाः,	तिम् तिम्
मार्गणा विद्येष	पर्याप्त अपर्याप्त	सामान्य	च्याम	अपर्याध	सामान्य	म्य ष्टि	अपयिति सामान्य (प्रमित्ति हो)
Tor	ग्रैणर्य	<u>م</u>	•	•~	(A.)	or .	מי טיי
# 11	- [20	×	*ur	9	V	w &

जैनेन्द्र सिद्धान्त् कोश

	<u> </u>			<u> </u>	. •		
	उपयोग	् साकार अना.	२ साकार, अना.	१ साकार, अना,	२ साकार्	 	!
	अगहा,	े आहा. अना.	्र आहा,	२ अश्वा अना.	९ आहा,	1 .	1
	सं ज्ञित्व	~ ji	क व्य	संजी	सं श	ı	!
-	स्म्य.	है औ.,सा, क्षयो•	३ औ., सा. क्षयो.	१ सा., सयो.	३ औ.,का. क्षयो.	1	1
	भव्स	भव्य	भुक्त	ू म	भुवस	1	l
	# H	વહ	do,	uto-	₫ ત . ~	1	(
1	H H	w	etha.	ص.لق.ا∓ة	-tup-	1_	
	दश्न	१ ३ असंगम बक्षु, अचक्षु अस्पि	३ चहुर, अचक्षु अन्धि	े ज्यु, अप्युष्ट अविध	१ ३ देश, सं.चक्षः अच्छ अन्धि	1	1
	संधम	१ असंगम	१ असंग्रम	१ असंयम	देश, सं	i	
}	श्चान	रै मति, श्रुत, अनधि	३ मति, श्रुत, अवधि	३ मति. श्रुत, अवधि	३ मति. श्रुत, अवधि	1	1
į-	Ribk	>>	26	29	29	1	
	∌ €	m	สา	∾ თ	es.	↓	w , 한는 (문)
२० प्ररूपमार्थ	योग	११ मन४.वच्.४. ओ.२. का.९	ह मन४, बच.४ थौ. ९	र औ. मि., का.	ह मन४, बच४, खौ, १	ओभवत्	ओषवत्
	काय	र्भ ५	₩ ₩	्र स ~	> ₽¥	1	↑
	इन्द्रिय	~ b	∞ 'tr	~ '₽	~ '₽	l	1
	मि	~ E0	~ में	र्षे ~	र्गं ∼ म	1	İ
	顶序	20	24	> 2	202		1
	भ्राव	o } 8/0 }	\$	9	\$	1	1
	पर्या प्ति	६/ ६ ६ पर्याप्ति ६ अपर्याप्ति	ई पय∫हि	६ अपर्या ग्रि	प्याहित प्रमुख	1	ê
							_ %
	जीव समास	सं. य.	 	्र सं. अप	सं , द	1	13.3%
	मुण स्थान	१ अबि, सं.प. सं.अप.	१ १ अभि. सं. प	क बु	% % ₩. ₩.	1	[-(a, 4/4.4/
विशेष	मुण स्थान	सं. य.	···		₩.		ह्य दर्याप्त — (घ. २/१.१/ सामान्य — — दर्याप्त =
मार्गणा विशेष	<u> </u>	१ अबि, सं.प. सं.अप.	अरिब.	क बु	% % ₩. ₩.		२. मकुष्य पर्याग्न — (घ. २/९.१/१९२) १ १- सामान्य — — (१४ पर्याग्न व

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

1			F/ - H-			5 -2-
	उपयोग	२ साकार अमा्	२ साकार अना. युगपत्	२ साकार अना.	. २ साकार अना.	२ साकार अना,
	জান্ত?,	२ आहा,, अना.	अतिहा	२ थाहा अना,	२ आहा., अना.	পান্তা: পান্তা:
~	संज्ञित	९ संड्रौ बनुभय	संजी अनुभय	१ संश्रो अनुभय	संजी	संजी ~
	सम्प्र.	GLA.	Gag-	³ मि., सा. सा.	१ मिध्या	१ मिथ्या.
	भव्य	२ भव्य. अमब्य	२ भव्य, अभव्य	२ भठय, अभव्य	3 भह्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य
-	त्रिस्या मा.	अनुस्ता क	क्रिया रक	र्वे अधी उं रू	ט אוט	ma.
	15 hx	чь	443*	(M) H	w	- COL
	त्यु भ	200	3 0	३ बहु, अच्छु केवत	१ असंयम बशु, अबशु	१ अस्यम बहु, अबहु
	स्यम	क विस्	ब्री सुर ब्रा	२ अ संयम यथा.	९ असंयम	९ अस्या
	श्चाम	्र मनः बिना	म् भू स्	३ कुम्तिःकुशुत्तः केवतः	এক্স ন	स्य स्य
[भाष	अ±यात ∝	व्यक्षाय व्	ॐ क्रीक्रवीत	20	200
1	इ ह	~ ুু চা•দা	अत्यक्ष जुरू अ	~ क्रिका	e ~ ∰	~ (<u>R</u>) ~
२० प्रस्त्रपणाएँ	योग	११ १ सन४, अच.४, स्त्रो औ.२. का.१	भन४: बच् खी. १. खी. १.	औ, मि., का,	१९ १९ मनस्, वच-अस्त्री थौ.२, मा.१	ह मनः, बच ४, खौ. १
	क ्ष	₩ ~	~ ₩	र्भ ५	~ ¥ ~	* ₩
	इन्द्रिय	~ *b*	~ 'b'	~ '৳	٠٠.	र्थं फ
	गति	^० गं म ~	~ h ^o	म	با ما ~	ग्रं ~
	संद्या	20	>	20	20	20
	भ्राया	o) o)	&	9	s/o}	<u>.</u>
	पर्याप्ति	اره) و ديوالي و معالية و همعالية	क् प्याप्ति स	्हें असयामि	ह/ह ह पर्याप्ति ह अपयोप्ति	वर्था सि स
	जीव समास	३. मनुष्यणी — (घ. १/९,९/६९३-६३०) ९ ≺ सामान्य ६४ २ सं. प. ६		सं. ~	२ सं. म. सं.अप.	æ ±; #
	मुज स्थान	83	\$0 67	هـ دي. دي.	१ मिथ्या.	्र मिध्या
विशेष	पर्याप्त अपर्याप्त	मनुष्यणी — (घ × सामान्य	मर्या प्त	अपर्याप्त	१ सामान्य	न स्
म हि	माध्र एक	ें भ भ	<i>y</i> .	·	~	~
मार्गना '	'ti'	W. ov.	or	er	>>	24

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

,		· P	ernern varanennes en en en en en en en en en en en en en		+			
	उपयोग	२ साकार, अमा,	र साकार, अमा,	२ साकार, अना,	२ साकार, अमा,	त्र साकार, अना.	र साकार अना.	न साकार अना.
	आहा	श्र आहा. अमा.	अ अमा.	अतहा,	२ आहा. अना.	अ हा.	প্ৰান্তা-	१ ऑहा.
	संज्ञित्व	म् व्य	संबो	१ संज्ञी	० संज्ञी	संखी	संजो	الله معرفي معرفي معرفي معرفي معرفي معرفي معرفي معرفي معرفي معرفي معرفي معرفي معرفي معرفي معرفي معرفي معرفي معرفي
	सम्य.	१ मिथ्या.	१ सासाः	१ सासा.	९ सासा,	* # <u></u>	३ औ., क्षा. क्षयो.	³ औ., शा. क्षयो.
	hek	۶ ۲. هند.	भ कव भ	भव्य	**************************************	भैन्य	१ भव्य	
	를 글	or 'Ele	w	«ur	ad: ~	dit.	No.	क म
	म् स्	লৈ জীপ	45-	415"	ल हैं के	ш,	405	40°
	ক গুণ ন	? ণগ্ <u>ধ</u> , অৰ্ধ্ধ	२ बसु, अवसु	२ बधु, अचसु	र चहु, अचक्षु	न सुर, अस् अस्	क् मध्य, अमध्य अवधि	३ चस्रु,अचस्रु, अवधि
	संग्रम		१ अस्यम			्र असंग्रम	असंयम =	. सं. सं.
गर्दे	ie.	२ १ कुमति,कुथुते असंयम	२ १ ङुमत्रिकुश्वत् असंग्रम	२ १ कुमतिकुभुत्ताअस्यम्	२ कुमिति,कुञ्ज्व अस्यम	इ ज्ञानाञ्चान मिश्र	३ मति., श्रुत. अवधि	३ मति, श्रुत, थबधि
प्रह्मपणार्	प्राक्ष्य	>>	20	>0	20	20	24	20
8	बुद	م ر ي ة	% (हुआ)	* (F3)	~ 1	~ (F)	ردع)	्र धु
	योग	न् औं. मि., का.	सन ४, बच्च. १८ को. २,	मन्त्र भूतः छु	ब्रों, मिं. क्रां, मिं.	ह मन ४, बच, ४	ह मन ४, बच्च. ४	हमा %. बच. %. थो. १९
	काय	भ ५	> ====================================	अस अस	र्भ ⊶	४ ० यस	₩	% ₩
	इन्द्रिय	~ '5	~ 	~- *p*	~ °b⁻	~ ·b'	اخا ^د سه	~ ⁴a⁻
	गति	्यं ५० म	ू पंठ भ	भू %	~ F	~ <u>F</u>	म थें	रम म
	स्था	>>	20	20	20	ŷo	20	30
	स्रोत	9	o/o}	0	g	°	%	~
	पयिधि	ई अपयग्निस	६/६ ६ पर्याप्ति ६अवयाप्ति	र्द चयरिष्ठ	क्ष्ययः अपयः	द ्र पर्याप्ति	६ पयिष्टि	६ पर्याप्ति
	जीव समास	स. अप.	र सं,प. सं,अप.	جان ب	सं. सं. अप.	≈ 't'	بة. م	~ .₩;
	मुख स्थान	१ मिथ्या	सासा	स्रासा	सास	₹	अ १४	ار م ابر
मार्गणा विशेष	नयमि अपर्याप्त	अपयसि	सामान्य	मय्यक्षि	अपयशि	सामान्य (q यरि. हो)	सामान्य (५यर्ग. हो)	सामान्य (पर्या: हो)
	ग्रेस स्थान	~	α·	C.	or .	m	∞	-Af
H		425	න	U	w	0	~	8
					 			

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

7									
	डपयोग	र सम्कार अना.	२ (राकार, अनाः	२ साकार अना.	र साकार अना.		\$ 	2	2
 	्रमा हा	₹ भाहा.	४ अहा.	१ आहा.	्र आहर.	\$	\$	8	2
	र्स झिल	स् स	্লু আ	संजी	्यां स्	£	P.	B	t
	स्मित.	्र औ., शा., सयो.	्र थौ., सा. सयो.	२ ओसा.,	् थौ.,शा.		ē	- \$	2
	भृष्टम	भव्य	मञ्ज	भव्य	भक्य	2	8	*	•
	केश्या मा.	er म हा	क स	~ कं	~ ₩	£	2	2	
	(15) JIX	167 ION	472.	*u-	*w*	R	8	2	*
	दश्न	२ ३ सा. ,स्रे., चक्ष,अचश्च, अवधि	२ ३ सा., छे, चक्षु,अचक्षु, अन्धि	३ बक्ष,जबश्च, अब्रि	३ बक्ष,अबक्ष, अश्रीम	Þ	p	2	\$
	संयम	S. H.	٠ !! لاي	ता. हे.	41. 180.	. *	a	r.	2
ane	श्चीम	३ मति, श्रुत, स् अवधि	क्ष् मति, श्रुत, स् अवधि	व मति,श्रुत अवधि	३ मति, श्रुत, । बन्नधि	\$	ŧ	Į.	ţ.
	hip#	20	20	20	20	20	~ (<u>f</u> €	सी म	~ (<u>+</u>
वेशिक्ष्यक्ष	नी व	~ ⟨ ‡	~ 1 €	~ ₲	~ ₹	ઝેલવાદ્વા		F F	<u> </u>
8	योग	ह मन४,व ब.४,	ह	ह मनधः बचाधः खो थौः १	ह मन४, थच्,४,खी औ. १	£	£	2	\$
	कीय	× 44 ~~	- अस	→ 1	~ k	F	\$	\$	\$
	इन्द्रिय	≈ 'b [*]	« ۴ ⁻	~ ¥	~ +	2	\$	\$	r
	म	• मं°	∾ हें	ण्य ~• म	≈ ir	\$	\$	£	£
	祖劉	20	w l⊨pel.pp	₩ामिकी.ाष्ट	क .त्रीम .स	.ÿîp	\$	\$	
	प्रांध	2	2	٤	<u>.</u>	TA	8	*	2
	पर्वाप्ति	६ पर्याप्ति	्र पर्याधि	ई मर्याप्ति	६ दर्याप्ति	ħ	¢	£	z
	जीव समास	 	चं ~	 	(#) 	Þ	£	\$	ħ
	गुण स्थान	ش ~ قا ~	~ * <u> </u> <u> </u>		بر الله مر الله مر الله	\$	8	ŕ	
मार्गणा विश्रेष	पर्याप्त अपयम्	सामान्य (पर्याध	सामान्य (पर्याप्त	सामान्य (पर्याप्त ही)	१/i सामान्य (प् <i>य</i> िष्ठ हो)	ŧ.	R	£	2
1 1 1 1	मुण स्थान	44	9	lt .	:5	i:\3	121/3	V1\3	20
=	च	m'r be'	%	*	سنة سنة	್ತಿ	ក្	<u> پ</u>	8
' <u> </u>									

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	_			_ ·· _ ·		
	उपयोग	र साकार अना.	र साकार अना.	. त साकार अना.	२ साकार, अना, युगपत्	२ साकार, अना. युगपद
	जाहा.	প্রান্থা.	প্ৰান্তঃ: শেহ	अ	अहा, अना,	अशिहा,
	संद्वित्व	सं 🕶	संजी	औं ~	्र जैम खे	अनुभय
	सम्ब	खाः सः	भौ. क्षा.	≈ .i.	~ ∺	₹ ₹1.
-	भव्य	म ५	४ व्य	म 🔏	्र १९ इ. क	१ भव्य
}	हैं मा	w (₹)	° kỷ	~ kr	₩. ₩.	अ <u>ध</u> िश्य o
-	दश्	३ चस्र, अचस्र अनिध	३ मधु,अमधु, अव्यि	स अवस्य अवस्य	के केश्वद्या	के अब दश्
	संयम	स. स. स.	यथा.	यथ ४	र यथा,	१ यथा.
1	ख न	३ मित, श्रुत, अवधि	३ मति, श्रुत, अवधि	३ मति, धृत., अवधि	के भवा हा। न	क हि ह ति (कि
	#din	~ .f⊌ .β	o bisəb	अक्ष्यीय ॰	Ageld o	o bibeb
	<u> 5</u> 6	अवसद्य ॰	Olippie -	<u>शतचाय ॰</u>	्र प्राममृह	о фирр
प्रस्टववाद	योग	र मन ४,बच,४, औ. ९	ह मनक्ष्यंब क्षे थी, ९	१ मन४,वच.४, औ, १	े मन्द्र, भव.२ औ.२,का. ९ फ्प	अयोग
8	काय	भू 🏎	र्भ र	र्भ रू	٠ ١ ١	₩ ₩
	₩. • #. #.	~ ₽	₩ 'Þ	* *p*	or thi	* '₽
	गति	र्था ∽ म	थं ~≈	ंगे भ म	∾ हिं° म	र्भ ⊶
	Tişi s	<u>~,</u> ₹]₽.₽	लम्.	314,	34, 0	o •`#10
	भ्राण	2 ~	>	\$	× × ×	आहे. आहे.
	पर्याप्ति	् पर्याप्ति	द्	दयीप्ति	६/६ ६पयभि ६अपर्यापि	क मि
	जोव समास	सं. य.	~ .₩.	بة. ب	सं. य. सं. खप्.	, " , " , "
}	मुज स्थान	%	# e	~ & p p m	% %. % %. %⊢ %⊢	ल स
मार्गणा विशेष	वय्यास अवय्यास	सामान्य (पर्यक्षि ही)	सामान्य (पर्याप्त हो)	सामान्य (पर्याप्त हो)	सामान्य (पर्यप्ति हो)	सामान्य (क्यांध ही)
	ग्रीव स्टाच	0	۵.1 ۵.	\$	£	∞ .
Ħ)	, tab	36	*	œ.	≫ .	\$

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	E	м <u>Е</u>	_	न ना. संदा	सु सु र	र हैं। इंग्रेस	२ कार. नाः	२ मा. मतुः
	उपयोग	साव अर		स हिस्स	प्रमा	जी की मा	थ्य स	
	পাहा.	२ अक्षा		अहाता. अना.	अ अन्। अन्।	अ अहा, अमृ	र आहा, अना.	थ आहा, अन्त
	संज्ञित्य	सं अ		जाँ द	मंहम	~ ∰ - ∰	क्षे ∾	र संज्ञी असंज्ञी
	सम्भ	१ मिथ्या		W	ett.	us.	us.	ME.
-	मञ्ज	२ भव्य अभव्य		२ भव्य अभव्य	२ भह्य अभव्य	२ भक्य अभक्य	२ भव्य अभव्य	२ भुक्य अभुक्य
-	त्रस्या इ. मा.	अ		क्ष प्रदेश	જાલુક્સ 🔐	~~ फ़श्कृष्ट	w	न प्रदेश
-	nu	জে ৰ স		w		₩	**	MAP
	दर्शन	अन्य		>	. 20	> 0	है बहु, अब्धि,	≫
	संग्रम	१ असंगम		9	9	9	र असंयम देश सं.	9
	গুনি	२ कुमत्रिकुञ्जन असेयम		u	n	n	हूं ३ खान ३ खहान	ប
-	<u>फाकक</u>	<u>>∞</u>		% स्रोक्षक	> kip∓k	> hit⊕h	20	∞ kipāķ
	वेद	्वः ०		क्ष इंद्र	अधेद क	w 5676	ør	ur pfib
> New York	योग	औ. म.		हैं हिंदी संदेश	10 (m) (m) (m) (m) (m) (m) (m) (m) (m) (m)	**************************************	११ मन्४,थच्छ औ. २, का. १	के. भ ही. भ हो.
	काय	अस		त्रस	अंस ~	* ¥	अंस %	अंस ∼
	इन्दिय	o. P.		~ .	~ .₽,	♣ , 1₽,	~ .⊬	~ '
	मी	म जु.		मं जं	म क्ये	# 0-11 0-11	र्भ रू	ें भे ∾
	मंद्रा	20	-	20	2 %	20	%	>>
	याव	g	%–২৪৪২)	9 9 9 9	9/08 9	\$/0 \$\ 999	9/0} 9 9	300 9 9
	क्यां सि	५३१) ६ अप्रयासि	। म्सेक्ष स्वपद्धके मनुष्य — (सि. प./४/२१३४–२१४३) 	<i>दं ६</i> ६ पर्याप्ति ६ अपर्याप्ति .६ अपर्याप्ति	६/६ ६ क्याँ वि ६ अफ्याँ वि	<i>६/६</i> ६ पर्याप्ति ६ अवय्ति	द्गार इस्पर्याप्ति अप्रयासि	६ ६ पर्याधि १ १
	जोव समास	ध. २/९,१/५३९) १ सं, अपग अप,	, नुष्य (जि	सं. सं. सं. ख्य ख. ख.	र सं.प. सं.खप. लं.खप	स. स. ध.व. ख.ब.व.	सं. य. सं. ध्रय. ब. ध्रय.	हा से स हा से स वा सी स
	मुण स्थान		पड़के म	% ≈	2	≈	مد ا ا	\$0 \$0
माग्णा विशेष	पर्याप्त प्रवया प्र	लब्धपर्याप्त मनुष्य —(अपर्याप्त १ मिध्या	म्स्रेट स्थेद्धः स्थ	सीमान्य	भरते- राबतके १० क्षेत्र	विदेहके १६० क्षेत्र	बिद्याधर् (मिद्या सहित्)	विद्याधर (ज़िद्या क्षोड़ क्षेतेपर)
191	माध्र एह	सङ्ग	अस्य -	ф.ю	2	2	9	\$
	*30	> ∞	.y.	~~	84	m	20	34

	डफ्योग	२ साकार अना,	श्रीकार अमा,	२ साकार अना.		२ साकार अना.	२ साकार. अना.
	अगहा.	२ आहा. अमा,	अहा. अना.	२ आहा. अमा.		अ आहा., अमा,	अगहाः
	से जिल्ल	संजी	~ ₹	ली ∽		→ (g)	म मां
	सस्य	हे मिहया.	*4.5*	413°		***	- Mur
	भव्य	र भव्य अभव्य	२ भड्य खम्रव्य	२ भव्य, अभव्य		२ भव्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य
	हेश्या इ. मा.	4 0-	45	No.		445	शुभ
Ì	हेश्या ह. मा	10-	w	467		- M3"	4,7
	दर्शन	न न अन्य हुए , अन्य हुए ,	ह नहाः अवहः अवधि	है चस्तु, अचस्तु अवधि		क्ष. अमधि अमधि	3 मधु, अच्छु, अव्हि
	संयम	१ इस्यम	्रै. अस्यम	असंगम		० असंयम	्र असंयम
<u> </u>	- জ্ঞান	र कुमिति, कुभुत	इ.स. इ.स. १३	स्य स्थान अस्यान		. १३ कि. जा. जा. जा. जा. जा. जा. जा.	स् स् ज्ञान स्थ्यान
२० प्रस्तिपणाए	अर्थात	>=	>	20		20	20
X o X	्र हे	(fr	WY.	er-		e. 4 <u>₽</u> . 49.9	w ∰ po
	योग	११ मन४,नचध्र औ,१,का,९	११ मन्द्र,बच्छ अौ.२.का १	११ मनध्रवच्यःअ, थौ.२,का.१		१९ मन४,वच ४, वे.२,का १	मनस्र वस्ट स्मेम कै. ९ ६ स्मेम
	काय	प्र ग	₩ ₩	* ##	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	~ ₩	~ ₩
	इन्दिय	* +b'	∞ .p.	₽ ₽		∾.е.	۴. ۳
	गिति	भ %	भ भ	म भी		≈ /la	~ /b
	五章	20	20	%		>>	>0
]	प्राथ	s/o}	5/02 9	\$ 65		200	o o
	पर्याप्ति	<i>६/६</i> ६ पर्याप्ति ९ अपर्याप्ति	<i>६/६</i> इपमस्सि इज्जनमसि	२ ६/६ स.प. ६ पर्याप्ति स.जुर, ६ अपर्याप्ति	(2) (2)	<i>६</i> १ ६ ६ वर्याप्ति ६ अवयप्ति	प्य गुर्म सि
	मीन समास	्रे सं.व. सं.खप् सं.खप्	सं.य. सं.खंत	स स्र	४. देवगति—- १. देव सामान्य —(घ.२/१,६/५३१-५४३) 	२ सं. म. सं. अप.	~ b ⁺
	मुज स्थान	्र मिरपा,	20 20	≫ <u>*</u>	-(¤.२/१,	>> 1 *	» »
मांगचा विद्यम	पर्याप्त अपर्याप्त	अम- भूमिअ	अन्तः- क्ष ^{र्} पज	मोत सूमिल	४. देवगति— १. देव सामान्य –	१-४ समि।न्य	पय <u>मि</u>
<u> </u>	ग्रेव ६४१म	<i>1</i> 55€1	£	छङ्कि∓	देवा देवास	<u></u>	%
ا ≩	- te	m3.	9	ſ	نہ مر	•	8

मा० ४-२४

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	आहा. उपयोग	२ २ आहा., साकार. अमा. अमा,	२ १ बाहा., साकार अना. अना.	१ २ आहा, साकार अना,	२ - १ आहा., साकार, अभा: अना.	२ १ आहा.,साकार, खना. अना.	१ २ आहाः साकार अनाः
	संज्ञिष	* ##	सं अ	संखी *	संखी	रू फि राष्ट्र	म् अ
	सम्प	्र मिथ बिना	१ मिध्या	१ मिष्या	१ मिथ्या.	् सासा.	सास.
	मञ्ज	भ ठव. अपन्य	न भव्य, अभव्य	२ भक्य, अभव्य	२ भह्य. अभव्य	re# ₩	म् अ
	सुर्या १.	PAY	*w	म म	4137	utt.	ر اه س
	fe hx	α <u>μ</u> <u>μ</u>	w	- Tub	ंत्रं में २	w	'
	दश्न	न ब्रह्म छ अ व छ व घि	न स्टुः अनस्टु	स्त्र अवस्ति सम्बद्धः स	म् जिल्ले जिल्ले जिल्ले जिल्ले जिल्ले जिल्ले जिल्ले जिल्ले जिल्ले जिल्ले जिल्ले जिल्ले जिल्ले जिल्ले जिल्ले जिल्ले जिल्ले जिले जिले जिले जिले जिले जिले जिले जि	म - व्यक्ष 	न ब्युष्ट, अन्ब्युष्ट
	स्यम	असंग्रम	्र असंयम	अ स्यम •	असंघम	% असंगम	असंयम
110	झान	म ति. ५ धव,स्रत, कश्चत	が一般である。	क ज	२ कुमति,कुभुत असंयम	ম আ প্ত ভ	জ জান জান
२० प्रस्पणाएँ	क्रवाद	>>	20	20	200	20	20
\$ 8	56	or (= pi	र्ष्य जी भ	υ.(≣ Þ.,	ىر <u>تە</u> بىن	त्य ख्री भ	ल ब्रिक
	योग	# H + + + + + + + + + + + + + + + + + +	म मन ४, ब्रु. ४ क्रा. २,	सन् ४ ८ युः व	बाक मी.	१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १	े क क क क क क क क क क क क क क क क क क क
	काय	~ kr	~ ₩	₩ ₩	सं ∼	्र त्र ∽	्रम् रू
	इन्द्रिय	₩ 'G'	~ y'	~ p	or tr	₩ '	~ ti
	गति	≈ ोह ोह	ত ক	्र व्य	er do	er to	क्ष 🏎
	ाङ्गर	20	, 20	20	20	>>	20
	अव	9	s/o}	~	g 	2 2 9	<u>٠</u>
	पयिसि	अप श्रीम अप श्रीम	<i>६ पर्वाप्ति</i> ६ जपर्याप्ति	द मयाधि	६ अन्यभि	<i>६/६</i> ६ पर्माप्ति ६ अपर्याप्ति	क् प्रगैषि
	जीव समास		स. स. खप्	ख .स	१ १ मिध्या. सं. अप.	. सं. प. सं. खप्	सं
	मुख स्थान	w v.	⁴ मिध्या.	१ मिरया.	१ मिथ्या.	₹ सोसा.	क्षासः.
नशेष	नयप्ति अपयभ्ति	४ ४ ४	सामान्य	नयाँ म	अप यि यि	सामान्य	पर्याप्त
मार्गणा विशेष	मुवा स्थान	F >0	<u>₩</u>	•		<u>«</u>	or
<u> </u>		m ²	∞		سته	 ඉ	<u> </u>

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

अहा, उपयोग थाहा, साकार, अना, अना, अना, अना, अना, अना, अहा, साकार, अहा, साकार, अना, अना,	२ साकार धनाकार
अहा. असहा. अता.	
	२ अहा. अना,
सं सं सं सं सं सं सं सं सं सं सं सं सं स	44 °
सम्य. साखा श्री. क्षा. क्ष्मी. क्षा. क्ष्मी. क्षा.	्र र बिना विना
भव्य भव्य ६ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १	२ भड्य अभड्य
स्ति के स्ति के स्ति के स्ति के स्ति स्ति के स्ति स्ति के स्ति स्ति के स्ति स्ति के स्ति स्ति स्ति स्ति स्ति स सिंहा के सिंह सिंह के सिंह सिंह सिंह सिंह सिंह सिंह सिंह सिंह	∞ किं क
	412,
स्था स्था स्था स्था स्था स्था स्था स्था	3 मह.,अचक्ष. अव पि
संयम् असंयम् असंयम् असंयम् असंयम्	≪स्यम
ह्यान १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १	ह ३ श्राम अ अज्ञान
四	>∞
· 立	هر إ لا الم
रेठ प्रक्षपण प्र स्रोत स	म न के अ के अ के अ
H	्र स अं ~
ਸ ਰੂਨ ਜੂਨ ਜੂਨ ਜੂਨ ਸ	۵ ۴
मू क्षे क्षे च्र	~ 10
1]表的 20 20 20 20 20	× ×
भाषा १०% १०% १०%	\$0\0 \$0\0 \$0
पर्याप्ति ह अपर्याप्ति ह पर्याप्ति ह अपर्याप्ति ह अपर्याप्ति ह अपर्याप्ति ह अपर्याप्ति	भवनत्रिकदेव — (ति.प./२/१४३१५०); (घ. २/१,१/१८३-१६३) १-४ सामान्य ४ २ ६/६ १०/७ ४ १-४ सं. प. ६ पर्याप्त १० । सं. अप. ६ अपर्याप्ति ७
स्तास सं. क्ष्यं सं. क्ष्यं सं. क्षयं	य./२/१४३ २ सं. प. सं. व.
स्यान स्यान स्यान अविक् अविक्	
विशेष पर्याप्त सामान्य सामान्य सामान्य सामान्य सामान्य अपयप्ति	भवन त्रि कदेव १-४ सामान्य
<u>₩ ₩ ₩ ₩</u> ₩	20
१३ १३	- * -*

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

हा. उपयोग १. साकार, १. अना. १. अना. १. अना.	२ साकार, अना.
	लंची "
आहा. अताहा. अताहा. अताहा.	१ आहा.
सं, सं, सं, सं, सं, सं, सं, सं, सं, सं,	~ ##
सम्य. श. विना निध्या. निध्या. निध्या. सिसा.	स्सासा.
भव्य, अभव्य, अभव्य, अभव्य, अभव्य, अभव्य, अभव्य, अभव्य, अभव्य, अभव्य, अभव्य, अभव्य, भव्य,	भव्य
	~ हि
一	40
स्योन असि असि असि २ पक्ष, अवस्र पक्ष, अवस्र वस्र, अवस्र भ	२ चिक्ष, अचिक्ष
स्यम असंयम असंयम असंयम असंयम असंयम असंयम	१ असंयम
श्राम इ श्राम	জ্ঞান জ্ঞান
	200
ं के ब्रोफ कं ब्रोफ कं ब्रोफ कं व्यक्ति कं	a de pi
सम् जा का का सम् सा जा का सम् सा जा का का सा का का का का का का का का का का का का का	म् वक्, वब हे क
स ्त्र स्र स्र स ्र स्र अस्र अस्र अस्र अस्र अस्र अस्र अस्	्र भू ∽
स्ति के कि के कि के कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि	~ *b*
本	مر به. إن
再 下 下 下 下 下 下 下 下 下 下 下 下 下	200
	<u>.</u>
वर्याति वर्याति कार्याति कार्याति कार्याति कार्याति कार्याति कार्याति कार्याति कार्याति कार्याति कार्याति कार्याति कार्याति	न्यर्गिष्ठ -
सं सं अप सं अप	मं भ
त्रुवा स्थान भिष्या भिष्या भिष्या भिष्या भिष्या भिष्या भिष्या भिष्या भ	सांसा.
मागणाविशेष	च्यां स
r = F F 167 D T 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0 0	or
F 12 07 00 00 00 00 00 00 00 00 00 00 00 00	V

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

1	E	₩ _`	₩ _		ن ت	₩ _•	
	डक्योग	र साकार, अना,	२ साकार, अना,	२ साकार, अना.	२ साकार, अना,	२ साकार, अना,	3 साकार, अमा,
	ঞান্থা.	? आहा., धना.	w - NB	% आह	अहाः, अनाः,	अगहा,	२ बाहा,, बना,
	सं हित्व		→ <u>i</u>	स ~	—————————————————————————————————————	~ .₩ .₩	₹
	ਜ਼ੁਸ਼ਾ,	₹ सासा <u>.</u>	मिश्र	२ औ., ह्ययो,	ui9"	4d*	्र मिश्र बिना
	प्रक्र	र मन्द्र	भव्य	र मञ्च	२ भडय, अभव्य	२ भव्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य
	्रह्म म्या मा	m Bie	हा ~	∞ 15 (T)	~ 15	~ <u>₽</u>	जी %
	n tx*	<u>رع ≓ ہ</u>	415*	415-	क हिं को को	<u>अ</u> ~	د <u>ه</u> ها به
	द्धा	२ बहु, अब्धु	२ नस्र, अमिस्र	्र असयम्बद्ध, अबक्ष, अबधि	है चक्छ, अब्ध्र, अब्दि	१ ३ १ असंगम चक्ष, अचक्ष, तेज अवधि	३ २ मस्ट, अमस्ट, का. अविध है.
	संयम	अ स्यम अस्यम	९ असंयम	अ स्यम्	.असंथम - -	असंयम	अ संयम असंयम
	গ্রান	२ कुमति, कुश्रत	२ खासाजान मिश्र,	३ मति, शुत्र, अनधि	्रक श्रुष्ठान श्रुष्ठान	ह ३ ज्ञान ३ अज्ञान	१ ३ ज्ञान. कुमतिक्रथुत
रविधा	क्रवाय	>>	>>>	200	>∞	20	20
२० प्ररूपणाए	ुं कु	ल्ब्ड्रील	~ ∰ ±i	लंच क्रों भ	ு இத்தும்	লৈ আই প	بط <u>ه</u> به
14	द्योग	के मि,का	समा ४, बब्	मा ४ १ क्षे	म् द्र	स सने ४, बब् ४, बे	ने, मि., जा
	भ	~ ₩	* **	त्र 🕻	34 ℃	अ ₩	्रभ ∼
	Par par par	~ "b"	م. به.	ev °b°	~ 'b	۰۰ °b	~ *p*
[गित	∾ /ख व	ু ক ক	~ W	or in	~ √g.	~ \psi
	祖道』	20	>	*	>	20	>>
	Ж	9	~	\$ 	9/08	°	9
	पर्याप्ति	<i>६</i> अपर्याप्ति	ई पर्शिष	द्या सि इस्	3, सौधर्म देशान देव – (घ. २/१,१/६५१–५६०) १ सामान्य ४ १ ६/६ १–४ सं. प. ६ पर्याधि	६ पर्याप्ति	<i>६</i> अपयिग्धि
	जीव समास	सं अप		.m.	म. २/१,१/ सं. म. म. सं. खम.	.व .व	सं, अम्
	गुण स्थान	१ सास्या	م پر	क मि	देव – (ह १-%	» 	w. v.
मार्गणा सिशेष	पर्याप्त अपर्याप्त	अपयास	सामान्य (पर्याः हो)	सामान्य (पर्था, हो)	में देशान सामान्य	पर्याप्त	अपयति
र्गणा	ग्रेथ स्थान	r	tus.	30			
Ħ	'		0	~	m	~	b.p.

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

		······································	· ·				
	उपश्रोग	२ साकार, बना•	२ साकार, अना,	२ साकार, अना,	साकार, अना,	२ साकार, अना,	२ साकार, अना,
	आहा.	२ अहा., सना,	अहा.	२ आहा., खना.	२ आहा., अना.	१ आहा., अना.	. अहा., अना.
	स शिक्ष	सं ~	र्भः ⊶	जी ~	* 4E	- tr	~ हैं।
}	संस्थ.	१ मिध्या.	१ मिथ्या.	्र मिच्या.	4 सासा,	क्षास: सासाः	१ सासा.
	भव्य	२ भव्य, अभव्य	२ भक्य, अभक्य	२ भठय, अभव्य	* # **	भुव्य	१ मन्य
	표 표 표	~ 4€	م. الم. الم	~ 4c	~ 10°	~ Æ	~ 100
	लेश्या द्र. भा.		∾ 4 0	स्त्रं ची ७	আ কু কু	∾ /tċ	ल में के
	दर्शन	ब इंड. अव क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र	१ २ असंयम चिह्नु. अव्यु	२ महान अवस्थाना. खा	्र स्थः, अपस्थः ति	२ बह्य:, अब्ध	
	संयम	्र असंयम् =	१ असंयम 		९ असंयम	्र असंयम च	
	ज्ञान	श्रृष्टा स्रो	क श्री ख	२ १ कुमति,कुधुताबसंग्रम	्र स्रोत स	अशान	२ कुमति,कुथुतुः अस्यम
3 <u>0</u>	क्रवास	~~~~	∞	<u></u>	200	26	20
स्यण	40	化模场	化套轴	0. 4 <u>±</u> Þ.,	o. (<u>as</u> p.,	कर 📜 क्र	ल्य 🛱 भ
२० प्रस्तपणाएँ	म्	११ मन ४, बच. ४,	१ २ मन४,त्रच.४,खी.	में. मि., मा.	११ मन ४, बच, ४, वे.२, का.९	ह मन४,वच.४.सी. वे. १	ल मि. भा भा
	कास	~ \}	** **	त्रं 🕶	₩ 7 ~	* ***	3 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3
	क. भूर भूर	~ +	~ ₽	~ .p.	• ÷	~ ₽	₩ °b°
	明	 ∞ /€ 	~ \range \	~ /b	~ \pr	~ Av	A) As
	頂神	>>	20	⊅ ¤	20	<u>~</u>	20
	प्रभव	o) o)	•	Ð	200	~	9
	पयिधि	६/६ ६ पर्याप्ति ह अपर्याप्ति	ई मयिप्ति	६ अप्याप्ति	<i>६/६</i> ६ पर्याप्ति ६ अपर्याप्ति	६ पयिष्टि	ई अपयमि
	जोब समास	त्र. सं. खव.	चं	१ मिथ्या सं. अप.	सं. म. सं. ख.		सं.खप.
	मुण स्थान	१ मिरुया	१ मिथ्या	१ मिथ्या	सास ~	्र सासा.	१ सासा.
माःगा विशेष	पर्याप्त अपर्याप्त	सामान्य	मयप्ति	अवयप्रि	सामान्य	मय्या	अपयप्ति
E	माक्ष्र स्थान	۰.	~	6.7	Pr .	~	or
#	स	20	-SY	wo	໑	t	ω

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

-	उपयोग	र साकार, अना,	२ साकार, अना,	२ साकार, अना,	र साकार, अमाः	<u> </u>	२ साकार, अना,	२ साकार, अना,	२ साकार, अना.
	आहा. व	F.	ie.	Fic.			[편 F.	he/	
)		₩ ₩	~ ह	~ [अहा. अमा.	<u> </u>	लेखें हैं	~ 등 등	
	संशित्व	क्षेत्रं रू	सं ४	स्ति. ~	भ जा		संख् अ	मः मः	~ f g
!	सम्य.	म् 🏎	३ औ., सा., सयो,	३ औशा., क्षयो,	३ औ.,क्षा., क्षयो.		ms.		१८ बिना
Ì	भुडप	१ भव्य	भ ल्य	भव्य	१ भव्य		र भव्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य
ľ	लेश्या इ. मा.	~ 10€	∾ 10°	₩ 16°	~ 1€		क्षेत्र स्थाप स्थाप स्थाप	त या भ	मुं के भ
- 1	15 tu	~ 4 .	30 6	~ Æ	or Ei kai		ক কি কা	જ તારું કે	क्षा च
	दश्न	न् ब्युट्ट, अवश्च	रे चक्क, अपञ्च अभि	ह बसु, अबसु, अशीय	3 बहु, अचहु, मा. अवधि हु।		३ चक्ष, अचक्ष, अवधि	३ चस्र, अचस्र, अविध	१ ३ २ असंयम चक्ष, अचक्ष, का. अवधि गु.
	संयम	् असंयम्	अंस सं म	अ संयम	? असंगम		१ असंयम	्र अस्यम	९ असंयम
<u>ب</u>	জ্ঞান	३ ज्ञानक्ष्वान मिश्र	्र मति, श्रुत, अबधि	्र मति, श्रुत, अय.	३ मति, श्रुत. अवधि		ह क्षान ३ अज्ञान ३ अज्ञान	है ३ झान ३ अज्ञान	४ ३ ज्ञान कुमति,
२० प्रस्तिपणाएँ	- क्षांत	20	20	∞	200		20	20	20
8	_ ∌ €	जु जु	er (to po	or to be	شط مه		~ p ô	مر <u>مر</u>	ښو ~~
	योग	म ४, वक्ष ४, वक्ष	मन ४, मच, ४, म, २, का. ९	सन ४, बच. ४, के, ९	े ते. के. मि.		११ मन ४, यव. ४, मै. २ का. १	मन रुखे थुंके, द	य व,मि.,जा.
	काय	त्रस	र्भ ⊶	₩	~ ₩		* *	अ ₩	→ #
	इस्टिय	~ ъ`	or tr	•~ °b°	رة به الم		~ 'F'	∾ ₽°	or of
	मति	~ \ \\ \\ \\ \\	~ \restriction of the control	~ 10	क्षे क		न व	≈ do	or Au
	स्था	>2	20	20	20		20	20	>∞
	माव	o	5/02	2	9	·	9/0}	0	9
	पयिक्ति	ह् नयगिप्त	६/६ ६ पर्याप्ति ६ अपर्यासि	म् म सि	६ अपर्याधि	४. सनस्कुमार माहेन्द्र देव(घ. २/१,१/६६१-५६३)	६/६ ६ पर्याप्ति ६ अपर्याप्ति	६ पर्याप्ति	६ अपर्याप्ति
	जीब समास	, वं, वं,	सं. प. सं. अप.	~ 'k;	हुं भू , ~	- -(धः श	संस् अय	~ i p	सं ल
	मुण स्थान	मिश्र.	अ ब्री	अ िक.	० जि	हैन्द्र देख-	> } > >	> 1,	w. w.
मागणा बिशेष	पर्याप्त अपर्याप्त	सामान्य (पर्या: हो)	सामान्य	पयिष्	अपयसि	क्रमार मा	स्यमान्त्र	चय िष	अपयम्
101	मुज स्थान	(n)Y	≫	200	20	मुन्			. 49
म्	' kr	\$	*	£.	mr.	>0	•	or	an .

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	3													
	डपयोग	_	l 	- 	<u> </u>	<u> </u>	<u></u>		_	(र साकार	अना.	er	साकार अना.
	आहा.	~_	1		↓ _	<u> </u>	- क - क	,	<u> </u>	(अहा.	अना,	5~	अ हा
	मिशिस्त		।हेन्द्रवत्		ŧ	a	다. (전 - 변화	(A)) (A)	7 2 20		भंग		~ :	य
	सुरुष,	 _	सनत्कुमार माहेन्द्रबद				धः। अपर्याप्ति में कापोस सथा शुक्त ये दो	atonften 立 seriors A seriors			्य <u>ी</u> .सा.	् क्षयो.	an-	थीं. क्षा. . क्षयो.
	भव्य	 _	↑		↑ 	↑ 	ं स्योद्धि	in T	7	,	भुव्य		•~	भव्य
	# # I	 			o~ (d)	-~ +	र ह	19	_		∾ Þ.	ie,	•	कं के
	त्रेश्या इ. भा	\	տ. 17 P. T	∓ .हु.।क	~ [₽	F 0 F	<u>향</u>	- - - - - -	क्षा विकास सम्बद्धाः	•	٠ ا	ल त्य	? ~ ~	्ये ल
	दर्शन]] 	!		i	1	्रिति में मध्यम पद्धाः स्था	1 1 1	न्सम म्य शुक्त		्र बह्य, अब्बह्य	अवधि	tu.	बश्च, अवश्च अवधि
Zie.	संयम	 _	l 		ļ	<u> </u>	् न(प्यां				अस्यम्		•	अस्यम
३० प्रह्मियणार्थं	হানে	 	↓	·	↓	_↓	 शुक्तताथा मध्यम पद्म् मे तीन । पर्याप्त मे		ব্যাধ্যার । ভাষ্ট্রেশ্বর		्र मति, श्रुत	अशिष	ECS.	मति, शुते अवधि
	क्षाय		12. 10.				मध्य नेव्ये		govar T⊬−		>		20	
	कृह		ाहे न ्द्र		\$	ž	ָּבֶּא בַּוּ		1 (E)		ن و		₩.	פים
	योग		समत्कुमार माहेन्द्रबद		;] 	5 - 7 - 7 - 7 - 7 - 7 - 7 - 7 - 7 - 7 -	न कापांत शुक्त तथा मस्यम् धुन्त माना प्रथास पर्योग्ति तथा अपर्योग्ति तीनों में बाक्तर प्रधा और ।	,	११ मन४, बच.४,	ब.२ ब ा. १	w	मन्ध्र,बच्छ, ब. १
	काय		1		↑	1	ਜ਼ਿਲ ਜ਼ਿਲਾ ਜ਼ਿਲਾ	2 2 2 3	म् कापार क्योप्ति त	•	→			표
	इन्दिय	_	1		ļ		[= 219]			,	~ ·b·		•~	ъ *
	गति		1		ı	l	 दञ्ज लेश्या = साम असम्बन्धाः - साम		द्रव्य वस्था = सामान्य भाव सेर्या = सामान्य ()		مل اه		•~	a p
	村割								H		50	,	20	
	ыL		l l		ı	1	िष, र/९,९/४६४) सर्वत्र सत्तत्कुमारवर्ष / केबल लेश्यामें बिजेवहैं (द्रब्य लेश्यां = सामान्य में कापीत. अध्यक्षीया = सामान्य में कापीत.	4	सुब्ज सुमरकुमारव्य लक्ष्याम विश्वष ह । (द्रव्य वार्यः) = सामान्य भाव बेरया = सामान्य 		2 °	9	%	
	 पर्याप्ति	ब्रह्मसे महाधुक्र तकके देव(घ. २/१,१/५६३	1			I	(१४) स्त्/केश्व बे	ر الرواق الرواق	रचेट / लश्याः		६/ह ६ पयिष्ठि		415-	मर्याप्ति
	 समास	- व्य—(ध.	1		1		 <i>राष्ट्रधिश</i> तनव्कुमार	. 4/k:4/k	स्नर्कुमा	जुत्तर—	بط ب	सः सः	~ ~	'ਚ 'ਚ
	गुज स्थान	त तक्के	 		<u> </u>	 	ि (घ. सर्वत्र स	त्त्र – (ख	भ स स	म पंच अ	জ জু		~	ख् वि
मार्गणा विशेष	 क्याप्ति अवयप्ति	से महाशुत्र	सामान्य		न स्रोप्त	अपय ि	ह. श्रुवार सहस्रार—(घ. २/१,१/४६४) १ सा., प. सर्वत्र सनव्कुमारबद्	्रानतसे अच्युत—(ध. २/१:१/६६४)	सा, प. ब. अप.	ट. सब अनुसिश् व पंच अनुतर-	सामान्य		_{प्} यक्षि	
इन्	गुज स्थान	<u> </u>					क्ष <u>य</u>		<u>></u>	मुख				
ļu ļ		ند	•~		œ	m	سه خس	છં	~	រេ	••		œ	

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	डपयोग	3 साकार अना,	•• •••	1	l	र साकार अना.
	अहि.	्र अहा अना.	 1	<u> </u>	<u> </u>	२ अहा, अना,
	संज्ञित्त्र	~ √100 × 100 ×	1 	<u> </u>	↓	अ र जो
	सम्प	े औ., हा., क्षयो,]	५ ← सा. जिसा	१ - िमध्या: सासाः	१ निध्या. (सासा.) दे. जन्म/४
	भव्य	र्भु ५	 TO: 	्र ज		२ भव्य अभव्य
	संस्या मा.	્રેલ લા ~	*		*	প্রগ্রিম শ
	AF Inx	स्त्र की भ	[<u>स्त्र</u> स्त्र		w
	दश्	र ३ २ असंगम बधु, अच्छु, का. बनिय हु.	देवोंके सर्व आलापों बद	सीधर्म या भवन्त्रिक वस्	£	अ ज् स्ट्र
	संयम	्र अस्यम	↑ 	· ↑	↑	असंग्रम
į	প্রান	्र मति, श्रुत, अव्हि	ı	1	t .	्र कुमत्रिकुश्रुत
	hip#	>>				20
	5 6	<u> </u>	~ pô	~ <u>(≅</u>	~ ⟨ ®	~ .
२० प्रस्तिपणाएँ	योग	ब. सि., की.	_ l	!	l	अ अ.२. का.१
	काय	- × × × − − − − − − − − − − − − − − − −				画 コ コ コ オ
	इ-इय	w°÷	_ 1	↓	1	क के
	गति	∞ do.	व वि 			~ ¢c
	स्था	50	 	<u>न</u> त्रिब	.	290
	त्राज	9	देवोंके सर्वधातापीवष	 सौधर्म या भवनत्रिक्डत्	;	∑ >> ∞
	मधीष्टि	<i>६</i> अपर्याप्ति	1	1	↑	२. इन्द्रिय मार्गेणा— १. एकेन्द्रिय १. एकेन्द्रिय सामान्य — (घ. २/१.१/१६६-५७१) १ सामान्य १ ४ ४/४ १ सामान्य १ ४ ४/४ (दे. सू. प. अपर्याप्ति (दे. सू. प. अपर्याप्ति
	जीव समास	सं, अप.	18.816] /		म. २/१.१ ४ बा. प. स. प. स. प.
	मुण स्थान	% वि	- (a' a		1	वर्षणा— ह्य – (घ. २/१, १ ४ १ ४ मध्या बा. प. स्यासा, बा. प्र. दे. सू. प.
मार्गणा विशेष	पर्याप्त अपर्याप्त	अन्यसि	ह. देव पुरुष वेदी− (स. २ /१,१/५६०) सर्व विकल्प १०. टेक्स्वाँ(घ २/१,१/५० ८६०)	सा.	अवयधि	र. इन्द्रिय मार्गणा १. एकेन्द्रिय सामान्य - १. एकेन्द्रिय सामान्य - १ सामान्य १ १ सामान्य १ (दे.
भिष्म	माक्ष्य स्थान		से स्व स्व	-		र. इन्द्रिय १. एकेन्द्रिय १. एकेन्द्रिय १
[F	ंस.	to.	. i 2	· •	D.	<i>••••••••••••••••••••••••••••••••••••</i>

भा० ४-२५

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	<u> </u>		. 7			, 45	. 2
	उपयोग	२ साकार, अना,	3 साकार, अनाः	१ साकार, अना.	२ साकार, बना.	२ साकार, अना.	र साकार, अमा.
	आहा.	्र आहा•, अना.	र आहा-, अना:	२ आहा., अना.	१ आहा.	२ अन्तः, अनाः	२ आहा, अना,
	संज्ञिल	सं ब्रह्	असं खो असं खो	९ असंज्ञी	^ असङ्गो	असंबो	द असंजी
	सम्य,	् निश्या	१ मिथ्या (सासं।.) दे, जन्म/४	र मिथ्या (सासाः) दे, जन्मा	१ मिच्या	१ मिध्या (सासा.) दे. जन्म/४	१ मिथ्या (सासा.) दे. जन्म/४
	भव्य	२ भड्य अभन्य	२ भाव्य अभव्य	र भव्य अभव्य	२ भन्म अभन्य	२ भठ्य अभव्य	र भड्य अभड्य
	# #	લદીત્રજ	ભુતું કે ત્યુ	જામીકે છ	क्ष्य दृष्ट्रीष्ट	જ હાંદ્રીમ જ	m kibb
	लेखा इ. मा.	Nor .	लुं सु २	ur	445	ल्ब बे भ	사 등 등
	स् श्रु	अवं अवं	ल ज् ज् ज्	ख्दं य ४ ल	अन्	क वा ~ क	क्षेत्र क क
	संयम	१ असंचम	१ असंयम	९ असंयम	र असंयम	असंघम	असंधम
្នុងរា	প্রা	र कुमति, कुश्रुत	कुमति, कुश्चत	कुमति. कुश्चत	अमिति, अध्यत	क्रमति कथुत	कुमति, अधुत
न्० प्रह्मपणा है	klhż	20	2∞	20	20	24	∞
P.	34	ريا د ط. مه	م بيغ ال	~ b o	~ b 9	्रम् ⊶	or .b.0
	योग	~ (, (, - (, -	श्रे औ्रीम.,का.	अ ति, १, का, १	~ শর্ড	्र औ,मि, _। का,	श्री १, म म
	कास	भूस श्रम	ब्रै ब्री	बी माँ स्	१ अस रहित	* सहित	भूस रहित
	ज्ञान्त्रम्	♦ (b	~ /1€ D	~ ₾	≈ \ • \ •	ج ب.	~ E
	मिति	्र वि.	~ (<u>E</u>	न के	~ €.	→ £	م الق
	4,41	20	>>	20	20	20	>-
	íalк	×	m	30 00 m	20	ണ്	\$5
	.पश्चिति	8 पर्याप्ति	४ अपर्याप्ति	४/४ ४ पर्याप्ति ४ अपर्याप्ति	४ पर्याप्ति	थ अपर्याप्ति	३. सुक्ष्म एकेन्द्रिय—(घ. २/१,१/ १७३-१७४) १ सामान्य १ ९ ४ पर्याप्त (सासाः)स्. जन् ४ अपर्याप्ति (३. जन्म/४
	जीव समास	बा.प. स्र. प.	ર જા. જાપ. તૃ. જાપ.	२ बा. प् बा. क्षप.	. व.	्र बा, अप.	य—(घ. २/१,१/ १ मिध्या, स्. प. सासाः)स्. अप. जन्म/४
	मुण स्थान	्र मिष्टया.	भ्रम्यप्ति १ २ मिथ्याः ना. अप. नि.अप. (सासाः)सु. अप. (दे.	ह्या, स्या, साः)	१ मिथ्या.	क्ष्यमीत्त १ १ १ मिथ्या, बा. अप. नि. जय. (सासा.) (हे. जनम/४)	न्य १ -य १ मिथ्या (सासा.) दे. जन्म/४
मार्गणा चित्रोष	मर्थाप्त अपर्याप्त	मय प्रि	अपयप्ति नि.अप.	बाद्र एकेन्द्रिय – सामान्य भि मि (स)	नयशि	अपग्यपि निः अप (दे	स एके न्द्रिय सामान्य (दे. उ
ीजा 1	नुष स्थान						#
计	प्र	r.	m [*]	o* ₩	~ ~	(rov	m² •
					->		

जैनेन्द्र सि**द्या**न्त् कोश

ा. साकार हा. साकार हा. साकार हा. साकार हा. साकार हा. साकार हा. साकार हा. साकार हा. साकार	
[사람 [닭답] 닭 [] 다	र साकार, अनाः-
अत्या अत्या अत्या अत्या अत्या अत्या अति	्र आहा. अना.
सहित्व अस्डी असंडी असंडी असंडी	्र असंद् <u>ञी</u>
सम्प. १ भिष्या (सासर.) १, जन्म/8 १, जन्म/8 १, जन्म/8 १ मिष्या (सासर.)	हे.जन्म/8 १ मिध्या (सासाः) दे.जन्म/8
म म म म म म म म म म म म म म म म म म म	२ भव्य, अभव्य
जिल्लेस अर्थिस प्रमुख्य प्रम्य प्रमुख्य प्रमुख्य प्रमुख्य प्रमुख्य प्रमुख्य प्रमुख्य प्रमुख्य प्रमुख्य प्रमुख्य प्रमुख्य प्रमुख्य प्रमुक्य प्रमुख्य प्रमुक्य प्रमुक्य प्रमुक्य प्रमुक्य प्रमुक्य प्रमुक्य प्रमुक्य प्रमुक्य	લેઇમ જ
THE WARDS WATER WATER WATER	
स्यों अन्यक्ष अन्यक्ष अन्यक्ष	ल च ल च
संयम १ १ १ असंयम असंयम १ ९ असंयम १	असं ध्य स
हात ते के क्षेत्र के विकास कर कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि	 अमिति,कृश्वत
	<u>₩</u>
	~ '₽''
योग योग श्री, श्री, का. १ अप्रै, का. १ अप्रै, का. १ अप्रै, का. १ अप्रै, का. १ अप्रै, का. १	४ औ.२.मा. १ अनुभग्रनन्
新	₩ ₩
(表) (表) (表) (表) (表) (表) (表) (表) (表) (表)	र्म े ∾
	~ ⊕
1度分 20 20 20	>>
<u>p</u> ~ w m m ~ ~ ~	<u>×</u> 9 ×
पर्याप्ति	e) k/k k tuffie k ataffie
समास समास सु. प. सु. यु. १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १	. य/१,१/१७६-५७१ १ २ मिध्या शी. प. (सासा)त्रती अप.
五十二十二十二十二十二十二十二十二十二十二十二十二十二十二十二十二十二十二十二	जन्म/४ . २/१,१/ १ मिष्टवा सिम्हा
मुण जीव स्थान, समास १ १ (मध्या सु. अप. सासाः) मम्म/४ (मध्या द्वी. प. (मध्या द्वी. प. (मध्या द्वी. प.	तन्म/ १ १ मिष्ट (साव जन्म
वयप्रिप्त स्थान, समास्य वयप्रिप्त स्थान, समास्य समास्य स्थान, अस्य समास्य स्थान, अस्य समास्य स्थान, अस्य सामान्य स्थान, सिरुपा हो, य. (सासा)हो, अप. सामान्य स्थाप्त स्थाप्त हो, य. सामान्य स्थाप्त स्थाप्त हो, य. सामान्य स्थाप्त स्याप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्याप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्याप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्याप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्याप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्याप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्य स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त स्थाप्त	दे, जन्म/8 रय—(ध. १/१,१ सामान्य १ मिध्या दे, जन्म/8
गुण स्थान, स्थान, सिस्या (सासाः) जन्म/४ (सासाः) नन्म/४ (सासाः)	

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

1-		<u> </u>	F F	1	₩ .	₩ .
	डपयोग	र सामार अमा.	२ साकार अनाकार	२ साकार अनाकार	अना.	२ साकार बनाः
	आहा.	ক জালুন	र बाहा, अमा,	र आहा, अमा.	्र आहा.	न्त्र अन्ता.
	संज्ञित्व	्र अस्ति हो।	्र असंजी	असंज्ञी	खसं हो। -	अंध 🎖
	सम्ब	१ मिस्या	१ मिस्या. [सासः) दे. जन्म/४	्र मिथ्या. (सासा.) व. जन्म/४	भिष्या	१ मिच्या (सासाः) हे. अन्म/४
	भव्य	२ भव्य, अभव्य	र भव्य, अभव्य	२ भन्य, अभन्य	र भारत, अभारत	२ भक्य, अभव्य
	होश्या इ. मा.	প্রগ্র- অ		ald: m	हर के हिरो	en .1916
	15 hx	wy-	아 를 챙	us-		ल हैं कि
	दर्शन	क्ष ज	अच्छ	स्त्र न सम्बद्धाः सम्बद्धाः	क म व इं	र बन्धु,
	स्यम	्र असंसम	९ बस् ^{यम}	१ असंयम	१ अस्यम	सस्यम
الذ	श्रीन	कुम् कुष्ट्रत	अस्य न्या अध्य न्या	अमिति, अध्यात	कुमिति. कुम्पुत	क्ष्म न अन्त्रीत
रेश प्रह्मपणाएँ	hibs	20	20	20	>∞	20
30	(A)	* • p • 0	°व ~	• 'p*0 ∀	~ .k _o	جر 'مغ عا سه
-	योग	्यं व	年,	४ थौ. २.का.१ तेष. अनुभय वच्च.	२ औ. अनुमयन्न	२ औ. मि., ^{का.}
	क्रीय	* ##	~ \	भ 🎍	→ #	~ # # ~
	इन्दिय	क्र कि	~ (fr	ू एँ प्र	(ig) ~ F	~ Ö ₩
	गिति	१ वि.	~ €	٠- (۱)	~ €	~ Æ
	सुद्धाः	29	20	20	>>	20
	H for	9	×	2 2 m²	V	-wy-
}	व यरिं	१ ९यदिस	* अच्याधि	-4.6१) 4.44618 4.444618	* पर्यासि	अपर्याप्ति
	जीब समास	و عاد. م.	्र भो, खप.	8. चतुरिन्द्रय—(घ. २/१,१/५८०-५८१) १ सामान्य १ २ ६/४ सिध्या चतु. प. १ पण (सासा) चतु. ज. १ जप (दे. जन्म(४))	ं प	भेतु.
	गुआ स्थान	१ मिरया	⊨ E	(4, 4/1 [hear] [(4141)] [418]	१ मिश्या	ि मिट्या (सासाः) (नम्/४)
मागेषा विशेष	पर्या ध अप्याध	च्यां स	अपर्याप्त १ मिस्य सिस (दे, जन्म्/४)	हिन्दिय — (घ. न सामान्य १ फिट्या (सासा) (दे, जन्म/४)	पयीप	अष्यमि १ मिद्य (सास) (से. बन्म/४)
(王) (王) (王)	गुज स्थान		<u> </u>	व		,
म्रा	I	6"	(fr	> o-	ar .	err

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	, F 1				
	आहा, जिपयोग	२ साकार, अना,	न् साकार, अना, दुगपत्	२ साकार अना.	र साकार, अना,
	l t	त्र . अनहः अनहः	अ ।हा.	् र आहा. अना.	२ आहा. अना.
	र्स शिल	न संजी अस्थी अस्थ	र संजी असंजी बारुभय	.स. संजी असंज्ञी अनुभय	र संजी असंजी
	सुम्य,	us.	413*	१ मिश बिना	१ मिध्या
	ਮੁਦਕ	२ भरुष, अभुरुष	१ भव्य, अभव्य	र भवय, वभव्य	र भक्य, अभक्य
	동분	क्षेत्रिया क	अंधिया जन	असेर्या क	445*
	ज्ञ स्था	w	any.	က မြုံ ဆုံး -	No.
	दर्शन	20	20	%	्र असंगम्बद्ध, अब्ह्य
	स्यम	9	9	४ सा,, छे, यथा,, असंयम	्र असंयम्
. स्	झान	\	V	र्६ दिभंग, मन: सा,, धे, बिना यथा,	ار ارد ارد ارد ارد ارد ارد ارد ارد ارد ا
क्ष्मले	क्रधास	अस्वात ∞	ॐ एाक्रकार	≫ pripaspo	>>
२० प्ररूपणाएँ	yp.	ு பெடி	m Dichie	m- Pltpp	60-
	योग	<i>१६</i> अयोग	११ मन ४, बच. ४ औ, १. बे. १	क्षी मि. के.मि., क्षा.मि., का.	क्षे, हिं मि
	भ	त्र ⊶	प्र या २०	~ ¥¥	~ ₩
	इन्द्रिय	مه _ب ه	مر ، در	∞ [,] b²	~ ≠,
	मिति	20	> 0	20	29
	4,红	≫ 1giyn	जसंज्ञा ∞	∞ हिमेस	>>
	अधि	o/3:5/0} ∞ ω ω	3 o 3	200	9/3 :5/0}
	मर्याप्ति	१. पंचिन्दिय— १. पंचिन्दिय सामान्य—(ध.२/१,१/१८२-५८७) १. पंचिन्दिय सामान्य	६/१ ६ पर्याधि १ अपर्याप्ति	<i>६।</i> ६ अवधिष्ठि ५ अवधिष्ठि	ह/रू ६ पर्याप्ति १६ अपर्याप्ति १ पर्याप्ति १ अपर्याप्ति
	जीव समास	(घ.२/१,१ ८ सं. प. सं. प. असं. असं.	खंस, ५ खंस, न	د ع د.ع.اي ط. هم. څ.وع هط. هم.	8 सं. प. सं. थर. असं. प. असं. असं.
	मुषा स्थान	41rd - 48	20 27 1	3. 5. 5. 5. 5. 5. 5. 5. 5. 5. 5. 5. 5. 5.	िमध्या
मार्गणा दिशेष	क्यम् अप्रयक्षि	१. पंचेत्दिय साम १. पंचेत्दिय साम १	, वयस्	अपयसि	स मान्य
गुवा	गुण स्थान	यं में			•
표	· ft	si si si	m	b.s.	3 0
_					

१९७

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	·-··-						
	उपयोग	२ साकार, अना,	२ शकार, अना,	<u> </u>	!	साकार, अना,	२ साकार अना,
Ì	आहा.	अ। हाः	श आहा. अना.	I	ı	२ आहा _. अना.	* आहा.
	सिह्नित्व	सः ह्यो असं ह्यो	र संजी असंजी	1	1	अ र अस्त्री	्र असंज्ञी
	सम्प	१ मिरुया	₹ मिध्या	1	ł	१ मिथ्या	मिध्या
	भक्स	र भड्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य	1 .	I	र भन्य, अभन्य	२ भव्य, अभव्य
	लेख्या र. भाः	atts,	"List"			al <u>s</u>]*	खर्युः पत
	te hx	N.O.	लं हैं के	l	l I	417°	tu-
	दश्च	. अन्य	र नहीं, अनस्य	l	I	नहाः अवश्च	२ बहु, अब्हु
	संयम	९ असंयम	₹ असं यभ	ł	i	१ अञ्चयम	* असंयम
ישמ	ज्ञान	रू श्राम स्थान	कुमति,कुथुत	l	. 1	२ कुमतिकुथुत अभंयम	२ कुमति, कुश्रुत
	प्राप्त	20	>0	1	\downarrow	20	20
२० प्रह्मपणाएँ	lo.	m ·	mr.		अो घवत् ← ————————————————————————————————————	tu.	tu.
*	म्रो	१० सन ४, बच-४, थी. १,	ख़ै. ख़ैं. मूं. मूं.	—> मूबआधवत ————————————————————————————————————	्रिक कि	8तुभयानम्, धौ, २, का. १	र अनुभय बच. औ. १
	भ	्र प	3	1	l	यं २०	~ # *
	म् स्य स्य	~ °b`	or to	1	l	~ ¹b'	e√ '5 [*]
	मी	> 2	>-	1	I	्र वि	~ \$
	स्बा	D 0	200		I	20	20
	म प्र	302	၈ ၈၈	1	1	<u>9</u> w 9	w
	पर्याधि	६/६ ६ पर्याप्ति १ पर्याप्ति	ई/१ ६ अपयिप्ति १ अपयिप्ति	1	२. सन्ति पर्चन्द्रिय(घ. २/९,११,४८७) 	<i>६/६</i> १ पर्याप्ति १ अपर्याप्ति	५ पर्याप्ति
	जीब समास	स. म. असं. म.	रे. सं. अप. असं. अप.	l .	सींब प्वीन्द्रयः-(घ. २/१,१/४८७) - - - - - असंद्यि प्वेन्दिय - (घ. २/१,१/४८७-)	असं प् असं अष्	असं. म
	मुख स्थान	१ मिध्या	१ मिथ्या	1	य(घ. 	ह है . मिरपा असं. असं	१ १ मिध्या असे.
			अपस्रीप्त	1 5	1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1	सामान्य	पर्या ष्ट्र
विशेष	पर्याप्त अपर्याप्त		<u></u> <u></u>		<u> </u>	4	B B
मार्गणा विशेष	तं. स्थिति प्रयप्ति	**************************************	ਲ ਲ *		. सं ब्रा असं वि	411	B

	 ;						
	उपयोग	साकंर अना,	२ साकार, अना,	२ साकार, अना, २ साकार		२ साकार, अना, युगपत्	२ साकार, अना.
	आहा.	२ आहा. अना.	२ आहा. झना.	२ आहा., अना. २	क्षम्.	र अहा., अना.	अ अस्ति:
	संज्ञित	द असंज्ञी	र संबी असंबी	सं क्षेत्र संस्थान संस्थान		२ संज्ञी अमंज्ञी अनुभय	र संजी असंजी अनुभय
	सम्य.	१ मिथ्या (सासा) हे जनमाथ	र, पंजाह १ मिध्या	१ मिथ्या १ मिथ्या		*445*	m.
	भव्य	र भव्य अभव्य	२ भव्य अभव्य	२ भव्य अभव्य २ भव्य	अभव्य	श् भक्य, अभव्य	र भन्य, अभड्य
1	स्या	m 'lèke	w <u>1€1</u> 6	ლ.[§6 თ.[§	E	अध्या क	क्ष्या क
l i	त्रस्या है.	লৈ ৰূপ	ল্লে খ্ৰ	电	্ন	u.	sus.
	द्यान	न् म् स्थः, अच्छ	ত্ব ক	अन्यक्ष अन्यक्ष	·	20	>>
	संयम	% असयम	१ असंयम	१ बसंयम १ १		9	9
9E/	श्चान	२ कुमति,कुश्वत	२ कुमिति,कुशुत असंयम	२ १ हमति:क्रुपुत अस्यम २ २ १ क्रमति:क्रुपुत अस्यभ		v	V
.सवा	দাফক	>>	200	>0 >0		જાં±લાત. ∞	∞ फ्रिकिक्क
२० प्रस्तवणार्षे	<u>≥</u> ₽	en-	م. دية. ∾	od, ~ od, ~ ⊒ al ~		տ ըրբբ	e Dirig
ક	योग	अ. मि., जा.	शे. शो. मि., न का.	थी. मि., न का. ११.		%% अयोग	११ मन४, बच.४, थो. ९, वै. १ आ. १
	काम	* #¥	~ ¥ ~	* # ~ # ~		w	w.
	इन्द्रिय	ط. ہم	م. ب ر	∾ 'b' ∾ 'σ'		٩٢	×
	मि	क्षे	क्षे क्षे	名 (1)		7 0	200
	संबा	> 9	20	> >		∞ अस्डिक	∞ 4≧4£c
	अधि	9	9 9 9	9 9		\$: \$/8 \$/8: \$/3 \$/0: \$/7 \$/5: \$/0}	\$0,8/2,9/4 8/8; \$
	पयिप्ति	१ अपर्याप्ति	8. पंचिन्द्रिय लंडध्यपर्याप्त — (घ. २/१,१/४८६-५६०) १ सामान्य १ १ ६/११ सामान्य १ १ १ १ १ १ १ १ १ १	६ अप्योग्नि ४ अप्याप्ति	है. काथ मार्गणा- १. षट् काय सामान्य —(घ. २/१,१/६०९-६०३)	\$/6; \$/\$ 8/8 6,4,8 q.	६,५,४ मर्याप्ति
	जीव समास	% असं. अप.	यपर्वाप्त – (घ. २ १ १ १ मिध्या सं. अप. असं.	१ १ (मिध्या सं. अप. १ १	अप. घ. २/९,	2	w *
	सथान	्र मिथ्या (सासा.) जन्म(३)	्रव्यव्यक्ति १ मिस्या		III- II-4 — (20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 2	83-48
म्।र्गणा विश्वेष	पयप्ति अवय्या	अपयप्ति	न्द्रय लडध सामान्य	संभि अप. असंद्वि	है. काथ मार्गणा- १. बट् काय सामान्य	सामान्य	प यमि
<u>म</u> ्	मीय स्थाम		वंदे		- का बर्		
H	म्।क्र कि	ш. 	> ×	Or 100	m' or	~	or .
_				ار میں میں میں ایک کو ایس میں میں اور اور اور اور اور اور اور اور اور اور			

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

T	Æ	F. F.		<u>ک</u> ہے۔	₩ 12	įž 🗓
	. उपद्योग	र साकार, अना,		न साकार, अना,	२ साकार, अना.	. साकार, अना.
	জান্ধ।.	्र अहा, अना,		अ अति, अना,	《 研度];	ब आहा. अना.
	संहित्य	स्त्री अस्त्री अनुभय		~ असंशी	ख .• संश	असं ज़ी
	सुस्य.	ब स स		१ मिथ्या (सासाः) दे, जन्म/४	१ सिध्या	१ मिध्या (सासाः) हे. जन्म/४
	भक्य	२ भव्य अभव्य		भ भ्या अभव्य	भ भन्य अभन्य	भन्म अभन्य
	हे. मा.			mr (2)	الا الاس رح	क्षे हैं भ लिस्स स्थाप
, }	हैं से	" अतेश्या ल हिंकिं		443*	407	不管部
, }	स्य	20 ,		ल क्ष अ	교육 교육	न्य २० स्व
	संग्रम	४ सा.,खे. यथा असंयम		९ अस्यम	१ अस्यम	असंयम असंयम
	श्राम	अक्षप्राप्त % जिभंग, मन		२ कुमति,कुभुत् अस्यम	२ १ कुमति,कुथ्व अस्यम	२ हमति,ङकुत्भथसंयम
	क्षाय			36	24	>>
	हि	w. 7€E		~ .p.° .	م بظر م	~ ₽°
२० प्ररूपणाए	योग	क्षेत्र के स्थान के किया के किया के किया के किया के किया के किया के किया के किया के किया के किया के किया के कि	···-	अ. १. १. १. १. १. १. १. १. १. १. १. १. १.	* 15	भी मि भेका भेका
	काय	415.		~ bi	∾ b [†]	er bi
	म् म् अ	*		~ ½	~ 75°	~ ne
	गीत	20		~ €	~ <u>pċ</u>	~ ∉
	संग्रा	[≫] राह्र स्नात		20	20	24
	A jui	8/3; 4 8/3; 4		<u>m</u> to m to to	20	m-
	पर्याधि	६, ५, ४ अपर्याधि	(6	8/४ ४ पर्याप्ति ४ ष्यप्ति ४ पर्याप्ति	४ पर्याप्ति पर्याप्ति	४ अपर्याप्ति
	जीब समास	Ŋ ₩	२. प्रथिवी काय १. सामान्य—(घ. २/१.१/६०४-६०७) 	मा ४ मा क्यां मा क्यां क्यां	ंचं चंचंच चंचंच	१ २ मिध्या था, अप. सम्म/४)
	स्थान	مد المن المن المن المن المن المن المن المن	4. 2/k.k		१ मिध्या	{ निध्या (साक्षा) बन्म/४)
मार्गणा विद्योष	पर्याप्त अपर्याप्त	अपय्रधि	२. पृथिनी काय १. सामान्य—(ध्	लामान्य (दे.	च्य क्षि	अध्यमि अध्यामि (देः)
1 <u>4</u> 1	में कि हेडो स	>>	ं पृथि सामा 			
मि	Ψ.	m·	87 63	• <u> </u>	[5°	63.

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

}	표		₩.	₩			, t	L.5	. h⁄
	उपयोग		र साकार, अना.	२ साकार, अना.	२ साकार, अमा.		१ साकार, अना,	. २ साकार, अना	२ साकार अना.
	आहा.		२ आहा. अना,	२ अत्याहा. अन्ता.	. २ अना.		२ आहा. अना:	∜ आहा.	अ अत्रा.
	सं ज्ञिरेव	·····	असं <i>खी</i> असंखी	क्सं जी	असंजी-		क्ष सम्बद्ध	अस्त्री	असंखीं ~
	सम्प		१ मिध्या (सासा) (दे्वानम/४)	१ मिध्या	{ मिथ्या (सासा) (दे. जन्म/४)		१ मिथ्या	भिध्या	१ मिथ्या
	भव्य.		भ्रम् अभव्य	२ भव्य अभव्य	२ भव्य अभव्य		भड्य अभड्य	२ भव्य अभव्य	भञ्ज अभव्य
	इ. मा.		ख्य स्व स्व	er kg	w. 8		8x 60,	শ্ৰন্থ প্ৰ	ਲ ਨੇ
	के बे		4494	415*	ce je ki		ান শ্ৰ	₩ ₩	ুখ শ্ব
	दश्न		अन्सृ	अ न स	४ अच्छ		४ अ च्&	१ अचशु	अ ब अ
	संयम	_	१ (बस्यम	१ असंगम	९ असंयम		१ इसं यम्	असंयम	्र अस्यम
न्ठ प्रस्थवाह	श्चीन		२ कुमकि,कुभ् _{त (} बस्यम	२ कुमति,कुधुत् असंगम	कुमति,कुण्युत् असंयम		र कुमिति,कुञ्जु	२ कुमतिकुधुत असंयम	२ कुमति कुथुता
۱۳	प्राप्त		20	20	20		3 a	20	<u></u> ≫
ľ	 异居		~ '∀' ⁹ it	~ .b.o	مر بر ال		्रेष्ट्र ग	بر م بک _{رہ}	ما د بار
	म्		त्र औ. २, का. १ नुष्	a de	औ. भा.		क्ष. इ. इ. इ.	∾ প্র	अ भी. मा.
			~ pi	아 누	∞ Þ•		on pu	er bi	م م
	इन्दिय	<u> </u>	on the	۰۰ ^۱ ۱۴	ال الله الله		or in	~ ?\ \$	~ * F
	मिति		م <u>ش</u>	~ ₽	्ते ⊶		~ ₫ <u>F</u>	fa` ~	्ती 🛰
	4,21		20	>>	20		>>	≫	20
	प्राप	ı	% ≪ %	5 0	ør		≥ 20 ev	3 0	m
•	पयिशि	२. बादुर पृथ्जी काथ—(ध. २/१,१/६०७-६०६)	४/४ ४ पर्याप्ति ४ अपर्याप्ति	४ वयिसि	४ पर्याप्ति	(303-50)	२ %/8 सु.प. ४ पर्याप्ति सु.जप. ४ अपर्याप्ति	४ वयशिष्ट	४ अपयोसि
	जीव समास	ધ. વ/ ૧.શ	मा. ध्रुं यु	ू - प्	बा. अप	13/8.8/8		ंच 🍫	१ मिथ्या स्. अप•
	मुण स्थान	ज़ य —(१ मिक्ष्या सासा म/४)	१ मिथ्या	अपर्याप्त १ १ ल, अप. मिश्या बा. अप. नि.अप. (सासाः) (हे, जन्म/४)	দাय (খ	्र मिध्या	्र मिथ्या	मिध्या
मागंणा विशेष	म्यग्नि अप _{्र} मि	र पृथ्वी व	सामान्य १ मिध्य सासा (दे. जन्म/४)	न्द्रा <u>भ</u>	अपर्याह्म स. अप. नि. अप. (स. ज	सूक्ष्म पृथ्वो काय (घ.२/१.१/६०व-६०६)	सामान्य	क्यां प्र	अपर्याप्त (त.अप.)
रमं पर्	मुण स्थान	बाद				?• ਜੁਣਾ			
Ħ,	ا نط ا	ش	∞ ′	<u>۱</u>	tus.	m-	. •	r	çar.

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

मार्गक	मार्गणा विद्योध												2	३० प्रस्थवार्ष							
गैवास्थान	पर्याप्त अष्यपि	गुण स्थान	जीव समास	पर्याप्ति	N 14	1度及	गु	क्ष नि इस		योग	56 		ख न	संयम	दर्शन	म् मा	भ भ व्य	Head	संहित्स	अगहा,	ड्रमयोग
જ જ જ જ	अप्काविक अप्काधिक स	पामान्य—	(ધ. સ્	अप्कायिक अप्कायिक सामान्य—(प. २/१,१/६०६-६१०)	<u> </u>							 -			>		<u> </u>) }	·
	(द.)	िसंद्या (सांसक्के जन्म(४)	% % म. .स. म. म. .स. अप.	१ ४ ४ ४/४ मिश्या का. प. ४ पर्याप्ति (सांसक्षे सू. प. " " जन्म(४) वा. अप्, ४ अपर्याप्ति सु. अप्. " "	20 m 20 m	>>	~ fi	~ मुंद्ध भूदि	अ ५	्री. सं. १,	e, 47.5	الله الله الله	र कुमिति,कुश्रुत्त इस्	९ असंग्रम	्यः या ~ रु	ره څ	स्त्रीत अ अस्त्रीत अस्त्रीत अस्त्रीत अस्त्रीत	१ ;, मिस्या य (सासा) (दे. जन्म/४)	अस्बा अस्बा अस्बा	्र आहा. अना.	र साकार अना.
r	् चय्रि	मिया	सं सं	४ मयसिस	26	∞	م ا <u>ت</u>	~ * ibi	% ₩4.	~ ₩	∾ 'p'o ir	ক জ স	२ कुमिति,कुथुत	अस्यम	अ ब अब्	৵ ক্র	अधीत क सम्बद्ध	स सिस्या	ब्रस् शु	% জান্তা	स् साकार्
m ਨੰ	ह अपर्याप्त १ द ४ विषया बा. अप. अपय. ते अप. (सामा) सू. अप. दे. जरम[४) १, बाद्र अप्कायिक—(घ. २/१,१/६०६)	प्रयम्भ (स्वय्या चा. सिरुय्या चा. सि. अप. (सामा) सू. (दे. जरम/४) अप्यायिक—(घ. १	न् । स्. अप. घ. १/९,१)	ु अप्यामि	pa-	20	~ Æ	or it	~ ₩	क्षे. म.	° '5"	20 (80 (2) (1)	अमित् _{क भ} त	९ असंयम	ेख या ~ एस	ल हैं के	स्थ्र अ स्थ्रिम स्थ्रिम क्ष	्र मिरुया स (सासा) (दे, अन्म/४)	अस्य अस्य अस्य अस्य अस्य अस्य अस्य अस्य	२ आहा. अना.	र साकार अना.
₩	सामान्य (दे.	िमध्या (सासा) जन्म(४)	र बा. प. बा. अप.	् २ ४ मिरुया बा. प्. ४ पर्याप्ति (सासा) था. अप. ४ अपर्यापि जन्म(४)	20 N2	20	* Æ	~ 716 D	% %	4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4	* .p₀	% • • • • • • • • • • • • • • • • • • •	१ कुमर्तिकृथुते। अस्यर	* ≸सयह	क्ष ब	ريع <u>څ</u> ا پ	3 4 2 3 4 3 4 3 4 3 4 3 4 3 4 3 4 3 4 3	१ ; मिध्या य (सांसा) (दे. जन्म/8)	8	२ आहा. अना,	२ साकाद, अना,
·	न्यां	१ मिध्या	۶. اة	४ प्यक्ति	20	20	م ئ <u>ق</u>	٠٠ الله	% हुं	~ 1 is	w '00	% अस्ति 	र कुमिति,कुञ्जत 3	अ मं यम	अ द	~ Þ.	स्म मध्य,	मिस्या	असंझी	अहा.	१ सम्बार अना,
				. April trabilitate				Tributa in	ACAMON .	かり はない はんはい しょう あいまからしまい					A STATE OF THE STA		100.00				

	ļ-	<u> </u>	₩.	، تیر	₩.		₩ .
	डपयोग	्र साकार, अना.	२ साकार, अना,	े साकार, अना.	े साकार, अनाः	र साकार, अना,	२ साकार, अना.
	आहा	र आहा. अना.	अत्याहा. अपना:	्र आहा.	अहा, अता.	२ आहा., अना.	~ 등 한
ľ	सं ज़िरव	्र असंज्ञी	्र असंहो	्र असंज्ञी	असंहो असंहो	१ असंझी	्र असंज्ञी
	सम्ब	१ मिथ्या (सासा) (दे. जन्म/४)	्र €	मिथ्या	१ मिल्या	₹ मिध्या	भिथ्या
	भव्य	२ भव्य, अभव्य	े भव्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य	र भव्य. अभव्य	र मन्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य
	स्या सा	eleî	al≨l∙ ™	લકી જ	er 1810	or .[gle	a. •[₹]0
	/PE hur	<u>, ₩</u>	ंत्र हु क	₩	or 15 150	ल के किंग्ले	<u>~ ∰</u>
	दश्न	अ अ च सु	अन्य अन्य	अचक्ष	अव <i>्</i> अवश्च	ल सम्बद्ध	१ अन्धु
	स्यम	१ असंयम	१ असंयम	असंयम	० असंयम	% अस्यम	अ सं यम असं यम
#Ind	श्चीन	. २ कुमिति, अथुत्	कुमति, अधुत	२ कुमति, कुश्रुत	कुमित, कुथुत:	अभिति. अभित्यत्व	२ अमिति, अधित
Hali	स्थात	20	20	200	20	20	>
३० प्रह्मवार्ष		د الم الم	o, d, ~	م بقی	~ ‡,	با دېر. م	~ .Å.
֓֞֜֜֜֜֟֜֜֓֓֓֓֟֜֟֓֓֓֟ ֓֓֓֓֞֓֓֓֓֓֓֓֓֓֞֓֓֓֞֓֓֓֓֞֓	मोग	२ अौ. मि., का.	# # # ** **	~ ₫;	ख़ै, में. मा.	अ म. १,	~ 15
	भाय	% %	% % ₩	~ ₩	~ & p	ूं जि	≈ Æ
	इन्दिय	ू के	~ '₩	مر ب و به	مر (اق	* E	~ (\frac{1}{4})
	नी	ति	~ d <u>ē</u>	~ £	.~ آ <u>ت</u>	৵ ৻ঢ়	~ € <u>.</u>
	स्ये	20	200	∞	200	≫	>>
•	Jol 8	tra-	20 20 W.	20	m	<u>m</u> ⊃o m ⊃o m	- 90
	पथरिष्ठ	४ अपर्याग्नि	४/४ ४ पर्याप्ति ४ अपयोप्ति	४ पर्याक्षि	४ अप्पर्यासि	३. तेज कार्यिक —. १. तेज कार्यिक सामान्य — (ध. २/१,१/६१०) १ सामान्य १ ४ ४/४ १ सम्हिया वा. प. ४ पर्याधि स्. प. " "	% पयक्षि
	जीव समास	्र बा, अप	सू स्ट. द. सू. खंद.	~	ूम अव	-(4.2/ % al, q. al, t.	म् स्मृत्य
	मुक्त	्र मिध्या (सासाः) जन्म/४)		१ मिध्या	अपर्याप्त १ १ त. अप. मिथ्या पू. अप.	सामान्य १ मिथ्या	१ मिथ्या
मार्गमा विशेष	पश्चिति अ पग्यश्चि	खपर्याध्र १ स. अप. मिध्या निःखप् (सासाः) (दे. जन्म/४)	3. सुक्ष्म अप्काधिक- श्रीमान्य १ मिष्य	पयधि	अपर्याप्त ल, अप.	३. देज काविक— १. हेज काविक सा १ सामान्य	पय प्रि
राग्न	माक्ष्य एत्		**************************************			न न	
H _	†æ°	tax.	m; «	pr.	m	<u> </u>	or .

								
	उपयोग	२ साकार, अना,	२ साकार, अमा,	२ साकार, अना.	२ साकार, अना.	२ साकार, अना.	साकार, अना,	्याकार अमा,
	आहा.	२ आहा., अना,	अहा., अना.	्र आहा.	२ आहा., अना,	२ आहा., धना.	१ आहा. २	्र सूचा,
	संज्ञित्व	ख्यं ४ खस्या ख	- बस्ंश्रु	ख संभा	असंजी असंजी		असंबी असंबी असंबी	5
·	सुम्ध.	र मिथ्या	१ मिथ्या	, मिथ्या	१ मिथ्या	१ मिथ्या.	्र मिध्या १	i.
-	मञ्ज	र भटय. अभव्य	२ भव्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य	र भव्य, अभव्य	२ भन्य, अभन्य	२ भव्य, अमन्य २	अभव्य
	<u>म</u> ्स्	প্রথ প্র	4 1916	AII ' "	or . <u>Ble</u>	જોદી જ	u. 1916 us .	ièle
_	त्रेश्या है. मा	জে শ্ব	ंग कि से क	* Æ	(ब ब्रु	ल के के	∞ <u>ie</u> u <u>ie</u>	여
	स्थान	अवस्	₩	ष्ट्र ष २० स	কৰ জ কৰ	अ म श्र	स्य ५ ५ ५	(i) F 5
	स्थम	९ ऑसंयम	 अस्यम	्र असे यम	, अंतंयम	९ अस्यम्	श्चिम्	म उ इ
 	श्चीम	अमिति, अभ्यत	कुम वि. अ अ े.	र कुमति, कुॐत्	२ अमिति, अधित	कुमति, कश्चत	. कुमिति, कुम्भृत्य १ १ १ १ १ १ १	कुनाय, कुन्नुत
	pripa	20	>>	20	20	>>	> 0	
	±₽	بار د بار م	.a∞ .aq~	م <u>بار</u> م	~ 0	~ .b ₀	d, ~ d, ~	- o
२० प्ररूपणाएँ	म्रोस	अ), मि., का.	<u> </u>	स्र ब्रे	अ.स. स्रा.	क्षे का. ९	~ (1) ~ (1)	; ; ;
	क्राय	~ (E)	ज रहे	~ Æ	० का अं	यो 🕶	~ 15 ~ 10 ~ 10 ~ 10 ~ 10 ~ 10 ~ 10 ~ 10	5
	इन्द्रिय	or ile	مر ب اق جو باق	or in€	~ [†] ₩	० रेखे	artie arti	•
	मिति	م ا لَّه	~ ₺	م آن	~ ট্	नै	enti enti	 2
	स्धा	>>	20	20	20	20	20 20	
	प्राव	er-	20 00 m	20	m	<u>20</u> 20 m√	D0 977	
	पर्या प्ति	अपर्यासि	२. बादर तेजस् काथिक—(ध. २/१,१/६११) १ सामान्य १ २ ४ भिथ्या ना. ५, ४ पर्याप्ति	४ पर्याप्ति	% अपयाभि	ष. <i>२/९.१/६१९)</i> २ ४ स्. प. ४ वयमीप्ति स्. अप. ४ अपर्याप्ति	पर्याप्ति ४ ४	5 5 8
	जीव समास	२ मा, अप. तु. खप.	(ध. २/१ २ भा. प. बा. अप.	ू - - - -	१ बा. अप.	 सुक्ष्म तेजस्कायिक—(घ. २/६.१/६११) सामान्य १ २ ४ निध्या सु. प. ४ पर्या। सु. अप. ४ अपया 	o Ho₁ o t	, 5 10
	मुण स्थान	१ मिध्या था, अप् सु. अप्	ग्रायक— १ मिथ्या	मिश्या	भिथ्याः	विक-(१ भिध्या	fied f	<u>₹</u>
<u>जिल्ल</u>	पर्याप्त अपर्याप्त	अपर्याप्त	सामाच्य	मर्था ध	अपयोध १ १ (स.अम.) मिथ्याः मा. अप.	तेजस्का सामान्य	पर्याप्त अपर्याप्त ज्ञास्त	
मार्गणा विशेष	ग्रैव स्हास	*7	*		<u>~</u>	- H		
'⊨⊹	.lŧ.	m·	U. ∞.	r	my	m² or	SV. W.	

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	डपयोग		२ साकार, अमा.	२ साकार, अना.	र साकार, अना,	२ साकार, अना.	२ साकार, अना,
	थाहा.	_	अना.	श्र आहा,	अ आहा. अना.	न आहा, अना.	९ आहा.
	सं ज्ञित्म		्र असंज्ञो	अ संझी	्र. सं	अ ~ आ	ह्य ४
	सम्ब,		भिष्या	१ मिथ्या	मिट्या	१ मिरुया	₩
	मञ्ज	<u>u. </u>	र मन्ध, अभव्य	२ भव्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य	र भव्य, अभव्य	र भव्य, अभव्य
آ	티븀		প্রথী পা	m , 1 <u>g 16</u>	or 'late	AJ. w	alg, w
	प्रं वि		चे एवं चे ∞	क् _र में कि	± € 8 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1	ी चे ले झे ॰	ず 神 神 山 、 ・ ・ ・ ・ ・ ・ ・ ・ ・ ・ ・ ・ ・ ・ ・ ・ ・ ・
	्रि हिंदि		ॐच्छ	१ अच्छ	ल ४ ल प	अर्थक्ष	ल ब स
	संयम		१ असंयम	% अस्यम	अस्यम	९ असं यम	४ थसं यम
	श्चान		२ कुमति, कुभुत	२ कुमित, कुश्रुत	क्रमति, भ भ	२ कुमति, कुशुत	कुम दि. अध्यत
	hlbh		000	20	20	50	20
• <u>⊵</u>	<u>इंह</u>		~ `p'9	ਸ √ਧ, ❖	म १ प . ~	9, 0, 0, 0, 0, 0, 0, 0, 0, 0, 0, 0, 0, 0,	م 6. ب. م
२० प्रास्त्रवणार्	योग		थी.२, का.१ न	औ ^१ ,	खे, म.	अ. १. अ. १. भा. १.	अ नि
	।		नायु.	वायः ~	ब सुर्	5.7 in in in in in in in in in in in in in	्रं भ
	इन्दिय		क रेक	~ i to b	~ 16	~ }\disp	جر (او
	गित		~ Æ.	<u>ئ</u> ~	~ Æ	न दे	<u>ئ</u>
	持		20	20	20	20	200
	N I di		% >	I 90	יכוץ	20 €.	90
	पयरिष्		%/४ ४ पर्याप्ति " " "	भ भ ४ पर्याप्ति	४ अपयाप्ति	४/४ ४ पर्याप्ति ४ अपर्याधि	% पर्याधि
	जीव समास			क्षेत्र स्यान्त्र स्यान्त्र	म. अप. स्. अप.	२ बा. प. बा. अप्	≥ 1.
	मुण हथान	- 11 मिस्य -	मिध्या	्र मिध्या	१ मिध्याः		१ मिस्या
मार्गणा विशेष	प्यमि अप्यमि	४. वायुकायिक—- १. बाग्र कायिक सामान्य	सामान्य	वर्षा स	अपर्याप्त	२, बाद्र वायु काविक — १ सामान्य १ मिथ्या	प र्थाप्त
Ē	ग्रैता स्थान	नायुः गायः	?			<u>.</u>	
1 =		× 6	• •	~	us.	% ∾	a

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	F .			· . •	.:	
	डक्योग	२ खना.	२ साकार, अना,	र साकार, अना,	र साकार. अन्,	२ साकार, अना.
	आहा.	२ आहा, अना.	२ आहाः, अनाः	अहा.	२ आहाः अनाः	अ अना,
	सं श्रिप्त	चीं द	अ सरेंडी असरेंडी	४ असंब	असं ज्ञी	अ संज्ञी
	सम्प.	१ मिच्या:	१ मिथ्या,	भिध्याः	्र मिथ्या.	१ मिथ्या (सग्साः) (दे.जन्म/४)
	भञ्ज	२ भव्य, अभव्य	र भरुप, अभरुप	२ मन्य, अमन्य	न्त्र भव्य, अभव्य	भन्य समन्य
-	<u>ੇ ਜੋ ਜ਼</u>	ო ქმა ო	or <u>18</u> 16	m dele	eksi m	विशेष के दू
	<u>स्</u> सि	ंत्रं म्	क्षे में ४	∞ <u>le</u>	्रंब ब ्	
	दश्न	स्त्र ४ स्त्र	स्य स्य	ल म ख	ल म स	; अप्रसिद्ध—अप्रसि १ अच्छा
	संयम	१ असं यम	. ४सं यम	अत्यम	९ असंयम	अतिष्टित १ असंयम
<u>।</u>	E E	कुमति , कुश्च	. १ १ १ १ १	२ कुमति, कुश्रुत	२ कुमिति, कुश्रुत	ं प्रति. - अभ्युत
स्यक	क्षाय	>∞	>>	20	20	े अत्युक्त के कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि
२० प्ररूपणाएँ	≱ह	دم. مر عا	۰, به م	م بقری م	्रे ड २०	
•	योग	२ ९ ओ. मि., नर्प का.	क्षी, से का. द	~ 4 5	की. में.	साधारण ; अत्ये = . १ ३ १ बन. खौ.२, का.१नपु
	।	ংন "ম " ত	न ।	न्युः	% में	
	इन्द्रिय	₹	مر إ ق	० १€	~ ₹ie.	साधा.
	गि	~ €	~ 1€	~ #E	~ fg.	+ ~ ₽°
	421	20	20	20	26	% संभ
	भाव	ar	20 00 m	20	or	<u>></u> > ∞
	पर्याप्ति	४ अपर्याप्ति	/(६११) ४/४ ४.मर्यापि ४ अपर्यापि	% पर्याप्ति	% अपर्याप्ति	५. वनस्पति काथ— १. वनस्पति काथ— १. वनस्पति सामान्य — (भ. २/९,१/६१२-६१४) १ सामान्य १ १२ ४/४ १ सामान्य १ १३ ४ प्रयम्भि (दे.जन्म /४)
	जीव समास	अपयप्ति १ १ (स.अप.) मिथ्या ना. अप.	य- १/९.१ स. म. म. अप	~ b;	ूम अन् स्	
	मुण स्थान	१ मिष्या	वक—(१ मिध्या	१ मिथ्या	्र मिथ्या	व— मन्य – (भ मिरुया (सासाः) /४)
मार्गणा विद्येष	पर्याप्त अपर्याप्त	अपर्याप्त (स.जफ.)	३. सुक्स बायुकाविक—(ध• २/९.१/६११) १ सामान्य १ २ ४/४ मिध्या सु. प. ४.पय। सु. अप. ४.अपय	स्यप्ति	अपर्याप्त (त.अप.)	५. वनस्पति क्षाव— १. वनस्पति सामान्य १ सामान्य मि १ (दे.जन्म /४)
गुग्	माभ्रम एहे		_ #*			ig
 	ंग्न	us.	m av	œ	(U-	<i>y</i> • • • • • • • • • • • • • • • • • • •

		٠. ٿ	<u> </u>			ر المار ا	12		₽ 5 _*
	डक्योग	र साकार, अन्त.	र साकार, अना,	_ .	र साकार, अना,	र साकार, अमा.	ें साकार, अना,	············	न् साराद, अना,
	आहा.	্. জাहা	२ थाहा,, अना,		२ आहा., अना,	ং শ্বাহা,	्र आहाँ, अना,		आहां., अनां.
	संज्ञिल	१ असंहो	९ असंड्री	_	. % असंज्ञी	्र असंज्ञी	, असंजो		९ असंज्ञी
	सम्य,	१ मिष्या	१ मिथ्या		१ मिथ्या	१ मिच्या	१ मिथ्या		१ मिथ्या
	भवस	२ भन्य, अभन्य	२ भटय, अभव्य		र भठ्य, अभव्य	२ भुड्य, अभुड्य	२ भव्य, अभव्य	- · · · · ·	२ भव्य, अभव्य
ľ	सुर्धाः ।	u. jrje	ar <u>.19</u> 16		(T.×	algi. m	න්නි ^{* ක}		લેશે. જા
	hx.	413"	a 18. 18.		4177	415"	ंब क्ष भ		44
	दर्शन	৵ ফু দ ল	~ B		क्ष ४ ल	रहा व्य ∼ ल	अवस्र		क्ष् विद्ध
	संयम	१ अस्यम	१ असंयम	त्येक।	९ असंगम	१ अस्यम	१ असंयम	नियोद्दा	असंयम
٠	্র জ	२ कुमिरि, कुश्रत	२ कुमति, कुश्रुत	अप्रतिष्ठित प्रत्येक।	२ अमिति, कश्चित	इ.म.दि. कुंध्रत	२ कुमति. कश्रुत	- चतुर्गतिनिगोइ	२ क्रमति, क्रश्चेत
, 	p:lp:#	>	20		> 0	20	>>	प्	∞
hinhwh or		م. بط. ن.	<u>ا</u> مبط، ہم	, अप्र.	% 6.d. ~	م بار برا	ूर्य भ	<u>न</u> नेदि;	* <u>ir</u>
	घोग	~ √ #	अ सिन्मा,	= प्रतिष्ठित प्रत्येक;	त्र. औ.२, का, १	अपूर्व अपूर्व	्र और, मि.९५ का. ९	 = निस्यनिगोद <i>;</i>	अहै. १. का. १ न हुं.
ľ	भाष	्र म	अ ४	- प्रति	 ब यो ५	मूं फ	थं ४	<u>.</u> .⊥	में स
	इ म्हे य	~\^\\	र देखें	, k	~ /e	~ (#	~ (B)	संकेत	مر ب اق م
	गति	~ 康	~ ⊕	संकेत	~ (E	~ (E	~ ₺	_	क के
	मंद्रा	>>	20	- -	>>	20	20	_	20
	ग्राण	∞	W.	६१४–६१६)	25	20	øv	(323-6)	20 20 tax
-	क्यरिष्ठ.	४/४ ४ पर्याप्ति ४ अपर्याप्ति	४/४ ४ पर्याप्ति ४ अपर्याप्ति	े २, प्रत्येक बनस्पति प्रति, अप्रति,—(ध. २/१,१/६१४-६१६	%/४ ४ पर्याप्ति ४ अपर्याप्ति	र ४ ४ स्योपि	४ अपर्याप्ति	#.3/8,8/68@—€28	४/४ ४ मय ि ४ अप
	जीव समास	ह साथा.४ प्रस्थै.२	>>>	- अप्रति	8 α α 8 α α 8 α α	अत्र अप. २ १ १ म. म. अप्र. प.	२ प्र. अप. अप्र.वाप्	— T	8 ч. 8 ч.
	मुज स्थान	१ मिथ्या	१ मिच्या (सासाः) (४)	ते मिति.	१ 8 मिथ्या प्र. प. (सासा) अप्र. प. (स) प. अप्	eni	स	े गित साम	१ मिथ्या
भागा । वदाव	पर्याप्त अपर्याप्त	पशिस	अपयप्ति १ ६ मिध्या साथा. नि. अप. (सासाः) प्रस्तेत (दे. जन्म /४)	 क्ष बनस्प	सामान्य (मि मि (सा	पयसि	अपर्याप्त १ मिः निःअपः (सा	् साधारण बनस्पति सामान्य	सामान्य १ बा. सू. मिध्या
5	गुण ६श्रान			ा मत्येत्				् साधा	
ਞ	सं.	or .	es.	ين	•	pr.	gr.	m-	•

				<u> </u>			
	डपयोम	२ साकार, अना,	न् साकार, अमाः	२ २ आहाः साकार, अता, अना,	२ साकार, अना,	२ साकार, अना.	र साकार, अनाकार
	জাই।,	आहा.	। ३ आहा, अना.		आहा,	२ आहा. अना.	अ अन्।,
	संहिल	्र असंश्री	० असंजो	्र बसंसी	१ असंशी	१ असंशी	अस्य स्त्री स्त्री
. :	सुम्य,	१ मिध्या	१ मिथ्या	१ मिथ्या	₹ मिरुया	१ मिथ्या	सिध्या
	भंहय	१ भट्य, अभक्य	भेड्य, अभेड्य	२ भरुष, अभेड्य	र भव्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य
	त्र मा.		در اقع الإن الله الله الله الله الله الله الله الل	m gepte	mBE	ल हो हो	व्यक्षी ल
ļ ¦~			<u></u>			्य है रू	्र है के
	ম জ জ	् स्व 🕶	व व	्य म स	्यम् अस्य	ल ब ब	98 * 189 203
	संयम	् असंयम	* असंधम	१ असंयम	असंगम्	्र अस् यम	१ अस्थेयम
३० प्रस्त्यणार्षे	(4) (1)	इमिति. अध्यत	अमिति, अक्ष्यत	२ कुमति, कुथुत	भ अमिति, अञ्जत	अमित. अभ्रत अभ्रत	. २ कुमति, कुश्वत
E	klb4e	20	3o	3 0	20	20	20
8	≥£	ر ورطن ہم	ن دطر مہ	्र चेत्. ~	~ .Å. ~	•- Å.	~ .d. ~
	योग	अपेद.	भी. भा.	क्षी, २, का. है, ३, का. निप्	अ} ⊶	्र अ. मि., न.	व औ.२.का.१ नपुं
	कीय	<u>م</u> ا	ما بد ق	→ #		₩ E	ات اه
	इन्दिय	~ .₩	≈ \$ ~ \$	~ '₩ ~ `B	~ '₺	* * * * * * * * * * * * * * * * * * * 	र के
	गिस	∞ 4E	~ ♠	~ (<u>a</u>	~ Æ .	~ ₽	क ्व
	4,21	20	20	> °	20	20	20
	nol K	~	ço-	30 20 tu.	200	prie	20 30 m
	प्य गि	४ प्यासि	४ अप्यासि	8/8 ४ पर्याप्ति "'' ४ अपर्याप्ति	४ पर्यक्ति	% अपर्याप्ति	४/४ ४ पर्याप्ति '' ४ अपर्याप्ति
	जीव समास	20	20	स निः न स्र स्र स्र स्र स्र स्र	१ २ मिष्ट्या नि. म.	्र मिध्या मि.धप. ब. खप.	ू नि. प. नि. श्र
	गुज स्थान	०० मिध्या	९ मिथ्याः	१ मिष्ट्या	र मिष्टया	्र मिध्या	मिस्या
मार्गणा विश्वेष	नयप्रि अपर्याप्त	पर्याप्त (दा.सू.)	अपयधि भा.स.	ना. १ सामान्य सिध्या	ना. पर्याप्त	भा. अपय्राप्त	स.स.मान्य
[[ग्रेव स्वाच						
Ē	, ori	tr.	pir	~	r	80°	•~
-							

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	=	1 2 €	<u>ئ</u> ت		भू र	प्रजे प	ਰ ਜ਼ੋਂ ਖ
 -	डक्योग	र साकार, अनाकार	_ 	 	२ ,साकार, अनाकार	२ साकार, अनाकार हुगपत्	२ साकार, अनाकार युग्पत्
	आहा.	প জান্তা, ন	अमहा- अना,	1	अ आहा. अना.	आहा., अना.	্ধাहा.
	संशिष्	% असंज्ञी *	अस्य हो	!	४ संजी	र संजी, अनुमय	र संजी असंज्ञी अनुमय
	सम्य.	१ मिथ्या १	िमध्या	ł	₹ मिथ्या	4.gr	wr
-	Hen	२ भव्य, जभव्य	भव्य, अभव्य	l	२ भव्य, अभव्य	ર મન્ય, લમદથ	२ भट्य, अभड्य
	ਜ਼	a 451, w	y ·lète	1	ω. •ββ	क्षेत्रस्य क	ক দঙ্গল
	तेश्या दि मा	٠ قا ٠٠	10	1	লে ভা	-uy	*ur
	दश्च	स्य ४ स	अ न अन्यक्ष		खं ~ खं ~	20 ·	20
	संयम	असंयम्	i ix		असंयम्	9	9
E	श्चीन	कुमिति, कुश्वत कुश्वत	कुमति, कुश्रुत	1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1	२ कुमति, कुञ्जत	u	n
२० प्रस्तपणार्	plkæ	> >			>>	> hipap	> hib±k
8	ΣÉ	नेतुं.	~ .p.o	y 	ेष्ट ॰	տ <u>Փևհ</u> ե	of Brpp.
	योग		· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·		थी, मि. मा.	अवयोग अवयोग	११ मन४,वच्.४, औ.२,का०१ अयोग
	काय	चीनं •	× 1;- €	I	ب ار به	₩	™
	इन्दिय	• '€' •	~ ['] æ' ~	I	→ / (g)	ह्य । स्रोति भी स्रोति भी	स्त्री नः जुन्
	मिति	~ E	र्क	1	~ কি.	5 0	%
	15万	200 2	×	1	>	∞ अस्ता ∞	∞ 顶许多
	भ्राव्य	20 1	en.	I	gr	(0/%; E/%; =/E; 9/k; E/%;	\$0,8,7 \$1,8,7
	षयशिष	४ पर्याप्ति	अ अपयशिष्ठ	l	४ अपर्याप्ति	१.१/६२९-१२८) १० १० १८ इते. त्री. चतु. ६ पर्याप्ति खसं,सं. प.,अप. १ अपयाप्ति	€/k ≰
į	जीव समास	क्रम् म् म् म्	मिथ्या नि. अप. च. अप.	1	ॐ त.		ह्यो.भी. बहुः प्राथ्वपः
	मुण स्थान	1 4	् मिथ्या	<u> </u>	₹ मिध्या	8; -} 	R}-3
मार्गणा विश्वेष	मर्याप्त अपर्याप्त	सू. पर्याप्त	सू. अपर्याप्त चतुर्गाति ब निस्य चिल्य	साधारण मा.सु.प, अप.	म ल ख	कार्षिक—(ध. २) सामान्य १–१४	पशिष्ठ
भेषा	नाक्ष्र मार्	 		-			
 	रेक्	٠ سم	rs •	<u> </u>	or .	ຜໍ 🐷	~

For Private & Personal Use Only

	क्कान संयम दरोन <u>बेस्या</u> भन्य सम्य, संज्ञिष्य आहा. उपयोग डे. मा,	ई 3 द </th <th>असंस्थान नुष्</th> <th>३ १ २ २ २ २ २ २ २ १ २ १ २ १ २ १ १ २ १</th> <th>३ १ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २</th> <th>२ १ २ २ ३ २ १ २ २ २ २ १ १ २ २ २ १ १ १ १</th>	असंस्थान नुष्	३ १ २ २ २ २ २ २ २ १ २ १ २ १ २ १ १ २ १	३ १ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २	२ १ २ २ ३ २ १ २ २ २ २ १ १ २ २ २ १ १ १ १
२० प्रह्म्पणार्	मोन बेद कियाश	औ. मि., ए हि विभग, म बै. मि., छ हि विभग, म वि.मि., छ हि विभा वा.मि.,का.	्ड अहा है। जना	मन्द्रः क्षेत्रः क्षेत्रः क्षेत्रः क्षेत्रः क्षेत्रः क्षेत्रः क्षेत्रः क्षेत्रः क्षेत्रः क्षेत्रः क्षेत्रः क्ष	ब्रे. में. में. अं	→ मुख खोघवद २ % % छो, मि, नर्द का.
	गति इस्टिय काय	20 (11) (12) (13) (14) (14) (14) (14) (14) (14) (14) (14	ht:	क्ष्य में प्रमुख्य के क्ष्य के किया के किया के किया के किया के किया के किया के किया के किया के किया के किया के	अर्थ स्था अर्थ अर्थ अर्थ अर्थ अर्थ अर्थ अर्थ अर्थ	्र । जी क्षेत्र ।
	A N N N N N N N N N N N N N N N N N N N	सि ४,२ ४,२ अपर्यस्	है प्रमिति (८/६; ७/५) इपमिति (८/६; ७/५) अपमिति (६/४	क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र	語 記 ※ ※	fig. 8/8. Eff. 8
	गुण जीव पर्याप्ति स्थान समास	अपर्याप्त १ १ १ ६/१ १/१ १/१ १/१ हो, १३ हो, १३ १ अपर्याप्ति हो, १३ १ अप्रयाप्ति हो, १३ १ अप्रयाप्ति हो, १३ १ अप्रयाप्ति हो, १३ १ अपर्याप्ति हो, १३ १ अपर्याप्ति व्ययः	१ १० ६/१ मिध्या द्वी, त्री. ६ प्यापि " चतुं. ५ अप्यापि सं.अस	१ ५ ६/५ मिथ्या द्वी. त्री., ६ पर्यापि चतु. १ अपर्यापि सं.श्रसं.	<u></u>	. अप. — — — (१/१ भिध्या हो. त्रो. हे अपयिधि चतु. १ अपयिधि सं.अस.
मार्नेषा विशेष	सं. विशेषात्र वि	क्ष क्ष वर्ष वर्ष वर्ष वर्ष वर्ष वर्ष वर्ष वर	×	क्ष्म क्षेत्र भ	e~ 8	त हैं सामान्य त. अप. १ त. अप. १ मिध्या

量	मार्गणा किशीष										२० प्रहत्पणाए	नगाए								
, pt.	स्थात पर्याप्त जिल्लाम् अपर्याप्त	मुख स्थान	जीव समास	म्याधि	म्राव	1度注	턥	इ िद्रय	# # 	धोग	46 F/197F		संयम	दर्शन	स्या मा.	# # 54	HEZ.	सं क्षिप्त	स्	उपयोग
ø ~	७. अकायिक—(घ २/१,१,/६२७) १ सामान्य अतीत अतीत	-(घ थ/। मृथतीव	घ <i>२/१,१,/६</i> २७) अतीत अतीत		अतीत	1達	ha ha		अतोत	अयोग	वित्र विद्र	केवल हान		केब ख दश्	911	अस्ता अस्ती त्य		. भ वितिस	्रा हाना	
		भूव भूव	ऑन. समास	नथ ि म	स्राव	धीज स	F	इ च्रिय	कास		711 F III 711 F III		संयम			भव्या-		असंज्ञी असंज्ञी		लाकार. अमामार धुगपत्
_ %; _^	्र ४. योगमार्गेणा⊸ १. मञोत्रोस	_ 					· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·		 						<u> </u>					
·	ग्नापात् न्नोयोग स	गामीन्य —	(¤, ₹/	१. मनौयौग सामान्य-(ध. २/९.१/६२६-६३४)	(&					-										
B	सामान्य (ययप्रि	**************************************	b .	بر تع بر	&	20 like	7 °	~- °oʻ	त्र ⊶	४ मभोयोग	w. कृह ∞ फ्रा	V	9	∞	413	भेरवा.	*w-	१ संज्ञी,	अ ।हाः	
-	्री चि		· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·			žb:		<u> </u>			ente Oddula					अभव्य		প্রসম্		अनाकार . युगपद
m	१ सामान्य	~ <u>}</u>	~ • h	- en	8	200	20	•~ ^b	~ }	> t	₩	में जिल्ला	अ संयम	२ मध्यः, अवस	410*	भूखा	्र मिध्या	 	् अगहा.	साकार,
	(F)						_	·	:							क्षभव्य	-			अनाकार
tu.	२ सामान्य	₽ ✓	•	w	2	20	*	•~	•,•	20	<i>∞</i>		•	•-	40-		•	٠. 	•••	
	(पयश्चि हो)	सासा	H,	पयीप्ति				ъ.	त्रस	मनों.		প্রত্যান	असं यम	वधुः, अवधुः -		भुव्य	साहा. -	ज़ि भ	क हिं	साकार, अनाकार
20	३ सामान्य		∾.	Tay.	\$	>>	20	* ✓ *	•~ }	>o 1	.m. .Do		•~ :	**	47.	~ E	~ 1	т Э	ا ا	साकार.
	(पयाप्त हो)	<u> </u>	p E	प्रमा प्ति	,				 ₹			ក ស្តី ស	F C S S S S	, p				<u> </u>	,	अनाकार
1		 -	- -																	

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

1	 		b	ن	h.	₩ . ₩	
-	उपयोग	२ साकार, अना.	२ साकार- अमा-	२ साकार. अना.	२ साकार, अन्त.	२ साकार, अना. युगपत्	२ साकार, अनाकार धुगपद्
	अतहा.	अ	अ	्र बाहा.	१ आहा.	आहा _.	अतिहा,
	स जिल	संज्ञी	संजी	संडी	(R.) (A.)	स विक् इव	सं¶ अनुभय
	म् भ	३ औै., शा.; हस्यो.	3 औ., शा., हायो.	३ औशा., शयो.	1	क्षा.	*W
	म् ज्य	१	र भव्य	१ भठ्य	1	भव्य	3 भठय, अभठय
	五 量	*w	क्ष्म क	en म हि	<u> </u>	१ १	- J
	विस्या	*u-	400	ans.	[***	415
į	दश्न	१ ३ असंग्रमच्छ, अच्छ, अन्ध	३ चक्ष, अचक्ष, अब्धि	३ नेह्य, अनेह्य, अवधि	ত ন ক	१ केबल दर्शन	४ मूलोघनत्
ļ	संयम		देश सं.	३ सा., ह्रे. परि.	मूल औ	₹	9
गाएँ	শ	३ मति, श्रुत, अवधि	३ मिति, श्रुत, अवधि	४ मति, श्रुत, अव., मन;	सधा ब्रोग्ध	के बदाहान	¬ ↓
1ह्य	psp4	200	20	>∞		ু প্রকাশ ু	% nibeb
२० प्रह्मणाएँ	ें इंट	lus.	lus.	m,	ļ	а Бітріў	т Виню
	योग	8 मनोयोग	४ मनोधोग	४ मनोयोग	४ मनोयोग	२ सत्य. अनुभय	१ सत्यमन १ सत्यमन
	काय	* #स	भू भ	्स य ~•	1	क चस	~ F
	इम्दिय	~ ₽	ev °p•	-را• سو - دا• سو	1	~ .b.	~ ↑
	गति	29	क्षं ये क	्यं ⊶	1	र्थ म ~	20 I
	頂护	⇒ ,	20	20		0.63	असंज्ञा व्
	भाण -	0	°.	c `	%	°	१० मुलोषयत्
	प र्याप्ति	ह पर्याप्ति	रू सर्वासि	प मही स	व भूष सि	 १ १ ६ (पर्याप्त सयोग सं. प. प्यापि ही) सनोयोग विशेष—(ध २/१.०/१३३-६३४) 	पयिषि
	जीन समा <u>स</u>	सं ९ सं प	~ <u>.t.</u>	مان بو		सं. प.	~ ↑
	मुख स्थान	∾ धि	ø iö 	प्रमत	m ,	१ सयोग वि—(ध	m 2
मार्गणा किशेष	चर्याप्त अयपि	सामान्य (पर्याप्त हो)	सामान्य (पर्याप्त	क्षामान्य (पर्याध हो)	सामान्य (पर्यप्ति ही)	९३ सामान्य (पर्याप्त हो)	सस्य- मनो पर्भाप्त हो
[जु	गुण स्थान	20	S.	405	£}-a	(3)	
ᄪ	'ঝ'	અ	us-	9	V	w a	* *

जैसेन्द्र सिद्धान्त कोश

جسس							
	उपयोग	र साकार, अनाकार	ı	1	1		साकार, अना.
	आहा.	्र अहि.	l 	<u> </u>	1	अ	अस्ति
	संज्ञित	~ ∰	ſ	i	1	と (単 と	संशी असंशी
	सम्प	No-	ı	I	Į	Sur Sur	मिथ्य।
	भक्य	२ भव्य, अभव्य	ı	ſ	<u> </u>	२ भन्य, अभन्य	भव्य, अभव्य
	त्रस्या म.	«uy-	I	1	1	क प्रकृष्टिक क	
	(TE har	415	<u>↓</u>	_	1	40- 409	
	दश्न	३ च्हु, थच्छु, अव्धि	मूलोघनत्	मृलो घवत	मृलो घवत	30 Gr	असंयम बहु, अचक्षु
	संग	9	1	1	1	9 ~	असं यम
9 hyr	श्री	७ केबल जिना	I	l	J	N m	经线 1.1
1 तुवी	प्राष्ट्रक	ক্রাক্রাথ ∝	1		[∞ अक्षारा ∞	
३० प्रह्मवर्षाए	ltr rlo	क्षपग् <u>त</u> क		<u> </u>		un Birpis on	
	घोग	्र मृषामन	१ मृषामनो	१ सत्यमुषा	् असत्यमृष्	20 B. 20	• च च ए
	भाव	म् 💝	1	!	<u> </u>	~ # ~	 ग्र
	इन्दिय	۰- 'p'	1	1	I	४ एके. श्रिमा	रकें.
	af	>	1	i	l .	20 20	
	頂	अस्त्रा ००	<u> </u>	<u> </u>	4	ॐ तहांक्रा ॐ	
	भ्राध	~	मूलो बबत्	मूलो धवत्	मुलोधकृत	\$,9,6,8,9,0 \$0,8,6,9,8,8	
	पर्याप्ति	य प्रदेशिय संस्था	↑	1	↑	(3) (1) (4) (4) (4) (4) (4) (4) (4) (4) (4) (4	٠,
	जीव समास	मं 🕶	1	l	l,	र. बचन योग—(ण. २/१,१/६३६-६३६) १ सामान्य १३ ५ (पर्याप्त १-१३ हो., त्री. हो) वर्ष. सं.	हो. भी बतु. प. असं. प्
	मुष स्थान	के के कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि	1		er 2	(4. 2/4	मिस्या
मार्गणा विद्येष	पर्याप्त अपर्याप्त	बस्तरव- मन (पर्याप्त	F	उभय सामान्य विशेष	अनुभय सामान्य निवेष	स्थामान्य स्थामान्य (प्रयक्ति)	
厚	मुण स्थान					च प्य	
 	TP.	6 05.	20	ò	an-	. at av . r	

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

			,		 _	 				· ·
	उपयोग	1	1	1] 	1	1	 	२ साकार अना. युरायद्	्र साकार अना. युगाभू
	आहा.	ł	l	or the state of th	l	l	t '		3 थाहा. बना,	्र आहा.
	संज्ञित्व		ı	ł	l .	l	l		र संझी असंझी अनुभय	र संज्ञी अस्जी अनुभय
	सम्य,	I.	1	1	ı	1	l		TAP	Najir
	भक्य	[- 	ľ	1	}	ı		ं? भव्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य
	लेश्या द्र. मा.		l .		<u></u>		.↓		w	4130
	तेश्या द. मा		_↓	ত আ	- ज <u></u>	— <u>n</u> —	- তা আ		w	w
	स् शृत	मी बर्द मी	मी बत्		मृषा मनोयोगी व) मनोयोगी ब द 	मनोयोगी ब		3 0 ·	24
	संयम	ममोथोगी बद	मनोयो गो बत्	<u>ਜਿ</u>	मुख्	डभय	अनुभय		9	9
1	ध्रीन	↑	1	1	↑	1	1		v	V
३० प्रस्तपणाएँ	स्रोधक	1	<u></u>	l	1		1		ॐ प्राप्तकृष्ट	∞ hilbaric
8		!		1	<u> </u>		_		ya. Dirpis	ு ப்புந்த
	योग	४ बचन योग ं	२ सत्य,अनुभय	१ सस्य बचन	्र मृषा भवन	१ उभय बचन	् अनुभय नच	······	क्षांत ७	खी हैं हैं हैं।
	काय	i	1	1	1	l 	1		449	
	इन्दिय	<u> </u>	1		 	l 	1			sr.
	गरि	1	ŧ	1	1	ı	1		>>	20
	स्द्या	—	↓			↓	में च		व्यस्था _{००}	अस्टा 🗠
	Apil	गी बत्	गी वस	योगी बद्	योगी बत्त	। → डभग्र मनोयोगीयत्←	अनुमय मनोयोगी ब 		tols; Elsi clf; olk; {/x; x/x; y/2	9. 3. 3. 3. 3. 3. 3. 3. 3. 3. 3. 3. 3. 3.
	पर्याप्ति	्र > मनोधो गी बर्	→ मनोयो पी बव		ं ->मृषा मनो योगी बद्	— e## —	अनुमय 	३. काय योग १. काय योग सामान्य ─(घ. २/१,५/६३७-६४६)	६.१.४ वर्याषि अवर्याषि	६,५,४ पर्याप्ति
	जीव समास	1	l	1	1	l	!	¶. 2/8,	20.	9 மீ
	मुख स्थान	क्ष १-१	l		1	1	1	मान्य – (\$ 1 3 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5	**************************************
मार्गमा विद्योष	पर्याप्त अपर्याप्त	सामान्य (पर्याप्त	F	स्रा	मृष्	उभय ब ब	अनुमय बचन	१. काय योग १. काय योग सा	सामान्य	पर्याप्त
F-	गैवा ६श्रास	દેકે-દ								
F 1	्म:	m	24			ø	n		•	84

		L/		 	YE27		<u></u>	
	<u>उ</u> पयौग	२ साकार अना. युगपत	२ साकार अमा.	२ साकार बना,	२ साकार अना.	२ साकार अना.	२ साकार	२ साकार अना.
	अपहर.	्र आहा. अना.	२ आहा. अना.	२ आहा. अना.	२ थाहा, समा.	^ জাहा.	१ अतिहाः	२ आहा _. अना,
	संज्ञित्व	र संज्ञी असंज्ञी अनुभय	? संज्ञी असंज्ञी	र संजी असंजी	२ संज्ञी असंज्ञी	संजों.	संशो	र्स र
	ਜ਼ੁਸ਼-ਧ,	१ भिष्र भिरा	१ मिथ्य।	१ मिष्टया	१ मिथ्या	१ सासा.	४ सासा	स्रास
	भव्य	र भव्य, अभव्य	र् भक्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य	१ भव्य, अभव्य	१ भव्य, अभव्य	१ भव्य,	१ भव्य,
	#I #I	No	**	<u>چ</u> ته.	mz,	- EU	wy	435
	क्रिया प्र. मा	्ष्यं ज्ञे	415"	40	জে লু প	رونه. 	407	क्षे झे भ
	स्शीन	20	भ् भ् भव्यः भव्यः	्र नहर, अनश्च	र मधु, अन्धु	२ बहा, अबहा	र मसु, अवस्तु	न बहुर, अच्छु
	संसम	४ सा.क्रे. यथा, यस्यम	्र असंयम	१ बासंयम	् बसंघम	बसंगम	१ असंयम	. अस्यम
3 0≥√	গ্রান	६ विभंग व मनः विना	ও গুলান	३ अज्ञान	२ कुमति, कुश्रुक	३ अह्यान	३ अञ्चान	कुमति, कुण्डत
1	क्षांध	अस्तात ०८	20	20	20	7 0	∞	>>
२० प्ररूपसार	茅 籍	w. Birpie	63.	(U)	\$tr\	m	tu.	tu.
ş.	मोग	की में में में, भा में,	क्षी. २, मे _. २ का. १	्र औ.९.चे.१ मा.९	हैं बी. मि. बे. मि.	क्षी सम्बन्धः माः ९	<u>स्त</u> म	क्षेत्र के मिं. का मिं.
	काय	465-	مون	ma.	40	₩	3. ₹	्र द
	क भिन्न स्थ	~	×	*	*	w 'b [*]	هم! به <u>.</u>	w 'p"
!		>0	20	20	20	20	5×	१ नरक रहित
	頂斯	वस्था ∞	20	24	20	, >>	>0	20
	N III	*************	çolo; El©; ⊏ €; ७ ६; ६ ४; ४ ३	وم.ق. ≈ اه. في ۶ حاره.	**************************************	०३	\$	9
	च्याधि	६.५.४ अपर्यामि	१.१.४ पर्याप्ति अपर्याप्ति	६.५,% प्यांति	है.६,४ अपर्याप्त	६/६ ६ प्यक्ति ६ अपयतिष्ठ	<i>ई</i> पर्याप्ति	अपर्याप्ति
	जीव समास	9 1 9	१४ ७ म. ७ अ.म.	9 p [*]	e श्रम,	सं. प सं. खप्	~ .‡; ► .‡	
	मुण स्थान	24 mg.	१ मिष्ट्याः	१ मिथ्या	१ मिष्या	सासः	सासा	शस
म्हार्गणा विक्षेष	पर्याप्त अपर्याप्त	अपयधि	सामान्य	वर्या ध	थवयि	सामान्य	दर्या ष्ठ	अपर्याप्त
गुवा	ग्रील ध्रमान		•	~	* '	D.	, 15"	~
#	ंसं	pr	20	-×	407	9	ν	
								

	उपयोग 	र साकार, अना,	२ साकार अना,	२ साकार बना.	२ साकार् अना.	२ साकार अना.	. साकार अना,
	जाहा. ज	अ	अ आहा. स अना. ः	अक्षा	भ आहा. अना.	₹ आहा. स	अगहा, स
	संशिष	.संज्ञी ——— <u>ख</u>	* (iii	ल प्र	भ भ भ	ेतः श्री ब	संजी
							
	संस्त	—————————————————————————————————————	े जी क्षा , हमयो,	है औक्षा, क्षयो.	9 औ., श्रा. क्षयो.	3 ओसा. सयो.	ु औ, क्षा, क्षयो,
	म ज्य	भव्य	भ <u>ु</u> वस	४ भव्य	*	१ भव्य	भव्य
	नेरया इ. भी.	**	W15.	415		श्चीम अ	<u>शु</u> भ
	i har		<u>28</u> ,	<u> </u>	क्षा के कि		₩ ₩
	दश्च	१ वसंयम नह्य, वन्ह	१ ३ असंयम् चक्षु. अच्छु अवधि	३ नश्च.,अनश्च अमध्य	र नहु. अब्सु उन्हि	रै बह्य, अबक्षि अब्हि	३ चश्च, अचश्च अवधि
	सं.	्र असंयम्	असंसम्	अस्यम	१ असंघम	क श्र स	सा. हे, निर.
	स्त्र च	३ ज्ञानाह्यान मिश्र	३ मति, श्रुत, अवधि	३ मति, श्रुत, अनिध	१ मृति., श्रुत. अवधि	३ मति., श्रुत. अवधि	क्ष्य अव., मनः
	क्षाप	>>	20	>>	\$0	20	20
	 ∌€	lus.	cor-	654	ptv	øY	ar .
३० प्रस्तपणार्दे	योग	음. - 한 ·	खी _{. 3,} वे. 3 का. ९	40°	हैं औ. मि., बे. मि., का.	₩ 45	થો. ૧. લા. ર ે
	काय	₩	¥ *	चस	₹ ⊶	~ ₩	₩ #
	हन्दिय	₩ 'b'	~ 'b*	ه . ه.	~ 'b [*]	∾ 4.	∝ '5
	मी	, 3 0	20	20	20	بان بان بان بان بان بان بان بان بان بان	र्णा ⊶ म
	頂护	200	20	∞	20	20	>
	XIII	\$	9 €\$.	9	\$	2000
	चय िष्क	प्यक्ति	<i>६/६</i> ६ पर्याप्ति ६ अपर्याप्ति	<i>६</i> प्यक्ति	है अपयाधि	्र क् पर्याप्ति	द्गीह स्पर्याप्ति इ. अप्याप्ति
	जीब समास	सं. य.	र सं. प्. सं. अप.				सं. सं.
	मुष स्थान	मिश्र	अ अबि.	<u>अवि</u>	अधि .	रूब र	× # 4.4
मार्गणा निशेष	नर्याप्त अष्यमि	चर्या स	सामान्य	च्या प्त	ख्पयिसि	यम् हो	सामान्य (पर्याप्त ही)
र्गणा	गुष स्थान	6 0.	20	>	20	*	40 *
 	'tē-	<u>\$</u>	e/-	<u> </u>	ar ex-	<u></u>	<u> </u>

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

1	Æ	र साकार अना,	<u> </u>	२ साकार अना युगपत	र साकार् अना.	२ संकार अना.	साकार बना.
-	. उपयोग		·				_
	आहा.	প্রান্ <u>ত্র</u>		र अहि., अना,	4 ~ 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4	्र असहा.	~
	संज्ञित्व	م بل ة رقع	!	त्र स्था स्था	्र संज्ञी असंज्ञी अतुभय	र संजी असंज्ञी	~ ∰.
	सम्म	औ. आ. सयो.	1	م الإ الإ	no.	kad (had	सासः
	भव्य	र्भ	1	म् भ	२ भव्य अभव्य	२ मब्य अभव्य	hek
	बेस्या द. मा.	क म		~ స్ట్ర్	415"	40-	447
	हेस्या है, मा	4v	<u> </u>	uly'	us-		413"
	दश्न	चहु. अचे धु अवधि	मुख्रोधमत्	१ केथल दर्शन	>>	२ चधुः अचक्षु	. म एड प्र च स्थ
	संयम	३ सा. <u>छ</u> े. परि	1	य म	9	१ असंयम	असंयम्
	SEC	४ केबता विजा	1	ख 🕶	tr	क्षेत्राम् अञ्जाम	क्ष श्राम स्थान
	क्ष्यात	20		o pripatio	अक्षाध ∝	20	200
	क्रेह	m		वधुर्द ०	ल्याधी 🚕	th.	m·
२० प्रहत्यणार	योग	~ 4 5	० ्रहें	क् अते, २, का, १	~ 4 5	~ 4 5	~ √ 5
	क्रांत	यं ~ यं ~	<u> </u>	ज यो ⊶	₩-		र्भ ⊶
	ह िन य	٠. . .	<u> </u>	« ъ	×	<i>3</i> /	~ t
	गीत	~ ji	1	भू म	में ज़े क	की कि	भू की
	स्बा	™ 55317.	118;]	े क्षिष्ठ	30 LEP 10	29	>-
	प्राण	8-	मृतो धनत्	रू १ १	စ် ရှင် စု စု	\$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$	\$
	पर्याप्ति	्र क् नयीप्ति	1	ई पर्याप्ति अपर्याप्ति	६, ५, ४ पर्याप्ति	है. १, ४ क्योंत्रि	ह पर्यक्ति
	जीव समास	ंच फा	स. ~	१/२ सं. प. प. अप.	, 9 s ²	စ င်း	ंचे भूरे
	स्थान	्र ७ब्	۶ <u>۱</u>	सयो 🐣	स्वयोग	↑	######################################
वश्रेष	पद्धाप्त अपर्याध	सामान्य (पयप्ति हो)	सामान्य (वयोप्त ही)	सामान्य	औदास्कि काययोग १३ पर्यक्षि १-१३	पर्याप्त हो	चयधि
मार्गणा विश्वेष	माक्ष्र व्यास	9	<u> </u>	ev.	~ 	۰۰	or
=	'tr'	*w- ~~	နာန	ř.	n' ar	~	ar

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

E '	.			t les		
उपयो।		साकार अमा.	<u>-</u>	र साकार अना, क्षुणपद	२ साकार अना. थुनपत्	्र साकार अना.
l.	अहि।	१ आहा,	1	अ अहा.	अहा.	अ
संशित	स् _{खो}	संजी ~	1	अनुमय	न संज्ञी असंज्ञी अनुमय	२ संज्ञी असंज्ञी
सम्ब	मिष्	^३ औ. क्षा. क्षयो.	1	% ∰.	४ मिसा. सा. शयो.	म्स्याः ~
भठ्य	₩ ⊙₩	भुवस	শ্ব ←	मुख्य	र भव्य, अभव्य	र भव्य, अभक्य
<u> </u>	457	u.		م الع	w.	aig
AE hr	* w-			MD.	~ ₩	~ <u>F</u>
दश्चे	२ बक्ष, धबक्ष	र च्छ अच्छ. अन्छि	→ काययो•	केव स	४ चक्षु. रहितस् दे. दर्शन/9/३	ल व ल व ल
संयम	% संगम	्वस् अस् अस्	· 1	१ मथा,	्र असंयम् पथा,	अस्यम
हात	३ झानाझान	^३ मति, श्रुत. धन.	1	के अन्य	है विभंग, मनः बिना	क्रमसि, क्रुअत
prip#	D0	20	1	o kibyk	∞ plpaps	>∞
इह	mr .	(i)·	[ু সৃষ্টিছ	<u>⊸ நா</u> pp	m-
मी -	स्रु 🐣	अ के	र औद.	~ /s	#. .∓.	की. में.
कार	ज रू	≈ ¥€	. 1	~ 	M.Gr	w
इन्दिय	· • • • ·	~ □	l	~ F	· &	~
गी	मुं दुरे २	る 東 応	ſ	~ £0 £0	त्री जी भ	ति भूम २०
13617	>∞	De		अस्था 。	∞ 峰段節	26
мло	&	2	ा सामान्य बद	20	46.8 6.9.6.4 8.2.3.3	** ** ** **
मयस्थि	्र वस्ति	न्य िस - न्यासि	→ कायथो	६ मर्याप्ति	२/१,१/६५३- ६.५.४ अपर्याप्ति	६. ५. ४ अपर्याप्ति
जीव समास	br ko	प्त. च	. 1	, tr	म—(ध. अव.	9 b
गुष स्थान	→ (H. 4)	~ (ह	1	खयों.	प्र कावयो ४ ९.२ ४. ९३	₹ मिथ्या
पर्याप्त अपर्याप्त	पर्याप्त हो	य्य प्रि हो	ब सीप्त हो	म् हो हो	स्कि मिक्क अपयोस हो	अप्यप्ति हो
गुजस्थान	m	>>	÷ £	~	अपे क	•
'JE'	≫		₩	9	m} =	~
	ट पर्याप्त प्रयाप्त प्रयाप्त प्राप्त प्त प्राप्त	E पर्याप्त स्थान समास प्राप्त स्वित्त स्वीतित	E क्षिया प्रयाप प्राप्त सान सान साम सान साम साम साम साम साम साम साम साम साम साम	E प्रमाप त्यां प्रमाप क्षित्र प्रमाप	प्राप्त प्	प्राथमित शाम वर्ण कोच प्रमासित काम प्रमासित काम वर्ण के समित होन्द्रम् काम वर्ण के समित होन्द्रम् काम वर्ण के समित होन्द्रम् काम वर्ण के समित होन्द्रम् काम वर्ण के समित होन्द्रम् काम वर्ण के समित होन्द्रम् काम वर्ण के समित होन्द्रम् काम वर्ण के समित होन्द्रम् काम वर्ण के समित होन्द्रम् काम वर्ण के समित होन्द्रम् काम वर्ण के समित होन्द्रम् काम वर्ण के समित होन्द्रम् काम वर्ण काम वर्ण के समित होन्द्रम् काम वर्ण काम वर्ण के समित होन्द्रम् काम वर्ण के समित होन्द्रम् काम वर्ण काम होन्द्रम् काम होन्द्रम काम होन्द्र

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

ĺ	ĘΙ		₩.	₩	Fr .	: b/ •		hv -
	. उपयोग	्र साकार अना	. २ साकार अमा.	र साकार अमा. युगपत्	२ साकार अना.	त्र साकार् अना.	साकार अना,	्र साकार अना,
	अगहा,	१ आहा,	शहा,	্ জাहा.	अस्ति	₹ आहा.	४ आहा.	अहा.
	संक्षित्व	 संद् <u>धी</u>	स अ	अनुभय	्र संज्ञी	संखी	१ संजो	~ ⊕
	सम्प्र.	.ससाः	र सा. ह्ययो.	~ ₽	v1.15*	१ मिथ्या	स्सस	~ ∰
	भुरुत	¥ब्य	¥≈ भञ्य	र भव्य	२ भठय, अभव्य	र भव्य, अभव्य	भव्य	भव्य
	लेख्या इ. मा.	ল ∙িছ	4v2*	~ №	wi s	410"	ع له	tur
	de las	≯ #.	~ <u>+</u>	₹	uy-	445	40	u.y.
	दर्शन	अबह	अन्ध्र अन्ध	के अब ल	? मस्य, अंचस्य अवधि	२ चक्षु. अचक्षु	२ महा, अव्य	२ मधु, अमधु
	संयम	र असंग्रम	्र असंयम्	यथा.	र अस्यम	् असंयम	१ असंयम ब्सु,	असं यम बश्च
गर	গ্রান	र कुमति, कुश्रुत	३ कुमति,कुश्रुत क्सं यम् अत्रधि	क भ भ ज	३ ३ खान २ अहान	क्ष्यान	्र अञ्चान अञ्च	३ झामाज्ञान
२० प्ररूपणाए	hibth	>	20	ু প্রক্রান	2 0	24	20	∞
30.5	<u>≽</u> ₽	en/	₩ ₩0	्रावयाय ०	us.	M.S.	40°,	ør
	मोग	थो. मि	#; fi	थी. मि.	∽ शंह	ক <u>ৰা</u> চ	or ale	৵ বার্চ
	काय	≫ ×	र्भ ⊶	~ ₩	त्रंस	र्भ के	~ ¥€	भ्रं ४
	कृष्टिय	e~ ¹ b'	~ ზ	مر. بم. م	~ °b°	~ .p.	~ °b	۴. ۴.
	गिंद	मन् मुन्	म तु	~ (₹) #	न्त्र ५	न् न क्	क से क	मेरक
ľ	स्था	20	>>	अस्बार	20	20	∞	>>
	hik	9	9	र या ४ (दे. केनली)	÷	&	*	<u>.</u>
	बर्या प्ति	अवयिष्टि	ma E	<i>६</i> अपर्याधि	ध. <i>२/१.१/६५</i> ९–६६४ १ स. प. विशिष्ति	क् पर्यापि	६ पर्याप्ति	्र स्याप्ति
	जीव समास	र. स. अप.	सं. अय	.स. अस्	ध. २/१. १. स. प.	ت نظ نظ		सं. ५
	मुब स्थान	्र सासा	~ কু ক	ै सयो.	Y	१ मिध्या	सासः	मू ⊶
मागंणा विशेष	पर्याप्त अपर्याप्त	अपत्रति ही	अपयक्षि हो	जनमस हो	बैक्रियक कावयोग - ४ पशिष्ठ १-४ ही	ययप्ति हो	प्य <u>क्</u> रि	.प्रयप्ति .हो
गिराय	माध्य एव	m	20	_ <u>~</u>	48	•	~	m·
→	' दा '	ሰት '	200	3/	≫ ~·	r	m	20

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

					<u> </u>			
	उपयोग	२ साकार अना.	or 15	अना,	साकार अनाः	र साकार अना,	२ साकार अना,	२ साकार अना.
	आहा.	१ अहा,	~ is		१ आहाः	१ आहा.	अ आहा.	आहा.
	संज्ञित	सः अ	~ <	T	यां. अ	१ संज्ञी	१ संज्ञी	4
, -	सम्य.	, औ क्षा. क्षयों.	~ j	मि बिमा	१ मिध्या.	सासा.	३ औ., श. क्षयो.	२ श., हयो.
	भक्त	भुक्त	e l	भव्य, अभड्य	२ भव्य. अभव्य	भैड्य	भव्य	भव्य
-		*ur	40*		wo-	wy	्रे के ≪	ર કુમ કુમ
	स्या	485*	•	<u>.</u>		~ ⊭	भ	~ k³²
	दर्शन	३ चक्ष, अबक्षु अब्धि		अ मि अ मि	~ ¶ ₹	अन्ध्र	अनश्च अमिध	े बहु, अवधु अवधि
j -	संयम	म दर्द स्र	~	∓ 3 3 3 5	अस्यम अस्यम	असंयम	१ अस्यम	सः . १८
-	श्चीन	३ मति, श्रुत्। अनिष		३ शाम कुमात प्रस्यम कुभ्रत	२ कुमलि, जुभुत,	२ कुमिति, कुश्रुत	³ मति, श्रुत. अवधि	्र मति, श्रुत, अवधि
- الألا ا	151177#	>0	20		20	\$0	30	>>
न्ठ प्रस्पणाएँ	(<u>a</u>	m	m		w.	्स् क्री	or pro tr	•~ ტი
40	मी	o∽ गाइ [*]	a 4	# <u></u>	* 4 <u>i.</u>	بة. ب	or ∯.	आहाः
	काय	्रम् भ ~	~	अस	त्रं	र्भ ५	्रम्	# ⊶
-	इन्द्रिय	~ '₽'	₩.	þ.	ਦ ਹੈ	or 'b'	بن م	↔ %
	गति	२ मरक सेम	6.	त्रे के तो के	न्त्र क स्रम	क्षे ~	२ मर्क देव	~ ₽
	स्था	20	20		∞	≫	20	>0
	ЯľФľ	°	8-हर्ह् ()		9 	9	9	.
	_{प्} यिसि	स्य िष्ठ	१. वेक्रियिक मिश्र काययोग —(घ. २/१,१/६६४-६६६) ९ ृ ॄ ॄ ॄ ि ७	अपर्याप्ति	६ अप्यामि	<i>६</i> अपर्याधि	६ अपग्रिंसि	,१/६६७) ६ पर्याप्ति
	जीव समास	, 15. p.,	ह ह - क	१,२,४ सं. अप्	सं अप.	म अन	१ सं. अप.	 इ. आहारक काययोग – (घ. २/१,१/६६७) १ १ ६ १ १ ६ १ १ ६ १ १ ६ १ १ ६ १ १ ६ १ १ ६ १ १ ६ १ १ ६ १ १ १ ६ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
,	मुण स्थान	ळी छै	भ्र कावयो े ३		₹ मिध्या	१ सासा.	अवि.	ययोग— ४ ४मत
मार्गणा विशेष	मर्याप्त अपयाप्ति	रही स	विक मि	अ पयोप्त हो	अपयक्षि हो	अपयप्ति हो	अपयां हो	हार्स्क का पद्यप्ति हो
Fron	गुण स्थान	>>	4 pa — — — — — — — — — — — — — — — — — —		o./	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	20	me
T I	म	يد أ	* *	. <u> </u>	ec.	(C)	200	يه نوس

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

		<u> </u>	h/	L.		. •	
	उपयोग.	स्माकार अन्।	. २ साकार अना,	साकार अना.	श् साकार अना.	२ साकार. अना.	र साकार, अमा, युगपत्त्
	आहा.	* आहा.	% अना,	अना. अना.	~	लमाः	्र अना,
	संशिष्ट	(संक्रि	२ संज्ञी असंज्ञी अनुभय	१ सं. असं	संक्ष	१ संधी	अ नुभय
	सम्प्र,	२ क्षा., क्षथो.	मिश्र बिसा	१ मिध्या	साता	३ औ॰, हा. क्षयो.	~ #s
	स्कृ	भवन	न भव्य, अभव्य	र भव्य, अभव्य	१ भव्य	भूक्त	भक्त
		শ স	446-	мтэл	w	ma.	~ kỷ
	म् मा		क हा क	^ কৌ ~•	∾ kỷ	~ জ	सब्देश
	दश्च	३ १ वसु, अवस्तु,का. अवधि	२ मध्य बिना दै, दर्शन/ ७/३	अवकी अवकी	्त्र । स्व	्र अवस्थि अवस्थि	में व
	संयम	48. 48.		अस्यम्	२ असंयम्	९ अस्टिम	यथा.
	श्री	र मति, श्रुत अवधि	र्ह २ विभंग, मनः असंयम चिना यथाः	२ ऊमति, कुधुत,	२ कुमति, कुशुत	३ मति, श्रुत,	≈
1	<u>क्</u> थवात	200	20	∞ ৸৸৸৸	50	5 0	o pripade
1	<u>≱</u> €	∾ ъ;	tu-	ու Երբթ	eu.	ूर इस् वर्म, अ	Финф
३० प्रहत्यमाएँ	योग	क्षा, मिं,	काम प	काम्	काम्ब	का <u>म</u> ण	कामज
	काय	म भ	dets.	ws.	**	₩	* K
	हिन्द्रय	~ '₽	.	- -*	ar *#	ئا ب	~ ₩ ⁻
	गित	्यं म ~	20	20	३ नरक रहित	3 0	~ H
	相割	20	असंज्ञा ०८	20	20	20	वसंहाः ॰
	Ridi	9	## 66 ## 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 2	3. 3. 4. 5. 5. 5.	Þ	Ð	9
	वयरिष्ठ	 आहारक मिश्र काववोग —(ध. २/१,१/६६८) श्री १ १ ६ ६ श्री १ मन्त सं. अप. अपर्याप्ति 	६.५.४ अपमिति	६.५.४ अपमाप्ति	अपर्याप्ति	६ अपर्याप्ति	अपयाधि
	जीब समास	म – (ध सं. अप्	% ल त	क्षं ए	तं, खयं,	सं. अप.	सं अप
	गुण स्थान	काबवो * प्रमत्त	निम- ९२४ १३	१ मिष्टया	सासा	अ अबि.	स्यो.
मार्गणा विशेष	म्योप्त अष्यीप्त	स्क किश्व अपर्याप्त ही	सामान्य सामान्य साम	अपयां <u>सः</u> हो	अनयस्य ह्यो	अपर्याप्त हैं।	अप्यप्ति
जा 1	माक्ष्रमा	आह	#	•	or .	>>	\$
#	 	9 ~	ų 🛰	Dr.	tu.	20	٧

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

मार्ग	मार्गणा विद्येष								-		३० प्रस्तिपार्	-E									
.p.	गुण स्थान व्य	पर्याप्त गुण अपर्याप्त स्थाः		जीव समास	पसीप्ति	<u>स्रोत</u>	441	मिंदा है।	ह िदय	काय	योग	नेह स्थाय	श्चान	स्यम	स्थि	लेखा इ. भा.	1 Hed	• सम्म	सिधिय	। असहा.	<u>ड</u> मयोग
gr. 6.	५. बेद'मार्गणा- १. स्त्री बेढ़ –(ध	भ. बेद्रभागेणा— १. स्त्री बेद्र—(घ. २/१,१/१७३-६८४)	8,8/8	{87}-£											,						
a.*	41.	सामान्य ६	_	४ सं. प. इसं. प. सं. अप. बसं.	६/१ ६ पर्या, १ १ १ १	\$\$ \$\$ \$\$ \$\$ \$\$	»	की मूर्य ती क	₩ 'b ⁻	~ ₩	्र आ. द्वि जिना	<u>~</u> €		न: असंयम देश सं. सा., हो,	है ४ ३ केवल, मनः असंयम चसु, अचसु जिना देश सं. अवधि सा., छे.	w	भव्य, अभ्रय	٠ a	स न अस्त्री अस्त्री	भ आहा., अना.	., साकार अना,
r	<u> </u>	421fg 8 4-8		क्षा भू भू भू भू भू	द/१ ६ पर्याप्ति १	3/02	20 /	३ नरक रहित	~ °p*	• म • क	१० १ मन४, बच.४स्त्री औ. १, वै.१	~ <u>(</u> E		% असंयम देश सं. सा., छे.	केवत, मन, असंयम् वृक्ष, अच्छ किना देश सं. अवधि सा., छे.	w	भव्य, अभव्य	4.5	संज्ञो असञ्जो	अ	२ , साकार, अना,
air	ल सं	अपयोध २ १,२		सं. अ असं. अष्	ह्य स्थाति । १ १	9	20	भ मरक मरक रिहित	w 'b'	~ ₩	क वार्क साम्माम् साम्माम्	× [[क्रमति.कु भूक अस्यम	्र क्या प्रम	मधु, अम् स	o. (e. (e.)	हैं से अप अप्रमच्य	र मिध्या व सिसा	संखी	अहा. अना,	२ साकार, अना,
%	#1 #1	सामान्य १ मिथ	म	8 सं, प असं, अप. असं, असं,	الله الله الله الله الله الله الله الله	ာ သံ ိ ေ ယ ၈ ၅	∞ ∞	३ नरक रहित	۵۰,۵	~ ₩	. १३ था: हि. रहित	~ ⟨E >>	ক ব্ৰী	थ स् अस्तान	्र अच्छी, अच्छी	wz.	सब्य भव्य सम्बद्ध	म सिरुयाः	र संज्ञो असंज्ञो	अहा.	र साकार, अना.
٠	2 2	दयप्ति १ मिः	듅	त्र संप. ६ असं. प. १	<i>६/१</i> ६ पर्याप्ति १ ''	3/02	20	३ नरक रहित	~ 'b-'	± ± ± ± ± ± ± ± ± ± ± ± ± ± ± ± ± ± ±	१० १ मन ४, बचु ४स्त्री औ. १, बै,१	~ [अश्वाम	असंयम	१ असंयम चक्षु, अपक्षु	40.	र्ह २ भव्य अभव्य	्र मिह्या.	संज्ञी असंज्ञी	अ	२ साकार, अना.

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

							
_	उपयोग	२ साकार. अन्	२ साकार अना,	र साकार, अनॉ,	साकार् अना.	्र साकार अनाः	? साकार, अना,
	अहा	्र आहा. अना.	्र आहा. अना.	জ্বন্ধি জ্বন্ধি	अहा, अना,	अ हाः	अहा.
	स जिल्ह	अ असंख्री	संब	संभी	* ₩	(4) (4) (4)	संग्रे
	सम्प	्र मिध्याः	सासा	सास: 🕶	₹	~ €	ै औ. सा. सयो,
	भव्य	२ भग्य, अभव्य,	भुक्त	भव्य	भेज्य	भव्य	¥क्य
Ϊ	F F	वर्धः 🔐	w	ms.	ed <u>6</u> 1° ₁0	413-	43*
	स्र मां	or iš ki	w	415"	্ৰেলী	413*	w
	दश्ने न	२ २ चधु, अवधु का.	म स्थि अन्य	२ चक्ष, अबक्ष	म् १ १ १ १ १	बहु, अब्	रे चसु, अनसु अन्धि
יקי	संयम	क्र संयम्	असंयम्	्छ स्	*	* असंधम	् अस्यम
२० प्ररूपणाए	ন আ	२ कुमति, कुश्रुत	३ अझान	ত ভা ভা ভা ভা ভা ভা ভা ভা ভা ভা ভা ভা ভা	२ कुमिति, कुम्धुत	२ ज्ञानक्षान	३ मति, श्रुत अवधि
	hlp4	200	20	>>	∞	<i>5</i> 0	20
	36	स्त्री 🐣	~ (k	~ 'Ē	खें ~	~ (E	- (E
	योग	अ. मि. क. मि. हार्मेल	१३ आ, द्वि. रहित	्र मन ४, नव्ह ४,	49. 年 49. 年 91.	१० मन ४, बब्ध् ४,	१० मन४,वस ४, ओ. १.व. १
ļ	क।य	र्म ~	म् 🕶	₩	त्र ⊶	म ⊶	भू 🏎
	इ-दिय	~ 'b	« t ⁱ	٠ p.	er ti	er "p"	₩ 'b'
	गति	3 मर्क रहित	भ नरक रहित	३ नरक रहित	३ नरक सहित	है नरक रहित	३ नरक रहित
	रोही	>>	30	20	20	> 0	>-
	त्रावा	9/9	s/o}	°	9	&	>
	मयपि	<i>६/५</i> ६ अपर्थापि ५ "	क क नित्र अस्य मि	म्यासि नियासि	به م ع بأ	द्या हि द्या	्र पयिषि
	अति समास	र सं. अप असं. अप.	स. स. अव.	ما. ب. ب.		**************************************	सं.
	मुण स्थान	१ मिध्या	सासा	सासा	ै . सासा	~ €	% अमि.
मार्गणा विशेष	प्य िष अप्यप्ति	अपर्याप्त	साम्राम्	प स्रो स	अपर्याप्त	च्यप्ति हो	_{यय} ि ह्यो
F	गुण स्थान	<u>~</u>	P	n'	br.	cor.	¢e .
E	The last	407	<u></u>	v	w	\$	*

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	मोम 	२ साकार, अना,	#IT.	२ साकार, अना.		२ साकार, अनाः	२ साकार अमा.
	. उपयोग		२ . साकार अना.	·····			
	আহা.	अगहा,	श्रहा.	প্রাहা.	% প্রান্থা	अहाँ	२ थाहा. अना.
	सं इिल्ब	क् इंडी	स रू	क्री प्र•े ~	संं भ	₩ .₩	२ संज्ञी असंज्ञी
	भस्त	हे जी., शाः, क्षयो.	१ औ., सा., हायो.	३ औ.,शा, ह्यो,	र औ शा.	खी,, खा.	uus-
	भव्य	म ०	म भवत	भव्य	क्रम भव्य	₩ ₩	र भच्य अभव्य
	लेख्या द. मा.	स ज	्र के म	क कि	ارخ الخ	र्खुम	415
	AE Itx		4ar	103"		***	₩
	दश्च	^३ बहा, अच्छ, अव्हि	३ दधु, अ च्छु, अव्धि	के महर, अम् अग्री	३ च्छु.अप्बक्षु. अव्यि	र नक्ष, अमक्ष, अवधि	३ विस्थि, अपस्थ अविधि
	संयम	्र सेश सं	一 点。	सा, खे.	स ख्र	भ भ सा, छे	५ ५. मथ रहित
गाउँ	ज्ञान	् मति, श्रुत,	३ २ मित, श्रुत, सा., छे, अवधि	३ मति, श्रुप्त, अवधि	् मित, श्रुत, भ अवधि	३ मति, श्रुत, अबधि	७ १ है केनल. रहित सू., यथा चधु, अचधु रहित अवधि
२० प्ररूपणाए	क्षात	>∞	20	20	>∞	30	20
2	- 35 5	<u>a</u> ~	- (1	~ €	₹	* (x) *	₩ pri
	य	मनस्य अव . अो. १	ह मन४, बच,४स्त्रो औ. १	ह मन४, बच.४६भी औ. १	१ मन४, बच्.४६औ औ. १	१ मन४, बच.४स्त्री औ. १	*
	काय	क्र ५०	यं ४	अंस ~	* # *	ম শু	₩ ~
	इ-दिय	ev 'p'	er 'b'	ovp.,	~ ⁺o	w 'b'	ئر. م
	गति	र मनु	क्षं ४	्र हिं इ	~ [1]	भू %	.३ नरक रहित
	4,包1	∑ ∘	%	™ ≌ 551;	™ 쁜 7gl7	տ ս ± "Σ]p	>∞
	Ala	o **	<u>٠</u>	o **	o-	&	°. ♣ ~ ≥ ≥
	म्याप्ति	ह दग्रमि	व भी सि	द प्यासि	६ पर्याप्ति	् द्यां मि	6) ६/४ ६ पर्याप्ति १ ६ अपर्यापि १
	जीव समास	** 'p.'	بة. م.	#. ~	٠ . بط	±; ≈ , _щ ;	र. पुरुष वेद — (ध. २/१,१/६८२-६८७) १ सामान्य ६ ४ ६-६ सं. प. ६ असं. प. ६ सं. अप. ६ असं. १
	मुख स्थान	چو م مار	्र प्रमत	64 ~	n ≥ c ≥ -	~ id • id • id	4. 2/2, s
मार्गणा विशेष	पर्याप्त अग्रपि	यश्चीय हो	म् हो हो	व्य <u>क्ति</u> हो	क्यस्ति हो	<i>चयसि</i> हो	वेद्र — (६
म्पा	मुण स्थान	251	405	<u>9</u>	n	w	ुरुव
듄	att.	00	DA.	20	*	W.	n* »

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	<u> </u>	- M				
	डपयोग	र साकार, अनाकार	साकार, अना,	श् साकार् अनाः	२ साकार. अना,	२ साकार अनाः
ļ	आहा.	अ	3 आहा. अना.	श्र अना,	अ आहा,	२ आहा., अना.
ļ	संक्षित्व	संडी असंहो	२ ंसंही बसंहो	संजी असंजी	२ संह्यी ब्यसंज्ञी	भ स स्यों भी
	स्र≠य,	No.	न मिल सम	भिध्या	१ मिथ्या	् मिथ्या
	भव्य	र भन्य, अभन्य	र भव्य, अभव्य	२ भठ्य, अभव्य	२ भडय, अभड्य	२ मन्द्र, अभव्य
Ì	स्या म. भा	40	us.	w	w	w
	सुरुया व. भा	*tor	क्षेत्र में	413*	ans.	ंत्र है ७
	दर्श न	३ मधु. अच्छ अवधि	३ बहुः अवश्व अगिष	न स्टू अनक्ष न	ब छ. अब अब	
	संयम	सु.यथा रहित	े 3 अक्षंयम सा., छे.	अस्यम् अस्यम् विश्व	असंगम	१ असंगम
ا جا ا	श्चान	७ केबल क्षिना	रू अमित्+कुश्नु ३ ज्ञान	हा जो प्र	३ १ २ इमिति,कुश्रुत,खसंयम चक्षु. अचक्षु विभाग	२ १ २ कुमति,कुश्रुल असंयम चक्षु. अच्छ
(४)	प्रोप्ति	20	20	20	20	20
२० प्ररूपणाए	βÉ	∾ ந்	∾ Þý	₩ 50	∾ Þ'n	مر عبو
••	योग	११ मन४, बच्.४ अौ.१, थै. १	थी, मि., श्रे.मि., आ, मि.ज़ा,	था. हि. विना	१० मन४, बच.४ औ.१. है.१	की में में भी में में में में में में में में में में
	#1শ	* ************************************	₩	₩	≫ H	ज्य ५ ० भ
	इस्दिय	~ .p.	~ મેં	∾ °Ե°	٠٠ ۴	~ 'b
	गति	३ नरक रहिंह	३ नरक रहित	३ मरक रहित	३ नर्क स्हित	३ नरक रहित
	行司	20	20	20	>>	∞
	b) R	w 0 w	9 9 9 9	ာ ယ်ပို့ ယစ္စ လိ	3/0%	§ 9 9
į	पयाधि	है/४ इ. प्याधि	६/४ ६ अपयोग्धि १	# 42	4/k & qaf. k	4/4 4 squift 2
	अोव समास	सं. म. अतं. प.	% १९ ४५ १५ १५ १५ १५ १५ १५ १५ १५ १५ १५ १५ १५ १५	क्ष. य. असं. प. सं. अप. असं.	र सं. प. असं, प	सं. असं. असं.
	मुष स्थान	w W		्र मिध्या	१ मिथ्या	१ मिट्या
मार्गणा विशेष	पद्मीय अपद्मीय	च यसि	अपयप्ति	सामान्य	न यसि	अपर्याप्त
[म्या	मीक स्थान			₩.	~	o/
Ħ	'HF	6.	ar	29		405
_						

Jain Education International

.1

1	# :	1			हार. ग.	२ साकार, अना.	२ साकार, अना.	
_	डपयोग				साकार् अना.			साकार. अनाः
	ঞাहা.	1	1		्र आहा अना.	প্রান্তা প্রান্তা	अ स अ मा	आहा. अना.
	संज्ञित्व	l	l		२ संज्ञी असंज्ञी	२ संज्ञी असंज्ञी	र सं <u>जी</u> असंजी	२ संज्ञी असंज्ञी
	सम्प्र.	I	I		લાક-	લ્લુ-	४ मि,,सासा क्षाःसयो.	१ मिथ्या
	भव्य	1	[र भव्य, अभव्य	२ भग्य, अभव्य	२ भडय अभड्य	र भड्य अभड्य
	स्या मा.				407	443-	a 1gje	nts.
4	ti hx	<u> </u>	_ ↓		w+	w	火 ೬. ₽ ,	
	दश्ने	. मृत्योधवत्	मृतोधवत्		४ ३ असंग्रम नधुः अच्छु देश सं. अभि सा., छे.	३ नसु, अचसु अग्रि	५ १ ३ कुमति,कुश्रुत असैयम चिश्च, अचिश्च. इज्ञान	२ नह्र, अन्ध्र
_	संयम	↑ 	↑ 		४ असंघम देश सं. सा., छे,	थ संयम देश सं सा. छे.	ें अस्यम	₹ असंयम
	্র জ	l	1		केबल, मन. बिना	्रै केवल, मन: किना	५ कुमति,कुश्रुत इंशान	अ श्री न
	<u>स्थ</u> ित्त	<u> </u>	<u> </u>		20	200	>	20
	_ 	≫ Б о	سوم ہم		~ 'b'0 ht	م با م	عا ه جا	م. ب <u>ن</u> ي
	स्रोम				१३ आ. द्वि. बिना	१० . १ मन४, थच.४ नप् थौ. १. थे. १	कार मां. मां.	१३ आः द्वि, मिना
	्य 	1	<u> </u>		ui3	w.	w.	w
	क न इंद		1		er .	<i>St</i>	<u>-</u>	*
	गीत	३ नर् <i>क</i> रहित			३ देव रहित	स्य क्ष सहित्य	३ देव रहित	स्म स्म स्म स्म स्म स्म स्म स्म स्म स्म
	संद्या			·	>>	200	20	20
	प्राचा	↓	↓	\	\$ \\ \alpha \\ \	80,8,4 9/6,8	۶.۶.۶.۶.۶. د.۵.۶.۶.۶.۶.۶.۶.۶.۶.۶.۶.۶.۶.۶.۶.۶.۶.۶.۶.	\$0/0; \$/0 7/6; 3/1 8/3, 8/3
	पयाधि	मृलोषभद्	मुलोघनत्	(23)	६/५/४ मर्या.; अप.	<i>६/५/४</i> प यरिप्त	<i>६/६/</i> ४ अप.	<i>६/५/४</i> पर्या. अपर्या.
	जोब समास	<u> </u>	<u>↑</u>	-723/24	१४ प. अप.	9 b	क क व्	ક્રું ક્રુવ
	मुण स्थान	l	1	(घ. ३/६	w t	w !.	۳. مر ين	१ मिथ्यः
	<i>पर्याप्त</i> अपर्याप्त	सा प. अप.	सा, प, अप,	नपुंसक देद-(घ. २/१,१/६८८-६६८)	सामान्य	न्य िस्	अदयाभ	सामान्य
मार्गा वर्ष	मुषा स्थान	u. u.	₩ >>	म प्र	<u></u>			٥٠
ξį	نظ.	9	V	m-	~~	Or .	es.	20

	<u></u>	E	her.	<u></u>	k/	L./ -	h-/	h/
	उपयोग	स् साकार अना.	. २ साकार अना.	स् साम्हार् अना.	२ साकार अना,	२ साकार अना,	२ साकार् अनाः	्र साकार अना.
	आहा.	अगहा.	. १ आहा. अना.	२ अहा. अना.	अगद्धाः	्र आहा. अना.	्र आहा,	3 थाहा, अना,
	सं ज्ञित्व	, संझो असंझो	संखी असंखी	म् ~	संखो	संग्र	~ . . ~	स सं. ~
	सम्प्र. 	१ मिथ्या	१ मिध्या	स सासा.	क्षासः	१ सासा	भिष्य	3 औ क्षा. क्षयो.
	कंस	ર મક્ય, લમક્ય	र भव्य, अभव्य	भैज्य	१ भेटय	१ भव्य	भ्रम्	₩ 10 11 11
	F F	w	do.	art,	45°	લંદી• જા	w	us.
1	ब्रह्मा स्था	-u-	নে লুক	wy.	ars.	ल्या है। भ	472,	**
	दश्	र मध्य, अवश्च	१ १ वसु, अवक्षुका,	१ अन्यस्त्र अन्यस्त्र	१ चक्ष, अबश्च	र नक्ष, अनक्ष	२ मध्य, अमक्ष	र बहु, अच्छु अव्धि
	संयम	असंयम	्र असंयम	१ असंयम	. १ 	्र असंयम	असंधम	१ असंघम
गार्द	আ	ग जो फ स	२ क्रमति क्रश्रुत	३ अह्यान	ই জ্লান	र क्रमति, कृष्युत	३ ज्ञानाञ्चान	ै मति., श्रुत. अव्यधि
२० प्रहत्पणाएँ	hibse	<u>~</u>	20	>>	3 0	3 ≈	>> ′	<u> </u>
8	3€	~ .p.'>	~ 'p'0	تا ~ دره. ~	o.d. ~	∾ °¢°°	्यं 🛰	o
	योग	१० १ मन ४, बच ,४ मप् खौ, १, बे,१	अ. मि., भ. मि.,	१२ १२ मन ४, बच्च ४ नच्. औ. २, बे.१.	१० मन४, बन्ध, भन्तु औ.१,भे.१	थां. मि. भाः	१० १ मन ४, बच्छ मण् औ. ९, बे. १	१२ मन ४, धच,४ नर्षुः औ.१, बै.२, का. १
	क्राय	wy.	we.	्री ०	≈ # #	¾ ~	अस २०	₩
	इन्द्रिय	34	*	~ 'σ	مہ ا ل	o~ •b°	~ 'b	& 'p'
	मीत	स् सेन रहित	् देन रहित	३ देव रहित	स् स्थान स्थित	रू मुनुः	स्ब सहित रहित	स् सुर स ह्या ह्या
	五章	20	20	20	\$0 ·	>0	>>	>∞
	ЯГВ	80,8,5,5 \$1/8	\$ '8'X' } '9' 9	s/o}	\$	9	\$	9 9/03
	पयिधि	<i>६/५/४</i> पयरिष्ठ	<i>६/५/४</i> अपर्याधि	<i>६/६</i> ६ पर्याधि ६ अपर्याफ़ि	६ फ्योपि	ई अपयािप्ति	क् यथिति स्वर्	६ पर्याप्ति अपर्याप्ति
	्योब समास	9 b.	9 B	न सं, प् सं, अप,	में प्रा. ⊶,	सं. अव.	ंप स्यः ~	२ सं. प्. सं. अप.
	स्थान	१ मिथ्या	१ मिथ्या	ंस ≁	सासा	सासा	* 研	<u>अ</u> ब्र
मागंगा विशेष	प्यम्नि अप्रमम्	प्यमि	अ पयक्षि	सामान्य	पर्याप्त	अपयसि	क्यां हो	सामान्य
गंवा	गुण स्थान	**	~	ρ	(A.	G.	by.	20
Ē	Tr	અ	موس	g g	บ	w	٥ <u>.</u>	»-
_								

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

1 2 प्रमाण 1 2 2 2 3 4 4 4 4 4 4 4 4 4		भागिणा	मार्गणा विश्रेष							<u> </u>		२० प्रह्मणाएँ	TG.		} } !.							
स्ति प्रकाशित है , स्वाप्ति से से प्रकाशित के कि से स्वाप्ति से से स्वाप्ति से से स्वाप्ति से से स्वाप्ति से से से स्वाप्ति से से से से से से से से से से से से से					जीव समास	पर्याप्ति	Ajor			<u></u> -	काय	म्	ìl		संधम	दर्शन	TE NY	I		संज्ञित्व	आहा	डपयोभ
श्वि के अपमानित हैं कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि	<u></u>	- 		अहि	, p,	व्यासि व्यासि	0		or the the	~ '		१० न ४, बच्			- - -	३ महाः अम्बह्न. अवधि	l			# ~ # = = = = = = = = = = = = = = = = =	अगहा.	१ सामार्
्रिं प्रविधि हुनी सं. प. प्रमाप्ति हुन्। के स्वर्ग प्रविधित क्ष्मिक्त क्षमिक्त क्ष्मिक्त क्षमिक्त क्ष्मिक्त क्षमिक्त क्ष्मिक्त क्षमिक्त	<u>~</u>		_ 			इ. अपग्रीमि	9			ئا. م		•			. % संयम	र नस्र, अचह अग्रि	ক টুট		द साः श्रयो.	्याः सः ~	र आहा. अमा.	२ साकार. अना.
\(\begin{array}{c c c c c c c c c c c c c c c c c c c			स्रो		ت تير ~	क्र मि सि	0			~ ~ ~		१ नियः, चर्चः थः औः, ९			असंयम				३ औ.,क्षा, क्षयो.	संबो		१ २ आहासामार. अना.
ा- २/१.१/६११) रेप सं.प. ६ पर्यापि १०/४,2/१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १							स्त्रीवैदीवत्		1	<u> </u>	1	1	~ 'p''	1	↑ 		<u></u>	<u> </u>	l 	<u> </u>	1	<u> </u>
काथ काथ – (ध. १/९,१/७००-७१२) सामान्य ह (१४ ३ १ ७ ६ ३ १ ३ ६ २ सामान्य ह (१४ ३ १ ७ ६ ३ ६ ३ १ ४ ३ ६ ६ २ सामान्य ह (१४ ३ १ ७ ६ १४ ३ ६ ६ ३ १ ७ १४ ३ १ ७ १४ ३ १ १ ७ १४ ३ १ १ १४ ३ १ १ १४ ३ १ १ १ १ १ १ १ १		% <u>8}-3</u> F €	गात वेद- सामान्य षाय मा ग	101L	/१.१/६६६ सं. व्यय. सं. व्यय.	ह/ह ह प्याधि ह्यप्याधि अतीत	१ <i>०१४,</i> २/१ १०/४ २/१ असीत		• •	म् स् नि		११ सिक्ष्यंच थ. यो. १. का. १	AN . 15		४ ४ स. मधा. अनुभय			अवस्य ५	र्क	संडी अनुभय	आहा. अना.	२ साकार. अता.
	·	ē	ध कथाया सामान्य	π. ω ξ. Σ. ω ξ.	/ 8. 8/% 00-	≈ # # #	\$0/5; 8/5; 6/8; 8/5; 6/8; 8/3		20		w				१ सू, यथा के किंगा					क्षा क्षा कि का का का का का का का का का का का का का	अहाः	२ साकार, अना.

्य प्राप्ता किये स्वाप्ता के क्षिक्र स्वाप्ता क्षिक्र स्वाप्ता के क्षिक्र स्वाप्ता क्षिक्र स्वाप्ता के क्षिक्र स्वाप्ता क्षिक्र स्वाप्ता क्षिक्र स्वाप्ता क्षिक्र स्वाप्ता क्षिक्र स्वाप्ता क्षिक्र स्वाप्ता क्षिक्र स्वाप्ता क्षिक्र स्वाप्ता क्षिक्र स्वाप्ता क्षिक्र स्वाप्ता क्षिक्र स्वाप्ता क्षिक्र स्वाप्ता क्षिक्र स्वाप्ता क्षिक्र स्				h/			<u> </u>	
1 1 1 1 1 1 1 1 1 1			स् साकार अना,			साकार		
प्राप्त क्षिति व्यक्		आहा.	প প্রাहা.	왕 आहा. अना.	१ आहा. अमा.	१ आहा.	्र आहा. अना.	२ आहा. अमा.
प्रमास क्षा क्षा क्षा क्षा क्षा क्षा क्षा क्षा		संज्ञित	क्षसंखी असंखी	२ संज्ञी असंज्ञी	र संज्ञी असंज्ञी	.स.ची संज्ञी असंज्ञी	न संडी असंज्ञी	सं सं
प्राप्त क्षिप		सम्प्र.	410-	्र मिश्र बिना	१ मिच्या	१ मिथ्या	मिध्या	स्सा
प्राप्त दिखे क्यांची व्यक्ति		भुक्त	२ भव्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य	२ भव्य अभव्य	२ भव्य अभव्य	, मञ्च सम्बद्ध	भ व्य
प्राप्त दिखे क्यांची व्यक्ति		- 	no-	40,	Maj-	WIT.	NOT \	413.
प्राप्त दिखे स्थान समास स्थाम		Tr.	4U	क मं क्ष	40	*ur	क हैं की	ans.
स्प्रमानिक स्थान कि मान कमास पर्याप्ति है, १८, ६८, ६८, ६८, ६८, ६८, ६८, ६८, ६८, ६८, ६		द्य	ः बसुः अनुसु अवधि	ই ৰন্ধ, প্ৰস্থ্য প্ৰস্থায	न हुई ल अ न हुई		२ अन्यु	र १ बहुः, अन्तु
हु अपर्याप्त स्थान समास पर्याप्त हु अपर्याप्त स्थान समास पर्याप्त हु अपर्याप्त स्थान समास पर्याप्त हु अपर्याप्त स्थान समास पर्याप्त हु अपर्य स्थाप्त हु अपर्याप्त हु अपर्य हु अपर्य स्थाप्त हु अपर्य स्थाप्त हु अपर्य स्थाप्त हु		संयम	रू १४. थ था , के किना	्र असंयम सां, छे.	१ अर्नेयम	अ संयम्	ं बासं यम	असंय भ
हु अपर्याप्त स्थान समास पर्याप्त हु अपर्याप्त स्थान समास पर्याप्त हु अपर्याप्त स्थान समास पर्याप्त हु अपर्याप्त स्थान समास पर्याप्त हु अपर्य स्थाप्त हु अपर्याप्त हु अपर्य हु अपर्य स्थाप्त हु अपर्य स्थाप्त हु अपर्य स्थाप्त हु	*Dv	श्चान		४ कुमति,कुश्रुत ३ बान	3 कुमिति,कुभुत विभंग		र कुमति,कुश्रुत	্র প্র জ ন্ত
हु अपयोह स्थान समास समास प्रयामि प्राण हु महि पांत हुन्द्रम काम योग प्रयाम स्थान स्थान समास समास प्रयाम स्थान समास समास स्थान समास समास स्थान स्थान समास स्थान स्	llobe	स्थात	~ / E	~ / c	~ Æ	~ ∕ [€	~ 1 €	<u>~ 1€</u>
हु अपयोह स्थान समास समास प्रयामि प्राण हु महि पांत हुन्द्रम काम योग प्रयाम स्थान स्थान समास समास प्रयाम स्थान समास समास स्थान समास समास स्थान स्थान समास स्थान स्	δ X	<u>≱</u> ₽	ल ⊉धर्म®			çır.	ar	
हैं पर्याप्त स्थान समास पर्याप्त प्राण कि पर्याप्त समास पर्याप्त स्थान समास पर्याप्त स्थान समास पर्याप्त स्थान समास पर्याप्त स्थान समास स्थान समास स्थान समास स्थान समास स्थान पर्याप्त स्थान समास स्थान पर्याप्त स्थान	8	धोम	११ मन ४, बच.४ औ. १, बै-१ आ.९	की, मि. श्रीमा, श्रीमा,	१३ आ. द्वि. चिना	१० मन४,बच्४, औ,१,बै.१	थी. मि., में, मि., ना.	१३ आ. द्वि. विमा
स्वाप्त क्षेत्र व्याप्त क्षेत्र व्याप्त व्याप्त व्याप्त व्याप्त क्षेत्र व्याप्त व्याप्त क्षेत्र व्याप्त क्षेत्य व्याप्त क्षेत्र व्याप्त क्षेत्र व्याप्त क्षेत्र व्याप्त क्षेत		कांत	uto"	Aur	No.	46	ulgr	ज क
म् वयांत स्थान समास पर्याप्त प्राण म्हि प्रवयांत्र स्थान समास पर्याप्ति ६,४६,८,०, ४ पर्याप्ति १,० ९,६,६,०, ४ १,६,१४ अप. अपर्याप्ति ६,४१,१४ १०,१६,१८,१४ अपर्याप्ति ४ ७ ६/६/७ १०,१६,१८,१४ ६,६,१४ अप. अपर्याप्ति १,४१ १ पर्याप्ति १ ७ ६/१८/७ १०,१६,१८,१४ अपर्याप्ति १ ७ ६/१८/७ १०,१६,१८,१८,१४ १ पर्याप्ति १ ७ ६/१८/४ १०,१६,१८,१८,१८ १ अपर्याप्ति १ ७ ६/१८/४ ६,०१६,१८,१८,१८ १ अपर्याप्ति १ ७ ६/१८/४ ६,०१६,१८,१८,१८ १ अपर्याप्ति १ ७ ६/१८/४ ६,०१६,१८,१८,१८ २ सामान्य १ ३ ६/१८/४ ६,०१६,१८,१८ सामान्य १ ३ ६/१६/४ ६,०१६,१८,१८ सामान्य १ ३ ६/१६/४ ९,०१६,१८,१८ सामान्य १ ३ ६/१६/४ ९,०१६,१८,१८,१८ सामान्य १ ३ ६/१६ १८०/० ४		इन्दिय	*	*	s.	-Se*	s/ 	~ 'b'
प्रयाम स्थान समास प्रयाम प्राप्त प्राप्त समास प्रयाम समास प्रयाम स्थान समास स्थान समास स्थान समास स्थान स			20	20	20	20	%	200
स्वामान्य दिन्दा अप जीव पर्याप्ति हुन्ह ज्यापति दिन्दा अप जीव प्रयाप्ति हुन्ह प. पर्याप्ति हुन्ह प. पर्याप्ति हुन्ह प. पर्यापि हुन्ह प. पर्यापि हुन्ह प. पर्यापि हुन्ह प्रयाप्ति हुन्ह जुप्पाप्ति हुन्ह जुपप्ति हुन्ह जुपप्ति हुन्ह जुपप्ति हुन्ह जुपप्ति हुन्ह जुपप्ति हुन्ह जुपप्ति हुन्ह जुपप्ति हुन्ह जुपप्ति हुन्ह जुपप्ति हुन्ह जुपप्ति हुन्ह जुपप्ति हुन्ह जुपप्ति हुन्ह जुपप्ति हुन्ह जुपप्ति हुन्ह जुपप्ति हुन्ह हुन्ह जुपप्ति हुन्ह जुपप्ति हुन्ह हुन्ह जुपप्ति हुन्ह जुपप		4,ब्रा	∞	20		20		20
स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक स्वासिक स्वास		प्राप	ి. సి.గి. సి. సి.	٠٠٠ ١٠٠ ١٠٠ ١٠٠ ١٠٠ ١٠٠ ١٠٠ ١٠٠ ١٠٠ ١٠٠	१०१६:६१७: च/६:७१४: इ/४:४१३	\$0.5,5 \$,8 \$,8	\$, \$, \$, \$, \$, \$, \$, \$, \$, \$, \$, \$, \$, \$	20° 20° 20° 20° 20° 20° 20° 20° 20° 20°
स्वाप्ता क्षेत्र क्षा क्षा क्षा क्षा क्षा क्षा क्षा क्षा		पर्याप्ति	<i>६/५/</i> ४ पर्याप्ति	६/ १/७ अष्याप्ति	६/५/४ पर्याप्ति अष्याप्ति	6/2/8 44ff#	<i>६/५/४</i> अप्याधि	
स्वास्तिक्व स्वासिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वासिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वास्तिक्व स्वासिक्व स		जीव समास	9 ந்	ल प्	வ ந <u>்ல</u> ந்	9 F	७ हे	संस कंस
ू भाष्ट्र भाष्ट्र के अपने हुन		मुख स्थान	w			१ मिध्या		
ू भाष्ट्र भाष्ट्र के अपने हुन	विशेष	चर्या ध अपर्याह	पस्र प्ति	अपयसि	सामान्य	पयप्ति	अपयप्ति	सामान्य
TE Or Or Or Or Or Or Or	र्मणा					٠.		
	F	† **	ar .	ęń-	20	<i>⇒</i> γ	40*	9

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

-							 _
į	डपयोग	२ साकार, अना,	२ साकार. अना,	साकार. अना.	श्रीकार, आवा.	२ साकार अनाः	र साकार, अना,
	आहा.	औहा.	्र आहा, धना.	्र अहा.	२ आहा. अना.	अ आहा.	? थाहा. अना.
ļ	संक्रिक्ष आहा.	.स. जो	संबो	- (B)	ক্ষা 🕶	्यां ~ सः ~	संजी
	संम्य,	१ सासा.	सास	% % ₩	३ औ., भा. सयो.	क्री. क्षा. क्षमो.	³ औ , सा. सयो,
i	भठय	्र भव्य,	भव्य	भुक्त	¥ ox	¥ भुवस	र भव्य
	<u> </u>	4ur	4.0°		*****	w.	50°
į	सं सं	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	ंत्रं म्ने भ	utz*	H _U r	443-	्ख्य <u>च</u>
	दश्य म	ब ब स स प्	२ पसि, अनस् मा य	न क • ल • ल • ल	3 बन्धः, अन्ध्र अविधि	ने अवधु, अवधु अवधि	१ ३ असंग्रम चक्ष, अवश्व वि अवधि वि
ا ا مع•	संयम	% अनं यम	खम् थम	अन् रस् श्रम्	९ अस्यम	१ अ संयम्	्य संयम
२० प्रह्मयणार्	श्च	জ জ ম	२ १ कुमति,कुधुत ब्रमंथम	३ शानाझान	३ मति, श्रुत. अर्जाध	३ मति, श्रुत. अन्नधि	३ मति, श्रुत अवधि
ļ. I	क्षास	~ ∕ <u>E</u>	~ [E	_ ~ 1 k	~	₹ Î c	• √æ
]. i	<u>5</u> ₽	LO.	w.	ω. 	Lib.	iu.	লে
	योग	भूत कर्न हैं। असे क्यां हैं असे क्यां हैं	औं मि. के. मि.	१० मन्द्र,बच्छ. आ. १०वे. १	क्षा. बिना हरू	सम्बद्धः विक्रम्	अ. मि. ब. मि. इ.
	क्राम	त्र ५	थं ⊶	₩	म भ	म 🏎	¾ ~
	गति इन्द्रिय	— 'ਹਾਂ •< 'ਹਾਂ	~ U	~ 'b [.]	~ ან	en 15	∾ .p.
·		>>	३ नरक रहित	>0	>0	>>	20
ĺ	7克许	>>	30	70	>>	>4	20
	म 	0	9	<u>.</u>	<i>5</i> /0≥	D 6v-	9
, 	•याहि	हे पर्याप्ति	अ च्याहि अच्याहि	प या हि स	<i>६/६</i> ६ पयोप्ति ६ अपर्याप्ति	व याष्ट्रि	इ अपर्याप्ति
	अ ब समास			. h.	सं. य सं. खर्व	₽	१ थबि. सं.अप.
	मुक् स्थान	मासः	क्षासा	* <u>#</u>	<u>च</u> स	ख स	
मार्गणा विशेष	पर्याप्त भुण अपर्याप्त स्थान	पर्याप्त	अपयप्ति	चय्रों श्री	सामान्य	<i>भयोप्त</i>	अनयप्रि
更	म्रिप्टि मुद्द	~	~	m.	5 0	200	20
1	-	V	w	\$	<u> </u>	~	m
							

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

प्रकार करें प्रकार करें प्रकार कर कर कर कर कर कर कर कर कर कर कर कर कर		E	년 <u>.</u>	ŀ.,	N 12	<u> </u>	⊬ <u></u>	h/
प्राप्ता प्राप्ता		- उपयोग 	<u></u>	 	# P	्र सामार् अना	_	# W
प्रस्तिक प्रमाण		अहा.	अहा, अना,	প্রান্থা	शहाः	्र अंहा.	१ आहा.	अगहा,
प्रमाणिक स्थान समाय स्थापिक स्थान समाय स्थापिक स्था		सं शित्व	य: ~ बोर्- ~	संज्ञी	संजी *	~	अंक्ष	मः *
प्रस्तिक प्रमाण		सम्प	्र औ., हा, हायों.	ह औ., क्षा. हत्यो,	३ औसा. क्षयो.	न औ., क्षा.	अ <mark>मे</mark> ., क्षां.	अने सा
क्षेत्र क्षित्र क्षेत्र क्ष्मे		भुवस	भू • • • • • • • • • • • • • • • • • • •	भवत	भुक्त	₹ • • • • • • • • • • • • • • • • • • •	१ भव्य	५
प्रमास स्थाप स्था		इया मा.	es क्ष	क्ष मि		~ #	∓ ভ	* [6)
हुं प्राप्त प्राप्त		AE I No	40					
प्रथमित क्षेत्र स्वाप्त स्वाप		दश्	३ मधु, अच्छु अवधि	े नह्य, अचिह्न अविध्	३ नश्च, अचश्च अवधि		हैं नस्य, अभक्ष अवधि	निश्च, अप्वश्चि श्वाधि
क्षेत्र स्वर्ण		संयम	े देश सं	र मा., छे _.	群	च ; क्र	## ## ##	# ; # ;
क्षिक्र क्षिक्र क्षा क्षा क्षा क्षा क्षा क्षा का का का का का का का का का का का का का		শ্র	रे मिति, श्रुत, अवधि	४ मिति, श्रुत, अविधि, मनः	४ मिति, भ्युति, अविषे, मनः		४ मिति., श्रुत, अर्वाध, मनः	४ मति, धुत, अविधि,मनः
क्षिक्र क्षिक्र क्षा क्षा क्षा क्षा क्षा क्षा का का का का का का का का का का का का का		plbæ		± ~ €	~ [e	~ (E	~ (E	~ [€
प्रयाम सिकेश	-	इह		kır		m		
मिन्ना क्षित्र	२० प्रहतवाह	योग	्र मनक्ष, बचा-४ अमे, ९	११ मन४, बच.४ औ.१,आ.२	ह मनध्र बच्.४ औ. १	ह मन४, वच.४ औ. १	ध मन४, बच-४	१ मन४, बच.४ थौ, १
हुँ वर्षमीत गुण जीव पर्याप्त प्रमास पर्याप्त हिंदी प्रमास गुण जीव पर्याप्त हिंदी हुँ द द द द द द द द द द द द द द द द द द द		काय	₩ ₩	→	्रम अ ⊶	3	₩	₩
हिं पर्याप्त कियान समास पर्याप्त प्राप्त क्षा क्षा कि पर्याप्त समास समास पर्याप्त कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि		क्रान्द्रय	[*] ط* س	e~ 15°	er 15°	∾ ъ*	e .p.	~ '₽'
क्रिक्रेस क्र		मी	म तुः	र्यं ⊶			म अ	
क्रिक्रेस क्रिक्क क्रिक्स क्र		1度15	20	20	₩ ≌. त्रिद्वीप्र	∾ ≒ि छड़ीर	사 ⁴ . 河마	~ # <u></u>
हिं पर्याप्त जुव जीव हिंदि स्तापत समास हिंदी स्थान समास हिंदी सं. प. प्रतापत हिंदी सं. प. हिंदी हिंदी सं. प. हिंदी हिंदी सं. प. हिंदी हिंदी सं. प. हिंदी हिंदी सं. प. हिंदी हिंदी सं. प. हिंदी हिंदी सं. प. हिंदी हिंदी सं. प. हिंदी हिंदी सं. प. हिंदी हिंदी सं. प. हिंदी हिंदी सं. प. हिंदी हिंदी सं. प. हिंदी हिंदी सं. प. हिंदी हिंदी सं. प. हिंदी हिंदी सं. प. हिंदी हिंदी सं. प. हिंदी हिंदी सं. प. हिंदी हिंदी सं. प.		HALAN I	\$-	o) o)	<u>.</u>	2	%	\$
हिं सर्याप्त हिंदी स्थान स्थान हिंदी स्थान स्थापित हिंदी स्थापित हिंदी हिंदी स्थापित हिंदी हिंदी स्थापित हिंदी हिंदी स्थापित हिंदी हिंदी स्थापित हिंदी हिंदी स्थापित हिंदी हिंदी संभापित हिंदी हि		पर्याप्ति	<i>६</i> म्यासि	६/६ ६ पर्यक्ति ६ अपर्यक्ति	<i>६</i> मर्थापि	ई क्यांसि	क पर्याप्ति	ई पर्याप्ति
हिं सर्याप्त हिंदी स्थान स्थान हिंदी स्थान स्थापित हिंदी स्थापित हिंदी हिंदी स्थापित हिंदी हिंदी स्थापित हिंदी हिंदी स्थापित हिंदी हिंदी स्थापित हिंदी हिंदी स्थापित हिंदी हिंदी संभापित हिंदी हि		अ वि समास			्यः		₩. ~	- F
हिंदी विक्रम विक्रम विक्र			아 호		~ 9 № #E-	ر م ما ب	१ १वा प्रसम्प	१ श्वा द्वि.समय
FT 169 10g ス	Target Target	चर्याध अच्याधि	पर्या प्त	क्यांस	भ्यप्ति हो	पर्याप्त हो	क्या स हो	क्यांत्र
F	E		<u></u>	tu)·	9	ħ	ij	ii
	距	'\p'	%	<i>ಘ</i>	4up-	ર	ev. Ii	<u> </u>

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	ь.				
	उपयोग	1	<u> </u>	२ साकार, अनाः	र २ साकार, अना, ग्रुगपत्
	अमहा,	ı	1	. अ अति. अन्तर	र गुणस् अहा. अना.
	र्सक्रिंब	l	1	क्ष.स स.जी श्री	्र कहनी प संज्ञी अनुभय
	संस्य	i	1	w	र दो सोभवर २ औ. शा.
	भूक्त	<u> </u>	1	२ मन्य अभन्य	ॉमें कबार १ अनुभय
	턴 F	F	न व	w-	±
	ज्य सम			w	- w
	द्यान	1 B R	————————————————————————————————————	के बल के जिना	ब संयम क्रोपबद जानना। विशेषता यह है कि प्यपि बालापोंमें गुणस्थान, कवाय न संयमकी प्रह्मणा लोग सामान्यवद जाननी। बुण्यपितों में क्रापबंद कहनी पर गुणस्थान व संयम क्रोपबद जानना। विशेषता यह है कि प्यपि बालापोंमें गुणस्थान, कवाय न संयमको प्रहमणा लोग सामान्यवद जाननी। बुण्यपितों में क्रापित पर गुणस्थान व संयमको प्रहमणा लोग सामान्य ४ द १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
	संयम	J	ı	क यथा. बिसा	म साम्। ४ अनुभय
३० प्रस्तिपणाएँ	8	į .	l	केमस्य किम्	ो प्ररूपणा लोभ साम् १ १ मित, शुत, यथा, अव.,मनः, अनुभय केवल
 	संवीत	# 1	- - -	~ मि	अक्षाय ०
"	3/5			տ ըրթը	अवग्रद क
	स्म	1	1	ž.	स्थान, कषाय १९ मन४, वच्.४ ओ.२, का.१
	कास	1	1	447	नीमें मुक् प्रस
	इन्दिय		1	~	요 유 - 사람 N도기타]Ib
	मी	क्षायवर्	-	5 0	कार कि रा कि रा
	12年	a	#	39	अर्थ ० व्य
	지네	# # ↑	→ क्रोध क्ष्यायबद्ध	१०१९६७ नहः अधः ११४:४३	र । विशेषता १०. ४/२ १ अतोत प्रा.
	पर्याप्ति	1		र) <i>६/५/%</i> पर्याप्ति अपर्याप्ति	द्रायवत् जानन १/६ ६ अपर्याप्ति अतोत् प.
	जीव समास	२. मान क्षेत्राय(घ. २/१,१/७१२ १-१६ तक सर्व आसाप	थ्- माथा काषाय थ- र/१.र/०१५) १-११ तक सर्वे आलाप	४. सोम कापाय — (ध. २/६.१/७१२) १ सामान्य १० १४ १-१० पं.	२-१६ सर्व खासाप क्रोध का ब संयम क्रोधवत् जानना। स्था-(घ. २/९.१/७१३) सामान्य ४ २ सं. प. अतीत् सं. खप.
	मुज स्थान	२. मान क्षाय(घ. २/ १-११ तक सर्वे आलाप	१. माथा काषाय—(घ. ९ १.९९ तक सर्वे आसाप—	÷ ÷ *	नोट११ सर्व आसाप क्रोध क व संयम क्रोधवत् जानना १. अक्षवायी(घ. २/१.१/७१३) १ सामान्य ४ २ १९-१४ सं. प.
<u></u>	पर्याप्त अपर्याप्त	<u> </u>	명 명 년 명	क्षेत्राय-	क्-१६ सह ब संयम सामान्य
मार्गणा विशेष	를 ^급	न की किस	में स	 	
F	गुजस्थान	, ग ा	. स	₹	
<u>F</u>	1 12	n → n	m &	> ~	· · ·

			. 10	_ bv		_ hv	
	डपयोग	साकार, अनाकार	२ साकार, अनाकार	२ साकार, अनाकार	२ १ आहा., साकार, अना. अनाकार	२ साकार, अनाकार	२ साकार. अनाकार
	आहा.	अहा, अना,	आहा. अना.	२ आहा. अना.	-	अाहा.	अ अतहा, धना,
	स्हित्व	२ सन्दी असंज्ञी	र संज्ञी असंज्ञी	संसी	२ संज्ञी असंज्ञी	२ संजी असंज्ञी	संजी असंजी
	सम्प	२ मि.साक्षा	२ मि,सासा	२ मि,,सास।	₹ मिथ्या	भिध्या	१ मिष्टया.
	भुक्त	र भव्य, सुभव्य	२ भन्य, अभह्य	२ भन्य, अभ <i>न्य</i>	२ भक्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य	२ भट्य अभड्य
'	# #	4w	w.	₹ub-	w	450	415
	हैं मा	Maj-	44	여행을	May-	40*	জে ই প
	दश्न	२ १ कुमति,कुश्वत् अस्याम् चक्षः, अबक्क	र् कुमति.कुभूक्षःअसंग्रम चिधु अप्यक्ष.	२ ६ २ कुमति,कुभुत धत्तंगम् चस्तु, अचस्तु,	र म चिह्यः, अचिह्यः	२ कुमति,कुधुत 'खसंग्रम चश्च, अवस्थु,	२ २ २ २ ३
	संदम	. अ सं या	१ असंया	क्ष संधा	८ इसंघर	अ संयः असंयः	्र अस्य यम
P _E	श्चान	२ कुमतिःकुश्रुत	२ कुमिति:कुभ्र	२ कुमतिकुभुत	र् कुमति.कुथुत धरायम	२ कुमति ,क ुशुत	१ अमिति अभ्यत
1 D	1111	>>	200	29	>>	20	∞
२० प्ररूपणार्) \$E	w	or	or .	ØL,	us.	lu-
	स्रोग	१३ आ. द्वि. विमा	१० सन४, बच् अ.१.१ वे. १	题, 中 新年 新年	१३ आ. द्वि. बिना	१० मन४, श्रच.४ थौ.९, वै.१	्र थो. मि. थे. मि.
	काय	443-	40	4 3*	413*	43"	ulb ^o
	इ.स.	*	4	×	Sr.	અ	es.
ļ	मि	20	29	20	∞	20	70
	頂那	20	20	20	20	20	20
	प्राव	₹0/9; E/9; =/€; ⊌/ų; - €/8; 8/3	က် (၂) (၃) (၃) (၃)	**************************************	\$/8: 8/3 7/6: 3/6 6/3: 8/6	\$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$	**************************************
	स्यिति	७. ज्ञान सार्गणा १. मतिश्रुत अज्ञानी——(ष. २/१.११७१४-७२० <u>) हु</u> १ सामान्या २ १४ ६/५/४ १ पर्याप्त	६,५,४ १यि	६.५. ४ अपयािष्ठ	६.६.४ पर्याप्ति अपर्याप्ति	६,५,४ पर्याप्ति	ई.५,४ अपर्याप्ति
	जीव समास	83	9 5	စ မှာ မ	≫ &-	ું જ	% %
	स्थान	# * * * * * * * * * * * * * * * * * * *	er er	or or	्र मिध्या	्र मिथ्या.	१ मिध्या
मार्गणा विशेष	he d=	७. ज्ञान मार्गणा १. मतिश्रुत अञ्चानी- १ सामान्या	पर्याप्त	अपर्यक्षि	सीमान्य	मर्थाध	अपयभि
ग्वा र	धैवं ६त्राच				₩	o~	o-/
	, Hr.	9 ~ ~	6.	es.	20	<i>≫</i>	40
-	·						

भा० ४-३०

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

<u> </u>	म्गार्गणा विशेष	भेश्रीय								S.	१० प्ररूपणाए	-			-								
T T	म्। माफ्रम ल्यूग		मुण स्थान	सीव समास	पग्रिध	Min	11इंच	1度'分 二 二 二	इ िदय		योग	- वेह	加斯		संयम	दर्शन	स्या भा		भवय स	सम्ब	स शिल	आहा.	उपसोग
9		सामान्य	~	64	40	D'0	>0	~~~~	۰~	~	, 62°	-	30 N		~~	m	415			~	~	Dr.	Gr.
			474	सं. स. सं. ख्र	६ पर्याप्ति ६ अपर्याप्ति	ို ၈		-	₽.	3 44	आ. दि. जिना		कुमति,कुधत		असंयम् -	चक्षुः अचक्षु		ਸ 	भव्य	सत्सा	संज्ञी	आहा. अना.	साकार, खनाः
		assfu	· — ······			٩	200	∞	·		१० सम् सम् स्वस्	m	صر مد			n	לנוי		~	۰.	· D-	•	~
V			- <i></i>	सं. न	मर्याष्टि	<i></i>				- 18€ - 18□ -	जी. १ के. १		कुमति,कुभु त 		।संयम् ।	असंयम वृद्ध, अब्बह्ध	·			मासा	संजी	আहा.	साकार
		,	·												<u>.</u>								<u>.</u>
έŲ	<u>ئ</u>	अपयास	≈ E	~ 'A	angida .	ອ	×	m 16	~ •	•~ } K	क्ष्रे में मि	~ m	४ इम्मिन् अध्य		* स्यम् च	र २ अर्मयम चक्षः अचक्ष	ا	**************************************		۶ عرب	~	्र बाह्य	म्
								रिहित			का मि. सामेल		5 to				क्रिंग					श्रना.	अन्ता. अन्ता.
<u>~</u>	विभ	२. विसंग धाल—(घ. २/१√१/७२१-७२२)	-(घ. थ	325/3+3,	(>25-					<u> </u>				<u>-</u>				 -	·				
٠~			٠.	~	uu e	<u>،</u>	20		۰.	•~	°	E177	>°		~	₩.	w		~	(¥	~	•	~
		मर्याप्त हो	~	₽,	न्यां वि				-p :	## 1	मन ४,वच,४ औ•१,वै,१		- विभूग - विभूग		अस्यम् -	बक्ष, अबक्ष		म हि	भक्य f यूभव्य	मिथ्या सासा	High High	आहा.	साकार अना
~	~		•	•	*LLP	o.	≫	\$0	•~	~	\$	mr	20	<u>-</u>	•	(Pr	wy.		r		۵۰-	~٠	~
		चर्यातु हो)	मिथ्या	بلة. ع	च्य पिंद्य				ф.	ED .	मन४, बच. ४ औ. १. वे, १	-	- विभंग -		अस्यम	बहु, अचह	- 	# 6	भठ्य मि अभव्य	मिथ्या	संज्ञी	आहा.	RE O
mr	~		*	~	alaju d	°	≫	20	o.	•	\$	m	20		<i>∞</i>	ρr			~	~	~	~	<u>ښ</u>
: 			सासा	'च 'म'	पर्याप्ति -				*b*	EP K	मन ४,बच्ध औ.१,बे.१		विभग		असंयम	चक्ष, अचक्ष	<u>-</u>	<u> </u>	भुक्त	सासा	意	आहा.	साकार अनः.
	A signal	1	*					. The second second	Cart Bank grade	The second second	The Commence production of				_	7	-	_	_	_	_		

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	₩ 1	##	म् भ	<u>جا ئ</u>	<u></u>			
	<u>ख</u> पयोग	२ साकार अमोकार	२ साकार अनाकार	२ साकार, अनाकार	२ साकार, अनाकार	२ साकार, अनाकार	द साकार, अम्फ्लार	
	अहि.	्र आहा अना,	अगहा.	२ आहा. अमा.	२ बाहा. अना,	পু প্রান্থা:	१ ऑहा.	f
	संशिव	संजो	महार्	याः ~	संबो	संखी	सं. १	
	सम्य	3 थी, क्षा. ह्मयो.	३ औ. क्षा. क्षयो.	३ औ•शा. सयो,	३ औ. हा. हायो.	३ औ. शा. समो.	हे औ. क्षा. क्षयो.	1
	भेड़त	र भठय	भू	~ हिंदू	१ भव्य	१ भव्य	्र भुरुय,	
	त्रिया (भा.	Hug-	wy.	Heo-	w	w	ans.	-
1	स्र मा	w	40°	ल हैं की	w	~u -	अ.	- -
	दश्न	के केवल ना के	के में स बिना	केबल के बिना	े केबल के जिना	३ केवल के बिना	३ केवल के किना	→ अभिवत्र-
	स्यम	9	9	असंग्रम सा. होदो.	१ असंयम	१ अस्यम	१ असंग्रम	1
ten.	ह्यान	मति, श्रुत:	२ मिति, श्रुत.	२ मिति, श्रुत,	२ मति, श्रुत,	२ मति, श्रुत.	र मति, श्रुत.	२ मति, श्रुत.
dath	प्राव्य	. 24	≈ hlb±l6	>>	>>	20	≫	[
३० प्रस्तवणाएँ	it-	m	<u> ማ</u> ማ	्यं स्व ४०	w.	les.	عارة س معربة س	
	योग	\$	१९ मन ४, बच.४ बे. १, अौ. १	8 章. h, · · · · · · · · · · · · · ·	९३ अा, द्वि., बिना	१० मन४,वच,४ औ,१,बै,१	औ मि. वे. मि., कार्यव]
	काय	र्भ ५०	™	र्यंस	म ∽	~ ₩	[≫] % अस	1
	इन्दिय	بط. مه	ov 'p'	~ 'b'	ov •¢	«·ь'	تو ' ب	1
	मीं	20	×	>>	200	>>	>>	
	स्द्रा	>>	अस्त्रा ०८	>∞	20	52	>>	J
	म्राव	9°0° 9	2	9	s o} s/o}	°	9	अधिवत्
	पयिधि	(३-७२६) <i>६/६</i> ह् पर्याप्ति ६ अपर्यक्ति	u.	ह अन्याधि	६/६ इं पर्याप्ति ६ं अपर्याप्ति	nn.	4LJ*	Î
	जीव समास	३. म तिश्रुत शान—(ध <i>२/१,१/७२३-७२६)</i> १ सामान्य १ २ <i>६/६</i> ४-१२ सं. प. ६ पर्यापि	۳. الله	्र लेख स	सं. सं. सं. खद	ंच ंप्र, ~	सं. खप.	
	मुज स्थान	8-44 8-44	w }	अ अवि प्रमत्त	क वि	अ	क सम	8
मार्गणा विशेष	पर्याप्त अपय्ति	सामान्य	क्या प्त	अपय्यि	सामान्य	पर्याप्त	अपर्यक्रि	टूर सामान्य ज्ञेष, अप.
जि:	मिष्टि स्थान	मियु			<u>~</u>	>	20	K-83
 	`#¢	m² or	P.	ρο-	70	٧	*w	ອ

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

-	उनयोग	l	२ साकार, अनाकार	1	२ साकार, अना. युगपत्	२ साकार, अना. युगपत्
	आहा, व		१ आहा. सा	1 ,	अधा हा सा अना. ७	ha +
	सं ज़ित्व		* (iii)	$oldsymbol{\uparrow}$	o अमुम <i>य</i>	१ संज्ञी अनुभय
	ਜ ਜ ਜ	Į	३ औ श. सयो.		~ ₺	्र अ ो. शा. हम्मे.
	भव्य	 ज	भ ३० १	अोघश्र	्र भव्य बनुभय	भवत ५
ľ	लेस्या ह. मा.	मिति श्रुतवर्	क स		er er er er	स स्तु
-			## # #		40-	MAD*
	दर्श न		भे भेगता भिना	↓	भूष रहे	>=
	स्यम	1	४ सा., छे., मू., मथा	४ परिहार रहित	१ सथा., अनुमय	१ सा., हे,, परि., सृ., यथा
	<u>।</u> अर्थ	१ अविधि.	ः म	मनः ४	खं प्र के	, मति, थुत., अव., मन: केबल
Nincwa or	4)Pæ		∞ দা∳কাচ		ু দাদক প্রক্রাধ	>> hib±b or Pubb
2	क पुर		ॐ क्लं	<u>l</u>		
	योग	l	ह मन४, बच्,४ औ. १	1/	७ मन २, बच्च२ औ. २,का.९ अयोग	्रैं वे. हि. बिना अयोग
	भ	1	ज द	1	९ त्रस अकाय	¾ ℃
	इिद्य	IC	~ .p.	1	, म्. अतीत	ط. مه
	गति	मिश्रुत बर	एंग म ⊶	†	से म ~ स	एंग म ⊶
	T厚符·	#	ळ गहंसक		ু <u>ক্রি</u> ট	अस्था ∞
	म्राव	I	o.	. ऑघवत	<i>थी</i> २.१ अतीत	\$/8° ⊕/0}
	पर्या धि	ı	چ (هخ	1	<i>६/६</i> ६ पर्याप्ति ६ अपर्याप्ति	شه شه بې م م بې بې بې
	जोन समास	४. अवधिशान—(घ.२/१.१/७२६) सर्व आताप — —	फ. सनःपथय शान— (थ. २/१,१/७२७) १ पर्याप्त ६-१२ सं. प.]	ह. केजल्ज्ञान—(स. २/१,१/७२७) १ सामान्य २ २ २ १३,१४ पर्या.	
	मुण स्थान	(4:3/k) o *** 8.	सर्वं आताप	.स. २/१ २ १३.१४ अतीत	50
<u> </u>	क्यप्ति अक्यप्ति	थिशान—(सर्वे आसाप्	प्यय शा न- पत्रप्रीप्त हो	mo. ♣ ♣	स्विशान—(समान्य	८. संयम मार्गणा १. संयम सामान्य— १ सामान्य _६ -१
म्। श्री स्व स्थाय	के कें अस्त्राच्या	अवधिह			स्याः सा	संयम् संयम ६
<u>.</u>	मेंवा हबान	*	ਜ਼ ਤਾਂ ∞	6	m, ex.	v

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

 [डक्योग	२ साकार, अना,	२ साकार अना.	1		२ साकार अना,	1	<u> </u>
:	आहा, डि	Ė	१ आहा, स		 .	⊨ .	<u> </u>	<u>.</u>
	Ì			·-·			i 	
	संजित्य	सं संग्री 	ক্র	1		सं. ~		
	स्पट्य.	³ औ., क्षा. क्षयो.	३ औ., श्रा. क्षयो.	Þ		३ औ., शा. .क्षयो,	to:	सामाधिक संग्रम बत
	भव्य	भ ०थ	e he t	मूलोघन स —		* ¥5थ	सूलोधन त् ————————————————————————————————————	यिक सं
i	लेश्या इ. मा.	क म	т д			्युम	<u> </u>	प्राम
	ne hx		m,			415		
	द्य <u>ी</u> दश्न	केवल बिना	के केवल बिना	↓ 		केवत किवा बिना	. ↓	
	संयम	३ सा. छे. परि.	³ सा. छे. परिः	1		सास	स्मासा 🐣	केंद्रों.
3	स्य	४ मिति, श्रुत. अत्र.,मनः	४ मति, श्रुत, अर्वाध, मनः	l		४ मति, श्रुत, अवधि, मनः	í	1
३० प्रस्तवगार	hlp&	20	20			>>	1	1
K 0	व	50 Or	Do			ळ ००	1	
	धोस	११ मन ४, बच.४ औ. १, आ.२	मन ४, ब च,४ औ. १	1		११ मन ४, वच.४ औ. १, आ.२	1	1 <u>*</u>
	द	अस ❖	जी ~	<u> </u>	···-	र्म ∽	1	
	ह्य ^{नि} हस	~ *b*	∾ 'b'			مر ,ه _ر		E.
	गित	०ंग ⊶	व्यं ५०	ग्वस		्यां म	मूलो घवत्	संयम् ॥
	祖朝	50	w IFFT.TE	मुलोबबत्		>>	— भू —	सामायिक स्थम बर्
	प्राण	0)0}	°			o} o}		H
	पर्याप्ति	६/६ ६ प्याप्ति ६ अगर्याप्ति	.05*	_ ↓	(286/	<i>६/६</i> ह् <i>पर्या</i> ष्टि ह् अपर्याष्टि	*	३. छेदोपस्थापना संयम—(घ. २/१.१/७३३) १ ६-१, सर्व
	जीव समास	सं सं प	 	<u> </u>	र. सामाथिक संयम—(घ. २/१.१/७३३)	सं. य. सं. अप.	 	(सं. १
	मुण स्थान	or w	6 ~ a ↑	l) E	که آ در	1	. संयम-
मागेणा विशेष	पर्याप्त अपयक्षि	स्मामान्य	सामान्य	सर्व आताय	।भिक संर	**	संग आलाप	पिस्थापना सर्व अाह्याप
[र्गेषा 	नाथ स्थान	wo-	9	88-7	H		منابع	()
<u> </u>	d	or	W.	26	D.	~	~	m v

				·		·····	
	उपयोग	साकार अना.	↓ — ∀ ————	<u> </u>	२ साकार अना. युगपत	1	र साकार अना,
	आहा.	्र आहा.	मुखो मबद	1	२ अत्याहा• अना,	1	२ आहा. अना.
	संज्ञित	सः अः %	↑	1	् संज्ञो अनुभय	1	र संजी असज्जी
	ਜ਼ਿਲਾ,	२ सा., हायो.	२ ला. क्षयो.	मुख] त्र	્ર હો, થા.	मुबर्स	:tt3'
	मञ्ज	भे व्यः		भूम वि	भठस	—.मूखोधवत् ————————————————————————————————————	श् भव्य, अभव्य
1	H H	क म	↓		अनेक्स के		લાઝ
	वेश्या इ. मा.	40*	ਰ	V	40		u)J ^r
	दश्न	, क्षेत्रस बिना	→ मृतोध्वत	I	>>	l	, केवस बिना
	स्यम	परिहार	१ परिह्यार	·	प्रथा		% अर्थेट्टम
<u>ا</u>	ब्रान	्र मिति, श्रुत अविध	३ मिति, श्रुत अवधि	į	ज म	Į.	३ ३ खात ३ बजात १
र ।।।।। १	hlpæ .	200		<u> </u>	o pripare		20
2	क्रह	०० कंग	⊷ pi	-	व्यतगद	1	en-
	धोग	ह मन४, वच.४, खी. ९	ર મૃત્ય, વવ. ઝ, બો. ૧	I	११ मन४, अच.४ औ.२, का.१	l	्र अ. हि. बिना
İ	काय	≈ ##	<u></u>	1	≈ अंस		407
	हैं इ.स.	ev. ,D.			~ 'r⁻		×
	मति	र्ग ~ म	E	मूलोधवत	म जु	मुखोधवत्	20
	संद्या	200	 मुख् 	tto.	अस्डा	—— । जम	20
	भ्रावा	\$	##*		*6/2.03		8019; 819; 518; 814; 618; 814;
	पयिसि	द प्रमृक्षि		(# & { & & & & & & & & & & & & & & & & &	//७३५) ६//६ ६ पर्याप्ति ६ अपर्याप्ति	•	.५.४ प्राप्ति न्यक्ति
	जीव समास	. i.		1	~	<u> </u>	8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8 8
	मुण स्थान	द्धि संयम २ ६,७	<u>ब</u>	य संयम १०वाँ:			•
म् नशिष -	नयम् अवस्ति	४. परिहार विद्युद्धि संयम् १ सामान्य २	सर्वे आ	मूक्ष्म साम्पराय संयम पर्याह १	६. यथाख्यात संयम- १ ११९- सामान्य । ४ १४	संव	 अस्यम—(ध्र सामान्य
मार्गेषा विशेष	माप्ट स्थान	다. (구) 전 (전)	<u>ව</u> ණ		यथार ११- १४	\$ 22	अत्
Ħ		> ° °	C.	5	w «·	œ	ું ∾

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

२० प्ररूषणाएँ	काय योग नेद ह हान संयम दर्शन तेश्या सम्य सम्य सम्य संविष्य आहा. उपयोग दर्शन सं. मा.	है १० ३ ४ ६ १ ३ ६ ६ २ ६ २ १ २ २ १ २ १ २ मन४, जन्दुर, अन्तर, संजी आहा. साकार. औ.१ वे.१ ३ अज्ञान विमा अभव्य असंजी असंजी अनकार	ह ३ ४ ५ १ ३ ५ ६ २ ५ २ २ २ २ २ १ ३ १ ६ ३ १ ६ ३ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १	३ ४ ३ १ ३ १ ३ मिति, श्रुत,, देश सं. चक्ष, अचक्ष,, श्रुम भव्य औ., क्षा., अवधि अवधि अवधि क्षयो.	१ १२ ३ ४ ७ ७ १ ६ ६ २ ६ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २	१ ११ ३ ४ ७ ७ १ ६ ६ . १ ६ २ १ २ १ २ १ २ १ २ १ २ १ २ १ २ १ २ १	१ १ ३ ४ १ २ १ २ १ २ १ २ १ २ १ २ १ २ १ २ १ २ १	१ १० ३ ४ ३ १ ६ ६ २ १ २ २ २ त्रस मन्ध्रः संचार औ. १वै. १ अहान असंयम चक्क, भव्य मिथ्या संज्ञो आहा. साकार
			UP.		₩ ₩			
	- संयग	असंय	्त सन्दर्भ	% 60	9	9 	स् स्थान सा. हो	्र अस्य
गाएँ	श्चान	है इज्ञान श्वज्ञान	४ कुमति,कुश्रु ३ ज्ञान	ै मति, श्रुत अवधि	७ केबलके किना	ं केबल्से बिना	१ क्रमसिक्ष्य ३ ज्ञाम	ন জ জ
प्ररूप		≫			∞ hibeb	∞ प्राप्तकांश		Ç0
%	(U)				m Dirpp			
	 지대 	१० मन४,चच.४ औ,१ के.१	्र औ. मि., वै. मि.,का	ह मन४, बच् औ, १	१२ मन४, बच., औ. १,,बे. आ. २ आ. २	११ मन४, बच. औ-१ बै. आ. १	8 角,有	१० मन्ध्र बचार थो. १ वे. १
	ক্ষ	113°	uv.	्रं ४		्र में ∼	य रू	
	इन्दिय	Sy	×	~ ''	. प्र (यो - भ व	ब तुः दः	ं पं वंदी अ	न्त्र बतु, प्.
	गित	>>	>>	सु सु	20	20	20	20
	4,组	20	>>	>>	असंह्यां ००	∞ नहंभ्र	200	200
	शाण	\$ '5' = 3' o }	\$ '\$ 6 '\$	<u> </u>	5/3 :5/5 2/4	လု ကို ရ	ພາ ຍ໌ ອ໌	80/0; 8/0; 8/2
	षभीषि	६.५,४ पर्याप्ति	ई.१,४ अपयमि	्य प्रका जी	6,4 84.	की. पर्या.	<i>६१६</i> अपर्याप्ति	है.१ वर्या, अप.
	जीव समास	9 b	о ф.	सं द	चुड़ दशन—ा प४/१५/१०६५७६३ / सामान्य १२ ६ ६/४ १-१२ चुछ. सं ६,५ असं.के ६,५ (वतः सं असं. प.	ब के स्में असं असं	ई चेतुःसं, असं. पं
	मुण स्थान	>	87 S.	《 _中 》 四耳	\$ \$ \$	& & . & .	۵۰ <u>ه</u> کو چې	१ मिथ्या
विशेष	पर्याध अपर्याध	पयसि	अपयाध अपयाध । । ।	पर्याप्त ५ ५ ५ ५ ५	सामान्य	पर्याप्त	अपयसि	सामान्य
मार्गणा विशेष	ग्रेवा स्थान	,,	#.————	- LE	ক ক্			ir.
	, je	~			· -	or .	W.	20

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	 									
	उपयोग	र साकार अना.	२ साकार, अना,	1	1		श् साकार,	<u>.</u> च	२ साकार अना.	२ साकार अना.
	अहा.	अ आहा.	२ आहा., धना.	1	† _		अहा.	स् स्रो	अति,	. अहा अना,
-	सिक्तिन	संख् री अस्त्र्यो	र संज्ञी असंज्ञी				स्बा	हिल इस्	त्र संखी धसंखी	र संज्ञी असंज्ञी
	सम्य	१ मिरुयाः	१ मिध्या	मृतोषवद	मूल रेघवत्		w		uas-	१५ मिश्र बिना
	भव्य	न भव्य अभव्य	२ मञ्च समञ्च	+		· · · · · ·	श्र	अभेवद	२ भव्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य
		ધ્યુ-	'ur	1	¥		413"		- Lug-	405
1	हिंद्या	413*	a E Pa		I		w.		wy	्य <u>क</u>
	दश्	~ ₩	~ ∰ ₩		শু 🏎		० अच्छ		अन्य हुर्	्यं ~ स
	स् स्याम -	१ असंयम	अ संयम	1	1		9		9	१ असंयम सा. छे.
	खान	ন জ্ঞা জ	२ कुमिति,कुथुते असंयम	1	1		की व्य	<u>ब</u> न	े केमलके बिना	५
	म्रोष्टक	∞	20		[> irlb		o pipape	20
1 <u>0</u> 14	БÉ	m}-	w	1			જ કેમ	JE .	m Pieble	m
विकल्पात	योग	१० मन४, बच.४, औ. १, बे. १	1	Ī	!		***		१९ - मन४, बच.४, ब.९, औ.९, आ.९	8 थो, मि.,बे. मि.,खा.मि. कामंग
	काय	~ ₩	₩ ₩	1	J	_	'خبه		M72.	W
	इन्द्रिय	म हो। २२ . च.	य वित्र प्	l	1		∞ ∕		અ	٠,
	म	20	> 0	1	1		>>		20	20
	स्बा	200	20				ॐ गृड़ेस्	te	असंज्ञा ∞	20
	म्राध	2:3:0}	ar 9 9	मूलोधवत्	मूलोघबद		20/0; E/0.	£/8.8/3	້ອ້າ ກຸ່ວ ກຸ່ວ ວ່	**X**X***
ļ-	पर्याप्ति	६.५ फ्याँ क्रि	६.५ अपर्याप्ति	•	1	(0% a-E	8,4,4	पर्जाप्ति अपर्जाप्ति	६.५.४ पथिमि	है.५.४ अपर्याप्ति
-	जीव समास	३ चटु• सं. असं.,	३ बतुः सं., असं.	क्ष प	1	જુ જુ જુ જુ	\$2°		७ पर्यप्ति	क कु क
-	मुज स्थान	्र मिथ्यः	१		नाव	(a.:	\$	-8-	\$ \$-	20 00 40
मार्गणा विषेष	पर्याप्त अप्यशि	वयिष्	<u> </u>	१,४ सा अभि	१-१२ सर्वे खालाप ।	२. अचक्षु दर्शन—(य. २/१,१/७४३-७४७)	सामान्य		न्य <u>वि</u>	अपयप्ति
됩	गुज स्थास	~	~	20	_ *	वा क				
<u>E</u> 1	tr.		wo.		Ð	'n	•~		Dr.	m

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	उपयोग	सामार अना,	२ साकार अमा,	श् साकार अमा.	1	२ साकार अना.	२ साकार अना.	२ साकार अना.
	अाह्म.	े आहे अना.	শ্ৰাহা,	्र आहा. अमा.	1	१ आहो. अना,	१ आहा.	२ आहा. अना.
ĺ	संज्ञिल	र संजी बसंखी	र संझी असंझी	र संद्यी असंद्यी		स खो ~	4. ペ	संबी
	सम्प्र,	१ मिथ्या	मिध्या	१ मिध्या	मूलो घवत्	है औं, क्षा. क्षयों.	. ३ औ., क्षा. हायो.	. ३ औ., क्षा• क्षयो.
	भक्य	र भव्य, अमन्य	भव्य, अभव्य,	र भक्य, अभव्य	1	¥•स	مر دوان پر	भेडय
[-	स्या स्र	us	alt.	w		4ug-	40	40-
 	ग्रह hx	"	445	<u> ਅੰਡੇ ਲੇ</u>	<u> </u>	412.		ুলে <u>ৰ</u>
-	दश्न	क्ष व	अ ब	ख च ब	स्र व	्र अवस्थि	अमिधि	१ अवधि
	संयम	अर. अ.स. अ.स.	१ अस्यम	१ अ स्यम		9	9	३ असंयम सा, छे.
	- F	द्धाम ≪	প্ৰ প্ৰা	३ १ कुमति,कुधुत अस्यम	1	४ मिति, थुत, अत्र, भनः	४ मति,श्रुत्, अत्र, मनः	३ मति, श्रुत. अवधि
	क्षाय	20	20	>∞	l .	∞ hlbab	∞ দা়কক্চ	20
ا ا طاع		- in	₩.	u>	<u> </u>	at Dirple	∞ Dirppe	م به <u>بد</u>
३० प्रह्मवतार	योग	१३ आ., धि. बिना	१० मन४,बच्छ, औ.१,बे.१	थो. मि. बे. मि., कार्मण	i	*	११ मन४, बच्च.४ बे १ औ., १ अा., १	४ २ औ,मि.कै. प्र. मि.आ.मि.नर्प
	स	mo.	dis.		ı	असे अस	र्म ⊶	त्रंस
ĺ	ड़ =िद्रया -	₹.	¥	Sr.	1	ਅ ਖਾ	ev *D*	∾ .p.
	गति	20	>>	20		∞	>∞	200
:	संबा	>>	≫	30		ત્ર€્થા ∝	्र विस्थित व्य	29
	স াথা	80/8; 8/8; 2/6;8/8; 5/8; 8/3	१०,६,८,७,६, ४	ક [*] % [,] [*] , [*] , [*] , [*] , [*] , [*] , [*] ,	मूलोधवत्	9/0} 8	o.	9
	स्य ग्निम	६,५,४ चयित्ति अवयत्ति	६,१,४ पर्याप्ति	६.५.४ अपर्याप्ति	(0%)-5	ह/६ ६ पयाप्ति ६ अपयाप्ति	द पयिषि	ई अपयोग्नि
	अीव समास	∞ •∕	्ड वयीम	ु अन्यम्	२- सर्व आ साप < १२ अवधि दर्शन—(ध २/१,१/७४ ^{द-} ७५०	सं सं त	p.	र् सं. अप.
,	मुख स्थान	१ मिटया	१ मिथ्या	१ मिध्या	आप ध	. * * *	ر ر ر	U. 200
ब्र <u>ो</u> ष	पयदि अपयिषि	सामास्य	पर्याप्त	अपयमि	सर्वे आ साप । धे ट्यंगेन—(सामान्य	पर्याप्त	अनयप्रि
मार्गणा विशेष	गुष स्थान	<i>₩</i>	~	6.4	स्य			
臣	- 	>=	×	wer	9 வ	· ~	rr .	tus.

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

Jain Education International

	डपयोग			1			'n	साकार	अना.	'n	साकार	अना.	Gr.	साकार	अन्।	~	साकार	अना.
	आहा.	↑		^			O.	আहা.	अना.	6.	अस्ति	, ,	r	आहा.	अना.	- n	आहा,	अना.
						,	or !	म् अ	<u>जसं</u> ज्ञी	'n	संखी	असं हो	or	संडी	असंजी	•	संखी	असंजी
	सम्य,	ग्रामबद्		कब्हा नवें			ma.		,	ونيه	-		ρΥ·	मि, सा.	क्षयो.	•~	मिध्या	
	भव्य	अर्थाध्वामबद		हि इ			or	भठय,	अभव्य	b,	भव्य ,	अभव्य	ar	भुरुत	अभव्य	~	Hear,	अभव्य
	बेस्या द्र. भा.			!			~_	њ,		~	-10-		0.	<u> </u>			He,	
· 	NE NX			<u> </u>			495			ر نه	•		r.	-	कि	دى <u>،</u>		
	दर्शन	१ अवधि	`	<u> </u>				16	<u>बिना</u>	m·	केशत	् जना	gr.	म् मुख्य स्र	िबना	or	्ध च	
	संयम	1		l 			5./· ·	असंयम		•~	असंयम		**	असंधम		•-	असंग्रम	
ाएँ	এ	३ मति, श्रुत. अवधि	- · · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	}			40-	अज्ञान ३	स्त्र स्त्र	યત્ર	३ ज्ञान	३ अहान	-Se	कुमति, कुञ्च, अस्यम	खान	enr	অন্তান	
२० प्ररूपणाएँ	hlase	!		·			200			20			20			>0		
န				ŧ			tip.			W.			tu.			con-	<u></u>	
	स्रोग			1			es (बा, दि.	्रिय <u>्</u>		मन ४, बच्च.४	अते, १. में, १.	es.	औ. मि.,	्व. मि., क्षा	gn/	आ. दि.	बिना
	काय	↑	,	<u> </u>			*445*			N _U y-			Q y			₩.y·		
	इ न्दिय						æl			-×			يحد				,	
:	गति	łơ					∞		,	8 13*	nto Total	रहित	≫		•	20	- 1 .	
							20			20			20	•		200		
	प्राण	अवधिह्यानवर	- h				80/8;8/03	٦/٤: ١٥/١٤	€/8:8/3 €/8:8/3	9 '1 '3' 9 }	20 405		£'&'*'}*'9'9			`e/3 :6/0}	6/E; 3/K;	£/8;8/3
	पर्याप्ति		<u></u>	_		(घ. २/१,१/७६०-७५६)	32.0	प्यासि	अपयाहि	જ	पर्याप्ति		به ئۆ ئۆ	अपया हि		90 90	चयरिप्त	अपयिष्टि
	जीव समास	·	18,81020	,	ı	, 2/8,8/	20,		-	9	44		9	अप.	***	20		
	मुण स्थान		–(ध. २	i	ार्गणा−			P		>∞	<u> </u>		enr	8,8,8		~	मिध्या	
নিষ্টাष <u> </u>	प्याप्त अवय्यि	सर्व	४. केलटा दर्शन—(ध. २/१,१/७६०)	अलाम	१०. छेश्या मार्गणा-	१. कृष्ण लेश्या	सामान्य			Rint		· · · · -	अपयधि			सामान्य		بالمنك يناهر
भार्गणा विश्वेष	मीय स्थान	8-65		83'88	6											~		19
ਕਿ	. p. (20	× ,	×-	<i></i> -	<u>~`</u>	۰.			m		<u>.</u> .	(nr			20		

	Æ i	२ साकार अना	¥. F.	¥. t	₩ :	17. 1817	+ #) 12 년 13 년
-	. उद्योग		१ साकार, अना.	साकार, अमाः	साकार, अना.	२ साकार, अनाकार	्र साकार, अना,	१ साकार, अना.
	आहा.	आहा,	श्राहा. अना.	न ब्याहा. अना.	्र आहा.	१ आहा. अना.	१ आहा.	२ अहा. अना.
ľ	संक्षित	स्त्री संख्या संख्या	२ संद्यो बसंद्यो	संख्	स ब्रो	संखी	संद्यो	सं श्री
	सम्य,	र मिरया	्र मिष्ट्या	सासा	सस्	सास	१ मिश्र	3 औ., क्षा. क्षयो.
	भक्त	२ भठेय, अभठेय	२ भव्य, अभव्य	भैवय	~ व्य	भुक्त	रू भव्य	~ संख्य
1	लेख्या द्र मा	~ k₁	on 160	~ k;	~ ki	~ ક્રું	~ 1€°	en 18;1
	(E) lix	415"	লৈ ছা প	415"	469	- स्था	40*	no.
	द्यान	न सहः अवस्त	ब छ अ अवस्त	ই নৃধ্ <u>ধু</u> , জন্মন্ত	न् स्ट्रं अच्छ	वहाः अ अवस्थाः अवस्थाः	र बक्षु, अच्छ	३ नधु,, अमधु अविध
	संयम	९ असंयम	₹ अत्यम	१ असंगम	१ अस्यम	१ असंधम	० असंयम	१ अस्पम
	<u>।</u>	म स्र	२ १ १ कुमिति, कुभू, असंयम	क्ष्याच्याच्याच्याच्याच्याच्याच्याच्याच्याच	ल्ला ल्लान	न्न कुमति, कुश्च	अ शानाज्ञान मिथ	सति, श्र. अवधि
	h]b%	29	20	>>	20	<i>?</i> ∞	20	> = = = = = = = = = = = = = = = = = = =
Y LINE WAY OF	<u>≱</u> €	62.	ph-	oγ	603.	m	tu.	en.
	मोम	१० मन्द्र, बच्च.४ थो, १. के.१	भै, मि. भृ. मि.	१३ आ. द्वि. क्रिना	१० मन४, बच.४ औ.१, बै. १	औ, मि., वे. मि., कामेल	्रैंट मन४,यच.४ औ.१, वे.१	१२ मन४,वच.४ औ. २, वे.१ कार्मण १
	ऋ	an.	449-	≯स अस	* *	त्रस	≯ स	अस ~
	इन्दिय	S 4	~	ev. p.	~ъ.	~ ъ'	64.p	بو. ~
	गति	र्मा क्षेत्र ह्या व्या	20	20	३ देव रहिता	स् नरक रहित्त	स देव रहित	३ देव रहित
	1度13	20	20	20	200	20	∞	>>
	प्राया	້ຄົນ ເປັດ ອຸກຸກ ອຸກຸກ ອຸກຸກ ອຸກຸກ	£. 8. 3. 4. 0. 0.	9/02	ç.	9	°	90 s
	दय िष्ठ	६.१.४ पर्याभि	६.५.४ अषयिष्धि	६ पर्याप्ति अपर्याप्ति	६ पयशिस	६ अषयिभि	ई पर्याप्ति	\$/ <i>६</i> पर्याप्ति अपर्याप्ति
	जोब समास	७ पर्याप्त	ه ه	र स, प सं, अप	सं. %	. अ	~ . ₽.	२ सं. य. सं. थप.
	गुण स्थान	९ मिध्या	१ मिथ्या	१ सासा	सासा	१ सासः	्र मिश्र	क्ष %
क्षां कार्या विश्व	पर्याप्त अपर्याप्त	क्य ि	अपयधि	सामान्य	पर्याप्त	अपयशि	म्या <u>रि</u> हो	स्मान्य
5	ग्रैब स्थान	o	~	D.	٣	Or .	m	200
٢	38,	24	w.	9	ษ	w	e>	87

ľĘ l	मार्गणा विशेष									~	२० प्ररूपणाएँ	जार् ड				-				
<u>गैथ £हान</u> स	पर्याप्त अपर्याप्त	न स्थान	जीव समास	मयाप्ति	яти	स्था	गति ।	क जू इ	काय	योग	- इह	क्ष्याय ज	संग्रम	दर्शन	विश्या व, भा	म भ क्य	सम्य	सं क्षित	आहा.	उपयोग
> 0	3 मधि		त्सं ,	्ह चयतिस	Q	20	३ स्टब्स् स्हित	∾ ъ́	<u>ु</u> म अ	१० मन४,बच्,४, औ,१,बे.१	Di m	र मति,श्रुत, अवधि	० संगम	केब्ल हिमा हिमा	ma, Igo		३ औ. सा. सयो,	₩ ₩ 	१ आहा.	२ साकार अना.
> 20	४ अपर्याप्त	ज्य <u>्</u> स्ट	कं चं	६ अपयमिस	9	20	्रं म ~	~ ₽	्र ४	२ ओ, मि., का.	% p.i. ≫	३ मति, श्रुत. अवधि	० अस्पम	केवल बिना	প টু জ	म् मुक्	१ क्षयो.	* * * * * * * * * * * * * * * * * * *	२ आहा. अना.	२ साकार अना.
∓ 1′	ील केष	ī—(ધ. ર	२. नीठ छेभ्या—(घ. २/१,१/७४६					· , ,, ———												
J.	१ १-४ सर्वे आसाप	<u></u>	<u> </u>		V		कृष्ण सेश्या	। ইয়া শ্ব্ ——	1		<u> </u>	ı	1	ı	<u>* </u>	- ख - चे ~	<u></u>	कृष्ण सेश्या बर्व 	ਬੀ	1
16.	ापोत हेंद्	শ – (ঘ	३. कापोत छेश्या− (घ. श/१,१/७५१-७६८)	(२५०-३५											<u> </u>	- 1				
	सामान्य	± ≈ ±	<u></u>	ह, ६, ४ पर्याप्ति ब्राप्याप्ति	१०/७: १/७ म/६: ७/४: क्षीअ: अ/३	20	20	4	uy.	का. दि. के किना	w- ∞	ক্ ২ জান ২ জগুনে	९ असंयम	क्षेत्र क्षेत्र चर्मा स्म	* <u>j</u>	. भवय अभव्य	409	र संज्ञी असंज्ञी	२ अगहा, अना.	२ साकार अना,
	न न स	» ÷	वया है	६.५% पर्याप्ति	. 0. p. p. g. g. g. g. g. g. g. g. g. g. g. g. g.	20	नि ने	Sr.	₩.	१० मन४, बच.४ वे.१, औ.१	20	্ষ প্ৰ প্ৰাম শ্ৰম	१ असंयम	केव स बिना	~ <u> </u> <u>€</u>	भव्य अभव्य	183°	२ संबो असंबो	्र आहीं.	र साकार अना,
	अपय प्रि		१ ल ल		\$. \$. \$.	20	>	<i>a</i>	Hub	क्षे. के. मि., कार्य म	w	र कुमति, कुर्	अस्यम	केबंत बिना	्य म श्रे	भ्रुं भ्रुं	४ मि, सा. इस हायो	स् सम्बो	२ आहा. अमा.	२ साकार अना,
7		The second	المكتنيف فخطة	سؤمران المالية والمراجعة	And the second	- Alberta San	THE PERSON NAMED IN	i. ne de de la companione de la companio	A STATE OF THE PARTY OF THE PAR	The section of the	Recolorations	and the street was	To the street of the second	فأيتيس وكالأب مواهوة	Act - white - item	ومتومة للمستقرمها	مفلالفة يقتمتك معبلك	بألفعتميمتمتوذاء	بأعجنتين منع	A STATE OF THE PARTY OF

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

,						······································		
	उपयोग	२ साकार, अना	२ साकार, अना,	२ साकार, अना,	२ साकार. अना,	२ सांकार. अना.	२ साकार अना,	२ साकार अनाः
	आहा.	्र आहा. अना.	्र आहा.	्र आहा.	स् आहा, अना.	अ गहा.	अ आहा. अना,	^ आहा,
	सं ज्ञित्व	२ संजी असंज्ञी	र संखी असंखी	२ संबी असंबी	र् संज्ञी	सं जी	संजी	संख्
,	सम्प.	१ मिथ्या	१ मिथ्या	१ मिथ्या	० सासा.	द सासा.	सामा,	म ४
	मञ्स	र भव्य, अभव्य	२ भव्य, अभव्य	र भन्य अभन्य	¥व्य	भव्य	भव्य	१ भव्य
	स्या मा.	~ 	~ i	~ €	~	₩	~ #	~ 1€
	म् ज	wy-	ugo		440-	4cr	्श्र में भ	w
	दश्न	२ चक्ष, अपक्ष	२ नशु, अन्धु	र स्थः, अन्यक्ष	२ चक्ष, अबश्च	२ बह्ध, अबह्य	रे बक्ष, अबक्ष	२ बधु, अबधु
etr/	संथम	अ संयम् असंयम	९ असंयम	१ अस्यम	र अस्यम	्र अंग ंयुम	₹ असंयम	४ असम्ब
२० प्रस्त्रपणाएँ	গ্র	গুলা গুলান গুলান	经 题	२ कुमति,कुश्रुत्,अस्यम	জ্ঞা জ্ঞা জ	अज्ञान अज्ञान	्र १ कुमिति.कुथुत् असंयम	२ कुमति,कुञ्ताअसयम चक्ष, अवस्थ
	क्षाय	>>	20	20	20	20	20	20
	茅戶	(D)	car	av .	W.	mr	tu.	W.
	योग	१३ था. द्वि. के जिला	१० मन४,वच४, औै,१.मै.१	क की मि. सामेल सामेल	९३ आ. द्वि. रहित	१० मन४, ब च .४ ऑ.१, वे. १	क्षेत्र म.म. म.म.	१० सन४,वच.४, ओ. १, वे. १
	<u> </u>	atta	w	ars.	या भ	₩ ~~	र्भ रू	र्भ ⊶
; - -	इम्दिय	æ	3	3 /	٠٠.	~ 'o ²	~ 'b'	w 'p"
	मि	20	३ देव रहित	20	>∞	३ देव रहित	३ नरक रहित	३ देब रहित
j. [संद्या	>>	30	∞	>0	200	>=	20
	70 X	\$0,5,4,4,3,0,8 \$,3 \$,2,4,4,4,8	\$0.8,4,6,	e. જ. જ. જ. જ. જ.	s/o}	8	9	o
	च्या क्षि	६.१.४ पर्याप्ति अपर्याप्ति	8.8.2.2 quilg	६.५.४ अपर्याधि	६ ६ नयिधि ६अनयक्षि	६ प्यासि	<i>६</i> अपर्याप्ति	६ पर्याप्ति
	जीव समास	\$°	2 E	9 19	.सं. प्. सं. अप.	æ, 	१ सं. अप.	.#. ₽.
	स्थान	१ मिथ्या	१ मिथ्मा	१ मिथ्या	१ सासा	सासा	~ सासा	# # #
मार्गणा विशेष	चर्याप्त अपर्याप्त	सामान्य	चर्या ष्ट्	अपर्याप्त	सामान्य	पयमि	अपयिधि	प्यमि हो
110	मुण स्थान	<u></u>	~	~	iv	n	or	tus.
ILE I		>∞	<i>≫</i>	τw	9	Lt.	w	0

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

Jain Education International

ı	F 1	<u> </u>	<u>_</u>	<u> </u>	<u> </u>		
	<u>डमयोग</u>	१ साकार अनाः	्र साकार अना.	२ साकार अना	२ सकार्	द् साकार. अना.	२ साकार अना.
	आहा.	२ आहा. अना.	अति	अस्ति । अस्ति ।	अ अन्तरः	⇔ প্ৰাह্	३ आहा, अना,
	संज्ञित्व	सं जी	संद्यो	* ##	सं. अ	संबो	संखी
	सम्य	है सा., क्षओ. औप.	र औ., क्षा., क्षयो.	१ हा , हस्यो ,	ur	etrà-	मिश्र विभा
	भव्य	मध्य 🕶	भुवत	१ भव्य	भड्य अभ्व्य	१ भव्य समब्य	२ भव्य अभव्य
ĺ	लेख्या इ. भा.	ड ा.	* F	~ <u>₩</u>	~ 4€	~ 4€	~~ 1t°
	वेश्या इ.	w	w	् _{ल से} -	us.	413*	(a) a) ~
	दर्शन	केवस जिमा	केवल बिमा	केवत किवत किना	के है बिना	क्षेत्र बिना	केवत बिना
	संयम	१ असंगम केवस वि	१ अस यम केवल वि	असं यम	४ स., यथाकेशत रहित कि	* बु,ग्रथाः रहित	्र अस्यम् सा. छे.
गार्	শ্বান	है मति, श्रुत. अन्धि	ें मति, श्रुत, अन्धि	३ मति, श्रुत, अनिध	७ केवस ज्ञान रहित	७ केबल ज्ञान रहित	४ ३ कुमतिकृष्टत असंयम ३ क्वान सा. छे.
३० प्ररूपणाए	ulpre	20	24	20	20	20	20
8	<i>∌€</i>	W.	m	ر المن بوط بي د المن بوط بي	65-	m [*]	ंच ल्व क
	योग	१३ आ. द्वि. रहित	१० मन४, शब्ध, थो,१, बे.१	अ. मि., ब. मि. कार्मण	*	१९ मन४, बच.४ औ.१, वै.१ आ.१.	४ 3 औ. मि वै. पु. मि.स्या.मि नपु.
	कांय	₩ ₩	¾ ~	अं ⊶	ज्ञ ⊶	पर्ध या 🛰	≈ #
	इ न्दिय	~ °t°	~ ,₽,	ov *p*	~ "p"	~ 'F'	~ 'b [*]
	गित	भ देख देख रहिंदा	२ देव रहित	. इ. सहित सहित	नरक रहित	३ नरक रहित	भू स
	संद्या	70	20	90	20	∞	20
ļ	ग्राण	9. ⁵ 0.	0	9	6/02	~	9
	पर्याप्ति	है पर्याप्ति अपर्यप्ति	ई पर्याप्ति	क्र अप्यासि	%) है/६ है पर्पाप्ति है.अपर्याप्ति	न्य प्रक्रि सि	६ अपर्याप्ति
	जीव समास	र सं. प्र सं. बाप.	مر. بر.	्स	लेष्या—(ध. २/१,१/७६८-७७६) सामान्य ७ २ ६ १-७ सं.प. ६ प सं.अप. ६.अ	स् स्	क. . ख . ख
	गुण स्थान	अवि	ু জু কু	अड़ ४	ध. २/१ ७ १-७	9 **	20° w
मार्गणा निशेष	नर्याप्त अयपित्त	सामान्य	प्यमि	अपयसि	लेश्या — (सामान्य	पर्याप्त	अपर्यात १,२,४,
4	मुण स्थान	्र ∞	20	 স	- 1		
ᇎᄆᆡ				\$	CH2		

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

1	u	a
. '	Ņ	v

5	उपयोग	२ साकार, अना,	२ साकार, अना,	२ साकार अना.	र साकार अना.	२ साकार अना.	र साकार अना,	२ साकार अना,
2		. <u> </u>	अहाः स अहाः स	न् आहा. स् अना. व	२ आहा. अना.	tre.	—————	<u>, </u>
	ৰ জাहা.							
with the second	संज्ञिस्ब	संजी		्यः अप्रै	~ *	सं सं	संख्ये ~	##
	स्मिटा,	र मिथ्या	१ मिथ्या	्र मिथ्या	सासा	मास	सासा	₩
ATT COMPANY SAFER	भव्य	र भव्य अभव्य	२ भव्य अभव्य	्र भव्य अभव्य	भव्य	म बर	भुक्त	४ मञ्ज
Approximate a	लेस्था द. मा.	~ ₺	∾ no	ov dic	∾ Aci	≈ 4c°	∾ vc.	~ ₁ᠸ
	્રાં ક્રો ફેર્મ	4w-	er	<u> </u>	40°	wy.	ंत्र जे भ	44
Total Mining and American	व <u>्</u> यान व्यान	र चक्ष,, अबश्च	्र बहुः, अचक्ष	्र अस्यमाच्छ., अवध्य	र चधु,, अच्छु	२ बक्ष, अबक्ष	२ मह, अम्बह्य	म हुए, इस इस
	_ संधम 	अ संग्रम	१ असंयम		अ स्यम	१ असंगम बश्च	त्. त.अस्यम —	थ्य सं यम भ
	阿丁	३ अज्ञान	জুল জুল জুল	ं २ कुमति, इञ्चत	अशान	हा हा हा	२ (कुमतिकुंकुत् असंयम	३ ज्ञानाज्ञान मिश्र
	rib*	70	29	20	20	20	20	20
	<u>⊅</u> ₽	in	mr	क में	mr	m ac	स्त्र <u>ी</u>	m
अस्तिकार्यः	घोग	१२ मन४, बच्.४ थो.१.वै.६.	१० मन४, बच.४ औ,१, बे.१	की में भामव	१२ मन४, बच.४ औ.१, बे.२ कार्मण	१० मन४, वच.४ थौ.१, बे.१	का में सामय	१० मन४, बञ्च.४ औ.१, मे.१,
	काय	*	~ ¥4	प्र ⊶	₩ ₩ ₩	₹	~ ₩	~ ₩
	इ-दिय	•~ 'b-'	∾ 'b [*]	er er	~ ₩	~ '	م به <u>.</u>	م. ب ه .
	गति	३ नरक रहित	३ नरक रहित	~ Av	? नरक रहित	३ नरक रहित	~ ts ~	३ नरक रहित
	4,31	20	20	20	>>	20	20	200
	X X Id	9.03	~	9	tofs	\$	9	2
	पय िक्ष	६ वर्याप्ति ६अपयप्ति	ष्यक्ति	ई अपयोसि	ई इयमिस इअपयोष्टि	र् पर्याधि	६ अक्यिंहि	६ पर्या धि
	जीव समास	सं. प. सं. अष्	ज	सं. अप.	संस अ अ अ	ੰਖ 'ਜ਼'. ~	सं. अप	म् च्
	ुण स्थान	भिष्या	१ मिथ्या	~ मिथ्या	सासा	~ सासा	्र सा सा	<u>म</u> अ
	 क्याप्ति अपय्यि	सामान्य	पर्या प्त	अपयप्ति	सामान्य	नय क्षि	अ प्यमि	न्त्र स्
	गुण स्थाम	•	•	•	nr .	er	~	or
	12	20	<i>⊶</i>	Nag-	9	r	w	2

·	<u> </u>	—		<u> ⊵</u>	. ₩	. • <u>•</u>	. 2
Ì	डपयोग 	२ साकार अना.	२ साकार, अना.	२ साकार, अनाकार	२ साकार, अनाकार	२ साकार, अनाकार	२ साकार, क्ष नाकार
	अगहा,	२ आहा. अमा.	প্রান্ত্রা,	२ आहा. अना.	প্রান্থা	% आहा.	१ अहा.
	संज्ञिल	লী ম	स. जी	म्बं	ر ا الله الله الله الله الله الله الله ال	सं ब्रो	संख्ये 🕶
	सम्प.	रू औ, सा. क्षयो,	हे औ, शा, सयो,	३ औ. हा. ह्मयो.	औ. झा. सयो,	३ औ. झा. समो.	्रे औ. सा. सयो.
	भव्य	स स्वा स	४ भव्य	भव्य	भुवय	भवय	4 5य
ľ	लेस्या १, मा.	~ 10°	ev (TC	~ 10°	~ ntr	w 10°	~ 40°
].	/E hor	W.	reco-	क्षं चे अ	ue'	u.r	4.5
	द शेन -	केवल जिमा	की वा	क्षे किवास मि	के के ब बिना बिना	के ब ना	क्षे क्षेत्र बिना
	संयम	१ असंयम	अस्य तम् स्याम	१ असंयम केवल कि	१ देश सं	र सा. धोदो. परिः	स स., क्रे वि.
lby	श्राम	्र मति, श्रुत. अवधि	३ मति, श्रुत. अवधि	३ महि, शृत. अवधि	३ मति, श्रुत. अव्हिथ	४ मति, श्रुत, अवधि,भनः	४ मति, श्रुत. अवधि,मनः
२० प्रस्तववाए	क्षाय	र्य ∞	20	20	20	20	20
6 S	্যু শুন	ar Þ	m.	∾~ P <u>,</u> ¢	(MY	αλ	w
14	योग	१३ आ, द्वि., रहित	१० मन४, वष्दः४ औ, १, वै, १	क्षेत्र कार्मन कार्मन	ह मन ४, जच.४ औ. १	१ मन४,वब,४, औ. ९	ह सन्द्रश्रेष्ट्र थी. १
	काय	अ स	३स	म् 🛥	₩ ₩	र्यः ⊶	** K
	इन्दिय	~ 'b'	~ ⁺ฮ๋	~ મં	~ ÷	~ +-	~ '₽
	गिंद	र नरक रहित	३ मरक रहित	के क मनु	મનુ	∞ Iτ° ∞ H	ord Ti
	1度)上	50	5 90	>∘	3 0	>>	™ 5317. 176
	प्रीष	o} o} o}	~	9	°	9/08 80	٥
	पयि हिं	<i>६/६</i> ह पयिप्ति ह अपयिप्ति	<i>६</i> वयिसि	क् अपर्याधि	क् वयिष्ठि स्	६।६ ६ पर्याप्ति ६ अपर्याप्ति	६ पर्याप्ति
	जीव समास	र सं. प. सं. अप्	:,	सं. अप.	~ ₩,	२ सं. प. सं. अप.	. it.
	मुण स्थान	æ ख्री •	ه ه آه	→ (a)	~ *E	प्र म त	अप्रमत
बर्शक	नयशि अपर्याप्त	सामान्य	पयक्षि	अवयधि	पयम्ब हो	मयप्ति.	म्याप्त हो
मार्गणा विश्वेष	गुण स्थान	20	>>	2 0	⋖	40-	9
1	· er	**	6. 0.	60	×	97 97	0V*

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

Jain Education International

		- 31	· L.				 _
	र साकार, अना,	र साकाः अमा.	स् साकार अना.	.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स.स			२ साकार, अना,
आहा.	अस्ति. अन्ता.	अवहर.	र आहा. अनग.	आहें।	न आहा. अना.	अगहा,	अ अना,
संशिष	र्सं ⊶	4前	० संझी	ক্ল	स्	संखों.	संश
स +य.	सासा	१ सासा	सासः	→ Æ	३ औ., क्षा _. सयो.	कै औ., शा. शयो.	भी., शा. सयो,
भव्य	₹ भव्य	भूकता १	₩	भक्य	१ भव्य	₹ भव्य	१ भव्य
# #	~ ₹	م <u>آ</u>	~ ₹	≁ ফু	~ ₽		o~ ₩
AE IX	415°	405		415	ans.	No.	w ∰ ₩
दश्न	२ नक्ष: अन्यक्ष	२ बहु. अबहु	ब्रह्म ख स्र	२ चक्ष, अचक्ष	३ बहा, अबह्य अवधि	हे केबल बिना	३ केबल बिना
संयम	दस्यम दस्यम	१ असियम	असंयम	छ एयम	असंग्रम	्र अस्थिम	्श सं यम
গ্ৰ	এজান ন	अश्व	२ कुमति,कुश्रुत	३ ज्ञानाज्ञान मिश्र	३ मति, श्रुत. अर्थाध	है मति,श्रुत, अवधि	३ मति, श्रुत, अवधि
स्थात	3 0	20	20	20	20	20	>>
₽₽	lan.	to.	•~ þi	(L)	ar	w	↔ Þro
योग	सन ४, वच.४ औ. १८ मे. २	१० मन ४, बच ,४ खौ • १, वे . १	के. सर्में सर्मेष	१० मन४, वच. ४ औै. १. वे. १	१३ आ. द्वि. रहित	१० मन ४, बच,४ औ, १, बे. १	अ. म. श्रे. मि. श्रेम व
भाव	₩ ~	~ # · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	अंध ⊶	~ # ~ # ~	# * # ~	ना 🕶	₩
क - नियं	~ 'b'	~ ₽	w 'b	~ 1°	~ 'b	or b	~ bi
मि	३ नरक रहित	३ नरक रहित	مر بار او	३ नरक रहित	३ नरक रहित	३ नरक रहित	म क
7家万	∞	>>	>>	<u></u>	20	20	20
प्राण	% ०	\$	g	<u>.</u>	8/02	\$.	9
चर्या हि	६/६ ६ पर्याप्ति ६ अपर्याप्ति	क् नयिषि	६ अपर्याप्ति	६ पर्याप्ति	६/६ ६ पर्याप्ति ६ अपयोग्नि	<i>ई</i> मर्याष्टि	६ अप्योक्ति
जीव समास	सं. सं. सं. ख.	्र . द	र् सं. अप.	~ } ;	सं. म्. सं. खप्	æ., -,	् सं. अप.
मुण स्थान	मास्	₹ सासा.	सासा	म इम	ध्य 🐣	अवि	अवि
च्यप्ति अपर्याप्त	समान्य	प्य प्ति	अपयप्ति	सामान्य (नयाँ. हो)	सामान्य	पर्या ध	अपयमि
<u>하</u> 현	 				<u></u>		<u> </u>
न्त्र च ग्रीवा £तान	n e	8	~	th.	>>	20	200
	गुण जीव पर्याप्ति प्राण क्षेत्र वित्य काय योग कि कि हान संयम दर्शन है, भा, भठ्य सम्य. संजित्व	गुण जीव पर्याप्ति प्राण फ़ि पिंदिय काय योग फि हि ज्ञान संयम दर्शन है, भा, भठ्य सम्य. संज्ञिल आहा. १ ३ ६ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १	मुण जीव प्रमीं सिमास प्रमीं सिमा हिन्दिय काय योग कि हि ज्ञान संयम दर्शन है, मा, भठ्य सम्य. संजित्व आहा. र ३ हि हि हि हि हि हि हि हि हि हि सिमा सिज्ञ आहा. सि. जप है जप्पांसि ७ दिलि हि हि हि हि हि हि हि हि हि हि हि हि हि	पुण अने अने समास समास समास समास समास सम्प्र अन्तर्भ सम्प्र सम्प्र सम्प्र सम्प्र सम्प्र समास सम्प्र समास सम्प्र	प्रमा समास स्वास प्रमा समास स्वास	प्रमा समास समास स्थाप व्यक्ति आण क्षि परित्र क्षा योग क्षि क्षि हान संग्र द्वांत होता. स्थाप व्याप व्यक्ति क्षा क्षा स्थाप व्याप व्यक्ति क्षा क्षा स्थाप व्याप व्यक्ति क्षा क्षा स्थाप व्याप व्यक्ति क्षा क्षा स्थाप व्यक्ति क्षा क्षा क्षा स्थाप व्यक्ति क्षा क्षा स्थाप व्यक्ति क्षा क्षा क्षा क्षा क्षा क्षा क्षा क्षा	प्रमुच बहुत व्यक्ति व्यक्ति व्यक्ति हिन्दित्व काम योगा कि हि हान हंग्य दर्शन हेंग्या मधु क्ष्यं हिन्दि व्यक्त

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

10 10 10 10 10 10 10 10						- Miles - Company - Compan	
प्रणा दिवंत स्थान समित समित समित समित समित समित समित समित			२ साकार अना.		२ साकार, अनाकार	२ साकार, अनाकार	२ साकार, अनाकार
प्राप्ता जिलें विकास जिलें के किस्ता जिले			अ	প্রান্থা	अहा.		आहा.
Truit side	.	संशिष	الله معالم الله الله الله الله الله الله الله ا	संगी	स्या अ	संश्री अनुमय	ं१ सर्का अनुभय
प्रणा दिशे प्रणा विकास स्थान समास प्रणा दिशे प्रणा विकास समास स्थान होता है जिस्सा काम स्थान होता है जिस्सा है जिससा है		# #	वे. सयो.	को . स्यो.	औ. था., शयो.	469*	465*
प्रणा विशेष प्रण		मभन्त	~ k	₩७त	मव्यं	२ भच्य, क्षमब्य	र भठय, अभड्य
प्रणा विशेष प्रण		# #	————————————————————————————————————	~ क्ष	~ ₹	م الإن م	~ kö
प्रणा विशेष प्रण		ne hi				435	
प्राप्त विशेष प्रमास		दशैन	केवता बिना	के के ब कि व व कि न त	के को ना	· >>	>>
प्राप्त विशेष प्रमास		संयम	देश स	³ सा., छे. परिः	३ सा., छे. परि.		9
प्रणा दिशेष प्रमा प्रमास प्रमास समास प्रमासि १०० ४ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १	II &	श्चीन	३ मति, श्रुत, अवधि	४ मति, श्रुत अव., मनः	४ मित, श्रुत. अवधि, मन	u	v
ज्याप दिवास प्राप्त विकास	क्ष्य	क्रोडिक		20		o hipele	अक्षात ००
ज्याप दिवास प्राप्त विकास	K o	茅戶	pr	er.	ør .	ա հրքա	առ ըրբթ
ज्यापा विशेष ज्यापा विशेष ज्यापा विशेष ज्यापा विशेष ज्यापा विशेष ज्यापा विशेष ज्यापा विशेष ज्यापा विशेष ज्यापा विशेष ज्यापा विशेष ज्यापा विशेष विशेष ज्यापा विशेष		योग	ह मन अ,बच् ,४ औ, १	११ मन४, वच.४ औ.१. आ.२	ें मन्द्र, बच्च. बौ. र	*	११ मन४, बच्,४ औ. १, बै. १
प्रथमि स्थान समास पर्याप्ति प्राप्ति स्थान समास पर्याप्ति स्थान समास पर्याप्ति स्थान समास पर्याप्ति स्थान समास पर्याप्ति स्थान समास पर्याप्ति स्थान समास समास स्थापि स्थान समास समास स्थापि स्थाप्ति स			मं ~		» ¥£	प्र 7ो ⊶	
प्रयोध स्थान समास प्रयोध प्राप्त प्रवाध प्राप्त प्रयोध स्थान समास प्रयोध प्रवाध प्रयोध प्रयोध प्रयोध प्रवाध प्रयोध प्ययोध प्रयोध		इ िद्रय	~ 'b'	. به.	e~ *b*	ev *b*	بار. م
स्वयंध स्थान समास प्रणामित स्थान समास सं. प्रणामित स्थान सं. प्रणामित स्थान सं. प्रणामित स्थान सं. प्रणामित स्थान सं. प्रणामित स्थान सं. प्रणामित			4 电电	्यं ~	भ °ंग	र बहु	_
प्रयोध स्थान समास पर्याप्ति । स्थान समास पर्याप्ति । स्थान समास सं. प्. पर्याप्ति । स्थान सं. प्. द पर्याप्ति । स्थाप		1度护	%	>>	⊷ ந <u>தி</u> ்த,∏த	अस्बा∟ ∞	व्यस्था ल
प्रयोध स्थान समास स्थान समास स्थान समास स्थान समास स्थान समास स्थान समास स्थान समास स्थान समास स्थान समास स्थान सं. य. इंडेन्ड लेखा—(ध. १/१९/९६० सं. य. अप. सं. अप. सं. अप.		iel is	\$	s/o)	<u>.</u>	\$0/9,3/2, \$0,3/	۵ <u>.</u>
सं. हुन् स्थाम स्थाम समास स्थाम समास स्थाम समास स्थाम समास स्थाम समास स्थाम समास स्थाम समास स्थाम समास स्थाम समास स्थाम समास स्थाम समास स्थाम स्थाम समाम समाम समाम समाम समाम समाम समाम स		मर्थाप्ति.	् इस्तिष्ठि		भ द िमि	,-50१) <i>६/१</i> ६ पर्याप्ति	न्य रिष्ठ
स् स् स् त्यां स् अस् त्राम् स् स् स् स् स् स् स् स् स् स् स् स् स्		जीव समास	, <u>p</u> ,		ंस ^{, ~}	(4,4)% ? 4. 4. 4. 34.	सं. ५
क. क.			*± 'd * →	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	o~ 9 pg	(H. 2)	er fr
	विशेष		स्यमि	पयप्ति ही	प्यक्षि हो	क छेश्या समान्य	प्यधि
F F 2		ग्रेव स्तान	<i>y</i>		9	₹/ •//	
	F	অ	\$	<u>ي</u> م	ans.	US ar	84

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

			<u> </u>	· 		<u>. –</u>	
	<u>उ</u> पयोग	र साकार अमा. सुगपत	साकार अना.	२ साकार, अनाकार	२ साकार अना.	. २ स्तिकार अना•	२ साकार अना,
	अगहा.	र आहा. अमा.	२ आहा. अना.	^ প্ৰান্তা.	अवस्ति । अन्याः	य आहा अना.	্ব ব্যাহ্রা.
	संश्लित्व स	् संज्ञी अनुभय	₩	संख्ये ~	~ # <u></u>	संज्ञी	म
	सस्य,	र सिंहत सिंहत	भिष्या	१ मिथ्या	१ मिरया	१ सासा	सस्
}	пен	२ भव्य अभव्य	२ भरुप अभक्ष्य	र भड्य अभड्य	भ भक्य समन्य	₩ 5₩	२ भव्य,
	स्या मा स्य	~ க் ^ர	~ الأبن	•~ kr ²	•~ o i	~ ko ⁵	॰ क्रि
	ne nx	ش <u>نا</u> ۲۰	443-	412.	는 다 다	413*	455
İ	दशन	3 9	र नेष्ठु. अमध्	न छ , स न	न्युः स्ट्रा स्ट्रा स्ट्रा	नहीं . अन्य	न्स्यः अन्यस्य —
ļ	संयम	४ अस्यम सा.्हे., परि.	% अस्यम	१ उसंशम	ल संघम अस्य	्र असंयम बक्ष	असंग्रम चक्छ.
<u> </u>	श्चाम	ंह विमंग, मन रहित	호 8 3 1 3	क्ष के स्थान	२ १ कुमसि,कुञ्जुल असंग्रम	ख खा स	ক জান জ
३० प्रहत्वााप	क्षाय	% प्राप्तकृष्ट	20	200	20	Da Da	>>
20.5		∞ कं ग्रेगमृह	m.	m	~ 50	NY	m
-	म् म	की, मि. श. मि. श. मि.	१२ मने४, वच.४ वै.२ औ. १, कार्मण	१० मन४, वच.४ औ.१, वै.१	क. श्रम्	१२ मन४, बच.४ वे.२ औ. १. कार्मण	१० मन४, बच.४ औ,१. वै.९
	कास	~ ₩	म् 🕶	र्भ 🏎	त्रस	अंस ⊶	मा ~
	ह िदय	৵ *๒๋	٠- با	er 4r,	~ 'b'	₩ '₽'	ev 'D'
	गति	म क ५०	३ नरक रहित	३ मर्क रहित	مراب مار م	३ नरक रहित	्र सहस्र
	可見	अस्येक्	3 0	20	7 9	78	%
	प्राण	r. 9	8/02	<u>.</u>	9	No?	2
	पर्याप्ति	अनयिसि	६/६ ६ पर्याप्ति ६ अपर्याप्ति	्र नथि। सि	अप्याधि अप्याधि	६/६ षयाधि अषयिधि	ई पयगिति
	जीव समास	, 4, 8, 4, 4, 4, 4, 4, 4, 4, 4, 4, 4, 4, 4, 4,	र सं. प्र सं. खष्	.प	. td.	र सं, व. सं, अप,	# ' ' '
{	मुख स्थान	× 5, %	१ मिथ्या	्रि मिध्या	्र मध्या	सासा	सास्
मार्गणा जिल्लेष	पर्याप्त अपर्याप्त	अपयम् अप्यम्	सीमान्य	पर्याप्त	व्यव्यम्	सामान्य	<i>चर्या</i> द्व
إباطا	ग्रैव स्थान		•	٠,		~	e
H .	.	øv	20	*	940	9	И

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	<u> </u>	¥	₹ -	—————————————————————————————————————	٠ •	<u></u>	ж.	<u>۲</u> .
	उपयोग	२ साकार अना.	साकार, अना,	सामार अनाः	र साकार अना_	्र साकार अना.	२ साकार अ ना,	२ साकार अना,
	अहि.	२ आहा. अना.	अ।हा.	२ आहा. अना.	१ आहा.	े अहा. आहा,	. १ आहे	१ आहा.
	संधित्व	# '	म् व	सं 🐣	मंधी	म अंब	संभी	स्इो
	स्म्य.	सासा.	 भिष्र ~	3 औ क्षा. क्षयो.	है औ., शा. ह्रयो.	औ. क्षा. समो	बै, सा. सयो.	्र औ. सा. सयो.
	भंडय	भव्य	भ	भठम	¥ठय	भवय	भठ्यं	भव्य
	लैश्या (. भा.	~ k³⁄	ंत्र ~	~ k³>	~ kå	ر <u>تم</u> ~	•	نما ۳
	TE Ità	w	47	1 07		~ 	***	w
	द्शंन	२ यक्ष., अबक्ष	न्तुः, अच्छु व्य	के ब्र बिनाः चिनाः	केवत बिना	के के ब्र किना	किं विना	३ केबल किना
	संयम	थ्य संयम संयम	थ्य मं सम् सम्सम	१ असंयम	थ .*	€ संयम	थ्यः असंयम्	स मुद्
	, আ	२ १ कुमति,कुथुल बसंयम	३ इामाश्चान मिथित	३ मति,श्रुत, अवध	म मित्, धुल अवधि	३ १ मति, शुत वस्यम बन्धि	३ मति, श्रुत, अवधि	४ भाति, धुत. अव., मनः
	भाषक		20	20	29 ,	20	20	20
	3€	•~ ₁ pô	m	w.	tu-	~ pr₀	w	er .
२० प्रस्पवार्ष	योग	के मि. कामण	१० मन४, बच्च.४ औ.१. में.१	१३ आ. द्वि.	१० मन४, वच्.४ ऑ.१ वे.१,	4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4	ह मन४, बच.४ खौ.१,	११ मन४, बच.४ थौ.१,आ.२
	काय	₩ ₩	यं ⊶	** K	≈ ₩	≈ ##	त्रस	~ F
	इक्टिय	~ 'ד'	∾p.	~ -b"	•~ "b"	∾ b	~ "b" '	بط مه
	गति	~ ya	३ मरक रहित	इ नरक रहित	३ नरक रहित	क कि स्त्री हो	मतु	भ रा
	18,0	·20	20	26	>∞	*	>>	20
	प्राण	9	\$	s/o≱	~	9	°}	\$/0}
	पर्या षि	६ अष्योप्ति	<i>६</i> वर्षाप्ति	<i>६/६</i> ई पर्याप्ति ६ अपर्या.	म्यम् हि	६ पर्याप्ति	द् पर्याप्ति	<i>६/६</i> ६ पर्याप्ति ६ अपर्याप्ति
	जीव समास	र, अप	ं _त भ	. सं. त. सं. खत्	सः भ	्र सं. अप.	p- 'kp'	सं स सं अव
	गुण स्थान	सासा.	भिभ	≈ 	अवि	अ नि.	~ io ->√	प्रमुख
बरोष	ार स्थाप्त हिं अपयप्ति	अपयप्ति	सामान्य (पर्याप्त हो)	सामान्य	म्यवि	अपयसि	सामान्य (पर्याप्त	९५ ६ ठा सामान्य
मार्गणा विशेष	गुवा स्थान	Gr.	øy	>∞	20	20		
ĮĘ	HE	w	o •	D	· •	£.	20	<u> </u>

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

				·				
	उ पयोग	२ साकार अना,	t	1		र साकार, अना,	र साकार अनाः	२ साकार, अना,
	आहा.	१ आहा,	1	l	1	अ आहा. अना.	अ	२ आहा. अना.
	संज्ञिल	संख्	1,	ı		२ संज्ञो असंज्ञी	र संजी यसंजी	र संज्ञी असंज्ञी
	सम्य,	३ औ., स हायो.	ı	. l	ı	~ Æ	ं क	ب ۴.
	भठय	भ <u>भ</u>	!	1	Į	्र अभस्य	अभव्य	%
		∾ কৈ	1	ı		w	us-	- Ciu
	म् प्रा	Net-	1	<u> </u>	<u> </u>	May	ter	জি দ্বা প
	म रहे	की बाह्य भा	l	ı	I	- बहु, अब्हु	१ असंयम बक्ष, अबक्ष	न हु, अन्यक्ष ने . श्रु हो
ainc	संयम	३ सा., छेड़े मरि.	1	1	1	९ असंयम	१ असंयम	असं यम
२० मह्त्रपणाएँ	ख	४ ३ मति., श्रुत.,सा., अत्र., मन. परि	मूलोधनद <− 	मूली घवत् <	भूलो घवत ←	अ अ न	म स्था स	कम ति, इ. इ. ४. इ. ४.
i	kliste	20	ूम्ब	जी जी	 हिं	2 c	20	20
	र्इह	es.				or	W.	nir-
	योग	१ मन४,त्रचः,४, औ. १	1	↑	1	१३ अग, द्वि. रहित	१० मन४,थच.४ औ.१,थे.१	थी. मि. के. मि., कार्मव
	काय	₩	1	!	1	ub'	atts.	1415*
	इन्दिय	~ ±	Į.	ı	i	غ د	*	s.
	गति	ण्यं ५	l	i	ı	20	, %	20
!	持刻	ar हड़ीर.ाह				20	20	20
	ык	.	I	1	Į.	१०/७,६/९. ८/६,७/६, १/३,४/३	\$0,5,5 \$,5,6	e 'o' * ' ' ' ' ' ' ' ' ' ' ' ' ' ' ' ' '
	पयीप्ति	६ पर्याप्ति	1	l	i .	६,६,४ पर्याप्ति अपर्याप्ति	६.५.४ पर्याष्टि	६.१.४ अपर्वाप्ति
	जोब समास	ं व	i	(505)	<u> </u>	%	9	9
	गुण स्थान	о а		. २/१.१] १४वा सिद्ध	मारीण २/१,१/६.	. 3/8.1/ 8 ff.	~ ₩	~ Æ.
मार्गणा दिशेष	पर्याप्त अपर्याप्त	सामान्य (पर्या: ही)	क्रु सर्व ू जिल्लाप	७. अल्हेक्य—(ध. २/१,१/६०१) १ १४ पर्याघ्र १	9 १. मच्चरच मार्गोणा— १. मज्य—(घ. २/१,१/०१) १ ॐ सर्म — ।	२. अभव्य(घ. १/९.१/८०३) १ १ सामान्य १ १४	पर्याष्ट्र	अपया ह
5	माक्ष्म गुग	9	\$}-=	(B) 25. - 26.	89-3	ঠি ~	~	~
F	in.	*	er.	<i>9</i> • √	• • •	0° •	~	(n·

	 .					
	डपयोग		२ साकार, अमा. युगपत्	श्व अना:	२ साकार अना, युगपत्	२ साकार, अना. युगप त्
) 	आहा.		२ अहा. अना,	२ अना.	अहा. अना.	२ आहा, बना,
	संज्ञिल	t	् संडो अनुगय	्र अनुमय अनुमय	संज्ञी। अनुभय	१ संखी अनुभय
	# #		३ थौ., शा.: ह्रयो.	³ ब्रो, सा, सयो,	में अपे , क्षा, सयों,	- #H.
	स्थ्य		१ भड्य अनुभय	भ उब	१ १	१ भव्य अनुभय
Ì	= =		अधेश्य 🐷	ு நூற்ற	413,	me pighte
	होरया ह. मा.		40	*	ल हैं को	, w
	दर्शन		>>	2 0	3 0	20
	संयम		अनु भय अनु भय	9 '	४ अस्थम सा., छे. यथा	े अनुभय अनुभय
顶	গ্লান		<i>S</i> /	er .	स ति, श्रुत, अव., केव.	५ मति, श्रुति, अव., मनः, केबल
क्रियुत्त	क्षाय		अक्षाय ॰	> nib⊕b	अक्रवास 😙	% विश्वास
३० प्रक्षपणार्	वेह		a du <u>l a</u>	or Plable	ल जे के कि विक्रम	31.0 m
,	मंज		१५ अयोग	१४ में. मिं. रहित अथवा १९ भन्छ, बच्च,४ औ.१. बै.१	% % % % % % % % % % % % % % % % % % %	*
	काय		१ जस अकाय	प्र प्र	त्रस	अकाय अकाय
	इन्दिय		∾ भे. फहरीमी छ	~ 'b ⁻	w pr [™]	≈ H.
	गति	_	∞ हो। इम्री	20	>0	∞ நிரதேழி
	421		ॐ पहांक्र	∞ महास्र	ு ரத்தை	ol4.21 ∞
	XTO		१०/७ _१ थ्र/२ १ अतीत प्राण	* * * * * * * * * * * * * * * * * * *	9	१०/७/४/२,६ असीत प्राण
	पर्या प्ति		६/६ ६ पर्यापि ६ अपर्यापि अतीत पर्यापि	द द स्योधि	्र अप्याप्ति	र. झायिक सम्यक्त्यं — (घ. १/१.१/६०७ न्दर २) १ सामान्य ११ २ ६/६ ४–१४ सं. प. ६ पर्याप्ति अतीत सं. अप. ६ अपर्याप्ति अतीत सं. अप. ६ अपर्याप्ति
	जीव समास	Ł	र सं. प. असंअप. खतीत जीब स.	م. م.	सं. अप	स्व — (घ. १/१. ११ २ ४–१४ सं. प. अतीत सं. अप. अतीत
	मुब स्थान	' मार्ग ण ^{[त्य} —	१९ ४-१४ अलीव मुण.	**************************************	שג אף שג מה שג	क्ष्यं — (४-१४ अतोत
मार्गणा विशेष	पयक्षि अयम्	१२. सम्यक्त्व मार्गणा- १. सम्यक्त्व सामान्य	सुमिन्धि	चर्या प्त	अन्यसि	येक सम्य
	नाथ्र प्यान	र. सम्ब				स्राहि
1	.⊭£	o- 💸	ev	ø	(r)r	n' w

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

_	उपयोग	२ सोकार अना.	र साकार अमा, युगपत्	२ साकार अना.	२ साकार अनाः	२ साकार अमा.	२ साकार अना.	1
	अगहा.	२ आहा. अना.	आहा. अना.	ર આંદા. વ બેના.	अ ।हा.	२ अग्रहा, स् अमा,	₹ ऑहा. स	मृत्रोध वर्
	संजिख	१ संभी अनुभय	्सं हो अनुमय	ধ্র	य खाँ खाँ	~ iv	संदो	•
ļ	सम्म	~ II	≈ ‡	۳. ب	~ ₩	~ ±	۶. ۱۳۶	۶. <u>۱۳</u>
].	ਮਤਬ	~ क्र	भुक्त	भवस	भ ्भ	म् भ	रू इ	1
	लेख्या ह. मा.	जिंद्धेश च	स्. का. शु. शु.	415*	ma.	२ ४ मा. का. यु. शुभ	er स ev	1
	हर्शन	26	20	केव ल किया	. श्र किंगत किंगा	क्षे ब्रा	क केबल बिना	,
	स्यम	<u></u>	8 असंग्रम सा., हो, यथा,	१ असंयम्	अस्यम् स्यम्	९ असंयम	देश सं.	l ,
ש	म श्री	म् ब्रो	४ मसि, श्रुत. धन, केबस	मित्र,श्रस. अवधि	ड़ मति, श्रुत. अबधि	३ मति, श्रुत, अवधि	ः मति, श्रुत. अन्धि	^ '
ত সক্ষেদ্যগোত	क्रियाच	∞ hip∓fe	∞ hila⊈h	20	200	20	20	
20 X	36	т Бирр	अस्तु क्षेत्र अस्तु	to.	us.	म ल्व २०	m,	
	धीन	११ मन४, बच. ४, औ. १. वे. १ अा. १	की मि. आसी. आसी.	१ ३ आ. द्वि. रहित	१० मन ४, बच.४ औ.९ बे.९,	के. के. मि. के.	ह मन४, वच्च,४ औ. १	मूलोय भ
	कांय	र्भ ४०	्रम ∽	्रा भा ४०	% ≱स	শ ও	₩	
	क िंद्र स	~ 'b'	~ b	₩ 'b'	ev 'b'	₩ 'p'	~ ₽ [*]	1
	गति	∞	2 0	20	> 0	∞	भ 🏎	
1	特都	वस्या 🗠	व्यस्था ००	20	>>	20	20	च च
	प्राज	3;2/8,03	9 0	s •} s/o}	°.	9 ∵	\$	मुलोध ब व
	स्था पि	यम् स्याप्ति स	<i>६</i> अपर्याप्ति	र् <i>/ह</i> ६ पर्याप्ति हंअपर्याप्ति	६ पर्याप्ति	अपयशिस	६ पर्याप्ति	v
	अीव समात		सं.	सं. प. सं. अप.	ج ر * .	स अव	. ~	1
	स्थान	** ** ** **	w mp m	জ দী	ल ज	अं क	* क्	l
मागणा विश्वे	पर्याप्त अप्यम्बि	न्यः ,	अपयिध	सामास्य	पयभि	अपर्याप्त	सामान्य	सर्व
ا <u>ا ما ا</u>	माध्र कि			20	20	>>	-×	१४-३ इस्
#	'AF	. ~ .	mt ,	>>	av.	şuo-	9	, v,

				I- /		b/	h-2
	डपधोग	साकार अना,	२ साकार अना.	२ साकार अना.	१ साकार अना.	साकार अना.	र साकार अना,
	अ । ।	ें आहा. अना.	প্ৰাৰ্ <u>ত্তি</u>	२ आहा. अमा.	२ आहा, अना,	্ধ জাহা.	अहा, अना,
	संज्ञित्व	सं	सं 🐣	संजी	संखी	सञ्ज	संजी
	सम्प्र,	ं स्रयों	क्ष्यो.	क्षयो	१ सम्ब	१ क्षयो .	स्यो.
	भव्य	भ ध्य	भव्य	**************************************	भुङ्ग	१ भडव	भञ्य
ŀ		413′	413"	qu)	વહ	w	*to
	म् मा	uy-	40-	প্ৰ লৈ স	w	40"	্ৰ শু
	दर्शन	के केब बिना	३ केवल बिना	के किवस बिमा	३ फेबल निना	क्षेत्र स बिना	केवता विना
	संदम	५ असंयम देश सं. सा., छे., परि.	र असंयम देश सं. सा., छे. वर्षि.	३ अस्यम् सा, छे,	१ असं यम	१ असंयम	९ असंयम
	श्चान	४ मति,श्रुत. अव,. मनः	४ मिति, श्रुत, अब , भनः	्रै मति,श्रुत, अवधि	३ मति, धुत. अवधि	३ मति, श्रुत, अवधि	३ मति, श्रुत. अवधि
	hib#	>	∞	20	20	20	20
≯ ⊵_		m·	py	م بن بط	tus.	m	a po t
२० प्ररूपणाएँ	योग	*	११ मन४, वच.४ औ. १ वै १ अा.	औ मि. में पु. मि. था मि., नपुं. नामण	१३ बा, द्वि. रहित	१० मन४,वच्ड, औ. १. बे. १	अ. मि. क. मि. कामण
	काय	अं ५	्रस ⊶	₩	त्र ५	# ₩ ~	्र स
	इन्दिय	~ 'b⁻	تْ. به	م. هـ بار	*~* * 10 *	our TOT	₩ ₩
	मीत	>>	>∞	3 0	20	3 0	30
\	TEH	200	20	20	20	70	20
	A (9	9,00	*	9	8/0}	\$	9
	_{पयिसि}	 वेदक सम्बक्त — (ध. २/१.१/८१२-८१७) सामान्य ४ २ ६/६ ४-७ सं. प. ६ पर्याप्ति सं. प. ६ वर्यापि 	नयः। प्रि	्र है अपयोसि	<i>६/६</i> ६ पर्याप्ति ६ अपर्यापि	६ म्याप्ति	^६ अपर्यापि
	जीव सभास	. २/१.१/८ ३ सं. प. सं. अप.	, r di, ~	सं. अप.	 सं. व. सं. अव.	≈ 	सं अप
	मुषा स्थान		20 - 20 20 - 20	ts. 20 πs.	१ अति	জ জ	अवि
मार्गणा विश्वोष	पर्याप्त अवय्धि	क सम्यक्त सामान्य	च्या सि	अदयसि	सामान्य	न गप्ति	अनयप्ति
旨	गुज स्थान	न्द्र			>>	>>	20
H.,	'al'	m ~	O.	QT'	≫	ઝ	4Ly-
-							

Jain Education International

.—						
	आहा, उपयोग	२ साकार् अनाः	२ साकार, अना,	र साकार, अना,	२ साकार, अना,	२ साकार, अना.
		्र अस्हा,	१ आहा,	अहा	२ आहा. अना.	२ आहा. अना.
	सं ज्ञित्व	संखो	संजी ~	खो, ~ सं	म् जी	च्या ⊶
	स्मित्	क्षयों.	क्षयो,	क्षयो ~	० भूस	م م
	भव्य	er Heat	,	१ भव्य	#34 ~	भव्य
	तेश्या इ. मा.	er (€)	क हिंग फ	سه ا له سه اله	mo.	my.
		·				
	दर्शन	३ केबल बिना	भेष भेष व	के के क्स किना	है किना'	के के बत
	संयम	नेश सं.	 वार. हो.	सा * सा • छे,	क परि, रहित	क परि. रहित
	ज्ञान	३ मति, श्रुत्,,देश सं, अवधि	४ ३ मित, भुत, सा., छे. अवधि, मन्त्र परि.	४ मति, श्रुत,	४ मति, श्रुत, अवधि, मन,	४ मिति, श्रुत, अव., मनः
ĺ	k lpa	7 9	20	20	2d, ±° ∞	34° €° ∝
णार्ष	₹£	m².	m	par	от Виню	m Pleble
२० प्रह्तपणाएँ	योग	ह मन४, बच ४. खौ.१	११ मनध्, बच.ध, औ. १.आ.२	ह मनधःभवः ४. अतै. १	१२ मन४,त्रेष, ७ औ.९, व. २, कार्मण	१० मन४,वच्,४, थो.९, बे.१.
	म स	अंस ~	अस ⊶	त्रंस	्र ज ~	त्र ५
	इन्द्रिय	ev "p"	₩ 'b'	er b	∞ 1 ÷	~ F
	मीय	高高	म थ्या ४	₩ tiv	≫	20
	संद्या	>	20	∞ 5317,110	अस्बा ∞	असे हो ≈
	jaj k	•	9/0≯	°	8/02	8
	पर्वाप्ति	६ षयिधि	<i>६/६</i> ६ पर्याप्ति ६ अपर्याप्ति	न्य । स्था स	<i>६/९</i> ६ फ्यांसि ६ अपयस्ति	६ पंग्रीप्त ६ अपर्याप्ति
	जीव समास	. ~	२ सं. प सं. अप्	सं. सं. द	स स . अ. प	सं. ≁ .म.
	मुज स्थान	পু শু	१ प्रमत्त	% अभनत	۰ 🛫	\$\$-8 2
मार्गणा विशेष	पर्याप्त अपर्याप्त	सामान्य (पर्या. हो)	सामान्य	सामान्य (वर्षा: हो)	उपराम सम्यक्त्व- सामान्य द	पर्याप्त
<u>a.</u>	मुण स्थान	-S-C	40°	9	্র ব্	
 	je i	9	រ	w	> ~	6
				· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·		

प्राचन विकेष प्राचन विकास प्र				~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~				
प्राथमिक क्षित्र प्राप्त प्रा					े साकार साकार अना.		र साकार अमा,	साम्बार अना,
प्राप्ता त्रिक्त स्टब्स			थ आहा, अना.	२ आहा. अना.	१ ब्राह्म,	र आहा. अमा.	अगहा,	৵
प्रकार क्षिक्त क्ष्मांत्र क्ष्मांत्		संक्षित	क्सं क्ये	~ (III)	संबं	१ संबो	±. ~	सं अ
प्राप्त क्षितिक प्राप्त क्षित क्षितिक प्राप्त क्षत क्षित क्षित क्षित क्षित क्षित क्षित क्षित क्षित क्षित क्षित क्		सम्ब	१ औप. द्वितीयोपश्म	्र अपूर.	% oft.	१ जौप. द्वितीयोपश्म	औष	अ वि
प्रकाश किया हो हो हो हो हो हो हो हो हो हो हो हो हो		भश्य	भव्य	भुक्त	भुव्य	भुक्त	¥ au	१ भन्य
प्रकाश किया हो हो हो हो हो हो हो हो हो हो हो हो हो		睛	m #		40-	`	m F	m Z
प्राप्त कियो प्राप्त		The No.	~ <u>i</u> isi	4u-	ulb.			
प्राप्त क्षित्र क्षित् क्षित्र क्षित्र क्षित्र क्षित्र क्षित्र क्षित्र क्षित्र क्षत्र क्षित् क्षित् क्षित्र क्षित्र क्षित्र क्षित्र क्षित्र क्षित् क्षित्र क्षित् क्षित् क्षित् क्षित् क्षित् क्षित् क्षित् क्षित् क्षित् क्षित् क्षित् क्षित् क्षित् क्षित् क्षित् क्षित् क्षित् क		दर्शन	# ————————————————————————————————————	केवत केवत बिना	३ केथल किना		के ब्रह्म बिना स्था	के के व बिना बिना
प्राप्ता विशेष प्राप्त प्राप्		संघम	९ असंग्रम,	अ संयम		& *		
प्राप्ता विशेष प्राप्त विशेष प्त विशेष प्राप्त विशेष प्राप्त विशेष प्राप्त विशेष प्राप्त वि		श्चान	३ मति, श्रुत,, अवधि	ै मति, श्रुत,, अनिध	३ नित, थुत, अन्धि	३ मिति, श्रुत , अवधि	३ मति, श्रुतकृ	8 ਸਹਿ, ^ਲ ਗ _{•,} अब, ਸਜ:
प्राप्ता विशेष हिं अपर्याप्त रियान समास पर्याप्ति अपर्याप्त स्थान समास पर्याप्ति अपर्याप्ति स्थान समास पर्याप्ति अपर्याप्ति स्थान		hlbæ	20	20.	>>			20
प्राप्ता विशेष हिं अपर्याप्त रियान समास पर्याप्ति अपर्याप्त स्थान समास पर्याप्ति अपर्याप्ति स्थान समास पर्याप्ति अपर्याप्ति स्थान	E	#	∾ bii	en-				
प्रयोध प्रयोध प्रयाध व्याव प्रयाधि याण क्षिम गाँउ क्षेत्र कार्य क्षेत्र व्याव क्षिम व्याध व्याव व्याव व्याव क्षेत्र व्याव व्याव क्षेत्र व्याव व	39	स्रोग	वे. सि., का	१२ मन४, थच.४ औ. ९, बेन्स्	१० मन ४, बच.४ औ.१, बै.१		ह मन ४, बच्.४ थो. ९	ह सनप्रज्ञव्ह. ४, औं. ९
हिंच स्थिति विश्वेष स्थान स्थाम व्यक्ति वाल सिंच गति । श्विका विश्वेष स्थान समाम व्यक्ति वाल सिंच । श्विका विश्वेस स्थान समाम व्यक्ति वाल सिंच । श्विका विश्वेस स्थान समाम विश्वेस स्थाम स्थाम विश्वेस स्थाम विश्वेस स्थाम विश्वेस स्थाम स्थ		काय		#	अंस	% ≫स	₩ ₩	
प्रयाम प्रयाम		स िप्रय	~ Ѣ	~ Ъ;	م . ب.	evp.	~ '⊅'	∞ 'b
स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित समास्तित समास्तित समास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वासित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वास्तित स्वासित स्वास्तित स्वासित स्वास्तित स्वासित स्वा		मि	∾ तेष	20	30	√ lb ✓ l	~ # E	₩ k
हुँ वर्गाप्त विशेष वर्गाप्त क्षांत्र वर्गाप्त वर्य वर्गाप्त वर्गाप्त वर्गाप्त वर्गाप्त वर्गाप्त वर्गाप्त वर्गाप्त वर्गाप्त वर्गा		संजा	×	>>	20	20	>>	20
हुं पर्याप्त दिश्लेष क्षित्त क्षित्त क्षित्त क्षित्त क्षित क्षित्त क्षि		प्राव्य	9	9/08	<u>.</u>	9	~	Ş-
हुं पर्याप्त स्थान समास्त हुं स्थान समास्त स्थान समास्त समास्त हुं स्थान समास्त समास्त समास्त हुं स्थान समास्त हुं स्थान समान्य र र र र र र र र र र र र र र र र र र र		नय िक्क	६ अपर्याप्ति	६/६ ६ पयिभि ६ अपयिषि	द प्याधि	ई अष्यिंहि	म न व व व व व व व व व व व व व व व व व व	ह पथां प्रि
हुँ पर्याप्त दिसेव हुँ अपर्याप्त स्थान उपर्याप्त १ ४ तामान्य १ ४ वप्राप्त १ १ व्याप्त १		जोब समास	सं द	संस्	~ .₩.		. d. ~ . Ti	णं अ:
र्ट			ळा ~		% बि	জু ~	मुख्य स ्	
्ट ००००००००००००००००००००००००००००००००००००	विशेष	पद्मशि अपर्याप्त	अष्यभि	सीमान्य	नथिसि -	अपम्प्रीम	सामान्य (पथरी.	सामान्य
# "p" 87	101	गैव ६अस			20			
and the contraction of the contr	₩ [- 	B.A.	>>		415-	9	n <

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

				·			·					
	उपयोग 	२ साकार अना.	_ 1		1		1		ſ	<u> </u>	२ साकार अना.	२ साकार अना.
	आहा.	१ आहा.	- मुखोघबत् -	<u></u>	1		-		1		२ आहा• अना,	अतिहार
	संज्ञित	सं 💝			1		1		1		मं 🕶	- H
	सम्य,	्र औष.	% % %		I		ı	_	1	•	w	uv
	भव्य	रू भव्य	1		1		ŀ		Ī		र भड्य, अभड्य	२ भ ठय अभठय
		्रम क	ī		1		l	-	Ī		tus-	u.
	लेह्या ह. मा.	w	1	,	1		1		Τ.		- Liv	w
	दर्भ	के बहा बिस्मा	l		1		1	·	1		के केबल बिन्	केव स बिना
	संयम	स भू ख्र	1]				नेव् ।		9	ø
<u> </u>	ir iii	४ मति, भुत अश्रधि, मम	Î	 	गस्थानबद् 		थानवत् — ो		मूलोबमें सम्यस्मिध्याद्दष्टि गुणस्थानवत् ।		७ केबल ज्ञान बिना	& केबल खाम किना
\ \ \ \ \ \ \ \ \ \	क्षाय	20			ਜ਼ਿੰ ਜ਼ਿੰ		30th		मध्य		अक्षांध ∝	्र प्रक्रिया क अवस्य
ا ۋ	3€	w	1		ध्याद्ध 		31344 		स्य[र 		w Dippe	
	योग	र मन४,बच.४, औ. ₹	मूलो घवत		. ओष्रमें मिश्याहर्षि गुणस्थानबद् 		आधमें सासारम गुणस्थानवत् 		मृलोघ में स		<i>x</i>	११ मन४, बच.४. थो.१, ब.१, अहि।.१
	काय	ov iu Air	!								र्य ⊶	₩ **
	इन्दिय	∞.ъ.									بة. م	~ 'o`
	मित	~ क्षेत्र म	↓		V		1		V		*	5 0
Ì	स्था	₩ तंद्री ७ ,116	l		1	<u> </u>	1		1		अस्था ∞	अस्डा ∞
	भाव	0	l		Ì		ł		!		o/o ≯	°
	पयिषि	६ पर्यास्ति	[ı	() ()	ł	(*	ı		ई/ई ई पर्याप्ति ६ अपर्याप्ति	द्र विद्यास स्म
	जीब समास	₩.	1	(४८५/१) ।	1	(घ. र/१,१/ ^८ २५) ।		\8,8/⊏₹ -	ı	8e2-4e:	सं. य. सं. थ.	.म.
	गुण स्थान	۶ هو ۴-	नाव	म. २/१, । 	साय	l	बाद) — ::-	- PTE	ॉजा २/१.१/ ⁵	* 1	25.
 - - - - -	पर्याप्त अपर्याप	प्यमि हो	सर्वे आ लाप	(मध्यात्व—(भ. २/१,१/पद्रह्र) 	सर्वे आलाप ।	ह. सासादन सम्यक्त्व ।	२ सम्आताप 	७. सम्यग्निथ्यात्व—(घ.२/१.१/ ^८ २ <u>१</u>)	३ सर्वे आ लाप 	१ ३. संज्ञी मार्गणा १. संबी— (घ. २/१,१/⊏२ _१ -⊏३४)	सामान्य	पयसि
मानाना विश्व	रीवा ६४। ध	9	_ হু হ	_ · · -	~	सास _		सम्ब		संशो		
Ŧ İ	. 	ω	<u>ې</u>	5	~	613 ⁷	•~	9	•~	٠٠ من	o~	or .

	<u></u>	<u> </u>	₩ .:	Ę. t	F. F	<u>اب ج</u>	윤 .	· ·
-	उपयोग	र साकार अना.	र साकार अना.	र साकार, अना.	२ साकार. अना	२ साकार अना.	२ शाकार, अमा.	२ साकार, अना,
	्र अगहा.	र आहार अना.	२ आहा. अना.	্পাहा.	श आहा. अमा.	२ आहा. अमा.	अहा.	२ आहा. अना.
	संशिष्य	संद्यो 🐣	শ্ৰ কা	स् स्बो	स खाँ ~	्यं क्र	संज्ञी	जों. ५
	सम्ब	१ सम्धरिम् विना	१ मिथ्या	१ - मिथ्यां	१ मिथ्या	सासा	१ साहा	सासा
	भव्य	२ भव्य अभव्य	२ मञ्ज अभड्य	र भक्य अभव्य	२ भव्य सभव्य	भव्य	१ भट्य	र भव्य
	म्	40	NO.	my.	. 100"	w	May-	mp,
	स्य स्य	প ই জ	415	415.	ख़ की उ	alo-	ws.	क्षे जा अ
	दर्शन	केवता बिना	न अन्धः अन्धः	् नस्रु. अन्तस्रु	२ बह्य. अबह्य	२ मध्य, अपश्च	२ चसु, अच्छ	२ चक्षु. अच्छु
	स्हा	३ इक्षस्यम सा., छे,	्र अस्यम	१ अस्यम बिह्य	१ अ संयम	१ असंयम	१ असंयम	९ असंगम
	্যা	१ 3 कुमति, कुश्कुत अस्यम ३ ज्ञान सा., छे,	ও জন্ম জন্ম	ও জন্ম জন্ম	२ कुमति,कुश्रुत	थ्रज्ञान अज्ञान	थहान	.द कुमति, कुभुत् असंगम
	क्षाय	20	20	29	7 0	30	>-	≫
i.	34	eo.	ar	m n	m	W.	w.	pr
२० प्ररूपणाएँ	थोग	औं, मिं. श.मिं. शार्मिं	१३ आ. डि., रहित	१० मन४,बच्च.४ छो.१,भे,	अ.स.स. इ.स.स.	१३ आ. द्वि. रहित	१० मन ४, बच्छ औ. १, बै. १	अ. में. स. मि.
	भाव	* H	~ × ×	रम् भ	त्रस	त्र ५	त्र	्र या ~
	इन्ह	∾ b.	ev •b•	~ ¹ ;	વ° જ	ov .p.	<u>با</u>	م . ب <u>م</u>
	गति	>	20	20	>>	3 0	>>	३ नरक रहित
	स्द्या	20	>>	20	20	3 0	>>	3 °a
	loi k	9	s/0}	°	g	8/02	~	9
	मय्ति	क् अपर्यास	<i>६/६</i> ६ पयिपि ६ अपयिप्ति	६ पर्यापि	६ अपर्याप्ति	<i>६/६</i> ६ पर्भाष्टि ६ अपर्भाष	द पथिति	ह अपर्यापि
	जीव समास	्सः अ.	्र सं. प. सं. अप्र	~ '\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\	सं. य	, अ सं. प. सं. अ.प.	इंग	्र सं. ध्र सं. ध्र
	मुम स्थान	20 th. ma.	१ निध्या	र मिध्या	१ मिध्या	१ सासा	१ सासा	सासा
मार्गणा विशेष	पग्नधि अपग्नशि	अपयप्ति	सामान्य	पय धि	अवय्वि	सामान्य	पयमि	अनयमि
	गुज स्थान		~	٠	s-/	n-	ar .	or .
11	, H2	w	20	-×	Act	D	V	w

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

					·		
	डपयोग	२ साकार अना.	र साकार, अनाकार	र सम्कार, अनाकार	२ २ आहा., साकार, अना. अनाकार	l	२ साकार, अनाकार
	आहा.	अहि.	र आहा. अमा.	अहि।,	र आहा,, अना.	1	. १ आहा. अना.
	संज्ञिल	संजी	.सं. औ	क्षें क	स्क <u>म</u>	Į	थ संजी ————————————————————————————————————
	सम्प्र.	१ मिश्र	३ खौ., क्षा., क्षयो.	है औ.,सा., ह्रयो.	औ. क्षां क्षयो.	1	मिथ्या
	भव्य	भव्य	भव्य	१ भव्य	* भव्य	1	२ भड़्य, अभड़्य
	लेश्या द. भाः	العلق	eu-	MTA.	CLEP*	<u> </u>	85 80 S
	लेख्या इ. मा	ert.	·405°	w	क है के	ł	w
	दर्शन	२ बहु, अच्हु	े ३ केब्ल किमा	क्षे बि बना	मी विकास विकास	ı	१ असंग्रम् बस्तु, अवस्तु
	संयम	१ असंयम	₹ असंयम्	१ असंयम	असंयम्	ł	
गर्	श्चान	३ ज्ञानाज्ञान मिश्र	३ मति, श्रुत. अवधि	्र मिति, श्रुत, अवधि	३ मति, शुत. अवधि	1	२ कुमिति, कुथुत
২০ সন্ধবদ্ধাৰ্	क्रमाय	~	29	20	>0	<u> </u>	20
%	茅牟	No.	m.	or	6. Pa p.o	1	gr.
	योग	१० मन४, वच,४ औ,१, बे.१	१३ आ. हि. बिना	१० मन४, बच्च.४ औ.१. मै.१	ه . بلر. ها. بلر.	मूलोघबत	% अनु. बच. १, औ. २, का.१
	काय	क्र क्र	~ ¥ ¥ ₹	₩	→	↑	*AP
	इन्दिय	, d, ~	~ ⁺ฮ [*]	~ + '	pv. ,p.,	1	۵.
	गति	20	20	≫	20	1	् व
	頂牙	20	20	200	>>	1	50
	प्राथा	ે	%/0 }	٥}	9	l	8/9; 5/8; 9/4; 8/8; 8/3;
	पयशिष्ठ	है पर्याप्ति	ह ह पर्याप्ति है अपर्याप्ति	् पर्याप्ति	६ अपर्शि	1	र) १,४ पर्याप्ति अपर्याप्ति
	जीव समास	₩, ₩,		स्य			/2३४-८३५ १२ सं. प. ब सं. अप. रहित
	मुण स्थान	्र मिछ	अं ~	अवि.	ج ه آ <u>.</u>	1	(a. 3/8.8/ -u (a. (a. (a. (a. (a.
मार्गणा विद्योष	नमप्ति अन्दर्धाः	सामान्य पर्याप्त	सामान्य	पर्या प्त	अपयधि	सर्वे	र. असंद्यी—(घ. २/१.,१/८३४-८३६) १ सामान्य १ १२ (भ. सं. प. (३) ब (३. जन्म/४) सं. अप.
릴	गुण स्थान	pr-	20	20	20	F?-3	अस.
<u> </u>	प	°	ø.,	£.	e E.	22	př ov
							· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·

_	7	, Pr	- 17				- W	
	डपयोग	र साकार. अनाकार	साकार, अनाकार	<u> </u>	~	साकार, अनाकार युगपत्	२ साकार, अनाकार धुगंपत्	्र सामार अना: युगपत्
ĺ	अहा.	* आहा.	२ आहा. अना.	1	9.4	अताहा.	अ	्र ऑहा,
	सिक्षित्व	्र असं इति	् असंज्ञी	l	a-	मंडों असंदी बनुभय	१ संज्ञी असंज्ञा	२ संज्ञी असंज्ञी अनुभय
	सम्प	मिध्या	१ मिच्या	1	auju		us.	्र मिश्र बिना
	भेरुय	२ भव्य, अभव्य	२ भच्य, अभव्य	1	æ	भग्य, अभव्य	२ भक्य, अभक्य	२ भट्य, अभ <i>ट्य</i>
	मां ख़ा	Mg	ભંદી જ		*0*		413"	****
1	वेश्वया स.	445			40		413"	~ ₩
	दश्न	२ मधु, अबस्र	न १ अवस्र अवस्र	I	>-		>>	20
	संयम	. असंयम	१ असंधम		9		9	४ असंयम. सा., छे, परि.
*D>	<u>म</u> खा	१ कुमसि, कुभुत	२ कुमति क्रिश्चत	1	U		v	ई कुमति,कुश्रुत्।असंयम. मरि, श्रुत्, सा., छे, अब,,केबल् परि.
	मायक	2%	∞		29	अक्षात	o kiparb	> uppapp
रे० प्रस्तपणाएँ	थ	m	us.	1	or	व्यवस्थ	ա Ֆրթի	er Pitpie
*	योग	२ अतु. वच्.१. अतै. १	थे. मि १ कामंग १	म न् न् न्	22	कार्मण रहिंद	१९ मन४, बच ४ औ. १. बे. १	थी. मि. वे. मि. आ. मि.
	क ।य	«119°	7 45	↑	ws		433*	469-
	ङ्गिद्ध	<i>y</i>	×	1	*		*	*
	मिंद	مر أ <u>ب</u>	्र हिं	ı	20		20	20
	祖釗	200	20		>>	顶节形	ळ नहिस	वस्था ∞
	प्राण	నీ. సి. ఇ. కి. కి.	8. 8. 8. 9.	l	0/3:0/02	2 £; 9 ¢ \$ 8; 8 3, 8 R	\$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$	ري بري بري بري بري بري بري بري بري بري ب
	पर्याप्ति	५,४ पर्याप्ति	१,४ अपर्याप्ति	l 	F. (6, 4, 48)	पर्याप्ति अपर्याप्ति	६.५.४ पर्याप्ति	६,४,४ अपयोग्नि
	जीव समास	हैं सं. प. किना	हं सं. अप. किना	(४३८)	—————————————————————————————————————		ত বুঘ [‡]	9 g p
	मुण स्थान	भिष्या	१ मिथ्या	म. स्रीर.१.	, मार्गण (घ, ३/°,	* - *	80 P	20 m
मार्गणा विशेष	प्यमि अप्यप्ति	पर्याप्त	अपर्या प्त	३. अनुमय—(ध. २/१,१/८३८) सिद्ध सर्व आला 	98. आहारक मार्गणा— १. आहारक—(घ. २/१.१/=३६- ⁻ ६०) १ सामन्य १३ १४ ६,		चय ि	निवृत्ति अन्यक्ति
	गुण हशान		•	ξ ο ε δ − δ	æ 18			
<u> # </u>	PE .	(s.	cu-	ø *	<u> من ما</u>		œ	er

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

		h-/		٠	. F	F/		
 	<u>उ</u> क्योग	र साकार अना.	२ साकार अना•	२ साकार, अना.	र साकार, अनाकार	२ साकार अना.	श साकार अना.	२ साकार अना.
	अहिं	्र अगहा.	अगहा.	९ आहा,	१ अहा.	१ आहा.	१ आहा.	्र आहा.
	से ज्ञित	र संबो असंबी	असंक्र	र संज्ञी असंज्ञी	संजी	संश	सं श्री	संज्ञी
	ਲੇ≠ਧ,	१ मिथ्या	१ मिथ्या	१ मिध्या	१ सासः	सासा	सासा	मुळ
	भव्य	र भड्य अभड्य	२ भव्य अभव्य	र भठ्य अभेव्य	१ भठ्य	भव्य	भुवस	* कल
	लेश्या र. मा.	W	Flar	410/	HUP .	4U)	435°	***
	AE IX	415^	40-	₹	415	w	* j e	1135
	दश्न	म छ ल प्	म् क्रम् क्रम	ं १ चिश्च, अचश्च का.	२ बहु. अब्धु	२ बक्षु. अबक्षु		२ दक्ष, अमक्ष
ļ	स् यम	क्ष संग्रम स्याम -	९ असंयम	१ अहासम	१ असंयम्	१ असंयम	१ असंयम	१ असंयम
∌ ⊵⁄	श्च	জ্ঞান ম	क्ष क	२ १ कुमति, कुश् _{री} अत्यस	३ अह्यान	३ अह्यान	२ १ २ कुमति, कुधुते असंयम चक्षु, अचक्षु	रू शनाज्ञान
dal	15112年	>	200	20	20	20	20	>>
रे० प्रस्त्यणार्षे	द्रह	tus.	m	tus	สห	pr-	tu.	pir
Pa.	मु	१२ मन४, बच.४ औ, ३, कै,२	१० मन४, बच.४ औ.१, बे.१	अ.स. म.स.	१२ मन४, बच.४ खौ, २, बे.र	१० मन४, बच.४ ओे.१, वे. १	अ}. भे. मे.	१० मन४, बच-४ औ.१, वे.१
	কাম	lt.	ar.	us.	× × ×	م مراج	* *	र्भ क
	इन्दिय	⇒	~	**	م, م	ځ. ~	م, ه.	~ '5'
	मति	200	>>	, 2º	20	>∞	३ मरक सहित	∞
	īŖÎ F	∞	20	∞	>	20	20	79
	яю	8019; 819; =16; 914; \$18; 813	\$0,97.9.0\$ \$1,8.00 \$1,00	કે 'હ' ફે 'ફે' કે કે ક	8/0}	8	9	2
	पर्याष्टि	६.५.४ पर्याप्ति अपर्याप्ति	६,१,3 पर्याप्ति	ई.५,४ अष्यमिप्ति	<i>६/६</i> <i>६</i> पर्याप्ति ६ अपर्याप्ति	न्य <u>ां</u> स्र	अपयिष्टि	- क्यांसि
	जीव समास	∞	g	9	स् संप्र संख्या	.स.	सं. खप.	्रमः .च
	मुण स्थान	्र मिथ्या	१ मिथ्या	१ मिष्या	१ सासा <u>.</u>	१ सासा	क्षासा,	~ 표
मार्गणा विशेष	पर्याप्त अपर्याप्त	सामान्य	च्याम	मिवृत्ति अपयप्ति	सामान्य	पर्याप्त	निवृत्ति अपयम्बि	नयप्ति हो.
मिर्गपा	मुख स्थान	•	~	ov-	œ	œ	or'	çır
<u> </u>	'æ'	20	٠,	ut ^y	9	Ų	w	\$

							
	आहा, उपयोग	साकार अना.	सानार अना.	२ साकार अना.	२ साकार अना.	श् साकार, अनी,	साकार अना.
	জান্তা.	्र आहा,	४ आहा.	१ आहा,	१ आहा.	* आहा.	अस्ति।
	संश्चित्व	सं भ	सं. २	त्स: ख्र	सं जो	संशी	संश
	सुम्य,	्रे औ., या. सयो.	3 औ, क्षा. क्षयो.	्र औ. सा. क्षयो.	ै औ., क्षा. ह्मयो.	३ औ., सा. सयो.	3 औ., हा, सयो,
	भड्य	१ भव्य	भव्य	→	hek	*	भेव्य
	<u>ਜ਼</u> ੀ ਜ਼ੋ	40-	4us-	440-	# # # m	क म	ar H
	म्रस्या प्र. मा.	AT.	we.	शे ⊶	415	444	tu-
	दश्या	केवता बिना	के केवत किना	३ केवस बिना	से मेन मेना	केवल बिना	क्षेत्र २५ किना
	स्यम	र ब्यःस्यम	असंयम	असंयम	देशे . सं.	सा. छे. नुस्	सा., छे. परि.
الخ	ह्या	है मति, श्रुत. अवधि	अ मति, श्रुत. खर्नाध	है मिति, श्रुत. खर्वाध	३ मिति, श्रुत. अवधि	४ मति, श्रुत. अव, मनः	४ मति,श्रुत. अव , मनः
क्रिप्	मानक	29	>0	>>	20	20	20
३० प्रस्तवणार्	36	m²r	6.5	or Þ.,	os.	¢tt-	tu.
	योग	१२ मन ४, बच.४ औै. २, बै. २.	१० मन४, बच्च.४ औ.१, मे.,१	ू हैं कि वह	ह मन्द्र, बच.४ औ. १	११ मनधःमच्.धः औ.इ. आ.२	ह मन४,बच्.४ औ. ९
	क्राय	* # *	34 ~	अंक	≈ ##	अस ⊶	अंस ~
	व् निय	e~ 10°	ط. ہم	ط: س	e~ 15	ev *p*	~ '₽'
	मीव	20	>>	> 0	高高	म ~	≈ tro
	<u>म</u> ्द्रा	20	20	20	>>	20	∾ Բ. চরীy
	Жla	2/03	*	9	2	s/0 &	\$
,	पर्याग्नि	ई/६ ६ पर्याप्ति ६ अपर्यापि	६ पर्याप्ति	अवर्यास अवर्यास	ह प्यासि	<i>६/६</i> ६.पर्याप्ति ६ अपर्याप्ति	६ पर्याप्ति
	जीव समास	र सं. प. सं. अप.	.d. .d.	क. क.	क.	२ सं. प. सं. अप.	⊬ ₩
	मुख स्थान	्र अमि.	अवि.	अबि.	\$ TO	्र प्रमत्त	अप्रमत
मार्गणा विशेष	पर्याप्त अपर्याप्त	सामान्य	नय ि	निर्वीत अपर्याप	सामान्य (पर्याप्त हो)	सामान्य	म ह्यू हो
10 T	माथ स्थान	>>	200	>=	SK .	uy.	9
##	्रम	*	g:	er e	30 84	<i>3</i>	*** **

¥10 ×−3×

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

					· ·		
į	उपयोग	२ साकार, अना,	२ साकार, अना,	ı	२ साकार अना.	स् साकार अना,	र साकार अनाः
{	अहा.	१ आहा,	<u>अ</u>	l'	१ आहा.	्र आहा.	अहा.
	 सिज्ञित्व 	सं. ~	सं सं	1	4. ~	मं 🐣	क्षे सः भ
	सम्य,	र औ. क्षा.	थीं. सा.	l 	थी, सा	अ . अ.स.	жт.
	म्ब	भव्य	भव्य	1	म ० ४	भवस्	भव्य
	हेस्या १. मा.	~ 6")	~ (s ₂)	1	ارتما ما	مة مي م	∞ _∞
}	ΛΈ ix	142	40-		*w	an.	*W*
	दश्	केबल चिना	की बिना विना	l	क्षेत्र बिना विना	३ केथत बिना	केमस बिना
$\left \cdot \right $	संयभ	सा. ह्य	स् क्षु	l	₹	व्यथा,	्र यथा,
[श्चाम	ક માતિ, શુલ,, હ્લવ., મન :	४ मिति, धुत,, अब. मनः	ſ	४ मति, श्रुत, अव्मनः	४ मति. श्रुत, अब., मन:	४ मति, श्रुत,, अब. मन,
ľ	प्राथक	20	20	1	~ ti, Hf₽	9 Pripe 9 Pripe 9 Pripe	्र प्रक्रिकार
	रुह	m-	to.		் நாவு	o Bring	o Biepie
२० प्ररूपणाय	योग	ह मन४,बच.४, अौ. १	१ मन४, बच.४ औ.९	मूलोषवत	१ मन४, बच.४ औै.१	१ मन४, बच्च.४ औ. १	ें भनअ, बच्च.अ थों.९
	काथ	र्भ ⊶	स त्र ≁	↑	* ¥ ~	¥ ~	% %स
	इन्दिय	⊷ ⊬	بار مه	1	√ •~ •°	⊷ 45j	ار م
	मसि	ूर्य ५०	ण्यां <i>~</i> स	ı	بر در التاء	~ # ~	ic)
	1819	at 7月7 Jp	க நி சு ந	l	م. _, ₹]p	o <u>,₩</u> , vē	े गहा है।
]	ж	\$.	1	\$	°	&
	पयपिष्ठ	इ पर्याहि	ई चयरिक्ष	1	ई पर्याप्ति	ई पर्याप्ति	६ पर्याप्ति
	जीब समास	.प स	. d	1	~ . /₽.	खं . व	ه. م.
	मुवा स्थान	# IF W	۶۹ <u>۶</u>		• फं	व	* % ₽ ₽
सागणा विशेष	पर्याप्त अपर्याप्त	क्षेत्र स्था	ब्रथम् <u>।</u> भाग	शेष ४	्राम्	न्याप्ति हो	्रक्त स्व
101	गुवा स्थान	Ų	w	w	0 0 0 0	2	2
F	'#ż	ŗ.	₩	ŕ	Dr.	8	33

संक्रिक्त बाहा, उपयोग विक्रम्य बाहा, हपयोग अनुभय बाहा, साकार अनुभय बाहा, साकार असंही अना साकार असंही अना साकार, बसंही अना साकार,	
संक्रिय असंबी असंबी असंबी	
	,
सिंह्य विचा सिंह स	
भठय भठय भठय, अभिन्य अनुभय अभुभय अभुभय अभुभय	
w	
)
द्यां म केश्व केश्व ते, स्थां मा अबस्त अबस्त	
संयम् स्यम् प्रथा. यथा. यथा. यथा. यथा. यथा. यथा. यथा. य	
त्र भ संस्कृत स्थाप स्याप स्थाप स्याप स्थाप स्याप स्थाप स्य	9 0
C. H. O Dirpus L. Dirpus L	
S. The opings we see the see of t	
मन २, अच.२ औ.२ अमें प स्थोंग स्थोंग स्थोंग स्थां स्थां	
अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ	,
다. 아.유. 자동카라 ~ 아. 유.	
الله على الله على الله الله الله الله الله الله الله ال	रहित
० अस्बा अस्बा	
प्राप ८,७,६,६, ४,३,२,१ ८,७,६,६,	
वयिष्ठि ६ । ६ ६ पर्याप्ति ६ ५ १ ४ अव्ययिष्ठि ६ ६ १ ४ अव्ययिष्ठि	
न समास वर्या र प. द्यप. ६ पय १४ प्रदेश ६ पय १४ प्रदेश ६ पय १४ प्रदेश १८ प्रदेश १४ प्रदेश ६ पय १४ प्रदेश १	·
्र स्थान स्थान स्थान (स श्रे १३३% (३३.% १३३.% १३३.% १३५.% १३५.% १३५.% १३५.%	
	
प्रमास अप्रयास सामान्य प., अप् हो हो इसे	
सं मिणा विश्वेष स्था मिणा विश्वेष स्योष स्था मिणा विश्वेष स्था मिणा विश्वेष स्था मिणा विश्वेष	

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

					· ·
	उपयोग	२ साकार अमा.	२ सामार अना. युगपत्	२ साकार अमा. युगपत्	र साकार अना. युगपत
	अहा.	्र अना.	ख थना:	% अना.	अतीत ॰
	संज्ञित्व	सं क्ष	o अनुभ य	क अनुभय	य म ७ प्र क
	सम्य.	३ थौ., था., हत्यो.	۶ <u>۲</u>	₩	~ £
	ਸਭਬ	भाग्य	र भव्य	१ भव्य	त प्रम ेप स
	# # #	*	مر اهن	अभिरत ॰	० छर्द्रहरू
	लेख्या द. मा.	~ ಟ್	er kin en	Nor	अधेर्ध •
	.स. स्थान	२ अनश्च जन्मि	केयल दशान	१ केबल देशन	क्षेत्र १ इश्चित्र दर्शन
	संयम	१ असंयम	* nati.	यथा.	म प प्रम स्थ
गार्ह	म ख	मति, शुत. अवधि	~ हिं	के बत	के वि
३० प्ररूपणाएँ	प्राप्तक	200	ু দাদক্ষ	अक्षांत ,	o nieżb
00	इह	مر بم مع	o চাদ্দ হ	अतगदा ॰	्रवसाय ०
	योग	काम्ब	क्रीमंग	, अयोग	अधोम े
	काय	er ik	म 🕶	त्रं ५	अक्षान
	ह िदय	or "b"	or "p"	or b	० महनीतिक
	गति	>>	्र कर म	∾ H 44	न सि ॰
	玩玩	200	0 गड़ स्रा	अस्डा ₀	असंद्या ॰
	14	9	or .	्र स्था रहा	अतीत मा.
	पयासि	अपयाधि	<i>६</i> अप्यमित्र	ह पर्याधि	असीत प.
	जीब समास	सं. अप.	१ सं. अप्	् पश्चिष्ठ	असीत जीव समास
	गुण स्थान	≈ <u>ka</u>	सयो	अयो.	, अतोत मुणस्थान
मार्गणा सिशेष	पद्यप्ति अपर्याप्ति	ख ल्यु	अ पर्याप्त हो	प्यास हो	असी प
र्गेवर	ग्रैव स्तान	>>	tu.	20	E P
<u> </u>	- ज्र-	20	<i>⊶</i>	40-	9

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

२. सत् विषयक प्ररूपणाएँ

६. अधःकर्म आदि विषयक आदेश प्ररूपणा--(ध. १३/६,४/६१-६२)

सं,	मार्गणा	प्रयोग कर्म	समग्रधान कर्म	अधः कर्म	ईयपिथ कर्म	त्रषः कर्म	क्रियाकर्म	€.	मार्गणा	प्रयोग कर्म	समवधान कर्म		ईय्योपश कर्म	तुष: कर्म	क्रिया कर्म
१	गति मार्गणाः —							3	अवधि मनःपर्यय ज्ञान	,,	11		,,,	, »	,,
8	नरक गति सामान्य विशेष	٠,	>>	×	×	×	,,	४	केवल ज्ञान	١,,	11	72	,,	"	×
२	तियंचगति सामान्य विशेष पर्याप्त	17	**	נו	×	×	٠,	4	संयम मार्गणा :		i				
	🔒 ंपंचेन्द्रिय अपर्याप्त	23	1)	,,	×	×	×	8	संयत सामान्य	 	٠,	١,,	,,	,,	 ,,
3	मनुष्यगति सामान्य विशेष पर्याप्त	"	"	,,	,,	٠,	,,	2	सामायिक, छेदोपस्थापना					.,	
	., ., अपर्याप्त	ע	7)	,,	×	×	×		परिहार वि०	,,	,,,	,,,	×	11	,,
8	देवगति सामान्य विशेष	,,	"	×	×	×	,,	₹	सूक्ष्म साम्पराय	11	19	17	×	,,	×
<u>२</u>	इन्द्रिय मार्गणाः —							8	य धा रन्थात	1.,	75	,,	1,	33	×
- !	एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय	,,		,,	×	×		Ł	संयतास यत	,,	11	,,	×	×	14
2	पंचेन्द्रिय पर्याप्त	,,	1)	" "	,,		×	Ę	असं यत	11	17	.,	×	×	51
3	पंचेन्द्रिय अपर्याप्त	, "	,,	,,	×	×	" ×	3	दर्शन मार्गणा :						
Εl	काय मार्गणाः	"					^	3	चभ्रुः अचक्षु व अवधिदर्शन	,,	99	,,	71	, , , , , , , , , , , , , , , , , , ,	,,
3	पाँचों स्थावर							२	केवल दर्शन	۱,,	* ·) ' ••	,,	,,	×
*	त्रस पर्याप्त	"	13	"	×	×	×	१०	छेश्या मार्गणा :						
२	त्रसः भयाप्त त्रसः अपर्याप्त	"	3.5	17	11	71	17	?	कृष्ण, नीस व कापीत लेश्या	,,	,,	†1	×	×	71
3	!	,	53	27	×	×	×	ર	पीत पद्म	,, 1	,,	,,	×	,,	11
<u>।</u>	योग मार्गणा:			!				3	शुक्त .	,,	11	,,	,,	,,	91
8	भाँची मन वचन योग	"	,,,	11	,,,	, , ,,	"	8 [अन्तेरय	,,	11	,,	 10	,, j	×
२	औदारिक व औ, मिश्र काय योग	,,	19	11	41	,,	11	,,	सम्यक्त मार्गणा :						
३	बैक्रियिक व वै. मिश्र काय योग	"	17	×	×	×	71	22 ~	सामान्य, क्षायिक, उपशम	,,	,,	١,,	,,	١,, ١	11
8	आहारक व आ. मिश्र काय योग	٠,	13	,,	×	,,	79	\ \ R	क्षयोपशम	,,	"	,,	×	! •	,,
Ł	कार्मण काय योग	,,	>>	11	,1	*1	17	87	सासादन व मिश	75	,,	,,	×	×	×
4	वेद मार्गणा :							8	मिध्यादर्शन] ,,	11	,,	×	×	×
8	तीनों वेद	n	υ,	19	×	,,	77	१२	भव्यत्व मार्गणा :—-						
२	अपगत वेद .	,,	,,	71	,,	,,	,,	<u>i</u> —	भव्य	,,			_	,,	٠,,
<u>لا</u>	क्षाय मार्गणाः :—-							१ २	अभव्य	"	,,	37	" ×	" ×	×
7	चारों कषाय				×			1	संशी मार्गणा :	"	,	"			
`	अक्षाय	"	"	"		•••	" ×	<u>१३</u>	संज्ञी				×	×	×
	_	"	"	"	"	••	_	१	् ^{५३।} असंज्ञो	11	"	**	į	×	×
<u>9</u>	<u> शान मार्गणा :—</u>							₹	•	19	11	"		- 1	
₹	मतिशुत अझान व विभाग	33	»	•••	X	X	×	<u>. १</u> ४					i		
२	मतिशुत ज्ञान	"	»	17	,,	۳.	,,	१	थाहारक, अनाहारक	19	19	*17	17	11	"

७. पाँचों शरीरोंकी संघातन परिशातन कृति सम्बन्धी

* पाँचों शरीरोंके योग्य पुद्गात स्कन्थोंकी उत्कृष्ट जधन्य संघातन व परिशातन कृतियाँ ओध व आदेश प्ररूपणा— (ध. १/४,९,७९/३५४-३५८)

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

सत्कथा--हे कथा।

स**त्कर्म तथ। सत्कर्म पञ्जिका**— हे. पर्विशिष्ट ।

सत्किमक —हे. सत्व।

सत्क्रिया—दे. क्रिया/३/३।

सत्पुरुष — किम्पुरुष जातिका वयन्तर देव –दे, किंपुरुष ।

सत्वाद --- ध/१४/१७/१७ भाषा -- चूंकि असत् कार्य नहीं किया जा सकता है। ... अतएव ... कारण व्यापारसे पूर्व भी कार्य सत् ही है, यह सिद्ध है। ऐसा किन्हीं कपिलादिका कहना है।

सत्संगति—दे संगति।

सतालक --- पिशाच जातीय व्यन्तर देव - दे, पिशाच ।

सतीपुत्र-मद्रास प्रान्तमें वर्तमान केरच । (म.पु./प्र.६०)।

सत्कार पुरस्कार परिषह—

स,सि./१/१/४२६/१ सरकारः पूजाप्रशंसारमकः । पुरस्कारो नाम क्रिया-रम्भादिष्वग्रतः करणमामन्त्रणं वा, तत्रानादरो मयि क्रियते । चिरो -वितबहाचर्यस्य महातपस्थिनः स्वपरसमयनिर्णयञ्चस्य बहुकृत्वः परवा-दिविजयिनः प्रणामभवितसंभ्रमासनप्रदानादीनि मे न कश्चित्क-रोति । मिथ्यादष्टय एत्रातीवभक्तिमन्तः किचिदजानन्तमपि सर्वेज्ञ-संभावनया संमान्यस्वसम्यप्रभावनं कुर्वन्ति । व्यन्तरादयः पुरा अत्युप्रतपसौ प्रत्यप्रपूजौ निर्वर्तयन्तीति मिथ्याश्रुतियदि न स्यादि-दानीं कस्मान्माद्दर्श न कुर्वन्तीति, दुष्प्रणिधानविरहितचित्तस्य सरकारपुरस्कारपरिषहिवजय इति विज्ञायते। --सत्कारका अर्थ पूजा-प्रशंसा है। तथा क्रिया आरम्भ आदिक में आगे करना या आमन्त्रण देना पुरस्कार है। इस निषयमें यह मेरा अनादर करता है। चिरकाल-से मैंने बहाचर्यका पालन किया है, महा तपस्वी हुँ, स्वसमय और परसमयका निर्णयज्ञ हूँ, मैंने बहुत बार परवादियोंको जीता है तो भी कोई मुक्ते प्रणाम, और मेरी भक्ति नहीं करता एवं उत्साहसे आसन नहीं देता. मिथ्यारिष्ट ही अश्यन्त भक्तिवाले होते हैं, कुछ नहीं जानने वालेको भो सर्वज्ञ समभ कर आदर-सरकार करके अपने समयकी प्रभावना करते हैं, व्यन्तरादिक पहले अस्यन्त उग्र तप करने वालोंकी प्रत्यत्र पूजा रचते हैं यदि मिथ्या श्रुति नहीं है तो इस समय वे हमारे समान तपस्वियोंकी को नहीं करते इस प्रकार लोटे अभिप्रायसे जिसका चित्त रहित है उसके सत्कारपुरस्कार परीषह जय जानना चाहिए । (रा.वा./१/१/२४/६१२/४); (चा.सा./१२६/४) ।

सत्तरिका वे परिशिष्ट में सन्ततिका।

सत्ता पं.का /मूं./८ सत्ता सञ्जययत्था सिवस्सरूवा अणंतपञ्जामा । भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्ता हवदि एक्का ।८। सत्ता, उत्पाद, व्यय-ध्रौव्यात्मक, एक सर्वपदार्थ स्थिति, सिवश्वरूप, अनन्त-पर्यायमय और सप्रतिपक्ष है ।८। (ध.१/४,१,४६/मा, ६०/१७१); (ध.१३/६,३,१२/मा,४/१६)।

दे. द्वरुय/१/७ [सत्ता, सत्त्व, सत्, सामान्य, द्वर्य, अन्वय, वस्तु, अर्थ और विधि ये एकार्थक शब्द हैं]

नि सा./ता.वृ./३४ अस्तित्त्वं नाम सत्ता । - अस्तित्वको सत्ता कहते हैं ।

★ सत्ताके दो भेद — महासत्ता व अवान्तर सत्ता — (दे. अस्तित्व)।

सत्ताग्राहक द्रव्यार्थिक नय-३. नय/IV/२।

सत्तावलोकन व दर्शन/१,३।

सत्य — जैसा हुआ हो वैसा ही कहना सत्यका सामान्य सक्षण है, परन्तु अभ्यास्म मार्गमें स्व व पर अहिंसाकी प्रधानता होनेसे हित व मित वचनको सत्य कहा जाता है, भन्ने हो कदाचित् वह कुछ असत्य भी क्यों न हो। सत्य वचन अनैक प्रकारके होते हैं।

१. सत्य निर्देश

९. सत्य धर्मका छक्षण

मा, अणु /७४ परसंतावयकारणवयणं मोत्तूण सपरहिदवयणं । जो बदिह भिक्खु तुक्ष्यो तस्स दु धम्मो हवे सच्चं ।७४१ = जो सुनि दूसरेको वलेश पहुँचाने वाले वचनों को छोड़कर अपने और दूसरेके हित करने वाले वचन कहता है उसके चौथा सत्य धर्म होता है।

स,सि./१/६/४१२/० सत्सु प्रशस्तेषु जनेषु साधुवचन सत्यिमित्युच्यते । - अच्छे पुरुषोंके साथ साधु वचन कोलना सत्य है । (रा.वा./१/६/१/

<u>१६६/७); (चा.सा./६३/३); (अन घ./६/३५) ।</u>

भ आ | वि । १६११४४१६ सता साधूना हितमावण सत्यम् । - मुनि और उनके मक्त अर्थात आवक इनके साथ आत्महितकर भावण मोलना यह सत्य धर्म है ।

त.सा./६/१७ ज्ञानचारित्रशिक्षादी स धर्मः सुनिगवते । धर्मीपबृंहणाधँ यत् साधु सत्यं तदुच्यते ११७। चैधर्मकी वृद्धिके लिए धर्म सहित बोलना वह सत्य कहाता है। इस धर्मके व्यवहारकी आवश्यकदा ज्ञान चारित्रके सिखाने आदिमें लगती है।

पं.वि./१/६१ स्वपरहितमेव मुनिभिर्मित्तममृतसमं सदैव सहयं च।
वक्तव्यं वचनमथ प्रविधेयं धोधनैमौन्य्।६१। — मुनियोंको सदैव ही
स्वपर हितकारक, परिमित तथा अमृतके सदश ऐसा सत्य वचन
बोलना चाहिए। यदि कहाचित् सत्य वचन बोलनेमें वाधा प्रतीत
होती है तो मौन रहना चाहिए।६१।

का.आ./मू./३६८ जिण-वयणमेव भासदि तं पालेदुं असक्कमाणो वि। ववहारेण वि अलियं ण वददि जो सच्चवाई सो ।३६८। — जो जिन-आचारोंको पालनेमें असमर्थ होता हुआ भी जिन-वचनका कथन करता है उससे विपरीत कथन नहीं करता है तथा व्यवहारमें भी भूठ नहीं बोलता वह सस्यवादी है।३६८।

२. महावतका लक्षण

नि.सा./१७ रागेण व दोसेण व मोहेण व मोस भासपरिणामं। जो पजहिंद साहु सया विदियवयं हो इ तस्सैव।१७। = रागसे, द्वेषसे अथवा मोहसे होनेवाले, मृषा भाषाके परिणामको जो साधु छोड़ता है, उसी-को सदा दूसरा वत है।१७।

मू आ./६,२६० रागादीहि असच्चं चत्ता परतावसच्चवयणोत्ति । मुत्ततथाणंनि कहणे अयधा वयणुज्मणं सच्चं ।६। हस्सभयकोहलोहा
मणिविच्वायेण सव्वकालम्मि । मोसंण य भासिज्जो पच्चयघादी
हवदि एसो ।२६०। = राग, द्वेष, मोहके कारण असत्य वचन तथा
दूसरोंको सन्ताप करनेव।ले ऐसे सत्यवचनको छोड़ना और द्वादशांगके
अर्थ कहनेमें अपेक्षा रहित वचनको छोड़ना सत्य महावत है ।६।
हास्य, भय, क्रोध अथवा लोभसं मन-वचन-कायकर किसी समयमें
भी विश्वास घातक दूसरेको पीड़ाकारक वचन न भोले । यह सत्यवत
है ।२६०।

३. सत्य अणुवतका रुक्षण

र.क.शा./११ स्थूलमलीकं न वदति न परान्वादयति सत्यमपि विषदे। यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावादवैरमणम् । म्रू स्कृति न आप बोले न दूसरोंसे बुलवावे, तथा जिस वचनसे विपत्ति आती हो, ऐसा वचन यथार्थभी न आप बोले और न दूसरोंसे बुलवावे ऐसे उसको सत्पुरुष सत्याणुवत कहते हैं।

स.सि./७/२०/३६८/८ स्नेहमोहादिवशाइ गृहविनाशे प्रामिवनाशे व कारणभित्यभिमतादसत्यवचनाज्ञिवृत्तो गृहीति द्वितीयमणुवतस् । — गृहस्थ स्टेह और मोहादिकके वशसे गृहविनाश और ग्रामिवनाशवे कारण असत्य वचनसे निवृत्त है, इसलिए उसके दूसरा अणुवत है। (रा.वा./७/२०/२/४४७/८)।

बसु आ./२१० अलियं ण जंपणीयं पाणिबहकरं तु सच्ववयणं पि । रायेण य दोसेण य णेयं विदियं वयं थूलं ।२१०। चरागसे अथवा द्वेषसे भूठ वचन नहीं कोलना चाहिए, और प्राणियोंका घात करनेवाला सत्य वचन भी नहीं कोलना चाहिए, यह दूसरा स्थूल सत्यवत जानना चाहिए।

का. अ./३३३-३३४ हिंसा वयणं ण वयदि कक्कस-नयणं पि जो ण भासेदि। णिट्ठुरं वयणं पि तहां ण भासदे गुज्क-वयणं पि।३३३। हिंद-मिद बयणं भासदि संतोस-करंतु सञ्ब-जीवाणं। धम्म-पयासण-वयणं अणुडवदी होदि सो विदियो।३३४। च्जो हिंसाका वचन नहीं कहता. कठोर वचन नहीं कहता. निष्ठुर वचन नहीं कहता, और न दूसरोंकी गृप्त बातको प्रकट करता है। तथा हित-मित बचन बोलता है, सब जीवोंको सन्तोषकारक वचन बोलता है, और धर्म-का प्रकाशन करनेवाला वचन बोलता है वह दूभरे सर्याणुवतका धारी है।३३ई-३३४।

४. सस्यके भेद

भ. आः/मू./११६३/११८६ जणबदसंमिदिठबणा णामे रूवे पहुच्चववहारे।
संभावणववहारे भावेणोपम्मसच्चेण ११६३। --जनपद, सम्मिति,
स्थापना, नाम, रूप, प्रतीति, सम्भावना, ठप्रबहार, भाव और उपमासत्य ऐसे सत्यके १० भेद हैं। (मू. आः/३०८); (गो. जी /मू./२२२)।
रा. वा./१/२०/१२/७६/२० दशिवधः संत्यसद्भावः नामरूपस्थापनाप्रतीत्य-संवृति-संग्रोजना-जनपद-देशभाव-समयसत्यभेदेन। --सत्यके दश भेद हैं --नाम, रूप, स्थापना, प्रतीति, संवृति, संयोजना,
जनपद, देश, भाव, और समयसत्य। (ध. १/१,१,२/११०/६); (ध.
६/४,९,४६/२१०/१)।

५, जधन्योत्कृष्ट सत्य निर्देश

सा. ध,/४/४१-४३ यद्वस्तु यह शकालप्रमाकारं प्रतिश्रुतम् । तर्सिमस्तथैव संवादि, सत्यासत्यं वचो वदेत ।४१। असत्यं वय वासोऽन्धो,
रन्ध्रमेत्यादि-सत्यगम् । वाच्यं कालातिक्रमेण, दानारसत्यमसत्यगम् ।
।४२। यत्स्वस्य नास्ति तत्कव्ये, दास्यामीत्थादिसंविदा । व्यवहारं
विरुन्धानं, नासर्यासत्यमालपेत ।४३। — जो वस्तु जिस देश, काल,
प्रमाण और आकारवाली प्रसिद्ध है, उस वस्तुके विषयमें उसी देश,
काल, प्रमाण और आकार रूप कथन करनेवाले सत्यासत्य वचनको
बोलना चाहिए ।४१। सत्याणुवतके पालक भावक्रके द्वारा नस्त्रको बुनो
और भातको पकाओ इत्यादि सत्यसूचक असत्यवचन तथा कालकी
मयदिको उल्लंघन करके देनेसे असत्य सूचक वचन बोलने योग्य
हैं। ऐसे वचन सत्यासत्य कहलाते हैं।४२। सत्याणुवतको पालन
करनेवाला भावक जो वस्तु अपनी नहीं है वह वस्तु मैं तुम्हारे लिए
प्रातःकाल दूँगा इत्यादि रूप प्रतिज्ञाके द्वारा लोक व्यवहारको बाधा
देनेवाले असत्यासत्य वचनको नहीं बोले ।४३।

६. जनपद आदि दश सत्योंके लक्षण

मू. आ./३०१-३१३ जणपदसच्चं जध ओदणादि रुचिवे य सव्वभासाए।
बहुजणसंमदमिव हो दि जं तु लोए तहा देवी।३०१। ठवणा ठिवेदं
जह देवदादि णामं च देवदत्तादि। उक्कडदरोत्ति वण्णे रूवे सेओ
जध बलाया।३१०। अण्णं अपेच्छसिद्धं पडुच्चसरयं जहा हवदि
दिग्धं। ववहारेण म सच्चं रज्मदि क्रो जहा लोए।३११। संभावणा
य सच्चं जदि णामेच्छेज्ज एव कुज्जंति। जदि सक्को इच्छेज्जो
खंबूदीवं हि पण्तरथे।३१२। हिंसादिदोसिवसुदं सच्चमकप्पियविभावदी भावं। ओवम्मेण दु सच्चं जाणसु पिलदोवमादीया।३१३।

- जो सब भाषाओं में भातके नाम पृथक्-पृथक् बोले जाते हैं जैसे चोरु, कूल, भक्त आदि ये देशसत्य हैं। और बहुत जनोंके द्वारा माना गया जो नाम वह सम्मत्तसत्य है, जैसे - लोकमें राजाकी स्त्रीको देवी कहना।३०६। जो अर्हन्त आदिकी पाषाण आदिमें स्थापना वह स्थापनासस्य है। जो गुणकी अपेक्षान रखकर व्यव-हारके लिए देवदत्त आदि नाम रखना वह नामसत्य है। और जो रूपके बहुतपनेसे व्हना कि बगुलोंकी पंक्ति सफेद होती है वह रूपसत्य है।३१०। अन्यकी अपेक्षासे को कहा जाय सो वह प्रतीत्य-सरय है जैसे 'यह दीर्घ है' यहाँ हस्वकी अपेक्षासे है। जो लोकमें 'भात पकता' है ऐसा वचन कहा जाता है वह ब्यवहार सत्य है। ।३९९। जैसी इच्छा रखे वैसा कर सके वह सम्भावना सत्य है। जैसे इन्द्र इच्छा करे तो जम्बूदीपको उत्तर सकता है।३१२। जो हिंसादि दोष रहित अयोग्य वचन भी हो वह भावसत्य है जैसे किसीने पूछा कि, 'चोर देखा, उसने कहा कि, 'नहीं देखां। जो उपमा सहित हो वह बचन उपमासत्य है जैसे पल्योपम, सागरोपम आदि कहना । (भ- आ, वि./१११३/११८१/११); (गो. जी./जी. प्र./ २२३-२२४/४=१/२)

रा. वा,/१/२०/१२/७६/२१ तत्र सचेतनेतरद्रव्यस्यासत्यप्यर्थे मद्भवहारार्थे संज्ञाकरणं तन्नामसन्यम, इन्द्र इत्यादि । यदथसिनिधानेऽपि रूप-मात्रेणोच्यते तद्र्वसत्यम्, यथा चित्रपुरुषादिषु असत्यमि चैतन्यो-पयोगादावर्थे पुरुष इत्यादि । असत्यप्यर्थे यत्कार्यार्थे स्थापितं च्यूताधनिक्षेपादिषु तद् स्थापनासत्यम् । आदिमदनादि**म**दौपशमि-कादीन् भावान् प्रतीत्य यद्वचन तत्प्रतीत्यसत्यम् । यल्लोके संवृत्या-नीतं वचस्तत् संवृतिसत्यं यथा पृथिव्याखनेककारणत्वेऽपि सति 'पङ्के जातं पङ्कजम्' इत्यादि । ध्रुपचूर्णवासानुलेपनप्रवर्षादिषु पद्म-मकर-हंस-सर्वतोभद्र-क्रौश्च-व्यूहादिषु वा सचैतनेतरद्रव्याणां यथा भागविधिसंनिवेशाविर्भावकं यद्वचस्तत् संयोजनासत्यस् । द्वात्रिश-ज्जनपदेष्वायनि।यभेदेषु धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रापकं यद्वचः तत् जनपदसन्यम् । प्रामनगरराजगणपाखण्डजातिकुलादिधर्माणामुपदेष्ट् यद्वचः तद्द् देशसत्यम् । छज्ञस्थज्ञानस्य द्रव्ययाथात्म्यादर्शनेऽपि संयतस्य संयतासंयतस्य वा स्वगुणपरिपालनार्थं प्राप्तकमिदमप्राप्तक-मित्यादि यद्वचः तत् भावसत्यम् । प्रतिनियत्तषट् त्यद्रव्यपर्यायाणाम-गमगम्यानां याथातम्याविष्करणं यद्वचः तत् समयसत्यम् । 🕶 पदार्थी-केन होनेपर भी सचेतन और अचेतन द्रव्यकी संज्ञा करनेकी नामसत्य कहते हैं जैसे इन्द्र इत्यादि । पदार्थका सन्त्रिधान न होने-पर भी रूपमात्रकी अपेक्षा जो कहा जाता है वह रूपसत्य 🗜 जैसे चित्रपुरुषादिमें चैतन्य उपयोगादि रूप पदार्थके न हो नेपर भी 'पुरुष' इत्यादि कहना। पदार्थके न होने पर भी कार्यके लिए जो जूएें के पाँसे आदि निक्षेपोंमें स्थापना की जात्रे हैं बह स्थापना सत्य है। सादिव अनादि आदि भावों की अप्रेक्षा करके जो वचन कहा जाता है वह प्रतीत्यसत्य है। जो बचन लोक रूढ़िमें दुना जाता है वह संवृतिसत्य है. जीसे पृथिवी आदि अनेक कारणोंके होनेपर भी पंक अर्थात् की चड़में उत्पन्न होनेसे 'पंकज' इत्यादि वचनप्रयोग । सुग-न्धित धूपचूर्ण के सेपंन और घिसनेमें अथवा पद्म, मकर, हंस, सर्वती-भद्र और क्रौंचरूप ब्यूह (सैन्यरचना) आदिमें भिन्न द्रश्योंकी विभाग विधिके अनुसार की जानेवाली रचनाको प्रगट करनेवाला वच्न वह संयोजना सत्य वचन कहलाता है। आर्य व अनार्य भेदयुक्त बत्तीस जनपदों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका प्रापक जो बचन वह ज**नपदसत्य है। जो** बचन, ग्राम, नगर, राजा, गण, पालण्ड, जाति एवं कुल आदि धर्मीका वयपदेश करनेवाला है वह देशसत्य है। छन्नस्थ ज्ञानीके द्रव्यके यथार्थ स्वरूपका दशेन होनैपर भी संयत अथवा संयतासंयतके अपने गुणोंका पालन करनेके लिए 'यह प्राप्तक है—यह अम्रासुक है' इत्यादि जो नचन कहा जाता है वह भावसस्य है। जो वचन आगमगम्य प्रतिनियत छह द्रव्य व उनकी पर्यायोंकी

यथार्थताको प्रगट करनेवाला है वह समयसत्य है। (घ. १/१,१,२-/११७/५); (घ. १/४,१,४६/२१५/२); (चा. सा./६२/२); (अन. घ./४/४७)।

आमंत्रणी आदि भाषाओं में कथंचित सत्यासत्यपना ।-दे० भाषा ।

७. सत्यकी मावनाएँ

१. सत्यधर्मकी अपेक्षा

रा.वा./१/६/२७/५६१/१८ सत्यवाचि प्रतिष्ठिताः सर्वी गुणसंपदः । अनृत-भाषिणं बन्धवोऽपि अवमन्यते(न्ते) मित्राणि च परित्यजन्ति, जिल्लाच्छेदनसर्वस्वहरणादिव्यसनभागि भवति । सभी गुण सम्पदाएँ सत्य बक्तामें प्रतिष्ठित होती हैं । भूठेका बन्धुजन भी तिरस्कार करते हैं । उसके कोई मित्र नहीं रहते । जिल्ला छेदन, सर्व धन हरण आदि दण्ड उसे भुगतने पड़ते हैं । (चा. सा./६१/४)।

२. सत्यवतकी अपेक्षा

- मू. आ./३३८ कोहभयलोहहासपइण्णा अणुवी विभासणं चेत्र । विदियसस भावणावी वदस्स पंचेत्र ता होति । =कोध, भय, लोभ, हास्य, इनका स्याग और सूत्रानुसार बोलना—ये पाँच सस्यवतकी भावनाएँ हैं। (भा, पा/मू./३३)।
- त. सू /७/४ कोधलोभभोरुत्वहास्यप्रत्यारुयानान्यनुवीचीभाषणं च पञ्च ।१।
- स. सि./७/१/३४७/६ अनृतवादी ऽशद्धे यो भवति इहैव च जिह्नाच्छेदादी त्
 प्रतिलभते मिथ्याभ्याल्यानदुः खितेभ्यस्य बद्धवेरेभ्यो बहू नि व्यसनान्यवाप्नोति प्रेरय चाशुभां गति गहितस्य भवतीति अनृतवचनादुपरमः श्रेयान् । एप्वं हिसादिष्वपायावद्यदर्शनं भावनीयम्। =१,
 क्रोधप्रत्याख्यान, लोभप्रत्याख्यान, भीरुत्वप्रत्याख्यान, हास्यप्रत्याख्यान और अनुवीचीभाषण ये सत्यवतकी पाँच भावनाएँ हैं।
 २. असत्यवादीका कोई श्रद्धान नहीं करता। वह इस लोकमें जिद्धाछेद आदि दु'लोंको प्राप्त होता है तथा असत्य बोलनेसे दु'खी
 हुए अतएव जिन्होंने वैर बाँध लिया है, उनसे बहुत प्रकारकी आपचियोंको और परलोकमें अशुभगतिको प्राप्त होता है और गहित भी
 होता है इसलिए असत्य वचनका त्याग श्रेयस्कर है। ए इस प्रकार
 हिसा आदि दोषोंमें अपाय और अवद्यके दर्शनकी भावना करनी
 चाहिए।

८. सत्याणुव्रतके अतिचार

- त. सू./७/२६ मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकृदलेखिकयान्यासापहार-साकारमन्त्रभेदाः ।२६। = मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कृटलेखिकया, न्यासापहार और साकारमन्त्रभेद ये सत्याणुत्रतके पाँच अतिचार हैं ।२६। [र.क. श्रा. में साकारमन्त्रके स्थानपर पेशुन्य हैं ।] (र.क. श्रा /६६)।
- सा- ध./४६ मिध्यादेशं रहोभ्याख्यां कृटलेखिकयां त्यजेत्। न्यस्तांश-विस्मत्रेनुज्ञां मन्त्रभेदं च तद्दतः ।४६। — सत्याणुवतको पालनेवाले आवकोको मिथ्योपदेश. रहोभ्याख्या, कृटलेखिकया, न्यस्तांश-विस्मत्रेनुज्ञा और मन्त्रभेद इन पाँचों अतिचारोंका त्याग कर देना चाहिए ।४६।

* सत्यव्रतकी भावनाओं व अतिचारों सम्बन्धी विशेष विचार-हे. वत/२।

२. सत्यासत्य व हिताहित वचन विवेक

अहितकारी सत्य भी असत्य और हितकारी अस्तरय भी सत्य है

- कुरल/२/२ संकटाकीर्णजीवानामुद्धारकरणेच्छया । कथिता साधु-भिर्जातु मृशोक्तिरमृषेव सा. ।२। = उस भूठमें भी सत्यताकी विशेषता है जिसके परिणाममें नियमसे भर्ताई ही होती है ।२। = (आराधना-सार/३/=)।
- चा. सा./टो./२ यिद्धवमानार्थ विषयं प्राणिपीडाकारणं तत्सत्यमध्य-सत्यम् । = विद्यमान पदार्थीको विद्यमान कहनेवाले वचन यदि प्राणियोंको पीडा देनेवाले हों तो वे सत्य होकर भी असत्य माने जाते हैं।
- झा./१/३ असत्यमिष तत्सत्यं यत्सत्त्व|शंसकं वचः। सावद्यं यच्च-पुष्णाति तत्सत्यमिष निनिदतम्।३। = जो वचन जीवोंका इष्ट हित करनेवाला हो वह असत्य हो तो भी सत्य है और जो वचन पाप सहित हिसारूप कार्यको पुष्ट करता हो वह सत्य भी हो तो असत्य और निन्दनीय है। (आचारसार/१/२२-२३)।
- अन. ध./४/४२ सत्यं त्रियं हितं चाहुः सूनृतं सूनृतवताः। तत्सत्यमि नो सत्यमित्रयं चाहितं च यत्।४२। = जो वचन प्रशस्त, कल्याण-कारक तथा सुननेवालेको आहाद उत्पन्न करनेवाला, उपकारी हो, ऐसे वचनको सत्यवतियोंने सत्य कहा है। किन्तु उस सत्यको सत्य न समभना जो अप्रिय और अहितकर हो।
- ला• सं./६/६,७ सरयमि असत्यतां याति कचिद्धिसानुबन्धतः ।६। असत्यं सत्यतां याति कचिज्जीवस्य रक्षणात् ।७। = जिन वचनोंसे जीवोंकी हिंसा सम्भव हो ऐसे सत्य वचन भी असत्य हैं ।६। इसी प्रकार कहीं-कहीं जीवोंकी रक्षा होनेसे असत्य वचन भी सत्य कहलाते हैं।
- मो, मा. प्र./</४१३/१४ जो भूठ भी है अर साँचा प्रयोजन को पोषे तो बाको भूठ न कहिये बहुरि साँच भी है अर भूठा प्रयोजन को पोषे तौ बह भूठ ही है।

२. कटु मी हितोपदेश असस्य नहीं

- भ. आ |मू./३६०/६६१ पत्थं हिदयाणिट्टं पि भण्णमाणस्स सगणवा-सिस्स । कडुगं व ओसहं तं महुरविवायं हवइ तस्स ।३६० = हे मुनिगण ! तुम अपने संधवासी मुनियोंसे हितकर वचन कोलो, यथपि वह हृदयको अप्रिय हो तो कोई हरकत नहीं है । जैसे—कटुक भी औषध परिणाममें मधुर और कन्याणकारक होता है वैसे तुम्हारा भाषण मुनिका कन्याण करेगा।
- पु सि. ज./१०० हेती प्रमत्त्रयोगे निर्दिष्टे सकलिवतथवचनानाम्। हैयानुष्ठानादेरनुवदनं भवति नासत्यम्।१००। रूसमस्त ही अनृत वचनोंका प्रमाद सहित योग निर्दिष्ठ होनेसे हेयोपादेयादि अनुष्ठानों-का कहना भूठ नहीं होता। [हेयोपादेयका उपदेश करनेवाले मुनिराजके वचनोंने नवरसपूर्ण क्षियोंका वर्णन होनेपर भी तथा पापकी मिन्दा करनेसे पापी जीवोंको अप्रिय लगनेपर भी तथा अपने बन्धुओंको हिलोपदेशके कारण दुखी होते हुए भी उन्हें अस्त्यका दोष नहीं है, क्योंकि उन्हें प्रमादयोग महीं है। (पं. टोडरमल)]।
- ★ कठोर भी हितोपदेशको इष्टता—दे. उपदेश/३।

३. असत्य सम्भाषणका निषेध

भ. आ,/मू./५४७, ५५०/६७५,६०० अलियं सिक पि भणिदं घादं कुणिद बहुगाण सञ्जाणं। अदिसंकिदो य सयमित होदि अलियभासणो पुरिसो १५४७। परलोगिम्म ति दोस्सा ते चेत्र हवंति अलियनादिस्स । मोसादीए दोसे जत्तेण ति परिहरंतस्स १०५०। चएक बार बोला हुआ असत्य भाषण अनेक बार बोले सत्य भाषणोंका संहार करता है। असत्यवादी स्वयं उरता है तथा शंकायुक्त है कि मेरा असत्य भाषण प्रकट होगा तो मेरा नाश होगा १५४०। असत्य भाषीके अविश्वास आदि दोष परलोकमें भी प्राप्त होते हैं परजन्ममें प्रयत्नसे इनका स्थाग करनेपर भी इन दोषोंका उसके ऊपर आरोप आता है।८६०।

कुरल/१२/६ तीति मनः परित्यज्य कुमार्गं यदि धावते। सर्वनाशं विजानीहि तदा निकटसंस्थितस्।६१-जन तुम्हारा मन सरयसे विमुख होकर असल्यकी ओर भुकने लगे तो समफ कि तुम्हारा सर्वनाश निकट हो है।

४. कटु सम्भाषणका निषेध

कुरल,/१३/८.६ एकमेन परं नाण्यामस्ति चेन्मर्मधातकम् । विनष्टास्तर्हि विज्ञेया उपकाराः पुराकृताः ।द। दग्धमङ्गं पुनः साधु जायते काल-पाकतः । कालपाकमपि प्राप्य न प्ररोहति नानक्षतम् ।६।

कुरल./१४/६ विद्याविनयसंपन्नः शालीनो गुणवाद् नरः। प्रमादादिष दुर्वानयं न ब्रूते हि कदाचन ।६। च्यदि तुम्हारे एक शब्दसे भी किसी-को कष्ट पहुँचता है तो तुम अपनी सम भलाई नष्ट हुई समको।८। आगका जला हुआ तो समय पाकर अच्छा हो जाता है, पर वचनका याव सदा हरा बना रहता है।६। अवाच्य तथा अपशब्द, भूजकर भी संयमी पुरुषके मुखसे नहीं निकलेंगे।

५, व्यर्थं सम्माषणका निषेध

कुरत./२०/७,१० उचितं नुध चेह भाति कुर्याः कर्कशभाषणम्। परं नैव वृथालापं यतोऽस्माद्वे तदुत्तमम् ।७। वाचस्ता एव वक्तव्या याः श्लाच्याः सम्यमानवैः। वर्जनीयास्ततो भिन्ना अवाच्या या वृथोक्तयः।१०। चयदि सममदारको मालूम पड़े तो मुखसे कठोर शब्द कह ले, वयोकि यह निर्श्वक भाषणसे कहीं अच्छा है।७। मुखसे बोलने योग्य वचनोंका हो तू उच्चारण कर, परन्तु निर्श्वक शब्द मुखसे मत निकाल।१०।

६. सत्यकी महत्ता

भ. आ./मू./-३१--५२ ण डहिंद अगी सच्चेण णरं जलं च तं ण बुड्डेइ। सच्चवलियं खु पुरिसंण बहिंदि तिक्ला गिरिणदी वि । ६३६। सच्चेण देवदावी णवंति पुरिसस्स ठंति व वसिम्म। सच्चेण य गहगहिंदं मोएइ करेंति रक्लं च ।८३६। सत्यवादीको अग्नि जलाती नहीं, पानी उसको डुबोनेमें असमर्थं होता है। सत्य भाषण हो जिसका सामर्थ्य है ऐसे मनुष्यको मड़े वेगसे पर्वतसे क्दनेवाली नदी नहीं बहा सकती। ५३६। सत्यके प्रभावसे देवता उनका वन्दन करते हैं, उसके बझ होते हैं, सत्यके प्रभावसे दिशाच भाग जाता है तथा देवता उनके रक्षण करते हैं। ५३६। (इा /६/२८)।

कुरल./१०/३.१ स्नेहपूर्णा, द्यादृष्टिहार्दिकी या च बाक्सुधा। एत्योरेव मध्ये तु धर्मी वसति सर्वदा।३। भूषणे द्वे मनुष्यस्य नम्रताष्ट्रियभाषणे। अन्यद्धि भूषणं शिष्टैनदितं सभ्यसंसदि।६।

कुरल,/३०/७ न बक्तव्यं न बक्तव्यं मृषावाष्यं कदाचन । सत्यमेव परो धर्मः किं परे धेंमसाधनैः १७। = हृदयसे निकली हुई मधुर वाणी और ममतामयी स्निग्ध दृष्टिमें ही धर्मका नियासस्थान है। ३: नम्नता और प्रिय-सम्भाषण, बस ये ही मनुष्यके आधूषण हैं अन्य नहीं। ६! असत्य भाषण मत करो यदि मनुष्य इस आदेशका पालन कर सके तो उसे दूसरे धर्मको पालन करनेकी आवश्यकता नहीं है। ७।

हा./६/२०,२६ वतश्रुत्तयमस्थानं विद्याविनयभूषणम् । चरणज्ञानयोभीजं सरयसंज्ञं वतं मतम् ।२०। चन्द्रमूर्तिरिवानन्दं वर्द्धयन्ती जगत्त्रये । स्विगिभिधियते मूर्धां कीर्तिः सत्योत्थिता नृणाम् ।२६। चरवावत श्रुत्त और यमोका स्थान है, विद्या और विनयका भूषण है, और सम्यन्जान व सम्यन्चारित्र उत्पन्न करनेका कारण सत्य वचन ही है।२०। तीन लोकोंमें चन्द्रमाके समान आनन्दको मढ़ानेवाली सत्यवचनसे उत्पन्न हुई मनुष्योंकी कीर्तिको देवता भी मस्तकपर धारण करते हैं।२६। (पं. वि./१/६२-६३)।

७. धर्मापतिके समय सत्यका त्याग भी न्याय है

सा.घ./४/३१ कन्यागोहमाखीक-कूटसाक्ष्यन्यासापनापवत। स्यास्सरमाणु-वती सरयमपि स्वान्यापदे त्यजन् ।३११ — वती श्रावक कन्या अलीक, गोअलीक, पृथ्वी अलीक, कूटस्थ अलीक और न्यासानापकी तरह अपने तथा परको विपत्तिके हेतु सत्यको भी छोड़ता हुआ सत्याणु-वतधारी कहलाता है ।३१।

अमि. आ./ई/४७ सत्यमपि विमोक्तव्यं परपीडारम्भतापभयजनकम् । पापं विमोक्तुकामैः सुजर्नेरिव पापिनां वृत्तम्। --पापारम्भको छोड्नेकी बौँछावाला पुरुष पर जीवोंको पीडाकारक आरम्भ, भय व सन्ताप जनक ऐसे सत्य वचनको भी छोड़े ।४७।

* धर्म हानिके समय बिना बुरूाये भी बोले-दे. बाद।

८. सत्यधर्मं च भाषा समितिमें अन्तर

स् सि./१/६/४१२/७ नतु चैतद् भाषासमितावन्तर्भवति । नैव दोषः: समितौ प्रवर्तमानो मुनिः साधुष्वसाधुषु च भाषाव्यवहारं कुवं त् हितं मितं च ब्रुयात् अन्यथा रागादनर्थदण्डदोषः स्यादिति वाश्समिति-रित्यर्थः। इह पुनः सन्तः प्रवजितास्तइभवता वा तेषु साधु सत्यं क्कानचारित्रशिक्षणादिषु **बद्ध**पि कर्ते व्यमित्यनुकायते धर्मीपवृंह -णार्थस्।=प्रश्न-इसका (सत्यका) भाषा समितिमे अन्तर्भाव नहीं होता है। उत्तर-यह कोई दोष नहीं, भयों कि समितिके अनुसार प्रवृत्ति करने वाला मुनि साधु और असाधु दोनों प्रकारके मनुष्योंमें भाषा व्यवहार करता हुआ हितकारी परिमित वचन बोले. अन्यथा राग होनेसे अनर्थ दण्ड दोष सगता है यह वचन समितिका अभिप्राय है। किन्तु सरय धर्मके अनुसार प्रवृत्ति करने वाला मुनि सज्जन पुरुष, दीक्षित या उनके भक्तोंमें साधु सस्य वचन कोसता हुआ। भी ज्ञान चारित्रके शिक्षणके निमित्त बहुविध कर्तव्योंकी सूचना देता है और यह सन धर्मकी अभिवृद्धिके अभिप्रायसे करता है। इसलिए सत्य धर्मका भाषा समितिमें अन्तर्भाव नहीं होता। (रा.वा./१/१/१०/ k8\$/8) 1

सत्यका अहिंसामें अन्तर्भाव-- दे, अहिंसा/३।

सत्य किपुत्र — १ भावि कालीम २३, २४ वें तीर्थं करका पूर्व अनन्तर भव = दे तीर्थं कर/४। २. वर्तमान कालीन ११वाँ रुद्र ८। दे, शलाका पुरुष/७।

सत्यघोष --- १. म पु./४१/श्लोक सं. सिंहपुर नगरके राजा सिंहसेन राजाका श्रीमृति नामक मन्त्री था। परन्तु इसने अपनेको सत्यघोष प्रसिद्ध कर रखा था (१४६-१४७)। एक समय भद्रमित्र सेठके रत्न लेकर मुकर गया (१४१)। तब रानीने चतुराईसे इसके घरसे रत्न

Jain Education International

मँगवाये (१६०-१६६)। इसके फलमें राजा द्वारा दण्ड दिया जानेपर आतं घ्यानसे मरकर सर्प हुआ (१७६-१७७) अनेकों भवोंके पश्चात् विद्युद्धदंष्ट्र विद्याधर हुआ। तब इसने सिंहसेनके जीव संजयन्त मुनि पर उपसर्ग किया। — विशेष दे. विद्युद्ध ष्ट्र। २. इसीके रतन उपरोक्त सत्यवोषने नार जिये थे। इसकी सत्यवोष नाम रखा। – दे. चंद्रमित्र

सत्यदत्त—एक विनयवादी —दे. बैनियक ।

सत्य प्रवाद-इव्यश्रुतका छठा पूर्व -दे. श्रुतज्ञान/।।।

सत्यभामा—ह. पु./सर्ग/श्लोक—मुकेतु विद्याधरकी पुत्री थी। कृष्णको रानी थी (३६/५८) इसके भानु नामक पुत्रकी उरपत्ति हुई (४४/१)। अन्तमें दीक्षा धारण कर ली (६१/४०)।

सत्यमनोयोग--दे, मन ।

सत्यवचनयोग-दे, वचन ।

सत्यवाक कंगुनीवरम् — एक राजा था। समय —ई, ६०९-६४० (जीवन्धर चम्पू/प्र,/१४)।

सत्य शासन परीक्षा आ. विद्यानित (ई,७७६-८४०) द्वारा रचित संस्कृत भाषा नद्ध न्यायविषयक ग्रन्थ है जिसमें न्याय पूर्वक जिन-शासनकी स्थापना की गयी है। (ती./२/३४७)।

सत्यादेत्री - रुचकपर्वत निवासिनी दिवकुमारीदेवी - दे, लोक १/१३।

सत्याभ--एक लौकान्तिकदेव -दे, लौकान्तिक।

सत्योपचार---दे, उपचार/१।

सिच्ये—सत्त्वका सामान्य अर्थ अस्तिस्व है, पर आगममें इस शब्दका प्रयोग संसारी जीवोंमें यथा योग्य कर्म प्रकृतियोंके अस्तित्वके अर्थ में किया जाता है। एक बार बँधनेके पश्चात् जब तक उदयमें आ-आकर विविक्षित कर्मके निषेक पूर्ण रूपेण भड़ नहीं जाते तब तक उस कर्मकी सत्ता कही गयी है।

<u>.</u>	νει ται ε ι
8_	सत्त्र निर्देश
₹ .	सत्त्र सामान्यका छक्षण ।
२	उत्पन्न व स्वस्थान सत्त्वके छक्षण ।
*	बन्ध उदय व सत्त्वमें अन्तर। — हे, उदय/२
₹	सत्त्व योग्य मर्क्कातयोंका निर्देश।
2	सत्त्व प्ररूपणा सम्बन्धी नियम
१ २	तीर्थंकर व आहारकके सत्त्व सम्बन्धी।
२	अनन्तानुबन्धीके सत्त्र असत्त्र सम्बन्धी ।
३	। छण्वीस प्रकृति सत्त्वका स्वामी भिथ्यादृष्टि होता है ।
४	२८ प्रकृतिका सत्त्व प्रथमोक्शमके प्रथम समयमें होता है।
*	प्रकृतियों आदिके सत्त्वकी अपेक्षा प्रथम सम्यक्त- की योग्यता। —दे, सम्यग्दर्शन/IV/२

गतिपकृतिके सत्त्वसे जीवके जन्मका सम्बन्ध नहीं. आयुके सत्त्वसे है। - दे. आयु/२ आयु प्रकृति सत्त्व युक्त जीवकी विशेषताएँ । −दे• आयु/६ जवन्य स्थिति सत्त्व निषेक प्रधान है और उत्दृष्ट काल प्रधान । जबन्यस्थिति सत्त्वका स्वामी कौन । Ę सातिशय मिथ्यादृष्टिका सत्त्व सर्वेत्र अन्तःकोटा-कोटिसे भी हीन है। --दे. प्रकृतिबन्ध/७/४ अयोगीके शुभ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभाग सत्त्व पाया जाता है। —दे. अवकर्षण/४/ मदेशोंका सत्त्र सर्वदा १॥ गुणहानि प्रमाण होता प्रकृतियोंके सत्त्वमें निषेक रचना। —दे. उदय/३ सस्वके साथ बन्धका समानाधिकरण नहीं। सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थिति सत्त्व २ समय १० पाँचवेंके अभिमुखका स्थिति सत्त्व पहलेके अभि-मुखसे हीन है। **११** सत्त्व न्युन्छित्ति व सत्त्व स्थान सम्बन्धी दृष्टिभेद Ę सस्व विषयक प्ररूपणाएँ ξ प्रकृति सत्त्र व्युच्छितिकी ओव प्ररूपणा । **ર** सातिशय मिथ्यादृष्टियोंमें सर्वे प्रकृतियोका सत्त्व चतुष्का। ş प्रकृति सत्त्र असत्त्र की आदेश प्ररूपणा। ሄ मोह प्रकृति सस्वको विभक्ति अविभक्ति। मुलोत्तर प्रकृति संस्व स्थानीको ओव प्रह्मणा। ч मूल प्रकृति सरेव स्थान सामान्य प्ररूपणा। Ę मोहप्रकृति सत्त्र स्थान सामान्य प्ररूपणा । 19 मोह सत्त्र स्थान ओघ प्ररूषणा । 6 मोह सत्त्व स्थान आदेश प्ररूपणाका स्वामित्व विशेष । मोह सत्त्व स्थान आदेश मरूपणा। १० नाम प्रकृति सत्त्र स्थान सामान्य प्र रूपणा। ११ जीव पदोंको अपेक्षा नामकर्म सस्व १२ प्ररूपणी । नामकर्म सत्त्व स्थान ओघ प्ररूपणा । ₹₹ नामकर्म सत्त्व स्थान आदेश मरूपणा । १४ नाम प्रकृति सत्त्व स्थान पर्याप्तापर्याप्त प्ररूपणा । १५ मोह स्थिति सत्त्रकी ओघ प्ररूपणा । १६ मोह स्थिति सत्त्वकी आदेश प्ररूपणा। ए \$ सम्यक्तव व मिश्र प्रकृतिके सत्त्व कालको प्ररूपणा

विशेष ।

—दे. काल/६

- * | बन्ध उदय सत्त्वकी त्रिसंयींगी महत्पणाएँ।
 - —दे, उदय/द
- मूछोत्तर प्रकृतिके चार प्रकार सत्त्र व सत्
 कर्मिको सम्बन्धा सत् संख्या, स्रेत्र,
 स्पर्शन, काल, अन्तर व अल्प बहुत्व प्ररूपणाएँ।
 —से. वह-वह नाम
- १८ | मूछोत्तर प्रकृतिके सत्त्व चतुष्ककी मरूपणा | सम्बन्धी सूची ।
- १९ अनुभाग सत्त्वको ओध आदेश प्ररूपणा सम्बन्धी सूची।

१. सत्त्व निर्देश

१. सत्त्व सामान्यका लक्षण

१. अस्तित्वके अर्थमें

- दे. सत्/१/१ सत्त्वका अर्थ अस्तित्व है।
- दे. द्रव्य/१/७ सत्ता, सत्त्व, सत्, सामान्य, द्रव्य, अन्वय, बस्तु, अर्थ और विधि ये सम एकार्थक हैं।

२. जीवके अर्थमें

स. सि /७/११/३४६/८ दुष्कर्म विपाकवशास्त्रानायोनिषु सीदन्तीति सत्त्वा जीवाः । = बुरे कर्मोंके फलसे जो नाना योनियोंमें जन्मते और मरते हैं वे सत्त्व हैं । सत्त्व यह जीवका पर्यायवाची नाम है । (रा. वा./७/११/४/४३८/२३)

३. कर्मोंकी सत्ताके अर्थमें

पं, सं./प्रा./१/३ धण्णस्स संगहो वा संतं…। =धान्य संग्रहके समान जो पूर्व संचित कर्म हैं, उनके आत्मामें अवस्थित रहनेको सच्च कहते हैं।

क. पा./१/१,१३-१४/६२६०,२६९/६ ते चेत्र विदियसमयप्पहुडि जान फलदाणहैद्रिमसमयो त्ति तान संत्रवर्णसं पडिवज्जंति। —जीवसे सबद्ध हुए वे ही (मिथ्यात्वके निमित्तसे संचित) कर्म स्कन्ध दूसरे समयसे तेकर फल देनेसे पहले समय तक सत्त्व इस संज्ञाको प्राप्त होते हैं।

२. उत्पन्न व स्वस्थान सत्त्वकं लक्षण

गो. क./भाषा/१५१/५०६/१ पूर्व पर्याय विषे जो बिना उद्वेतना [अप-कर्षण द्वारा अन्य प्रकृतिरूप करके नाश करना] व उद्वेतना तै सत्त्व भया तिस तिस उत्तर पर्याय विषे उपजै, तहाँ उत्तरपर्याय विषेतिस सत्त्वकौ उत्पन्न स्थानविषे सत्त्व कहिए। तिस विवक्षित पर्याय विषे विना। उद्वेतना व उद्वेतना तै जो सत्त्व होय ताकौ स्वस्थान विषे सत्त्व कहिए।

३. सत्त्व योग्य प्रकृतियोंका निर्देश

- भ, १२/४,२,१४.३८/४६१/१२ जासि पुण पयडीणं बंधो चेन णित्य. बंधे संतिन जासि पयडीणं द्विसितादो उनिर सन्तकालं बंधो ण संभविदः ताओ संतपयडीओ, संतपहाणत्तादो। ण च आहारतुग-तित्थयराणं द्विसितादो उनिर बंधो अत्थि, समाइद्वीस तदणुवलं-भादो तम्हा सम्मत्त-सम्मिन्छत्ताणं न एदाणि तिण्णि नि संत-कम्माणि। — जिन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है और बन्धके होनेपर भी जिन प्रकृतियोंका स्थिति सत्त्वसे अधिक सदाकाल बन्ध सम्भव नहीं है ने सत्त्व प्रकृतियाँ हैं, न्योंकि, सत्त्वकी प्रधानता है। आहारकंद्रिक और तीर्थंकर प्रकृतिका स्थिति सत्त्वसे अधिक बन्ध सम्भव नहीं है, क्योंकि वह सम्यग्द्रष्टियाँमें नहीं पाया जाता है, इस कारण सम्यन्त्व न सम्यग्निथ्यात्वके समान ये तीनों भी सत्त्व प्रकृतियाँ हैं।
- गो. क./मू./३८ पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चलरो कमेण तेणलदी। दोण्णि य पंच य भणिया एदाओ सत्त पयडीओ ।३८। व्याँच, नौ, दो. अट्ठाईस, चार, तिरानवे, दो और पाँच, इस तरह सब (आठों कमींको सर्व) १४८ सत्तास्त्र प्रकृतियाँ कही हैं।३८।

२. सत्त्व प्ररूपणा सम्बन्धी कुछ नियम

१. तीर्थंकर व आहारकके सत्त्व सम्बन्धी

१. मिथ्यादृष्टिको युगपत् सम्भव नहीं

गो. क /जी. प्र./३३३/४८/४ मिथ्यादण्टी तीर्थकृत्वसत्त्वे आहारक
ह्रयसत्त्वं न । आहारकद्वयसत्त्वे च तीर्थकृत्वसत्त्वं न, उभयसत्त्वे तु

मिथ्यात्वाश्रयणं न तेन तद् द्वयम् । तत्र युगपदेकजीवापेक्षया न नानाजीवापेक्षयास्ति । त्रस्त्वकर्मणा जीवानां तद्दगुणस्थानं न संभवतीति कारणाद्य । = मिथ्यादष्टि गुणस्थानमें जिसके तीर्थं करका सत्त्व
हो उसके आहारक द्विकका सत्त्व नहीं होता, जिसके आहारक द्वयका सत्त्व हो उसके तीर्थं करका सत्त्व नहीं होता, और दोनोंका सत्त्व
होनेपर मिथ्यात्व गुणस्थान नहीं होता । इसलिए मिष्टियादिष्ट
गुणस्थानमें एक जीवकी अपेक्षा युगपत् आहारक द्विक व तीर्थं करका
सत्त्व नहीं होता, केवल एकका ही होता है । परन्तु एक ही जीवमें
अनुक्रमसे वा नाना जीवकी अपेक्षा उन दोनों का सत्त्व पाया जाता
है । प्रस्तु एक ही जीवमें

२. सासादनको सर्वथा सम्भव नहीं

गो, क./जी, प्र./३३३/४०६/६ सासावने तदुभयम्पि एकजीवापेक्ष्यानेक-जीवापेक्ष्या च क्रमेण युगपद्वा सत्त्वं नेति । =सासादन गुणस्थानमें एक जीवकी अपेक्षा वा नाना जीव अपेक्षा आहारक द्विक तथा सीर्थंकरका सत्त्व नहीं है।

मिश्र गुणस्थानमें सस्त व असत्त्व सम्बन्धी दो दृष्टियाँ

- गो. क-/जी. प्र./३३३/४८५/६ मिश्रे तीर्थं करत्वसत्त्वं न…तत्सत्त्वकर्मणां जीवानां तहपुणस्थानं न संभवीति कारणात् ।
- गो.क./जी.प./६९६/प्रक्षेपक/१/२२३/१२ मिश्रे गुणस्थाने तीर्थ युतं चास्ति । तत्र कारणमाह । तत्तरकर्मसत्त्वजीवानां तत्तद्दगुणस्थानं न संभवति । = १. मिश्र गुणस्थानमें तीर्थंकरका सत्त्वं नहीं होता ।२.इसका सत्त्व

होनेपर इस गुणस्थानमें तीर्थंकर सिंहत सत्त्व स्थान है, परन्तु आहारक सिंहत सत्त्व स्थान नहीं है, क्योंकि इन कर्मोंकी सत्ता होनेपर यह गुणस्थान जीवोंके नहीं होता। [यह दूसरी दृष्टि है]

२. अनन्तानुबन्धीके सस्व असस्व संम्बन्धी

क. पा. २/२-२२/§ सं./पृ. सं./पं. अविहत्ती कस्स । अण्ण-सम्मादिट्टिल्स विसंजो यिद-अर्णताणुबंधिचउनकस्स (१११०/१४/७) णिर्यगदीए गेरइसु-----अणंताणुकं धिचउवकाणं ओघभंगो ।----.एवं पदमाए पुढवीए...सि बत्तव्वं । विदियादि जाव सत्तिमि त्ति एव चैव णवरि मिच्छत्त-अविहत्ती णरिथ (§११९/१२/३-७) वेदगसम्मादिद्विस-अविहत्ति कस्स । अण्णविसंजोइद-अणंताणु० चउवकस्स । ...उब-समसम्मादिद्वीसु...विसंयोजियद अर्णताणुबंधि चउवकस्य ।--सास-णसम्मादिद्वोसु सञ्जपग्रडीणं निहत्ती कस्स । अएण्० । सम्मामि० अमंताणु॰ चडक्क॰ विहत्ती अविहत्ति च कस्स। अण्ण॰ (१११७/ १८/१-८) मिच्छत्तरस जो विहत्तिओ सो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधिचडक्काणं सिया विहत्तियो, सिया अविहत्तिओ (१९४२/१३०/१) णेरइयो तिरिनखो मणुस्सो देनो वा सम्माइट्टी सम्मामिच्छाइद्वी च सामिओ होदि सि । (१२४६/२११/८) = जिस अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर दी है, ऐसे किसी भी सम्यग्दष्टि जीवके अनन्तानुबन्धी चतुष्क अविभक्ति है। (§११०/११/७) नरकगतिमें · · अनन्तानुबन्धि चतुष्कका कथन ओधके समान है।...इस प्रकार पहली पृथिवीके नार्कियोंके जानना चाहिए। --- दूसरी पृथिबीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नार्कियों के इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके मिथ्यास्व अविभक्ति नहीं हैं। (§१११/६२/३-७) बेदक सम्यग्द्रष्टि जीवके... जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना की है उसकी अविभक्ति है। ... जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर दी है उस उपशम. सम्यग्दृष्टिके अविभक्ति है। ...सासादन सम्य-ग्दृष्टि जीवके सभी प्रकृतियोंकी विभक्ति है। सम्यामध्यादृष्टियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कको विभक्ति और अविभक्ति । किसी भी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके हैं (१९१७/१८/१-८) जो जीव मिथ्यात्वकी विभक्ति वाला है वह सम्यक् प्रकृति, सम्यग्निध्यास्व, और अनन्तानुबन्धी चतुष्कको विभक्तिवाला कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। (१९४२/१३०/१) नास्को, तिर्यंच, मनुष्य या देव इनमेंसे किसी भी गतिका सम्यग्हिष्ट और सम्यग्निष्यादृष्टि जीव चौबीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी होता है।(१२४६/२११/८)

३. छब्बीस प्रकृति सस्वका स्वामी मिथ्यादृष्टि ही होता

, पा, २/२-२२/ चूर्णसूत्र/६ २४७/२२१ छःचीसाए विहस्तिओ को होदि । मिच्छाइट्ठी णियसा । मेचिनयमसे मिथ्यादृष्टि जीव छव्वीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी होता है ।

४. २८ प्रकृतिका सत्त्व प्रथमोपशमके प्रथम समयमें होता है

है॰ उपसम्/र्/२ प्रथमोपशम सम्यक्त्वसे पूर्व अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें अवादि मिध्यादृष्टि जीन जन्न मिध्यात्वके तीन खण्ड करता है तन उसके मोहकी २६ प्रकृतियोंकी बजाय २८ प्रकृतियोंका सत्त्व स्थान हो जाता है।

५. जबन्य स्थिति सत्त्व निषेक प्रधान है और उत्कृष्ट काल प्रधान

- क, पा, ३/३,२२/६५१३/२६१/८ जहण्णट्ठिदि-जहण्णट्ठिदि अद्धन्छोदाणं जइबस्द्रुच्चारणाइरिएहि णिसेगपहाणाणं गहणादो । उक्कस्सद्ठिही उक्कस्सँट्ठिद अद्वाछेदो च उक्कस्सट्ठिदसमयपश्यक्षणिसेगे मोत्तूण णाणासम्मयपबद्धणिसेगपहाणा ।∙••पुव्विस्तवक्खाण**मेरेण सु**त्तेण सह∗ किण्ण विरुष्फरे । । विरुक्षरे चेव, किंतु उवकस्सिट्टिद उवकः ट्ठिहि अद्धाधेद जहण्णिह्यदि-ज०हि्ठदिअद्धाधेदाणं भेदपरूवणट्ठं तं वस्ताणं कमं वस्ताणाइरिएहि। चुल्लिसुत्त्चारणाइरियाणं पुण एसो णाहिष्पाओ;। - जघन्य स्थिति और जघन्य स्थिति अद्धान्छेदको यतिवृषम आचार्य और उच्चारणाचार्यने निषेक प्रधान स्वीकार किया है। तथा उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्टस्थिति अद्धाच्छेद उत्कृष्ट स्थितिवाले समय प्रबद्धके निषेकोंकी अपेक्षान होकर नाना समय प्रबद्धोंके निषेकोंकी प्रधानतासे होता है। प्रश्न--पुर्वोक्त व्याख्यान इस सूत्रके साथ निरोधको क्यों नहीं प्राप्त होता ? उत्तर - विरोधको प्राप्त होता ही है किन्तु उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट स्थिति अद्धान्छेदमें तथा जघन्य स्थिति और जघन्य अद्धान्छेदमें भेदके कथन करनेके लिए ब्यारूयानाचार्यने यह ब्यारूयान किया है। चूर्णं सुत्रकार और उच्चारणाचार्यका यह अभिप्राय नहीं है ।

६. जघन्य स्थिति सत्त्वका स्वामी कौन

क गा. १/३,२२/६३६/२२/३ जो एइंदिओ हतसमुपत्तियं काऊण जाव सक्का ताव संतकम्मस्स हेट्ठा बंधिय सेकाले समाद्ठिदं बोलेहिदि ति तस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं ।... मिच्छादि०... ति । ≈ जो कोई एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पितकको करके जबतक शक्य हो तबतक सत्तामें स्थित मोहनीयकी स्थितिसे कम स्थितिवाले कर्मका बन्ध करके तदनन्तर कालमें सत्तामें स्थित मोहनीयको स्थितिके समान स्थितिवाले कर्मका बन्ध करेगा उसके मोहनीयका जघन्य स्थित सत्त्व होता है। इसी प्रकार... मिध्यादृष्टि जीवंकि...जानना चाहिए।

७. प्रदेशोंका सस्व सर्वदा १२ गुणहानि प्रमाण होता है

गो. क./मू./६/६ गुणहाणीण दिवड्ढं समयप बद्धं हवे सत्तं।६।
गो. क./मू./६४३ सत्तं समयप बद्धं दिवड्ढ गुणहाणि ताडियं अणं।
तियकोण सरूव द्विद्द देवे मिलिदे हवे णियमा ।६४३। = कुछ कम डेढ़
गुणहानि आयामसे गुणित समय प्रमाण समय प्रबद्ध सत्ता (वर्तमान)
अवस्थामें रहा करते हैं।६। सत्त्व द्वव्य कुछ कम डेढ गुणहानिकर
गुणा हुआ समय प्रबद्ध प्रमाण है। वह जिकोण रचनाके सब द्वव्यका
जोड़ देनेसे नियमसे इतना ही होता है।

८. सत्त्वके साथ बन्धका सामानाधिकरण नहीं है

घ . ६/१.६-२.६१/१०३/२ ण च संतम्मि विरोहाभावं दटठूण वंधिम्हि वि तदभावो वोतुं सिक्काइ, बंध-संताणमेयत्ताभावा। = सत्त्वमें

(परस्पर विरोधी प्रकृतियोंके) विरोधका अभाव देखकर मन्धमें भी उस (विरोध) का अभाव नहीं कहा जा संकला, क्यों कि मन्ध और सत्त्वमें एकरवका विरोध है।

९. सम्यग्मिथ्याःवेका जधन्यस्थिति सत्त्व दो समय कैसे

क. पा. ३/२,२२/8४२०/२४४/६ एगसमयकाल द्वितिय किण्ण बुचरे। ण. उदयाभावेण उदयणिसेयंद्विदी परसरूवेण गक्षाए विदियणिसेयस्स ्वुसमयकालद्विदियस्स एगसमयाबद्वाणविरोहादो । विदियणिसेओ सम्मामिच्छत्तसरूवेण एग्समयं चेव अच्छदि उवरिमसमए मिच्छत्त-स्स सम्मत्तस्स वा उद्याणिसेयसरूवेण परिणाममुबलंभौदो । तदो एयसमयकालद्विदिसेसं कि वत्तव्यं। ण, एगसमयकालद्विदिए णिसेगे सिते विदियसमए चेव तस्स णिसेगस्स अदिण्णफलस्स अकम्मसरूवेण परिणामप्यसंगादो । ण च कम्मं सगसरूबेण परसरूबेण वा अदत्त-फलमकम्मभावं गच्छदि, विरोहादो । एगसम्यं सगस्रुवैणच्छिय विदियसमए पर्पयिक्सस्बेणच्छिय तदियसमए अकम्मभावं गच्छदि स्ति द्समयंकालद्विदिणिहेसो कदो। = प्रश्न- सम्य-ग्निध्यास्त्रकी जघन्य स्थिति एक समय काल प्रमाण क्यों नहीं कही जाती है। उत्तर-निहीं, क्योंकि जिस प्रकृतिका उदय नहीं होता उसकी उदय निषेक स्थिति उपान्त्य समयमें पर रूपसे संक्रमित हो जाती है। अतः दो समय कालप्रमाण स्थितिवाले दूसरे निषेककी जघन्य स्थिति एक समय प्रमाण माननेमें विरोध आता है। प्रश्न सम्यग्मिध्यात्वका दूसरा निषेक सम्यग्मिध्यात्व रूपसे एक समय काल तक ही रहता है, क्योंकि अगले समयमें उसका मिध्यास्व या सम्यक्त्वके उदयनिषेक रूपसे परिणमन पाया जाता है अतः सूत्रमें 'दुसमयकालद्विदिसेसं'के स्थानपर 'एकसमयकाल-द्विदिसेसं' ऐसा कहना चाहिए। उत्तर-नहीं, क्योंकि इस निषेकको यदि एक सम्मय काल प्रमाण स्थितिवाला मान लेते हैं तो दूसरे ही समयमें उसे फल न देकर अकर्म रूपसे परिणमन करनेका प्रसंग प्राप्त होता है और कर्म स्वरूपसे या पररूपसे फत्त बिना दिये अकर्म भावको प्राप्त होते नहीं, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है। किन्तु अनुदयस्प प्रकृतियों के प्रत्येक निषेक एक समय तक स्वरूपसे रहकर और दूसरे समयमें पर प्रकृतिरूपसे रहकर तीसरे समयमें अकर्मभावको प्राप्त होते हैं ऐसा नियम है अतः सूत्रमें दो समय काल प्रमाण स्थितिका निर्देश किया है।

१०. पाँचवेंके अभिमुखका स्थिति सस्त्र पहलेके अभि-मुखसे होन है

ध. ६/१.६-=-१४/२६६/१ एदस्स अनुवनकरणचरिमसमए वहमाणिमच्छा-इष्टिस्स द्विदिसंतकम्मं पढमसम्मत्ताभिमुहअणियद्दीकरणचरिम-समयद्विदिमच्छाइष्टिद्विदिसंतकम्मादो कर्धं संखेजजगुणहीणं। ण. द्विदिसंतमोवद्वियं काऊण संजमासंजमपडिवज्जमाणस्स संजमा-संजमचरिममिच्छाइद्विस्स तदिवरोहादो। तस्थतणअणियद्वी- करणहिदिघादादो वि एत्थतणअपुञ्चकरणहिदिघादस्स बहुवयरत्तादो वा। ण चेद ण पुड्यकरणं पढमसमत्ताभिमुहमिच्छाइद्वि अपुट्यकरणेण तुरुलं, सम्मत्त-संजम-संजमासंजमफलाणं तुरुलत्त्विरोहा। चापुञ्चकरणाणि सञ्बद्धणियट्टीकरणेहितो अर्णतगुणहीणाणि चि तय्पदुच्यायाणसुत्ताभावा । - प्रश्न - अपूर्व करणके अन्तिम समयमें वर्तमान इस उपर्युक्त मिध्याइष्टि जीवका स्थिति सच्न, प्रथमोपशमसम्यनस्वके अभिमुख अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें स्थित मिथ्यादृष्टिके स्थितिसत्त्वसे संख्यात गुणित हीन केसे है। उत्तर-नहीं, क्योंकि, स्थिति सत्त्वका अपवर्तन करके संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले संयमासंयमके अभिमुख चरमसमय-वर्ती मिथ्यादृष्टिके संख्यात गुणित हीन स्थिति सत्त्वके होनेमें कोई विरोध नहीं है। अथवा बहाँके, अर्थात प्रथमीपक्षमसम्यवस्वके अभिमुख मिध्यादृष्टिके, अनिवृत्तिकरणसे होनेवाले स्थिति घातकी अपेक्षा यहाँके अर्थात् संयमासंयमके अभिमुख मिध्यादृष्टिके, अपूर्व-करणसे होनेवाला स्थितिधात बहुत अधिक होता है। तथा, यह, अपूर्वकरण, प्रथमोपशमसम्यवस्वके अभिमुख मिध्यादृष्टिके अपूर्वः करणके साथ समान नहीं है, क्योंकि, सम्यवस्व, संयम और संयमा-संयम रूप फलवाले विभिन्न परिणामोंके समानता होनेका विरोध है। तथा, सर्व अपूर्वकरण परिणाम सभी अनिवृत्तिकरण परिणामोंके अनन्तगुणित हीन होते हैं, ऐसा कहना भी युक्त नहीं हैं, नयों कि, इस बातके प्रतिपादन करनेवाले सूत्रका अभाव है।

११. सत्त्व न्युच्छित्ति व सत्त्व स्थान सम्बन्धी दृष्टि भेद

गो, क./मू./३७३,३११,३१२ तिरथाहारचउक्कं अण्णदराउगदुगं च सत्तदे। हारचउनकं विजय तिण्णि य केइ समुद्दिद्वं ।२७३। अरिथ अर्ण उनसभगे स्वनगापुट्यं स्विन्तु अट्टा य। पच्छा सोलादीणं खवणं इदि केइं णिहिट्ट ।३६१। अणियट्टिगुणद्वाणे मायारहिदं च ठाण-मिच्छं ति । ठाणा भंगपमाणा केई एवं परुवेति ।३६२। = सासादन गुणस्थानमें तीर्थं कर, आहारककी चौकड़ी, भुज्यमान व बद्धमान आयुके अतिरिक्त कोई भी दो आयुसे सात प्रकृतियाँ हीन १४१ का सक्त है। परन्तु कोई आचार्य इनमें-से आहारककी ४ प्रकृतियों-को छोड़कर केवल तीन प्रकृतियाँ हीन १४५ का सत्त्व मानते हैं 1२७३। श्रो कनकनन्दी आचार्यके सम्प्रदायमें उपशम श्रेणी वाले चार गुणस्थानोंमें अनन्तानुबन्धी चारका सत्त्व नहीं है। इस कारणः २४ स्थानों में-से बद्ध व अबद्धायुके आठ स्थान कम कर **देनैपर** र्दस्थान ही हैं। और क्षापक अपूर्वकरण वाले पहले आठ कषायों का क्षय करके पीछे १६ आदिक प्रकृतियोंका क्षय करते हैं।३११। कोई आचार्य अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें मायारहित चार स्थान हैं, ऐसा मानते हैं। तथा कोई स्थानोंको भंगके प्रमाण कहते हैं।३६२।

दे, सत्त्व/२/१ मिश्रमें तीर्थं करके सत्त्वका कोई स्थान नहीं, परन्तु कोई कहते हैं कि मिश्रमें तीर्थं करका सत्त्व स्थान है।

३. सत्त्व विषयक प्ररूपणाएँ— सारणीमें प्रथक संकेत सूची

(117-11	at a Branch and a second				
मिथ्या०	मिथ्यास्य	तिर्य0	तिर्य े च	ঞা০	आहारक शरीर
सम्य०	सम्यक्तक भोहनीय	मनुव	मनुष्य	औं .बै ,आरा,हिक्	बह वह शरीर व अंगोपांग
নিশ্ব ০	मिश्र मोहनीय	नरकादि द्विक	बहँबह गति व आसुपूर्वीय	औ, बै. आ.	वह वह शरीर, अंगोपांग्
अनन्तानु ०	अनम्तानुबन्धी चतुष्क	नरकादि त्रिक्	बह बह गति, आनुपूर्वीय	प तु० तीर्थ०	मन्धन तथा संघात तीर्थं कर
গ্রস্ত	अपरवास्त्याम		तथा आग्रु		
प्र०	प्रत्यारूयान ''	नरकादि चतु०	वह वह गति, आनुपूर्वीय	भु०	भुज्यमान आयु.
सं०	संज्वलन ''		तथा तचारय शरीर और	ब ०	मद्भागन आयु.
नपु*०	नपु'सक बेद		अंगो भौग	बै क्रि॰ षटक्	नरक गति आनपूर्वीयः,
पुरु	पुरुष बेद	आनु०	आनुपूर्वीय		देव गति, आनुपूर्वीय,
स्त्री	स्त्री वेद	এ ী০	औदारिक शरीर		वैकियिक शरीर तथा
eto São	हास्य. रति. अरति. जोक	ੜੇ o	वैक्रियक ''		बैक्रियिक अ'गोपांग

१. प्रकृति सत्त्व न्युच्छित्तिकी ओघप्ररूपणा

सत्त्व योग्य प्रकृतियाँ — नाना जीवों की अपेक्षा - १४८। एक जीव की अपेक्षा सवर्त्र ६ विकल्प हैं --

बद्धायुष्क तीर्थंकर रहित=१४६,

४. अवद्धायुष्क तीर्थंकर रहित = १४४;

^{२.} बद्धायुष्क आहारक द्विक रहित १४४:

- ५. अबद्धायुष्क आहारकद्विक रहित = १४३;
- २. बद्धायुष्क आहारक द्विक व तीर्थंकर रष्टित=१४३; ६. अबद्धायुष्क आहारक द्विक व तीर्थंकर रहित=१४२
- नोट इस प्रकार सत्त्व योग्य प्रकृतियोंके आधार पर प्रत्येक गुणस्थानमें अपनी ओरसे एक जीवकी अपेक्षा छह-छह विकल्प बना लेने चाहिए।

प्रमाण--- (पं. सं./प्रा./३/४६-६३); (पं. सं./प्रा./६/४८६-४००); (पं. सं./सं./३/६१-७०); (पं. सं./सं./६/४६२-४७७); (गो. क./३३६- ३४३/४८८-४६६)।

गुण स्थान	व्युच्छि सिकी प्रकृतियाँ		असत्त्व	कुल सत्त्व ग्रोग्म	असन्त्व	सत्त्व	व्युच्छि.	शेष स र व ग्रोग्य
१	×		× .	१४८	×	१४८	×	१४=
2	×		तीर्थंकरव आ दि	१४८	Ę	१४४	×	688
3			तीर्थं कर	१४८	1	१४७	×	१४७
१ उप	शम व क्षयोपशम सम्यक्त						į į	
8	×		×	१४८	×	१४८	×	१४८
ķ	×		नरकायु	१४८	१	१४७	×	१४७
Ę	× .		नरकव तिर्यंचायु	१४८	3	१४६	×	१४६
vs }	×		,1 1,	१४८	२	१४६	×	१४६
2-88	×		11 11	१४८	2	१४६	×	१४६
२ क्षा	यिक सम्यवत्व- (गो. क./जो. प्र./३६६/६१९/४)		\		}]
8	नरकायु, तिर्यंचायु, दर्शनमोहकी ३, अनन्तानुबन्धी ४	= 4	दर्शनमोह, अनन्ता-७	१४८	y	१४१	1	१४०
١ ا	तियं च । यु	 ₹	×	१४०	×	१४०	,	389
Ę	×	-	×	१३६	×	१३१	×	१३६
છ	उपशम श्रेणी में = × ; क्षपक श्रेणी में = देवायु	= ₹	×	१३६	×	359	2	१३=
३ क्षा	विक सम्यक्त्व उपशम श्रेणी(गो. क./जी. प्र./३६६/६१२/४)							
_	× धिक सम्यक्त क्षपक श्रेणी—(गो.क./जी.प्र./३३६-३४३/४==-१ अनद्वायुष्क ही क्षपक श्रेणी पर चढ़े।	₹ ξξ)	×	१३८	×	१३८	×	१३८
	×		×	१३८	×	१३⊏	×	१३≂
ε/i	नरकद्विक, तिर्यंच द्वि: १ [.] ४ इन्द्रिस, स्त्यानगृद्धित्रिक, उद्योत, सूक्ष्म, साधारण, स्थावर च १ ६	आतप,	×	१३८	×	१३८	१६	१२२
įii/3	प्रसारुयान ४, अप्रस्थारुयान ४=८		× .	१२२	×	१२२	-	११४

		पुरुष वेदोदय सहित	हित	ļ.			स्री वेदोस्य सहित	हित				नर्पंसक ं	नर्पसक वेदोइस सहित	अहित		
मुण स्थान	मोह सरव स्थान (दे.सस्ट	मोह सरव स्थान (दे.सरव/३/७)।	सत्त	व्युह्छ	160. BZ	मिह सस्य स्य स्थान (दे,सस्व/३/७)	व्युच्छित्तमो प्रकृतियाँ	सत्व योग्य	मिशेहाङीष्ट्र	श्रेष संस्व (दे	मोह सरव स्थान दे.स ^{न्} ंगे?/७.	न्युच्छिसिको प्रकृतियाँ ७.)	तियाँ	स्तर्व योग्य	प्री <i>व्</i> डनीयुट	शेष सत्म
iii/3	mr mr	नर्सक बेद	883	م.	866	ex-	×	888	×	888	£}	×		20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 2	×	\$
\$/iv	S.	स्त्री वेद	\$ \$ \$	~	443	€	स्त्रोवेद	888	~	883	**	×		888	×	8
.√3	*	हास्यादि छह नोकबाय	*	10	30%	~	नप्सक वेद	883	~	583	e.,	स्त्री व नर्सिक बेद		888	D.	888
14/3	-×	पुरुष वेद	8	•~	रे०∤	≈	पुरुष वेद व हास्यादि ६	***	ອ	*o}	* *	पुरुष नेद, हास्यादि	4(jr	***	9	30.
11.A/2	≫ ı	- সাথ	¥° 8°	~	80%	20	सं. क्रोध	36	•	80%	20	सं, क्रोघ		3	<i>~</i> -	808
FILA S	mr i	स्, मान	% *	~	80%	635	सं, मान	808	~	503	m,	सं. मान		%0%	•	803
×1/2	~	स. माया	€03	٠.	દુવ્ય	~	सं, माया	e, %	•	803	~	सं, माया		£03	~	१०५
स्थान			10	ट्युन्छित्तको प्रकृतियाँ	की प्रकृ	ਜ਼ਿਆਂ					असत्ब	कुल सत्त्व प्रोग्य	अस ्ब	स्रत्वं .	ामीश्र डी धुठ	शेष सत्म योग्य
\$	#. 91.	संज्वसन लोभ ᠆ ै.						 			×	608	×	808	•	800
1/23	<u> </u>	(द्विषरम समयमें) निद्रा, प्रचता	æ . ∦ •								×	808	×	8	- 10	. "
13/2i	ন্ত 	(अन्त समयमें) ५ ज्ञानावरणी, ४ दर्शनावरणी, ५ अन्तराय=१४	४ दर्शनाव	रणी, ६ ३	।न्त्राय=	%					×	# H	×	32	. S	ੂੰ ਨੂੰ
£.		×									×	J.	×	ىد ئا	. ×	้น
1/8}	<u> </u>	(द्विचरम समय) ५ झरोर. ५ लन्मन, ५ संघात, ६ संस्थान,६ सं ४ रस. ऱ्रुप्शं च ५०+ स्यिर,जेस्थिर,घुभ,ज्यकुभ,स्वरद्वय,देगद्विक.	दन्धन, स्थिर,धुभ	५ संघात, , अशुभ,	६ संस्थान,६ स्वरद्वय, देशद्वि	रान, ई. सं देशद्विक,	सेहनन ३ अंगोपौग, १ वर्ण, २ २. विहायोगतिद्वय, दुर्भग, 1	२ गन्ध, सिमणि,			×	ŭ.	×	, 24,	g	(ev. ,
	में स	अयशः, अनादेयः, प्रत्मेकः, अपः नेदनीयः, नीचगोत्र=७२	अपर्याप्त, अगुरुतपु,	ुरुवधु.	उपदात, परवात,	परघात.		अन्यतम								
€3/ii	(<u>च</u> 전환	(चरम समयमें) क्षेष उदयवाली वेदनीय, मनुष्य त्रिक, पंचेन्द्रिय यश, तीर्थंकर, उच्चगीत्र = १३	ं केदनीय,	मनुष्य	त्रिक, पं	•	सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त,	अादेय,			×	mr ov	×	er.	85	×
	<u>.</u>													-	·	
									— 		,					
	·	•										<u>(A:)</u>	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	, _,-	7	
														-	- 	

२. सातिशय मिथ्यादृष्टिमें सर्वे प्रकृतियोंका सत्त्व चतुष्क—(ध. ६/२०७-२१३)

द्रष्टु•य — (घ. ६/२६८) अथमोपशमसहित संयमासंयमके अभिमुख सातिशय मिण्यादृष्टिका स्थिति सत्त्व इस सारणीमें कथित अन्तःकोटाकोटिसे संख्यात गुणा हीन अन्तःकोटाकोटि जानना।

संकेत - अन्तः को, को - अन्तः कोड़ा काड़ी सागर; व. - वध्यमान आयुष्क भुः - भुज्यमान आयुष्क । इह स्थान - निम्ब व कावजीर रूप अनुभागः चतुः स्थान - गुड़ खण्ड शर्करा अमृत रूप अनुभागः।

ぁ.	प्रकृतिका नाम		सन	ख		 雨.	प्रकृतिका नाम		सन	্ৰ	
, .		प्रकृति	स्थिति	अनुभाग	प्रदेश	'		प्रकृति	स्थिति	अनुभाग	प्रदेश
?	झानःवरणीय						पंचेन्द्रिय जाति	at to	अन्त को,को	चतु.स्थान	अजघन्य
	पाँचों	8	अन्तको.को.	द्विस्थान	अजघन्य	₹		11	,1	† "	.,
₹	दर्शनावरणीय-						वैक्रियक ,,	11	11	1 4,	٠.
	निद्रा-निद्रा	P 82]	ĺ	आहारक ,,	नहीं क	नहीं	नहीं	नहीं अजधन्य
2	। गदानानद्र। प्रचला-प्रचला		'	. "	,,		तैजस कामणि	\$6	अन्तको को.	1 ~	अजदन्य
2		"	71	11	,,	૪	अंगोपांग	है	स्व स्व	l	अजघन्य
3	स्त्यान. गृद्धि रोच	*,	,,	,,,		ł.	निर्माण	₹	अन्तको,को,] ""	340144
ષ્ઠ	शेष सर्व	**	, ,,	"	,71	t	ब ғधन	_	स्व स्व	शरीरवस्	
3	वेदनीय —					9	संघात .	_	11	19	
8	साता	,,	٠,	चतुःस्थान	47	۵.	सम चतुरस्रसंस्थान	₽	अन्तको,को,	चतु.स्थान	अजघन्य
٦	असाता	11	**	ਬਿ. "	,,		शेष पाँच	19	**	ਭਿ,	,,
S	मोहनीय-	ĺ			}	3	बज्र ऋषभ नाराच	**	71	चतु. ,,	''
- 1	et	प्रस्थान					शेष पाँच संहनन	1,	"	ਫ਼ਿ. ,,	"
` 1	प्रकृति स्थान	(২৭) (২৬)			<u>.</u>	१०-	वर्ण, गन्ध, रस व		"]
i	ै सम्यग् प्रकृति	है नहीं	**	_	19	१ ३	स्पर्शः प्रशस्त	17	"	चतु, ,,	,,
ii	मिध्यात्व	and the	,,	• •	,,		अप्रशस्त	۰,	1,	ब्रि. ,,	11
iii	सम्यग्निध्यास्व	है नहीं	*,		ì	१४	आनुपूर्वी	_	‡ I	शरीरवत्	_
111	**	२६ फ्रस्थान	+1	*1	17	१४	अगुरु लघु	है	अन्तको को.		अजधन्य
	"	में भी है		ì, ,	"	१ई	उ पद्मा त	11	" (ব্লি, ,,	17
		41 6				१७	परघात	11	٠,	चतु. ,,	,,
₹	चारित्र मोह —		 			e=	आतप	1,1	>7	11	"
i	अनन्ता. चतु,	ह	"	14	21	१६	उच ेत	11	»	*1	"
ii	अप्रस्थारूयान.	57	• • [44	٠,	२०	उच्छ्वास	1,	71	,,	-,,
iii	प्रत्याख्यान	12	11	••	٠,,	२१	विहायोगति				11
iv	संज्वलन ,,	17	11	,,	. ,,		प्रशस्त	,,	1,	चतु. ,,	11
v	सर्व नोकषाय	11	77	,,	17	1	अप्रशस्त	•11	71	ਬ਼ਿ. ,,	11
ķ	आयु —				- 1	२२	प्रत्येक	,,	31	चेतु∙ ,,	- 11
* १	नरक, तिर्यंचगति	ब, भु, हैं	ब, भु, है	द्विस्थान	ALTERNATION OF THE PARTY OF THE	२३	साधारण	,,	71	ਫ਼ਿ ,,	,,
2	मनुष्य, देवगति	1		18/414 TE	अजघन्य	२४	त्रस	1,	1,	चतु. ,,	-,, -
	•	"	"	चतु, ,,	''	₹4	स्थावर	,,	17	द्वि, ,,	,,
Ę	नाम					२६	सुभग	,,	41	चतु. ,,	17
8	नरक, तिर्यंचगति	₹ .	अस्तको,को.	द्विस्थान	,,	२७	दुर्भग	,1	17	ਫ਼ਿ. ,,	,,
	मनुष्य, देवगति	57	. 10	चतु. ,,	-51	१=	सुस्बर	71	,,	चतु,	٠,
₹	१-४ इन्द्रि. जाति	*1	٠,	ਫ਼ਿ. ,,	,,	35	दुः स्वर	11	17	ਫ਼ਿ. ,,	,,
	İ	<u> </u>		į				ļ		l	

	,	है अन्तको,को, चतु,स्थान अर्ज , , , , , , , , , , , , , , , , , , ,		_	प्रकृतिका नाम	सरव						
帮. │	प्रकृतिका नाम	प्रकृति	स्थिति	अनुभाव	प्रदेश	豖.	प्रकृत्तिकानाम 	प्रकृति	स्थिति	अनुभाव	प्रदेश	
30	शुभ	ŧ	अम्तको,को,	चतु, स्थान	 अजधन्य	ı	गोत्र—		-			
38	অধ্যুদ	,,	j .,	ਫ਼ਿ	.,	٠,	उच	ŧ	अन्तको को.	चतु, स्थान	अजध्नय	
32	चादर चादर	,,	,,	चतु, "	,,	₹ .	नीच	**	,,	ਫ਼ਿ, ,,	,,	
33	सूक्ष्म) ,,	٠,	ਗਿ,	,,,	τ .	अन्तराय —			ĺ		
38	 पर्याप्त	,,	,,,	चतु. "	,,		पाँची	••	,,	**	,,	
3¢	अपर्याप्त	,,	,,	fæ	, ,,, ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,			<u> </u>	<u> </u>			
38	स्थिर	,,	1,	चतु. ,,	12							
30	अस्थिर	,,,	,,	ਫ਼ਿ.,,	ນ	l						
3८	आदेय	,,	**	चतु,	**							
38	अनादेय	,,	,,	রি. "	13	ļ						
४०	यशःकीर्ति	,,	**	चतु, "	92							
४१	अयशःकी ति	,,,	,,,	बि. ₁,	177							
४२	तीर्थं कर	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं						,	

३, प्रकृति सस्व असत्त्व आदेश प्ररूपणा --

द्रष्टच्य - इस सारिकों में केवल सक्त तथा असक्त योग्य प्रकृतियों का उल्लेख किया गया है, सक्त-ध्युच्छि सिका नहीं। उसका कथन सर्वत्र ओघवद जानना। जिस स्थान में जिस जिस प्रकार प्रकृति का असक्त कहा गया है, उस स्थान में उस उस प्रकृति को छोड़ कर रोव प्रकृतियों की ब्युच्छित्त अधिवत् जान सेना। जहां कुछ विशेषता है, वहां उसका निर्देश कर दिया गया है। सक्य असक्त का कथन भी यहाँ तीन अपेक्षाओं से किया गया है- उद्वेतना रहित सामान्य जीवों की अपेक्षा, स्वस्थान उद्वेतना युक्त जीवों की अपेक्षा और उत्यन्त स्थान उद्वेतना युक्त जीवों की अपेक्षा और उत्यन्त स्थान उद्वेतना युक्त जीवों की अपेक्षा और उत्यन्त स्थान उद्वेतना युक्त जीवों की अपेक्षा भी

兩.	मार्गणाः	गुण स्थान	असस्ब		कुल स र व योग्य	असत्त्व	स र व	कुत गुण स्थान
₹	गति मार्गणा—							
(१)	नरक गति – (गो.क./भाषा,/३४६/४६८)	 						
1	सामान्य		देवायु	' ₹	₹ 8≂	8	\$ \$0	y
 	उद्वेसना सहित		देखो आगे पृथक् शीर्धक	}				
२	१-३ पृधियी				नरक	ा परि सामा	न्यवत्	
३ [ሃ –፝ቘ୍ "		देवायु, तीर्थं कर	 ₹	१४८	3	१४६	Я
8 į	٠ ,,		देव, मनुष्यायु, तीर्थ	 ३	१४८	ş	१४६	ß
(ş)	तिर्यंच गति—(गो. क./भाषां,/३४६/४६	ξ-koo)	•	- [ĺ	
۲	सामान्य		तीर्थंकर	 १	१४८	१	१४७	ŧ
	उद्वेतना सहित		देखो आगे पृथकु शीर्ष क	İ				,
}	अविरत सम्यग्हिष्ट	}	नरक व मेंतुष्य आयुकी उयुद्धि	द्रति = २	१४७	×	१४७	_
-	संयतासं यत		×		१४७	२	१४६	_
२	पंचे न्द्रिय प्		_	1	सामान्य	तियं चवत		

भा० ४-३६

- 1	मार्गणा	असत्त्व	, .	सत्त्व योग्य	असत्त्व	सम्ब	कुल गुण स्थान	
3	योनिमति प	1	· <u> </u>	.]	साम	ार्च सियंच	 195	<u>-</u>
8	तिर्यंच ल. अप,		तीर्थ, देवायु, नरकायु	= ₹	₹ 8≒	1 3 (48 k	8
3)	मनुष्यगति - (गो. क./भाषा/३४६/१०३	i 1 l			-			
१	VI:11'M,	'	× देखो आगे पृथक् शीर्षक		१४८	×	१४⊏	4.8
	उद्वेतना संहित संयतासंयत		रखा आग पृथक् शावक तिसंच, नरकायु	≖-′ २	१४८	2	१४६	_
٦	मनुष्य पर्याप्त	İ		- 1		य सामान्य		,
`	मनुष्यणी प		•		11	1 22 [_	_
۱ ۲	(तीर्थ सहित क्षपक)	v	स्त्री वेदकी व्युच्छित्ति	≈ ∞ १	१४६	×	१४६	_
		ا ء	X)	१४६	1	१४५	
	स• अप, मनुष्य		तीर्थ, देवायु, नरकायु	-= ₹	१४द	3	488	
3	देवगति - (गो. क,/भाषा,)/३४६/५०३)	Į.	41.14.4.194.474.9	`	-	`	-	,
?	सामान्य	ļ	नरकायु	 ₹	१४≂	१	१४७	8
`	उद्वेलना सहित	ĺ	देखो आगे पृथक् इर्विक	·				
۱,	भवनित्रक देव		तीर्थं कर, नरकायु	= २	१४८	२	१४६	8
	सौधर्म ईशानदेवी		-	1		ग्वनश्चिकव र	•	-
	सौधर्म-सहसार				सा	मान्य देवन	ा त्	ļ <u> </u>
.	आनत-नवग्रैवेयक	- 1	नरक, तिर्यंचायु	२	₹ %=	२	१४ ६	8
	अनुदिश-सर्वार्थसिद्धि		14 47	- ₹	१४ष	2	१४६	१ चौथा
>	चारों गतिके उद्देशना सहित जीव					ļ [
			देवायु. सीर्थं कर, नरकायु	· .	4.11	_	B111	
	सामान्य (३प्रकृतियोंके असत्त्व वाले) आहार. ब्रि.की उद्वेलना सहित को		यनाञ्च, साय कर, नरकाञ्च अहारक द्विक	æ 3	१४८	3	₹ ४ ६	-
				≂ ₹	१४५	२	१४३	
- 1	सम्यग्की ,,	j	सम्यक्ष्य मोह्	 ₹	48\$	1 8	१४२	
	इन्द्रिय मार्गणा—	:	मिश्र मोह	 ₹	१४२	8	१४१	
:	१-४ इस्ट्रिय		•			}		
	सामान्य उद्वेतना सहित को-	1	तीर्थं कर, देव, नरकायु	= 3	१४८	3	१४५	· 2
1	January Santanananananananananananananananananan		आहा, द्वि.	≖ ₹	१४४	२	१४३	२
			सम्यक् प्रकृति	= ₹	483	8	१४२	२
)	उत्पन्न उद्वेलना		मिश्र,	 €	१४२	8	१४१	२
1			•	- -₹	=		\$ 80	२
	14 11		ভস্মগীস	= 3,	१ र४१	1 2	१३=	ે રે
)[ग भ स्वस्थान उद्वेजना		मनुष्यद्विक 	1	₹8 ₹	२ २	54- 8 3 8	ે રે
ļ		ļ	देवद्विक	æ₹.]]	₹ ₹	1
	"	- 1	नरक चतुः (नरक द्विकः क्रि.	हिक)=४	3 ₹ \$	8	(2 K	`
i]	उत्पन्न स्थान उद्वेत्तना से युक्त होने पर]	उच्च गोत्र मनुष्य द्विक	= 3	358	2	१३६	२
	म भ म भ	Į	15 17	≖ \$		श्र श		3
	पंचें निव्य		×	7	१३४ १४=		१३२ १४=	१४
	काय मार्गणा—(गो.क./भाषा./३४६-३६				30		,,	, -
		(3180±-) -	_	_				
1	पृथि अप. वन् सा अ विविध उद्वेलना सहित		देवायु, नरकायु, तीर्थ. —	− ₹	82≃ \$8≃	∤ ३ ∤ ४ इन्द्रियव	१४ ४ च	् २ —
	तेज, बातकाय, सा		देव, नरक, मनुष्यायु, तीर्थ,	-8	१४८ े	8]	१४४	₹
	उत्पन्न स्थान उद्वेसना सहित		आहारक द्विक	 ₹	8 88	२	१४२	?
	יי פייפי אווו אאמוזון מופעו	1	सम्पद्ध मोह	– १	१ ४२	🐧	१४१	,
			मिश्र मोह	9	१४१	}	680	•
-	1	- {	देव द्विक	– 2	१४०	1	13 =	,

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

क.	मार्गणाः	गुण स्थान	अस्च		कुल स र् व योग्य	असर्ष	सत्त्व	कुत्त गुण स्थान
	7157		नरक द्वि., वैकि. द्वि.	= ß	१३८	· ·	628	2
	स्व स्थानमें उद्वेलना सहित		उच्च गोत्र	۶ ≔	१३४	8	१३३	१
			मनुष्य द्वय	= ₹	१३३	२	१ ३१	8
3	पंचेन्द्रिय —		×		१४=	×	१४८	18
۲, ک ا	योग मार्गणा—(गो, क./भाषा/३४२-३४३/। ि	६० ६-६० ≂ ो)	ļ				
₹	चार मन, चार अचन व औदारिक काय योग		×		१४८	×	१४८	१२,१३
₹	आहारक व आ. मिश्र	ł	नरकायु, तिर्यंचायु	=ર	१४८	२	१४६	१ (६,ठा
३	वै कियक		×	ı	१४८	×	१ %⊏	8
	اً م	8	तीर्थं कर प्रकृतिवासा तीसरे न				عدم ا	1
8	वैक्रियक मिश्र		तिर्यंच, मनुष्यायु	∽ ₹	१४८	२	१४६	ጸ
		१,४		.,	१४६	×	१४६	-
		२	आ. द्वि., तीर्थ., नर्कायु	æ.ß	१४६	8	१४२	-
ķ	औद।रिक मिश्र.		देवायु, नरकायु	= 4	१४८	२	१४६	१.२.४ व १३ वर्ग
ŧ	कामणि			}	0.5-			
			— वैक्रियक मिश्र व सयोगी	वत् —	१४=	×	१ ४≒ —	8
4 .	वेदः मार्गणा(गोः कः/जीः प्रः/३५४/५०	د /٤)			; [}
١	पुरुष वेद		. ×	ĺ	१४८	×	१४=	१४
₹ ¦	स्त्री वेद सा,		×	ĺ	१४८	×	१४८	१४
	, क्षपक अंगी	}	तीथंकर	≔१	१४८	₹ .	\$80	€ (C-68)
3	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·		— स्त्रीवेदवद्य —	İ		_		-
٤.	क्षथय मार्गणा—							
	क्रोधादिमें गुणस्थान	3	लोभमें गुणस्थान १०	}	१४८	×	१४८	€ या १०
ا.و،	हान मार्गणा(गो. क./जो. प्र /३६४/६	o≂ / €)			İ	[}
8	कुमति, कुथुत, विभंग	E	×		१४६	×	₹ 8=	२
۲	मति, श्रुत, अवधि	i	×	1	१ 8=	×	१४८	४–१३
3	मनःपर्यय	ļ I	नरक तिथंचायु	æ= \$	१४८	₹	१४६	६ −१२
8	के ब ल		ओघवत् व्युन्छित्ति	- ६ ३	१४८	4 3	۳ķ	\$3-\$8
د.	संयम मार्गणा—(गो. क./जी./प्र./३१४/१८ सामान्य	(3\70	•		ļ			
१ २	सामायिक छेदोपस्था.	-	37& fa-1	{	4.75			
3	परिहार विशुद्धि		नरक, तिर्यंचायु	= 7	१४८	₹ ,	१४६	ξ−ε
8	सृक्ष्म साम्पराय (उप.)		11		,, ["	11	€ −७
-	्रूर्स वान्स्राय (७५,)		ण ओधवत् ४१ व्युच्छि.	اعدر معو		1	17	१ (१०)
į	यथारुयात उप.×उपशम.	{	अ।वयत् इद् व्युत्स्छ. मरक, तिर्यंचायु	== ४ ६ == २	१४८ १४=	४ ६ २	१०२ १४६	१०वा १ (११वा)
			** x 70 (X M 7 1 M		ran I		***	. 916

я.	#1141011	गुण थान	अस≂व		कुल स र व योग्य	असत्त्व	संत्रव	कुस गुण स्थान
	यथाल्यात क्षा. (× उपश्चम्)	<u></u> '	नरक, तिर्यंच, देवायु, दर्शन मोहर्क ३, अनम्तानुबन्धि ४ =	ो = १०	१४८	१०	१ ३=	'११ वर्ग)
	, (क्षा.×क्षपक.)	ĺ	, 🔾	- ১৫	१४८	પ્રહ	१०१	१२-१४
ŧ	संयत्तासंयत			⇒₹	१४८	8	१४७	१ (५वा)
ષ	असं यत		×		१४=	×	१४८	6-8
٩.	दर्शन मार्गणा—(गो. क./जो. प्र./३४४/४०	१४)						
8	चक्षु, अचक्षु दर्शन	Ī	×		१४८	×	१४८	१-१२
3	अवधि दर्शन		×		१४८	×	१४८	४-१२
3	केवल ,,			- 43	१४८	ξą	Ck	१३-१४
१०	केश्या मार्गणा—(गो. क./जी. प्र./३५४/५०६	/ 9)	9 1	-				
2	कृष्ण, नीस		तीर्थं कर	= १ ∫ 	१ ४८	2	१४७	y
₹	कापोत	8	×	`	१४८	×	\$ 8≃ /0-	8
3	पीत, पद्म	`	×	}	१४८	×	१ ४≂	8-9
`		₹	तीर्थं कर 💌	ا ۽ -	१ 8⋷	١٩	१४७	
:		'	(तीर्थ, सत्त्ववाला नरक जानेके सन्मुख	1	1*			
			होय तभी सम्यवस्वको छोड़े। परन्त्					1
Ì			तम लेश्या भी कापोत हो जाये	1				
ł			क्यों कि शुभ लेश्यामें सम्यवस्वकी	†				
			विराधना नहीं होती ।)					
8	शुक्त				१४८	×	१४८	८-१३
1	भव्यत्व मार्गणा (गो. क./जी. प्र./३५४-३	k4/k	० १-५१०/१ ६)					
2	ਮਰਧ		×		१४८	x !	१४८	१४
ব :	अभव्य		तीर्थः, सम्यः, मिश्रमोह, आ• हि., आ, मन्धनः संघात द्वय	ಶ್ಚ	१ ४=	9	१४१	१
१ २	सम्यक्तव मार्गणा — (गो.क./जी.प्र./३५५/५९३	२/१)						
१	क्षायिक सम्य,		नरक, तिर्यंचायु, दर्शन, मोह ३०	ا ع -	१४८	8	१३ ६	४–१४
२	वेदक सम्य		अनन्तानुबन्धी ४ =	۱ ۲	१४८	x	१४८	8-0
3	उपशम ,,		×		१४८	×	१४८	४–११
8	द्वितीयोपशम (ल. सा./२२०)			€	१४८	.	१४२	४-११
8,	सम्यग्निथ्याख			Q x=	१४८	8	१४७	१ (३रा)
ķ	ससादन	Í		- -3	6 8=	3	१४५	१ (२२७)
€ '	मिथ्यादृष्टि	1	X		१४=	×	१४८	8
₹₹	संज्ञी मार्गणा(गो. क./जो.प्र./३५५/५१३/	ა)	·	ļ		}		! :
8			×		१४८	×	१४८	१-१२
₹ .	अ सं ज्ञी	i	तीर्थं कर	≈= ₹ ,	१४८	8	\$ 80	1 3
१४	आहारक मार्गणा-(गो.क /जी.प्र./३५४/४१	(3/8)						
8	आहारक	"	×		१४८	×	१४८	₹₹
रे २ [†]	अनाहारक		·x		१४८	×	१ ४⊏	k
•	1		•					(१,२,४
	•	-	•	1		}		१३, १४)
		1		- 1				
	•	. २,४ १३			_		_	_

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

४. मोह प्रकृति सस्वकी विभक्ति अविभक्ति

प्रमाण-क, पा. २/§ १०१/८३-८७ ।

संकेत -२८ प्र. = मोहकी सर्व २८ प्रकृतियाँ ७ प्र. = दर्शन मोह ३+ अनन्तानु, ४; ६ प्र. = मिध्याख रहित उक्त ७; २ प्र = सम्य व मिश्र मोह वि. = विभक्ति ; अवि. = अविभक्ति । शेषके लिए देखो सारणी सं. १ का प्रारम्भ ।

प्रमाण	मार्गणा	विभ	ग िता अविभन्नि	ककी प्रकृति	। याक्षेष	की विभक्ति
प्रसाण	4111011	੨ੑ≒ ਸ.	৬ স্ন,	€ प्र.	२ प्र-	अन्य विकल्प
१	गतिं मार्गणा					
43	नरक गति सामान्य	×	,,	×	×	×
ሩ ያ	प्रथम पृथिवी	×	11	×	×	×
58	२-७ पृथिबी	×	×] .,]	×	×
८४	तियंच सामान्य	×	11	×	×	× '
۳γ	पंचेन्द्रिय ति, सा. प.	×	,,,	×	×	×
58	तिर्यंच यो नमति	×	×	94	×	×
₹٧	पंचे ति. ल. अ.प.	×	×	x	•1	×
=3	मनुष्य त्रिक	11	×	×	×	×
₹8	मनुष्य ल, अप.	×	×	×	25	×
ςγ	देव सामान्य	×	,,	×	×	×
58	भवनित्रक देवी	×	×	.,	×	×
८ ४	सर्वेकरुप वासी	×	11	×	×	×
ર	इन्द्रिय मार्गणा					
58	सर्व एकेन्द्रि. प. अप.	×	×	×	**	×
58 ۽	,, विकलैन्द्रि, प. अप-	×	×	×	11	×
£ 3	,, पंचेन्द्रिय सा. प.	**	×	×	×	×
≈ 8	., पंचे, ल. अप.	×	×	×	17	×
ą :	काय मार्गणा	_	इन्द्रिय मा	, miaa	<u></u>	
8	योगमार्गणा	i i	हा अल ना	191144	_	-
⊏ş	पाँचों मनोयोग				v	×
- =3	,, वचन ,,	**	×	×	×	l x
-ş	कत्य योग सामान्य	"	×	×	×	×
53	औ., औ. मिश	٠,	×	×	×	×
۲8	वै., वै. मिश्र	, , ,	ļ	×	×	×
≂έ	था., आ, मिश्र) ^ } ×	, ") ^ ×	×	×
43	कामणि		" ×	×	×	×
ધ્યુ	बेद मार्गणा	**	^	"		
૮ફ	स्त्री वेद	×	×	×	, ×	अप्रत्य. आदि १२ कषाय. दर्शन मोह ३, नपुः = १६ की वि. अवि. शेष १२ की अवि. ।
८k	पुरुष वेद	×	×	×	x	संज्व, ४, व पुरुष बेदके बिना २३ की विभक्ति अवि.। और इन ५ की वि.।
८५	नपुंसक वेद	×	×	×	×	१२ कथाय, वर्शनमोह ३, नपुं, इन १६ की वि, अवि.। शेष १२ को वि.।
	श्रपगत वेद	×	×	×	×	अनन्तानु ४के बिना २४ वि.अवि. अनन्तानु,की विभक्ति।

]	<u> </u>	<u> </u>	<u> </u>		
प्रमाण	मार्गणा	२६ प्र.	৩ স.	৩ স.	२ प्र.	अन्य विकरप
દ્	क्षाय मार्गेणा		<u> </u>		<u> </u>	
5 4	क्रोध	*	×	× '	×	संज्व. ४ विना २४ की विं. अदि.
≒ ξ	मान	×	×	×	×	संज्व, मान, माया, लोभ विना २६ की वि. अवि.।
===	माया	×	×) ×	×	संज्व, माया, लोभ, विना २७ की वि, अवि. ।
८६	लोभ	×	×	×	×	संज्व. लोभ विना २७ की घि. अ.वि. ।
ረŧ	अक्षायी	×	×	×	×	अनन्तानु, ४ बिना २४ की वि, अवि, ।
હ	, ज्ञान मार्ग णा		:			
٧8	मति, श्रुत, अज्ञान	×	×	×	۰, ا	×
ςγ '	विभंग ज्ञान	×	×	×	19	×
E 3	मति, श्रुत, अश्धि	.,	×	×	×) ×
c 3	मनः पर्यय	**	×	×	×	×
6	संयम मार्गणा				i i	
⊏ ą	संयम सा.	71	×	×	×	×
ረ፥	सामायि, छेदो.) ×	×	×	×	संज्यः लोभ निना २७ की वि. अवि. ।
ሪያ	परिहार विशुद्धि	×	19	×	×	×
≂ ¢	सूक्ष्म साम्पराय	×	×	×	×	संज्व, लोभ अनन्ताः ४ विना २३ की वि, अवि.।
८६	यथारूयात	×	×	×	×	अनन्ता. ४ निना २४ की वि. अति. ।
ε.β.	संयतासं यत	×	1,	×	×	× .
×	असंयत	×	×	×	×	×
۹,	दर्शन मार्गणा					
⊏ \$	चक्षु, अचक्षु	57	×	×	×	×
૮રૂ	এ ৰ ঘি	77	×	×	×	×
१०	लेक्या मार्गणा					
ح8	कृष्णादि ५	×	4,	×	×	×
43	शु ४ त	**	×	×	×	×
११	भन्य मागैणा				1	
८३	भव्य	**1	×	×	×	
દહ	अभव्य	×	×	×	×	सम्य, मिश्र मोह शिना २६ की वि., अवि.।
१२	सम्यक्त्त्र मार्गणा		j			
८३	सम्यक्त्व सा	19	×	×	·× -	×
৫৩	क्षायिक	×	×	×	×	अनन्ता. ४, दर्शन मोह ३ बिना २१ की वि., अवि. ।
E 9	वैदक	×	×	×	×	अनन्ता, ४, सम्य., मिश्र मोह बिना २२ की वि., अवि.।
ದಾ	उपश म	×	×	×	×	अनन्ताः ४ विना २४ की वि. अवि.।
2৩	सम्यग्निध्यादृष्टि	×	×	×	×	11 11 11
•ু হও	सासादन	×	×	×	×	सर्व २८ की वि.। × की वि. अवि.।
	मिथ्यार्डिट	×	×	×	۱,,	×
१३	संशी मार्गणा					
e3	संज्ञी	,	×	×	×	×
=4	असंज्ञी	×	×	×	•,•	×
१४	आहारक मार्गणा					
८३	आहारक	11	×	×	×	×
≂ 3	अनाहारक	9.0	×	×	×	×
	-			}] ,	

भ, मूलोत्तर प्रकृति सरव स्थानोको ओघ प्ररूपणा संकेत- वं०=बढ्यमान अग्रुष्क; भु=भुज्यमान आग्रुष्क।

्र सियाद्धि—(गो. क /१६६-२७१/२२९-२३६)। कुत स्थान का स्थान का स्थान का स्थान का स्थान का स्थान का स्थान का स्थान का मुख्य तीर्थ के सम्प्रका तियं, वेवापु आ. चतु. तीर्थ के सम्प्रका तियं, वेवापु, आ. चतु. तीर्थ के सम्प्रका तियं, वेवापु, आ. चतु. तीर्थ के स्वित्तक के सम्प्रका वाला चतु-तियं, वेवापु, आ. चतु. तीर्थ के स्वित्तक के स्वित्तक के स्वित्तक के स्वित्तक के स्वित्तक के स्वित्तक के स्वित्तक के स्वित्तक के स्वित्तक के स्वित्तक के स्वित्तक के स्वित्तक के स्वित्तक के स्वित्तक के स्वित्तक के स्वतिक के स्वतिक के	अन्दायुष्टक मंग	<u> </u>	_	बहायुष्कि भंग	F	अबद्धायरकके भंग
सिध्याद्वष्टि—(गो. क/१६६-३७९/५२९-५ सीध्युक्त मरकायु बद्ध मनुष्य नरक जानेके सम्मुख तीर्थ, रिह्त कोई भी जीव सरक द्विक, वे. द्वि, देव द्वि., की उद्वला बाला चतुरिन्द्र्य जरकायिके उद्वलनाता तेज, बात कार्यिक मनुष्यद्विककी उद्वलनावाला उप- रोक्त तेज बात कार्यिक सासाद्वा—(गो. क. १७२-३७५/६३६-६३	असर्वको प्रकृतियाँ	n 67H 15@ 67H16 1@x 87H	5]k • फ्रिंस • फ्रांस	िवस्ण	- - 183 हीर - 194	विवर्ष
तीर्थ, रहित कोई भी जीव नरक जानेके सम्मुख तीर्थ, रहित कोई भी जीव रिच्छिय नरक द्विक, वे. दि, देव द्वि., की उद्वेतना वाला चतुरिन्द्र्य जह काग्निक उद्वेतनवाला तेज. बात काग्निक ममुष्यद्विककी उद्वेतनावाला उप- रोक तेज बात कायिक सासादन — (गो. क. १७२-३७६/६३६-६१ आ. चतु के बन्धवाले किसीको सासादन को प्राप्ति होय।	1	अमद्धा, ८); कुल भंग) o) =	मद्धाः ३६, अनद्धाः २४)		
नरक जानेके सम्मुख देनद्विकको उद्वेतमा बाला चतु- रिच्छिय नरक द्विक, वै. द्वि. देव द्वि., को उद्वेतमा बाला चतुरिन्द्रिय उद्वेतमा बाला चतुरिन्द्रिय उत्व्योत्रिक उद्वेतमबाला तेज. बात काग्रिक ममुष्यद्विकको उद्वेत्तमबाला उप- रोक्त तेज बात कायिक रोक्त तेज बात कायिक सासादन—(गो. क. ५७२-३७५/१३६-१३१) सासादनको प्राप्ति होय।		\$82 8 288	۰	भुज्यमान मनुष्य, ब्ह्यमान नर्क	<u>ئ</u>	भुडंयमान मनुष्य
तीथ, रहित कोई मी जीव देवद्विकने उद्देलना वाला चतु- रिच्यि नरक द्विक, वे. दि, देव द्वि., की उद्वेलना वाला चतुरिच्यि उच्चात्रिक व्हेलनवाला तेज, बात काग्रिक मनुष्यद्विकको उद्वेलनावाला उप- रोक्त तेज बात कायिक रोक्त तेज बात कायिक सासादन — (गो. क. १७२-३७५/५३६-५१ आ. चतु के बन्धवाले किसीको सासादन को प्राप्ति होय।			~		-	
देवद्विककी उद्वेजना बाला चतु- रिच्छिय नरक द्विक, वे. द्वि, देव द्वि., की उद्वेलना बाला चतुरिन्द्रिय उच्चाोत्रके उद्वेलनवाला तेज, बात कार्यिक मनुष्यद्विककी उद्वेलनावाला उप- रोक्त तेज बात कार्यिक सासादन—(गो. क. १७२-३७५/६३६-६१ सासादनकी प्राप्ति होय।	11	882 8 588	 	(देख) आयु कर्मके सच्य स्थान)	~	अन्यतम भु ज्यमानायु
देवद्विककी उद्वेतना बाला चतु- रिच्हिय नरक द्विक, वै. द्वि, देव द्वि., की उद्वेतना बाला चतुरिच्छ्य उच्चगोत्रके उद्वेतनवाला तेज. बात काग्रिक मनुष्यद्विककी उद्वेतनावाला उप- रोक्त तेज बात कायिक सासादन—(गो. क. ३७२-३७५/१३६-५३	- - - - -	१४५ ६ १४५	~	मनुष्य नरकायु सहित	~	केबल १ भुड्यमानायु
देवद्विककी उद्वेलना वाला चतु- रिच्छिय नरक द्विक, वै. दि, देव द्वि., की उद्वेलना वाला चतुरिच्छ्य उच्चाोत्रके उद्वेलनवाला तेज, बात काग्रिक भनुष्यद्विककी उद्वेलनावाला उप- रोक्त तेज बात काग्रिक सासादन — (गो. क. १७२-३७५/१३६-५१	્રે ક	188 a 783		(देखो आयु कर्मके संसद स्थान)	20	अन्यतम ,,
देनद्विककी उद्वेलना बाला चतु- रिच्टिय नरक द्विक, वे. द्वि, देन द्वि., की उद्वेलना वाला चतुरिच्छिय उच्चाोत्रके उद्वेलनवाला तेज. बात काग्रिक मनुष्यद्विककी उद्वेलनावाला उप- रोक्त तेज बात काग्यिक सासादन—(गो. क. १७२२-३७५/६३६-५१	¥	०८१ १ १८९		£ .	20	
देवद्विककी उद्वेलना बाला चतु- रिच्डिय नरक द्विक, वै. दि. देव द्वि., की उद्वेलना बाला चतुरिन्द्रिय उद्वेलना बाला चतुरिन्द्रिय मनुष्पद्विकको उद्वेलनावाला उप- रोक्त तेज बात कायिक रोक्त तेज बात कायिक था, चतु के बन्धवाले किसीको सासादन—(गो. क. १७९२-३७५/५३६-५३६)	+ सम्यक्तव, मिश्र 🐣 १	उक्के क क्षिर	·-·	5	20	
सिन्द्रिय नरक द्विक, वै. द्वि, देव द्वि., की उद्वेतना वाला चतुरिन्द्र्य उच्चाोत्रके उद्वेलनवाला तेज, वात कायिक मनुष्यद्विककी उद्वेलनावाला उप- रोक्त तेज बात कायिक रोक्त तेज बात कायिक सासादन—(गो. क. १७२-३७५/१३६-५३६) सासादनकी प्राप्ति होय। सासादनकी प्राप्ति होय।	er I	१३६। २ १३६	•	भुरुयमान तियँच, बद्धधमान मनुष्य अथवा भु, ति.	20	<u> </u>
नरक द्विक, वे. दि, देव दि., की उद्वेलना वाला चतुरिन्द्रिय उच्चगोत्रके उद्देलनवाला तेज. बात काग्रिक ममुष्यद्विककी उद्देलनावाला उप- रोक्त तेज बात कायिक सासादन—(गो. क. १७९२-३७५/१३६-५३ धा. चतु के बन्धवाले किसीको सासादनको प्राप्ति होय।				ब. ति. भु. मनुष्य, व, ति.		
उद्वतमा वाता चतुरिन्द्रिय उच्चगोत्रके उद्वेत्तमवाता तेज. बात काग्निक ममुष्यद्विककी उद्वेत्तमावाता उप- रोक्त तेज बात काग्निक था, चतु के बन्धवाले किसीको सासादन—(गो, क./२०२-३०६/६३६-६३६)	एक दिक, देवदिक,			de d		,
उच्चगीत्रके उद्वेलनबाता तेज. बात कायिक मचुष्यद्विककी उद्वेलनावाला उप- रोक्त तेज बात कायिक सासादन—(गो. क. ५७२-३७४/४३६-१ था. चतु के बन्धवाले किसीको सासादनकी प्राप्ति होय।	*a3	१३७ ६ ९३६	···	भुष्यमान तियाच, बध्यमान मनुब्द	نه. 	मनुष्य या तिर्यंचाय
बात कामिक ममुष्यद्विककी उद्वेत्तनावाता उप- रोक्त तेज बात कामिक सासादन — (गो. क. इ७२-३७४/१३६-१ आ. चतु के बन्धवाले किसीको सासादनको प्राप्ति होय। मिश्र—(गो. क./३७२-३७१/१३६-१३६)	उपरोक्त १७+मनुष्यायु उच्चनोत्र 🖚 ९ १	१३१ २ १२६		भुङ्यमान तियैच अध्यमान तियैच	×	पुनरुस
मनुष्यद्विककी उद्देलनावाला उप- रोक्त तेज बादा कायिक सासादन — (गो. क. १७२-३७५/१३६-५ था. चतु के बन्धवाले किसीको सासादनको प्राप्ति होय । सिस्र — (गो. क./३७२-३७५/६३६-५३६)						:
रोक तेज बात कायिक सासादन—(गो. क. २७२-३७४/४३६-४ था. चतु के बन्धवाले किसीको सासादनको प्राप्ति होय। सिश्च—(गो. क./२७२-३७४/५३६-५३६)	द्विक	१३६ ३ १३६		e P	×	f
सासादन—(गो. क. ३७२-३० <u>१</u> /४३६-६ था. चतु के बन्धवाले किसीको सासादनको प्राप्ति होय। सिश्च—(गो. क./३०२-३७६/६३६-६३६)		·	43		20	
था, चतु के बन्धवाले किसीको सासादनकी प्राप्ति होय। मिश्र—(गो, क./३७९-३७५/५३६-५३६)	कृत स्थान = ६ (बद्धा, २,			 জুল দুগ = १८ (এরা, ६: একুরা, १२)	··	
आ, चतु के बन्धवाले किसीको सासादनकी प्राप्ति होय। सिश्च—(गो, क./३७२-३७६/५३६-६३६)	. क्रिमा २ आग्र तीर्थ आ. चत		 ->	(देखे) आय कमने सन्ब स्थान)	>	 37264 भ <i>ु</i> ष्यमास्थ्य
सासादनको प्राप्ति होय। सिश्च—(गो. क./३७९-३७५/५३६-५३६)	0	tu.	· ··		~ 	9
			→·	2		•
	न, आगु == १		 ×	×	2 0	अन्यतम भुष्यमान
		888 4 388	×	×	rs-	
			w)		٣	
	লি হথান = c (লাইা. ১; অলাইা ১); জুল দাণ =	-) %	न द्वा, २०;	न् । तुरु, अमदा, १६)		
			 	(देख) आयु कर्मके सत्य स्थान)	>	अन्यत्म भुरुयमानायु
., + आ. चतु, उपरोक्त ७+ अनन्ता.	·	- 30		;	70 	, بر,
उपरोक्त ७+ अनन्ता.		>>	 	;	>> 	
	20	20	٠	F	20	:
		<u> </u>	<u>.</u>		w-	•

	8-8kg	अमद्धायुष्कक भग	<u> </u>	मात	ब्दायुष्क भग	प्रति	জন্মেন্ত্ৰিক দ ণ
स्थान सं.	स्थानका स्वामी	असत्त्वको प्रकृतियाँ	- ₽7 P P • 7 P P • 5 F S P	# # # # # # # # # # # # # # # # # # #	विसर्प	स्थान भंग	विवरण
_	अविरत सम्याउष्टि—गो, क./३७६-३८१/४०-१४६ कुल स्थान=४० (मद्धा.	30,	अबद्धा. = २०);); कुल मं	1		
	तीर्थका सत्त्व तिर्ध को न हो।	ř	se 2 se	ش <u>ة</u> ب	. भु. मतु., ब. नर्क, भु, मतु., ब. देव Vice versa	ll.S.	। अन्यत्म ३ थापु
. 12	•	jo N	886 8 883	er er	F	tų.	£
r or:			१४३ १ १४१	6~	F	~	भु, मनुष्यायु
Y >		मिध्यास्त्र = २	०८१ ६ ६८०	•		w	भु. अन्यतम तान
		+ दर्शन मोह ३ 🔤 इ	१४२ ३ (१५६	m	\$	ø¥ 	;
× ~		(4)r	केंद्र इं १९४५	-34 -34	(देखो आयु कर्मके सम्ब स्थान)	>	अन्यतम चारा आयु
, <u>,</u>		१ आयु, अन, ४, तीर्थ =७	உ	-×-		200	चार्र भुज्यमानायु
าเ	मन्दर	U I	083 7 283	m	भु. मतु., म, ति., नारक देव। म, मनु , धुनरुक्त	~	भू., मनुष्यायु
٠		उपरांक + मिध्यात्व, मिश्र = ६ ।।	382 8 1838	m		20	बारा भु. आयु
, S		., + दर्शनमोह ३ 🗝 १०	80	>> '\	भु. नरक, ज. मतु. भु. ति. ब. देन, भु. मतु., ब. देव,	mr	अन्यतेम ३ आयु
2			· 		मनु. स. ति. ।		
•		ति, व अन्य कोई आयु, आ. चतु. = 'हं ,	875 E 883	~	भु. मन्तु. म. नरक, भु. मन्तु. म. देन, व Vice versa	(Ur	अन्यतम ३ आधु
: e		_∞ }	४४३ ४ १३८	<u>«</u>		6Y	.
<u>ر</u> د		1)	वहरे हैं जहरे	e.	£	~	
÷ 3		+ f#ss = 2	230 8 88F	~	£	p>-	अन्यतम ३ आयु
× 2		+ सम्प्रकृत्य =	१३६ १ १३५	~	•	pr	\$ 7
× 4		अन्यतम २ आयु, तीर्थ, आ, चतु, = ७ '	\$84 0 58k	-3×	(देखो आयु कर्मके सच्च स्थान)	20	चाराम अन्यतम आयु
, ş		20	०६५ ४ १६३	عد 9	•	20	•
, i		ì	१३७ १ १३६	W.	्भु, मनु. व. ति., नारक, देव / व. मनुष्य, पुनरुक्त	~	. H.
, 5		1	रड्ड १ १३४	mv Sv	•	20	अन्यतम ४ वाष्ट्र
× %		+ स्मियक्ष = १ (~	20	देखो नं. (१०)	20	:
,			<u></u> .	0		0	
3	देश मंयत(गो. क./३०२(५५०) कुल स्थान = ४० (बद्धा. २०; अबद्धा. ≖	तु स्थान=४० (बद्धा, २०; अषद्धाः=२०): कु	२०): कुल भंग = ४=	_	শব্ধা, = ২৪; থান্দ্রো, = ২৪)		
; ,	अधिकत्त्वति	अभिरत्न्यस	_	*x	ी. मनुः, व. वे.	*	भु. मनुष्य
γ g		;		4X.	भु, मनु., म. देव / भु, ति., म, देव।	% %	भु. मनु. या तियंच
ا خ	- 1	•	•	2X8	भु. मनु., ब. देवका एक भंग सर्वत्र	2×\$	भु. मनु. सबत्र
, c				XX.	सं. क. ७ म्या	××	सं. ६,७ बत्
× × × × × × × × × × × × × × × × × × ×		-		×	सं. १-५ बत	<u>x</u>	सं. १−५ बत
<u>}</u>	.			20 20 20 20 20 20 20 20 20 20		22	
o i	प्रमन्त अप्रमन्त मंयत(गो. क./३=३	प्रमुत्त अप्रमुत्त मंग्रत—(गो. क./३⊏२/४५०) कुल स्थान ४० च (बद्धा. च २०; अबद्धा.		कुल भंग≕	≈२०) कुल भंग =१२० (बद्धा.=६०: अबद्धा.=६०)		
2 -2		्र अविरत्नम्		8×30	भु. मतु., बद्धा. देवका एक भंग सर्वत्र	6x3	धु. मनु. सबंत्र
				å		જ	

८. उपराम श्रेणी 🖟 उप. क्षा. सम्यक्त्व (अपूर्व करण)

(गो, क./३=३-३=४/५६१-५६३)—स्थान=२४; भंग=२४ ।

द्रष्टम्य-कनकनन्दि सिद्धान्त चकवर्तीके अनुसार यहाँ स्थान नं, १.२,७,८,१३,१४,११ इन आठ स्थानीको छोड़कर १६ स्थान व १६ भंग होते हैं।
(गो. क./३११/१४८)।

संकेत- दे. सारणी सं । १ का प्राप्टमा

1						
स्थान सं.	असस्ववाली प्रकृतियाँ	पहले सत्त्व योग्य	असत्त्व	अब स स् व स्रोग्य	भंग	विवरण
<u>-</u> ع	नरक, तिर्य. आयु	१४८	२	१४६	१	बद्धायु मनुष्य
२				१४१	*	अनदायु मनुष्य
3	अनन्तानुः चतुः	१४६	8	१४२	१	नद्रा यु मनु ष्य
૪	;			१४१	१	अबदायुष्क मनु.
ķ	दर्शनमोह त्रिक,	१४२	3	१३६	₹:	नदायु मनुष्य
Ę				१३८	१	अबद्धायु मनुष्य
v	नरक. तिर्य. आयु, + तीर्थ.	१४८	3	१४५	₹	वदायुष्क मनु
┖	j			१४४	१	अबद्धायु मनुष्य
3	अनन्तानु, चतु.	१४६	8	१४१	₹	बद्धायु मनु ष्य
9.0				१ ४०	٠ ٤	अबद्धायु मनुष्य
११	दर्शनमोह त्रिक	१ ४१	3	१३८	१	मदा यु मनुष्य
१२				१३७	१	अनदायु मनुष्य
१३	नरक−तिर्य, आयु + आहा. चतु∙	१४८	Ę	१४२	8	नदायु मनुष्य
१४				१४१	१	अभद्रायु मनुष्य
१५	अनन्तानु. चतु.	18 3	४	१३=	१	बद्धायु मनुष्य
१६				१३७	१	अवद्धायु मनुष्य
₹७	दर्शनमोह त्रिक	१ ३८	३	१३१	१	वद्वायु मनुष्य
१८				१३४	₹	अबद्धायु मनुष्य
35	नरक-तिर्थ. आग्रु + आहाः चतुः + तीर्थः	₹8 年	ંહ	१४१	٤	नद्धायु मनुष्य
२०				१४०	₹	अबद्धायु मनुष्य
२१	अनन्त।नु, चतु,	१४१	ĸ	१३ ७	१	बद्धायु मनुष्य
२२	•			१३६	१	अबद्धायु मनुष्य
२३	दर्शनमोह त्रिक	† \$%	3	१३४	१	बद्धायु मनुष्य
.38				१३३	ę ,	∙अबद्धायु मनुष्य

९--११ उपशम श्रेणी / उपशम व क्षा. सम्यक्त्व (अनिवृत्तिकरणादि उपशान्त कषाय पर्यन्त)।

(गो. क./३८५/४५३) स्थान २४; भंग २४।

द्रष्टक्य-आ. कनकनन्दिके अनुसार स्थान १६, भंग=१६।

→ उपरोक्त यवें गुणस्थानवत्

८. क्षपक श्रेणी (अपूर्व करण)

(गो. क./३८४/४४३) - स्थान = ४; भंग = ४।

द्रष्टव्य - बद्धायुष्यकको क्षपक श्रेणी सम्भव नहीं अतः केवल अबद्धायुष्क मनुष्यके ही स्थान हैं।

स्थान सं.	असत्त्ववाली प्रकृतियाँ	पहते सत्त्व योग्य	असत्त्व	खन सत्त्व योग्य	ਮਾਂग	विवरण
₹	तीन आयु+अनन्त चतु. + दर्शनमोह त्रिक.	र्शत्रद	१०	१३न	ę	×
₹	तीर्थंकर	१३द	.	१३७	१	×
\$	आहाः चतु.	१३८	8	१३४	8	×
8	आहा. चतु. + तीर्थ	१३ न	k .	१३३		×

९. क्षपक श्रेणी (अनिवृत्तिकरण)

(गो. क./३८६-३८८/४४४-४४४)—स्थान-३६: भंग-

दृष्टच्य -गो. सा.में पुरुष वेदी व स्तिवेदी दोनोंके समान आजाप मानकर कुल स्थान ३६ बताये हैं, पर सारणी १ के अनुसार पुरुष व स्ती-वेदीके आजापोंमें कुछ अन्तर होनेसे यहाँ स्थान ४४ बनते हैं।

संकेत-पुं. वेदी = पुरुषवेदोदय सहित श्रेणी चढ़ने वाला।

स्रीवेदी-स्त्रीवेदोदय सहित श्रेणी चढ़ने वाला।

नपुं. वेदो --- नपुंसकवेदोदय सहित श्रेणी चढ़ने वाला।

द्रष्टव्य-केवल अवसायुष्क मनुष्यके आलाप ही सम्भव है क्योंकि बद्धायुष्क क्षपक श्रेणी पर नहीं चढ़ सकता।

गुण स्थान	सत्त्व स्थान	असत्त्ववात्ती प्रकृतियाँ	पहले सस्ब योग्य	असस्ब	अब सस्त्र योग्य	भूग	विवरण
€/i	१	३ आयु + अनन्त चतु. +दर्शनमोह त्रि. =१० ब्युच्छिन्न	१४८	१०	१३८	*	×
	२	तीर्थंकर	१३८	,	१३७	1 8	×
	3	आहारक चतु,	१३८	8	१३४	!	×
	8	आहा, चतुः 🕂 तीर्थ	१३८	k	१३३	2	×
e/ii	8	नरक द्वि, तिर्थे, द्वि. १-४ इन्द्रिय, स्रयान, त्रिक, आतप उद्योत, सूक्ष्म, साधारण, स्थावर ≈१६ ठ्युच्छिन्न	१३८	१ ६	१२२	*	×
	२	तीर्थं कर	१२२	8	१२१	*	×
	3	आहा, चतु,	१२१	8	११८	8	×

गुण स्थान	सस्य स्थान	असत्त्व वाली प्रकृतियाँ	पहले सत्त्व योग्य	असत्त्व	अन सत्त्व योग्य	ਮੰग	विवरण
i1\3	8	आ. चतु.+तीर्थ,	१२२	ŧ	११७	१	×
eliii !	8	अप्रत्या. ४ + प्रत्या. ४ = दव्युच्छि	१२२	•	११४	१	×
	٦	तीर्थं कर	११४	१	११३	१	×
	3	आ. चतु,	१ १४	। <i>प्र</i>	११०	₹	×
	8	आ, चतु. ÷ तीर्थ	११४	ķ	१०१	8	×
yiv]ع	१	×	११४	×	१ १४	१	स्त्रीवेदी व नपूं. वेदी
	3	तीर्थं कर	११४	?	११३	१	>1
		नपुं.	११४	?	71	! १	षु. वेदी
	3	तीर्थ + नपुं,	१ १४	a	११२	(19
	8	आ. चतु.	११४	8	११०	१	स्त्रीवेदी व नर्पु. वेदी
	\	आ, चतु, ╬ नपुं.	११४	k	१०६	१	पु. वेदी
		आ. चतु. + तीर्थ	११४	k	,,	१	स्त्री व नपुं. वेदी
		आ. चतु, +तीर्थं +नपुं-	११४	Ę	१०=	१	पु, बेदी
ε/v	2	×	११४	×	११४	2	नपुं, वेदी
	Q	तीर्थं कर	१९४	3	१ ९३	१	**
		स्त्री वेद	११४	8	,,	१	पु. वेदी व स्त्री वेदी
	3	तीर्थ + स्रोवेद	११४	२	११२	१	••
	8	आ. चतु,	११४	8	११०	१	मपुं. वेदी
	ķ	आःचतु ∻स्त्रो.	११४	k	१०१	१	पु. बेदी + स्त्री वेदी
	-	आ. चतु,+तीर्थ	११४	*	,,	१	नषुं, वेदी
	€	आ. चतुः + तीर्थ + स्त्री.	११४	\$	१०८	१	पु, वैदी व स्त्री वेदी

					*		
गुण स्थान	सम्ब स्थान	असत्त्व वाली प्रकृतियाँ	पहले सत्त्व योग्य	असत्त्व	अब सत्त्व योग्य	ਮੰਧ	विवरण
ξ/vi	₹	स्त्री.वनपुं, =२ व्युक्त्छि,	११ ४	2	११२	t	स्रोवेदी व नपुं, वेदी
	२	तीर्थंकर	११२	१	१११	*	19
	\$	आ, चतु.	११२	8	१ ०≒	*	11
	8	आ, चतुः 🕂 तीर्थ	११२	ų	१०७	8	79
	ķ	हास्यादि =६ व्युच्छि.	११२	Ę	१०६	१	पु. वेदी
	Ę	तीर्थ,	१०६	₹	१०५	१	17
	و	आ, चतु,	१०६	ß	१०२	₹	**
	۷	आ, चतु.+तीर्थ	१०६	k	१०१	१	19
iiv\3	₹	पु.वेद ≔१ ब्युच्छि.	१०६	*	१०५	१	तीनों वेदी
	२	तीर्थं कर	१०५	*	१०४	!	**
	\$	अः, चतु.	१०५	ß	र॰र	१	19
	૪	आ. चतु.+तीर्थ	१०५	ķ	१००	?	"
iiiv\3	, ,	संजब, क्रोध ⇒१ ब्युच्छि.	१०५	१	१०४	8	×
	ર	तीर्थंकर	१०४	*	१०३	१	×
	\$	आहा. चतु,	१०४	ጸ	१००	१	×
	४	अा. चतु. ⊹तोर्थं′	१०४	k	33	१	×
ξ/ix	8	संज्व ंमान. ⊯१ं ब्र्युच्छि.	१०४	१	१०३	₹	×
	२	तीथ कर	१ ०३	१	१०२	8	×
	3	थाः चतु,	१०३	8	33	*	×
	8	आ. चतु, + तीर्थ	१०३	k	ξ ≃	*	×
		१०. क्षपक श्रेणी (स्क्ष्म सस्यराय (गो,क,/३=१/४४६)—स्थान च४: भ					
	8	संज्य माया ≔१ ब्युच्छि .	१ ०३	१	१०२	•	×
	२	तीथ कर	१०२	2	१०१	१	×
	á	आ. चतु.	१०२	8	53	₹	x -
	8	आ. चतु.4-तीर्थं	१०२	٤.	ह७	8	×

गुण स्थान	सस्व स्थान	असत्त्ववाली प्रकृतियाँ	पहले सत्त्व योग्य	असम्ब	अब सत्त्व योग्य	ਮੰਧ	विवरण
	१२	 क्षीण कवाय-(गो. क./३८१/४४६)					
	१	संज्व, लोभ = १ व्युच्छि.	१०२	!	१०१	?	×
	२	तीर्थं कर	१०१	,	₹00	१	×
	₹	आ. चतु.	१०१	8	હત્ર	१	×
	Å	आः चतुः + तीर्थः	१० १	Ł	१.६	१	द्विचरम समय
į	Ł	निद्रा, प्रचला =२ ठ्युच्छि.	१०१	२	33	₹	चरम समय
	Ę	तीर्थंकर	33	१	१८	\	11
	છ	आ∙ चतु₊	33	४	६६	e	11
	۷	आ़ चतु.+तीर्थ'	33	ķ	१४	१	"
,	१ ३	सयोगकेवली—(गो. क./३१०/५५७)-	- स्थान = ४;	ਸੰग=8 			
	8	५ ज्ञानावरण+५ दर्शनावरण +४ अन्तराय = १४ व्युच्छिः.	33	१ ४	૮५	2	×
	२	तीर्थं कर	૮૪	₹	۲8	१	×
	3	आहा. चतु.	૮૪	8	८१	१	×
	8	आ. चतु.+सीर्थ	८५	k	۷٥	१	×
	śκ	अयोग केवली (गो. क./३६०/६६७) — स्थान = र	 		-	
	१४	सयोगीवत् चारों स्थान					्द्वि चरम समय तक
	k	व्युच्छित्रं च च्७२ (दे. सारणी नं • १)	८५	૭૨	ξ\$	*	चरम समय
	ŧ	तीर्थंकर	१ ३	१	१ २	, १	11
	y	व्युच्छि,त्ति = १३	१ ३	१३	- x	१	चरम समयके अन्तर्मे
	۷	व्युस्छित्ति = १२	१२	१२	×	Q	

६, मुळ प्रकृति सत्त्व स्थान सामान्य प्ररूपणा

संकेत - देखो सारणी १ का प्रारम्भ।

₹.	मार्गणा	कुल स्थान	प्रति स्थान प्रकृति	प्रति स्थान भंग	प्रकृतियोंका विवरण
₹.	ज्ञानावरणीय —(पं. सं./प्रा /४	/४,२४); (वं	सं./सं./४/५	 -30 }; (गो.	क./६३०/ =३०)
	१-१२ गुणस्थान	१	*	×	पाँचों ज्ञानावरणीय
٦.	दर्शनावरणीय-(गो. क./६३१-	 ३ २/ ८३१)	 		
8	ę-ε/i	! १	ξ	१	सर्व दर्शनावरणीय
٦	१/ii-१२/i	१	Ę	8	सत्या, त्रिक् रहित ६
\$	₹ २/ ii	१	પ્ર	१	चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल
₹.	वेदनीय(गो. क./६३३-६ <u>१</u> ४/८	३२)	_		
₹	8-88/i	१	٦		दोनों वैदनीय
2	ξ 8/ii	<u> </u>	१	१	साता या असाता
8,	मोहनीय (देखो पृथक् सारणी)				
*	आयु(गो, क,/३६६-३७१/४२२	 -•30		ļ	
ે ૧	बद्धायुष्क	2	•	٦	(i) भु, मनु., बध्य, मनु.
	9	,	,	`	(ii) , ति., , तिर्थ.
			२	k	(i) भु. मनु., म. ति. ii च vice versa
					(ii) भु. मनु. म. नारक व vice versa
	, .				(iii) भु. मनु. व. ऐ व व vice versa (iv) भु, ति., व. नारक व vice versa
					(v) भु. ति. म. देव व vice versa
	अवद्रायु ^{ष्} क		8	૪	अन्यतम भ्रु. आयु से ४ भंग
6.	नाम				
v ,	(देखो पृथक् सारणी) गोत्र—(गो. क./६३५/८३३-८३५) }			N 11 1
8	१-१४/1	१	२	*	दोनोँ गोत्र
٦	₹8/ii	<u>२</u>	ę	१	उच्च गोत्र
c.	अन्तराय(गो.६३०/=३०/)				
8	१-१२/ii	₹	k	ŧ	पाँचों अन्तराय
					i

७. मोह प्रकृति सस्य स्थान सामान्य प्ररूपणा

(क. पा. २/पृष्ठ), (पं. सं./प्रा./४/२३-२६), (पं. सं./सं./४/४२-४७) कुल सत्त्व योग्य = २८; कुल सत्त्व स्थान = १४ द्रष्टव्य -- अनिवृत्ति करणमें मोहनीयके क्षयका क्रम :—

- नवें गुणस्थार्नके कालके संख्यातवें भागको व्यतीत करके (अप्रमत्त व प्रमत्त) ८ प्रकृतियोंका क्षय करता है ।
- २. अनन्तर अन्तर्मृहूर्त बिता कर क्रमसे (१/i) में दर्शायी १६ का क्षय करता है।
- १. ओघमें की प्ररूपणा पुरुषवेद सहित चढ़नेवालों की हैं। यदि स्त्री., नपुं, वेदके साथ भेणी चढ़े तो ह/iii व ह/iv में तीनों वेदों की क्षपण। ६ नो कषायों के साथ युगपत प्रारम्भ करता है। तहाँ पुरुष वेदकी अन्तिम खण्डकी क्षपणाके निकट उससे पहले ही स्त्री व नपुं, वेदों के अन्तिम खण्डों का अभाव हो जाता है। तब वहाँ ह/iv स्थान बजाय ६ के सत्त्वके १९ के सत्त्ववाला बनता है। फिर पुं, वेद व ६ तो-कषायको युगपत क्षय करके ह/vii में पुरुषवेदीवस ही ४ का सत्त्व कर लेता है।

संकेत - देखो सारणी सं. १ का प्रारम्भ ।

सं.		मार्गणः -		प्रति स्थान		प्रकृतियोंका विवरण	
4.	प्रमाण	स्वामी जीव) गुणस्थान 	प्रकृति	प्रमाण	विवरण	
	क.पा.२/पृ.				क.पा.२/पृ•		
१	२ ११	क्षपक मनु. मनुष्यणी	8/x	!	२०२	संज्वत्तन तोभ	
२	२१२	75	¢fix	२	,,	सं. लोभ, माया	
3	,,	v. ••	e/viii	3	,	., ,, ,, व मान	
8	••	19	۶/vii	8	,,	चारों संज्वलन	
ŧ	,,	71	8/vi	k	२०३	चारौँ सं, व पुरुष वेद	
Ę	,,	,,	ε/v_	22	,,	४ संज्या, पु. वेद. ६ नो कषाय	
૭	,,	77	ε/iv	१२	,,	४ सं,, ६ नो कषाय, पु. स्त्रीवेद	
۷	,,	41	g/iii	१३	,,,	,, ,, ३ वेद	
ξ	14	दर्शन मोहके क्षय सहित चारों गतिके जीव	iilg	२१	, ,	४ अनन्ता, रहित चारित्र मोहकी २४	
ę o	,,	दर्शन मोह क्षपक मनुष्य, मनुष्यणी	8-6	२२	,,	उपरोक्त २१ व सम्य. प्रकृ.	
११	२१७	., (मिध्यारवका क्षय कर चुका हो शेष दोका क्षय करना माकी हो)	कृत-कृत्य वे	₹₹	3,	मिथ्यात्व. अन. रहित सर्व	
१२	२१=	चतुंगतिके उपशम या बेदक सम्यग्- दृष्टि या सम्यग्मिध्यादृष्टि अनन्ता. की विसंयोजना सहित					
१३	२२१	चर्तुगतिके अनादि या सादि मिथ्यादष्टि	₹	२६ँ	२०३	सम्य, व मिश्र मोह	
(8	२२१	चर्तुगतिके सादि मि. (मिश्र मोहकी उद्वेतना सहित)	१	' হও	74	सम्य. प्रकृति रहित सर्व	
₹4	,,	उपशम व वेदक सम्य,, यो. १-३ गु. स.	१- ४	य्प	,,	सर्व	

८. मोह सस्य स्थान ओघ प्ररूपणा—(क.पा.२/वृष्ठ), (पं.सं./प्रा./१/३१३-३१०), (पं.सं./सं./१/४०४-४१०), (गो. क./६४४-६४१/८४६-८४८) दष्टव्य—(सत्त्व स्थानमें प्रकृतियोंका विवरण देखो सारणी सं.४)

सं,	प्रमाण	गुणस्थान	बिकल्प नं, १	विकल्प नं १	बिकलप नं, ३	विकल्पनं. ४
	क. पा. २/पृ.	सादि मि.	अनादि मि.	सातिशय मि,	,	
१		मिध्यादष्टि	२६,२७,२⊏	नह	₹ '	
٦		सासादन	₹¤	×	×	[[
3	; 	सम्यग्मिष्ट्यास्व	२८	×	×	
		सम्यक्त्व	क्षायिक	कृतकृत्य वेदक	वेदक	उपशम
8	२१२/२२१	अविरत सम्य,	२ १	२२,२३, २४	२ न	२८
ŧ	,,	संयतासं यत	,,	,,	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	7,
Ę	1 44	प्रमृत्तसंयत [े]	71	25	,,	19
Ģ	,,	अप्रम त्तसंयत	**	71	,,	>9
i	,,	अप्रमत्त सा,	×	,,	×	×
į	}	क्षपक श्रेणी—	पुरुषवेदी आरोहक	स्त्रीवेदी आरोहक	नपुं, वेदी	आरोहक आरोहक
ረ	,,	अपूर्वकरण	२१	२ १	२	१
3	२ १२	अनिवृत्तिकरण (i)	75	}	•	,
	द्रष्टव्य—{ देखो	सत्त्व/३/४सारणी सं. १]				
		" (ii)	,,	,,,		"
) 	,, (iii)	१ ३	१३		१३
		" (iv)	१३-नपुं. = १२	51	1	,,
		,, (v)	१२-स्त्री = ११	१२ (१३-स्त्री.)		१ ३
		" (vi)	१९-६ नो कषाय = ५	११ (१२-नपुं.)	११ (१३ स्त्री)	
		" (vii)	ફ-વુ. ≈૪	४ (११-पु. ६ कषाय)	४ (११-पु. ६)	
		" (viii)	k	3	3	
		" (ix/i)	ે ર	२ '	२	•
		" (ir/ii)	१ (भादर)	१ (कादर) ·	१ नादर	
१०	२ ११	सूक्ष्मसाम्पराय	१ सूक्ष्म	१ सुहम	१ सूक्ष्म	
१२		क्षीण कषाय	×	×		×
	उपशम श्रेणी ,	उपशम सम्यवत्व—				
ļ		द -१ १	२व-२४ के दो स्थान			
	उपशम श्रेणी	क्षायिक सम्यक्त्व –				
		E66	२१ का स्थान			

९. मोह सस्व स्थान आदेश प्ररूपणाका स्वामित्व विशेष

सं,	मार्गणा स्थान	सं.	मार्गणा स्थान
*	गति अपेक्षा		सम्यक्तव अपेक्षा—
	· पर्याप्त -		पर्याप्त —
		१०	अन्यतम सम्यक्रव
१	चारोंमें अन्यतम गतिके जीव पर्याप्त	११	केवल शायिक सम्यक्त्व
२	केवल मनुष्य गति ""	१२	केवल कृतकृत्य वेदक सम्यक्ष्व
ş	मनुष्य व देव गति ,, ,,	१३	केवल बेदक सम्यवस्य
8	मनुष्य व तिर्यंच ,, ,, ,,	१४	केवल उपशम सम्यवत्व
k	देव व नरक	१३	उपशम व वेदक सम्यवस्य
ŧ	नरक व मनुष्य ,, ,, ,,	१६	उपशम वेदक सम्यग्हिष्ट व सम्यग्मिध्यादृष्टि
u	देव मनुष्य व तिर्थंच ,, ,, ,,	१७	उपर्युक्त सं. १६ + सासादन व साहि मि.
c	, , , नरक ,, ,, ,,	१८	सादि मि, व सासादन
£	मनुष्य, तिर्यंच व नरक ., ,, ,,	\$\$	वेदक सम्य,, मिश्र., सासादन, मि,
	द्रष्टब्य — (i) यह १ स्थान 'पर्याप्तक' के जानने।	२०	सादि मिट्याहिष्ट
	(ii) इन्हीं १ स्थानींको 'अपर्याप्तक' बनानेके लिए	२१	अनादि मिथ्यादृष्टि
	पर्याप्त के स्थान पर अपर्याप्त, लिख लेना ।	२ २	सादि अनादि मिध्यादृष्टि
	(iii) इन्हीं १ स्थानीको पर्याप्तापर्याप्तके बनानेके लिए पर्याप्त के स्थान पर उभय लिखं लेना।		ं वेदकी अपेक्षा
			केवल पुरुष वेद

१०. मोह सत्त्व स्थान आदेश प्ररूपणा

प्रमाण-क, पा. २/ पृष्ठ),

संकेत - प्रकृतियोंका विवरण देखो सारणी सं, ४।

प्रमाण	मार्गणा	कुल सत्त्व स्थान	प्रति स्थान प्रकृतियाँ	प्रत्येक स्थानका क्रमशः स्वामितव विशेष (दे, सारणी सं.ह)
१.	गति मार्गणा			
२२१	नरक गति →			
,,	सामान्य	€	र ः, २७, २६, २४, २२, २ १	१७, २०, २२, १४, १२/अ., १०
77	प्रथम पृथिवी	Ę	19	,,
**	ર–૭ મ	. 8	२८, २७, २६, २ ४	१७, २०, २२, १५
	तिर्यंचगति —			
"	सामान्य	ŧ	२८, २७, २६, २४, २२, २१	१७, २०, २२, १४, १२/अ. भोग भूमि, १०
,,	पंचेन्द्रिय सा. व प₊	*	11	11
,,	., योनिमत्ति	8	२ -, २७, २ <i>६</i> , २४	१७, २०, २२, १४
२२३	सन्ध्य र्गप्त तिर्यंच	3	२ ८, २७, २ ६	२०, २०, २२
	मनुष्यगति —			
,,	सामान्य		→ छोघनत् ←	
**	मनु. प. व मनुष्यणी		- → " ←	
२ २४	मनुष्य ल, अ प,	ž.	२८. २७. २ ६	१ ८, २०, २२
	देवगति —			
ररर	सामान्य	£	२८, २७, २६, २४, २२, २१	१७, २०, २२, १६/ज., १२/२३/ज. ११-२३
,,	भवनित्रक देव	8	ર૮, ર ૭, ર દં, ર ૪	१७, २०, २२, १६
**	सौधर्मीद देवियाँ	8	11	"
71	सौधर्म- नवग्रै वेयक	\$	२८, र७, २६, २४, २२, २१	१७, २०, २२, १६, १२/२३/अ., १ १/२३
71	अनुदिश -सर्वार्थ सिद्धि	8.	२८, २४, २२, २१	१४. १५. १२/अ., ११

प्रमाय	मुर्गिणर	कुल सत्व स्थान	प्रति स्थान प्रकृतियाँ	प्रत्येक स्थानका क्रमशः स्वामित्व विशेष (दे. सारणी सं. =)
વ∙	इन्द्रिय मार्गणा			
२२४	एकेन्द्रिय सर्व भेद	3	२८, २७, २६	१८, २०, २२
1,9	विक्लेन्द्रिय ,,	3	11	२०, २०+ २२
,,	पं.सामान्य व पर्याप्त	१६	— → ओषवत् ←	- -
11	पं, लब्ध्यपर्याप्त	ą	२८, २७, २६	२०, २०, २२
₩.	काय मार्गणा			
२२४	सर्वस्थावर	3	२८.२७, २६	२०, २०, २२
"	त्रस सा. व पर्याप्त	₹₺	— → ओधवत् ←	- -
,,	त्रस ल. अप.	#	रट, २७, २६	२०, २०, २२
٧.	योग मार्गणा			
२२४	१ मन, १ वचन, व काय सामान्य योगी	१६	— → ओघवत ←	- ,
,,	। औदारिक काय		- → " ←	
२२४	औदारिक मिश्र	Ę	२८	२/अ-/१३, २/अ, भोग भू. १२
			१८	ति. अ. भोग भूमि/१२
			२८, २७, २६	४/अ./१=, ४/अ./२०.४/अ./२०
			२४. २२ व २१	२/अ./१३, ४/अ. योग/१३
11	वै क्रियक		२ =, २७, २६, २४ , २१	६/१७, ६/२०, ६/२ २
२२६	वैकियक मिश्र	8	उपरोक्त सर्व + २२	४/अ. के उपरोक्त सर्व + ४ अ./१२
71	आहारक व आ. मि	3	२८, २४, २१	१३, १३, ११
17	कामेणि	4	२८, २८, २८, २७, २६, २४, २४	१/१=, ३/१३, देव/१४, १/२०
				१/२२, ३/१३, देव/१४,
ļ				१/१२, १/११ (यहाँ तिर्थ., को
				भोगभूमिज ही जानना।)

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

माण	मार्गणा	कुड सत्त्व स्थान	प्रति स्थान प्रकृतियाँ	प्रत्येक स्थानका क्रमदाः स्वामित्व विशेष (दे. सारणी सं.८)
ч.	वेद मार्गणा			
१२७	स्त्रीवेदी	£	२८. २७, २६, २४ २३, २२, १३, १२, २१	७/१७. ७/२०,७/२२,७/१५ २/१२, २ सपक, २/११
••	पुरुववेदी	? ?	नक, २७, २६, २४ २१, २३, २२ १३, १२, ११, ४	७/१७, ७/२०, ७/२२,७/१४ ७/११, २/१२, ७/१२ द खोघवत
\ է =	नपुं सक वेद ी	8	२८, २७, २६, २४ २२, २१, १३, १ <u>३, १२</u>	ह/र७, ह/२०, ह/२२, ह/र४ ६/१२, ६/११, २/१२ आध्वत
१२६	अपगत्तवेदी		२४. २१ ११. ४. ४. ३, २, १	उपशास्त कषाय → ओघमद ←
ધ.	क्षवाय मार्गेणा			
२६	कोध	१२	२८ से ४ तक	→ ओघवत ←
,,	मान	१३	२ चसे ३ तक	→ " ←
	माया	88	२ द से २ त क	→ " ←
.,	लोभ	? &	रण से १ तक	→ " ←
••	अकष्यी	٩	२४. २१	उपशान्त कथाय
٠.	शान सार्गणा			
२२४	मति, श्रुत अज्ञान	1	२=, २७, २६	१८, २०, २२
., }	बिभंग	,,	11	**
२२१	मति, श्रुतज्ञान	₹ 3	२८, २४ से १ तक	१/१५. ओधनत्
.,	এৰ ঘি ল্লান	1,	31	•,
- 1	मनःपर्ययज्ञान		11	,,,

प्रमाण	मार्गणा	कुल सप्त्व स्थान	प्रति स्थान प्रकृतियाँ	प्रस्येक स्थानको क्रमशः स्वामित्व विशेष (दे. सारणी सं.८)
૮	संयम मार्गेणा			
	संयम सामान्य		ļ	
१२६	सामाधिक, छेदोप,	१३	२८, २४ से २ तक	२/१५, ओघवत्
२३०	परिहार विशुद्धि	\ 4	२८, २४, २३, २२, २१	२/१४, १४, १२, ११
,,	सूक्ष्म साम्पराय	3	२४, २१, १	उप शामक , क्षपक
२२६	यथारूयात	2	२४. २१	उपशास्त कथाय
२३०	संयमासंयम	k	२ ^८ , २४, <u>२३,</u> २२, २१	अ१६५, ४/१६, २/१२, २/११
,,	असंयम	•	२० से २१ तक	→ अोघवत् ←
९	दर्शन मार्गणा			
२२२	चक्ष		— → ओधवत् ← —	
	अचक्षु	-	71	- -
२२६	অৰ্ঘি	45	२८, २४ से १	१/१४, ओघवत्
१०	लेश्या मार्गणा			
२३० ∫	कृष्ण	k	२८, २८, २७, २६, २४, २१	१/१८, ह/१४, १/२०, १/२२ १/१४, २/११
,,	नील		,,	
,,	कापोत	२	दर	ति. अपर्याप्त भोग भूमिज
			२१	६/उभय/१२, ११
२३१	पीत. पद्म	ঙ	२८, २७, २६, २४	७/१७, ७/२०, ७/२२, ७/१४
			रह, २३, २२	७/११, २/१२, ३/१२ देव अपर्या
२२४	शु व त	\$ k	२२, सर्व १५ स्थान	→ ओघवत् ←
			-	

प्रमाण	मार्गणा	कुल सन्द्र	प्रति स्थान प्रकृतियाँ	प्रत्येक स्थानका क्रमशः स्वामित्व विशेष (दे. सारणी सं.८)
११	भव्यत्व मार्गणा			
२२२	भव्य		→ अरोघवद ←	
२३२	अभव्य	*	र६	- २१
१२	सम्यक्त्य मार्गणा			·
२२१	सम्यक्तव सा.	१ ३	२८, २४ से १ तक	१/१५ ओघवत्
२३२	क्षायिक	3	२१ से १ तक	₹/₹₹
,,	बेद क	8	२८, २४, २३, १२	१/१३, १/१३, २/१३, १/१२
,,	उपशम	٦	२८, २४	१, १
11	सम्यग् मिष्या.	२	**	,,
17	सासादन		२६	?
२३४	मिथ्यादृष्टि	३	२८, २७, २६	२०, २०, २२
१३	संंशी मार्गणा			
२२३	संज्ञी		> ओघत्रत् ←-	
२२४ .	असंज्ञी	\$	२८, २७, २६	१म, २०, २२
१४	आहारक मार्गणा			
२२२	आहारक		→ अरोघवत् ←	
२३२	अनाहारक		⊶ कामणिकाय योगवस ←	
	}		·	

१३. नामप्रकृति सरवस्थान सामान्य प्ररूपणा—(पं. सं./शा,/४/२०८-२१६); (एं. सं./सं /४/२२२-२२६); (गो. क./भाषा./६१०/-८१७); (गो. क./भाषा/६१०-८२४); (गो. क./भाषा./७४६/६३१) कुल सत्त्व स्थान = १३; कुल सत्त्व योग = ६३ । संकेत— दे. सारणी सं. १ का प्रारम्भ ।

₹.	स्वामी जीव गो, क./भाषा/६२०-६२४	प्रति स्थान प्रकृति	प्रकृतियोंका विवरण (गो.क/भाषा/६१०/८१७)
१ २ ३ ४	कर्म भूमिज मनु, प, व नि, अप, असंयमादि वैमानिक देव असंयत सासादन रहित चतुर्गतिके जीव देव सम्यग्दृष्टि, मनुष्य, नारकी सम्यक् व मिध्यादृष्टि अनिवृत्ति क. में प्रकृतियोंका क्षय भये पीछे चतुर्गति । देव द्विक्की उद्वेलना, एकेन्द्रिय या निकलेन्द्रियके होय तो वह मरकर जहाँ उपजे वहाँ तिर्यंच, मनुष्य मिध्यादृष्टि भी उस उद्वेलना सहित रहे हैं।	\$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$	२ ६३-तीर्थं कर ६३-आहारक द्विक् ६३-आ. द्वि. व तीर्थ. उपर्युक्त १०-देवद्विक्
4 9	उपर्युक्त सं. ६ जीव नारकद्विक्की उद्वेतना कर ते तो । मनुष्यद्विक्की उद्वेतना भये तेज, बात कास्रिक या अन्य ८८ वाते स्थानवत् होय ऐसा तिर्यंच सा मिट्यादृष्टि । अनिवृत्तिकरण १/ii से १४/i तक	८४	उपर्युक्त ८८-नारक दिक् व वैक्रियक दिक् ६३-(तीर्थ., आ. द्वि., देवदिक्, नारकदिक्, वै. द्विक्, मनु. द्विक् ६३-(नरक द्वि., ति. द्वि., १-४ इन्द्रिय आतप, उचीत, सूक्ष्म साधारण, स्थावर ।
ह १९१२ ११२ १३	ं' तीर्धं कर अयोगीका अन्तसमय सामान्य अयोगी का अन्तसमय	ક ક જ જ જ	प्य-तीर्थंकर प्र-आ. द्विक् प्र-आ. द्विक्, तीर्थ. मनु. गति, पंचे,, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यश, तीर्थ, मनुष्यानुपूर्वी उपर्युक्त १०—तीर्थंकर

१२. जीव पदोंकी अपेक्षा नामकर्म सत्त्व स्थान प्ररूपणा—(गो. क./६२३-६२७/=२=)

я.	म्यर्भणाः	कुल स्थान	प्रति स्थान प्रकृतियाँ	प्रकृतियों का विवरण
?	नारकी सामान्य	. 3	<i>چە، دې، دې</i>	
₹	न।रकी (४-७ पृ.)	2	६०, ६२	1
3	तियाँच (सर्व)	3 -	5 2 , ८४, 55	}
8	मतु. सामान्य	१२	८२ रहित सर्व	· (a)
ŧ	अयोग केवली	8	<i>৬৬, ৬८, ৬</i> ६, <i>५</i> ०, १, १०	सूर्य र
Ę	सयोग केवली	8	७७, ७८, ७६, ८०	देखो सुरव स्थानोंकी सारणी
ا ق	आहारक	₹	हर, ६३	ी सार
=	सर्व भोग भू. मनु, ति,	۹	<i>\$3</i> ,03	्रे च
3	वैमानिक देव	8	ह०. हष, हब, हब	
१०	भवनत्रिक	4	£0 , £3	}
११	सर्व सासादनवर्ती	· •	o3	

५६. नाम कर्म सत्त्व स्थान ओघ प्ररूपणा—(पं. सं./प्रा./४/२९७); (प. सं./प्रा./४०२-४१७); (गो. क./६१२-७०२/८७२) (प. सं./सं./४/४९६-४२८)। संकेत सत्त्व स्थान - प्रकृतियोंका विवरण = देखो सारणी सं.११।

गुण स्थान	कुल स्थान	प्रतिस्थान प्रकृति (देखो सारणी सं.११)	गुण स्थान	कुल स्थान	प्रति स्थान प्रकृतियाँ (देखो सारणी सं. ११)
ę	4	८२, ६४, ६६, ६०, ६१, ६२	5	8	ह०, <i>६९, ६</i> २, <i>६</i> ३
₹ .	१	60	٤	a	क्षपक ७७, ७८, ७६ ८० उपशासक, ६०, ६१, ६२, ६३
3	२	73,03	80	=	पूर्वोक्त नवम गुणस्थानवत
8	8	६०, ६१, ६२, ६३	११	8	६०, ६९, ६२, ६३
k	8	"	१२	8	७७, ७८, ८०
Ę	8	n	\$3	8	44
U)	8	**	१४	Ę	१, १०, ७७, ७८, ७६, ८०
<u> </u>					

38. नाम कर्म सस्व स्थान आदेश प्ररूपणा---(वं. सं./शा./६/२१८-२१६, ४१६-४७२); (वं. सं./सं./६/२३०-२३१) (गो. क./७१२-७३८/८८९)

			· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·				,
麻.	मार्गणा	कुल स्थान	प्रति स्थान प्रकृति (देखो सारणी सं, १९)	豖,	मार्गणा	कुस स्थान	प्रति स्थान प्रकृति (दे, सारणी सं.११)
१	गति मार्गेणा—			૪	वै कियक	૪	६०, ६१, ६२, ६३
R	नरक	ş	६०, ६१, ६ २	ķ	वैक्रियक मिश्र,	४	57
7	तियंच	*	न्द्र, ८४, ८८, ६०, ६२	ŧ	आहारक	ર	£3, £3
3	मनुष्य	१२	६७, ७६, ५०, ८४,	ও	आ, मिश्र,	२	,, .
			८८, ६०, ६१, ६२, ६३,६,६०	u	कार्माण	११	७७, ७८, ७१, ८०, ८२,
8	देव	8	६०, ६१, ६२, ६३				= २, ८८, १०, ११, १२, १३
				પ	वेद मार्गणा—		
२	इन्द्रिय मार्गणा			, १	स्त्री वेद	3	৬৬, ৬६, নহ, ন৪, নন, ৪০,
8	एके न्द्रिय	ধ	८२, =४, ==, १०, १२	` - 3	नपुं. वेद	8	६१, ६२, ६३
2	विकलेन्द्रिय	*	*1	, 13	g. ,,	११	पूर्वोक्त स्त्रीवेदवत ७७, ७८, ७१, ८०, ८२, ८४,
3	पंचेन्द्रिय	१३	७७, ७६, ७१, ८०, ६२, ६४, ८८, १०, ११, १२,	`	9, 71	,,	८८, ६०, ६१, ६२, ६३
ą	काय मार्गणा		£₹, £, १ ०	છ	ज्ञान मार्गणा —		
8	्रिपृ, अप., तेज,	Į į	= ₹, ८४, ८८, ६०, ६ २	₹	मति. श्रु. अज्ञान	ξ	=२, ८४, ८८, ६०, ६१,६२
	वायु वनस्प.		4,00,00,04,04	3	विभंग	3	६०, ६१, ६२
				ż	मति, श्रुत. अवधि	۷	७७, ८८, ८०, ६०, ११, १२, १३
₹ 	त्रस	१३	र्षंचेन्द्रियवत्	8	मनः ५ र्यय	۷	"
8	योग मार्गणः			ų	केवल	4	७७, ७८, ७१, ८०, १, १०
],	सर्व मन बचन	१२	99, 96, = ₈ ,=0, = ₈ , 66,	6	 संयम मार्गणा		
`		, ``	६०, ६१, ६२, ६३, ६, १०	Į į	सा. छेदो.	ᄃ	৬৬, ৬ <u>८, ৬</u> ε, <u>६०, ६०,</u>
2	औदारिक	११	99, 55, 66, 50, 52, 58,	•]		ह९, ह२, ह३
			८८, ६०, ६१, ६२, ६३	२	परि- विशुद्धि	8	ह०, ह १ , ह२, ह३
3	औ. मिध.	रश	11	ź	सूक्ष्म साम्पराय	۷	59, 52, 53, 50,
							हर, हर, हरू
J	1	ı			-	J	·

豖.	मार्गणा	कुल स्थान	मतिस्थान प्रकृति (देखो सार्गी ११)	я.	मार्ग णा	कुल स्थान	प्रतिस्थान प्रकृति (दे.सारणी ११)
8	<i>यथार्</i> ग्यात	१०	<i>७७, ७</i> ८, ७ <u>१,</u> ≂०, १०,	१२	सम्यक्त मार्गणा		
ķ	देश संयत	8	१९, ६२, ६३, ८, १० ६०, ६१, ६२, ६३	१	क्षायिक	१०	৬৬, ৬ <u>೯,</u> ৬৪, ८०,६०, ६ १, ৮३, ६३, ६३
#E7	असंयत	v	८ २, =४, ==, १०, ११, १२, १३	વ	- वेदक	8	६०, ६१, ६२, ६३
			•	ર	उपश्चम सम्य, मि.	૪	;1 80, 83
९	दर्शन मार्गणा चक्षुः	3	৬৩, ৬৪, ৼঽ, ৼ४, ৼ८, ६०,	ķ	सासादन	१	٤٥
٠ ٦	्य अच्छु.	3	64, 63, 63	Ę	मिष्यादृष्टि	EG.	द्द, ८४, द्द, १०. ११, १२
3	હા વ જી. જીવધિ	=	" ያያ, ይን, ያያ የን, ይን, ይን	१३	संशी मार्गणा 		
૪	केवल	É	৩৩, ৩≂, ৩৪, =০, ৪, १০	ę	संज्ञी) E	७७, ७८, ६२, ८४, ८८, १०, ६१, ६२, ६३
,	जेटक सर्वात			ર	असंज्ञी	\[\ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \	च न्, ८४, ८८, १०, ११
8	िलेश्या मार्गणा कृष्णादि ३	8	۲۶, ۳۶, ۳۳, ۶۰, ٤ ۴,	१४	आहारक मार्गणा		
1 3	 	8	हर, हर ह०, ह१ हर, हर	१	आहारक	3	७७, ७६, दर, ८४, ८८, ६०, ६१, ६२, ६३
ફ	पद्म भुक्ल	8	99, 95, €0, €0,	२	अना. सामान्य	११	رهان مان مان مان مان مان مان مان مان مان م
			£ 8, £ 3, £ 3	3	अना. अधोगी	२	ξ, ξο
११	भव्य मार्गेणा						
१ २	भव्य अभव्य	. १३	सर्व स्थान पर, प४, ८८, ६०			!	

१५. नाम प्रकृति सन्तरथान पर्याप्तापर्याप्त प्ररूपणा—(गो. क./७०४-७१२/८७८)

兩.	मार्गणा	कुल स्थान	प्रद्मिस्थान प्रकृति (दे. सारणी ११)	豖.	मार्चणा	कुल स्थान	प्रतिस्थान प्रकृति (दे. सारणी ११)
११	अपर्याप्तक	k k	=2,=3,==,E0,E2	PY	संज्ञी पर्याप्त	१ १	७७,७८,७६,८०,८२, ८४,८८,१०,६ १ ,६२,६३

१६. मोह स्थिति सस्त्रको ओघप्ररूपणा—(क.पा, ३/पृष्ठ) अन्तः=अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर

豖.	प्रकृति	प्रमाण	जवन्य स्थिति क्षपक श्रेणीमें ही सम्भव	師,	प्रकृति	प्रमाण	जघन्य स्थिति क्षपक् श्रेणीमें ही सम्भव
१	मिध्यात्व	२०३	२ समय	۷	संज्वलन माग्रा	२०१	अन्तः कम १/२ मास
٦	सम्य, मिथ्यास्व	٠,,	२ समय	٤	,, ৱীম	२०५	१ समय
₹	सम्यक्ष्रकृति	२०५	१ समय	१०	६ नोकषाय	२१०	संख्यात वर्ष
8	. अन∻ता. ४		२ समय	११	स्त्री वेद	२०४	१ समय
k	⊏ कषाय	२०३	२ समय	१२	पुरुष वेद	२०६	अ≓त कर्म¤वर्ष
Ę	संज्यलन क्रोध	२०७	अन्तः कम २ मृत्स	१३	नपुं. वे द	२०५	१ समय
ø	,, मान	२०८	अन्तः कम १ मास	१४	संक्षमण होनेके पश्चात् शेष अची सम्यक्प्रकृति	२०६	,,

१७. मोह स्थिति सत्त्वको आदेश प्ररूपणा—(क. पा. ३/वृष्ठ) अन्तः = अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर

<u></u>	गुणस्थान व	स्थि	रति र	भ्राचा भ	5	गुणस्थान व	स्थि	ति स	रेव
5 4	प्रकृति .	जघन्य	प्रमाण	उत्कृष्ट	प्रमाण	प्रकृति	जघन्य	प्रमाण	उत्कृष्ट
	१ मिथ्यादृष्टि—						·		•
٤	मोह सामान्थ	१ सा. परुष/असं	35	७० को, को, सा,		४ अविरत सम्यग्ह	ष्टि (वेदक) 		
११४	मिथ्यात्व	२ समय (दे. सत्त्व/३/१६)	दे. स्थिति। दिश	11	१३	मोह सामान्य	अन्तः को, को, सा.	₹0	अन्तः कम ७० को. को सा.
१६६	·	17	""	अ≑तः कम १सा.	२०३	दर्शन मोह तिक		२००	11
७३१	१६ कषाय	**		४० को. को, सा.			(दे. सस्व/३/१६)		
,, 	नो कषाय २ सासादन—	***		१ आयली कम१सा.	,,	१६ क ाय	\$9	7,	अन्तः कम ४० को, को. सा.
११	सामान्य मोह	अन्तः को, को. सा.		अन्तः को को सा.		नो कषाय	२ समय (दे. सत्त्व/३/१६)		अन्तः कम ४० को को सा
00	दर्शन मोह त्रिक	२ समय (दे. सत्त्व/३/१६)		11		४ अविरत सम्यग्ह			, ,
,,	१६ कथाय	vī	 	43	१३	मोह सामान्य	अ≠तः	११	अ न्तः
,,	नो कषाय ३सम्याग्मथ्यादृष्टि—	11		41	२०३	दर्शन भोह त्रिक	२ समय (दे. स र व/३/१६)	२००	71
१०	मोहं सामान्य	अन्तः		अन्सः कम ७० को. को. सा,	,,	१६ कथाय	11	77	91
२००	दर्शन मोह त्रि,	२ समय (दे. सत्त्व/३/१६)	२००	अन्तः कम ७० को, को. सा.		नो कषाय	,,	,,	**
,,									
**	१६ कषास	*,	,,	अन्तः कम ४० को, को, सा.		१ संयतासंयत—			
**	नो कषाय	79	,,	,,	१३	मोह सामान्य	अन्तः (दे, सत्त्व/३/११)	११	अ न्तः
į	४ अविरत सम्यग्ह	। ष्टि (क्षायिक)— !					(2) (1) (2) (4) (4)		
११	मोह सामान्य	अन्तः	११	अन्त.	२०३	दर्शन मोह त्रिक		२००	11
₹00	१२ क्षाय	(दे. सत्त्व/३/१६)	२००	79	.,	१६ कषाय	45	,,	**
99	नो क्षाय	41	,,	71		नो कषाय	,,	,,	٠,

Þ		fŧ	थहि र	प्रस	प्रमाण		ſ₹	थति स	
WH10	गुणस्थान	जदस्य	प्रमाल	उत्कृष्ट	*	गुणस्थान	जघन्य	प्रमाण	उत्कृष्ट
	६–० प्रमत्त अप्रमत्त	 संयत (सामाभ्य)				११ उपशान्त कवा	4 —		
	सामान्य सं.	संयतासंयतवत	१०	सं यतासं यत्तवस्	१३	मोह सामान्य	अन्तः	१०	अन्तः
	सा. छेदो.	} } }	२००	14		दर्शनमीह त्रि.	दे. स र व/३/ १६	20,0	अन्तः
१ ३	परिहार वि.	••	,,	11		१२ कषाय	,,	\ ,,\	11
	६ क्षायिक सामार्ग	ॄ येक छेदो० — ।				नोकषाय	**	77	11
88	मोह सामान्य	अन्तर्मृहूर्त		,	֓֞֞֜֜֜֜֜֓֓֓֓֓֓֓֓֓֜֟֜֟֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֡֜֜֜֜֓֓֓֡֓֜֜֡֓֡֓֡֓֜֡֓֡֓֡֓֡֡֡֓֡֓֜֡֡֡֓֜֡֡֓֜֡֡֡֡֓֜֡֡֡֡֓֜֡֡֓֜֡֡֓֜֜֡֜֜֡	⊏-१ ंक्षपक <i>─</i>			
	' ६-७ क्षायिक परि ह	 हार विशुद्धि—				मोह सामान्य	दे. सत्त्व/३/१६		
	मोह सामान्य					१२ कषाय	,,,		
	१२ कषाय					नोकषाय	79		
	६ कषाय					१० सृक्ष्म साम्परा	। य क्षपक—		
	द−६(उपशामक)	 			१२	मोह सामान्य	१ समय		
	सर्व स्थान		२००	संयतासंयतवस्		लो भ	दे, सत्त्व/३/१६		
	९० सूक्ष्म साम्परा	 य उपशामक —							
	सर्व स्थान	दे. सत्त्व/३/१६	२००	**					
						,			
						<u> </u>			

१८. मूलोत्तर प्रकृति चतुष्ककी प्ररूपणाओं सम्बन्धी सूची

पकृति	मृत था उत्तर	निषय	सत्त्व स्थान	भुजगारादि पद	ज. उ, वृद्धि-हानि	संख्यात भागादि वृद्धि	सामान्य सत्कर्म
१. ओ	घ आदेश	वसे पश्चति सत्त्व	(क. पा. २/ § पृ. सं.				
मोह	मूल	भंगविचय					₹ ४- ₹₹ 88-89
	उत्तर	समुस्कीर्त ना	<u> २१०-२३४</u> <u>२०२-२०६</u>	<u> ३६४-३८६</u>	<u>894-899</u>	846-85£ 858-85 858-85	१०१-१० <u>४</u> ८३-८८
	•,	सन्निकर्ष		,		-	<u> १४२-१५२</u> १३०-१४४
	••	भंगविचय	३०८-३ <u>४६</u> २८१-३१६	<u> ४०५-४०४</u> <u> ४४३-२४४</u>		४४६-४४८ १०१-५०७	<u>१४३-१५६</u> १४४-१५१
ર. ઓ	['] घ आदेश	ासे स्थिति सत्त्व	क. पा./पू. सं./ <mark>§</mark> क. पा./पू. सं./	.	,		}
मोह	मूल	समुत्कीर्तना	3 - <u>E-88</u>	०७१-३<u>१</u>१	३ - २२६-२२ <u>-</u> १२७-१२ <u>६</u>	३ <u>२४६-२४=</u> १३६-१३८	
	,,	भंगविचय	\$ \x2-\x2-\x2-\x2-\x2-\x2-\x2-\x2-\x2-\x2-	<u>038-438</u> \$		३ <u>२१०-२१४</u> १६०-१६४	
	उत्तर	समुस्कीर्त ना	३ <u>३६१-४००</u> ३ <u>१६४-२२६</u>	<u> </u> 		४ <u>२२३-२६६</u> ११७-१६०	४ <u>- ५०७-६४०</u> ३ <u>- ३१६-३३६</u>
	,,	भं गविचय	३ <u>५७३-५६८</u> ३ <u>५७३-५</u> ६४	8 <u> </u>		४ <u>३५८-३६४</u> २२२-२२ ६	
,] ;	सन्निकर्ष	३ <u>४२५-५२४</u>	४६३-१७६ ४ <u>८३-</u> ६५		४ - ४१८-४२७ ४ - २४१-२५६	
	,,	अझाच्छेद	३ <u>- ३६१-४००</u> ३ <u>- १६४-२२</u> ६				
l	{ 						
	1					 	
		j					
				į			

१९. अनुभाग सस्वको ओघ आदेश प्ररूपणा सम्बन्धी सूची—क., पा. १/ है...

प्रकृति	मूल ब उत्तर	विषय	सत्त्व स्थान	भुजगारादि पद	ज. उ. वृद्धि-हानि	संख्यात भागादि वृद्धि	सामान्य सरकर्म
मोह	मूं ल	समुत्कीर्त ना		<u>१४१</u> ह२	१६ँ२-१६४ १०७-१०=	१ ६६-१७ ० ११२-११३	हतसमु. १८६ १२५-१२७
	11	भंगविचय	=2-=3 \$3- \$\$	<u>१४१</u> <u>१६</u> -१०१		999-299 399-299	
	उत्तर	समुल्कीर्तना	१६६-२२३ १३४-१४४	४७१-४ <i>७</i> ३ १७१-४	\$00 \$38-\$38		
	,	भंगविच्य	<u> </u>	२ <i>द६</i> -२८८ ४८७-४८	<u> </u>		:
	,,	सन्निकर्ष	४१८-४२७ २४६ २ ४६		q		
	,,	स स्कर्म	१८६-१६ <u>४</u> १२६-१३४	; ; 			<u> </u>

सत्त्व काल-३. काल/१/१।

सत्त्व भावना--- हे. भावना/१।

सस्वस्थान त्रिभंगी - आन्कनक नन्दि (ई. ३३१) कृत ४० गाथा, प्रमाण कर्म विषयक प्रन्थ। (जी./१/३८४)।

सदर चंडिक — गो क./भाषा-/११३/१००/न तिर्यंचगति. तिर्यंचगत्या-नुपूर्वी, तिर्यंचायु और उद्योत इन चार प्रकृतिनिकी सदर चडक कहिए ।

सदवस्था रूप उपशम—दे. उपशम/१।

सदाशिव तत्त्व--दे. शैवदर्शन ।

सदाशिवमत सांख्य दर्शन - दे. सांख्य ।

सदासुखदास -- जयपुर निवासी एक विरक्त पण्डित थे। दिगम्बर आम्नायमें थे। पिताका नाम दुलीचन्द था। काशसीवाल गोत्रीय थे। वंशका नाम 'खेडराज' था। इनका जन्म वि. १८५२ में हुआ था। राजकीय स्वतन्त्र संस्था (कापड़द्वारे) में कार्य करते थे। कुटुम्न नीसपन्थी था, पर ये स्वयं तैरापन्थी थे। इनके गुरुका नाम यं, मुन्नालाल था। इनके पं, पन्नालाल संघी, नाथूलाल जो दोशी, पं. पारसदास जी निगोत्या सहपाठी थे। इनको विरापकी इतनी रुचि थी कि इन्होंने राजकीय संस्था से मासिककी बजाय ६) मासिक लेना स्वीकार किया था। ताकि २ घण्टे शास्त्र स्वाध्यायके लिए मिल जाये। कृति—भगवती आराधनाकी भाषा वचनिका, नाटक समयसार टीका, तत्त्वार्थ सुत्रकी लघु टी., रत्नकरण्ड शावकाचारकी टीका, अकलंक स्तोत्र, मृत्यु महोत्सव, नित्य नियम पूजा संस्कृतकी टीका, तथा आरावासी पं. परमेष्ठीदासकृत अर्थप्रकाशिकाका शोधन तथा उसमें ४००० श्लोकोंकी वृद्धि की। समय—जन्म वि. १८१२, समाधि वि. १६९३ (ई. १७६१-१८६६)। (ती. १४/२६४)।

सिवृशे — १. एक शह — दे, ग्रह । २. पं. ध /पू. ३२७ जीवस्य यथा ज्ञानं परिणामः परिणमस्तदेवेति । सदशस्योदाहृतिरितिजातेरनितकमरवतो वाच्या ।३२७ क्लेंसे जीवका ज्ञानस्वपरिणामतेपरिणमन करता हुआ प्रतिसमय ज्ञानस्वप ही रहता है । यही ज्ञानस्व जातिका उरलं - घन न करनेसे सदशका उदाहरण है ।

सद्भाव स्थापना—_{हे, निक्षेप/४।}

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

सद्भावालित्य-दे. नव/1V/४।

सद्भूत नय-दे. नय/V/६।

सनत्कुसार --१, चौथा चक्रवर्ती - दे. शलाकापुरुष/२। २. कल्प-वासी देवोंका एक भेद तथा उनका अपस्थान -- दे, स्वर्ग/३व ४/२।

सन्नासन्न-क्षेत्रका प्रमाण विशेष । अपरनाम संज्ञासंज्ञा-दे.
गणित/I/१/३)।

सन्निकर्षं - १. ब.खं व धवसा१२/४.२.१३/सू.२-३/३७६ जो सोवैयण-सिंग्णयासी सो द्विहो सत्थागवैयणसिंग्यासी चैव पर्रथाणवेयण-सण्णियासो चेत्र ।२। अप्पिदेगकम्मस्स दव्य-खेत्त-काल-भावविस्ञो सत्थाणसण्जियासो णाम । अट्ठकम्मविसओ परत्थाणसण्जियासो णाम । सण्णियासो णाम कि । दब्ब-खेस-काल-भावेस जहण्णुक्कस्स-भेदभिण्णेषु एवकम्हि णिरुद्धे सेसाणि किमुक्कस्साणि किमणुक्कस्साणि कि जहण्याणि कि अजहण्याणि वा पदाणि होति ति जा परिक्ता सो सण्णियासो जाम । सन्निकर्ष है वह दो प्रकार है-स्वस्थान-वेदन।र=जो वह वेदना सन्निकर्ष है वह दो प्रकार है-स्वस्थान-वेदन।सन्निकर्ष और परस्थान-वेदना सन्निकर्ष ।२। किसी विविधित एक कर्मका जो द्रवय, क्षेत्र, काल एवं भाव विषयक सन्निकर्ष होता है वह स्वस्थानसन्निकर्ष कहा जाता है और आठों कर्मी विषयक सन्नि-कर्ष परस्थान सन्निकर्ष कहलाता है। प्रश्न -सन्निकर्ष (सामान्य) किसे कहते हैं। उत्तर - जवन्य व उत्कृष्ट भेद रूप द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भावोंमें हे किसी एकको निविधित करके उसमें शेष पद क्या उत्कृष्ट है, क्या अनुस्कृष्ट है, क्या जधन्य है और क्या अजधन्य है, इस प्रकारको जो परीक्षा को जाती है वह सन्निकर्ष है। २.प्रवचन सन्नि-कर्म के लिये डे॰ प्रवचन सन्निकर्ष।

सन्निकर्षं प्रमाण—हे. प्रमाण/४। सन्निपातिक भाव—

१. सान्निपातिक भाव सामान्यका लक्षण

रा. व!./२/अ/२२/११४/१० सान्तिपातिक एको भावो नास्तीति · · संयोग-भङ्गापेश्वया अस्ति । · · · (यथा) औदयिकौपशमिकसान्तिपातिक-जीवाभावो नाम । =सान्तिपातिक नामका एक स्वतन्त्र भाव नहीं है । संयोग भंगको अपेक्षा उसका बहुण किया । · · जैसे औदयिक-औपशमिक-मनुष्य और उपशान्त क्रोध । (ज्ञा./६/४२) जीव भाव सान्तिपातिक है ।

ध, १/१,७,१/१६३/१ एककिह गुणट्ठाणे जीवसमासे वा बहवी भावा जिम्ह सण्णिवदं ति तेसि भावाणं सण्णिवादिएत्ति सण्णा। = एक ही गुणस्थान या जीवसमासमें जो बहुतसे भाव आकर एकत्रित होते हैं, उन भावोंकी सान्निपातिक ऐसी संज्ञा है।

२. साजिपातिक भावोंके भेद

रा. वा./२/७/२२/११४/११ पर उद्दश्त चुग तिग चतु पंचेत्र य संयोगा होंति सन्निवादेसु। दस दस पंच य एकक य भावा छव्वीस पिंडेण ॥
—सान्तिपातिक भाव दो संयोगी, तीन, चार तथा पाँच संयोगी क्रमसे १०, १०, ६ तथा १ इस प्रकार छव्वीस बताये हैं (ध. ६/१,७,१/१६३/३)।

रा.वा./२/७/२२/११४/१३ सान्तिपातिकभावः पड्विश्चितिविधः षड्-त्रिशिद्धि एकचस्वारिशिद्धिः इत्येवमादिरागने उक्तः। = सान्ति-पातिक भाव २६, ३६ और ४१ आदि प्रकारके आगममें बताये गये हैं [४१ भंगोंमें २६ व ३६ आदि सर्व भंग गर्भित हैं इसलिए नीचे ४१ भंगोंका निर्देश किया जाता है]। संकेत-औद०=औदियक; औप०=औपशमिक; क्षा०=क्षामिक; क्षा०=क्षामिक;

१ द्विसंयोगी -

新.	भंग निर्देश	विवरण
१	औद.+औद.	मनुष्य और कोधी
ર	औद.+ओप,	मनुष्य और उपशान्त क्रोध
ঽ	औद.4-क्षा,	मनुष्य और शीणकषाय
8	औद.+श्यो.	क्रोधी और मतिज्ञानी
ķ	औद.+पारि.	मनुष्य और भव्य
ķ Ē	औप.+ औप.	उपशम सम्यग्द्रीष्ट और उपशान्त कथाय
હ	औप,+औद.	उपशान्त कषाय और मनुष्य
ረ	औप.+का.	उपशान्त क्रोध और शासिक सम्य ग्दर्ध
3	औप.+अयो.	उपशान्त कथाय और अवधिज्ञानी
१०	औष.+पारि.	उपशम सम्यग्दष्टि और जीव
११	क्षा-+धा-	क्षायिक सम्यग्हिं और क्षीणक्षाय
१२	क्षा-+औद.	क्षीणकषाम और मृतुष्य
ξ3	्रक्षा,+औप.	क्षायिक सम्यग्दष्टि और उपद्यान्त वेद
१४	क्षा.+क्षयो.	क्षीण कषायी और मतिज्ञानी
१५	क्षा, ने पारि,	क्षीण मोह और भव्य
१६	क्षयो.+स्यो.	संयत और अत्रधिज्ञानी
१७	क्षयो.+औद,	संयत और मनुष्य
१८	क्षयो.+औप-	संयत और उप्शान्त कषाय
38	क्यो +क्षा.	संयतासंयत और क्षायिक सम्यग्रहि
२०	क्षयो.+पारि.	अप्रमत्त्रं यत और जीव
२१	शरि.+पृरिः	जीव और भव्य
२२	पारि. 🕂 और	जीव और क्रोधी
₹\$	पारि.+औंप,	भव्य और उपशान्त कषाय
ર ૪	पारि.+सा.	भव्य और शीण कषाय
२५	पारि+क्षयो.	स्यत और भव्यः

२. त्रिसंयोगी

邪.	भंग निर्देश	विंबर्ण
* * * * * * *	औद+सा.+पारि. औद+क्षयो+पारि.	उपशान्त मोह और शायिक सम्यग्हिष्टि मनुष्य उपशान्त कोध और नाग्योगी मनुष्य उपशान्तमोह और जीन मनुष्य शीयकदाय और श्रुतज्ञानी मनुष्य शायिक सम्यग्हिष्ठ और जीन मनुष्य मनोयोगी और जीन उपशान्तमान शायिक सम्यग्हिष्ठ और काययोगी
<u> </u>	औप+क्षा+पारि.	उपशान्त नेद क्षायिकसम्यण्दृष्टि और भव्य
۶ وه	औप+क्षयो+पारि. झा.+क्षयो+पारि.	उपशान्तमान मतिज्ञानी और जीव श्रीणमोह पंचेन्द्रिय और भव्य

३. चतुः संयोगी

豖.	भंग निर्देश	विवरण
१	औप+क्षा+क्षयो⊹पारि,	उपशान्त लोभ क्षायिक सम्बन्दष्टि पञ्चे न्द्रिय और जीव
२	और,+क्षा,+क्ष्यो+पारि,	मनुष्य शीणकषाय मतिज्ञानी और भवय
₽	औद.+औप+स्यो+पारि	मनुष्य उपशान्त वेद श्रुतज्ञानी और जीव
y	औद,+औप+क्षा.+पारि	मनुष्य उपशान्तराग क्षायिक सम्य- ग्हष्टि और जीव
Ŕ	औद.+औप+क्षा,+क्षयो.	मनुष्य उपशान्त मोह क्षायिक सम्यग्रहि और अवधिज्ञानी

४. पंच भाव संयोगी

और. + औप. + क्षा. + क्ष्योः + पारि - मनुष्य उपशान्तमोह सायिक सम्यग्दृष्टि पंचेन्द्रिय जीव।

सिवेश - घ. १३/४.४.६३/३३६/२ विषयाधिपस्य अवस्थानं संनि-वेशः । - वेशके स्वामीके रहनेके स्थानका नाम सिन्नवेश है ।

सन्नीरा-भरत क्षेत्रस्थ मध्य आर्य खण्डकी एक नदी-दे. मनुष्य/४। सन्मिति-१. भगवान् महाबीरका अपर नाम था-दे. महाबीर; २. द्वितीय कुलकर थे-दे. शलाका पुरुष/६।

सन्मति कीर्ति सुनित कीर्तिका अपरनाम था। — दे. सुमितिकीर्ति। सन्मितिसूत्र — आचार्य सिद्धसेन दिवाकर (बि.६२६) द्वारा रिचत तत्वार्थ विषयक संस्कृत भाषानद्ध प्रन्थ। यह दिगम्बर व श्वेताम्बर दोनोंको मान्य है। दिगम्बराचार्थोंने अपने प्रन्थोमें उसकी गाथाएँ अपनी बातकी पुष्टिके अर्थ प्रमाण रूपसे उद्दध्त की हैं — यथा क, या. १/१-२०/गा, १३४-१४४/३४१-३६०। इसपर श्वेताम्बराचार्य औ अभ्रयदेव सूरि (ई. श. १०) ने एक टीका जिखी है।

संन्यास मरण-दे. सन्तेलना ।

सपर्याः—हे, पूजा/१/१ याग, यझ, कतु, पूजा, सपर्या, इज्या, अध्वर, मख, मह यह सब पूजाविधिके नाम हैं।

सप्तऋषि— 4. पु./१२/इलोक सं. प्रभापुर नगरके राजा श्री नन्दनके सात पुत्र थे— सुरमन्यु, श्रीमन्यु, श्रीनिचय, सर्व मुन्दर, जयवात्त्, विनयलालस, और जयमित्र । (२-३.) प्रीतिकर महाराजके केवल- ज्ञानके अवसरपर देवों के आगमनसे प्रतिकोधको प्राप्त हुए तथा पिता सहित सातों ने दोशा ले ली (४-६)। उत्तम तपके कारण सातों भाई सप्तश्चिष कहलाये (७)। उनके प्रभावसे ही मथुरा नगरीमें चमरेन्द्र यश द्वारा प्रसारित महामारी रोग नष्ट हुआ था। १।

सप्त ऋषि पूजा—हे, पूजा।

सप्त कुं भे — ह. पु./३४/६० इसकी विधि तीन प्रकार कही गयी है— उत्तम, मध्यम व जघन्य। विधि—१. उत्तम—क्रमशः १६,१६,१४,१४,१३, १२.११,१०,६,८,७,६,६,४,३,२,१; १६,१४,१३,१२,११,१०,६,८,७,६,४,४, ३,२,९; १४,१४,१३,१२,१९,१०,६,८,७,६,६,४,३,२,१; १५,१४,१३,१२ ११,१०,६,८,४,३,२,१—इस प्रकार एक हानिक्रमसे एक बार १६ से १ तक और इससे आगे ३ कार १५ से एक तक कुल ४६६ उपवास करे। बीचके (१) वाले ६१ स्थानों में सर्वत्र एक एक पारणा करे। २. मध्यम—ह. पु/३४/८६ सर्वविधि उपरोक्त ही प्रकार है। अन्तर

सप्त गोदावर - भरतक्षेत्रस्थ आर्य स्माडकी नदी - दे. मनुष्य/४। सप्त तत्त्व - दे तत्त्व।

सप्ततिका — ३ परिशिष्ट । सप्ततिका चुर्णी — ३, वुर्णी

सप्तपारा - भेरत क्षेत्रस्य आर्थ खण्डकी नदी-दे. मनुष्य/४।

सप्तमंगी--- प्रश्नकारके प्रश्नवश्च अनेकान्त स्वरूप वस्तुके प्रतिपादनके सात ही भंग होते हैं। न तो प्रश्न सातसे हीन या अधिक हो सकते हैं और न ये भंग ही । उदाहरणार्थ --१, जीव चेतन स्वरूप ही है, २ शरीर स्वस्तप बिलकुल नहीं; ३ वयों कि स्वलक्षणरूप अस्तित्व परकी निवृत्तिके बिना और परकी निवृत्ति स्व संस्थाके अस्तिस्वके बिना हो नहीं सकती है; ४ पृथक् या क्रमसे कहे गये ये स्वसे अस्तित्व और परसे नास्तित्व रूप दोनों धर्म वस्तुमें ग्रुगपत सिद्ध होनेसे वह अवक्तव्य है; ५ अवक्तव्य होते हुए भी वह स्वस्वरूपसे स**र है; ई** अवकारुय होते हुए भी वह परसे सदा व्यापृत्त ही है; ७ और इस प्रकार वह अस्तित्व, नास्तित्व, व अवक्तव्य इन तीन धर्मोंके अभेद स्वस्वप है। इस अवक्तव्यको वक्तव्य बनानेके लिए इन सात बातोंका क्रमसे कथन करते हुए प्रत्येक वाक्यके साथ कथं चित् वाचक 'स्यात्' शब्दका प्रयोग करते हैं जिसके कारण अनुक्त भी शेष छह बातोंका संग्रह हो जाता है. और साथ ही प्रत्येक अपेक्षाके अवधारणार्थ एवकार का भी । स्यात् शब्द सहित कथन होनेके कारण यह पद्धति स्याद्वाद् कहलाती है।

१ सप्तमंगी निर्देश

- ধ 🖯 सप्तमंगीका रुक्षण ।
- २ सप्तमंगोंके नाम निर्देश !
- ३ | साती मंगोंके पृथक्-पृथक् छक्षण ।
- ४ भंग सात ही हो सकते हैं हीनाधिक नहीं।
- प दो या तीन ही भंग मूल हैं।
- सात मंगीमें स्थात्कारकी आवश्यवता
 - **−दे.** स्याद्वाद/४।
- 🛊 । सप्तभंगीमें यनकारकी आवश्यकता 🕒 दे. एकान्त/२।
 - सापेक्ष ही सातों भंग सम्यक् हैं निरपेक्ष नहीं
 - —दे. नग/II/७।
 - स्यात्कारका प्रयोग कर देनेपर अन्य अंगोंकी क्या

आवश्यकता ।

सप्तमंगीका प्रयोजन

ξ

*

ę

ξ

--दे. अनेकान्त/३ (

प्रमाण नय सप्तभंगी निर्देश

- प्रभाण व नय सप्तभंगीके रुक्षण व उदाहरण।
- 🔰 ममाण व नय सप्तभंगी सम्बन्धी विशेष विचार

—दे. सकलादेश व विक**लादेश** ।

- २ | प्रमाण सप्तभंगीमें हेतु ।
 - प्रमाण व नय सप्तमंगीमें अन्तर ।

(ती,/२/२१२) ।

Jain Education International

सप्त भंगोंमें प्रमाण व नयका विभाजन युक्त नहीं ሄ नय सप्तभंगीमें हेतु । ų अनेक प्रकारसे सप्तमंगी प्रयोग ₹ एकान्त व अनेकान्तकी अपेक्षा । Ş स्वपर चतुष्टयकी अपेक्षा । २ विरोधी धर्मीकी अपेक्षा -दे. सप्तभंगी/१/७। सामान्य विशेषकी अपेक्षा ₹ ¥ नयोंकी अपेक्षा । अनन्ती सप्तभंगियौँकी समानता । 4 अस्ति नास्ति मंग निर्देश 8 वस्तुकी सिद्धिमें इन दोनोंका प्रधान स्थान। ₹ दोनोंमें अविनाभावी अपेक्षा। ₹ दोनोंकी सापेक्षतामें हेतु। ₹ नास्तित्वभंगकी सिद्धिमें हेतु । ¥ नास्तित्व वस्तुका धर्म है तथा तद्गत शंका । ų उभयात्मक तृतीय भंगकी सिद्धिमें हेतु । Ę अनेक प्रकारसे अस्तित्व नास्तित्व प्रयोग ч स्त्रपर द्रव्यगुण पर्यायकी अपेक्षा । ₹ स्त्रपर क्षेत्रकी अपेक्षा । ₹ स्वपर कालकी अपेक्षा । ₹ स्वपर भावकी अपेक्षा । ĸ बस्तुके सामान्य विशेष धर्मीकी अपेक्षा । ч नयोंकी अपेक्षा । Ę विरोधी धर्मोंमें। હ वस्तुमें अनेक विरोधी धर्म युगल तथा उनमें चे. अनेकान्त/४,४। कथंचित् अविरोध। आकाश कुसुमादि अभावात्मक वस्तुओंका कथंचित् विधि निषेध। --दे. असत्। कालादिकी अपेक्षा वस्तुमें भेदामेद । Ċ मोक्षमार्गकी अपेक्षा। ۹ अवक्तःय मंग निर्देश Ę युगपत् अनेक अर्थ कहनेकी असमर्थता । ŧ वह सर्वथा अवक्तव्य नहीं। २ कालादिकी अपेक्षा वस्तु धर्म अवक्तन्य है । ₹ सर्वथा अवक्तव्य कहना मिथ्या है। ¥ वक्तव्य व अवक्तव्यका समन्वय । ų शब्दकी वक्तव्यता तथा वाच्य वाचकता। **र्म्स दे, आगम/४**। वस्तुमें सक्ष्म क्षेत्रादिकी अपेक्षा स्वपर विमान। --- दे. अनेकान्त/४/७। शुद्ध निश्चय नय अवाच्य है। -- दे. नय/V/२/२ ।

१. सप्तभंगी निर्देश

१. सप्तभंगीका लक्षण

रा. वा. /१/६/४/३३/१४ एकस्मित् वस्तुनि प्रश्नवशाह हन्टेनेष्टेन च प्रमाणेनाविरुद्धा विधिप्रतिषेधविकल्पना सप्तभंगी विज्ञया। -प्रश्नके अनुसार एक वस्तुमें प्रमाणसे अविरुद्ध विधि प्रतिषेध धर्मीकी कल्पना सप्तभंगी है। (स. म./२३/२७८/८)।

पं. का./ता. वृ./१४/३०/१६ पर उद्धृत—एकस्मिन्नविरोधेन प्रमाणनय-बाक्यतः । सदादिकल्पना या च सप्तभङ्गीति सा मता । —प्रमाण बाक्यसे अथवा नय बाक्यसे, एक ही वस्तुमें अविरोध रूपसे जो सत्-असत् आदि धर्मकी कल्पना की जाती है उसे सप्तभंगी कहते हैं।

न्या, दी./३/६८२/१२७/३ सप्तानी भङ्गानां समाहारः सप्तभङ्गीति । ⇒सप्त-भगोंके समृहको सप्तभंगी कहते हैं (स. भं. त./१/१०)।

स. भं. त,/२/१ प्राश्निकप्रश्नज्ञानप्रयोज्यत्वे सति, एकवस्तुविशेष्यका-विरुद्धविधिप्रतिषेधारमक्षमंप्रकारकवोधजनकसप्तवावयपर्याप्तसमुदा = यत्वम् । =प्रश्नकत्कि प्रश्नज्ञानका प्रयोज्य रहते, एक पदार्थ विशेष्यक अविरुद्ध विधि प्रतिषेध रूप नाना धर्म प्रकारक बोधजनक सप्त वाक्य पर्याप्त समुदायता (सप्तभंगी है)।

२. सप्तमंगोंके नाम निर्देश

पं.का./मू./१४ सिय अरिथ णरिथ उह्नय अञ्चलका पुणो य तत्तिदयं। दक्कं खु सत्तभंगं आवेशवसेण संभवदि। १४। - आदेश (कथन) के वश प्रक्रय वास्तवमें स्यात-अस्ति, स्यात नास्ति, स्यात अस्ति-नास्ति, स्यात अवक्तव्य और अवक्तव्यता युक्त तीन भंगवासा (स्यात अस्ति अवक्तव्य, स्यात नास्ति अवक्तव्य, और स्यात अस्ति-नास्ति अवक्तव्य, दयात नास्ति अवक्तव्य, और स्यात अस्ति-नास्ति अवक्तव्य) इस प्रकार सात भंगवासा है। १४। (प्र. सा./मू./ ११४); (रा. वा./४/४२/१६/२६३/३); (स्या. मं./२३/२७५/११); (सं. भं-त./२/१)।

न. च. वृ./२५२ सत्तेव हुंति भंगा पमाणणयदुणयभेदजुत्तावि । = प्रमाण सप्तभंगी में, अथवा नय सप्तभंगीमें, अथवा दुर्नय सप्तभंगीमें सर्वत्र सात ही भंग हो है।

स. भं. तः /१६/१ स च सप्तभंगी द्विविधा — प्रमाणसप्तभंगी नयसप्तभंगी चेति। = सप्तभंगी दो प्रकारकी है — प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी।

३. सातों मंगोंके पृथक्-पृथक् लक्षण

स्मंत्र/पृष्ठ सं./पक्ति सं. तत्र धर्मान्तराप्रतिषेधकरवे सति विधिविष-यकबोधजनकवावयं प्रथमो भङ्गः । स च स्यादस्त्येव घट इति वचन-रूपः । धर्मान्तराप्रतिषेधकरवे सति प्रतिषेधविषयकवीधजनकवावयं ब्रितीयो भङ्गः । स च स्यान्नास्त्येव घट इत्याकारः (२०/३) । घटः स्थादस्ति च नास्ति चेति तृतीयः । घटादिरूपै कधर्मिविशेष्यवक्रमार र्षितविधिप्रतिषेधप्रकारकबोधजनकवाक्यत्वं तच्लक्षणम् । क्रमार्पित-स्वस्तपपरस्तपाद्यपेश्वयास्तिनास्त्यात्मको घट इति निरूपितप्रायम्। सहार्पितस्वरूपपररूपादिविवशायां स्यादवाच्यो घट इति चतुर्थः। घटादिविशेष्यकावक्तव्यस्वप्रकारकबोधजनकवाकारकं तल्लक्षणं (६०/ १) व्यस्तं द्रव्यं समस्तौ सहार्पितौ द्रव्यपर्यायावाश्वित्य स्यादस्ति चावक्तव्य एव घट इति पञ्चमभङ्गः। घटादिरूपैकधर्मिविशेष्यक-सत्त्रवि शिष्टावक्तव्यत्वप्रकार्ककोधजनकवाक्यत्वं तक्लक्षणम् । तत्र द्रव्यार्पणादस्तित्वस्य युगपद्रद्रव्यपर्यायार्पणादवक्तव्यत्वस्य च विवन क्षितत्वात । (७१/७) तथा व्यस्तं पर्यायं समस्तौ द्रव्यपर्यायौ चाश्रिस्य स्याम्नास्ति चावक्तव्यो घट इति षष्ठः । तन्त्रक्षणं च घटादि रूपैकधर्म-विशेष्यकनास्तित्वविशिष्टावक्तव्यत्वप्रकारकव्योधजनकवाक्यत्वस् । एवं वयस्तौ क्रमावितौ समस्तौ सहार्वितौ च द्रव्यवर्धायावाशित्य स्यादस्ति

-दे. पर्याय/३/१।

सूक्ष्म पर्यायें अवाच्य हैं।

नास्ति वावकः पर घट इति सप्तमभङ्गः । घटादिरूपेक तस्तुविशे-ष्यकसत्त्रवासत्त्वविशिष्टावक्तव्यत्वप्रकारकत्रोधजनकवान्यत्वं तल्लश्-णम् (७२/१)। = १ अन्य धर्मीका निषेध न करके विधि विष-यक बोध उत्पन्न करनेवाला प्रथम भंग है। वह 'कथंचित घट है' इत्यादि वचन रूप है। २, धर्मान्तरका निषेध न करके निषेध विषयक बोधजनक बाक्य द्वितीय भंग है। 'कथ चित् घट नहीं है' इस्यादि वचनरूप उसका आकार है। (२०/३)। ३, 'किसी अपेक्षासे घट है किसी अपेक्षासे नहीं हैं' यह सीसरा भंग है। घट आदि रूप एक धर्मी विशेष्यवाला तथा ऋगसे योजित विधि प्रतिषेध विशेषणवाले बोधका जनक वाक्यरव, यह तृतीय भंगका लक्षण है। क्रमसे अपित स्वरूप पररूप द्रव्य आदिकी अपेक्षा अस्ति नास्ति आत्मक घट है। यह विषय निरूपित है। ४. सह अपित स्वरूप-पररूप आदिकी विवक्षा करने-पर किसी अपेक्षासे घट अवाच्य है यह चतुर्थ मंग होता है। घटादि पदार्थ विशेष्यक और अवक्तव्य विशेषगवाले बोध (ज्ञान) का जनक बाक्यत्व, इसका लक्षण है। (६०/१) १. पृथक् भूत द्रव्य और मिलित द्रव्य वपर्याय इनका आश्रय करके कथं चित् घट अवक्तव्य हैं इस भंगकी प्रवृत्ति होती है। घट आदि रूप धर्मी विशेष्यक और सच्य सहित अवक्तव्य विशेषणवाले ज्ञानका जनक वाक्यस्य, यह इसका लक्षण है। इस भंगमें द्रव्यरूपसे अस्तित्व, और एक युगपत् द्रवय वपर्यायको मिलाके योजन करनेसे अवक्तव्यत्व रूप विवक्षित है। 🐔 ऐसे ही पृथग्भूत पर्याय और मिलित ब्रव्य व पर्यायका आश्य करके 'किसी अपेक्षासे घट नहीं है तथा अवक्तव्य है' इस भंगकी प्रवृत्ति होती है। घट आदि रूप एक पदार्थ विशेष्यक और असत्त्व सहित अवक्तव्यस्य विशेषणवाले ज्ञानका जनक वाक्यस्य, इसका सञ्जूष है। ७, क्रमसे योजित तथ। युगपत योजित द्रव्य तथा पर्यायका आश्रय करके, 'किसी अपेक्षासे सत्तव असत्तव सहित अवक्तव्यत्वका आश्रय घट, इस सप्तम भंगकी प्रवृत्ति होती है। घट आदि रूप एक पदार्थ विशेष्यक और सत्त्व असत्त्व सहित अवक्तव्यत्व विशेषणवाले ज्ञानका जनक बाक्य, इसका लक्षण है। (और भी दे. नय/I/४/२)

४. मंग सात ही हो सकते हैं होनाधिक नहीं

रा, बा,/४/४२/१६/२६३/७ पर उद्घृत — पुच्छावसेण भंगा सत्तेव दु सं-भवदि जस्स जथा। वत्थुत्ति तां पष्टच्चदि सामण्णविसेसदो नियदं। = प्रश्नके वशसे ही भंग होते हैं। क्योंकि वस्तु सामान्य और विशेष जभय धर्मीसे युक्त है।

श्लो. वा./२/१/६/४६-५२/४१४/१६ नतु च प्रतिपर्यायमेक एव भङ्गः स्याद्वचनस्य न तु सप्तभङ्गो तस्य सप्तधा ववतुमशक्तः। पर्यायशब्दैस्तु तस्याभिधाने वर्थ तिव्यमः सहस्रभङ्ग्या अपि तथा निषेद्धुमशक्ते रिति चेत नैतन्सारं, प्रश्नवशादिति वचनात्। तस्य सप्तधा प्रवृत्तौ तत्प्रतित्रचनस्य सप्तविधत्वोपपत्तेः प्रश्नस्य तु सप्तधा प्रवृत्तिः वस्तुन्ये-कस्य पर्यायकी अपेक्षासे वचनका भंग एक ही होना चाहिए। सात भंग नहीं हो सकते, वयों कि एक अर्थका सात प्रकारसे कहना अश्वय है। पर्यायवाची सात शब्दों करके एकका निर्मण करोगे तो सातका नियम कैसे रहा! हजारों भंगोंके समाहारका निषेध भी नहीं कर सकते हो। उत्तर—यह कथन सार रहित है। क्यों कि, प्रश्नके वश्च ऐसा पद डालकर कहा है। प्रश्न सात प्रकारमे प्रवृत्त हो रहा है तो उसके उत्तर रूप वचनको सात-सात प्रकारपना युक्त हो है। और यह वस्तुमें एक पर्यायके कथन करनेपर अन्य प्रतिषेध, अवक्तव्य आदि प्रयिक्षों के आक्षेप कर लेनेसे सिद्ध है।

स,भं,त,/९ पर उड्डधृत रत्नोक-भङ्गास्तप्त्यादयस्तप्त संशयास्सप्त तहगताः। जिञ्जासास्सप्त सप्त स्यु: प्रश्नास्सप्तोत्तराण्यपि। = 'कथंचित् घट हैं' इत्यादि वाक्यमें सत्त्व आदि सप्त भंग इस हेतुसे हैं कि उनमें स्थिति संशय भी सप्त हैं, और सप्तसंशयके लिए जिज्ञासाओं के भेद भी सप्त हैं, और जिज्ञासाओं के भेदसे ही सप्त प्रकारके प्रश्न तथा उत्तर भी हैं। (स्या. म./२३/२५२/१४,१७); (स. भं. त./४/७)।

५. दो या तीन ही भंग मूल हैं

स्या. म./२४/२८६/१२ अमीषामेव त्रयाणां (अस्ति नास्ति अवक्त-व्यानां) मुख्यत्वाच्छेषभङ्गानां च संयोगजत्वेनामी ब्वेबान्तर्भावा-दिति । चक्यों कि आदिके (अस्ति, नास्ति व अवक्तव्य ये) तीन भंग ही मुख्य भंग हैं, शेष भंग इन्हीं तीनों के संयोगसे बनते हैं, अतएव उनका इन्हों में अन्तर्भाव हो जाता है।

सः भं,तः/७१/६ इत्येवं मूलभङ्गद्वये सिद्धे उत्तरे च भङ्गा एवमेव योजयितव्याः । = इस रीतिसे मूलभूत (अस्ति-नास्ति) दो भंग-की सिद्धि होनेसे उत्तर भंगोंकी योजना करनी चाहिए।

६. स्थात्कारका प्रयोग कर देने पर अन्य अंगोंकी क्या आवश्यकता

रा. वा./४/४२/१५/२५३/१३/२० यद्ययमनेकान्तार्थास्तेनेव सर्वस्थोपादानात् इतरेषां पदानामानर्थवयं प्रसज्यते, नेष दोषः, सामान्येनोपादानेऽपि विशेषाथिना विशेषोऽनुप्रयोक्तव्यः ।१३। यद्ये वं स्यादस्त्येव जीवः इत्यनेनेव सकजादेशेन जीवद्वव्यगतानां सर्वेषां धर्माणां
संग्रहात् इतरेषां भङ्गानामानर्थव्यमासजितः नेष दोषः; गुणप्राधान्यव्यवस्थाविशेषप्रतिपादनार्थस्वात् सर्वेषां भङ्गानां प्रयोगोऽर्थवात् । =
प्रश्न-यदि इस 'स्यात्' शब्दसे अनेकान्तार्थका खोतन हो जाता है,
तो इतर पदोंके प्रयोगका क्या अर्थ है ! ऐसा प्रसंग आता है । उत्तरइसमें कोई दोष नहीं है: क्यों कि सामान्यत्या अनेकान्तका खोतन
हो जानेपर भी, विशेषार्थी विशेष शब्दका प्रयोग करते हैं । प्रश्नयदि 'स्यात अस्त्येव जीवः' यह वाक्य सकलादेशी है तो इसीसे जीव
द्वयके सभी धर्मोंका संग्रह हो ही जाता है, तो आगेके भंग निर्थक
हैं ! उत्तर-गीण और मुख्य विवक्षासे सभी भंगोंकी सार्थकता है।

२. प्रमाण नय सप्तभंगी निर्देश

१. प्रमाण व नय सप्तभंगीके लक्षण व उदाहरण

रा. वा./४/४४/१६/२६३/३ तत्रैतिस्मिन् सकलादेश आदेशवशात् सप्तभक्षी
प्रतिपदं वेदितव्यां । तत्र्यथा— स्यादस्त्येव जीवः, स्यान्नास्त्येव जीवः,
स्यादवक्तव्य एव जीवः, स्यादस्ति च नास्ति च, स्यादस्ति चावक्तव्यश्च, स्याञ्चास्ति चावक्तव्यश्च, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यश्च
इत्यादि । ...तत्र स्यादस्त्येव जीव इत्येतस्मिन् वावये जीवशब्दो
द्वव्यवचनः विशेष्यस्यात्, अस्तोति गुणवचनो विशेषणत्वात् ।
तयोस्सामान्यार्थाविच्छेदेन विशेषणविशेष्यसंबन्धावद्योतनार्थ
एवकारः ।

रा. वा,/४/४२/१७/२६०/२२ तत्रापि विकलादेशे तथा आदेशवशेन सप्तभक्षी वेदितव्या । ... तद्यथा सर्वसामान्यादिषु द्रव्यायदिशेषु केनचित्रुपलम्यमानत्वात् स्यादस्रयेवारमेति प्रथमो विकलादेशः । ... एवं
शेषमङ्गेष्विप विवक्षितांशमात्रप्ररूपणायाम् इतरेष्वौदासीन्येन विकलादेशकव्पना योज्या । = १. इस सकलादेशमें प्रत्येक धर्मकी
अपेक्षा सप्तभंगी होती है । १० स्यात् अस्त्येव जीवः, २. स्यात्
नास्त्येव जीवः, ३. स्यात् अवक्तव्य एव जीवः, ४. स्यात् अस्ति च
नास्ति च, ४. स्यात् अस्ति च अवक्तव्यश्च, ६ स्यात् नास्ति च
अवक्तव्यश्च, ७, स्यात् अस्ति नास्ति च अवक्तव्यश्च । = ... 'स्यात्'
'अस्त्येव जीवः' इस वाक्यमें जीव शब्द विशेष्य है द्रव्यवाची है
और अस्ति शब्द विशेष्ण है गुणवाची है । उनमे विशेषण विशेष्यभाव योतनके लिए 'एव' का प्रयोग है । २, विकलादेशमें भी सप्त- भंगी होती है · · · यथा — सर्व सामान्य आदि किसी एक द्रव्यार्थ हिंहिसे 'स्यादस्त्येव आत्मा' यह पहला विकलादेश है ! · · · · · इसी तरह अन्य धर्मों में भी स्व विवक्षित धर्मकी प्रधानता होती है और अन्य धर्मों के प्रति उदासीनता; न तो उनका विधान ही होता है और न प्रतिषेध हो।

- क, पा. १/१, १३-१४/६ १७०/२०१/२ स्यावस्ति स्यान्नास्ति स्यादवक्तव्यः स्यादस्ति च नास्ति च स्यादस्ति चावक्तव्यश्च स्यान्नास्ति चाव-क्तव्यश्च स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यश्च घट इति सप्तापि सकला-देशः । एषः सकतादेशः प्रमाणाधीनः प्रमाणायक्तः प्रमाणव्यपाश्रयः प्रमाणजनित इति यावत् ।
- क. पा. १/९, १३-१४/९१७१/२०३/६ अस्त्येव नास्त्येव अवक्तव्य एव अस्ति नास्त्येव अस्त्यवक्तव्य एव नास्त्यवक्तव्य एव अस्ति नास्त्यवक्तव्य एव घर इति विकलादेशः। ... अयं च विकलादेशो नयाधीनः नयायक्तः नयवशादुत्पचत इति यावतः। =१. कथं चित् घर है, कथं चित् घर नहीं है, कथं चित् घर खे अक्तव्य है, कथं चित् घर है और नहीं है, कथं चित् घर है और अवक्तव्य है, कथं चित् घर नहीं है और अवक्तव्य है, कथं चित् घर है नहीं है और अवक्तव्य है, इस प्रकार ये सातों भंग सकलादेश कहे जाते हैं। ... यह सकलादेश प्रमाणाधीन है अर्थात् प्रमाणके वशीभृत हैं, प्रमाणाधित है या प्रमाणजनित है ऐसा जानना चाहिए। २० घर है ही, घर नहीं ही है, घर अवक्तव्य रूप है, घर है ही और अवक्तव्य ही है, घर है हैं: और अवक्तव्य ही है, घर नहीं ही है और अवक्तव्य ही है, घर है ही ही नहीं ही है और अवक्तव्य रूप है, इस प्रकार यह विकलादेश है। ...यह विकलादेश नयाधीन है, नयके वशीभृत है या नयसे उत्पन्न होता है।
- ध. १/४,१ ४४/१६४/४ सक्तादेशः स्यादस्तीत्यादि स्प्रमाणितबन्धन-त्वात स्याच्छव्देन सूचिताशेषप्रशानीभूतधर्मत्वात् । स्याच्छव्देश अस्तीत्यादिः स्याप्तिकात्वात् ।
- घ. १/४,१,४६/१०३/७ स्यादिस्त, स्यान्नास्ति, स्याद्वक्तव्यम्, स्यादिस्त च नास्ति च. स्यादस्ति चावक्तव्यं च, स्यान्नास्ति चावक्तव्यं च. स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च इति एतानि सप्त सुनयवावयानि प्रधानीकृतै कथर्मत्वात्। =१, 'कथं चित् हैं' इत्यादि सात भंगोंका नाम सकलादेश है, क्योंकि प्रमाण निमित्तक होनेके कारण इसके द्वारा 'स्यात्' शब्दसे समस्त अप्रधानभूत धर्मोंकी सुचनाकी जाती है।...'अस्ति' अर्थात् है इत्यादि सात वावयोंका नाम विक्तादेश है, क्योंकि वे नयोंसे उत्पन्न होते हैं। २, कथं चित् है, कथंचित् नहीं है, कथंचित् अवक्तव्य है, कथंचित् है और अवक्तव्य है, कथंचित् है और अवक्तव्य है, कथंचित् नहीं है और अवक्तव्य है, कथंचित् है और नहीं है और अवक्तव्य है, इस प्रकार ये सात सुनय वाव्य हैं, क्योंकि वे एक धर्मको प्रधान करते हैं।
- न.च.श्रुत./६२/११ प्रमाणवाक्यं यथा स्थाद स्ति स्याह्र नास्ति... आदयः । नयवाक्यं यथा अस्त्येश स्वद्रव्यादिग्राहकनयेन । नास्त्येव परद्रव्या-दिग्राहकनयेन । (इत्यादि) स्वभावानां नये योजनिकामाह । न्य प्रमाण वाक्य निम्न प्रकार हैं—जैसे कथंचित् हैं, कथंचित् नहीं है । ... इत्यादि प्रमाणकी योजना है । नयवाक्य निम्न प्रकार हैं जैसे—स्वद्रव्यादिग्राहक नयको अपेक्षासे भावरूप ही है । परद्रव्या-दिग्राहक नयको अपेक्षासे अभावरूप हो है ... (इसी प्रकार अन्य भंग भी लगा लेने चाहिए) स्वभावोंकी नयोंमें योजना बतलाते हैं । (बह उपरोक्त प्रकार लगा लेनी चाहिए)। (न. च. वृ/२६२-२६६)।
- पं. का,/ता. वृ./१४/३२/११ सूक्ष्मच्यारुयानविवक्षायां पुनः सदेक-नित्यादिधर्मषु मध्ये एकेकधर्मे निरुद्धे सप्तभङ्गा वक्तव्याः । कथमिति चेत् । स्यादस्ति स्यान्नास्ति । =सूक्ष्म व्याख्यानकी विवक्षामें सत्, एक नित्यादि आदि एक-एक धर्मको लेकर सप्तभंग कहने चाहिए ।

- जैसे-स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, ··· (इत्यादि इसी प्रकार अस्य भंगोंकी योजना करनी चाहिए)।
- प्र. सा./११६/पृ./पं. नयसप्तभङ्गी विस्तारयति स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव (१६१/१०) पूर्व पञ्चास्तिकाये स्यादस्तीत्यादिप्रमाणवावयेन
 प्रमाणसप्तभङ्गी व्याख्याता, अत्र तु स्यादस्त्येव यदेवकारग्रहणं तन्नयसप्तभङ्गीज्ञापनार्थमिति भावार्थः ।१६२१११ नय सप्तभङ्गी कहते
 हैं—यथा—'स्यादस्त्येव' अर्थात् कर्थं चित् जीव है ही, कर्थं चित् जीव
 नहीं ही है। इत्यादि । पहले पञ्चास्तिकाय ग्रन्थमें 'कर्थं चित् है'
 इत्यादि प्रमाण वाक्यसे प्रमाणसप्त भंगी व्याख्यान की गयी। और
 यहाँ पर जो 'कर्यं चित् है ही 'इसमें जो एवकारका ग्रहण किया है वह
 नय सप्तभंगी के ज्ञान करानेके लिए किया गया है।
- न्या. दी /३/६८२/१२६-१२७ द्रव्यार्थिकनयाभित्रायेण सुवर्णं स्यादेकमेब, पर्यायार्थिकनयाभित्रायेण स्यादनेकमेव । . . सेषा नयविनियोगपरि-पाटी सप्तभङ्गीरयुक्यते । = द्रव्यार्थिक नयके अभित्रायसे सोना कथं चित्त एकरूप है, पर्यायार्थिक नयके अभित्रायसे कथं चित्त अनेक रूप है। . . . इरयादि नयोंके कथन करनेकी इस शैलीको ही सप्तभंगी कहते हैं।

२. प्रमाण सप्तमंगीमें हेतु

रा. वा./४/४२/१६/पृ.सं./पं, सं. जीवः स्यादस्ति स्यान्नास्तीति । अतः द्रवयार्थिकः पर्यायार्थिकमारमसात्कुर्वत् व्याह्रियते, पर्यायार्थिकोऽपि द्रव्याधिकमिति उभावपि इमौ सकलादेशौ (१५७/५)। ताभ्यामेव क्रमेणाभिधित्सायां तथैव वस्तुसकसस्वरूपसंग्रहात् चतुर्थोऽपि विकल्पसकतादेशः (२५८।२०) ततः स्यादस्ति चीवक्तव्यश्च जीवः। अयमपि सक्नादेशः। अंशाभेदविवसायाम् एकांशमुखेन सकन्न-संब्रहात् (२५६/२७) यश्च वस्तुरवेन सन्निति द्रव्यार्थाशः यश्च तरप्रतियोगिनावस्तुरवेनासन्निति पर्यायांशः, ताम्यां युगपदभेद-विवक्षायां अवन्तव्य इति द्वितीयोंऽशः। तस्मान्नास्ति चावक्तव्य-श्वात्मा । अग्रमपि सकतादेशः शेषवाग्गोचरस्वस्पसमूहस्याविना-भावात् तत्रे वान्तर्भू तस्य स्याच्छव्देन चौतितत्वात् (२६०/१) सप्तमो विकल्पः चतुर्भिरात्मभिः त्रयंशः । द्रव्यार्थविषेषं कंचिदाशित्या-स्तिरवं पर्यायविशेषं च कंचिदाशित्य नास्तित्वमिति समुचितरूपं भवति, द्वयोरपि प्राधान्येन विवक्षितस्वादः । द्रव्यपययिविशेषेण च केनचित् द्रव्यपर्यावसामान्येन च केनचित् युगपदवक्तव्यः इति तृतीयोंऽशः। ततः स्यावस्ति च नास्ति चावक्तव्यश्च आत्मा। अयमपि सकलादेश:। यतः सर्वान् द्रव्यार्थान् द्रव्यमित्यभेदादेकं द्रब्यार्थं मन्यते । सर्वात् पर्यायार्थांश्च पर्यायजात्यभेदादेकं पर्या-यार्थम्। अतो विविक्षतवस्तुजात्यभेदात कृत्स्नं वस्तु एकद्रव्यार्था-भिन्नम् एकपर्यायाभेदोपचरितं वा एकमिति सकलसंग्रहात (२६०/ १)। =जीव स्यादिस्त और स्यान्नास्तिरूप है। इनमें द्रव्यार्थिक पर्यायधिकको तथा पर्यायाधिक द्रव्याधिकको अपनेमे अन्तर्भूत करके व्यापार करता है, अतः दोनों ही भंग सकतादेशी हैं (२४७/८)। (अवक्तव्य भेद - दे, सप्तभंगी/६) जब दोनों धर्मीकी क्रमशः मुख्य रूपसे विवक्षा होती है तब उनके द्वारा समस्त वस्तुका प्रहण होनेसे चौथा भी भ'ग सकलादेशी होता है (२६८/२०) जीव स्यात अस्ति और अवक्तव्य है, यह भी विवक्षासे अखण्ड वस्तुको संग्रह करनेके कारण सकलादेश है क्यों कि इसने एक अंश रूपसे समस्त वस्तुको ग्रहण किया है (२४४/२७) जो 'बस्तुत्वेन' सत् है द्रव्याश वही तथा जो अवस्तुत्वेन असत् है वही पर्यायांश है। इन दोनोंकी युगपर अभेद विवक्षामें वस्तु अवक्तव्य है यह दूसरा अंश है। इस तरह आरमा नास्ति अवक्तव्य है यह भी सकलादेश है क्योंकि विवक्षित धर्मरूपसे अलण्ड बस्तुको ग्रहण करता है। (२६०/१) सातवाँ भंग चार स्वरूपोंसे तीन अंशवाला है। किसी द्रव्यार्थ विशेषकी अपेक्षा अस्तिरव किसी पर्याय बिशेषकी अपेक्षा नारितत्व है। तथा किसी

द्रव्यपर्याय विशेष, और द्रव्य पर्याय सामान्यकी युगपत विवक्षामें वही अवक्तव्य भी हो जाता है। इस तरह अस्ति नास्ति अवक्तव्य भंग बन जाता है। यह भी सकलादेश है। सर्वद्रव्योंको द्रव्य जाति-की अपेक्षासे एक कहा जाता है, तथा सर्व पर्यायोंको पर्याय जातिकी अपेक्षासे एक कहा जाता है। क्योंकि इसने विवक्षित धर्म रूपसे अखण्ड समस्त वस्तुका ग्रहण किया है।

घ, ४/१,४,१/१४६/१ दन्वपज्जविद्वयण अणरलं विय कहणोवाया-भावादो । जिद्द एवं, तो प्रमाणवक्कस्स अभावो प्रसञ्जदे इदि युत्ते, होद्दु णाम अभावो, गुजप्पहाणभावमंतरेण कहणोवायाभावादो । अधवा, पमाणुप्पाइदं वयणं पमाणवक्कमुवयारेण बुद्धदे । =द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नथोंके अवलम्बन किये विना बस्तु स्त्रस्त्पके कथन करनेके उपायका अभाव है । प्रश्न —यदि ऐसा है तो प्रमाण वावयका अभाव प्राप्त होता है । उत्तर —भले हो प्रमाण वावयका अभाव हो जावे, वयों कि, गौणता और प्रधानताके विना वस्तु स्वरूपके कथन करनेके उपायका भी अभाव है । अथवा प्रमाणसे उत्पादित वचनको उपदारसे प्रमाण वावय कहते हैं ।

३, प्रमाण व नय सहभंगीमें अन्तर

स्या. म./२८/३०८/४ सदिति उल्लेखनात् नयः। स हि 'अस्ति घटः' इति घटे स्वाभिमतमस्तित्वधर्मे प्रसाधयन् शेषधर्मेषु गजनिमिलिका-मालम्बते। न चास्य दुर्नयत्वस्। धमन्तिरातिरस्कारात्। न च प्रमाणश्वम् । स्याच्छञ्देन अलाव्छित्रत्वात् । स्यात्सदिति 'स्यात्कंथं-चित् सद् बस्तु' इति प्रमाणभ्रा प्रमाणक्षं चास्य दृष्टे द्वानाधितत्याह विपक्षे बाधकसङ्भावाच । सर्वे हि वस्तु स्वरूपेण सत् परस्रपेण चासङ्ग इति असकृदुक्तम्। सदिति दिङ्मात्रदर्शनार्थम्। अनया दिशा असत्त्वनित्यत्वानित्यत्ववक्तव्यत्वसामान्यविशेषादि अपि बोद्धव्यम् । १. किसी वस्तुमें अपने इष्ट धर्मको सिद्ध करते हुए अन्य धर्मों में उदासीन होकर वस्तुके विवेचन करनेको नय कहते हैं – जैसे 'यह घट है'। नयमें दुर्नयकी तरह एक धर्मके अतिरिक्त अन्य धर्मीका निषेध नहीं किया जाता, इसलिए नयको दुर्नय नहीं कहा जा सकता। तथा नयमें स्थात शब्दका प्रयोग न होनेसे इसे प्रमाण भी नहीं कह सकते। २. वस्तुके नाना दृष्टियोंकी अपेक्षा कथं चित् सत्रहर विवेचन करनेकी प्रमाण कहते हैं. जैसे 'घट कथं चित सत् है'। प्रत्यक्ष और अनुमानसे अवाधित होनेसे और विपक्षका आधक होनेसे इसे प्रमाण कहते हैं। प्रत्येक बस्तू अपने स्वभावसे सत् और दूसरे स्वभावसे असत् है, यह पहले कहा जा चुका है। यहाँ बस्तुके एक सत् धमेको कहा गया है। इसी प्रकार असत्, नित्य, अनित्य, वक्तत्र्य, अवक्तत्र्यं, सामान्य, बिशेष आदि अनेक धर्म सममने चाहिए।

स्या. मः/२५/३२१/१ स्याच्छब्रलाञ्चितानां नयानामेव प्रमाणव्यपदेश-भावत्वात् । —नय वाक्यों में स्यात् शब्द लगाकर बोलनेवालेको प्रमाण कहते हैं।

पं. का./ता, व /१६/३२/१६ स्यादित द्रव्यमिति पठनेन वचनेन प्रमाण-सप्तमङ्गी झायते। कथिमिति चेद् । स्यादस्तीति सकलबस्तुयाहकः स्वात्प्रमाणवाष्यं स्थादस्त्येव द्रव्यमिति वस्त्वेकदेशप्राहकत्वास्तय-वाक्यम् । = 'द्रव्य कथं चित्त हैं' ऐसा कहनेपर प्रमाण सप्तभंगी जानी जाती है क्योंकि, 'कथं चित्त हैं' यह वाक्य सकल वस्तुका प्राहक होनेके कारण प्रमाण वाक्य है। 'द्रव्य कथं चित्त है ही' ऐसा कहनेपर यह बस्तुका एकदेश ग्राहक होनेसे नय वाक्य है।

दै. विकलादेश केवल धर्मी विषयक बोधजनक वात्र्य सकलादेश, तथा केवल धर्म विषयक बोधजनक वाक्यानय है ऐसा नहीं कहा जा सकता क्यों कि धर्मी और धर्म दोनों स्वतन्त्र रूपसे नहीं रहते हैं।

४. सप्तमंगींमें प्रमाण व नयका विभाग युक्त नहीं

स. भं. त /१६/६ न च त्रीण्येत नयवात्रयानि चत्वार्येव प्रमाणवात्रयानि

इति वनतुं युक्तं सिद्धान्तिवरोधात । ज्यतीन (प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ भंग) ही नय वाक्य हैं और चार (तृतीय, पंचम, षष्ट, सप्तम भंग) ही प्रमाण वाक्य हैं, ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि सिद्धान्तसे विरोध आता है।

५. नय सप्तमंगीमें हेतु

दे. सप्तर्भगी/२/१ में धः/६ 'स्याइ अस्ति' आदि ये सात वाक्य सुनय वाक्य हैं, क्यों कि वे एक धर्मको विषय करते हैं।

पं. धः/पूः/६्वर,६वव,६विध् यदनेकां झ्याहकिमिह प्रमाणं न प्रत्यनीकत्या । प्रत्युत मैत्रीभावादिति नयभेदाददः प्रभिन्नं स्यात ।६वरः स यथास्ति च नास्तीति च क्रमेण युगपञ्च वानयोभिवः । अपि वा वक्तव्यमिदं नयो विकल्पानित्क्रमादेव ।६ववः तत्रास्ति च नास्ति समं भङ्गस्यास्येकधर्मता नियमात् । च पुनः प्रमाणमिव किल विरुद्धधर्मद्वयाधि स्वदेवस्य ।६८६। —प्रमाण अनेक अंशोंको प्रहण करनेवाला परस्पर विरोधीपनेसे नहीं कहा गया है किन्तु सापेक्ष भावसे कहा गया है । इसलिए संयोगी भंगात्मक नयोंके भेदसे भिन्न है ।६वश (नय-विकल्पात्मक हैं) जैसे विकल्पका उन्लंधन नहीं करनेसे ही क्रमपूर्वक अस्ति और नास्ति, अस्तिनास्तिक्रम पूर्वक एक साथ कहना यह भंग तथा यह अवक्तव्य भंग भी नय है ।६वश उन भंगोंमें-से निश्चय करके एक साथ अस्ति और नास्ति मिले हुए एक भंगको नियमसे एक धर्मपना है किन्तु प्रमाणकी तरह विरुद्ध दो धर्मोंको विषय करनेवाला नहीं है ।६वश

३. अनेक प्रकारसे सप्तभंगी प्रयोग

१. एकान्त व अनेकान्तकी अपेक्षा

रा. वर १९/६/६/३६/१७-२२ अनेकान्ते तरभावाद्व्याप्तिरिति चेतः नः तत्रापि तदुपवत्तेः ।६। स्यादेकान्तः स्यादनेकान्तः स्हित । तत्कथ-मिति चेतः । = प्रश्न-अनेकान्तमें सप्तभंगीका अभाव होनेसे 'सप्त-भंगीकी योजना सर्वत्र होती है' इस नियमका अभाव हो जायेगा । उत्तर-ऐसा नहीं है, अनेकान्तमें भी सप्तभंगीकी योजना होती हैं। स्यादनेकान्तः', स्यादनेकान्तः स्यादि'। वयोंकि (यदि अनेकान्त अनेकान्त ही होवे तो एकान्तका अभाव होनेसे अनेकान्त-का अभाव हो जावेगा और यदि एकान्त ही होवे तो उसके अविना-भावि शेष धर्मौका लोभ होनेसे सब लोप हो जावेगा। (दे. अनेकान्त/२/६)।

स. भं. तः /७६/१ सम्यगेकान्तसम्यगनेकान्तावाशित्य प्रमाणनयार्षणा-भेशत, स्यादेकान्तः स्यादनेकान्तः स्मप्तभङ्की योज्या । तत्र नयार्षणा-देकान्तो भवति, एकधर्मगोचरत्वान्नयस्य । प्रमाणादनेकान्तो भवति, अशेषधर्मनिश्चयात्मकत्वात्प्रमाणस्य । स्यम्यगेकान्त और सम्यगने-कान्तका आश्रय लेकर प्रमाण तथा नयके भेदकी योजनासे किसी अपेशासे एकान्त, किसी अपेशासे अनेकान्तः (आदि) । इस रीतिसे सप्तभंगीकी योजना करनी चाहिए । उसमें नयकी योजनासे एकान्त पक्ष सिद्ध होता है, क्योंकि नय एक धर्मको विषय करता है । और प्रमाणकी योजनासे अनेकान्त सिद्ध होता है, क्योंकि प्रमाण सम्पूर्ण धर्मोको विषय करता है ।

२. स्व'-पर चतुष्टयकी अपेक्षा

पं. का./त. प्र./१४ तत्र स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावै रादिष्टमस्ति द्रव्यं, परद्रव्य-क्षेत्रकालभावेरादिष्टं नास्ति द्रव्यं...इति । न चैतदतुपपन्नम्: सर्वस्य वस्तुनः स्वरूपादिना अञ्चन्यत्वात्, पररूपादिना शून्यत्वात्. । इति । = द्रव्य स्वद्रव्य क्षेत्र काल-भावसे कथन किया जानेपर 'अस्ति' है । द्रव्य परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे कथन किया जानेपर 'नास्ति' है... (आदि)। यह (उपरोक्त बात) अयोग्य नहीं है, क्योंकि सर्व वस्तु स्वरूपादिसे अञ्चन्य हैं, पररूपादिसे झून्य हैं…(आदि)। (प्र. सा./ त. प्र./१९१) (घ. १/४,१,४५/२१३/४) और भी दे. नय/प/५/२)

-३. सामान्य विशेषकी अपेक्षा

रा, बा,/४/४२/१६/२६ --२६६/२ कथमेते निरूप्यन्ते ।सर्वसामान्येन तहभावेन च...तत्र आहमा अस्तीति सर्वप्रकारानाश्रयणादिच्छावशाद कल्पितेन सर्वसामान्येन वस्तुरवेन अस्तीति प्रथमः। तत्प्रतिपक्षेणान भावसामान्येनावस्तुत्वेन नास्त्यात्मा इति द्वितीयः ।...विशिष्ट सामान्येन तदभावेत च यथाशृतत्वाद श्रुत्युपात्तेन आत्मनैवाभि-संबन्धः, ततरचारमत्वेनैव अस्त्यातमा इति प्रथमः। यथाशृतप्रति-योगित्वात् अनात्मत्वेनैव नास्त्यातमा इति द्वितीयः ।.....विशिष्ट-सामान्येन द्वरभावसामान्येन च-यथाश्रुतस्वात् आत्मत्वेन वास्तीति प्रथमः । अम्युपगमविरोधभयात् वस्त्वन्तरात्ममा क्षित्युदकज्वलन-घटपटगुणकमिदिना सर्वेण प्रकारेण सामान्यो नास्तीति द्वितीयः। विशिष्टसामान्येन त द्विशेषेण च-आरमसामान्येनास्त्यारमा। आत्मविशेषेण मनुष्यत्वेन नास्ति ।सामान्येन विशिष्ट-सामान्येन च-अविशेषरूपेण द्रव्यरवेन अस्त्यात्मा । विशिष्टेन सामा-न्येन प्रतियोगिना नात्मत्वेन नास्त्यात्मा ।.....द्रव्यसामान्येन गुणशामान्येन च वस्तुनस्तथा तथा संभवात् तां तां विवक्षान माश्रित्याविशेषरूपेण द्रव्यत्वेनास्त्यात्मा, तत्प्रतियोगिनां विशेष-रूपेण गुणत्वेन नास्त्यात्मा ।धर्मसमुदायेन तद्वचतिरेकेण च-त्रिकालगोचरानेकशक्तिञ्चामादिधर्मसमुदायरूपेणात्मास्ति । तद्वय-तिरेकेण नास्त्यनुपलब्धेः। अर्मसामान्यसंबन्धेन तदभावेन च गुणरूपगतसामान्यसंबंधविवक्षायां यस्य कस्यचित् धर्मस्य आश्रय-रवेन अस्त्यात्मा। न तु कस्यचिदपि धर्मस्याश्रयो न भवतीति धर्म-सामान्यानाश्रयत्वेन नास्रयारमा । ...धर्मविशेषसंबन्धेन तद्भावेन च अनेकध्रमणोऽन्यतमधर्मसंबन्धेन तद्विपक्षेण वा विवक्षायाम् अथा अस्त्यातमा नित्यत्वेन निर्वयवत्वेन चैतनत्वेन वा, तेषामेवान्यतम-धर्मप्रतिपक्षेण नास्त्यात्मा। = सप्त भंगीका निरूपण इस प्रकार होता **है—१. सर्वसामान्य और तदभावसे '**आत्मा खस्ति' यहाँ सभी प्रकार-के अवास्तर भेदोंकी विवक्षा न रहनेपर सर्वविशेष व्यापी सम्मात्रकी दृष्टिसे उसमें 'अस्ति' व्यवहार होता है और उसके प्रतिपक्ष अभाव सामान्यसे 'नास्ति' व्यवहार होता है।""२. विशिष्ट सामान्य और तदभावसे--आरमा आरमत्वरूप विशिष्ट सामान्यकी दृष्टिसे 'अस्ति' है और अनात्मत्व दृष्टिसे 'नास्ति' है । 📭 विशिष्टसामान्य और तद्भाव सामान्यसे । आत्मा 'आत्मत्व' रूपसे [अस्ति है तथा पृथिवी जल, पट आदि सब प्रकारसे अभाव सामान्य खपसे 'नास्ति' है।... ४. विशिष्ट सामान्य और तद्विशेषसे । आत्मा 'आत्मत्व' रूपसे अस्ति है, और खारमविशेष 'मनुष्यरूपसे' 'नास्ति' है। ४. **सामान्य और** विशिष्ट सामान्यसे । सामान्य दृष्टिसे द्रव्यत्व रूपसे आत्मा 'अस्ति' है और विशिष्ट सामान्यके अभावस्त्र अनात्मत्वसे 'लास्ति' है। *** ई. द्वञ्य सामान्य और गुण सामान्यसे । द्रव्यत्त्र रूपसे आत्मा 'अस्ति' है तथा प्रतियोगी गुणत्वकी दृष्टिसे 'नास्ति' है। ७. घर्मसमुदाय और तृद्धचित्रिकसे। त्रिकाल गोचर अनेक शक्ति तथा ज्ञानादि धर्म समुदाय रूपसे आरमा 'अस्ति' है। तथा तदभाव रूपसे नास्ति है। ····८--धर्म समुदाय सम्बन्ध से और तदभावसे । ज्ञानादि गुणोंके सामान्य सम्बन्धकी दृष्टिसे आत्मा 'अस्ति' है तथा किसी भी समय धर्म सामान्य सम्बन्धका अभाव नहीं होता अतः तदभावकी दृष्टिसे 'नारित' है। "ह—धर्मविशेष सम्बन्ध और तद्भावसे। किसी विविश्वत धर्मके सम्बन्धकी दृष्टिसे आत्मा 'अस्ति' है तथा उसीके अभावरूपसे 'नास्ति' है। जैसे-आत्मा नित्यत्व या चेतनत्व किसी आयुक धर्मके सम्बन्धसे 'अस्ति' है और विपक्षि धर्मसे नास्ति है। (श्लो- वा./२/१/६/५६/४६१/११) ।

ह्या. म ्रेश्व/२८२/७ यथा हि सदसत्त्वाभ्याम्, एवं सामान्य विशेषाभ्या-मपि सप्तभङ्ग्येव स्याद् तथाहि स्यात्सामान्यम्, स्याइविशेषं इति । न चात्र विधिनिषेधप्रकारौ न स्त इति वाच्यम् । सामान्यस्य विधिरूपस्वाह विशेषस्य च व्यावृत्तिरूपतया निषेधारमकत्वात्। अथवा प्रतिपक्षशब्दस्वाइ यदा सामान्यस्य प्राधान्यं तदा तस्य विधि-रूपता विशेषस्य च निषेधरूपता। यदा विशेषस्य पुरस्कारस्तदा तस्य विधिरूपता इतरस्य च निषेधरूपता । - जिस प्रकार सत्त्व असत्त्रकी दृष्टिसे सप्त भंग होते हैं, उसी तरह सामान्य विशेषको अपेक्षासे भी स्यात् सामान्य, स्यात् विशेष.....(आदि) सात भंग होते हैं। प्रश्न—सामान्य विशेषकी सप्तभंगीमें विधि और निषेध धर्मों की करपना कैसे अन सकती है ! उत्तर - इसमें , निधि निषेध धर्मोंको करपना बन सकती है। क्यों कि सामान्य विधि रूप है, और विशेष व्यवस्तेदक होनेसे निषेध रूप है। अथवा सामान्य और विशेष दोनों परस्पर विरुद्ध हैं, अतएव जब सामान्यकी प्रधानता होती है उस समय सामान्यके विधिरूप होनेसे विशेष निषेध रूप कहा जाता है, और जब विशेषकी प्रधानता होती है, उस समय विशेषके विधि-रूप होनेसे सामान्य निषेध रूप कहा जाता है।

४. नयोंकी अपेक्षा

रा. वा./१/१९/१७/२६१/६ एते त्रयोऽर्धनया एकैकारमका, संयुक्ताश्च सप्त वाक्ष्मकारान् जनयन्ति । तत्राद्यः संग्रह एकः, द्वितीयो व्यवहार एकः, तृतीयः संग्रहव्यवहाराविभक्तौ चतुर्थः संग्रहव्यवहारौ समुचितौ, पञ्चनः संग्रहव्यवहारौ चाविभक्तौ । षष्ठो व्यवहारः संग्रहव्यवहारौ प्रवितौ तौ चाविभक्तौ । एष ऋजुसुत्रेऽपि योज्यः । — ये तीनौ (संग्रह, व्यवहार ऋजुसुत्र) अर्थन्य मिलकर तथा एकाकी रहकर सात प्रकारके भंगोंको उत्पन्न करते हैं । पहला संग्रह, दूसरा व्यवहार, तीसरा अविभक्त (गुन्यत् विवक्षित्त) संग्रह व्यवहार, चौथा समुच्चित (क्रम विवक्षित्त समुदाय) संग्रह व्यवहार, पाँचवाँ संग्रह व्यवहार तथा सातवाँ समुदित संग्रह व्यवहार और अविभक्त संग्रह व्यवहार तथा सातवाँ समुदित संग्रह व्यवहार और अविभक्त संग्रह व्यवहार । इसी प्रकार ऋजुसूत्र नय भी लगा लेनी चाहिए।

५. अनन्तों सप्त मंगियोंकी सम्भावना

स्या. म./२३/२८२/१ न च बाच्यमेकत्र वस्तुनि विधीयमाननिष्ध्य-मानानन्तधमिभ्युपगमेनानन्तभङ्गोप्रसङ्गाद असङ्गतेव सप्तभङ्गीति। विधिनिषेधप्रकारापेक्षया प्रतिपर्यायं वस्तुनि अनन्तानामिष सप्त-भङ्गोनामेव सम्मवात । - प्रश्न - यदि आप प्रत्येक वस्तुमें अनन्तधर्म मानते हो, तो अनन्त भंगोंकी कल्पना न करके वस्तुमें केवल सात ही भंगोंकी कल्पना क्यों करते हो। उत्तर - प्रत्येक वस्तुमें अनन्तधर्म होनेके कारण वस्तुमें अनन्त भंग होते हैं। परन्तु ये अनन्त भंग विधि और निषेधकी अपेक्षासे सात ही हो सकते हैं।

दे. सप्तभंगी/६/७ [अस्ति नास्तिकी भांति द्रव्यके नित्य-अनित्य, एक-अनेक, बक्तव्य-अवक्तव्य आदि धर्मोंमें भी सप्त भंगीकी योजना कर लेनी चाहिए।]

४. अस्ति नास्ति भंग निर्देश

१. वस्तुकी सिद्धिमें इन दोनोंका प्रधान स्थान

रा. वा,/१/६/५/पृ. सं./पं, सं. स्वपरात्मोपादानापोहनव्यवस्थापाद्यं हि वस्तुनो वस्तुत्वम् । यदि स्वस्मिन् पटाचात्मव्यावृत्तिविपरिणतिने स्यात् सर्वात्मना घट इति व्यपदिश्येत । अथ परात्मना व्यावृत्तानिष , स्वात्मोपादानिवपरिणतिर्ने स्यात् खरविषाणवदवस्त्वेव स्यात् (३३/- २१) । यदीतरात्मनापि घटः स्यात् विवक्षितारमना वाघटः; नामादि-

व्यवहारोच्छेदः स्यात् (३३/२६) यदीतरात्मकः स्यातः एक घटमात्र-प्रसङ्गः (३३/३०) यदि हि कुशूनान्तकथानाचारमनि घटः स्यात्: घटा-वस्थायामि तदुपलिधभवेत (३४/१)। यदि हि पृथुबुध्नाचारम-नामि घटो न स्यात् स एव न स्याद् (३४/११)। यदि वा रसादि-वद्रुपमपि घट इति न गृह्योत: चश्चर्विषयतास्य न स्यात् (२४/१६)। यदि वा इतरव्यपेक्षयापि घटः स्यात्, पटादिष्वपि तत्क्रियाविरहितेषु तच्छ ब्दवृत्तिः स्यात् (३४।२१)। इतरोऽसं निहितोऽपि यदि धटः स्यादः पटादीनामपि स्याद् घटत्वप्रसङ्घः (३४/२७)। यदि ज्ञेयाका-रेणाप्यघटः स्यादः तदाशयेतिकर्तव्यतानिरासः स्यात्। अथ हि ज्ञानाकारेणापि घटः स्यातः (३४/३४) उक्तैः प्रकारेरपितं घटत्व-मघटत्वं च परस्परतो न भिन्नस्। यदि भिद्येतः सामानाधिकर्ण्येन तहबुद्धशिधानबृत्तिर्न स्यात घटपरवत् (३४/१)। =१. स्वरूप ग्रहण और पररूप स्थागके द्वारा हो बस्तुकी बस्तुता स्थिर की जाती है। यदि पररूपकी व्यावृत्ति न हो तो सभी रूपोंसे घट व्यवहार होना चाहिए। और यदि स्त्ररूप ग्रहण न हो तो निःस्वरूपत्वका प्रसंग होनेसे यह खरविषाणकी तरह असत हो जायेगा। २, यदि अन्य रूपसे नष्ट हो जाये तो प्रतिनियत नामादि व्यवहारका उच्छेद हो जायेगा (३३/२६) ३. यदि इतर घटके आकारसे भी वह घट 'घट' रूप हो जामे तो सभी घड़े एक रूप हो जायेंगे (३३/३०) ४, यदि स्थास, कोस, कुछूल और कपाल आदि अवस्थाओं में घट है तो घट अवस्थामें भी उनकी उपलब्धि होवे। (३४/१) ६ यदि पृथुबुध्नोदर आकारसे भी घड़ा न हो तो घटका अभाव हो जायेगा (३४/११) ६. यदि रसादिकी तरह रूप भी स्वातमान हो तो वह चक्षुके द्वारा दिलाई ही न देगा (३४-१६)। ७, यदि इतर रूपसे भी घट कहा जाये तो घटन क्रिया रहित पर आदि में घट शब्द का व्यवहार होगा (१४/२१)। यदि इतर के न होने पर भी घट कहा जाये तो पटादिमें भी घट व्यवहाएका प्रसंग प्राप्त होगा (३४/२७) ८. यदि ज्ञेयाकारसे घटन माना नाये तो घट व्यवहार निराधार हो जायेगा (३४/३४)। इस प्रकार उक्त रीतिसे सूचित घटत्व और अघटत्व दोनों धर्मीका आधार घड़ा ही होता है। यदि दोनों में भेद माना जाये तो घटमें ही दोनों धर्मीके निमित्त से होने वाली बुद्धि और वचन प्रयोग नहीं हो सकेंगे।

(स. म /१४/१७६/६: १७७/१७) ।

रहो.वा,/२/१/६/२२ पृष्ठ सं,/पंक्ति सं. सर्वं वस्तु स्वद्रव्येऽस्ति न परहव्यं तस्य स्वपरद्रव्यस्वीकारतिरस्कारव्यवस्थितसाध्यत्वात्। स्वद्रव्यवत् परद्रव्यस्य स्त्रीकारे द्रव्याद्वैतप्रसक्तेः स्वपरद्रव्यविभागाभावात् । तच्च विरुद्धम् । जीवपुद्गलादिद्रव्याणां भित्रलक्ष्णानां प्रसिद्धेः (४२०/ १७) । तथा स्वक्षेत्रेऽस्ति परक्षेत्रे नास्तीत्यपि न विरुध्यते स्वपरक्षेत्र-प्राप्ति । रिहाराम्यां वस्तुनौ वस्तुरवसिद्धे रन्यथा क्षेत्रसंकरप्रसङ्गात्। सर्वस्याक्षेत्रस्वापत्तेश्च। न चैतत्साघीयः प्रतीतिविरोधादा (४२२/ १४) । तथा स्वकालेऽस्ति परकाले नास्तीरयपि न विरुद्धं, स्वपरकाल-ग्रहणपरित्यागाम्यां नस्तुनस्तत्त्वं प्रसिद्धेरन्यथाकालसांकर्यप्रसङ्गात् । सर्वदा सर्वस्थाभावप्रसङ्गाच्च (४२३/२३)। - सम्पूर्ण वस्तु अपने इच्यमें है पर दव्यमें नहीं है क्यों कि वस्तुकी व्यवस्था स्वकीय द्रव्यके स्वीकार करनेसे और परकीय ट्रव्यके तिरस्कार करनेसे साधी जाती है। यदि वस्तुस्य द्रव्यके समान पर्द्रव्यको भी स्वीकार करे तो संसारमें एक ही द्रव्य होनेका प्रसंग हो जायेगा । स्वद्रव्य व परद्रव्य-का विभाग न हो सकेगा। किन्तु बद्ध मुक्त आदिका विभाग न होना प्रतोतियोंसे विरुद्ध है क्योंकि जीव, पुह्मल भिन्न सक्ष्णवासे अनेक द्रव्य प्रसिद्ध हैं ।४२०/१७ । वस्तु स्वक्षेत्रमें है पर क्षेत्रमें नहीं है. यह कहना भी विरुद्ध नहीं है। क्योंकि स्वकीय क्षेत्रकी प्राप्तिसे पर-कीय क्षेत्रके परित्यागसे वस्तुका वस्तुपना सिद्ध हो रहा है। अन्यथा क्षेत्रों के संकर होने का प्रसंग होगा। तथा सम्पूर्ण पदार्थों को क्षेत्ररहित-पनेकी आपित हो जायेगी। किन्तु यह क्षेत्ररहितपना प्रशस्त नहीं

है क्यों कि प्रतीतियों से विरोध आ रहा है। (४२२/१४)। स्वकीय काल में बस्तु है परकीयकाल में नहीं। यह कथन विरुद्ध नहीं है, क्यों कि अपने काल का प्रहण करने से और दूसरे काल की हानि करने से वस्तुका वस्तुपना सिद्ध हो रहा है। अन्यथा काल के संकर हो जाने का प्रसंग आता है। सभी कालों में सम्पूर्ण वस्तुओं के अभावका प्रसंग प्राप्त हो जायेगा।

दे. सप्तभंगी/१ [ये दोनों भंगमूल हैं।]

स्या. म./१२/१४५/२५ अन्यरूपनिषेवमन्तरेण तत्स्वरूपपरिच्छेदस्याप्य-संपत्तेः।

स्याः मः/१४/१%६/१४ सर्वमस्ति स्वरूपेण पररूपेण नास्ति च । अन्यथाः सर्वसत्त्वं स्यात् स्वरूपस्याप्यसंभवः ।

स्या. म./२३/२८०/१० स्यात्कथं चिह्न नास्त्येव कुम्भादिः स्वद्रव्यादि-भिरिव परद्रव्यादिभिर्पि वस्तुनोऽसत्त्वानिष्टौ हि प्रतिनिक्षतस्वरूपा-भावाइ वस्तुप्रतिनियतिर्न स्यात् । न चास्तित्वैकान्तवादिभिरत्र नास्तित्वमसिद्धमिति वक्तव्यम् । कथंचित् तस्य वस्तुनि युक्तिसिद्ध-त्वात् साधनवत् । 🗝 १, निना किसी वस्तुका निषेध किये हुए विधि-रूप ज्ञान नहीं हो सकता है। २, प्रत्येक वस्तु स्वरूपसे विद्यमान है, पर रूपसे विद्यमान नहीं है। यदि वस्तुको सर्वथा भावरूप स्वीकार किया जाये, तो एक वस्तुके सङ्गावने सम्पूर्ण वस्तुओंका सङ्गाव मानना चाहिए, और यदि सर्वथा अभाव रूप माना जाये तो वस्तुको सर्वथा स्वभाव रहित मानना चाहिए। ३. घट अ।दि प्रत्येक वस्तु कथं चित् नास्ति रूप ही है। यदि पदार्थको स्व चतुष्ट्यको तरहं पर चतुष्ट्यसे भी अस्तिरूप माना जाये, तो पदार्थका कोई भी निश्चित स्वरूप सिद्ध नहीं हो सकता। सर्वथा अस्तित्ववादी भी वस्तुमें नास्तित्व धर्मका प्रतिषेध नहीं करते, बसोंकि जिस प्रकार एक ही साधनमें किसी अपेक्षासे अस्तित्व और किसी अपेक्षासे नास्तित्व सिद्ध होता है, उसी प्रकार अस्ति रूप वस्तुमें कृथंचित नास्ति रूप भी युक्तिसे सिद्ध होता है।

२. दोनोंमें अविनामावी सापेक्षता

न. च. वृ./३०४ अरियत्तं णो मण्णदि णरिथसहाबस्स जो हु साबेक्ष्वं। णरथीविय तहद्दक्वे मूढी मूढी दु सक्वरथ। = जो अस्तित्वको नास्तित्वके सापेक्ष तथा नास्तित्वको अस्तिरवके सापेक्ष नहीं मानता है, तथा द्रवयमें जो मूढ है वह सर्वत्र मूढ है।३०४।

भा पा /टी //४७/२०४/१० एकस्य निषेत्रोऽपरस्य विधिः। = एकका

निषेध ही दूसरेकी विधि है।

पं. घ./पू/देर्भ न कश्चित्रयों हि निरपेक्षः सति च विधीः प्रतिषेधः.
प्रतिषेधे सति विधेः प्रसिद्धत्वात् । देश्श् = कोई भी नय निरपेक्ष नहीं है किन्तु विधिके होनेपर प्रतिषेध और प्रतिषेधके होनेपर विधिकी प्रसिद्धि है। देश्श

स, भं. त./४३/६ अस्तिरवं रू स्वभावं नास्तित्वेनाविनाभूतम् । विशेषण-त्वात् वैधम्र्यवत् । चअस्तित्व स्वभाव नास्तित्वसे व्याप्त है क्योकि वह विशेषण है कैसे वैधम्यं ।

३. दोनोंकी सापेक्षतामें हेतु

रा.वा./४/४२/१६/२६४/१४ स्यादेतत—यवस्ति तत् स्वायन्तद्रव्यक्षेत्रकाल-भावरूपेण भवति नेतरेण तस्याप्रस्तुतस्वात् । यथा घटो द्रव्यतः पाधि-वस्त्रेन, क्षेत्रत इहस्यत्या कालतो वर्तमानकालसंगिन्धतया, भावतो रक्तस्वादिना, न परायनौर्द्रव्यादिभिस्तेषामप्रसक्तस्वात् इति ।.. यदि हि असी द्रव्यतः पाधिवस्त्रेन तथोदकादिस्त्रेनापि भवेत. ततोऽसौ घट एव न स्यात् पृथिव्युदकदहनपत्रनादिषु वृत्तस्वात् द्रव्यस्ववतः सथा, यथा इहत्यत्या अस्ति तथाविरोधिदिगन्तानियतदेशस्यत्यापि यदि स्यात्तथा चासौ घट एव न स्यात् विरोधिदिगन्तानियतसर्वदेशस्य-स्वात् आकाशक्त्। तथा, यथा वर्तमानघटकालत्या अस्ति तथा-तितिश्चवकाद्यनागतकपालादिकालत्यापि स्यात् तथा चासौ घट एव न स्यात् सर्वकालसंबन्धित्वात् मृदद्रव्यवत् । . . तथा, यथा नवत्वेन तथा पुराणत्वेन, सर्व रूपरसगन्धस्पर्शसं स्थासंस्थानादिखेन वा स्यादः तथा चासौ घट एव न स्याद सर्वथा भावित्वाद भवनवत्। चजो अस्ति है वह अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे ही है, इतर द्रव्यादिसे नहीं, क्यों कि वे अप्रस्तुत हैं। जैसे घड़ा पार्थिव रूपसे, इस क्षेत्रसे. इस कालकी दृष्टिसे तथा अपनी वर्तमान पर्यायोंसे अस्ति है अन्यसे नहीं, क्यों कि वे अप्रस्तुत हैं।...यदि घड़ा पार्थिवत्वकी तरह जलादि रूपसे भी अस्ति हो जाये तो जलादि रूप भी होनेसे वह एक सामान्य द्रव्य बन जायेगान कि घड़ा। यदि इस क्षेत्रकी तरह अन्य समस्त क्षेत्रोंमें भी घड़ा 'अस्ति' हो जामे तो वह घड़ी नहीं रह पायेगा किन्तु आकाश बन जायेगा । यदि इस कालकी तरह अतीत अनागत कालसे भी वह 'अस्ति' हो तो भी घड़ा नहीं रह सकता किन्तु त्रिकालानु-यायी होनेसे मृद् द्रव्य बन जायेगा। --- इसी तरह जैसे वह नया है उसी तरह पुराने या सभी रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संस्थान आदिकी दृष्टिसे भी 'अस्ति' हो तो वह घड़ा नहीं रह जायेगा किन्तु सर्वव्यापी होनेसे महासत्ता बन जायेगा।

४. नास्तित्व मंगकी सिद्धिमें हेतु

श्लो. वा./२/१/६/६२/४१७/१७ कचिदस्तित्वसिद्धिसामध्यित्तस्यान्यत्र नास्तित्वस्य सिद्धेनं रूपान्तरत्वमिति चेत व्याहतमेलत्। सिद्धौ सामध्यिसिद्धं च न रूपान्तरं चेति कथमवधेयं कस्यचित् कचिन्नास्ति-त्वसामध्यीच्चास्तित्वस्य सिद्धधेतत्तो रूपान्तरत्वाभावप्रसगात्। —प्रश्न → अस्तित्वके सामध्यसे उसका दूसरे स्थलोंपर नास्तित्व अपने आप सिद्ध हो जाता है, अतः अस्तित्व और नास्तित्व ये दो भिन्न स्वरूप चेहीं हैं। = उत्तर—यह व्याधात दोष है कि एककी सिद्धिपर अन्यत्रको सामध्यसे सिद्धि कहना और फिर उनको भिन्न स्वरूप न मानना। (स्या. म./१६/२००/१२)।

पं, ध./पू./श्लोक सं. अस्तीति च बक्तव्यं यदि वा नास्तीति तत्तव-संसिद्ध्ये । नोपादानं पृथगिह युक्तं तदनर्थकादिति चेत ।२६०। तन्ने यतः सर्वस्वं तदुभयभावाध्यवसितमेवेति। अन्यत्रस्य विलोपे तदितरभावस्य निह्नवापत्तेः ।२११। न पटाभावो हि घटो न पटाभावे घटस्य निष्पत्तिः। न घटाभावो हि पटः पटसर्गो वा घटव्ययादिति च ।२१७। तत्कि व्यतिरेकस्य भावेन विनान्वयोऽपि नास्तीति ।२१८। तन्न यतः सर्दिति स्यारद्वैतं द्वैतभावभागिप च। तत्र विधी विधिमात्रं तिवह निषेधे निषेधमात्रं स्यात् । २९९। - प्रश्न-तत्त्व सिद्धिके अर्थ केवल अस्ति अथवा केवल नास्ति ही कहना चाहिए, क्यों कि दोनों-का मानना अनर्थक है अतः दोनोंका ग्रहण करना युक्त नहीं है।२१०। उत्तर ⊸यह ठोक नहीं है, क्यों कि द्रव्यका स्वरूप अस्ति नास्तिरूप भावसे युक्त है, इसलिए एकको माननेपर उससे भिन्नके लोपका प्रसंग प्राप्त होता है। २६१। प्रश्न-निश्चयसे न पटका अभाव घट है और न पटके अभावमें घटकी उत्पत्ति होती है। तथा न घटका अभाव पट है और न घटके नाशसे पटकी उत्पत्ति होती है। २६७। तो फिर व्यतिरेकके सद्भाव बिना अन्वयकी सिद्धि नहीं होती, यह कैसे ।२१ । उत्तर - यह ठीक नहीं है, नयों कि यहाँ पर सब द्वेत भाव-का धारण करनेवाला है तो भी अद्वैत ही है क्योंकि उस सर्वमें विधि विवक्षित होनेपर वह सब केवल विधिरूप और निषेधमें केवस निषेध रूप प्रतीत होता है ।२१६।

५. नास्तित्व वस्तुका धर्म है तथा तद्गत शंका

रा. वा./१/४/१६/२६/१६ कथमभावो निरूपाल्यो वस्तुनो लक्षणं भवति । अभावोऽपि वस्तुधर्मो हेत्वङ्गत्वादेः भाववत । अतोऽसौ लक्षणं युज्यते । स हि वस्तुनो लक्षणं न स्यात् सर्वसंकरः स्यात् ।= प्रश्न — अभाव भी वस्तुका लक्षण कैसे होता है । उत्तर — अभाव भी वस्तुका धर्म होता है जैसे कि विपक्षाभाव हेतुका स्वरूप है । यदि अभावको वस्तुका स्वरूप ने माना जाये तो सर्व सांकर्य हो जायेगा वयोकि प्रत्येक वस्तुमें स्वभिन्न पदार्थीका अभाव होता ही है। (रा. वा./४/४२/१४/ २४६/४)।

स. भं. त./पृ./पं. सं. ननु पररूपेणासत्त्वं नाम पररूपासत्त्वमेव । न हि घटे पटस्वरूपामावघटे नास्तीति वक्तुं शक्यम् । भूतले घटामावे भूतले घटो नास्तीति वानयप्रवृत्तिवत् घटे पटस्वरूपाभावे पटो नास्ती-रयेव वक्तुमुचितस्वाद । इति चेन्न-विचारासहस्वात् । घटादिसु पररूपासत्त्वं पटादिधर्मी घटधर्मी वा । नादः, व्याधातात् । न हि पटरूपासत्त्वं पटेऽस्ति। पटस्य श्रुन्यरबापत्तेः। न च स्वधर्मः स्वस्मिन्नास्तीति वाच्यम्। तस्य स्वधर्मस्वविरोधात्। पटधर्मस्य घटाचाधारकत्वायोगाच्च । अन्यथा वितानविवितानाकारस्यापि तदाधारकत्वप्रसंगात । अन्त्यपश्चरवीकारे तु विवादो विश्रान्तः। (८३/७) घटे पटरूपासत्त्वं नाम घटनिष्ठाभावप्रतियोगित्वस् । तच्च घटधर्मः। यथा भूतले घटो नास्तीत्यत्र भूतलनिष्ठाभावप्रतियोगित्वमेव भूतले नास्तित्वम् तच्च घटधर्मः । इति चेन्नः तथापि पटरूपाभावस्य घटधर्मस्याविरोधात्, घटाभावस्य भूतलधर्मस्ववत्। तथा च घटस्य भावाभावास्मकत्वं सिद्धम् । कथंचित्तादारम्यलक्षणसंबन्धेन संबन्धिन एव स्वधर्मत्वात (८४/३); नन्वेवं रीस्या घटस्य भावाभावास्मकत्वे सिद्धे Sपि घटो Sस्ति पटो नास्तीत्येत्र वक्तव्यम् (८५/१); घटस्य भावा-भावात्मकत्वे सिद्धेऽस्माकं विवादो विश्रान्तः समीहितसिद्धेः। शब्द-प्रयोगस्तु पूर्वपूर्वप्रयोगानुसारेण भविष्यति । न हि पदार्थसत्ताधीन-श्शब्दप्रयोगः (ब्र्श्/७); अटादौ वर्तमानः पटरूपाभावो घटाद्विन्नोऽ-भिन्नो वा । यदि भिन्नस्तस्यापि परत्वात्तदभावस्तन्न करपनीयः(८६/१) यद्यभित्रस्तर्हि सिद्धं स्वस्मादभिन्नेन भावधर्मेण घटादौ सप्ववद-भावधर्मेण तादृशेनासत्त्वमपि स्वीकरणीयमिति (८६/४); = प्रश्न --पररूपसे असत्तर्वामा परकीय रूपका असुत्त अर्थात् दूसरे पट आदि-का रूप घटमें नहीं है। क्योंकि घटमें पर स्वरूपका अभाव होनेसे घट नहीं है ऐसा नहीं कह सकते किन्तु भूतलमें घटका अभाव होनेपर भुतलमें घट नहीं है, इस वानयकी प्रवृत्तिके समान घटमें पटके स्वरूप-का अभाव होनेसे घटमें पट नहीं है यह कथन उचित है ! उत्तर-नहीं, क्यों कि घट आदि पदार्थीमें जो पर आदि रूपका असत्त्व है वह पर आदिका धर्म है अथवा घटका है, प्रथम पक्ष माननेपर पट रूपका ही व्याघात होगा. क्योंकि पटरूपका असत्त्व पट नहीं है। और स्वकीय धर्म अपनेमें ही नहीं है ऐसा नहीं कह सकते, क्यों कि तब तो स्वधर्मत्व इस कथनका ही विरोध हो जागेगा। और पटके धर्मका आधार घट आदि पदार्थ हो नहीं सकते, क्यों कि ऐसा माननेसे घट भी ताना-वाना का आधार हो जायेगा। पटरूप का असत्त्व भी 'घटका धर्म है ऐसा माननेपर तो विवादका ही विश्राम हो जायेगा (५१/७) । प्रश्न-- घटमें पटरूपके असत्त्वका अर्थ यह है कि घटमें रहनेवाला जो अन्य पदार्थीका आभाव, उस अभावका प्रतियोगी रूप और यह घटधर्म रूप होगा। जैसे भूतलमें घट नहीं है यहाँपर भूतलमें रहनेवाला जो अभाव उस अभावकी प्रतियोगिता ही भूतलमें नास्तिता रूप पड़ती है और प्रतियोगिता वा नोस्तिता घटका धर्म है ! उत्तर-नहीं, क्योंकि, पटरूपका जो आभाव उसके घट धर्म होनेसे कोई भी विरोध नहीं है। जैसे कि भूतलमें घटाभाव भूत्तका धर्म है। इस रीतिसे घटके भाव अभाव उभयस्तप सिद्ध हो गये। क्यों कि किसी अपेक्षासे तादातम्य अर्थात् - अभेद सम्बन्धसे सम्बन्धी होको स्वधर्मस्वपता हो जाती है (प्४/३): प्रश्न - पूर्वोक्त रीतिसे घटकी भाव-अभाव उभयरूपता सिद्ध होनेपर भी घट है पट नहीं है ऐसा ही प्रयोग करना चाहिए. न कि घट नहीं है ऐसा प्रयोग (५/१) ! उत्तर-घटके भाव-अभाव उभय स्वरूप सिद्ध होनेसे हमारे विवादकी समाप्ति है. क्यों कि उभयरूपता माननेसे ही हम।रे अभीष्टकी सिद्धि है। और ज्ञब्द प्रयोग तो पूर्व-पूर्व प्रयोगके अनुसार होगा। क्यों कि शब्द प्रयोग पदार्थ की सत्ताके वशीभूत नहीं है। (८५/७) और भी घट आदिमें

पररूपका जो अभाव है वह घटसे भिन्न है अथवा अभिन्न है। यदि घटसे भिन्न है तब तो उसके भी पट होनेसे वहाँ उसके अभाव हीकी कक्पना करनी चाहिए (८६/१); यदि पटरूपाभाव घटसे अभिन्न है तो हमारा अभीष्ट सिद्ध हो गया, क्योंकि अपनेसे अभिन्न भाव धर्मसे घट आदिमें जैसे सत्त्वरूपता है ऐसे ही अपनेसे अभिन्न अभाव धर्मसे असत्त्व रूपता भी घट आदिमें स्वीकार करनी चाहिए।

६. उमयात्मक तृतीय मंगकी सिद्धिमें हेतु

रा. वा./४/४२/१६/२६६-२६६/१ इतश्च स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्वपरसत्ता भावाभावोभयाधीनत्वात् जीवस्य। यदि परसत्तया अभावं स जीवं स्वात्मिम नापेक्षते, अतः स जीव एव न स्यात् सन्मात्रं स्यात् नासी जीयः सत्त्वे सति विशेषरूपेण अनवस्थितत्वात सामान्यवत् । तथा परसत्ताभावापेक्षायामपि जीवत्त्रे यदि स्वसत्ताप्रिणति नापेक्षते तथापि तस्य वस्तुत्वमेव न स्यात् जीवत्वं वा, सद्भावापरि-णत्वे परभावमात्रत्वात् खपुष्पवत् । अतः पराभावोऽपि स्वसत्तापरि-णत्यपेक्ष एव अस्तित्वस्वात्मवत् । . . कि हि वस्तुसर्वात्मकं सर्वीभाव-रूपं वा दृष्टमिति । अभावः स्वसद्भावं भावाभावं च अपेक्षराणः सिध्यति । भावोऽपि स्वसद्भावस् अभावाभावं चापेक्ष्यं सिद्धिमुप-याति । यदि तु अभाव एकान्तेनास्ति इत्यभ्युश्गम्येत ततः सर्वात्मना-स्तित्वात स्वस्तपवद्भावात्मनापि स्यात्, तथा च भावाभावस्तपसंकरा-दस्थितरूपस्वादुभयोर्ण्यभावः। अथ एकान्तेन नास्ति इत्यभ्युपगम्येतः ततो यथा भावात्मना नास्ति तथा भावात्मनापि न स्यात्, ततश्च अभावस्याभावात् भावस्याप्रतिपक्षत्वात् भावमात्रमेव स्पात्। तथा खपुष्पादयोऽपि भावा एव अभावभावरूपत्वात घटवत इति सर्वभाव-प्रसङ्गः । · · · एवं स्वारमनि घटादिवस्तुसिद्धौ च भावाभावयोः परस्परा-पेक्षस्वात् यदुच्यते ''अथर्दि प्रकरणाद्वा घटे अप्रसक्तायाः पटादिसत्तायाः किमिति निषेयः क्रियते''। इति; तरयुक्तम्। किंच घटे अर्थत्वात् अथंसामान्यात् पटादिसर्वार्थंप्रसंगः संभवत्येव । तत्र विशिष्टं घटार्थरवम् अभ्युपगम्यमानं पटादिसत्तारूपस्थार्थसामर्थ्यप्रापितस्य अर्थतत्त्वस्य निरासेनैव आत्मानं शक्नोति सब्धूम्, इतरथा हि असी घटार्थ एव न स्यात् पटादार्थरूपेणानिवृत्तत्वात् पटादार्थस्वरूपवत्, विपरीतो वा 1=१. स्वसद्भाव और परअभावके आधीन जीवका स्वरूप होनेसे वह उभयात्मक है। यदि जीव परसत्ताके अभावकी अपेक्षान करेतो वह जीव न होकर सन्मात्र हो जायेगः। इसी तरह परसत्ताके अभावकी अपेक्षा होनेपर भी स्वसत्ताका सद्भाव न हो तो वह वस्तु ही नहीं हो सकेगा, जीव होनेकी मात तो दूर ही रही। अतः परका अभाव भी स्वसत्ता सद्भावसे ही वस्तुका स्वरूप बन सकता है। ... क्या कभी वस्तु सर्वाभावत्मक या सर्व-सत्तात्मक देखी गयी है !---इस तरह भावरूपता और अभावरूपता दोनों परस्पर सापेक्ष हैं अभाव अपने सद्भाव तथा भावके अभावकी अपेक्षा सिद्ध होता है तथा भाव स्वसद्भाव और अभावके अभावकी अपेक्षासे सिद्ध होता है। २. यदि अभावको एकान्तसे अस्ति स्वीकार किया जाये तो जैसे वह अभावरूपसे अस्ति है उसी तरह भावरूपसे भी 'अस्ति' हो जानेके कारण भाव और अभावमें स्वरूप सांकर्य हो जायेगा। यदि अभावको सर्वथा 'नास्ति' माना जायै तो जैसे वह भावसपसे नास्ति है उसी तरह अभावरूपसे भी नास्ति होनेसे अभावका सर्वथा लोप हो जानेके कारण भावमात्र ही जगत् रह जायेगा। और इस तरह खपुष्प आदि भी भावात्मक हो जायेंगे । अतः घटादिक भाव स्यादस्ति और स्याइनास्ति हैं। इस तरह घटादि बस्तुओं में भाव और अभाव-को परस्पर सापेक्ष होनेसे प्रतिवादीका कथन यह है कि ''अर्थ या प्रकरणसे जब घटमें पटादिकी सत्ताका प्रसंग ही नहीं है, तब उसका निषेध क्यों करते हो !' अयुक्त हो जाता है। किंच, अर्थ होनेके कारण सामान्य रूपसे घटमें पटादि अर्थीकी सत्ताका प्रसग प्राप्त है

ही, यदि उसमें हम विशिष्ट घटरूपता स्वीकार करना चाहते हैं तो वह पटादिकी सत्ताका निषेध करके ही आ सकती है। अन्यथा वह घट नहीं कहा जा सकता क्यों कि पटादि रूपोंकी व्यावृत्ति न होनेसे उसमें पटादिरूपता भी उसी तरह मौजूद है। (स्या. म./२३/२०/१०); (स. भं- त./८३/१)।

५. अनेक प्रकारसे अस्तित्व नास्तित्व प्रयोग

१, स्वपर द्रव्य गुण पर्यायकी अपेक्षा

घ. १/४.१.४६/9ृष्ठ सं./पं. सं. स्वरूपादिचतुष्टयेन , अस्ति •••पुररूपादिचतुष्टयेन नास्ति घडः, ...मृह्घटो मृह्घटरूपे अस्ति, न कन्याणादि घटरूपेण । (२१३।४) तरपरिणत्ररूपे-णास्ति घटः, न नामादिघटरूपेण (२१४।१) अथवापयोग-रूपेणास्ति घटः, नाथभिधानाभ्याम् ।...अथवीपयोगघटोऽपि वर्त्तमानस्वतयास्ति, नातीतानागतीपयोगघटैः। योगघटः स्त्ररूपेणास्ति, न पटापयोगादिरूपेण।…इत्यादिप्रकारेण सकत्तार्थानामस्तित्व-नास्तित्वावक्तव्यभङ्गा योज्याः ! (२१५।६) - स्वरूपादि चतुष्ट्यके द्वारा घट है...पररूपादि चतुष्ट्यसे 'घट नहीं है '…मिट्टो का अट सिट्टी के घट रूप से है, स्वर्ण के घट रूप से (२१३।४) अथवा घटरूप पर्यायस परिणत स्वरूपसे घट है, नामादि रूपसे वह घट नहीं है (२१४।१) उपयोग रूपसे घट है और अर्थ व अभिधानकी अपेक्षा वह नहीं है...अथवा उपयोग घट भी वर्तमान रूपसे है, अतीस व अनागत उपयोग घटोंकी अपेक्षा वह नहीं है...अथवा घटोपयोग स्वरूपसे घट है, पटोपयोगादि स्वरूपसे नहीं है। --- इत्यादि प्रकारसे सब पदार्थीके अस्तित्व, नास्तित्व व अवक्तव्य भगोंको कहना चाहिए।

स. सा./आ./परि./क. २६२-२६३ स्वद्रव्यास्तितया निरूप्य निष्ठुणं सद्यः समुन्मज्ञता. स्याद्वादी...।२६२। स्याद्वादी तु समस्तवस्तुषु परद्रव्या-रमना नास्तिताम् ।२६३। ==स्याद्वादी तो, आत्माको स्वद्रव्यरूपसे अस्तिपनेसे निपुणतया देखता है ।२६२। और स्याद्वादी तो, समस्त वस्तुओं में परद्रव्य स्वरूपसे नास्तित्वको जानता है ।२६३।

स्या. म./२३/२७८/३० कुम्भो द्रव्यतः पार्थिवत्वेनास्ति । नाष्वीविरूप-त्वेन । च वड़ा द्रव्यकी अपेक्षा पार्थिव रूपसे विद्यमान है जलरूपसे नहीं ।

२. स्ब-पर क्षेत्रकी अपेक्षा

रा. वा./१/६/४/पृष्ठ/पंक्ति अथवा, तत्र विवक्षितघटशब्दवाच्यसादश्य-सामान्यसंबन्धिषु करिंमश्चिद् घटविशेषे परिगृहीते प्रतिनिधतो यः संस्थानादिः स स्वात्मा, इतरः परात्मा। तत्र प्रतिनियतेन रूपेण घटः नेतरेण (३३।२०)। परस्परोपकारवर्तिनि पृथुबुध्नाद्याकारः स्वात्म्य, इतरः परात्मा। तेन पृथुबुध्नाद्याकारेण स घटोऽस्ति नेतरेण। (३४।६)। =घट शब्दके वाच्य अनेक घड़ोंमें-से विवक्षित अमुक घटका जो आंकार आदि है वह स्वात्मा, अन्य परात्मा है। सो प्रतिनियत रूपसे घट है, अन्य रूपसे नहीं (३३।२८)। (प्रत्युत्पन्न गट क्षणमें रूप, रस, गन्ध) पृथुबुध्नोदराकार आदि अनेक गुण और पर्यायें हैं। अतः घड़ा पृथुबुध्नोदराकारसे 'हैं' क्योंकि घट व्यवहार इसी आकारसे होता है अन्यसे नहीं।

- ध. १/४,१,४६/२१४/६ अपितसंस्थानघटः अस्तिस्वरूपेण, नापितसंस्थान-घटरूपेण । अथवापितक्षेत्रवृत्तिर्धटोऽस्ति स्वरूपेण नानिपतक्षेत्र-वृत्तिर्घटैः । कविवक्षितआकारयुक्त घट स्वरूपसे है, अविवक्षित आकार रूप घट स्वरूपसे नहीं है । अधिविक्षित क्षेत्रमें रहनेवाला घट अपने स्वरूपसे है, अविवक्षित क्षेत्रमें रहनेवाले घटोंकी अपेक्षा वह नहीं है ।
- स. सा./आ./२६४-२६६ स्वक्षेत्रास्तितया निरुद्धरभसः स्याद्वादवेदी
 पुनस्तिष्ठत्यात्मनित्वातनोध्यनियतव्यापारशक्तिर्भवन् १२६४१
 स्याद्वादी तु वसन् स्वधामनि परसेत्रे विदन्नास्तितौ । १२६४१
 स्याद्वादी तो स्वक्षेत्रसे अस्तित्वके कारण जिसका वेग रुका हुआ
 है, ऐसा होता हुआ, आत्मामें ही ज्योंमें निश्चित व्यापारकी
 शक्तियाला होकर, टिकता है।२६४। स्याद्वादी तो स्वक्षेत्रमें रहता
 हुआ, परसेत्रमें अपना नास्तित्व जानता (है)।२६४।

स्या. म./२३/२०६/६ क्षेत्रतः पाटलिपुत्रकत्वेन । न कान्यकृष्वादित्येन । -- (घट) क्षेत्रकी अपेक्षा पटना नगरकी अपेक्षा मौजूद है, कन्नौजकी अपेक्षा नहीं ।

पं. ध./पू./१४८ अपि यश्चेको देशो यावदिभिव्याप्य वर्तते क्षेत्रम्। तत्तत्क्षेत्रं नान्यद्भवति सदन्यश्च क्षेत्रव्यतिरेकः। = जो एक देश जितने क्षेत्रको रोककर रहता है वह उस देश (द्रव्य) का स्वक्षेत्र है। अन्य असका नहीं है, किन्तु दूसरा दूसरा हो है, पहला पहला ही।

३. स्व-पर कालकी अपेक्षा

- रा. वा./१/६/५/३३/३२ तिस्मिन्नेत्र घटिकिषेषे कालान्तरावस्थाधिति
 पूर्वोत्तरकुश्कान्तकपालाखनस्थाकलायः परात्मा, तदन्तरालवर्ती
 स्वात्मा। स तेनैव घटः तत्कर्मगुणव्यपदेशदर्शनात् नेतरात्मना।
 अथवा ऋजुसूत्रनयापेक्षया प्रस्युत्पन्नघटस्वभावः स्वात्मा, घटपर्याय
 एवातीतोऽनागतरच परात्मा। तेन प्रत्युत्पन्नस्वभावेन सत्ता स वटः
 नेतरेणासता। अमुक घट भी द्रव्यदृष्टिसे अनेक क्षणस्थायी होता
 है। अतः अन्वयी मृदद्रव्यकी अपेक्षा स्थास कोश कुशूल घट कपाल
 आहि पूर्वोत्तर अवस्थाओं में भी घट व्यवहार हो सकता है। इनमें
 स्थास, कोश, कुशूल और कपाल आदि पूर्व और उत्तर अवस्थाएँ
 परात्मा है तथा मध्य क्षणवर्ती घट अवस्था स्वात्मा है। अवस्थाएँ
 परात्मा है तथा मध्य क्षणवर्ती घट आवस्था स्वात्मा है। अवस्थाएँ
 अनागतकालीन उस घटकी पर्याये परात्मा है। क्योंकि प्रत्युत्पन्न
 स्वभावसे घट है, अन्यसे नहीं।
- ंध.१/४.१,४१/२१४/६ तत्परिणतरूपेणास्ति घटः, न पिण्ड-कपालादिप्राक् प्रध्यंसाभावैः विरोधात् ।...वर्तमानो घटो वर्समानघटरूपेणास्ति, नातोतानागतघटैः। - घट पर्यायसे घट है, प्राग्भावरूप पिण्ड और प्रध्वंसाभावरूप कपाल पर्यायसे वह नहीं है, क्योंकि वैसा माननेमें विरोध है।...वर्तमान घट वर्तमान रूपसे है, अतीत व अनागत घटोंकी अपेक्षा वह नहीं है।
 - स. सा. श्वा. ११र. /क. २६६ २६७ अस्तिरवं निजकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादनेदी पुनः । २६६। नास्तिरवं परकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वाद-

वेदी पुनः । । २१७। = स्याद्वादका ज्ञाता तो आत्माका निज कालसे अस्तित्व जानता हुआ । । २१६। स्याद्वादका ज्ञाता तो परकालसे आत्माका नास्तित्व जानता (है)। २१८।

- स्या. म /२३/२७१/१ (घटः) कालतः शैशिरत्वेन । न वासन्तिकादि-त्वेन । च्य (घटः) कालकी अपेक्षा शीत ऋतुकी दृष्टिसे है, वसन्त. ऋतुकी दृष्टिसे नहीं।
- पं. घ / पू / १४६ अपि चैकस्मिन् समये यकाष्यवस्था भवेत साष्यन्या। भवति च सापि तदन्या द्वितीयसमयोऽपि कालव्यतिरेकः । १४६। — एक समयमें जो अवस्था होती है वह वह ही है अन्य नहीं। और दूसरे समयमें भी जो अवस्था होती है वह भी उससे अन्य ही होती है पहली नहीं। १४६। (पं. ध./पू./१७१/४६७)।

४. स्व-पर भावकी अपेक्षा

- रा. वा/१/६/६/३४/१४ रूपमुखेन घटो गृह्यत इति रूपं स्वारमा, रसादिः परात्मा। स घटो रूपेणास्ति नेतरेण रसादिना। ...तत्र घटनिक्रमा निषयकर्तृ भावः स्वारमा, इतरः परात्मा। तत्राद्येन घटः नेतरेण। च घड़ेके रूपको आँखसे देखकर ही घटके अस्तित्वका व्यवहार होता है अतः रूप स्वारमा है तथा रसादि परात्मा। क्योंकि घड़ा रूपसे है अन्य रसादि रूपसे नहीं !...घटका घटनिक्रियामें कर्ता रूपसे उपयुक्त होने वाला स्वरूप स्वारमा है और अन्य परारमा।
- स. सा./आ./परि./क. २६८-२६६ सर्वस्मान्नियतस्वभावभवनज्ञानाद्वि-भक्तो भवत् स्याद्वादी । स्याद्वादी तु निशुद्ध एव लसति स्वस्य स्वभावं भरादारूढः परभावभावनिरहव्यालोकनिष्कि-भिपतः ।२६६। —स्याद्वादी तो अपने नियत स्वभावके भवन स्वरूप ज्ञानके कारण सब (परभावों) से भिन्न वर्तता हुआ । परभाव रूप भवनके अभावकी दृष्टिके कारण निष्कम्प वर्तता हुआ । १२६६।

स्या. म./२३/२७१/२ (घटः) भावतः श्यामत्वेन । न रक्तादिरवेन। -धट भावकी अपेक्षा काले स्वयसे मौजूद है, लाल स्वयसे नहीं।

पं. घ./पू./१६० भवति गुणांशः कश्चित् स भवति नान्यो भवति न चाप्यन्यः। सोऽपि न भवति तदन्यो भवति तदन्योऽपि भावव्यति-रेकः।१६०। =जो कोई एक गुणका अविभागी प्रतिच्छेद है वह वह ही होता है, अन्य नहीं हो सकता। और दूसरा भी पहला नहीं हो सकता है। किन्तु उससे भिन्न है वह उससे भिन्न ही रहता है।१६०।

५. वस्तुके सामान्य विशेष धर्मोंकी अपेक्षा

- न्या. वि./मू./३/६६/३५० द्रश्यपर्यायसामान्यविशेषप्रविभागतः । स्या-द्विधिमतिषेधाम्यां सप्तभङ्गी प्रवर्तते । =द्रश्य अर्थात् सामान्य और पर्याय अर्थात् विशेषः, द्रश्य सामान्य व द्रश्य विशेषमें तथा पर्याय सामान्य व पर्याय विशेषमें कथं चित्र विधि प्रतिषेधके द्वारा तीन सप्तभंगी प्रवर्तती है ।
- ध. १/४,१,४६/पृष्ठ/पंक्ति पर्यायघटः पर्यायघटरूपेणास्ति, न द्रव्यघट-रूपेण (२१४/७) अथवा व्यञ्जनपर्यायेणास्ति घटः नार्थपर्यायेण (२१६/३)। —पर्यायघट पर्यायघट स्त्रपते है, द्रव्य घट रूपसे नहीं (२१४/७) अथवा व्यजन पर्यायसे घट है, अर्थ पर्यायसे नहीं हैं (२१६/३)।

- पं.का./त.प्र./८/१६ महासत्तावान्तरसत्तारूपेणासत्तावान्तर-सत्ताः च महासत्तारूपेणासत्तेत्वसत्ताः सत्तात्रयः । = महासत्ता अवान्तरसत्ता रूपसे असता है और अवान्तर सत्ता महासत्ता रूपसे असत्ता है इसलिए सत्ता असत्ता है । (जो सामान्य विशेषात्मक सत्ता महासत्ता होनेसे 'सत्ता' है वही अवान्तर सत्ता रूप होनेसे असत्ता भी है)।
- पं. ध./पू./श्लो, सं. अयमर्थी वस्तु यदा सदिति महासत्तयावधार्यत । स्यात्तदवान्तरसत्तारूपेणाभाव एव न तु भूलात (२६७) अपि चावा-न्तरसत्तारूपेण यदावधार्यते वस्तु । अपरेण महासत्तारूपेणाभाव एव भवति तदा (२६८) अथ केवलं प्रदेशात प्रदेशमात्रं यदेण्यते वस्तु । अस्ति स्वक्षेत्रतया तदंशमात्राविवक्षितत्वात्र ।२७१। तदंशात्तावनमात्राखदेष्यते वस्तु । अस्त्यंशविवक्षितया नास्ति च देशाबिबक्षितत्व। इ. १९७२ । सामान्यं विधिरूपं प्रतिषेधात्मा भवति विशेषश्च । उभयोरन्यतरस्योन्मग्नत्वादस्ति नास्तीति (२७६) सामान्यं विधिरेव हि शुद्धः प्रतिषेधकश्च निरपेक्षः। प्रतिषेधो हि विशेषः प्रतिषेध्यः सांशकश्च सापेक्षः ।२८१। तस्मादिदमनवद्याः सर्वं सामान्यतो यदाप्यस्ति । शेषविशेषविवक्षाभावादिह तदैव तन्नास्ति ।२५३। यदि वा सर्वमिदं यद्विवक्षितस्वाविशेषतोऽस्ति अविवक्षितसमान्यात्तदेव तन्नास्ति (२९४) अपि चैवं प्रक्रियया नेतट्याः पञ्चशेषभङ्गाश्च । वर्ण-बदुक्तद्वयमिहापटबच्छेषास्तु तद्योगाद (२८७) नास्ति च तदिह विशेषैः सामान्यस्य विवक्षितायां वा । सामान्यैरितरस्य च गौणत्वे सति भवति नास्ति नयः ।७६७। =१, (द्रव्या) जिस समय वस्तु सत् इत्याकारक महा सत्ताके द्वारा अवधारित की जाती है उस समय उस उसकी अवान्तर सत्ता रूपसे उसका अभाव ही है किन्तु मृतसे नहीं है।२६७। जिस समय बस्तु अवान्तर सत्ता रूपसे अवधारित की जाती है, उस समय दूसरो महासत्ता रूपसे उस वस्तुका अभाव ही विविक्षित होता। २६८।२.(क्षेत्र) जिस समय वस्तु केवल प्रदेशसे प्रदेशमात्र मानी जाती है, उस समय अपने क्षेत्रसे अस्ति रूप है, और उन-उन वस्तुओं के उन-उन अंशों की अविवक्षा होने से नास्ति रूप है।२७१। और जिस समय वस्तु केवल अमुक द्रव्यके इतने प्रदेश है इत्यादि विशेष क्षेत्रकी विवक्षांसे मानी जाती है उस समय विशेष अंशोंकी अपेक्षांसे अस्ति रूप है, सामान्य प्रदेशकी विवक्षा न होनेसे नास्ति रूप भी है। २७२। ३. (काल) विधि रूप वर्तन सामान्य काल है और निषेध स्वरूप विशेष काल है। इन दोनोंमेंसे एककी मुख्यता होनेसे अस्ति-नास्ति रूप विकल्प होते हैं। २७६। ४. (भाव) सामान्य भाव विधि रूप शुद्ध विकल्पमात्रका प्रतिषेधक है तथा निरपेक्ष ही होता है तथा निश्चयसे विशेष रूप भाव निषेव रूप निषेध करने योग्य अंशकल्पना सहित और सापेक्ष होता है। २०१। ६. (सारांश) इसलिए सब कथन निर्दोष है कि जिस समय भी सामान्य रूपसे अस्तिरूप होता है उसी समय यहाँ पर विशेषों की विवक्षाके अभावसे वह सत् नास्तिरूप भी रहता है। २८३ । अथवा जिस समय जो यह सत्र विशेष रूपसे विविधित होनेसे अस्ति रूप होता है, उसी समय नय योगसे सामान्य अविव-क्षित होनेसे वह नास्ति रूप भी होता है। २५४। विशेष यह है कि यहाँ पर इसी शेलीसे पटकी तरह अनुलोम क्रमसे तथा पटगत वर्णादि को तरह प्रतिलोम क्रमसे दो भंग कहे हैं और शेष पाँच भंग हो इनके मिलानेसे तमा लेने चाहिए। (२५७)

वस्तु सामान्यको विवक्षामें विशेष धर्मकी गौणता होने पर विशेष धर्मोंके द्वारा नास्ति रूप है अथवा विशेषकी विवक्षामें सामान्य धर्मोके द्वारा नहीं है। जो यह कथन है वह नास्तिनय है। ७६७।

६. नयोंकी अपेक्षा

थ- १/४,१,४६/२९६/४ ऋजुसूत्रनयित्रयोकृतपर्यायैरस्ति घटः, न

७. विरोधी धर्मोंसे

न. च. श्रुतः /६४-६७ द्रव्यरूपेण नित्य स्यादस्ति अनित्य इति पर्याय-रूपेणैव---सामान्यरूपेणैकरत्रम्---स्यादनेक इति विशेषरूपेणैव---सइ-भूतव्यवहारैण भेद…स्यादभेद इति द्रव्यार्थिकेनैव…स्याइभव्यः… स्वकीयस्वरूपेण भवनादिति—स्यादभव्य इति पररूपेणैवः स्याद-चेतनः अचेतनस्वभावप्रधानः वेनेति अस्यादचेतन इति वयवहारेणैव अ स्यान्मूर्तः असद्भूतव्यवहारेण गस्यादमूर्त इति परमभावेनैव ग स्यादेकप्रदेशः भेरकल्पनानिरपेक्षेणेति गर्मादनेकप्रदेश इति व्यव-हारेणैव…स्याच्छद्धः केवलस्वभावप्रधानत्वेनेति...स्यादशुद्ध मिश्रभावे...स्यादुपचरितः--स्वभावस्याप्यत्यत्रोपचारादिति---स्याद-अभिप्रायसे निरय नुपचरित इति निश्चयादेव ..। च्द्रव्यरूप है---कथं चिद् अनित्य है, यह पर्याय रूपसे ही समफ्रना चाहिए।... सामान्यरूप अभिप्रायसे एकत्वपना है...कथंचित अनेकरूप है, यह विशेष रूपसे ही जानना चाहिए...सद्दभूत व्यवहारसे भेद है...द्रव्या-थिक नयसे अभेद हैं ... कथं चित् स्वकीय स्वरूपसे हो सकनेसे भव्य स्वरूप है...पररूपसे नहीं होनेसे अभव्य है...चेतन स्वभावकी प्रधानतासे कथं चित्र चेतन है...व्यवहारनयसे अचेतन है...असङ्भूत व्यवहार नग्रसे मूर्त है...परमभान अमूर्त है.. भेदकव्पनानिरपेक्ष नयसे एक प्रदेशी है...व्यवहार नयसे अनेक प्रदेशी है...केवल स्वभावको प्रधानतासे कथं,चित् शुद्ध है...मिश्र भावसे कथं चित असुद्ध है...स्वभावके भी अन्यत्र उपचारसे कथंचित उपचरित्त हैं... निश्चयसे अनुष्चरित है। (स. भं, त./७४/८; ७६/१०; ७६/३)

स. सा./आ./क, २४५-२४६ बाह्यार्थैः परिपोत्तमुज्भित्तनिज-प्रव्यक्ति-रिक्तीभवद्-विशान्तं परस्य एव परितो ज्ञानं पशोः सीदति। यत्त-त्तत्ति दिह स्वरूपत इति स्याद्वादिनस्तरपुन-दूरोन्मग्नधनस्वभावभरतः पूर्णं समुन्म-जिता । २४८। विश्वं ज्ञानिमिति प्रतक्यं सकलं दृष्ट्वा स्वतत्त्वाशया-भूत्वा विश्वभयः पशुः पशुरिव स्वच्छन्दमाचेष्टते। यत्तत्तरपर रूपतो न तदिति स्याद्वाददर्शी पुन-विश्वाद्भिन्नमविश्व-विश्वघटितं तस्य स्वतत्त्वं स्पृशेत् । २४१। - बाह्य पदार्थीके द्वारा सम्पूर्णतया पिया गया, अपनी भक्ति छोड़ देनेसे रिक्त हुआ, सम्पूर्ण-त्या पररूपमें ही विशान्त, ऐसे पशुका ज्ञान नाशको प्राप्त होता है. और स्याद्वादीका ज्ञान तो, जो सत् है वह स्वरूपसे तत् है, ऐसी मान्यताके कारण, अरयन्त प्रकट हुए ज्ञानघन रूप स्वभावके भारसे सम्पूर्ण उदित होता है ।२४६। पशु (सर्वथा एकान्तवादी) अञ्चानी 'विश्व ज्ञान है' ऐसा विचार कर सबको निजतत्त्वकी आशासे देखकर विश्वमय होकर, पशुकी भाँति स्वच्छन्दतया चेष्टा करता है। और स्याद्वादी तो. यह मानता है कि 'जो तत् है वह पररूपसे तत् नहीं है, इसलिए विश्वसे भिन्न ऐसे तथा विश्वसे रचित होनेपर भी विश्व रूप न होनेवाले ऐसे अपने तत्त्वका अनुभव करता है। २४१। (पं. ध./पू./३३२)

न्या. दी./३/§८२/१२६/१ द्रव्याधिकनयाभित्रायेण सुवर्ण स्यादेकमेव, पर्यायाधिकनयाभित्रायेण स्यादनेकमेव... = द्रव्याधिक नयके अभित्रायसे सोना कथंचित एकस्त्र ही है, पर्यायाधिक नयके अभि-प्रायसे कथंचित अनेक स्वस्त्र ही है। (न्या. दी./३/§८६/१२८/११)

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

८. कालादिकी अपेक्षा वस्तुमें भेदाभेद

श्लो, वा. २/१/६/४४/४५२/१४ के पुनः कालादयः । कालः आत्मस्त्पं, अर्थः, संबन्धः, उपकारो, गुणिदेशः, संसर्गः शब्द इति। तत्र स्याज्जीवादि वस्तु अस्त्येव इत्यत्र यत्कालमस्तित्वं तत्कालाः शेषा-नन्तधर्मा वस्तुन्येकत्रेति, तेषां कालेनाभेदवृत्तिः । यदेव चास्तित्यस्य तद्दगुणरवमारमरूपं तदेवान्यानन्तगुणानामपीत्यात्मरूपेणःभेदवृत्तिः। य एव चाधारोऽर्थो द्रव्याख्योऽस्तित्वस्य स एवान्यपर्यायाणामित्यर्थे-नाभेदवृत्तिः । य एवाविष्वग्भावः कथं चित्तादारूयतक्षणः संबन्धोऽ-स्तित्वस्य स एवाशेषविशेषाणामिति संबन्धेनाभेदवृत्तिः। य एव चोपकारोऽस्तित्वेन स्वानुरक्तकरणं स एव शेषैरपि गुणैरित्युपकारेणा-भेदवृत्तिः। य एव च गुणिदेशोऽस्तिःवस्य स एवान्यगुणानामिति गुणिदेशेनाभेदवृत्तिः। य एव चैकवस्त्वात्मनास्तित्वस्य संसर्गः स एव शेषधर्माणामिति संसर्गेणाभेदवृत्तिः। य एवास्तीतिशब्दोऽ-स्तित्वधर्मात्मकस्य वस्तुनो वाचकः स एव शेषानन्तधर्मात्मकस्या-पीति शब्देनाभेदवृत्तिः। पर्वायार्थे गुणभावे द्रव्याधिकत्वप्राधान्या-द्पपश्चते ।

रलो. वा. २/१/६/५४/४५३/२७ द्रव्यार्थिकगुणभावेन पर्यायार्थिकप्राधा-न्येन तुन गुणानां कालादिभिरभेदवृत्तिः अष्टधा संभवति। प्रति• क्षणमन्यतोषपत्तेभिन्नकासत्यात् । सक्देकत्र नानागुणानामसंभवात् संभवे वा तदाश्रयस्य ताबद्वा भेदप्रसंगात् तेषाभात्मरूपस्य च भिनन-त्वात तदभेदे तद्दभेदविरोषात्। स्वाश्रयस्यार्थस्यापि नानात्वात् अन्यथा नानागुणाश्रयत्वविरोधात्। संबन्धस्य च संबन्धिभेदेन भेददर्शनात् नानासंबन्धिभिरेकत्रैकसंबन्धाघटनात्। ते क्रियमाण-स्योपकारस्य च प्रतिनियतरूपस्यानेकत्वात् । गुणिदेशस्य च प्रतिगुणं भेदाद् तदभेदे भिन्नार्थगुणानामपि गुणिदेशाभेदप्रसंगत् । संसर्गस्य च प्रतिसंसगेभेद।त् । तदभेदे संसर्गिभेदविरोधात् । शब्दस्य च प्रति-विषयं-नानात्वात् गुणानामेकशब्दवाच्यतायां सर्वार्थानामेकशब्द-बाच्यतापत्तेः शब्दान्तरवैफल्यात् । चवे कासादिक—कास, आत्म-रूप, अर्थ, सम्बन्ध, उपकार, गृणिदेश, संसर्ग और शब्द इस प्रकार आठ हैं। १. तहाँ जीवादिक वस्तु कथंचित् हैं ही। इस प्रकार इस पहले भंगमें ही जो अस्तित्वका काल है, वस्तुमें शेष बचे हुए अनन्त धर्मोंका भी वहीं काल है। इस प्रकार उन अस्तित्व, नास्तित्व आदि धर्मों की कालकी अपेक्षासे अभेद वृत्ति हो रही है। २ जो ही उस यस्तुके गुण हो जाना अस्तित्वका अपना स्वरूप है, वहीं उस वस्तुके गुण हो जानापना अन्य अनन्तगुणोंका भी आत्मीय रूप है। इस प्रकार आत्मीय स्वरूप करके अनन्तधर्मीकी परस्परमें अभेद वृत्ति है। ३. तथाजो ही आधार द्रवय नामक अर्थ 'अस्तित्व'का है वहीं द्रव्य अन्य पर्यायोंका भी आश्रय है. इस प्रकार एक आधाररूप अर्थ पनेसे सम्पूर्ण धर्मोंके आधेयपनेकी वृत्ति हो रही है। ४. एवं जो ही पृथक्-पृथक् नहीं किया जा सकना रूप कथंचित तादातम्य स्वरूप सम्बन्ध अस्तिरवका है वही अन्य धर्मोंका भी है। इस प्रकार धर्मोंका वस्तुके साथ अभेद वर्त्त रहा है।

१. और जो ही अपने अस्तित्वसे बस्तुको अपने अनुस्प रंग युक्त कर देना रूप उपकार अस्तित्व धर्म करके होता है, वे ही उपकार बचे हुए अन्य गुणों करके भी किया जाता है। इस प्रकार उपकार करके सम्पूर्ण धर्मों का परस्परमें अभेद वर्च रहा है। ई. तथा जो ही गुणों इब्यका देश अस्तित्व गुणने घर लिया है, वही गुणों का देश अन्य गुणों का भी निवास स्थान है। इस प्रकार गुणिदेश करके एक बस्तुके अनेक धर्मों को अभेदबृत्ति है। ७, जो ही एक वस्तु स्वरूप करके अस्तित्व धर्मका संसर्ग है, वही शेष धर्मों का भी संसर्ग है। इस रीतिसे संसर्ग करके अभेद बृत्ति हो रही है। ५, तथा जो ही अस्ति यह शब्द अस्तित्व धर्म स्वरूप वस्तुका वाचक है वही शब्द मचे हुए अनन्त अमन्त धर्मोंके साथ तादारम्य रखनेवाली वस्तुका भी वाचक है। इस प्रकार शब्दके द्वारा सम्पूर्ण धर्मोंको एक वस्तुम अभेद प्रवृत्ति हो रही है।

यह अभेद व्यवस्था पर्यायस्वरूप अर्थको गौण करनेपर और गुणोंके पिण्डरूप द्रवय पदार्थको प्रधान करनेपर प्रमाण द्वारा नन जातो है। १, किन्तु द्रव्याधिकके गौण करनेपर और पर्यायार्थिककी प्रधानता हो जानेपर तो गुणोंकी काल आदि करके आठ प्रकारकी अभेदवृत्ति नहीं सम्भवती है क्योंकि प्रत्येक क्षणमें गुण भिन्न-भिन्न रूपसे परिणत हो जाते हैं अतः भिन्न-भिन्न धर्मीका काल भिन्न-भिन्न है। अथवा एक समय एक वस्तुमें अनेक गुण नहीं पाये जा सकते हैं। यदि बलारकारसे अनेक गुणोंका सम्भव मानीगे तो उन गुणोंके आश्रय वस्तुका उतने प्रकारसे भेद हो जानेका प्रसंग होगा। अतः कालकी अपेक्षा अभेद वृत्ति न हुई। २. पर्यायदृष्टिसे उन गुणींका आत्मरूप भी भिन्न है अन्यथा उन गुणों के भेद होनेका विरोध है। ३. नाना धर्मीका अपना-अपना आश्रय अर्थभी नाना है अन्यथा एकको नाना गुणोंके आश्रयपनका विरोध हो जाता है। ४, एवं सम्बन्धियों के भेदसे सम्बन्धका भी भेद देखा जाता है। अनेक, सम्बन्धियों करके एक वस्तुमें एक सम्बन्ध होना नहीं घटता है। इन धर्मी करके किया गया उपकार भी बस्तुमें न्यारा-न्यारा नियत होकर अनेक स्वरूप है। ६, प्रत्येक गुणकी अपेक्षासे गुणीका देश भी भिन्न-भिन्न है। यदि गुणके भेदसे गुणवाले देशका भेद न माना जायेगा तो सर्वधाभिन्नदूसरे अर्थ के गुणोंका भी गुणी देश अभिन हो जायेगा। ७ संसर्ग तो प्रत्येक संसर्गवालेके भेदसे भिन्न ही माना जाता है। यदि अभेद माना जायेगा तो संसर्गियों के भेद होनेका विरोध है। ८. प्रत्येक विषयकी अपेक्षासे वाचक शब्द नाना होते हैं, यदि सम्पूर्ण गुणोंका एक शब्द द्वारा ही बाच्य माना जायेगा, तब सी सम्पूर्ण अर्थीको भी एक शब्द द्वारा निरूपण किया जानेका प्रसंग होगा। ऐसी दशाने भिन्न-भिन्न पदार्थीके लिए न्यारे-न्यारे शब्दोंका बोलना व्यर्थ पड़ेगा। (स्या. म./२३/२८४/१८); (स. भं. त./३३/६)

९. मोक्षमार्गकी अपेक्षा

पं. का./तं. प्र./१०६ मोक्षमार्गः सम्यक्त्वज्ञानयुक्तमेव नासम्यक्त्वज्ञानयुक्तं चारित्रमेव नाचारित्रं, रागद्वेषपरिहीणमेव न रागद्वेषपरिहीणम्, मोक्षस्येव न भावतो वन्धस्य, मार्ग एव नामार्गः, भव्यानामेव नाभ-व्यामां, लब्धबुद्धीनामेव नालब्धबुद्धीनां, क्षीणकषायत्वे भवत्येव न कषायसहितत्वे भवतीत्वष्टधा नियमोऽत्र द्रष्टव्यः। चमीक्षमार्ग सम्यक्तव और ज्ञानसे ही युक्त हैन कि असम्यक्तव औरअज्ञानसे युक्तः चारित्र ही है न कि अचारित्र, राग-द्वेष रहित हो ऐसा है—न कि राग-द्वेष सहित हो ऐसा, भावतः मोक्ष्वा ही न कि बन्धका, मार्ग ही—न कि अमार्ग, भव्योंको ही—न कि अभव्योंको, सब्धबुद्धियोंको ही न कि अलब्ध बुद्धियोंको, क्षीणकषायनेमें हो होता है—न कि कषाय सहित्यनेमें होता है इस प्रकार आठ प्रकारसे नियम यहाँ देखना।

६. अवक्तव्य भंग निर्देश

१. युगपत् अनेक अर्थं कहने की असमर्थता

रा. ना./४/४२/१६/२६८/१३ अथवा वस्तुनि मुख्यप्रवृत्त्या तुल्यबस्योः परस्पराभिधानप्रतिवन्धे सति इष्टविपरीतिनिर्णुणस्वापत्तेः विविक्षितो-भयगुणस्वेनाऽनिभधानात् अवक्तव्यः। = शब्दमें वस्सुके तुल्य बल वाले दो धर्मौका मुख्य रूपसे गुगपत् कथन करनेकी शक्यता न होनेसे या परस्पर शब्द प्रतिवन्ध होनेसे निर्णुणस्वका प्रसंग होनेसे तथा विवक्षित उभय धर्मौका प्रतिपादन न होनेसे वस्तु अवक्तव्य है। (श्लो. वा. २/१/६/६६/४८/१३)

पं. धः/उः/१६६ ततो वक्तुमशक्यत्वात् निर्विकरुपस्य वस्तुनः । तदुरुलेखं समालेख्यज्ञानद्वारा निरूप्यते । ३६६ । =िनिर्विकरुप वस्तुके कथनको अनिवचनीय होनेके कारण ज्ञानके द्वारा उन सामान्यात्मक पुणीका उरलेख करके उनः निरूपण किया जाता है।

२. वह सर्वथा अवक्तव्य नहीं

आप्त, मी./४६-५० अवक्तव्यचतुष्कोटिविकश्पोऽपि न कथ्यताम्। असर्वन्तिमवस्तु स्यादविद्येष्यविद्येषणम् । ४६ । अवस्रवनिभित्ताप्यं स्याद सर्वन्तैः परिवर्जितम्। वस्त्वेवावस्तुसां याति प्रक्रियाया विपर्ययात् । ४८ । सर्वान्तारचेदवक्तव्यास्तेषां कि बचनं पुनः । संवृतिश्चेन्मृषैवैषा परमाथ विपर्ययात् ।४१। अशावयस्वादवाच्यं किम-भावात्किमनोथतः। आद्यन्तोत्तिद्वयं न स्यात् कि व्याजेनोच्यता-रफुटम्। ५०। = 'चार प्रकारका विकथ्प अवक्तव्य है' ऐसा कहना युक्त नहीं, क्यों कि सर्वथा अवक्तव्य होनेसे विशेषण-विशेष्य भावका अभाव होगा । इस प्रकार सर्व वस्तुओंको अवस्तुपनेका प्रसंग आवेगा । ४६ । प्रश्न-यदि सर्व धर्मोंसे रहित वह अवस्तु अवक्तस्य है तो उसको आप अवस्तु भी कैसे कह सकते हैं 1 उत्तर - हमारे हाँ अवस्तु सर्वधा धर्मोंसे रहित नहीं है, बल्कि वस्तुके धर्मोंसे विपरीत धर्मोंका कथन करनेपर अवस्तु स्वीकार की जाती है। ४८। जिनके मतमें सर्व धर्म सर्वथा अवक्तत्रय हैं उनके हाँ तो स्त्रपक्ष साधन और पर पक्ष दूषणका वचन भी नहीं अनता है, तब उन्हें तो मौन ही रहना चाहिए। 'बचन तो व्यवहार प्रवृत्ति मात्रके लिए होता है,' ऐसा कहना भी युक्त नहीं है क्यों कि परमार्थसे विषरीत तथा उपचार मात्र कथन विपरीत होता है।४१। हम तुमसे पूछते हैं कि वस्तु इसलिए अवक्तव्य है कि तुममें उसके कहनेकी सामध्य नहीं है या इसलिए अवक्तव्य है कि उसका अभाव है, या इसलिए अवक्तव्य है कि तुम उसे जानते नहीं। तहाँ आदि और अन्त वाले दो पक्ष तो आप मौद्धोंके हाँ सम्भव नहीं है वर्योकि आप बुद्धको सर्वज्ञ मानते हैं। मध्यका पक्ष अर्थात् वस्तुका अभाव मानते हो तो छल पूर्वक घुमा-फिरा कर क्यों कहते हो स्पष्ट कहिए।

रा. वा./४/४२/१६/२६८/१७ स च अवक्तव्यशब्देन अन्येश्च षड्भिर्वचनैः
पर्यायान्तरिविवसया च वक्तव्यश्वात् स्यादवक्तव्यः। यदि सर्वथा
अवक्तव्यः स्यात् अववत्यय इत्यपि चावक्तव्यः स्यात् कृतो बन्धमोक्षादिप्रक्रियाप्ररूपणविधिः। चयह (वस्तु) अवक्तव्य शब्दके द्वारा
अन्य छह भंगोंके द्वारा' वक्तव्य होनेसे 'स्यात्' अवक्तव्य है सर्वथा
नहीं। यदि सर्वथा अवक्तव्य हो जाये तो 'अवक्तव्य शब्दके द्वारा भी
उसका कथन नहीं हो सकता। ऐसी दशामें बन्ध मोक्षादिकी प्रक्रियाका निरूपण निर्यक हो जायेगा। (रा. वा./१/१/१०/४५/२६)

श्लो, वा. २/१/६/६६ पृ./पं. सकलवा चकर हितत्वा दवक्तव्यं वस्तु युग-पत्सदसस्वाभ्यां प्रधानभावा पिताभ्यामालान्तं व्यवतिष्ठते, तस्व न सर्वधैवावक्तव्यमेवावक्तव्यश्वहेनास्य वक्तव्यत्वा दित्येके (४९०/२१) कथिनदानी "अवास्यैकान्तेऽप्युक्तिनीवास्यमिति युज्यते" हत्युक्तं घटते। सकुद्धमंद्वयाकान्त्रत्वेनेव सस्वाद्येकेकधर्मसमाकान्त्रत्वेनाप्य-वास्यत्वे वस्तुनो वास्यत्वाभावधर्मेणाक्तान्त्रस्यावस्यपदेनाभिधानं न युज्यते इति व्याख्यानात् (४८१/२६)। —एक ही समयमें प्रधान-पनसे विविश्वतं किये गये सत्त्व और असत्त्व धर्मों करके चारों ओरसे घरो हुई वस्तु व्यवस्थित हो रही है। वह सम्पूर्ण वाचक शब्दोंसे रहित है। अतः अवक्तव्य है और वह सभी प्रकारोंसे अवक्तव्य ही हो यह नहीं सम्भना, क्योंकि अवक्तव्य शब्द करके ही इसका वाचन हो रहा है। श्री समन्त्रमद्र स्वामीका कहना कैसे घटित होगा कि "अवास्यता ही यदि एकान्त माना जायेगा तो अवास्य इस प्रकारका कथन भी युक्त नहीं होता है" (आ. मी:/४५) एक समयमें हो रहे धर्मोंसे आकान्तपने करके जैसे वस्तु अवास्य है, उसी प्रकार सत्त्व, असत्त्व आदिमेंसे एक-एक धर्मसे आरूढपने करके भी वस्तुको यदि अवाच्य माना जायेगा तो वाच्यस्वाभाव नामके एक धर्म करके घिरी हुई वस्तुका अवाच्य पद करके कथन करना नहीं युक्त हो सकता है। (स्या. मं./२३/२-१/३); (स. भं. त./६६/१०)

सं. भं. ता./७३/३ एवमवक्तव्यमेव वस्तुतत्त्विमत्यवक्तव्यत्वैकाम्तोऽिष स्ववचनपराहतः, सदामौनवित्कोऽहमितिवत्। च्जो यह वहते हैं कि सर्वथा अवक्तव्य रूप ही वस्तु स्वरूप है, उनका कथन स्ववचन विरोध है जैसे – मैं सदा मौनवत धारण करता हूँ।

३. कालादिकी अपेक्षा वस्तु धर्म अवक्तव्य है

रा. वा./४/४२/१६/२६७/११ द्वाभ्यां प्रतियोगिभ्यां गुणाभ्यामवधारणा-क्ताम्यां युगपदेकस्मिन् काले ऐकेन दान्देन एकस्यार्थस्य कुरस्नस्यै-वाभेदरूपेणाभिधित्सा तदा अवाच्यः तद्विधार्थस्य वृत्तिः, न च तैर-भेदोऽत्र संभवति । के पुनस्ते कालादयः । काल आत्मरूपमर्थः संबन्धः जपकारो गुणिदेशः संसर्गः शब्द इति । तत्र येन कारणेन विरुद्धाः भवन्ति गुणास्तेषामेकस्मित् काले क्विचिकवस्तुनि वृत्तिर्न दृष्टा अतस्तयोनिस्ति बाचकशब्दः तथावृत्त्यभावात् । अत एकस्मिन्नात्मनि तदसत्त्वे प्रविभक्ते असंसर्गात्मारूपे अनेकान्तरूपे न स्तः। एककाले येनात्मा तथोच्येत ताभ्यां विविक्तंच परस्परत आत्मरूपं गुणानां नान्योन्यात्मनि वर्तते, यत जभाभ्यां युगपदभेदेनोच्येत । न च विरु-द्धरवात सदसत्त्वादीनाम् एकान्तपक्षे गुणानामेकद्रव्याधारा वृत्तिर्सित यतः अभिन्नाधारत्वेनाभेदो युगपद्भावः स्यात्, येन केनचित्र शब्देन का सदसत्त्व उच्छेयातास् । न च संबन्धतोऽभिन्नता गुणानां संभवति भिन्नत्वात् संबन्धस्य । यथा छत्रदेवदत्तसंबन्धोऽन्यः दण्डदेवदत्त-संगन्धात्। ...न च गुणा उपकारेणाभिन्नाः, यतो द्रव्यस्य गुणाधीन उपकारो नोलरक्तायुपरञ्जनम्, ते च स्वरूपतो मिलाः ! . . न चैकान्त-पक्षे गुणानां संमृष्टमनेकारमकं रूपमस्ति अवधृतैकान्तरूपरवात सत्त्वा-सत्त्वादेर्गुणस्य । यदा शवलरूपन्यतिरिक्तौः श्वनलकृष्णौ गुणौ असंसृष्टी नैकस्मिन्तर्थे सह वर्तितुं समर्थी अवधृतरूपत्वात, अतः ताम्यां संसगीभावात् एकान्तपक्षे न गुगपदभिधानमस्ति अर्थस्य तथा बर्त्तितु' शक्यभावात्...न चैकः शब्दो द्वयोगुंणयोः सहवाचकोऽ-स्ति। यदि स्यात् सच्छन्दः स्वार्थवदसदपि सत्कुर्यात् असच्छन्दो Sपि स्वार्थवत् सदपि असत्कुर्धात्, न च तथा लोके संप्रत्ययोऽस्ति तयोविशेषशब्दरवातः । एवमुक्तातः कालादियुगपद्भावासंभवातः । शब्दस्य च एकस्य उभयार्थवाचिनोऽनुपत्तब्धेः अवस्तव्य आत्मा । = जन दो प्रतियोगी गुणोंके द्वारा अवधारण स्वपसे युगपत् एक कालमें एक शब्दसे समस्त वस्तुके कहने को इच्छा होती है तो वस्तु अवक्तव्य हो जाती है क्योंकि वैसा शब्द और अर्थ नहीं है। गुणोंके युगपइभाव~ का अर्थ है कालादिकी दृष्टिसे अभेद वृत्ति । वे कालादि आठ हैं— काल. आत्मरूप, अर्थ, सम्बन्ध, उपकार, गुणिदेश, संसर्ग और शब्द। जिस कारण गुण परस्पर विरुद्ध हैं अतः उनकी एक कालमें किसी एक बस्तुमें वृत्ति नहीं हो सकती अतः सत्त्व और असत्त्वका बाचक एक शब्द नहीं है एक वस्तुमें सत्तव और असत्तव परस्पर भिनन (आतम्) रूपमें हैं उनका एक स्वरूप नहीं है जिससे वै एक शब्दके द्वारा ग्रुगपत् कहे जा सर्के। परस्पर विरोधी सत्त्व और असत्त्वकी एक अर्थमें वृत्ति भी नहीं हो सकती जिससे अभिन्न आधार मानकर अमेद और युगपद्भाव कहा जाये तथा किसी एक शब्दसे उनका प्रतिपादन हो सके। सम्बन्धने भी गुणों में अभिननदाकी सम्भावना नहीं है, क्यों कि सम्बन्ध भिन्न होता है। देवदत्त और दण्डका सम्बन्ध यज्ञदत्त और छत्रके सम्बन्धसे जुदा है ही ।…उपकार दृष्टिसे भी गुण अभिन्त नहीं हैं, क्यों कि द्रव्यमें अपना प्रत्यय या विशिष्ट ट्यवहार कराना रूप उपकार प्रत्येक गुणका जुदा-जुदा है। जब शुक्ल और कृष्ण वर्गपरस्पर भिन्त है तक उनका संसृष्ट रूप एक नहीं हुं।

सकता जिससे एक शब्द से कथन हो सके। कोई एक शब्द या पद दो गुणों को युगपइ नहीं हो सकता। यदि कहे तो 'सत्' शब्द सत्त्वकी तरह असत्त्वका भी कथन करेगा। तथा 'असत्' शब्द सत्का। पर ऐसो लोक प्रतीति नहीं है, क्यों कि प्रत्येकके बाचक शब्द जुदा-जुदा हैं। इस तरह कालादि दृष्टिसे युगपत भावकी सम्भावना नहीं है तथा उभय बाची कोई एक शब्द है नहीं अतः वस्तु अवक्तव्य है। श्लो, वा. २/१/६/१६/१८७०/६)

सं.भं.त./पृष्ठः,/पं. नतु कथमवक्तव्यो घटः, इति ब्रूमः। सर्वोऽपि शब्दः प्रधानतया न सत्त्वासत्त्वे युगपरप्रतिपादयति तथा प्रतिपादने शब्दस्य शन्त्यभानात्, सर्वस्य पदस्यैकपदार्थविष्ट्वसिद्धेः (६०।६) सर्वेषां नानार्थकपदोच्छेदापत्तिः इति चैन्न,... पदानामेकार्थ त्वनियमे साहश्योपचारादेव तस्यैकत्वेन व्यवहरणात् समिक्द्वनयापेक्षया राब्दभेदाइध्रुवोऽर्थभेदः ।...अन्यया वाच्यवाचकनियमव्यवहार-विलोपात् (६१/१) सेनावनयुद्धपङ्क्तिमात्तापालकग्रामनगरादिशब्दाः नामनेकार्थप्रतिपादकत्वं दृष्टमिति चेन्न । करितुरगरथपदातिसमृह-स्यैवैकस्य सेनाशब्देनाभिधानात (६४/१) बृशावितिपदं बृशद्वयः वृक्षरूपार्थस्य समानत्या चचैकत्त्रोपचारा सन्त्रैकश्रब्दप्रयोगोपपस्तिः । (६४/१) बृशपदेन वृशक्षपैकधम्बिच्छिन्तस्यैव बोधो नान्यधर्मा-वच्छिन्नस्य (६६/२) हन्द्रस्यापि क्रिमेणैवार्थद्वयप्रस्यायनसमर्थत्वेन गुणप्रधानभावस्य तत्रापि सत्त्वात् । ६८/३) । 🖚 प्रश्न- घट अवक्तव्य कैसे है । उत्तर – सर्व ही शब्द एक कालमें ही प्रधानतासे सत्त्व और असत्त्व दोनोंका युगपत प्रतिपादन नहीं कर सकते, क्योंकि इस प्रकारसे प्रतिपादन करनेकी शब्दमें शक्ति नहीं है क्योंकि सर्वही शब्दोंमें एक ही पदार्थको विषय करना सिद्ध है। प्रश्न-सर्व ही शब्दोंको एकार्थवाची माना जाये तो अनेकार्थवाची शब्दोंका अभाव हो जायेगा। उत्तर-नहीं, क्योंकि ऐसे शब्द वास्तवमें अनेक ही होते हैं परन्तु केवल साहश्यके उपचार से ही उनमें एकपनेका उपवहार होता है। समभिरूढ नयकी अपेक्षा शब्द भेद होनेपर अवश्य ही अर्थ का भेद हो जाता है अन्यथा वाच्य-वाचकपनेके नियमका व्यवहार नहीं हो सकता । प्रश्न-सेना, वन, युद्ध, पंक्ति, माला, तथा पालक इत्यादि शन्दोंकी अनेकायं वाचकता इष्ट है। उत्तर-नहीं, क्योंकि हस्ति, अरव, रथ व पयादोंके समृह रूप एक ही पदार्थ सेना शब्दसे कहा जाता है। प्रश्न-'वृक्षी' कहनेसे दो वृक्षीका तथा वृक्षाः कहनेसे बहुतसे वृक्षींका ज्ञान कैसे हो सकेगा ! उत्तर—नहीं, क्योंकि वहाँ भी अनेक शब्दोंके द्वारा ही अनेक वृक्षोंका अभिधान होता है। किसी एक शब्दसे अनेकार्थका बोध नहीं होता। व्याकरणके नियमानुसार रोष शब्दोंका **लीम कर**के केवल एक ही शब्द रोष रहता है। लुप्त शब्दोंकी अवशिष्ट शब्दके साथ समानता होनेसे उनमें एकत्वका उपचार मानकर एक ही शब्दका प्रयोग कर दिया जाता है। तथा बहुवचनान्त मृक्ष पदसे भी वृक्षत्व रूप एक ध्रमेसे अवच्छिन्न एक-एक वृक्षका ही भाव होता है, किसी, अन्य धर्मसे अवच्छिन्न पदार्थका नहीं । प्रश्न – बहुबचनान्त पद बहुरव और वृक्षस्य ऐसे अनेक धर्मीसे अवस्थितन वृक्षका ज्ञान होनेके कारण उपरोक्त भंग हो जाता है। उत्तर—यदापि आपका कहना ठीक है परन्तु यहाँ प्रथम वृक्ष शब्द एक वृक्षत्व रूप धर्मसे अवस्छिन्न अर्थ का ज्ञान कराता है और तत् पक्षास लिंग और संख्याका । इस प्रकार शब्द जन्य ज्ञान क्रमसे ही होता है। और इसलिए 'वृक्षाः' इत्यादि पदसे वृक्षत्व धर्मसे अंबच्छिन्न पदार्थ का बोध तो प्रधानतासे होता है, परन्तु लिंग तथा बहुस्व संख्याका गौणतासे । और इस प्रकार मुख्यता और गौणता द्वन्द्व समासमें भी विवक्षित है क्योंकि वह भी क्रमसे दो या अधिक पदार्थीको कोध करानेमें समर्थ है।

४. सर्वथा अवकत्य कहना मिथ्या है

स्व, स्तो./१०० ते तं स्वधातिनं दोषं शमीकर्तूमनीस्वराः । स्वइद्विषः

स्वहनो बालास्तस्वाववत्व्यतां श्रिताः। = वे एकान्तवादी जन उस स्वधाती दोषको दूर करनेके लिए असमर्थं हैं, आपसे द्वेष रखते हैं, आरम घाती हैं और उन्होंने तत्त्वकी अवक्तव्यताको आश्रित किया है। १००।

५. वक्तब्य व अवक्तव्यका समन्वय

३२६

स. भं. त./७०/७ अयं खलु तदर्धः सत्त्वाद्ये कैकधर्ममुखेन वाच्यमेव वस्तु युगपरप्रधानभूतसत्त्वासत्त्वोभयधर्माविच्छन्नरवेनावाच्यम्। = सत्त्वा-दिधमौमिसे किसी एक धर्मके द्वारा पदार्थ वाच्य है, वही सत्त्व, असत्त्व उभय धर्मसे अवाच्य है।

पं धा./उ./६१३-६१६ तदिभिज्ञानं हि यथा बक्तुमवाक्यात सम नयस्य यतः । अपि तुर्यो नयगभङ्स्तर्वावक्तव्यतां श्चितस्तरमात् । ६१३ । न पुनर्व-क्तुमशक्यं युगपद्धमृद्धयं प्रमाणस्य क्रमवर्ती । केवलिमिह नयः प्रमाणं न तद्धिदृष्ट यस्मात् ।६१४। यस्किल पुनः प्रमाणं वक्तुमलं वस्तुजातिमह् यावत् । सहसदनेकैकमथो नित्यानिश्यादिकं च युगपदिति ।६१४। चिस कारणते दो धर्मोको नय कहनेमें असमर्थ है, ति स कारण तत्त्व-की अवक्तव्यताको आश्चित करने वाला चौथा भी नय भग है ।६१३। किन्तु प्रमाणको एक साथ दो धर्मोका प्रतिपादन करना अश्वय नहीं है, क्योंकि यहाँ केवल नय कमवर्ती है किन्तु प्रमाण नहीं । और निश्चयसे प्रमाण सत्-असत्, एक-अनेक और नित्य-अनित्य वगैरह् सम्पूर्ण वस्तुके धर्मोको एक साथ कहनेके लिए समर्थ है ।६१४-६१६। पं. भ /सु /३१६ ततो वक्तुभशक्यत्वात निर्विकल्पस्य वस्तुनः । तहुल्लेखं समालेख्य ज्ञान द्वारा निरूप्यते ।३१६। च् इसलिए निर्विकल्पक वस्तुके कथनको अनिर्वचनीय होनेके कारण ज्ञानके द्वारा उन सामान्यास्मक पुणीका उल्लेख करके उनका निरूपण किया जाता है ।

समभंगी तरंगिनी—विमलदास (श्रावक) (ई.श. १४-१६) कृत संस्कृत भाषाका न्याय विषयक ग्रन्थ।

सप्त व्यसन--हे, व्यसन।

सप्त व्यसन चारित्र— पं. मनरंग लाल (ई.१८५० -१८६०) द्वारा रचित भाषा छन्द वद्ध कथा।

सप्तांक-असंख्यात गुणवृद्धिकी सप्तांक संज्ञा है।

—दे. श्रुतज्ञान ।II/२/३।

सप्रतिपक्षी — सत् सदा अपने प्रतिपक्षीकी अपेक्षा रखता है। — दे. अनेकान्ता ।४।

स्प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ—दे प्रकृतिनम्ध/२।

सप्रतिपक्षी हेत्याभास— जिस हेतुका प्रतिपक्षी साधन मौजूद हो।

समंतभद्र—शिवाले लों तथा शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर ती./शंपु, सं, सं, अधाप अतुकेव लियों के समकक्ष/१७६। प्रथम जैन संस्कृत कवि एवं स्तुतिकार, बादी, वारमी, गमक, ताकिक/१७२ तथा युग संस्थापक माना गया है। १७४। आप उरगपुर (त्रिचना- पक्ती) के नागवंशी चोल नरेश कोलिक वर्मन के किनण्ठ पुत्र शास्ति वर्मन होने क्षत्रिय कुलोरपन्न थे। १८३। अवणल वेगोल के शिलाले खनं. १४, राजाविलक थे, आराधना कथाकोष। १७६-१७०। तथा प्रभाचन्द्र कृत कथाकोष के अनुसार अपको भरमक व्याधि हो गई थी। धर्म तथा साहित्य को इनसे बहुत कुछ प्राप्त होने वाला है यह जानकर गुरु ने इन्हें समाधिमरण की आज्ञा न देकर लिंगछेद की आज्ञा दी। अतः आप पहले पुण्डू कर्द्धन नगर में बौद्ध भिश्चक हुए, फिर दशपुर नगर में परिवाजक हुए और अन्त में दक्षिण देशस्य काञ्ची नगर में शैव तापसी वनकर वहां के राजा शिवकोटि के शिवालय में रहते हुये शिव पर चढ़े नै वेदाका भोग करने लगे। पकड़े

जाने पर आपने स्वयम्भू स्तोत्र के पाठ द्वारा शिवलिंग में से चन्द्रप्रभु भगवान् की प्रतिमा प्रगट की जिससे प्रभाविस होकर शैवराज शिव-कोटि दीक्षा धारण कर उनके शिष्य हो गए। १७७।

आपकी रचनाओं में ११ प्रसिद्ध हैं—१. बृहत् स्वयम्भू स्तोत्र २. स्तुति विद्या (जिनक्षतक), ३- देवागम स्तोत्र (आप्त मीमांसा), ४. युक्त्यनुक्तासन, ५. तत्वानुकासन, ६. जीवसिद्धि, ७. प्रमाण पदार्थ, ८. कर्म प्राभृत टीका, ६. गन्धहस्तिमहाभाष्य, १०. रत्न-क्रण्डभावकाचार, ११. प्राकृतक्याकरण। १२. पट्खंडागम के आध्य पाँच खंडों पर एक टीका भी नताई जाती है. परम्तु अधिकतर विद्वान् इसे प्रमाणित नहीं मानते (क. पा./१/प. ६१/पं. महेन्ड), (भ. जा./प्र.४/प्रमी जी), (यु. जानु./प्र. ४४/पं. सुरम्तार साहन), (ध. १/प्र. ४०/H. L. Jain), (प. प्र./प. १२१/एपाध्येः), (स. सि./प्र.-१७/पं. महेन्द्र), (ह. पु./प. ६/पं. पञ्चालाल) इत्यादि।

भौद्ध तार्किक धर्मकीर्ति के समकालीन बताकर डा, सतीश्रवन्द विद्याभूषण इन्हें ई. ६०० में स्थापित करते हैं। १८१। रत्नक्रण्ड आवकाचार के रलोक है को सिद्धसेन गणी कृत न्यायावतार में से आगत बताकर रवेतान्वर विद्वान् पं. सुख लास जी इन्हें इसी समय में हुआ मानते हैं। प्रेमी जी तथा डा. हीरा लाल इन्हें ई. दा. ६ में किएपत करते हैं। १८२। परन्तु नागवंदी चोल नरेश की सिक्कर्मन के अनुसार ऐतिहासिक साध्यों के आधार पर डा, ज्योति प्रवाह इन्हें ई. १२०-१५ में और सुरन्तार साहम तथा डा. महेन्द्र कुमार ई. दा, २ में प्रतिष्ठित करते हैं। १८३। परन्तु ऐसा मानने पर अवण-बेलगोल के शिलालेख नं. ४० में इन्हें जो गृद्धपिच्छ (उमास्वामी) के प्रशिष्य और बलाक पिच्छ के शिष्य कहा गया है। १८०। बह घटित नहीं हो सकता। (ती,/२/पृष्ठ सं...) (दे, इतिहास/०/१)।

समंतानुपात क्रिया—रे. क्रिया/३/३।

सम — स. सा./आ /२ समयत एकश्वेन...। —समयत अर्थात् एकस्व रूपसे। (स. सा./आ./३)।

गौ, क./जो, प्र./४४७/७१३/४ सम एकीभावेन । —सम अर्थात् एकी-भावसे⊶।

दे. सामाधिक/१/२ वी संगत है अर्थात् घीके साथ एकीभूत है।

समिकित चौबीसी वत एक वर्ष पर्यन्त प्रस्पेक चतुर्दशीको उपवास करे। तथा 'ओं हीं वृषभादि चतुर्विशतिजिनाय नमः' इस मन्त्रका त्रिकाल जाय । कुल ४५ उपवास करे।

समकेंद्रिय—Concentric (घ./k/प्र. २८)।

समचतुरस्र संस्थान-- दे, संस्थान ।

समच्छिन्तक—Frustrum (ज./प्र./१०८) ।

समच्छेय---गणितकी भिन्न परिकर्माष्टक विधिमें अंशों और हरों-को यथायोग्य गुणा करके सब राशियों के हार समान करना। विशेष----वे, गणित/[1/९/१०।

समता----१. दे, सामायिक । २. समताके अपर नाम--दे. मोक्ष-मार्ग/२/४।

समतोया- भरतक्षेत्र आर्य लण्डकी एक नदी-दे. मनुष्याथ ।

समदत्ति--दे. दान/१।

समद्विताहु - Squaloidral (ज. पं./प्र. १०८)

समघारा---वे. गणिस/11/६/२।

समन्वय --- भिन्न-भिन्न विषयोंके अनेकों विकल्पोंका परस्पर सम-न्वय-दे, यह-वह विषय।

समभिरूढ नय—हे. नय/III/७।

समय --- ३. समय सामान्यके लक्षण

१. कालके अर्थमें

ति. प./४/२०६ परमाणुस्स णियद्विदगयणपवेसस्स दिक्कमणमेत्तो । जो कालो खिन्नभागी होदि पुढं समयणामा सो ।२०६१ — पुद्दगल परमाणु-का निकटमें स्थित आकाशं प्रदेशके अतिक्रमण प्रमाण जो अविभागी काल है वही समय नामसे प्रसिद्ध है। (ध.४/१,६१/३१०/२); (न. च. बृ./१४०); (गो. जी./मू. ब. जी. प्र./६७३); (पं. का./

ता. वृ./२६): (पं. का./ता. वृ./२५/५२/६)

रा. वा./३/३८/७/२०८/३४ सर्वजघन्यपरिणतस्य परमाणोः स्वावगाढाः-वकाशप्रदेशव्यतिक्रमकालः परमनिषिद्धो निर्विभागः समयः। —जघन्यगत्तिसे एक परमाणु सटे हुए द्वितीय परमाणु तक जितने काल में जाता है उसे समय कहते हैं।

दे. काल/१ काल समय और अद्धा ये एकार्थवाची हैं।

ध. १३/५.४,५६/२६=/१९ दोण्णं परमाणूणं तप्पाखोग्गवेगेण उड्ढमधो ख गच्छांताणं सरीरेहि अण्णोण्णफोसणकालो समको णाम । = तत्प्रायोग वेगसे एकके उपरकी और और दूसरैके नीचेकी ओर जानेवाले दो परमाणुकोंका उनके शरीर द्वारा स्पर्शन होनेमें लगनेवाला काल समये कहलाता है। (गो. जी./मू./५७३)।

गो. जो./पू./४,७३ अवरा पज्जायद्विदी खणमेसं होदि तं च समञ्जीति। =सम्पूर्ण ब्रव्योंकी जवन्य पर्याय स्थिति एक समयमात्र होती है,

इसीको समय भी कहते हैं।

२. आत्माके अर्थमें

स. सा./आ./२ जीवनाम पदार्थः स. समयः, समयत एक्स्वेन युगपजा-नाति गच्छति चेति निरुक्तेः। —जीव नामक पदार्थं समय है। जो एकस्व रूपसे एक ही समयमें जानता तथा परिणमता हुआ वह समय है।

स.सा./आः/३ समयश्रव्देनात्र सामान्येन सर्व एवार्थोऽभिधीयते। समयत एकीभावेन स्वगुणपर्यायात् गच्छतीति निरुक्तेः। = समय शब्दसे सामान्यतया सभी पदार्थ कहे जाते हैं, क्योंकि व्युत्पत्तिके अनुमार 'समयते' अर्थात् एकीभावसे अपने गुणपर्यायोंको प्राप्त होकर जो परिणमन करता है सो समय है। (स. सा./ता. वृ./१४१/२१४/१३)

स, सा./ता. वृ./१६१/११४/१३ सम्यगयः संशयादिरहितो बोधो झानं यस्य भवति स समयः अथवा समिरकेकत्वेन परमसमरसीभावेन स्वकीयशुद्धस्वरूपे अयनं गमनं परिणमनं समयः। —'सम्यगयः' अर्थात् संशय आदि रहित झान जिसका होता है ऐसा जीव समय है। अथवा एकीभावरूपसे परमसमरसी भाव स्वरूप अपने शुद्ध स्वरूपमें गमन करना, परिणमन करना सो समय है।

स.सा./पं. जयचन्द/२ 'समं उपसर्ग है, जिसका अर्थ 'एक साथ' है और
'अय गती' घातु है, जिसका अर्थ गमन और ज्ञान भी है, इसलिए
एक साथ हो जानना और परिणमन करना, यह दोनों क्रियाएँ जिससें
हों वह समय है। यह जीव नामक पदार्थ एक ही समयमें परिणमन
भी करता है और जानता भी है इसलिए वह समय है।

३. पदार्थसमूहके अर्थमें

पं, का श्रृ / ३ समवाओ पंचण्ह समय सि जिणुत्तमेहि पण्णत्तं । • • ।

— पाँच अस्तिकायका समभावपूर्वक निरूपण अथवा उनका समयाय
वह समय है ।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

- दे. समय/१/२ समय शन्दसे सामान्यतया सभी पदार्थ कहे जाते हैं। ४. सिद्धान्तके अर्थमें
- स्या, म. ३०/३२५/१२ सम्यक् एति गच्छति शब्दोऽर्थमनेन इति
 "पुनाम्नि घः" समयसंकेतः। यद्वा सम्यग् अविपरीत्येन ईपन्ते ज्ञायन्ते
 जीवाजीवादयोऽथवा अनेन इति समयः सिद्धान्तः। अथवा सम्यग्
 अयन्ते गच्छन्ति जीवादयः पदार्थाः स्वरूपे प्रतिष्ठां प्राप्नुवन्ति
 अस्मिन् इति समय आगमः । उत्पादवययधौव्यप्रपञ्चः समयः।
 जिससे शब्दका अर्थ ठीक-ठीक मास्त्रम हो सो समय है अर्थात्
 संकेत । यहाँ सम-इ धातुसे 'पुंन्नाम्नि यः' इस सूत्रसे समय शब्द बनता है । अथवा जिससे जीव, अजीव आदि पदार्थोका भले प्रकारसे
 ज्ञान हो ऐसा सिद्धान्त समय है । अथवा जिसमें जीव आदिक पदार्थोका ठीक-ठीक वर्णन हो ऐसा आगम समय है । अथवा उत्पाद व्यय और धौव्यके सिद्धान्तको समय कहते हैं ।

५. सामायिकके अर्थमें

दे. सामायिक/३/१/२ ज्ञानी पुरुष मुठी वा वस्त्र बाँधनेको, पलाठी मारने आदिको अथवा सामायिक करने योग्य-समयको जानते हैं।

२. शब्द अर्थ व ज्ञान समय

पं.का./त. प्र./३ तत्र च पञ्चानामस्तिकायानां समो मध्यस्थो रागद्वेषाभयनुपहतो वर्णपदवावयसंनिवेशविशिष्टः पाठो वादः शब्दसमयः
शब्दागम इति यावत्। तेषामेव मिध्यादर्शनोदयोच्छेदे सति
सम्यवायः परिच्छेदो ज्ञानसमयो ज्ञानागम इति यावत्। तेषामेवाभिधानप्रत्ययपरिच्छितानां वस्तुरूपेण समवायः संघातोऽर्थसमयः
सर्वपदार्थसार्थ इति यावत्। =सम् अर्थात् मध्यस्थ यानी जो रागद्वेषते विकृत नहीं हुआ, वाद अर्थात् वर्णपद और वावयके समृहवाला पाठ। पाँच अस्तिकायका 'समवाय' अर्थात् मध्यस्थ पाठ वह
शब्दसमय है अर्थात् शब्दागम वह शब्द समय है। मिध्यादर्शनके
छदयका नाश होनेपर, उस पंचास्तिकायका ही सम्यग् अवाय अर्थात्
सम्यग्जान वह ज्ञान समय है अर्थाद ज्ञानागम वह ज्ञान समय है।
कथनके निमित्तते ज्ञात हुए उस पंचास्तिकायका ही वस्तु रूपसे
समवाय अर्थात् समुह वह अर्थसमय है।

३. स्व व परसमय

- र. सा./मू./१४७ बहिरंतरप्पभेयं परसमयं भग्णए जिणिहेहि । परमप्पो सगसमयं तन्भेयं जाण गुणठाणे ।१४७। = जिनेन्द्र देवने बहिरातमा, अन्तरात्माको परसमय बतलाया है । तथा परमात्माको स्वसमय बतलाया है । इनके विशेष भेद गुणस्थानको अपेक्षा समझने चाहिए ।
- दे. मिथ्यादृष्टि/१/१ मिथ्यादृष्टि परसमय रत है।
- स. सा./मू./२ जीवो चिरत्तदंसणणाणिट्टिंड तं हि ससम्यं जाण।
 पुग्गलकम्मपदेसिट्टियं च तं जाण परसमयं।२। = हे भव्य. जो जीव
 दर्शन, ज्ञान. चारित्रमें स्थित हो रहा है वह निश्चयसे स्वसमय
 जानो और जीव पुद्गल कमें के प्रदेशों में स्थित है उसे परसमय जानो।
- प्र. सा./मू./१४ जे पज्जयेमु णिरदा जीवा परसमयिग ति णिहिर्ठा। आदसहाविम्म ठिदा ते सगसमया मुणेदञ्जा। = जो जीव पर्यायों में लीन हैं उन्हें परसमय कहा गया है (प्र. सा./मू./१३) जो आतम-स्वभावमें लोन हैं वे स्वसमय जानने।
- पं. का./मू./१६६ जीवो सहावणियदो अणियदगुणपज्जओवपरसम्ओ। जिंद कुणदि सगं समयं पन्भस्सदि कम्मवंधादो। रूजीव (द्रव्यं अपेक्षासे) स्वभाव नियत होनेपर भी, यदि अणियत गुणपर्याय-वाला हो तो पर समय है। यदि वह (नियत गुणपर्यायसे परिणत होकर) स्वसमयको करता है तो कर्मबन्ध करता है।

पं, का,/मृं, व ता, वृ./१६७ । उत्थानिका—सृक्ष्मपरसमयस्वरूपारन्यान-मेतत्। --अण्णाणदो णाणी जदि मण्णदि सुद्धसंपअोगादो । हवदि त्ति दुबखमोबखं परसमयरदो हबदि जीवो ।१६४। कश्चित्पुरुषो निर्विकारशुद्धारमभावनालक्षणे परमोपेक्षा संयमे स्थातुमीहतै तन्ना-शक्तः सन् कामकोधादशुद्धपरिणामवञ्चनार्थं संसारस्थितिछेदनार्थं वा यदा पञ्च परमेष्ठिषु गुणस्तवनभक्ति करोति तदा सूक्ष्म परसमय-परिणतः सन् सरामसम्यग्रष्टिर्भवतीति, यदि पुनः शुद्धारमभावना-समर्थेडिपि तां त्यक्त्वा शुभोपयोगादेव मोक्षो भवतीत्येकान्तेन मन्यते तदा स्थूलपरसम्यपरिणामेनाज्ञानी मिथ्यादष्टिर्भवति । ततः स्थितं अज्ञानेन जीवो नश्यतीति। च्यह सृक्ष्म पर-समयके स्वरूपका कथम है। शुद्धसंप्रयोगसे दुख मोक्ष होता है ऐसा यदि अज्ञानके कारण ज्ञानी माने तो वह परसमयरत जीव है। १६६। कोई पुरुष निर्विकार शुद्धात्म भावना है लक्षण जिसका ऐसे परमो-पेक्षा संयममे स्थित होनेकी इच्छा करता है परन्तु अशक्त होता हुआ, जब काम-क्रोधादि अशुद्ध परिणामोंसे बचनेके लिए तथा संसार स्थितिके विनाशके लिए पंचपरमेष्ठीके गुणस्तवन आदि रूप भक्ति करता है, तब सूक्ष्म परसमयसे परिणत होता हुआ सराग सम्यग्दृष्टि होता है। और यदि शुद्धातम भावनामें समर्थ होनेपर भी उसको छोड़ कर, शुभोपयोगसे ही मोक्ष होता है ऐसा मानता है, तब वह स्थूल परसमय रूप परिणामसे अज्ञानी व मिथ्यादृष्टि होता है। अतः सिद्ध हुआ कि अज्ञान से जीव का/नाश होता है।

\star परसमय निर्देश

समयप्रबद्ध-१. समयप्रबद्ध सामान्य

- ध. १२/४,२,१४,२/४७८/७ समये प्रवध्यत इति समयप्रवद्धः । ⇒एक समयमें जो वाँघा जाता है वह समय-प्रवद्ध है।
- गो, जी,/जी. प्र./२४४/६०६/४ समये समयेन वा प्रबध्यतेस्म कर्म-नोकर्मक्ष्यतया आत्मना संबध्यते स्म यः पुद्गालस्कन्धः स समय-प्रबद्धः । = जो समय-समयमें कर्म-नोकर्म रूप पुद्गाल स्कन्धोंका आत्मसे सम्बन्ध किया जाता है वह समय प्रबद्ध है ।

२. समयप्रबद्ध विशेष

कर्म-नोकर्म समयप्रवद

- गो. जी./जी. प्र /२४५/४०६/४ सिद्धानन्तैकभागाभव्यराश्यनन्तप्रमिता-नन्तवर्गणाभिनियमेनैकसमयप्रवद्धोभवति ।
- गो, जी./जी. प्र./२५६/६६०/९१ सर्वतः स्तोकः औदारिकसमयप्रवद्धः ।

 ...ततः श्रेण्यसंख्येयभागगुणितपरमाणुपमितो वैक्रियिकशरीरसमयप्रवद्धः । ततः संख्येयभागगुणितपरमाणुपमितः आहारकशरीरसमयप्रवद्धः । ततः संख्येयभागगुणितपरमाणुपमितः आहारकशरीरसमयप्रवद्धः । ...अये तै जसशरीरसमयप्रवद्धोऽनन्तगुणपरमाणुप्रमितः । = १, सिद्धोंके अनन्तवे भाग तथा अभव्योंसे अनन्तगुणे ऐसे
 मध्य अनन्तानन्त प्रमाण वर्गणाओंसे नियमसे एक समयप्रवद्धहोता
 है । २, औदारिक शरीरका समयप्रवद्ध सबसे कम है । इससे श्रेणीके
 असंख्यातवें भाग गुणित परमाणु प्रमाण समयप्रवद्ध वैक्रियक
 शरीरका है । और उससे भी श्रेणीके असंख्यातवें भागसे गुणित
 परमाणु प्रमाण समय-प्रवद्ध आहारक शरीरका है । इससे आगे तै जस
 व कार्मण शरीरका समयप्रवद्ध क्रमशः अनन्तगुणा अनन्तगुणा है ।

२. नवक समयप्रवद्ध

गो. क./भाषा./११४/६७३/१ जिनका बन्ध भये थोड़ा काल भया. संक्रमणादि बरने योग्य जे निषेक न भये ऐसे नूतन समयप्रबद्धके निषेक तिनिका नाम नवकसमय प्रबद्ध है। समयभूषण--आ. इन्द्रनन्दि (ई. श. १०-११) की रचना। समय सत्य--हे, सत्य/१।

समयसार-- १. समयसार सामान्यका रूक्षण

न. च. वृ./३५५ सामण्णं परिणामी जीवसहावं च परमसन्भावं । जभेयं गुन्भं परमं तहेव तच्चं समयसारं ।३५६। क्यामान्य, परिणामी, जीवस्वभाव, परमस्वभाव, ध्येय, गुह्य, परम तथा तत्त्व ये सब समय-सारके अपर नाम हैं ।३५६।

२. कारण-कार्य समयसार निर्देश

- न, च. वृ./३६०-३६२ कारणक उजसहावं समयं काऊण होइ उम्मायव्वं।
 कडणं सुद्धसस्त्वं कारणभूदं तु साहणं तस्स ।३६०। सुद्धो कम्मख्यादो
 कारणसम्आे हु जीव सब्भावो। खय पुणु सहावफाणे तह्या तं कारणं
 भेयं।३६१। किरियातीदो सत्थो अणंतणाणाइसं जुतो अप्पा। तह मजमत्थो सुद्धो कज्जसहाबो हवे सम्अो।३६२। =कारण व कार्य समयसारको जानकर ध्यान करना चाहिए। कार्य समयसार शुद्धस्वरूप है तथा कारण, समयसार उसका साधन है।३६०। शुद्ध तथा कर्मोंके क्षयसे कार्य समयसार होता है। कारणसमयसार जीवका स्वभाव है, स्वभावके ध्यान करनीसे कर्मोंका क्षय होता है। इसलिए कारणसमयसारका ध्यान करना चाहिए।३६१। क्रियातीत, प्रशस्त, अनन्त ज्ञानादिसे संयुक्त मध्यस्य तथा शुद्ध आत्मा, कार्य-समयसार है। वही स्वभाव तथा समय है।
- प्र. सा./ता. वृ./६५/१२४/१६ शुद्धारमरूपपरिच्छित्ति निश्वनानुभूति-रूपकारणसमयसारपर्यायस्य विनाशे सति शुद्धारमोपलम्भव्यक्ति-रूपकार्यसमयसारस्योरपादः। —शुद्धारमा रूप परिच्छित्ति, उस ही को निश्चन अनुभूति रूप जो कार्य समयसार पर्याय, उसका विनाश होनेपर, शुद्धारमोपलव्धिकी व्यक्तिरूप कार्यसमयसारका उरपाद है।
- द्र. सं./टी./२२/६४/६ केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपेण कार्यसमयसारस्योत्पादो निर्विकक्पसमाधिरूपकारणसमयसारस्य विनाशः । - केवलज्ञानादि-को प्रगटता रूप कार्यसमयसारका उत्पाद होता है उसी समय निर्वि-कन्प ध्यान रूप जो कारणसमयसार है उसका विनाश होता है।
- द्ध, सं./टी./३७/१६४/१ निश्चयरत्तत्रयात्मककारणसमयसारस्योः । आत्मनः परिणामः चतुष्टयकर्मणो यः क्षयहेतुरिति । च्यितस्यय रत्तत्रयस्य कारणसमयसारस्य आत्म परिणामः चारधातिया-कर्मीके नाशका कारण है ।

३. कारण-कार्यं समयसारके उदाहरण

न. च. वृ./१६८ च् लिका—सकलसमयसारार्थं परिगृह्य पराश्रितोपादेय-वाच्यवाचकरूपं पञ्चपदाश्रितं श्रुतं कारणसमयसारः। भावनमस्कार-रूपं कार्यसमयसारः। तदाधारेण चतुर्विधधमं ध्यानं कारणसमयसारः। तदनन्तरं प्रथमशुक्तध्यानं द्विचरवारिशभेदरूपं पराश्रितं कार्य-समयसारः। तदाश्रितभेदर्शानं कारणसमयसारः। तदाधारीभूतं परान्मुखाकारस्वसंवेदनभेदरूपं कार्यसमयसारः। न्दिक-वेशसमर्थो भावश्रुतं कार्यसमयसारः। ततः स्वाश्रितोपादेयभेदरस्तत्रयं कारणसमयसारः। तेषामेकरवावस्था कार्यसमयसारः...ततः स्वाश्रित-धर्मध्यानं कारणसमयसारः। ततः प्रथमशुक्तध्यानं कार्यसमयसारः। ततो द्वितीयशुक्तध्यानाभिधानकं श्लीणकषायस्य द्विचरमसमयपर्यन्तं कार्यपरम्परा कारणसमयसारः। एवमप्रमन्तादि श्लीणकषायपर्यतं समयं समयं प्रति कारणकार्यरूपं ज्ञातव्यम्। =आगमके आधारपर सकल समयसारके अर्थको प्रष्टणं करके, पराश्रितरूपसे उपादेयभूत तथा वाच्यवाचकं रूपसे भेदको प्राप्त पंचपरमेष्ठीके वाचक शब्दोंके आश्रित जो शुराज्ञान होता है वह कारणसमयसार है और भाव नमस्कार कार्य-समयसारं है। उसके आधारसे होनेत्राला चार प्रकारका धर्मध्यान कारणसमयसार है, तथा तदनन्तर उत्पन्न होनेवाला वयालीस भेद-रूप (बयालीस व्यंजनोंमें संक्रान्ति करनेवाला), पराश्रित प्रथम युक्तध्यान कार्यसमयसार है। उसके आश्रय से होनेवालाभेदज्ञानकारण समयसार है। उसके आश्रय में होने वाला परोन्मुखाकार स्वसंवेदन रूप भेदज्ञान कार्यं समयसार है।स्वाश्रितह्वरूपका निरूपक,निराकार तथा भावास्मक, सुम्यक् द्रव्यशुत कारणसमयसार है, तथा उससे उत्पन्न एकदेशसमर्थ भावश्रुत कार्यसमयसार है। उसके आगे स्वाश्रित-रूपसे उपादेय भेदरत्नत्रय कारणसमयसार है और उस रश्नत्रयमें एकारमक अवस्था कार्यसमयसार है। उसके आगे स्वाधित धर्मध्यान कारणसमयसार है और उससे होनेवाला भावात्मक प्रथम शुक्लध्यान कार्यसमय है। उसके आगे द्वितीय शुक्तध्यान संज्ञाको प्राप्त जो क्षीणकषाय गुणस्थानका द्विचरम समय, तहाँ पर्यंत कार्य-परम्परागत कारणसमयसार है। इस प्रकार अप्रमत्त गुणस्थानको खादि लेकर क्षीण कवाय गुणस्थान पर्यन्त समय समय प्रति कारणकार्य रूप जानना चाहिए। (अर्थात् पूर्वपूर्वके भावकारण समयसार है और उत्तर उत्तरके भाव कार्यसमयसार।)

समयसार आ. कुन्दकुन्द (ई. १२७-१७६) कृत महात् आध्यात्मिक कृति । इसमें ४१६ प्राकृत गाथाएँ निबद्ध हैं। इस पर निम्न टीकाएँ उपलब्ध हैं—१. आ. अमृतचन्द्र (ई. ६०६-६१६) कृत आत्म-ख्याति । २. आ. जयसेन (ई.इ.१२-१३) कृत तात्पर्यवृत्ति । ३. आ प्रभाषन्द नं. ६ (ई. ६६०-१०२०) कृत । ४. पं. जयचन्द्र छात्रड़ा (ई. १८०७) कृत भाषा वचनिका । (ती. /२/११३) ।

समयसार नाटक पं. बनारसीदास (ई. १६३६) की अद्वितीय आध्यात्मिक रचना है। इसमें ११ अधिकार और ६१६ पद हैं। यह प्रन्थ समयसारकी आत्मरूथाति टीकाके कलकांके आधारपर लिखा गया है। इसपर पं. सदासुखदास (ई.१७६५-१८६७) ने एक टीका भी लिखी है। (ती./४/१६२)।

समवदान—हे, कर्म/१।

समवसरण अर्हत भगवान्के उपदेश देनेकी सभाका नाम समयसरण है, जहाँ कैठ कर तिर्यंच मनुष्य व देव पुरुष व खियाँ सब उनकी अमृतवणीसे कर्ण नृप्त करते हैं। इसकी रचना विशेष प्रकारसे देव लोग करते हैं। इसकी प्रथम सात भूमियों में बड़ी आकर्षक रचनाएँ, नाट्यशालाएँ, पुष्प वाटिकाएँ, वापियाँ, चैरय वृक्ष आदि होते हैं। मिथ्यादृष्टि अभव्यजन अधिकतर इसीके देखनेमें उत्तभ जाते हैं। अत्यन्त भावुक व श्रद्धालु व्यक्ति ही अष्टमभूमिमें प्रवेशकर साक्षात् भगवान्के दर्शनोंसे तथा उनकी अमृतवाणीसे नेत्र, कान व जीवन सफल करते हैं।

३. समवसरण का रुक्षण

म. प्./१३/७३ समेत्यावसरावेक्षास्तिष्ठन्त्यस्मिन् मुरामुराः । इति तज्ज्ञै॰ निरुवतं तत्सरणं समवादिवम् ।७३। ऋइसमें समस्त मुर और अमुर आकर दिव्यध्वनिके अवसरकी प्रतीक्षा करते हुए बैठते हैं, इसलिए जानकार गणधरादि देवोंने इसका समवसरण ऐसा सार्थक नाम कहा है ।७३।

२. समवसरणमें अन्य केवली आदिके उपदेश देनेका स्थान

ह. पु./४७/=६-८६ ततः स्तम्भसहसस्थो मण्डपोऽस्ति महोदयः । नाम्ना मूर्तिमतिर्यत्र वर्त ते शुतदेवता ।=६। तां कृत्वा दक्षिणे भागे धीरैर्वहु- श्रुतं वृ तः । श्रुतं व्याक् हते यत्र श्रायसं श्रुतकेवती । प्या तदर्धमानाश्वरवारस्तरपरीवारमण्डपाः । आक्षेपण्यादयो येषु कथ्यन्ते कथकेः
कथा । प्या तत्रकीणं कवासेषु चित्रेष्वाचसते स्फुटम् । ऋष्यः स्वष्टमिथ्म्यः केवसादिमहर्ख्यः । प्रशः — [भवनभूमि नामकी सप्तम
भूमिमें स्तूपोंसे आणे एक पताका लगी हुई है] उसके आणे १०००
खम्भोपर खड़ा हुआ महोदय नामका मण्डप है, जिसमें मूर्तिमती
श्रुतदेवता विद्यमान रहती है । प्रशः श्रुतदेवताको दाहिने भागमें
करके बहुश्रुतके धारक अनेक धीर वीर मुनियोंसे घिरे श्रुतकेवली
कल्याणकारी श्रुतका व्याख्यान करते हैं । ८७। महोदय मण्डपसे आधे
विस्तारवाले चार परिवार मण्डप और हैं, जिनमें कथा कहनेवाले
पुरुष आहोपिणी आदि कथाएँ कहते रहते हैं । प्रशः हन मण्डपोंके
समीपमें नाना प्रकारके फुटकर स्थान भी बने रहते हैं, जिनमें बैठकर
केवलज्ञान आदि महास्रुद्धियोंके घारक ऋषि इच्छुकजनोंके लिए
उनकी इष्ट वस्तुओंका निरूपण करते हैं। प्रशः (हरिषेण कृत कथाकोष । कथा नं. ६०/श्लो. ११४-१६०)

३. मिथ्यादष्टि अभन्य जन श्रीमण्डपके भीतर नहीं जाते

ति, प./४/६३२ मिच्छाइडिअभव्वा तेसुमसण्णी ण होति कइआई। तह - य अणज्मवसाया संदिद्धा विविह्नविवरीदा।६३२। = इन (मारह) कोठोंमें मिथ्यादृष्टि, अभव्य और असंज्ञो जीव कदापि नहीं होते तथा अनध्यवसायसे युक्त, सन्देहसे संयुक्त और विविध प्रकारकी विपरीतताओं से सहत जीव भी नहीं होते हैं।६३२।

ह. पु./१०/१०४ भव्यक्टारुयया स्तूपा भास्वत्क्टास्ततोऽपरे। यानभव्या न पश्यन्ति प्रभावान्धोकृतेक्षणाः ।१०४। = [सप्तभूमिमें अनेक स्तूप हैं। उनमें सर्वार्थ सिद्धि नामके अनेको स्तूप हैं।] उनके आगे देदी-प्यमान शिखरोंसे युक्त भव्यक्ट नामके स्तूप रहते हैं, जिन्हें अभव्य जीव नहीं देख पाते। क्यों कि उसके प्रभावसे उनके नेत्र अन्धे हो जाते हैं।१०४।

४. समनसरणका माहात्म्य

ति. प./४/६२६-६३३ जिगवंदणापग्रहा पल्लासंखेडजभागपरिमाणा।
चेट्ठंति विविह्जीवा एक्केक्के समनसरणेसुं १६२६। कोट्ठाणं खेतावो
जीवक्षेतं फलं असंखगुणं। होट्रण अपुट्ठ ति हु जिणमाहप्पेण
गच्छंति १६३०। संखेजजजोयणाणि नालप्पहुदी पवेसणिरगमणे।
अंतोमुहुत्तकाले जिणमाहप्पेण गच्छंति १६३१। आतंकरोगमरणुप्पत्तीओ वेरकामन्नधाओ । तण्हा छहपोडाओ जिणमाहप्पेण ण हवंति
१६३३। = एक-एक समवसरणमें पक्यके असंख्यातवें भागप्रमाण
विविध प्रकारके जीव जिनदेवकी वन्दनामें प्रवृत्त होते हुए स्थित
रहते हैं १६२६। कोठोंके क्षेत्रसे यद्यपि जीवोंका क्षेत्रफल असंख्यातगुणा
है, तथापि वे सन जीव जिनदेवके माहारम्यसे एक दूसरेसे अस्पृष्ट रहते
हैं १६३०। जिनभगवात्के माहारम्यसे बालकप्रभृति जीव प्रवेश करने
अथवा निकलनेमें अन्तर्मृह्तं कालके भीतर संख्यातयोजन चले जाते
हैं १६३१। इसके अतिरिक्त वहाँपर जिनभगवात्के माहारम्यसे आतंक,
रोग, मरण, उत्पत्ति, बैर, कामबाधा तथा तृष्णा (पिपासा) और
धुधाकी पीड़ाएँ नहीं होती हैं १६३३।

५. समवसरण देव कृत होता है

ति. प /४/७१० ताहे सक्काणाए जिलाण समलाण समवसरणाणि । विविकरियाए धणदो बिरएदि विचित्त रूबेहि ।७१०। = सौधम इन्द्र-की आज्ञासे कुबेर विकियाके द्वारा सम्पूर्ण तीर्थं करोंके समवनगणको विचित्र रूपसे रचता है ।७१०।

६. समवसरणका स्वरूप

ति. प./४/गा. का भावार्थ - १. समवसरणके स्वरूपमें ३१ अधिकार हैं - ' सामान्य भूमि, सोपान, विन्यास, वीथी, धूसिशास, (प्रथमकोट) चैत्यशसाद भूमियौँ, नृत्यशाला, मानस्तम्भ, बेदी, खातिकाभूमि, वेदी, बताभूमि, साल (द्वि. कोट), उपवनभूमि, नृरयशाला, वेदी, ध्वजभूमि, साल (तृतीय-कोट), करपभूमि, नृत्यशासा, बेदी, भवन-भूमि, स्तूप, साल (चतु, कोट), श्रीमण्डप, ऋषि आदि गण, वेदी, पीठ, ब्रि.-पीठ, तृतीय पीठ, और गन्धकुटी १७१२-७१६। २. समब-सरणकी सामान्य भूमि गोल होती है। ७१६। 😘 उसकी प्रत्येक दिशामें आकाशमें स्थित कीस-कोस हजार सोवान (संदियाँ) है १७२०। ४. इसमें चार कोट, पाँच वेदियाँ, इनके की चमें आठ भू नियाँ, और सर्वत्र अन्तर भागमें तीन-तीन पीठ होते हैं। यह उसका विन्यास (कोटों आदिका सामान्य निर्देश) (दे, चित्र सं. १ पृष्ठ ३३३) ६. प्रत्येक दिशामें सोपानींसे लेकर अष्टम भूमिके भीतर गन्धकुटोकी प्रथम पीठ तक, एक-एक बीधी (सड़क) होती है। ७२४। वीधियों के दोनों बाजुओं में वीधियों जिसनी ही लम्बी दो बेदियाँ होती हैं ।७२८। आठों भूमियोके मुलमें बहुतसे तोरणद्वार होते हैं 1७३१। ६, सर्वप्रथम धूलिशाल नामक प्रथम कोट है। ७३३। इसकी चारी दिशाओं में चार तोरण द्वार हैं। (७३४)। (दे.चित्र सं.२ पृष्ठ ३३३) प्रत्येक गोपुर (द्वार)के बाहर संगल द्रव्य नवनिधि व धूप घट आदि युक्त पुत्तियाँ। स्थित हैं 1938। प्रत्येक द्वारके मध्य दोनों बाजुओं में एक-एक नाट्यशाला है १७४३। (वे. चित्र सं ३ पृष्ठ ३३३) ज्योतिषदेव इन द्वारोंकी रक्षा करते हैं। ७४४। ७. धूलिसाल कोटके भीतर चैंत्य प्रासाद भूमियाँ हैं (विशेष दे. नृक्ष) ।७६१। जहाँ पाँच-पाँच प्रासादीं-के अन्तरालसे एक एक चैत्यालय स्थित हैं।७६२। इस भूमिके भीतर पूर्वोक्त चार वीथियोंके पार्श्वभागों में नाट्यशासार हैं।७५ई। जिनमें ३२ रंगभूमियाँ हैं। प्रत्येक रंगभूमिने ३२ भवनवासी कन्याएँ नृत्य करती हैं ।७६८-७६६। ८, प्रथम (चैत्यप्रासाद) भूमिके बहुमध्य भागमें चारों वीधियोंके कीचोशीच गोल मानस्तम्भ भूमि हैं।७६१। (विद्योष दे मानस्तम्भ । चित्र सं. ४ पृष्ठ ३३३) ६, इस प्रथम चेत्यप्रासादभूमिसे आगे, प्रथम बेदी है, जिसका सम्पूर्ण कथन धूं सिशासकोट वर्ष जानना ।७१२-७१३। १०. इस बेदीसे आगे स्वातिका भूमि है ।७१४। जिसमें जलसे पूर्ण खातिक। एँ हैं। ७१६। ११. इससे आगे पूर्व बेदिका सहश ही द्वितीय वेदिका है। ८१२। १२, इसके आगे सताभूमि है, जी अनेकों ऋीड़ा पर्वतों व वापिकाओं आदिसे शोभित हैं। ५००-५०१। १३, इसके आगे दूसरा कोट है, जिसका वर्णन धूलिसालवत् है, परन्तु यह यक्षदेवींसे रिक्षत है।८०२। १४, इसके आगे उपवन नामकी चौभी भूमि है। ५०३। जो अनेक प्रकारके बनों, वार्षिकाओं व चैरव वृक्षोंसे को भित्त है। ५८४-५०६। १६. सब बनोंके आश्रित सब बीथियों के दोनों पार्श्वभागों में दो दो (कुल १६) नाट्यशासाएँ होती हैं। आदि वाली आठमें भवनवासी देवकन्याएँ और अध्ये की आठमें करपवासी वेवकन्याएँ नृत्य करती हैं। ११५- ११६। १६, इसके पूर्वसदृश ही तीसरी वेदी है जो यक्षदेवोंसे रिह्मस है। ८१७। १७. इसके आगे ध्वज-भूमि है, जिसकी प्रत्येक दिशामें सिंह, गज आदि इस चिक्रोंसे चिक्कित ध्वजाएँ हैं। प्रत्येक चिह्न-वाली ध्वजाएँ १०६ हैं। और प्रश्येक ध्वजा अन्य १०६ क्षुद्रध्वजाओं-से युक्त है। कुल ध्वजाएँ च(१०×१०८×४)+(१०×१०८×१०८× । १८. इसके अभे तृतीय कोट है जिसका समस्त वर्णन धूलिसाल कोटके सहश है। १२०। ११. इसके आगे छठी कल्पभूमि है। ५२८। जो दस प्रकारके करपबृक्षींसे तथा अनेकी वापिकाओं, प्रासादों, सिद्धार्थ बृक्षों (चैरयबृक्षों) से होभित है ।=२६-

५३३। २०. करपभूमिके दोनों पार्श्वभागों में प्रत्येक वीथीके आशित चार-चार (कुल १६) नाट्यशालाएँ हैं । यह यहाँ ज्योतिष कम्याएँ नृत्य करती हैं। ५३६। २१. इसके आगे चौथी वेदी है. जो भवनवासी देवों द्वारा रक्षित है 1980। २२, इसके आगे भवनभू मियाँ हैं, जिनमें ध्वजा-पताकायुक्त अनेकों भवन हैं। ८४१। २३. इस भवनभूमिके पार्श्वभागोंमें प्रत्येक बीथीके मध्यमें जिनप्रतिमाओं युक्त नौं-नौ स्तुप (कुल ७२ स्तुप) हैं ।८४४। २४. इसके आगे चतुर्ध कोट है जो कल्पवासी देवों द्वारा रक्षित है १८४८-८४६: २६. इसके आगे अन्तिम श्रीमण्डप भूमि है।८६२। इसमें कुल १६ दीवारें व उनके बीच १२ कोठे हैं। ६५३। २६ पूर्व-दिशाको आदि करके इन १२ कोठोंमें क्रमसे गणधर आदि मुनि-जन; करपवासी देवियाँ, आर्थिकाएँ व आविकाएँ, ज्योतिषी देवियाँ, व्यन्तर देवियाँ, भवनवासी देवियाँ, भवनवासीदेव, व्यन्तरदेव, ज्योतिषीदेव, कल्पवासीदेव, मनुष्य व तिर्यंच बैठते हैं।८४७-८६३। २७ इसके अगे पंचम वेदी है, जिसका वर्णक चौथे कोटके सहश है। ५६४। २८, इसके आगे प्रथम पीठ है, जिस-पर बारह कोठों व चारों वीथियोंके सन्मुख सीलह-सीलह सीढ़ियाँ हैं। ६६५-६६। इस पीठपर चारों दिशाओं में सर्पर धर्म पक रखे चार यक्षेन्द्र स्थित हैं। ५७०। पूर्वोक्त बारहके बारह गण इस पीठ-पर चढ़कर प्रदक्षिणा देते हैं। ५७३। २६, प्रथम पीठके ऊपर द्वितीय पीठ होता है। ५७६। जिसके चारों दिशाओं में सोपान हैं १८७६। इस पीठपर सिंह, बैल आदि चिक्कींवाली ध्वजाएँ हैं व अष्टमंगल द्रव्य, नवनिधि, धूपघट आदि शोभित हैं। ५८०-५५१। ३० द्वितीय

> प्रमाण - ति. प./४/गाथा सं.। नोट - तीर्थं करोंकी ॐ चाईके लिए। दे, तीर्थं कर/५/३/२.१६। संकेत-यो = योजन; को. = कोश; ध. = धनुष; खं. = अंगुल।

पीठके ऊपर तीसरी पीठ है। १८४। जिसके चारों दिशाओं में आठ-खाठ सोपान हैं। १८६। ३१, तोसरी पीठके ऊपर एक गन्धकुटी है, जो अनेक ध्वजाओं से शोभित है। १८४७-१८६। गन्धकुटीके मध्यमें पादपीठ सहित सिंहासन है। १८६१। जिसपर भगवान चार अंगुलके अन्तरालसे आकाशमें स्थित है। १८६५। (ह, पु./७/१-१६१);(ध-/६/४, १,४४/१०६-११३);(म. पु./२२/७७-३१२)।(चित्र सं. ४, पृष्ठ २३४)

- ★ मानस्तम्भका स्वरूप व विस्तार—दे. मानस्तम्भ ।
- * चैत्य बृक्षका स्वरूप व विस्तार—दे, वृहा । (चित्र सं. ६), पृष्ठ ३३४)

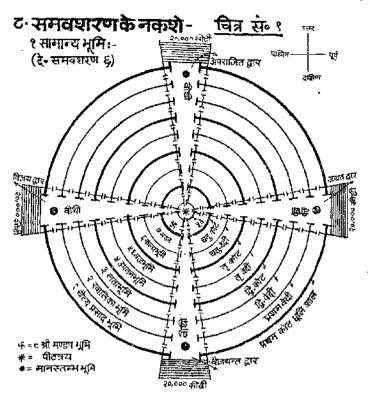
७. समवसरणका विस्तार

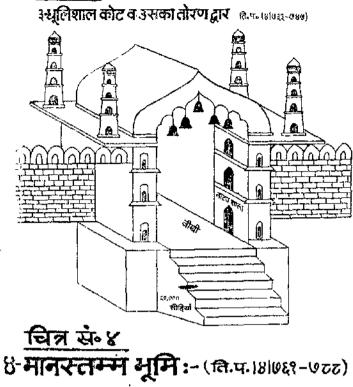
ति, प./४/७१० अवसिष्पणिए एदं भणिदं उस्सिष्पणीए विवरीदं।
बारस जोयणमेत्ता सा सयलविदेहकत्ताणं ।७१०। =यह जो सामान्य
भूमिका प्रमाण वतलाया है (दे. आगे सारणी) वह अवसर्पणीकालका है। उत्सिपणी कालमें इससे विपरीत है। विदेह क्षेत्रके
सम्पूर्ण तीथँ करोंके समवसरणकी भूमि बारह योजन प्रमाण ही
रहती है।७१०। [अवसर्पणी कालमें जिस प्रकार प्रथम तीर्थसे
अन्तिम तीर्थ तक भूमि आदिके विस्तार उत्तरोत्तर कम होते गये
हैं उसी प्रकार उत्सिप्णीकालमें वे उत्तरोत्तर बढ़ते होंगे। विदेह
क्षेत्रके सभी समवसरणोंमें ये विस्तार प्रथम तीर्थं करके समान
जानने।

नाम	गाथा सं.	लम्बाई चौड़ाई या	प्रथम ऋषभदेवके समबसरणमें	२२ वें नेमिनाथ तक क्रमिक हानि	२३ वें पारवनाथके समबसरणमें	२४वें वर्धमानके समवसरणमें
सामान्य भूमि	८१६	विस्तार (वियोष दे, सीर्थंकर/	१२ यो. k/३/४-३२)	२को,	६/४ यो.	१ यो•
सोपान	७२१	लम् षा ई	२४×२४ यो,	२४ यो.	इट को.	इंद्र को.
	७२२	चौड़ाई य ऊँचाई	१ हाथ	×	१ हाथ	१ हाथ
बीथी	৩৭৪	चौड़ाई	_→	सोपानवस्	←	
	७२६	जम् नाई	इड्ड को.	२३ २४ को.	१९५ इट को.	हेर इंट को.
बीथीके दोनों बाजुओं में देही	७२६	ऊँचाई	१००० घ.	રહુરુ	६२५ ट ध.	^{9 र प्र} भ्
प्रथम कोट	७४६	ऊँचाई	स्व स्व तीथ	करसे चौगुनी	•	
,	৩४८	मूलमें विस्तार	विश्व को	वर्षेष्ठको,	इटेट को	ुउद्को,
त्रेरण व गोपुर द्वार	૭૪૭	ॐ चाई	कोटसे तोर	(ण और उससे गो	पुर अधिक-अधिक	ह ऊँचे हैं।
चैत्य व प्रासाद	६५७	জ ঁ चाई	स्व-स्वतीर्थंव	-		
चैत्यप्रासाद भूमि	७५४	विस्तार	रेडह यो.	इंडइ यो.	इंटर यो.	इट्ट यो.
नाट्यकाला	७५७	ऊँ चा ई		करसे १२ गुनी		
प्रथम वेदी	836	ऊँचाई व विस्तार	प्रथम	फोटबत्		
खातिका भूमि	७१७	विस्तार	→ प्रथम चैस्यप्र		←	
द्वि. वेदी	330	विस्तार		ाटसे दूना←-	←-	
	,,	ऊँचाई		कोटवत् ←	←	
बताभू मि	८०१	विस्तार	->वै त्यप्रासाद		~ ~ `	
द्वि, कोट	८०२	ऊँचाई	प्रथम व			
		विस्तार	प्रथम को	ाटसे दूना		

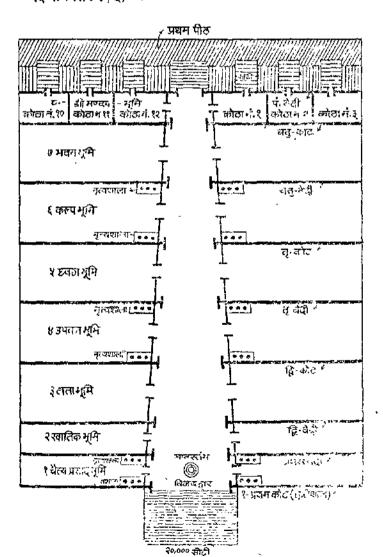
	गाथा (सम्बाई	प्रथम ऋषभदेवके देशका	२३ वें क पार्श्वनाथके	२४ वें
नाम	₹.	चौड़ाई या ऊँचाई	समवसरणमें नेमिनाध त क्रमिक हार्गि	क पश्चन(थक ने समवसरणमें	वर्ध मानके समवसरणमें
उपवन भूमि	८१४	विस्तार '	चैत्यप्रासाद भूमिसे दूना		
उपवनभूमिके भवन	८१३	ऊँचाई	स्व स्व तीर्थं करसे १२ गुनी		
तृतीय वैदी	८१७	विस्तार व ऊँचाई	द्वितीय वेदीवत्	•	!
ध्वज भूमि	८२६	विस्तार	सताभूमिवत्		
ध्यजस्तम्भ	८२१	জঁ चाई	स्व स्व तीर्थं करसे १२ गुना		ļ
	८२२	विस्तार	3 vi. 99 vi.	ુ ધુષ ્	<u>४४</u> अं.
तृतीय कोट	८२७	विस्तार व ऊँचाई	द्वितीय कोटवत		
करूप भूमि	८२८	विस्ता र	ध्वज भूमिवत्		
चतुर्थ वेदी	480	विस्तार व ऊँचाई	प्रथम वेदीवन		
भवन भूमि		विस्तार	(करुपभूमियत् १)		
भवनभूमिकी भवन पंक्तियाँ	८ ४३	विस्तार	प्रथम वेदीसे ११ गुणा		
स्त्रूप	८४६	ऊँ चाई	चैत्य कृक्षवत् अर्थात्		! !
, 32/ , 24	'		स्व-स्व तीर्थं करसे १२ गुणा		
			(ते. वृक्ष)	}	i [
चतुर्थ कोट	1,,	f	इटेंट को. इटेंट को.	६२ ६ इर्घः	१ <u>३५</u> ध.
चतुय काट	८४०	विस्तार ~===	स्व स्व तीर्थं करसे १२ गुणी	3 4 4.	8 4.
शीमण्डपके को ठे	८५३	ऊँचाई	1	sv .	9240
	८६४	विस्तार	व्हेर्यको व्हेर को.	रेटेंट को,	१२४० ध.
पंचम वेदी	८६४	विस्तार	चतुर्थ कोट सदृश		l
प्रथम पीठ	८६५	ऊँचाई	मानस्तम्भके पीठवत्		
			्रेड घ. डिघ. (दे. मानस्तम्भ)	इं ध	२ इ. ध,
	૮૬૭	विस्तार	व्यको. पृश्को,	र्ड को.	9 इ.को,
	८७१	मेखला	टि ध. दे थ.	<u> १२५</u> ध.	१ <u>३४</u> ध.
द्वि, पीठ	১৯৯	उँच ाई	४घ. है भ	हें घ.	<u> ३</u> इ ध.
	ं ८८२	विस्तार	व्ह को दहकी.	व्यू व्यूको.	पुर इटको.
	८७७	मेखला	प्रथम पीठवत्	1	
तृतीय पीठ	468	ऊँ च ाई	द्वितीय पौठवत		
E	LLX	विस्तार	प्रथम पीठसे चौथाई		
गन्धकृटी	668	विस्तार	६०० घ. २५ घ.	१२६ घ.	५० ध.
• •	1 1	ऊँ चाई	१०० घ.	3 9 4 H	७१ घ.
सिंह(सन	८१४ ८१४	ॐचाई ॐचाई	स्व स्व तीर्थं करके योग्य	₹ ¥.	ુર થ,

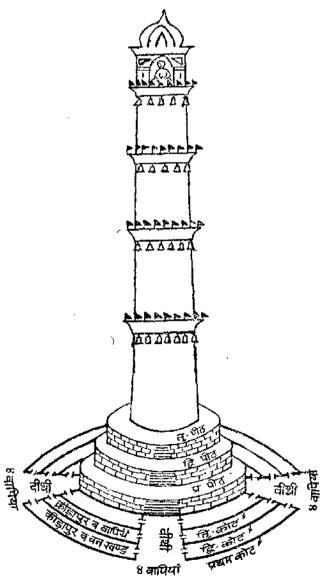
वित्र सं-३



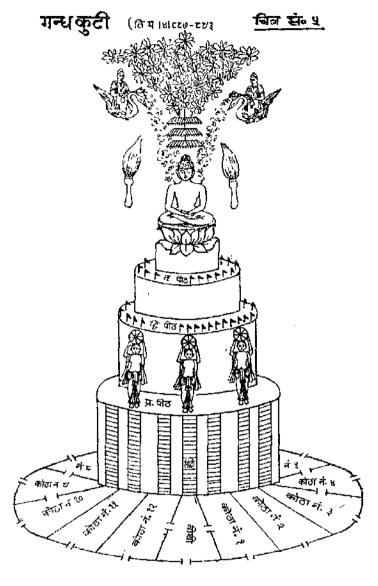


२-रंक दिशात्मक सामान्य भूमि <u>चित्र सं०२</u> (दे-समवशरण | ६)

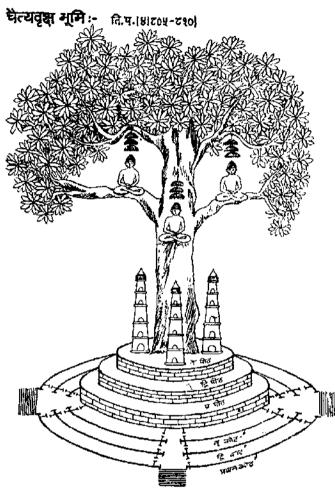




जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश



वित्र सं ६



समवसरण श्रेत — एक वर्ष पर्यन्त प्रत्येक चतुर्दशीको एक उपवास करे । इस प्रकार २४ उपवास करे । तथा "ओं हों जगदापद्विनाशाय सकतगुणकरण्डाय श्री सर्वज्ञाय अर्हत्परमेष्ठिने नमः" इस मन्त्रका त्रिकाल जाप करे । (ब्रत विधान सं./ ५)

समवाय-१. समवाय सम्बन्धका लक्षण

- पं. का,/मू,/६० समवत्ती समवाओ अपुधव्यू हो य अजुदसिद्धो य । तम्हा दव्यपुणाणं अजुदा सिद्धि त्ति णिहिट्टा । समवतीं पन वह समयाय है । वही अपृथक्षना और अयुत्तसिद्धपना है इसलिए द्रव्य और पुणोंकी अयुक्तसिद्धि कही है । (रा. वा./१/१०/२२/५१/३१)
- ध. १/१,१,१/१८/१ समबाय-दर्व्य णाम जं दर्व्याम्म समबेदं । ... समबाय-णिमित्तं णाम गल-गंडो काणो कुंडो इच्चेवमाइ। = जो द्रव्यमें समवेत हो अर्थात कर्याचित तादारम्य सम्बन्ध रखता हो उसे सम-बाय द्रव्य कहते हैं। ... गलगण्ड, काना, कुंबड़ा इत्यादि समबाय निमित्तक नाम हैं।
- ध. १६/२४/२ को समवाओ । एगत्तेण अजुबसिद्धाणं मेलणं । अयुत-सिद्ध पदार्थोंका एक रूपसे मिलनेका नाम समवाय है ।
- स्या. म./७/४१/२६ अयुत्तसिद्धानामाधार्याघोरभूतानामिह प्रत्ययहेतुः संबन्धः समवायः। = अयुत्तसिद्धं (एक दूसरेके विना न रहनेवाले)

आधार्य (पट) और आधार (तंतु) पदार्थीका इह प्रत्यय हेतु (इन तन्तुओं में पट है) संबंध (वैशेषिक मान्य) समवाय सम्बन्ध है।

* द्रव्यगुण पर्यायके समवाय सम्बन्धका निषेध— —दे. द्रव्य/४।

२. समवाय पदार्थके अस्तित्व सम्बन्धी तर्क-वितर्क

रा. वा./१/११३-१६/६/६ स्थान्मतम्—समवायो नामायुतसिद्धलक्षणः संबन्ध इहेदं बुद्धधिधानप्रवृत्तिहेतुः तेनैकत्वमिव नीतानां व्यथदेशो भवितानः नास्ति तरपरिकिष्पतः समवायः। कुतः। वृत्त्यन्तराभावात्। यथा गुणादोनां पदार्थानां द्रव्ये समवायसंबन्धाद्ववृत्तिरिष्टा तथा समवायः पदार्थान्तरं भूत्वा केन संबन्धेन द्रव्यादिषु वरस्यति समवायान्तराभावात्। एक एव हि समवायः। न च संयोगेन वृत्तिः युतसिद्धभावात् युतसिद्धानामप्राप्तिपूर्विका प्राप्तिसंयोगः। न चान्यः संबन्धसंयोगसमद्यायवित्तक्षणोऽस्ति येन समवायस्य द्रव्यादिषु वृत्तिः स्थात्। अतः समवायिभिरनभिसंबन्धात् नास्ति। ...द्रव्यादिषु वृत्तिः स्थात्। अतः समवायिभिरनभिसंबन्धात् नास्ति। ...द्रव्यादिषु वृत्तिः स्थात्। अतः समवायिभिरनभिसंबन्धात् नास्ति। ...द्रव्यादिषु समवायस्तु प्राप्तिनं अतस्तिषां यया कयाचित् प्राप्त्या भवितव्यम्, समवायस्तु प्राप्तिनं प्राप्तिमान्त्, अतः प्राप्त्यन्तराभावेऽपि स्वत एव प्राप्नोतीतिः; तच्च नः कस्मात्। व्यभिचारात्। यथा संयोगः प्राप्तिरि सन् प्राप्त्यन्तरेण समवाये वर्तते तथा समवायस्यापि

स्यादिति । ...यथा प्रदीपः प्रदीपान्तरमनपेक्षमाण आत्मानं प्रकाश-यति घटादौरच, तथा समवायः संबन्धान्तरापेशामन्तरेणात्मनश्च द्रव्यादिषु वृत्तिहेतुर्द्रव्यादोनां च परस्परत इति; तन्न; कुतः । तत्परि-णामादनन्यत्वसिद्धेः ।...यथा प्रदीपः स्वलक्षणप्रसिद्धो घटादिभ्योऽ-न्यो नैवं समनायः स्वत्नक्षणप्रसिद्धः द्रव्यादन्योऽस्ति । = प्रश्न-वेंशेषिक समवाय नामका पृथक् पढ़ार्थ मानते हैं, इससे अपृथक् सिद्ध पदार्थीमें 'इह इदम्' यह प्रत्यय होता है और इसीसे गुण-गुणीमें अभेदकी तरह भान होने लगता है ! उत्तर-समवाय नामका पृथक् पदार्थ भी सिद्ध नहीं होता। क्योंकि-१. जिस प्रकार गुणगुणीमें समवाय सम्बन्धसे वृत्ति मानी जाती है उसी तरह समवायकी गुण और गुणीमें किस सम्बन्धसे वृत्ति होगो ! समवायान्तरसे तो नहीं, क्योंकि समवाय पदार्थ एक ही स्वीकार किया गया है। संयोगसे भी नहीं, क्योंकि दो पृथक् सिद्ध द्रव्योंमें हो संयोग होता है। ... यदि कहा जाय कि -- चूँ कि समवाय 'सम्बन्ध' है अतः उसे स्वसम्बन निधयों में रहनेके लिए अन्य सम्बन्धकी आवश्यकता नहीं है सो भी ठीक नहीं है, क्यों कि संयोगसे व्यभिचार द्रषण आता है। संयोग भी सम्बन्ध है पर उसे स्वसम्बन्धियों में समबायसे रहना पडता है। २. जिस प्रकार दीपक स्व-षरप्रकाशी दोनों है उसी प्रकार समवाय भी अन्य सम्बन्धकी अपेक्षा किये जिना स्वतः ही द्रव्यादिकी परस्पर इत्ति करा देगा तथा स्वयं भी उनमें रह जायेगा, यह तर्क उचित नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेसे समवायको दवयादिकी पर्याय ही माननी पड़ेगी ।...दीपकका दृष्टान्त भी उचित नहीं है क्योंकि जैसे दीपक घटादि प्रकारय पदार्थींसे भिन्न अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखता है उसी तरह समबायकी द्रव्यादिसे भिन्न अपनी स्वतन्त्रसत्ता नहीं है। क, पा. १/१.१/§३२-३३/४७/१ विसयीक्यसमनायपमाणाभावादो । ण

समवाय

पञ्चक्खं; अमुत्ते णिरवयवे अह्ववे इंदियसण्णिकरिसाभावादो ।--- ण च 'इहेदं' पश्चयलेडमसम्बाओ; तहाविहपच्चओवलंभाभावादो, आहाराहेयभावेण द्विदक्ंडर्यदरेमु चेव तदुवलंभादो । 'इह कवालेमु घडो इह तंत्रस पडो' ति पचओं वि उप्पज्जमाणो दोसइ ति चे; ण; घडावत्थाए खटपराणं पडावत्थाए तंतूणं च अणुवलंभादोणाणु-माणम्बि तग्गाह्यं; तदविणाभाविलिंगाणुवलंभादो म्म्ल च अस्था-वित्तिगमो समवाओ अणुमाणपुधभूदत्थावन्तीए अभावादो । ण चागम-गन्भो; वादि-पहिवादीपसिद्धे गागमाभावादो । = ३, सम्बायको विषय करनेवाला प्रमाण नहीं पाया जाता है। प्रत्यक्ष प्रमाण तो समयाय-की विषय कर नहीं सकता है, क्योंकि समवाय स्वयं अमूर्त है, निरवयव है और द्रवय रूप नहीं है, इसलिए उसमें इन्द्रिय सञ्चिक्ष नहीं हो सकता है।...'इहेदम्' प्रत्ययसे समत्रायका प्रहण ही जाता है, सो भी कहना ठीक नहीं है, वयों कि इस प्रकारका प्रत्यय नहीं पाया जाता है, यदि पाया भी जाता है तो आधार-आधेय भावसे स्थित कुण्ड और बेरोंमें ही 'इस कुण्डमें ये बेर हैं' इस प्रकारका 'इहेदम्' प्रत्यय पाया जाता है, अन्यत्र नहीं । प्रश्न--'इन कपालोंमें घट है, इन तन्तुओं में पट हैं इस प्रकार भी 'इहेदम्' प्रत्यय उत्पन्न होता हुआ देखा जाता है ! उत्तर-नहीं; क्यों कि घट रूप खबस्थामें कपालोंकी और पटरूप अवस्थामें तन्तुओंकी उपलब्धि नहीं होती। (प्र. सा./त.प्र /१८)...यदि कहा जाय कि अनुमान प्रमाण समवाय-का प्राहक है, सो भी बात नहीं है, क्यों कि समवायका अविनाभावी कोई लिंग वहीं पाया जाता है। ..यदि कहा जाय कि अर्थापत्ति प्रमाणसे समवायका ज्ञान हो जाता है, सो भी कहना ठीक नहीं है, नयों कि अर्थापति अनुमान प्रमाणसे पृथक्भूत कोई स्वतन्त्र प्रमाण नहीं है। "यदि कहा जाय कि आगम प्रमाणसे समवायका ज्ञान होता है, सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि जिसे बादी और प्रति-बादी दोनों मानते हों, ऐसा कोई आगम भी नहीं है।

क, पा, १/१,२०/§३२४/३६४/४ तत्र नित्ये क्रम-यौगपद्याभ्यामर्थ क्रियावि-रोधात् । न स क्षणिकोऽपि; तत्र भावाभावाभ्यामर्थ क्रियाविरोद्यात् । नान्यत् आगच्छति, तरपरित्यक्ताशेषकार्याणसस्वप्रसङ्गतः। नापरिस्यज्य आगच्छति, निरवयवस्यापरित्यक्तपूर्वं कार्यस्यागमनविरोधात्।
न समवायः सावयनः, अनिस्यतापत्तः। न सोऽनित्यः, अनवस्थाभावाम्यां तदनुत्पत्तिप्रसङ्गात्। न नित्यः सर्वगतो वा, निष्क्रियस्य
व्याप्राशेषदेशस्यागमनविरोधात्। नासर्वगतः, समवायबहुत्वप्रसङ्गत्।
नान्येनानीयतेअनवस्थापत्तः न कार्योत्पत्तिप्रदेशेष्ठागस्ति; संबन्धिभ्यां
विना संबन्धस्य सत्त्वविरोधात् न चत्रोत्पत्ततिनरयवस्योत्पत्तिविरोध्

क. पा. १/९.१/९ ३३/४८/८ ण च अण्णत्थ संतो आगच्छदि; किरियाए विरिष्टियस्स आगमणाणुववसीदो । ण च समवाओ किरियावंतो; अणिच्चद्रव्यसप्पसंगादो ।

= ४. ! यदि कहो कि वह नित्य है सो वह नित्य भी नहीं है.क्यों कि नित्य माननेसे } उसमें क्रमसे अथवा एक साथ अथं क्रियाके मानने में विरोध आता है। १. उसी प्रकार समवाय क्षणिक भी नहीं है. क्यों कि क्षणिक पदार्थ में भाव और अभाव रूपसे अर्थ किया के मानने में विरोध आता है। ६. अन्य क्रियाको छोड़कर उत्पन्न होनेवाले पदार्थमें समवाय आता है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, नयों कि ऐसा माननेपर समवायके द्वारा छोड़े गये समस्त कार्योंको असत्त्वका प्रसंग प्राप्त होता है। ७ अन्य पदार्थकी नहीं छोडकर समवाय आता है ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, न्योंकि जो निरवयन है और जिसने पहलेके कार्यको नहीं छोड़ा है ऐसे समवाय का आगमन नहीं बन सकता है। द. समवायको सावयव मानना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेपर उसे अनिस्यपनेकी प्राप्ति होती है। १. यदि कहा जाय कि समवाय अनित्य होता हैं तो हो जाओं सो भी कहनाठीक नहीं है, क्यों कि समवाय-वादियों के मतमें उत्पत्तिका अर्थ स्व कारणसत्ता समवाय माना है। अतः समवायको भो उत्पत्ति दूसरे समवायकी अपेक्षासे होगी, और ऐसा माननेपर अनवस्था दोषका प्रसंग प्राप्त होता है।...१०, उसकी उत्पत्ति, स्वतः अर्थात समवायान्तर निर्पेक्ष मानी जायेगी तो समवायका अभाव हो जानेसे उसकी उत्पत्ति नहीं बन सकती है। ११. समवायको नित्य और सर्वगत कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि जो क्रिया रहित है और जो समस्त देशमें व्याप्त है उसका आगमन माननेमें विरोध आता है। १२. यदि असर्वगत माना जाय सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेपर समवायको बहुरवका प्रसंग प्राप्त होता है। समवाय अन्यके द्वारा कार्य देशमें लाया जाता हैं, ऐसा कहना भी ठीक नहीं हैं, क्यों कि ऐसा माननेपर अनवस्था दोषकी आपत्ति श्रप्त होती है। (क.पा. १/१,१/§३३/४६/१)... १३. कार्यके उत्पत्ति देशमें समवाय पहतेसे रहता है; ऐसा कहना भी ठीक नहीं है. अयों कि सम्बन्धियों के बिना सम्बन्धका सत्त्व माननेमें विरोध आता है। (क. पा. १/१,१/६३३/४८/७) १४. कार्यके उरपत्ति देशमें समवाय उत्पन्न होता है ऐसा कहना भी ठीक नहीं है. क्यों कि समवाय अवयव रहित है अर्थात् नित्य है इसलिए उसकी उत्पत्ति माननेमें निरोध आता है। १६ यदि कहा जाय कि समनाय कार्योपत्तिके पहले अन्यत्र रहता है और कार्योत्पत्ति कालमें वहाँ आ जाता है, सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि समवाय स्वयं क्रिया रहित है ! . . . क्रियाबान् माननेपर उसे अनित्य द्रव्यत्वका प्रसंग प्राप्त होता है।

समवाय' द्रव्य---हे, द्रव्य/१।

समवाधि-१. समवाय व असमवायका रुक्षण

वैशेषिक द./भाषा./१०/२/३०६/७ द्रव्य हीमें गुण और कर्म समनाय सम्बन्धसे रह सकते हैं...द्रव्यमें ही समवायि कारण होता है।

वैशेषिक/भाषा./१०/२/३/३०६ जो कारण और कार्यके सम्बन्धको एक हीमें मिला दे वह असमवाधी कारण है।

समवायिनी क्रिया-दे. क्रिया/३।

समवृत्तस्तूप—Circular Pyramid. (ज. प./प्र. १०८)

समवृत्ति — पं. का./त, प्र./५० द्रव्यपुणानामेकास्तित्व निर्वृ चित्वाद-नादिरनिधना सहवृत्तिहि समवित्वम् । — द्रव्य और गुण एक अस्तित्वसे रचित हैं, इसलिए उनकी जो अनादि-अनंत सहवृत्ति (एक साथ रहना) वह वास्तवमें समवर्तीपना है।

पं. का ता वृ./६०/११/६ समवृत्तिः सहवृत्तिगु णगुणिनोः कथं चिदे-कस्वेनादितादारम्यसंबन्ध इत्यर्थः । —समवृत्तिका अर्थ सहवृत्ति है, अर्थात् गुण-गुणीका एकत्व रूपसे अनादि तादारम्य सम्बन्ध समवृत्ति है।

समान्तर श्रेणि—Arithematical Progression

(ज. प./प्र. १०**८**)

समान्तरानोक—Parallelepiped (ज. प./प्र. १०८) समान्तरो गुणोत्तर श्रेणि—Arithematico-geometrical Progression (ज. प./प्र. १०८)

समाचार- १. समाचार सामान्यका लक्षण

- मू, आ./१२३ समदा समाचारो सम्माचारो समो व आचारो। सन्वेसि हि समाणं समाचारो दु आचारो।१२३। = समता भाव समाचार है, अथवा सम्यक् अर्थात् अतिचार रहित जो मूलगुणोंका आचरण, अथवा समस्त मुनियोंका समान अहिंसादि रूप जो आचरण, अथवा सर्व क्षेत्रोंमें हानिवृद्धि रहित कायोरसर्गादिकर सहश परिणामरूप आचरण वह समाचार है।
- न. च. वृ./३३८ लोगिपसद्घारहिओ चरणविह्णो तहेन अनवादी। विवरोओ खलु तच्चे बज्जेब्बाते समायारे। = जो अमण लौकिक हैं, अद्धाविहोन हैं, चारित्र रहित हैं, अपबादशील हैं और तत्त्वमें विपरोत हैं उनके साथ समाचार (संसर्ग) नहीं करना चाहिए। समान आचारवाले साधुके साथ हो साधुको संसर्गरखना चाहिए।

२. समाचारके भेद

म्. आ./१२४-९२५, १३६,१४४ दुविहो समाचारो ओघो विय पदिविभागिओ चेव। दसहा ओघो भणिओ अणेगहा पदिविभागी य ११२४।
इच्छामिच्छाकारो तथाकारो य आसिआ णिसिहो। आपुच्छा
पिडपुच्छा छंदण सिणमंतणा य उपसंपा।१२६। उवसंपया य णेया
पंचिवहा जिणवरें हि णिदिहा। विणए खेत्ते मग्गे सहदुवखे चेय सुत्ते
य ११३६। उपसंप्या य सुत्ते तिविहा सुत्तत्थतदुभया चेव। एवकेक्का
वि य तिविहा लोइय वेदे तहा समये।१४४। चसगचार दो प्रकारका
है—औघिक व पदिविभागी। औधिकके दश भेद हैं और पदिविभागीके अनेक भेद हैं ११२४। औधिक समाचारके दश भेद हैं और पदिविभागीके अनेक भेद हैं।१२४। औधिक समाचारके दश भेद हैं लिए हाकार,
मिध्याकार, तथाकार, आसिका, निषेधिका, आपुच्छा, प्रतिपृच्छा,
छेदन, सिनमन्त्रणा और उपसंयत ।१२६। गुरुजनोंके लिए आत्मसमर्पण करने वाला उपसंयत पाँच प्रकारका है—विनयमें, क्षेत्रमें,
मार्गमें, सुल-दुलमें, और सूत्रमें कहना चाहिए।१३६। सूत्रोपसंयत
तीन प्रकारका है—सूत्र अर्थ व तदुभय। यह एक-एक भी तीन तरहके
हैं—लौंकिक, वैदिक, व सामायिक।

३ औधिक व पद्विभागी निर्देश

मू, आ./१३०, १४५-१४७ उग्गमसूरप्पहृदी समणाहोरत्तमंडले कसिणे। जं अच्चरंति सददं एसो भणिदो पदिविभागी।१३०। कोइ सन्वसमत्थो सगुरुसुदं सन्त्र आगमित्ताणं। विणएणुजनकिमत्ता पुच्छइ सगुरु पयत्तेण ।१४५। तुज्भ पादपसाएण अण्णमिच्छामि गंतुमायदणं। तिण्णि व पंच व छ वा पुच्छाओ एत्थ सो कुणइ।१४६। एवं आपुच्छिता सगवरगुरुणा विसि जिला संतो। अप्पचलका ति विशे विदिश्ची वासो तदी णोदी।१४७। = [औ विक समाचारके इच्छाकारादि दश भेद हैं। उनके सक्षण देखो अगला शिर्षक] जिस समय सूर्य उदय होता है. वहाँसे लेकर समस्त दिन रातकी परिपाटीमें मुनि लोग नियमादिकों को निरन्तर आचरण करें सो यह प्रत्यक्ष रूप पदविभागी समाचार कहा है।१३०। वीर्य आदिसे समर्थ कोई मुनि अपने गुरुसे सर्व शासों को जानकर विनय सहित प्रणाम करके प्रमाद रहित हुआ गुरुसे पूछे।१४६। हे गुरो! मैं तुम्हारे चरण प्रसादसे अन्य आचार्यके पास जाना चाहता हूँ। इस अवसरपर तीन वा पाँच वा छह बार तक पूछना चाहिए, करनेसे उत्साह व विनय मालूम होता है।१४६। इस प्रकार अपने श्रेष्ठ गुरुसे पूछ कर उनसे आज्ञा लेता हुआ अपने साथ तीन, दो वा एक मुनिको साथ लेकर जावे अकेला न जावे।१४७। [एकाकी विहारको विधि व निषेध सम्बन्धी—दे. एकल विहारो, विहार]

४. इच्छाकार आदिका विषय

म्. आ./१२६-१२८ हट्ठे इच्छाकारो मिच्छाकारो, तहेव अवराधे। पुडिमुणणिहा तहित य णिग्मणे आसिया भणिया।१२६। पिवसंते अ
णिसीही आपुच्छाणिया सकज्जाआर भे। साधिम्मणा य गुरुणा पुठवणिसिट्ठिहा पिछपुच्छा।१२७। छाँदण गिहदे दव्वे अगिहदव्वे णिमंतणा भणिदा। सुहामहित्त गुरुकुले आदिणिसग्गो दु उवसंपा।१२८।
चशुभ परिणामोंमें हर्ष होना इच्छाकार है। अतिचार होने रूप
अशुभ परिणामोंमें निभ्या शब्द कहना मिथ्याकार है। सूत्रके अर्थ
सुननेमें 'तथेति' कहना तथाकार है। रहनेकी जगहसे पूछकर
निकलना आसिका है। स्थान प्रवेशमें पूछकर प्रवेश करना निषेधिका
है। पठनादि कार्योंमें गुरु आदिकोंसे प्रश्न करना आपृच्छा है।
साधमी अथवा गुरु आदिसे पहले दिये हुए उपकरणोंको पूछकर
प्रहण करना प्रतिपृच्छा है। उपकरणोंको देने वालेके अभिप्रस्थके
अनुकूल रखना सो छन्दन है। तथा अगृहीत द्वव्यकी याचना करना
निमन्त्रणा है। और गुरुकुलमें 'मैं आपका हूँ' ऐसा कहकर आचरण
करना वह उपसंयत है।

५. इच्छाकार आदिका स्वरूप

मू आ./१३१-१३८ संजमणाणुवकरणे अण्णुवकरणे च जायणे अण्णे। जोगग्गहणादीसु अ इच्छाकारो दु कादव्वो ।१३१। जं दुक्कडं तु मिच्छा तं गेच्छ दि दुक्क डं पुणो कादु। भावेण य पहिकंती तस्स भवे दुवकडे मिच्छा।१३२। वायण पडिच्छणाए उवदेसे मुत्तअस्थ-कहणाए। अवितहमेदत्ति पुणो पडिच्छणाए तथाकारो ।१३३। कंदरपुलिणगुहादिमु पवेसकाले णिसिद्धिश्रं कुल्जा । तेहिंतो णिग्गमणे तहासिया होदि कायब्वा ।१३४। आदावणादिगहणे सण्णा उब्भामगः-दिगमणे वा । विषये षायरियादिसु आपुच्छा होदि कायठवा ।१३५। फं किंचि महाकडजं करणीयं पुच्छिऊण गुरुआदि । पुणरवि पुच्छदि साधुतं जाणमुहोदि पडिपुच्छा । १३६। गहिदुवकरणे विणए वंदण-मुत्तत्थपुच्छणादीसु । गणधरवसभादीणं अणुबुत्ति छंदणिच्छाए 1१३७। गुरुसाहम्मियदव्वं पोत्थयमण्णं च गेण्हिदु^{*} इच्छे । तेसि विणयेण पुणो णिमंतणा होइकायञ्या ।१३८। 🗕 १. संयमके पीछी आदि उपकरणों में, ज्ञानके उपकरणों में अथवा अन्य भी तपादिके उपकरणों में तथा आतापनादि योगोंमें इच्छाकार अर्थात् मनको प्रवर्ताना ।१३१। २. जो बतादिमें मेरे अतिचार लगा हो वह मिथ्या होवे, ऐसे मिथ्या किये पापोंको फिर करनेको इच्छान करे, और अन्तरंग भावसे प्रतिक्रमण करता है उसीके दुष्कृतमें मिथ्याकार होता है।१३२।३. जीवादिकके व्याख्यानका सुनना, सिद्धान्त श्रवण, परम्परासे चला आया उपदेश और मुत्रादिका अर्थ-इनमें जो अहँतने वहावह सत्य है, ऐसा समभना तथाकार है ।१३३५४-४,कंदर,जलकेमध्यप्रदेश स्व पुतिन, गुफा, इत्यादि निर्जन्तु स्थानों में प्रवेश करने समय निषेधिका करे और निकलने समय आसिका करे। १३४। ६. आतापनादि प्रहणमें, आहारादिकी इच्छाएँ तथा अन्य ग्रामादिको जाने ने नमस्कार पूर्वक पूछकर उनके अनुसार करना वह आपृच्छा है। १३६। ७ जो कुछ महान कार्य करना ही वह गुरु प्रवर्त क स्थिनि रादिकसे पूछकर करना चाहिए फिर अन्य साधमी साधुओं से पूछना वह प्रतिपृच्छा है। १३६। ८ प्रहण किये हुए पुस्तकादि उपकरणों में, विनयके काल में, वन्दना-सूत्रके अर्थको पूछना इत्यादिक आचार्य आदिकी इच्छाके अनुकृत वर्तना छन्दन है। १३७। ६, गुरु अथवा साधमी के पुस्तक व कमण्डलु आदिको छेना चाहे तो उनसे नन्नी भूत होकर याचना करे। उसे निमन्त्रणा कहते हैं। १६८। १०, उपसंयतका स्वस्थ — दे, अगला शीर्षक]

६. उपसंयत सामान्य व विशेषका स्वरूप

मू. आ./१४०-१४३ पाहुणविणडवचारो तेसि चावासभूमि संपुच्छा। दाणाणुवसमादी विणये उवसंपया णेया ११४०। संजमतवगुणसीला जमणियमादी य जिह्म लेत्तह्मि । वड्ढंति तह्मि वासी लेत्ते उवसंपया पाहुणबरथठबरण अण्णोण्णासम्बन्धमसुहपुच्छा । उबसंपदा य मग्गे संजमतवणाणजोगजुत्ताणं ।१४२। सुहदुक्खे उवयारो वसहीआहारभेसजादीहिं। तुह्यं अहंति वयणं मुहदुक्खुवसंपया णेया।१४३। = अन्य संघसे आये हुए मुनियोंका अंग मर्दन प्रिय वचनस्रप विनय करना, आसनादिपर बैठाना, इत्यादि उपचार करना, गुरुके विराजनेका स्थान पूछना, आगमनका रास्ता पूछना, संस्तर, पुस्तकादि उपकरणोंका देना, और उनके अनुकूल आचरणा-दिक करना वह विनयोपसंयत है। १४०। संयम तप व उपशमादि गुण व वत रक्षारूप शील तथा यम, नियम, इत्यादिक जिस स्थानमें रहनेसे बढ़ें, उस क्षेत्रमें रहना वह क्षेत्रीपसंयत है ।१४१। अपने संघसे आये मुनि, तथा अपने स्थानमें रहने वाले मुनियों से आपसमें आने-जानेके विषयमें कुशलका पूछना, वह संयम, तप, ज्ञान, योग-गुर्णोकर सहित मुनिराजोंके मार्गोपसंयत है ।१४२। मुख-दुःख युक्त पुरुषोंको वसतिका, आहार, औषध आदिकर उपकार करना, तथा मैं और मेरो वस्तुएँ आपकी हैं, ऐसा बचन कहना वह सुखदु:खोपसंगत है।१४३। (सूत्रोपसंयतके तीन भेद है—सूत्र, अर्थ, तदुभय। इन तीनोंके लौकिक, वैदिक व सामाजिक ये तीन-तीन भेद हैं। — दे. 1 समाचार/२)।

समाचार काल--दे काल/१/४।

समादान क्रिया—दे, क्रिया/३/२।

समादेश-- उदिष्ट आहारका एक भेद-दे, उदिष्ट ।

समाधान उत्तम परिणामों में चित्तका स्थिर रखना समाधान है। -- दे. समाधि/१।

समाधि-१. समाधि सामान्यका लक्षण

- नि. सा./मू./१२२-१३३ वयणोश्वारणिकरियं परिचत्तं वीयरायभावेण । जो भायदि अप्पाणं परमसमाही हवे तस्स ।१२२। संजमणियमतवेण दु धम्मज्भाणेण सुक्षभाणेण । जो भायह अप्पाणं परमसमाही हवे तस्स ।१२३। =वचनोश्वारणकी क्रिया परित्याग कर वोतराग भावसे जो आरमाको ध्याता है, उसे समाधि है ।१२२। संयम, नियम और तपसे तथा धर्मध्यान और शुक्त ध्यानसे जो आरमाको ध्याता है, उसे परम समाधि है ।१२३।
- प.प्र./पू./२/११० सथल-वियप्पर्ह जो विलंख परम-समाहि भणंति। तेण सुहासुह-भावणा सुणि सथलंबि मेरलंति ।१६०। चजो समस्त

विकश्पोंका नाश होना, उसको परमसमाधि कहते हैं, इसीसे सुनिराज समस्त शुभाशुभ विकल्पोंको छोड़ देते हैं।१६०।

रा, वा./६/१/१२/१०६/२७ युजेः समाधिवचनस्य योगः समाधिः ध्यान-मित्यनर्थान्तरम् । च्योगका अर्थ समाधि और ध्यान भी होता है।

- भ, आ / बि / ६७/१६४/ ५ (समाधि) समेकी भावे वर्तते तथा च प्रयोगः — संगतं तैलं संगतं वृतिमत्यर्थ एकी भूतं तैलं एकी भूतं घृत-मिरयर्थः । समाधानं मनसः एकाग्रताकरणं शुभोपयोगे शुद्धे वा । — मनको एकाग्र करना, सम शब्दका अर्थ एकरूप करना ऐसा है जैसे घृत संगत हुआ, तैल संगत हुआ इत्यादि । मनको शुभोपयोगमें अथवा शुद्धोपयोगमें एकाग्र करना यह समाधि शब्दका अर्थ समसना ।
- म. पु./२१/२२६ यरसम्यक् परिणामेषु चित्तस्याधानमञ्जसा । स समाधि-रिति ज्ञयः स्मृतिर्वा परमेष्ठिमास् ।२२६ः = उत्तम परिणामोमें जो चित्तका स्थिर रखना है वही यथार्थ में समाधि या समाधान है अथवा पंच परमेष्ठियोंके स्मरणको समाधि कहते हैं।

दे उपयोग/II/२/१ साम्य, स्वास्थ्य, समाधि, योगनिरोध, और शुद्धोपयोग ये समाधिके एकार्थवाची नाम हैं।

दे. ध्यान/४/३ ध्येय और ध्याताका एकीकरण रूप समरसी भाव ही समाधि है।

सं. स्तो,/टी./१६/२६ धर्म शुक्तं च ध्यानं समाधिः । च्धर्म और शुक्तः ध्यानको समाधि कहते हैं ।

स्या. म /टी /१७/२२१/१६ निहरन्तर्जन्यत्यागलक्षणः योगः स्वरूपे चित्त-निरोधलक्षणं समाधिः। = निहर और अन्तर्जन्यके स्याग स्वरूप योग है। और स्वरूपमें चित्तका निरोध करना समाधि है।

दे. अनुप्रेक्षा/१/११ सम्यग्दर्शनादिको निर्विष्न अन्य भवमें साथ ते जाना समाधि है।

२. साधु समाधि भावनाका रुक्षण

- स, सि, |६/२४/३३६/१ यथा भाण्डागारे दहने समुस्थिते तत्प्रशमनमनुष्ठीयते बहुपकारत्वात्तथानेकवतशीलसमृद्धस्य मुनेस्तपसः कृतश्चिरप्रस्यूहे समुपिस्थिते तत्संधारणं समाधिः। जैसे भाण्डागारमें आग लग जानेपर बहुत उपकारी होनेसे आगको शान्त किया जाता है, उसी प्रकार अनेक प्रकारके वत और शीलोंसे समृद्ध मुनिके तप करते हुए किसी कारणसे विध्नके उत्पन्न होनेपर उसका संघारण करना शान्त करना समाधि है। (रा. वा./६/२४/८/४०/१): (चा. सा./ ६४/४)।
- ध. ८/३,४१/==/१ साहूणं समाहिसंधारणदाए-दंसण-णाण-चरिचेसु-सम्मबद्वाणं समाही णाम । सम्मं साहणं धारणं संघारणं । समाहीए संधारणं समाहिसंधारणं, तस्स भावी समाहिसंधारणदा। ताए तिरथयरणामकम्मं बज्भदि सि । केण वि कारणेण पदंति समाहि दर्ठूण सम्मादिही पवयणत्रच्छलो पवयणप्पहावओ विणयसंपण्णो सीलवदादिचारविज्ञा अरहतादिशु भत्तो संतो जदि धारेदि तं समाहिसंधारणं। ...सं सद्दपं जणादो। = साधुओंकी समाधि-संधारणासे तीर्थं कर नामकर्म बाँधता है-दर्शन, ज्ञान व चारित्रमें सम्यक् अवस्थानका नाम समाधि है। सम्यक् प्रकारसे धारण या समाधिका नाम संधारण है। समाधिका संधारण समाधिसंघारण और उसके भावका नाम समाघि-संधारणता है। उससे लीथँकर नाम-कर्म बँघता है। किसी भी कारणसे गिरती हुई समाधिको देखकर सम्यग्दष्टि, प्रवचनवत्सल, प्रवचन प्रभावक, विनय सम्पन्न, शील-वतातिचार वर्जित और अर्हन्तादिकों में मिक्तमान् होकर चूँ कि उसे धारण करता है इसलिए वह समाधि संधारण है। ... यह संधारण शब्दमें दिये गये 'सं' शब्दसे जाना जाता है।

भा पा /ही /७७/२२१/१ मुनिगणतपःसंघारणं साधुसमाधिः। च मुनिगण तपको सम्यक् प्रकारसे धारण करते हैं वह साधु समाधि है।

For Private & Personal Use Only

३. एक साथु समाधि भाषनामें शेष १५ भावनाओंका अन्तर्भाव

ध. प/३,४१/प्प/६ ण च एत्थ सेसकारणाभावो, तदिश्वसस्स दिसिदत्तादो। एवमेदं नवमं कारणं। च्हस (साधु समाधि संधारणता) में
शेष कारणोंका अभाव नहीं है, क्योंकि उनका अस्तित्व (किसी भी
कारणसे गिरती हुई समाधिको देखकर सम्यग्दृष्टि, प्रवचनवत्सल,
प्रवचन प्रभावक, विनयसम्पन्न,...आदि होकर उसे धारण करता है
इसलिए वह समाधिसंधारणा है—दे, ऊपरवाला शीर्षक।) वहाँ
दिखला ही चुके हैं। इस प्रकार वह तीर्थंकर नामकर्म ब्रंधनेका नवम
कारण है।

* अन्य सम्बन्धित विषय

१. निर्विकलप समाधि व शुक्लध्यानकी एकार्थता । - दे. पद्धति ।

२. परम समाधिके अपरनाम । —दे, मोक्षमार्ग/२/६।

३. अन्य मत मान्य समाधि ध्यान नहीं है। -दे, प्राणायाम ।

४. एक ही भावनासे तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध सम्भव।

-- दे. भावना/२ **।**

समाधिगुप्त-यह भाविकालीन अठारहवें तीर्थं कर हैं।-दे. तीर्थं कर/१।

समाधितन्त्र—इसका दूसरा नाम समाधिशतक भी है। यह प्रनथ आचार्य पूज्यपाद (ई. श. १) कृत अध्यादम विषयक १०१ संस्कृत श्लोकों में निषद्ध है। इसपर आ. प्रभाचन्द्र (ई. १४०-१०२०) ने एक संस्कृत टीका लिखी है। (ती./२/२२१); (क./२/११६१)

समाधिमरण—दे, सल्लेखना।

समान खंड-- जैसे २५६ = १९६५।

समानगोल— Sphere, (ज. प./प्र. १०८)।

समानाधिकरण १. ... भिन्नत्रवृत्तिनिमित्तानां शब्दानामे किस्मन्नर्थे वृत्तिः सामान्याधिकरण्यम् यथा तत् त्वमसि — भिन्नप्रवृत्ति में जो निमित्त है ऐसे विभिन्न शब्दों की एक ही अर्थ में वृत्ति होना सामान्याधिकरण्य है। जैसे 'तत् त्वमसि' इस पर में 'तत् का अर्थ अशरीरी ब्रह्म और 'त्वम' का अर्थ शरीरी ब्रह्म योजीवारमा भ्ये दोनों एक है, ऐसा इस पद का अर्थ है। २, लक्ष्य लक्षणमें सामानाधिकरण्य। -- दे, लक्षण।

समानुपात सिद्धान्त- Theory of Proportion (ज.प./प्र.०६)

समारम्भ — म. सि./६/८/३२ साधनसमभ्यासीकरणं समा-रमभः। =साधनोका जुटाना समारम्भ है। (रा. वा./६/८/३/-५१३/३२)

रा. वा./६/८/१/१९३/१२ साध्यायाः क्रियायाः साधनानां समभ्यासी-करणं समाहारः समारमभ इत्यास्थायते । स्साध्यके साधनींका इकट्ठा करना समारंभ है । (चा. सा./८७/४)

समास - जीव समास - दे. जीव रामास ।

समाहार १. इचकपवंतानेशासिनी दियकुमारी देवी। — दे, लोक/१/१६२. स. भं. त /१/१० समाहारः समृहः। — समाहार धर्यात् समुदः।

समिति चलने-फिरनेमें, बोलने-चालनेमें, आहार ग्रहण करनेमें, बस्तुओंको उठाने-धरनेमें और मलसूत्र निक्षेपण करनेमें यत्न पूर्वक सम्यन् प्रकारसे प्रवृत्ति करते हुए जीवोंको रक्षा करना समिति है।

समिति निर्देश

१ | समिति सामान्यका रुक्षण ।

२ समितिके भेदा

9

3

समिति व सामायिक चारित्रमें अन्तर ।

-वै. सामायिक/४।

सिमिति व सक्ष्म साम्परायमें अन्तर ।

-हे. सृक्ष्मसाम्पराय ।

सिमिति, गुप्ति, व दश्लधर्ममें अन्तर । — दे. गुप्ति/२ ।

संयम व समितिमें अन्तर। — दे, संयम/२।

सयम और विरतिमें समिति सम्बन्धी विशेषता ।

-- दे. संयम/२/१।

ईयां समिति निदेश

१. ईर्या समितिका लक्षण, २. ईर्यापथ शुद्धिका लक्षण, ३. ईर्या समितिकी विशेषताएँ, ४. ईर्या समितिके अतिचार।

भाषा समिति निर्देश

१. भाषा समितिका लक्षण, २. बाक् शुद्धिका लक्षण,

३. भाषा समितिके अतिचार।

* । भाषा समिति व सत्यधर्ममें अन्तर । -दे. सत्य/२/८।

धर्म हानिके अवसरपर बिना बुलाये बोले ।

--दे. बाद १

५ एषणा समिति निर्देश

१. एषणा समितिका सक्षण; २. एषणासमितिके अतिचार।

६ । आदान निक्षेपण समिति निर्देश

१. आदान निक्षेपण, समितिका लक्षण, २. आदान निक्षेपण समितिके अतिचार।

प्रतिष्ठापन समिति निर्देश

१. प्रतिष्ठापन समितिका नक्षण, २. प्रतिष्ठापन शुद्धिका नक्षण, ३. प्रतिष्ठापन समितिके अतिचार।

२ निइचय व्यवहार समिति समन्वय

१ समितिमें सम्यग् विशेषणकी आवश्यकता ।

२ प्रमाद न होना ही सच्ची समिति है।

३ | समितिका उपदेश असमर्थ जनोंके छिए हैं।

४ सिमितिका प्रयोजन अहिंसा व्रतकी रक्षा

* शावकको भी समितिके पाछन सम्बन्धी !

—दे, ब्रत/२/४ ।

५ समिति पालनेका फल ।

सिमितिमें युगपत् आस्त्रव व संवरपना ।

---दे, संवर/२।

१. समिति निर्देश

१. समिति सामान्यका लक्षण

१. निश्चय समिति

रा. वा,/१/१/१/१८३/३४ सम्प्रगितिः समितिरिति । =सम्यग् प्रकारसे प्रवृत्तिका नाम समिति है ।

- नि. सा./ता. वृ./६१ अभेदानुपचाररत्नत्रयसार्गेण परमधर्मिणमात्मानं सम्यण् इति परिणितः सिमितिः । अथवा निजपरमतस्विनिरतसहज-परम्नोषादिपरमधर्माणां संहतिः सिमितिः । = अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयस्पी मार्गपर परमधर्मी ऐसे (अपने) आत्माके प्रति सम्यण् 'इति' (गिति) अर्थात परिणिति वह सिमिति है, अथवा निज परम तत्त्वमैं सीन सहज परम ज्ञानादिक परमधर्मीकी संहति (मिलन, संगठन) वह सिमिति है।
- प्र. सा./ता. व./२४०/३३२/२१ निश्चयेन तु स्वस्वरूपे सम्यगितो गतः परिणतः समितः। = निश्चयसे तो अपने स्वरूपमें सम्यग् प्रकारसे गमन अर्थात परिणमन समिति है।
- द्र. सं./टी./३४/६०१/३ निश्चयेनानन्तज्ञानादिस्वभावे निजारम्नि सम-सम्यक् समस्तरागादिविभावपरित्यागेन तक्कीनतिचिन्तनतन्ममस्वेन अथनं गमनं परिणमनं समितिः। —िनश्चय नयकी अपेक्षा अनन्त-ज्ञानादि स्वभावधारक निज आरमा है, उसमें 'सम' भन्ने प्रकार अर्थात् समस्त रागादि भावोंके त्याग द्वारा आस्मामें लीन होना, आत्माका चिन्तन करना, तन्मय होना आदि रूपसे जो अयन (गमन) अर्थात् परिणमन सो समिति है।

२. व्यवहार समिति

- स. सि./१/२/४०१/० प्राणिपीडापरिहारार्थं सम्यग्यनं समिति:।=प्राणि पीड़ाका परिहारके लिए सम्यक् प्रकारसे प्रवृत्ति करना समिति है। (रा. वा-/१/२/५११/३१)
- भ. आ./वि./१६/६१/१६ समिदीसु य सम्यगयनादिषु अयनं समितिः। सम्यक्श्रुतज्ञाननिरूपितक्रमेण गमनादिषु वृत्तिः समितिः।
- म. आ./बि./११४/२६७/१ प्राणिपीडापरिहारादरवतः सम्यगयनं सिमितिः। =गमनादि कार्योंमें जैसी प्रवृत्ति आगममें कही है वैसी प्रवृत्ति करना सिमिति है। प्राणियोंको पीड़ा न होवे ऐसा विचार कर दया भावसे अपनी सर्व पवृत्ति जो करना है, वह सिमिति है।
- सा./ता. वृ./२४०/६३२/२१ व्यवहारेण पञ्चसमितिभिः समितः संवृत्तः
 पञ्चसमितः । =व्यवहारसे ईयसिमिति आदि पाँच समितियाँके
 द्वारा सम्यक् प्रकार 'इतः' अथित प्रवृत्ति करना सो पंचसमिति है ।
- र, सं /टी /३१/१०१/४ व्यवहारेण तद्दबहिरङ्गसहकारिकारणभ्ताचारादि-चरणग्रन्थोक्ता समितिः। =व्यवहारसे उस निश्चम समिति के बहि-रङ्ग सहकारिकारणभूत आचार चारित्र विषयक ग्रन्थों में कंही हुई समिति है।

२. समितिके भेद

ग. पा./मू./३७ इरिया भासा एसण जा सा आदाण चेव णिवसेवो। संजमसोहिणिमित्ते खंति जिलापंच समिदीओ। चईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेषण और प्रतिष्ठापण ये पाँच समिति संयम सुद्धिके कारण कही गयी हैं। (सू. आ./१०, ३०१); (त. सू./१/६); (स. सि./१/४/४१/१); (द्र. सं./टी./३४/१०१/१)

३. ईर्यासमिति निर्देश

१. ईर्यासमितिका लक्षण

.आ./११,३०२,३०२ फास्रयमग्गेण दिवा जुवंतरप्पहेणा सकज्जेण । जंतूण परिहर ति इरियासमिदी हवे गमणं ।११। मग्गुज्जोबुपजीगालंबण-स्रुद्धोहि इरियदो सुणिणो । स्रुत्ताणुवीचि भणिया इरियासमिदी पवयणिम्म १३०२। इरियाबहण्डिवण्णेवलोगंतेण होदि गंतव्वं। पुरदो जुगप्पमाणं स्याप्पमत्तेण सत्तेण १३०३। = १. प्राप्तुक मार्गसे (दे विहार/१/७) दिनमें चार हाथ प्रमाण देखकर अपने कार्यके लिए प्राणियोंको पीड़ा नहीं देते हुए संयमीका जो गमन है वह ईयि-सिमिति है। (नि. सा./६१)। २, मार्ग, तेत्र, सूर्यका प्रकाश, ज्ञानादिमें यरन, देवता आदि आलम्बन - इनकी शुद्धतासे तथा प्रायश्चित्तादि सूत्रोंके अनुसारसे गमन करते मुनिके ईर्यासमिति होती है ऐसा आगममें कहा है।३०२। (भ. आ./मू./१९६१) ३, कैलास गिरनार आदि यात्राके कारण गमन करना हो तो ईर्यापथसे आगेकी चार हाथ प्रमाण भूमिको सूर्यके प्रकाशसे देखता मुनि सावधानीसे हमेशा गमन कर १३०३। (त. सा./६/७)

रा. बा./ह/६/३/६६४/१ विद्तिजीवस्थानादिविधेर्मुनेर्धमर्थं प्रयत-मानस्य सवितर्युदिते चक्षुषो विषयग्रहणसामध्ये उपजाते मनुष्यादि-घरणपतोपहृतावश्याय-प्रायमार्गे अनन्यमनसः शनैन्यस्तपादस्य संकु-चितावयवस्यग्रुगमात्रपूर्विमरीक्षणाविहितदृष्टेःपृथिव्याद्यारम्भाभावात् ईर्यासमितिरित्याख्यायते । चजीवस्थान आदिकी विधिको जानने-वाले, धर्मार्थ प्रयत्नशील साधुका सूर्योदय होनेपर चक्षुरिन्द्रियके द्वारा दिखने योग्य मनुष्य आदिके आवागमनके द्वारा कृहरा क्षुद्र जन्तु आदिसे रहित मार्गमें सावधान चित्त हो शरीर संकोच करके धीरे-धीरे चार हाथ जमीन आगे देखकर पृथिवी आदिके आरम्भसे रहित गमग करना ईर्यासमिति है। (चा. सा./६६/२); (जा./१८/६-७); (अत. ध./४/६६४/४६२)

२. ईर्यापथ शुद्धिका छक्षण

रा. वा,/१/६/१६/११०/१२ ईर्यापथशुद्धिः नानाविधजीवस्थानयोन्याश्रयावबोधजनितप्रयस्तपरिहृतजन्तुपीड़ाज्ञानादित्यस्वेन्द्रियप्रकाशान रीक्षितदेशगामिनी द्रुतविलम्बितसंभ्रान्तविस्मितलीलाविकारदिगन्तरावलोकनादिशोषविरहितगमना। तस्यां सत्यां संयमः प्रतिष्ठितो भवति विभव इव सुनीतौ। - अनेक प्रकारके जीवस्थान
योनिस्थान जीवाश्रय आदिके विशिष्ठ ज्ञानपूर्वक प्रयत्नके द्वारा
जिसमें जन्तु पीड़ाका बचाव किया जाता है, जिसमें ज्ञान, सूर्य
प्रकाश, और इन्द्रिय प्रकाशमें अच्छी तरह देखकर गमन किया जाता
है तथा जो शीघ, विलम्बित, सम्भ्रान्त, विस्मित, लीला विकार
अन्य दिशाओंकी ओर देलना आदि गमनके रोषोंसे रहित गतिवाली
है वह ईर्यापथ शुद्धि है। (चा. सा/०६/७)

३. ईयांसमितिकी विशेषताएँ

भ, आः/विः/१५०/३४४/६ स्ववासदेशान्निर्गन्तुमिच्छतः शीतलादुष्णाद्धाः देशाच्छरीरप्रमार्जनं कार्यं, तथा विश्वतापि । किम्थं । शीतोष्णजंतू-नामानाधापरिहारार्थं अथवा श्वेतरक्तगुणासु भूमिषु अन्यस्या नि.क्रमेण अन्यस्याश्च प्रवेशने प्रमार्जनं कटिप्रदेशाद्धः कार्यं। अन्यथा विरुद्धयोनिसंक्रमेण पृथिवीकायिकानां तद्दभूमिभागोत्प-न्नानां त्रसानां चानाधा स्यातः। तथा जलं प्रविश्वता सचित्ताचित्त-रजसोः पदादिषु लग्नयोर्निरासः। यावच पादौ शुष्यतस्तावन्न गच्छेज्जलान्तिक एव तिष्ठेत्। महतीनां नदीनां उत्तरणे आराइभागे कृतसिद्धवन्दनः याबत्परक्ष्चप्राधिस्तावनमया सर्वे शरीरभोजनसुप-करणं च परित्यक्तमिति गृहीतप्रत्याख्यानः समाहितवित्तो द्रोण्या-दिकमारोहैत, परकूले च कायोदसर्गेण तिष्ठेत । तदतिचारव्यपोहार्थ । एवमिय महत् कान्तारस्य प्रवेशनिः क्रमणयोः । = शीत और उष्ण जन्तुओंको बाधा न हो इसलिए शरीर प्रमार्जन करना चाहिए। तथा सफेद भूमि या लाज रंगकी भूमिमें प्रवेश करना हो अथवा एक भूमि-से निकसकर दूसरी भूमिमें प्रवेश करना हो तो कटिप्रदेशसे नीचेतक सर्व अवयव पिच्छिकासे प्रमाजित करना चाहिए। ऐसी क्रिया न करनेसे विरुद्ध योनि संक्रमसे पृथ्वीकायिक जीव और त्रस कायिक

जीवोंको बाधा होगी। जलमें प्रवेश करनेके पूर्व साधु हाथ-पाँव वगैरह अवयवोंमें लगे हुए सिचत्त और अचित्त धूलिको पीछीसे दूर करें। अनन्तर जलमें प्रवेश करें। जलसे बाहर आनेपर जब तक पाँव न सूख जावें, तब तक जलके समीप ही खड़ा रहे। पाँव सूखनेपर विहार करें। बड़ी निर्धोंको उत्तांघनेका कभी अवसर आवे तो नदीके प्रथम तटपर सिद्ध वन्दना कर, समस्त वस्तुओं आदिका प्रत्याख्यान करें। मनमें एकाप्रता धारण कर नौका वगैरहपर आखढ़ होवे। दूसरे तटपर पहुँचनेके अनन्तर उसके अतिचार नाशार्थ कायोरसर्ग करें। प्रवेश करनेपर अथवा वहाँसे बाहर निकलनेपर यही आचार करना चाहिए।

दे, भिक्षा/२/६ जो गीलो है, हरे तृण आदिसे व्याप्त है, ऐसी पृथ्वीपर गमन नहीं करना चाहिए।

भ. आ./वि./१२०६/१२०४/४ खरान्, करभान्, वलीवर्दान्, गर्जास्तुर-रगान्महिषान्सारमेयान्कलहकारिणो वा मनुष्यान्द्वरतः परिहरेत । . . . मृदुना प्रतिलेखनेन कृतप्रमार्जनो गच्छेद्यदि निरन्तरम्रसमाहितफला-दिकं वाग्रतो भवेत् मार्गान्तरमस्ति । भिण्णवर्णा वा भूमि प्रविशंस्त-द्वर्णभूभाग एव अक्रप्रमार्जनं कुर्यात् । = मार्गमें गदहा, ऊँट, वैल, हाथी, घोड़ा, भैंसा, कुत्ता और कलह करनेवाले लोगोंको दूरसे ही स्याग करे । . . रास्तेमें जमीनसे समान्तर फलक पत्थर वगैरह चीज होगी, अथवा दूसरे मार्गमें प्रवेश करना पड़े अथवा भिन्न वर्णकी जमीन हो तो जहाँसे भिन्नवर्ण प्रारम्भ हुआ है वहाँ खड़े होकर प्रथम अपने सर्व अंगपरसे पिच्छी फिरानी चाहिए। (और भी – दे-संयम/१/७)

२. ईर्यासमितिके अतिचार

भ. आ./बि./१६/६२/४ ईर्यासमितेरतिचारः मन्दालोकगमनं, पद-विन्यासदेशस्य सम्यगनालोचनम्, अन्यगतिचत्तादिकम्। स्पूर्यके मन्द प्रकाशमें गमन करना, जहाँ पाँव रखना हो वह जगह नेत्रसे अच्छो तरहसे न देखना, इतर कार्यमें मन लगाना इत्यादि।

४. भाषासमिति निर्देश

१. भाषासमितिका छक्षण

सू. आ./१२,३०७ पेसुण्णहासकक्षसपरणिंदाप्पप्पसंसिकहादी। विज्ञिता सपरिहदं भासासिमिदी हवे कहणं।१२। सच्चं असच्चमोसं अलियादी-दोसवज्जमणवज्जं। वदमाणस्सणुवीची भासासिमिदी हवे सुद्धा।३०७। —१. क्षृठ दोष लगाने रूप पैशुन्य, व्यर्थ हँसना, कठोर वचन, परिनदा, अपनी प्रशंसा, और विकथा इत्यादि वचनोंको छोड़कर स्व-पर हितकारक वचन बोलना भाषा समिति है। (नि. सा/मू. ६२)२, दव्यादि चतुष्टयकी अपेशा सत्य वचन (दे. सत्य), सामान्य वचन, मृषावादादि दोष रहित, पापोंसे रहित आगमके अनुसार बोलनेवालेके शुद्ध भाषासिमिति होती हैं। (भ. आ./मू./१९६२); (स. सा./६/८)

रा. वा./ह/१/१/१८४/१७ मोक्षपदप्रापणप्रधानफलं हितम् । तइ द्विधम्स्वहितं परहितं चैति । मित्रमनर्थं कप्रलपनरहितम् । स्कुटार्थं व्यक्ता११ चासंदिग्धम् । एवं विधमभिश्रानं भाषासमितिः । तत्प्रपञ्चःमिथ्याभिधानासूयाप्रियसंभेदारुपसारशिद्धतसंभ्रान्तकषायपरिहासा युक्तासभ्यमिष्ठुरधर्म विरोध्यदेशकालालक्षणातिसं स्तवादिवाग्दोषवि रहिताभिधानम् । = स्व और परको मौक्षकी ओर ले जानेवाले स्वपर हितकारक, निरर्थं क बकवाद रहित मित स्कुटार्थं व्यक्ताक्षर और
असन्दिग्ध वचन बोलना भाषासमिति है। मिथ्याभिधान, अस्या
प्रियभेदक, अरुपसार, शंकित, संभ्रान्त, कथाय युक्त, परिहास युक्त,
अयुक्त, असभ्य, निष्ठुर, अधर्म विधायक, देशकाल विरोधी, और
चापञ्चसी आदि वचन दोषोंसे रहित भाषण करना चाहिए।

हा./१८/८-१ धूर्तकामुककव्यादचौरचार्वाकसेविता । शङ्कासंकेतपापाख्या स्याज्या भाषा मनीषिभि । दशदोषिनिर्मुक्तां सूत्रोक्तां साधुसंमताम् । पदतोऽस्य मुनेभाषां स्यादभाषासिनितः परा । १। मधूर्त्तं (मायावी), कामी, मांसभक्षी, चौर, नास्तिकमित,—चार्यक आदिसे व्यवहारमें लायी हुई भाषां तथा संदेह उपजानेवाली, व पापसंयुक्त हो ऐसी भाषा बुद्धिमानों को स्यागनी चाहिए ।८। तथा वचनोंके दश दोष (दे.भाषा) रहित सूत्रानुसार साधुपुरुषोंको मान्य हों
ऐसी भाषाको कहनेवाले मुनिके उदकृष्ट भाषा समिति होती है ।१।

२. वाक् शुद्धिका रूक्षण

मु. आ /८५३-८६१ भासं विषयविहूणं घम्मविरोही विवजाये वयणं। पुच्छिदमपुच्छिदं वा णवि ते भासति सप्पुरिसा। ५४३। अच्छीहि य पेच्छंता कण्णेहिय बहुविहाय सुणमाणा। अत्थंति भूयभूयाण ते करंति हु लोइयकहाओं ।८५४। विक्हाविसोत्तियाणं खणमवि हिद-एण ते ण चिंतंति । धम्मे लद्धमदीया विकहा तिविहेण वज्जंति ।८१७। कुक्कुयकंदप्पाइय हास उल्लावणं च खेर्ड च। मददप्पहत्थवट्टिं ण करें ति मुणी ण कारें ति ।८५८। ते होंति णिव्जियारा थिमिदमदी पदिद्विता जहा उदधी । णियमेसु दढव्वदिणो पारत्तविमन्पया समणा I८५१। जिणवयणभासिदत्थं पत्थं च हिदं च धम्मसंजुत्तं । सम्ओव-यारजुत्तं पारत्तहिदं कथं करेंति ।८६०। सत्ताधिया सप्पुरिसा मग्गं मण्णंति बीदरागाणं । अणयारभावणाए भावेंति य णिचमप्पाणं ।=६१। = सत्पुरुष वे मुनि विनय रहित कठोर भाषाको तथा धर्मसे विरुद्ध वचनोंको छोड़ देते हैं। और अन्य भी विरोध जनक वान्योंको नहीं बोलते। ८५३। वे नेत्रोंसे सब योग्य-अयोग्य देखते हैं और कानों-से सब तरहके शब्द सुनते हैं परन्तु वे गूंगेके समान तिष्ठते हैं, लौकिक कथा नहीं करते ।८४४। स्त्रीकथा औदि विकथा (दे. कथा) और मिथ्या शास्त्र, इनको वे मुनि मनसे भी चिन्तवन नहीं करते। धर्ममें प्राप्त बुद्धिवाले मुनि विकथाको मन वचन कायसे छोड़ देते हैं ।< १७। हृदय कंठसे अप्रगट शब्द करना, कामोत्पादक हास्य मिले बचन, हास्य बचन, चतुराई युक्त मीठे वचन, परको ठगने रूप वचन, मदके गर्वसे हाथका ताड़ना, इनको वे न स्वयं करते हैं, न कराते हैं ।प्र्या ने निर्विकार उद्धत चेष्टा रहित, विचारवाले, समुद्रके समान निश्चल, गम्भीर छह आवश्यकादि नियमीमें दृढ़ प्रतिज्ञावाले और परलोकके लिए उद्यमवाले होते हैं। ५१६। बीतरागके आगम द्वारा कथित अर्थवाली पथ्यकारी धर्मकर सहित आगमके विनयकर सहित परलोकमें हित करनेवाली कथाको करते हैं।८६०। उपसर्ग सहनेसे अकंपपरिणामवाले ऐसे साधुजन वीतरागोंके सम्यग्दर्शनादि रूप मार्गको मानते हैं और अनगार भावनासे सदा आत्माका ही चितवन करते हैं । ८६१।

रा. वा./१/६/१६/१६ = ११ वाक्यशुद्धः पृथिवोकायिकारम्भादिप्रेरण-रहिताः (ता) परुषिनिष्ठुरादिपरपीडाकरप्रयोगनिरुद्धका वत्रशेल-देशनादिप्रधानफला हितमितमधुरमनोहरा संयतस्य योग्या। तद-धिष्ठाना हि सर्वसंपदः। ≈पृथिवीकायिक आदि सम्बन्धी आर-म्भादिकी प्ररणा जिसमें न हो तथा जो परुष, निष्ठुर और पर पीड़ाकारी प्रयोगोंसे रहित हो बत्शील आदिका उपदेश देनेवाली हो, वह सर्वतः योग्य हित, मित, मधुर और मनोहर वाक्यशुद्धि है। वाक्यशुद्धि सभी सम्पदाओंका अध्यय है। (चा. सा./५१/४); (वहु. धा./२३०)

२. भाषा समितिके अतिचार

भ. आः,/बिः,/१६/६२/४ इदं वचनं मम गित्तुं युक्तं न बेति अनालोच्य भाषणं अज्ञास्त्रा वा । अत एवोक्तं 'अपुट्टो दु ण भारेज भासमाणस्स अंतरे' इति अपृष्ठश्रुत्तधर्मतया मुनिः अपृष्ठ इरयुच्यते । भाषासमिति-क्रमानभिज्ञो मौनं गृह्णीयात् इत्यर्थः । एवमादिको भासासमित्यतिः चार; । =यह वचन नोलना योग्य है अथवा नहीं, इसका विचार न कर बोलना, वस्तुका स्वरूप ज्ञान न होनेपर भी बोलना, प्रन्थान्तरमें भी 'अपुट्टो दुण भासेज भासमाणस्स अंतरे' कोई पुरुष बोल रहा है और अपने प्रकरणको, विषय भाख्म नहीं है तो बीचमें बोलना अयोग्य है, जिसने धर्मका स्वरूप सुना नहीं अथवा धर्मके स्वरूपका ज्ञान नहीं ऐसे सुनिको अपृष्ट कहते हैं। भाषासमितिका ऋम जो जानता नहीं वह मौन धारण करे ऐसा अभिप्राय है, इस तरह भाषा समितिके अतिचार हैं।

प. एषणासमिति निर्देश

१. एषणासमितिका छक्षण

म्. आ./१३.३१८ छादालदोससुद्धं कारणजुत्तं विसुद्धणवकोडी। सीदादी समभुत्ती परिसुद्धा एषणासिनदी।१३। उग्गमउप्पादणएसणेहि पिंडं च उविध सर्ज्जं च। सीधंतस्स य मुणिणो परिसुरुभइ एसणासिनदी।३१८। =१, उद्दगमादि ४६ दोषों (दे, आहार/II/४) कर रहित, भूख आदि मेंटना व धर्म साधन आदि कर युक्त, कृत-कारित आदि नौ विकल्पों कर विशुद्ध (रहित) ठडा-गरम आदि भोजनमे राग-द्वेष रहित, समभाव कर भोजन करना, ऐसे आचरण करनेवालेके एषणासिनिति है।१३। २, उद्दगम, उत्पाद, अञ्चन दोषोंसे आहार, पुस्तक, उपिध वसतिकाको शोधनेवाले मुनिके शुद्ध एषणासिनिति है।१३०): (त, सा./६/६)

रा. वा. /१/१/६/१८४/२१ अनगारस्य गुणरत्नसंचयसंवाहिशरीरक्षकिट-समाधिपत्तनं निनीषतोऽक्षम्रक्षणिम्ब शरीरधारणमौषधिम्ब जाठ-राग्निदाहोपशमनिमित्तमन्नाद्यनास्यादे देशकालसामध्यदिविद्याः ष्टमगहितमभ्ययहरतः उद्धगमोत्पादनेषणासंयोजनप्रमाणकारणाङ्गार-धूमप्रत्ययनकोटिपरिवर्जनमेषणासमितिरिति समाख्यायते। च्युण-रत्नोंको ढोनेवाली शरीरक्षपी गाड़ीको समाधि नगरकी ओर ले जानेकी इच्छा रखनेवाले साधुका जठराग्निके दाहको शमन करनेके लिए औषधिकी तरह या गाड़ीमें ओगन देनेकी तरह अन्नादि आहारको निना स्वादके ग्रहण करना एषणासमिति है। देश, काल और प्रत्यय इन नव कोटियोंसे रहित आहार ग्रहण किया जाता है। (चा. सा./६७/३), (ज्ञा./१०-११), (अन. घ्र./४/१६७)।

२. एषणासमितिके अतिचार

म. आ./वि./१६/६२/७ उद्दर्गमादिद्ये गृहीतं भोजनमनुमननं वचसा, कायेन वा प्रशंसा, तैः सह वासः, क्रियासु प्रवर्तनं वा एषणासमिते- रतीचारः । — उद्दर्गमादि दोषोसे सहित आहार लेना, मनसे, वचनसे, ऐसे आहारको सम्मति देना, उसकी प्रशंसा करना, ऐसे आहारकी प्रशंसा करनेवालोंके साथ रहना, प्रशंसादि कार्यमें दूसरोंको प्रवृत्त करना। एषणासमितिके अतिचार है।

६. आदान निश्लेपण समिति निर्देश

१. आदान निक्षेपण समितिका रूक्षण

्. आ./१४,३१६,३२० णाणुयहिं संजमुयहिं सौजुयहिं अण्णमण्यमुयहिं वा । पप्रदं गहणणिवखेत्रो समिदी आदाणणिवस्त्रेवा ।१४। आदाणे णिवखेवे पडिलेहिय चवरतुणा पमॐजेडको । दब्बं च दब्बठाणं सजम-लद्भीए सो भिक्ष्यू ।३१६। सहसाणा भोइददुष्पमिज्जिदअपच्चु-वेश्रत्यणा दोसा । परिहरमाणस्स हवे समिदी आदाणणिवस्त्रेवा ।३२०। =१. ज्ञानके उपकरण, संयमके उपकरण तथा शौचके उपकरण, व अन्य सांथरे आदिके निमित्त उपकरण, इनका यत्नपूर्वक उठाना, रखना वह आदान निक्षेपण समिति है । (नि. सा./६४)। २. प्रहण और रखनेमैं पीछो, कमण्डलु आदि वस्तुको तथा वस्तुके स्थानको अच्छो तरह देखकर पोछोसे जो शोधन करता है बह भिक्षु कहनाता है, यही आदान निक्षेपण समिति है १६१६। (भ. आ./मू./१९१८), (त. सा./६/१०) शीघतासे त्रिना देखे, अनादरसे, बहुत कालसे रखे उपकरणोंका उठाना-रखना स्वरूप दोवोंका जो स्याग करता है उसके आदाननिक्षेपण समिति होती है। १२०।

रा. वा./१/४/०/४१४/२५ धर्माविरोधिनां परानुपरोधिनां द्रव्याणां ज्ञानादिसाधनानां ग्रहणे विसर्जने च निरीक्ष्य प्रमुख्य प्रवर्त्तनमादान-निक्षेपणा समितिः । =धर्माविरोधी और परानुपरोधी ज्ञान और संयमके साधक उपकरणोको देखकर और शोधकर रखना और उठाना आदाननिक्षेपण समिति है। (चा. सा./७४/२), (ज्ञाः/१८/-१९-१३), (अन. ध./४/१६८/४६६)।

२. आदान निक्षेपण समितिके अतिचार

भ. आ./वि./१६/६२/- आदातव्यस्य, स्थाप्यस्य वा अनालोचनं, किमन्न जन्तवः सन्ति न सन्ति वेति दुःप्रमार्जनं च आदाननिक्षेपणसमित्य-तिचारः। = जो वस्तु लेनी है, अथवा रखनी है वह लेते समय अथवा रखते समय, इसमें जीव हैं या नहीं इसका ध्यान नहीं करना तथा अच्छी तरह जमीन वा वस्तु स्वच्छ न करना आदान-निक्षेपण समितिके अतिचार हैं।

७. प्रतिष्ठापन समिति निर्देश

१. प्रतिष्ठापन समितिका लक्षण

मू. आ./१४,३२१-३२४ एगंते अचित्ते दूरे पूढे विसालमविरोहे । उचा-रादिचाओ पदिठावणिया हवे समिदी।१६१ वणदाहिकसिमसिकदे थंडिक्लेणुपरोधे विस्थिण्णे । अवगदजंतु विवित्तं उच्चारादी विसङ्जेङ्जो ।३२१। उचारं पस्सवण्णं खेलं सिंघाणयाधियं दव्यं । अचित्तभू मिदेसे पडिलेहित्ता विसङ्जेङ्जो ।३२२। रादो दु पमिजला पण्णसमणपेक्खिदम्मि ओगासे । आसंकिबसुद्धीए अपहरथगफासणं कुजाः। ३२३। जदि तं हवे असुद्धं विदियं तदियं अणुष्णवे साह । लघुए अणिळायारे ण देज साधम्मिए गुरुयो ।३२४। पदिठवणा-समिदीवि य तेणेव कमेण विणवा हो दि । वोसरणि उर्ज दर्ध कुथंडिते वोसरत्तस्स ।३२५। = १. एकान्तस्थान, अचित्तस्थान, दूर, छिपा हुआ, नित तथा छेदरहित चौड़ा, और जिसकी निन्दा व विरोध न करे ऐसे स्थानमें मूत्र, विष्ठा आदि देहके मलका क्षेपण करना प्रतिष्ठापना समिति कही गयी है ।१४। (नि.सा./६४), (झा./१८/१४ । २. दावाग्निसे दग्धप्रदेश, हलकर जुता हुआ। प्रदेश, मसान भूमिका प्रदेश, खार सहित भूमि, स्रोग जहाँ रोकें नहीं, ऐसा स्थान, विशास स्थान, त्रस जीवोंकर रहित स्थान, जनरहित स्थान—ऐसी जगह मूत्रादिका स्याग करे।३२१। (भ.आ./मू./११६६), (त.सा./६/११), (अन. घ./४/१६८/४६७) ३. विष्ठा, मूत्र, कफ, नाकका मेल, आदिको हरे तृण आदिसे रहित प्राप्तक भूमिमें अच्छी तरह देखकर निक्षेण्ण करे।३२२। रात्रिमें आचार्यके द्वारा देखे हुए स्थानको आप भी देखकर मुत्रादिका क्षेपण करे। यदि वहाँ सूक्ष्म जीवोंकी आशंका हो तो आशंकाकी विशुद्धिके लिए कोमल पोछाको लेकर हथेलीसे उस जगहको देखे।३२३। यदि पहलास्थान अशुद्ध होतो दूसरा, तीसरा आदि स्थान देखे। किसी समय रोग पीड़ित होके अथवा शीघतासे अशुद्ध प्रदेशमें मल छूट जाये तो उस धमरिमा साधुको प्रायश्चित्त न दे ।३२४। (अन. ध-/४/१६६) उसी कहे हुए क्रमसे प्रतिष्ठापना समिति भी वर्णन की गयी है उसी क्रमसे त्यागने योग्य मल-मूत्रादिको उक्त स्थण्डल स्थानमें निक्षेपण करें। उसीके अतिष्ठापना समिति शुद्ध है ।३२५।

रा. वा./१/५/८/५१४/२० स्थात्रराणी जङ्गमानां च जीवादीनाम् अविरोधेनाङ्गमलनिर्हरणं वारीरस्य च स्थापनम् जन्मगसिनि- रवगन्तव्या । च्जहाँ स्थावर या जंगम जीवोंको विराधना न हो ऐसे निर्जन्तु स्थानमें मत-मूत्र आदिका विसर्जन करना और शरीरका रखना उत्सर्ग समिति है। (चा. सा./७४/३)।

२. मतिष्ठापना शुद्धिका लक्षण

रा. वा, १६/६/६६/५६%/३२ प्रतिष्ठापनशुद्धिपरः संयतः नखरोमसिङ्घाण-किन्छीवनशुकोच्चारप्रसवणशोधने देहपरित्यागे च विदितदेशकालो जन्तूपरोधमन्तरेण प्रयतते । = प्रतिष्ठापन शुद्धिमें तत्पर संयत देश और कालको जानकर नख, रोम, नाक, धूक, वीर्य, मल, सूत्र या देह परित्यागमें जन्तु बाधाका परिहार करके प्रवृत्ति करता है। (चा.सा./५०/१)।

३. प्रतिष्ठापना समितिके अतिचार

भा, आ / वि./१६/६२/६ कायभूम्यशोधनं, मलसंपातदेशानिरूपणादि, पतनसंनिवेशदिनकरादिष्ठकामेण वृत्तिश्च प्रतिष्ठापनसमित्यतिचारः। = शरीर व जमीन पिच्छिकासे न पोछना, मल-पूत्रादिक जहाँ क्षेपण करना है वह स्थान न देखना इत्यादि प्रतिष्ठापना समितिके अतिचार हैं।

[्]२. निश्चय व्यवहार समिति समन्वय

१. समितिमें सम्यग् विशेषणकी आवश्यकता

- स. सि./१/४/११/१६ सम्यग् इत्यनुवर्तते । तेनेर्यादयो विशेष्यन्ते । सम्यगीर्या सम्यग्भाषा ''इति । —यहाँ 'सम्यक्' इस पदकी अनुवृत्ति होती हैं । उससे ईर्यादिक विशेष्यपनेको प्राप्त होते हैं — सम्यगीर्या सम्यग्भाषा ''इत्यादि । (रा. वा./१/४/४/४१३/३२)।
- भ. आ./वि /११६/२६७/१ सम्यग्विशेषणाञ्जीवनिकायस्वरूपज्ञान-श्रद्धानपुरस्सरा प्रवृत्तिर्गृहीता । = इस (सिमितिके) लक्षणमें जो सिमितिका सम्यक् यह विशेषण है उसका भाव ऐसा है-जीवोंके भेद और उनके स्वरूपके ज्ञानके साथ श्रद्धान गुण सिहत जो पदार्थ उठाना, रखना, गमन करना, बोलना इत्यादि प्रवृत्ति की जाती है वही सम्यक् है।
- पु. सि. उ./२०३ सम्यागमनागमनं सम्याभाषा तथेषणा सम्यक्। सम्याग्रहणनिक्षेपो व्युत्सर्गः सम्यागिति समितिः ।२०३। — भले प्रकार गमन-आगमन, उत्तम हित्तिनितं रूप वचन, योग्य आहार-का ग्रहण, पदार्थौका यत्नपूर्वक ग्रहण-विसर्जन, भूमि देखकर मुत्रादिका मोचन; नामका सम्याव्युत्सर्ग, ये पाँच समिति हैं।

. २. प्रभाद न होना ही सची समिति है

मो, मा, प्र./७/३३६/१० बहुरि परजीवनिकी रक्षाकै अर्थ यत्नाचार अवृत्ति ताकों समिति मानें हैं। सो हिंसाके परिणामनितें तौ पाप हो है, अर रक्षाके परिणामनितें संवर कहोगे, तौ पुण्यबंधका कारण कौन उहरेगा। बहुरि एषणासमिति विषें दोष टाले हैं। तहाँ रक्षाका प्रयोजन है नाहीं। तातें रक्षा ही कै अर्थ समिति नाहीं है। तौ समिति कैसें हो है—मुनिनकें किंचित् राग भए गमनादि किया हो है। तहाँ तिन कियानिविषें अति आसक्तताके अभावतें प्रमादरूप प्रवृत्ति न हो है। बहुरि और जीवनिकीं दुखी करि अपना गमनादि प्रयोजन न साधे है। तातें स्वयमेव ही दया पले है। ऐसे साँची समिति है।

३. समितिका उपदेश असमर्थजनोंके लिए है

स. सि./१/४१९/७ की उत्थानिका--तत्राशक्तस्य मुनैर्निरवद्यप्रवृत्ति -रूयापनार्थमाह--। = गुप्तिके पालन करनेमें अशक्त मुनिके निर्दोष प्रवृत्तिकी प्रसिद्धिके लिए आगेका सूत्र कहते हैं। (रा. वा./१/६/-१/६४/१६); (त, सा./६/६)।

४. समितिका प्रयोजन अहिंसात्रतकी रक्षा

- स, सि./१/४/१११/१० ता एताः पञ्च समितयो विदितजीवस्थानादि-विधर्मुनेः प्राणिपीङ्गपरिहाराभ्युपाया वेदितव्याः । = इस प्रकार कही गयी ये पाँच समितियाँ जीव स्थानादि विधिको जाननेवाले मुनिके प्राणियोंकी पीङ्गको दूर करनेके उपाय जानने चाहिए।
- ला. सं./१/१८ यथा समितयः पञ्च सन्ति...। अहिंसावतरक्षार्थं कर्तव्या देशतोऽपि तैः ११८१। = अहिंसा वतकी रक्षा करनेके लिए शावकोंको पाँच समितियोंका पालन अवश्य करना चाहिए।

५. समिति पालनेका फल

- भ. आ./मू./१२०१ पडमणिपत्तं व जहा उदयेण ण लिप्पदि सिणेहगुण-जुत्तं। तह समिदीहिं ण लिप्पइ साधू काएसु इरियंतो।१२०१। = स्नेहगुणसे युक्त कमलका पत्र जलसे लिप्त होता नहीं है तहत् प्राणियोंके शरीरमें विहार करनेवाला यतिराज समितियोंसे युक्त होनेसे पापसे लिप्त होता नहीं।
- स. सि./१/४११/११ प्रवर्त मानस्थासंयमपरिणामनिमित्तकमित्रवारसं-वरो भवति। च इस प्रकारसे (सिमितिपूर्वक) प्रवृत्ति करनेवातिके असंयम रूप परिणामोंके निमित्तसे जो कर्मोंका आक्षव होता है उसका संवर होता है।

समीकरण-Equation.

समुच्छित्र क्रिया निवृत्ति शुक्लध्यान — दे. शुक्लध्यान । समुत्पत्तिक बन्धस्थान — दे. अनुभाग/१ ।

समुद्धात-- १. समुद्धात सामान्यंका लक्षण

- रा. बा./१/२०/१२/००/१२ हन्तेर्गमिक्रियात्वात् संभ्र्यात्मप्रदेशानां च बहिरुद्दहननं समुद्द्धातः । =वेदना आदि निमित्तोंसे कुछ आत्म-प्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलना समुद्द्धात है। (गो. जी./जी. प्र./५४३/६३६/३)
- धः १/१.१.६०/३००/६ घातनं वातः स्थित्यनुभवयोर्विनाशः इति यावत ।
 ...उपरि घातः उद्द्यातः, समीचीन उद्द्यातः समुद्रशातः । = (केविल समुद्रशातके प्रकरणमें) घातने रूप धर्मको घात कहते हैं, जिसका प्रकृतमें अर्थ कमोंको स्थिति और अनुभागका विनाश होता है।... उत्तरोत्तर होनेवाले घातको उद्द्यात कहते हैं, और समीचीन उद्द्यातको समुद्रशात कहते हैं।
- गो. जो./मू /६६८ मूलसरीरमछंडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स। निग्ग-मणं देहादो होदि समुग्वादणामं तु ।६६८। = मूल शरीरको न छोड़कर तैजस कार्मण रूप उत्तर देहके साथ-साथ जीव प्रदेशोंके शरीरसे बाहर निकलनेको समुद्धात कहते हैं। (प्र. सं./टी./१०/२६ में उद्दश्त)

२. समुद्धातके भेद

्वं, सं./प्रा./१/१६६ वेयण कसाय वेउव्तिय मारणंतिओ समुग्वाओ।
तेजाहारो छट्टो सत्तमओ केवलीणं च ।१६६। —वेदना, कषाय,
वेक्रियक, मारणान्तिक, तेजस, आहारक और केवलि समुद्धात; ये
सात प्रकारके समुद्धात होते हैं। (रा. वा./१/२०/१२/७७/१२);
(ध. ४/१,३,२/गा. ११/२६); (ध. ४/१,३,२/२६/४); (गो. जी./मू./६६७/१११२); (बृ. द्र. सं./१०/२४/); (गो. जी./जी. प्र./४४३/६३६/१३); (पं. सं./१/३३७)

★ समुद्धात विशेष—दे वह वह नाम।

३. गमनकी दिशा सम्बन्धी नियम

दे. मरण/१/७ [मारणान्तिक समुद्रघात निश्चयसे आगे जहाँ उत्पन्न होना है, ऐसे क्षेत्रकी दिशाके अभिमुख होता है, रोष समुद्रघात दशों दिशाओं में प्रतिबद्ध होते हैं।]

रा. वा./१/२०/१२/७७/२१ आहारकमारणान्तिकसमुद्दघातावेकि दिक्की ।

यत आहारकशरीरमात्मा निर्वर्तयन् श्रीणगितित्वात एकदिकानारमदेशानसंख्यातान्निर्गमय्य आहारकशरीरमरित्नमात्रं निर्वर्तयति ।

अन्यक्षेत्रसमुद्धधातकारणाभावात् यत्रानेन नरकादाबुत्पत्तव्यं तत्रेव

मारणान्तिकसमुद्धधातेन आत्मप्रदेशा एकदिकाः समुद्धधन्यन्ते, अत
स्तावेकदिक्की । शेषाः पञ्च समुद्धधाताः षष्ट्धिकाः । यतो वेदनादि-

समुद्र्घातवशाद वहिर्निःमृतानामारमप्रदेशाना पूर्वापरदक्षिणोत्तरो-ध्विधोदिक्षु गमनमिष्टं श्रेणियतित्वादारमप्रदेशानास्। = आहारक और मारणान्तिक समुद्र्घात एक ही दिशामें होते हैं। (गो. जी./मू./-६६१) क्यों कि आहारक शरीरकी रचनाके समय श्रेणि गति होनेके कारण एक ही दिशामें असंख्य आत्मप्रदेश निकलकर...आहारक शरीरको बनाते हैं। मारणान्तिकमें जहाँ नरक आदिमें जीवको मरकर उत्पन्न होना है वहाँकी ही दिशामें आत्मप्रदेश निकलते हैं। शेष पाँच समुद्र्घात छहाँ दिशाओंमें होते हैं। क्योंकि बेदना आदिके वशसे बाहर निकले हुए आत्मप्रदेश श्रेणोके अनुसार ऊपर, नीचे, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण इन छहाँ दिशाओंमें होते हैं।

४, अवस्थान काल सम्बन्धी नियम

रा. वा./१/२०/१२/७७/२६ वेदना-कषाय-मारणान्तिकतेजो-वैक्रियिका-हारकसमुद्द्याताः षडसंख्येयसमयिकाः। केवलिसमुद्द्यातः अष्ट-समयिकः। = वेदनादि छह समुद्द्यातोका काल असंख्यात समय है। और केवलिसमुद्द्यातका काल आठ समय है। [विशेष-दे-केवली/७/८]।

५. समुद्धातोंके स्वामित्व विषयक ओघ आदेश प्ररूपणा (४. ४/१,२,३-२/३८-४०)

좌,	गुणस्थान	£/8/£	नेदना	घ. ४/यु.	क्षाय	в. 8/ д .	मारणान्तिक	r. 8/g.	नेस्थिक	घ, ४/पृ.	त बस	घ. ४/पृ.	आहारक	¥, 8/§.	केवली
१	मिथ्यादृष्टि सासादन	४३ ४ १	₹	४ ३ ४१	 ह†	४३	ह"	३८ ४ १	हाँ	ş¤	नहीं	३ ⊄	नहीं	ą≠	नहीं
3	सिश्र	9 Ç	,,) ° {	**	'· ૪૧	ा नहीं ′	,,] "	',	, 1°,	,,	,,	,,	17
8	असं यत	51	**	11	,,	83	हाँ	11	''	,,	10	77	,,	,,	,,
4	संयतासंयत	88	,,	૪૪	٠,	88	,,,	૪૪	١.,.	,,	,,	11	,,	1,	4,
ŧ	प्रमन्त ः	४६	11	પ્રક્	**	४६	,1	४६	٠,,	४४	हाँ	४७	हौँ	11	,,,
છ	अप्रमत्त	৪৩	नहीं	<i>১</i> /০	नहीं	૪૭	,,,	<i>মু</i> ড	नहीं ।	४७	नहीं	13	नहीं	,,	۱,,
द	अपूर्व. क, उप.	٠,	,,	v	"	11	,,	11	٠,,	.1	"	"	11	*,	71
8	,, ,, क्षपक	*1	17	37	,,	•1	नहीं	*1	٠,	1)	19	17	39	71	**
१०	६-११ उप.	"	79	,,	,,	71	,,	11	79	٠,٠	,,	11	,,	11	,,
११	१-११ क्षपक	**	,,	٠,,	79	19	,,	71	1,	11	,,	,1	"	,,	,,
१२	क्षीणकषाय	11	,,	,,	11	11	,,	•1	,,	,,	,,	٧.	1,	,,	,,
१३	संयोगी	17	. ,,	71	,,	19	,,	11	` ,	17	,	.,	,,	४८	हाँ
१४	अयोगी	,1	,,	"	,,	71	,1	77	٠,,	97	١,, [19	11	80	नहीं

समुद्दिश्च अक्ष संचार गणितमें अक्ष या भंगके नामके आधारपर संख्या बताना समुद्दिष्ठ है। विशेष-दे, गणित/II/३/१,२।

समुद्देश - उद्दिष्ट आहारका एक भेद-दे, उद्दिष्ट ।

समुद्र---१. दे. सागर; २. मध्य लोकमें स्थित समुद्र--- दे, लोक/६: ३. समुद्रके नकरो -- दे, लोक/७।

समुद्रगुत—मगधदेशकी राज्य बंशावलीके अनुसार यह गुप्तवंशी राजाओंका दूसरा राजा था। समय—वी. नि.८६६-१०१ (ई. ३३०- ३७६)—दे. इतिहास/२/४।

समुद्रविजय—ह. पु./सर्ग/श्लोक अन्धकवृष्णिका पुत्र था। तथा कृष्णके ताऊ थे। (१८/१२-१४) आदिनाथ भगवात्के पिता थे (३८/६; ४८/४३-४४) अन्तमें दीक्षा धारण कर (६१/६) गिरनार पर्वतपर-से मोक्ष प्राप्त किया (६४/१६)।

सम्मेदाचल माहात्म्य — पं. मनरंगलाल (ई, १७६३-१८४३) द्वारा विरचित भाषा छन्द बक्ष कृति।

सम्यक् स. सि./१/१/१/३ सम्यगित्यव्युत्पन्नः शब्दो व्युत्पन्नो वा। अञ्चतः क्वौ समञ्चतीति सम्यगिति । अस्यार्थः प्रशंसा। = 'सम्यक्' शब्द अव्युत्पन्न अर्थात् रौढिक और व्युत्पन्न अर्थात् व्याकरण सिद्ध है। 'सम्' उपसर्ग पूर्वक अञ्च धातुसे निवम् प्रत्यय करनेपर 'सम्यक्' शब्द बनता है। संस्कृतमें इसकी व्युत्पत्ति 'समञ्चति इति सम्यक्' इस प्रकार होती है। इसका अर्थ प्रशंसा है।

रा. वा./१/२/१/१८/४ सम्यिग्रियमं निपातः प्रशंसार्थोः विदित्तव्यः सर्वेषां प्रशस्त रूपातिजातिकु जायुर्विज्ञानादीनाम् आभ्युद्यकानां मोक्षस्य च प्रधानकारणत्वात्। ... "सम्यिगष्टार्थतत्त्वयोः" इति वचनाय प्रशंसार्थाभाव इतिः तत्रः अनेकार्थत्वात्रिपातानाम्। अथवा, सम्यिगिति तत्त्वार्थो निपातः, ... अविपरीतार्थविषयं तत्त्विमत्युच्यते। अथवा कव्यन्तोऽमं शब्दः समञ्चतीति सम्यक्। यथा अर्थोऽवस्थि सस्यक् वावण्च तिर्वार्थः। स्थम्यक् यह प्रशंसार्थक शब्द (निपात) है। यह प्रशस्त रूप, गति, जाति, आयु विज्ञानादि अम्युद्य और निःश्रेयसका प्रधान कारण होता है। 'सम्यिग्रिधंतत्त्वयोः' इस प्रमाणके अनुसार सम्यक् शब्दका प्रयोग इष्टार्थ और तत्त्व अर्थमें होता है अतः इसका प्रशंसार्थ उचित नहीं है, इस शंकाका समाधान यह है कि निपात शब्दोंके अनेक अर्थ होते हैं। अथवा 'सम्यक्'का अर्थ तत्त्व भी किया जा सकता है। ... अथवा यह विवप् प्रत्ययान्त शब्द है। इसका अर्थ है जो पदार्थ जैसा है उसे वैसा ही जाननेवाला।

सम्यक्चारिश्र-दे, चारित्र।

सम्यक्तव — हे, सम्यग्दर्शन ।

सम्यक्त कौमुदी-अा. शुभचन्द्र (ई. १४१६-१४६६) द्वारा रचित एक आध्यात्मिक ग्रन्थ।

सम्यक्त्व क्रिया-दे. क्रिया/३/२।

सम्यक्तवप्रकृति—हे, मोहनीय/२। (ई. १४१६-१४५६) द्वारा

सम्यक्त्व लाउंध--हे, लव्धि/१/३।

सम्यक्तववाद--दे, अद्धानवाद ।

सम्यक्त्वाचरणचारित्र—हे, स्वरूपाचरणचारित्र ।

सम्यक् नय-दे. नय/II।

सम्यक् प्रकृति—दं. मोहनीय/२।

सम्यक मिथ्यात्व गुणस्थान-हे, मिश्र।

सम्यगनेकांत - दे. अनेकान्त/१।

सम्यगेकांत—दे. एकान्त/१ सम्यग्जान—दे. ज्ञान/III।

सम्यादर्शन - दुर्भिनिवेश रहित पदार्थिका श्रद्धान अथवा स्वात्म प्रत्यक्षपूर्वक स्व-पर भेदकाया कर्तव्य-अकर्तव्यका विवेक सम्यग्-दर्शन कहा जाता है। किन्हींको यह स्वभावसे ही होता है और किन्हींको उपदेशपूर्वक। आज्ञा आदिकी अपेक्षा यह दश प्रकारका तथा कर्मोंके उपशम, क्षय, क्षयोपशमकी अपेक्षा तीन प्रकारका होता है। इनमें-से पहले दो अत्यन्त निर्मल व निश्चल होते हैं, पर तीसरेमें समल होनेके कारण कदाचित् कुछ अतिचार लगने सम्भव हैं। रागके सद्भाव व अभावकी अपेक्षा भी इसके सराग व वीतराग दो भेद हैं। तहाँ सराग तो प्रशम, संवेग आदि गुणोंके द्वारा अनुमानगम्य है और वीतराग केवल स्वानुभवगम्य है। सभी भेद निःशंकित आदि आठ गुणोंसे भूषित होते हैं। सम्यक्त व ज्ञानमें महाच् अन्तर होता है जो सूक्ष्म विचारके बिना पकड़में नहीं आता । जितनी भी विकल्पात्मक उपलब्धियाँ, श्रद्धा, अनुभव आदि हैं वे सब ज्ञानरूप हैं, सम्यग्दर्शन तो निर्विक उप होनेके कारण अन्तरमें अभिप्राय या लब्धरूप अवस्थित मात्र रहा करता है। मोक्षमार्गमें इसका सर्वोच्च स्थान है, क्यों के इसके बिनाका आगम ज्ञान, चारित्र, बत, तप आदि सब वृथा हैं। सम्यादर्शनके लक्षणोंमें भी स्वारम संवेदन सर्वप्रधान है, क्योंकि विना इसके तत्त्वोंकी श्रद्धा आदि अकिचित्कर है। ये सम्यग्दर्शन स्वतः या किसीके उनदेशसे, या जातिस्मरण, जिनिबन्बदर्शन आदिके निभित्तसे काल पाकर भव्य जीवोंको उत्पन्न होता है। इसको प्राप्त करनेकी योग्यता केवल संज्ञी पर्याप्त जीवोंमें चारों ही गतियों में होती है। अनादि मिथ्यादृष्टिको सर्वप्रथम प्रथमोशम सम्यक्त्व होता है। वहाँसे नियमसे गिरकर वह पुनः मिध्यारवको प्राप्त हो जाता है। पोछे कदाचित् वेदक-सम्यक्त्वको और तत्पूर्वक यथायोग्य गुणस्थानोंमें द्वितीयोपशम् व क्षायिक हो जाता है। क्षायिक सम्यग्दर्शन अत्यन्त अचल व अप्रतिपाती है, तथा केवली-के पारमूलमें मनुष्योंको ही होना प्रारम्भ होता है। पीछे यदि मरण हो जाये तो चारों गतियों में पूर्ण होता है।

सम्यग्दर्शन सामान्य निर्देश

- १. सामान्य सम्यग्दर्शन निर्देश
- * सम्यग्दर्शन सामान्यका लक्षण । -- दे सम्य / II/१।
- १ सम्यग्दर्शनके भेद ।
- * सम्यक्तवमार्गणाके भेद । इ. सम्यग्दर्शन/IV/१।
- * निसर्गंज व अधिगमजके लक्षणादि । —दे. अधिगम ।
- * निश्चय व्यवहार वसराग वीतराग भेदा —दे, सम्मा/II।
- * उपश्चमादि सम्यक्तव ।
- --दे. सम्य./IV ।
- र अाज्ञा आदि १० मेदोंके छक्षण ।
- 🔾 आशा सम्यक्त्वकी विशेषताएँ।
- ४ सम्यन्दर्शनमें 'सम्यक्' शब्दका महत्त्व ।
- ५ | सम्यग्दर्शनमें दर्शन शब्दका अर्थ।
 - १. सत्तामात्र अवलोकन इष्ट नहीं है।
 - २. कथंचित सत्तामात्र अवलोकन इष्ट है।
 - ३. व्यवहार सक्षणमें 'दर्शन' शब्दका अर्थ अखा है।
 - उ. उपर्यक्त दोनों अथीका समन्वय ।
 - श्रद्धान व अन्धश्रद्धान सम्बन्धी । 💢 🗕 दे, श्रद्धान ।

*	मार्गणाओं व पर्याप्त अपर्याप्तमें सम्यग्दर्शनका स्वामित्व
	व तद्गत शंकाएँ। —दे, वह वह नाम।
*	सम्यक्त्वके स्वामित्वमें मार्गणा गुणस्थान आदि २०
	मरूपणाएँ। —हे. सत्।
*	सम्यक्तव सम्बन्धी सत् , संख्या, क्षेत्र , रार्शन, काल ,
	अन्तर, भाव व अल्पबहुत्वरूप ८ मरूपणाएँ।
	दे. वह वह नाम।
*	सभी मार्गणाओंमें आयके अनुसार ही व्यय होनेका
*	नियम । —दे. मार्गणा । प्रथम सम्यग्दर्शनके प्रारम्भ सम्बन्धी ।
*	—दे. सम्यः/IV/२।
ξ	सम्यग्दर्शनके अपर नाम ।
હ	सम्यक्तवकी पुनः-पुनः प्राप्ति व विराधना सम्बन्धी
	नियम ।
*	सम्यग्दर्शनमें कर्मोंके बन्ध, उदय, सत्त्व सम्बन्धी ।
	— दे, यह यह नाम ।
2	सम्यग्दर्शनके अंग व अतिचार आदि
₹	सम्यग्दर्शनके आठ अंगोंके नाम ।
٠ ع	आठों अंगोंकी प्रधानता।
*	निश्चय व्यवहार अंगोंकी मुख्यता-गौणता ।
	—दे. सम्य./III ।
₹	सम्यग्दर्शनके अनेको गुण ।
R	सम्यग्दर्शैनके अतिचार ।
*	घांका अतिचार व संशय मिथ्यात्वमें अन्तर ।
	—दे, संशय/१। सम्यग्दर्शनके २५ दोष ।
u ,	सम्यन्दरानक २५ दाव । कारणवश सम्यक्त्वमें अतिचार छगनेकी सम्भावना ।
Ę	कारणवरा सम्बन्धन जातवार द्रमानका सम्मानका
3	सम्यग्दर्शनकी प्रत्यक्षता-परोक्षता
	छद्मस्योंका सम्यक्त्व भी सिद्धोंके समान है।
१ २	सम्बन्दर्शनमें कथंचित् स्व-पर गम्यता ।
*	सम्यग्दृष्टिको अपने सम्यन्त्वके छिए किसीसे पूछनेकी
777	आवश्यकता नहींदे, अनुभव/४/३।
₹	वास्तवमें सम्यन्दर्शन गुण नहीं बल्कि प्रशमादि गुण
,	ही मत्यक्ष होते हैं।
8	सम्यक्तव वास्तवमें प्रत्यक्षशान गम्य है।
ષ	सम्यक्त्वको सर्वथा केवलझानगम्य कहना युक्त नहीं।
43	
8	सम्यक्त्वका ज्ञान व चारित्रके साथ भेद
१	श्रद्धान आदि व आत्मानुभूति वस्तुतः सम्यक्त नहीं
	शानकी पर्याय है।
२	पशम आदि शानरूप नहीं बल्कि सम्यक्त्वके कार्य हैं।
३	प्रशमादि कथंचित् सम्यग्ज्ञानके भी ज्ञापक हैं।

8	स्वात्मानुभृतिके शान व सम्यक्तवरूप होने सम्बन्धी समन्वय ।
ų	अनुभृति उपयोगरूप होती है और सम्यक्त रूब्धरूप।
*	
*	सम्यग्दर्शनमें कथंचित् विकल्प व निर्विकल्पता।
	—दे. विकलप/३।
Ę	सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञानमें अन्तर ।
*	सम्यग्दर्शन कर्यंचित् सम्यग्ज्ञानसे पूर्ववर्ती है।
	—दे. झान/ <i>III/२/</i> ४।
*	सम्यग्दर्शनमें नय निक्षेपादिका स्थान ।
1	—दे, न्याय/१/३।
*	सम्यग्दर्शनके साथ शान व वैराग्यका अविनामावी-
"	1
	पना। -दे. सम्यग्दिष्ट/२।
9	सम्यक्तिके साथ चारित्रका कथंचित् भेद-अभेदः।
*	सम्यग्दर्शन-हान-चारित्रमें-कथंचित् एकत्व अनेकत्व।
•	दे, मोक्षमार्ग/२,३।
4,	मोक्षमार्गमें सम्यग्दर्शनकी प्रधानता
8	सम्यग्दर्शनकी प्रधानताका निर्देश ।
ą	सम्यन्दर्शन ही सार, सुखनिधान, व मोक्षकी प्रथम
	सीड़ी है इस्यादि महिमा।
*	सम्यग्दृष्टि नीचकुरू आदिमें नहीं जन्मता ।
	—दे. जन्म/३/१।
ą	सम्यन्दर्शनकी प्रधासतामें हेतु ।
ሄ	सम्यग्दर्शन के पश्चात् भव धारणकी सीमा।
II	निश्चय व्यवहार सम्यग्दर्शन
9	निरचय व्यवहार सम्यक्त्व लक्षण निर्देश
१	सम्यग्दर्शनके दो भेद—निश्चय व्यवहार ।
२	व्यवहार सम्यन्दर्शनके लक्षण ।
•	्र केट कराय न सन् राष्ट्रिकी कराय ।
	१. देव दास्त्र व गुरु धर्मकी श्रद्धा।
	२. आप्त आगम व तत्त्वोंकी शद्धाः
	३. तत्त्वार्थ या पदार्थी आदिका श्रद्धान । ४. पदार्थीका विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान ।
	 व. प्रायान विवास स्थान । इ. यथावस्थित पदार्थों का श्रद्धान ।
	६. तस्वोमें हैय व उपादेय बुद्धि ।
	७ तस्य रुचि ।
	•
*	प्रशमादि गुणोंकी अभिन्यक्ति । — हे सम्यः/11/४/१।
₹	निश्चय सम्यग्दर्शनके छक्षण
	१. उपरोक्त पदार्थीका शुद्धात्मासे भिन्न दर्शन ।
	२, शुद्धारमाकी रुचि।
,	३. अतीन्द्रिय सुखकी रुचि ।
Ì	४. बीतराग सुखस्बभाव ही 'मैं हूँ' ऐसा निश्चय ।
	६. शुद्धारमकी उपलन्धि आदि ।
*	स्वसंवेदन ज्ञान निर्देश। —दे अनुभव।
*	
	सम्यग्दरान व अत्माम कथा चत् एकत्व ।
	सम्यग्दर्शन व आत्मामें कर्याचित् एकत्व । —देः मोक्षमार्ग/२/६।

	·
*	निश्चय व व्यवहार सम्यग्दर्शन ही वीतराग व सराग
	सम्यग्दर्शन है। -दे, सम्यग्दर्शन/1/8/२।
૪	लक्षणमें तरव व अर्थ दोनों शब्द क्यों।
પ	व्यवहार छक्षणोंका समन्वय ।
દ્	निश्चय रुक्षणोंका समन्वय ।
*	आत्मानुभूतिको सम्यन्दर्शन कहनेका कारण। —दे, सम्यन्दर्शन/I/४।
છ	न्यवहार व निश्चय छक्षणींका समन्त्रय ।
२	निइचय व्यवहार सम्यग्दर्शनोंकी कथंचित्
	मुख्यता गौणता
2	स्वभाव भान दिना सम्यक्त्व नहीं।
*	निश्चय नयके आश्रयसे ही सम्यक्तव होता है। —दे. नय/V/३/३।
*	आत्माका जानना ही सर्व जिनशासनका जानना है। — दे. शुत्रकेवली/२/६।
*	आत्मदर्शन रहित श्रद्धान सम्यश्दर्शन नहीं। —दे. अनुभव/३।
२	आत्मानुभवीको ही आठों अंग होते हैं।
3	आठों अंगोंमें निश्चय अंग ही प्रधान है ।
४	श्रद्धान आदि सब आत्माके परिणाम हैं।
પ્	निश्चय सम्यक्तकी महिमा।
६	अद्धानमात्र सम्यग्दर्शन नहीं है।
*	सम्यग्दृष्टिको अन्धश्रद्धानका विधि-निषेध ।
	वे. श्रद्धान/३।
છ	मिथ्यादृष्टिकी श्रद्धा आदि यथार्थं नहीं।
3	निइचय व्यवहार सम्यक्त्व समन्वय
१	नवतस्वींकी श्रद्धाका अर्थ शुद्धात्मतस्वकी श्रद्धा ही है।
*	व्यवहार व निश्चय सम्यवस्वमें केवल भाषाका मेद
	है। —दे, पद्धति/२।
२	न्यवहार सम्यक्त्व निरुचयका साधक है।
ş	तत्त्वार्थंश्रद्धानको सम्यक्त्व कहनेका कारण व
	मयोजन ।
8	सम्यक्त्वके अंगोंको सम्यक्त कहनेका कारण ।
В	सराग वीतराग सम्यक्त्व निर्देश
8	सराग-वीतरागरूप मेद व रुक्षण ।
*	वीतराग व सराग सम्यक्तवकी स्व-परगम्यता । — दे. सम्यग्-/1/३।
₹ :	व्यवहार व निश्चय सम्यक्तवके साथ इन दोनोकी पकार्थता।
₹	सराग व वीतराग सम्यक्तवका स्वामित्व ।

४	इन दोनों सम्यक्तबों सम्बन्धी २५ दोषोंके रुक्षणोंमें
	विशेषता ।
ц	दोनोंमें कथंचित् श्कल्व ।
દ્	इन दोनोंमें तात्त्विक भेद मानना भूछ है।
ঙ	सराग सम्यग्दृष्टि भी कथंचित् वीतराग है।
4	सराग व वीतराग कहनेका कारण प्रयोजन ।
III	सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिके निमित्त
9	सम्यक्त्वके अन्तरंग व बाह्य निमित्तोंका निर्देश
१	निसर्गे व अधिगम आदि ।
ر ع	दर्शनमोहके उपशम आदि ।
8	लिथ आदि ।
Š	द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव रूप निमित्त ।
ů,	जाति स्मरण आदि ।
	उपर्युक्त निमित्तोंमें अन्तरंग व बाह्य विभाग ।
Ę	
₹	कारणोंमें कथंचित् मुख्यता-गौणता व भेद-
	अमेद
₹	कारणोकी कथंचित् मुख्यता ।
à	कारणोंकी कथंचित् गौणता।
3	कारणोंका परस्परमें अन्तर्भाव ।
1	कारणोमें परस्पर अन्तर।
૪	difficult affil And t
3	कारणींका स्वामित्व व शंकाएँ
₹	चारों गतियोंमें यथासम्भव कारण ।
₹	जिनबिम्बदर्शन सम्यक्तवका कारण कैसे ?
ą	ऋषियों व तीर्थक्षेत्रोंके दर्शनोंका निर्देश क्यों नहीं।
8	नरकर्मे जातिस्मरण व वेदना सम्बन्धी ।
ų	नरकोर्मे धर्मश्रवण सम्बन्धी ।
Ę	मनुष्योंमें जिनमहिमा दर्शनके अभाव सम्बन्धी ।
હ	देवोंमें जिनविंब दर्शन क्यों नहीं।
6	आनत आदिमें देविद्धदर्शन क्यों नहीं ।
٩	मनग्रैवेयकोंमें जिनमहिमा व देविद्धेदर्शन क्यों नहीं ?
20	नवंग्रैवेयकोंमें धर्मश्रवण क्यों नहीं।
ıv	उपशमादि सम्यग्दर्शन
9	उपशमादि सामान्य निर्देश
2	सम्यक्त मार्गणाके उपशमादि मेद ।
*	मिथ्यात्वादिका सम्यक्तव मार्गणामे प्रहण क्यों ।
-	—दे. मार्गणा ७।
₹	तीनों सम्पन्तवामें कथंचित् एकत्व ।
*	तीनोंमें कथंचित् अधिगमत व निप्तर्गजपना।
	—दे, सम्य,/III/१/१ ।

*	गतियों व गुणस्थानों आदिमें तीनोंके स्वामित्व व
	शंकाएँ। —दे. वह बह नाम।
*	तीनोंके स्वामित्वमें मार्गणास्थान व गुणस्थान आदि
	रूप २० मरूपणाएँ। = दे. सत्।
*	तीनों सम्बन्धी सत् , संख्या, क्षेत्र, सर्शन, काल,
	अन्तर, भाव व अल्पवहुत्वरूप आठ प्ररूपणाएँ।
	—दे, बह बह नामं।
*	तीनोंके स्वामियोंको कर्मोंका बन्ध, उदय, सत्त्व।
	वै. नह नह नाम।
*	तीनों सम्यक्त्वोंमें यथासंभव भरण संबंधी। —दे. मरण/३।
*	— ५. नरणहरू तीनों सम्यक्त्वोंमें यथासंभव जन्म संबंधी।
	—दे. जन्म/३।
*	तीनों सम्यक्तवोंके परचात् भव धारणकी सीमा ।
	— दे. स म्य./ 1/५/४ ।
*	उपशम व वेदकको पुनः पुनः प्राप्तिकी सीमा।
	— दे. सम्य./ I /१ /७ ।
ą	प्रथमोपशम सम्यक्त निर्देश
ŧ	। उपञम सामान्यका रुक्षण ।
*	उपशम सम्यक्तवकी अत्यन्त निर्मेष्ठता ।
	~दे सम्यग्दर्शन/IV/२/१ 1
વ	उपञ्चम सम्यक्तवका स्वामितव ।
\$	उपशम सम्यक्तको भैद व प्रथमोपशमका लक्षण ।
ሄ	श्रथमोपशमका प्रतिष्ठापक ्ष
	१. गति व जीव समासोंकी अपेक्षा ।
	२, गुणस्थानोंकी अपेक्षा।
	३. जपयोग योग व विशुद्धि आदिकी अपेक्षा।
	४. कर्मोंके स्थितिबन्ध व सत्त्वकी अपेक्षा।
*	भथमोपशमका निष्ठापक।
	—दे. सम्यग्दर्शन/IV/2/४/३।
35 L	जन्मके पश्चात् सम्यक्त्व प्राप्ति योग्य सर्वे छष्ट काल । अनादि व सादि मिथ्यादृष्टिमें सम्यक्तवपाप्ति सम्बन्धी
ق ر.	कुछ विशेषता।
.	प्रथमोपरामसे च्युति सम्बन्धी नियम ।
\ &	गिरकर किस गुणस्थानमें जाने।
*	प्रथमोपशमसे सासादनकी प्राप्ति सम्बन्धो ।
, ,,,	वे, सासादन ।
*	प्रथमोपशममें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका कथं-
	चित् विथि-निषेय। —दे, उपशम/२।
९	पंच लिब्धपूर्वक होता है।
*	दर्शनमोहको उपशम विधि। -दे उपशम/२।
*	गति व गुणस्थानोंका स्वामित्व, सत्, संख्या आदि
	प्ररूपणाएँ, कर्मोंके बन्ध आदि, मरण व जन्म तथा
	संसार स्थिति व पुनः पुनः पाप्तिकी सीमा सम्बन्धी
	नियम ! - दे सम्यादर्शन/IV/१
l j	• • •

मथमोपशमका मनःपर्यय आदिके साथ विरोध। -दे, परिहार विश्वद्धि । प्रारम्भ करनेके पश्चात् अवश्य प्राप्त करता है। १० द्वितीयोपशम सम्यक्त्व निर्देश ₹ ₹ दितीयोपशमका लक्षण । द्वितीयोपशमका स्वामित्व । दितीयोपशम आरोहण कम। -दे. उपशम/३। द्वितीयोपशमका अवरोहण कम । ş दितीयोपशमसे सासादनकी प्राप्ति संबंधी। — दे. सासादन । श्रेणीसे नीचे आकर भी कुछ देर द्वितीयोपशमके साथ ही रहता है। गति व गुणस्थानोंका स्वामित्व, सत्, संख्या आदि प्ररूपणाएँ, कर्मोंके बन्ध आदि, भरण व जन्म, संसार-स्थिति व पुनः पुनः प्राप्तिकी सीमा सम्बन्धी नियम । -- दे. सम्यग्दर्शन/I V/१। 8 वेदक सम्यक्त्व निर्देश वेदक सम्यक्त सामान्यका छक्षण । ş १. क्षयोपशमकी अपेक्षा । २. वेदककी अपेक्षा । × दोनों लक्षणोंका समन्त्रय। - दे. क्षयोपशम/२। कृतकृत्यवेदकका लक्षण। ₹ वेदक सम्यक्तिके बाह्य चिह्न । वेदक सम्यक्तवकी मिलनताका निर्देश । वेदक सम्यक्तवका स्वामित्व । 4 १• गति व पर्याप्तिकी अपेक्षा। २. गुणस्थानोंकी अपेक्षा। ३, उपशम सम्यग्दृष्टि व सादि मिथ्यादृष्टिको अपेक्षा । अनादि मिथ्यादृष्टिको सीधा प्राप्त नहीं होता। Ę वेदक सम्यक्त्व आरोहण विधि। —दे क्षयोपश्चम/३। सम्यक्त्वसे च्युत होनेवाले बहुत कम हैं। च्युत होनेके पश्चात् अन्तर्मृहूर्तसे पहले सम्यक्त्व पुनः प्राप्त नहीं होता । कपरके गुणस्थानों में इसका अभाव क्यों ? कृतकृत्यवेदक सम्बन्धी कुछ नियम । गतियों व गुणस्थानोंमें इसका स्वामित्व, सत्, संख्या अ(दि प्ररूपणाएँ, कर्मोंके बन्ध आदि, मरण व जन्म, तथा संसारस्थिति व पुनः पुनः प्राप्तिकी सीमा सम्बन्धी नियम । -दे. सम्यग्दर्शन/IV/१। क्षायिक सम्यक्त्व निर्देशः ч क्षायिक सम्यग्दर्शनका लक्षण । क्षायिक सम्यक्तको निर्मलता । -दे. सम्यग्दर्शन/IV/४/१।

- २ 🖁 क्षायिक सम्यक्तवका स्वामित्व ।
 - १. गति व पर्याप्तिकी अपेक्षा।
 - २. प्रस्थापक व निष्ठापककी अपेक्षा ।
 - ३. गुणस्थानोंकी अपेक्षा ।
- र तीर्थंकर आदिके सद्भाव युक्त क्षेत्र व कालमें ही सम्भव है।
- तीर्थंकर सत्किमिकको इसकी प्रतिष्ठापनाके लिए
 केवलीके पादमृल दरकार नहीं। —हे. तीर्थंकर/३/१३।
- इसको मितिष्ठापना अदाई द्वीपसे बाहर संभव नहीं।
 तथा तद्वत शंकाएँ। दे. तिर्मेच/२/११।
- 😮 | वेदक सम्यक्तव पूर्वक ही होता है।
- 🛊 दर्शनमोहक्षपण विधि। 💢 🗕 दे, क्षय/२।
- भ क्षायिक सम्यग्दृष्टि संयतासंयत होते हैं पर अत्यंत अल्प।
- तीनों वेदोंमें क्षायिक सम्यक्तवका कथंचित् विधि-निषेध । —दे. वेद/६।
- एकेन्द्रिय या निगोदसे आकर सीधे क्षायिक सम्यक्तव की प्राप्ति सम्बन्धी।
 —दे जन्म/१।
 - गतियों व गुणस्थानोंमें इसका स्वामित्व, सत्, संख्या आदि मरूपणायँ, कर्मोंके बन्ध आदि, मरण व जन्म व संसारस्थिति सम्बन्धी नियम।

-वै. सम्यग्दर्शन/IV/१।

I सम्यग्दर्शन सामान्य निर्देश

१. सामान्य सम्यग्दर्शन निर्देश

१. सम्यग्दर्शनके भेद

स. सि./१/७/२८/४ विधानं सामान्यादेकं सम्यादर्शनम्। द्वितयं निसर्गजाधिगमजभेदात् । त्रितयं औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकभेदात् । एवं संख्येया विकल्पतः शब्दतः । असंख्येया अनन्ताहच-भवन्ति भद्धातृश्रद्धात्व्यभेदात् (अध्यवसायभेदात्—रा. वा.)। भेदकी अपेक्षा सम्यादर्शन सामान्यसे एक है । निसर्गज और अधिगमजके भेदसे दो प्रकारका है (त. सू./१/३)। औपशमिक, क्षायिक व क्षायोपशमिकके भेदसे तीन प्रकारका है। (और भी दे. सम्यादर्शन/IV/१)। शब्दोंकी अपेक्षा संख्यात प्रकारका है, तथा श्रद्धान करनेवालेकी अपेक्षा असंख्यात प्रकारका है, और श्रद्धान करने योग्य पदार्थों व अध्यवसायोंकी अपेक्षा अनन्त प्रकारका है। (रा. वा./१/७/१४/४०/२०): (द.पा./टो./१२/१२/१२)।

रा. वा./३/३६/२/२०१/१२ दर्शनायि दश्या—आझामार्गोपदेशसूत्रज्ञीज-संक्षेपविस्तारार्थावगाउपरमावगाउरुचिभेदात् । च्याज्ञा, मार्ग, उप-देश, सूत्र, बीज, संक्षेप, विस्तार, अर्थ, अवगाउ और परमावगाउ रुचिके भेदसे दर्शनार्य दश प्रकार हैं। (आ. अनु./११); (अन. ध./२/६२/१८५)

२. आज्ञा आदि १० भेदोंके लक्षण

रा बा./3/३६/२/२०१/१३ तत्र भगवदर्हत्सर्बज्ञप्रणीताज्ञामात्रनिमित्त-श्रद्धाना आज्ञारुचयः । निःसंगमोक्षमार्गश्रवणमात्रजनित्रुचयो मार्ग-रुचयः । तीर्थकरवलदेवादिशुभचरितोपदेशहेतुकश्रद्धाना उपदेश-रुचयः । प्रव्रज्यामर्यादाप्ररूपणाचारसृत्रथवणमात्रसमुद्गभूतसम्यग्दर्शनाः सूत्ररुचयः। भीजपद्रप्रहणपूर्वकसूक्ष्मार्थतत्त्वार्थश्रद्धानां वीजरुचयः। जीवादिपदार्थसमासंबोधनसमुद्रभूतश्रद्धानाः संक्षेपरुचयः । अङ्गपूर्व-विषयजीवादार्थं विस्तारप्रमाणनयादिनिरूपणोपसन्धश्रदाना विस्तार-रुचयः। वचनविस्तारविरहितार्थयहणजनितप्रसादा अर्थरुचयः। आचारादिद्वादशाङ्गाभिनिविष्टश्रद्धाना अवगाढरुचयः। परमावधि-केवलञ्चानदर्शनप्रकाशितजीवाद्यर्थविषयास्मप्रसादाः रुचयः। = भगवत् अहँतः सर्वज्ञकी आज्ञामात्रको मानकर सम्यग्द-र्शनको प्राप्त हुए जीव आञ्चारुचि हैं। अपरिग्रही मोक्षमार्गके श्रवण-मात्रसे सम्यग्दर्शनको प्राप्त हुए जीव मार्गरुचि है। तीर्थकर बलदेव आदि शुभचारित्रके उपदेशको सुनकर सम्यग्दर्शनको धारैण करने-वाले उपदेशरुचि हैं। दीक्षा आदिकके निरूपक आचारांगरिंदसूत्रोंके मुननेमात्रसे जिन्हें सम्यादर्शन हुआ है, वे सुत्ररुचि हैं। बोजपदोंके ग्रहणपूर्वक सुक्ष्मार्थ तत्त्वार्थ श्रद्धानको प्राप्त करनेवाले बीजरुचि हैं। जीवादि पदार्थीके संक्षेप कथनसे ही सम्यग्दर्शनको प्राप्त होनेवाले संक्षेपरुचि हैं। अंगपूर्वके विषय, प्रमाण तय आदिके विस्तार कथनसे जिन्हें सम्यग्दर्शन हुआ है वे विस्ताररुचि हैं। वचन विस्तारके विना केवल अर्थ प्रहणसे जिन्हें सम्यादर्शन पूजा है वे अर्थ रुचि हैं। आचा-रांग द्वादशांगमें जिनका श्रद्धान अतिरह है वे अवगाहरु चि हैं। परमा-यधि या केवलज्ञान दर्शनसे प्रकाशित जीवादि पदार्थविषयक प्रकाशसे जिनकी आत्मा विशुद्ध है वे परमाधगाहरुचि हैं।

आ अनु /१२-१४ आङ्कासम्यक्रवसूक्तं यद्तं विरुचितं वीतरागाज्ञ्यैव, रयक्तव्रम्थप्रपञ्च शिवममृतपर्थं अद्दर्धनमोहशान्तेः । मार्गश्रद्धानमाहुः पुरुषवरपुराणोपवेद्गोपजाता, या संज्ञानागमाव्धिप्रसृतिभिरुपदेशादि-रादेशि इष्टिः ।१२। आकण्यचि।रसूत्रं मुनिचरणविधेः सूचनं श्रद्धानः, मुक्तासी सुत्रदृष्टिर्द्र्राधजमगतेरर्थसार्थस्य नीजै:। केश्चिजातोप-लब्धेरसमशमवशाह्मीजदृष्टिः पदार्थात्, संक्षेपेणैव बुद्ध्वा रुचिमुप-गतवान् साधु संसेपद्रष्टिः ।१३। यः श्रुत्वा द्वादशाङ्गी कृतरुचिरथ तं विद्धि विस्तारदृष्टि, संजाताथरिकुर्रोश्चरप्रवचनवचनान्यन्तरेणार्थ-दृष्टिः । दृष्टिः साङ्गाङ्गबाह्यप्रवचनम्बगाह्योस्थिता यावगाढा, कैवदया-लोकितार्थे रुचिरिह परमावादिगाढेति रूढा ११४। =दर्शनमोहके उपशान्त होनेसे ग्रन्थश्रवणके निना केवल वीतराग भगवानकी आज्ञासे ही जो तत्त्वश्रद्धान उरपन्न होता है वह आज्ञासम्यक्त्व है। दर्शन-मोहका उपशम होनेसे प्रन्थश्रवणके बिना जो कश्याणकारी मोक्षमार्ग-का अद्भान होता है उसे मार्ग सम्यग्दर्शन कहते हैं। तिरसठ शनाका-पुरुषोंके पुराण (वृत्तान्त) के उपदेशसे जो तत्त्रश्रद्धान उत्पन्न होती है उसे उपदेश सम्यग्दर्शन कहा है।१२। सुनिके चारित्रानुष्ठानको सूचित करनेवाले आचारसूत्रको सुनकर जो तत्त्वार्थश्रद्धान होता है उसे सुत्रसम्यादर्शन कहा गया है। जिन जीवादिपदार्थीके समृहका अथवा गणितादि विषयोंका ज्ञान वुसंभ है जनका किन्हीं बीजपदोंके द्वारा ज्ञान प्राप्त करनेवाले भव्यजीवके जो दर्शनमोहनीयके असाधारण उपशमवश तत्त्वश्रद्धान होता है उसे बीजसम्यग्दर्शन कहते हैं। जो भव्यजीव पदार्थीके स्वरूपको संक्षेपसे ही जान करके तत्त्वश्रद्धानको प्राप्त हुआ है उसके उस सम्यग्दर्शनको संक्षेप सम्यग्दर्शन कहा जाता है। १३। जो भव्यजीव १२ अंगोंको सुनकर तत्त्वश्रद्धानी हो जाता है उसे विस्सार सम्यग्दर्शनसे युक्त जानो । अंग बाह्य आगमों के पढ़ने के बिना भी उनमें प्रतिपादित किसी पदार्थके निमित्तसे जो अर्थश्रद्धान होता है वह अर्थसम्बग्दर्शन कहलाता है। अंगोंके साथ अंगवाहा श्रुतका अवगाहन करके जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है उसे अवगाइ-सम्यग्दर्शन कहते हैं। केवलज्ञानके द्वारा देखे गये पदार्थी के विषय

में रुचि होती है वह यहाँ परमावगाढ सम्यग्दर्शन इस नाम सै प्रसिद्ध है १९४। (द. पा./टो./१२/१२/२०)।

३. आज्ञा सम्यग्दर्शनकी विशेषताएँ

- गो. जो. जो. प्र. |२०/१६/१२ यः अह दाय पदिष्टं प्रवचनं आप्तागम-पदार्थ त्रयं श्रद्धाति रोचते. तेषु असद्भाव अतत्त्वमि स्वस्य विशेष-ज्ञानश्चन्यत्वेन केवलगुरु नियोगात् अर्द्ध दाद्याञ्चातः श्रद्धाति सोऽपि सम्यग्दिष्टरेव भवति तदाज्ञाया अनित्रमात । — जो व्यक्ति अर्दत आदिके उपदिष्ठ प्रवचनकी या आप्त आगम व पदार्थ इन तीनोंकी श्रद्धा करता है और विशेष ज्ञान श्चन्य होनेके कारण केवल गुरु-नियोगसे या अर्हतकी आज्ञासे अतत्त्वींका भी श्रद्धान कर लेता है वह भी सम्यग्दिष्ट है, वयोंकि, उसने उनकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं किया है। (विशेष दे. श्रद्धान/३)
- अन. ध./२/६३/१८६ देवोऽई न्नेव तस्यैव वचस्तध्यं शिवप्रदः। धर्मस्तदुक्त एवेति निवंन्ध साधयेइ दशम् १६३। चएक अहंत ही देव है और उसका वचन ही सत्य है। उसका कहा गया धर्म ही मोक्षप्रद है। इस प्रकारका अभिनिवेश ही आज्ञासम्यक्तवको सिद्ध करता है। १३।
- ध. १/१,१,१४४/गा. २१२/३६६ छप्पंचणविहाणं अत्थाणं जिणवरोव-इट्ठाणं । आणाए अहिगमेण व सद्दृष्णं होइ सम्मत्तं ।२१२। चिनेन्द्र-देवके द्वारा उपदिष्ठ छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, और नव पदार्थोंको आज्ञा अथवा अधिगमसे श्रद्धान करनेको सम्यक्त्व कहते हैं।२१२। (ध.४/१,६,१/गा. ६/३१६)

४, सम्यादर्शनमें 'सम्यक्' शब्दका महत्त्व

- स. सि./१/१/६/३: सम्यगित्य ज्युरपन्नः शब्दो व्युत्पन्नो वा। अञ्चतः क्वौ समञ्चतीति सम्यगिति। अस्यार्थः प्रशंसा। स प्रत्येकं परिसमाप्यते। सम्यग्द्यानं सम्यग्द्यानं सम्यग्द्यानं सम्यग्द्यानं सम्यग्द्यानं सम्यग्द्यानं सम्यग्द्यानं सम्यग्द्यानं सम्यग्द्यानं सम्यग्द्यानं सम्यग्द्यानं सम्यग्द्यानं सम्यग्द्यानं सम्यग्द्यानं सम्यग्द्यानं अर्थात् व्याकरण सिद्ध है। जब यह व्याकरणसे सिद्ध किया जाता है तब 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'अद्युत्पन्न अर्थात् शित्व करनेपर 'सम्यक् शब्द बनता है। संस्कृतमें इसकी व्युत्पत्ति 'समञ्चति इति सम्यक् शब्द बनता है। संस्कृतमें इसकी व्युत्पत्ति 'समञ्चति इति सम्यक् इस प्रकार होती है। प्रकृतमें इसका अर्थ प्रशंसा है। सूत्रमें आये हुए इस शब्दको दर्शन, ज्ञान और चारित्र इनमें-से प्रत्येक शब्दके साथ जोड़ लेना चाहिए। यथा—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र। पदार्थोंके यथार्थ ज्ञान मूलके श्रद्धानका संग्रह करनेके लिए दर्शनके पहले सम्यक् विशेषण दिया है। (रा. वा./१/१/३६/१०/६)
- पं. धः/उः/४९७ सम्यङ्मिध्यात्रिशेषाभ्यां विना श्रद्धादिमात्रकाः। सपक्षवद्भिपक्षेऽपि वृत्तित्वाइव्यभिचारिणः।४९७। सम्यक् और मिध्या विशेषणोंके विना केवल श्रद्धा आदिकीः सपक्षके समान विपक्षमें भी वृत्ति रहनेके कारण वे व्यभिचार दोषसे युक्त हैं।

५. सम्यग्दर्शनमें दर्शन शब्दका अर्थ

१. सत्ता मात्र अवलोकन इष्ट नहीं है

द्र. सं./टी./४३/१८६/६ नेदमेव तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणं सम्यग्दर्शनं वक्तव्यम् । कस्मादिति चेत्—तत्र श्रद्धानं विकरण्रूपमिदं तु निर्विकरणं मतः । — इस दर्शनको अर्थात् सत्तावलोकनमात्र दर्शनोपयोगको 'तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शन है' इस सूत्रमें जो तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन कहा गया है, सो न कहना चाहिए । इसका तात्पर्य यह है कि उपरोक्त श्रद्धान तो विकरण्रूप है और यह (दर्शनोपयोग) निर्विकरण है । (विशेष दे. सम्यग्दर्शन/II)।

२. क्यंचित् सत्तामात्रावलोकन भी इष्ट है

- रा. बा./२/७/६/१९०/६ मिथ्यादर्शने अदर्शनस्यावरोधो भवति । निद्रानित्रादीमामिष दर्शनसामान्यावरणस्वात्तत्रैवान्तर्भावः । नतु च तत्त्वार्थाश्रद्धानं मिथ्यादर्शनित्रयुक्तम्; सत्यमुक्तम्; सामान्यनिर्देशे विशेषान्तर्भावात्, सोऽप्येको विशेषः । अयमपरो विशेषः अदर्शनमप्रतिपत्तिमिथ्यादर्शनमिति । मिथ्यादर्शनमें दर्शनावरणके उदयसे होनेवाले अदर्शनका अन्तर्भाव हो जाता है । और दर्शनसामान्यको आवरण करनेवाले होनेके कारण (दे. दर्शन/४/६), निद्रानिद्रा आदिका भी यहाँ हो अन्तर्भाव होता है । प्रश्न तत्त्वार्थके अश्रद्धानको मिथ्यादर्शन कहा गया है । उत्तर वह ठीक ही कहा गया है, वयों कि, सामान्य निर्देशमें विशेषका अन्तर्भाव हो जाता है । तथा दूसरी कात यह है कि अदर्शन नाम अप्रतिपत्तिका है और वही मिथ्यादर्शन है । । अर्थाद स्वपर स्वरूपका यथार्थ अवलोकन न होना हो मिथ्यादर्शन है ।
- दे. दर्शन/१/३ अन्तरंग चित्प्रकाशका नाम अथवा जाननेके प्रति आस्म-प्रयस्तका नाम दर्शनोपयोग है। अथवा स्वरूप संवेदनका नाम दर्शनोपयोग है।
- दे. मोक्षमार्ग/३/६ दर्शन, ज्ञान, चारित्र ये तीनों ही दर्शन व ज्ञानरूप सामान्य व विशेष परिणति है।
- दे. आगे इसी शोर्षकका समन्वय—[लौकिक जीवोंको दर्शनोपयोगसे महिविषयोंका सत्तावलोकन होता है और सम्यग्द्धियोंको उसी दर्शनोपयोगसे आत्माका सत्तावलोकन होता है। दर्शन, श्रद्धा, रुचि ये सब एकार्थवाचक शब्द हैं।

३. व्यवहार लक्षणमें दर्शनका अर्थ अद्धा इष्ट है

- स. सि./१/२/१/३ दृष्टेरालोकार्थत्वाद् श्रद्धार्थगतिनीपपद्यते । घातुनाम-नैकार्थस्वाददोषः। प्रसिद्धार्थस्यागः कुत इति चेन्मोक्षमार्गप्रकरणात्। तत्त्वार्थश्रद्धानं ह्यात्मपरिणामो मोक्षसाधनं गुज्यते, भव्यजीव-विषयत्वात् । आस्रोकस्तु चक्षुरादिनिमित्तः सर्वसंसारिजीवसाधारण-त्वात्र मोक्षमार्गी युक्तः। = प्रश्न- दर्शन शब्द 'दृशि' धातुसे बना है जिसका अर्थ आसीक है अतः इससे श्रद्धानरूप अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता ! उत्तर-धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं, अतः 'दृशि' धातुका श्रद्धानस्वप अर्थ करनेमें कोई दोष नहीं है। प्रश्न-यहाँ (अर्थात 'तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यग् है'-दे, सम्यग्दर्शन/II/१, इस प्रकरणमें) हिश धातुका प्रसिद्ध अर्थ कों छोड़ दिया ! उत्तर—मोक्षमार्गका प्रकरण होनेसे।-तत्त्वार्थीका श्रद्धानरूप जो आत्माका परिणाम होता है वह तो मोक्षका साधन वन जाता है, क्यों कि वह भव्यों के ही पाया जाता है, किन्तु आसोक, चक्षु आदिके निमित्त से होता है जो साधारणरूपसे सब संसारी जीवोंके पाया जाता है, अतः उसे मोक्षमार्ग मानना युक्त नहीं। (रा. वा./१/२/२-४/११/१०); (श्लो. बा /२/१/२/२/४)
- नि. सा /ता. वृ./३ दर्शनमपि...जीवास्तिकायसमुजनितपरमश्रद्धानमैव भवति ।
- नि. सा./ता. व./१३ कारणदृष्टिः सहजपरम्पारिणामिकभावस्यभावस्य कारणसमयसगरस्वरूपस्य स्वरूपश्रद्धानमात्रमेव । =१. शुद्ध जीवा-रितकायसे उत्पन्न होनेवाला जो परम श्रद्धान वही दर्शन है।२. कारण दृष्टि परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है, ऐसे कारणसमय-सारस्वरूप आत्माके यथार्थ स्वरूपश्रद्धानमात्र है।
- प्र.सा./ता. वृ./८२/१०४/१६ तत्त्वार्थश्रद्धानस्थणेन दर्शनेन **शृद्धा** वर्शनगढाः ।
- प्र, सा./ता. मृ./२४०/३३३/१५ दर्शनशब्देन निजशुद्धारमश्रद्धानरूपं सम्यग्दर्शनं प्राह्मम् । = १. तत्त्वार्थश्रद्धानसक्षणरूप दर्शनसे शुद्ध

हुआ दर्शनशुद्ध कहलाला है। २, दर्शन सन्दसे निजशुद्धारम श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन ग्रहण करना चाहिए।

४. उपरोक्त दोनों अर्थोंका समन्वय

- चा, पा,/मू,/१८ सम्महंसण पस्सदि जाणदि णाणेण दक्ष्मपजाया। सम्मेण य सहहदि परिहरिं चरित्तजे दोसे ।१८। च्यह आरमा सम्यग्दर्शनसे सत्तामात्र वस्तुको देखता है और सम्यग्जानसे द्रव्य व पर्यायको जानता है। सम्यग्त्वके द्वारा द्रव्य पर्यायस्वरूप वस्तुका श्रद्धान करता हुआ चारित्रजनित दोषोंको दूर करता है।
- दे. मोहनीय/२/१/ में घ /६ —१. दर्शन, रुचि, प्रत्यय, श्रद्धा और स्पर्शन ये सन एकार्थवाचक नाम हैं। (दे. मिश्र/१/१ में घ /१/१६६) २. आप्त या आत्मामें, आगम और पदार्थों में रुचि या श्रद्धाको दर्शन कहते हैं।
- ध. १/६,१,१३२/३०४/४ अस्वसंविद्भूषो न कदाचिद्रप्या मोपलभ्यत इति चेत्र. तस्य नहिरङ्गोपयोगावस्थायामन्तरङ्गोपयोगानुपलम्भात् । — मश्न — अपने आपके संवेदनसे रहित आत्माकी तो कभी भी उपलब्धि नहीं होती ! उत्तर— नहीं, क्योंकि, बहिर्गपदार्थीकी उपयोगरूप अवस्थामें अन्तरंग पदार्यका उपयोग नहीं पाया जाता है।
- प. प्र./टो./२/१२/१२% (६ तत्त्वार्धश्रद्धानरुचिस्तर्पं सम्यग्दर्शनं मोक्षमार्गो भवति नास्ति दोषः, पश्यति निर्विकष्परूपेणावलोकयति इत्येवं यदुक्तं तत्सत्तावलोकदर्शनं कथं मोक्षमार्गो भवति, यदि भवति चेत्तिः तत्सत्तावलोकदर्शनमभव्यानामपि विद्यते, तेषामपि मोक्षो भवति स चागमविरोध इति । परिहारमाह तेषां निर्विकष्पसत्ताव चोकदर्शनं बहिविषये विद्यते न चाम्यन्तरशुद्धारमत्त्त्वविषये ।
- प. प्र./टी./२/३४/१४४/१६ निजात्मा तस्य दर्शनमनलोकनं दर्शनमिति व्याख्यातं भवद्भिरिदं तु सत्तावलोकदरानं मिध्यादृष्टीनाम्प्यस्ति तेषामपि मोक्षो भवतु । परिहारमाह । चक्षुरचक्षुरविधकेवलभेदेन चतुर्धा दर्शनम्। अत्र चतुष्ट्यमध्ये मानसमचक्षुर्दर्शनमात्मग्राहकं भवति, तच मिध्यारवादिसप्तप्रकृत्युपशमक्षयीपक्षयजनिततत्त्वार्थ-श्रद्धानलक्षणसम्यक्त्वाभावात् शुद्धात्मतत्त्वमेवोषादेयमिति श्रद्धानाः भावे सति तेषां मिध्यादष्टीनां न भवत्येवेति भावार्थः। 🛥 १. प्रश्न--'तत्त्वार्थ श्रद्धा या तत्त्वार्थरुचिरूप सम्यग्दर्शन (दे. सम्यग्दर्शन/-II/१) मोक्षमार्ग होता है'. ऐसा कहनेमें दोव नहीं; परनतु 'जो देखता है या निर्विकल्परूपसे अवलोकन करता है' ऐसा सत्ताव-लोकनरूप दर्शन जो आपने कहा है, वह मोक्षमार्ग कैसे हो सकता है। यदि हो तो है'. ऐसा मानो तो वह सत्तावलोकनरूप दर्शन तो अभव्योंके भी होता है, उनको भी मोक्ष होना चाहिए और इस प्रकार आगमके साथ विरोध आता है! उत्तर—उनके निर्विकल्प सत्तावलोकरूप दर्शन बाह्य विषयोंमें ही होता है, अन्यन्त शुद्धारम तत्त्वके विषयमें नहीं। २. प्रश्न — निजारमाके दर्शन या अवस्रोकनको आपने दर्शन कहा है, और वह सत्तावलोकरूप दर्शन मिध्यादृष्टियोंके भी होता है। उनको भी मोक्ष होना चाहिए। उत्तर—चक्ष, अचक्ष, अवधि और केवलके भेदसे दर्शन चार प्रकारका है। इन चारों में-से यहाँ मानस अचक्षु दर्शन आत्मग्राहक होता है। ओर वह मिथ्या-रवादि सात प्रकृतियोंके उपशम, क्षय और क्षयोपशम जनित तत्त्वार्थ-श्रद्धान लक्षणवाले सम्यग्दर्शनका अभाव होनेके कारण, 'शुद्धारम्तत्त्व ही उपादेय हैं ऐसे श्रदानका अभाव है। इसलिए वह मोक्ष उन मिथ्यादृष्टियोंके नहीं होता है।
- दे. सम्यग्दर्शन/II/३ (सच्चा तत्त्वार्थ श्रद्धान वास्तवमें आत्मानुभव सापेक्ष हो होता है।)

६. सम्यग्दर्शनके अपर नाम

म. पु./६/१२३ श्रद्धारुचिस्पर्शप्रव्ययाशचेति पर्ययाः ।१२३। = श्रद्धा, रुचि, स्पर्श और प्रत्यय या प्रतीति ये सम्यग्दर्शनके पर्याय हैं। (पं. ध./- उ./४११);

७. सम्यक्त्वकी विराधना च पुनः पुनः प्राप्ति सम्बन्धी नियम

- दे. सम्यग्दर्शन/1V/२/४—[मनुष्योमि जन्म लेनेके आठ वर्ष पश्चात देव नारिकयोमि अन्तर्मुहूर्त पश्चात और तिर्यचौको दिवस पृथक्तके पश्चात प्रथम सम्यवत्व होना सम्भव है, इससे पहला नहीं ।]
- दे, सम्यग्दर्शन/IV/२/७ [उपराम सम्यवस्य अन्तर्मृहूर्त काल पश्चाद अवस्य छूट जाता है।]
- दे. सम्यादर्शन/IV/४/७ [नेदकसम्यादष्टि सम्यक्त्वसे च्युत होते हैं पर अत्यन्त अन्य ।]
- दे. सम्यग्दर्शन/IV/५/१ [क्षायिक सम्यग्दर्शन अप्रतिपाती है ।]
- दे. सम्यग्दर्शन/IV/४/८ [एक बार गिरनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालसे पहले सम्यवस्य पुनः प्राप्त नहीं होता ।]
- दे. आयु/६/८ [वर्द्धमान देवायुवालेका सम्यक्त्व विराधित नहीं होता।]
- दे, तीर्थंकर/३/= [तीर्थंकर प्रकृति सत्किमिकका सम्यक्त्व विराधित नहीं होता।]
- दे, लेश्या/४/१ [शुभ लेश्याओं में सम्यवस्य विराधित नहीं होता ।]
- दे. संयम/२/१० [श्रीपशमिक व वेदक सम्यवस्य व अनन्तानुबन्धीकी निसंयोजना पत्यके असंख्यातवें भाग बार विराधित हो सकते हैं, इससे आगे वे नियमसे मुक्त होते हैं।]
- दे श्रेणी/३ उपसमश्रेणीके साथ द्वितीयोपशम सम्यक्त्व अधिकते अधिक चार बार विराधित होता है।]
- है, सम्यग्दर्शन/I/k/४ [क्षायिक सम्यग्दृष्टि जधन्यसे ३ भव और उत्कर्षसे ७-८ भवोंमें अवश्य मुक्ति प्राप्त करता है।]

२. सम्यग्दर्शनके अंग अतिचार आदि

१, सम्यग्दर्शनके आठ अंगोंका नाम

मू. अ१./२०१ णिस्संकित णिक्कंखिद णिव्विद्गिच्छा अमुहिद्गिय। उन्नमूहण ठिदिकरणं बच्छरल पहानणा य ते अद्व ।२०१। = निःशंकित, निष्कौक्षित, निर्विचिकित्सा, अमुहृदृष्टि, उपमूह्न, स्थितिकरण, वारसक्य और प्रभावना ये आठ सम्यक्तके अंग या गुण जानने चाहिए ।२०१। (स. सि./६/२४/३३८/६); (रा. वा./६/२४/१/६२६/-६); (वसु. शा./४८); (पं. घ./७./४७६-४८०)

२. आठों अंगोंकी प्रधानता

- र. क. श्रा./२१ नाङ्गहीनमलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसंतितम्। न हि मन्त्रोऽ-क्षरन्युनो निहन्ति विषवेदनां ।२१। — जैसे एक दो अक्षररहित अशुद्ध मन्त्र विषकी वेदनाको नष्ट नहीं करता है, वैसे है अंगरहित सम्यवर्शन भी संसारकी स्थितिः छेदनेको समर्थ नहीं है। (चा. सा./६/१)
- का. अ,/मू/४२५ णिस्संका-पहुडि गुणा जह धम्मे तह य देव गुरु तच्चे।
 जाणेहि जिणमयारो सम्मत्तविसोहया एरे।२६। स्ये निःशंकितादि
 आठ गुण जैसे धर्मके विषयमें कहे वैसे ही देव गुरु और तत्त्वके
 विषयमें भी जैनागमसे जानने वाहिए। ये आठों अंग सम्यग्दर्शनको
 विशुद्ध करते हैं। (वसु. शा./६०)।

सम्यग्दर्शन

३. सम्यग्दर्शनके अनेकों गुण

- (स. सा / प्रक्षेपक गा. / १७७) संवेओ णिव्वेओ णिदा गरुहा य उवसमी भत्ती । वक्छरलं अणुकंपा गुणदु सम्मत्तजुत्तस्स । = संवेग, निवंद, निन्दा, गर्हा, उपशम, भक्ति, अनुकंषा, बाह्सस्य ये आठ गुण सम्य-क्त्व युक्त जीवके होते हैं। (चा. सा./६/२); (वसु. शा./४६); (घ./ उ /४६६ में उद्दध्त)।
- ज्ञा./६/७ में उद्भत रलो, सं. ४ एकं प्रशमसंवेगदयास्तिक्या दिलक्षणम्। बात्मनः बुद्धिमात्रं स्यादितरच्य समन्ततः। । = एक (सराग) सम्यक्तव तो प्रशम संवेग अनुकम्पा व आस्तिक्यसे चिह्नित है और दूसरा (बीतराग) समस्त प्रकारसे आत्माको शुद्धिमात्र है । (पं. ध/ उ/४२४-२६); (और भो दे, सम्यग्दर्शन/II/४/१) ।
- म. पु./२१/१७ संवेगः प्रशम-थैर्यम् असंमूढरवमस्मयः। आस्तिवयमनु-कम्पेति ज्ञेयाः सम्यवस्वभावनाः । १७॥ = संवेग, प्रशम, स्थिरता, अपूढ़ता, गर्ब न करना, अहितवय और अनुकम्पा ये सात सम्यन्द-र्शनकी भावनाएँ जाननेके योग्य हैं । १७। (म. पु /१/१२३)।
- का. अ./मू./३११ उत्तमगुणगहणरओ उत्तमसाहूण विणयसंजुत्तो। साहिम्मय अणुराई सो सिंद्धी हवे परमो ।३१४। - जो उत्तम गुणोंको ग्रहण करनेमें तरपर रहता है, उत्तम साधुओं की विनय करता है तथा साधर्मी जनोंसे अनुराग करता है वह उत्कृष्ट सम्यग्दष्टि है।
- दे सम्यग्दृष्टि/२/ (सम्यक्वके साथ ज्ञान, वैराग्य व चारित्र अवश्य-म्भावी हैं)।
- दे. सम्यग्दर्शन/II/२ (आत्मानुभव सम्यग्दर्शनका प्रधान चिह्न है) ।
- दे. सम्यग्दर्शन/II/१/१ (देव पुरु शास्त्र धर्म आदिके प्रति भक्ति तत्त्वोंके प्रति श्रद्धा सम्यग्दर्शनके लक्षण हैं)।
- दे, सम्यग्दृष्टि/५ (सम्यग्दृष्टिमें अपने दोषोंके प्रति निन्दन गर्हण अवश्य

४. सम्यग्दर्शनके अतिचार

त, सू./७/२३ शङ्काकाङ्शाविचिकित्साऽन्यदृष्टिश्शंसासंस्तवाः सम्यग्-दृष्टेरतिचाराः । २३। च्यांका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्यदृष्टिसंस्तव ये सम्यग्दृष्टिके ६ अतिचार हैं। (भ. आ./वि / १६/६२/१४; तथा ४८७/७०७/१)।

५- सम्यग्दर्शनके २५ दोष

हा,/६/५ में उइधृत-मुद्त्रयं मदाश्चाष्टी तथानायतनानि षट्। अष्टी शङ्कादयश्चेति रादोषाः पञ्चिविशतिः।=तीन मूद्रता, आठ मद, छह अनायतन और शंकादि आठ दोष अर्थात् आठ अंगोंसे उलटे आठ दोष ये २६ दोष सम्यादर्शनके कहे गये हैं। (द्र. सं./टी,४१/ १६६/१०) ।

६. कारणवरा सम्यक्तवर्भे अतिचार लगनेकी संभावना सम्बन्धी

स, सि./७/२२/३६४/८ तत्सम्यग्दशंनं कि सापवादं निरपवादमिति। उच्यते -- कस्यचिन्मोहनीयावस्था विशेषात्कदाचिदिमे पवादाः - । ⇒प्रश्न-ेसम्यग्दर्शन सापवाद होता है या निरपवाद ! उत्तर-किसी जीवके मोहनीयकी अवस्था विशेषके कारण ये (अगले सूत्रमें बताये गये शंका कांक्षा खादि) अपवाद या अतिचार होते हैं। दे, सम्यग्दर्शन /IV/४ (सम्यक्षकृतिके उदयसे चलमल आदि दोष होते 🍧 एर इससे सम्यक्लमें क्षति नहीं होती }।

३. सम्यग्दर्शनकी प्रत्यक्षता व परोक्षता

348

१. छन्नस्थोंका सम्यक्त्व मी सिद्धोंके समान है

- दे-देव/1/१/१ (आचार्य, उपाध्याय व साधु इन तीनोंके रत्नत्रय भी सिद्धोंके समान हैं) :
- दे. सम्यादर्शन/IV/१ (उपज्ञम, शायिक व शायोपशमिक इन तीनों सम्यक्त्वोमें यथार्थ श्रद्धानके प्रति कोई भेद नहीं है)।
- मं. का /ता. वृ /१६०/२३१/१२) वीतरागसर्वज्ञप्रणीतजीवादिपदार्थविषये सम्यक् श्रद्धानं ज्ञानं चेत्युभयं गृहस्थतपोधनयोः समानं चारित्रं 👀 =वीतराग सर्वज्ञप्रणीत जीवादि पदार्थोंके विषयमें सम्यक् श्रद्धान व ज्ञान ये दोनों गृहस्थ व तपोघन साधुओं के समान ही होते हैं। परन्तु इनके चारित्रमें भेद है।
- मो. मा. प्र./१/४७६/११ जैसे छदास्थके शुक्तज्ञानके अनुसार प्रतीति पाइए है...जैसा सप्ततत्त्वनिका श्रद्धान छद्मस्थके भया था, तैसा ही केवली सिद्ध भगवान्के पाइए है। तातै ज्ञानादिककी हीनता अधिकता होतेँ भी तिर्यंचादिक वा केवली सिद्ध भगवान्कैं सम्धवस्व गुण समान है।

२. सम्यग्दर्शनमें कथंचित् स्व-परगम्यता

रखोः वा./२/१/२/रखो. १२/२९ सरागे वीतरागे च तस्य संभवतोऽञ्जसा । प्रशमादेरभिव्यक्तिः शुद्धिमात्रा च चेतसः ।१२।

श्लो वा, २/१/२/१२/पृष्ठ/पंक्ति — एतानि प्रत्येकं समुदितानि वा स्वस्मिन् स्वसंविदितानि, परत्र कायवाग्व्यवहारविशेष[सङ्घानुभितानि सरागसम्यग्दर्शनं ज्ञापयन्ति, तदभावे मिथ्यादृष्टिस्यसंभवित्वात् संभवे ना मिथ्यात्वायोगात् । (३४/१७) । मिथ्यादशामपि केषांचि-रकोधारानुद्रेकदर्शनात् प्रशमोऽनैकान्तिक इति चेन्न. तेषामिष सर्व-थैकान्तेऽनन्तानुबन्धिनो मानस्योदयात् । स्वारमनि चानेकान्तारमनि द्वंषोदयस्यावश्यंभावात् पृथिवीकायिकादिषु प्राणिषु हननदर्शनात्। (३५/४)। नन्वेवं यथा सरागेषु तत्त्वार्थश्रद्धानं प्रश्नमादिभिरनुमीयते यथा वीतरागेष्वपि तत्तैः कि नानुमीयते । इति चेन्न, तस्य स्वस्मि-ब्रात्मिवशुद्धिमात्रत्वात् सकलमोहाभावे समारोपानवतारात् स्वसंवेदना-देव निश्चयोपपत्तरनुमेयत्वाभावः । परत्र तु प्रशमादीनां तिङ्किङ्गानां सतामपि निश्चयोपायानां कायादिञ्यवहारविशेषाणामपि तदुपाया-नामभावात् । (४४/१०) । कथमिदानीमप्रमत्तादिषु सूक्ष्मसाम्पराया-न्तेषु सहर्शनं प्रशमादेरनुमात् शक्यम् । तन्निर्णयोपायानां कायादिव्य-वहार्विशेषाणामभावादेव गम्सोऽप्यभिहितानभिज्ञः, सर्वेषु सरागेषु सदर्शनंप्रशमादिभिरनुमीयत इत्यनभिधानात्। यथासंभवं सरागेषु वीतरागेषु च सहर्शनस्य तदनुमेयत्वमात्मविशुद्धिमात्रत्वं चेत्यभिहि-तत्वाद् । (४४/३) । = १. सराग व बीतराग दोनोंमें ही सम्यग्दर्शन सम्भव है। तहाँ सरागमें तो प्रशमादि लक्षणोंके द्वारा उसकी अभिन्यक्ति होती है और बीतरागमें वह केवल चित्तविशुद्धि द्वारा स्रक्षित होता है। इसो १२। (अन. ध./२/४१/१७८)। २.. प्रश्नमादि गुण एक-एक करके या समुदित रूपसे अपनी आत्मामें तो स्वस् वेदन-गम्य हैं और दूसरोंमें काय व बचन व्यवहाररूप विशेष ज्ञापक **लिंगों** द्वारा अनुमानगम्य हैं। इत प्रशमादि गुणों परसे सम्यन्दर्शन जान लिया जाता है। (३४/१७)—(पं. ध./उ./३८८); (और भी ब्रे. अनुमान २/६); (चा. पा./पं. जयचन्द/१२/८६); (रा. वा./ हि/१/२/२४)। ३, सम्यग्दर्शनके अभावमें वे प्रशमादि गुण मिथ्यादृष्टि जीवों में सम्भव नहीं हैं यदि वहाँ इनका होना माना जागेगा तो वहाँ मिथ्यादृष्टिपना सम्भव न हो संकेगा। (२४/१८)। प्रश्न-किन्हीं. किन्हीं मिथ्यादृष्टियोंमें भी क्रोधादिका तीव उदय नहीं पाया जाता है, इसलिए सम्यग्दर्शनकी सिद्धिमें दिया गया उपरोक्त प्रशमादि गुणौ वाला हेतु व्यभिचारी है ! उत्तर-नहीं है, क्यों कि, उनके स्वमान्य एकान्त मतोंमें अनन्तानुबन्धीजन्य तीव भाव पाया जाता है।

आरमस्यरूप व अनेकान्तमतमें उन्हें द्वेषका होना अवश्यंभावी है। तथा पृथित्रीकायिक आदिकोंको हिंसा करना भी उनमें पाया जाता है। (३६/६) [जैसे सम्यग्हृष्टिमें होते हैं वैसे प्रशमादि गुग निथ्या-हृष्टि में नहीं पाये जाते - द. पा./पं. जयचन्द] (द. पा./पं. जय-चन्द/२/१४ ७ व १५१) । = प्रश्न--४. जिस प्रकार सराग सम्यग्दृष्टिमें उसको अभिव्यक्ति प्रशमादि गुणोंद्वारा अनुमानगम्य है, उसी प्रकार वीतराग सम्यग्दृष्टियों में भी उन्हींके द्वारा अनुमानगम्य क्यों नहीं ? उत्तर - नहीं, क्योंकि वीतरागोंका तत्वार्थश्रद्धान अपनेमें आत्म-विशुद्धिरूप होता है। सकल मोहके अभावमें तहाँ समारोपको अर्थात् संशय आदिको अवकाश न होनेसे, उसका स्वसंवेदनसे ही निश्चय होता है, वयों कि, यह विश्वद्धि अनुमानका विषय नहीं है। ५. दूसरी बात यह भी है कि वीतराग जनोंमें, सम्यग्दर्शनके ज्ञापक प्रशमादि गुणोंका तथा बचन व काय व्यवहाररूप विशेष ज्ञापक लिंगोंका सद्भाव होते हुए भी, वे अति सक्ष्म होनेके कारण वे छन्नस्थोंके गोचर नहीं हो पाते, क्योंकि, छचस्थोंके पास उनको जाननेका कोई साधन नहीं है। इसलिए वे गुण व लिंग वोतराग सम्यग्दर्शनके अनुमानके उपाय नहीं हैं। (४४/१०)। प्रश्त-- ६. सातवेंसे लेकर दसवें पर्यंतके अप्रमत्त सराय गुणस्थानों में सम्यग्दर्शनका अनुमान कैसे किया जा सकता है, क्यों कि, उनमें उसके निर्णयके उपाय भूत, काय व वचन व्यवहाररूप विशेष ज्ञापक लिगोंका अभाव है ? उत्तर-तुम हमारे अभिप्रायको नहीं समभे। सर्व ही सराग जीवोंके सम्यग्दर्शनका ं अनुमान केवल इन गुणों व लिगोंपरसे ही होता हो, ऐसा नियम नहीं किया गया है। बल्कि यथा सम्भव बीतराग व सराग दोनोंमें ही सम्यग्दर्शनकी अनुमेयता आत्मविशुद्धि होती है, ऐसा हमारा अभिप्राय है [अर्थात् ४-६ वाले सराग प्रमत्त गुणस्थानोंमें तो प्रश-मादि गुणोंसे तथा ७-१० तकके सराग अप्रमत्त गुणस्थानोंने आत्म-विशुद्धिसे उसकी अभिन्यक्ति होती है]। (४५/३) (अन. घ./२/ ५३/१७१) ।

दे. अनुभव/४ (आत्मानुभव स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता है) ।

मो. मा./प्र./७/३६७/प द्रव्य लिंगीके स्थूल तो अन्यथापना है नाहीं, सहम अन्यथापनी है, सौ सम्यग्यदृष्टिकी भासे है।

दे प्रायक्षित्त/२/१ (सहवासमें रहकर दूसरोंके परिणामोंका अनुमहन किया जा सकता है।)

३. वास्तवमें सम्यग्दर्शन नहीं बल्कि प्रश्नमादि गुण ही प्रत्यक्ष होते हैं।

रलो. वा./२/१/२/१२/३८/१ ननु प्रशमादयो यदि स्वस्मिन् स्वसंवेखाः श्रद्धानमपि तत्त्वाथिनाः कि नस्वसंवेद्यम् यतस्तेम्योऽनुमीयते ।स्वसं-वेदारवाविशेपेऽपि तैस्तदनुमीयते न पुनस्ते तस्मादिति कः श्रद्द्धीता-न्यत्रापरीक्षकादिति चेद्, नैतत्सारम्, दर्शनमोहोपशमादिविशिष्टा• त्मस्वऋषस्य तत्त्वार्थश्रद्धानस्य स्वसंवेद्यत्वानिश्चयात्। स्वसंवेद्यः पुनरास्तिक्यं तदभिव्यञ्जकं प्रशमसंवेगानुकम्पावत् कथंचित्रतो भिन्नं तरफलस्वात् । तत एव फलतद्वतीरभेदविवक्षायामास्तिक्यमेव तत्त्रार्थश्रद्धानमिति, तस्य तद्वत्प्रत्यक्षसिद्धत्वात्तदनुमेयत्वमपि न विरुध्यते । = प्रश्न - यदि प्रशमादि गुण अपनी आत्मामें स्वसंवेदन-गम्य है तो तत्त्वार्थश्रद्वानरूप सम्यग्दर्शन ही स्वसंवेदनगम्य नयों न हो जाय । क्यों उसे प्रशमादिके द्वारा अनुमान करनेकी आवश्यकता पड़े । क्योंकि, आत्माके परिणामपनेरूपसे दोनोंमें कोई भेद नहीं है । पहिले स्वसंवेदनसे प्रशमादिको जाने और फिर उनपरसे सम्यग्दर्शन का अनुमान करें, ऐसा व्यर्थका परस्पराश्रय क्यों कराया जाय १ उत्तर-यह कहना सार रहित है, नयों कि दर्शनमोहके उपशमादि विशिष्ट आत्मस्वरूप तत्त्वार्थश्रद्धानका स्वसंवेदनसे निश्चय नहीं हो सकता । परन्तु प्रशम संवेग आदि गुणोंकी भाँति आस्तिवय गुण स्वसंवेद्य होता हुआ उसका अभिव्यंजन हो जाता है। श्रद्धानके फलरूप होनेके कारण ये चारों प्रशमादि गुण उस श्रद्धानसे कथंचित भिन्न हैं। फल और फलवात्की अभेद विवक्षा करने पर वह आस्तिक्य गुण ही तत्त्वार्थश्रद्धान है। इस प्रकार उस आस्तिक्यकी भाति उस तत्त्वार्थ श्रद्धानकी भी स्वसंवेदन प्रत्यक्षसे सिद्धि हो जाती है।

४. सम्यक्त्व वस्तुतः प्रत्यक्षज्ञान गम्य है

पं, घ./इ./श्लो. सं, सम्प्रस्तं वस्तुतः सूक्ष्मं केवलझानगोचरम्। गोचरं स्वाविध्वान्तःपर्ययज्ञानयोर्द्वयोः ।३७६। न गोचरं मितिज्ञानश्रुतः ज्ञानद्वयोर्मनाक्। नापि देशावधेस्तत्र विषयोऽनुपलिष्ठ्यतः ।३७६। सम्प्रकृतं वस्तुतः सूक्ष्ममस्ति वाचामगोचरम्। तस्मात् ववतुं च श्रोतुं च नाधिकारी विधिक्रमात् ।४००। = सम्प्रवत्व वास्तवमें सूक्ष्म है और केवल ज्ञानके गोचर है, तथा अविधि और मनःपर्यय ज्ञानके भो गोचर् है। [ब्योंकि अविधि ज्ञान भी जीवके औपश्रमिक आदि वर्म संयोगी भावोंको प्रत्यक्ष ज्ञाननेमें समर्थ है (वे. अविध्ञान/प्)] ।३७६। परन्तु मिति और श्रुत ज्ञान और देशाविध इनके द्वारा उसकी उपलिध सम्भव नहीं है।३०६। वास्तवमें सम्यवत्व सूक्ष्म है और वचनोंके अत्यन्त अगोचर है, इसलिए कोई भी जीव उसके विधि पूर्वक कहने और सुननेका अधिकारी नहीं है।४००।

दे. सम्यग्दर्शन/1/४ [प्रशामादि गुण तथा आत्मानुभूति भी सम्यग्दर्शन नहीं ज्ञानकी पर्यायें हैं। अतः स्वसंवेच श्रुतज्ञान द्वारा भी वह प्रत्यक्ष नहीं है।

५, सम्यक्त्वको सर्वथा केवलज्ञानगम्य कहना युक्त नहीं है।

द.पा./पं जयचन्द/२/पृ. ८=प्रश्न — केई कहे है जो सम्यक्त तौ केवलोगम्य है याते आपके सम्यक्त भयेका निश्चय नहीं होय, तातें आपक् सम्यक्षि होय, तातें आपक् सम्यक्षि हो माननां ! उत्तर—सौ ऐसे सर्वथा एकान्त किर कहना तौ मिध्यादृष्टि है, सर्वथा ऐसें कहे व्यवहारका लोप होय, सर्व मुनि श्रावककी प्रवृत्ति मिध्यात्वसहित ठहरें। तब सर्व ही मिध्यादृष्टि आपक् मानें, तब व्यवहार काहेका रह्या, तातें परीक्षा भये पीखें (दे, शोर्षक सं. २) यह श्रद्धान नाहीं राखणां जो मैं मिध्यादृष्टि ही हूँ।

४. सम्यग्दर्शनका ज्ञान व चारित्रके साथ भेद

श्रद्धान आदि व आत्मानुभूति वस्तुतः सम्यक्ष्य नहीं ज्ञानकी पर्याय हैं

पं.शः/ः / श्रुं श्लो. सं. श्रुं झाला हि गुणा हा हां लक्ष्म सम्यग्ह गारमातः । न सम्यव्द ते ते ते सिन्त ज्ञानस्य पर्ययाः । १८६। अपि चात्मानुभू तिश्च ज्ञानं ज्ञानस्य पर्ययातः । अर्थात ज्ञानं न सम्यव्द मस्ति चे इंबा हा छक्ष-णम् । १८०। तत्त्वार्था भिमुखी बुद्धः श्रुद्धा सात्म्यं रुचिस्तथा । प्रती-तिस्तु तथे ति स्यात्स्वीकारश्चरणं किया । ४१२। अर्थादा चित्रकं ज्ञानं ज्ञानस्यैवात्र पर्ययातः । चरणं वाक्कायचेतो भिन्यपारः शुभक ममु । ४१३। मस्याप्य हि जीवके श्रुद्धान आदि गुण (लक्षण) बाह्य सक्षण हैं, इसिलए केवल उन श्रुद्धाना दिकको ही सम्यव्द नहीं कह सकते हैं व्योक्ति वे वास्तवमें ज्ञान की पर्याय हैं। इसिलए इसको भी ज्ञान ही कहना चाहिए सम्यव्द वहीं। यदि इसे सम्यव्द वक्षा लक्षण भी कहें तो बाह्य लक्षण ही कहें अन्तरंग नहीं । ३८७। (ला. सं/३/४१-४२) तत्त्वार्थीके विषयमें उत्सुख बुद्धि श्रद्धा कहनाती है तथा उनके विषयमें तत्वार हिच कहनाती है, तथा उसके अनुसार

आचरण करना चरण कहलाता है। ११२। इन चारोंमें वास्तवमें आदि वाले श्रद्धादि तीन झानकी ही पर्याय होनेसे झानरूप है तथा वचन, काय व मन से शुभ कार्योंमें प्रवृत्ति करना चरण कहलाता है। १९३। दे अनुभव/४ (आत्मानुभव स्वसंवेदन रूप झान है)

२. प्रश्नमादिक ज्ञानरूप नहीं बल्कि सम्यक्त्वके कार्य हैं

क्तो,वा./२/१/२/१२/३१-४१ सम्यग्ज्ञानमेव हि सम्यग्दर्शनमिति केचि-द्विप्रवदनते. तात् प्रतिज्ञानात् भेरेन दर्शनं प्रशमादिभिः कार्यविशेषैः प्रकाश्यते । (३६।६) । ज्ञानकार्यस्वात्तेषां न तत्प्रकाशकस्विमिति चेन्न अज्ञाननिवृत्तिफलस्वात् ज्ञानस्य । साक्षादज्ञाननिवृत्तिज्ञानस्य फलं, परम्परया प्रशमादयो हानादिबुद्धिवदिति चैत, तर्हि हानादिबुद्धिव-देव ज्ञानादुत्तरकालं प्रश्मादयोऽनुभूयेरन्, न चैवं ज्ञानसमकालं प्रशासाचनुभवनात् । (३९।२५) । सम्यग्दर्शनसमसमयमनुभूयमानस्वात् प्रश्नमादेरत्रफलस्वमपि माभूत् इति चेनन, तस्य तदभिन्नफलस्वोपग-दर्शनकार्यस्वाहर्शनस्य मात्तरसमसमयवृत्तित्वाविरोधात्, ततो ज्ञापकाः प्रशासादयः । = प्रश्न - सम्यग्ज्ञान ही वास्तवमें सम्यग्दर्शन है। उत्तर-प्रशम आदिक विशेष कार्योसे दर्शन व ज्ञानमें भेद है। प्रश्न-प्रशमादि क्रिया विशेष तो सम्यग्ज्ञानके कार्य हैं, अतः वे सम्यग्ज्ञानके ही ज्ञापक होंगे ! (३६/६) उत्तर - नहीं, क्योंकि ज्ञानका फल तो अज्ञान निवृत्ति है। प्रश्न-ज्ञानका अञ्यवहित फल तो अज्ञान निवृत्ति है, किन्तु उसका परम्परा फल प्रशम आदि है जैसे कि हैय पदार्थ में त्याग बुद्धि होना उसका परम्परा फल है ! उत्तर--यदि ऐसा है तो उस त्याग बुद्धिके समान ये प्रश्नमादि भी ज्ञानके उत्तर कालमें ही अनुभवमें आने चाहिए। परन्तु ऐसा है नहीं, क्यों कि ज्ञानके समकालमें ही , उनका अनुभव देखा जाता है। (३६/२५) प्रश्न-तब तो सम्यग्दर्शनके समकालमें ही अनुभव गोचर होनेके कारण वे सम्यग्दर्शनके भी फल न हो सकेंगे? उत्तर-नहीं, सम्यवत्वके अभिन्न फनस्वरूप होनेके कारण प्रशमादिकी समकाल वृत्तिमें कोई विरोध नहीं है। इसलिए दर्शनके कार्य होनेसे वे प्रशमादि सम्यग्दर्शनके ज्ञापक हेतु हैं।

३. प्रशामादि कथंचित् सम्यग्ज्ञानके भी ज्ञापक हैं

रलो,ना,/२/१/२/१२/४१/६ प्रशमादयः सहचरकार्यस्वानु ज्ञानस्येत्यन-वद्यम् । = सम्यग्ज्ञानरूप साध्यके साथ रहनेवाले सम्यग्दर्शनके कार्य हो जानेसे वे प्रशमादिक सम्यग्ज्ञानके भी ज्ञापक हेतु हो जाते हैं।

४. स्वानुभूतिके ज्ञान व सम्यक्ष्यका होने सम्बन्धी समन्वय

पं.धः/लः/श्लो. सं. मन्वातमानुभवः साक्षात् सम्यश्स्वं बस्तुतः स्वयस्। सर्वतः सर्वकालेऽस्य मिथ्याद्वण्टेरसंभवात् ।३८१। नैवं यतोऽन-भिज्ञोऽसि सत्सामान्यविशेषयोः। अप्यन्।कारसाकारिककृयोस्तद्य-धोच्यते ।३१०। ततो ववतुमशक्यत्वात निर्विवकपस्य वस्तुनः। तदुक्लेखं समालेख्य ज्ञानद्वारा निरूप्यते ।३१६। तत्राप्यात्मानुभृतिः सा विशिष्टं ज्ञानमात्मनः। सम्यक्तवेनाविनाभृतमन्वयाद्वच्यतिरेकतः। ४०२। ततोऽस्ति योग्यता ववतुं व्याप्तेः सद्भावतस्त्योः। सम्यक्तवः स्वानुभृतिः स्यात्सा चेच्छुद्धनयात्मिका। ४०२। न्वप्रम्न-साक्षात् अत्रमाका अनुभव वास्तवमें स्वयं सम्यक्तवस्त्रत्य है, क्योंकि, किसी भी क्षेत्र या कालमें वह मिथ्यादृष्टिको प्राप्त नहीं हो सकता है १।३८१। उत्तर—ऐसा नहीं है, क्योंकि, सामान्य और विशेषके लक्षणभृत अनाकार और साकारके विषयमें भी तुम अनभिज्ञ हो ।३६०। [ज्ञानके अतिरिक्त सर्वपुण निर्विकल्प व निराकार हैं (दे. गुण/२/१०)] और निर्विकल्प वस्तुके कथनको, अनिर्वचनीय होनेके कारण, ज्ञानके द्वारा जन सामान्यात्मक गुणोंका उक्तेख करके अनका निरूपण किया

गया है। १३६६। उस सम्यन्दर्शनके सक्षणमें भी जो आत्माका अनुभव है वह आत्माका विशेष ज्ञान है जो सम्यक्त्वके साथ अन्वय व्यति-रेकसे अविनंशभावी है।४०२। इसलिए इन दोनोंमें व्याप्ति होनेके कारण वचनके अगोचर भी सम्यक्त्व बचन गोचर हो जाता है, इसलिए यदि शुद्धनयात्मिका हो तो वह स्वानुभूति सम्यक्त्व कहनाती है।४०३।

५. अनुभूति उपयोगरूप होती है और सम्यक्त्व सब्ध रूप

पं ध /उ/श्लोक सं किंचास्ति विषमव्याप्तिः सम्यन्त्वानुभवद्वयोः। नोपयोगे समन्याप्तिरस्ति लब्धिविधौ तुसा ४०४। तद्यथा स्वानुभूतौ वा तत्काले वा तदारमनि । अस्त्यवश्यं हि सम्यवत्वं यस्मारसा न विनापि तत् ।४०५। यदि वा सति सम्यक्त्वे स स्याद्वा नोपयोगवान् । शुद्धानुभवस्तत्र लब्धिरूपोऽस्ति वस्तुनः ।४०६। हेतुस्तन्नास्ति सधीची सम्यक्त्वेनान्वयादिह। ज्ञानसंचेतनासंब्धिनित्या स्वावरणव्ययात् ।८५२। सार्घ तेनोपयोगेन न स्याइच्याप्तिर्द्ध योरपि। विना तेनापि सम्य-क्तवं तदास्ते सति स्याद्यतः । ६७५। आत्मनो ८ न्यत्र कुत्रापि रिथते ज्ञाने परात्ममु । ज्ञानसंचेतनायाः स्यात्कृतिः साधीयसी तदा । १००। सत्यं चापि क्षतेरस्याः क्षतिः साध्यस्य न क्वचित्। इयानातमोपयोगस्य तस्यास्तत्राप्यहेतुतः । १०१। साध्यं यहर्शनाद्धेतोनिर्जरा चाष्टकर्मन णाम् । स्वतो हेतुवशाच्छक्तेर्न तद्धेतुः स्वचेतना ११०२। अनिध्नन्निह सम्ययस्वं रागोऽयं बुद्धिपूर्वकः। तूनं हन्तुं क्षमो न स्याउज्ञानसंचेत-नामिमाम् । ११८। = सम्यग्दर्शन और स्वानुभव इन दोनोमें विषम-व्याप्ति है क्यों कि (अनुभूति उपयोग रूप है और सम्यक्त्व लब्धरूप) उपयोगरूप स्वानुभूतिके साथ सम्यव्स्वकी समन्याप्ति नहीं है किन्तु लब्धिरूप स्वानुभूतिके साथ ही उसकी समठ्याप्ति है।४०४। वह इस प्रकार कि स्वानुभवके होनेपर अथवा स्वानुभूतिके कः समे भी उस आत्मामें अवश्य ही ज्ञात होता है, क्यों कि उस सम्यग्दर्शनरूप कारणके बिना वह स्वानुभूतिरूप कार्य नहीं होता है।४०६। अथवा यों कहिए कि सम्यग्दर्शनके होनेपर वह आत्मा स्वानुभूतिके उपयोगसे सहित हो ही ऐसा कोई नियम नहीं, परन्तु स्वानुभूति यदि होती है तो सम्यवत्वके रहनेपर ही होती है ।४०६। इसमें भी हेतु यह है कि सम्यक्त्वके अविनाभूत स्वानुभूति मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे समीचीन ज्ञानचेतनाकी लब्धि उसके सदैव पायी जाती है। ५२। परन्त्र आत्मोपयोगके साथ सम्यवत्वकी व्याप्ति नहीं हैं, क्यों कि आत्माके उपयोगके न रहते हुए भी वह सम्यवस्व रहता है और उपयोगके रहते हूए भी । ५७५। प्रश्न — शुद्धात्माके सिना किन्हीं अन्य पदार्थों में जब ज्ञानका उपयोग होता है तब ज्ञान चेतनाकी हानि अवश्य होती है ! 1800। उत्तर- ठीक है कि तब ज्ञानचेतनाकी क्षति तो हो जाती है परन्तु उसकी साध्यभूत संवर निर्जराकी हानि नहीं होती है, क्योंकि, वह उपयोगरूप ज्ञानचेतना संवर निर्जराके हेतु नहीं है !६०१। स्वात्माको विषय करना हो उसका कार्य है, क्योंकि, सम्यग्दर्शनके निभित्तसे आठों कर्मीकी निर्जरा होना जो साध्य है, वह स्वयं सम्यक्तकी शक्तिके कारण होता है, अतः ज्ञान चेतना उसमें कारण नहीं है १९०२। यहाँपर यह बुद्धिपूर्वक औदियिक भाव-रूप राग सम्यवस्वका घात नहीं करता है. इसलिए वह इस लब्बरूप ज्ञानचेतनाका घात् करनेको समर्थ नहीं है । ११८।

६. सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञानमें अन्तर

रा. वा ./१/१/६०/१६/४ ज्ञानदर्शनयोर्युगपत्प्रवृत्तेरेकत्विमिति चेतः नः तत्त्वावायश्रद्धानभेदात् तापप्रकाशव्य । —प्रश्न — ज्ञान व दर्शनकी युगपत् प्रवृत्ति होनेके कारण वे दोनों एक हैं ! उत्तर — नहीं, क्यों कि, जिस प्रकार युगपत होते हुए भी अग्निका ताप व प्रकार (अथवा दीपक व उसका प्रकाश — पु. सि. उ.) अपने-अपने लक्षणोंसे भेदको प्राप्त हैं, उसी प्रकार युगपत होते हुए भी ये दोनों अपने-अपने लक्षणोंसे भिन्न हैं। सम्यग्ज्ञानका लक्षण तत्त्वोंका यथार्थ निर्णय करना है और सम्यग्दर्शनका लक्षण उनपर अद्धान करना है। (पु. सि. उ./३२-३४), (छहढाला/४/१)।

दे. सम्यग्दर्शन्/1/१/४/३ (निर्विकन्प रूपसे देखना सम्यग्दर्शन है और

विशेष रूपसे जानन। सम्यग्ज्ञान है)।

- द्र. सं. टी./४४/९६३/९ यत्तरवार्थश्रद्धानरूपं सम्यादर्शनं वस्तुविचाररूपं सम्याद्शनं तयोविशेषो न ज्ञायते । कस्मादिति चेत् । सम्यादर्शने पदार्थनिश्चयोऽस्ति, तथैव सम्याज्ञाने च, को विशेष हति । अत्र परिहारः । अर्थग्रहणपरिच्छित्तिरूपः क्षयोपशमिवशेषो ज्ञानं भण्यते, तत्रैव भेदनयेन वीतरागसर्वज्ञप्रणीतशुद्धारमादितत्त्वेष्वदमेवेत्थमेवेति निश्चयसम्यक्त्वमिति । अविवचपरूपेणाभेदनयेन पुनर्यदेव सम्याज्ञानं तदेव सम्यवत्वभिति । कस्मादिति चेत्—अतत्त्वे तत्त्वबुद्धिरदेवे देववुद्धियमें धमंबुद्धिरित्यादिवपरीताभिनिवेशरिह्तस्य ज्ञानस्यैव सम्यावशेषणवाच्योऽवस्थाविशेषः सम्यवत्वं भण्यते यतः कारणात् । यदि भेदो नास्ति तर्हि कथमावरणद्वयमिति चेत्—
 तत्रोत्तरस् ।…भेदनयेनावरणभेदः । निश्चयनयेन पुनरभेदिववक्षायां कर्मत्वं प्रत्यावरणद्वयमप्येकमेव विज्ञातव्यम् ।
- द्र. सं./टी./६२/२१८/१० स्वशुद्धारमैवोपादेय इति ग्दर्शनं । . . तस्येव शुद्धारमनो . . भिथ्यात्वरागादिपरभावेभ्यः पृथक्-परिच्छेदनं सम्याज्ञानम् । == प्रश्न -- १. ''त्रत्वार्थका श्रद्धान करने रूप सम्यग्दर्शन और पदार्थका विचार करने स्वरूप सम्यग्ज्ञान है" इन दोनोंमें भेद नहीं जाना जाता, क्योंकि जो पदार्थका निश्चय सम्यग्दर्शनमें है वही सम्यग्हानमें है। इसलिए इन दोनोंमें क्या भेद है ! उत्तर - पदार्थ के ग्रहण करते में जानने रूप जो क्षयोपदाम विशेष है, वह 'ज्ञान' कहलाता है। और ज्ञानमें ही भेदनयसे जो बोतराप सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव द्वारा कहे हुए शुद्धात्मा आदि तत्त्व हैं उनमें, 'यह ही तत्त्व है, ऐसा ही तत्त्व है' इस प्रकारका जो निश्चय है, वह सम्यक्तव है। २. और अभेद नयसे तो जो सम्यग्ज्ञान है वही सम्यादशन है। कारण कि अतत्त्वमें तत्त्वकी बुद्धि, अदेवमें देवकी बुद्धि और अधर्ममें धर्मकी बुद्धि, इत्यादिरूप जो विपरीत अभिनिवेश है, उस विपरोताभिनिवेशसे रहित जो ज्ञान है; उसके 'सम्यक' विशेषणसे कहे जानेवाली अवस्थाविशेष सम्यद्दव कहलाता है। प्रश्न-३. जो सम्यादशन व सम्याज्ञानमें भेद नहीं है, तो उन दोनों गुर्णोंके घातक ज्ञानावरणीय व मिथ्यात्त्र ये दो कर्म केसे कहे गये ? उत्तर-भेदनयसे आवरणका भेद है और अभेदकी विवक्षामें कर्मत्वके प्रति जो दो आवरण हैं, उन दोनों को एक ही जानना चाहिए । ४. 'शुद्धात्मा ही उपादेथ है', ऐसी रुचि होने रूप सम्यग्दर्शन है और उसी शुद्धात्माको रागादि परभावोंसे भिन्न जानना सम्यग्ज्ञान है। (दे. उन-उनके लक्षण)

७. सम्यक्तके साथ चारित्रका कथंचित् भेद व अभेद

- द.पा./पं.जय चन्द/२२ जो को ऊक है सम्यक्त भए पीछे तौ सर्व परद्र व्य संसारक्षं हैय जानिये है, ताक्षं छोड़े मुनि होय चारित्र आवरें तब सम्यक्त भया जानिये, ताका समाधान रूप यह गाथा है, जो सर्व परद्र व्यक्षं हेय जानि निज स्वरूपक्षं उपादेय जान्यां श्रद्धान किया तब मिथ्या भाव की न रहा परन्तु चारित्रमोह कर्मका उदय प्रवल होय जातें चारित्र अंगीकार करनेकी सामर्थ्य नहीं होय तैतें जेती सामर्थ्य होय तेता तौ करें तिस सिवायका श्रद्धान करें। (दे श्रद्धान/१/३)
- दे. चारित्र/३/१ [यद्यपि चारित्र सम्यग्दर्शन पूर्वक ही होता है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि सम्यवश्व होते ही चारित्र प्रगट हो जाय। हाँ, सम्यवश्व हो जानेके परचात् क्रमशः धीरे-धीरे वह यथाकाल प्रगट अवश्य हो जाता है।]

५, मोक्षमार्गमें सम्यग्दर्शनको प्रधानता

१. सम्यग्दर्शनकी प्रधानताका निर्देश

भ.आ./मू./७१६-७३६ णगरस जह दुवारं मुहस्स चवख् सरस्स जह मूर्जं। तह जाण मुसम्मत्तं णाणचरणवीरियतवाणं १७३६। दंसणभट्टो भट्टो दंसणभट्टस्स णिव्याणं ! सिक्कंति चरियभट्टा दंसणभट्टो हुं। ण सिक्कंति १७३८। दंसणभट्टो भट्टो ण हु भट्टो होइ चरणभट्टो हुं। दंसणममुयत्तस्स हु परिवडणं णित्थ संसारे १७३६। =१. नगरमे जिस प्रकार द्वार प्रधान है, मुख्यों जिस प्रकार चक्षु प्रधान है तथा वृश्में जिस प्रकार मूल प्रधान है, उसी प्रकार ज्ञान, चारित्र, वीर्य व तप इन चार आराधनाओं में एक सम्यवस्य ही प्रधान है। ७६६। २. दर्शनभ्रष्ट ही बास्तवमें भ्रष्ट है क्यों कि दर्शनभ्रष्टको निर्वाण नहीं होता। चारित्र भ्रष्टको मोक्ष हो जाती है, पर दर्शनभ्रष्टको नहीं होता। ७३६। (द.पा./मू./३) (बा.अ./१६) ३. दर्शनभ्रष्ट ही भ्रष्ट है, चारित्रभृष्ट बास्तवमें भ्रष्ट नहीं होता, क्योंकि, जिसका सम्यवस्य नहीं झ्टा है ऐसा चारित्रभृष्ट संसारमें पतन नहीं करता। ७३६।

मो.पा./मू./३६ दंसणसुद्धो सुद्धो दंसणसुद्धो लहेष णिञ्चाणं। दंसण-किहीणपुरिसो न तहह तं हिच्छणं लाहं।३६। = दर्शन शुद्ध ही वास्तवमें शुद्ध है, क्योंकि दर्शनशुद्ध ही निर्वाणको प्राप्त करते हैं। दर्शन विहीन पुरुष इञ्टलाभ अर्थात् मोक्षको प्राप्त नहीं करते।

(**र.** सा./१०)

मो.पा./मू./८८ किं बहुणा भणिएणं जे सिद्धा णरवरा गए काले। सिजिभहिह जे वि भविया जातंण इसम्ममाहप्पं।८८। = बहुत कहनेसे क्या, जो प्रधान पुरुष अतीतकाल में सिद्ध हुए हैं या आगे सिद्ध होंगे वह सब सम्यवस्थका माहातम्य जानो। (बा.अ./१०)

मो.पा./मू./२१ जह ण वि लहिंद हु तबल रहिओ कंडस्स बेडमम विहीणो। तह ण वि लबलिंद लबलं अण्णाणी मोबलमग्गस्स १२१ -जैसे बाण रहित बेधक धनुषके अभ्याससे रहित होता हुआ निशानेको प्राप्त नहीं करता है, बेसे ही अज्ञानी मिथ्यादिट मोसमार्गके सस्य-भूत परमारम तत्त्वको प्राप्त नहीं करता है।

भा.पा./मू./१४४ जह तारयाण चंदो मयराओ मयउलाण सन्नाणं। अहिओ तह सम्मत्तो रिसिसावय दुविहधम्माणं।१४४। — जिस प्रकार ताराओं में चन्द्र और पशुओं में सिंह प्रधान है, उसी प्रकार मुनि ब आवक दोनों प्रकारके धर्मों में सम्यवस्य प्रधान है।१४४।

र.सा./४७ सम्मिवणा सण्णाणं सञ्चारित्तं ण हो इ णियमेण । तो रयणत-यमजभे सम्मिगुणिकिहिमिदि जिणुद्दिष्टुं ।४७। = सम्यवश्वके निना नियमसे सम्याज्ञान व सम्याचारित्र नहीं होते हैं। रतनत्रयमें एक यह सम्यवश्व गुण ही प्रशंसनीय हैं।४७। (र. क. आ./३१-३२)

स. सि./१/१/७/२ अलपास्रादभ्यहितं पूर्वं निपतति । कथमभ्यहितस्वं झानस्य सम्याव्यपदेशहेतुरवात् । अलपास्रत्वाते शब्दसे पूज्य शब्द पहले रखा जाता है, इसलिए सूत्रमें पहले झान शब्दको न रखकर दर्शन शब्दको रखा है । प्रश्न —सम्यादर्शन धूज्य क्यों है १ उत्तर—क्योंकि सम्यादर्शन हे जानमें समीचीनता आती है । (रा. वा./१/१/३१/६/२७) (और भी दे. जान/11/१)

प्र. सा./तः प्र./२३८-२३६ आगमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपयोऽष्यात्मज्ञानमेव मोश्रमार्गसायकतममनुमन्तवयम् १२२८। अतः आत्मज्ञानश्चन्यमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपयमध्यकिचित्करमेव।
च्यागमञ्चान, तत्त्वार्थश्रद्धान और सयतत्वकी युगपत्ता होनेपर भी
आत्मज्ञानको ही मोश्रमार्गका साधकतम सम्मतं करना १२२८।
आत्मज्ञानश्चन्य आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान हेयतत्त्वकी युगपत्ता भी
अकिचित्कर ही है।२३६।

जा, दि/४४ चरणज्ञानयोत्रीजं यमत्रशमजी वितम् । तपःश्रुताचिष्ठानै सद्भिः सदर्शनं मतम् । १४४। = सत्युरुषांने सम्यादर्शनको चारित्र व

ज्ञानका बीज, यम व प्रशमका जीवन तथा तप व स्वाध्यायका आश्रय माना है।

नोटः —[सम्यग्दर्शन विहीन धर्म, चारित्र, ज्ञान. तप आदि सब निरथंक व अकिंचिरकर हैं । और सम्यक्त साहित ही वे सब यथार्थताको प्राप्त होते हैं ।] (दे. धर्म/२); (दे. चारित्र/३); (दे. ज्ञान/III/२ तथा IV/१); (दे. तप/३) ।

२. सम्यग्दर्शन ही सार, सुखनिधान व मोक्षकी प्रथम सीढ़ी है इत्यादि महिमा

- भ, आ-/मू/७६५ मा कासि तं पमादं सम्मत्ते सव्बद्धुःखणासयरे। स्यह सम्यादर्शन सर्व दुखोंका नाश करनेवाला है, अतः इसमें प्रमादी मत बनो।
- चा. पा./मू./२० संखिजजनसंखिजजगुणं च संसारिमेरुमचाणं । सम्मत्त-मणुचरंता करंति दुश्खश्खयं घीरा ।२०। स्सम्यव्यवको आचरण करनेवाले धीर पुरुष संख्यात व असंख्यातगुणी कर्मनिर्जरा करते हैं तथा संसारी जीवोंकी मर्यादा रूप जो सर्व दुख उनका नाश करते हैं।
- द पा./मू./२१ एवं जिलपण्यत्तं दंसणस्यणं घरेह भावेण । सारं गुलरय-णस्त्रं सोवाणं पढममोनखस्स ।२१ः - जिनप्रणीत सम्यादर्शनको अन्तरंग भावोंसे घारण करो, क्योंकि, यह सर्व गुलोमें और रश्नत्रयमें सार है तथा मोक्षमन्दिरकी प्रथम सीढ़ी हैं ।२१।
- र. सा./१४,१६० कामदुर्हि कप्पतरुं चितारयणं रसायणं य समं।
 लक्षो भंजइ सौक्ष्यं जहन्छियं जाण तह सम्मं।१४। सम्मद्दसणसुद्धं
 जावद सभदे हि ताव सुद्दी। सम्मद्दंसणसुद्धं जाव ण सभते हि ताव
 दुद्दी।११८। जिस प्रकार भाग्यशाली मनुष्य कामधेनु करणवृश,
 चिन्तामणिरान और रसायनको प्राप्त कर मनोवां छित उत्तम सुखको
 प्राप्त होता है उसी प्रकार सम्यग्दर्शनसे भव्य जीवोंको सर्व प्रकारके
 सर्वोरकृष्ट सुख व समस्त प्रकारके भोगोपभीग स्वयमेव प्राप्त होते हैं
 ।१४। सम्यग्दर्शनको यह जीव जब प्राप्त हो जाता है तब परम
 सुखी हो जाता है और जब तक उसे प्राप्त नहीं करता तब तक
 दुःखी बना रहता है।११६०।
- र, क. श्रा./३४,३६ न सम्यव्स्वसमं किंचित त्रैकारये त्रिजगत्यि। श्रेयोऽभयश्च निष्यात्वसमं नाम्यत्तन्भृतास् १३४। ओजस्तैजोविद्यान्विर्ययोग्विद्धिविजयविभवसनाथाः। महाकुलामहार्था मानवित्तका भवन्ति दर्शनपूताः।३६। =तीन काल और तीन जगतमें जीवोंका सम्यवस्वके समान कुछ भो कल्याणकारी नहीं है, मिष्यात्वके समान अकल्याणकारी नहीं है।३४। शुद्ध सम्यव्धि जीव कान्ति, प्रताप, विद्या, वीर्य, यशोश्विद्ध, विजय, विभववान, उच्चकुली, धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके साधक तथा मनुष्योंमें शिरोमणि होते हैं।३६।
- र. क, अ /२८ सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मासङ्गदेहजम् । देवा वेवं विदुर्भ-स्मयूढाङ्गारान्तरीजसम् ।२८। च्नगणधरादि देव सम्यग्दर्शन सहित चाण्डालको भी भस्मसे ढकी हुई चिनगारीके समान देव कहते हैं ।२८।
- पं. वि./१/०० जयित सुखनिधानं मोशवृशैकवीणं, सकतमलियुक्तं स्रांतं यद्विना स्यात्। मितरिप कुर्मातर्नु दुश्वरित्रं वरित्रम् भविति मनुजजन्म प्राप्तमप्राप्तमेव १००१ = जिस सम्यग्दर्शनके विना ज्ञान तो मिध्याज्ञान और चारित्र मिथ्याचारित्र हुआ करता है, वह सुखका स्थानभूत, मोक्षरूपी वृश्वका अद्वितीय बीजस्वरूप तथा समस्त दोषों- से रहित सम्यग्दर्शन जयवन्त होता है। उसके बिना प्राप्त हुआ भी मनुष्य जन्म अप्राप्त हुएके समान है।
- ज्ञा./६/१६ अतुलसुखिनधानं सर्वकल्याणबीजं, जननजलियोतं भव्य-सस्वैकपात्रम् । दुरिततरुकुटारं पुण्यतीर्थप्रधानं, पिवत जितिविनक्षं दर्शनारुव्यं सुधाम्त्रम् ।५६। = हे भव्यो ! तुम सम्यग्दर्शनरूपी अमृतका पान करो, वयोंकि, यह अतुल सुखिनधान है, समस्त कल्याणोंका बीज है, संसारसागर तरनेको जहाज है, भव्यजीव ही इसका पात्र है,

- पापबृक्षको कारनेके लिए कुठार हैं, पुण्यतीर्थोमें प्रधान है तथा विपक्षी जो मिध्यादर्शन उसको जीतने वाला है ।
- ज्ञा /६/१३ सहर्शनमहारत्नं विश्वलोकैकभूषणम् । मुक्तिपर्धन्तकन्याण-दानदक्षं प्रकीतितम् ।४२। = यह सम्यग्दर्शन महारत्न समस्त लोकका आभूषण है और मोक्ष होने पर्यन्त आत्माको कश्याण देनेमें चतुर है ।४२।
- आ. सा./२/६८ मान्यः सहर्शनी ज्ञानी हीनोऽपि अपरसद्गुणैः। वरं रत्नमनिष्पन्नं, शोभं कि नाध्यमहित ।६८। च अन्य गुणोंसे हीन भी सम्यग्दृष्टि सर्वमान्य है। क्या जिना शानपर चढ़ा रत्न शोभाको प्राप्त नहीं होता है।
- का. अ./मू./३२४-३२६ रयणाण महारयणं सब्बं जोयाण उत्तम जोयं। रिद्धोण महारिद्धी सम्मत्तं सब्बिसिद्धिपरं ।३२४। सम्मत्तगुणपहाणो देविद-णरिद-वंदिओ होदि । चत्त वओ वि य पावदि सग्गमुहं उत्तमं विविहं ।३२६। स्तम्यग्दर्शन संब रानोमें महारश्न है, सब् योगोमें उत्तम योग है, सब ऋद्धियोंमें महा-ऋद्धि है। अधिक क्या, सम्यक्श्व सब सिद्धियोंका करनेवाला है ।३२४। सम्यक्श्वगुणसे जीव देवोके इन्द्रोंसे तथा चक्रवर्ती आदिसे बन्दनीय होता है, और बत रहित होता हुआ भी नाना प्रकारके उत्तम स्वर्गसुखको पाता है ।३२६।
- अ. ग. श्रा./२/८३ अपारसंसारसमुद्रतारकं, वशीकृतं येन सुदर्शनं परस्। वशीकृतास्तेन जनेन संपदः, परेरलभ्या विषदामनास्पदम् । परः। —अपार संसारसमुद लारनेवाला और जिसमें विषदाओं को स्थान नहीं, ऐसा यह सम्यादर्शन जिससे अपने वश किया है उस पुरुषने कोई अलभ्य सम्पदा ही वश करी है।
- सा. ध./१/४ नरःवेऽपि पञ्चयन्ते मिध्यात्वयस्तचेतसः। पशुःवेऽपि नरायन्ते सम्यवश्वव्यत्तःचेतसः।४। स्मिध्यात्वसे प्रस्त चित्तःवाला मनुष्य भी पशुके समान है। और सम्यवस्वसे व्यक्त चित्तवाला पशु भी मनुष्यके समान है।

३. सम्यग्दर्शनकी प्रधानतामें हेतु

- द, पा, प्र, ११६-१६ सम्मत्तादो णाणं णाणादो सञ्वभावजवलादी। जबसाद्धप्यत्थे पुण सेयासेयं वियाणेदि।१६। सेयासेयविदण्ह उद्धु-ददुस्सील सीलवंतो वि। सीलफलेणब्भुदयं तत्तो पुण लहह णिव्वाणं ११६। क्सम्यवत्वसे तो ज्ञान सम्यक् होता है। (और भी दे. शीर्षक सं. १ में स. सि. ११/१/७/२)। जन दोनोंसे सर्व पदार्थों या तत्त्वोंकी जपलब्धि होती है। पदार्थोंकी जपलब्धि होनेपर अय व अश्रेयका ज्ञान होता है।१६। श्रेय व अश्रेयको जानकर वह पुरुष मिथ्यात्वको जज़कर तथा सम्यक् स्वभावयुक्त होकर अम्युदय व तीर्थंकर आदि पदोंको प्राप्त होता हुआ पोछे निवणि प्राप्त करता है।१६।
- दे. शीर्षक सं. १, (सम्यग्दर्शन, ज्ञान व चारित्रका बीज है)।

४. सम्यग्दर्शनके पश्चात् भव धारणकी सीमा

- भ. आ./मू./गा. लह्ध्रण य सम्मत्तं मुहुत्तकालमिव जे परिवर्डति । तेसिमणताणता ण भविद संसारवासद्धा । १३। — जो जीव मुहूर्तकाल पर्यन्त भी सम्यग्दर्शन को प्राप्त करके अनन्तर छोड़ देते हैं, वे भी इस संसारमें अनन्तानन्त कालपर्यन्त नहीं रहते । अर्थाद उनको अधिकसे अधिक अर्धपुद्दग्त परिवर्तन कालमात्र ही संसार शेष रहता है इससे अधिक नहीं—दे. काल/६ तथा अन्तर/४]
- क, पां. मुल/११/गा. १११/६४१ खनणाए पहनगो जिम्म भवे णियमहो तदो अण्णे। णाधिक अदि तिण्णि भवे इंसणमोहिम्म खीणिम्स ।२०३। जो मनुष्य जिस भवमें दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रथापन करता है, वह दर्शनमोहके क्षीण होनेपर तीनभवमें नियमसे मुक्त हो जाता है 1२०३। (पं. सं./पा./१,२०३)।

- रा. वा./४/२४/३/२४४/११ अप्रतिपतितसम्यग्दर्शनानां परीतिवषयः सप्ताष्टानि भवग्रहणानि उत्कर्षेण वर्तन्ते, जघन्येन द्वित्रीणि अनुत्र-न्ध्योच्छिद्यन्ते । प्रतिपतितसम्यक्तानां तु भाज्यम् । च्यो सम्यभ्वर्शनसे पतित नहीं होते उनको उत्कष्टतः सात या आठ भवोंका ग्रहण होता है और जघन्यसे दो-तीन भवोंका । इतने भवोंके पश्चात् उनके संसारका उच्छेद हो जाता है । जो सम्यक्त्वसे च्युत हो गये हैं उनके लिए कोई नियम नहीं है । (प. पू./१४/२२४)
- क्ष. सा./मू./१६५/२१८ दंसणमोहे खिविदे सिज्मिदि तत्थेव तियस्तिर्यम् भवे । णादिक्कित् तुरियभवे ण विणस्सति सेससम्मे वा । चदर्शन-मोहका क्षत्र हो जानेपर उस ही भवने या तीसरे भवमें अथवा मनुष्य तिर्यंचकी पूर्वमें आयु बाँध तो हो तो भोगभूमिकी अपेक्षा चौथे भवमें सिद्धि प्राप्त करते हैं। चौथे भवको उल्लंघन नहीं करते । औपश्मिक व क्षायोपशमिक सम्यवस्वकी भाँति यह नाक्षको प्राप्त नहीं होता ।१६६। (गो. जी./जी. प्र./६४६/१०६७/२ पर उद्दृष्त)
- बसु. शा./२६६ अण्णे उ मुदेबत्तं सुमाणुसत्तं पुणो पुणो लहिऊण । सत्तदु-भवेहि तओ करंति कम्मक्ख्यं णियमा ।२६६। = कितने ही जीव सुदेवत्व और सुमानुष्यको पुनः पुनः प्राप्त करके सात-आठ भवेंके पश्चात नियमसे कर्मक्षय करते हैं ।२६६।

II निश्चय व्यवहार सम्यग्दर्शन

१. निश्चय व्यवहार सम्यक्त्व लक्षण निर्देश

१. सम्यग्दर्शनके दो भेद

र. सा./४ सम्मत्तरयणसारं मोन्खमहारूक्खमूनमिदि भणियं। तं जाणिज्ञ णिच्छयववहारसस्वदो भेदं।४। =सम्यग्दर्शन समस्त रत्नोंमें सारभूत रत्न है और मोक्षरूपी वृक्षका भून है, इसके निश्चय व व्यवहार ऐसे दो भेद जानने चाहिए।

२. व्यवहार सम्यग्दर्शनके सक्षण

१. देव शास्त्र गुरु व धर्मकी श्रद्धा

- मो. पा./मू./६० हिंसारहिए धम्मे अट्टारहदोसविजाए देवे। णिगांथे पठवयणे सद्दर्ण होइ सम्मत्तं १६०। = हिंसादि रहित धर्म, अठारह दोष रहित देव, निर्धन्थ प्रवचन अर्थात् मोक्षमार्ग व गुरु इनमें श्रद्धा होना सम्यग्दर्शन है १६०।
- र. क. आ /१ श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम् । त्रिमूढापोढमष्टाकः सम्यग्दरानमस्मयम् ।४। = सस्यार्थ देव, शास्त्र और गुरु इन तीनों-का आठ अंग सहित, तोन मूढता और आठ मदरहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहा जाता है।
- का. अ /मू./३१७ णि जियदोसं देवं सब्ब जिणाणं दयावरं धम्मं । विज-यगंथं च गुरुं जो मण्यदि सो हु सिंह्द्री ।३१७। ज्जो बीतराग अर्बन्तको देव, दयाको उत्कृष्ट धर्म और निर्मम्थको गुरु मानता है वही सम्यग्द्रष्टि है।

२. आप्त आगम व तत्त्रींकी श्रद्धा

नि. सा./मू./१ अत्तागमतचाणं सहहणादो हवेइ सम्मत्तं। = आप्त आगम और तत्त्वोंकी श्रद्धासे सम्यवत्व होता है। [इनका सम्यक् श्रद्धान व्यवहार सम्यवत्व है--(इसी गाथाकी ता. वृ. टीका); (ध. १/ १.१ ४/१५१/४); (वसु शा./६);

३. तत्त्वार्थं या पदार्थां आदिका श्रद्धान

त. सू./१/२,३ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।२। जीवाजीवासवसम्धसंवर-निर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ।३। = अपने-अपने स्वभावमें स्थित तत्त्वार्यके श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं। जीव-अजीव आस्नव बन्ध संवर

- निर्जरा व मोक्ष ये सात तत्त्व हैं। (द. पा./मू./२०); (मू. आ./२०३); (ध. १/१.१,४/१६/२); (इ. सं./मू./४१); (वसु. आ./१०)
- पं, का,/मू,/१०७ सम्मत्तं सद्हणं भावाणं [भावाः ख्लु कः सकित-पञ्चास्तिकायविकन्परूपा नव पदार्थः। (त.प्र.टीका)] = काल सहित पंचास्तिकायके भेदरूप नव पदार्थ वास्तवमें भाव हैं। उन भावोंका श्रद्धान सो सम्यक्तव है।
- द. पा./मू./११ छह दब्ब जब पयत्था पंचत्थी सक्त तच जिदिहा। सहहह ताज रूवं सो सिंदही सुणेयब्बी ।११। = छह द्रव्य, नव पदार्थ, पाँच अस्तिकाय, सप्त तक्त्व, ये जिनवचनमें कहे गये हैं। इनके स्वरूपका जो श्रद्धान करता है वह समयग्दृष्टि है।
- पं. सं./प्रा /१/१६६ छप्पंचणविद्याणं अत्थाणं जिणवरोवृष्ट्वाणं। आणाए छित्रमोण य सद्द्वणं होष्ट्र सम्मत्तं। = जिनवरोके द्वारा उपिद्य छह द्वव्य, पाँच अस्तिकाय, और नौ पदार्थोका आज्ञा या अधिगमसे श्रद्धान करना सम्यक्तवंहै। (ध. १/१,१,४/गा.,१६/१४); (ध.१/१,१,१४४/गा. २१२/३६४); (गो. जी./मू./६६१/१००६)

४. पदार्थीका विपरीतामिनिवेश रहित श्रद्धान

पं. का./ता. वृ./१०७/१६९/२४ मिध्यात्योदयजिनति विपरीताभिनिवेदारिहतं श्रद्धानम् । केषां संगन्धि । पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यविकल्परूपं
जीवाजीवद्रव्यं जीवपुद्गलसंयोगपरिणामोत्पन्नास्त्रवादिपदार्थसप्तकं चेत्युक्तलक्षणानां भावानां जीवादिनवपदार्थानाम् । इदं तु नवपदार्थ-विषयभूतं व्यवहारसम्यवत्वम् । = मिध्यात्वोदयज्जनित्विपरीत्त अभिनिवेदा रहित, पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य, जीवादि सात पदार्थ अथवा जीवादि नव पदार्थ, इनका जो श्रद्धान सो व्यवहार सम्यवत्व है । (पु. सि. उ./२२); (स. सा./वृ./१४५/२२०/१)

५, यथावस्थित पदार्थीका श्रद्धान

- प. प्र./मू./२/१६ दब्बईँ जाणइ जह ठियईँ तहः जिंग मण्णइ जो जि । अप्पर्ह केरच भावडच अविचलु इंसणु सो जि ।१६८ — जो द्रव्योंको जैसा उनका स्वरूप है वैसा जाने और उसी तरह इस जगत्में श्रद्धान करे, वही आरमाका चलमलिनअवगाढ दोष रहित निश्चल भाव है। वही आरमभाव सम्यग्दर्शन है। (और भी दे, सम्यग्दर्शन/ 1/१/४); (दे, तत्त्व/१/१)।
 - ६. तत्त्रोंमें हैय व उपादेय बुद्धि
- सू, पा / मू / १ सत्तर्थ जिलभणियं जीवाजीवादिबहु विहं अत्थ । हेयाहेयं च तहा जो जाणह सो हु सिंह्टी । १। = सूत्रमें जिनेन्द्र भगवान् ने जीव अजीव आदि बहुत प्रकारके पदार्थ कहे हैं। उनको जो हेय और अहेयरूपसे जानता है (अर्थात जीव संवर निर्जरा व मोक्ष अहेय हैं और शेष तीन हेय। इस प्रकार जो जानता है) वह सम्यग्दृष्टि है।

७. तत्त्र रुचि

मो. पा./स्./१० तश्चरुई सम्मत्तं। =तत्त्वरुचि सम्यग्दर्शन है।(ध. १/१.१.४/१४१/६)

३, निश्चय सम्यग्दर्शनके लक्षण

- १. उपरोक्त पदार्थीका शुद्धात्मासे भिन्न दर्शन
- प्र. सा./त. प्र./२४२ ज्ञेयज्ञातृतत्त्वतथाप्रतीतिजक्षणेन सम्यग्दर्शनपर्यायेण = ज्ञेय और ज्ञाता इन दोनोंकी यथारूप प्रतीति सम्यग्दर्शन का लक्षण है।
- स. सा./आ./३१४-३१४ स्वपरयोविभागदर्शनेन दर्शको भवति । = स्व व परके विभाग दर्शनसे दर्शक होता है।
- स. सा./तः. वृ./११४/२२०/११ अथवा तैषामेव भूतार्थेनाधिगतानां पदार्थानां सुद्धारमनः सकाशात् भिन्नत्वेन सम्यगवलोकनं निश्चय-

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

सम्यक्त्वम् । = अथवा उन भूतार्थस्त्रपसे जाने गये जीवादि नौ पदार्थीका शुद्धारमासे भिन्न करके सम्यक् अवलोकन करना निश्चय सम्यक्त्व है।

२. शुद्धात्माको रुचि

- स. सा. ता. वृ./३८/७२/१ शुद्धातमेवोपादेय इति श्रद्धानं सम्यक्ष्यम् ।

 -- शुद्धातमा हो उपादेय हैं, ऐसा श्रद्धान सम्यक्ष्य है।
 (द्र. सं./टो./१४/४२/४)
- स सा./ता /वृ./२/८/१० विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे निजपरमात्मनि यदुचिरूण सम्ययदर्शनम् । = विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावरूप निज परमात्मामं रुचिरूप सम्ययदर्शन है ।
- पं. का./ता,/वृ./१०७/१७०/६ शुद्रधजीवास्तिकायरुचिरूपस्य निश्चय-सम्यवत्यस्य---। = शुद्रध जीवास्तिकायकी रुचि निश्चयसम्यवत्व है।
- दे. मोहनीय/२/१ में घ./६ (आप्त या आत्मामें रुचि या शह्या दर्शन है।

३. अतोन्द्रिय सुखकी रुचि

- प्र. सा./ता. वृ./६/६/१६ रागादिभ्यो भिन्नोऽयं स्वात्मोत्यसुखस्वभावः परमात्मेति भेदज्ञानं, तथा स एव सर्वप्रकारोपादेय इति रुचिस्त्यं सम्यत्यम् । रागादिसे भिन्न यह जो स्वात्मासे उत्पन्न सुखस्त्य स्वभाव है वही परमात्मतत्त्व है। वही परमात्म तत्त्व सर्व प्रकार उपादेय है, ऐसी रुचि सम्यवस्य है।
- द्र. सं/टो./४१/१०८/२ शुद्धोपयोगलसणितश्चयरत्नत्रयभावनोत्पन्नपरमा-ह्नादै करूपसुलामृतरसास्वादनमेवोपादेयिमिन्द्रियसुखादिके च हेय-मिति रुचिरूपं वीतरापचारित्राविनाभूतं वीतरापसम्पक्त्वाभिधानं निश्चयसम्पक्त्वं च ज्ञातव्यमिति ! — शुद्धोपयोगरूप निश्चय रत्नत्रयकी भावनासे उत्पन्न परम अःह्नादरूप सुलामृत रसका आस्त्रादन ही उपादेय है, इन्द्रियजन्य सुल आदिक हेय हैं, ऐसी रुचि तथा जो वीतराग चारित्रके विना नहीं होता ऐसा जो वोतराग सम्यक्त्व वह ही निश्चय सम्यक्त्व है। (द्र. सं/टो./२२/६७/१); (द्र. सं./टो./४६/१६४/१०); (प. प्र./२/१७/१३२/७)।
 - ४. बीतराग सुखस्वमान ही मैं हूँ, ऐसा निश्चय
- द्र. सं./टो.४०/१६३/१० रागादि विकल्पोपाधिर हित चिच्चमस्कारभावो-त्पन्नमथुररसास्वादसुखोऽहमिति निश्चयरूपं सम्यय्दर्शनम्। च 'रागादि विकल्प रहित चित् चमत्कार भावनासे उत्पन्न मथुर रसके आस्वाद-रूप सुखका धारक मैं हूँ', इस प्रकार निश्चय रूप सम्यय्दर्शन है।

५. शुद्धात्मा की उपलब्धि आदि

- स. सा./मू./१४४ सम्मइदंसणाणं एसो सहिदित्ति णवरि ववदेसं। सब्ब-णयपक्तरिहदो भणिदो जो सो समयसारो।१४४। च्लो सर्व नय पक्षोंसे रहित कहा गया है वह समयसार है। इसी समयसारकी सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान संज्ञा है।१४४। (और भी दे. मोक्षमार्ग/३)।
- पं. ध. (छ. /२१६ न स्यादारमोपल न्धिर्का सम्यादर्शनलक्षणम्। शुद्धा चेदस्ति सम्यादर्शन विष्कुद्धा न सा सुदक्। = केवल आध्माकी उपल न्धि सम्यादर्शनका लक्षण नहीं है। यदि वह शुद्ध है तो उसका लक्षण हो सकती है और यदि अशुद्ध है तो नहीं।

४. लक्षणमें तस्त्र व अर्थ दोनों शब्द क्यों

स. सि./१/२/६/९ अर्थश्रद्धानिमिति चेरसविधे प्रसङ्घाः । तत्त्वश्रद्धानिमिति चेद्धावमावप्रसङ्गे 'सत्ताद्ववपरवगुगरवकर्मस्वादि तत्त्वम्' इति केष्टिचरकरप्यत् इति । तत्त्वमेकत्वमिति वा सर्वेद्ध्याहणप्रसङ्घः । 'पुरुष एवेदं सर्वम्' इस्यादि केष्टिचरकरप्यत इति । एवं सति दृष्टेष्ट-विरोधः । तस्मादवयभिचारार्थमुभयोरुपादानम् । = प्रश्न-सूत्रमें 'तत्त्वार्थश्रद्धान' के स्थानमें 'अर्थश्रद्धानम्' इतना कहना पर्याप्त है ! उत्तर—इससे अर्थ शब्दके धन प्रयोजन अभिधेय आदि जितने भी अर्थ हैं उन सबके ग्रहणका प्रसंग आता है ! प्रश्न—तब 'तत्त्वश्रद्धानम्' केवल इतना ही कहना चाहिए ! उत्तर—इससे केवल भाव मात्रके ग्रहणका प्रसंग प्राप्त होता है । कितने ही लोग (वेशेषिक) तत्त्व पदसे सत्ता, व्रव्यत्व, गुणत्व और कर्मश्व इत्यादिका ग्रहण करते हैं । केवल 'तत्त्वश्रद्धानम्' ऐसा कहनेपर इन सबका श्रद्धान करना सम्यादर्शन प्राप्त होता है । अथवा तत्त्व शब्द एकश्ववाची है, इसलिए केवल 'तत्त्व' शब्दका श्रहण करनेसे 'सब एक है' इस प्रकारके स्वीकारका प्रसंग आता है । 'यह सब दश्य व अदृश्यजगत् पुरुषस्वरूप ही है' ऐसा किन्हींने माना है । इसलिए भी केवल 'तत्त्वश्रद्धान' कहना युक्त नहीं । क्योंकि ऐसा माननेपर प्रसक्ष व अनुमान दोनोंसे विरोध आता है । अतः इन सब दोहोंके दूर करनेके लिए सूत्रमें 'तत्त्व' और 'अर्थ' इन दोनों परोक्ता ग्रहण किया है । (रा. वा./१/२/१७-२४/२०-२१); (रलो वा./१/१/१३-४/१६/४) ।

५. व्यवहार लक्षणींका समन्वय

ध. १/१,१,४/१५१/२ प्रश्नमसंवेगानुकम्पास्तिक्याभिट्यक्तिस्थणं सम्य-वरवम्। सत्येव असंयतसम्यग्दष्टिगुणस्याभावःस्यादिति चेत्सरयमेतत शुद्धनये समाशीयमाणे । अथवा तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दशेनस् । अस्य गमनिकोच्यते, आधागमपदार्थस्तत्त्वार्थस्तेषु अद्धानमनुरक्तता सम्य-ग्दर्शनिमिति लक्ष्यतिर्देशः । कथं भौरस्त्येन लक्ष्णेनास्य न विरोध-श्चेन्नैष दोषः, शुद्धाशुद्धसमाध्रयणात् । अथवा तस्वरुचिः सम्यवत्वस् अशुद्धतरनयसमाध्यणात्। = १. प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्यकी प्रकटता ही जिसका लक्षण है उसको सम्यक्त्व कहते हैं। (दे. सराग सम्यग्दर्शनका लक्षण)। प्रश्न – इस प्रकार सम्यक्त्व-का तक्षण मान लेनेपर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानका अभाव हो जायेगा १ उत्तर-यह कहना शुद्धनिश्चयनयके आश्रय करनेपर ही सत्य कहा जा सकता है। २. अथवा, तत्त्वार्थ के श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि आप्त आगम और पदार्थको तत्त्वार्थ कहते हैं। और इनके विषयमें अद्धान अर्थात अनुरक्ति करनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं। यहाँ पर सम्यग्दर्शन लक्ष्य है, तथा आग्न आगम और पदार्थका श्रद्धान सक्षण है। प्रश्न-पहिले कहे हुए (प्रशमादि-की अभिव्यक्तिरूप) सम्यक्त्व के लक्षण के साथ इस सक्षण का विरोध क्यों न माना जाय ? उत्तर - यह कोई दोष नहीं है, क्यों कि शुद्धध और अशुद्ध नय की अपेक्षा से ये दोनों लक्षण कहे गये हैं। अर्थात् पूर्वोक्त लक्षण शुद्ध नय की अपेक्षा से है और यह तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप लक्षण अञ्चद्ध नय की अपेक्षा से हैं। ३.-अथवा तत्त्व-रुचि को सम्यक्त्व कहते हैं। यह लक्षण अशुद्धतर नय की अपेक्षा जानना चाहिए।

६. निश्चय लक्षणोंका समन्वय

प, प्र./टो./२/१७/१३२/२ अत्राह प्रभाकरभट्टः । निजशुद्धारमेवोपादेय
इति रुन्तिः विषयसम्यन्त्वं भवतीति बहुधा व्याख्यातं पूर्वं
भवद्भिः, इदानीं पुनः बीतरागचारित्राविनाभूतं निश्चयसम्यन्त्वं
व्याख्यातमिति पूर्वापरिवरोधः कस्मादिति चेत् निजशुद्धारमेवोपादेय इति रुचिरूपम् निश्चयसम्यन्त्वं गृहस्थावस्थायां तीर्थकरपरमदेवंभरतसगररामपाण्डवादोनां विद्यते, न च तेषां वीतरागचारित्रमस्तोति परस्परविरोधः, अस्ति चेस्हि तेषामसंयतत्त्वं कथमिति
पूर्वपृक्षः । तत्र परिहारमाह । तेषां शुद्धात्मोपादेयभावनारूपम्
निश्चयसम्यन्त्वं विद्यते परं किंतु चारित्रमोहोदयेन स्थिरता नास्ति
वत्प्रतिज्ञाभङ्गो भवतीति तेन कारणेनासंयता वा भण्यन्ते । शुद्धारमभावनाच्युताः सन्तः भरतादयो...शुप्रागयोगात् सरागसम्यग्द्ष्टयो

भवन्ति । या पुतस्तेषां सम्यवत्त्रस्य निश्चयसम्यवत्त्रसं ह्या बीतराग-चारित्राविनाभृतस्य निश्चयसम्यक्त्त्रस्य परंपरया साधकत्वादिति । वस्तुवृत्त्या तु तत्सम्यक्त्वं सरागसम्यक्त्वारूयं व्यवहारसम्यक्त्वमेवेति भावार्थः।=प्रश्न-'निज शुद्धारमा ही उपादेय है' ऐसी रुपिरूप निश्चय सम्यवत्व होता है, ऐसा पहिले कई वार आपने कहा है, और अब 'बीतराग चारित्रका अविनाभृत निश्चय सम्यक्त्व है' ऐसा कह रहे हैं। दोनोंमें पूर्वापर विरोध है। वह ऐसे कि 'निज शुद्धात्म-तत्त्व ही उपादेय हैं ऐसी रुचिरूप निश्चयसम्यवस्य गृहस्थावस्थामें तीर्थ कर परमदेव तथा भरत, सगर, राम, पाण्डव आदिको रहता है परन्तु उनको बीतराग चारित्र नहीं होता, इसलिए परस्पर विरोध है। यदि 'होता है' ऐसा मानें तो उनके असंयतपना कैसे हो सकता है। उत्तर – उनके शुद्धारमाकी उपादेयताकी भावनारूप निश्चय सम्यव्स्व रहता है, किन्तु चारित्रमोहके उदयके कारण स्थिरता नहीं है, बतको प्रतिज्ञा भंग हो जातो है, इस कारण उनको असंयत कहा जाता है। शुर्धात्मभावनासे च्युत होकर शुभरागके योगसे वे सराग सम्यग्दृष्टि होते हैं। उनके समयक्त्वको जो समयक्त्व वहा गया है, उसका कारण यह है कि वह वीतराग चारित्रके अविनाभूत निरुचय-सम्यक्त्वका परम्परा साधक है। बस्तुतः तो वह सम्यक्त्व भी सरागसम्यक्तव नामवाला व्यवहार सम्यक्तव ही है।

७. व्यवहार व निश्चय लक्षणोंका समन्वय

मो. मा. प्र./१/पृष्ठ/पंक्ति = प्रश्न -सात तत्त्वोंके श्रद्धानका नियम कही ही सो बने नाहीं। जातें कहीं परते भिन्न आपका श्रहवान ही की सम्यक्त्व कहें हैं ... कहीं एक आत्माके निश्चय ही की सम्यक्त्व कहें हैं।...तातें जोव अजीव ही का वा केवल जीव ही का श्रद्धान भए सम्यक्त हो है। १७७/१८। उत्तर-१. परते भिन्न आपका अइधान हो है सो आस्रादिका श्रद्धानकरि रहित हो है कि सहित हो है। जो रहित हो है, तौ मोक्षका श्रद्धधान जिना किस प्रयोजनके अथि ऐसा उपाय करे है। ..तातै आस्रगदिकका श्रद्धधान रहित आपापरका श्रद्धान करना सम्भवै नाहीं। बहुरि जो आसवादिका श्रद्धान सहित हो है, तौ स्वयमेव सातौं तत्त्वनिके शह्यानका नियम भया। (४७८/८)। २. बहुरि केवल आत्माका निश्चय है, सो परका परस्वप अह्धान भए बिना आत्माका धह्धान न होय तातै अजीवका श्रद्धान भए ही जीवका अद्धान होय। ..तातैं यहाँ भी सातौं तत्त्वनिके ही श्रद्धधानका नियम जानना । बहुरि आसवादिकका श्रद्धधान विना आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धान साँचा होता नाहीं। जाते आत्मा द्रव्य है, सो तौ शुद्ध अशुद्ध पर्याय लिये है।...सो शुद्ध अशुद्ध अवस्थाको पहिचान अस्त्रवादिकको पहिचानते हो है। (४७८/१४)। = प्रश्न-३. जो ऐसे है. तौ शास्त्रनिविधैं---नव तत्त्वकी सन्तति छोड़ि हमारे एक आत्मा ही होहु. ऐसी कह्या।सो केसें कह्या १ (स. सा./आ/१२/क ६) उत्तर—जाकी साचा आपापर-का श्रद्भान होय, ताकौ सातौं तत्त्वनिका श्रद्धान होय ही होय, बहुरि जाके साँचा सात तत्त्वनिका श्रद्धान होय, ताके आपापरका बा आत्माका शद्धान होय हो होय। ऐसा परस्पर अविनाभात्रीपन जानि आपापरका श्रह्भानकौं या अत्मश्रद्भान होनकौं सम्यक्त्व कह्या है। (४७६/१५)। प्रश्न-४, जो कहीं वास्त्रनिविषें अर्हत देव निर्ग्रन्थ गुरु हिसारहित धर्मका श्रद्धानकों सम्यवत्व कह्या है, सो कैसैं है (४८०/२२) ! उत्तर-१. अर्द्धत देवादिकका श्रद्धान होनेतें वा कुदेवादिकका श्रद्धान दूर होने करि गृहीत मिथ्यात्वका अभाव हो है, तिस अपेशा याकी सम्यवस्त्री कह्या है। सर्वथा सम्यवस्त्रका सक्षण नाहीं। (४८९/२) २, अर्ह तरेत्रादिकका अज्ञान होतें तौ सम्यक्त्व होय वा न होय, परन्तु अर्हतादिकका श्रद्धान भए विना तत्त्रार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व कदाचित् न होय। तातै अर्हतादिकके श्रद्धानकौ अन्त्रयरूपकारण जानि कारणविधे कार्यका उपचारकरि इस

श्रद्धानकों सम्यक्त्व कह्या है। याहो ते याका नाम व्यवहार सम्यक्त्व है। ३. अथवा जाके तत्त्वार्थश्रद्धान होय, ताके साँचा अर्हन्तादिकवे स्वरूपका श्रद्धान होय ही होय । (४८९/१०) ...जाकै साँचा अर्ह तादिकके स्वरूपका श्रद्धान होय ताके तत्त्वार्थ शद्दान होय ही होय। जातें अईन्तादिकका स्वरूप पहिचानें जीव अजीव आसव आदिककी पहिचानि हो है। ऐसे इनिकौ परस्पर अविनाभावी जानि, कहीं अर्हन्तादिकके अद्धानकी सम्यक्त कह्या है। (४८१/१४)। प्रश्न-४. जो केई जोव आई तादिकका श्रद्धधान करेँ हैं तिनिके गुण पहचानें हैं अर उनके तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप सम्य**राय न** हो है । (४⊂२/१७) ! उत्तर—जातें जोव अजीवकी जाति पहिचानें विना अरहन्तादिकके आत्माश्रित गुणनिकौं वा शरीराश्रित गुणनिकौ भिन्न-भिन्न न जानें। जो जानें तौ अपने आत्माकीं परद्रव्यते भिन्न कैसें न मानें ! (४८३/२) प्रश्न--६, अन्य-अन्य प्रकार सक्षण करने-का प्रयोक्तिम कह्या (४८३/२१) १ उत्तर—साँची दृष्टिकरि एक लक्षण ग्रहण किये चारवों लक्षणका ग्रहण हो हैं। तथापि मुख्य प्रयोजन जुदा-जुदा विचारि अन्य-अन्य प्रकार तक्षण कहे हैं। १, जहाँ तत्त्वार्थ श्रद्धान सञ्जय कहा है, तहाँ तौ यह प्रयोजन है, जो इनि तत्त्वनिकी पहिचानें, तौ यथार्थ वस्तुके स्वरूप वा अपने हित अहितकर श्रद्धान करौं तत्र मोश्रमार्गविषें प्रवर्त्ते। (४८४/१)। २. आपापरका भिन्न श्रद्धान भए परवव्यविषे रागादि न करनेका श्रद्धान हो है। ऐसें तत्त्वार्थश्रद्धानका प्रयोजन आपापरका भिन्न श्रद्धानतै सिद्ध होता जानि इस लक्षणकीं कहा है। (४८४/१०)। ३. अष्ट्ररि जहाँ आत्मश्रद्धान लक्षण कहा। है तहाँ आपापरका भिन्न श्रद्धानका प्रयोजन इतना हो है--आपकौ आप जानना। आपकौ आप जानें परका भी विकल्प कार्यकारी नाहीं। ऐसा मृलभूत प्रयोजनकी प्रधानता जानि आत्मश्रद्धानको मुख्य संक्षण कह्या है। (४८४/१३) ४, बहुरि जहाँ देवगुरुधर्मका श्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ भाह्य साधनकी प्रधानता करी है। जातें अर्हन्तादिकका श्र**द्धान साँचा** तत्त्वार्थश्रद्धानकौं कारण है मन्देसे जुदे-जुदे प्रयोजनकी मुख्यता करि जुदे-जुदे लक्षण कहे हैं। (४५४/१७)।

२. निश्चय व्यवहार सम्यग्दर्शनकी कथंचित् मुख्यता गौणता

१, स्वभाव भान बिना सम्यक्त्व नहीं

न, च. ख़, /१८२ जे प्यादिद्विविहीणा ताणण वस्थूसहाव उवलद्धी। वस्थु-सहाव विहूणा सम्माइष्टी कम्नं हुंति ।१८२। = जो नयर ष्टिविहीन हैं उनके वस्तुस्वभावकी उपलब्धि नहीं होती है। और वस्तुस्वभावसे विहोन सम्याद ष्टि कैसे हो सकते हैं।

मो.मा.प्र./७/३२१/१२ वस्तुके भावका नाम तत्त्व कह्या। सो भाव भासें विना तत्त्रार्थ श्रद्धान कैसें होय !

२. आत्मानुमदीको ही आठो अंग होते हैं

का.अ./मू./४२४ जो ण कुणदि परतिंत पुणु पुणु भावेदि सुद्धमण्पाणं । इंदियसुर्गाणरवेक्खो णिस्संकाई गुणा तस्स ।=जो पुरुष परायी निन्दा नहीं करता और बारम्बार शुद्धात्माको भाता है, तथा इन्द्रिय सुखको इच्छा नहीं करता, उसके नि शंकित आदि गुण होते हैं।

३. आठों अंगोंमें तिश्चय अंग ही प्रधान हैं।

पं.ध./उ/१त्तो सं. तद्व द्विधाथ नात्सत्त्यं भेदात्स्वपरगोचरात्। प्रधानं स्वारमसंबन्धिगुणो यावत्परात्मनि ।८०१। पूर्ववत्सोऽपि द्विविधः स्वान्यात्मभेदतः पुनः। तत्रायो वरमादेयः समादेयः परोऽभ्यतः ।८१४। = वह वात्सत्य अंग भी स्व और परके विषयके भेदसे दो

प्रकारका है, उनमेंसे स्वारमसम्बन्धी प्रधान है तथा परात्मसम्बन्धी गीण है।८०६। वह प्रभावना अंग भी वारसल्यकी तरह स्व व परके भेदसे दो प्रकारका है। उनमेंसे पहला प्रधान रीतिसे आदेय है तथा दूसरी जो परप्रभावना है वह गीणस्वपसे उपादेय है।८१४।

द्रमां /पं. जयचन्द/२/७/२४' ते चिह्न कीन, सो लिखिए है--तहाँ मुख्य चिन्हती यह है जो उपाधि रहित शुद्ध ज्ञानचेतनास्वरूप आस्माकी अनुभूति है, सो यद्यपि यह अनुभूति ज्ञानका विशेष है (दे. सम्यग्दर्शन/1/४/१) तथापि सम्यवस्व भये यह होय है, तातै याकू बाह्य चिह्न कहिए हैं।'

४. श्रद्धान आदि सब आत्माके परिणाम हैं

रा.वा./१/२/१/११/१० स्यादेतत्-वस्यमाणिनिर्देशः दिसूत्रविवरणः त् पुद्गलद्दव्यस्य संप्रस्ययः प्राप्नोतिः तन्नः किं कारणम् । आत्मपरि-णामेऽपि ततुपपत्तेः । किं तत्त्वार्धश्रद्धानम् । आत्मपरिणामः । कस्य । आत्मन इत्येवमादि ।=मोहनीय कर्मको प्रकृतियोमें भी सम्यवस्य नामकी कर्मप्रकृति हैं और 'निर्देश स्वामित्व । आदि सूत्रके विवरणसे भी ज्ञात होता है कि यहाँ सम्यवस्य कर्मप्रकृतिका सम्यग्दर्शनसे ग्रहण है अतः सम्यवस्यको कर्म पुद्गलस्त्य मानना चाहिए ! उत्तर-यहाँ मोक्षके कारणोंका प्रकरण है, अतः उपादानभूत आत्मपरिणाम ही विवक्षित हैं । (इ. सं./मृ./४१)

दे. भाव/२/३ औपशमिकादि सम्यग्दर्शन भी सीधे आत्मपरिणाम स्वरूप

है कर्मोंकी पर्यायरूप नहीं।]

५. निइचय सम्यक्त्वकी महिमा

पं.िव./४/२३ तत्प्रति प्रीतिचित्तेन ग्रेन बार्तापि हि श्रुता । निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्वाणभाजनस् ।२३। = उस आत्मतेजके प्रति मनेमें प्रेमको धारण करके जिसने उसकी बात भी सुनी है, वह निश्चयसे भव्य है, व भविष्यमें प्राप्त होनेवाली मुक्तिका पात्र है।

६. श्रद्धान मात्र समस्यग्दर्शन नहीं है

रा.वा./र/२/२६-२८/२१/२१ इच्छाश्रद्धानिमत्यपरे ।२६। तद्युक्तम् मिथ्याद्यादेरिप प्रसङ्गात् ।२०। केत्रलिनि सम्यक्ताभावप्रसंगाच ।२८। चलोई वादी इच्छापूर्वक श्रद्धानको सम्यग्यदर्शन कहते हैं ।२६। उनका यह मत ठीक नहीं हैं, क्योंकि मिथ्यादृष्टि (जैन शास्त्रोंको पढ़कर) वैसा श्रद्धान तो कर लेते हैं ।२०। दूसरी वात यह है कि ऐसा माननेसे केवली भगवान्में सम्यक्तका अभाव प्राप्त होता है, क्योंकि, उनमें इच्छाका अभाव है ।२८।

श्लो, वा. २/१/२/३/३ टशेश्चालोचने स्थितिः प्रसिद्धा, हिश्च प्रेश्नण इति वचनात । तत्र सम्यक् पश्यत्थनेनेत्यादिकरणसाधनत्वादिध्य-वस्थायां दर्शनशब्दिनिरुक्तिरिष्टलक्षणं सम्यव्श्वानं न लम्यत एव ततः प्रशस्तालोचनमात्रस्य लन्धेः । न च तदेवेष्टमतिव्यापित्वादभव्यस्य मिथ्याहर्ण्टेः प्रशस्तालोचनस्य सम्यव्श्वानप्रसंगात् । = प्रश्न — हश्च धातुकी 'सामान्यसे देखना' ऐसी व्युत्पत्ति जगत् प्रसिद्ध हैं । वहाँ 'सम्यक् देखता है जिसके द्वारा' ऐसा करण प्रत्यय करनेपर जो इष्ट लक्षण प्राप्त होता है वह आप स्याद्वादियोंके यहाँ प्राप्त नहीं होता है । भले प्रकार देखना ऐसा भाव साधनस्य अर्थ भो नहीं मिलता है । उत्तर —ऐसा अर्थ हम इष्ट नहीं कर सकते, स्योंकि इसमें अतिव्याप्ति दोष होगा । मिथ्याहिष्ट अभव्यके प्रशस्त देखना होनेके कारण सम्यव्दर्शन हो जानेका प्रसंग हो जायेगा ।

पं. घ./उ./४१४ व्यस्ताश्चेते समस्ता वा सद्भहण्टेर्लक्षणं न वा । सपक्षे वा विपक्षे वा सन्ति यद्वा न सन्ति वा ।४१४। —श्रद्धाः. रुचि, प्रतीति और चरण, ये चारों पृथक्-पृथक् अथवा समस्तरूपसे भी सम्यग्दर्शन-के वास्तिवक लक्षण नहीं हो सकते हैं, क्योंकि, सपक्ष और विपक्ष दोनों ही अवस्थाओं में होते भी हैं और नहीं भी होते हैं। रहस्यपूर्ण चिट्ठी पं. टोडर मल/मो.मा.प्र./५०६/६ जो आपापरका यथार्थ अइधान नाहीं है, अर जिनमत विधें कहे जे देव, गुरु, धर्म तिनि ही क्लं मानें है, अन्य मत विधें कहे देवादि वा तत्त्वादि तिनिको नाहीं माने है, तो ऐसे केवल व्यवहार सम्यक्त्व करि सम्यक्त्वी नाम पावै नाहीं।

७. सिध्यादृष्टिकी श्रद्धा आदि यथार्थे नहीं

- दे. श्रद्धान/३/६ [एक भारका ग्रहण किया हुआ पक्ष, मिश्यादृष्टि जीव, सम्मक् उपदेश मिलनेपर भी नहीं छोड़ता। उसीकी १४ पकड़े रहता है।]
- पं.धः / उ. ४१८ अर्था च्छ्रद्धादयः सम्यग्द्ध ष्टिश्रद्धादयो यतः । मिथ्या श्रद्धादयो मिथ्या नार्था च्छ्रद्धादयो ततः । ≈क्यों कि सम्यग्दिष्ठ जीवके श्रद्धादिक वास्तवमें श्रद्धा आदिक है और मिथ्यादिके श्रद्धा आदिक मिथ्या है, इसलिए मिथ्यादिके श्रद्धा आदिक वास्तविक नहीं है। ४१८।
- दे मिथ्यादिष्ट/२/२ व ४/१ [मिथ्यादिष्ट व्यक्ति यद्यपि प्रश्नम, संवेग. अनुकम्पा, आस्तिक्य आदि सभी अंगोंका पालन करता है, परन्तु उसके वे सब अंग मिथ्या हैं, क्योंकि, वे सब भोगके निमित्त ही होते हैं मोशके निमित्त नहीं !] मो मा प्र./७/३३०/१६ व्यवहारावलम्बीकी तत्त्वश्रद्वा ऐसी होती है, कि] शास्त्रके अनुसारि जानितों ले है । परन्तु आपकों आप जानि परका अंश भी न मिलावना अर आपका अंश भी पर विषे न मिलावना, ऐसा सांचा श्रद्धान नाहीं करे है ।

३. निश्चय व्यवहार सम्यक्त्व समन्वय

१. नव तत्त्वोंका श्रद्धाका अर्थ श्रुद्धात्मकी श्रद्धा ही है

- स. सा./मृ. व. आ./१३ भ्र्यरथेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च । आसवसंवरणिज्यरबंधो मोबखो य सम्मत्तं ११३। नवतत्त्वेव्वेवत्त्वद्यां-तिना भ्रुतार्थनयेनै कत्वमुपानीय शृद्धधनयत्वेन व्यवस्थापितस्यारम्-नोऽनुभूतेरात्मरूयातिलक्षणायाः संपद्यमानत्वात । = भ्रुतार्थनयसे ज्ञात जीव, अजीव और पुण्य, पाप तथा आसव, संबर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष ये नव तत्त्व सम्यवत्व हैं १९३। क्योंकि, नव तत्त्वोंमें एकत्व प्रकट करनेवाले भृतार्थनयसे एकत्व प्राप्त करके, शृद्धचनयरूपसे स्थापित आरमाकी अनुभूति — जिसका लश्रण आत्मर्व्याति है, वह प्राप्त होती है। (पं. ध./उ./१८६)
- स. सा./आ./१३/क व चिरमिति ननतत्त्वच्छन्नमुन्नीयमानं, कनकिमव निमग्नं वर्णमालाकलापे। अथ सत्तविविक्तं दृश्यतामेकरूपं, प्रतिपद-मिदमात्मज्योतितिरुचोतमानम्।८। = इस प्रकार नवतत्त्वोमें (अनेक पर्यायोमें) बहुत समयसे छिपी हुई यह आत्मज्योति शुइधनयसे बाहर निकालकर प्रकट की गयी है, जैसे वर्णोंके समूहमें छिपे हुए एकाकार स्वर्णको बाहर निकालते हैं। इसलिए अन हे भव्यो ! इसे सदा अन्य द्रव्योसे तथा उनसे होनेवाले (राग आदिक) नैमि-त्तिक भावोसे भिन्न, एकरूप देखो। यह (ज्योति), पद-पदपर अर्थात् प्रत्येक पर्यायमें एकरूप चिच्नमत्कारमात्र उद्योतमान है।
- स. सा./ता. वृ./१३/३१/१२ नवपदार्थाः भूतार्थेन ज्ञाताः सन्तः सम्य-वस्तं भवन्तीरयुक्तं भवद्भिस्तत्कीदशं भूतार्थपरिज्ञानमिति पृष्टे प्रत्युक्तरमाह । अद्यपि नवपदार्थाः तीर्थवर्तनानिमिक्तं प्राथमिक-शिष्यापेक्षया भूतार्था भण्यन्ते तथाप्यभेदरत्नव्यक्क्षणनिर्विकत्प-समाधिकाले अभूतार्था अस्तार्था शृद्धधारमस्वरूपं न भवन्ति । तस्मिन् परमसमाधिकाले नवपदार्थमध्ये शुद्धधारम्बन्तेनेक एव शुद्धधारमा प्रद्योतते प्रकाशते प्रतीयते अनुभूयत इति । —प्रश्न—नव पदार्थ यदि भूतार्थरूपमे जाने गये हो तो सम्यग्दर्शन रूप होते है ऐसा आपने कहा है । वह भूतार्थ परिज्ञान कसा है १ उत्तर—यद्यपि तीर्थप्रवृत्तिके निमित्त प्रथमिक शिष्यकी अपेक्षा थे नवपदार्थ भूतार्थक्तं जरते है.

- (दे, नय/v/c/४) तथापि अभेद रहनत्रयरूप निर्विकल्प समाधिकात्त-में वे अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं, क्यों कि वे शुद्धधारमस्वरूप नहीं हैं। उस परम समाधिके कालमें इन नवपदार्थों में से शुद्धधिनश्चयनयसे एक शुद्धारमा ही अर्थात् नित्य निरंजन चिरस्वभाव ही खोतित होता है, नकाशित होता है, प्रतीतिमें आता है, अनुभव किया जाता है। (और भी दे, तत्त्व/३/४); (स.सा/ता. वृ/६६/१४४/१)
- दे, अनुभव/३/३ [आत्मानुभव सहित ही तत्त्वोंकी श्रह्माया प्रतीति सम्यादर्शनका लक्षण है, बिना आत्मानुभवके नहीं।]

२. ब्यवहार सम्यक्त्व निश्चयका साधक है

- द्र. सं/टी./४१/१७८/४ अत्र व्यवहारसम्यक्त्रमध्ये निश्चयसम्यक्त्रं किमर्थं व्याख्यातमिति चेद्र व्यवहारसम्यक्त्वेन निश्चयसम्यक्त्वं साध्यत इति साध्यसाधकभावज्ञापनार्थमिति । = प्रश्न—यहाँ इस व्यवहार सम्यक्त्वके व्याख्यानमें निश्चय सम्यक्त्वका वर्णन क्यों किया । उत्तर — व्यवहार सम्यक्त्वसे निश्चय सम्यक्त्व सिद्ध किया जाता है, इस साध्य-साधक भावको वत्तानेके लिए किया गया है।
- पं. का./ता. वृ./१००/१७०/ इदं तु नवपदार्थ विषयभूतं उपवहारसम्य-क्त्वं। कि विशिष्टम्। शुद्धजीवास्तिकायरुचिरूपस्य निश्चयसम्य-क्त्वस्य छद्यस्थावस्थामात्मविषयस्वसंवेदनज्ञानस्य परम्परयां बीजम्। स्यह जो नवपदार्थका विषयभूत व्यवहार सम्यक्त्व है, वह शुद्ध जीवास्तिकायकी रुचिरूप जो निश्चय सम्यक्त्व है उसका तथा छद्यस्थ अवस्थामें आत्मविषयक स्वसंवेदन ज्ञानका परम्परासे बीज है।

३. तत्त्वार्थे श्रद्धानको सम्यक्त्व कहनेका कारण व प्रयोजन

- यो. सा./अ./१/२-४ जीवाजीवद्वयं त्यवत्वा नापरं विद्यते यतः । तहः सणं ततो ज्ञेयं स्वस्वभावनुभुत्सया ।२। यो जीवाजीवयोवें स्व स्वस्वभं परमार्थतः । सोऽजीवपरिहारेण जीवतत्त्वे निलीयते ।३। जीवतत्त्व-विलीनस्य रागद्वेषपरिक्षयः । ततः कर्माश्रयच्छेदस्ततो निर्वाणसं-गमः ।४। संसारमें जोव व अजीव इन दोनोंके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इसलिए अपने स्वरूपज्ञानकी अभिलाषासे इन दोनोंके तक्षण जानने चाहिए ।२। जो परमार्थसे इनके स्वरूपको जान जाता है वह अजीवको छोड़कर जीव तत्त्वमें लय हो जाता है। उससे रागद्वेषका क्षय और इससे मोक्षकी प्राप्ति होती है। १-४।
- स. सा./ता. वृ./१७६/३५५/प जीवादिनवपदार्थः श्रद्धानिवषयः सम्य-वस्वाश्रयस्वाज्ञिमित्तस्वाङ् व्यवहारेण सम्यवस्वं भवति । च्जीवादि नव पदार्थ श्रद्धानके विषय हैं। वे सम्यवस्वके आश्रय या निमित्त होनेके कारण व्यवहारसे सम्यवस्य कहे जाते हैं। (मो. मा. प्र./१/४८ १/१६)
- प. प्र./हो./२/१२/१२ श्रेत तस्वार्धश्रद्धानापेक्षया चलमलिनावगाढ़-परिहारेण शुद्धारमैं बोपादेय इति रुचिरूपेण निश्चिनोति। क्तरवार्ध श्रद्धानकी अपेक्षा चलमलिन अवगाढ इन दोषोंके परिहार द्वारा 'शुद्धारमा ही उपादेय हैं' ऐसी रुचिरूपसे निश्चय करता है।

४. सम्यक्त्वके अंगोंको सम्यक्त्व कहनेका कारण

- मो, मा. प्र./=/४०१/१५ निश्चय सम्यक्त्वका तौ व्यवहारिविषे उपचार किया, बहुरि व्यवहार सम्यक्त्वके कोई एक अंगविषे सम्पूर्ण व्यवहार सम्यक्त्वका उपचार किया, ऐसे उपचारकरि सम्यक्त्व भया कहिए।'
- रा, वा./हिं./१/२/२४ यह (प्रशम संवेगादि) चार चिह्न सम्यग्दर्शनको अनावे हैं, ताते सम्यग्दर्शनके कार्य हैं। ताते कार्य करि कारणका अनुमान हो है।

४. सराग वीतराग सम्यग्दर्शन निर्देश

१. सराग वीतराग रूप भेद व रुक्षण

- स. सि./१/२/१०/२ तह हिविधं, सरागवीतरागविषयभेदात ।" प्रशम-संवेगानुक्रम्पास्तिक्याद्यभिव्यक्तिलक्षणं प्रथमस् । आत्मविशुद्धिमात्र-मितरत् । ⇒ सम्यग्दर्शन दो प्रकारका है — सराग सम्यग्दर्शन और बीतराग सम्यग्दर्शन । प्रश्नम, संवेगः अनुकम्पा और आस्तिक्य आदिकी अभिव्यक्ति लक्षणवाला सराग सम्यग्दर्शन है और आस्मा-को विशुद्धि मात्र वोतराग सम्यग्दर्शन है। (रा. वा/१/२/२१-३१/ २२/६); (श्लो, वा. २/१/२/१लो. १२/२६); (अन. घ./२/५१/१७०); (गो. जो./जो. प्र./६१/१००६/१५ पर उद्दश्त); (और भी दे. आगे शोर्षक नं. २)।
- रा. वा./१/२/३१/२२/११ सप्तानां कर्मप्रकृतीनाम् आत्यन्तिकेऽपगमे सत्यात्मिवशुद्धिमात्रमितरद्भ वीतरागसम्यक्तिमत्युच्यते । — (दर्शन-मोहनीयको) सातों प्रकृतियोंका आत्यन्तिक क्षय हो जानेपर को आत्म विश्वद्धिमात्र प्रकट होती है वह वीतराग सम्यक्त है।
- भ, आ./बि./१९/१७५/१९.२९ इह द्विविधं सम्यवर्त्वं सरागसम्यक्त्वं वीतरागसम्यवर्त्वं चेति । . . . तत्र प्रशस्तरागसहितानां श्रद्धानं सराग-सम्यव्दर्शनम् । रागद्वयरहितानां श्लीणमोहावरणानां वीतराग-सम्यव्दर्शनम् । सम्यवर्त्व दो प्रकारका है सरागसम्यवर्त्व और वीतराग सम्यवर्त्व । तहाँ प्रशस्तराग सहित जीवोंका सम्यवर्त्व सराग सम्यवर्त्व है, और प्रशस्त व अप्रशस्त दोनों प्रकारके रागसे रहित श्लीणमोह वीतरागियोंका सम्यवर्त्व यीतराग सम्यवर्त्व है ।
- आ. ग. शा /२/६६-६६ बीतरागं सरागं च सम्यवस्यं कथितं द्विधा।
 विरागं क्षायिकं तत्र सरागमपरद्वयम्।६६। संवेगप्रदामास्तिक्यकारुण्यव्यक्ततक्षणम् । सरागं पटुभिर्ज्ञेयमुपेक्षालक्षणं परम्।६६। स्वीतराग और सरागके भेदसे सम्यग्दर्शन दो प्रकारका है। तहाँ क्षायिक सम्यवस्य वीतराग है और शेष दो अर्थात् औपशामिक व क्षायोप-शमिक सराग है।६६। प्रशम्, सवेग, आस्तिक और अनुकम्पा इन प्रगट लक्षणाँवाला सराग सम्यवस्य जानना चाहिए। उपेक्षा अर्थात् बीतरागता लक्षणवाला वीतराग सम्यवस्य है।६६।
- स. सा./ता. वृ./६७/१२६/१३ सरागसम्यग्दिष्टः सञ्च भक्तमं कर्त्रतं मुञ्जित । निरचवचारित्राविनाभाविनीतरागसभ्यग्दिष्टिर्भूत्वा सुभाकुभ-सर्वकर्मकर्त्ततं च मुञ्चित । —सरागसम्यग्दिष्टि केवल अशुभ कर्मके कतिपनेको छोड़ता है (शुभकर्मके कतिपनेको नहीं), जब कि निरचय चारित्रके अविनाभूत वीतराग सम्यग्दिष्ट होकर वह शुभ और अशुभ सर्व प्रकारके कर्मोंके कर्तापनेको छोड़ देता है।
- द्र, सं./टो./४१/१६८/२ त्रिगुप्तात्रस्थालक्षणवीतरागसम्यवस्वप्रस्तावे । = त्रिगुप्तिरूप अवस्था ही वीरागसम्यवस्वका लक्षण है ।

२. व्यवहार व निइचय सम्यक्त्वके साथ इन दोनोंकी एकार्थता

- द्र. सं./टी./४१/१९०/१२ शुद्धजीवादितत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणं सरागसम्य-करवाभिधानं व्यवंहारसम्यक्त्वं विज्ञेयस् !...वीतरागचारित्राविनाश्चतं वीतरागसम्यक्त्वाभिधानं निश्चयसम्यक्त्वं च ज्ञातव्यमिति । — शुद्ध जीव आदि तत्त्वार्थीका श्रद्धानरूप सरागसम्यक्त्व व्यवहार जानना चाहिए और वीतराग चारित्रके विना नहीं होनेवाला वीतराग सम्यक्त्व नामक निश्चयसम्यक्त्व जानना चाहिए।
- प. प्र./टी./२/१७/१३२/४ प्रश्नमसंबेगानुकम्पास्तिकाभिव्यक्तिस्थणं सरागसम्यक्तवं भण्यते । तदेव व्यवहारसम्यक्तविमिति । वितराग-सम्यक्तवं निजगुद्धधारमानुभूतिस्रक्षणं वीतरागचारित्राविनाभूतम् ।

तदेव निश्चयसम्प्रक्षिति। = प्रश्नय, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिका अधिकी अभिव्यक्ति सराग सम्प्रक्षका लक्षण है (दे. शीर्षक नं.१)। वह ही व्यवहारसम्प्रक्ष्य है। बीतराग सम्प्रक्ष्य निजशुद्धारमानुभूति लक्षणवाला है और वीतराग चारित्रके अविना-भावी है। वह ही निश्चय सम्प्रक्ष्य है।

पं.का,/ता वृ./१६०-१५१/२१७/१६ सप्तप्रकृतीनामुपश्मेन क्षयोपश्मेन च सरागसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा पञ्चपरमेष्ठिभक्तपादिरूपेण…। जसात प्रकृतियोंके उपश्म या क्षयोपश्ममे सरागसम्यग्दृष्टि होकर पंचपर-मेष्टीकी भक्ति आदिरूपसे (परिणमित होता है)।

दे. समय-[पंचवरमेव्ठी आदिकी भक्ति रूप परिणत होनेके कारण सराग सम्यग्दष्टि सूक्ष्म परसमय है]।

३. सराग व बीतराग सम्यक्तका स्वामित्व

भ. आ./बि./१६/६२/३ वीतरागसम्यवस्यं नेह गृहीतम्। मोहप्रसय-मन्तरेण वीतरागता नास्ति। =यहाँ वीतराग सम्यवस्यका ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्यों कि मोहका क्षय हुए जिना वीतरागता नहीं होती। (दे. सम्यव्दर्शन/11/४/१)।

हे. सम्यग्दर्शन/11/४/१ (क्षायिक सम्यग्दिष्ट नोतराग सम्यग्द्रिट हैं और औपश्रमिक व क्षायोपशिमक सराग सम्यग्दिष्ट हैं) दे, सम्य-ग्दर्शन/11/४/२/--पं. का)।

- दे, सम्यादर्शन/II/४/२ (भक्ति आदि शुभ रागसे परिणत सराग सम्य-ग्टब्टि है और वीतरागचारित्रका अविनाभावी वीतराग सम्यग्टब्टि है)।
- दे. सम्यादर्शन/I/३/२/६ (चौथेसे छठे गुणस्थानतक स्थूल सराग सम्याद्घिट हैं, क्योंकि, उनकी पहिचान उनके काय आदि के व्यापार-परसे हो जाती है और सातवेंसे दसकें गुणस्थानतक सूक्ष्म सराग सम्याद्घिट है, क्योंकि, उसकी पहिचान काय आदिके व्यापारपरसे या प्रशम आदि गुणोंपरसे नहीं होती है। यहाँ अर्थपत्ति सात जान की जाती है कि बीतराग सम्याद्घिट ११ वें से १४ वें गुणस्थान तक होते हैं। सकत मोहका अभाव हो जानेसे वे ही वास्तवमें बोतराग हैं या वीतराग चारित्रके धारक हैं)।

४. इन दोनों सम्यक्त्वों सम्बन्धो २५ दोषोंके लक्षणोंकी विशेषता

- द्र. सं./टी,/४१/१६६-१६६ का भावार्थ- | वीतराग सर्वज्ञको देव न मानकर क्षेत्रपाल आदिको देव मानना देवमूढ़ता है। गङ्गादि तीर्थों में रनान करना पुण्य है, ऐसा मानना लोकमूढ़ता है। वीतराग निर्धान्थ गुरुको न मानकर लौकिक चमस्कार दिखानेवाले कुलिंगियों को गुरु मानना गुरुमूढ़ता है। विज्ञान ऐश्वर्य आदिका मद करना सो आठ मद हैं। कुदेव, कुगुरु, कुधम तथा इसके उपासक ये छह अनायतन हैं। व्यवहार निःशंकितादिक आठ अंगोंसे विपरीत आठ दोष हैं। ये ५% दोष हैं (विशेष दे. वह वह नाम))।
- द्र.सं./टो./४१/पृष्ठ/पंक्ति-एवमुक्तलक्षणं मुहत्रयं सरागसम्यग्दृष्टवस्थायां परिहरणीयमिति । त्रिगुप्तावस्थालक्षणवीतरागसम्यन्द्वप्रस्तावे पुनर्निजिन्द्वजनिर्नोषपरमारमेव देव इति निश्चयबुद्धिर्देवमुद्धरिहत्त्वं विश्वयम् । तथेव च मिण्यात्वरागीद्धिपमृद्धभावत्यागेन स्वशुद्धात्मन्येवावस्थानं लोकमुद्धरिहत्त्वं विश्वयम् । तथेव च...परमसमरसीभावेन तस्मिन्नेव सम्यग्रूषणायनं गमनं परिणमनं समयमुद्धरिहत्त्वं
 शोद्धव्यम् । (१६८/१) ।...मदाष्ट्रकं सरागसम्यग्दिष्टिभस्त्याज्यमिति ।
 बीतरागसम्यग्द्षष्टीनां पुनर्गितकषायानुत्पन्नमदभारसर्यादिसमस्तविकवपजालपरिहारेण ममकाराहंकार्रिहिते शुद्धात्मिन भावनैव
 मदाष्ट्रत्याग इति । (१६८/१) । चेत्युक्तलक्षणमनायतनषद्कं
 सरागसम्यग्द्ष्टीनो त्याज्यं भवतीति । बीतरागसम्यग्द्ष्टीनो पुनः

समस्तदोषायतनभूतानां मिथ्यारवविषयकषायस्यायतनानां परिहारेण केवलज्ञानाखनन्तगुणायलनभूते स्वशुद्धात्मनि निवास एवानायतन-सेवापरिहार इति। ⇒इन उपरोक्त लक्षणवानी तीन मृद्वाओंको सराग सम्यग्द्रष्टि अवस्थामें त्यागना चाहिए, और मन, वचन तथा कायकी पुप्तिरूप अवस्थावाले बीतराग सम्यक्तवके प्रस्तावमें 'अपना निरंजन तथा निर्दोष परमातमा ही देव है' ऐसी जो निश्चय बुद्धि है वही देवसूद्तासे रहितता जानना चाहिए। तथा मिण्यात्व राग आदि रूप जो मूढ़ भाव हैं, इनका त्यान करनेसे निजशुद्ध आत्मामें स्थितिका करना वही लोकमूढ्तासे रहितता है। तथा परमसमता भावसे उसी निज शुद्धात्मामें ही जो सम्यक् प्रकारसे अयन यानी गमन अथवा परिणमन है, उसको समयमुद्दताका त्याग सम्भना चाहिए। उपरोक्त आठ मदौंका सराय सम्यग्दृष्टियोंको त्याग करना वाहिए। मान कषायसे उत्पन्न जो मद, मास्सर्घ (ईंग्यॉ) आदि समस्त विकल्पोंके त्यागपूर्वक जो ममकार अहंकारसे रहित शुद्धध आत्मार्मे भावनाका करना है वही बीतराग सम्यग्दृष्टियोंके आठ मदौ का त्याग है। ये उपरोक्त छह अनायतन सराग सम्यग्रहियोंको रयागने चाहिए। और जो बीतराग सम्धग्दृष्टि जीव हैं उनके सम्पूर्ण दोषोंके स्थानभूत मिथ्यास्व, विषय तथा कषायरूप आयतनोंके त्यागपूर्वक केवलज्ञान आदि अनन्त गुणोंके स्थानभूत निजशुद्ध आत्मामें जो निवास करना है, वही अनायतनोंको सेवाका त्याग है।

५. दोनोंमें कथं वित् एकरव

रलो ,वा ,/पु,२/१/२/३-४/१६/२० तत्त्विविषेषणे त्वर्थे श्रद्धानस्य न किचिद-वर्ण दर्शनमोहरहितस्य पुरुषस्वरूपस्य वा 'तत्त्वार्थश्रद्धानस्' दान्देना-भिधानात् सरागवीतरागसम्यग्दर्शनयोस्तस्य सद्भावादव्याप्तेः स्फुटं विध्वंसनात् । = तत्त्व विशेषण लगानेसे तत्त्व करके निर्णीत अर्थका श्रद्धान करना रूप सक्षण अनवद्य है। क्योंकि, दर्शनमोहनीय कर्मके पद्यसे रहित हो रहे आत्माके 'तत्त्वार्थोंका श्रद्धान करना' इस शब्द-से कहा गया यह लक्षण, सराग और वीतराग दोनों ही सम्यग्दर्शनों में घटित हो जाता है। अतः अव्याप्ति दोषका सर्वथा नाश हो जाता है।

६. इन दोनोंमें वात्त्विक भेद मानना भूल है

पं.ध./उ/श्लो नं, तत्रास्ति बीतरागस्य कस्यचिज्ञानचेतना। सदण्टे-र्निबिकलपस्य नेतरस्य कदाचन ।८२८। व्यावहारिकसद्दर्धः सवि-करपस्य रागिणः। प्रतीतिमात्रमेवास्ति कृतः स्यात ज्ञानचेतना ।प्रहा इति प्रज्ञापराधेन ये बदन्ति दुराक्षयाः। तेषां यावत् श्रुताभ्यासः कायक्तेशाय केवलम् । ५३०। वहारीष्ण्यमिवात्मन्नं पृथक्तनं त्वम-र्हे सि । मा विभ्रमस्बद्दब्द्वापि चक्षुषाऽचक्षुषादायोः ।=३३१ हेसोः परं प्रसिद्धे में: स्थूललक्ष्येरिति स्मृतस् । आप्रमत्तं च सम्यवस्यं ज्ञानं वा सविकरपकम् ।११३। ततस्तूध्यं तु सम्यवस्यं ज्ञानं वा निर्विकरपकम् । शुक्तध्यानं तदेवास्ति तत्रास्ति ज्ञानचितना ।११४। प्रमत्तानां विकल्प-स्वात्र स्यारसा शुद्धचेतना। अस्तीति वासनोन्मेषः केषांचिरस न सिन्नह । ११४। यतः पराश्रितो दोषो गुणो वा नाश्रयेश्परम् । परो वा नाअयेहोर्षं गुणं चापि पराश्चित्तम्। ११६१ ००१. उन दोनों में-से एक बीतराग निविकल्प सम्यग्द्राध्टिके ही ज्ञानचेतना होती है और **पू**सरे अर्थात् सविकत्य व सराग सम्यग्दष्टिके वह नहीं होती है। ५२५। किन्तु उस सविकरूप सरागी व्यवहार सम्यग्दृष्टिके केवल प्रतीति मात्र श्रद्धा होती है, इसलिए उसके ज्ञानचेतना केसे हो सकती है ! 159.8! बुद्धिके दोषसे जो दुराशय लोग ऐसा कहते हैं, उनका जितना भी शास्त्राध्ययन है वह सब केवल शरीरक्लेशके लिए ही समफना चाहिए । १३०। भो आत्मज्ञ ! अस्निकी उष्णताके समान तुम्हें अपने स्वभावः को पृथक् करके देखना योग्य है। (स्त्रसंवेदन द्वारा उस वीहराग

Jain Education International

तर्बको) प्रत्यक्ष देल कर भी सराग रूप अदृष्टको आशासे भ्रममें मत पड़ो । प्रश्न २. केवल रागरूप हेतुसे ही, प्रसिद्ध जिन स्थूल दृष्टियाले आचार्योंने सम्भवस्य और ज्ञानको छठे गुणस्थानतक सविकल्प और इससे ऊपरके गुणस्थानोंमें निर्विकल्प क्हकर उसे शुक्ल ध्यान माना है: तथा वहाँ ही शुद्ध झान चेतना मानते हुए नीचेके छठे गुणस्थान तक विकल्पका सद्भाव होनेसे ज्ञाम चेतनाका म होना माना है, ऐसे किन्हीं-किन्हींके वासनाका पक्ष होनेके कारण वह ठीक नहीं है १९१३-१९११ क्योंकि जैसे अन्यके गुण-दोष अन्यके नहीं कहलाते उसी प्रकार अन्यके गुण दोष अन्यके गुण-दोषोंका आध्य भी नहीं करते । (अर्थात् चारित्र सम्बन्धी रागका दोष सम्यक्ष्वमें स्थाना योग्य नहीं) । १९६१

७. सराग सम्यग्दृष्टि भी कथंचित् बीतराग हैं

- दे. मिथ्यादृष्टि/४/१ (सम्यग्दृष्टि सदा अपना काल वैराग्य भावसे गमाता है।)
- दे, राग,/६/४ (सम्यग्टिंग्टको ज्ञान व वैराग्यकी शक्ति अवश्य होती है)
- दे. जिन/३ (मिध्याल तथा रागादिको जीत लेनेके कारण असंयत सम्यक्षिट भी एक देश जिन कहलाता है।)
- दे, संबर/२ [सम्यग्दण्ट जीवको प्रवृत्तिके साथ निवृत्तिका अंश भी अवस्य रहता है।]
- दे. उपयोग/II/३/२[तहाँ उसे जितने अंशमें राग वर्तता है उतने अंशमें मन्थ है और जितने अंशमें राग नहीं है उतने अंशमें संबर निर्जरा है]

८. सराग व वीतराग कहनेका कारण प्रयोजन

- पं.ध./ड./ह१२ विमृश्येतत्परं कैश्चिदसङ्भूतोपचारतः। रागवज्ज्ञान-मत्रास्ति सम्यक्तं तद्वदीरितम् ।११२। = (७-१० गुणस्थानतक अनुद्धिपूर्वकका सूक्ष्म राग होता है, जो इससे ऊपरके गुणस्थानों में नहीं होता—दे राग/३) केवल यही विचार करके किन्हीं आचार्योंने असङ्भृत उपचारनयसे जिसप्रकार छठे गुगस्थान तकके ज्ञानको राग युक्त कहा है उसी प्रकार सम्यवत्वको भी रागयुक्त कहा है ।११२। (दे. सम्यव्दर्शन/11/१/६)
- दे सम्यग्दर्शन/11/3/१/ विकल्पात्मक निचली भूमिकाओं में यद्यपि विषय कथाय बंचनार्थ नव पदार्थ भूतार्थ हैं पर समाधि कालमें एक-मात्र शुद्धात्म तत्त्व ही भूतार्थ है। ऐसा अभिप्राय है।] (और भी दे नय/1/३/१०)

III सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिके निमित्त

१. सम्यक्त्वके अन्तरंग व बाह्य निमित्तोंका निर्देश

१. निसर्गं व अधिगम आदि

नि.सा./मू /११/ सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा। -सम्यग्दर्शनका निमित्त जिन सूत्र है, अथवा जिनसूत्रकें जाननेवाले
पहन्न हैं।

त. सू /१/३ तन्निसर्गदिधिगमः द्वा।३। = वह सम्यग्दर्शन निसर्गसे अर्थात् परिणाममात्रसे और अधिगर्मसे अर्थात् उपदेशके निमित्तसे उत्पन्न होता है। (अन, ध./२/४७/१७१)

श्लो ना.२/१/३ यथा ह्यौपशिमकं दर्शनं निसर्गादिधिगमाच्चोत्पद्यते तथा क्षायोपशिमकं क्षायिकं चेति सुप्रतीतस्। चित्रस प्रकार औपशिमक सम्यग्दर्शन निसर्ग व अधिगम दोनोंसे होता है, उसी प्रकार क्षायोप-शिमक व क्षायिक भी सम्यक्तव दोनों प्रकारसे होते हुए भन्ने प्रकार प्रतीत हो रहे हैं।

- न. च. वृ./२४८ सामण्ण अह विसेसं दव्वे णाणं हवेइ अविरोहो। साहश् तं सम्मत्तं णहु पुण तं तस्स विवरीयं १२४८। = द्रव्यका अविरुद्ध सामान्य व विशेष ज्ञान सम्यादर्शनको सिद्ध करता है क्यों कि बह उससे विपरीत नहीं होता।
- दे, स्वाध्याय/१/१० (आगम ज्ञानके बिना स्व व परका ज्ञान नहीं होता तब सम्यवस्य पूर्वक कर्मीका क्षय कैसे हो सकता है।
- दे. लन्धि/३ (सम्पेग्रहिष्ट या मिथ्याइष्टिके उपदेशके निमित्त सम्बन्धो)

२. दुर्शनमोहके उपशम आदि

- नि. सा./मू./१३ अंतरहेऊ भणिदा दंसणमोहस्स खमपहुदी।१३।
 -सम्यरदर्शनके अन्तरंगहेतु दर्शनमोहके क्षय उपशम व क्षयोपशम है।
- स. सि /१/अ/२६/१ अभ्यन्तरं दर्शनमोहस्योपशमः क्षयः क्षयोपशमो वा। =दर्शनमोहनीयका उपशम, क्षय या क्षयोपशम अभ्यन्तर साधन है। (रा. वा./अ/१४/४०/२६); (म. पु./१/११८); (अन. ध./ २/४६/१७१)

३. लब्धि आदि

- म. पु./१/११६ वेशनाकात्तलब्ध्यादिबाह्यकारणसंपित । अन्तःकरणसामप्रवाः भव्यातमा स्याह विशुद्धहक् । ११६। = जब देशनालब्धि और काल-लब्धि आदि बहिरंगकारण तथा करणलब्धिरूप अन्तरंग कारण रूप सामग्रीकी प्राप्ति होती है, तभी यह भव्य प्राणी विशुद्ध सम्यग्दर्शनका धारक हो सकता है।
- न. च. वृ./३१६ काजण करणलङ्घी सम्यग्भावस्य कुणइ जं गहणं। जवसमत्वयमिस्सादो पयडीणं तं पि णियहेडं ।३१६। — जिस करण-लब्धिको करके सम्यक्भावको तथा प्रकृतियोके उपशम क्षय ब क्षयोपश्मको ग्रहण करता है, वह करण लब्धि भी सम्यक्त्वमैं निजहेतु है।
- दे. सम्यय्दर्शन/IV/२/६ (पंच लिखको प्राप्त करके ही प्रथमोपदाम सम्ययस्वको उत्पन्न करता है।)
- दे, क्षय,/२/३ (क्षायिक सम्यवस्वकी प्राप्तिके लिए भी करण लब्धि निमित्त है।)
- पं, धः /उः /३७८ देवारकात्तादिसंलब्धौ प्रत्यासन्ते भवार्णवे। भव्यभाष-विपाकाद्वा जीवः सम्धवस्व मश्नुते ।३८८। = देवयोगसे अथवा कालादि लब्धिकी प्राप्ति होनेपर अथवा संसार-सागरके निवट होनेपर अथवा भव्यभावका विपाक होनेपर जीव सम्यवस्वको प्राप्त करता है।३७८। (विशेष देः नियति/२/१,३)

४. द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप निसित्त

- रखो. वा. ३/१/२/११/=२/२२ दर्शनमोहस्यापि संपन्नो जिनेन्द्रिकम्कादि

 हठ्यं, समवसरणादि क्षेत्रं, काल्यचार्धपुद्गलपरिवर्तनिकरेषादिर्भावश्वाधाप्रकृत्तिकरणादिरिति निश्चीयते । तदभावे तदुपदामादिप्रतिपत्तेः, अन्यथा तदभावात् । (विष आदिके नादाकी भाँति) दर्शनमोहके नादामें भी द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव हेतु होते हैं । तहाँ
 जिनेन्द्र बिम्ब आदि तो द्रव्य हैं, समवसरण आदि क्षेत्र हैं, अर्धपुद्रगलपरिवर्तन विशेष काल है, अधःप्रवृत्तिकरण आदि भाव हैं ।
 उस मोहनीय कर्मका अभाव होनेपर ही उपद्यमादिकी प्रतिपत्ति
 होती है। दूसरे प्रकारोंसे उन उपदाम आदिके होनेका अभाव है।

प्रथमोपशम सम्यवत्वको प्राप्त होने वाले जीवके अभःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्ति करणके भेदसे तीन प्रकारको विशुद्धियाँ होती हैं। (विशेष दे, करण/३-६)

त. सा /जी. प्र./२/४१/११ विशुद्ध इत्यनेन शुभतेश्यत्वं संगृहीतं प्रस्यप्रस्तावे स्त्यानगृद्ध्यादित्रयोदयाभावस्य वस्यमाणत्वात् जागरत्वमृष्युक्तमेव । —गाथामें प्रयुक्त 'विशुद्ध' इस शब्दसे यहाँ सुभत्तेश्याका संग्रह किया गया है । तथा आगे स्त्यानगृद्धि आदि तीन निवाओंका अभाव कहेंगे जिससे 'जागृत अवस्थामें होता है' ऐसा भी वह दिया गया समसना चाहिए।

५. जाति स्मरण आदि

- स, सि./२/३/१४३/६ 'आदि' शब्देन जातिस्मरणादिः परिगृह्यते ।
- स. सि /१/७/२६/२ बाह्यं ... केश चिल्ला तिस्मरणं ... । म्म 'आदि' शब्दसे जाति स्मरण आदिका अर्थात् जातिस्मरण, जिनिमम्बदर्शन, धर्म-श्रवण, जिनमहिमादर्शन, देविद्धिदर्शन व वेदना आदिका ग्रहण होता है। ये जातिस्मरण आदि बाह्य निमित्त हैं। (रा. वा./२/३/२/१०६/४) (और भी दे. शीर्षक नं. ४)
- न- च. वृ./३१६ तित्थयरकेवलिसमणभवसुमरणसत्यदेवमहिमादी।
 इन्चेवमाइ बहुगा बाहिरहेड सुणेयव्या।३१६। तीर्थकर, केवली,
 श्रमण, भवस्मरण, शास्त्र, देवमहिमा आदि बहुत प्रकारके बाह्य हेतु
 भानने चाहिए।
- हे, किया/३ में सम्यवस्ववधिनी किया—(जिन पूजा आदिसे सम्यवस्वमें वृद्धिध होती है।)
- दे. सम्यग्दर्शन/III/३/१ (चारों गतियोंमें पृथक्-पृथक् जातिसमरण आदि कारणोंकी यथा योग्य सम्भावना)

६. उपरोक्त निमित्तोंमें अन्तरंग व बाह्य विभाग

- रा. बा./१/७/१४/४०/२६ बाह्यं चोपदेशादि । =सम्यग्दर्शनके बाह्य-कारण उपदेश आदि हैं।
- दे शीर्षक/नं १,२ (नि, साः/गाः १३ के अपरार्धमें दर्शनमोहके उपशमादिको अन्तरंग कारण कहा है। अतः पूर्वार्धमें कहे गये जिन सूत्र व उसके ज्ञायक पुरुष अर्थापत्तिसे ही भाह्य निमित्त कहे गये सिद्ध होते हैं।)
- दे. इर्शिक/२ (दर्शनमोहनीय कर्मके उपशमादि अन्तरंग कारण हैं।)
- दे. शीर्षक/३ (देशना लब्धि व काल लब्धि माह्य कारण है तथा करण लंब्धि अन्तरंग कारण है।)
- दे. शीर्षक/४ (भाषात्मक होनेकं कारण करण लब्धि व शुभ लेश्या आदि अन्तरंग कारण हैं)।

२. कारणोंमें कथंचित् मुख्यता गीणता व भेदाभेद

१. कारणोंकी कथंवित् मुख्यता

- रा. वा/१/३/१०/२४/६ यदि हि सर्वस्य कालो हेतुरिष्टः स्यात बाह्याभ्य-न्तरकारणनियमस्यदृष्टेष्टस्य वा विरोधः स्यात् = यदि सबका काल ही कारण मान लिया जाय (अर्थात् केवस काललिब्धसे मुक्ति होना मान लिया जाये) तो बाह्य और आभ्यन्तर कारण सामग्रीका ही लोप हो जायेगा।
- ध. ६/९/६.६ ३०/४३०/६ णइसिंग्यमिन पढमसम्मत्तं तच्छे उत्तं. सं हि एरथेन दहुवनं, जाइस्सरण-जिणनिनदंसणे हि निणा उप्पज्जमाणणइ-सिंग्यपढमसम्मत्तस्स असंभवादो ! —तत्त्वार्थं सूत्रों में नैसर्गिक प्रथम सम्यक्ष्वका भो कथन किया गया है, उसका भी पूर्वोक्त-करणोंसे उत्पन्न हुए सम्यवस्त्रमें ही अन्तर्भाव कर खेना चाहिए, क्योंकि जातिस्मरण और जिनिनम्बर्शनके बिना उत्पन्न होनेवाला नैसर्गिक प्रथम सम्यवस्व असम्भव है।

२. कारणोंकी कथंचित् गौणता

- दे.सम्पादर्शन/III/३/४ [नारकी जीवों में केवल जाति स्मरण सम्पवस्व-का निमित्त नहीं है, बल्कि पूर्वभवकृत अनुष्ठानोंकी विफलताके दर्शन रूप उपयोग सहित जातिस्मरण कारण है ।१। इसी प्रकार तहाँ केवल वेदना सामान्य कारण नहीं है, अल्कि 'यह वेदना अमुक मिध्यात्व व असंयम्का फल है' इस प्रकारके उपयोग सहित ही वह कारण है ।२।]
- दे. सम्यादर्शन/III/२/१ [अवधिज्ञान द्वारा जिनमहिमा आदि देखते हुए भी अपनी बीतरागताके कारण प्रैवेशक वासी देवोंको विस्मय उत्पन्न करानेमें असमर्थ वे उन्हें समयक्तवकी उत्पत्तिमें कारण नहीं होते।]
- दे. सम्यादर्शन | III | २/४ [मात्र देव ऋद्धि दर्शन सम्यवस्वोत्पत्तिका कारण नहीं है बल्कि 'ये अमुक संयमके फल हैं अथवा बालतप आदि-के कारण हम ऋदि हीन नीच देव रह गये' इत्यादि उपयोग सहित हो वे कारण हैं।]

३. कारणोंका परस्परमें अन्तर्भाव

- दे. सम्यादर्शन/III/१/१ [नैसर्गिक सम्यव्त्वका भी इन्हीं कारणोंसे उत्पन्न सम्यवत्वमें अन्तर्भाव हो जाता है।]
- है. सम्यन्दर्शन/III/२/२ [ऋषियों व तीर्थक्षेत्रोंके दर्शनका जिनिबन्धन दर्शनमें अन्तर्भाव हो जाता है।]
- है. सम्यादर्शन/III/३/६,७ [जिनिबम्बदर्शन व जिन महिमादर्शनका एक दूसरेमें अन्तर्भाव हो जाता है।]
- दे. सम्योदर्शन/III/३/८/४ (धर्मोपदेश व देशिक्षेसे उत्पन्न जातिस्मरण-का धर्मोपदेश व देशिक्षेमें अन्तर्भाव हो जाता है।]

४. कारणोंमें परस्पर अन्तर

- ध, ६/१,६-१,३७/४३२/१ देविद्धिदंसणं जाइसरणिम्म किण्ण पविसदि। ण पविसदि, अप्पणो अणिमादिरिद्धीओ दट हूण एदाओ रिद्धीओ जिलपण्णत्तधम्माणुद्वाणादो जादाओ त्ति पढमसम्मत्तपडिवज्जणं जाइस्सरणणिमित्तं । सोहर्मिमदाविदेयाणं महिड्ढीओ दटहुण एदाओ सम्महंसणसंजुत्तसंजमफलेण जादाओ, अहं पुण सम्मत्तविरहिददद्व-संजमफलेण बाह्णादिणीचदेवेसु उष्पण्णो त्ति णादूण पढमसम्मत्त-गाहुणं देविद्विदंसणणिबध्णं। तेण ण दोण्हमेयत्तमिदि। किच जाइस्सरणमुष्पणपद्धमसमयप्पहुडि अंतोमुहूत्तकालव्भंतरे चेव होदि । देविद्धिदंसणं पूण कालंतरे चेत्र होहि, तेण ण दोण्हमेयत्तं। एसी अरथो णेरइयाणं जाइस्सरणवेयणाभिभवणाणं पि बत्तव्वो । - प्रश्न - देवर्द्धि-दर्शनका जातिस्मरणमें समावेश क्यों नहीं होता ! उत्तर-१. नहीं होता, क्योंकि, अपनी अणिमादिक ऋदियोंको देखकर जब (देवोंको) ये विचार उत्पन्न होता है कि ये ऋद्भियाँ जिनभगवाद द्वारा उपदिष्ट धर्मके अनुष्ठानसे उत्पन्न हुई हैं, तब प्रथम सम्यक्त्वकी प्राप्ति जाति-स्मरणनिमित्तक होती है। किन्तु जत्र सौधर्मेन्द्रादिक देवोंकी महा ऋद्धियोंको देखकर यह ज्ञान उत्पन्न होता है कि ये ऋदियाँ सम्यग्द-शेनसे संयुक्त संयमके फलसे प्राप्त हुई हैं, किन्तु मैं सम्यवत्वसे रहित द्रव्यसंयमके फलसे बाहनादिक नीच देवोंने उत्पन्न हुआ हूँ, तब प्रथमसम्यक्तका प्रहण देवऋ ब्रिदर्शन निमित्तक होता है। इससे ये दोनों कारण एक नहीं हो सकते। २. तथा जातिस्मरण उत्पन्न हो नेके प्रथम समयसे लगाकर अन्तर्मृहूर्तकालके भीतर ही होता है। किन्तु देवद्भिदर्शन, उत्पन्न होनेके समयसे अन्तर्मुहुर्त कालके पश्चात ही होता है। इसलिए भी उन दोनों कारणों में एकत्व नहीं है। – ३. यही अर्थ नारिकयोंके जातिस्मरण और बेदनाभिभवरूप कारणोंमें विवेकके लिए भी कहना चाहिए।
- दे. सम्यग्दर्शन/III/२/८/४ [धर्मोपदेशसे हुआ जातिरमरण और देवर्ञिको देखकर हुआ जाति स्मरण ये दोनों जातिस्मरण रूपसे एक होते हुए भी भिन्न-भिन्न माने गये हैं।]

३. कारणोंका स्वामित्व व शंकाएँ

१. चारों गतियोंमें यथासम्मव कारण

(ष. खं/६/१/१,६-६/सूत्र नं./४१६-४३६); (ति. प./अधि./गा. नं.); (स. सि./१/७/२६/२); (रा. वा./२/२/१०६/३)--

षे. ख/सूत्र नं.	मार्गणा	जिन्निब द	धर्मश्रवण	जातिस्मरण	मेदना	ष. ख./सूत्र नं.	मार्गणा	जिनमहिमा द.	धर्मश्रवण	जातिस्मरण	देवद्धि द.
₹. ξ -ε	नस्क गतिः— १-३ पृथिवी,	×	,, ति• प,/	,, ,, ,,	7,	\$. \$७−₹८	देवगति — भवनवासी	13	,, ति.प/३/	, , २३६~२४	,,
१०-१२ २. २१-२२	४७ पृथि. तिर्यंच गतिः पंचे. संज्ञी. गर्भज.	22	× ति. प/२ ,, ति. प/४/	11	,, ×	27	व्यंतर ज्योतिषी सौधर्म –सहस्रार	37 32		*7	13 13
× ३,	[कर्मभूमिज] सनुष्यगतिः—	*7	" ति. प/६	" /ફo⊄	IJ	\$8-30	थानत आदि चार	,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,	; ; ;	, ,	×
₹ ₽-३०	मनु, गर्भज	**	" ति. प/४/	" ⁷ 848	×	૪ ૨	नव ग्रे वेयक	×	»∖ ति,प/"/	" წ ა გ.	n
×	(कर्मभूमिज)	19	রি. प/ধ	/ ૨ ૬५ ৼ	99	83	अनुदिश व अनुत्तर	×	× (पहिलेसे होते हैं ति.प/न/		× ग्हडि

२. जिनबिम्ब दर्शन सम्बन्धका कारण कैसे

ध. ६/१.६-६.२२/४२७/६ | कथं जिल्लाबिबदंसणं पहमसम्मतुष्पतीए कारणं । जिल्लाबिबदंसणेण णिधत्ताणिकाचिद्रस्स वि मिन्छतादिकम्म-कतावस्स खयदंसणादो । - पश्न - जिनबिम्बदर्शन प्रथमसम्यक्त्वकी उत्पक्तिका कारण किस कारणसे है ! उत्तर - जिनबिम्बके दर्शनसे निधत्त और निकाचित रूप भी मिथ्यात्वादि कर्मकतापका क्षय देखा जाता है । (विशेष-दे. पूजा/२/४) ।

ऋषियों व तीर्थक्षेत्रोंके दर्शनोंका निर्देश क्यों नहीं

ध. ६/१.६-६.२०/४३०/६ लिखसंपण्णिरिसिइंसणं पि पढमसम्मतुष्पत्तीए कारणं होदि, तमेरथ पुध किण्ण भण्णदे। ण, एदस्स वि जिल्बिन-दंसणो अंतन्भावादो। उज्जंत-चंपा-पावाणयरादिदंसणं पि एदेण धेत्तव्यं। कुदो। तत्थतणजिल्बिनदंसण जिल्लाविद्युइगमणक्हणेहि विणा पढमसम्मत्तगहणाभादा। = प्रश्म - लिखसम्पत्न सृष्योका दर्शन भी तो प्रथम सम्यवस्वकी उत्पत्तिका कारण होता है, अत्यय इस कारणको यहाँ पृथक् रूपसे क्यों नहीं कहा! उत्तर-नहीं कहा, क्यों कि, लिब्धसम्पन्न मुवियों के दर्शनका भी जिनिक्तम दर्शनमें ही अन्तर्भान नो जाता है। —ऊर्जयन्त पर्वत तथा चम्पापुर व पानापुर आदिके दर्शनका भी जिनिक्तम्बर्शनके भीतर हो प्रहण कर लेना चाहिए, क्यों कि, एक प्रदेशवर्ती जिनिक्तम्बर्धके दर्शन तथा जिन-भगवान् के निर्माण गमनके कथनके किना प्रथम सम्यक्तका प्रहण नहीं हो सकता।

४. नरकमें जातिस्मरण व वेदना सम्बन्धी

ध. ६/१,६-६, ८/४२१/२ सन्ने गेरइया विभागणाणेण एकक-दो-तिणिण-आदिभवग्गहणाणि जेण जाणांति तेण सन्नेसि जाइभरत्तमिथ ज्ञि सन्नेणेरइएहि सम्मादिट्ठीहि होदन्निमिति । ण एस दोसो. भवसाम-ण्णसरणेण सम्मत्तुष्पत्तीए अणन्भुवगमादो । किं तु धम्मनुद्धीए पुन्न-भविम्ह कयाणुद्राणाणं विह्वतत्त्तदंसणस्स पढमसम्मत्तुष्पत्तीए कारण-त्तिमिच्छन्जदे, तेण ण पुन्नुत्तदोसो हुक्कि हि । ण च एवं विहा बुद्धी सन्नेणेरइयाणं होदि, तिन्निमच्छत्तांदएण ओट्ट छोरइयाणं जाणं-साणं पि एवं विह्वत्वजोगाभावादो, तम्हा जाइस्सरणं पढमसम्मत्तु-पत्तीए कारणं । अयुवाणुह्वणं सम्मत्तुष्पत्तीए कारणं ण होदि, सन्नेणेरइयाणं साहारणत्तादो । जह होइ तो सन्ने णेरइया सम्माइट्टिणो होंति। ण चेत्रं, अणुवलंभा। परिहारो बुटचदे-ण वेयणासामण्णं सम्मत्त्वतीए कारणं। किंतु जेसिमेसा वेयणा एदम्हादो मिश्छत्तादो इमादी असंजमादी (वा) उप्पण्णेत्ति उवजोगो, जादी तेसि चेव वेयणा सम्मच्प्वोए कारणं, णावरजीवाणं वेयणा, तस्य एवं विहजवजीगा-भावा। जप्रत-१. चूँ कि सभी नारकी जीव विभंगज्ञानके द्वारा एक, दो, या तीन आदि भवग्रहण जानते हैं (दे नरक), इसलिए सभीके जातिसमर्ण होता है। अतएव सारे नारकीय जीव सम्यग्हिष्ट होने चाहिए ! उत्तर-यह कोई दोष नहीं है, क्यों कि, सामान्य रूपसे भवस्मरणके द्वारा सम्यक्तको उत्पत्ति नहीं होती। किन्तु धर्मबुद्धिसे पूर्वभवमें किये गये अनुष्ठानोंकी विफलताके दर्शनसे ही प्रथम सम्यवत्वकी उत्पत्तिका कारणत्व इष्ट है, जिससे पूर्वोक्त दोष प्राप्त नहीं होता । और इस प्रकारकी बुद्धि सब नारकी जीवाँके होती नहीं है, क्यों कि तीव मिध्यात्वके उदयके वशीभूत नारकी जीवोंके पूर्व भवीं-का स्मरण होते हुए भी उक्त प्रकारके उपयोगका अभाव है। इस प्रकार जातिस्मरण प्रथम सम्यवस्त्रकी उत्पत्तिका कारण है। प्रश्न-वेदनाका अनुभव सम्यवस्वीत्पत्तिका कारण नहीं हो सकता, वयों कि, यह अनुभव तो सब नारकियोंके साधारण होता है। यदि वह अनुभव सम्यवस्वोत्पत्तिका कारण हो तो सब नारकी जीव सम्यग्दष्टि होंगे। किन्तू ऐसा है नहीं, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता । उत्तर-पूर्वीक्त शंकाका परिहार कहते हैं । बेदना सामान्य सम्यक्त्वोत्पत्तिका कारण नहीं है, किन्तू जिन जीवोंके ऐसा उपयोग होता है, कि अमुक वेदना अमुक मिथ्याखके कारण या अमुक असं-यमसे उत्पन्न हुई, उन्हीं जीवोंकी वैदना सम्यवस्थोत्पत्तिका कारण होती है। अन्य जीवोंकी वेदना नरकोंने सम्यक्त्वोत्पत्तिका कारण नहीं होती, क्योंकि उसमें उक्त प्रकारके उपयोगका अमाव होता है।

५. नरकोंमें धर्म श्रवण सम्बन्धी

- ध. ६/१.६-६.-/४२२/६ कधं तेर्सि धम्मसुण्णं संभवित, तत्थ रिसीणं नमणाभावा। ण सम्माइद्विदेवाणं पुठ्वभवसंबंधीणं धम्मपदुष्पायणे वावदाणं सयलवाधाविरहिष्याणं तत्थ गमणदंसणादो 1
- य, ६/९,६-६,१२/४२४/६ धम्मसवणादी पढमसम्मत्तस्य तत्य उप्पत्ती णित्य, देवाणं तत्य गमणाभावा । तत्यत्णसम्माइद्विधम्मसवणादी पढमसम्मत्तस्य उप्पत्ती किण्ण होदि त्ति बुत्ते ण होदि, तेसि भव-संबंधेण पुञ्ववेरसंबंधेण वा परोप्परिवरुद्धाणं अणुगेज्फणुगाहय-भावाणमसंभवादो । ≔प्रश्न—१, नारकी जीवोंके धर्म अवण किस प्रकार सम्भव है, वयोंकि, वहाँ तो ऋषियोंके गमनका अभाव है । उत्तर—नहीं, वयोंकि, अपने पूर्वभवके सम्बन्धी जीवोंके धर्म उत्पन्न करानेमें प्रवृत्त और समस्त बाधाओंसे रहित सम्मग्दिष्ट देवोंका नरकोंमें गमन देखा जाता है । २, नीचेकी चार पृथिवियोंमें धर्म-अवणके द्वारा प्रथम सम्यवस्वकी उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि वहाँ देवोंके गमनक। अभाव है । प्रश्न—वहाँ हो विद्यमान सम्यवस्वि धर्म अवणके द्वारा प्रथम सम्यवस्वकी उत्पत्ति वयों नहीं होती । उत्तर—ऐसा पृखनेगर उत्तर देते हैं कि नहीं होती, वयोंकि, भव सम्बन्धसे या पूर्व वैरके सम्बन्धसे परस्पर विरोधो हुए नारको जोवोंके अनुगृह्य अनुग्राहक भाव उत्पन्न होना असम्भव है ।

६. मनुष्योंमें जिनमहिमा दर्शनके अमाव सम्बन्धी

ध, ६/१,६-६,१०/४३०/१ जिणमहिमं दर्द्रण वि केइं पढनसम्मत्तं पडिवज्जंता अरिथ तेण चदुहि कारणेहि पढमसम्मत्तं पडिवज्जंति त्ति वत्तक्वं। ण एस दोसो, एदस्स जिणभिवदंसणे अंतन्भावारो। अध्या मणुसमिच्छाइड्डीणं गयणगमणिवरहियाणं चउन्विहदेवणि-काएहि णंदीसर-जिणबर-पडिमाणं कीरमाणमहामहिमावलोयणे संभवाभावा। मेरुजिणवरमहिमाओ विज्ञाधरमिच्छादिद्रिणो पेच्छंति सि एस अत्थो ण वस्तव्यओ सि केई भणंति। तेण पृथ्युसो चेव अत्थो घेत्तव्यो। = प्रश्न--जिनमहिमाको देखकर भी कितने ही मनुष्य प्रथम सम्यव्त्वको प्राप्त करते हैं, इसलिए (तीनकी बजाय) चार कारणोंसे मनुष्य प्रथम सम्यव्त्वको प्राप्त करते हैं, ऐसा कहना चाहिए। उत्तर-१, यह कोई दोष नहीं क्योंकि, जिनमहिमादर्शनका जिनिबम्ब दर्शनमें अन्तर्भाव हो जाता है। २. अथवा मिध्यादृष्टि मनुष्योंके आकाशमें गमन करनेकी शक्ति न होनेसे उनके चतुर्विध देवनिकायोंके द्वारा किये जानेवाले नन्दीश्वरद्वीपवर्ती जिनेन्द्र प्रतिमाओंके महामहोत्सवका देखना सम्भव नहीं है, इसलिए उनके जिनमहिमादर्शनरूप कारणका अभाव है। ३. किन्तु मेरपर्वतपर किये जानेवाले जिनेन्द्र महोरसर्वोको विद्याधर मिध्यादृष्टि देखते हैं, इसलिए उपर्युक्त अर्थ नहीं कहना चाहिए, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं, अतएव पूर्वोक्त अर्थ ही ग्रहण करना योग्य है।

७. देवोंमें जिनबिम्ब दर्शन क्यों नहीं

घ-६/१,६-६,३७/४३२/१०जिणबिबदंसणं पढमसम्मत्तस्स कारणत्तेण एरथ किण्ण उत्तं। ण एस दोसो; जिणमहिनाइंसणम्मि तस्स अंतन्भावादो. जिगिबिण विणा जिलमहिसाए अणुब्बत्तीदो । सागोपरण-जम्माहिसेय-परिणिक्खमणजिणमहिमाओ जिणिबिबेण विणा कीर-माणीओ दिस्संति चि जिणविवदंसणस्स अविणाभावो णरिध चि णासंकणिदजं, तत्थ वि भाविजिणविबस्स दंसणुवलंभा । अधवा एदास महिमासु उप्पन्नमाणपढमसम्मत्तं ण जिणभिनदं सणणिमित्तं, किंतु जिलगुलसवलिमित्तिमिदि। = प्रश्न-यहाँ (देवोंमें) जिन विभव-दर्शनको प्रथम सम्यक्त्वके कारणरूपसे बयो नहीं कहा ! उत्तर- ! यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, जिन बिम्बदर्शनका जिनमहिमा-दर्शनमें हो अन्तभनि हो जाता है, कारण जिन्निमन्नके बिना जिन-महिमाकी उपपत्ति बनती नहीं है। प्रश्न-स्वर्गावतरण, जनमाभिषेक और परिनिष्क्रमणरूप जिनमहिमाएँ जिन्हिम्बके निना ही की गयी देखी जाती हैं, इसलिए जिनमहिमा दर्शनमें जिनबिम्बदर्शनका अविनाभावीपना नहीं है ! उत्तर - ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए वयों कि स्वगवितरण, जन्माभिषेक और परिनिष्क्रमण रूप जिन-महिमाओं में भी भावी जिनबिम्बका दर्शन पाया जाता है। २. अथवा इन महिमाओंमें उत्पन्न होनेवाला प्रथम सम्यवत्व जिनविम्ब-दर्शननिमित्तक नहीं है, किन्तु जिनगुण श्रवण निमित्तक है।

८. आनतादिमें देवऋदि दर्शन क्यों नहीं

घ. ६/१,६-६,४०/४३५/१ देविद्धिदंसणेणं चत्तारि कारणणि किण्ण बुत्ताणि । तत्थ महिद्धिसं जुत्तुवरिमदेवाणमागमाभाषा । ण तत्थद्विद-देवाणं महिद्धिदंसणं पढमसम्मत्प्पत्तीए णिमित्तं, भूयो दंसणेण त्तत्य विम्हयाभावा, सुक्कलेस्साएं महिद्धिदंसणेण संक्लिसाभावादो वा। सोऊप जं जाइसरणं, देविद्धि दर्दुण जं च जाइस्सरणं, एदाणि दो वि जदि वि पढ़मसम्मन्तुप्पत्तीए णिमिन्तं होति, तो वि तं सम्मत्तं जाइस्सरणणिमित्तमिदि एत्थ ण घेष्पदि, देविद्धिदंसणसुणणपच्छा-यदजाइस्सरणणिमित्तत्तादो । किंतु सवणदेविद्धिदंसणणिमित्तमिदि घेत्तवत्रं । = प्रश्न - यहाँपर (आनतादि चार स्वर्गोंनें) देवऋद्भि-दर्शन सहित चार कारण क्यों नहीं कहे ? उत्तर-१ आनत आदि चार कल्पोंमें महर्षिसे संयुक्त ऊपरके देवोंके आगमन नहीं होता,इसलिए बहाँ महद्भिदशेनपररूप प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कारण नहीं पाया जाता। २. और उन्हीं करपों में स्थित देवों के महर्द्धिका दर्शन प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका निमित्त हो नहीं सकता, क्योकि उसी अमृद्धिको बार-बार देखनेसे विस्मय नहीं होता। ३, अथवा उक्त करपोमें शुक्तविश्याके सद्भावके कारण महद्भिके दर्शनसे उन्हें कोई

संबितशभाव उत्पन्न नहीं होते। ४, घर्मीपदेश सुन कर जो जातिस्मरण होता है और देवद्विको देखकर जो जातिस्मरण होता है. ये दोनों ही जातिस्मरण यद्यपि प्रथम सम्यक्त्वको उत्पत्तिके निभित्त होते हैं, तथापि उनसे उत्पन्न सम्यक्त्व वहाँ (आनत आदिमें) जाति स्मरण निभित्तक नहीं माना गया है, क्योंकि यहाँ देवद्विके दर्शन व धर्मीपदेशके अवणके पश्चात ही उत्पन्न हुए जातिस्मरणका निमित्त प्राप्त हुआ है। अतएव यहाँ धर्मीपदेश अवण और देवद्वि दर्शनको ही निभित्त मानना चाहिए।

९. नवग्रैवेयकोंसे जिनमहिमा व देविद्धं दर्शन क्यों नहीं

घ.६/१,६-१,४२/४३६/३ एतथ महिद्धिहंसणं णितथं, उविरमिवेवाणमागमाभावा। जिणमहिमदंसणं पि णितथं, णंदीसरादिमहिमाणं तेसिमागमणाभावा। ओहिणाणेण तत्थिष्ठिया चैव जिणमहिमाओ पेच्छति
ति जिणमहिमादंसणं वि तेसि सम्मत्तुष्पत्तीए णिमित्तिमिदि किण्ण
उच्चदे। ण तेसि वीयरायाणं जिणमहिमादंसणेण विभयाभावा।—
प्रश्न—नवग्रैवेयकोंमें महिद्धिदर्शन नहीं है, क्योंकि यहाँ उपरके
देवोंके आगमनका अभाव है। यहाँ जिनमहिमादर्शन भी नहीं है,
क्योंकि ग्रैवेयकविमानवासी देव नन्दीश्वर आदिके महोत्सव देखने
नहीं आते। प्रश्न—ग्रैवेयक देव अपने विमानोंमें रहते हुए ही
अवधिज्ञानसे जिनमहिमाओंको देखते तो हैं, अतएव जिनमहिमाका
दर्शन भी उनके सम्यवत्यकी उत्पत्तिमें निमित्त होता है ऐसा क्यों
नहीं कहा। उत्तर—नहीं, क्योंकि, ग्रैवेयक विमानवासी देव वीतराग
होते हैं अतएव जिनमहिमाके दर्शनसे उन्हें विस्मय उत्पन्न नहीं
होता।

९०. नवप्रैवेयकमें धर्मश्रवण क्यों नहीं

ध. ६/९,१-१,४२/४३६/६ कधं तेसि घम्ममुणणसंभवो । ण. तेसि अण्णो-ण्णसक्तावे संते अहमिदत्तस्स विरोहाभावा । = प्रश्न--ग्रैवेयक विमानवासी देवोंके धर्म अवण किस प्रकार सम्भव होता है । उत्तर--नहीं, वयों कि उनमें परस्पर संसाप होनेपर अहमिन्द्रस्यसे विरोध नहीं होता ।

IV उपशमादि सम्यग्दर्शन

१. उपशमादि सम्यग्दर्शन सामान्य

१. सम्यक्त्व मार्गणाके उपशसादि भेद

ष. तं./१/१,१/सूत्र १४४/६६६ सम्मत्ताणुवारेण अरिथ सम्माष्ट्री खय-सम्माष्ट्री वेदगसम्माष्ट्री जवसमसम्माष्ट्री सासणसम्माष्ट्री सम्मा-मिच्छावृद्धी मिच्छावृद्धी चेदि ।१४४। = सम्यवश्य मार्गणाके अणुवादसे सामान्यकी अपेक्षा सम्यव्हिष्ट सामान्य और विशेषकी अपेक्षा क्षायिकसम्यव्हिष्ट, वेदकसम्यव्हिष्ट, जपशमसम्यव्हिष्ट, सासादन-सम्यव्हिष्ट सम्यव्हिष्ट और मिथ्याहिष्ट जीव होते हैं।१४४। (इ.सं/टी./१३/४०/१/); (गो.जी./जी.प्र./७०४/११४२/१)।

शा-/६/अ क्षीणप्रशान्तिमिश्रासु मोहप्रकृतिषु क्रमात् । तत स्याद्द्रव्यस्या-दिसामग्या पुंसां सद्दर्शनं त्रिशः । ७। - दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियों के क्षय उपशम और क्षयोपशमरूप होनेसे क्रमशः तीन प्रकारका सम्यवस्व है - क्षायिक, औपशमिक व क्षायोपशमिक ।

२. तीनों सम्यक्त्वोंमें कथंचित् एकत्व

घ.१/१.१.१४६/३६६/८ कि तत्सम्यक्त्यगतसामान्यमिति चेत् त्रिष्वपि सम्यग्दर्शनेषु यः साधारणोंऽशस्तत्सामान्यस् । क्षायिकक्षायोपशिम-कौपशिमकेषु परस्परतो भिन्नेषु कि साहस्यमिति चेन्न, तत्र यथार्थ-श्रद्धानं प्रति साम्योपलम्भात् । क्षयक्षयोपशमविशिष्टानां यथार्थ- श्रद्धानानां कथं समानतिति चेद्रवतु विशेषणानां भेदो न विशेष्यस्य यथार्थश्रद्धानस्य । = प्रश्न—सम्यक्त्वमें रहने वाला वह सामान्य क्या वस्तु है (जिससे कि इन भेदोंसे पृथक एक सामान्य सम्यग्दृष्टि संज्ञक भेद प्रहण कर लिया गया !) उत्तर—तीनों ही सम्यग्दृश्नों में को साधारण धर्म है, वह सामान्य शब्दसे यहाँपर विश्वक्षित है। प्रश्न—क्षायिक, क्षायोपश्मिक और औपश्मिक सम्यग्दर्शनों परस्पर भिन्न भिन्न होनेपर सदशता क्या वस्तु हो सकती है ! उत्तर—नहीं, क्योंकि उन तीनों सम्यग्दर्शनों यथार्थ श्रद्धानके प्रति समानता पायी जाती है । प्रश्न—क्षय, क्षयोपश्म और उपश्म विशेषणसे युक्त यथार्थ श्रद्धानों समानता कैसे हो सकती है ! उत्तर—विशेषणों भेद भने ही रहा आवे, परन्तु इससे यथार्थ श्रद्धानस्य विशेषणों भेद नहीं पड़ता है ।

२. प्रथमोपशम सम्यक्तव निर्देश

१. उपशम सम्यवस्य सामान्यका रुक्षण

पे.सं/पा./१/१६६-१६६ देवे अणण्णभावो विसयविरागो य तस्सदहणं।
दिट्ठीसु असम्मोहो सम्मत्तमणूणयं जाणे।१६६। दंसणमोहस्सुदए
जवसंते सचेभावसदृहणं। जवसमसम्मत्तमणं पसण्णकल्लुसं जहा तोयं
११६६। = जपशम सम्यवस्वके होनेपर जीवके सत्यार्थ देवमें आनन्य
भक्तिभाव, विषयोंसे विराग, तत्त्वोंका श्रद्धधान और विविध मिध्यादृष्टियों (मतों) में असम्मोह प्रगट होता है। इसे क्षायिक सम्यवस्व
से कुछ भी कम नहीं जानना चाहिए।१६६। जिस प्रकार पंकादि
जनित कालुष्यके प्रशान्त होनेपर जल निर्मल हो जाता है, उसी
प्रकार दर्शन मोहके उदयके उपशान्त होनेपर जो सत्यार्थ श्रद्धधान
जरपन्न होता है, उसे उपशम सम्यादर्शन कहते हैं।१६६।

घ.१/१,१,१४४/गा. २१६/३६६ दंसणमोहुमसमदो उप्परजङ् जं पयत्य सद्दृशं । उदसमसम्मत्तमिणं पसण्णमलपंकतोयसमं । व्यद्शनमोह-नीयके उपश्मसे, कीचड़के नीचे बैठ जानेसे निर्मल जलके समान, पहार्थीका जो निर्मल श्रद्धशन होता है, वह उपशम सम्यग्दर्शन है।२९६। (गो.जी./मू/६६०/१०६६)

स. सि. |२/३/१४२/१ आसाँ सप्तानां प्रकृतीनामुबदामादीपशिमकं सम्यक्त्वम्। —(अनन्तानुबन्धी चार और दर्शनमोहकी तीन) इन सात प्रकृतियोंके उपशमसे औपशिमक सम्यक्त्व होता है। (रा.वा./२/३/१/१०४/१७)।

धाः १/१.१.१२/१७१/६ एदासि सत्तव्हं पयडीण मुनसमेण उवसमसम्माइही हो हा । . . . एरिसो चेया । च्यूबोक्त दर्शनमोहकी सात प्रकृतियों के उपशमसे उपशम सम्यव्हिष्ट होता है। यह भी क्षायिक जैसा हो निर्मल व सन्देह रहित होता है।

२. उपशम सम्यक्त्वका स्वामित्व

ष. वं./१/१,१/स्.१४०/१६८ जवसमसम्माइट्ठी असंजदसम्माइटिठ्य-हुडि जाव जवसंतकसायवीयरायछदुमस्थात्ति। न्यपदाम सम्यग्दष्टि जीव असंयत सम्यग्द्दि गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषाय बीतराग छत्रस्थ गुणस्थान तक होते हैं। (विशेष दे, वह वह मार्गणा तथा 'सत्')।

३. उपशम सम्यक्षके २ भेद व प्रथमोपशमका लक्षण

गो.क./जी.प्र./११०/७४२/३ तत्राचं प्रथमद्वितीयभेदाइ द्वेषा। - उनमें-से आदिका अर्थात् उपशम सम्यक्त दो प्रकारका है-प्रथम व द्वितीय।

स्ता,/भाषा/२/४१/१८ मिध्यादृष्टि गुणस्थानते छूटि उपशम सम्यवस्य होइ ताका नाम (प्रथम) उपशम सम्यवस्य है। (विशेष दे, सम्य-व्दर्शन/IV/२/४/२)

४. प्रथमोपशमका प्रतिद्यापक

१. गति व जीव समासोंकी अपेक्षा

- ष.सं.६/१,१---/स्वह/२३८ उवसामेतो किन्ह उवसामेदि, चदुमु विगवीसु उवसामेदि। चदुमु वि गदीसु उवसामेतो पंचिदिएसु उवसामेतो पंचिदिएसु उवसामेतो पंचिदिएसु उवसामेतो पंचिदिएसु उवसामेतो पंचिदिएसु उवसामेदि। एहंदियविगलिदियेसु। पंचिदिएसु उवसामेदि, णो असण्योसु। सण्णीसु उवसामेतो गम्भोवकंतिएसु उवसामेदि, णो असण्यासु। गम्भोवकंतिएसु उवसामेदि, णो अपज्यत्तएसु। पञ्यत्तएसु उवसामेदी संखेज्ववस्साउगोसु वि उवसामेदि, असंखेज्वर वस्साउगेसु वि उवसामेदि, असंखेज्वर वस्साउगेसु वि
- ष.सं.६/१,६-६/सूत्र १-३३/४१८-४३१ णेरहया---पज्जत्तरमु उप्पादेति. णो अप्युज्जस्यम् ।१-३। एवं जाव सत्तम् पुढवीस् गेरहया ।१। तिरिवख · · पंचिदिएसु · · सण्णीसु · · गब्भोवकं तिएसु · · पज्जत्तएसु उप्पादेंति ।१३~१८। एवं जाव सञ्बदीवसमुद्देष्ट ।२०। मणुस्सा… गन्भोवकंतिएसु...पज्जत्तएसु उप्पार्देति ।२३-२५। एवं जाव अङ्हा-इज्जदीवसमुद्देसु ।२८ देवा व्यवज्ञत्तेसु उप्पादेंति। एवं जाव छवरिमगैवङजविमाणवासियदेवा सि ।३१-३६। च१, दर्शनमोहनीय कर्मको उपश्माता हुआ यह जीव कहाँ उपश्माता है। चारों ही गतियों में उपरामाता है। चारों ही गतियों में पंचेन्द्रियों में उपरामाता है, एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रियोमें नहीं। पंचेन्द्रियोमें उपश्माताहुआ संज्ञियोंमें उपशमाता है, असंज्ञियोंमें नहीं। संज्ञियोंमें। उपशमाता हुआ गर्भोपकान्तिकोंमें उपश्माता है सम्मू चिंख्योंमें नहीं, गर्भोप-कान्तिकों में उपश्माता हुआ पर्याप्तकों में उपश्माता है अपर्याप्तकों में नहीं । पर्यप्तिकों में उपश्माता हुआ संख्यातवर्षकी आयुवाले जीवों में भी उपशमाता है और असंख्यात वषकी आयुवाले जीवाँमें भी उपरामाता है। हा २. (विशेष रूपसे व्याख्यान करनेपर) नरक गतिमें सातों ही पृथिवियोंमें पर्याप्तक ही उपकामाता है।१-५। तिर्यंचगतिमें सर्व ही द्वीप समुद्रोंमें से पञ्चेन्द्रिय संज्ञी गर्भज पर्याप्तक ही उपशमाते हैं। १३-२०। मनुष्यगतिमें अदाई द्वीप समुद्रोंमें गर्भज पर्याप्तक ही उपशमाते हैं ।२२-२८। देवगतिमें भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रेबेयक पर्यंत पर्याप्तक ही उपश्माते हैं।३१-३६। [इनसे विपरीतमें अर्थात् अपर्याप्तक आदिमें नहीं उपशमाता है।] (रा.वा./२/३/२/१०४/१)
- क.पा. मुत्त/१०/गा. १६-६६/६३० दंसणमोहस्सुवसामगो वु चदुग्न वि गदीसु बोद्धको । पंचिदिखो य सण्णी णियमा सो होई पडजत्तो १६६। सक्वणिरय-भवणेसु दीवससुद्दे गुह जोदिसि-विमाणे। खिभिजोगा-अणिभजोगा उवसामो होइ बोद्धको १६६। —१. दर्शनमोहनीय कर्मका उपश्म करनेवाला जीव चारों ही गतियोंमें जानना चाहिए। वह जीव नियमसे पंचेन्द्रिय, संज्ञी और पर्याप्तक होसा है।६६६ (पं.सं/प्रा./१/२०४/), (ध.६/१.६-५.६/गा.२/२३६) (और भी दे. उपश्मिक नं. २)। २. इन्द्रक भणीबद्ध आदि सर्व नरकोंमें, सर्व प्रकारके भवनवासी देवोंमें, (तिर्यंचोंकी अपेक्षा) सर्व द्वीपसमुद्धोंमें, (और मनुष्योंकी अपेक्षा अद्याद समुद्धोंमें), सर्व व्यन्तर देवोंमें, समस्त ज्योतिष देवोंमें, सौधर्मसे लेकर सर्व अभियोग्य अर्थात् वाहनादि रूप नीच देवोंमें, उनसे भिन्न किविवष आदि अनुत्तम तथा पारिषद आदि उत्तम देवोंमें दर्शनमोहनीय कर्मका उपश्म होता है।६६। (ध.६/१,६-५,६/गा ३/२३६)
- ध-६/१,६-८,४/२०६/- तथ्य वि असण्णी ण होदि, तेष्ट्र मणेण विणा विसिट्ठणाणाणुष्पत्तीदो । तदो सो सण्णी चेव । प्यंचेन्द्रियोंमें भी वे असंज्ञी नहीं होते, क्योंकि, असंज्ञी जीबोंमें मनके विना विशिष्ट ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती है।

२. गुणस्यानको अपक्षा

- ष.सं.६/१,६-=/सूत्र ४/२०६ सो पुण पंचिदिओ सण्णीमिच्छाइट्ठी पण्जतओ सञ्जविसुद्धो ।४।
- ष, स्वं./६/१,६--६/सूत्र नं./४१८-णेरइयामिच्छाइठ्ठी...।१। तिरिक्ख-मिच्छाइट्ठी...।१३। मणुस्सा मिच्छाइट्ठी...।२३। देवा मिच्छा-इट्ठी पढमसम्मत्तसुष्पादेंति ।३१। -१, वह प्रथमोपशम सम्यवस्व प्राप्त करनेवाला जीव पठचेन्द्रिय, संज्ञी, मिश्यादष्टि पर्याप्त और सर्व विशुद्ध होता है।४। (रा.वा./२/३/२/१०६/२६); (ल सा./मू./२/ ४१); (गो.क./जो,प्र./६६०/४४२/६ में उद्दश्त गाथा।) २. नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य व देव ये पारों ही मिश्यादष्टि प्रथम सम्यवस्वको उत्पन्न करते हैं।१-३१।
- ध-६/१,६-५,४/२०६/६ सासणसम्माइट्ठी सम्माभिन्छाइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी वा पढमसम्मत्तं ण पडिवरजिद, एवेसि तेण पर्जाएण
 परिणमनसत्तीए अभावादो । उवसमसेडि चडमाणवेदगसम्माइट्ठिको
 उवसमसम्मत्तं पडिवरजिता अत्थि, किंतु ण तस्स पढमसम्मत्तववएसो । कुरो, सम्मत्ता तस्सुप्पत्तीए । तदो तेण मिच्छाइट्ठिको चेव
 होद्व्वं । क्नासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा वेदकसम्यग्दृष्टि जीव प्रथमीपशम सम्यवत्वको नहीं प्राप्त होता है,
 अथोंकि, इन जीवोंके उस प्रथमोपशम सम्यवत्वस्य पर्यायके
 द्वारा परिणमन होनेको शक्तिका अभाव है । उपशम अेकी पर
 चढ़नेवाले वेदकसम्यग्दृष्टि जीव यद्यपि उपशम सम्यवत्वको प्राप्त
 करनेवाले होते हैं, किन्तु उस सम्यवत्वका 'प्रथमोपशम सम्यवत्व'
 यह नाम नहीं है, क्योंकि उस उपशम श्रेणीवालेके उपशम सम्यवत्वकी उत्पत्ति सम्यवत्वसे होती है । इसलिए प्रथमोपशम सम्यवत्वकी उत्पत्ति सम्यवत्वसे होती है । इसलिए प्रथमोपशम सम्यवत्वकी उत्पत्ति सम्यवत्वसे होती है । इसलिए प्रथमोपशम सम्यवत्व-

३. उपयोग, योग व विशुद्धि आदिकी अपेक्षा

है. उपशोर्षक नं. २-(वह सर्व विशुद्ध होना चाहिए)।

- क.पा. मुत्त/१०/गा/६८/६३२ सागारे पट्ठवरो मिक्सिमो य भिक्यव्यो । जोगे अण्णदरम्हि य जहण्णगो तेउत्तेस्साए ।६८। — साकारोपयोगमें वर्तमान जीव ही दर्शनमोहनीयकर्मके उपशामनका प्रस्थापक होता है। किन्तु निष्ठापक और मध्यस्थानवर्ती जीव भिजतव्य है। तीनों योगोंमें-से किसी एक योगमें वर्तमान और तेजोत्तेश्याके जघन्य अंशको प्राप्त जीव दर्शनमोहका उपशामन करता है।६८। (ध.६/१,६— ६.६/गा.४/२३६); (ल.सा /मू/१०१/१३८)
- रा.वा-/१/११/१८/१८ गृहीतुमारभमाणः शुभपरिणामाभिसुखः अन्तर्मृहूर्व मनन्तगुणबृद्धवा बर्द्धमानिवशुद्धिः...अन्यतमेन मनोयोगेन--अन्यतमेन बाग्योगेन--अन्यतमेन काययोगेन बा समाबिष्टः
 हीयमानान्यतमकषायः साकारोपयोगः, त्रिष्वन्यतमेन वेदेन, संबलेशविरहितः। = प्रथम सम्यवश्वको प्रारम्भ करनेवाला जीव शुभपरिणामके अभिमुख होता है, अन्तर्मृहूर्तमें अनन्तगुण वृद्धिके द्वारा
 वर्धमान विशुद्धि बाला होता है। (तीनों योगोंके सर्व उत्तर मेदोंमेंसे) अन्यतम मनोयोगवाला या अन्यतम वचनयोगवाला या अन्यतम
 काययोगवाला होता है। हीनमान अन्यतम कषायवाला होता है।
 साकारोपयोगी होता है। तीनों वेदोंमें से अन्यतम वेदवाला होता है।
- ध. १/१,६-८,४/२०७/६ असंखदो । मदिमुदसागारुवजुत्तो । तत्थ अणागारुवजोगो णित्थ, तस्स वज्भत्थे पउत्तीए अभावादो । छण्णं लेस्साणमण्णदरलेस्सो किंतु हीयमाणअमुद्धलेस्सो वष्ट्रमाणमुह-लेस्सो । = (वह प्रथमोपशम सम्यवत्वके अभिमुख जीव) असंयत्त होता है, मित व श्रुतज्ञान रूप साकारोपयोगी होता है, अनाकारो-पयोगी नहीं होता, क्योंकि, अनाकार उपयोगको बाह्य अर्थको

प्रकृतिका अभाव है। कृष्णादि छहाँ लेश्याओं मेंसे किसी एक लेश्या बाला हो, किन्तु यदि अशुभ लेश्या बाला हो तो हीयमान होना चाहिए, और यदि शुभ लेश्या हो तो वर्धमान होना चाहिए।

ध. ६/१.६-८.४/२१४/६ 'सञ्बिष्णुढ़ों' ति एदस्स पदस्स अत्थो उच्चते ।
तं जधा —एत्थ पढमसम्मत्तं पडिवज्जंतस्स अधापवत्तकरण-अपुब्वकरण-अण्यद्गोकरणभेदेण तिविहाओ विसोहीओ हाँति । —अब सूत्रोत्तं सर्वविशुद्ध' (दे. इसी शीर्षकमें) इस पदका अर्थ कहते हैं। बह इस प्रकार है—यहाँपर प्रथमोपशम सम्यक्तको प्राप्त होनेवाले जीवके अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके भेदसे तीन प्रकारकी विशुद्धियाँ होती हैं।

गो जी /मू /६६२/११०० चदुगिंदभव्यो सणी पज्जसो य सागारो। जागारो सक्तेस्सो सलिङ्गो सम्ममुनगमई। =चारोंमें से किसी भी गतिवाला, भव्य, सैनी, पर्याप्त, साकारोपयोगी, जागृत, शुभ-लेखा वाला, तथा करण लिख्छप परिणमा जीव यथासम्भव सम्यक्ष्यको प्राप्त होता है।

ल.सा./जी.प्र./२/४१/१२ विशुद्ध इरयनेन शुभलेश्यत्वं संगृहीतं छदय-प्रस्तावे स्त्यानगृद्धचादित्रयोदयाभावस्य वस्यमाणत्वात् जागरत्वम-प्युक्तमेव । =गाथामें प्रयुक्त 'विशुद्ध' इस शब्दसे शुभ लेश्याका प्रहण हो जाता है और स्त्यानगृद्धि आदि तीनों प्रकृतियोंके उदयका अभाव आगे कहा जायेगा (दे. उदय/६), इसलिए जागृतपना भी कह ही दिया गया।

४. कमोंके स्थिति बन्ध व स्थिति सत्त्वकी अपेक्षा

ष. रवं.६/१,६~ मूत्र ३,६/२०३,२२२ एदेसि ,चेन सब्नकम्माणं जावे अंतोकोडाकोडिटिठिदि नंधित ताने पढमसम्मत्तं लभित ।३। एदेसि चेन सब्नकम्माणं जाधे अंतोकोडाकोडिटिठित ठवेति संखेज्जेहि सागरोनमसहस्सेहि ऊणियं ताधे पढमसम्मत्तमुप्पादेति ।६। = इम ही सर्व कमींको अर्थात् आठों कमींकी जन् अन्तःकोडाकोड़ी स्थितिको नाँधता है, तन यह जीन प्रथमोपशम सम्यक्षको प्राप्त करता है ।३। जिस समय इन ही सर्व कमींकी संख्यात हजार सागरो-पमोंसे हीन अन्तःकोडाकोड़ी सागरोपमप्रमाण स्थितिको स्थापित करता है उस समय यह जीन प्रथम सम्यक्षको उत्पन्न करता है ।६। (ज.सा /मृ/१४७)

ल. सा./मू./८/४६ जेट्ठनरिट्ठिविलंधे जेट्ठनरिट्ठिवित्याण सत्ते य।
ण य पडिन उनि पढनुन समसम्मं मिच्छ जीनो हु।८। — संज्ञी पंचेन्द्रिय
पर्याप्तकोमें सम्भन ऐसे उत्कृष्ट स्थिति नन्ध और उत्कृष्ट स्थिति
अनुभाग न प्रदेश सत्तन — तथा निशुद्ध क्षपक श्रेणी नालेके सम्भन
ऐसे जधन्य स्थिति नन्ध और जधन्य स्थिति, अनुभान न प्रदेश
सत्त्व, इनके होते हुए जीन प्रथमोपशम सम्यक्तको प्राप्त नहीं करता।
नोट—[सम्यक्तन न सम्यिग्ध्यात्न प्रकृतियोके स्थिति सत्त्व
सम्नन्धी निशेषता (दे सम्यग्दर्शन/1V/२/६)

५. जन्मके परचात् प्राप्ति योग्य सर्वेलघु काल

षः सं ६/१,६-६/सूत्र नं/४१६-४३१ णेरइया मिच्छाइही/.../१/ पज्जत्तरमु उप्पादें ता अंतोमुहुत्तप्पहु डि जाव तत्पाओग्गंतोमुहुत्तं उवरिमुप्पादें ति, णो हेट्ठा ।४। एवं जाव सत्तमु पुढ्वीमु णेरइया ।६। तिरिक्लमिच्छाइही...।१३। पज्जत्तरमु उप्पादें ता दिवसपुधत्तप्पहु डि जावमुवरिमुप्पादें ति णो हेट्ठाहो ।१६। एवं जाव सव्वदोवसमुद्दे मु ।२०।
मणुस्सा मिच्छादिही...।२३। पज्जत्तरमु उप्पादें ता अटुवारप्पहु डि
जाव जवरिमुप्पादें ति, णो हेट्ठाहो ।२०। एवं जाव अड्डाइज्जदीवसमुद्दे मु ।२८। देवा मिच्छाइट्ठी...।३१। पज्जत्तरमु उप्पारंता
अंतोमुहुत्तप्पहु डि जाव उवरि उप्पारंति, णो हेट्ठहो ।३४। एवं जाव
अवरिमुद्दे स्वीवज्ञानिमाणवासियदेवा ति ।३६। =नारको मिथ्या-

विष्ठ पर्याप्तकों में सम्यक्त्य उरपन्न करनेवाले अन्तर्मृहूर्त से लगावर अपने योग्य अन्तर्मृहूर्त के पश्चात् उरपन्न करते हैं, उससे नीचे नहीं। इस प्रकार सालों पृथिवियों में जानना चाहिए।१-१। तिर्यंचिष्या- वृष्टि पर्याप्तकों में सम्यक्त्व उरपन्न करनेवाले जीव दिवसपृथवत्वसे लगाकर उपित्म कालमें उरपन्न करते हैं, नीचेके कालमें नहीं। इस प्रकार सर्व द्वीपसमुद्रों में जानना चाहिए।१३-२०। मनुष्य मिध्यादृष्टि पर्याप्तकों सम्यक्त्व उरपन्न करनेवाले जीव आठ वर्ष से लेकर उपर किसी समय भी उरपन्न करते हैं, उससे नीचेके कालमें नहीं। इस प्रकार अडाई द्वीपसमुद्रों में जानना चाहिए।२३-२८। देव मिध्यादृष्टि पर्याप्तकों प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले जीव अन्तर्मृहूर्त क.लसे लेकर उपर उत्पन्न करते हैं, उससे नीचेके कालमें नहीं। इस प्रकार भवनवासीसे लेकर उपरिम उपरिम ग्रैवेयक मिमानवासी देवोतक जानना चाहिए।३१-३४। (रा. वा./२/३/१/१०४/२,६,८,१२)

घ. १३/४,४,३१/१११/१० छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदम्म एकको, विस्समणे विदियो, विसोहिआवरणे सदियो मुहुत्तो । किमट्ठमेदे अविणक्जते । ण, एरेमु सम्मत्तरगृहणाभावादो । — छह पर्याप्तियोंसे प्राप्त होनेका प्रथम अन्तर्मृहूर्त है, विश्वाम करनेका दूसरा अन्तर्मृहूर्त है और विशुद्धिको पूरा करनेका तोसरा अन्तर्मृहूर्त है । प्रश्न—ये अपनी-अपनी उरकृष्ट स्थितियोंसेसे क्यों घटाये जाते हैं । उत्तर— नहीं, क्योंकि, (जन्म होनेके पश्चात्) इन अन्तर्मृहूर्त के भीतर सम्यक्तका ग्रहण नहीं होता है । (अर्थात् ये तीन अन्तर्मृहूर्त कीत जानेके पश्चात् चौथे अन्तर्मृहूर्त हो सम्यक्तका ग्रहण सम्भव है, उससे पहले नहीं । पर ये चारों अन्तर्मृहूर्त मिलकर भी एक अन्तर्मृहूर्तके कालको उद्धांघन नहीं कर पाते । ऐसे अन्तर्मृहूर्त द्वारा नारकी व देव प्रथम सम्यक्तको ग्रहण करते हैं ।)

६. अनादि व सादि मिथ्यादृष्टिमें सम्यक्त्व प्राप्ति सम्बन्धी कुछ विशेषता

- क. पा. मु./१०/गा. १०४/४३४ सम्मत्तपढमलंभी सब्बोबसमेण तह वियट्टेण। भजियव्यो य अभिक्खं सव्योवसमेण देसेण। १०४। 🛥 जो सर्व प्रथम सम्यवत्वको प्राप्त करता है, अर्थात अनादि मिथ्यादृष्टि जीव, उसके सम्यक्त्वका सर्वप्रथम लाभ सर्वोपशमनासे होता है। इसी प्रकार विप्रकृष्ट जीवके, [अर्थात् जिसने पहले कभी सम्यवत्वको प्राप्त किया था किन्तु पश्चान् मिध्यात्वको प्राप्त होकर और वहाँ सम्यक्तन-प्रकृति एवं सम्यवस्यभिष्यात्वकर्मकी उद्वेलना कर बहुतकाल तक मिध्यात्व सहित परिभ्रमण कर पुनः सम्यक्तवको प्राप्त किया है, अर्थात अनादि तुरुय सादि मिथ्यादृष्टिके (दे. आगे 1 V/४/६/३) प्रथमोपशम सम्यवत्वका लाभ भी सर्वोपशमसे होता है। किन्तु जो जीव सम्यवस्थमे गिरकर जन्दी ही पुनः पुनः सम्यवस्थको ब्रह्ण करता है, अर्थात सादि मिध्यादृष्टि जीव सर्वीपशम और देशोपशमसे भजनीय है। (तीनों प्रकृतियों के उदयाभावको सर्वोपशम वहते हैं। तथा सम्यक्षप्रकृति सम्बन्धी देशघातीके उदयको देशोपश्मना कहते हैं 1) (पं. सं./प्र./१/१७१) ; (घ. ६/१,६-८ ६/गा.११/२४१); (रा. वा./१/१११/१३/५८८/२३); (गो. क /जो. प्र./५५०/७४२/१५)
- ध. १,६,३-/३३/१० तसेमु अच्छिलूण जेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि उव्वेतिदाणि सो सागरोवमपुधत्तेण सम्मत्तसमामिच्छत्तिहिसंतकम्मेण जवसमसम्मत्तं पिड्बिज्ञदि एदम्हादो उविरमासु हिदीसु
 जिद्ये सम्मत्तं गेण्हिदि, तो णिच्छएण वेदगसम्मत्तमेन गेण्हिदि। अध
 एइंदिएसु जेण सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणि उव्वेतिदाणि, सो पितदोवमस्स असंखेज्जिदिभागेणुणसागरोवममेत्तं समत्त-सम्मामिच्छत्ताणं
 दिठ्दिसंतकम्मे सेसे तसेसुवविज्ञ्य उवसमसम्मत्तं पिड्विज्ञदि । एदाहि
 हिदीहि उज्यसेस कम्मिट्टिउच्वेलणकालो जेण पिलदोवमस्स असंखेज्जिदिभागो तेण सासणेगजीवजहण्णंतरं पि पिलदोवमस्स असंखेज्ञ

दिभागमेलं हो दि। = १. त्रसजीवों में रहकर जिसने सम्यन्त्व और सम्यग्मिश्यात्व, इन दो प्रकृतियोंका उद्वेतन किया है, वह जीव सम्यग्न और सम्यग्मिश्यात्वकी स्थितिके सत्त्वस्वस्य सागरोपम पृथक्तके पश्चात् उपशम सम्यन्त्वको प्राप्त होता है। यदि, इससे उपरकी स्थिति रहनेपर सम्यन्त्वको प्रहण करता है, तो निश्चयंसे वेदक सम्यवत्वको ही प्राप्त होता है। २. और एकेन्द्रियों में जाकरके जिसने सम्यन्त्व और सम्यग्मिश्यात्वको उद्धेतना की है, वह पच्यो-पमके असंख्यात्वें भागते कम सागरोपमकालमात्र सम्यवत्व और सम्यग्मिश्यात्वको उद्धेतना की है, वह पच्यो-पमके असंख्यात्वें भागते कम सागरोपमकालमात्र सम्यवत्व और सम्यग्मिश्यात्वको स्थितिसत्त्व अवशेष रहनेपर त्रस जीवों में उत्पत्त हाकर उपश्वसम्यवस्वको प्राप्त होता है इन स्थितियों से कम शेष कमस्थिति, उद्धेतनकाल चूँ कि पच्योपमके असंख्यात भाग है (दे. संक्रमण) इसलिए सासादन गुणस्थानका एक जीव सम्बन्धी जघन्य अन्तर भी (प्रथमोपशमकी भाँति) पच्योपमके असंख्यात भागमात्र ही होता है। (विशेष दे अन्तर/श्रह)

मो, क,/मू,/६१६/८२० उद्धिपुघत्तं तु तसे परतासंखूणमेगमेयक्ले। जान य सम्मं मिस्सं वेदगजोग्गो न उनसमरस्सतदो। क्सम्यक्ष्त्रमोष्ट्रनीय और मिश्रमोहनीय, इनकी पूर्वबद्ध सत्तारूपं स्थिति, त्रसके तो सागरोपम प्रमाण अवशेष रहनेपर और एकेन्द्रियोंके परयका असं-स्वातवौं भाग हीन एक सागरोपम प्रमाण अवशेष रहने पर, ताबक्काल वेदक योग्य काल माना गया है। और उससे भी हीन स्थितिसत्त्व हो जानेपर उपशम योग्य काल माना गया है।

गो. क,/जी. प्र./६५०/५४२/१२ सादियदि सम्यवत्विम् प्रव्रकृतिसस्वस्तदा स्वव्रकृतीः सदसस्वस्तदा सोऽप्यनादिरि मिध्यास्वानुविध्वः प्रश्नात्वाप्त स्वयन्ति स्वयन्ति स्वयन्ति स्वयन्ति स्वयन्ति स्वयन्ति प्रथमोपश्म-सम्यव्यवं स्वीकुर्वत् । सादि मिध्यादृष्टिके यदि सम्यवत्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय, इन दो प्रकृतियों का सस्व हो तो उसके सात प्रकृतियों है और यदि इन दोनों का सस्व नहीं है अर्थात् इनकी उद्वेतना कर दी है तो उसके दर्शनमोहकी पाँच प्रकृतियों है । ऐसा जीव भी अनादि मिध्यादृष्टि ही है । वह भी मिध्याद्व और अनन्तान्त्रवन्धी चतुष्क इन पाँच प्रकृतियों को प्रशस्त उपशम या सर्वोपशम विधानके द्वारा युगपत् उपशमाकर, अन्तर्मुहूर्त कालपर्यन्त उपशम सम्यवस्वको अंगीकार करता है । (विशेष दे. अन्तर/२/)

७. प्रथमोपशमसे च्युति सम्बन्धी नियम

क.पा.सुत्त/१०/गा.नं/६३२ भिच्छत्तवेदणीयं कम्मं उवसामगस्स बोद्धव्वं। उबसंते आस।णे तेण परं होइ भक्षियव्यो ।११। सव्येहि द्विदिविसेसेहि उवसंता हों ति तिण्णि कम्मंसा । एक्किन्हिय अणुभागे णियमा सब्बे द्विदिविसेसा ।१००। अंतोमुहूत्तमद्धं सञ्बोवसमेण होइ उवसंतो। तत्तो परमुदयो खलु तिण्णेकदरस्स कम्मस्स ११०३। सम्मत्तपढमलंभस्स पच्छदो य पच्छदो य मिच्छत्तं। लंभस्स अपढमस्स दु भिजयस्त्रो पच्छिदो होदि ।१०५। -- उपशामकके मिथ्यात्व वेदनीयकर्मका उदय जानना चाहिए । किन्तु उपशान्त अवस्थाके विनाश होनेपर तरनन्तर उसका उदय भजितव्य है। ११। (घ. ६/१,६-८,६/गा. ६/ २४०)। २, दर्शनमोहनीयके मिध्यात्व, सम्यग्मिध्यात्व और सम्य-क्रवप्रकृति, ये तीनों कर्माश, दर्शनमोहको उपशान्त अवस्थामें सर्वस्थितिविशेषोंके साथ उपशान्त रहते हैं, अर्थात् उस समय तीनों प्रकृतियों में से किसी एककी भी किसी स्थितिका उदय नहीं रहता 🖁 । तथा एक ही अनुभागमें उन तीनों कर्माशोंके सभी स्थितिविशेष नियमते अवस्थित रहते हैं ११००। (ध, ६/१,६-५,६/गा. ७/२४०)। ३. उपशमसम्यग्दष्टि जीवके दर्शनमोहनीय कर्म अन्तर्मृहूर्त काल तक सर्वोपश्मसे उपशान्त रहता है। इसके पश्चात् नियमसे उसके मिध्यास्त्र, सम्यग्मिथ्यास्य और सम्यक्त्वप्रकृति, इन तीन कर्मोंमेंसे किसी एक कर्मका उदयहो जाता है।१०३। (ध. ६/१,६-८,६/ गा.

१/२४०); (ल. सा./मू./१०२/१३६) । ४. सम्यक्त्वकी प्रथम बार प्राप्तिके अनन्तर और पश्चात मिथ्यास्वका उदय होता है। किन्तु अप्रथम बार सम्यक्तकी प्राप्तिके पश्चात् वह भिजत्तव्य है।१०६१ (पं. सं./प्रा./१/१७२); (ध. ६/१,६-८,६/गा. १२/२४२); (अन. ध / २/१/२० पर उद्दश्त एक श्लोक)

८. गिरकर किस गुणस्थानमें जावे

ध, १/१,१,१२/१७१/- एरिसो चेव उवसमसम्माइट्ठी, किंतु परिणाम-पच्चएण मिच्छत्तं गच्छइ, सासणगुणं वि पडिवज्जइ, सम्मामिच्छ-त्तगुणं पि ढक्कइ, वेदगसम्मत्तं पि समिन्तियइ। = उपशम सम्यग्दृष्टि जीव यद्यपि क्षायिकवत निर्मत होता है, परन्तु परिणामोंके निमित्त-से उपशम सम्यवस्वको छोड्कर मिध्यात्यको जाता है, कभी सासा-दन गुणस्थानको भी प्राप्त करता है, कभी सम्यग् मिध्यास्व गुणस्थानको भी पहुँच जाता है और कभी वेदक सम्यवस्वसे मेल कर लेता है।

गो, जी, प्रनं १०४/११४१/१६ ते अप्रमत्तसंयतं किना त्रय एव तत्सम्यक्तविकालन्तर्मुहूर्ते ज्ञयन्येन एकसमये उत्कृष्टेन च घडाविलमानेऽविद्यार अनन्तानुनन्ध्यन्यतमोदयेसासादनाभविन्त। अथवाते चत्वारोऽपि यदि भव्यतागुणविशेषेण सम्यक्तविराधका न स्युः तदा
तत्काले संपूर्णे जाते सम्यक्तवप्रकृत्युदये वेदकसम्यग्दष्टयः वा मिश्रप्रकृत्युदये सम्यग्मिध्यादष्टयः वा मिध्यात्वोदये मिध्यादष्टयो भवन्ति ।

[प्रथमोशम सम्यक्तव ४-७ तकके चार गुणस्थानवर्ती जीव उस
प्रथमोशमके अन्तर्मुहूर्तमात्र कालमेसे जघन्य एक समय और उत्कृष्ट
छह्न आवली शेष रह जानेपर, अनन्तानुनन्धी चतुष्कमें से किसी
एकके उद्यसे सासादन होते हैं। अथवा वे चारों ही गुणस्थानवर्ती
यदि भव्यतागुणकी विशेषतासे सम्यक्तकी विराधना नहीं करते हैं,
तो सम्यक्त प्रकृतिके उदयसे सम्यग्मिध्यादष्टि या मिथ्यात्वके उदयसे
मिथ्यादष्टि हो जाते हैं। (और भी दे. सम्यग्दर्शन/I V/४/६/३)।

९, पंच लब्धि पूर्वक होता है

ध. ६/१,६-८,३/२०४/२ तिकरणचरिमसमए सम्मतुष्पतीदो । एदेण खओवसमलझी विसोहिलझी देसणलझी पाओग्गलद्वधी त्ति चत्तारि लद्वधीओ परूविदो । =तीनों करणोंके अन्तिम समयमें सम्यवस्वकी उपलब्धि होती हैं । इस सूत्रके द्वारा क्षयोपशम लब्धि, विशुद्धिध लब्धि, देशना लब्धि, और प्रायोग्य लब्धि ये चारों लब्धियों प्ररूपण की गयीं — (और भी दे, लब्धि/२/६ तथा उपशम/२/२); (त. सा./४/४११)।

१०. प्रारम्म किये पक्षात् अवस्य प्राप्त करता है

क. पा. सु/१०/१७/६३१ उबसामगो च सक्वो णिक्वाधादो तहा णिरा-साओ ।१७। च्दर्शनमोहका उपशमन करनेवाला जीव उपद्रव व उपसर्ग आनेपर भी उसका उपशम किये बिना नहीं रहता। (ध. ६/ १,१-५,१। गा ४/२३१); (ल. सा./मू/११/१३६); (और भी दे, अपूर्व करण/४)।

३. द्वितीयोपशम सम्यक्त्व निर्देश

९. द्वितीयोपशमका लक्षण

त. सो./भाषा/२/४२/१ उपशमश्रेणी चढता क्षयोपशम सम्यवस्वतें जो उपशम सम्यवस्व (होता है) ताका नाम द्वितीयोपशम सम्यवस्व है। (और भी दे. सम्यव्दर्शन/IV/२/४/२)।

२. द्वितीयोपशम सम्यक्ष्वका स्वामित्व

ध. ६/१,६-८, १४/३३१/८ हंदि तिम्रु आउएमु एक्केण वि बद्धेण ण सक्को कसाए जनसामेद्रं, तेण कारणेण णिरय-तिरिक्ख-मणुसगदीओ ण गच्छदि । = निश्चयतः नरकायु, तिर्घणायु, और मनुष्यायु, इन तीनों आयुमेंसे पूर्वमें भाँधी गयी एक भी आयुसे कथायोंको उपशमानेके लिए समर्थ नहीं होता। इसी कारणसे वह नरक तियंच व (मरकर) मनुष्यगतिको प्राप्त नहीं होता । (विशेष दे. मरण/३/७) ।

गो. जी./मू/६६६, ७३१/११३२, १३२५ विदियुवसमसम्मत्तं अवि-रदसम्मादि संतमोहोत्ति ।६६६। त्रिदियुवसमसम्मत्तं सेढौदोदिण्णि अविरदादिसु 1७३१। = १. द्वितीयोपशम सम्यक्त्व ४ थे से ११ वे गुण स्थान तक होता है। ६६६। (विशेष दे. उपशम/२/४)। २. श्रेणीसे उतरते हुए अविरतादि गुणस्थान होते हैं। (विशेष दे, शीषंक र्न. ३, ४)।

गो, जो./जो, प्र /६६०/०४२/७ हितीयं पर्याप्तमनुष्यनिवृ त्यपर्याप्तवै-मानिकयोरेव।=द्वितीयोपशम सम्यवस्व पर्याप्त मनुष्य व निवृ त्य-पर्याप्त वैमानिक देवोंमे ही होता है। (दे. द्र. सं./टी./४१/१७६/१); (और भी दे. मरण/३/७),

३. द्वितीयोपशमका अवरोहण क्रम

ध. ६/१.६-८.१४/३३१/४ एदिस्से उवसम्मताए अन्भंतरादो असंजर्म पि गच्छेज्ज, संजमासंजमं पि गच्छेज, छम्रु आविलयामु सेसासु आसाणं पि गच्छेजा। == इस द्वितीयोपशम समयक्तको कालके भीतर असंयमको भी प्राप्त हो सकता है, संयमासंयमको भी प्राप्त हो सकता है और छह आविलयों के शेष रहनेपर सासादनको भी प्राप्त हो सकता है। [सासादनको प्राप्त करने वन करनेके सम्बन्धर्में दो मत हैं। (वे. सासादन)](ल. सा./मू./३४८/४३७)।

गो. जी./मू./७३१/९३२४ विदिमुबसारसम्मत्तं हेढीदोदिण्णि अविर-दादीसु । सगसगलेस्सा मरिदे देवअपजात्तगेव हवे ।७३१।

गो. जी: /जी. प्र./७०४/११४१/१६ द्वितीयोप्शमसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा उपशम-श्रीणमारुह्य उपशान्तकषायं गरना अन्तर्मृहूर्तं स्थित्वा क्रमेण अनतीर्य अप्रमत्तगुणस्थानं प्राप्य प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसहस्राणि करोति । वा अधः देशसंयमो भूत्वा आस्तेवा असंयतो भूत्वा आस्तेवा मरणे देवासंयतः स्यातः वा मिश्रप्रकृत्युदये मिश्रः स्यात् । अनन्तानुबन्ध्य-न्यतमोदये द्वितीयोपश्मसम्यक्त्वं विराधयतीत्याचार्यपक्षे सासादनः स्यात्वा मिध्यात्वोदये मिश्यादष्टिः स्यात् इति । क्वितीयोपराम सम्यग्दृष्टि होकर, उपशमश्रेणीपर आरोहण क्रके, उपशान्तकषाय गुणस्थानमें जाकर और वहाँ तत योग्य अन्तर्मृहूर्त काल तक स्थित रहकर क्रमसे नीचे गिरता हुआ अर्थात क्रमपूर्वक १०,६,८ गुणस्थानों-मेंसे होता हुआ अप्रमत्तसंयत गुणस्थानको प्राप्त करता है। वहाँ प्रमत्तव अप्रमत्तमें हजारों बार उतरना गिरना करता है। अथवा नीचे देशसंयत होकर रहता है, अथवा असंयत होकर रहता है, या मरण करके असंयत देव (निवृत्त्यपर्याप्त) होता है, अथवा मिश्र प्रकृतिके उदयसे मिश्रगुणस्थानवर्ती होता है। अनन्तानुबन्धी चतुष्क-मेंसे किसी एकका उदय आने १र द्वितीयोपशमकी विराधना करके किन्हीं आचार्योंके मतसे सासादन भी हो जाता है (विशेष दे. सासादन), अथवा मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यादृष्टि हो जाता है। (और भी, दे, अणी/३/३)।

४. श्रेणीसे नीचे आकर भी कुछ देर द्वितीयोपशमके साथ हो रहता है

घ. ६/१,६-८, १४/३३१/१ उत्सामगस्स पहमसमयअपुञ्जकरणम्बहुङि जाव पडिवणमाणयस्स चिरिमसमयअपुञ्चकरणेत्ति तदो एत्तो संखेज-गुगं कालं पिंडणियत्ता अधारवत्तकरणेण उत्रसमसम्मत्तद्भमणुपालेदि । = उपशामकके श्रेणी चढ़ते समय अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर उतरते हुए अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक जो काल है, उससे संख्यातपुषे कासतक कषायोपशमनासे लौटता हुआ जीव अधःप्रवृत्ति-करण (७ वें गुणस्थान) के साथ द्वितीयोपशम सम्यक्तको पालता है। (त. सा./मृ./३४७/४३७); (और भी दे. मरण/३/७)।

गो. जो /जो प्र./६६६/१९३२/१२ द्वितीयीपरामसम्यवत्वं असंयतादा प-शान्तकषायान्तं भवति । अप्रमत्ते उत्पाद्य उपरि उपशान्तकषायान्तं गत्वा अधोवतरणे असंयतान्तमपि तत्सभवात्। - द्वितीयोपशम-सम्यक्तव असंयतादि उपशान्तकषाय गुणस्थान पर्यन्त होता है। अप्रमत्त गुणस्थानमें उत्पन्न करके, ऊपर उपशान्तकषाय गुणस्थान तक जाकर, फिर नीचे उतरते हुए असंयत गुणस्थान तक भी सम्भव है। (गोें• जो./जी. प्र /७३१/१३२६/१३)

४. वेदक सम्यक्त्व निर्देश

१. वेदक सामान्यका लक्षण

१. क्षयोपशमकी अपेक्षा

स, सि./२/५/१४% अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयस्य मिष्ट्यात्वसम्यङ्-मिध्यास्वयोश्चोदयशयात्सदुपशमाच सम्यवत्वस्य देशघातिस्पर्ध-कस्योदये तत्त्वार्थश्रद्धानं क्षायोपशमिकं सम्यक्तवम् । चार अनन्ता-नुबन्धी कषाय, मिश्यात्व और सम्यग्मिश्यात्व इन छह प्रकृतियोंके उदयाभावी क्षय और इन्होंके सदवस्थारूप उपश्रमसे, देशघाती स्पर्धकवाली सम्यक्तव प्रकृतिके उदयमें जो तत्त्वार्थश्रद्धान होता है वह क्षायोपशमिक सम्यवत्व है। (रा. वा /२/४/५/१०८/१): (विशेष दे, संयोपशम/१/१); (गो, जी./जी, प्र,/२४/४०/९८) ।

२. वेदक सम्यक्त्वको अपेक्षा

घ. १/१,१,११४/गा. २१५/३१६ दंसणमोहृदयादी उप्पजाई जं पयत्थ सद्दृष्णं । चलम्लिनमगाढं तं वेदगसम्मत्तमिह सुणहु । = सम्यवस्व-मोहनीय प्रकृतिके उदयसे पदार्थीका जो चल. मलिन और अगाइरूप श्रद्धान होता है उसको वेदक सम्यग्दर्शन कहते हैं। (गो. जी./मू./ (६४१**/१**०६६); (गो. जी./मू./२४/५०) ।

ध. १/१.१,१२/१७१/६ सम्मत्त-सर्णिद-दंसणभोहणीयभेय-कम्मस्स उदएण वेदयसम्माइही गाम ।

सम्मत्तदेसघाइ-वेदग्रसम्मत्तुदएणुऽपण्णवेद्य-घ. १/१,१,१२/१७२/३ सम्मत्तं खओवसिमयं। == १. जिसको-सम्यक्त्व संज्ञा है ऐसी दशेन-मोहनीय कर्मकी भेदरूप प्रकृतिके उदयसे यह जीव वेदक सम्यादिष्ट कहलाता है। (पं. सं /पा./१/१६४)। २. सम्यक्त्वका एक देशरूपसे वेदन करानेवाली सम्यवस्य प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होनेवाला वेदक सम्यक्त्व क्षायोपरामिक है। (विशेष दे, क्षयोपराम/१/१।

🕶 कृतकृत्य वेदकका रूक्षण

ध. ६/१.६-८,१२/२६२/१० चरिमे टि्ठरखंडए णिट्ठिये कदकरणिउजो त्ति भण्णदि । = ,दर्शन मोहनीयका क्षय करने वाला कोई जीव ७ वें गुणस्थानके अन्तिम सातिशय भागमें कर्मीकी स्थितिका काण्डक घात करता है—दे, क्षय) तहाँ अन्तिम स्थितिकाण्डकके समान होनेपर वह 'कृतकृत्यवेदक' कहलाता है। (ल.सा./मू./१४४) (विशेष दे. क्षय/२/६)

३. वेदक सम्यक्त्वके बाह्य चिह्न

पं.सं./प्रा /१/१६३-१६४ बुइधी सहाणुबंधी सहकम्मरओ सुए य संवेगो। तच्चत्थे सद्दृष्णं पियधम्मे तिव्वणिव्वेदो ।१६३६ इन्चेवमाइया जे वेदयमाणस्स होति ते य गुणा। वेदयसम्मत्तमिण सम्मत्तुद्रण जीवस्स ।१६४। = वेदक सम्यवस्वके जत्त्वन्त होनेपर जीवकी बुद्धि शुभानुबन्धी या सुलानुबन्धी हो जाती है। शुचिकर्ममें रित जत्त्वन्त होती है। श्रुतमें संवेग अर्थात प्रीति पैदा होती है। तत्त्वार्थमें श्रद्धान, प्रिय धर्ममें अनुराग एवं संसारसे तीव्र निर्वेद अर्थात वैराग्य जागृत हो जाता है। १६३। इन गुणोंको आदि सैकर इस प्रकारके जितने गुण हैं. वे सब वेदक सम्यवस्वी जीवके प्रकट हो जाते हैं। सम्यवस्व प्रकृतिके जदयका वेदन करनेवासे जीवको वेदक-सम्यग्द्रष्टि जानना चाहिए। १६४।

४. वेदक सम्यक्ष्वकी मिलिनताका निर्देश

- घ. १/१.१.१२/१७१/१० जो पुण वेदयसम्माइट्ठो सो सिथिलसइहणों थेरस्स लिट्ठागहणं व सिथिलगाहों कुहेउ-कुदिट्ठतेहि महिदि विराहशों। चेदक सम्यादृष्टि जीव शिथलशद्भानी होता है, इसलिए वृद्धपुरुष जिस प्रकार अपने हाथमें लकड़ीको शिथिलता-पूर्वक पकड़ता है, उसी प्रकार वह भी तत्त्वार्थके श्रद्धानमें शिथिल-प्राही होता है। अतः कुहेतु और कुदृष्टान्तसे उसे सम्यक्तकी विराधना करनेमें देर नहीं लगती है। (और भी दे. अगाढ)
- ध. ६/१,६-१,२१/४०/१ अत्तागमप्यत्यसद्भाषः सिथिलत्तं सद्भाहाणी वि सम्मत्तर्लिगं । --आप्त आगम और पदार्थोकी श्रद्धामें शिथितता और श्रद्धाकी हीनता होना सम्यक्त्वप्रकृतिका चिह्न है। (दे मोहनीय/२/४)
- दे सम्प्र/1/२/६ | दर्शनमोहके उदयसे (अर्थाद सम्यवस्व-प्रकृतिके उदयसे) सम्यव्दर्शनमें शंका कांक्षा आदि अस्तिचार लगते हैं।
- दे, अनुभाग/४/६/३ [सम्यवस्य प्रकृति सम्यवस्यके स्थिरता और निष्कांक्षता गुणोंका घाल करती है।]
- गो. जी./मू./२६/६० सम्मत्तदेसवादिस्युदयादो वेदगं हवे सम्मं। चलमितनमगाढं तं णिच्चं कम्मक्तवणहेदु १२६१ — सम्यक्तव नामकी देशघातो प्रकृतिके उदयसे सम्प्रक्तव चल मितन व अगाढ़ दोषसे युक्त हो जाता है, परन्तु नित्य हो वह कर्मक्षयका हेतु बना रहता है। (और भी दे सम्यग्दर्शन/IV/४/१२), (अन. ध/२/६६/१८२)
- दे. चल ~ (अपने व अन्यके द्वारा स्थापित जिनिश्वम्बोंमें मेरे तेरेकी बुद्धि करता है, तथा कुछ मात्र काल स्थिर रह कर चलायमान हो जाता है।)
- दे. मल-[शंका आदि दोषोंसे दूषित हो जाना मल है।]

वेदक सम्यक्तका स्वामित्व

१. गति व पर्याप्ति आदिकी अपेक्षा

स. सि /१/७/२२/६ गत्यनुवादेन नरकगतौ सर्वायु पृथिवीषु नारकाणां पर्याप्रकानस्मौपशमिकं क्षायोपशमिकं चास्ति । प्रथमायां पृथिवयां पर्याप्तापर्याप्तकानां क्षायिकं क्षायोपश्रमिकं चास्ति। तिर्यगती तिरश्चां...क्षायिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तापर्याप्तकानामस्ति। तिरश्चीनां क्षायिकं नास्ति। क्षायोपशमिकं च पर्याप्तिकानामेव नापर्याप्तिकः नाम् । मनुष्यगतौ मनुष्याणां पर्याप्तापर्याप्तकानां क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति। मानुषीणां जिलयमप्यस्ति पर्याप्तिकानामेव नापर्याप्तिकानाम् । देवगतौ देवानां पर्याप्तापर्यप्तिकानां त्रित्यम्प्यस्ति ···विशेषेग भवनवासिव्यन्तरज्योतिष्काणां देवानां देवीनां च सौधर्मेशानकरपत्रासिनीनां च क्षायिकं नास्ति । तेषां पर्याप्तकाना-भौपशमिकं क्षायोपशमिकं चास्ति। चगतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगितमें सब पृथिवियों में पर्याप्तक नार्रिकयों के औपशमिक व क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन होता है। पहली पृथिवीमें पर्याप्तक और अपयीमक नार्कियों में क्षायिक व क्षायोपशमिक सम्यन्दर्शन होता है। तिर्यस्मितिमें क्षायिक और क्षायोपशमिक पर्याप्त और अपयाप्तक दोनों प्रकारके तियंचोके होता है। तियंचिनीके क्षायिक नहीं होता शायोपशमिक पर्याप्तकके ही होता है, अपर्याप्तक तियाँचिनीके नहीं।

मनुष्यगितमें क्षायिक और क्षायोपश्चिमक सम्यव्हांन पर्याप्तक और अपर्याप्तक दोनों प्रकारके मनुष्योंके होता है। मनुष्यणियोंके तीनों हो सम्यव्हांन होते हैं, किन्तु पर्याप्तक मनुष्यणीके ही होते हैं, अपर्याप्तक मनुष्यणीके नहीं। देवगितमें पर्याप्तक, अपर्याप्तक दोनों प्रकारके देवोंके तीनों हो सम्यव्हांन होते हैं। विशेषरूपसे भवनवासी, व्यन्तर और उयोतिषी देवोंके, इन तीनोंकी देवांगनाओंके तथा सौधर्म और ऐशान कल्पमें उत्पन्न हुई देवांगनाओंके क्षायिक सम्यव्हांन नहीं होता शेष दो होते हैं, सो वे भी पर्याप्तक अवस्थामें ही होते हैं। (विशेष दे वह-वह गति तथा सत्त)

- गो. जी./मू./१२८/३३१ हेष्ट्रिमछण्युढवीणं जोइसिवणभवणसव्वहत्थीणं । पुण्णिदरे णहि सम्मो ण सासणो णारयापुण्णे ।१२८। नरक गतिमें प्रथम पृथिवीके अतिरिक्त नीचेकी छह पृथिवीमें, देव गतिमें ज्योतिषी व्यन्तर व भवनवासी देव, सर्व ही प्रकारकी स्त्रियाँ, इन सबको पर्याप्त अवस्थामें ही सम्यवस्व होता है अपर्याप्त अवस्थामें नहीं । इसके अतिरिक्त नार्कियोंको अपर्याप्त अवस्थामें सासादन भी नहीं होता है।
- गो. जी. / ११०/७४२/७ बेदकं चातुर्गतिपर्याप्तितृ त्यपर्याप्तिष्ठ ।७। = वेदक सम्यग्दर्शन चारों ही गतियों में पर्याप्त व निर्कृ त्यपर्याप्त दोनों दशाओं में होता है।
 - २. गुणस्थानीकी अपेक्षा
- ष. खं. १/१,१/मूत्र १४६/३६७ वेदगसम्माइही असंजवसम्माइही-प्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा ति ।१४६। = वेदक सम्यग्रुष्टि जीव असंयत-सम्यग्रुष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक होते हैं। (विवीय दे॰ सत्)

३. उपराम सम्यग्दृष्टि व सादि मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा

गो, क./जी. प्र./४५०/१४४/१६ कर्मभूमिमनुष्यप्रथमोपशमसम्यग्दृष्ट्यश्च स्वस्वान्तम् हुर्त काले। गते सम्यक्त्वप्रकृत्युदयाद्वीदकसम्यग्दृष्टयो कर्मभूमिमनुष्यसादिमिध्यादृष्टयः सम्यक्त्वप्रकृत्युदयेन मिध्यारबोदयनिषेकानुरकृष्यासं यतादिचतुर्गुणस्थानवेदकसम्यग्दष्ट्यो भूत्वा । . . . नरकगतौ प्रथमोपशमसम्यग्दष्टयः स्वकालानन्तरसमयं प्राप्य सम्यन्मिथ्यादृष्टिसादिमिथ्यादृष्ट्यः मिश्रमिथ्यास्वप्रकृत्युदय-निषेकानुत्कृष्य च सम्यव्श्वप्रकृत्युदयाद्वेदकसम्यग्दष्ट्यो भूत्वा ।... कर्मभोगभूमितियँचो भोगभूमिमनुष्याश्च प्रथमोपश्चमसम्यवस्वं त्यक्त्वा सादिमिध्यादष्टितिये उचो मिध्यात्बोदयनिषेकानुत्कृष्य च सम्यक्त्त्रप्रकृत्युदयाद्वेदकसम्यग्दष्टयो जायन्ते ।...भवनत्रयाद्रयुपरिम्-ग्रैवेयकान्तसादि मिथ्यादष्टयः करणत्रयमकृत्वा वा यथासंभवं सम्य-वस्वप्रकृत्यान्मिथ्यात्वं त्यवस्वा वेदकसम्यग्दष्टयो भूत्वा तदेव अधनन्ति । -कर्मभूमिज मनुष्य प्रथमीपशम सम्यादृष्टि अपने-अपने योग्य अन्तर्मृहूर्त कालके बीत जानेपर सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयसे वेदक सम्यग्दष्टि हो जाते हैं। कर्मभूमिज मृतुष्य सादि मिथ्याद्दष्टि सम्यवस्य प्रकृतिके उदयसे उदयगत मिध्यात्वके निषेकोंका अभाव करके असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती वेदक सम्यग्द्दष्टि होकर...। नरक गतिमें प्रथमोपशमसम्यग्दष्टि जीव अपने कालके अनन्तर समयको प्राप्त करके, मिश्रगुणस्य।नवर्ती या सादि मिथ्यादृष्टि हो, मिश्र व 🤚 मिध्यात्त्र प्रकृतिके उदयगत निषेकोंको हटाकर सम्यक्त प्रकृतिके उदय्से वेदक सम्यग्दष्टि हो जाता है। कर्मभूमिज तियंच और भोगभूमिज मनुष्य प्रथमोपशमको छोड़ और सादि मिथ्यादृष्टि तियंच मिध्यात्वकेउदयगत निषेकोंका अभाव करके सम्यवत्वप्रकृति-के जदयसे वैदक-सम्यग्दृष्टि हो जाते हैं। भवनत्रिकसे सेकर उपरिम ग्रैबेयक पर्यन्तके सादि मिध्यादृष्टि देव करणत्रयको करके अथवा यथासम्भव सम्यक्त प्रकृतिके द्वारा मिथ्यात्यको छोड्कर वेदक सम्यग्दृष्टि हो जाता है। (इस प्रकार ये सभी जीव वेदक सम्यग्दृष्टि

होकर तीर्थंकर प्रकृतिको बाँधनेके योग्य हो जाते हैं, ऐसा यहाँ प्रकरण है।)(और भी दे.सम्यग्दर्शन/IV/२/५)

६. अनादि मिथ्यादृष्टिको सीधा प्राप्त नहीं होता

- भ. १/१.६,१२१/७३/१ एइंदिएसु दीहद्धमविद्वदस्स उठवेश्बिदसम्मत्त-सम्मामिस्छत्तस्स तदुष्पायणे संभवाभावा । = एकेन्द्रियोमें दीर्घकाल तक रहनेवाले और उद्वोलंगा की है सम्यवस्व और सम्यग्मिष्यात्व प्रकृतिकी जिसने ऐसे जीवके वेदक सम्यवस्वका उत्पन्न कराना सम्भव नहीं है। (ध. १/१,६,२८८/१३६/६)
- दे. सम्यग्दर्शन/IV/२/६ में अन्तिम सन्दर्भ—[उपरोक्त प्रकारका जीव अनादिमिथ्यादृष्टि ही होता है।]

७. सम्यक्त्वसे च्युत होनेवाले बहुत कम हैं

ध. ३/१,२,१४/१२०/४ वेदगसम्माइट्ठीणमसंखेजजिदभागो मिच्छतं गच्छिद । तस्स वि असंखेजजिदभागो सम्मामिच्छतं गच्छिद । — वेदक सम्यग्दष्टियोंका असंख्यातवाँ भाग मिध्यात्वको प्राप्त होता है और उसका भी असंख्यातवाँ भाग सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होता है।

८. च्युत होनेके पश्चात् अन्तर्मु हूर्तसे पहले सम्यक्त्व पुनः प्राप्त नहीं होता

क, पा, ३/३-२२/६३६२/१६६/४ संकिलेसादो ओयरिय विसोहीए अंतोमुहुत्तावट्ठाणेण विणा सम्मतस्स गहणाणुववत्तीदो। = मिच्यात्वमें आकर और उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कारणभूत संक्लेशसे च्युत होकर, विशुद्धिको प्राप्त करके, जब तक उस विशुद्धिके साथ जीव मिध्यात्वमें अन्तर्मृहूर्त कालतक नहीं ठहरता, तबतक उसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं हा सकती है। (विशेष दे, अन्त्र/८)।

९. जपरके गुणस्थानोंमें न होनेमें हेतु

थ १/१,१,१४६/३६७/७ उपरितनगुणेषु किमिति वेदकसयम्बस्यं नास्तीति चेत्र, अपाढसमलश्रद्धानेन सह क्षपकोपशमश्रेण्यारोहणानु-पपत्तेः। =प्रश्न — ऊप्रके आठवें आदि गुणस्थानों में वेदकसम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता है १ उत्तर — नहीं होता, क्योंकि, अगाढ़ आदि मलसहित श्रद्धानके साथ क्षपक और उपशम श्रेणोका चढ़ना नहीं बनता है।

१०. कृतकृत्य वेदक सम्बन्धी कुछ नियम

घ. ६/१.६-८.१२/२६३/१ कदकर णिज्जकाल क्यंतरे मरणं पि हो ज्ज, काउ-तेउ-पम्म- सुक्क-लेस्साण मण्णदराए लेस्साए वि परिणामेज्ज, संकिलिस्सदु वा विसुज्भदु वा, तो वि असंखेज्जगुणाए सेडीए जाव समयाहियावित्या सेसा ताव असंखेज्जाणं समयपबद्धाण सुद्दीरणा, उक्किस्सिया वि उदीरणा उदयस्स असंखेज्जिदिभागो। क्कृतकृत्य-वेदककाल के भीतर उसका मरण भी हो (विशेष वे, मरण/६/८); कापोत तेज पद्म और शुक्ल इन लेश्याओं मेंसे किसी एक लेश्याके द्वारा भी परिणमित हो; संक्तेशको प्राप्त हो; अथवा विशुद्धिको प्राप्त हो; तो भी असंख्यातगुणित अणीके द्वारा जक तक एक समय अधिक आवलीकान शेष रहता है, तकतक असंख्यात समय प्रबद्धोंकी उदीरणा होती रहती है। उत्कृष्ट भी उदीरणा उदयके असंख्यात वे भाग होती है।

५. क्षायिक सम्यक्त्व निर्देश

१. क्षायिक सम्यग्दर्शनका लक्षण

पं. सं./पा /१/१६०-१६२ खीणे दंसणमोहे जं सहहणं सुणिम्मलं होइ। तं खाइयसम्मत्तं णिच्चं कम्मक्खवणहेजं। १६०। वयणेहि वि हेजःहि य इंदियभय जणणीहिं रूवेहिं। वीभच्छ-दुगुंछेहि य णे तेल्लोकेण चालिज्जा।१६१। एवं विउत्ता बुद्धो ण य विभयमेदि किंचि दर्दूजं। पर्विवर सम्मत्ते खइए जीवस्स लद्धीए।१६२। व्हर्शनमोहनीय कर्मके सर्वथा क्षय हो जानेपर जो निर्मल श्रद्धान होता है, उसे शायिक सम्यक्त कहते हैं। वह सम्यक्त नित्य है और कर्मोंके क्षय करनेका कारण है।१६०। श्रद्धानको भ्रष्ट करनेवाले वचनोंसे, तकाँसे, इन्द्रियोंको भय उत्पन्न करनेवाले रूपोंसे तथा वीभरस और जुगुप्सित पदार्थोंसे भी चलायमान नहीं होता। अधिक क्या कहा जाय वह जैलोक्यके द्वारा भी चल-विचल नहीं होता।१६१। क्षायिक सम्यक्तके शारम्भ होनेपर अथवा प्राप्ति या निष्ठापन होनेपर, क्षायिक सम्यक्तके शारम्भ होनेपर अथवा प्राप्ति या निष्ठापन होनेपर, क्षायिक सम्यक्तके शारम्भ होनेपर अथवा प्राप्ति या निष्ठापन होनेपर, क्षायिक सम्यक्तके शारम्भ होनेपर अथवा प्राप्ति या निष्ठापन होनेपर, क्षायिक सम्यक्तके शारम्भ होनेपर अथवा प्राप्ति या निष्ठापन होनेपर, क्षायिक सम्यक्तके शारम्भ होनेपर अथवा प्राप्ति या निष्ठापन होनेपर, क्षायिक सम्यक्तके शारम्भ होनेपर अथवा प्राप्ति या निष्ठापन होनेपर, क्षायिक सम्यक्ति है कि वह कुछ (असम्भव या अनहोनी घटनाएँ) देलकर भी विस्मय या क्षाभको प्राप्त नहीं होता।१६२। (ध, १/१,१४४/णा. २१३-२१४); गो. जी./मू./६४६-६४७/१०६६)।

- स, सि./२/४/१४४/११ पूर्वोक्तानां सम्रानां प्रकृतीनामत्यन्तक्षयात्सायिकं सम्यवस्यम् । अपूर्वोक्त (दर्शनमोहनीयकी) सात प्रकृतियोंके अत्यन्त विनाशसे क्षायिक सम्यवस्य होता है। (रा. वा./२/४/७/१०६/११)।
- ल, सा./मू./१६४/२१७ सत्तरणं पयडीणं लयादु लड्यं तु होदि सम्मत्तं।
 मेरु व णिप्पकंषं सुणिम्मलं अक्लयमणंतं ।१६४। स्वात प्रकृतियोंके
 क्षयसे क्षायिक सम्यक्तव होता है। वह मेरुको भाँति निष्प्रकम्प,
 निर्मल व अक्षय अनन्त है।
- प्र. प./टो./१/६१/६१/६ शुद्धारमादिपदार्थ विषये विपरीताभिनिवेशरहितः परिणामः क्षायिकसम्यक्तवमिति भण्यते । मशुद्ध आरमा आदि पदार्थोके विषयमें विपरीत अभिनिवेश रहित परिणाम क्षायिक सम्यक्तव कहा जाता है। (द. सं./टो./१४/४२/४)
- घ. १/१.१.११९१/४ एदासि सत्तण्हं णिरवसेसखरण खइयसम्माइट्ठी उम्र । ... खइयसम्माइट्ठी ण कयाइ वि मिच्छत्तं गच्छइ, ण कुणइ सदेहं पि, मिच्छत्तु अर्था । दट्ठूण णो विम्हयं जायदि । स्सात प्रकृतियों के सर्वधा विनाशसे जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। ... क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव कभी भी मिथ्यास्वको प्राप्त नहीं होता, किसी प्रकारके सन्देहको भी नहीं करता, और मिथ्यास्वजन्य खित्रयों को देखकर विस्मयको भी प्राप्त नहीं होता है।

२. क्षायिक सम्यक्ष्वका स्वामित्व

१. गति व पर्याप्तिकी अपेक्षा

दे. सम्यग्दर्शन/IV/8/६/९—[नरक गतिमें केवल प्रथम पृथिवीमें होता अन्य पृथिवियोंमें नहीं। वहाँ पर्याप्तक व अपर्याप्तक दोनोंके होता है। तिर्यंच गतिमें तिर्यंचोंको पर्याप्तक व अपर्याप्तक दोनोंको होता है, पर तिर्यंचिनियोंको सर्वथा नहीं। मनुष्य गतिमें मनुष्योंको पर्याप्तक व अपर्याप्तक दोनोंको होता है, मनुष्यभीके केवल पर्याप्तकको होता है। देवोंमें पर्याप्त व अपर्याप्त दोनोंको होता है, पर भवनित्रक व सर्व ही देवियोंके सर्वथा नहीं होता है। विशेष दे, वह-वह गति)।

गो. क./जो./प्र./६६०/७४२/६ क्षायिकं वर्नातारकभोगभू मितियंग्भोगकर्मभू मिननुष्यवैमानिके वेव पर्याप्त।पर्याप्तेषु । = क्षायिक सम्यग्दर्शन
वर्मातरक अर्थात् प्रथम पृथिवीमें, भोगभू मिज तिर्यंचोमें, कर्म व
भू मिज मनुष्योमें तथा वैमानिक देवीमें पर्याप्त व अपर्याप्त दोनों
अवस्थाओं में होते हैं (विशेष दे. वह-वह गति)।

२. प्रस्थादक व निष्ठापककी अपैक्षा

ष, खं. ६/१,६-८/सूत्र १२/२४७ णिट्ठवओ पुण चतुसु वि गदीसु णिट्ठवेदि ।१२। च्दर्शनमोहकी क्षपणाका निष्ठापक तो चारों ही गतियों में उसका निष्ठापन करता है। [पर इसका प्रस्थापन मनुष्य-गतिमें ही सम्भव है]।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

- क, ण. सुत्त/११/गा ११०--१११/६३६ दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो दु। णियमा मणुसगदीए णिट्ठवगो चावि सव्बन्ध ११०।
 मिन्छ तवेदणोयकम्मे. अविदिस्म सम्मत्ते। खबणाए पट्ठवगो
 जहण्णो तैजलेस्साए।१११। --१. नियमसे कमभूमिमें उत्पन्न हुआ
 और मनुष्यातिमें वर्तमान जीव ही दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापक
 (प्रारम्भ करनेयाला) होता है। किन्तु उसका निष्ठापक (पूर्ण करनेवाला) चारों गतियोंमें होता है।१९०। (पं. सं./प्रा./१/२०२);
 (घ. ६/१,६-८,१९/गा. १७/२४६); (गो. जी./मू.६४८/१०६८);
 (दे. तियंच/२/६ में स. सि.). २. मिथ्यात्ववेदनीयकर्मके सम्यवस्व
 प्रकृतिमें अपवर्तित अर्थात संक्रमित कर देनेपर जीव दर्शनमोहकी
 क्षपणाका प्रस्थापक कहलाता है। दर्शनमोहको क्षपणाके प्रस्थापकको
 जवन्य तेजोलेश्यामें वर्तमान होना चाहिए।११९।
- त. सा./मू./११०-१११/१४६ दंसणमोहक्खवणापट्ठत्रगो कम्मभूमिजो मणुसो । । । । १११०। णिट्ठवणो तट्ठाणे विमाणभोगावणीसु घम्से य । किहकरणिज्ञो चदुसु वि गदीसु उप्पज्जदे जम्हा । १११। = दर्शनमोहको क्षपणाका प्रस्थापक कर्मभूमिज मनुष्य ही होता है । ११०। परन्तु उसका निष्ठापक तो (अवसायुष्ककी अपेक्षा) उसी स्थानमें अर्थाद जहाँ प्रारम्भ किया था ऐसी उस मनुष्यगतिमें (और बसायुष्ककी अपेक्षा) विमानवासी देवोंमें, भोगभूमिज मनुष्यों व तिर्यंबोंमें और धर्मा नामक प्रथम नरक पृथिकीमें भी होता है, क्यों कि बसायुष्क कृतकृत्यवेदक सम्यग्हिष्ट मरकर चारों ही गतियोंमें उत्पन्न होता है। १९१९। गो.क/-जो./५१०/७४४/११)

३. गुणस्थानीकी अपेक्षा

ष-वं/१/१.१/म्,१४४/३६६ सम्माइट्ठी खहयसम्माइट्ठी असंजदसम्मा इट्ठि-प्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ।१४४। = सामान्यसे सम्यग्डिष्ठ और विशेषसे क्षायिक सम्यग्डिष्ठ जीव असंयत्त सम्यग्डिट गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक होते हैं।१४४।

गो.क./जो.प्र./५५०/७४४/११ प्रस्थापकोऽग्रमसंयतादिचतुर्वेन्यतमो मनुष्य एव । - प्रस्थापक तो असंयतसे अप्रमत्त पर्यन्तके चार गुण-

स्थानवर्ती मनुष्य ही होते हैं।

- गो,जी.प्री.प्र./७०४/११४१/१२ क्षायिकसम्यव्स्वं तु असंग्रतादि चतुर्गुण-स्थानमनुष्याणां असंयतदेशसंयतोपचारमहाव्रतमानुषीणां च कर्म-भूमिवेदकसम्यग्दष्टीनामेव...सप्तप्रकृतिनिरवशेषक्षये भवति। == क्षायिक सम्यव्देव तो असंयतादि अपमत्त पर्यन्तके चार गुणस्थान-वर्ती मनुष्योके, तथा असंयत, देशसंयत और उपचारसे महावती मनुष्योके, कर्मभूमिज वेदक सम्यग्दित्योंके ही सात-प्रकृतियौं-का निरवशेष क्षय हो जानेपर होता है।
- दे. तिर्भंच/२/४ [क्षाधिक सम्यन्द्रव्टि तिर्यंच संयतासंयत नहीं होते]

२. तीर्थंकर आदिके सद्भाव युक्त क्षेत्र व कालमें ही प्रतिष्ठापना सम्भव है

ष. खं. ६/१.६-८/सूत्र ११/२४३ दंसणमोहणीयं कम्मं खबेदुम ढबेंतो कम्हि आढवेदि, अड्ढाइज्जेसु दीवससुद्देसु पण्णारस म्मभूमिसु जिम्ह जिणा केवली तिरथयरा तिम्ह आहवेदि ।११। = दर्शनमोहनीय कर्मका क्षपण करनेके लिए आरम्भ करता हुआ यह जीव कहाँ पर आरम्भ करता है। अढ़ाई द्वीप समुद्रीमें स्थित पन्द्रह कर्मभूमियों में जहाँ जिस कालमें जिन केवली और तीर्थं कर होते हैं उस कालमें आरम्भ करता है।११।

धः६/१,६-८.,११/२४६/१ दुस्सम् (दुस्समदुस्सम्)-सुस्समासुस्समा-सुसमा-सुसमादुस्समःकालुप्पणमणुसाणं खनणणिनारणट्ठं 'जिम्ह जिला' ति नयणं। जिम्ह काले जिला संभवति तिम्ह चैन खनणाए पद्वनथो होदि, ण अण्लकालेसु ! . . जिम्ह केनलिणाणिणो अिथ ... तित्थयरणादम्ले...अथवा चोदसपुठवहरा...एदाणं तिण्हं पि पादम् ले दंसणमोहवखवणं मर्ठवें ति ति । च दुःषमा, (दुःषमा-दुःषमा), सुषमासुषमा, सुषमा, और सुषमादुःषमा कालमें उत्पन्न हुए मनुष्यों ने दर्शनमोहका क्षपण निषेध करने के लिए (उपरोक्त सूत्रमें) जहाँ जिन होते हैं यह वचन कहा गया है। जिस कालमें जिन सम्भव हैं उस ही कालमें दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापक होता है, अन्य कालमें नहीं। अर्थात् जिस कालमें केवलज्ञान होते हैं, या तीर्थंकरके पादमूलमें, अथवा चतुर्दश पूर्वधर होते हैं, इन तीनों के पादमूलमें कर्मभूमिज मनुष्यदर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भक होता है।

ला.सा./मू /११०/१४६ तिरथयरपायमूले केवलिसूदकेवलीमूले ।११०। -तीर्थं करके पादमूलमें अथवा केवली या शुतकेवलीके पादमूलमें ही (कर्मभूमिज मनुष्य दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापक होता है।)

गो.जी./जी,प्र./७०४/११४१/२३ केव लिश्रुतकेव लिद्द मधीपादीपान्ते सप्तप्रकृतिनिरवशेषक्षये भवति। = केवली और श्रुतकेवली इन दोनों में-से किसीके श्रीपादम् लके निकट सात प्रकृतियोंका निरवशेषक्षय होनेपर होता है।

४. वेदक सम्यक्त्य पूर्वक ही होता है

रा.वा./२/१/=/१००/३१ सम्यादर्शनस्य हि आदिरौपशमिको भावस्ततः क्षायोपशमिकस्ततः क्षायिक इति । सम्यादर्शनमें निश्चयसे पहले औपशमिक भाव होता है, फिर क्षायोपशमिक होता है और तत्पश्चात् क्षायिक होता है।

गो.जी./जी.प्र./७०४/११४१/२३ वेदकसम्यग्दण्टीनामेव...। =वेदक सम्यग्दिष्टियोंको ही होता है।

५. क्षायिक सम्यग्दष्टि संग्रतासंयत होते हैं पर अल्प

ष.खं.४/१,८/सूत्र १८/२५६ संजदासंजदर्ठाणे सञ्वरथोवा खइयसम्मा-दिट्ठी ।१८।

धः १/१. द.१८/२६६/६ कुदो । अणुक्वयसहिदसङ्यसम्मादिट्ठीणमहदुक्त-भत्तादो । ण च तिरिक्लेमु खङ्यसम्मर्सण सह संजमासंजमो लन्भिदः, तत्थ दंसणमोहणीयस्वणाभावा । —संयत्तासंयत गुणस्थानमें क्षायिक सम्यन्दिक्ट जीव सबसे कम हैं ।१८ वयों कि १. अणुक्रत सहित क्षायिक सम्यन्दिक्टयों का होना अत्यन्त दुर्लभ है । तथा २. तिर्यञ्चों में क्षायिक सम्यक्त्वके साथ संयमासंयम पाया नहीं जाता, क्यों कि, तिर्यचों में दर्शनमोहकी क्षपणाका अभाव है । (विशेष दे तिर्यच/२)।

म,पु./२४/१६३-१६४ ततः सम्यवस्वशुद्धि च वतशुद्धि च पुण्कलाम्।
निष्कलाद्भरतो भेजे परमानन्दमुद्धह्न् ।१६३। स लेभे गुरुमाराध्य
सम्यव्दर्शननायकाम्। वतशीलावली मुक्तः कण्ठिकामिव निर्मलाम्
।१६४। = परम आनन्दको धारण करते हुए भरतने शरीरानुरागसे
रिहत भगवान् वृषभदेवसे सम्यव्दर्शनकी शुद्धि और अणुवतोंकी
परम विशुद्धिको प्राप्त किया।१६३। भरतने गुरुदेवकी आराधना करके,
जिसमें सम्यव्दर्शनरूपी प्रधान मणि लगा हुआ है और जो मुक्तिस्पी
लक्ष्मीके निर्मल कण्डहारके समान जान पड़ती थी ऐसी वत और
शिलोंकी (१ अणुवत और सात शीलवत, इस प्रकार शावकके १२
वर्तीको) निर्मल माला धारण की ।१६६।

सम्यग्दर्शन क्रिया-दे, क्रिया/३।

सम्यादृष्टि — सम्यादर्शन युक्त जीवको सम्यादिष्ट कहते हैं जो चारों गतियोंमें होने सम्भव हैं। इष्टिकी विचित्रताके कारण इनका विचारण व चिन्तवन सांसारिक लोगोंसे कुछ विभिन्न प्रवारका होता है, जिसे साधारण जन नहीं समम् सकते। सांसारिक लोग नाह्य जगत्की ओर दौड़ते हैं और वह अन्तरंग जगत्की और।
माह्यपदार्थों के संयोग आदिको भी कुछ निष्त्र ही प्रकारसे प्रहण
करता है। इसी कारण नाहरमें रागी व भोगी रहता हुआ भी नह
अन्तरंगमें विरागी व योगी वना रहता है। यद्यपि कषायोजेक वस
कषाय आदि भी करता है पर विवेक ज्योति खुनो रहनेके कारण
निरय उनके प्रति निन्दन गईण वर्तता है। इसीसे उसके कषाय युक्त
भाव भी ज्ञानमयी व निरासव कहे जाते हैं।

सम्यग्द्रष्टि सामान्य निर्देश ч ₹ सम्यग्दृष्टिका लक्षण । अन्य अनेकों रूक्षण वैराग्य, गुण, निःशंकितादि —दे, सम्यग्हब्टि/४/४। अंग आदिका निर्देश भय व संशय आदिके अभाव सम्बन्धी -दे निःशंकित। आकांक्षा व रागके अभाव सम्बन्धी — हे. राग/ई। * **—वे.** मुख/२/७ । सम्यन्दृष्टिका सुख --- वे. श्रद्धान/३। अन्धश्रद्धानका विधि निषेध एक पारिणामिक भावका आश्रय -दे. मोक्षमार्ग/२/४। सम्यन्द्रव्टि दो तीन ही होते हैं -दे संख्या/२/७ । * सम्यग्दृष्टिको शानी कहनेकी विवक्षा -दे. जानी। सिद्धान्त या आगमको भी क्यंचित् सम्यग्दृष्टिव्यपदेश ₹ सम्यग्दृष्टिकी महिमाका निर्देश ₹ सम्यग्दृष्टि एकदेशजिन कहलाते हैं —दे जिन/३। उसके सब भाव शानमयी हैं। ۶ वह रागी भी विरागी है —दे, राग/६/३,४। वह सदा निरास्त्रव व अवन्ध है। ₹ कर्म करता हुआ भी वह बँधता नहीं। ş विषय सेवता हुआ भी वह असेवक हैं -दे. राग/६। उसके सब कार्य निर्जराके निमित्त हैं। ¥ अनुपयुक्त दशामें भी उसे निजैरा होती है। 4 उसकी कर्म चेतना भी ज्ञान चेतना है। Ę कर्म करता हुआ भी वह अकर्ता है -दे, चेतना/३। * उसके कुध्यान भी कुगतिके कारण नहीं। 4 वह वर्तमानमें ही मुक्त है। Ċ सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टिके पुण्य व धर्ममें अन्तर - दे. मिध्याष्ट्रिट/४। * सम्यग्दृष्टिको ही सच्ची भिकत होती है —दे. भक्ति/१। सम्यन्दृष्टिका ही शान प्रमाण है - दे. प्रमाण/२/२,४। सम्यग्दृष्टिका आत्मानुभव व उसकी मत्यक्षता । * —दे. अनुभव/४.४ । उसका कुशास्त्र शान भी सम्यक् है —दे. हान/III/२/१० । मरकर उच्चकुल आदिकमें ही जन्मता है ---दे. जन्म/३ (

उसकी भवधारणाकी सीमा -दे. सम्यव्हर्गन/1/४। उपरोक्त महिमा सम्बन्धी समन्वय ş भावोंमें ज्ञानमयीपने सम्बन्धी । ₹ शुद्धाशुद्धोपयोग दोनौ सुगपत् होते हैं। -दे. उपयोग/II/३ i राग व विराग सम्बन्धी -दे. राग/**६** । * सदा निरासन व अवन्ध होने सम्बन्धी ₹ सर्व कार्योंमें निर्जरा सम्बन्धी । ş शान चेतना सम्बन्धी । ሄ --वे, चेतना/३ । कर्तापने व अकर्तापने सम्बन्धी अञ्चम ध्यानी सम्बन्धी । ٧ सम्यग्दधिकी विशेषताएँ 8 सम्यग्दृष्टि ही सम्यक्त व मिथ्यात्वके मेदको Ł यथार्थं जानता है सम्यग्दृष्टि स्व व पर दोनोंके सम्यक्तको जानता है —दे. सम्यग्दर्शन/I/३ i सम्यग्दृष्टिको पक्षपात नहीं होता है। ₹ वह नयको जानता है पर उसका पक्ष नहीं करता —दे. नय/1/३/४। सम्यग्दृष्टि वाद नहीं करता ---दे• बादा जहाँ जगत् जागता है वहाँ झानी सोता है। ş वह पुष्यको हेय जानता है पर विषय वंचनार्थ -दे, पुण्य/३,४ । उसका सेवन करता है। सम्यग्दृष्टि व मिध्यादृष्टिकी क्रियाओं व कमें -दे. मिथ्यादृष्टि/४। क्षपणामें अन्तर अविरत सम्यग्दृष्टि ų अविरत सम्यग्द्रष्टिका सामान्य लक्षण १ उसके परिणाम अधः प्रवृत्तिकरणरूप होते हैं -दे करण/४। वह सर्वथा अवती नहीं। Ę उस गुणस्थानमें सम्भव भाव - दे. भाव/२/१। वेदक सम्यग्दृष्टिके क्षायीपशमिक मात्र सम्बन्धी - है, क्षयोपशम/२। अपने दोषोंके मित निन्दन गईण करना उसका स्याभाविक व्रत है। अविरत सम्यग्द्रष्टिके अन्य बाह्य चिह्न । 8 इस गुणस्थानमें मार्गणा जीवसमास आहि रूप —वे. **सप्त** २० मरूपणाप् इस गुणस्थानमें सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव व अल्पबहुत्व रूप आठ प्ररूपणाएँ -- दे. वह बह नाम ।

सभी गुणस्थानोंमें आयंके अनुसार व्यय होनेका नियम —दे. मार्गणा । * इस गुणस्थानमें कर्मीका बन्ध उदय सस्त्र - दे. वह वह नाम। अविरत सम्यग्दृष्टि व दर्शन प्रतिमामें अन्तर --दे. दर्शन प्रतिमा। अविरत सम्यग्दृष्टि और पाक्षिक श्रावकर्में कथंचित् -- दे. शावक/३। समानता पुनः पुनः यह गुणस्थान प्राप्तिकी सीमा — दे, सम्यग्दर्शन/1/१/७। असंयत सम्यग्दृष्टि वन्छ नहीं --दे, विनय/४। * अविरत भी वह भोक्षमागी है — दे. सम्यग्दर्शन/I/४।

१. सम्यग्दृष्टि सामान्य निर्देश

१. सम्यग्दृष्टिका लक्षण

मो. पा./मू./१४ सह वरओ सवणो सम्माइडी हवेइ सो साहू। सम्मत्त-परिणदो उण स्ववेइ दुद्ठट्ठकम्माइं।१४। = जो साधु अपनी आत्मामें रत हैं अर्थात् रुचि सहित हैं वे सम्यग्दिष्ट हैं। सम्यव्स्व भावसे युक्त होते हुए वे दुष्ट अष्ट कर्मीका क्षय करते हैं। (भा. वर./मू./३१)

प. म्, /म्, /१/७६ अप्पि अप्य मुणंतु जिल सम्मादिष्टि हवेह । सम्माहित्ठल जीवडल लहु कम्महं मुच्चेह ।७६। — अपनेको अपनेसे जानता हुआ यह जीव सम्यग्दिष्ट होता है और सम्यग्दिष्ट होता हुआ की मिसी क्रमोंसे छूट जाता है।

दे. सम्यादर्शन/II/९/१/६ [सुन्न प्रगीत जीव अजीव आदि पदार्थीको हेय व उपादेय बुद्धिसे जो जानता है वह सम्यग्दछि है।]

हे. नियति/१/२ [जो जब जहाँ जैसे होना होता है वह तब तहाँ तैसे ही होता है, इस प्रकार जी मानता है वह सम्यग्द्र है है।

हे, सम्यादष्टि/१ (वैराग्य भक्ति आत्मिनिन्दन युक्त होता)

२. सिद्धान्त या आगमको भी कथंचित् सम्बग्दष्टि व्यपदेश

ध, १३/५,४,५०/११ सम्यग्टरयन्ते परिच्छिद्यस्ते जीवादयः पदार्थाः अनया इति सम्यग्टिष्टः श्रुतिः सम्यग्टरयन्ते अनया जीवादयः पदार्थाः इति सम्यग्टिष्टः सम्यग्टष्टश्यितनाभाववद्या सम्यग्टिष्टः। म्हसके द्वारा जीवादि पदार्थ सम्यक् प्रकारसे देखे जाते हैं अर्थात जाने जाते हैं, इसलिए इस (सिद्धान्त) का नाम सम्यग्टिष्ट या श्रुति है। इसके द्वारा जीवादिक पदार्थ सम्यक् प्रकारसे देखे जाते हैं अर्थात अद्धान किये जाते हैं इसलिए इसका नाम सम्यग्टिष्ट है। अर्थात अद्धान किये जाते हैं इसलिए इसका नाम सम्यग्टिष्ट है। अर्थात सम्यग्टिष्ट से साथ श्रुतिका अविनाभाव होनेसे उसका नाम सम्यग्टिष्ट है

२ सम्यग्दृष्टिकी महिमाका निर्देश

१. उसके सब भाव ज्ञानमयी हैं

स, सा./मू./१२८ णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायए भावो । जम्हा तम्हा णाणिस्स सब्वे भावा हु णाणमया । च्यों कि ज्ञानमय भावों में-से ज्ञानमय ही भाव उत्पन्न होते हैं, इसलिए ज्ञानियों के समस्त भाव वास्तवमें ज्ञानमय ही होते हैं।१२८। (स. सा./आ./१२८/क. १७);

पं. ध./उ./२३१ यस्माज्ज्ञानमया भावा ज्ञानिनां ज्ञानिनवृताः । अज्ञा-नमयभावानां नावकाशः सुदृष्टिषु ।२३१। च्न्योकि ज्ञानियोके सर्व-भाव ज्ञानमयी होते हैं, इसलिए सम्यग्दृष्टियोमें अज्ञानमयी भाव अवकाश नहीं पाते ।

२. वह सदा निरास्त्रव व अवन्ध है

स. सा. सू./१०७ चउनिह अणेयभेहं बंधंते णाणदं सणगुणेहिं। समए समए जम्हा तेण अबंधोत्ति णाणी दु। स्कारेक चार प्रकारके द्रव्यास्त्रव झानदर्शन गुणोंके द्वारा समय-समयपर अनेक प्रकारका कर्म बाँधते हैं, इसलिए झानी तो अवन्ध है। (विशेष दे, सम्यरहष्टि/३/२)

३. कर्म करता हुआ भी यह बँधता नहीं

स. सा./मू./१६६, २१८ जह मज्जं पिवमाणों आरिदभावेण मज्जिदि ण पुरिसों। दव्युवभोंगे अरदो णाणी वि ण बज्फिदि तहेव।१६६। णाणी रागण्पजहों सव्वद्ववेष्ठं कम्ममज्फागदो। णे लिप्पदि रजण्ण दु कद्दममज्फे जहां कण्यं ।२१८। -१. जैसे कोई पुरुष मदिराको अरित भावसे पीता हुआ मतवाला नहीं होता, इसी प्रकार ज्ञानी भी द्रव्यके उपभोगके प्रति अरत वर्तता हुआ बन्धको प्राप्त नहीं होता ।१६६। २. ज्ञानी जो कि सर्व द्रव्योंके प्रति रागको छोड़नेवाला है, वह कर्मोंके मध्यमें रहा हुआ हो तो भी कर्म रूपी रजसे लिप्त नहीं होता—जैसे सोना की चड़के बीच पड़ा हुआ हो तो भी जिप्त नहीं होता।१९८।

भा पा./मू./१५४ जह सिलिवेण ण लिप्पइ कमिलिणिपत्तं सहावपयडीए। तह भावेण ण लिप्पइ कसायविसएहिं सप्पुरिसो ।१५४। = जिस प्रकार जलमें रहता हुआ भी कमिलिनीपत्र अपने स्वभावसे ही जलसे लिप्त महीं होता है, उसी प्रकार सम्यग्डिष्ट पुरुष कोधादि कषाय और इन्द्रियोंके विषयोंमें संजग्न भी अपने भावोंसे उनके साथ लिप्त नहीं होता।

यो. सा /अ./४/१६ ज्ञानी विषयसंगेऽपि विषयैनैंव लिप्यते। कनकं मलमध्येऽपि न मलैरुपलिप्यते।१६। =िजस प्रकार स्वर्ण कीचड़के कीच रहता हुआ भी कीचड़के लिप्त नहीं होता उसी प्रकार ज्ञानी विषय भोग करता हुआ भी विषयों में लिप्त नहीं होता।१६।

भा. पा./टी./१५२/२१६ पर उद्दश्त — धात्री बाला Sसली नाथपितनी दल-बारिवत । दाधर उजुवदाभासं भुञ्जस राज्यं म पापभाक्।६। — जिस प्रकार पतिवता नहीं है ऐसी युवती धाय अपने पतिके साथ दिखावटी सम्बन्ध रखती है, जिस प्रकार कमलका पत्ता पानी के साथ दिखावटी सम्बन्ध रखती है, और जिस प्रकार जली हुई रज्जू मात्र देखनेमें ही रज्जू है, उसी प्रकार ज्ञानी राज्यको भोगता हुआ भी पापका भागी नहीं होता।

द. पा./टी./७/७/ सम्यग्ट व्हेलरनमपि पापं बन्धं न याति कौरघटिस्थतं रज इव न बन्धं याति । किस प्रकार कोरे घड़ेपर पड़ी हुई रज उसके साथ बन्धको प्राप्त नहीं होती. उसी प्रकार पापके साथ लग्न भी सम्यग्टिष्ट बन्धको प्राप्त नहीं होता।

४. उसके सर्व कार्य निर्जराके निमित्त हैं

स. सा./मू./१६३ जनभोगिमिवियेहि दश्याणमचेदणाणिमिदराणं। जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं सक्यं णिजजरणिमित्तं।११३। = सम्मग्रदृष्टि जीव जो इन्द्रियोंके द्वारा अचेतन तथा चेतन द्रव्योंका उपभोग करता है वह सर्व उसके लिए निर्जराका निमित्त है।

ज्ञा./३२/३६ अलौ किक महो वृत्तं ज्ञानिनः केन वर्धते । अज्ञानी बध्यते यत्र ज्ञानी तत्रैव मुच्यते ।३६। = अहो, देखो ज्ञानी पुरुषोंके इस अलौकिक चारित्रका कौन वर्णन कर सकता है। जहाँ अज्ञानी बन्धको प्राप्त होता है, उसी आचरणसे ज्ञानी कमोंसे छूट जाता है। ३८। (यो, सा./अ./६/१८)

पं. घ./उ./२३० आस्तां न बन्धहेतुः स्याज्ज्ञानिनां कर्मजा क्रिया। चित्रं यत्पूर्वबद्धानां निर्जराये च कर्मणास् ।२३०। = ज्ञानियोंकी कर्मसे उरपन्न होनेवाली क्रिया बन्धका कारण नहीं होती है, यह बात तो दूर रही, परन्तु आश्चर्य तो यह है कि उनकी जो भी क्रिया है वह सब पूर्वबद्ध कर्मोंको निर्जराके लिए ही कारण होती है। २३०।

५. अनुपयुक्त दशामें भी उसे निर्जरा होती है

पं. ध्./उ./८०८ आरमन्येबोपयोग्यस्तु ज्ञानं वा स्याद परारमितः। सरप्तु सम्यवस्वभावेषु सन्ति ते निर्जरादयः। = ज्ञान चाहे आरमामे उपयुक्त हो अथवा कदाचित् परपदार्थोंमें उपयुक्त हो परन्तु सम्यवस्व भावके होनेपर वे निर्जरादिक अवश्य होते हैं।८०८।

६. उसकी कर्म चेतना भी ज्ञान चेतना है

पं. ध./छ./२७६ अस्ति तस्यापि सइदध्देः कस्यचित्कर्मचेतना। अपि कर्मफले सा स्यादर्थतो ज्ञानचेतना।२७६। स्यद्यपि जघन्य भूमिकामें किसी-किसी सम्यग्दृष्टिके कर्मचेतना और कर्मफलचेतना भी होती है, पर वास्तवमें वह ज्ञानचेतना ही है।

७. उसके कुध्यान भी कुगतिके कारण नहीं

द्र, सं/टी./४८/२०१/३ चतुर्विधमार्त्तध्यानम् । यद्यपि मिध्यादृष्टीनां तियंगतिकारणं भवति तथापि बद्धायुष्कं विहाय सम्यद्दृष्टीनां न-भवति । रौद्रध्यानं राज्य मिथ्यादृष्टीनां नरकगतिकारणमपि बद्धायुष्कं विहाय सम्यद्दृष्टीनां तरकारणं न भवति । चार प्रकार-का आर्तध्यान यद्यपि मिथ्यादृष्टि जोवोंको तियंचगतिका कारण होता है तथापि बद्धायुष्कको छोड़कर अन्य सम्यदृष्टियोंको वह तियंच-गतिका कारण नहीं होता है। (इसी प्रकार) रौद्रध्यान भी मिथ्या-दृष्टियोंको नरकगतिका कारण होता है, परन्तु बद्धायुष्कको छोड़कर अन्य सम्यदृष्ट्योंको वह नरकका कारण नहीं होता है।

८. वह वर्तमानमें ही मुक्त है

स.सा./आ./३१८/क. १६८ हानी करोति न न वेदयते च कर्म, जानाति केवलमयं किल तत्स्वभावम् । जानन्परं करणवेदनयोरभावा- च्छुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव।१६८। = हानी कर्मको न तो करता है और न भोगता है, वह कर्मके स्वभावको मात्र जानता ही है। इसप्रकार मात्र जानता हुआ करने और भोगनेके अभावके कारण, शृद्ध स्वभावमें निश्चल ऐसा वह वास्तवमें मुक्त है।

ज्ञा /६/१७ मन्ये मुक्तः स पुण्यात्मा विशुद्धं यस्य दर्शनम् । यतस्तदेव मुक्तयङ्गमित्रमं परिकीतितम् । १७। = जिसको विशुद्धं सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ है वह पुण्यात्मा मुक्त है ऐसा मैं मानता हूँ । क्योंकि,

सम्यादर्शन हो मोक्षका मुख्य अंग कहा गया है।

नि. सा./ता. व./६१/क. ८१ इत्यं बुद्ध्या परमसमिति मुक्तिकान्तासखीं यो, मुक्त्या सङ्घ' भवभयकरं हेमरामात्मकं च। स्थित्वाऽपूर्वे सहज-विलसचित्रमत्कारमात्रे, भेदाभावे समयति च यः सर्वदा मुक्त एव।८१। = इस प्रकार मुक्तिकान्ताकी सखी परम समितिको जानकर जो जीव भवभयके करनेवाले कंचनकामिनीके संगको छोड़कर, अपूर्व सहज विलसते अभेद चैतन्य चमत्कार मात्र स्थित रहकर सम्यक् 'इति' करते हैं अथित सम्यक् रूपसे परिणमित होते हैं वे सर्वदा मुक्त ही हैं। पं. घ./उ./२३२ वैराग्यं परमोपिक्षाझानं स्वानुभवः स्वयम् । तइद्वयं झानिनो लक्ष्म जीवन्मुक्तः स एव च ।२३२। चपरमोपिक्षारूप वैराग्य और आरमप्रत्यक्ष रूप स्वसंवेद झान ही झानीके लक्षण हैं। जिसके ये दोनों होते हैं, वह झानी जीवन्मुक्त है।

३. उपरोक्त महिमा सम्बन्धी समन्वय

१. भावोंमें ज्ञानमयीपने सम्बन्धी

स. सा./पं. जयचन्द/१२८ ज्ञानीके सर्वभाव ज्ञान जातिका उल्लंघन न करनेसे ज्ञानमयी हैं।

२. सदा निराम्रव व अवन्ध होने सम्बन्धी

स. सा./मू./१००-१७० रागो दोसो मोहो य आसवा णिरथ सम्मदि-ट्ठस्स । तम्हा आसवभावेण निणा हेंदू ण पच्चया होति । १००१ हेंदू चतुन्वियप्पो अट्ठिन्यप्पस्स कारणं भणिदं । तेसि पि य रागादी तेसिमभावे ण नजमति । १००१ - राग, होष और मोह ये आसव सम्यप्दृष्टिके नहीं होते, इसलिए आस्त्रभावके निना ह्रव्यप्रत्यय कर्म-नन्धके कारण नहीं होते । १००१ मिध्यास्त्र अविरत्ति प्रमाद और कषाय ये चार प्रकारके हेतु, आठ प्रकारके कर्मों के कारण कहे गये हैं. और उनके भी कारण रागादि भाव हैं। इसलिए उनके अभावमें ज्ञानीको कर्म नहीं नेंधते । १००८।

इ. ज./४४ अगच्छंस्ति द्विशेषाणामनिभिज्ञश्च जायते । अज्ञातति द्विशेषस्तु बद्ध्यते न विमुच्यते ।४४। मस्वारमतत्त्वमें निष्ठ योगीकी जब पर पदार्थोंसे निवृत्ति होती है, तब उनके अच्छे बुरे आदि विकल्पोंका उसे अनुभव नहीं होता। तब वह योगी कमोंसे भी नहीं वँधता, किन्तु

कर्मों से छुटता ही है।

स.सा./आ./१००-१०१ ज्ञानी हि ताबदास्तव-भावभावनाभित्रायाभावाजिन् रासव एव । यत्तु तस्यापि द्रव्यप्रत्ययाः प्रतिसमयमनेकप्रकारं पुद्दश्ल-कर्म भध्निति तत्र ज्ञानगुणपरिणाम एव हेतुः ।१००१---तस्यान्तमृहूर्त-विपरिणामित्वात पुनः पुनरन्यतमोऽस्ति परिणामः । स तु यधारत्यात-चारित्रावस्थाया अधस्तादवश्यंभाविरागसद्भावात वन्धहेतुरेव स्यात् ।१७१। -- ज्ञानी तो आस्त्रवभावकी भावनाके अभित्रायके अभावके कारण निरासव ही है परन्तु जो उसे भी द्रव्यप्रत्यय प्रति समय अनेक प्रकारका पुद्रगत्तकर्म बाँधते हैं, वहाँ क्षायोपशामिक ज्ञानका परिणमन ही कारण है।१००। क्योंकि वह अन्तर्मुहूर्त-परिणामी है। इसलिए यथारुयात चारित्रअवस्थासे पहले उसे अवश्य ही रागभावका सद्भाव होनेसे, वह ज्ञान मन्धका कारण ही है।

स. सा /आ. /१७२/क/११६ संन्यसिक जुद्धिपूर्वमितशं रागं समग्रं स्वयं, बारं वार मबुद्धिपूर्वमिति ते जेतुं स्वशक्ति स्पृशत्। उच्छिन्दन्परवृ-त्तिमेव सकलो ज्ञानस्य पूर्णोभवन्नातमा नित्यतिराखवो भवति हि ज्ञानी यदा स्यात्तदा ।११६। ≕आत्मा जव ज्ञानी होता है, तब स्वयं अपने समस्त बुद्धिपूर्वक रागको निरन्तर छोड़ता हुआ अर्थात् न करता हुआ, और जो अबुद्धिपूर्वक राग है उसे भी जीतनेके लिए घारम्बार (ज्ञानानुभव रूप) स्वशक्तिको स्पर्श करता हुआ, और (इस प्रकार) समस्त प्रवृत्तिको —परपरिणतिको उखाड़ता हुआ, ज्ञानके पूर्ण भावरूप होता हुआ, वास्तवमें सदा निरासव है।

स. सा./आ.१७३-१७६ ज्ञानिनो यदि द्रव्यप्रत्ययाः पूर्वमद्धाः सन्ति, सन्तु: तथापि स तु निरास्त्रव एव, कर्मोदयकार्यस्य रागद्वेषमोहस्त्य-स्यास्त्रवभावस्याभावे द्रव्यप्रत्ययानाममन्धहेतुरवात । च्जानीके यदि पूर्वमद्ध द्रव्यप्रत्यय विद्यमान हैं; तो भन्ने रहें; तथापि वह तो निरास्त्रव हो हैं; क्योंकि, कर्मोदयका कार्य जो रागद्वेषमोहस्त्य आस्त्रवभाव हैं उसके अभावमें द्रव्य प्रत्यय वन्धका कारण नहीं है।

स. सा./ता. वृ./१७२/२३६/६ यथारुपातचारित्राधस्तादन्तर्मुहूर्तानन्तरं निर्विकल्पसमाधौ स्थातुं न शकात इति भणितं पूर्वे । एवं सति कथं

झानी निरासन इति चेत्. झानी तावदीहापूर्वरागादिविकरपकरणा-भावानिरास्त्र एव । किं तु सोऽपि यावरकालं परमस्माधेरनुष्ठाना-भावे सति शुद्धारमस्वरूपं द्रब्दुं ज्ञातुमनुचरितुं वासमर्थः तावरकालं तस्यापि संबंध्यि यहरीनं ज्ञानं चारित्रं तज्जवन्यभावेन सक्षायभावेन अनो हित्रवृत्त्या परिणमति, तेन कारणेन स तु भेदज्ञानी ... विविध-पुण्यकर्मणा बध्यते । = प्रश्न -- यथारुयात चारित्रसे पहले अन्तमुं हुर्तके अनन्तर निविकलप समाधिमें स्थित रहना शक्य नहीं है, ऐसा पहले कहा गया है। ऐसा होनेपर ज्ञानी निराह्मव कैसे हो सकता है। उत्तर-१, ज्ञानी क्यों कि ईहा पूर्वक अर्थात् अभिप्रायपूर्वक रागादि विकल्प नहीं करता है, इसलिए वह निरासव ही है। (अन, धनी ४/७३३) २. किल्लु जबतक परमसमाधिके अनुष्ठानके अभावमें वह भी शुद्धात्मस्वरूपको देखने-जानने व आचरण करनेमें असमर्थ रहता है, तब तक उसके भी तत्सम्बन्धी जो दर्शन ज्ञान चारित्र हैं वे जबन्यभावसे अर्थात् कषायभावसे अनी हित्वृत्तिसे स्वयं परिणमते हैं। उसके कारण वह भेदज्ञानी भी विविध प्रकारके पुण्यकमेरी बॅघला है। दे.उपयोग/11/३{जितने अंशमें उसे राग है उतने अंशमें आसव व मन्ध है और जितने अंशमें रागका अभाव है, उतने अंशमें निरास्तव व अवन्ध है।]

३. सर्व कार्योंमें निर्जरा सम्बन्धी

- स. सा./मू./१९४ दक्वे उवभुं जेते णियमा जायदि सुहं च दुवलं वा। तं सुहदुवल मुदिण्णं वेददि अह णिष्करं जादि ।१६४। = वस्तु भोगनेमें आनेपर सुख अथवा दुःख नियमसे उत्पन्न होता है। उदयको प्राप्त उस सुखदुःखका अनुभव करता है तत्परचाद वह (सुख-दुखरूपभाव) निर्जराको प्राप्त होता है। (इस प्रकार भाव निर्जराको अपेक्षा समाधान है)।१६४।
- स. सा./आ./१६६-१६६ रागादिभावानां सद्भावेन मिथ्याद्रष्टेरचेतनान्य-द्रव्योपभोगो बन्धनिमित्तमेव स्यात्। स एव रागादिभावानामभावेन सन्याद्वरेनिर्जरानिमित्तमेव स्यात । एतेन द्रव्यनिर्जरास्वस्त्यमा-वेदयति ।१६३। अथ भावनिर्जरास्बरूपमावेदयति । स तु यदा वेचते तदा मिध्यादृष्टेः रागाविभावानां सङ्गावेन बन्धनिमित्तं भूत्वा निर्जीर्यमाणोपजीर्णः सन् बन्ध एव स्थात् । सम्यग्दण्टेस्तु रागादि-भावानामभावेन बन्धनिमित्तमभूत्वा केवलमेव निर्जीयमाणी निर्जीणीः सन्निजरैव स्यात । १६४। चरागादि भावोंके सद्भावसे निध्यादृष्टिके जो अचेतन तथा चेतन द्रव्योंका उपभोग बन्धका निमित्त होता है; वही रागादिभावोंके अभावके कारण सम्यग्दृष्टिके लिए निर्जराका निमित्त होता है। इस प्रकार द्रव्य निर्जराका स्वरूप कहा ।१६३। अन भाव निर्जराका स्वरूप कहते हैं - जब उस (कर्मीदयजन्य मुखरूप अथवा दु:लक्ष्प) भावका वेदन होता है तब मिध्याद ष्टिको, रागा-दिभावोंके सञ्जावसे (नवीन) बन्धका निमित्त होकर निर्जराको प्राप्त होता हुआ भी, निर्जरित न होता हुआ बन्ध ही होता है: किन्तु सम्यग्द्रष्टिके रागादिभावोंके अभावसे बन्धका निमित्त हुए बिना केवल मात्र निर्जरित होनेसे, निर्जरित होता हुआ, निर्जरा ही होती है ।१६४।
- स. सा./ता. वृ./१६२/२६७/१४ अत्राह शिष्यः—रागद्वेषमोहाभावे सित निर्जराकारणं भणितं सम्यग्दण्टेस्तु रागादयः सन्ति, ततः कथं निर्जराकारणं भवतीति । अस्मिन्दूर्वपक्षे परिहारः—अत्र अन्थे वस्तुवृत्त्या वीतरागसम्यग्दण्टेर्यहणं, यस्तु चतुर्थगुणस्थानवित्तसराग-सम्यग्दष्टयस्तस्य गौणवृत्त्या ग्रहणं, तत्र तु परिहारः पूर्वमेव भणितः। कथमिति चेत् । मिध्यादण्टेः सकाशादसंयतसम्यग्दण्टेः अनन्तानु-वृत्विकोधमानमायालोभिष्यात्योदयजिताः, आवकस्य च प्रता-रूपानकोधमानमायालोभोदयजिता रागादयो न सन्तीत्यादि । किंच सम्यग्दण्टेः संवरपृर्विका निर्जरा भवति, मिध्यादण्टेस्तु गज-स्नानवत् वन्धपृर्विका भवति । तेन कारणेन मिध्यादष्ट्यपेक्षया

सम्यग्द्रष्टिरमन्धक इति । एवं द्रव्यनिर्जराव्यास्त्यानरूपेण गाथा गता। = पएन - राग-द्वेष व मोहका अभाव होनेपर भोग आदि निर्जराके कारण कहे गये हैं, परन्तु सम्यग्दृष्टिके तो रागादि होते हैं, इसलिए उसे वे निर्जराके कारण कैसे हो सकते हैं ! उत्तर--१. इस बन्थमें वस्तु वृत्तिसे वीतराग सम्यग्दृष्टिका ग्रहण किया गया है, जो चौथे गुणस्थानवर्ती सरागसम्यग्दष्टि है उसका गौण वृत्तिसे ग्रहण किया गया है। २, सराग सम्यग्द्रष्टि सम्बन्धी समाधान पहले ही दे दिया गया है। वह ऐसे कि मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा असंयत सम्यग्दृष्टि-को अनन्तानुबन्धी चतुष्क और मिथ्यात्त्रोदयजन्य रागादिक तथा श्रावकको अप्रत्यारच्यान चतुष्क जनित रागादि नहीं होते हैं। ३. सम्यग्द्रष्टिकी निजरा संवरपूर्वक होती है और मिध्यादृष्टिकी गज-स्नानवत् बन्धपूर्वक होती है। इस कारण मिध्यादृष्टिकी अपेक्षा सम्यादष्टि अनम्धक है। इस प्रकार द्रव्यनिर्जराके व्याख्यानरूप गाथा कही। ४. [सम्यग्दृष्टि चारित्रमोहोदयके वद्यीभूत होकर अरुचि पूर्वक मुल-दुःख आदिक अनुभव करता है और निध्यादृष्टि उपादेय बुद्धिसे करता है। इसलिए सन्यग्दृष्टिको भोगोंका भोगना निजंराका निमित्त है। इस प्रकार भाव निर्जराकी अपेक्षा व्याख्यान जानना । (दे, रागः/६/६)]

४. ज्ञान चेतना-सम्बन्धी

पं. धः । उ. २७६ चेतनायाः फलं बन्धस्तश्फले वाऽथ कर्मणि । रागा-भावात्र सम्घोऽस्य तस्मात्सा ज्ञानचेतना । २७६। = कर्म व कर्मफलरूप चेतनाका फल कर्म बन्ध है, पर सम्यग्द्राष्ट्रको रागका अभाव होनेसे बन्ध नहीं होता है, इसलिए उसकी वह कर्म व कर्मफल चेतना ज्ञानचेतना है । २७६।

५, अशुभ ध्यानीं सम्बन्धी

इ. सं./टी./४८/२०१/६ कस्मादिति चेत्—स्वशुद्धारमैवोपावेय इति विशिष्टभावनावलेन तस्कारणभूतसंवलेशाभावादिति ।६। च्यइन—आर्तध्यान सम्यग्दृष्टिको भिथ्यादृष्टिकी भाँति तिर्यंच गतिका कारण क्यों नहीं होता। उत्तर—सम्यग्दृष्टि जीवोंके 'निज शुद्ध आत्मा ही उपादेय हैं' ऐसी भावनाके कारण तिर्यंचगतिका कारण रूप संवलेश नहीं होता। [यहो उत्तर रौद्रध्यानके लिए भी दिया गया है]

४. सम्यग्दृष्टिकी विशेषताएँ

१. सम्यन्दृष्टि ही सम्यक्त्व व मिथ्यात्वके भेदको यथार्थतः जानता है

स. सा./पं. जयचन्दः/२००/क. १३७ सम्यग्दृष्टिके मिध्यात्व सहित राग नहीं होता और जिसके मिध्यात्व सहित राग हो वह सम्यग्दृष्टि नहीं होता। ऐसे अन्तरको सम्यग्दृष्टि ही जानता है। पहले तो मिध्यादृष्टि-का आत्म शास्त्रमें प्रवेश हो नहीं है, और यदि वह प्रवेश करता है तो विपरीत सम्भता है—शुभभावको सर्वथा छोड़कर भ्रष्ट होता है अथवा अशुभभावों प्रवर्तता है, अथवा निश्चयको भली भाँति जाने विना व्यवहारसे हो (शुभभावसे हो) मोक्ष मानता है, परमार्थ तत्त्वमें मुढ़ रहता है। यदि कोई विरत्ता जीव स्याद्वाद न्यायसे सत्यार्थको समभते तो उसे अवश्य ही सम्यवत्वकी प्राप्ति होती है, वह अवश्य सम्यग्दृष्टि हो जाता है।

२. सम्यग्दष्टिको पक्षपात नहीं होता

ह्या, मं./मू. रतो, ३०/३३४ अन्योऽन्यपक्षप्रतिपक्षभावास यथा परे मरसरिणः प्रवादाः। नयानवेषानविशेषमिच्छत् न पक्षपाती समयस्तथा ते।३०। =आत्मवादी लोग परस्पर पक्ष और प्रतिपक्ष

Jain Education International

भाव रखनेके कारण एक दूसरेसे ईंड्या करते हैं, परन्तु सम्पूर्ण नयोंको एक समान देखने वाले (दे• अनेकान्त/२) आपके शास्त्रोंमें पक्षपात नहीं है।

३. जहाँ जगत् जागता है वहाँ ज्ञानी सीता है

मो. पा./मू./३१ जो मुत्तो ववहारे सो जोइ जग्गए सकडजिम। जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणो कडजे ।३१! - जो योगी व्यवहारमें सोता है वह अपने स्वरूपके कार्यमें जागता है। और व्यवहारमें जागता है, वह अपने कार्यमें सोता है। ११! (स. श./७८)

प, प्र./पू./२/४६ जा णिसि सयलहें देष्टियँ जोग्गिउ तहिं जग्गेइ। जहिं पुणु जग्गद्द सयलु जगु सा णिसि मणिति सुनेइ।४६। —जो सम संसारी जीवोंकी रात है, उसमें परम तपस्त्री जागता है, और जिसमें सब संसारी जीव जाग रहे हैं, उस दशाको योगी रात मानकर योग निद्रामें सोता है। (जा./१८/३७)

५. अविरत सम्यग्दृष्टि निर्देश

१. अविरति सम्यग्दष्टिका सामान्य लक्षण

पं. सं./प्रा./११ णो इंदिमेसु निरदो णो जीवे थावरे तसे चावि। जो सहहह जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो सो।११। च्लो पाँचों इन्द्रियोंके विषयोंसे विरत नहीं है और न त्रस तथा स्थावर जीवोंके घातसे ही विरक्त है, किन्तु केवल जिनोक्त तत्त्वका श्रद्धान करता है, वह चतुर्थ- गुणस्थानवर्ती अविरत सम्यग्डिंग्ट है।११। (घ. १/१.९,१२/गा. १११/१७३); (गो. जो./मू./२६/१०); (और भी दे. असंयम)

रा, वा./१/१/१८/६८/२६ औपशामिकेन क्षायोपशमिकेन क्षायिकेण वा सम्यवस्वेन समन्वितः चारित्रमोहोदयात अस्यन्तम्बिरतिपरिणाम-प्रवणोऽसंयतसम्यग्दिन्दिति व्यपिष्टश्यते ! = औपशमिक, क्षायो-पशमिक और क्षायिक इन तीनोंमेंसे किसी भी सम्यवस्वसे समन्वित तथा चारित्रमोहके उदयसे जिसके परिणाम अस्यन्त अबिरतिरूप रहते हैं, उसको 'असंयत सम्यादिन्द' ऐसा कहा जाता है।

ध. १/१,१,१२/१७१/१ समीचीनहिष्टः श्रद्धा यस्यासौ सम्प्राहिष्टः, असंयतश्वासौ सम्प्राहिष्टश्च, असंयतसम्प्राहिष्टः। सो वि सम्म्राम् इट्ठी तिविहो, खह्यसम्माइट्ठी वेदयसम्माइट्ठी उवसमसम्मा-इट्ठी चेदि। — जिसकी हिष्ट अर्थात् श्रद्धा समीचीन होती है, उसे सम्प्राहिष्ट कहते हैं, और संयम रहित [अर्थात् इन्द्रिय भोग व जीव हिंसासे विरक्त न होना (दे. असंयम)] सम्प्राहिष्टको असंयत् सम्प्राहिष्ट कहते हैं। वे सम्प्राहिष्ट जीव तीन प्रकारके हैं— क्षायिक सम्प्राहिष्ट, वेदकसम्प्राहिष्ठ और औपदामिक सम्प्राहिष्ट।

२. अवत सम्यग्दष्टि सर्वथा अवती नहीं

दे आवक/३/४ [यद्यपि वतरूपसे कुछ भी अंगीकार नहीं करता, पर कुलाचाररूपसे अष्टमूलगुण धारण, त्यूल अणुवत पालन,स्थूल रूपैण रात्रि भोजन व सप्तव्यसन त्याग अवस्य करता है। क्योंकि ये सब क्रियाएँ वत न कहलाकर केवल कुलकिया कहलाती हैं, इसलिए वह अवती या असंयत कहलाता है। ये क्रियाएँ वती व अवती दोनोंको होती हैं।वतीको नियम वत रूपसे और अवतीको कुलाचार रूपसे।

वे समयग्दर्शन/II/१/६ [तिश्रप समयक्तत्र युक्त होनेपर भी चारित्र मोहोदयकेश उसे आत्मध्यानमें स्थिरता नहीं है तथा वत व प्रतिज्ञाएँ भंग भी हो जाती हैं, इसलिए असंगत कहा जाता है।

मो. मा. प्र./१/४११/२२ कषायिनके असंख्यात लोकप्रमाण स्थान हैं।
तिनिविषे सर्वत्र पूर्वस्थानतें उत्तरस्थानविषे मन्दत्त पाइए है। ...
आदिके बहुत स्थान ती असंयम् रूप कहे, पीछे केतेक देश संयम् रूप कहे। ... तिनिविषे प्रथमगुणस्थानतें लगाय चसुर्थ गुणस्थान पर्यन्त जे कषायके स्थान हो हैं, ते सर्घ असंयम हो के हो हैं। ... परमार्थते कषायका घटना चारित्रका अंश है · · सर्वत्र असंयमकी समानता न

३. अपने दोषोंके प्रति निन्दन गर्हण करना उसका स्वामाविक वत है

का, अ./मू./४ विरतो अज्बिद पुण्णं सम्मादिही वएहि संजुत्तो। जवसमभावे सहिदो णिदण-गरहाहिसंजुत्तो। = सम्यग्दिष्टि, व्रतो. उपशम भावसे युक्त, तथा अपनी निन्दा और गर्हा करनेवाले विरते जन हो पुण्य कर्मका उपार्जन करते हैं।

द्व.सं./टी./१३/३३/६ निजपरमारमद्वयसुपायेयस्, इन्द्रियस्थादिपरद्वव्यं हि हेयिमत्यर्हत्सर्वज्ञप्रणीतिनिश्चयव्यवहारनयसाध्यस्।धकभावेन मन्यते परं किन्तु भूमिरेखादिसदशकोधादिद्वितीयक्षायोदयेन मारणनिमित्तं तलबरगृहीततस्करवदात्मिनिन्दासिहतः सिन्निन्द्रयम्स्यनुभवतीत्यविरतसम्यग्दर्ण्टेर्नक्षणम्। मन्तिज परमारम द्रव्य उपादेय है तथा इन्द्रिय सुख आदि परद्वय त्याद्य हैं, इसप्रकार सर्वज्ञ प्रणीत निश्चय, व्यवहारको साध्य साधक भावसे मानता है, परन्तु भूमिकी रेखाके समान कोध आदि अप्रत्याख्यानकषायके उदयसे, मारनेके खिए कोतवाखसे पकड़े हुए चोरकी भाँति आस्म-निन्दादि सहित होकर इन्द्रिय सुखका अनुभव करता है, वह अविरत्त सम्यग्दिष्ट चौथे गुणस्थानवर्ती है। (सा.ध./१/१३)

पं. धः/जि/४२७ टङ्मोहस्योदयाभावात् प्रसिद्धः प्रश्नमो गुणः । तत्राभि-व्यञ्जकं बाह्यात्रिन्दनं चापि गर्हणम् ।४७२। — दर्शनमोहनीयके उदयके अभावसे प्रश्नम गुण उत्पन्न होता है और प्रश्नमके बाह्यरूप अभिव्यंजक निन्दा तथा गर्हा ये दोनों होते हैं ।४७२।

का. अ./पं. जयचन्द/३११ इसके असि, मसि, कृषि, वाणिज्य आदि कार्यों में हिंसा होती है। तो भी मारनेका अभिमत नहीं है, कार्यका अभिमाय है। वहाँ घात होता है, उसके लिए अपनी निन्दा गर्ही करता है। इसके त्रस हिंसा न करनेके पक्ष मात्रसे पाक्षिक कहलाता है। यह अत्याख्यानावरण कषायके मन्द परिणाम हैं, इसलिए अवसी ही है।

४ अविरत सम्यग्दृष्टिके भन्य बाह्य चिह्न

का. अ./मू./३१६-३२४ जो प या कुन्नदि गठन पुत्तकतत्ताइसन्वअस्थेसु । उनसमभावे भावदि अप्पाणं मुणदि तिणमेत्तं ।३१३। उत्तमगुण-गहणरओ उत्तमसाहण विषयसंजुतो। साहम्मिय अणुराई सौ सहिट्ठो हवे परमो।३१६। एवं जो णिच्छयदो जाणदि दव्याणि सव्व∽ पज्जाए। सो सिहद्ठी सुद्धों जो संकृष्टि सो हु कुदिर्ठी ।३२३। जो ण विजाणदि सच्चं सी जिणवयणे करेदि सहहणं। अं जिणवरेहि भणियं तं सब्बमहं समिल्छामि । १२४। = वह सम्यग्हिष्ट पुत्र, स्त्री आदि समस्त पदार्थीमें गर्व नहीं करता, उपशमभावको भाता है और अपनेको तृणसमान मानता है ।३१३। जो उत्तम गुणोंको ग्रहण करनेमें सत्पर रहता है, उत्तम साधुओंकी विनय करता है, तथा साधर्मी जनोंसे अनुराग करता है, वह उत्कृष्ट सम्यग्दृष्टि है।३१५। इस प्रकार जो निश्चयसे सब द्रव्योंको और सब पर्यायोंको जानता है, बह सम्यग्दृष्टि है और जो उनके अस्तित्वमें शंका करता है, वह मिथ्या-दृष्टि है।३२३। जो तत्त्वींको नहीं जानता किन्तु जिनवचनमें श्रद्धान करता है [दे. सम्यरदर्शन/1/१/२.३] कि जिनवर भगवान्ने जो कुछ कहा है, वह सत्र मुभे पसन्द है। वह भी श्रद्धावान् है।३२४।

के. सम्यादशीन/11/१ (देव, गुरु, धर्म, तत्त्व व पदार्थी आदिकी अझा करता है, आत्मस्वभावकी रुचि रखता है।)

दे, सम्यग्दर्शन/I/२ (निःशंकितादि आठ आंगों को व प्रशम संवेग अनुकम्मा आस्तिका आदि गुणों को धारण करता है।)

वे. सम्यादिष्ट/२. [सम्यादिष्टको राग द्वेष व मोहका अभाव है।]

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

द्र, सं./टो./४६/१६४/१० शुद्धारमभावनोत्पन्ननिर्विकारवास्तवसुखामृत-मुपादेयं कृत्वा संसारशरीरभोगेषु योऽसौ हेयबुद्धिः सम्यग्दर्शनशुद्धः स चतुर्थगुणस्थानवर्ती वतरहितो दर्शनिको भण्यते। — शुद्धारम भावनासे उत्पन्न निर्विकार यथार्थ सुलक्षपी अमृतको उपादेय करके संसार शरीर और भोगोंमें जो हेय बुद्धि है वह सम्यग्दर्शनसे शुद्ध चतुर्थगुणस्थानवाला वतरहित दर्शनिक है। (दे, सम्यग्दर्शि-१-२); (और भी दे. राग/६)।

पं ध./उ./२६१,२७१ उपेक्षा सर्वभोगेषु सङ्ग्रह्में इरोगवत्। अवस्यं तदवस्यायास्तथाभावो निसर्गणः ।२६१। इस्मेवं ज्ञाततत्त्वोऽसी सम्यग्र्डिं निजारमहक्। वैषियके सुले ज्ञाने राग-द्वेषी परित्यजेत् ।३७१। — सम्यग्र्डिं को सर्वप्रकारके भोगोंमें प्रत्यक्ष रोगकी तरह अरुचि होती है, क्योंकि, उस सम्यवस्य अवस्थाका, विषयोंमें अवस्य अरुचिका होना स्वतःसिद्ध स्वभाव है ।२६१। इसप्रकार सत्त्वोंको जाननेवाला स्वान्मदर्शी यह सम्यग्र्डिं जीव इन्द्रियजन्य सुल और ज्ञानमें राग तथा द्वेषका परित्याग करे ।३७१।—वे राग/६।

सयोग केवली--दे, केवली/१।

सरःशोष कर्म-दे, सावध/रा

सरल समीकरण-Simple equation.

सरस्वतो पूजा-दे. पूजा

सरस्वती यन्त्र—हे. यन्त्र ।

सरह --- महायान सम्प्रदायके एक गूढ़वादी कीख विद्वाद । समय --१००० (प. प्र./प्र./१०३/A, N, Up,)

सर्हपा जो जो के ८४ सिद्धों में से एक थे। इन्होंने हिन्दी दोहाबद्ध प्रन्थों की रचना की है। समय -- ७६१- न्०१ (हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास। पृ. २४। कामता प्रसाद)।

सराग संयम - दे. चारित्र/१/१४।

सराग सम्यग्दर्शन-३. सम्यग्दर्शन/11/४।

सरित - अपर विदेहका एक क्षेत्र तथा सुलावह वक्षारका एक कूट। - दे. लोक/१/२।

सपिःस्नाबो — वे, ऋदि/८।

सर्वे - रा. वा./२/७/२/५३६/१६ सरति गच्छति अशेषानवयवानिति सर्व इत्युच्यते। = अशेष अवयवींको प्राप्त हो उसे सर्व कहते हैं।

ध, १/४.१.४/४० सर्वं विश्वं कृत्स्नम् ।११...सरति गच्छति आकुञ्चन-विसर्पणादीनीति पुद्रगलद्रव्यं सर्वं। — विश्व, कृत्स्न ये 'सर्व' शब्दके समानार्थक हैं। अरवा जो आकुंचन और विसर्पण आदिको प्राप्त हो। वह पुद्रगलद्रव्य सर्व है।

घ. १३/४,४,४६/३२३/८ सन्वं केवलणार्ण । - सर्वका अर्थ केवलज्ञान है।

सर्वेगंध - उत्तर अरुणाभास द्वीप और अरुणसागरका रक्षक व्यन्तर देव - दे. व्यंतर/४।

सर्वगत - केवलज्ञानसे सर्व लोकालोकको जाननेक कारण जीव सर्वगत या सर्वव्यापी है। सर्वगतत्व—रा, वा./२/७/१३/११२/२४ असर्वगतत्वमि साधारणं परमाण्वादीनामित्रभुत्वाद्, धर्मादीनां च परिमित्तासंख्यातप्रदेश-त्वाद्। कर्मोदयाद्यपेक्षाभावात्तदिष पारिणामिकम्। यदस्य कर्मोपात्त- शरीरप्रमाणानुविधायित्वं तदसाधारणमिष सन्न पारिणामिकम्; कर्मानिमित्तत्वाद्।—'असर्वगतरव' यह साधारण धर्म है, क्योंकि, परमाणु आदि द्रव्य अव्यापी हैं और धर्म आदि द्रव्य परिमित्त असंत्यात प्रदेशी हैं। कर्मोदय आदिकी अपेक्षाका अभाव होनेसे यह धर्म पारिणामिक भी कहा जा सकता है। जीवके कर्मोंके निमित्तसे जो शरीरप्रमाणपना पाया जाता है वह असाधारण धर्म होते हुए भी पारिणामिक नहीं है, क्योंकि, वह कर्मोंके निमित्तसे होता है।

सर्वंगत नय-हे. नय/1/k/8।

सर्वे गुप्त — भगवती आराधनाके रचयिता आ. शिवकोटिके गुरु थे। तदनुसार इनका समय — ई. श. १ का पूर्वपाद। (भ. आ./प्र. २-३/ प्रेमी जी)। — दे. शिवकोटि।

सर्वज्ञ-दे. केवलज्ञान ।

सर्वेज्ञस्य शक्ति स. सा./अः /परि/शक्ति नं. १० विश्वविश्व-विशेषभावपरिणामारमञ्जानमयी सर्वञ्चत्वर्शक्तः । समस्त विश्वके विशेषभावोंकी जानने रूपसे परिणमित ऐसे आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्व शक्ति।

सर्वज्ञात्म मुनि — शंकराचार्यके शिष्य सुरेश्वरके शिष्य । समय— ई. १०० — दे. वेदान्त/१/२।

सर्वघाती प्रकृति—हे. अनुभाग/हा

सर्वंघाती स्पर्धक-ने, स्पर्धक।

सर्वे सम्ब्र --- निर्दसंघके वेशीयगणकी गुर्नावलीके अनुसार आप वसुनन्दिके शिष्य तथा दामनन्दिके गुरु थे। समय--- वि. १७५-१००६ (ई, १९८-१४८); (दे. इतिहास/.७/६)।

सर्वतंत्र- हे, सिद्धान्त ।

सर्वतोभद्रपूजा-दे, पूजा/१।

सर्वतोभद्र यन्त्र-वे. यंत्र।

सर्वतोभद्र वत--१. लघु विधि

पंक्ति न						जोड़
8	१	२	ş	8	 4	— १ १
२	8	Ł	१	२	ş	च्च १६
ş	२	ş	૪	ķ	१	− ₹ķ
૪	Ł	8	२	₹	8	₹k
ķ	3	१	<u>k</u>	2	२	== १४
	84	24	१५	१५	१५	 ⊍∤

दिखाये गये प्रस्तारमें १ से ६ तकके अंक ६ पंक्तियों में इस प्रकार लिखे गये हैं कि ऊपर नीचे आड़े टेढे किसी भी प्रकार पंक्तिबह्धसे जोड़नेपर १६ लब्ध आते हैं। पंक्ति नं १ फिर पंक्ति नं २ आदिमें जितने-जिनने अंक लिखे हैं उसने-उतने उपवास क्रमपूर्वक कुल

७५ करे। बीचके स्थानोंमें सर्वत्र एक-एक पारणा करे। त्रिकाल नमस्कार मन्त्रका जाष्य करे। (ह. पु./३४/५१-५५); (ब्रह्म विधान संग्रह/पृ. ६०)।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

२. बृहत् विधि

प्रस्तारमें १ से ७ र्वी जोड़ तकके अंक सात पं क्तियों में १ २ 8 **\ \xi** G -- 국도 क्रमसे लिखे गये 8 k हैं कि उत्पर नीचे ş 8 8 Ŕ س خر ķ आड़े टेढ़े किसी - 32 3 Ŗ 3 Ϋ́ ķ प्रकार भी जोड़ने ৩ 3 3 – ২্দ 8 ŧ 8 ŧ पर २८ लब्ध 7 ঙ 8 - 36 ķ आता है। प्रथम ق ķ 8 3 Ę -26 द्वितीय आदि ---- بر पं क्तिमें लिखे 2= 2= 2= 2= २८ २८ \$3\$ कमसे कुल ११६ उपवास करे।

नीचके सब स्थानोंमें एक-एक पारणा करें। त्रिकाल नमस्कार मंत्रका जाप्य करें। (ह. पु./३४/४७-४०), (बत विधान संग्रह/पृ. ६१)

सर्वतोभद्रा---नन्दीश्वर द्वीपकी उत्तर दिशामें स्थित एक वापी---(दे, लोक/१/११)।

सर्वथा-- 'सर्वथा' शन्दका सम्यक् व मिथ्या प्रयोग।
- दे. एकान्त/१/४

सर्वर्दशस्य शक्ति सं, सा./आ./परि/शक्ति नं, १-विश्वविश्व-सामान्यभावपरिणामारमदर्शनमयी सर्वदिशिखशक्तिः ।१। - समस्त विश्वके सामान्य भावको देखने रूपसे (अर्थात लोकालोकको सत्तामात्र ग्रहण करने रूपसे) परिणमित ऐसे आस्मदर्शनमयी सर्वदिशस्ति शक्ति है।

सर्वधन-दे, गणित/11/१/३।

सर्वधारा - दे. गणित/11/६/२,

सर्वनंदि — काशी नरेश सिंहवर्माके समकालीन तथा प्राकृत गाथाबद्ध लोक विभाग नामक ग्रन्थके रचिता। इस ग्रन्थका संस्कृत रूपान्तर पीछे श्री सिद्धनन्दि द्वारा ई. श. ११ में किया गया है। समयः — ई. ४४८ (श. ६८०); (ति. प./प्र. ६ A. N. Up) (जै./२/७)।

सर्वप्रभ — भावोकालीन १५वें तीर्थं कर। अपर नाम सर्वात्मधृति व सर्वाग्रुध। - दे. तीर्थं कर/१

सर्वे भद्र--यश जातिके व्यंतरदेवोंका एक भेद ।--दे, यक्ष ।

सर्वरक्षित-एक लौकान्तिक देव -दे, लौकान्तिक !

सर्वरतन-मानुषोत्तर व रुवक पर्वतपर स्थित एक-एक क्रूट-दे. जोक/४/१०।

सर्वविद्याप्रकाषिणी —हे. विद्या । सर्वविद्याविराजिता—हे. विद्या ।

सर्वं व्यापी - दे, सर्वगत

सर्वेशून्य--हे श्र्न्य।

सर्वसंक्रमण-दे, संक्रमण/६।

सर्वसुन्दर-सप्त ऋषियों मेंसे एक -दे, सप्त ऋषि।

सर्वेस्थिति--दे. स्थिति/१/३।

सर्वस्पर्श-दे. स्पर्श/१/१।

सर्वातिचार-दे. अतिचार/३।

सर्वानशन-दे. अनशन।

सर्वानुकम्पा--दे, अनुकम्पा।

सर्वार्थंपुर-विजयार्धको उत्तर श्रेणीका एक नगर - दे. विद्याधर ।

सर्वार्थंसिद्धा-दे विद्या।

सर्वार्थसिद्धिः विमान-१. अनुदिश तथा अनुत्तर स्वर्गका इन्द्रक -- दे. स्वर्ग/६/१ । २. ये देव केवल एक भवावतारी होते हैं। -- दे. स्वर्ग/६/१ ।

रा. वा./४/१६/२/२२४/२२ सर्वार्थानां सिद्धे रच ।

रा. वा./४/२६/१/२४४/११ सर्वार्थ सिद्ध इत्यन्वर्थ निर्देशात्। = ३. सर्व अर्थों की अर्थात् सर्व प्रयोजनों की सिद्धि हो जानेसे उनकी 'सर्वार्थ-सिद्धि' यह अन्वर्थ संज्ञा है।

सर्वार्थसिद्धि वत-सप्तमीको धारणाके दिन एकाशना करे। ८-१४ तक प उपवास दारे और पिंडमाको पारणा करे। नमस्कार-मन्त्रका जिकाल जाप्य करे। (वत विधान संग्रह/पू.८१)

सर्वार्थसिद्धि शास्त्र — आ. पूज्यपाद (ई. श./१) द्वारा विरचित तत्त्वार्थ सूत्रकी विशद वृत्ति है। संस्कृतभाषामें लिखा गया है। इस पर निम्न टीकाएँ उपलब्ध हैं—(१) आ. अकलंक भट्ट (ई. ६२०-६८०) कृत तत्त्वार्थ राजवार्तिक (२) आ, प्रभाचन्द्र'नं. ५(ई. ६५०-१०२०) कृत एक वृत्ति। (३) पं. जयचन्द छावड़ा (ई. १८०१) कृत भाषा वचनिका। (जै./२/२८०)।

सर्वावधि ज्ञान—वे. अवधिज्ञान/१।

सर्वासंख्यात-दे. असंख्यात ।

सर्वोषध ऋद्धि—हे, ऋद्धि/७।

सर्वेप फल-तोलका एक प्रमाण -दे. गणित/1/१/२।

सिल्लेखनी अतिबृद्ध या असाध्य रीगग्रस्त हो जानेपर, अथवा अप्रतिकार्य उपसर्ग आ पड़नेपर अथवा दुर्भिक्ष आदिके होने पर साधक साम्य भाव पूर्वक अन्तरंग कषायोंका सम्यक् प्रकार दमन करते हुए, भोजन आदिका त्याग करके, धीरे-धीरे शरीरको कृश करते हुए, इसका त्याग कर देते हैं। इसे ही सल्लेखना या समाधि-मरण कहते हैं। सम्यग्दृष्टि जनोंको यथार्थतः सम्भव होनेसे इसे पण्डित-मरण कहते हैं। सारीरके प्रति जो स्वभावसे ही उपेक्षित हैं, ऐसे आवक व साधुको ऐसे अवसरों पर अथवा आयु पूर्ण होनेपर इस ही प्रकारकी वीरतासे शरीरका त्याग योग्य है। इसे आत्म हत्या कहना अनिभन्नताका सूचक है। सल्लेखनागत साधुको क्षपक कहते हैं। पीड़ाओं के प्रकर्षकी सम्भावना होनेके कारण सल्लेखना विधिमें निर्मापकों, परिचारकों, वैयावृत्ति उपदेश आदिका प्रचान स्थाने है।

9	सल्लेखना सामान्य निर्देश	
8	सल्लेखना सामान्यका छक्षण ।	
*	दीक्षा सल्ठेखना आदिकाल — दे, कान्न/१	i'
=	बाह्य अभ्यन्तर सल्छेखना निर्देश ।	
3	शरीर दृश करनेका उपाय।	
8	सल्लेखना आत्महत्या नहीं है ।	
•	सल्छेखना जबरदस्ती नहीं करायी जाती।	
*	संयम रक्षार्थ या उपसर्ग आनेपर आत्महत्या	तं क
	करना न्याय है। —दे मरण १/५ में विप्राणस मरण	11
) E	पर संयम रक्षार्थ भी मरना सल्लेखना नहीं हैं।	
4	अभ्यन्तर् सल्लेखनाकी प्रधानता ।	
1		
٩		
₹:		
} {		
१ :	1	
₹ :		
8,		
1	A TE TENTO TO THE TENTO THE TENTO TO THE TENTO TO THE TENTO TO THE TENTO TO THE TENTO TO THE TENTO TO THE TENTO TO THE TENTO TO THE TENTO TO THE TENTO THE TENTO TO THE TENTO TO THE TENTO TO THE TENTO TO THE TENTO TH	
१ १	1	
*	and a south of the desired the street that	
1	ニーナー・ファン・コー・コー・コー・コー・コー・コー・コー・コー・コー・コー・コー・コー・コー・	, ı
	—दे. सक्तेखना/६/८	. 1
1	सल्लेखनाके योग्य अवसर	. '
		. 1
1	सल्लेखनाके योग्य अवसर	. 1
	सल्लेखनाके योग्य अवसर सल्लेखना योग्य शरीर क्षेत्र व काला	, I
2	सल्लेखनाके योग्य अवसर सल्लेखना योग्य शरीर क्षेत्र व काल । निर्यापककी उपछन्धिकी अपेक्षा । योग्य कारणोंके अभावमें धारनेका निषेध ।	, (
2 2	सल्लेखनाके योग्य अवसर सल्लेखना योग्य करीर क्षेत्र व काल । निर्यापककी उपल्लिक्की अपेक्षा । योग्य कारणोंके अभावमें धारनेका निषेध । अन्त समय धारनेका निर्देश । अन्त समयकी प्रधानताका कारण !	
* * * *	सल्लेखनाके योग्य अवसर सल्लेखना योग्य शरीर क्षेत्र व काल । निर्यापककी उपछन्धिकी अपेक्षा । योग्य कारणोंके अभावमें धारनेका निषेध । अन्त समय धारनेका निर्देश ।	
* * * * *	सल्लेखनाके योग्य अवसर सल्लेखना योग्य शरीर क्षेत्र व काला निर्यापककी उपल्लिक्की अपेक्षा। योग्य कारणोंके अभावमें धारनेका निषेध। अन्त समय धारनेका निर्देश। अन्त समयकी प्रधानताका कारण! परन्तु केवल अन्त समयमें धरना अत्यन्त कठिन है अतः इसका अभ्यास व भावना जीवन पर्यन्त कर्	1
* * * * * * * * * * * * * * * * * * *	सल्लेखनाके योग्य अवसर सल्लेखना योग्य करीर क्षेत्र व काल । निर्यापककी उपल्लिक्की अपेक्षा । योग्य कारणोंके अभावमें धारनेका निषेध । अन्त समय धारनेका निर्देश । अन्त समयकी प्रधानताका कारण ! परन्तु केवल अन्त समयमें धरना अत्यन्त कठिन है अतः इसका अभ्यास व भावना जीवन पर्यन्त कर	1
* * * * * * * * * * * * * * * * * * *	सल्लेखनाके योग्य अवसर सल्लेखना योग्य शरीर क्षेत्र व काल । निर्यापककी उपल्लिक्की अपेक्षा । योग्य कारणोंके अभावमें धारनेका निषेध । अन्त समय धारनेका निर्देश । अन्त समयकी प्रधानताका कारण ! परन्तु केवल अन्त समयमें धरना अत्यन्त कठिन है अतः इसका अभ्यास व मावना जीवन पर्यन्त कर्योग्य है । अन्त समय व जीव पर्यन्तकी आराधनाका समय ।	। रना
\$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$	सल्लेखनाके योग्य अवसर सल्लेखना योग्य कारीर क्षेत्र व काल । निर्यापककी उपल्लेखकी अपेक्षा । योग्य कारणोंके अभावमें धारनेका निषेध । अन्त समय धारनेका निर्देश । अन्त समयकी प्रधानताका कारण ! परन्तु केवल अन्त समयमें धरना अत्यन्त कठिन है अतः इसका अभ्यास व भावना जीवन पर्यन्त कर्योग्य है । अन्त समय व जीव पर्यन्तकी आराधनाका समय । मरणका संशय होने पर अथवा अकरमात् मरण हो	। रना
* * * * * * * * * * * * * * * * * * * *	सल्लेखनाके योग्य अवसर सल्लेखना योग्य शरीर क्षेत्र व काल । निर्यापककी उपल्लिक्की अपेक्षा । योग्य कारणोंके अभावमें धारनेका निषेध । अन्त समय धारनेका निर्देश । अन्त समयकी प्रधानताका कारण ! परन्तु केवल अन्त समयमें धरना अत्यन्त कठिन है अतः इसका अभ्यास व मावना जीवन पर्यन्त कर्योग्य है । अन्त समय व जीव पर्यन्तकी आराधनाका समय । मरणका संशय होने पर अथवा अकरमात् मरण हो पर अथवा रवकाल मरण होने पर क्या करे ।	। रना
* * * * * * * * * * * * * * * * * * * *	सल्लेखनाके योग्य अवसर सल्लेखना योग्य कारीर क्षेत्र व काल । निर्यापककी उपल्लेखकी अपेक्षा । योग्य कारणोंके अभावमें धारनेका निषेध । अन्त समय धारनेका निर्देश । अन्त समयकी प्रधानताका कारण ! परन्तु केवल अन्त समयमें धरना अत्यन्त कठिन है अतः इसका अभ्यास व भावना जीवन पर्यन्त कर्योग्य है । अन्त समय व जीव पर्यन्तकी आराधनाका समय । मरणका संशय होने पर अथवा अकरमात् मरण हो	। रना
* * * * * * * * * * * * * * * * * * * *	सल्लेखनाके योग्य अवसर सल्लेखना योग्य शरीर क्षेत्र व काल । निर्यापककी उपछिन्धिकी अपेक्षा । योग्य कारणोंके अभावमें धारनेका निषेध । अन्त समय धारनेका निर्देश । अन्त समयकी प्रधानताका कारण ! परन्तु केत्रल अन्त समयमें धरना अत्यन्त कठिन है अतः इसका अभ्यास व मात्रना जीवन पर्यन्त कर्योग्य है । अन्त समय व जीव पर्यन्तकी आराधनाका समय । मरणका संशय होने पर अथवा अकरमाद मरण हो पर अथवा रवकाल मरण होने पर क्या करे । —दे सक्तेखना/३/१-१५	। रना
* * * * * * * * * * * * * * * * * * *	सल्लेखनाके योग्य अवसर सल्लेखना योग्य कारीर क्षेत्र व काल । निर्यापककी उपल्लेखकी अपेक्षा । योग्य कारणोंके अभावमें धारनेका निर्वेध । अन्त समय धारनेका निर्देश । अन्त समयकी प्रधानताका कारण ! परन्तु केवल अन्त समयमें धरना अत्यन्त कठिन है अतः इसका अभ्यास व भावना जीवन पर्यन्त कर्योग्य है । अन्त समय व जीव पर्यन्तकी आराधनाका समय । मरणका संशय होने पर अथवा अकस्मात् मरण हो पर अथवा रवकाल मरण होने पर क्या करे । —वे सब्लेखना/३/६-१५ मक्त प्रत्याख्यान आदि विधि निर्देश	। रना
\$ \times	सल्लेखनाके योग्य अवसर सल्लेखना योग्य शरीर क्षेत्र व काल । निर्यापककी उपछिन्धिकी अपेक्षा । योग्य कारणोंके अभावमें धारनेका निषेध । अन्त समय धारनेका निर्देश । अन्त समयकी प्रधानताका कारण ! परन्तु केवल अन्त समयमें धरना अत्यन्त किन है अतः इसका अभ्यास व भावना जीवन पर्यन्त कर्योग्य है । अन्त समय व जीव पर्यन्तकी आराधनाका समय । मरणका संशय होने पर अथवा अकरमाद मरण हो पर अथवा रवकाल मरण होने पर क्या करे । —दे सब्लेखना/३/६-१५ मक्त प्रत्याख्यान आदि विधि निर्देश सल्लेखनामरणके व विधिके मेद ।	। रना
\$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$	सल्लेखनाके योग्य अवसर सल्लेखना योग्य शरीर क्षेत्र व काला। निर्यापककी उपछन्धिकी अपेक्षा। योग्य कारणोंके अभावमें धारनेका निषेध। अन्त समय धारनेका निर्देश। अन्त समयकी प्रधानताका कारण! परन्तु केत्रल अन्त समयमें धरना अत्यन्त कठिन है अतः इसका अभ्यास व भावना जीवन पर्यन्त कर्योग्य है। अन्त समय व जीव पर्यन्तकी आराधनाका समय। मरणका संशय होने पर अथवा अकरमाद मरण हो पर अथवा रवकाल मरण होने पर क्या करे। —वे सब्लेखना/३/६-१४ मक्त प्रत्याख्यान आदि विधि निर्देश सल्लेखनामरणके व विधिक्त भेद। भक्त प्रत्याख्यान आदि तीनके लक्षण।	। रना
\$ \$ \$ \$ 0 \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$	सल्लेखनाके योग्य अवसर सल्लेखना योग्य शरीर क्षेत्र व काल । निर्यापककी उपल्लिभकी अपेक्षा । योग्य कारणोंके अभावमें भारनेका निषेभ । अन्त समय भारनेका निर्देश । अन्त समयकी प्रधानताका कारण ! परन्तु केवल अन्त समयमें भरना अत्यन्त कठिन है अतः इसका अभ्यास व मावना जीवन पर्यन्त कर्योग्य है । अन्त समय व जीव पर्यन्तकी आराधनाका समय । मरणका संशय होने पर अथवा अकरमात् मरण हो पर अथवा रवकाल मरण होने पर क्या करे । —वे सक्लेखना/३/६-१५ मक्त प्रत्याख्यान आदि विधि निर्देश सल्लेखनामरणके व विधिक्ते मेद । भक्त प्रत्याख्यान आदि तीनके लक्षण ।	। रना जे-
\$ \$ \$ \$ 0 \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$	सल्लेखनाके योग्य अवसर सल्लेखना योग्य शरीर क्षेत्र व काल । निर्यापककी उपल्लिक्की अपेक्षा । योग्य कारणोंके अभावमें धारनेका निर्वेध । अन्त समय धारनेका निर्देश । अन्त समयकी प्रधानताका कारण ! परन्तु केत्रल अन्त समयमें धरना अत्यन्त कठिन है अतः इसका अभ्यास व मात्रना जीवन पर्यन्त कर्योग्य है । अन्त समय व जीव पर्यन्तकी आराधनाका समय । मरणका संशय होने पर अथवा अकरमात् मरण हो पर अथवा रवकाल मरण होने पर क्या करे । —वे सब्लेखना/३/६-१४ मक्त प्रत्याख्यान आदि विधि निर्देश सल्लेखनामरणके व विधिक्ते भेद । भक्त प्रत्याख्यान आदि तीनके लक्षण । तीनों आहारका त्याग सामान्य है । —वे. सल्लेखना/३/१	। रना ोने- २।

वीनोंके फल ।
भक्तपत्याख्यानको जघन्य व उत्कृष्ट अवधि ।
साधुओंके लिए भक्त प्रत्याख्यानकी सामान्य विधि ।
समर्थं श्रावकोंके लिए भक्त प्रत्याख्यानको सामान्य
विधि ।
असमर्थं श्रावकींके लिए भक्त प्रत्याख्यानकी
सामान्य विधि ।
मृत्युका संशय या निश्चय होनेकी अपेक्षा
भक्त प्रत्याख्यान विधि ।
सविचार व अविचार भक्त प्रत्याख्यानके
सामान्य रुक्षण व स्वामी ।
अविचार भक्त प्रत्याख्यान विधि ।
इंगिनीमरण विधि ।
प्रायोपगमन मरण विधि ।
सविचार मक्त प्रत्याख्यान विधि
लावचार भक्त अत्याख्यान ।चाच
इस विषयक ४० अधिकार ।
सःरुखेबना योग्य लिग । —दे, सिग/१/४।
सल्लेखनामें नग्नताका कारण व महस्त्र ।
—दे, अचेलकरव/२।
इन अधिकारोंका कथन कम।
आचार्यं पदत्याग विधि।
सबसे क्षमा ।
परगणचर्या व इसका कारण।
परगण द्वारा आगत मुनिका परीक्षा पूर्वेक ग्रहण। —दे. विनय/५/१।
उद्यत साधुके उत्साह आदिका विचार ।
आरुरेचना पूर्वक प्रायश्चित्त ग्रहण ।
क्षपक योग्य वसतिका व संस्तर।
— दे. वह वह नाम।
श्रावक को घर या मन्दिर दोनों जगह संस्तर-
थारणको आशा —दे. सल्तेखना/३/८।
निर्यापाचार्यं व उसका मार्गण
—दे, सक्तेखना/४।
क्षपणा, समता व ध्यान । कुछ विशेष भावनाओंका चिन्तवन
कुछ प्रशंस मानगाजाका स्वन्तपन मौन वृत्ति
· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·
क्रम पूर्वेक आहार व शरीरका त्याग । क्षपकके लिए उपयुक्त आहार ।
मक्त प्रत्याख्यानमें निर्यापकका स्थान
योग्य निर्यापक व उसकी मधानता।
चारित्रहीन निर्यापकका अक्षिय हानिकारक है ।
योग्य निर्यापकका अन्वेषण
एक निर्यापक एक ही क्षपकको ग्रहण करता है।

- 🥦 निर्योपकोंकी संख्याका ममाण ।
- ६ | सर्वे निर्यापकोंमें कर्तव्य विभाग ।
- ७ । क्षपककी वैयावृत्ति करते हैं।
- ८ | आहार दिखाकर वैराग्य उत्पन्न कराना ।
- ९ | बदाचित् क्षपकको उम्र वेदनाका उद्रेक ।
- र० उपर्युक्त दशामें भी उसका त्याग नहीं करते ।
- ११ | यथावसर उपदेश देते हैं।
 - १. सामान्य निर्देश।
 - २. वेदनाकी उग्रतामें सारणात्मक उपदेश।
 - ३. प्रतिज्ञाको कवच करनेके अर्थ उपदेश।

६ | मृत शरीरका विसर्जन व फल विचार

🕴 शरीर क्षेपण योग्य निषद्यका 🖡

—दे. निषीधिका।

संस्तर ग्रहण व मरणकालमें परस्पर सम्बन्ध

दे. सक्तेखना/१/१३।

- १ शव विसर्जन विधि।
- २ | शरीर विसर्जनके पश्चात् संघका कर्तव्य ।
- ३ । फल विचार---

*

- १. निषीधिकाकी दिशाओं पर स।
- २, दावके संस्तरपर से।
- ३, नक्षत्रों परसे ।
- ४, शरीरके अंगोंपांगोंपरसे।

१. सल्लेखना सामान्य निर्देश

१. सल्लेखना सामान्यका लक्षण

- स.सि/७/२२/३६३/१ सम्यवकायकषायलेखना सन्तेखना। कायस्य बाह्यस्याभ्यन्तराणां च कषायाणां तःकारणहापनक्रमेण सम्यग्तेखना सक्तेखना। = अच्छे प्रकारसे काय और कषायका लेखन करना अर्थात् कृश करना सल्लेखना है। अर्थात् बाहरी शरीरका और भीतरी कषायोंका, उत्तरोत्तर काय और कषायको पुष्ट करनेवाले कारणोंको घटाते हुए भले प्रकारसे लेखन करना अर्थात् कृश करना सल्लेखना है। (स.सि./७/२२/३/४४०/२३); (भ.आ./वि./१४७/-३६६/९२)।
- दे. सन्तेखना/२/१ [दुर्भिक्ष आदिके उपस्थित होनेपर धर्मके अर्थ शरीरका त्याग करना सन्तेखना है ।]
- दे निक्षेप/४/१ किदली घातके विना वहिरंग और अन्तरंग परिप्रहका त्याग करके जीवन व मरणकी आशासे रहित छूटा हुआ शरीर त्यक्त शरीर कहलाता है, जो भक्तप्रत्याख्यान आदिकी अपेक्षा तीन प्रकारका है।

२. बाह्य व अभ्यन्तर सब्लेखना निर्देश

भ,आ,/मू/२०६/४२३ सन्लेहणा य दुविहा अन्भंतरिया य नाहिरा चैव । अन्भंतरा कसायेष्ठ नाहिरा होति हु सरीरे ।२०६। —सन्तेखना हो प्रकारकी है —अभ्यन्तर और नाह्य। तहाँ अभ्यन्तर सन्तेखना तो कषायों में होती है और नाह्य सन्तेखना शरीरमें। अर्थात् उपरोक्त

- लक्षणमें कषायोंको कुश करना तो अभ्यन्तर सल्लेखनाहै और शरीरको कुश करना बाह्य सल्लेखना है।
- पं. का./ता.चृ./१७३/१५२/१७ आत्मसंस्कारानन्तरं तदर्थमेव कोधादिकवायरहितानन्तज्ञानादिगुणसङ्गणपरमात्मपदार्थे स्थित्वा रागादिविकव्यानां सम्यानेखनं तनुकरणं भावसन्तेखना, तदर्थं कायक्लेशानुष्ठानं द्रव्यसन्तेखना, तदुभयाचरणं स सन्तेखनाकातः। = आत्मसंस्कार (दे, काल/१/६) के अनन्तर उसके लिए ही कोधादि कथायरहित अनन्तज्ञानादि गुणस्थण परमात्मपदार्थमें स्थित होकर रागादि विकल्पोंका कृश करना भाव सन्तेखना है, और उस भाव सन्तेखनाके लिए कायक्तेशरूप अनुष्ठान करना अर्थात भोजन आदिका त्याग करके शरीरको कृश करना द्रव्य सन्तेखना, है। इन होनों रूप आचरण करना सन्तेखना काल है।

३. शरीर कुश करनेका उपाय

भ.आ./मू./२४६-२४६ उन्लीणोलीणेहि य अहवा एक्कंतवड्रमाणेहि। सिंचहर मुणी देहं आहारिवधि पयणुर्गितो ।२४६। अणुपुञ्बेणाहारं संबर्ठतो य सन्तिहइ देहं। दिवसुग्गहिएण तवेण चावि सन्तेहणं कुणइ। २४७। विविहाहि एसणाहि य अवस्महेहि विविहेहि उस्मेहि। संजममिवराहितो जहाबलं सिल्लहइ देहं।२४८। सदि आउगे सदि न से जाओ विविधाओं भिनखुपडिमाओं। ताओं विण नाधंते जहाबलं सल्लिहंतस्स १२४१। = क्रमसे अनशनादि तपको बढ़ातै हुए यतिराज अपने देहको कृश कर शरीर सल्लेखना करते हैं। २४६। क्रमसे आहार कम करते करते क्षपक अपना देह कृश करता है। प्रतिदिन लिये गये नियमके अनुसार कभी उपवास और कभी वृत्तिसंख्यान, इस क्रमसे तपश्चरण कर क्षपक शरीर कृश करता है।२४७। नाना प्रकारके रसवर्जित, अन्प, रूक्ष ऐसे आचाम्ल भोजनों-से अपने सामध्यके अनुसार क्षपक मुनि देहको कृश करता है। नाना प्रकारके उग्र निथम ले ले कर संयमकी विराधनान करता हुआ स्व शक्ति अनुसार शरीरको कृश करता है।२४८। यदि आयुव देहकी शक्ति अभी काफ़ी शेष हो तो शास्त्रोक्त बारह भिक्षुप्रतिमाओं को (दे. सक्तेखना/४) स्वीकार करके शरीरकी कृश करता है। उन प्रतिमाओं से इस क्षपकको पीड़ा नहीं होती। (विशेष दे. सल्ले-खना/३,४) ।

४. सल्लेखना आत्महत्या नहीं है

स,सि, १७/२२/३६३/५ स्यान्मतमात्मवधः प्राप्नोतिः, स्वाभिसन्धिपूर्व-कायुरादिनिवृत्तेः । नैष दोषः: अप्रमत्तरवात् । 'प्रमत्तयोगात्पाणव्यपरो-पणं हिंसा' इत्युक्तम् । न चास्य प्रमादयोगोऽस्ति । कुतः। रागाध-भावात् । रागद्वेषमोहाविष्टस्य हि विषशस्त्राद्युपकरणप्रयोगवशादा-रमानं घ्नतः स्वधातो भवति । न सल्लेखनां प्रतिपन्नस्य रागादयः सन्ति ततो नात्मवधदोषः । चप्रश्न — चूं कि सक्लेखनामें अपने अभि-प्रायसे आयु आदिका त्याग किया जाता है, इसलिए यह आत्मधात हुआ ! उत्तर-यह कोई दोष नहीं है, क्यों कि सल्लेखनामें प्रमादका अभाव है। 'प्रमत्तयोगसे प्राणोंका वध करना हिंसा है' यह पहले कहाजा चुका है (दे, हिंसा)। परन्तु इसके प्रमाद नहीं है, क्यों कि, इसके रागादिक नहीं पाये जाते। राग, द्वेष और मोहसे युक्त होकर जो विष और शस्त्र आदि उपकरणोंका प्रयोग करके उनसे अपना वात करता है उसे आत्मधातका दोष प्राप्त होता है (दे. मरण/४/१)। परन्तु सन्तेखनाको प्राप्त हुए जीवके रागादिक तो हैं नहीं, इसलिए इसे आत्मधातका दोष प्राप्त नहीं होता है। [कहा भी है-रागादिक-का न होना ही अहिंसा है (दे. अहिंसा/२/१) और उनकी उत्पत्ति ही हिंसा है (दे. हिंसा/१/१); (रा.वा./७/२२/६–७/४४०/३३) (पु.सि. उ./१७७ १७८); (सा.घ./५/६); (और भी दे. शीर्षक सं. १) ।

For Private & Personal Use Only

५. सल्लेखना जबरदस्ती नहीं करायी जाती

स.सि./७/२२/३६१/४ न केवलिमह मेवनं परिगृह्यते। कि तर्हि श्रीत्यर्थोऽपि। यस्मादसत्यां प्रीतौ बलाझ सन्लेखना कार्यते। सत्यां हि प्रीतौ स्वयमेव करोति। स्यहाँ पर (सूत्रमें प्रयुक्त 'जोषिता' शब्दका) केवल 'सेवन करना' अर्थ नहीं लिया गया है, क्यों कि प्रीतिके न रहनेपर बलपूर्वक सन्लेखना नहीं करायी जाती। किन्तु प्रीतिके रहनेपर स्वयं हो सन्लेखना करता है। (रा.वा/७/२२/४/४८०/२६)।

६. संयम रक्षार्थं मरना भी सल्लेखना नहीं

घ १/१.१.१/२५/१ संजम-विनास-भएण उस्सासणिरोहं काऊण मुद-साहु-सरीरं करथ णिवद दिग १ ण कतथ वि तहा-मुददेहस्स मंगलता-भावादो । = प्रश्न —संयमके विनाशके भयसे श्वासीच्छ्वासका निरोध करके मरे हुए साधुके शरीरका त्यक्तशरीरके तीन भेदों (भक्त प्रत्याख्यान आदि) में से किस भेदमें अन्तर्भाव होता है १ उत्तर—ऐसे शरीरका त्यक्तके किसी भी भेदमें अन्तर्भाव नहीं होता है; क्यों कि, इस प्रकारसे मृत शरीरको मंगलपना प्राप्त नहीं होता है । दे मरण/१/१ [उपरोक्त प्रकारका मरण विश्राणसमरण कहलाता है । वह न अनुज्ञात है और न निष्द्ध।]

७. अभ्यन्तर सल्लेखनाकी प्रधानता

भ.आ./मू/म. एवं सरीरसक्लेहणाविहि बहुविहा वि फासेंतो । अज्भव-साणिवसुद्धि खणमवि खबओ ण मुंचेज्ज ।२५६। अज्भवसाणविसुद्धी कसायकलुसीकदस्स णरिथ ति । अज्भवसाणकसायसण्लेहणा भणिदा ।२५७। अज्भवसाणिवसुद्धीए विज्जिदा जे तवं विगट्ठंपि । कुठबंति बहिन्लेस्साण होइसा केवला सुद्धी ।२५८। सक्लेह्णा-विसुद्धा केई तह चेत्र विविहसंगेहिं। संथारे विहरंता वि संकिलिट्ठा विवज्जंति ।१६७४। == इस प्रकार अनेकविध शरीर सल्लेखनाविधिको करते हुए भी, क्षपक एक क्षणके लिए भी परि-णामीकी विशुद्धिको न छोड़े ।२५६। कषायसे कलुषित मनर्मे परिणामोंकी विशुद्धि नहीं होती। और परिणामोंकी विशुद्धि ही कषायसल्लेखना कही गयी है।२५१। परिणामौकी विशुद्धिके निना उत्कृष्ट भी तप करने वाले साधु रूयाति आदिके कारण ही तप करते हैं, ऐसा समफना चाहिए। इसलिए उनके परिणामीकी शुद्धि महीं होती १९४७। जो साधु शरीरकी सब्लेखना तो निरतिचार कर रहे हैं, परन्तु उनके अन्तरंगमें रागद्वेषादिखप भाव परिग्रह निवास करता है, वे संस्तरारूढ होते हुए भी परिणामों की संक्लेशता के कारण संसारमें भ्रमण करते हैं।१६७४।

सा.ध /-/२३ सक्लेखनासंक्लिखतः क्षाया क्षिष्फला तनोः। कायोऽजडें क्षियंतुं काषायानेव दण्ड्यते।२३। क्रजो साधु कषायोंको
कृश न करके केवल शरीरको ही कृश करता है, उसका वह शरीरको
कृश करना निष्फल है, क्यों कि क्षायोंको कृश करनेके लिए ही
शरीरको कृश किया जाता है, केवल शरीरको कृश करनेके
लिए नहीं।

८. सरुलेखना धारनेकी क्या आवश्यकता

त.सि./७/२२/३६४/१ किंच. मरणसानिष्टत्वाद्यथा वाणिको विविध-पण्यदानादानसंचयपरस्य स्वगृह्विनाकोऽनिष्टः। तद्विनाककारणे च कृतिश्चिदुपस्थिते यथाशक्ति परिहरति। दुष्परिहारे च पण्य-विनाशो यथा न भवति तथा यतते। एवं गृहस्थोऽपि व्रतशीस-पण्यमंचये प्रवर्तमानः तदाश्रयस्य न पातमभिवाञ्छति। तदुप्पत्व-कारणे चोषस्थिते स्वगुणाविरोधेन परिहरति। दृष्परिहारे च यथा स्वगुणविनाशो न भवति तथा प्रयत्त इति कथमारमवधो भवेत। = मरण किसीको भी भी इन्ट नहीं है। जैसे नाना प्रकारकी विक्रीय वस्तुओं के देने, लेने और संचयमें लगे हुए किसी व्यापारीको अपने घरका नाश होना इन्ट नहीं है; फिर भी परिस्थितिवश उसके विनाशके कारण आ उपस्थित हों तो यथाशक्ति वह उनको दूर करता है, इतनेपर भी यदि वे दूर न हो सकें तो, जिससे विक्रेय वस्तुओं का नाश न हो, ऐसा प्रयत्न करता है। उसी प्रकार पण्य स्थानीय वत और शीलके संचयमें जुटा हुआ गृहस्थ भी उनके आधारभूत आयु आदिका पतन नहीं चाहता। यदा कदाचित उनके विनाशके कारण उपस्थित हो जायें तो जिससे अपने गुणों में बाधा नहीं पड़े, इसप्रकार उनको दूर करनेका प्रयत्न करता है। इतनेपर भी यदि वे दूर न हों तो, जिससे अपने गुणों का नाश न हो इस प्रकार प्रयत्न करता है, इसिलए इसकें आत्मघात नामका दोष कैसे हो सकता है। (रा.वा./अ/२९/=/१५९/६); (आ. अनु./२०६); (सा.ध./८/६)।

९. सब्लेखनाके अतिचार

त.सू./७/३७ जीवितमरणाशंसामित्रानुरागमुखानुबन्धनिदानानि ।३७। — जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, मुखानुबन्ध और निदान में सक्षेखनाके पाँच अतिचार हैं ।३७। (र.क.आ./१२६);(चा.सा./४६/३); (सा.ध./८/६६) ।

१०. सल्लेखनाका महत्त्व व फल

भ.आ./मू./१६४२-१६४६ भोगे अणुक्तरे भुंजिछण तक्तो चुदा सुमाणुते। इिंद्रुक्षमृत्यं चहक्ता चरं ति जिणदेसियं धम्मं।१६४२। सुदकं लेस्समुवनदा सुदक्तकमाणेण खिदसंसारा। सम्मुदक्तकम्मकवया सिविति सिद्धि धुदिकिलेसा ।१६४६। स्वन्योंमें अनुक्तर भोग भोगकर वे वहाँसे चय उक्तम मनुष्यभवमें जन्म धारण कर सम्पूर्ण ऋद्धियोंको प्राप्त करते हैं। पीछे वे जिनधम अर्थात् सुनि धम व तप आदिका पालन करते हैं।१६४२। शुवल लेश्याकी प्राप्ति कर वे आराधक शुवलध्यानसे संसारका नाश करते हैं, और दर्मक्षी कवचको फोड़ कर सम्पूर्ण वर्षेशोंका नाश कर मुक्त होते हैं।१६४६। (विशेष दे, सन्लेखना/३/४)।

र.क आ./१३० निःश्रेयसमम्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिर्धि। निष्य-वित पीतधमः सर्वेदुः खैरनालीढः ।१३०। = पिया है धर्मरूपी अमृत जिसने ऐसा सश्तेखनाधारी जीव समस्त प्रकारके दुःखोंसे रहित होता हुआ, अपार दुस्तर और उत्कृष्ट उदयवाले मोक्षरूपी सुखके समुद्रको पान करता है।

प.पु./१४/२०३ गृहधर्मे मिसं कृत्वा समाधित्राप्तपञ्चतः । प्रपद्मते सुदेवत्वं च्युत्वा च सुमनुष्यताम् ।२०३। = इस गृहस्थ धर्मका पालनकर जो समाधिपूर्वक मरण करता है, वह उत्तम देवपर्यायको प्राप्त होता है, और वहाँसे च्युत होकर उत्तम मनुष्यत्व प्राप्त करता है ।२०३। [पीछे आठ भवों में मुक्ति प्राप्त करता है — (दे. अगला शीर्षक)

पु,सि.ज/१७६ नीयन्तेऽत्र कषाया हिंसाया हेतवो यतस्तनुतास्।
सल्तेखनामपि ततः प्राहुरहिंसां प्रसिद्धधर्यम्।१७६। क्यों कि इस
संन्यास मरणमें हिंसाके हेतुभूत कषाय शीणताको प्राप्त होते हैं,
तिस कारणसे संन्यासको भी श्रीगुरु अहिंसाकी सिद्धिके लिंप
कहते हैं।१७६।

दे.भ आ/अ.ग./२२४४-२२७६- [सब्लेखनाकी अनेक प्रकारसे स्वृति]

११. क्षपककी भवधारणकी सीमा

भ.आ./पू/ण एक्किम्म भवग्गहणे समाधिमरणेण जो मदो जीवो । ण हु सी हिंड दि बहुसो सत्तद्ठभवे पमोत्तूण ।६८२। णियमा सिजमदि उक्कसरण वा सत्तमिम भवे ।२००६। इय बालपंडिप होदि मरण-मरहंतसासणे दिद्ठ ।२००७। एवं आराधिता उक्कस्साराहणं चदुनलंधं। कम्मरयनिष्पमुक्ता तेणेव भनेण सिडमंति ।११६०। आराधियत्तु धीरा मिजमममाराहणं चदुनलंधः। कम्मरयनिष्पमुक्ता तच्नेण भनेण सिडमंति ।२१६१। आराधियत्तु धीरा जहणणमाराहणं चदुनलंधः। कम्मरयनिष्पमुक्ता सत्तमजम्मेण सिडमंति ।२१६२। = १. जो यति एक भन्नेमें समाधिमरणसे मरण करता है नह अनेक भन्न धारण कर संसारमें भ्रमण नहीं करता। उसको सात आठ भन्न धारण करनेके पश्चात् अन्य मोक्षकी प्राप्ति होनी।६०२। (मू.आ/१९८)। २. बालपंडित मरणसे मरण करनेनाला भानक (दे,मरण/१४) उत्कृष्टतासे सात भनोंमें नियमसे सिद्द्य होता है।२०८६-२००७। ३. चार प्रकारके इस (दर्शन, ज्ञान, चारित्र न तप) आराधनाको जो उत्कृष्ट रूपसे आराधता है नह उसी भनमें मुक्त होता है, और जो जधन्य रूपसे आराधता है नह तृतीय भनसे मुक्त होता है, और जो जधन्य रूपसे आराधता है नह तृतीय भनसे मुक्त होता है, और जो जधन्य रूपसे आराधता है नह सातनें भनमें सिद्द्य होता है। ११९६०-६२।

प.पु/१४/२०४ भावानामेवमध्दानामन्तः कृत्वानुवर्तनस्। रत्नन्नयस्य निर्मन्थो भूत्वा सिद्धिं समश्तुते ।२०४। — [जो गृहस्थधर्मका पालन कर समाधि पूर्वक मरण करता है-- (दे. शीर्षक सं.१०में प. पु./१४/२०३)] ऐसा जीव अधिकसे अधिक आठ भवोंमें रत्नन्नयका पालनकर अन्तमें निर्मन्थ हो सिद्धप्यदको प्राप्त होता है।२०४।

धर्मपरीक्षा/१६/६६ का भाषार्थ-जो सुधी पुरुष क्षाय निदान और मिथ्यात्व रहित होकर संन्यासविधिके धारणपूर्वक मरण करते हैं, वे मनुष्य देवलोकमें सुलोंको भोगकर २१ भवके भीतर मोक्षपदको प्राप्त होते हैं।

१२, सल्लेखनामें सम्मव लेखाएँ

भ.आ./मू./१६१८-१६२१ सुक्काए लेस्साए उक्कस्सं अंसर्ग परिणमित्ता ।
जो मरिंद सो हु णियमा उक्कस्साराधओ होई ।१६१८। जे सेसा
सुकाए दु अंस्या जे य पम्मलेस्साए । तल्लेस्सापरिणामो दु मिजिममाराधणा मरणे ।१६२०। तेजाए लेस्साए ये अंसा तेम्रु जो परिणमिता ।
कालं करेह तस्स हु जहण्णियाराधणा भणिंद ।१६२१। — शुक्ललेश्याके उरक्ष्ट अंशासे परिणतं होकर मरनेवाला सपक उरक्ष्ट आराधक है
।१६१८। शुक्ल लेश्याके शेष मध्यम व जधन्य अंश और पद्मलेश्याके
सर्व अंशोंसे परिणमित होकर मरनेवाला मध्यम आराधक है ।१६२०।
और पीत लेश्याके सर्व अंशोंसे परिणमित होकर मरनेवाला
जधन्य आराधक है।

१३. संस्तर घारण व मरणकाव्में परस्पर सम्बन्ध

भ.आ./अमितगति कृत प्रशस्ति/पृ.१८७६--

नं.	संस्तरघारण कालका नक्षत्र	मरणकालका नक्षत्र	सम्य
3 4 6 ALX SC W & S	अश्वनी भरणी कृत्तिका रोहिणी सृगशिर आर्द्धा पुनर्व मु पुण्य आश्वेषा	स्वाति रेवती उत्तर फाल्गुनी अवण पूर्व फाल्गुनी उत्तरा या इससे अगला अश्विनी मृगशिर	रात प्रभात मध्याह अर्घरात्रि ! दिन अपराह्

ř.	संस्तरधारण कालका नक्षत्र	म रणकालका नक्षत्र	सम्य
१०।	मघा	मधा या इससे अगला) दिन
११	पूर्व फारगुनी	धनिष्ठा	दिन
183	उत्तर कान्युनी	मूज	सायं
१३	हस्त	भरणी	दिन
१४	चित्रा (मृगशिर	अर्धरात्रि
28	स्वाति	रेबती) प्रभात
१६	विशास्त्रा	ं आरतेषा	1 1
१७	आश्लेषा	पूर्व भाद्मपद	दिन
१८	मूल	ज्येष्ठा	प्रभात
37	पूर्वाषाङ्	मृगशिर	रातका
1			प्रारम्भ
२०	उत्तराषा ढ़	उत्तराषाढ अथवा भाइपर	अपराह
२१	अवण	उत्तरभाद्र पद	दिन
२२	धनिष्ठा	धनिष्ठा या उससे अगला	∕दिन
२३	शतभिषज	ज्येष्ठा	सूर्यास्त
ર૪ 🖠	पूर्वभाद्रपद	पुनर्वसु	रात
₹४	उत्तर भाद्रपद	उ त्तरभाद्रपद	दिन या रात
२६	रेवती	मृगशिर	7
<u> </u>	<u> </u>	<u> </u>	

१४. सल्लेखनाका स्वामित्व

रा.वा./७/२२/१४/१५२/३ अयं सन्तेखनाविधिः न श्रावकस्यैव दिग्दिर-स्यादि शीलवतः । कि तर्हि । संयतस्यापीति अविकेषज्ञापनार्थत्वाद्वा पृथगुपदेशः वृतः । —यह सन्तेखनाविधि शीलवतधारी गृहस्थको ही नहीं है, किन्तु महावती साधुके भी होती है। इस सामान्य नियमको सूचना पृथक् सूत्र मनानेसे मिल जाती है।

दै, सब्हेस्तना/२/१ में भ.खा./०४-(गृहस्थ व साधु दोनों ही भक्तप्रया-

रन्यानके योग्य समभे जाते हैं।]

दे सक्तेखना/१/८/ [गृहस्थ भी बत और शीकोंकी रक्षा करनेके लिए सक्तेखना धारण करता है]

दे. सरलेखना/२/४ [श्रावक प्रीति पूर्वक मारणान्सिकी सरलेखना धारण करता है।]

दे. सक्लेखना/२/७ में पु.सि.ज./१७६ ['मैं मरण कालमें अवस्य समाधि-मरण करू गा' श्रावकको ऐसी भावना नित्य भानी चाहिए।]

दे मरण/१/४ [भक्त प्रत्यास्थ्यान आदि पंडित मरण मुनियोंको होता है।]

१५. सभी व्रतियोंको सल्लेखना आवश्यक नहीं

रा.वा./७/२२/१२/१४/१४ स्यादेतत्-पूर्वभूत्रेण सह एक एव योगः कर्त्तव्यः ल्रास्य हितः तत्रः कि कारणम् । कदाचित् कस्यचित् तां प्रत्याभिमुख्यज्ञापनार्थस्वातः । सम्रतपशीलवतः कदाचित् कस्यचितं गृहिणः सक्लेखनाभिमुख्यं न सर्वस्येति । = प्रश्न- इस सूत्रको पहले सूत्रके साथ ही मिला देना योग्य था, न्योंकि, ऐसा करनेसे सूत्र छोटा हो जाता ! जत्तर - नहीं, क्योंकि, कभी-कभी तथा किसी किसीको ही सक्लेखनाकी अभिमुखता होती है, यह बात बतानेके लिए पृथक् सूत्र बनाया गया है । सात शील बतोंको धारनेवाला कोई एक आध गृहस्थ ही कदाचित सक्लेखनाके अभिमुख होता है, सब नहीं ।

दे. अवालंद- िजो साधु बल, वीर्य, धीर्य व स्थिरतामें हीन होनेके कारण परिहार विधि या भक्त प्रत्याख्यान आदि विधियोंको धारण करनेमें समर्थ नहीं हैं, वे अथालंद विधिको धारण करते हैं।

१६. सब्लेखनाके लिए हेमन्त ऋतु उपशुक्त है

भ.आः/मू./६३१/=३२ एवं वासारत्ते फासेदूण विविधं तवोकम्मं। संथारं पडिवजवि हेमंते सुहविह रंग्मि।१६३। = इस प्रकारसे वर्षकालमें नाना प्रकारके तप कर वह क्षपक जिसमें अनशनादि करने पर भी महास् कष्टका अनुभव नहीं आता है, ऐसे हेमन्तकालमें संस्तरका आध्य करता है।६३१।

२ सल्लेखनाके योग्य अवसर

१, सब्लेखना योग्य शरीर क्षेत्र व काल

भ आ./मू./७१-७४ वाहिन्न दुप्पसन्मा जरा य समण्णजोग्नहाणिकरी।
जनसगा वा देवियमाणुसतेरिच्छया जरस १७१। अणुलोमा वा सल
चारिक्तिवणासया हवे जरस। दुन्भिवले वा गाढे अडवीए विष्पणदुो
वा १७२। चन्छं वा दुन्मलं जरस होन्ज सीदं व दुन्नलं जरस।
जंधाननपरिहीणो जो ण समस्थो विहरिदुं वा १७३। अण्णिम्म
चावि एदारिसंम्मि आगाढकारणे जादे। अरिहो भक्तपहण्णार होदि
विरदो अविरदो वा १७४। -- महाप्रयत्नसे चिकित्सा करने योग्य
ऐसा कोई दुरुक्तररोगहोनेपर, श्रामण्यकी हानिकरनेवाली अतिहाय
वृद्धानस्था आनेपर, अथवा निःप्रतिकार देव मनुष्य व तिर्यचकृत
उपसर्ग आ पड़नेपर १७१। (लोभ आदिके वशीधृत हुए ऐसे) अनुकृत
रात्रु जब चारित्रका नाश करनेको उधुक्त हो जायँ, भयंकर
दुष्काल आ पड़नेपर १७१। (लोभ आदिके वशीधृत हुए ऐसे) अनुकृत
वानेपर १७२। अर्थेल, कान व जंधा बल अत्यन्त क्षीण हो जानेपर १७३।
तथा इनके अतिरिक्त अन्य भी तत्सहरा कारणोंके होनेपर मुनि या
गृहस्थ भक्त प्रत्याख्यान (शरीर स्थाग) के योग्य समक्ते जाते
हैं १७४।

्क आ /१२२ उपसर्गे दुर्भिक्षे जरिस रुजायां च निष्प्रतीकारे । धर्मीय सनुविमोचनमाहुः सन्तेखनामार्याः ।१२२। = निष्प्रतिकार उपसर्गे आनेपर, दुर्भिक्ष होनेपर, बुढ़ापा आनेपर, और मृत्युदायक रोग होनेपर धर्मार्थ शरीर छोड़नेको सन्तेखना कहते हैं ।१२२। (चा.सा/ ४८/१)

रा.ना./७/२२/११/४४१/२८/ जरारोगेन्द्रियहानिभिरावश्यकपरिक्षये ।११। = जरा, रोग, इन्द्रिय व शरीर वसकी हानि तथा ष्डावश्यकका नाश होनेपर सक्लेखना होती हैं।

सा.ध./-/१-१० कालेन बोपसर्गेण निश्चित्यायुः क्षयोन्मुखं। कृत्वा यथाविधि प्रायं तास्ताः सफलयेत्किया।१। देहादिवेकृतैः सम्यग्नि-मित्तेश्च सुनिश्चिते। मृत्यावाराधनामग्नयदेदूरेन तत्पदं।१०। —स्वकाल पाकद्वारा अथवा उपसर्ग द्वारा निश्चित रूपसे आयुका सय सन्मुख होनेपर यथाविधि रूपसे संन्यासमरण धारकर सकल कियाओंको सफल करना चाहिए।१। जिनके होनेगर दारीर ठहर नहीं सकता ऐमे सुनिश्चित देहादि विकारोंके होनेपर, अथवा उसके कृरण उपस्थित हो जानेपर अथवा आयुका क्षय निश्चित हो जाने पर निश्चयसे आराधनाओंके चिन्तवन करनेमें मग्न होता है, उसे मोक्ष पद दूर नहीं।१०।

है. सब्लेखना/३/१० [स्व कालपाकवश आयुक्षय होनेपर सविचार भक्त प्रत्याख्यान घारा जाता है और अकस्मात् आयुक्षय होने पर अविचार भक्त प्रत्याख्यान घारा जाता है !]

२. निर्यापककी उपलब्धिकी अपेक्षा

भ.आ./मृ./७६/२०४ उस्सरइ जस्स चिरमित सुहैण सामण्णमणदिचारं वा । णिज्जावया य सुलहा दृश्भिवस्वभयं च जदि णरिथ ।७६।

भ.आ /वि./७६/१०६/१ इदानीमहं यदि न त्यागं कुर्यां नियंपिकाः पुनर्न लप्स्यन्ते सूरयस्तदभावे नाहं पण्डितमरणमाराधियतं शक्नोमि इति यदि भग्नमस्ति भक्तप्रयाख्यानाई एव । चिजस मुनीश्वरका खारित्रपालन मुखपूर्वक व निरितिचार हो रहा है, तथा जिसका नियंपिक भी मुलभ हो और जिसे दुर्भिक्ष आदिका भी भय न हो। ऐसा मुनीश्वर यद्यपि भक्त प्रत्याख्यानके अयोग्य है।७६। तो भी 'इस समय यदि मैं भक्तप्रत्याख्यान करूव और आगे यदि नियं-पकाचार्य कदाचित् न मिले तो मैं पंडितमरण न साथ सक्गा' ऐसा जिसको भय हो तो वह मुनि भक्त प्रत्याख्यानके योग्य ही है।

३. योग्य कारणों के अभावमें सब्लेखना धारनेका निषेध

भ अा /मू /%६/२०४ तस्स ण कप्पित भत्तपङ्ण्णं अणुविट्ठदे भये पुरदो । सो मर्णं पिन्छंतो होदि हु सामण्णणिव्विणो ।७६। — पूर्वमें कहे गये सर्व भयोंके उपस्थित न होनेपर भी जो मुनि मरणकी इन्छा करेगा, वह मुनि चारित्रसे विरक्त है ऐसा समभना चाहिए।

दे शीर्षक नं २-{ जिसका चारित्र निर्विध्न पत रहा है और जिसे निर्यापक भी मुजभ हैं और दुर्भिक्ष आदिका भी भय नहीं है, वह भक्त प्रत्याख्यान के अयोग्य है।]

४. अन्त समयमें धारनेका निर्देश

त.सू./७/२२ मारणान्तिकी सन्लेखनां जीविता ।२२।

स्ति./७/२२/३६२/१२ 'अन्तप्रहणं' तद्भवनरणप्रतिवन्द्यर्थम् । मरण-मन्तो मरणान्तः । स् प्रयोजनमस्येति मारणान्तिकी । —तथा वह श्रावक मारणान्तिक सल्लेखनाका प्रीति पूर्वक सेवन करनेवाला होता है। उसी भवके भरणका ज्ञान करानेके लिए सूत्रमें मरण शब्दके साथ अन्त पदका प्रहण किया है। मरण यही अन्त मरणान्त है और जिसका यह मरणान्त ही प्रयोजन है वह मारणान्तिकी कहलाती है। (रा.वा./७/२२/२/११०/२१); (चा.सा./४७/६)

दे. श्रावक/१/३/ [अन्त समय समाधिमरण धरनेवाला श्रावक साधक कहलाता है।]

५. अन्त समयकी प्रधानताका कारण

भ, आ./मू./ गा. जो जाए परिणिमित्ता लेस्साए संजुदो कुणइ कालं।
तण्लेस्सो जववज्जइ तल्लेस्से चैव सो सग्गे।१६२२। जिंद दा सुभाविदण्ण वि परिमकालिम संकिलेसेण। परिवडदि बेदणट्ठो स्वव्यो
संथारमारूढो।१६४०। सुचिरमित णिरिदच.र विहरित्ता णाणदंसणचरित्ते। मरणे विराधियत्ता अर्णतससारिओ दिट्ठो।१६१ = जो
जीव जिस लेश्यासे परिणत होकर मरणको प्राप्त होता है, वह उत्तर
भवमें उसी लेश्याक्त धारक होकर स्वर्गमें उत्तन्न होता है।१६२२।
जिसने अत्माको आराधनाओंसे सुसंस्कृत किया था, तो भी मरणसमय संविद्यापरिणामोंकी उत्पत्ति होनेसे वह संस्तरपर आरूढ
हुआ श्रमण सन्मार्गसे भ्रष्ट होता है।१६४८। पूर्वमें न आराधी गयी
रत्नत्रयकी आराधनाको यदि अन्तकालमें कोई भाये तो वह जीव
स्थानुके दशन्तको प्राप्त होता है (अर्थाद्य जैसे अन्धेको स्तम्भसे
टकराकर नेत्र खुल जानेसे भाग्य वश वहाँसे रत्नप्राप्ति हो जाय ऐसे
ही उसे समफना १२४।)

सा.घ./=/१६ आराखोऽपि चिरं धर्मो विराद्धो मरणे मुधा। सत्त्वाराद्ध-स्तत्क्षणेंऽहः क्षिपत्यपि चिरार्जितं १९६। = चिर काससे आराधन किया हुआ धर्म भी यदि मरनेके समय छोड़ दिया जाय वा उसकी विराधना की जाय तो वह निष्फत हो जाता है। और यदि मरनेकें समय उस धर्मकी आराधना की जाय तो वह चिर कालके उपाजित पापोंका भी नाश कर देता है।

६. परन्तु केवल अन्त समयमें घरना अत्यन्त कठिनं है

भ.आ./मू. व. वि./२४/०३ विरममावित्रस्तत्रयाणामन्तर्मुहुर्तकाल-भावनानां सिद्धिरिष्यते तरिक चिरमावनयेश्यस्योत्तरमाच्छे-'पुत्र्वमभाविद्योगो आराधेन्ज मरणे जदि वि कोई। लण्णुग-दिट्ठंतो सो तं खु पमाणं ण सक्वत्य १२४। = जिन्होंने बहुत काल-पर्यंत रत्तत्रयका आराधन नहीं किया परन्तु केवल अंतर्मुहूर्त कालपर्यन्त ही आराधन किया है, उनको भी मोझलाभ हो गया है। अतः चिरकाल पर्यन्त रत्तत्रयको भावना आवश्यक नहीं है ! उत्तर -पूर्व कालपें जिस जीवने रत्तत्रयका कभी आराधन नहीं किया है, वह मरणसमय उसकी आराधना करले, ऐसा व्यक्ति स्थानुके दृष्टान्त-को प्राप्त होता है। अर्थात् बिलकुल उस अन्धे व्यक्तिकी भाँति है जो कि अकस्मात् स्थानुसे सर टकरा जानेके कारण नेप्रवान हो गया है और साथ ही उस स्थानुकी जड़में पड़े रत्नका लाभ भी जिसे हो गया हो। २४।

७, अतः सब्लेखनाकी मावना व अभ्यास जीवन पर्यन्त करना योग्य है

- भ. आ./मू./१८-२१ जिंद प्वयणस्स सारो मरणे आराहणा हवदि दिट्टा । कि दाइं सेसकाले जिंद जददि तवे चरित्ते य।१८। आराहणाए कज्जे परियम्मं सञ्बदा वि य कायव्यं । परियम्मभाविदस्स हु सुहसङ्का-राहणा होइ।१६। जह रायकुलपसुओ जीग्यं णिच्चमधि कुणइ परि-कम्मं। तो जिदकरणो जुद्धे कम्मसमत्यो भनिस्सदि हि ।२०। इय सामण्णं साधू वि कुणदि णिच्चमवि जोगपरियम्मं । तो जिदकरणो मरणे भाणसमत्यो भवित्संति ।२१। ≈प्रश्न - आगमकी सार्भृत रतन-त्रयपरिणति मरणकालमें यदि होती हुई देखी जाती है तो उससे भिन्न कालमें चारित्र व तपश्चरण करने की बया आवश्यकता है। 1१८। उत्तर-मरण समयमें रश्नत्रयकी सिद्धिके लिए सम्यग्दर्शनादि कारणकलाप सामग्रीकी अवश्य प्राप्ति कर लेना चाहिए, अर्थात् उसका सर्वदा अभ्यास करना योग्य है, क्यांकि ऐसा करनेत्रालेको मरण समयमें सुलपूर्वक अर्थात् विना क्लेशके उस आराधनाकी सिद्धि हो जातो है। १६। जेसे राजपुत्र शस्त्रविद्याका नित्य अभ्यास करता है और उसीसे वह युद्धमें उस प्रकारका कर्म करनेको समर्थ होता है .२०। इसी प्रकार साधु भी आराधनाके योग्य नित्य अभ्यास करता है. इसीसे वह जितेन्द्रिय होता हुआ मरण समय घ्यान करनेको समयं हो जाता है। २१।
- पु. सि. ज /१७६-१७६ इयमेकैन समर्था धर्मस्वं से मया समं नेतुष् ।
 सततिमिति भावनीया पश्चिमसन्तेखना भवत्या। १९७६। मरणान्तेऽवश्यमहं विधिना सन्तेखनां करिष्यामि। इति भावनापरिणतो
 नागतमपि पालपेदिदं शीलस् ।१७६। = यह एक ही सन्तेखना मेरे
 धर्मरूपो धनको मेरे साथ ते चलनेको समर्थ है। इस प्रकार भक्ति करके
 मरणान्त सन्तेखनाको निरन्तर भावना वाहिए।१७६। मैं मरणकालमें अवश्य ही शास्त्रोक्त विधिसे समाधिमरण करूँ गा इस प्रकार
 भावनारूप परिणति करके मरणकाल प्राप्त होनेके पहले ही यह सन्तेखनावत पालना चाहिए।१७६। (सा. ध/७/६७)
- सा. धः/८/१८-३१ सन्यग्भावितमार्गोऽन्ते स्यादेवाराधको यदि । प्रति-रोधि सुदुर्वारं किंचिन्नोदेति बुष्कृतम् ११८ प्रस्थिता यदि तीर्थाय त्रियते बान्तरे तदा । अस्त्येवाराधको यस्माह्मभावता भवनाशिनी १३१ = यदि कोई दुनिवार प्रतिरोधी कर्म उदयमें न आवे तो सम्यक् प्रकारसे पूर्वमें भावित रहनत्रयके कारण वह अन्तकालमें अवश्य ही

आराधक होता है १६८। तीर्थ क्षेत्र या नियिषक प्रति प्राःम्भ कर दिया है गमन जिसने, ऐसा व्यक्ति यदि मार्गमें मरणको प्राप्त हो जाये तो भी उस भावनाके कारण आराधक ही गिना जाता है, क्यों कि भावना भवनाश्चिमी होती है १३०।

८. अन्त समय व जीवन पर्यन्तकी आराधनाका समन्यय

भ, आ, बि, १९-१६ मरण या विराधना सा महतीं संसृतिमावहित । अन्यदा जातायामि विराधनायां मृतकाले रत्नत्रयोपगती संसारो- चिछित्तर्भवत्येव ततो मरणकाले प्रयत्नः कार्य इत्यस्माभिरूप- न्यस्तम् । इतरकालवृत्तं तु रत्नत्रयं संवरिनर्जरयोधितिकर्मणां च क्षयकारणिनिमत्तं इतीष्यत एवं । चमरण समयमें रत्नत्रयंकी विराधना करनेसे विराधकको दीर्घकालतक संसारमें भ्रमण वरना पड़ता है। परन्तु दीक्षा, शिक्षा आदि काल (दे. काल) में विराधना हो गयी हो तो भी मरणकालमें रत्नत्रयंकी प्राप्ति हो जानेसे संसारका नाश हो जाता है। अतः मरणकालमें रत्नत्रयं परिणति करनी चाहिए। ऐसा हमारा अभिप्राय है। परन्तु इतर कालों में की गयी आगधना भी विफल नहीं होती, उससे कर्मका संवर व निर्जरा होती है, तथा घाती कर्मीं क्षय करनेमें वह निमित्त होगी, ऐसा हम समभ्भते हैं।

३. भक्तप्रत्याख्यान आदि विधि निर्देश

१. सब्लेखनामरणके व विधिके भेद

- दे मरण/१/४.[पण्डितमरण तीन प्रकार है—भक्तप्रत्याख्यान, इंगिनी व प्रायोपगमन । भक्तप्रत्याख्यान दो प्रकार है—सविचार व अविचार । अविचार तीन प्रकार है—निरुद्धतर व परम निरुद्ध । निरुद्ध दो प्रकार है—प्रकाशस्त्र और अप्रकाशस्त्र ।]
- म, आ,/मू,/१६६/३६२ किण्णु अधालंदिवधी भत्तपइण्णेंगिणी यपरिहारो। पादोवगमणजिणकिष्ययं च बिहरामि पिडविष्णो।१६६।—
 अथालन्द बिधि, भक्तप्रतिज्ञा, इंगिनीमरण, परिहार विशुद्धि, चारित्र,
 पादोपगमन, मरण और जिनकल्पावस्था, इनमेंसे कौन-सी अवस्थाका
 आध्य कर मैं रत्नत्रयमें विहार करूँ ऐसा विचार करके साधुको
 धारण करने योग्य अवस्थाको धारण करके समाधिमरण करना
 चाहिए।

२. भक्त प्रत्याख्यान आदि तीनके रुक्षण

- ध. १/१.१.१/२३/४ तत्रातमपरोपकारितरपेशं प्रायोपगमनस्। आत्मोप-कारसम्यसं परोपकारितरपेशं इंगिनीमरणस्। आत्मपर पकारसम्य-पेशं भक्तप्रयाख्यानिमित।—[मोजनका क्रिमक स्याग करके शरीर-को कृश करनेको अपेशा तीनों समान हैं। अन्तर है शरीरके पति अपेशा भावमें] तहाँ अपने और परके उपकारकी अपेशा रहित्थं समाधिमरणको प्रायोपगमन विधान कहते हैं। जिस संन्यासमें अपने द्वारा किये गये उपकारकी अपेशा रहती है किन्तु दूसरेके द्वारा किये गये वैयावृत्त्य आदि उपकारकी अपेशा रहती है किन्तु दूसरेके द्वारा इंगिनी समाधि कहते हैं। जिस संन्यासमें अपने और दूसरे दोनोके द्वारा किये गये उपकारकी अपेशा रहती है, उसे भक्तप्रत्याख्यानं संन्यास कहते हैं। (भ. आ/वि/२०६४/१९६१); (गो.क /स्./६१/६७); (चा. सा./१६४४/४); (भा. पा./टी./३२/१४६/१४)
- भ. आ /वि /२६/१९३/६ पादाम्यामुशगमनं ढीकनं तेन प्रवितं मरणं पादोषगमनमरणम् । इतरमरणयोरपि पादाम्यामुपगमनमस्तीति त्रे सिद् ध्यानुपपत्तिरिति चैन्न, मरणविदेषे वस्यमाणलक्षणं रूढिस्पेणामुं प्रवत्तेते स्थानं च वह प्रायोग्यशब्देनोच्यते । अस्य गमत् प्रायोग्यं सहननं संस्थानं च वह प्रायोग्यशब्देनोच्यते । अस्य गमत् प्राप्तिः, तेन कारणभूतेन यक्षिकंत्र्यं करणं ततुक्यते पारागमण्

मरणमिति। भज्ये सेव्यते इति भक्तं, तस्य पहण्णा त्यागी भक्त-यइंग्गा । इतरयोरिप भक्तप्रत्याख्यानसंभवेऽपि काद्वनशान्मरणविशेषे एव शब्दोऽयं प्रवर्तते । इंगिनीशब्देन इंगितमारमनो भण्यते स्वाभि-प्रायानुसारेण स्थित्वा प्रवर्त्यमानं मरणं इंगिनीमरणं । व्यादोषणमन इसका शब्दार्थ, 'अपने पाँचके द्वारा संघरे निकलकर और योग्य प्रदेशमें जाकर जो मरण किया जाता है वह पादीपगमन मरण है। इतर मरणोंमें भी यद्यपि अपने पाँबसे चलकर भरण करना समान है, परन्तु यहाँ रूढिका आश्रय लेकर मरण विशेषमें ही यह सक्षण घटित किया है, इसलिये मरणके तीन भेदोंकी अनुपरित्त नहीं बनती है। अथवा गाथामें 'पाओग्गएमणमरणं ऐसा भी पाठ है। उसका ऐसा अभिप्राय है कि भवका अन्त करने योग्य ऐसे संस्थान और संहतनको प्रायोग्य कहते हैं। इनकी प्राप्ति होना प्रायोग्यगमन है। अर्थात् विशिष्ट संस्थान व विशिष्ट संहनन वाले ही प्रायोग्य अंगीकार करते हैं। भक्त शब्दका अर्थ आहार है और प्रतिज्ञा शब्दका अर्थ त्याग होता है। अर्थात आहारका त्याग करके मरण करना वह भक्त-प्रत्याख्यान है। यदापि आहारका त्याग इतर दोनों मरणोंमें भी होता है, तो भी इस लक्षणका प्रयोग रुद्धिका मरण विशेषमें ही कहा गया है। स्व अभिप्रायको इंगित कहते हैं। अपने अभिप्रायके अनुमार स्थित होकर प्रवृत्ति करते हुए जो मरण होता है उसी को इंगिनीमरण कहते हैं।

३. तीनोंके योग्य संहनन काल व क्षेत्र

भ. आ./वि./६४/११०/८ मरणं सा चैव भक्तप्रत्याख्यानमृतिरेव । ...एइंहि काले ...। संहननिवशेषसमन्वितानां इतरमरणद्वयं। न च संहनन-विशेषाः वज्रम्वभनाराचादयः अद्यक्षेऽमुश्मिनक्षेत्रे सन्ति गणानां । ... यदि ते वर्तियतुं इदानीतनानामसामध्यं कि तदुपदेशेनेति चेत् स्वरूपपरिज्ञानात्सम्यण्ज्ञानां।

भ, आ / बि / २०४१/१७७६/१७ आये षु त्रिषु संहननेषु अन्यतमसंहननः शुभसंस्थानोऽभेदाधृतिकवचो जितकरणो जितनिहो नितरां शुरः।

=१. भक्तप्रयाख्यान मरण ही इस कालमें उपयुक्त है। इतर दो अर्थात् इंगिनी व प्रायोगगमनमरण संहनन विशेष क्षालों के ही होते हैं। वज्रव्यभ आदि वे संहनन विशेष इस पंचमकालमें इस भरतक्षेत्रमें मनुष्यों में होते नहीं हैं। यदापि इंगिनी व प्रायोगगमनकी सामर्थ्य इस कालमें नहीं है, फिर भी उनके स्वरूपका परिज्ञान कराने के लिए उनका उपदेश दिया गया है। २. इंगिनीमरणके घारक सुनि पहिले तीन (अर्थात् वज्रव्यभ नाराच, वज्रनाराच और नाराच) सहननोमें से कोई एक संहननके घारक रहते हैं। उनका शुभ संस्थान रहता है। वे निद्राको जीतते हैं। महाबल व शुर रहते हैं।

४. तीनोंके फल

भ. आ,/मू,/गा, इयमुक्क स्सियमाराधणमणुपाले सु केवली भविया।
सोगगसिहरवासी हवं ति सिद्धा ध्रुयिक लेसा।१६२६। इयमिक भमाराधणमणुपालि सा सरीरयं हिच्चा। हुंति अणुक्तरवासी देवा सुविसुद्रलेस्सा य ११६३३। दंसणणाणचिरत्ते उक्किट्ठा उक्तमोपधाणा य ।
इरियावहपडिवण्णा हवं ति लवसक्तमा देवा।१६३४। जे वि हु
जहण्णयं तेउलेस्समाराहणं उवणमंति । ते वि हु सोधम्माइसु हवं ति
देवा ण हेट्ठिलता ।१६४०। एवमधक्तवादिधि साधिका इंगिणी
धुदक्तिसा। सिउमंति केइ केई हवं ति देवा विमाणेसु ।२०६१।
— इस प्रकार भक्तप्रस्थात्व्यानको उक्तृष्ट आराधनाका पालन कर
केवलज्ञानको प्राप्त कर लेते हैं। सम्पूर्ण कर्मक्लेशसे मुक्त होकर लोकाप्र
शिखरवासी सिद्ध परमेष्ठी होते हैं।१६२६। उसी भक्तप्रत्यात्व्यानकी
मध्यम आराधनाका पालन कर शरीरका त्याग करनेवाले सुनिराज
विशुद्ध लेश्याको घारण कर अर्थाद उत्कृष्ट शुक्ललेश्याके स्वामी बनकर अनुक्तरवासी देवों से उत्पन्न होते हैं।१६३३। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-

चारित्र पालनेमें पूर्ण दक्ष, उरकृष्ट तप ध्यान वगैरह निश्रमों के धारक, ईर्यापथको जिन्होंने प्राप्त किया है अर्थाद् करपवासी देवत्वकी प्राप्ति योग्य शुभासवको जो प्राप्त हो गये हैं ऐसे मुनिराज कवसत्तम देव होते हैं। अर्थाद् मरकर नवग्रै वेयक, अनुदिश विमानमें रहनेवाले देव हो जाते हैं।१६३४१ तेजोलेश्याके धारक ऐसे क्षपककी भक्तप्रत्याख्यान आराधनाको जवन्य आराधना कहते हैं। इस आराधनाके आराधक क्षपक सौधमादिक स्वर्गोमें देव होते हैं। इन देवोंसे हीन देवोंमें इनका जन्म नहीं होता।१६४०। यहाँ तक जो इंगिनी मरणकी विधि कही है, उसको सिद्ध करके कोई मुनि सम्पूर्ण कर्मवलेशोंको दूर करके मुक्त होते हैं। और कोई वैमानिक देव होते हैं।२०६१।

५. भक्त प्रस्थाच्यानकी जघन्य व उत्कृष्ट कालावधि

भ. आ./पू. २५२/४०४ उक्करसेण भत्तपश्णाकालो जिणेहि णिहिट्ठो । कालम्मि संपहुत्ते मारसम्हिसाणि पुण्णाणि ।२५२। - आयुष्कालः अधिक होने पर अर्थात् भक्त प्रतिज्ञाका उत्कृष्ट कालप्रमाण जिनेन्द्र भगवान्ने नारह वर्ष प्रमाण कहा है ।२५२।

घ. १/२.१.१/२४/१ तत्र भक्तप्रत्याच्यानं त्रिविधं जघन्योत्कृष्टमध्यम-भेदात्। जवन्यमन्तर्मृहूर्तप्रमाणम्। उत्कृष्टभक्तप्रत्यास्यानं द्वादश्-वर्षप्रणाम्। मध्यमेत्योरन्तरालामिति। —भक्तप्रत्याख्यान विधि जधन्य, मध्यम और उत्कृष्टके भेदसे तीन प्रकारकी है। जघन्यका प्रमाण अन्तर्मृहूर्तमात्र है। उत्कृष्टका बारह वर्ष है। इन दोनोंके अन्तराजवर्ती सर्व कालप्रमाण मध्यम भक्तप्रत्याख्यानका है। (गो. क./सू./१६-६०/१७); (चा.सा./११४/४); (अन, ध./७/१०१/७२६)

६. साधुओंके लिए भक्त प्रत्याख्यानकी सामान्य विधि

मु. आ./१०६-१११ सब्बं पाणारं मं पचक्रतामि अलीयवयणं च। सब्बमदल्तादाणं मेहुण्ण परिगाहं चेव।१०६। सम्मं मे सब्बभ्देसु वेरं मज्मं
ण केण वि। आसाए कोसरित्ताणं समाधि पडिवज्जह १९१०। सब्बं आहारिविहिं सण्णाओ आसाए कसाए य। सब्बं चेय ममर्त्ति जहामि सब्बं खमावेमि १९११। चसंक्षेपसे प्रत्याख्यान करनेवाला ऐसी प्रतिज्ञा करता है, कि मैं सर्व प्रथम हिंसादि पांचों पापोंका त्याग करता हूँ १९०६। मेरे सम जीवोंमें समता भाव है, किसीके साथ भी मेरा वेर नहीं है इसलिए मैं सर्व आकांकाओंको छोड़कर समाधि (शुद्ध) परिणामको प्राप्त होता हूँ १९१०। मैं सम अन्नपान आदि आहारकी अवधिको, आहार संक्षाको, सम्पूर्ण आञाओंका, कषायोंका और सर्व पदार्थीमें ममत्व भावका त्याग करता हूँ १९१९। (दे, संस्कार/२ में ३१वीं क्रिया)

दे. सक्लेखना/३/१ [जी वितका सन्देह होने पर तो 'उपसर्ग टलने पर पारणा कर छूँ गा' ऐसा आहारस्थाग करता है, और मरण निश्चित होने पर सर्वथा आहारका त्याग करता है।]

७. समर्थ श्रावकोंके छिए भक्त प्रत्याख्यानकी सामान्य विधि

र. क. शा./१२४-१२८ स्तेहं वैरं संगं परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः।
स्वजनं परिजनमिष च क्षान्त्वा क्षमयेत प्रियवचनैः ।१२४। आलोच्य
सर्वमेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजं । आरोपयेन्महावतमामरणस्थायि निश्शेषं ।१२४। शोकं भयमवसादं बतेदं कालुष्यमरितमिषि
हित्या । सत्त्वोत्साहमुदीयं च मनः प्रसाद्यं श्रुतौरमृतैः ।१२६। आहारं
परिहाच्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्ययेत्पानं । स्निग्धं च हापयित्वा
खरपानं पूर्येत्क्रमशः ।१२७। खरपानहापनामिष कृत्वा कृत्वोपवासमिष
शवस्या । पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन ।१२८। = [सन्तेखना
धारण करनेवाला शीत उष्णमें हर्ष विवाद न करे—(चा. सा.)]
स्तेह, वैर, परिग्रहको छोड्कर सुद्ध होता हुआ प्रियं वचनोंसे अपने

कुटुम्बियों और चाकरोंसे भी क्षमा करावे और आप भी सबको क्षमा करें ।१२४। छहकपट रहित और कृत कारित अनुमोदना सहित किये हुए समस्त पायोंकी आलोचना करके मरण पर्यन्त रहनेवासे समस्त महावतोंको धारण करे ।१२६। शोक, भय, विषाद, राग कलुषता और अरितको स्थाग करके तथा अपने बल और उरसाहको प्रगट करके संसारके दुंखल्पी संतापको दूर करनेवाले अमृतरूप शास्त्रोंके अवणसे मनको प्रसन्न करें ।१२६। क्रम क्रमसे आहारको छोड़कर दुग्ध वा छाछको बढ़ावे और पीछे दुग्धादिकको छोड़कर कांजी और गरम जलको बढ़ावे ।१२७। तरपश्चात उच्च जलपानका भी स्थाग करके और शबस्यनुसार उपवास करके पंचनमस्कार मन्त्रको मनमें धारण करता हुआ शरीरको छोड़े ।१२न। (चा. सा./४८/२); (सा. ध./न/१७.६४.६५,६७); (बिशेष दे. सक्लेखना/४)।

८. असमर्थ श्रावकोंके लिए मक्तप्रस्याख्यानकी सामान्य विधि

वसु, था./२०१-२०२ घरिकण बत्थमेतं परिग्गहं छंडिकण अवसेसं।
सिंगहे जिणालए वा तिनिहाहारस्स वोसरणं।२०१। जं कुणइ गुरुसयासम्मि सम्ममालोइकण तिनिहेंण। सण्लेखणं चल्थं सुत्ते
सिंग्लावयं भणियं।२७२। = [उपरोक्त दोनों शीर्षकोंमें कथित राग
हेंपका त्याम, समता धारण और परिजनों खादिसे हमा आदिकी
यहाँ भी अनुवृत्ति कर लेनी चाहिए] वस्त्रमात्र परिग्रहको रखकर
और अवशिष्ट समस्त परिग्रहको छोड़कर अपने हो घरमें अथना
जित्तालयमें रहकर जो धात्रक गुरुके समीपमें मन बचन कायसे अपनी
भले प्रकार आलोचना करके पानके सिनाय शेष तीन प्रकारके आहारका (खाद्य, स्वाद्य और लेह्य इन तीनका) त्थाम करता है, उसे
उपासकाध्ययन सूत्रमें सन्तेखना नामका चौथा शिक्षावत कहा गया
है।२७१-२७२।

सा. घ./८/६६ — ग्याच्याचाने स्याम्भो वा समाध्यर्थं विकल्पयेत्। भृशं शक्तिभये जहात्त्तदण्यासन्नमृत्युकः ।६६। = ग्याघि आदिकी अपेक्षासे समाधिमें निश्चल होनेके लिए उस क्षपकको गुरुकी आञ्चानुसार केवल पानी पीनेको प्रतिज्ञा रख लेनी चाहिए। और मृत्युका समय निकट आनेपर जब शरीरकी शक्ति अत्यन्त क्षीण हो जाय तब उसे अलका भी त्याग कर देना चाहिए। ६६। (और भी दे. सण्लेखना/४/१४३)।

दे. मरण/१/४ [त्रिना सण्तेखना धारण किये अपने घरमें ही संस्तरारूढ हो साम्यता पूर्वक शरीरको त्यागना वालपण्डित मरण है]।

९. मृत्युका संशय या निश्चय होनेकी अपेक्षा मक्त-प्रत्याख्यान विधि

म्. आ,/१९२-१९४ एदिन्ह देखयाले उननकमी जीविदस्स, जिंद मज्मं।
एदं पचचनलाणं णित्थिणो पारणा होज्जं।११२। सन्नं आहारिनिहं
पचनत्वामी य पाण्यं वज्ज । उनिहं च नोसरामि य दुविहे तिनिहेण
सावज्जं।११३। जो कोइ मज्म जन्धी सन्मंतरनाहिरो य हवे।
आहारं च सरीरं जावाजीवं य वोसरे।११४। = जीवितमें सन्देह
होनेकी अवस्थामें ऐसा विचार करे कि इस देशमें इस कालमें मेरा
जीनेका सद्भाव रहेगा तो ऐसा त्याग है कि जब तक उपसर्ग रहेगा
तव तक आहारिदिकका त्याग है। उपसर्ग दूर होनेके पश्चात यदि
जीवित रहा तो फिर पारणा करूँ ग।११२। [पर जहाँ निश्चय हो
जाय कि इस उपसर्गिदमें मैं नहीं जी सकूँगा नहाँ ऐसा त्याग
करे।] मैं जनको छोड़ अन्य तीन प्रकारके आहारका त्याग करता
हूँ। बाह्य और अभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहको तथा मन नचन
कायकी पाप कियाओंको छोड़ता हूँ।१९३। जो कुछ मेरे अभ्यन्तर
बाह्य परिग्रह है उसे तथा चारों प्रकारके आहारोंको और अपने
श्रारेरको यावज्जोतून छोड़ता हूँ। यहो उत्तमार्थ त्याग है।१९४।

सिवचार व अविचार भक्त प्रत्याख्यानके सामान्य लक्षण व स्वामी

भ. आ./वि./६६/१६२/६ द्विविधमेव भक्तप्रत्याख्यानं । सविचारमध अविचारं इति । विचरणं नानागमनं विचारः। विचारेण वर्तते इति सिवचारं एतदुक्तं भवति । वश्यमाणाई लिङ्गादि विकल्पेन सिहतं भक्तप्रत्याख्यानं इति । अविचारं बक्ष्यमाणाहि दिनानाप्रकाररहितं । भवतु द्विविधं । सर्विचारभक्तप्रत्यारूयानं कस्य भवति इत्यस्योत्तरं । सविचारं भक्तप्रत्यारूयानं अणागाढे सहसा अनुपस्थिते मरणे चिर-कालभाविनि मरणे इति यावत् । सपरक्कमस्स सह पराक्रमेण वर्तते इति सपराक्रमस्तस्य भवे भवेत् । पराक्रमः खत्साहः एतेनैव सहसोप-स्थिते मरणे पराक्रमरहितस्य अविचारभक्तप्रत्याख्यानं भवतीति लम्यते यतो विचारभक्तप्रस्याख्यानं अस्य अस्मिन्काले इति सुत्रे नोक्तं। = भक्तप्रत्यारुयानमरणके सविचार व अविचार ऐसे दो भेद हैं। तहाँ नाना प्रकारसे चारित्र पालना, चारित्रमें विहार करना विचार है। इस विचारके अर्ह, लिंग आदि ४० अधिकार हैं जिनका विवेचन आगे करेंगे (दे. सल्लेखना/४) उस विचारके साथ जो वर्तता है वह सविचार है और जो उन अई लिंगादि रूप विचारके विकल्पोंके साथ नहीं वर्तता सो अविचार है। तहाँ जो गृहस्य अथवा मुनि उत्साह व बलयुक्त है और जिसका मरणकाल सहसा उपस्थित नहीं हुआ है अर्थात जिसका मरण दीर्घकालके अनन्तर प्राप्त होगा ऐसे साधुके मरणको सविचारभक्तप्रत्याख्यान मरण कहते हैं। जिसको सामर्थ्य नहीं है और जिसका मरणकाल सहसा उपस्थित हुआ है ऐसे पराक्रमरहित साधुके मरणको अधिचारभक्त प्रत्याख्यान कहते। हैं। [तहाँ सविचार विधि तो आगे सल्लेखना/४ के अन्तगेत पृथक्से सविस्तार दो गयी है और अविचार विधि निम्न प्रकार है।]

११. अविचार भक्तप्रत्याख्यान विधि

भ. आ./मू./२०११-२०२४ तस्थ अविचारभत्तपइण्णा नरणम्मि होइ आगाढो । अपरक्रमस्स मुणिणो कालम्मि असंपुहत्तम्म ।२०११। तत्थ पढमं णिरुद्धं णिरुद्धतरयं तहा हवे विदियं। तदियं परमणिरुद्धं पवं तिविधं अतीचारं ।२०१२। तस्स णिरुद्धं भणिदं रोगादंकेहि जो सम्भिभूदो । जंघाबलपरिहीको पर्गणगमणस्मिण समस्थो ।२०१३। इय सण्णिकृद्धमरणं मणियं अणिहारिमं अवीचारं । सा चेन जधाजीगां पुट्यूक्तविधी हवदि तस्स ।२०१५। दुविहंतं पि अणीहारिमं पगासं च अप्पमासं च। जगणादं च पगासं इदरं च जगेण अण्णादं ।२०१६। खवयस्स चित्तसारं खित्तं कालं पहुच सजर्णवा। अण्णम्मिय तारिसयम्मि कारणे अप्पनासं तु ।२०१७। बालिगवण्यमहिसगयरिख पडिजीय तेण मेन्छेहि। मुन्छाविसुनियादीहि होन्ज सज्जो हु वावसी ।२०१८। जाव ण बाया स्विप्पदि वर्लच विरियंच जाव कायम्मि । सिक्वाए बेदणाए जाव य चित्तं ण विवस्वत्तं ।१२१६। णच्या 🔻 संबटिडजं तमाउगं सिम्धमेव तो भिक्खू। गणियादीणं सण्णिहिदाणं आलोचए सम्मं १२०२०। एवं णिरुद्धदरयं विदियं अणिहारिमं अबीचारं। सो चेत्र जधाजोग्गे पुटबुत्तविधी हत्रदि तस्स ।२०२१। वालादिए हिं जइया अन्खित्ता होज्ज भिनखुणो वाया। तहया परमणिरुद्धधं भणिवं मरणं अवीचारं ।२०२२। णचा संविधिजं तमाउनं सिन्धमेव तो भिक्खू। अरहतसिद्धधसाहूण अंतिने सिन्ध-मालोचे ।२०२३। आराधणाविधी जो पुन्वं उववण्णिदो सवित्थारी। सो चेव जुज्जमाणो एत्य विही होदि णादब्बो ।२०२४। 🕒 पराक्रम-रहित मुनिको सहसा मरण उपस्थित होनेपर अविचारभक्त प्रत्यान रूयान करना योग्य है।२०१२। वह तीन प्रकारका है-निरुद्ध निरुद्धतर व परमनिरुद्धतर व परमनिरुद्ध ।२०१२। रोगोंसे पीड़ित होनेके कारण जिसका जंबाबत क्षीण हो गया है और जो परगणने 📲 जानेको समर्थ नहीं है, वह मुनि निरुद्ध अविचार भक्तप्रत्याख्यानि

करते हैं।२०१३। यह मुान परगणमें न जाकर स्वगणमें ही रहता हुआ ययायोग्य पूर्वोक्त अथरित् सविचार भक्तनस्यारुपान वाली विधिका पालन करता है। २०१५। इसके दो भेद हैं - प्रकाश और अप्रकाश। जो अन्य जनोंके द्वारा जाना जाय वह प्रकाशस्त्र है और जो दूसरोंके द्वारा न जाना जाय वह अप्रकाशरूप है। २०१६। क्षपकका मनोबल अथित धेर्य, क्षेत्र, काल, उसके बान्धव आदि कारणींका विचार करके क्षपकके उस निरुद्धाविचार भक्तप्रत्याख्यानको प्रगट करते हैं अथवा अप्रयट करते हैं। अर्थात् अनुकूत्त कारणोंके होनेपर तो वह मरण प्रयट कर दिया जाता है और प्रतिकृत कारणों के होने गर प्रपट नहीं किया जाता १२०१७। सर्प, अग्नि, व्याव, भैंसा, हाथी, रीख, राजु, चीर, म्लेड्य, मूर्च्या, तीव शुलरोग इरधादिसे तत्काल मरणका प्रसंग प्राप्त होनेपर ।२०१८। जन तक बचन व कायनल शेष रहता है और जन तक तीव वेदनासे चित्त आकुलित नहीं होता।२०११। तम तक आयुष्यको प्रति क्षण क्षीण होता जानकर शीध ही अपने गणके आचाये आदिके पास अपने पूर्व दोषोंकी आलोचना करनी चाहिए। २०२०। इस प्रकार निरुद्धतर नामके दूसरे अविचार भक्त प्रत्याख्यानका स्वरूप है। इसमें भी यथा योग्य पूर्वीक्त अर्थात् सविचार भक्त प्रस्थारुधानवाली सर्व विधि (दे. सण्डेखना/४) होती है।२०२१। व्याधादि उपरोक्त कारणोंसे पीड़ित साधुके शरीरका बल और बचन बन यदि शीण हो जाय तो परमनिरुद्ध नामका मरण प्राप्त होता है।२०२२। अपने आयुष्यको शोध हो क्षीण होता जान वह मुनि शीव ही मनमें अई न्त व सिद्ध परमेष्ठीको धारण करके उनसे अपने दोषोंकी आलोचना करें।२०२३। आराधना विधिका जो पूर्वमें स्विस्तार वर्णन किया है अर्थात स्विचार भक्तप्रत्याख्यान विधि (दे. सः जेखना/४) उसीकी ही यहाँ भी यथायोग्य रूपसे योजना करनी चाहिए ।२०२४।

१२. इंगिनी मरण विधि

भ.अः./मू./२०३०-२०६१/१७७३ जो भत्तपदिण्णाए उतनकमो बण्णिदौ सिवत्थारो । सो चेत्र जधाजोग्गो उवक्कमो इंगिफीए वि ।२०६०। णिप्पादिता सगणं इंगिणिविधिसाधणाए परिणमिया।...।२०३२। परियाइगमालो चिय अणुजा जिला दिसं महज जस्स । ति विघेण खमावित्ता सत्रालबुड्ढाउलं गच्छं ।२०३३। एवं च णिक्कमित्ता अंतो बाहिंच थंडिले जोगे। पुढवीसिलामए वा अप्पाणं णिजवे एकी ।२०३६। पुटबुताणि तगाणि य जाचित्ता थ'डिलम्मि पुटबुत्ते । जद÷ णाए संथरिता उत्तरसिरमधन पुन्वसिरं ।२०३६। अरहादिअंतिगं तो किचा आलोचणं सुपरिसुद्धं । दंसणणाणचरित्तं परिसारेदूण णिस्सेसं ।२०३८। सञ्जं आहारविधि जावजीवाय वीसरित्ताणं। बोसरिद्यण असेसं अम्भंतरबाहिरे गंथै।२०३१। ठिचा णिसिवित्ता वा तुबहिदूणव सकायपडिचरणं । सयमेव णिरुवसंग्गे कुणदि विहारिन्म सो भयवं । ।२०४१। सयमेव अप्पणो सो करेदि आउंटमादि किरियाओ। उचारादीणि तथा सयमेत्र विकिचिदे विधिणा ।२०४२। सन्त्री पोग्गलकाओ दुक्लताए जदि तमुक्णमेजा। तथिव य तस्स ण जायदि **फ्साणस्स विसोत्तिया को वि ।२०४७ स**न्दो पोरगलकाओ सोक्खन्ताए जदि वि तमुवणमेष्ण । तथ वि हू तस्स ण जायदि ज्ञाणस्स विसीतिया को वि ।२०४८। वायणपरिघट्टणपुरुछणाओ मोत्तृण तथय धन्मथुर्दि । सुत्तच्छपोरिसीसु वि सरेदि सुत्तत्थमैयः मणो।२०४२। एवं अट्ठवि जामे अनुबट्टो तख उमादि एयमणो। जिद् आध्या णिहा हिक्कि सो तत्थ अनिदिण्णो ।२०५३। सङ्भाय-कालपडिलेहगादिकाओं ण संति किरियाओ। जम्हा सुसाणमज्भे तस्स य कार्ण अपडिसिइघं ।२०५४। आनासगं च कुणदे उत्रधी-क।लम्मि जं जहिं कमदि। उबकरणं पि पडिलिहइ उबधोकालम्मि जदणाए ।२०४४। पादे कंटयमार्वि अच्छिन्म रजादियं जदावेज्जाः गच्छदि अधाविधि सो परिणीहरणे य तुसिणीओ ।२०५७। वेउव्वण-

माहारयचारणस्वीरासवादिलस्वीसु । तबसा उप्पण्णासु वि विरागभाः-वेण सेवदि सो ।२०४०। मोणाभियाहणिरिदो रोगादंकादिवेदणाहेदुं। ण कुणदि पडिकारंसो तहेव तण्हाझहादीणं ।२०५१। उवएसो पुण आइरियाणं इंगिणियदो वि फिण्णिकघो। देवेहि माणुसेहि व पुट्ठो धम्मं कधेदित्ति।२०६०। ⊯भक्तः प्रतिज्ञामें जो प्रयोगविधि कही हैं (दे. सङ्लेखना/४) वही यथा सम्भव इस इंगिनीमरणर्में भी समभनी चाहिए।२०३०। अपने गणको साधुआचरणके योग्य बनाकर इंगिनी मरण साधनेके लिए परिणत होता हुआ, पूर्व दोषोंकी आसी-चना करता है, तथा संघका त्याग करनेसे पहिले अपने स्थानमें दूसरे आचार्यकी स्थापना करता है। तत्परचात् बाल वृद्ध आदि सभी गणसे क्षमाके लिए प्रार्थना करता है ।२०३२--२०३३। स्वगणसे निकल-कर अन्दर बाहरसे समान ऊँचे व ठोस स्थ डिलका आश्रय लेता है। वह स्थंडिल निर्जन्तुक पृथियी या शिलामयी होना चाहिए।२०३४। ग्राम आदिसे याचना करके लागे हुए तृष उस पूर्वोक्त स्थंडिल पर यत्नपूर्वक बिछा कर संस्तर हैयार करे जिसका सिराहना पूर्व या उत्तर दिशाकी ओर रखे ।२०३६। तदनन्तर अर्हन्त आदिकोंके समीप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमें सगे दोशोंकी आलोचना करके रत्नत्रयको शुद्धधं करे ।२०३८। सम्पूर्ण आहारोंके विकल्पोंका तथा बाह्य अयन्तर परिग्रहका यावज्ञीवन त्याग, करे ।२०३६। कामीरसर्गसे खड़े होकर, अथवा बैठकर अथवा लेट कर एक कर्वटपर पड़े हुए वे मुनिराज स्वयं ही अपने शरीरको क्रिया करते हैं।२०४१। शीच व प्रतिलेखन आदि क्रियाएँ स्वयं ही करते हैं।२०४२। जगत्के सम्पूर्ण पुद्दगल दुःखरूप या सुख रूप परिणमित होकर उनको दुःखी सुखी करनेको उद्यत होनें तो भी उनका मन ध्यानसे च्युत नहीं होता।२०४७-२०४व। वे मुनि याचना पृच्छना परिवर्तन और धर्मोपदेश इन सभोका त्याग करके सुत्रार्थका अनुप्रेक्षात्मक स्वाध्याय करते हैं।२०५२। इस प्रकार आठों पहरोंमें निदाका परित्याग करके वे एकाम मनसे तत्वोंका विचार करते हैं। यदि बलात निद्रा आ गयी तो निद्रा सेते हैं।२०६३। स्वाध्याय काल और शुद्धि वरौरह क्रियाएँ उनको नहीं हैं। श्यशासमें भी अनको ध्यान करना निषिद्ध नहीं है। २०४४। यथाकाल पंडावश्यक कर्म नियमित रूपसे करते हैं। सूर्योदय व सूर्यास्तमें प्रयत्न पूर्वक उपकरणोंकी प्रतिलेखना करते हैं।२०१४) पैरों में काँटा चुभने और नेत्रमें रजकण पड़ जानेपर वे उसे स्व**र्य नहीं निकालते।** दूसरों के द्वारा निकाला जानेपर मौन धारण करते हैं ।२०४७। तपके प्रभावसे प्रगटी वैक्रियक आदि ऋद्वियोंका उपयोग नहीं करते ।२०६८। मौन पूर्वक रहते हैं। रोगादिकोंका प्रतिकार नहीं करते ।२०५१। किन्हीं आचार्योंके अनुसार वे कदाचित उपदेश भी देते हैं।२०६०।

वे. अनला शोर्षक/अतिम गाथा-[कोई मुनि कायोरसर्गसे और कोई

दीर्घ उपवाससे शरीरका त्याग करते ?

१३. प्रायोपरामन सरण विधि

भ. आ./मू./२०६३--२००१/१६७० पाओवगमणमरणस्स होदि सो चैव बुबक्षमो सब्दो । जुतो इंगिणीमरणस्मुक्षमो जो सिवत्थारो ।२०६३। जवरि तणस्थारो पाओवगदस्स होदि पिडिसिद्धो । आदवरपओगेण य पिडिसिद्धं सब्वपरियममं ।२०६४। सो सल्लेहिददेहो जम्हा पाओ-वगमणसुवजादि । उच्चारादिविकिचणमवि णित्थ पवोगदो तम्हा ।२०६४। पुढती आऊतेऊवणण्यविससम् जदि वि साहरिदो । वोसद्धचत्तदेहो अधाउगं पालए तस्य ।२०६६। मङ्जणयगंधपुष्कोव-यारपडिचारणे विरेते । वोस्ट्टचत्तदेहो अधाउगं पालए तथवि ।२०६७। बोसट्टचत्तदेहो दु णिविस्तवेङजो जहि जधा अंगं । जावडजीवं तु सर्य तिह तमंगं ण चालेङज ।२०६८। एवं णिष्पडियममं भणंति पाओवगमणमरहंता । णियमा अणिहारं तं सया णीहारसुवसगे 390

120 हैं। उबसागेण य साहरिदों सो अण्णस्थ कुणदि जं कालं। तश्हा बुत्तं जीहारमधो अर्जा अजीहारं १२०७०। पडिमापडिनण्णा वि हु करंति पाओवगमणमप्पेगे ।२०७१। = इंगिनीमरणमें जो सबिस्तार विधि कही है वही प्रायोगगमनमें भी समऋनी चाहिए।२०६३। इतनी विशेषता है कि यहाँ तृशके संस्तरका निषेध है, क्यों कि यहाँ स्व व पर दोनोंके प्रयोगका अर्थात् सुश्रूषा आदिका निवेध है। २०६४। ये मुनि अपने मुत्र व विष्ठा तकका भी निरावरण न स्वयं करते हैं। और न अन्यसे कराते हैं।२०६६। सचित्त, पृथिबी, अग्नि, अज. वनस्पति व इस जीवनिकायों में यदि किसीने उनको फेंक दिया तो वे शरीरसे ममस्य छोड़ कर अपनी आयु समाप्ति होने तक वहाँ ही निश्चल रहते हैं। २०६६। इसी प्रकार यदि कोई उनका अभिषेक करे या गंध पुष्पादिसे उनकी पूजा करे सो वे न उनके उपर क्रोध करते हैं, न प्रसन्न होते हैं और न ही उनका निराकरण करते हैं।२०६७। जिसके ऊपर इन मुनिने अपना अंग रख दिया है, उसपरसे यावज्जीव वे जस अंगको मिसकुल हिलाते नहीं है 1२०६८। इस प्रकार स्व व पर दोनोंके प्रतिकारसे रहित इस मरणको प्रायोगगमनमरण कहते हैं। निश्चयसे यदापि यह मरण अनीहार अर्थात् अचल है परन्तु उपसर्गकी अपेक्षा इसको चल भी माना जाता है।२०६१। उपसर्गके बदा होनेपर अर्थात् किसी देव आदिके द्वारा उठाकर अन्यत्र ले जाये जानेपर स्वस्थानके अतिरिक्त यदि अन्यस्थानमें मरण होता है तो उसको नीहारप्रायोपगमन मरण कहते हैं और जो उपसर्गके अभावमें स्बस्थानमें ही होता है उसको अनीहार कहते हैं। २०७०। कायोत्सर्ग-को धारण कर कोई मुनि प्रायोपगमन मरण करते हैं, और कोई दीर्घकालतक उपवास कर इस मरणसे शरीरका त्याग करते हैं। इसी प्रकार इंगिनी मरणके भी भेद समक्षने चाहिए।२०७१।

४. सविचार भक्तप्रत्याख्यान विधि

१. इस विषयके ४० अधिकार

भ. आ./मू./६६-७०/१६३ सिवचारभत्तपच्चव्याणिस्सणमो अवक्कमो होइ। तत्थ य मुलपदाई चत्तालं होति णेयाई १६६। अरिहे लिंगे सिक्या विणयसमाधो य अणियदिवहारे। परिणामोवधिजहणासिदी य तह भावणाओ य १६७। सन्लेहणा दिसा खामणा य अणुसिद्ठि परगणे चरिया। मग्गण सुट्ठिम उवसंप्या य पिडक्षा य पिडलेहा १६८। आपुच्छा य पिडच्छणमेगस्सालोयणा य गुणदोसा। सेन्जा संथारो वि य णिज्जवग प्यासणा हाणी।६१। पच्चक्याणं खामण खमणं अणुसिट्ठिसारणाकवचे। समदान्भाणे लेस्सा फलं विजहणा य णेयाई।७०। =सविचार भक्तप्रधारुयानके वर्णन करनेने चालीस सूत्र या अधिकार जानने चाहिए।६६। [जिनके नाम व संक्षिप्त लक्षण निम्न प्रकार हैं]।

सं∙	नाम	লक्षण (भ. आ./वि./६७-७०)
१	अर्ह	अगले अधिकारीको धारण करनेके सोग्य व्यक्ति।
२	लिंग	व्यापः। शिक्षा विनय आदि रूप साधन सामग्रीके । चिक्र।
3	হিঃ ধ্য	ज्ञानोपार्जन <u>ः</u>
·8	विनय	ज्ञानादिके प्रति विनय होना
ķ	समाधि	मन्की एक। प्रता
Ę	अनियत विहार	अनियत स्थानोंमें रहना
9	परिणाम	कर्त व्य परायणता
5	खपिधा स्याग श्रिति	बाह्याभ्यन्तर परिग्रहका त्याग ,
3	। সোবা }	शुभ परिणामोंकी उत्तरोत्तर उन्नति ।
१०	भावना	उत्तरोत्तर उत्तम भावनाओंका अभ्यास
११	सन्तेखना	कषाय व शरीरका कुश करना
१२	दिशा	अपने स्थानपर स्थापित करने योग्य बालाचार्य।
१३	क्षमणा	अन्योन्य क्षमाकी याचना करना।
१४	अनुशिष्टि 	आगमानुसार उपदेश करना ।
१५	परगणचर्या मार्गण	अपना संघ छोड़कर अन्य संघमें जाना। समाधिमरण करानेमें समर्थ आचार्यकी खोज।
१६	मागण हुस्थित	परोपकार तथा आचार्य पर योग्य कार्य करनेमें
१७	हु।स्परा	प्रवीण गुरु ।
ĺ	उपसंपदा	
१८	उपसपदा परीक्षा	आचार्यके चरणमूलमें गमन करना। उत्साह, अभिलाषा, परिचारक गण आदिकी
१६	14191	परीक्षा करना।
२०	प्रतिलेखन यानिरूपण	राज्य देश आदिका शुभाशुभ अवलोकन।
२१	पृच्छा	संग्रहसे अनुप्रहकी अनुज्ञा प्राप्त करना।
२२	एक संग्रह	प्रतिचारक सुनियोंकी स्वीकृति पूर्वक एक आराधकका ग्रहण।
२३	आलोचना	गुरुके आगे अपने अपराध कहना।
48	गुण दोष	आसोचनाके गुण दोषोंका वर्णन।
२४	शय्या	आराधक योग्य वसतिका।
२६	संस्तर	आराधक योग्य शय्या ।
ঽ৩	निर्मापक	सहायक आचार्य आदि।
ર્≒	प्रकाशन	अन्तिम आहारको दिखाना।
२६	हानि	क्रमसे आहारका स्थाप।
30	प्रत्यारूयान	जलके अतिरिक्त तीन प्रकारके आहारका त्याम।
30	क्षमण	आचार्य आदिसे क्षमाकी याचना।
३२	क्षपणा	प्रतिक्रमण आदि द्वारा कर्मीका क्षय।
३४ ३४	এনু হিছে	आचार्य द्वारा उदात मुनिको उपदेश ।
३४ ३५	सारणा कवच	वुःख पीड़ित मोह प्रस्त साधुको सचेत करना। क्षपकको वैराग्योस्पादक उपवेश देना।
₹¥ 3¢	समता	जीवन मरण लाभ खलाभके प्रति उपेक्षा।
\$ 9	ध्यान	एकामधिन्तानिरोध।
३⊏	लेस्या	कषायानुरञ्जित योग प्रवृत्ति ।
38	फल	आराधनासे प्राप्त फल ।
४०	शरीर त्याग	आराधकका शरीर त्याग ।

२. इन अधिकारींका कथन कम

नोट-- [उपरोक्त ४० अधिकारों में सन्तेलना धारनेकी विधिका कमसे व्याख्यान किया गया है। तहाँ नं० १---११, १७, १८, २०, २१, व २४ ग्रे अधिकार अन्वर्थक होनेसे सरल है। नं० १२, १३, १४, २३, २६, ३०, ३१, ३२, ३६, ३० इनका कथन सन्तेखना/४ में किया गया है। नं० १६, २२, २७, २८, ३४ व ३५ का कथन सन्तेखना/६ में : नं० ३८ का सन्तेखना/१ में और नं० ३६ व ४० का सन्तेखना/६ में किया गया है।]

३. आचार्य पदस्याग विधि

भ. आ./मू./२७२-२७४ सन्तेहणं करेंतो जदि आयरिओ हवेज्ज तो तेण। ताए वि अवस्थाए चितेदब्बं गणस्स हियं।२७२। कालं संभा-वित्ता सञ्दर्गणमणुदिसं च बाहरिय। सोमतिहिकरणणक्यत्तिवस्ते मंगलोगासे ।२७३। गच्छाणुपालणस्यं आहोइय अत्तगुणसमं भिश्खू। तो तम्मि गणविसरमं अप्यक्हाए कुणदि घीरो।२७४। = सण्लेखना करनेके लिए उद्दयुक्त हुआ क्षपक यदि आचार्य पदवीका धारक होगा तो उसको क्षपककी अवस्थामें भो अर्थात् जनतक आयुका अन्त निकट न आवे तबतक अपने गणके हितकी चिन्ता करनी चाहिए (२७३) अपनी अध्य अभी कितनी रही है इसका विचार कर तदनन्तर अपने शिष्य समुदायको और अपने स्थानमें जिसकी स्थापना की है. ऐसे बालाचार्यको बुलाकर, सौम्य तिथि, करण, नक्षत्र और लग्नके समय, शुभवदेशमें ।२७३। अपने गुजके समान जिसके गुण हैं ऐसा वह बालाचार्य गच्छका पालन करनेके लिए योग्य है, ऐसा विचारकर उसपर अपने गणको विसर्जित करते हैं, और उस समय **उसे थोड़ा सा उपदेश भी देते हैं।२७४। (भ, आ,/पू,/१७७/३**६५) (दे. संस्कार/२ में २६वीं क्रियाका लक्षण)।

४. सबसे क्षमा

भ. आ./मू./गा. आमंतेऊण गर्णि गच्छ मिन तं गर्णि ठवेदूण। तिबिहेण खमावेदि हु स वालजङ्ढाजलं गच्छं ।२७६। जं दीहकालसंवासदाए ममकारणेहरागेण । कडुगपरुसं च भणिया तमहं सर्व्यं खमा-वेमि ।२७७। अन्भहियजादहासो मस्थम्मि कर्दजली कदपणामी। खामेइ सन्वसंघं संवेगं संज्ञेमाणो ।७११। मणवयणकायजोगेहि पुरा कदकारिदे अणुमदे वा । सन्वे अवराधपदे एस खमावेमि णिस्सव्हो ।७१२। - उस नवीन आचायंको बुलाकर उसको गणके बीचमें स्थापित कर और स्वयं अलग होकर माल व वृद्ध आदि मुनियोंसे पूर्ण ऐसे गणसे मन बचन कायसे बह आचार्य क्षमा माँगते हैं। हे मुनिगण ! तुम्हारे साथ मेरा दीर्घकाल तक सहवास हुआ है। मैंने ममस्वसे, स्नेहसे. द्वेषसे, आपको कट्ट और कठोर वास्य कहे होंगे। इसलिए आप सब मेरे उपपर क्षमा करेंगे ऐसी आज्ञा है।२७७। (आयुका अन्त निकट आनेपर) वह क्षपक अपने मस्तकपर दो हाथ रखकर सर्व संघको नमस्कार करता है और साधर्मिकोंमें अनुराग उत्पन्न करता हुआ क्षमा ग्रहण कराता है। ७१२। मन, बचन और झरीरके द्वारा जो-जो अपराध मैंने किये हैं, उनके लिए आप लोग मुक्ते क्षमा करो। मैं शक्य रहित हुआ हूँ ।७१२। (मू. आ./५८)।

५. परगणचर्या व इसका कारण

भ. आ./मू./३८४-४०० एवं आउच्छिता सगणं अन्धुज्जदं पिबहरंतो। आराधणाणिमित्तं परगणगमणे महं कुणदि।३८४। सगणे आणाकोवो फरुसं कलहपरिदावणादी य। णिन्भयसिषेहकालुगिणभाणिवाघो य असमाधी।३८४। परगणवासी य पुणो अव्वावारो गणी हवदि तेसु। णत्थिय असमाहाणं आणाकोविम्म वि कदम्म।३८७। कलहपरि-दावणादि दोसे वा अमाउले करंतेसु। गणिणो हवेज्ज सगणे ममत्ति-

दोसेण असमाधी ।३१०। तण्हादिएसु सहणिउजेसु वि सगण्याम णिन्भओं संतो। जाएउज व सेएउज य अकृष्पिदं कि पि बीसरथो ।३६२। एदे दोसा गणिणी विसेसदो होंति सगणवासिस्स । भिवखुस्स वि तारिसयस्य होंति पाएण ते दोसा ।३१६। एदे सब्वे दोसा ण होंति परगणणित्रासिणो गणिणो । तम्हा सगणं पयहिय वच्चदि सो परगणं समाधीए।३१७। संविग्गबज्जभीरुस्स पादमुलस्मि तस्स विहरंतो । जिणवयणसञ्बसारस्स होदि आराधओ तादी ।४००। --इस प्रकार अपने गणसे पूछकर अपने रतनत्रयमें अतिशय प्रयत्नसे प्रवृत्ति करनेवाले वे आचार्य आराधनाके निमित्त परगणमें गमन करनेकी इच्छा मनमें धारण करते हैं।३८४। स्वसंघमें रहनेसे आज्ञा-कोप, कठोरवचन, कलह, बुःख, विषाद, खेद वगैरह निर्भयता, इनेह, कारुण्य, ध्यानविध्न और असमाधि ये दोष उत्पन्न होते हैं।३८५। जन आचार्य परगणमें जाकर रहते हैं तब उस गणस्थ मुनियोंको वे उपदेश आज्ञा करते नहीं, जिससे उनके द्वारा आज्ञाभंगका प्रसंग आ तानहीं। और यदि कदाचित् आ ज्ञाभंग हो भी जाय तो भी 'इनपर तो मैंने कोई उपकार किया नहीं है, जो कि ये मेरी आज़ा मानें' ऐसा विचारकर उनको वहाँ असमाधि दोष उत्पन्न नहीं होता है।३८७। अथवा अपने संघमें श्रुव्तकादि मुनि कलह, शोक, सन्तापादि परस्परमें करते हुए देखकर आचार्यकी अपने मणपर ममता होनेसे चिक्तको एकायता नष्ट हो जायेगी।३६०। समाधि-मरणोधुक्त आचार्यको भूख-प्यास वगैरहका दुःख सहन करना चाहिए। परन्तु वे अपने संघमें रहकर निर्भय होकर आहार जल बगैरह पदार्थीकी याचना करेंगे अथवा स्वयं आहारादिका सैवन करेंगे। और भगव लज्जारहित होकर छोड़ी हुई अयोग्य वस्तुओं -का भी ग्रहण करेंने ।३६२। स्वगणमें रहनेवाले आचार्योंको ये दोष होंगे तथा जो आचार्यके समान उपाध्याय तथा प्रवर्तक मुनि हैं उन्हें भी स्वगणमें रहनेसे ये दोष होंगे ।३१६। परगण निवासी गणी को ग्रेटोच नहीं होते हैं। इसलिए स्वगण को छोडुकर परगण में अस्ते हैं। देह७, संसारमीरु, पापभीरु और आगमके ज्ञाता आचार्यके घरणमृत्यें ही वहयतिसमाधिमरणोषमी होकर आराधनाकी सिद्धि करता है।४००।

६. उद्यत साधुके उत्साह आदिका विचार

भ, आः/म्./१११-११६ तो तस्स उत्तमट्ठे करणुच्छाहं पिडच्छिदि विहण्ह् । खीरोदणदव्युग्गहृतुगृंछणाए समाधीए ।११६। खवयस्युवसं-पण्णस्स तस्स आराधणा अविवल्खे । दिव्वेण णिमित्तेण य पिडले-हिंद अप्पत्ती सो ।११६। चयह क्षपक रत्नत्रयाराधनकी क्रिया करने में उत्साही है या नहीं, इसको परीक्षा करके अथवा मिष्ठ आहारों में यह अभितिषित है या विरक्त, इसकी परीक्षा करके ही आचार्य उसे अनुज्ञा देनेका निर्णय करते हैं।११६। हमारे संवका इस क्षपकने समाधिके लिए आअय लिया है। इसकी समाधि निर्विदन समाप्त होगो या नहीं, इस विषयका भी आचार्य शुभाशुभ निमित्तोंसे निर्णय कर लेते हैं। यह भी एक परोक्षा है।१९६।

७. आलोचना पूर्वक प्रायहिचत्त प्रहण

भ. आ./मू./गा. इस पयिनभागियाए व ओघियाए व सन्तमुद्धरिय।
सन्वगुणसोधिकंकी गुरूवएसं समायरइ।६१४। आलोयणं सुणिता
तिक्खुतो भिवखुणो उवायेण। जदि उज्जुणोत्ति णिज्जइ जहाकदं
पट्टवेदन्वं।६१७। पिडमेवणादिचारे जिद आजंपिद जहाकमं सन्वे।
कृद्वंति तहो सोधि आगमववहारिणो तस्स।६२१। सो कदसामाचारी
सोजमं कट्टुं विधिणा गुरूसभासे। विहरिद सुविसुद्धप्पा अव्भुज्जदचरणगुणकंकी।६३०। = विशेषालोचना करके अथवा सामान्यालोचना
करके मायाश्यको हृदयसे निकाल कर दर्शन, ज्ञान, चारित्र और
तप्रचरणोंमें शुद्धिकी अभिलाषा रखता हुआ गुरुके द्वारा कहा हुआ
प्रायश्चित्त, रोष, दीनता और अश्रद्धानका स्यागकर क्ष्मक ग्रहण
करता है।६१४। सम्पूर्ण आलोचना सुनकर गुरु क्ष्मकको तीन वार

उपायसहित पूछते हैं। तन यदि यह क्षपक सरन परिणामका है, ऐसा गुरुके अनुभवमें आ जाय तो उसको प्रायश्चित्त देते हैं अन्यथा नहीं। ६१७। यदि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके आश्रयसे हुए सम्पूर्ण दोष क्षपक अनुक्रमसे कहेगा तो प्रायश्चित्त दान कुशल आचार उसको प्रायश्चित्त देते हैं। ६२१। जिसका आचार निर्दाष है ऐसा वह क्षपक प्रायश्चित्त लेकर शास्त्रकथित विधि के अनुसार गुरु समीप रहकर अपनेको निर्मल चारित्र गुरु बनाता हुआ रस्तत्र यमें प्रवृत्ति करता है, तथा समाधिमरणके लिए जिस विशिष्ट आचरणको स्वीकार किया है, उसमें उन्नतिकी इच्छा करता है। ६३०। (विशेष दे. 'आलोचना' व 'प्रायश्चित्त'); (मू. आ./६१-१६)

८. क्षपणा, समता व ध्यान

र, आ./मू./गा. एवं पडिक्कमणाए काउसरगे य विणयसज्काए। अणुपेहासु य जुत्तो संथारगओ धुणदि कम्मं १७९६। एवं अधियासेंतो सम्मं खबओ परीसहे एदे । सञ्बत्थ अपर्डि उवेदि सञ्बत्थ समभावं । ।१६८३ मित्तेमुयणादीसु य सिस्से साधम्मिए कुले चावि। रागं वा दोसं वा पुरुषं जार्यपि सो जहह ।१६८६। इट्डेसु अणिट्डेसु य सह-फरिसरसरूवगधेसु । इहपरलोए जीविदमरणे माणावमाणे च ।१६८८। सन्वरथ णिव्यिसेसो होदि तदो रागरोसरहिदण्या । खबयस्स राग-दोसा हू उत्तमट्ठं विराधेंति ।१६८९। सेज्जा संथारं पाणयं च उवधि तहा सरीरं च । विज्जावस्चकरा वि य बोसरइ समत्तमासदा ।१६१३। एवं सक्तरथेसु वि समभावं उवगओ विसुद्धप्पा। मिन्ती करुणं मुद्दिसुवेक्लं खबओ पूण उवेदि ।१६१५। एवं कसायजुद्धंमि हवदि लवयस्स आउधं फाणं। ज्काणविहूणो खवओ जुद्धविणिराबुधो होदि ।१८६२। = १. उक्त क्रमसे संस्तरारूढ जो क्षपक प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, निनय, स्वाध्याय, अनुप्रेक्षा इनमें एकाग्र होकर कर्मका क्षय करता है। ७१६। २. इस प्रकार समस्त परीषहोंको अव्याकुलता-से सहन करनेवाला यह क्षपक शरीर, वसतिका, गण और परिचारक मुनि इन सर्व बस्तुओं में ममत्वरहित होता है। रागद्वे घोंको छोड़कर समताभावमें तत्पर होता है।१६८३। मित्र, बन्धु, माता, पिता, गुरु वगैरह, शिष्य और साधर्मिक इनके ऊपर दीक्षा ग्रहणके पूर्वमें अथवा कवचसे अनुगृहीत होनेके पूर्व को राग-द्वेष उत्पन्त हुए थे, क्षपक उनका त्याग करता है ।१६८६। इष्ट और अनिष्ट ऐसे शब्द, रस, गन्ध, स्पर्श, रूप विषयों में, इहलोक और परलोकमें, जीवित और मरणमें, मान और अपमानमें यह क्षपक समानभाव धारण करता है। ये राग-द्वेष रत्नत्रय, उत्तमध्यान और समाधिमरणका नादा करते हैं, इसलिए क्षेपक अपने हदयसे इनको दूर करता है।१६८८-१६८१। सम्पूर्ण रत्नत्रयपर आरूढ होकर यह क्षपक वसतिका, तृगादिका संस्तर, पानाहार अर्थात जल पान, विच्छ, हारीर और वैयावृत्य करनेवाले परिचारक मुनि, इनका निर्मोह होकर त्याग करता है ।१६१३। इस प्रकार सम्पूर्ण वस्तुओं में समताभाव **धार**ण कर यह क्षपक अन्तः करणको निर्मल बनाता है। उसमें मैत्री, प्रमोद, कारूण्य और माध्यस्थ्य भावनाओं को स्थान देता है। १६१। ३, कषायों के साथ युद्ध करते समय ध्यान मुनिको शस्त्रके समान उपयोगी होता है। जैसे शस्त्र रहित वीर पुरुष युद्ध में शत्रुका नाश नहीं कर सकता है. बैसे ही ध्यानके निना कर्म शत्रुकों मुनि नहीं जीत सकता है । १८६२।

(विशेष दे, ध्यान/र/१) ।

९. कुछ विशेष भावनाओंका चिन्तवन

भ. आ./मू./गा. जावंतु केइ संगा उदीरया होति रागदोसाणं। ते बिज्जितो जिणिह हु रागं दोसं च णिस्संगो ११७८। एदाओ पंच बिज्जिय इणमो छट्टीए बिहरदे धीरो। पंचसमिदो तिगुत्तो णिस्संगो सब्बसंगेसु ११-६। तबभावणा य सुदसत्तभावणेगत्तभावणे चेव। धिदि-बत्तविभावणाविय असंकितिहालि पंचिवहा।१८७। ⇒ितता कुछ भी परिग्रह है वह सन राग और द्वेषको उत्पन्न करनेवाला है। और निःसंग होकर अर्थात परिग्रहको छोड़नेसे क्षपक राग द्वेषको भी जीत लेता है।१७८। इन कन्दर्भ आदि पाँच कृत्सित भावनाओंका (दे. भावना/३) त्यागकर जो धीर मुनि पाँच समिति और तोन गुप्तियोंका पालनकर सम्पूर्ण परिग्रहोंसे निस्पृह रहते हैं वे ही छठी भावनाके आश्रयसे रत्नत्रयमें प्रवृत्त होते हैं।१८६। तप, श्रुताभ्यास, भयरहित होना, एकत्व, धृतिवन, ये पाँच प्रकारको असंवित्तष्ट भावनाएँ हैं, जिन्हें क्षपकको भाना चाहिए।१८७।

मु. आ./७५-८२ उड्मधो तिरियम्हि दु कदाणि मालमरणाणि बहुगाणि । दंसणणाणसह्गदो पंडियमरणं अणुमरिस्से ।७६। जइ उप्पन्जह दुक्खं । तो दहुञ्बो सभावदो णिरये । कदमं मए ण पत्तं संसारे संसरं तेण ।७८। संसारचक्कवालम्मि मए सब्वेपि पोग्गला बहुसो । आहारिदा य परि-णामिदा ण य मे गदा तित्ती ।७१। आहारणिमित्तं किर मच्छा गच्छति सत्तमी पुढविं। सच्चित्ती आहारो ण कप्पदि मणसावि परथेद्ं।८२। ऊर्घ्व अधो व तिर्यक् लोकमें मैंने बालमरण बहुत किये हैं, अब दर्शन ज्ञानमयी होकर संन्यासपूर्वक पण्डित मरण करूँगा।७५। यदि संन्यासके समय क्षुधादिकी वेदना उपजे तो नरकके स्वरूपका चिन्तवन करना चाहिए तथा जन्म, जरा, मरणरूप संसारमें मैंने कौनसे दुःख नहीं उठाये ऐसा चिन्तवम करना चाहिए।७६। चतुर्गतिरूप संसारमें भ्रमण करते हुए मैंने सभी पुद्दगत बहुत बार भक्षण किये हैं, और खल रस रूपसे परिणमित किये हैं परन्तु आज तक मेरी इनसे तृप्ति नहीं हुई है ।७१। आहारके कारण ही तन्दुस मत्स्य सातवें नरक जाता है। इसलिए जीवधातसे उत्पन्न सचित्त आहार मनसे भी याचना करने योग्य नहीं है। १८१।

१० मौन दृत्ति

भ. आ./मू./१७४/३६९ गणिणा सह संजाओ कज्जं पह सेसएहिं साहू हिं। मोणं से मिच्छलणे भज्जं सण्णीसु सज्जे या १९७४। अध्यक्त सेघमें आचार्यके साथ तो बोलना चाहिए, पर अन्य साधुओं के साथ अपप मात्र ही भाषण करना चाहिए अधिक नहीं। मिध्यादृष्टि जनों के साथ बिलकुल मौनसे रहे तथा विवेकी जनों या स्वजनों के साथ थोड़ा-बहुत बोले अथवा बिलकुल न बोले १९७४।

११. क्रम पूर्वक आहार व शरीरका त्याग

१, १२ वर्षोंका कार्य क्रम

भ, आः./मूः./२५३--२५४ जोगेहिं विचित्तेहिं दु लवेइ संवच्छराणि चत्तारि। वियक्षी णिज्जूहित्ता चत्तारि पुणो वि सोसैदि ।२५३। आयंबिलणिविवयडीहिं दोण्णि आयंबिलेण एक्कं च। अइधं विगर्ठेहि ।२५४। 🖚 णादिविगर्ठेहि अदो [भक्त प्रत्याख्यानका उत्कृष्ट काल १२ वर्ष प्रमाण है~-(दे. सल्लेखना/३/६)। इन बारह वर्षीका कार्यक्रम निम्न प्रकार हैं।] प्रथम चार वर्ष अनेक प्रकारके कायक्लेशों द्वारा बिताये. आगे के चार वर्षोंमें वृध, दही, घी, गुड़ आदि रसोंका त्याय करके शरीरको कृश करता है। इस तरह आठ वर्ष व्यतीत होते हैं।२४३। दो वर्ष तक आचारत व निर्विकृति भोजन ग्रहण करके रहता है। (वे. वह यह नाम)। एक वर्ष केवल आचाम्ल भोजन ग्रहण करता है। छह महीने तक मध्यम तपों द्वारा शरीरको क्षीण करता है और अन्तके छह महीनोंमें उक्कृष्ट तभों द्वारा शरीरको क्षीण करता है। २,५४। (दे. आगे उपशीर्षक नं, ४)।

२. आहारत्यागकी १२ प्रतिमाएँ

दे. सल्लेखना/१/३ [यदि आयुव देहकी शक्ति अभी बहुत शेष हैं ती शास्त्रोक्त १२ भिक्षु प्रतिमाओंको ग्रहण करे. जिससे कि क्षपकको पीड़ा न हो।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

भ. आ./मूलाराधना टीका/२४१/४७१/५ ईंडशमाहारं यदि मासाभ्यन्तरे सधेऽहं ततो भोजनं करोमि नान्यथेति। तस्य मासस्यान्तिमे दिने प्रतिमायोगमास्ते । सा एका भिक्षुप्रतिमा एवं पूर्वोक्ताहाराच्छतगुणे-नोत्कृष्टदुर्लभान्यान्याभ्यवहारस्यावग्रहं गृह्णाति । यावद्दद्वित्रिचतुः-पञ्चषद्सप्रमासाः सर्वत्रान्तिमदिनकृतप्रतिमायोगाः एताः । सप्त मिश्च-प्रतिमाः । पुनः पूर्वाहाराच्छतगुणोत्कृष्टस्य दुर्जभस्य अन्यान्याहारस्य सप्त-सप्त दिनानि बारत्रयं वतं गृहाति । एतास्तिस्रो भिक्षप्रतिमाः । ततो राजिदिनं प्रतिमायोगेन स्थित्वा पश्चादात्रिप्रतिमायोगमास्ते। एते द्वे भिक्षुप्रतिमे । पूर्वमविधमनः पर्ययञ्चाने प्राप्य पश्चात्सुर्योदये केवलज्ञानं प्राप्नोति । एवं द्वादशभिक्षप्रतिमाः । 🗕 १. सुनि स्वयं ठहरे हुए देशमें उत्कृष्ट और दुर्लभ आह।रका व्रत ग्रहण करता है। अथित् उरकृष्ट और दुर्ल भ इस प्रकारका आहार यदि एक महीनेके भीतर-भीतर मिल गया तो मैं आहार करूँ गा अन्यथा नहीं। ऐसी प्रतिज्ञा करके उस महीनेके अन्तिम दिनमें वह प्रतिमा-योग धारण करता है। यह एक भिक्षु प्रतिमा हुई।—(२-७) पूर्वीक्त, आहारसे शतगुणित उत्कृष्ट और दुर्लभ ऐसे भिन्न-भिन्न आहारका बत वह क्षपक ग्रहण करता है यह बत कमसे दो, तीन, चार, पाँच, छह और सात मास तकके लिए प्रहण करता है। प्रत्येक अवधिके अन्तिम दिनमें प्रतिमायोग घारण करता है। ये कुल मिलकर सात भिक्ष प्रतिमाएँ हुईं।-(५-१०) पुनः सात-सात दिनोमें पूर्व आहारकी अपेक्षासे शतगुणित उत्कृष्ट और दुर्लभ ऐसे भिन्न-भिन्न आहार तीन दका लेनेकी प्रतिज्ञा करता है। आहारकी प्राप्त होनेपर तीन, दो और एक यास लेता है। ये तीन भिक्षु प्रतिमार्थे हैं।--(११-१२) तदनन्तर रात्रि और दिन भर प्रतिमायोगसे खड़ा रहकर अनन्तर प्रतिमायोगसे ध्यानस्य रहता है। ये दो भिक्षप्रतिमाएँ हुई'।—प्रथम अवधिज्ञान और मनः पर्यय ज्ञानकी प्राप्ति होती है। अनन्तर सूर्योदय होनेपर महक्षपक केवलक्कानको प्राप्तकरलेताहै। इस रीतिसे १२ भिक्षु त्रतिमाएँ होतो हैं।

३. शक्तिकी अपेक्षा तीन मकारके अथवा चारों मकारके आहार-का त्थाग

भ. आ,/मू,/७०७-७०८ लवयं पच्चक्लावेदि तदो सब्बं च चवुविधा-हारं । संघसमवायमज्भे सागारं गुरुणिओगेण १७०७। अहवा समाधि-हैदं कायव्वो पाणयस्य आहारो । तो पाणयंपि पच्छा बोसिददव्वं जहाकाले १७०८। =तदनन्तर संघके समुदायमें स्विकल्पक प्रत्याख्यान अर्थात् चार प्रकारके आहारोंका निर्यापकाचार्य क्षपकको स्याग कराते हैं. और इतर प्रत्याख्यान भी गुरुकी आज्ञासे वह क्षपक करता है १७०७। अथवा क्षपकके चित्तकी एकाप्रताके लिए पानकके असिरिक्त अशन लाद्य और स्वाद्य ऐसे तीन प्रकारके आहारोंका त्याग कराना चाहिए। जब क्षपककी शक्ति अतिशय कम होती है तब पानकका भी त्याग करना चाहिए। अर्थात् परीषह सहन करनेमें खूब समर्थ है उसको चार प्रकारके आहारका और असमर्थ साधुको तीन प्रकारके आहारका त्याग कराना चाहिए। (और भी दे. सक्लेखना/३/७-६)।

४. आहार त्यागका सामान्य क्रम

. खा./मू /६१८-६१६ अणुसज्जमाणए पुण समाधिकामस्स सञ्जमुहरिय। एक्केक्कं हार्वेतो ठवेदि पोराणमाहारे १६१८। अणुपुरुवेण य
ठिवदो सवट्टेषूण सन्वमाहारं। पाणयपरिक्कमेण हु पच्छा भावेदि
अप्पणं १६१६। संथारत्थो खबओ जहया खोणो हवेज्ज तो तह्या।
बोसरिद्ववो पुञ्च विधिणेत्र सोपाणगाहारो ११४१२। = निर्यापकापार्यके द्वारा आहाराभिलाषाके दोष मतानेपर भी क्षपक उस आहारमें
यदि प्रेमयुक्त ही रहा तो समाधिमरणकी इच्छा रखनेवाले उस
क्षपकके सम्पूर्ण आहारों मेंसे एक-एक आहारको घटाते हैं, अर्थाद्
क्षपकसे एक-एक आहारका क्रमसे स्थाग कराते हैं।६६८। आचार्य

उपर्युक्त क्रमसे मिष्टाहारका त्याग कराकर क्षपकको सावे भोजनमें स्थिर करते हैं। तब वह क्षपक भात वगैरह अदान और अपूप वगैरह खाद्य पदार्थों को क्रमसे कम करता हुआ पानकाहार करनेमें अपनेको उद्युक्त करता है। (पानकके अनेकों भेद हैं—वे॰ पानक)।११६। संस्तरपर सोया हुआ क्षपक जब क्षीण होगा तब पानकके विकल्पका भी उपरोक्त सूत्रोंके अनुसार त्याग करना चाहिए।१४६२। (और भी वे. सल्लेखना/३/७-६)।

१२. क्षपकके लिए उपयुक्त आहार

भ. आ./मू./गा. सक्लेहणासऱीरे तबोगुणविधी अनेगहा भणिदा। आयं निलं महेसी तस्थ दु उझस्सयं विति ।२४०। छट्टहमदसमदुनाल-सेहिं भत्ते हिं अदिविकट्ठेहिं। मिदलहुगं आहार करेदि आयं निलं बहुसो।२५१। आयं शिलेण सिभं खीयदि पित्तंच उवसमं जादि। बादरस रक्खणट्ठं एत्थ पपत्तं खुकादव्यं १७०१। अकडुगमतित्तयमणं विलंब अकसायमलवर्ण मधुरं। अविरस मद्दिवगंधं अच्छमणु०हं अणदिसीदं ।१४६०। पाणगमसिमत्तं परिपूर्य खीणस्स तस्स दादव्वं । जह ना पच्छा खनयस्स तस्स तह होइ दायव्यं ।१४६१। च्यारीर सक्तेखनाके लिए जो तपोंके अनेक विकल्प पूर्वोक्त गाथाओं में कहे हैं. उनमें आचाम्स भोजन करना उत्कृष्ट विकल्प है, ऐसा महर्षि गण कहते हैं।२६०: दो दिनका उपवास, तीन दिनका उपवास, चार दिन-का उपवास, पाँच दिनका उपवास ऐसे उत्कृष्ट उपवास होनेके अनन्तर मित और हलका ऐसा कांजी भोजन ही क्ष्पक बहुका करता है। २५१। आ चाम्लसे कफकाक्षय होता है, दिचका उपराम होता है और बातका रक्षण होता है, अर्थात् वातका प्रकोष नहीं होता। इसलिए आचाम्लर्मे प्रयस्न करना चाहिए।७०१। जो आहार कटुक, तिक्त, आम्ल, कसायला, नमकीन, मधुर, विरस, दुर्गन्ध, अस्वच्छ, जन्म और शीत नहीं है. ऐसा आहार क्षपकको देना चाहिए अर्थात मध्यम रसोका आहार देना चाहिए। १९६०। जो पेय पदाथे शीण क्षपकको दिया जाता है, वह कफको उत्पन्न करनेवाला नहीं होना चाहिए और स्वच्छ होना चाहिए। क्षपकको जो देनेसे पथ्य-हितकर होगा ऐसा ही पानक देने योग्य है।१४९१।

वे. भक्ष्याभक्ष्य/१/३ [इारीरकी प्रकृति तथा क्षेत्र कालके अनुसार देना चाहिए]।

५. भक्तप्रत्याख्यानमें निर्यापकका स्थान

१. योग्य निर्यापक व उसकी प्रधानता

भ. आः/म्,/गाः पैचिषि आचारे समुज्जदौ सन्वसमिद्चेट्ठाओ। सो उज्जमेदि सबयं पंचिषि सुद्ठु आयारे।४२३। आयारत्थो पुण से दोसे सब्दे वि ते विवज्जेदि। तम्हा आयारत्थो णिज्जवओ होदि आयरिओ।४२७।=[क्षपक्को सल्तेखना धारण करानेवाला आचार्य आचारवान्, आधारवान्, व्यवहारवान्, कर्ता, आयापायदर्शनोद्योत और उत्शीलक होता है। इनके अतिरिक्त वह अपरिहाबी, निर्वापक, प्रसिद्ध, कीर्तिमान, और निर्यापकके गुणोंसे पूर्ण होना चाहिए—(दे. आचार्य/१/२)] जो आचार्य स्वयं पंचाचारमें तत्वर रहते हैं, अपनी सब चेष्टाएँ जो समितियोंके अनुसार ही करते हैं वे ही क्षपक्को निर्दोष—तथा पंचाचारमें प्रवृत्ति करा सकते हैं।४२३। आचारवस्व गुणको धारण करनेवाले आचार्य जगर लिखे हुए दोषोंका (दे. अगला शीर्षक) त्याग करते हैं, इसलिए गुणोंमें प्रवृत्त होनेवाले दोषोंसे रहित ऐसे आचार्य निर्यापक समभने चाहिए ४२७। (और भी दे. अगो शीर्षक नं, ३)।

भ. आ./मू./गा. गीदत्थपादमूले होंति गुणा एवमादिया बहुगा। ण य होइ संकिलेक्षो ण चावि उप्यज्जदि विवसी १४४७ खबओ किला- मिदंगो पडिचर्य गुणेण णिब्बुदि लहइ। तम्हा णिवित्रसिदव्यं खनएण पकुठन यसयासे ।४५८। धिविबलकरमाद हिदं महुरं कण्णाहुदि जिद ण देइ। सिद्धिमुहमाबहंती चत्ता साराहणा होइ।५०४१ इय णिव्ववओ लत्रयस्स हो ह णिज्जावओ सदायरिको। हो इय किसी पधिदा एदेहि गुणेहि जुत्तस्स । १०६। = जो आचार्य सूत्रार्थज्ञ है उसके पाद-मूलमें जो क्षपक समाध्यर्थ रहेगा, उसको उपर्युक्त अनेक गुणोंकी प्राप्ति होती है, उसके संक्लेश परिणाम नहीं होते, न ही रश्नवयमें कोई नाधा होती है। इसलिए आधारगुण्युक्त आचार्यका आश्रय लेना ही क्षपकके लिए योग्य है। ४४७। रोगसे प्रसित क्षपक आचार्यके द्वारा की गयी शुश्रुवासे मुली होता है, इसलिए प्रकृती गुणके धारक आचार्यके के पास ही रहना श्रेयस्कर है। ४५८। निर्यापकाचार्यकी वाणी धेर्य उत्पन्न करती है, वह आत्माके हितका वर्णन करती है, मधुर और कर्णाह्मादक होती है। यदि ऐसी वाणीका प्रयोग न करें तो क्षपक आराधनाओंका त्याग करेगा १५०५। इस प्रकारसे क्षपकका मन आह्नादित करनेवाले आचार्य निर्यापक हो सकते हैं अर्थाध निर्वा-पकत्व गुणधारक आचार्य क्षपकका समाधिमरण करा सकता है। इन आचारवस्वादि गुणोंसे परिपूर्ण आचार्यकी जनवमें कीर्ति होती है।५०६।

२. चारित्रहीन निर्यापकका आश्रय हानिकारक है

- भ. आ./मू./४२४-४२६ सेंडजोविधसंधार भत्तं पाणं च चयणकप्पगदो । उवकिष्पज्ज असुद्धं पहिचर्षं वा असंविग्गे।४२४। सल्लेहणं पयासेजन गंधं मरलं च समणुजाणिजना। अप्पानगं व कथं करिजन सहर'व जेपिङज ।४२६। ण करेडज सारणं बारणं च लबयस्स चयणकप्पगदो । उद्देज्ज वा महल्लं खनयस्स किचलारं मं ।४२६। -पंचाचारते भ्रष्ट आचार्य क्षपकको बसतिका, उपकरण, संस्तर, भक्त. पान, उद्गमादि दोष सहित देगा । यह वैराग्य रहित मुनियाँ-को उसकी शुश्रूषाके लिए नियुक्त करेगा. जिनसे क्षपकका आत्महित होना अशक्य है। ४२४। वह क्षपककी सब्लेखनाको लोकमें प्रगट कर देगा, उसके लिए लोगोंको पुष्पादि सानेको कहेगा, उसके सामने परिणामोंको निगाइनैयाली कथाएँ कहेगा, अथवा योग्यायोग्यका विचार किये बिना कुछ भी बकने लगेगा।४२६। बहुन तो क्षपकको रत्नत्रयमें करने योग्य उपदेश देगा और न उसे रत्नत्रयसे च्युत होनेसे रोक सकेगा। उसके निमित्त पहकशाला, पूजा, विमान आदिके अनेक आरम्भ लोगोंसे करायेगा, इसलिए ऐसे आचार्यके सहवासमें क्षपकका हित होना शका नहीं ।४२६।
- भ. आ./मू./ (उपोद्धात-क्षपकस्य चतुरङ्गं कथमगृहीतार्थो नाशयती-त्यारेकायामिरथमसौ नाशयतीति दशेयति) --सम स्विमलहेतो दीहद्वधं मुत्तिमुबगमित्ता वि । परिवडह मरणकाले अकदाधारस्स पासिन्त ।४३३। सका वंसी छेत्तं तत्तो उक्क द्विओ पुणो दुक्लं। इय संजमस्स नि मणी निसएसुक्षाध्दर् दुवलं ।४३४। पढमेण व दोवेण व वाहिज्जतस्य तस्य खबयस्य। ण कुणदि उबदेसादि समाधिकरणं अगीदत्थो ।४३७। ⇒प्रशन—चतुरं पको न जाननेवाला आचार्य क्षपक-का नाश कैसे करता है। उत्तर --[अनादि संसार चक्रमें उत्तम देश, कुल आदि उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं। - गा. ४३०-४३२] योग्य कार्यमें प्रवृत्ति करनेवाली स्मृति प्राप्त होनेपर भी और चिरकाल तक संयम पालन कर लेनेपर भी अरपज्ञ आचार्यके आश्रयसे मरणकालमें क्षपक संयम छोड़ देता है। ४३३। जिस प्रकार खाँसके समूहमेंसे एक छोटे बाँसको उखाड़ना बहुत कठिन है उसी प्रकार मन विषयोंसे निकास-कर संग्रममें स्थापित करना अत्यन्त कठिन है। ४३४। अपीतार्थ आचार्य क्षुधा और तृवासे पीडित क्षपकको उपदेशादिक नहीं करता इसलिए उसके आध्यसे उसको समाधि मरण बाभ नहीं होता ।४३७।

३. योग्य निर्यापकका अन्वेषण

भ, आ, मू, मा, पंचच्छसत्तजीयणसदाणि तत्तोऽहियाणि वा गंसुं।
णिज्जावगमण्णेसदि समाधिकामो अणुण्णादं १४०१। एवकं व दो व
तिण्णि य वारसविरसाणि वा अपिरदंतो। जिणवयणमणुण्णादं
गवेसदि समाधिकामो दु १४०२। आयारजीदकव्पगुणदीवणा अत्तसोधिणिजकंमा। अज्जवमदनलाघवतुद्ठी पण्हादणं च गुणा १४०६।
जिसको समाधिमरणकी इच्छा है ऐसा सुनि ६००,६००,५००
अथवा इससे भी अधिक योजन तक विहारकर शास्त्रोक्त निर्यापकका
शोध करता है १४०२। वह एक, दो, तीन वर्षसे लेकर बारह वर्ष तक
खेदगुक्त न होता हुआ जिनागमसे निर्णीत निर्यापकार्यका अन्वेषण
करता है १४०२। निर्यापकत्वकी शोध करनेके लिए विहार करनेसे
सपकको आचारशास्त्र, जीतशास्त्र और करपशास्त्र इनके गुणोंका
प्रकाशन होता है। आस्त्राकी शुद्धि होती है, संक्लेश परिणाम नष्ट
होते हैं। आर्जव, मार्दव, लाघव (लोभरहितता) सन्तुष्टी, आहाद
आदि गुण प्रगट होते हैं।४०६।

४. एक निर्यापक एक ही क्षपकको प्रहण करता है

- भ, आ./मू / १९६- १२० एगो संधारगदो जजह सरीरं जिणोवदेसैण।
 एगो सिल्तिहिद मुणी जग्नेहि तवोबिहाणेहि । १९६। तदिओ णाणुण्णादो जजमाणस्स हु हवेजज बाधादो। पडिदेमु दोमु तीमु य
 समाधिकरणाणि हायन्ति । १२०।
- भ. आ./बि./६२०/७३६/१६ तृतीयो यतिनितृज्ञातः तीर्थकृद्धः एकेन निर्यापकेनानुवाहास्वेन। - एक क्षपक जिनेश्वरके उपदेशानुसार संस्तरपर चढ़कर शरीरका त्याग करता है अर्थात समाधिमरणका साधन करता है और एक मुनि उम्र अनशनादि तपोंके द्वारा शरीर-को शुष्क करता है।६१६। इन दोनोंके अतिरिक्त तृतीय यति निर्यापकाचार्यके द्वारा अनुमाह्य नहीं होता है। दो या तीन मुनि यदि संस्तराह्म हो आयेंगे तो उनको धर्ममें स्थित रखनेका कार्य, बिनय वैयावृत्त्य आदि कार्य यथायोग्य नहीं हो सक्षेंगे, जिससे उनके मनको संक्लेश होगा। अतः एक ही क्षपक संस्तराह्म हो सकता है। ६२०।

५. निर्यापकोंकी संख्याका प्रमाण

भ. आ./मू./गा. कप्पाकप्पे कुसला समाधिकरणुज्जदा भुदरहस्सा। गीदस्था भयवंता अडदातीसं तु णिज्जवया। १४८। ...। कालम्मि संकिलिट्ठं मि जाव चतारि साधेंति ।६७२। णिज्जावया य दोण्णि मि होति जहण्णेण कालसंसयणा। एवको णिज्जावयओ ण होइ कइया वि जिलसुत्ते। ६७३। एगो जइ णिज्जवओ अप्पा चत्तो परोय-वयणं च। वसणमसमाधिमरणं बहुाहो दुःगदी चावि।६७४। 🗕 योग्यायोग्य आहारको जाननेमें कुशल, क्षपकके चित्तका समाधान करतेवाले, प्रायश्चित्त प्रन्थके रहस्यको जाननेवाले, आगमझ, स्व ब परका उपकार करनेमें तत्पर नियमिक या परिचारक उरकृष्टतः ४८ होते हैं। ६४८। संक्लेश परिणामयुक्त कालमें वे चार तक भी होते हैं।६७२। और अतिशय संक्षिष्ठ कालमें दो निर्यापक भी शपकके कार्यको साध सकते हैं। परन्तु जिलागममें एक नियपिकका किसी भी कालमें उल्लेख नहीं है।६७३। यदि एक ही नियपिक होगा तो उसमें आत्मत्याग, क्षयकका त्याग और प्रवचनका भी त्याग हो जाता है। एक निर्यापकरे दुःख उत्पन्न होता है और रुत्नत्रममें एक। मताके विना मरण हो जाता है। धर्मदूषण और दुर्गति भी होती है। (विशेष हे. भ. आ./सू./६७६-६७६)।

नि, सा./ता, वृ /१२ इह हि जिनेश्वरमार्गे मुनीना सण्लेखनासमये हि दिवस्वारिशक्तिराचार्येह त्तोत्तमार्थप्रतिक्रमणाभिधानेन वेहत्यागी धर्मा व व्यवहारण - जिनेश्वरके मार्गमें मुनियोंकी सक्केखनाक समय

मयालोस आव।यौ द्वारा, जिसका नाम उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है वह विया जानेके कारण देहरयाग व्यवहारसे धर्म है।

६. सर्व निर्यापकोंमें कर्तव्य विमाग

भ. आ./मू./६४६-६७० का भावार्थ [१. चार परिचारक सावधानी पूर्वक क्षपकके हाथ पाँव दवाना, चलने-फिरनेमें सहारा देना, मुलाना, बैठाना, खड़ा करना. करवट दिलाना, पाँव पसारना व सिकोडुना आदि उपकार करते हैं। ६४६-६५०। २. चार मुनि विक-थाओं का स्थानकर क्षप्कको असन्दिग्ध, मधुर, हृदयस्पर्शी, सुखकर, तथा हितप्रद धर्मोपदेश देते हैं। १५१-६५३। ३, भिक्षा सन्धि युक्त चार मुनि याचनाके प्रति ग्लानिका त्याग करके क्षपकके लिए उसकी रुचि व प्रकृतिके अनुसार उद्दगमादि दोषों रहित आहार माँगकर साते हैं।६ंदे२। (दे. अपवाद/१/३) ४ चार मुनि उसके लिए पोने योग्य पदार्थ माँगकर लाते हैं । ६६३। (दे. अपवाद/ ३/३)। ५. चार मुनि उस माँगकर लाये हुए आहार व पानके पदार्थोंकी चूहों आदिसे रक्षा करते हैं।६६४। (दे, अपवाद/३/३)। 🗗 चार मुनि क्षपकेको मसमूत्र करानेका तथा उसकी बसतिका संस्तर व उपकरणोंको शोधनेका कार्य करते हैं।६६५।७. चार मुनि क्षपककी बसतिकाके द्वारका रक्षण करते हैं ताकि असंगतजन वहाँ प्रवेश न कर सकें । ६६६। ८. तथा चार मुनि धर्मीपदेश देनेके मंडपके द्वारकी रक्षा करते हैं। ६६६। १. चार मुनि क्षपकके पास रातको जागरण करते हैं।६६७। १०. और चार मुनि उस नगर या देशकी शुभाशुभ वार्ताका निरीक्षण करते हैं।६६७। ११, चार मुनि आग-न्तुक श्रोताओंको सभामण्डपमें आक्षेपणी आदि कथाओंका तथा स्व म पर मतका सावधानी पूर्वक उपदेश देते हैं, ताकि क्षपक उसे न मुन सके । ६६८। १२, चार वादी मुनि धर्मकथा करने वाले उपरोक्त मुनियोंकी रक्षार्थ सभामें इधर-उधर घूमते हैं। ६६१।]

७. क्षपककी वैयावृत्ति करते हैं

भ. आ, /मू./गा. तो पाणएण परिमानिदस्स उदरमलसोधणिच्छाए।
मधुरं पउजेदव्यो मंडं व तिरेयणं खन्छो। १००२। आणाह्यस्मियादी हिं
वा वि काद्व्यमुदरसोधणयं। बेदणमुप्पादेउज हु करिसं अरथं तयं
उदरे १००६। वेउजायच्चस्स गुणा जे पुव्यं विच्छरेण अक्खादा। तैसिं
फिडिओ सो होइ जो उवेक्खेउज तं स्वयं। १४६६। तो तस्स तिर्गिछा जाणएण खन्मस्स सव्यसत्तीर। विज्जादेसेण वसे पडिकम्महोइ कायव्यं ११४६७। च्यानक पदार्थका सेवन करनेवाले क्षपकको
पेटके मलकी शुद्धि करनेके लिए माँडके समान मधुर रेचक औषध देना चाहिए १७०२। उसके पेटको सेंकना चाहिए तथा सेंधा नमक आदि पदार्थोको मत्तो मनाकर उसकी गुदामें प्रवेश कराना चाहिए।
ऐसा करनेसे उसके उदरका मल निकल जाता है। १००३। बैयावृत्त्यके
गुणोंका विस्तारसे पूर्वमें वर्णन किया गया है (दे. बैयावृत्त्यके
गुणोंका विस्तारसे पूर्वमें वर्णन किया गया है (दे. बैयावृत्त्यके
गुणोंका विस्तारसे पूर्वमें वर्णन किया गया है (दे. बैयावृत्त्यके
गुणोंका विस्तारसे पूर्वमें वर्णन किया गया है (दे. बैयावृत्त्यके
गुणोंका विस्तारसे पूर्वमें वर्णन किया गया है उद्या गुणोंसे भ्रष्ट होता
है। १४६६। रोगका निदान जानने वाले मुन्को वैद्यके उपदेशानुसार
अपनी सर्व श्राक्तसे क्षपकके रोगका परिहार करना चाहिए। १४६७।

दे सक्लेखना/k/६ [क्षपकके हाथ-पाँव दमाना, उसे उठाना, केठाना, चलाना, सुलाना, करवट दिलाना, मल-मूत्र कराना, उसके लिए आहारादि माँग कर लाना इत्यादि कार्य नियपिक व परिचारक निरय करते हैं।]

दे. अपवाद/३/४-४ [जीभ और कानोंकी सामर्थ्यके लिए क्षपकको कई बार तेल व कषायले पदार्थों के कुल्ले कराने चाहिए। उदरमें मलका द्योधन करनेके लिए इनिमा करना, सर्वीमें उच्छोपचार और गरमी-में शीतोपचार करना तथा अंग मर्दन आदि रूपसे उसकी सेवा करते हैं।]

८. आहार दिखाकर बैराग्य उत्पन्न कराना

भ, आ./मू./६०१-६१५ दव्यपयासम्किच्चा जह कीरह तस्स तिबिह-बोसरणं। कम्हिबि भत्तविसैसंमि उस्सुगो होज्ज सो खत्रओ। ६८६। तम्हा तिबिहं बोसरिहिदित्ति उवकस्सयाणि दव्याणि। सोसित्ता संविरलिय चरिमाहारं पायासेज्ज । ६१०। पासिस् को इतादी तीरं पत्तस्सिमेहि कि मेत्ति । वेरग्गमणुष्यत्तो संवेगपरायणो होदि । ६११। । ६१। देसं भोच्चाहाहा तीरं · · । ६१३। सब्बं भोच्चा धिद्धी तीरं · · । ६१४। कोई तमादियत्ता मणुष्णरसवेदणाप संविद्धो । तं चेव-णुबंधेजज हु सब्बं देसं च गिद्धोए ।६१४। =क्षपकको आहार न दिखा-कर ही यदि तीन प्रकारके आहारोंका त्याग कराया जायेगा तो वह क्षपक किसी आहार विशेषमें उरप्रक होगा (६८६) इसलिए अच्छे-आच्छे आहारके पदार्थ नरतनोंमें पृथक् परोसकर उस क्षपकके समीप लाकर उसे दिखाना चाहिए । ६६०। ऐसे उत्कृष्ट आहारको देखकर कोई क्षपक 'मैं तो अब इस भवके दूसरे किनारेको प्राप्त हुआ हूँ, इन आहारोंकी अब मुफ्तको कोई आवश्यकता नहीं हैं ऐसा मनमें समफ-कर भोगसे विरक्त व संसारसे भययुक्त होकर आहारका त्याग कर देता है।६९१। कोई उसमेंसे थोड़ा सा खाकर ।६१३। और कोई सम्पूर्ण-का भक्षण करके उपरोक्त प्रकार ही विचारता हुआ उसका स्याग कर देता है। ११४। परन्तु कोई क्षपक दिखाया हुआ। भक्षण कर उसके। स्वादिष्ट रसमें छुड्ध होकर उस सम्पूर्ण आहारको बारम्बार भक्षण करनेकी इच्छा रखता है अथवा उसमें किसी एक पदार्थको बारम्बार खानेकी अभिलाषा रखता है। ६१६। रिसा क्षपक कदाचित निर्यान पकका उपदेश सुनकर उससे विरक्त होता है (दे. शीर्षक सं०११) और इसपर भी विरक्त न हो तो धीरे-धीरे क्रमपूर्वक उसका प्रया:-ल्यान कराया जाता है। (वे. सल्लेखना/४/११)]

९. कदाचित् क्षपकको उप्र वेदनाका उद्देक

भ. आ./मू./१५०१-१५१० अहवा तण्हादिपरसिहेहि खबओ हविउज अभिभूदो । उबसग्गेहिंव खबओ अचेदणो होज्ज अभिभूदो ।१४०१। तो बेदणावसट्ठो वार्जालदो वा परीसहादीहि । खवओ अणप्पवसिखो सो विष्पलवेज्ज जंकिं पि १९४०२। उब्भासेज्ज व गुणसेढीदो एद-रणबुद्धिओ खबओ। छट्ठं दोच्चं पढमं वसिया कृंटिसिदपदिम-च्छातो ।१६०३। चेयंतोपि य कम्मोदएण कोह परीसहपरछो। खन्मासेन्ज वखनकावेख्ज व भिदेख्ज व पदिण्णं ११५१०**। —**भृख-प्यास इत्यादि परिषहोंसे पीड़ित हो कर क्षपक निश्चेत होगा अथवा भ्रान्त होगा, अथवा मुर्चिछत होगा।१५०१। वेदनाकी असह्यतासे दुःखी होकर, परिषह और उपसगसे व्याकुल होकर क्षपक आपेमें नहीं रहेगा. जिससे वह बड़-बड़ करेगा ।१५०२। अयोग्य भाषण बोलेगा, संयमसे गिरनेको बुद्धि करेगा । राजिको भोजन-पान करनेका अथवा दिनमें प्रथम भोजन करनेका विचार उसके मनमें उत्पन्त होगा ।१५०३। कोई क्षपक सावध होकर कर्मीदयसे परिषहींसे व्याकुल होकर जो कुछ भी उचित-अनुचित भाषण करेगा। अथवाली हुई प्रति-ज्ञाओंका भंग करेगा ।१५१०)

१०. उपरोक्त दशामें भी उसका त्याग नहीं करते

भ. आ./मू./११११ ण हु सो कडुवं फरुसं व भाणिदन्तो ण खीसिदन्तो म । ण म वित्तासेदन्तो ण म बट्टि ही सणं कादुं।१५११। ज्यातिहा भंग करनेपर भी निर्मापकाचार्य उसे कड़वे और कठोर शब्द न बोले, उसकी भरसँना न करे, उसको भय न दिखाने अथवा उसका अप-मान न करे।१५११।

जैनेन्द्र सि**द्धा**न्त कोश

११, यथावसर उपरेश देते हैं

१. सामान्य निदेश

दे. जपदेश/३/४ (आसेपिणी, संबेजनी, और निर्वेजनी ये तीन कथाएँ सपकको सुनाने योग्य हैं। पर विक्षेपणी कथा नहीं।] (भ.आ./मू./ ६४४, १६०५)।

भ. आ./मू./गा. सं० का भावार्थ — [है क्षपक ! तुम सुख स्वभावका त्याग करके चारित्रको धारण करो १६२२। इन्द्रिय व कथायों को जीतो १६२३। है क्षपक ! तू मिध्यात्वका वमन कर । सम्याद्दीन, पच-परमेश्री की भक्ति व ज्ञानीपयोगमें सदा प्रवृत्ति कर १७२२, ७२६। पंच महावतीं का रक्षण कर, कथायों का दमन कर, इन्द्रियों को वदा कर १७२३। (मू. आ./=३-१४)।

२. वेदनाकी उपतामें सारणात्मक उपदेश

भ. आ./मू./गा. सं ० का भावार्थ - श्वधादिसे पीड़ित होनेपर, वे आधार-नाच् निर्यापकाचार्यक्षपककी मधुर व हिसकर उपवेश द्वारा आर्त-ध्यानसे रक्षा करते हैं। ४४१। हे मुनि ! यदि परिचारकोंने तेरा त्याग भी कर दिया है, तब भी तु कोई भय मत कर ऐसा कहकर उसे निर्भय करते हैं। ४४३। शिक्षानचन रूप आहार देकर उसकी भूल-म्यास शान्त करते हैं। ४४६। आचार्य क्षपकको आहारकी गृद्धिसे संयमकी हानि व असंयमकी वृद्धि दशति हैं। ६१६। जिसे सुनकर वह सम्पूर्ण अभिज्ञाषाका त्याग करके वैराग युक्त व संसारसे भययुक्त हो जाता है। ६६७। पूर्वाचरणका स्मरण करानेके लिए आचार्य उस क्षपकको निम्न प्रकार पूछते हैं, जिससे कि उसको लेश्या निर्मल हो जाती है। १५०४। हे मुने ! तुम कौन हो, तुम्हारा क्या नाम है, कहाँ रहते हो. अब कौनसा काल है अर्थात दिन है या रात. तुम क्या कार्य करते हो, कैसे रहते हो १ मेरा क्या नाम है १ ११५०५। ऐसा सुनकर कोई क्षपक स्मरणको प्राप्त हो जाता है कि मैंने यह अकाल में भोजन करनेकी इच्छा को थी। यह आचरण अयोग्य है, और अनुचित आचरणसे निवृत्त हो जाता है ।१५०८। (मू. आ./१५-१०२) ।

३. प्रतिशाको कवच करनेके अर्थ उपदेश

भ, आ./मू/गा. सं० का भावार्थ - प्रतिज्ञा भंग करनेकी उद्यत हुए क्षपकको निर्यापकाचार्य प्रतिज्ञा भंगसे निष्टृत्त करनेके लिए कवच करते हैं।१५१३। अर्थात् मधुर व हृदयस्पर्शी उपदेश देते हैं।१५१४। हे क्षपक ! तू दीनताको छोड़कर मोहका त्याग कर। वेदनाव चारित्रके शत्रुजो रागव कोप उनको जीत।१५१५। तूने शत्रुको पराजित करनेकी प्रतिज्ञा की है, उसे याद कर। कीन कुलीन व स्वाभिमानी रात्रु समक्ष आनेपर पत्नायन करता है ।१५१८। है क्षपक ! तूने चारों गतियों में जो-जो दुःख सहन किये हैं उनको याद कर ।१६६१। [निरोष दे. वह∙वह गति अथवा भ.आ./मू./१६६२-१६०१)] उस अनन्त दुःखके सामने यह दुःख तो नाके बराबर है।१६०२। अनन्त बार तुम्हें तीव भूख व प्यास सहन करनी पड़ी है।१६०६-१६०७। तुम संवेजनी आदि तीन प्रकार कथाएँ मुनो, जिससे कि तुम्हारा बल बढ़े।१६०८। कर्मीका उदय होनेपर औषधि आदि भी असमर्थ हो जाती हैं।१६१०। मरण तो केवल उस भवमें ही होता है परन्तु असंयमसे सैकड़ों भवोंका नाश होता है।१६१४। असाताका उदय आने पर देव भी दुःख दूर करनेको समर्थ नहीं ।१६१७-१६१६३ अतः वह दुर्निवार है। १३२२। प्रतिज्ञा भंग करनेसे तो मरना भला है।१६३३। (दे. बत/१/७)। आहारकी लम्पटता पाँची पापीकी जननी है।१६४२। हे क्षपक ! यदि तेरी आहारको अभिलाषा इस अन्तिम समयमें भी शान्त नहीं हुई हो तो अवश्य ही तु अनन्त संसारमें भ्रमण करनेवाला है। १६५२। हे क्षपक ! आज तक अनन्त बार त्ने चारों प्रकारका आहार भक्षण किया है, पर तू तुस नहीं हुआ

।१६६७। जिह्नापर आनेके समय ही आहार मुखदायक प्रतीत होता है, पीछे तो दुःखदायक ही है।१६६०। वह मुख अत्यन्त क्षणस्थायी है।१६६२। तलवारकी धार एक भवमें ही नाशका कारण है पर अयोग्य आहार सैकड़ों भवोंमें हानिकारक है।१६६६। अब तू इस शरीरकी ममताको छोड़।१६६७। निःसंगत्वकी भावनासे अब इस मोहको क्षीण कर ।१६७१। मरण समय संबत्तेश परिणाम होनेपर में संस्तर आदि बाह्य कारण तेरी सक्तेखनामें निमित्त न हो सकेंगे १६७२। (वे. सक्तेखना/१/७)। यद्यपि अब यह श्रम तुमे दुष्कर प्रतीत होता है परन्तु यह स्वर्ग व मोक्षका कारण है, इसिए हे क्षपक ! इसे तू मत छोड़।१६७६। जैसे अभेद्य कवच धारण करके योद्धा रणमें शत्रुको जीत लेता है, वेसे ही इस उपदेशस्पी कवचसे युक्त होकर क्षपक परीषहोंको जीत लेता है।१६८९-१६८२।

६. मृत शरीरका विसर्जन व फल विचार

१. शव विसर्जन विधि

भ. आ./मू./गा. जे वेलं कालगदो भिवस्तु तं वेलमेव णीहरणं। जग्गण-बंधणछेदणविधी अवैलाए काद्वा १९६७४। गीदत्था ... र्मिउज-बाधेज्ज ।१९७६-७७ (दे. अपवाद/३/६) । जयसम पडिदावण्णं --- पि तो होरुज ।१६७५-७६। (दे. अपबाद/३/३); । तेण परं संठाविय संधारगदंच तत्थ बंधिता। उट्ठेंतरक्खणट्ठंगामं तत्तो सिरं किन्ना।१६८०। पुट्याभोगिय मागेग आसु गर्छाति तं समादाय। अद्विदमणियत्तंताय पीष्ट्दो ते अणिन्भंता ।१६८९। तेण कुससुद्धि-धाराए अब्बोन्धिणाए समणिपादाए। संथारो कादव्बो सठ्वरथ समो सर्गि तत्थ । १६ = ३। जत्थ ण होज्ज तणाई चुण्णेहि वि तत्थ केसरेहिंबा। संघरिदब्बालेहा सब्बत्थ समा अवोच्छिण्णा १६००४। जत्तो दिसाए गामो तत्तो सीसं करिल सोवधियं । उट्ठेंतरक्खणट्ठं वोसरिवव्वं सरीरं तं ।१६५६। जो वि विराधिय दंसणमंते कार्ल करित्तु होज्ज सुरो। सो वि विवुज्फिहि दट्ठूण सरेहं सीर्वाध सज्जो ।१६८७। गणरक्खत्थं सम्हा सणमयपिङ्विवयं खु कादूण । एथकं तु समे खेर्ने दिवड्ढखेर्ने दुवे देउन ।१११० तद्वाणंसावणं चिय तिबखुत्तो ठविय महयपासम्मि। विदियवियप्पिय भिक्षू कुण्जा तह विदियतदियाणं ।१६६१। असदि तणे चुण्णेहि च केसरच्छारि-हियादिचुण्णेहिं। काद्म्वोध ककारो उवरि हिट्ठा यकारो से ।१६६२। जिस समय भिक्षका मरण हुआ होगा, उसी वैलामें उसका प्रेत ले जाना चाहिए। अवैलामें मर जानेपर जागरण, अथवा छेदन करना चाहिए।१९७४। [पराक्रमी मुनि उस शबके हाथ और पाँव तथा अँगूठा इनके कुछ भाग वाँधते हैं अथवा छेदते हैं। यदि ऐसान करेतो किसी भूत या पिशाचके उस शरीरमें प्रवेश कर जानेकी सम्भावना है, जिसको लेकर यह राव अनेक प्रकारकी की झाओं द्वारा संघको क्षोभ उत्पन्न करेगा ।१६७६-१६७७। (दे,अपवाद/३/६) ।-गृहस्थौ से माँगकर लाये गये थाली आदि उपकरणोंको गृहस्थोंको वापस दे देने चाहिए। यदि सर्व जनोंको विदित किसी आर्थिका या क्षुरत्वकने सक्तेखना मरण किया है तो उसके शवको किसी पालकी या विमानमें स्थापित करके गृहस्थजन उसे प्रामसे बाहर ले जावें ।१९७५--१९७१। (दे. अपवाद/३/३)] शिविकामें बिछानेके साथ उस हाबको बाँधकर उसका मस्तक ग्रामकी **ओर करना चाहिए।** क्यों कि कदाचित उसका मुख ग्रामकी तरफ न होनेसे वह ग्राममें प्रवेश नहीं करेगा। अन्यथा प्रामर्ने प्रवेश करनेका भय है।१६८०। पूर्वमें देखे गये मार्गसे उसः शबको शीघ्र ले जाना चाहिए। मार्गमे न खड़े होना चाहिए और न पोछे मुड़कर देखना ।१६८१। जिसने निषद्यका स्थान पहले देखा हो वह मनुष्य आगे ही वहाँ जाकर दर्भमुष्टिकी समानधारासे सर्वत्र सम ऐसा संस्तर करे।१६०३। दर्भ

तृणके अभावमें प्राप्तक तण्डुल मसूरकी दाल इत्यादिकों के चूर्ण से, कमल केशर वगैरहसे मस्तकसे लेकर पाँवतक बिना दृटी हुई रेखाएँ खेंचे।१६८४। अन ग्रामकी दिशामें मस्तककर पीछीके साथ उस शवको उस स्थानपर रखे।१६८६। जिसने सम्यग्दर्शनकी विराधनासे मरणकर देवपर्याय पाया है, वह भी पीछीके साथ अपना देह देखकर 'में पूर्व जन्ममें मुनि था' ऐसा जान सकेगा।१६८७। गणके रक्षणके हेलु मध्यम नक्षत्रमें तृणका एक या दो प्रतिबिम्ब बनाकर उसके पास रखना चाहिए।१६६०। उन्हें वहाँ स्थापनकर जोरसे बोलकर ऐसा कहें कि मैंने यह एक अथवा दो क्षपक तेरे अपण किये हैं। यहाँ रहकर ये चिरकाल पर्यन्त तप करें।१६६१। यदि तृण न हों तो तण्डुल चूर्ण, पुष्प केसर, भस्म आदि जो कुछ भी उपलब्ध हो उससे ही वहाँ 'काय' ऐसा शब्द लिखकर उसके उत्पर क्षपकको स्थापन करें।१६६२।

२. शरीर विसर्जनके पश्चात् संघका कर्तन्य

भ, आ./मू./१९९३-१९९६ उत्रगहिदं उत्रकरणं हुवेज्ज जंतत्थ पाडिहरिसं तु । पडिबोधिसा सम्मं अप्पेदव्वं तयं तेसि ।१६६३। आराधणपसीयं काउसरगं करेदि तो संघो। अधिउत्तार इच्छागारं खबगस्स वसघीए ।१६१४। सगणरथे कालगरे खमणमसङ्गाइयं च तहिवसं । सङ्गाइ परगणत्थे भयणिउजं खमणकरणं पि ।१११५। एवं पडिद्वविचा पुणो वि तदियदिवसे जवैवखंति। संघस्स सुहविहारं तस्स गदी चैव णादुंजी ।१९९६। = मृतकको निषीधिकाके पास ले जानेके समय जो कुछ वस्त्र काष्ठादिक उपकरण गृहस्थोंसे याचना करके लाया गया था उसमें जो कुछ लौटाकर देने योग्य होगा वह गृहस्थोंको समभाकर देना चाहिए ।१६६३। चार आराधनाओंकी प्राप्ति हमको होने ऐसी इच्छासे संधकी एक कायोत्सर्ग करना चाहिए। क्षपककी वसतिकाका जो अधिष्ठान देवता है उसके प्रति 'यहाँ संघ कैठना चाहता है' ऐसा इच्छाकार करना चाहिए। १६६४। अपने गणका मुनि मरणको प्राप्त होवे तो उपवास करना चाहिए और उस दिन स्वाध्याय नहीं करनी चाहिए। यदि परगणके मुनिकी मृत्यु हुई हो तो स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। उपवास करे अथवान करे। १९६५। उपयुक्त क्रमसे क्षपकके शरीरकी स्थापना कर पुनः तीसरे दिन वहाँ जाकर देखते हैं कि संघका मुखसे विहार होगा या नहीं और क्षपककी कौनसी गति हुई है। [ये वार्ते जाननेके लिए, पक्षियों द्वारा इधर-उधर ले जाकर डाले गये, शबके अंगोपांगोंको देखकर विचारते हैं। (दे. अगला शीर्षक)] ।११६६।

३. फल विचार

१. निषीधिकाको दिशाअपिरसे

म. आ./मू./१६७१-१६७३ जा अवरदिक्लणाए व दिक्लणाए व अध व अवराए। वसधीदो विण्णि जिदि शिसी धिया सा पस्थिति।१६७०। सम्बद्धाः पढ़माए दिक्लणाए दु भत्तगं सुलभं। अवराए सुह-विहारो होदि य जवधिरस लाभो य।१६७१। जद तेसि माधादो दटुव्या पुव्यदिक्लणा होइ। अवरुत्तरा य पुव्या उदीचिपुव्युत्तरा कमसो।१६७२। एदासु फर्ल कमसो जाणेज्ज तुमंतुमा य कलहो य। भेदो य गिलाणं पि य चिरमा पुण कड्ददे अण्णं।१६७३। चवह निषी-धिका अपककी वसतिकासे नै ऋत्य दिशामें, दक्षिण दिशामें, अथवा पश्चिम दिशामें होनो चाहिए। इन दिशाओंमें निषीधिकाकी रचना करना प्रशस्त माना गया है।१६७०। नै ऋत्य दिशाकी निषीधिका सर्वसंघके लिए समाधिकी कारण है। अर्थात वह सबका हित करनेवाली है। दक्षिण दिशाकी निषीधिकासे सबको आहार सुलभुतासे मिलता है। पश्चिम दिशामें निषीधिका होनेसे संघका सुलसे विहार होता रहेगा, और उनकी पुस्तक आदि उपकरणोंका लाभ होता रहेगा।१६७१। यदि उपरोक्त तीन दिशाओंमें निषीधिका

भनवानेमें कुछ बाधा उपस्थित होती है तो १. आग्नेय, २. वायव्य, ३. ऐशान्य, ४. उत्तर दिशाओं मेंसे भी किसी एक दिशामें भनवानी चाहिए ११६७२। इन दिशाओं का फल क्रमसे—१. संधमें 'में ऐसा हुँ, तू ऐसा हैं' इस प्रकारकी स्पर्धा, २. संघमें कलह, फूट, व्याधि, परस्पर खेंचातानी और मुनिमरण समभना चाहिए ११६७३।

२. शवके संस्तरपरसे

भ, आ./मू./१९८५ जिह विसमो संथारो उनरि मज्भे व होज्ज हेट्टा वा। मरणं व गिलाणं वा गिलवसभजदीण णायव्यं ।१९८६। = यदि तन्दुल चूर्ण आदिसे अंकित संस्तरमें रेखाएँ ऊपर नीचे व मध्यमें विषम हैं तो वह अनिष्ट सूचक है। ऊपरकी रेखाओं के विषम होनेपर आचार्यका मरण अथवा व्याधि; मध्यकी रेखाएँ विषम होनेपर एलाचार्यका मरण अथवा व्याधि, और नीचेकी रेखाओं के विषम होनेपर सामान्य परिका मरण अथवा व्याधिकी सूचना मिलती है।१९८५।

३. नक्षत्रों परसे

भ. आ./मू./१६८८-१६८६ णत्ता भाए रिक्खे जिंद कालगदो सिवं तु सक्वेसि। एको दु समे खेसे दिश्र इत्येते मर्गत दुवे।१६८८। सद-भिसभरणा अहा सादा असलेस्से जिट्ठ अवलरा। रोहिणिविसाह-पुण्व्यम्चत्ति उत्तरा मिल्मा सेसा।१६८६। क्यो नक्षत्र १६ सुहूर्तके रहते हैं उनको ज्ञान्य नक्षत्र कहते हैं। शतभिषक, भरणी, आर्दा, स्वाती, आश्वेषा इन छह नक्षत्रोंमेंने किसी एक नक्षत्र पर अथवा उसके अंशपर यदि क्षपकका भरण होगा तो सर्व संवका क्षेम होगा। ३० सुहूर्तके नक्षत्रोंको मध्यम नक्षत्र कहते हैं। अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, मधा, पूर्वाफाक्युनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, पूर्वाषाढ़ा, अवण, धनिष्ठा, पूर्वाभादपदा और रेवती इन १६ नक्षत्रों-पर अथवा इनके अंशोपर क्षपकका मरण होनेसे, और भी एक मुनि-का मरण होता है। ४६ सुहूर्तके नक्षत्र उत्कृष्ट हैं—उत्तराफाल्युनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभादपद, पुनर्वस्त, रोहिणो इन छहमेंसे किसी नक्षत्रपर अथवा उसके अंशपर क्षपकका मरण होनेसे और भी दो मुनियोंका मरण होता है।

४. शरीरके अंगोपांगोंपरसे

भ.आ./मू./१६६७ जदिदिवसे संचिट्ठदि तमणालद्धं च अवलदं भड्यं। ददिवसिसाणि मुभिव्खं खेमसिवं तम्हि रज्जम्मि ।१९६७। जंबा दिवसमुक्णीदं सरीरयं खगचदुष्पदगणेहि । खेमं सिव सुभिनखं ब्रिह-रिज्जो तं दिसं संघो ।१६१८। जदि तस्स उत्तमंगं दिस्सदि इंता च उवरिगिरिसिहरे । कम्ममसविष्पसुक्को सिद्धि पत्तोत्ति णादञ्जो ।१६६६। वैमाणिओ थन्तगदो समस्मि जो दिसि य वाणवितस्थो। गड्डाए भवणवासी एस गदी से समासणे ।२०००। ≕ जितने दिन तक वृकादि पञ्च-पक्षियोंके द्वारा वह श्रपक शरीर स्पर्शित नहीं होगा और असत रहेगा उतने वर्षतक उस राज्यमें क्षेम रहेगा।१६६७। पक्षी अथवा चतुष्वर प्राणी जिस दिशामें उस क्षपकका शरीर ले गये होंगे, उस दिशामें संघ विहार करें, क्यों कि वे अंग उस दिशामें क्षेमके सुचक हैं।१६६८। क्षपकका मस्तक अथवा दन्तपंक्ति पर्वतके शिखरपर दील पड़ेगी तो यह क्षपक कर्ममलसे पृथक् होकर मुक्त हो गया है, ऐसा समभ्र ना चाहिए ।१६६६। क्षपकका मस्तक उच्च स्थलमें दोखने-पर वह वैमानिक देव हुआ है, समभूमिमें दीखनेपर ज्योतिष्क देव अथवा व्यन्तर देव और गड्ढेमें दीखनेपर भवनवासी देव हुआ समफना चाहिए।२०००।

सवरी गुह्मगूहन —कायोत्सर्गका एक अतिचार-दे. वयुत्सर्ग १। सवर्णकारिणी —दे. विद्या ।

सविचार—हे. विचार।

सविपाक--दे विपाक।

सहकारी---

का, अ./मू./२१८ सञ्चाणं दञ्चाणं जो जनयारो हवेइ अण्णोण्णं। सो चित्र कारणभानो हवदि हु सहकारिभानेण।२१८। सभी द्रञ्य पर-स्परमें जो उपकार करते हैं वह सहकारी कारणके रूपमें ही करते हैं। (विशेष दे. कारण/III/२/४-६)।

सहचर-दे हेतु।

सहज स्वाभाविक-(दे. नि. सा./ता, वृ./१६)।

सहज दुःख—हे. दुःख।

सहज विपर्यय - दे. विपर्यय ।

सहदेव पा. पु./सर्ग/श्लो — रानी माद्रीसे पाण्डुका पुत्र था।
(प/१०४-१७४) भीष्मिपितामहसे तथा द्रोणाचार्यसे धनुविद्या सीखी।
(प/२०४-१९४)। (विशेष दे, पाण्डक)। अन्तमें दीक्षा धारण की।
(२५/१२)। घोर तथ किया। (२५/१७-५१)। दुर्योधनके भानजे
द्वारा शतुञ्जयगिरिपर घोर उपसर्ग होनेसे साम्यता पूर्वक देह स्यागकर सर्वार्थ सिद्धि गये। (२५/५२-१३६)। पूर्वभव सं०२ में मित्री
बाह्यणी थे (२३/५२) तथा पूर्वभव सं०१ में अच्युत स्वर्गमें देव
हुए। (२३/१९४) और वर्तमान भवमें सहदेव हुए। (२४/७०)।

सहदेवी --- प. पु./सर्ग/श्लोक -- सुकौशल सुनिकी माता थी। (२१/ १६६)। पुत्र सुकौशलके सुनि हो जानेपर उसके वियोगमें मरकर सिंहनी हुई। (२२/४६)। पूर्वके क्रोधवश सुकौशलको ला लिया। (२२/८६-८८)। अन्तमें सुकौशलके पिता कीर्तिधरसे पूर्वभव जान-कर पश्चात्ताप पूर्वक देह स्थाग स्वर्गमें गयी। (२२/६७)।

सहनानी-गणितमें किसी प्रक्रियाके लिए कविषत किया गया कोई चिन्ह, अक्षर, अंक आदि -दे. गणित/1/२-४।

सहभाव-१. अविनाभावका एक भेद । दे अविनाभाव । २. गुण-इट्यका स्वभावी विशेष है-दे. गुण/३/२ ।

सहभू - दे. सहभाव ।

सहवृत्ति — ं का./ता.वृ./१०/११/१ समवृत्तिः सहवृत्तिर्गुणगुणिनोः कथं चिदेकत्वेनादितादातम्यसम्बन्ध इत्यर्थः । समवृत्ति अर्थात् गुण और गुणोका साथ-साथ रहना अर्थात् उनका कथं चिद् एकत्व अर्थात् तादातम्य सम्बन्ध।

सहसातिचार- दे. अविचार/३।

सहसा निक्षेपाधिकरण—दे. अधिकरण।

सहस्त्रनयन---- पृ./४/७६ सगर चक्रवर्तीका साला तथा मुलीचना-का प्रत्र ।

सहस्रनाम स्तव — पं० आशाधर (ई. ११७३-१२४३) द्वारा रचित संस्कृत छन्दबद्ध ग्रन्थ जिसमें १००८ नामों द्वारा भगवाम्का स्तवन किया गया है। इसपर आ. श्रुतसागर (ई. १४७३-१४३३) ने एक टीका लिखी है। विशेष – दे. अई न्त/१।

सहस्रपर्वा--दे, विद्या।

सहस्र रिवम — १ पु./१०/१लोक — माहिष्मती नगरीका राजा था । ६७। रावणकी पूजामें श्रधा डालनेके कारण । ६१। युद्धमें । १९४। रावण द्वारा

पकड़ा गमो । १३१। अन्तमें पिता शतनाहुकी प्रार्थनापर छोड़ा जाकर दीक्षा घारण कर ली । १४७, १६८।

सहस्तायुध — म. पु / ६३/रलोक — वजायुधका पुत्र था ।४६१ मुनि पिहितास्वतमे दीक्षा लेकर, पिताका भीग समाप्त होनेपर उसके पास जाकर घोर तप किया । संन्यासमरण कर अघोष्टै बेयकमें आहमिन्द्र हुआ ।१३८-१४१०

सहस्रार - १. वारहवाँ स्वर्ग-दे, स्वर्ग/४/२। २. प. पु./७/१४-रथनूपुरका राजा था। इसके पुत्र इन्द्रने रावणके दादा 'माली' को मारा था। पीछे रावण द्वारा युद्धमें परास्त किया गया।

सहानवस्था---दे विरोध।

सह्य - मलयगिरिके,समीपमें स्थित एक पर्वत- दे, मनुष्य/४।

सांख्य---१. सामान्य परिचय

स. म./परि-घ./पृ. ४२१ आत्माके तत्त्वज्ञानको अथवा सम्यग्दर्शन प्रतिपादक शास्त्रको सांख्य कहते हैं। इनको ही प्रधानता देनेके कारण इस मतका नाम सांख्य है। अथवा २५ तत्त्वींका वर्णन करनेके कारण सांख्य कहा जाता है।

२. प्रवर्तक साहित्य व समय

स. म./परि-घ./पृ. ४२३ १. इसके मूल प्रणेता महर्षि कपिल थे, जिन्हें क्षत्रिय पुत्र मताया जाता है और उपनिषदी आदिमें जिसे अवतार माना गया है। कृतियाँ -- सांख्य प्रवचन सूत्र, तथा तत्त्व समास । समय-भगवान् वीर व बुद्धसे पूर्व। २. कपिलके साक्षाद् शिष्य आसुरि हुए। समय-ई. पू. ६००। ३० आसुरिके शिष्य पंचिशस्त थे। इन्होंने इस मतका बहुत विस्तार किया। कृतियाँ – तत्त्वसमास पर ब्यारूया। समय—गार्वेके अनुसार ई. इत. १। ४. वार्षगण्य भी इसी गुरु परम्परामें हुए। समय ई, २३०-३००। वार्षगण्यके शिष्य विन्ध्यवासी थे। जिनका असली नाम रुद्रिल था। समय—ई, २५०-३२०। ६. ईश्वर कृष्ण बड़े प्रसिद्ध टीकाकार हुए हैं। कृतियाँ— षष्टितन्त्रके आधारपर रचित सांख्यकारिका या सांख्य सप्तति। समय-एक मान्यताके अनुसार ई श. २ तथा दूसरी मान्यतासे ई. ३४०-३८० । ६. सांख्य कारिकापर **माठर और गौखपाद**ने टीकाएँ सिखी हैं। ७, बाचस्पति मिश्र (ई. ५४०) ने न्याय वैशेषिक दर्शनोंकी तरह सांत्व्यकारिकापर सांत्व्यकौमुदी और व्यास भाष्यपर तत्त्व वैद्यारदी नामक टीकाएँ लिखीं। 💪 विद्यानंभिक्षु एक प्रतिभा-शाली व्यक्ति थे। इन्होंने पूर्वके विस्मृत ईश्वरवादका पुनः उद्धार किया। कृतियाँ-सांख्यसूत्रोपर सांख्य प्रवचन भाष्य तथा सांख्यसार, पातव्यातभाष्य वार्तिक, ब्रह्म सूत्रके ऊपर विज्ञानामृत भाष्य आदि ग्रन्थोंकी रचना को। १. इनके अतिरिक्त भी-भागव, बारमीकि, हारीति, देवल, सनक, नन्द, सनातन, सनत्कुमार, अंगिरा आदि सांख्य विचारक हुए ।

२. तस्व विचार

(षड् दर्शन समुच्चय/३४-४२/३२-३७): (भारतीय दर्शन)। १. मूल पदार्थ हो हैं—पुरुष न प्रकृति। २. पुरुष चेतन तत्त्व है। नह एक निष्क्रिय, निर्मुण, निर्तिप्त, सूक्ष्म, व इन्द्रियातीत है। ३. प्रकृति जड़ है। नह दो प्रकार है—परा न अपरा। परा प्रकृतिको प्रधान सूला या अन्यक्त तथा अपरा प्रकृतिको न्यक्त कहते हैं। अन्यक्त प्रकृति तीन गुणोंकी साम्यानस्था स्वरूप है, तथा नह एक है। न्यक्तप्रकृति अनित्य, जन्यापक, क्रियाशील तथा सगुण है। यह सूक्ष्मसे स्थूल पर्यन्त क्रमसे २३ भेद रूप है—महत् या बुद्धि, अहंकार, मन, पाँच झानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच तन्मात्राएँ व पाँच भूत। ४. सस्व, रज न तम तीन गुण हैं। सत्त्व, प्रकाशस्वरूप 'रज' क्रियाशील, और 'तम' अन्धकार व अवरोधक स्वरूप है। यह तीनों गुण अपनी साम्यावस्थामें सदश परिणामी होनेसे अव्यक्त रहते हैं और वैसा इस्य होनेपर व्यक्त हैं, क्यों कि तब कभी तो सत्त्व गुण प्रधान हो जाता है और कभी रज या तमोगुण। उस समय अन्य गुणोंकी शक्ति हीन रहनेसे वे अप्रवान होते हैं। ४. रजो गुणके कारण व्यक्त व अव्यक्त दोनों ही प्रकृति नित्य परिणमन करती रहती हैं। वह परिणमन तोन प्रकारका है-धर्म, सक्षण व अवस्था। धर्मीका आविभवि व तिरोभाव होना धर्मपरिणाम है, जैसे मनुष्यसे देव होना । प्रतिक्षण होनेवाली सुक्ष्म विलक्षणता लक्षण परिणाम है और एक ही रूपसे टिके हुए अवस्थाबदलना अवस्था परिणाम है जैसे बच्चेसे बुढ़ा होना। इन तीन गुणोंकी प्रधानता होनेसे बुद्धि आदि इ३ तत्त्व भी तीन प्रकार हो जाते हैं—सात्त्विक, राजसिक, व तामसिक। जैसे--ज्ञान-वैराग्य पूर्ण बुद्धि सान्विक है, विषय विलासी राजसिक है और अधर्म हिंसा आदिमें प्रवृत्त तामसिक है-इत्यादि । ६, चक्षु, आदि ज्ञानेन्द्रिय हैं । हाथ, पाँव, वचन, गुदा व अननेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय है, ज्ञानेन्द्रियोंके विषयभूत रूप आदि पाँच तन्मात्राएँ है और उनके स्थूल विषयभूत पृथ्वी आदि भूत कहलाते हैं।

ईश्वर व सुख-दुःख विचार

षड्दर्शन समुच्चय (३६-३६/२२-३३): (भारतीय दर्शन)। १. ये लोग ईप्रवर् तथा यज्ञ-याग आदि क्रियाकाण्डको स्वीकार नहीं करते।
२. सत्त्वादि गुण्डेकी विषमताके कारण ही सुख-दुख उत्पन्न होते हैं। वे तीन प्रकारके हैं—आध्यात्मिक, आधिभौतिक, व आधि-दैविक। ३. आध्यात्मिक दो प्रकार हैं—कायिक व मानसिक। मनुष्य, पशु आदि कृत आधिभौतिक और यक्ष, राह्मस आदि या अतिवृष्टि आदिकृत आधिदैविक हैं।

५. सृष्टि, प्रलय व मोक्ष विचार

षड्दर्शन समुच्चय (४४/३८); (भारतीय दर्शन)। १. यदापि पुरुष तस्य रूपसे एक है। प्रकृतिकी विकृतिसे चेतन प्रतिविम्ब रूप जो बुद्धियाँ उरपन्न होती हैं-वे अनेक हैं। जड़ होते हुए भी यह बुद्धि चेतनवत दीख़ती है। इसे ही बद्ध पुरुष या जीवातमा कहते हैं। त्रिगुणधारी होनेके कारण अह परिणामी है। २. महत्, अहंकार, ग्यारह इन्द्रियाँ न पाँच तुनमात्राएँ, प्राण व अपान इन सत्तरह तत्वों-से मिलकर सुक्ष्म शरीर बनता है जिसे लिंग शरीर भी कहते हैं। वह इस स्थूल शरीरके भीतर रहता है, सूक्ष्म है और इसका मूल कारण है। यह स्वयं निरूपण योग्य है, पर नटकी भाँति नाना शरीरोंको घारण करता है। ३. जीवात्मा अपने अदृष्टके साथ परा प्रकृतिमें लय रहता है। जन उसका अदृष्ट पाकोन्सुख होता है तम तमो गुणका प्रभाव हट जाता है। पुरुषका प्रतिबिम्ब उस प्रकृतिवर पड़ता है, जिससे उसमें क्षोभ या चंचलता उत्पन्न होती है और स्वतः परिणमन करती हुई महत आदि २३ विकारोंको उरपन्न करती है। उससे सूक्ष्म शरीर और उससे स्थूल शरीर बनता है यही सृष्टि है। ४. अदृष्टके विषय समाप्त हो जानेपर ये सब पुनः उत्तटे क्रमसे पूर्वोक्त प्रकृतिमें लय होकर साम्यावस्थामें स्थित हो जाते हैं। यही प्रलय है। ५, अनादि कालसे इस जीवारमाको अपने वास्तविक स्वरूपका ज्ञान नहीं है। २४ तत्त्वोंके ज्ञानसे उसे अपने स्वरूपका भान होता है तब उसके राजसिक व तामसिक गुणोंका अभाव हो जाता है। एक झानमात्र रह जाता है, वही कैवल्यकी प्राप्ति है। इसे ही मोक्ष कहते हैं। ६. वह मुक्तारमा जब तक शरीरमें रहता है तब तक जीवन्युक्त कहलाता है और शरीर छूट जानेपर विदेह मुक्त कहलाता है। ७. पुरुष व मुक्त जोवमें यह अन्तर है कि पुरुष तो एक है और और मुक्तारमाएँ अपने अपने सत्त्व गुणोंकी पृथक्ताके कारण अनेक हैं। पुरुष, अनादि व नित्य है और मुक्तारमा सादि व नित्य।

६. कारण कार्य विचार

(भारतीय दर्शन) ये लोक सरकार्यवादी हैं। अर्थात इनके अनुसार कार्य सदा अपने करणभूत पदार्थमें निद्यमान रहता है। कार्य क्षणसे पूर्व वह अन्यक्त रहता है। उसकी व्यक्ति हो कार्य है। वस्तुतः न कुछ उत्पन्न होता है न नष्ट।

७. प्रमाण विचार

(भारतीय दर्शन) प्रत्यक्ष, अनुमान व आगम तीन प्रमाण मानता है। अनुमान व आगम नैयायिकों वत् है। 'बुद्धि' अहं कार व मनको साथ लेकर बाहर निकल जाती है। और इन्द्रिय विशेषके द्वारा उसके प्रतिनियत विषयको यहण करके तदाकार हो जाती है। बुद्धिका विषयाकार होना ही प्रत्यक्ष है।

🛨 अन्य सम्बन्धित विषय

- वैदिक अन्यं दर्शनींका क्रिमक विकास दे. दर्शन ।
- २. साधुः तथा साधना-दे योगदर्शन ।
- ३. सांख्य व योगदर्शनकी तुलना—दे. योगदर्शन ।

८. जैन बौद्ध व सांख्यदर्शनकी तुकना

स्या, म./परि-घ./पृ. ४२०१, जैन व बौद्धकी तरह सांख्य भी वेद. ईश्वर, याज्ञिक क्रियाकाण्ड, व जाति भेदको स्वीकार नहीं करता। क्षेनोंकी भाँति ही बहु आत्मवाद तथा जीवका मौक्ष होना मानता है। जैन व बौद्धकी भाँति परिणामनादको स्वीकार करता है। अपने तीर्थं कर कपिलको क्षत्रियों में उत्पन्न हुआ मानता है। वैदिक देवी-देवलाओं पर विश्वास नहीं करता और वैदिक ऋचाओं पर कटाक्ष करता है। तत्त्वज्ञान, संन्यास, व तपश्चरणको प्रधानता देता है। ब्रह्मचर्यको पर्थार्थयज्ञ मानता है। गृहस्थ धर्मकी अपेक्षा संन्यास धर्मको अधिक महत्त्व देता है। [self] २. सांख्योंकी भाँति जैन भी किसी न किसी रूपमें २५ तत्त्वोंको स्वीकार करते हैं। तथा परम भावग्राही द्रव्यार्थिक नयसे स्वीकार किया गया एक, व्यापक, नित्य, चैतन्यमात्र, जीव तत्त्व ही पुरुष है। संग्रह नयसे स्वीकार किया गया एक, व्यापक, नित्य, अजीव तत्त्व ही अव्यक्त प्रकृति है। द्रव्य न भावकर्म व्यक्त प्रकृति है। शुद्ध निश्चय नयसे जिसे उपरोक्त प्रकृतिका कार्य, विकार तथा जड़माया कहा गया है, ऐसा ज्ञानका क्षयोपशम सामान्य महत्या बुद्धि तत्त्व है, मोहजनित सर्व भाव-अहं कार तत्त्व हैं, संकल्प विकल्प रूप भावमन मनतत्त्व है, पाँचीं भावेन्द्रियाँ ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। व्यवहार नयसे भेर करके देखा जाये तो शरीरके अवयवभूत वाक्, पाणि, पाद आदि पाँच कमेन्द्रियाँ भी पृथक् तत्त्व हैं। शुद्ध निश्चय नयसे ये सभी तत्त्व चिदाभास हैं. यही प्रकृतिपर पुरुषका प्रतिबिम्ब है। यह तो चेतन जगत्का विश्लेषण हुआ। जड़ जगत्की तरफ भी इसी प्रकार शुद्ध कारण परमाणु व्यक्त प्रकृति है। शुद्ध भ्रुजुसुत्र या पर्यायाथिक दृष्टिसे भिन्न माने गये स्पर्श रस अ।दि उस परमाणुके गुणोंके स्वलक्षणभूत अविभाग प्रतिच्छेद ही तन्मात्राएँ हैं। नैगम व व्यवहार नयसे अविभाग प्रतिच्छेदोंसे युक्त परमाणु और परमाणुओंके बन्धसे पृथियी आदि पाँच भूतोंकी उत्पत्ति होती है। असइभूत व्यवहार नयसे द्रव्यकर्मरूप कार्मण शरीर और अशुद्ध निश्चयनय औदारिक ब क्षायोपशमिक भावरूप कार्मण शरीर ही जीवका सूक्ष्म शरीर है जिसके कारण उसके स्थूल शरीरका निर्माण होता है और जिसके

विनाशते उसका मोश होता है। सृष्टि मोशकी यही प्रक्रिया संख्य-मतंको मान्य है। शुद्ध पारिणामिक भावस्प पुरुष व अव्यक्त प्रकृतिको हो तत्त्वरूपसे देखते हुए अन्य सब भेडोंको उसीमें लय कर देना शुद्ध द्रव्यार्थिक दृष्टि है। वही परमार्थ ज्ञान या विवेक ख्याति है। तथा वही एक मात्र साक्षात् मोशका कारण है। इस प्रकार सांख्य व जैन तुल्य हैं। ३ परन्तु दूसरी ओर जैन तो उपरोक्त सर्व नयोंके विरोधी भी नयोंके विषयोंको स्वीकार करते हुए अनेकान्तवादी हैं और सांख्य उन्हें न स्वीकार करते हुए एकान्तवादी हैं। यथा संग्रहनयसे जो पुरुष व प्रकृति तत्त्व एक-एक व सर्व व्यापक हैं वही व्यवहार नयसे अनेक वअव्यापक भी हैं। शुद्ध निश्चय नयसे जो पुरुष नित्य है अशुद्ध निश्चय नयसे अनित्य भी है। शुद्ध निश्चय नयसे जो बुद्धि, अहंकार, मन व झानेन्द्रिय प्रकृतिके विकार हैं अशुद्ध निश्चय नयसे बहो जीवकी स्वभावभूत पर्यायें हैं। इत्यादि। इस प्रकार दोनों दर्शनोंमें भेद है।]

सांतर निरन्तर वर्गणा—दे. वर्गणा/१। सांतरबन्धो प्रकृति—दे. प्रकृति वन्ध/२। सांतर मार्गणा—दे. मार्गणा। सांतर स्थिति—दे. स्थिति/१।

सांद्र- नियमित सान्द्र-Regular Solid (जं. प्,/प्र. १०७)।

सांपराय - दे. संपराय।

सांपरायिक आस्रव—हे, आस्त्र /१/६।

सांप्रति सम्राट् अशोकका दादा व चन्द्रगुप्त मौर्यका पृत्र थो।
मगधका जैनधमन्त्रियायी राजा था। मौर्य वंशकी वंशावलीके अनु-सार इसका समय जैन मान्यतानुसार ई. पू. ३६४-३२४ तथा वर्तमान इतिहासके अनुसार ई. पू. २६५-२५५ आता है। — दे. इतिहास /३/३ (आ. हेमचन्द्र रचित परिशिष्ट पर्व/६६-१०)।

सांप्रतिक कृष्टि — हे. कृष्टि । सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष—हे. प्रत्यक्ष/१/४ । सांश्रयिक मिथ्यात्व—हे. संशय । साकांक्ष अनशन—हे. अनशन ।

साकार - चेतनकी विकल्पातमक वृत्ति अर्थात् ज्ञान-दे, आकार ।

साकारमन्त्रभेद — स सि./७/२६/३६६/११ अर्थप्रकरणाङ्गविकार-भूविक्षेपादिभिः पराकृतमुग्तम्य तद।विष्करणमसूयादिनिमित्तं यत्तत्साकारमन्त्रभेद इति कथ्यते। ⇒अर्थवशः प्रकरणवशः, शरीरके विकारवश या भूक्षेप आदिके कारण दूसरेके अभिष्रायको जानकर डाहसे उसका प्रगट कर देना साकारमन्त्रभेद है। (रा. वा./७/२६/६/ १४४/१)।

साकेत-भरत क्षेत्रका एक नगर। अपर नाम अयोध्या। दे. मनुष्य/४।

सागर—मध्यलोकमें द्वीवोंके बेहित करते हुए एकके पीछे एक करके असंख्यात सागर स्थित हैं—दे.लोक/२/११ १२.मान्यवान गजदन्तपर स्थित एक कूट तथा नन्दनवनका एक कूट—दे. लोक/६/१४ । ३. भूतकालीन द्वितीय तीर्थं कर—दे. तोर्थं कर/६ । ४. कालका एक प्रमाण -दे गणित/11/6/१ ।

सागरबृद्धि — वरांग चरित्र/१४/७१ — ललितपुरका एक विणक् तथा वरांगका धर्म पिता ।

सागरोपस-कालका एक प्रमाण-दे, गणित/1/१/४।

सागार—

चा. पा./मू./२१, २३ सायारं सम्मंथे ...।२१। पंचेवाणुक्वयाइं गुणक्वयाइं हवंति तह तिण्णि। सिक्खावय चत्तारि य संजमचरणं च सायार ।२३। स्तागार संयमाचरणं परिग्रहसहित शावकके होता है ॥२१। अणुवत पाँच. गुणवत तीन और शिक्षावत चार ऐसे १२ प्रकार संयमाचरणं चारित्र सो सामार है — विशेष, दे, वत प्रतिमा। (सा. ध./१/१२)।

प. ति./१/१३ आराध्यन्ते जिनेन्द्रा गुरुषु च विनितिधर्मिकैः प्रीतिरुच्चैः पात्रेम्यो दानमापित्रहत्वजनकृते तच्च कारुण्यबुद्ध्या। तस्वाम्यासः स्वकीयवतरतिरमनं दर्शनं यत्र प्रुज्यं, तह्गाईस्थ्यं बुधानामितरिह् पुनर्दुः जदो मोहपाशः ११३। ... एकादश स्थानानीति गृहिवते व्यसनितात्यागस्तदाद्यः स्मृतः ११४। ≈ जिस गृहस्थ अवस्थामे जिनेन्द्र-को आराधना की जातो है, निर्मन्य गुरुओं के प्रति विनय, धर्मात्माओं के प्रति प्रीति व वात्सव्य, पात्रोंको हान, आपत्ति प्रस्त पुरुषोंको ह्या बुद्धिसे दान, तस्त्रोंका परिशीत्तन, वर्तो व गृहस्थ धर्मसे प्रेम तथा निर्मन सम्यग्दर्शन धारण करना, ये सब किया जाता है वह गृहस्थ अवस्था विद्वानोंके लिए पूजनेके योग्य है अन्यथा दुःखस्य है। श्रावक घर्ममें ग्यारह प्रतिमाएँ निर्दृष्ट की गयी हैं। उस सबके आदिमें कृतादि व्यसनोंका त्याग स्मरण किया गया है। १४। (विशेष दे, श्रावक)।

सा, घ /१/२ अनाविविवादोषोत्थचतुःसं ह्याज्वरातृराः। शश्वस्वद्यान-विमुखाः सागारा विषयोन्मुखाः।२। — अनादिकालीन अविद्यारूपी बात पित्त कफसे उत्पन्न आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन पार संज्ञारूपी ज्यरोंसे दुंखो और सदा अपने आत्मज्ञानसे विमुख तथा पंचित्त्रियके विषयों के जन्मुख, ऐसे सागार होते हैं। अर्थात सकत परिग्रह सहित घरमें रहनेवाले सागार होते हैं।

सागारधर्मामृत — पं आशाधर (ई. १९७३-१२४३) द्वारा रचित संस्कृत श्लोक बद्ध शावकाचार विषयक विस्तृत ग्रन्थ। इसमें आठ । अध्याय और ४७७ श्लोक हैं। (ती./४/४१)।

सातकणी-भृत्यवंशके गौतमीपुत्र शालिवाहनका दूसरा नाम । समय-वी. नि. ६००-६४६ (ई.७४-१२०)-दे इतिहास/३/४।

सातगारवं - दे, गारव ।

्साततस्व व्यसन आदि—_{हे, सप्त ।}

सातत्य—Continuum (घ. ४/प्र. २८) ।

साता-- दे. 'वेदनीय'

सातिप्रधोग--मामाके एक भेद-दे. मामा/२।

सातिरेक—Excess—(जं. प्र./प्र. १०६) र

सातिशय अप्रमत्त — हे. संयत/१/४।

सातिशय मिथ्यादृष्टि—दे. मिथ्यादिष्ट/१/३।

सात्यकि पुत्र — ११ वें रुद्र—दे, शलाका पुरुष/७।

सात्त्विक दान---दे, दान/१/१।

सादि-दे. अनादि।

साबृद्य - स. भ. त./७४/४ - तिद्धिवत्वे सित तद्दगतभूयोधर्मवत्त्वं सादश्यम् । यथा चनद्रभिवत्वे सित चन्द्रगताहादकरत्वादि मुखे चन्द्रसादश्यम् । = उससे भिन्न हो तथा उसमें रहनेवाले धर्म पदार्थमें हों, यही सादश्य है। जैसे चन्द्रमासे भिन्न रहते चन्द्रगत आह्वादकरत्व वर्तुलाकार युक्तत्व यह चन्द्रसादश्य मुखमें है।

सावृत्य प्रत्यभिज्ञान । सावृत्यास्तित्व—हे, अस्तित्व । साधक श्रावक—हे. श्रावक/(/३ ।

साधन---१.सक्षण

१. हेतुके अर्थमें

श्लो. वा./३/१/१३/श्लो. १२२/२६६ अन्यथानुपपत्त्र्येकलक्षणं तत्र साधनं । = अन्यथा अनुपपत्ति ही एक जिसका लक्षण है, वह साधन है। (सि. वि./वृ./६/२२/३६६/७); (और भी दे. हेतु/१/१)।

न्या. दी./१/६९६/६६ निश्चितसाध्यान्यथानुपरितकं साधनस्। यस्य साध्याभावासंभवनियमरूपा व्याप्त्यविनाभावाखपरेपर्याया साध्या-न्यथानुपपत्तिस्तकांरुयेन प्रमाणेन निर्णीता तत्साधनिमत्यर्थः। तदुक्तं कुमारनन्दिभद्दारकेः—"अन्यथानुपपत्येकलक्षणं लिङ्ग— मङ्गवते" [वादन्याय -] इति। = जिसकी साध्यके साथ अन्यथा-नुपपत्ति निश्चित है उसे साधन कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जिसकी साध्यके अभावमें नहीं होने रूप व्याप्ति, अविनाभाव आदि नामों-वाली साध्यानुपपत्ति— साध्यके होनेपर ही होना और साध्यके अभावमें नहीं होना – तर्क नामके प्रमाण द्वारा निर्णीत है वह साधन है। श्री कुमारनन्दि भट्टारकने भी कहा है—"अन्यथानुपपत्तिमात्र जिसका सक्षण है उसे लिंग कहा गया है।"—(और भी दे, हेतु/९/१)।

२. चारित्रके अर्थर्भे

- भ. आ./वि./२/१४/२१ उपयोगान्तरेणान्तहितानां दर्शनादिपरिणामानां निष्पादनं साधनं = अन्य कार्यके प्रति ज्ञानोपयोग सगनेसे तिरोहित हुए दर्शनादिपरिणामोंको उत्पन्न करना, अर्थात् निरय व नैमित्तिक कार्य करनेमें चित्त सगनेसे तिरोहित हुए सम्यग्दर्शना-दिकोंमेंसे, किसी एकको पुनः उपायोंके प्रयोगसे सम्पूर्ण करना साधन कहलाता है।
- दे. श्रावक/१/२/४ [मरण समय आहार व मन वचन कायके व्यापारका त्याग करके आत्म शुद्धि करना साधन है। उसको करनेवाला श्रावक साधक श्रावक कहलाता है।]

* अन्य सम्बन्धित विषय

- १. कारणके अर्थमें साधन -दे. कारण/I/१/१।
- २. साधन साध्य संबन्ध-दे, संबन्ध ।
- ३. निश्चय व्यवहार्से साध्य साथन भाव-दे. सम्यग्दर्शन आदि वह वह नाम ।

साधनमन्त्र--हे. मन्त्र/१/६।

साधन विकल-दे. दशन्त/१/८।

साधन व्यभिचार—हे. नय/III/६/८।

स(धर्म्य स. भ. त./१३/२ साधर्म्य नाम साध्याधिकरणवृत्तित्वेन निश्चितत्वम्। - साध्यके आधारों में जिसकी वृत्तिता निश्चित हो उसको साधर्म्य कहते हैं।

साधम्यं उदाहरण—दे. हष्टान्त/१/३ र साधम्यं समा—

न्या. सू. व भाष्याश/१/२ साधम्यवैधम्याभ्यामुपसंहारे तद्धमीवपर्ययो-

पपत्तेः साधर्म्यवैधर्म्यसमौ ।श-- निदर्शनं वियावानास्मः द्रव्यस्य क्रियाहेतुगुणयोगात् । द्रव्यं सोष्टः क्रियाहेतुगुणयुक्तः क्रियानात् तथा चात्मा तस्मात्क्रियस्वानिति । एवं उपसंहतेः परः साधर्म्येणैव प्रत्य-वतिष्ठते निष्क्रिय आत्मा विभुनो द्रव्यस्य निष्क्रियत्वाह् विभु चाकारां निष्क्रियं च तथा चारमा तस्मान्निष्क्रिय इति ।.. विशेष-हेरवभावात्साधर्म्यसमः प्रतिषेधौ भवति । विशेषहेरवभावात्साधर्म्य-समः प्रतिषेधो भवति । अथ वैधम्यं समः क्रियाहेतुगुणयुक्ती लोष्टः परिच्छिन्नो दृष्टो न च तथात्मा तस्मान्न लोष्टबद् क्रियाबानिति। ... बिशेषहेत्वभावाद्वेधम्यसमः। वैधर्म्येण चोपसंहारे निष्क्रिय आत्मा विभुत्वात् क्रियावद् द्रव्यमिनभु दृष्टं यथा लोष्टो न च तथात्मा तस्मातिष्क्रिय इति वैधम्प्रेण प्रत्यवस्थानं निष्क्रियं द्रव्यमाकाशं क्रियाहेतुगुणरहितं दृष्टं न तथात्मा तस्मान्न निष्क्रिय इति।… विशेषहेत्वभावाद्वैधर्म्यसमः क्रियावान् लोष्टः क्रियाहेतुगुण्युक्तो दृष्टः तथा चारमा तस्मात् जियावानिति। – विशेष हेरवभावारसाधम्यं-समः। = १, बादो द्वारा साधम्यंकी तरफसे हैतुका पक्षमें उपसंहार कर चुकनेपर उस साधम्धंके विषयंय धर्मकी उपपत्ति करनेसे जो वहाँ दूषण उठावा जाता है वह साधम्यंसम प्रतिषेध माना गया है। २. और इसी तरह वादी द्वारा वैधर्म्यकी तरफसे पक्षमें हेतुका उपसंहार कर चुकनेपर पुनः प्रतिवाद द्वारा साध्य धमेके विपयेयकी **उ**पपत्ति हो जानेसे वैधर्म्य या साधर्म्यकी अंत्रसे प्रत्यवस्थान दिया जाता है वह वैधर्म्यसमा जाति इष्ट की गयी है। ३. साधर्म्यसमाका उदाहरण – आत्मा क्रियावान् है क्यों कि यह एक द्रव्य है, और द्रव्य क्रिया हेतु गुणसे युक्त होनेके कारण क्रियावाच हुआ करता है। जैसे लोष्ट नामका द्रव्य क्रियाहेतु गुणसे युक्त होनेके कारण क्रियावाच् है। इसप्रकार वादी द्वारा साधम्येकी तरफसे उपसंहार किया जा चुकनेपर प्रतियादी इसके विषयंयमें यों कह रहा है कि आरमा निष्क्रिय है, क्यों कि, यह विभु है और विभुद्रव्य निष्क्रिय हुआ करता है, जैसे कि आकाश । विशेष हेतुके अभावमें 'साधम्यसमा' प्रतिषेध होता है। वैधम्य समाका उदाहरण- क्रियाहेतुगुणसे युक्त लोष्ट तो परिच्छित्र अर्थात् अन्यापक देखा जाता है, परमारमा आरमा तो बैसा नहीं है, इस लिए वह लोष्टकी भाँति क्रियाबाद भी नहीं है। विशेष हेतुके अभावमें यह वैधर्म्यसमा जाति है। ४. अथवा वैधर्म्यको तरफसे उपसंहार किया जानेपर दोनोंके उदाहरण ऐसे हैं--आत्मा निष्किय है, क्योंकि वह विभु है। लोष्टकी भाँति अविभु **द्रव्य हो क्रिया**जान् देखा जाता है, परन्तु अपत्मा वैसा नहीं **है,** इसलिए वह निष्क्रिय है, इस प्रकार वैधर्म्यकी तरफसे उपसंहार किया जा चुकनेपर प्रतिवादी वैधन्यके द्वारा ही प्रत्यवस्थान देता है कि निष्क्रिय आकाश द्रव्य ही क्रियाहेतु गुणसे रहित देखा जाता है, परन्तु आत्मा वैसानहीं है, इसलिए वह निष्क्रियनहीं है। विशेष हेतूके अभावमें यह वैधर्म्यसमा जाति है। क्रियावान् लोष्ट इत्य्य ही क्रियाहेतु गुणसे युक्त देखा जाता है और क्यों कि आत्माभी वैसाही है, इसलिए वह क्रियाबात् है। विशेष हेतुके अभावमें यह साधम्यसमा जाति है। (श्ली, वा,/४/१/३३/न्या. ३२६/४६२/६ तथा न्या./३२६/ 890/9)1

साधारण-१. साधारणत्वका लक्षण

स. भ. त./७८/६ अनेकडयक्तिवृक्तित्वमेव हि साधारणस्यम् । = अनेक डयक्तियों में अनुगतस्वसे होनेवाला वृक्तित्व हो साधारणस्य है। (विशेष दे. सामान्य)।

२. साधारणासाधारण शक्ति

स. सा./आ./परि/शक्ति नं. २६ स्वपरसमानासमानसमानासमानत्रि-विधमावधारणात्मिका साधारणासाधारणसाधारणासाधारणधर्मत्व-

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

Jain Education International

ŧ

शक्तिः। — स्व व परके समान, असमान और समानःसमान ऐसे तीन प्रकारके भावोंकी धारणास्वरूप साधारण, असाधारण और साधा-रणासाधारण धर्मत्व शक्ति है।

३. साधारण व असाधारण हेत्वामास

रलो. वा./४/भाषाकार/१/३३/न्या./२७३/४२१/१३.१८ यः सपक्षे विपक्षे च भवेत् साधारणस्तु सः १००० प्रस्तुभयस्माद्वयावृत्तः सः त्वसाधारणो मतः । = व्यभिचारी हेत्वाभास तीन प्रकारका है — साधारण. असाधारण और अनुपसंहारी । तहाँ जो हेतु सपक्ष व विपक्ष दोनों में रह जाता है वह साधारण है, और जो हेतु सपक्ष और विपक्ष दोनों में नहीं उहरता वह असाधारण है।

४. अन्य सम्बन्धित विषय

- साधारण व असाधारण गुण, निमित्त व पारिणामिक भाव
 दे. वह वह नाम ।
- २, वसतिकाका एक दोष-दे. वसतिका !
- ₹. साधारण नामकर्म व साधारण वनस्पति दे. बनस्पति/४।

साधारणीकृत—Generalization. (ध. ४/प्र. २८)।

सिंधु — पंच महावत पंच समिति आदि २८ मूलगुणों रूप सकल चारित्रको पालनेवाला निर्मन्थ मुनि ही साधु संज्ञाको प्राप्त है। परन्तु उसमें भी आरम शुद्धि प्रधान है, जिसके बिना वह नग्न होते हुए भी साधु नहीं कहा जा सकता। पुलाक बकुश आदि पाँच भेद ऐसे ही कुछ अष्ट साधुओंका परिचय देते हैं। आचार्य, उपाध्याय व साधु तीनों ही साधुपनेकी अपेक्षा समान हैं। अन्तर केवल संघकृत उपाधिके कारण है।

१ साधु सामान्य निदेंश

- र साधु सामान्यका छक्षण ।
- २ साधुके अनेकों सामान्य गुण।
- ३ साधुके अपर नाम।
- ४ साधुके अनेकों भेद ।
- * यति, मुनि, ऋषि, श्रमण, गुरु, एक्कविहारी, जिनकल्प आदि दे. वह वह नाम ।
- प्रत्येक तीर्थंकरके कालमें साधुओंका प्रमाण ।
 - दे, तीर्थं कर/४।
- 🛊 पंचम कालमें भी संभव है—दे. संयम/२/८।
- 🛊 े साधुकी बिनय व परीक्षा सम्बन्धी—दे विनय/४,१।
 - साधुकी पूजा सम्बन्धी दे. पूजा/३।
 - साधुका उत्कृष्ट व जधन्य झान-दे. श्रुतकेवली/२।
- 🛊 े ऐसे साधु हो गुरु हैं।—दे. गुरु/१।
- 🛊 ंद्रव्य छिंग भाव छिंग 🚾 दे. लिंग।

२ व्यवहार साधु निर्देश

- १ व्यवहारावसम्बी साधुका रुक्षण ।
- 🤻 े ब्यवहार साधुके मूळ व उत्तर गुण ।
 - मूल गुणके मेदोंके लक्षण आदि—दे. वह वह नाम 1
- * शुभोपयोगी साधु भन्य जनीको तार देते हैं

~दे. धर्म/४/२।

- व्यवहार साधुके १० रिथति कल्प ।
- 🛊 सल्लेखनागत साधुकी १२ प्रतिमा
 - दे. सल्लेखना/४/११/२।
- आहार, विहार, भिक्षा, प्रव्रज्या, वसतिका, संस्तर आदि।—दे वह वह नाम।
- * दीक्षासे निर्वाण पर्यन्तकी चर्या-दे, संस्कार/२।
- ४ अन्य कर्तंत्र्य ।
- साधुकी दिनचर्या दे. कृतिकर्म/४ ।
- पक करवटसे अत्यन्त अल्प निद्रा दे. निद्रा ।
- मूळगुणोंके मृत्यपर उत्तर गुणोंकी रक्षा योग्य नहीं।
- ६ | मूलगुणिका अखण्ड पालना आवस्यक है।
- शरीर संस्कारका कड़ा निषेध ।
- 💪 साधुके छिए कुछ निषिद्ध कार्थ ।
- परिग्रह व अन्य अपवाद जनक क्रियाएँ तथा उनका समन्यय । च्दे. अपवाद/३,४।
- * प्रमादवश लगनेवाले दोषोंकी व उसकी शुभ क्रियाओंकी सीमा-दे, संयत/३।
- साध्र व गृहस्थ धर्ममें अन्तर—दे. संयम/१/६।

निइचय साधु निर्देश

- 🕴 निञ्चयावलम्बी साधुका लक्षण ।
- २ | निश्चयसाधुकी पहिचान ।
- 🕴 । भाव लिंग-दे, लिंग ।

Ę

8

- साधमें सम्यक्तिकी प्रधानता ।
- ४ | निश्चय रूक्षणकी प्रधानता ।
- स्व वश योगी जीवन्मुक्त व जिनेश्वरका छबु
 नन्दन है--दे, जिन।
- नन्दन हु---६, ।जन ।
- २८ मूलगुणोंकी मुख्यता गौणता ।
 निश्चय व्यवहार साधुका समन्वय ।
- सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टिके व्यवहारधर्ममें अन्तर
 - —दे. मिथ्याइष्टि/४। 🗸
- पंचमकालमें भी भाव लिंग संभव है
 - **दे**.संयम/२/५ ।

अवथार्थसाधु सामान्य

- १ अयथार्थं साधुकी पहिचान ।
 - द्रस्य लिंग-दे. सिंग ।
- २ अयथार्थ साधु श्रावकसे भी हीन है।
- ३ व्ययथार्थं साधु दुःखका पात्र है।
- 😮 🗸 अयथार्थ साधुसे यथार्थ श्रावक श्रेष्ठ है ।
 - * हाखों अयथार्थ साधुओंसे एक यथार्थ साधु श्रेष्ठ है।

*

ч

ø

Ę

₹

₹

पुलाक व पाइवस्यादि साधु

पुलाकादि व पाइवेंस्थादिका नाम निदेंश

—दे, साधु/१/४/३ ।

- पुलाकादि व पार्श्वस्थादिके लक्षण—दे. वह वह नाम ।
- १ । पुलाकादिमें संयम श्रुतादिकी मरूपणा ।
- २ पुलकादिमें संयम लिब्बस्थान।
- ३ | पुलाकादि पॉचों निर्मन्थ हैं।
- पुलाकादिके निर्मन्य होने सम्बन्धी शंकाएँ ।
- प निर्पत्य होते हुए भी इनमें कृष्णलेक्या क्यां।
- ६ । पार्श्वस्थादि मुनि भ्रष्टाचारी हैं।
 - पौचोंके भ्रष्टाचारकी प्ररूपणा।
- ८ पार्श्वस्यादिको संगतिका निषेध ।

आचार्यं उपाध्याय व साधु

- आचार्य, उपाध्याय, साधुके लक्षण दे. वह वह नाम ।
- च।रित्रादिकी अपेक्षा तीनों एक हैं।
- 🛌 चत्तारिदण्डक में 'साधु' शब्दसे तीनोंका ब्रहण

—दे. मन्त्र/२।

- तीनों एक ही आत्माकी पर्याय हैं।
- ३ तीनोंमें कथंचित् मेद।
 - श्रेणी आदि आरोहणके समय इन उराधियोंका त्याग ।

१. साधु सामान्य निर्देश

१. साधु सामान्यका रुक्षण

- म्, आः,/११२ णिव्याणसाधर जोगे सदा जुंजंति साधवो । समा सब्वेष्ठ
 भूदेष्ठ तम्हा ते सव्यसाधवो १११२। = मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले
 मूलगुणादिक तपश्चरणोंको जो साधु सर्वकाल अपने आत्मासे जोड़े
 और सर्व जीवोंमें समभावको प्राप्त हों इसलिए वे सर्वसाधु कहलाते
 हैं।११२।
- स. सि./१/२४/४४२/१० चिरप्रविज्ञातः साधुः । = [तपस्वी शैक्षादिमें भेद दरशाते हुए] जो चिरकालसे प्रविज्ञत होता है उसे साधु कहते हैं। (रा. वा./१/२४/११/६२३/२४); (चा. सा./१५१/४)।
- द्र. सं./मू./१४/२२१ दंसणणाणसमस्यं मर्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं। साधयदि णिच्चसुद्ध साहू स मुणी णमो तस्स १५४। = जो दर्शन और ज्ञानसे पूर्ण मोक्षके मार्गभूत सदाशुद्ध चारित्रको प्रकटरूपसे साधते हैं वे मुनि साधु परमेष्ठी हैं। उनको मेरा नमस्कार हो १५४। (पं.ध/ उ./६६७)।
- कियाकलाप/सामायिक दण्डककी टी./३/१/४/१४३ ये व्यास्त्रायन्ति न शास्त्रं न ददाति दीक्षादिकं च शिष्याणाम् । कर्मोन्मूलनशक्ता ध्यानरतास्तेऽत्र साधवो होयाः ।६। = जो न शास्त्रोंकी व्याख्या करते हैं और न शिष्योंको दीक्षादि देते हैं। कर्मोंके जन्मूलन करनेको समर्थ ऐसे ध्यानमें जो रत रहते हैं वे साधु जानने चाहिए। (पं.ध./ड./६%०)।

- प्र. सा./त. प्र./२०३ विरतिप्रवृत्तिसमानात्मरूपश्चामण्यत्वात श्रमणम् । - विरतिकी प्रवृत्तिके समान ऐसे श्रामण्यपनेके कारण श्रमण हैं।
- पं. ध./उ./६७१ वैराग्यस्य परां काष्टामधिरूढोऽधिकप्रभः। दिगम्बरो यथाजातरूपधारी दयापरः।६७११ = वैराग्यकी पराकाष्ट्राको प्राप्त होकर प्रभावशाली दिगम्बर यथाजात रूपको धारण करनेवाले तथा दया-परायण ऐसे साधु होते हैं।

२. साधुके अनेकों सामान्य गुण

- घ. १/१.१.१/गा. ३३/६१ सोह-गय-वसह-मिय-पसु-मारुद-पूरूवहि-मंदरिंदु-मणी। खिदि-उरगंबर-सिरसा परम-पय-विभागया साहू ।३३१ चिसहके समान पराक्रमी, गजके समान स्वाभिमानी या उन्नत, बेलके समान भद्रप्रकृति, मृगके समान सरल, पशुके समान निरीह गोचरी बृत्ति करनेवाले, पवनके समान निःसंग या सब जगह बे-रोकटोक विचरनेवाले, सूर्यके समान तेजस्वी या सकल तत्त्वोंके प्रकाशक, सागरके समान गम्भीर, मेरु सम अकम्प व अडोल, चन्द्रमाके समान शान्तिदायक, मणिके समान प्रभापुंजयुक्त, क्षितिके समान सर्व प्रकारकी बाधाओंको सहनेवाले, सर्पके समान अनियद्य वस्तिकामें रहनेवाले, आकाशके समान निरालम्बी व निर्लेप और सदाकाल परमपदका अन्वेषण करनेवाले साधु होते हैं।३३।
- दे. तपस्वी [निषयों की आशासे अतीत, निरारम्भ, अपरिग्रही तथा ज्ञान-ध्यानमें रत रहनेशाले ही प्रशस्त तपस्वी हैं। वही सच्चे गुरु हैं। (और भी दे. साधु/३/१)।

३. साधुके अपर नाम

- दै• अनगार—[अमण, संग्रत, ऋषि, मुनि, साधु, वीतराग, अनगार, भदन्त, दान्त व यति उसके नाम हैं।]
- दे, श्रमण-श्रमणको यति मुनि व अनगार भी कहते हैं।

४. साधुके अनेकों भेद

- १. यथार्थं व अवयार्थं दो भेद
- दे, अमण-[अमण सम्यक् भी होते हैं और मिथ्या भी ।]
 - २. यथार्थ साधुके मेद
- प्र. सा./म्./२४५ समणा सुद्धुवजुता सुड्रोवजुता म होति समयिष्ट ।
 तेसु वि सुद्धुवजुत्ता अणासवा सासवा सेसा ।२५४। = शास्त्रों में ऐसा
 कहा है कि श्रमण शुद्धोपयोगी भी होते हैं और शुभोपयोगी भी ।
 जनमें शुद्धोपयोगी (वोतराग) निरासव हैं और शुभोपयोगी (सराग)
 सासव हैं। (वे, श्रमण)
- म्. आ./१४८ गिहिदरथेय विहारो विदिजोऽगिहिदरथसंसिदो चेव।
 एतो तिदयविहारो णाण्णुण्णादो जिणवरेहि।१४८। = जिसने जीवादि
 तत्त्व अच्छो तरह जान लिये हैं ऐसा एकलविहारी और दूसरा अगृहीतार्थ अर्थात जिसने तत्त्वोंको अच्छो तरह ग्रहण नहीं किया है, इन दोके असिरिक्त तीसरा विहार जिनेन्द्रदेवने नहीं कहा है। इनमेंसे एकलविहारो देशान्तरमें जाकर चारित्रका अनुष्ठान करता है और अगृहीतार्थ साधुओं के संयमें रहकर साधन करता है।
- चा, सा.४६/४ भिक्षवो जिनरूपधारिणस्ते बहुधा भवन्ति अनगारा यत्यो मुनय ऋषयश्चेति । = जिनरूपधारो भिक्षु, अनगार, यित, मुनि, ऋषि आदिके भेदसे बहुत प्रकारके हैं। (और भी दे, साधु/१/३); (प्र. सा./ता. वृ./२४६/११); (और भी दे, संघ)।
- दे. सल्लेखना/१/१ [जिनकल्पविधिधारी क्षपकका निर्देश किया गया है।]
- दे. छेदोपस्थापना/६ [भगवात् बीरके तीर्थसे पहले जिनकन्पी साधु भी सम्भव थे पर अन पंचमकालमें केवल स्थिवरकन्पी ही होते है।]

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

- दे- वैयावृत्त्य [आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और मनोज्ञ इन दश भेरोंको अपेक्षा वैयावृत्त्य १० प्रकार को है।]
- साः घ /२/६४ का फुटनोट -- ते नामस्थापनाद्रव्यभावन्यासैश्चतुर्विधाः । भवन्ति सुनयः सर्वे दानमानादिकमेष्ठ । =- दान, मान आदि क्रियाओं-के करनेके लिए वे सब सुनि नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन निक्षेपोंके भेदसे चार प्रकारके हैं।

१. पुलाक बकुशादिकी अपेक्षा भेद

त. सू./१/४६ पुलाकषकुशकुशील निर्मन्थस्तातका निर्मन्थाः। - पुलाकः, कुक्शालः, निर्मन्थ और स्नातक ये पाँच निर्मन्थ हैं। (विशेष दे. वह वह नाम)।

४. अर्थाचारी साधुओंके भेद

मू आ./११३ पसरथो य कुसीलो संसत्तोसण्ण निगचरित्तो य। दंसण्णा-णचरित्ते अणिउत्ता मंदसंबेगा।११३। = पार्श्वस्थ, कुशील, संसक्त, अवसन्न, और भृगचारित्र मे पाँच साधु दर्शन ज्ञान चारित्रमें युक्त नहीं हैं और धर्मादिमें हर्ष रहित हैं इसलिए बन्दने योग्य नहीं हैं। (भ. आ./मू./११४१); (भ. आ./बि./३३१/५४६/११); (चा सा./१४३/३)।

२. व्यवहार साधु निर्देश

५. व्यवहारावलम्बी साधुका लक्षण

- ध. १/१.१.१/५१/२ पञ्चमहावतधरास्त्रिगुप्तिगुप्ताः अष्टादशशीलसहस-धराश्चतुरशीतिशतसहस्रगुणधराश्च साधवः । = जो पाँच महावताँको धारण करते हैं, तीन गुप्तियाँसे सुरक्षित हैं, १८००० शीलके भेदाँको धारण करते हैं और ८४०००,०० उत्तरगुणोंका पालन करते हैं वे साधु परमेष्ठी होते हैं। दे, संयम/१/२।
- न. च. वृ./३३०-३३१ हंसणसंद्धिविसुद्धो स्नाइगुणेहि संजुओ तहय। • • • • ३३०। असुहैण रायरहिओ वयाइरायेण जो हु संजुता। सो इह भणिय सरागो • • • • • • • • • • • वर्शनशुद्धिसे जो विशुद्ध है तथा सूनादि गुणोंसे संयुक्त है • ३३०। अशुभ रागसे रहित है, वत आदिके रागसे समुक्त है वह सराग अमण है • ३३१।
- त. सा./१/५ श्रद्धानः परद्मव्यं बुध्यमानस्तदेव हि। तदेवोपेक्षमाणश्च व्यवहारी स्मृतो मुनि ।६। — जो सातों तत्त्वोंका भेदरूपसे श्रद्धान करता है, बैसे ही भेदरूपसे उसे जानता है तथा वैसे ही भेदरूपसे उसे उपेक्षित करता है अर्थाद विकल्पात्मक भेद रवनत्रयंकी साधना करता है वह मुनि व्यवहारावलम्बी है।६।
- प्र. सा./त. प्र./२४६ शुभोपयोगिश्रमणानां शुद्धारमानुरागयोगि चारि-त्रदवतसण्य ।४६। = शुद्धारमाका अनुराग युक्त चारित्र शुभोपयोगी श्रमणोका लक्षण है।

२, ब्यवहार साधुके मूल व उत्तर गुण

प्र. सा/मू./२०५-२०६ वदसिमिदिदियरोघो लोचावस्स्यमचेलमण्हाणं। सिविस्यणमदंतधोवणं ठिदिभोयणमेगभत्तं च १२०६। एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहि पण्णत्ता १०००१ = पाँच महावत, पाँच सिमिति, पाँच इन्द्रियोंका रोध, केशलोंच, षड् आवश्यक, अचेलकत्व, अस्तान, धूमिशयन, अदन्तधोवन, खड़े खड़े भोजन, एक बार आहार, ये वास्तवमें भ्रमणोंके २८ मूलगुण जिनवरोंने कहे हैं। १२०८-२०६। (मृ. आ./२-३); (न. च. वृ./३३६); (पं,ध्र,/उ,। ७४४-७४६)।

ब्रह्मचर्य/१/६ [(तीन प्रकारकी अचेतन स्त्रियाँ × मन वचन व काय× कृत कारित अनुमोदना×गाँच इन्द्रियाँ ×चारकषाय = ७२०); + (तीन-

प्रकारकी चेतन स्त्रियाँ×मन बचन काय×कृत कारित अनुमोदना×पाँच इन्द्रियाँ×चार संज्ञा×सोलह कषाय = १७२८०); = १८०००] इस प्रकार ये ब्रह्मचर्यकी विराधनाके १८००० अंग हैं। इनके त्यागसे साधुको १८००० शील गुण कहे जाते हैं। अथवा [मन बचन काय-की शुभ क्रिया रूप तीन योग×इन्होंकी शुभकी प्रवृत्तिरूप तीन करण×चार सज्ञा×पाँच इन्द्रिय×पृथिवी आदि दस प्रकारके जीव×दस धर्म-इस प्रकार साधुके १८००० शील वहे जाते हैं।]।

द् पा./ही./ह/८/१८ का भावार्थ — [(पाँच पाप, चार कपाय, जुगुरसा, भय, रित, अरित ये १३ दोष हैं + मन बचन कायकी दुष्टता ये ३ + मिश्यात्व, प्रमाद, पिशुनत्व, अज्ञान, पाँच इन्द्रियोंका निप्रह ये पाँच — इन २१ दोषोंका त्याग २१ गुण हैं।) ये उपरोक्त २१ गुण अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार ये चार×पृथिवी आदि १०० जीवसमास×१० शील विराधना (दे. ब्रह्मचर्य/२/४)×१० आलोचनाके दोष (दे. आलोचना)×१० धर्म = ८४०००,०० उत्तर-गुण होते हैं।]

३. व्यवहार साधुके १० स्थितिकल्प

भ. आ./मू./४२१ आचेलक्कुद्दे सियसेज्जाहररायपिडिकिरियम्में । जेट्ठ-पडिक्रमणे विय मासं पज्जो सवणकप्पो ।४२१। = १. अचेलकर्व, २. उद्दिष्ट भोजनका त्याग, ३. शय्याग्रह अर्थात वसतिका बनवाने या मुधरवानेवालेके आहारका त्याग, ४. राजपिड अर्थात अमीरोंके भोजनका त्याग, ४. कृतिकर्म अर्थात साधुओंको विनय शुश्रूषा आदि करना, ६. व्रत अर्थात जिसे वतका स्वरूप माल्युम है उसे ही व्रत देना; ७. ७ग्रेष्ठ अर्थात अपनेसे अधिकका योग्य विनय करना, ८. प्रतिक्रमण अर्थात् नित्य लगे दोषोंका शोधन, ६, मासक्वासता अर्थात् छहों ऋतुओंमेंसे एक मास पर्यन्त एकत्र मुनियोंका निवास और १०. पश्च अर्थात् वर्षाकालमें चार मास पर्यन्त एक स्थानपर निवास — ये साधुके १० स्थितिकल्प कहे जाते हैं। (मू. आ./१०१)।

४. अन्य कर्तन्य

- भा. पा /टो-/०८/२२१/११ त्रयोदशिक्या भाषय त्वं विविधेन त्रिकरणशुद्ध्या पञ्चनमस्काराः, षडावश्यकानि, चैत्यालयमध्ये प्रविश्वता
 निसिही निसिही इति वारत्रयं हृद्युचार्यते, जितप्रतिमावन्दनाभक्ति कृत्वा बहिनिर्गच्छता भव्यजीवेन असिही असिही
 असिही इति वारत्रयं हृद्युचार्यत इति त्रयोदशिक्या हे भव्य ! त्वं
 भावय ! अथवा पञ्चमहाव्रतानि पञ्चसमितयस्तिक्षो गुप्तयश्चेति
 त्रयोदशिक्ष्यास्त्रयोदशिष्यं चारित्रं हे भव्यवरपुण्डरोकमुने ! त्वं
 भावय ! = हे भव्य, तूमन वचन व कायकी शुद्धि पूर्वक १३ कियाओकी
 भावना कर । वे १३ कियाएँ ये हैं -१, पंच नमस्कार, षष्ट् आवश्यक,
 चैत्यालयमें प्रवेश करते समय तीन बार 'निसही' शब्दका उच्चारण
 और चैत्यालयसे बाहर निकलते समय तीन बार 'आसही' शब्दका
 उच्चारण । (अन, ध./८/१३०/८४१) २. अथवा पाँच महावत, पाँच
 समिति और तीन गुप्ति ये तेरह प्रकारका चारित्र ही तेरह कियाएँ
 हैं। (वे, चारित्र/१/४)।
- दे, संयत/३/२ [अर्हदादिकी भक्ति, ज्ञानियों में वारसक्य, श्रमणोंके प्रति बन्दन, अभ्युत्थान, अनुपमन, व वेयावृत्त्य करना, आहार व नीहार, तत्त्व त्रिचार, धर्मोपदेश, पर्वके दिनों में उपवास, चातुर्मास योग, शिरोनति व आपर्त आदि कृतिकर्म सहित प्रतिदिन देव वन्दना, आचार्यवन्दना, स्वाध्याय, रात्रियोग धारण, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान आदि, ये सब कियाएँ शुभोषयोगी साधुको प्रमत्त अवस्थामें होती हैं।
- दे. संयम/१/ई [बीतरागी साधु स्वयं हटकर तथा अन्य साधु पीछीसे जीवोंको हटाकर उनकी रक्षा करते हैं।]

५. मूलगुणोंके मृल्यपर उत्तरगुणोंकी रक्षा योग्य नहीं

पं, वि./१/४० मुक्त्वा मूलगुणान् यतेर्विटधतः शेषेषु यस्तं परं, दण्डो मूलहरो भवत्यविरतं पूजादिकं बाच्छतः। एकं प्राप्तमरेः प्रहारमतुर्णं हित्वा शिरश्छेदकं, रक्षत्यङ्गुलिकोटिखण्डनकरं कोऽन्यो रणे बुद्धि-मान् ।४०। = मूलगुणोंको छोड़कर केवल शेष उत्तरगुणोंके परिपालनमें ही प्रयत्न करनेवाले तथा निरन्तर पूजा आदिको इच्छा रखनेवाले साधुका यह प्रयत्न मूलघातक होगा। कारण कि उत्तरगुणोंमें दृद्धा छन मूलगुणोंके निमित्तसे ही प्राप्त होती है। इमीलिए यह उसका प्रयत्न इस प्रकारका है जिस प्रकार कि युद्धमें कोई मूर्ख सुभट अपने शिरका छेदन करनेवाले शत्रुके अनुपम प्रहारकी परवाह न करके केवल अँगुलीके अग्रभागको खण्डित करनेवाले प्रहारसे ही अपनी रक्षा करनेका प्रयत्न करता है।४०।

६. मूलगुणोंका अखण्ड पालन आवश्यक है

पं. धः /उः /७४३-७४४ यतेर्म् लगुणाश्चाष्टा विश्ति म् त्वचरोः। नात्राप्यन्यतमेनोना नातिरिक्ताः कदाचन ।७४३। सर्वे रेभिः समस्तैश्च सिद्धधं
यावन्मुनिव्यत्म्। न व्यस्तै व्यस्तिमात्रं तु यावदंशनयादिष ।७४४।
- वृक्षकी जड़के समान मुनिके २८ मूलगुण होते हैं। किसी भी
समय मुनियों में न एक कम होता है, न एक अधिक ।७४३। सम्पूर्ण
मुनिव्यत इन समस्त मृतगुणोंसे ही सिद्ध होता है, किन्तु केवल
अंशको ही विषय करनेवाले किसी एक नयकी अपेक्षासे भी असमस्त
मृतगुणोंके द्वारा एक देशरूप मुनिव्यत सिद्ध नहीं होता। १४४।

७. शरीर संस्कारका कड़ा निषेध

मू. आ./पश्री—पश्यते छिण्णणेहां घा णिण्णेहां खप्पणो सरीरिम्म । ण करंति किंचि साहू परिमं ठप्पं सरीरिम्म ।८३६। मुहणयणदंत्रधोयणमुठ्यट्रणपादेखोयणं चेव । संवाहणपरिमहणसरीरसंठावणं
सट्यं ।पश्था धूबणमण विरेयण खंजण अव्यागलेवणं चेव । णरथुयवरिथयकममं सिखेज्यं अप्पणो सट्वं :पश्या च्युत्र स्त्री आदिमें जिन्होंने
प्रेमस्पी बन्धन काट दिया है और जो अपने शरीरमें भी ममता
रहित हैं, ऐसे साधु शरीरमें कुछ भी संस्कार नहीं करते हैं।८३६।
मुख नेत्र और दाँतोंका घोना शोधना पखारना, जबटन करना, पैर
घोना, अंगमर्चन करना, मुट्ठीसे शरीरका ताड़न करना, कठके
यन्त्रसे शरीरका पीड़ना, ये सब शरीरके संस्कार हैं। १३०। धूपसे
शरीरका संस्कार करना, कण्ठशुद्धिके लिए वमन करना, खीषध आदिसे दस्त लेना, अंजन लगाना, मुगन्ध तेल मदन करना, चन्दन,
कस्त्रीका लेप करना, सलाई बत्ती आदिसे नासिकावर्म व वस्तिकर्म (इनेमा) करना, नसीसे लोहीका निकालना ये सब संस्कार अपने
शरीरमें साधुजन नहीं करते। १३०।

८. साधुके लिए कुछ निषिद्ध कार्य

मू. आ./गा. पिंडोविधिसेज्जाओ अविसोधिय जो य भुंजरे समणी।
स्वर्ठाणं पत्तो भुवणेमु हवे समणपोक्तो १६१६। किं तस्स ठाणमोणं
किं काहिद अव्भवगासमादावो। मेत्तिविहूणो समणो सिज्मिदि ण
हु सिद्धिकं लोवि। १२४। चंडो चवलो मंदो तह साहू पुद्ठिमंसपिंडसेवी। गारवकसायबहुलो दुरासओ होदि सो समणो। १५४। दंभं
परपरिवादं पिमुणत्तण पावमुत्त पिंडसेवं। चिरपव्वइदंपि मुणी
आरंभजुदंण सेविज्ज। १६४०। चजो मुनि आहार, उपकरण, आवास
इनको न सोधकर सेवन करता है वह मुनि गृहस्थपनेको प्राप्त होता
है। और लोकमें मुनिपनेसे होन कहलाता है। १९६। उस मुनिके
कायोत्सर्ग मीन और अभावकाश योग, आतापन योग नया कर

सकता है। जो साधु मैत्री भाव रहित है वह मोक्षका चाहनेवाला होनेपर भी मोक्षको नहीं पा सकता १२४। जो अत्यन्त क्रोधी हो, चंचलस्वभाववाला हो, चारित्रमें आलसी, पीछे दोष कहनेवाला पिशुन हो, गुरुता कषाय बहुत रखता हो ऐसा साधु सेवने योग्य नहीं १६४। जो उगनेवाला हो, दूसरोंको पीड़ा देनेवाला हो, भूठे दोवेंको ग्रहण करनेवाला हो, मारण आदि मन्त्रशास्त्र अथवा हिसापोषक शास्त्रोंका सेवनेवाला हो, आरम्भ सहित हो, ऐसे बहुत कालसे भो दीक्षित मुनिको सदाचरणी नहीं सेवे १६४७।

र. सा./१०० विकहाइ विष्पमुक्को आहाकम्माइविरहिओ णाणी ।१००। च्यतीश्वर विकथा करनेसे मुक्त तथा आधाकमीदि सहित चयसि

रहित हैं। (विशेष दे. कथा/७; तथा आहार/II/२)।

भा. पा./मू./६६ अथसाण भायणेण य कि ते णग्गेण पावमिलिणेण।
पेसुण्णहासमच्छरमायात्रहुलेण सवणेण १६६१ च पेशुन्य, हास्य, मासर,
माया आदिकी बहुलतायुक्त अमणपनेसे अथवा उसके नग्नपनेसे क्या
साध्य है। वह तो अपयशका भाजन है। ६६।

लि.पा./मु./३−२०णचिंदगायदि तार्ववायं वाएदि लिंगरूपेण। सो पावमोहिदमदी तिरिवलजोणी ण सो समणो ।४। कलहं वादं जुआ णिच्चं बहुमाणगवित्रओ सिंगी। बच्चदि णरयं पाओ करमाणो र्श्तिगरूवेण । ६। कंदण्पाइय वट्टइ करमाणो भोयणे**सु १सगिद्धि। मायी** लिंग विवाई तिरिक्खजोणी ण सो समणो ।१२। उप्पडदि पडदि धावदि पुढवीओ खणदि लिंगरूवेण। इरियावह धारंतो तिरिक्ख-जोणीण सो समणो।१५। रागो करेदि णिच्चं महिलावग्गं परं व दूसेइ। दंसणणाणविहीणो तिरिक्खजोणी ण. सो समणो ।१७1 पठनज्जहीण गहियं जेहि सासम्मि बहुदे बहुसी । आयार विषयहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ११८। दंसणणाणचरित्ते महिलावग्यस्मि देहि बीसट्ठो। पासत्थ वि हु णियट्ठो भावविणट्ठो ण सौ समणो ।२०। = जो साधुका लिंग ग्रहण करके नृत्य करता है, गाता है, बाजा बजाता है,।शा बहुमानसे पर्वित होकर निरन्तर कसह व बाद करता है (दे. बाद/७); चतुक्री ड्रा करता है। ६। कन्दर्पादि भावनाओं ने वर्तता है (दे, भावना/१/३) तथा भोजनमें रसगृद्धि करता है (वे. आहार/11/२); मायाचारी व क्यभिचारका सेवन करता है (दे. ब्रह्मचर्य/३) ११२। ईर्यापथ सोधे बिना दौद्ते हुए अथवा उछसते हुए चलता है, गिर पड़ता है और फिर उठकर दीड़ता है।१४। महिला बर्गमें नित्य राग करता है, और दूसरोंमें दोष निकालता है। १७। गृहस्थों व शिष्यों पर स्नेह रखता है। १८। स्त्रियों पर विश्वास करके उनको दर्शन ज्ञान चारित्र प्रदान करता है, वह तिर्यग्योनि है, नरकका पात्र है, भावोंसे विनष्ट हुआ वह पारवेस्थ है साधु नहीं ।२०।

- पं, ध,/उ./६१७ यद्वा मोहात प्रमादाद्वा कुर्याद यो लौकिकी कियास्। तावत्कालं स नाचार्योऽप्यस्ति चान्तर्व ताच्च्युतः। = जो मोहमे अथवा प्रमादसे जितने काल तक सौकिक क्रिया करता रहता है, उतने काल तक वह आचार्य नहीं है और अन्तरंगमें व्रतीसे च्युत भी है।६१७।
- दे. सावद्य/२ (वैयावृत्त्य आदि शुभिक्रियाएँ करते हुए पट् कायके जीवोंको नाधा नहीं पहुँचानी चाहिए)।
- दे, बिहार/१/१ [स्वच्छन्दं व एकस बिहार करना इस कालमें वर्जित है।]
- है धर्म/६/६ [अधिक शुभोषयोगमें वर्तन करना साधुको योग्य नहीं क्योंकि वैयोवृत्त्यादि शुभ कार्य गृहस्थोंको प्रधान हैं और साधुओं-को गौण!]
- है, मन्त्र/१/३-४ [मन्त्र, तन्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, वशीकरण, उचाटन आदि करना, मन्त्र सिद्धि, शस्त्र अंजन सर्प आदिकी सिद्धि करना तथा आजीयिका करना साधुके लिए वर्जित है।]
- दे. संगति [दुर्जन, लौकिक जन, तरुण जन, स्त्री, पृश्चली, नपुंसक, पशु आदिकी संगति करना निषिद्ध है। आर्थिकासे भी सात हाथ

दूर रहना योग्य है। पार्श्वस्थादि भ्रष्ट मुनियोंकी संगति। वर्जनीय है।]

- दे. भिक्षा/२-३ भिक्षार्थ वृत्ति करते समय गृहस्थके घरमें अभिमत स्थानसे आगे न जावे, छिद्रोंमेंसे भाँककर न देखे. अस्यम्त तंग व अन्धकारयुक्त प्रदेशमें प्रवेश न करे। व्यस्त व शोक युक्त घरमें, बुवाह व यहाशाला आदिमें प्रवेश न करे। बहु जन संसक्त प्रदेशमें प्रवेश न करे। विधर्मी, नीच कुलीन, अति दरिद्रो, तथा राजा आदिका आहार ग्रहण न करे।
- दे. आहार/II/२ [मात्रासे अधिक, पौष्टिक व गृद्धता पूर्वक गृहस्थपर भार डालकर भोजन ग्रहण न करें।]
- दे. साधु/४/१ तथा ६/७ [इतने कार्य करे वह साधु सच्चा नहीं।]

३. निश्चय साधु निर्देश

१. निश्चय साधुका लक्षण

- प्र. सा./मू./१४१ समसत्तु बंधु वरणो समझह दुक्तो पंसस णिवसमो। समलो ट्रुकंचणो पुण जा वितमरणे समो समणो १२४१। — जिसे शत्रु और बन्धुवर्ग समान है, सुख दुःख समान है, प्रशंसा और निन्दाके प्रति जिसको समता है, जिसे लोड (देखा) और सुवर्ण समान है, तथा जीवन मरणके प्रति जिसको समता है, वह श्रमण है। (मू. आ./४२१)
- नि. सा-/मू, ७६ वावारविष्पमुक्का चङ्गिहाराहणासयारत्ता । णिर्गथा णिम्मोहा साहू एदेरिसा होति ।७६। =काय व वचनके व्यापारसे मुक्त, चतुर्विध आराधनामें सदा रक्त, निर्मन्थ और निर्मोह-ऐसे साधु होते हैं।
- मू. आ./१००० णिस्संगो णिरारंभो भिक्लाचरियाए सुद्धभावो । य एगागी जभाणरही सन्वगुद्दो हवे समणो ।१०००। क्लो निष्परिप्रही व निरारम्भ है, भिशाचर्यामें शुद्धभाव रखता है, एकाकी ध्यानमें लीन होता है, और सब गुणोंसे परिपूर्ण होता है वह अमण है।१०००। (और भी दे. तपस्वी तथा लिंग/१/२)
- घ, १/१.९,१/५१/१ खनन्तज्ञानादिशुद्धात्मस्वरूपं साध्यन्तीति साधवः।
 —जो अनन्त ज्ञानादिस्वरूप शुद्धारमाकी साधना करते हैं उन्हें
 साधना कहते हैं।
- धः म/३,४१/६०/४ अर्णतणाणदंसणवीरियविरद्द्वह्यसम्मत्तःतीणं साह्या साहू णाम । — अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्यः, विर्तत और सायिक सम्यक्त्वादि गुणोंके जो साधक हैं वे साधु कहलाते हैं।
- न. च. व./३३०-३३१...। सुहदु:खाइसमाणो काणे लीणो हवे समणो ।३३०।...। अनुकं दोहणं पि खलु इयरो ।३३१। - सुख दु:खर्मे जो समान है और ध्यानमें लीन है, वह श्रमण होता है। शुभ और अशुभ दोनों शकारके रागसे मुक्त वीतराग श्रमण है।
- त. सा./१/६ स्वद्रव्यं श्रद्धानस्तु बुध्यमानस्त्रदेव हि। तदेवोपेक्षमाणश्च निश्चयान्युनिसत्तमः ।६। =जो निजात्माको ही श्रद्धानरूप व झान रूप बना लेता है और उपेक्षारूप ही जिसकी आत्माको प्रवृत्ति हो जाती है, अर्थात् जो निश्चय व अभेद रत्नश्रयकी साधना करता है वह श्रेष्ठ सुनि निश्चयावलम्बी माना जाता है।६।
- प्र, सा./ता. वृ./२६२/३४६/१६ रत्नत्रयभावनया स्थारमानं साधयतीति साधुः। = रत्नत्रयकी भावनारूपसे जो स्वारमाको साधता है वह साधु है। (प. प्र./टो /१/७/१४/७); (पं. ध./ड./६६७)

२. निश्चय साधुकी पहचान

पं, ध्, /उ./६६८-६७४ नोच्याचायं यमी किंचिद्धस्तपादादिसं ह्या। न किंचिद्दश्येत स्वस्थो मनसापि न चिन्तयेत् ।६६८। आस्ते स शुद्ध-मारमातमा स्तिष्टनुवांनश्च परम् । स्तिमितान्तर्वहर्जन्यो निस्तरङ्गा-

व्धिवन्युनिः। ६६ ह। नादेशं नौपदेशं वा नादिकेत् स मनागपि । स्व-र्गापवर्गमार्गस्य तद्विपक्षस्य कि पुनः १६७०। वैराग्यस्य परां काष्ठा-निर्प्यन्थोन्तर्ब हिर्मीहप्रन्थेरुद्वप्रन्थको मधिरूढोऽधिकप्रभः---ःई७१। परीषहोपसर्गाद्यौरजय्यो जितमन्मथः । · · · [६७३] यमी ।•••। ई७२। इत्याद्यनेकधानेकैः साधुः साधुगुणैः श्रितः । नमस्यः श्रेयसेऽवश्यं नेतरो विदुषां महान् ।६७४। =यह साधु कुछ नहीं बोले । हाथ पाँव आदिके इशारेसे कुछ न दश्वि, आत्मस्थ होकर मनसे भी कुछ चिन्तवन न करे । ई६ मा केवल शुद्धातमार्मे लीन होता हुआ वह अन्तरंग व माह्य वाग्व्यापारसे रहित निस्तरंग समुद्रकी सरह शान्त रहता है।६६६। जब वह मोक्षमार्यके विषयमें ही किंचित् भी उपदेश या आदेश नहीं करता है, तब उससे बिपरीत लौकिक मागंके उपदेशादि केसे कर सकता है। ६७०। वह वैराग्यकी परम पराकाष्ट्राको प्राप्त होकर अधिक प्रभावशासी हो जाता है। ६७१। अन्तरंग वहिरंग भी हकी ग्रन्थिको खोलनेवाला वह यमी होता है। ६७२। परीषहों व उपसर्गों के द्वारा वह पराजित नहीं होता, और कामरूप शत्रुको जीतनेवाला होता है १६७३। इत्यादि अनेक प्रकारके गुणोंसे युक्त वह पुज्य साधु ही मोशकी प्राप्तिके लिए तत्त्वज्ञानियोंके द्वारा अवश्य नमस्कार किये जाने योग्य है, किन्तु उनसे रहित अन्य साधु नहीं ।६७४।

३. साधुमें सम्यक्तको प्रधानता

- प्र. सा /मू ./गा. सत्तासंबद्धे वे सिवसेसे जो हि णेव सामण्णे। सद्दृदि ण सो समणो तत्तो धम्मो ण संभवदि। ११। ण हवदि समणो ति मदो संजमतवसुत्तसंपजुत्तो वि। जदि सद्दृदि ण अरथे आद्पथाणे जिणवलदे। २६४। जे अजधागहिदस्था एदे तच ति णिच्छिदा समये। अञ्चत्तफलसिद्धं भमंति ते तो परं कालं। २७१। जो श्रमणावस्था-में इन सत्ता संयुक्त सिवशेष (नव) पदार्थों की श्रद्धा नहीं करता वह श्रमण नहीं है उससे धमंका उद्भव नहीं होता। ११। सूत्र, संयम और तपसे संयुक्त होनेपर भी यदि जिनोक्त आत्मप्रधान पदार्थों का श्रद्धान नहीं करता तो वह श्रमण नहीं है ऐसा कहा है। २६४। भने हो द्रव्य-विगीके रूपमें जिनमतके अनुसार हों तथापि वे 'यह तत्त्व हैं (वस्तुस्वरूप ऐसा ही हैं), इस प्रकार निश्चयपना वर्त्तते हुँए पदार्थों-को अयथार्थत्या प्रहृण करते हैं (जैसे नहीं हैं वैसे समभते हैं) वे खत्यन्तफलसमृद्ध आगामी काक्षमें परिश्रमण करेंगे। २७१।
- र. सा./१२७ वयगुणसी सप्ति परीसयजयं च चिरयं च तव घडावसयं। भाण-डभ्मयणं सत्व सम्मविणा जाण भवकीयं। व्यविना सम्यरदर्शनके वत, २८ मूलगुण, ५४०,००,०० उत्तरगुण, १८००० शील, २२ परीवहाँ का जीतना, १३ प्रकारका चारित्र, १२ प्रकार तप, घडावश्यक, ध्यान व अध्ययन ये सब संसारके बीज हैं। (और भी दे. चारित्र, तप आदि बह-वह नाम)
- मो. पा./मू./१७ विहरसंगिवमुको णा वि मुको मिच्छभाव णिग्मथो। किं तस्स ठाणमञ्जलं ण वि जालदि अल्पसम्मभावं।१७। = बाह्य परिष्रहसे रहित होने पर भी मिथ्याभावसे निर्मन्थ लिंग धारण करनेके कारण वह परिग्रह रहित नहीं है। उसके कायोरसर्ग और मीन धारनेसे क्या साध्य है।
- प्र. सा./त. प्र./२६४ आगमज्ञोऽपि अमणाभासो भवति। (दे. ऊपर प्र. सा./पू./२६४ का अर्थ) इतना कुछ होनेपर भी वह अमणाभास है।
- दे, कर्ता/३/२३ [आत्माको परद्रव्योंका कर्ता देखने वाले भले ही लोकोत्तर हों अर्थात् अमण हों पर वे लौकिकपनेको उरलंघन नहीं करते।]
- दे जिंग/२/र [सम्यादर्शन युक्त ही नानरूपको निर्मान्थ संज्ञा प्राप्त है।]

४. निश्चय लक्षणकी प्रधानता

भ. था. मू./१३४७/१३०४ वोडगलिंडसमाणस्स तस्स अन्भंतरस्मि कृषि-दस्स । बाहिरकरणं कि से काहिदि बगणिहुदकरणस्स ।१३४७।

- = बगुलेकी चेष्टाके समान, अन्तरंगमें कषायसे मिलन साधुकी बाह्य किया किस कामकी ! वह तो घोड़ेकी लीदके समान है, जो ऊपरसे चिकनी अन्दरसे दुर्गन्धी युक्त होती है।
- नि. सा./मू./१२४ कि काहिद बनवासी कायकलेसी विचित्तखबवासी। अदमयणमीणपहुदी समदारहियस्स समणस्स ११२४। चवनवास, कायवलेशरूप अनेकप्रकारके उपवास, अध्ययन, मौन आदि, ये सम समता रहित अमणको क्या कर सकते हैं।
- म्, आ./१८२ अक्सायं तु चारितं कसायवसिओ असंजदो होदि। जनसमदि जिम्ह काने तकाने संजदो होदि।१२२। = अकषायपनेको चारित्र कहते हैं। कषायके वश होनेवाना असंयत है। जिस कानमें कषाय नहीं करता उसी कानमें संयत है। (प.प./मू./२/४१)
- सू. पा./मू./११ अह पुण अप्पा णिच्छिदि घम्माइ करेइ णिरवसेसाई। तह विण पावदि सिद्धि संसारस्थो पुण भणिदो।११। सर्व धर्मीको निर्वशेषरूपसे पालता हुआ भी जो आत्माकी इच्छा नहीं करता वह सिद्धिको प्राप्त नहीं होता विक संसारमें ही भ्रमण करता है।११।
- भा. प्रांति । खिदंति । छिदंति । छिदंति । छिदंति । भावसमणा भाणकुठारेहि भवरुवस्तं ।१२२। = इन्द्रिय विषयों के प्रति व्याकुल रहनेवाले द्रव्य श्रमण भववृक्षका छेदन नहीं करते, ध्यानरूपी कुठारके द्वारा भाव श्रमण ही भववृक्षका छेदन करते हैं। (दे, चारित्र /४/३ तथा लिंग /२/२)
- दे, चारित्र /8/३ [मोहादिसे रहित व उपशम भाव सहित किये गये ही वत, समिति, गुप्ति, तप, परीषह जय आदि मूलगुण व उत्तरगुण संसारछेदके कारण हैं, अन्यथा नहीं !]
- है. ध्यान /२/१० [महाबत, समिति, गुप्ति, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित्त आदि सत्र एक आत्मध्यानमें अन्तर्भूत हैं ।]
- दे. अनुभव /६/१ (निश्चय धर्मध्यान मुनिको ही होता है गृहस्थको नहीं ।]
- प्र. सा/त.प्र/गा. एक एव हि स्वद्रव्यप्रतिवन्ध उपयोगमार्जकत्वेन मार्जि-तोषयोगरूपस्य श्रामण्यस्य परिपूर्णतायतनं, तस्माइभावादेव परिपूर्ण-श्रामण्यम् १२१४। न चैकाप्रयमन्तरेण श्रामण्यं सिद्धयेत् १२३२। --- एक स्वद्रव्य-प्रतिवन्ध हो, उपयोगको शुद्ध करनेवाला होनेसे शुद्ध उप-योगरूप श्रामण्यकी पूर्णताका आयतन है, क्योंकि उसके सद्भावसे परिपूर्ण श्रामण्य होता है १२१४। एकाग्रताके विना श्रामण्य सिद्ध नहीं होता १२३२।

५. निरुचय व्यवहार साधुका समन्वय

- र. सा/११,६६ दाणं पूजा मुक्खं सावयधम्मे ण सावया तेण विणा।

 फाणाभयणं मुक्खं जहधम्मं ण तं विणा तहा सो वि।११। तच्चवियारणसीलो मोक्खपहाराहणसहावजुदो। अणवरयं धम्मकहापसंगादो होइ मुणिराओ। ६६। = दान व पूजा ये श्रावकके मुख्य धर्म
 हैं। इनके बिना श्रावक नहीं होता। परन्तु साधुओं को ध्यान व अध्ययन प्रधान हैं। इनके बिना यतिधर्म नहीं होता। ११। जो मुनिराज सदा तत्त्वविचारमें लोन रहते हैं, मोक्षमार्ग (२१न अप) का आराधन करना जिनका स्वभाव है और जो निरन्तर धर्मकथामें लीन रहते हैं अर्थात् यथा अवकाश स्त्वविचार करते हैं वे यथार्थ मुनिदेशादि रूप दोनों प्रकारकी कियाएँ करते हैं वे यथार्थ मुनि
 हैं। ६६।
- प्र. सा/मू/२१४ चरिद णिनदो णिन्चं समणो णाणिम्म दंसणमुहिम्म । पयदो मूलगुणेसु य जो सो पिंडपुण्णसामण्णो। = जो अमण (अन्त-रंग में तो) सदा झान व दर्शन आदिमें प्रतिबद्ध रहता है और (बाह्यमें) मूलगुणोंमे प्रयत्नशोल विचरण करता है, वह परिपूर्ण श्रामण्यवान् है।२१४।

- प्र. सा/त.प्र/२४१ ये खलु आमण्यपरिणति प्रतिज्ञायापि जीवितकषाय-कणतया समस्तपरद्रव्यनिवृत्तिप्रवृत्तिप्रवृत्तमुविशुद्धदक्षिज्ञप्तिस्वभावा-रमतत्त्ववृत्तिरूपां शुद्धोपयोगभूमिकामधिरोढुं न क्षमन्ते ते तदुप-कण्ठनिविष्टाः कषायकुण्ठीकृतशक्तयो नितान्तमुस्कण्ठुलमनसः श्रमणाः कि भवेयुर्न वेत्यत्राभिष्वीयते । 'धम्मेण परिणद्प्पा अप्पा जदि सुद्ध-संपओगजुरो । पावदि णिव्याणसुहं सुहोवजुत्तो व सम्मसुहं 🎎ति स्वयमेव निरूपितत्वादस्ति तावच्छ्नभोषयोगस्य धर्मेण सहैकाथंसम-वायः । ततः शुभोषयोगिनोऽपि धर्मसङ्भावाङ्भवेषुः श्रमणाः किंतु तेषां शुद्रोपयोगिभिः समं समकाष्टरवं न भवेत, यतः शुद्धोपयोगिनो निरस्तसमस्तकषायत्वादनास्रवा एव । इमे पुनर्नवकीर्णकषायकणस्वा-रसास्रवा एव।≕प्र**श्न—**जो वस्त्तवर्मे श्रामण्यपरिणतिकी प्रतिज्ञा करके भी, कषायकणके जीत्रित होने से समस्त परद्रव्यसे निवृत्तिसे प्रवत्तेमान जो सुविशुद्ध दर्शनज्ञान स्वभाव आत्मतत्त्वमें परिणतिरूप शुद्धोपयोग भूमिका उसमें आरोहण करनेको असमर्थ हैं; वे (शुभोप-योगी) जीव-जो कि शुद्रोपयोगभूमिकाके उपकण्ठ (तलहरीमें) निवास कर रहे हैं, और कथायने जिनकी शक्ति कुण्डित की है, तथा जो अत्यन्त उत्कण्ठित मनवाले हैं, वे श्रमण हैं या नहीं। ! उत्तर --(आचायने इसी प्रन्थकी ११वीं गाथामें) स्वयं ऐसा कहा है कि धर्मसे परिणमित स्वरूपवाला आत्मायदि शुद्धोपयोगर्मे युक्त हो तो मोक्ष सुखको प्राप्त करता है, और यदि शुभोषयोगबाला हो तो स्वर्ग मुखको प्राप्त करता है। ११। इसलिए शुभोपयोगका धर्मके साथ एकार्थ समवाय है। इसलिए शुभोषयोगी भी उनके धर्मका सद्वभाव होनेसे श्रमण है। किन्तु वे शुद्धोपयोगियोंके साथ समान कोटिके नहीं हैं। क्योंकि शुद्धोपयोगी समस्त कथायोंके निरस्त किया होनेसे निरासव ही हैं, और ये शुभोषयोगी तो कषायकणके विनष्ट न होनेसे सास्त्रव ही हैं।
- प्र सा/त-प/२५२ यदा हि समधिगतशुद्धारमञ्ज्तेः श्रमणस्य तत्प्रच्या-वनहेतोः कस्याप्युपसर्गस्योपनिपातः स्यात् स शुभोपयोगिनः स्वशक्या प्रतिचिकीर्षा प्रवृत्तिकालः। इतरस्तु स्वयं शुद्धारमञ्जतेः समधिगमनाय केवलं निवृत्तिकाल एव। —जन शुद्धारम परिणतिको प्राप्त श्रमणको, उससे च्युत करनेवाले कारण—कोई उपसर्ग आ जाय, तब वह काल, शुद्धोपयोगीको अपनी शक्तिके अनुसार प्रतिकार करनेको इच्छारूपप्रवृत्तिकाल है; और उसके स्रतिरिक्त का काल अपनी शुद्धारमपरिणतिकी प्राप्तिके लिए केवल निवृत्तिका काल है।

४. अयथार्थ साधु सामान्य निर्देश

१. अयथार्थं साधुकी पहचान

भ- आ/मृश्ह०-रहृष्ट् एसा गणधरमेरा आयारत्थाण विणया मुत्तें।
लोगसुहाणुरदाणं अप्पच्छंदो जिह्न्छेए। १६०। सीदावेह विहारं
सुहसीलगुणेहिंजो अबुद्धोंओ। सो णवरि लिंगधारी संजमसारेण
णिस्सारो। १६१। पिंडं उविध सेजामितसोधिय जो खु भुंजमाणो हु।
मूलहु।णं पत्तो बालोत्तिय णो समणकालो। १६२। कुलगामणयर एज्छं
पयिहिय तेसु कुणह् दु ममित जो। सो णवरि लिंगधारी संजमसारेण
णिरसारो। १६३। — जो लोकोंका अनुसरण करते हैं और सुखकी
हच्छा करते हैं उनका आचरण मर्यादा स्वरूप माना नहीं जाता है।
उनमें अनुरक्त साधु स्वेच्छासे प्रवर्तते हैं ऐसा सम्भना चाहिए। १६०।
यथेष्ट आहारादि सुखोंमें तल्लीन होकर जो मूर्ख मुनि रतनत्रयमें
अपनी प्रवृत्ति शिथिल करता है वह द्रव्यिलगी है ऐसा सम्भना
चाहिए, क्योंकि, वह हन्द्रिय संयम और प्राणिसंयमसे निःसार
है। १६१। उद्गमादि दोषोंसे युक्त आहार, उपकरण, वसतिका, इनका
जो साधु ग्रहण करता है। जिसको प्राणिसंयम और इन्द्रियसंयम है
हो नहीं, वह साधु मृतस्थान — प्रायश्चित्तको प्राप्त होता है (दे

प्रायश्चित्त/४/२)। वे अज्ञानी हैं, केवल नग्न हैं, वह यति भी नहीं है और न आचार्य है। १११। जो मुनि कुछ, गाँव, नगर और राज्यको छोड़कर उनमें पुनः प्रेम करता है अर्थात उनमें मेरेपनेकी बुद्धि करता है, वह केवल नग्न है, संयमसे रहित है। २१३। (भ, आ/मू.। १८१६-१३२५)

- र. सा/१०६-११४ देहादिष्ठ अणुरत्ता विसयासत्ता कसायसंजुत्ता। अप्पसहावे ग्रुवा ते साहू सम्मपरिचत्ता।१०६। संघितरोहकुसीला सच्छंदा रहियगुरुकुला मुद्धा। रायाइसेवया ते जिणधम्मविराहिया साहू।१०६। ण सहंति इयरदप्पं थुवंति अप्पाण अप्पमाहप्पं। जिन्म णिमित्तं कुणंति ते साहू सम्मउम्मुक्ता।१९४। = जो मुनि शरीर भोग व सांसारिक कार्योमें अनुरक्त रहते हैं, जो विषयोंके सदा अधीन रहते हैं, कवार्योको धारण करते हैं, आत्मस्वभावमें सुप्त हैं, वे साधु सम्यक्त्य रहित हैं।१०६। (भ. आ/मू / १३१६-१३४७) जो संबसे विरोध करता है, कुशील सेवन करता है, स्वच्छन्य रहता है, गुरुकुल में नहीं रहता, राजा आदिकी सेवा करता है वह अज्ञानी है, जिनधम का विराधक है।१०८। जो दूसरेके ऐश्वर्य व अभिमानको सहन नहीं करता, अपनी महिमा आप प्रगट करता है और वह भी केवल स्वादिष्ट भोजनकी प्राप्तिके लिए, वह साधु सम्यक्त्व रहित है।११४।
- दे. मंत्र/१/३ [मंत्र, तंत्र, ज्योतिष, वैद्यक, उच्चाटन, वशीकरण आदि करनेवाला साधु नहीं है।]
- दे. श्रुतकेवली/र/३ [विद्यानुवादके समाप्त होनेपर आयी हुई रोहिणी आदि विद्याओं के द्वारा दिखाये गये प्रलोभनमें जो नहीं आते हैं वे अभिन्न दशपूर्वी है और जोभको प्राप्त हो जानेवाले भिन्न दशपूर्वी हैं। दे. साध्/४/७ [पार्यक्यादि मुनियोंका आचार]

२. अयथार्थ साधु श्रावकसे भी हीन है

- भा. पा/मू/१११ ते विय भणामि हं जे सयलकलासील संजमगुणे हिं।
 बहुदोस। णावासो सुमलिण चित्तो ण सावयसमो सो ।१११। च्यालि
 और संयमको कलासे पूर्ण है उसीको हम मुनि कहते हैं; परन्तु जो
 बहुत दोषों का आवास है तथा मिलन चित्त है वह आवकके समान
 भी नहीं है।
- दे. निंदा/६ [मिथ्यादृष्टि व स्वच्छन्द द्रव्यक्तिंगी साधुओंको, पाप श्रमण, नट श्रमण, पाप जीव, तिर्यंचयोनि, नारद, जौकिक, अभव्य, राजवन्त्रभ, नौकर आदि निन्दनीय नाम दिये गये हैं।]

३. अयथार्थ साधु दुःखका पात्र

भा. पा/मू/१०० पार्व ति भावसमणा कल्लाणपर पराई सोक्लाई। दुक्लाई इक्बसनणा णरतिरियकुरैबजोणीए ११००। = भावश्रमण तो कल्याणकी परम्परा रूप मुखको पाता है और द्रव्य श्रमण तिर्यंच मनुष्य व कुरैब योनियों में दुःख पाता है।१००।

४. अयथार्थ साधु से यथार्थ श्रावक श्रेष्ठ है

- भ. आ/मू/११४/१११ पासत्यसदसहस्सादो वि मुसीलो वरं खु एकको वि । जं संसिदस्स सीलं दंसणणाणचरणाणि बड्ढंति ।३१४। [पासत्थसदसहस्सादो वि पार्श्वस्थमहणं चारित्रक्षुद्रोपलक्षणार्थं। (वि. टोका)] च्यहाँ पार्श्वस्थ शब्दसे चारित्रहीन मुनियोंका प्रहण समक्षना चाहिए। अर्थात् चारित्रहीन मुनि लंक्षाविध हों तो भी एक मुशील मुनि उनसे श्रेष्ठ समक्षना चाहिए। कारण कि मुशील मुनीश्वरके आश्रयसे शील, दर्शन, ज्ञान और चारित्र बढ़ते हैं।"
- र. क. शा/३३-गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवात्। अनगारों गृही श्रेयात् निर्मोहो मोहिनो मुनेः।३३। -दर्शनमोहरहित गृहस्थ भी मोक्षमार्गमें स्थित है किन्तु मोहवात् मुनि भी मोक्षमार्गमें स्थित नहीं है। इस कारण मोहो मुनिसे निर्मोही सम्पण्टिष्ट गृहस्थ श्रेष्ठ है।

- दे. विनय/१/३ [इस निकृष्ट कालके शावकों में तो किसी प्रकार शावक-पना बन भी जाता है पर अयथार्थ मुनियों में किसी प्रकार भी मुनियना सम्भव नहीं।]
- ५. पुलाक व पार्श्वस्थ आदि साधु

३. पुलाकादिमें संयम श्रुतादिकी प्ररूपणा

प्रमाण—(स. सि./१/४७/४६१/२); (रा. वा./१/४७/४/६२७ /३२); (चा. सा /१०३/२) ।

संकेत- ← = इसके समान ;सा. - सामाधिक संयम; छेह = छेदोप-स्थाप संयम। परि. = परिहार विशुद्धि संयम; सूक्ष्म = सूक्ष्म साम्प्राय संयम।

	पुताक	बकुश	कुशील						
अनुयोग			प्रति		निर्प्रन्थ	स्नात्क			
J 1	İ	-]	सेवना	कषाम		44			
संयम	सामायिक			सा.,छेद	यथा-	١.			
1	व छेदो	-	←	परि.,	रुयात	←			
श्रुतः—		! }		सूक्ष्म.					
उरकृष्ट	१० पूर्व	├	←	१४ पूर्व	←	<u> </u>			
				1, 4	,	— केवल्ह्यान			
जघन्य	आचार-	अष्ट प्रवचन	-	,		146			
1	वस्तु	माता	`	←	←	, »			
प्रति सेवना	म लास्कार	उपकरणाँ-	उत्तर		1	ļ			
(विराधना)	वश महा-	की आक्रौशा	गुणोंमें	×	×	×			
(।वरावना)	त्रतीं तथा	व शरीर-	कदा-						
	रात्रिभुत्ति	संस्कार	चित्						
	में कदाचित्								
तीर्थ	! [स न तीर्थ-				•				
हाथ	सन ताथ- करोंके	,							
ŀ	कराक तीर्थमें	-	←		├	←			
 सिंग—	तायम]					
	भावलिंग			İ					
भाव	!	•	—	←	←	←			
द्रव्य—	परस्पर भेद	है—कोई आह	हार करे,	कोई तप	करे, क	ोई			
	उपदेश करे, कोई अध्ययन करे, कोई तीर्थ विह				विहारव	ह रे ,			
	कोई अनेक आसन करे, किसीको दो श्चित्त ले, किसीको दोष नहीं लगे			ाष लगे, कोई प्राय-					
1	ारपच्छाः । कोद्रीलयाध्य	कताकः ६।५ ग्राहे स्रोर्ट	। गहास प्रकृतिक है	ा, काइ के चरे≸	आचाय विक्रिक्ट	₹, \$.			
	कोई उपाध्याय है, कोई प्रवर्तक है, व				ान्यापक ≖†चे ऋ	ह• दे			
1	कोई वैयावृत्त्य करे, कोई ध्यानकर श्रेणी मांडे, कोई केवल ज्ञान उपजावे, किसी की बड़ी विभूति व महिमा								
	किया शाम जनजान, रकता का नज़ा विश्वात ने माहमा होये इत्यादि नाह्य प्रवृत्तिकी अपेक्षा लिंग भेद हैं—								
	(रा. बा./हि.)।								
लेश्या	तीन शुभ	 छहीं	←	अन्तिम	গুক্ত	←			
		1		४-(सूक्ष्म.	•				
	,			सांप.के	İ				
ļ			ļ :	केवस					
	1			शुक्क)					
उपपाद									
उत्कृष्ट	सहस्रार	अच्युत	←-	सर्वार्थ	←-	मोक्ष			
		1		सिद्धि		~]			
जघन्य	सौधर्म	←	←	←	←-	17			

२. पुलाकादिमें संयम लब्धिस्थान

(स. सि /१/४७/४६२/१२); (रा. बा./१/४७/४/६२८/११); (चा. सा./१०६/१): **संकेत**— **असं**, = असंस्थात

स्थान	स्वामिरव		
प्र. असं. स्थान द्वि. असं. स्थान तृ, असं, स्थान चतु, असं, स्थान पंच. असं. स्थान षष्ठ, असं, स्थान अन्तिम १ स्थान	पुलाक व कंषाय कुशील । केवल कषाय कुशील । कषाय व प्रतिसेवना कुशील और बकुश । कषाय व प्रतिसेवना कुशील । केवल कषाय कुशील । निर्मन्थों के अकषाय स्थान । स्नातकोंका अकषाय स्थान ।		

३. पुलाक आदि पाँचों निर्धन्थ हैं---

स. सि/१/४६/४६०/१२—त एते पञ्चापि निर्मृत्थाः। चारित्रपरिणामस्य प्रकर्षापकर्षभेदे सत्यपि नैगमसंग्रहादिनयापेक्षया सर्वेऽपि ते निर्मृत्था इत्युच्यन्ते।=ये पाँचों ही निर्मृत्थ होते हैं। इनमें चारित्रस्य परिणामोंकी न्यूनाधिकताके कारण भेद होनेपर भी नैगम और संग्रह आदि (व्याधिक) नयोंकी अपेक्षा वे सब निर्मृत्थ कहताते हैं। (चा. सा/१०१/१)

४. पुलाकादि के निर्मन्थ होने सम्बन्धी शंका समाधान—

रा. बा/६/४६/६-१२/६३७/१-यथा गृहस्थरचारित्रभेदान्निर्ग्रन्थव्यप-देशभाग् न भवति तथा पुलाकादीनः मिप प्रकृष्टाप्रकृष्टमध्यचारित्र-भेदान्निर्प्रम्थत्वं नोपपदाते । ।६।...न वैष दोषः । कुतः ...यथा जात्या चारित्राध्ययनादिभेदेन भिन्नेषु बाह्मणशब्दोऽवशिष्टो बर्तते तथा निर्प्रन्थशब्दोऽपि इति ।७। किंच ... यद्यपि निर्चयनयापेक्षया गुणहीनेषु न प्रवर्तते तथापि संग्रहव्यवहारनय-विवक्षावशात् सकल-विशेषसंग्रहो भवति । पा किंच दृष्टिरूपसामान्यात् । १। भग्नवते वृत्तावतित्रसंग इति चेत्; नः, रूपाभावात् ।१०। अन्यस्मिन् सरूपेऽतिप्रसंग इति चेत्, नः दृष्ट्यभावात् ।११।...किमर्थः पुराका-दिब्यपदेशः •••वारित्रगुणस्योत्तरोत्तरप्रकर्षे वृत्तिविशेषस्यापनार्थः पुलाकाइयुपदेशः क्रियते ।१२। = प्रश्न - जैसे गृहस्थ चारित्रभेद होनेके कारण निर्प्रनथ नहीं कहा जाता, वैसे ही पुताकादि को भी उत्कृष्ट मध्यम जघन्य आदि चारित्र भेद होनेपर भी निर्मान्य नहीं कहना चाहिये।~उत्तर १—जैसे चारित्र व अध्ययन आदि का भेद होनेपर भी सभी बाह्यणों में जाति की दृष्टिसे ब्राह्मण शब्दका प्रयोग समानरूपसे होता है, उसी प्रकार पुलाक आदिमें भी निर्मन्थ शञ्दका प्रयोग हो जाता है । २ ~ यदापि निश्चय नय से गुणहीनों में निग्रंन्थ शब्द नहीं प्रवर्तता परन्तु संग्रह और व्यवहार नमकी अपेक्षा वहाँ भी उस शब्दका प्रयोग सर्वसंग्रहार्थ कर लिया जाता है। ३ - सम्यग्दर्शन और नग्न रूप की अपेक्षा भी वे सब समान हैं। प्रश्न-यदि बतोंका भंग हो जानेपर भी आप इनमें निर्प्रन्थ शब्द की वृक्ति मानते हैं तब तो गृहस्थोंमें भी इसको वृत्ति होनेका प्रसंग प्राप्त होता है ? उत्तर - नहीं होता, क्यों कि वे नरनरूपधारी नहीं हैं। प्रश्न -तन जिस किसो भी सन्नरूपधारी मिध्यादृष्टिमें उसको वृत्तिका प्रसंग प्राप्त हो जायगा ! उत्तर-नहीं, नयोंकि

एनमें सम्यादर्शन नहीं पाया जाता [और सम्यादर्शन युक्त ही नान स्वको निर्प्रन्थ संज्ञा प्राप्त है—(दे, लिग/२/१)] प्रश्न— फिर एसमें पुलाक आदि भेदोंका व्यवदेश ही क्यों किया ! एसर—चारित्रगुणका क्रमिक विकास और क्रमप्रकर्ष दिखानेके लिए इनकी चर्चाकी है।

५. निर्मन्थ होते हुए भी इनमें फ़ुष्ण लेक्या क्यों-

स. सि/१/४०/४६२/फुटनोट में अन्य पुस्तक से उपलब्ध पाठ—"कृष्ण लेश्यादित्रयं तयोः कथमिति चेदुच्यते—सयोरुपकरणासिकतसंभवा-दार्त्त ध्यानं कदाचिरसंभवति, आर्त्त ध्यानेन च कृष्णादिलेश्यात्रितपं संभवतीति । =प्रश्न-वकुश और प्रतिसेवना कुशील (यदि निर्मन्थ हैं तो) इन दोनोंके कृष्ण नील कापोत ये तीन लेश्यापं कैसे हो सकती हैं ! उत्तर-उनमें उपकरणों के प्रति आस्ति भावकी संभावना होनेसे कदाचित आर्त ध्यान सम्भव है और आर्त ध्यानमें कृष्णादि तीनों लेश्याओं का होना सम्भव है । (त.व/१/४७/३१६/२१) त.व/१/४७/३१६/२३ "मतान्तरम्—परिप्रहसंस्काराकाङ्क्षायां स्वमेवो-त्तरगुणविराधनायामार्त्त संभवादार्तिवनाभावि च लेश्याषट्कम्।

त्तरगुणिवराधनायामार्तसंभवादार्ताविनाभावि च लेश्याषट्कम्।
पुलाकस्यार्तकारणाभावात्र षड् लेश्याः । चदुसरे मतकी अपेक्षा
परिग्रह और शरीर संस्कारकी आकांक्षामें स्वयमेव उत्तर गुणोंकी
विराधना होती हैं, जिससे कि आर्तध्यान सम्भव हैं। और उसके
होनेपर उसकी अविनाभावी छहीं लेश्याएँ भी सम्भव हैं। पुलाक
साधु के आर्तके उन कारणों का अभाव होनेसे छह लेश्या नहीं हैं।

६. पार्वस्थादि मुनि अष्टाचारी हैं-

भ. खा/मू/१३०६-१३१४ -- दूरेण साधुसत्थं छ डिय सो उप्पर्धेण खु पत्तादि । सेवदि कुसीलपिडसेवणाओं जो मुत्तदिहाओ । १३०६। इंदियकसायगुरुगत्तवेण चरणं तणंव परसंतो। णिइंधसो भवित्ता सेवदि हु कुसीलसेवाओ ।१३०७। सो होदि साधु सत्थातु णिग्गदी जो भवे जधाछंदो। उस्मुत्तमणुवदिट्ठं च जधिच्छाए किकप्पंतो । १३१०। इय एदे पंचिवधा जिणेहिं सवणा दुर्गु चिछदा सुत्ते। इंदियकसायगुरुयत्तरोग णिच्चंपि पडिकुद्धा ।१३१६। = भ्रष्टमुनि दूरते हो साधुसार्थका त्याग करके उन्मार्गसे पत्तायन करता है तथा आगम में कहे हुए कुशील नामक मुनिके दोषोंका आचरण करते हैं 1१३०ई। इन्द्रियके विषयों तथा कषायके तीव परिणामों में तत्पर हुए वे मुनि चारित्रको तृणवत् समभते द्वुए निर्लज्ज होकर कुद्गीलका सेवन करते हैं।१३०७। जो मुनि साधुसार्थका त्यागकर स्वतंत्र हुआ है, जो स्वेच्छ।चारो बनकर आगमविरुद्ध और पूर्वाचार्यों के द्वारा न कहे हुए आचारोंकी कल्पना करता है, उसे स्वच्छन्द नामका भ्रष्ट मुनि समफना चाहिए।१३१०। इन पाँच तरह के भ्रष्ट मुनियोंकी जिनेश्वरोंने आगममें निन्दा की है। ये पाँची इन्द्रिय व कथायके गुरुत्वसे सिद्धान्तानुसार आचरण करनेवाले मुनियोंके प्रतिपक्षी हैं ।१३१४।

खा सा./१४४/२ एते पञ्च श्रमणा जिनधर्मबाह्याः । स्ये पाँचौ सुनि जिनधर्मबाह्य हैं। (भा, पा/टी./१४/१३७/२३)।

दे. प्रायश्चित्त/४/२/८ [इन पाँचों मुनियोंको म्लच्छेद नामका प्राय-श्चित्त दिया जाता है ।]

७. पाँचोंके भ्रष्टाचारकी प्ररूपणा

भ. आ./मू./१६६१-१६६७ मुहसादा किमज्भा गुणसायी पावसुत्तपिडि-सेवी। विस्तयासापिडिनद्धा गारवगुरुया पमाइल्ला ।१६६२ सिमिदीसु य गुसीसु य अभाविदा सीलसंजमगुणेसु । परतत्तीसु पसत्ता अणा-हिदा भावसुद्धीए ।१६६३। गंथाणियत्ततण्हा बहुमोहा समलसेवणा-सेवी। सहरसस्त्वगंधे फासेसु य मुच्छिदा घडिया ।१६६४। परस्रोग-

णिटिपवासा इहलोगे चैव जे सुपडिबद्धा। सज्कायादीसु य जे अणु-ट्ठिटा संकिलिट्टमदी ।१६५५। सब्बेसुय मूळुत्तरपुणेसु तह ते सदा अइचरता। ण लहंति खबोबसमं चरित्तमोहस्स कम्मस्स ११२४६। एवं मूढमदीया अवंतदोसा करेंति जे कालं । ते देवदुब्भगत्तं मायामोसेण पावंति ।१११७। च्ये पाँचों मुनि सुखस्वभावी होते हैं। इसलिए 'मेराइनसे कुछ भी सम्त्रन्थ नहीं' यह विचारकर संघके सत्र कार्यसे उदासीन हो जाते हैं। सम्यग्दर्शनादि गुणोंके प्रति निरुत्साही हो जाते हैं। नीति, वैद्यक, सामुद्रिक आदि पाप शास्त्रोंका आदर करते हैं। इष्ट विषयोंकी आशासे अँधे हुए हैं। तीन गारवसे सदा युक्त और पन्दह प्रमादोंसे पूर्ण है ।११५२। समिति गुप्तिकी भावनाओं से दूर रहते हैं। संयमके भेदरूप जो उत्तरगुण व शील वगैरह इनसे भी दूर रहते हैं। दूसरों के कार्यों की चिन्तानें लगे रहते हैं। आत्मकल्याणके कार्योंसे कोसों दूर हैं, इसलिए इनमें रत्नत्रथकी शुद्धि नहीं रहती।११५३। परिग्रहमें सदा तृष्णा, अधिक मोह व अज्ञान, गृहस्थों सरीखें आरम्भ करना, शब्द रस गन्ध रूप और स्पर्श इन विषयोंने आसक्ति १११४४। परलोकके विषयमें निस्पृह, ऐहिक कार्यों में सदा तत्पर, स्वाध्याय आदि कार्योंमें मन न लगना, संक्लेश परिणाम ।१६४४। मूल व उत्तर गुणोंमें सदा अतिचार युक्तता, चारित्रमोहका क्षयोपशम न होना ।१६५६। ये सब उन अवसन्नादि मुनियोंके दोष हैं, जिन्हें नहीं हटाते हुए ने अपना सर्व आयुष्य व्यतीत कर देते हैं। जिससे कि इन म(यानी मुनियोंको देव दुर्गति अर्थात् नोच देवयोनिकी प्राप्ति होती है। १६५७।

८. पाइवंस्थादिकी संगतिका निषेध

भ. आ./३३६, ३४१ पासत्थादीपणयं णिच्चं वडजेह सक्वधा तुन्हे। हंदि हु गेलणहोसेण होइ पुरिसस्स तम्मयदा ।३३६। संविग्गस्सिप संसग्गीए पीदी तदो य वीसंभो। सिंद वीसंभे य रदी होइ रदीए वि तम्मयदा ।३४१। अपार्वस्थादि पाँच भ्रष्ट मुनियोंका तुम दूरसे त्याग करो, क्योंकि उनके संसग्से तुम भी वैसे ही हो जाओंगे ।३३६। वह ऐसे कि संसारभययुक्त मुनि भी इनका सहवास करनेसे, पहले तो प्रीतियुक्त हो जाता है और तदनन्तर उनके विषयमें मनमें विश्वास होता है, अनन्तर उनमें चित्त विश्वान्ति पाता है अर्थत् आसक्त होता है और तदनन्तर पार्वस्थादिमय बन जाता है ।३४९।

६. आचार्यं, उपाध्याय व साधु

चारित्रादिकी अपेक्षा तीनों एक हैं

- प्र. सा./त. प्र./२ ज्ञानदर्शनचारित्रतपोबीर्याचारपुक्तस्वात्संभावितपरमशुद्धीपयोगभू मिकानाचार्योपाध्यायसाधुस्विविशिष्टात् श्रमणांश्च
 प्रणमामि । ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और
 वीर्याचारपुक्त होनेसे जिन्होंने शुद्धोपयोग भूमिकाको प्राप्त किया
 है, ऐसे श्रमणोको—जो कि आचार्यस्य उपाध्यायस्य और साधुस्वरूप
 विशेषोसे विशिष्ट हैं, उन्हें नमस्कार करता हूँ ।
- प्र. सा./ता. वृ./२/४/२० श्रमणशब्दवाच्यानाचार्योपाध्यायसार्ध्यकः । --आचार्य, उपाध्याय व साधुये तीनो श्रमण शब्दके वाच्य हैं। (और भी दे, मन्त्र/२/४)।
- पं. धः/उ /६३६-६४४ एको हेतुः क्रियाय्येका वेषश्चैको बहिः समः।
 सपी द्वादशधा चैकं वर्त चैकं च पञ्चघा।६३६। त्रयोदविधं चैकं चारित्रं समतैकधा । मूलोत्तरगुगैश्चैके संयमोऽप्येकधा मतः ।६४०। परोषहोपसर्गाणां सहनं च समं स्मृतम्। आहारादिविधिश्चैकश्चर्या स्थानासनादयः ।६४१। मार्गो

मोक्षस्य सद्दृष्टिक्चीनं चारित्रमारमनः । रत्नत्रयं समं तेषामिष चान्तर्बहिःस्थितम् । ६४२। ध्याता ध्यानं च ध्येयं च ज्ञाता क्षानं च ज्ञेयसात् । चतुर्धराधना चापि तुच्या क्रोधादिजिष्णुता । ६४३। क्षिवात्र बहुनोक्तेन तिद्वरोषोऽविद्यात्र्यते । विशेषाच्छेषिनःशेषो न्यायादस्यविशेषमाक् । ६४४। च्यन आचार्यादिक तीनोंका एक हो प्रयोजन है, क्षिया भी एक है, बाह्य वेष, बारह प्रकारका तप और पंच महावत भी एक हैं । ६३६। तेरह प्रकारका चारित्र, समता, मूल तथा उत्तर गुण, संयम । ६४०। परीष्ट्र और उपसर्गोका सहन, आहारादिकी विधि, चर्या, शब्या, आसन । ६४१। मोक्षमार्ग रूप आरमके सम्यग्दर्शन ज्ञान व चारित्र—इस प्रकार ये अन्तरंग और बहरंग रत्नत्रय । ६४२। ध्याता ध्यान व ध्येय, ज्ञाता, ज्ञायधीन ज्ञान, चार प्रकार आराधना तथा कोध आदिका जीतना ये सब समान व एक हैं । ६४३। अधिक कहाँ तक कहा जाय उन तीनोंकी सब हो बिषयों में समानता है । ६४४। (और भी दे. आचार्य व उपा-ध्यायके लक्षण)।

- दे देव 1/१/४-५ [रत्नत्रयकी अपेक्षातीनों में कुछ भी भेदन होनेसे तीनों ही देवरवको प्राप्त हैं।]
- दे. ध्येय/३/४ [रत्नत्रयसे सम्पन्न होनेके कारण तीनों ही ध्येय हैं।]

२. तीनों एक ही आत्माकी पर्यायें हैं

मो, पा./मू /१०४ अरुहा सिद्धायरिया उज्भावा साहू पंचपरमेट्टी।
ते वि हु चिट्ठहि आधे तम्हा आदा हु मे सरणं। = अर्हत, सिद्धः,
आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पाँच एक आश्मामें ही चेष्टारूप हैं,
इसलिए मुभको एक आत्माका ही शरण है।

३. तोनोंमें कथंचित् भेद

- पं. घ./डः/६३८ आचार्यः स्यादुपाध्यायः साधुशचेति त्रिधा गतिः ।
 स्युर्विशिष्टपदारूढास्त्रयोऽपि मुनिकुञ्जराः।६३८। = आचार्यः, उपाध्याय
 और साधु इस प्रकार उस गुरुकी तीन अवस्थाएँ होती हैं. क्योंकि
 ये तीनों मुनि कुंजर आचार्य आदि विशेष-विशेष पदमें आस्ढ माने
 जाते हैं।६३८।
- दे. उपाध्याय/घ, १/१,१,१/पृ, ५०/१ [संग्रह अनुग्रहको छोड़कर शेष बातों में आचार्य व उपाध्याय समान हैं।] (विशेष दे. उस उसके सक्षण।)

४. श्रेणी आदि आरोहणके समय इन उपाधियोंका स्याग

पं. ध./उ./७०६-७१३ किचास्ति यौगिकी रूढिः प्रसिद्धा परमागमे। बिना साधुपदं न स्यारकेवसी १५ सिरञ्जसा १७०६। तत्र चीक्तमिदं सम्यक् साक्षारसवर्थिसाक्षिणा । क्षणमस्ति स्वतः श्रेण्यामधिरुदस्य त्तरपदम् ।७१०। यतोऽवश्यं सं सूरिर्वा पाठकः श्रेण्यनेहसि । कृतस्न-चिन्तानिरोधात्मलक्षणं ध्यानमाश्रयेत् ।७११। ततः सिद्धमनाया-सात्तरपदरवं तथोरिह । नूनं बाह्योपयोगस्य नावकाशोऽस्ति यत्र तत् ।७१२। न पुनश्चरणं तत्र छेदोपस्थापनां वरम्। प्रागादाय सणं पक्षात्सूरिः साधुवदं श्रयेत्।७१३। ज्यरमागममें यह अन्वर्थ रुदि प्रसिद्ध है कि वास्तवमें साधुपदके ग्रहण किये विना किसीको भी केवलज्ञानकी उरपित नहीं होती है।७०१। तथा वहाँ प्रत्यक्ष ज्ञाता सर्वज्ञ देवने यह अच्छी तरह कहा है कि श्रेणी पर अधिरूढ आचाये आदिको क्षण भरमें वह साधु पद स्वयं प्राप्त हो जाता है। ७९०। क्योंकि, वह आचार्य और उपाध्याय श्रेणी चढ़नेके कालमें सम्पूर्ण चिन्ताओं के निरोधरूप ध्यानको अवश्य ही धारण करते हैं। ७११। इसलिए सिद्ध होता है कि श्रेणी कालमें उनकी अनायास ही वह साधुपर प्राप्त हो जाता है, क्यों कि वहाँपर निश्चयसे बाह्य उपयोगके

लिए विलक्कल अवकाश नहीं मिलता ।७१२। किन्तु ऐसा नहीं है कि आचार्य श्रेणीके आरोहण कालमें पहिले छेदोपस्थापनारूप चारित्रको ग्रहण करके पीछे साधुपदको ग्रहण करते हो ।७१२।

दे, सल्लेखना/४/३ [संस्तर धारणसे पूर्व आचार्य संघकी व्यवस्थाका कार्य भार बालाचार्यको सौंपकर स्वयं उस पदसे निवृत्त हो जाते हैं।]

साधु प्रासुक परित्यक्तता — दे. त्याग/३।

साधुसंघ-दे. संघ न इतिहास/१।

साधु समाधि-हे, समाधि।

साध्य-हे, पक्ष ।

साध्य विकल्प--हे, दृष्टान्त/-।

साध्य विरुद्ध-- दे, विरुद्ध।

साध्य सम — न्या. सू./मू./२/८ साध्याविशिष्टः साध्यत्वात्साध्य-समः।षा = साध्य होनेके कारण साध्यसे जो अभिन्न है ऐसे हेतुको साध्यसम हेश्वाभास कहते हैं। [जैसे पर्वत विह्नमान् है, क्योंकि यह विह्नमान् है।] (श्लो. वा. ४/१/३३/न्या./१७३/४२६/२४)

साध्यसमा---न्याः सू./भाष्य/६/१/४/२८व/२३--[मूलसूत्र दे. वर्ण्य-समा] - क्रियाहेतु गुणयुक्तं किंचिइ गुरु यथा लोष्टः किंचिवलघु यथा वायुरेवं कियाहेतुगुणयुक्त किचित्कियावत्स्याइ यथा लोष्टः किचिद-क्रियं यथारमा विशेषो वा वाच्य इति । हेत्वाद्यवयवसामध्यंयोगी धर्मः साध्यस्तं दृष्टान्ते प्रसञ्जतः साध्यसमः । यदि यथा लोष्टस्तथा-त्मा प्राप्तस्तर्हि यथात्मा तथा स्रोष्ट इति । साध्यश्चायमात्मा क्रियावानिति कामं लोष्टोऽपि साध्यः। अथ नैवं तर्ष्टि यथा लोष्टः तथात्मा ! एतेषामुत्तरम् । 🛥 क्रियाहेतुगुणसे युक्त पदार्थ कुछ भारी भी होता है जैसे लोष्ट, कुछ हलका भी होता है जैसे बायु, कुछ कियाबाला होता है, जैसे लोध और कुछ क्रियारहित भी होता है जैसे आत्मा। कुछ और विशेष हो तो कहिए। हेतु आदि अवयव की सामर्थ्यको जोड्नेवाला धर्म साध्य होता है। उसको रष्टान्तमें प्रसंग करानेवालेको साध्यसम कहते हैं। उदाहरणार्थ- जैसा लोष्ट है वैसाही आत्माहै, तत्र प्राप्त हुआ कि जैसा आत्माहै वैसा ही लोष्ट है। यदि आत्माका क्रियाबात्पना साध्य है तो निस्सन्देह लोष्टका भी कियावान्पना भी साध्य है। यदि ऐसा नहीं है तो 'जैसा लोह वैसा आत्मा' ऐसा नहीं कहा जा सकता। (श्लो. वा. ४/ १/३३/न्या. ३३७/४७३/३०) ।

साध्य सावक सम्बन्ध—हे सम्बन्धा

साध्य साधन भाव- (दे. निश्चय वयवहार नय या धर्म या चारित्र आदि)।

सदानन्द — बेदान्तसार नामक ग्रन्थके रचिता। समय ई. श. १७ (दे. बेदान्त/१/२।)

सान - ध. १३/५.४,३७/२४२/३ स्यति छिनस्ति हन्ति विनाशयित अनध्यवसायमित्यवग्रहः सानम् । - जो अनध्यवसायको छेदसा है, नष्ट करता है, वह अवग्रहका तोसरा नाम सान है।

सान्निपातिक भाव--दे. सन्निपातिक भाव।

सापेक--दे, स्याद्वाद/२,३

सापेक्ष मात्रा — Relative mass -(जं. प./प्र. १०६)।

सामानिक---

ति. प./3/६४ सामाणिया कलत्तसमा ।६४। = सामानिक देव इन्द्रके कलत्रके समान होते हैं। (त्रि. सा./२२४)। स.सि./३/१६/२१८/६ समाने स्थाने भवाः सामानिकाः । 📑

स्त. [स. [४]४]२३६/१ आङ्केश्वर्यवर्षितं यरस्थानायुर्वीर्यपरिवारभोगंप-भोगादि तत्समानं, तत्समाने भवाः सामानिकाः महत्तराः पितृगुरू-पाध्यायतुल्याः। = १. समान स्थान या पदमें जो होते हैं सो सामायिक कहलाते हैं। (राबा. [३]१६/३]१५३/३१)। २. आङ्का और ऐश्वर्यके अतिरिक्त जो आयु. वीर्य, परिवार, भोग और उपभोग हैं वे समान कहलाते हैं। उस समानमें जो होते हैं वे सामानिक कहलाते हैं। ये रिता, गुरु और उपाध्यायके समान सबसे बड़े हैं। (रा.वा. [४]४/२/२१२/१७)।

म. पु./२२/२४ पितृमानृगुरुप्रख्याः संमतास्ते प्रुरेशिनाम् । सभन्ते समिनिन्द्रश्च सरकारं मान्यतोचितम् ।२४। यो सामानिक जातिके देव इन्द्रोंके पिता माता और गुरुके तुल्य होते हैं तथा ये अपनी मान्यताके अनुसार इन्द्रोंके समान ही सरकार प्राप्त करते हैं।२४।

जं. प./११/३०६ सामाणिया वि देवा अणुसरिसा लोगवालाणं ।= सामानिक देव भी वैभव आदिमें लोकपालोंके सहवा होते हैं।

अन्य सम्बन्धित विषय

१. सामानिक देत्रोंकी देवियाँ —(दे. स्वर्ग/३/७)
२. इन्द्रोंके परिवारमें सामानिक देवेंका प्रमाण—दें, भवन, व्यन्तर, ज्योतिकी और स्वर्ग।

सामान्य-१. 'सामान्य' सामान्यके उक्षण

दे द्रव्य/१/७ [द्रव्य, सामान्य, उत्सर्ग, अनुवृत्ति, सत्ता, सत्त्व, सत्त, अन्वय, वस्तु, अर्थ, विधि, अविशेष ये सब एकार्थवाचक शब्द हैं।]
दे.नयः/।/१/४-[द्रव्यका सामान्यांश हारके डोरेवत् सर्व पर्यायोंमें अनुस्यूत एक भाव है।]

हे. निक्षेप/२/७ [द्रव्यकी प्रारम्भसे लेकर अन्त तककी सब पर्यायें मिलकर एक द्रव्यबनता है। वही सामान्य द्रव्यार्थिक नयका विषय है।](और भी हे. नय/IV/१/२)।

दे, दर्शन/४/२-४ [यह काला है था नीला इस प्रकार भेद किये विना सम्पूर्ण बाह्य पदार्थीका सामान्य रूपसे ग्रहण करनेके कारण आत्मा ही सामान्य है और वहीं दर्शनोपयोगका विषय है।]

न्या,/वि./मू./१/१२१/४६० समानभावः सामान्यं । समान अर्थात् एकत्का भाव सामान्य है ।

न्या. वि./ष्./१/४/१२१/१० अनुवृत्तिवृद्धिहेतुस्वात्सामान्यम् । = अनु-वृत्ति अर्थात् एकताकी बुद्धिका कारण होनेसे सामान्य है। (प. मु./४/२)।

न.च.वृ./६१ सामण्णसहाबदो सब्वे । = सब द्रव्योंमें होना सामान्यकाः स्वभाव है ।

स म./४/१०/१२ स्वभाव एव हायं सर्वभावानां यदनुवृत्ति-...तथाहि।
घट एव तावत पृथुबद्दादिराकारवात् प्रतीतिविषयीभवत् सद्गन्यानिप तदाकृतिभृतः पदार्थात् घटरूपतया घटैकशब्दवाच्यतया च प्रत्यायत् सामान्याख्यां लभते। = स्वयं ही सर्व भावोंकी अनुवृत्ति रूपसे ज्ञान करानेवाला ऐसा सब द्रव्योंका स्वभाव ही है। उदाहरणार्थ — मोटा गोल उदर आदि आकारवाला घड़ा स्वयं ही उसी आकृतिके अन्य पदार्थोंको भी घटरूपसे और घटशब्दरूपसे जानता हुआ 'सामान्य' कहा जाता है।

इ.सं./टी./६/१८/२ सामान्यमिति कोऽर्थः संसारिजीवयुक्तजीविवसा नास्ति, अथवा शुद्धाशुद्धज्ञानदर्शनिविवसा नारित। तदपि कथमिति चेद विवसायाः अभावः सामान्यलक्षणमिति वदनाद् । = यहाँ 'सामान्य जीव' इस कथनका यह तात्पर्य है कि इस (जीवके) लक्षणमें संसारी तथा मुक्त जीवकी विवक्षा नहीं है अथवा हुद्ध कहुद्ध हान दर्शनको भो विवसा नहीं है। क्यों कि, 'विवसाका अभाव ही सामान्यका लक्षण है' ऐसा कहा है। (स.सा./ता.वृ./१६८/२७४/७)।

न्या.दो./३/६०६/११०/२ तत्र सामान्यमनुवृत्तिस्वरूपम्। तद्धि घटरवं पृथुनुभोदराकारः। गोरविमिति सासादिमस्वमेव । = घट घट 'गौ गौ'इस प्रकारके अनुगतज्यबहारके विषयभूत सहश परिणामात्मक 'घटरव' 'गोरव' आदि अनुगत स्वरूपको सामान्य कहते हैं। वह 'घटरव' स्थूल कम्बुग्रीवादि स्वरूप तथा 'गोरव' सासा आदि स्वरूप ही है।

पं.ध /उ,/२ बहुव्यापकमेवैतःसामान्यं सहशःवतः ।२। = सहशतासे जो षहुत देशमें व्यापक रहता है उसीको सामान्य कहते हैं।

वै. दः/१-२/३,४ सामान्यं विशेष इति बुद्धविशस् ।३। भावोऽनुवृत्तेरेव हेतुस्वात सामान्यमेव ।४। सामान्य और विशेष बुद्धिकी अपेक्षासे लिये जाते हैं ।३। जैसे अनुवृत्ति अर्थात् वार वार लौटकर प्रत्येक वस्तुके मिलनेसे यह विदित होता है कि भाव अर्थात् सत्ता है।

२. सामान्यके भेद व उनके लक्षण

प.मु./४/३-१ सामान्यं द्वोधा तिर्यशूर्ण्वताभेदात । ३। सहश्राणामस्तिर्यक् लण्डमुण्डादिषु गोत्ववत् । ४। परापरिविकृतव्यापिद्रव्यमूर्ण्वता
मृदिव स्थासादिषु । स्थामान्य दो प्रकारका है—एक तिर्यक्
सामान्य, वूसरा ऊर्ध्वता सामान्य । ३। तहाँ सामान्य परिणामको
तिर्यक् सामान्य कहते हैं, जैसे गोत्व सामान्य, क्योंकि लाण्डी मुण्डी
आदि गौवों में गोत्व सामान्यरूपसे रहता है। तथा पूर्वोत्तर पर्यायों में
रहनेवाले द्रव्यको ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं, जैसे बड़ेमें मिट्टो,
क्योंकि, स्थास, कोश, कुशूल आदि जितनी भी एक घड़ेकी पूर्वोत्तर
पर्यायों हैं उन सबमें मिट्टो अनुगत रूपसे रहती है । १। (विशेष दे,
कम/६)।

स्या. म/=/६६/१५ तरनुवृत्तिप्रत्ययहेतुः सामान्यम् । तच्च द्विविधं परमण् च । तत्र परं सत्ता भावो महासामान्यमिति चोच्यते । द्वव्यत्वाद्यवान्तरसामान्यापेक्षया महाविषयत्वात् । अपरसामान्यं च द्वव्यत्वादि । एतच्च सामान्यविशेष इत्यपि व्यपदिश्यते । = अनुवृत्ति प्रत्ययका कारण सामान्य है । वह दो प्रकारका है—पर सामान्य और अपर सामान्य । पर सामान्यको सत्ता, भाव, और महासामान्य भी कहते हैं । वयौकि, यह द्वयत्व आदि अपरसामान्यको अपेक्षासे महात् विषय याता है । द्वयत्व केवल द्वव्यमें ही रहता है और परसामान्य द्वव्य गुण व कर्म तीनों में रहता है । द्वयत्वादि अपर सामान्य हैं । इसे सामान्य विशेष भी कहते हैं । (और भी दे. 'अस्तित्व'; नय/II]/8/२/१)।

३. सर्वथा स्वतन्त्र सामान्य या विशेष कुछ नहीं

सि. वि./मू/२/१२/१४३ न परयामः क्वचित् किंचित् सामान्यं का स्वत्तक्षणम्। जारयन्तरं तु परयामः ततो नैकान्तहेतवः। —कोई किंचित् भी विशेष मात्र या सामान्य मात्र देखनेमें नहीं आता। हाँ सामान्य विशेषारमक एक जारयन्तर भाव अवश्य देखा जाता है। इसलिए 'सामान्य' अनेकान्त हेतुक है अर्थात् अनेकान्तके द्वारा ही सिद्ध हो सकता है।

सि. वि/व/१/८/१४१/४ पर उद्धत (प्रमाण वार्तिक/२/१२६) एकत्र हृष्टो भेदो हि क्वचित्रान्यत्र दश्यते । न तस्माद्धित्रमस्स्यन्यस्सामान्यं बुद्धचभेदतः । — किसी एक स्थान पर देखा गया भेद किसी भी प्रकार अन्यत्र नहीं देखा जाता इस लिए बुद्धिके अभेदसे वह सामान्य कथं चित्र भिन्न व अन्य नहीं है ।

आ. प/श्लो नं ह निर्विशेषं हि सामान्यं भवेश्वरविषाणवत । सामान्य-रहितश्वाच्य थिशेषस्तद्वदेव हि । ह। = विशेषोसे रहित सामान्य और इसी प्रकार सामान्यसे रहित विशेष । कुछ गधेके सींग के समान असत् होते हैं।

४. वस्तु स्वयं सामान्य विशेषात्मक है

883

श्लो. वर/४/१/३३/६०/२४६/१६ सर्वस्य वस्तुनः सामान्यविशेषारमक-स्वात्। म्सर्वे ही वस्तुर्ऐं सामान्यविशेषारमक हैं।

दे. प्रमाण/२/५. [सामान्य विशेषारमक वस्तु ही प्रमाणका विशेष है।]

क. भा/१/१-२०/६३२४/३५६/२ ततः स्वयमेवैकत्वापित्तिरिति स्थितम्। सामान्य-विशेषोभयानुभयैकान्तव्यतिरित्तत्वात् जात्यन्तरं वस्त्विति स्थितम्। = इसका (दे. अगला शीर्षक) यह अभिन्नाय है कि वस्तु न सामान्य रूप है, न विशेषरूप है, न सर्वथा उभयरूप है और न अनुभय रूप है किन्तु जात्यन्तररूप ही वस्तु है, ऐसा सिद्ध होता है। (क. भा/१/१,१/५३३/४६/२)

सामान्य व विशेषकी स्वतन्त्र सत्ता न माननेमें हेतु

क, पा/१/१-२०/§३२२/३५३/३ ण ताव सामण्णमित्यः; विसेसविदिरिः ताणं तन्थावसारिच्छलक्खणसामण्णाणमणुवलंभादो समाणेगपच्च-याणमुष्पत्तीय अण्णहाणुववत्तीदो अत्थि सामण्णमिदि ण वोत्तुं जुत्तः; अणेगासमाणाणुविद्वधेगसमाणग्गहणेण जच्चंतरीभूतपच्चयाण-मुष्पत्तिदंसणादो । ण सामण्णविदिरित्तो विसेसो वि अत्थिः; सामण्णा-णुविद्धस्सेव विसेसस्सुवलंभादो । ''ण च एसो सामण्ण-विसेसाणं संजोगो…।''

क. पा/१/१-२०/§३२३/३५४/१ ण सामण्ण-विसेसाणं संबंधो वत्थु।= १-केवल सामान्य तो है नहीं, खोंकि अपने विशेषोंको छोड़कर केयल तद्भाव सामान्य और सादश्यलक्षण सामान्य नहीं पाये जाते हैं।२ – यदि कहा जाय कि सामान्यके सर्वत्र समान प्रत्यय और एक प्रत्यय की उपपत्ति बन नहीं सकती है इसलिए सामान्य नामका स्वतन्त्र पदार्थ है, सो कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि अनेक का प्रहुण **असमानानुविद्ध होता है और** एक का ग्रहण समानानुविद्ध होता है। ३—अतः सामान्य विशेषात्मक वस्तुको विषय कर्नेवाले जात्यन्तर-भूत ज्ञानोंकी ही उत्पत्ति देखी जाती है। ४--तथा सामान्य से सर्वथा भिन्न विशेष नामका भी कोई पदार्थ नहीं है, क्योंकि सामान्यसे अनुविद्ध होकर ही विशेषकी उपलब्धि होती है। ५— यदि कहा जाय कि स्वतन्त्र रहते हुए भी उनके संयोगका ही परि-ज्ञान एक ज्ञानके द्वारा होता है, सो भी कहना ठीक नहीं— (बिशेष दे. द्रव्य/४/३)। ६--सामान्य और विशेषके सम्बन्धको अर्थात् समवाय सम्बन्धको स्वतन्त्र वस्तु कहना भी ठीक नहीं --(दे. समवाय)।

६. सामान्य व विशेषमें कथंचिद् भेद

घ. १३/६/६/२६४/६ विसेसादो सामण्णस्स कथं चिद पुंघधूदस्स उवनं भादो । तं जहा—सामण्णमेयसंखं विसेसो अणेयसंखो । विदिर् रेयल्क्खणो विसेसो अण्णयलव्खणं सामण्णं, आहारो विसेसो आहेयो सामण्णं, णिच्चं सामण्णं अणिच्चो विसेसो । तम्हा सामाण-विसे-साणं णिख्य एयत्तमिदि । —विशेषसे सामान्यमें कथं चित् भेद पाया जाता है । यथा—सामान्य एक संख्या वाला होता है और विशेष अनेक संख्या वाला होता है. विशेष व्यत्तिरेक लक्षण वाला होता है और सामान्य अन्वय लक्षणवाला होता है, विशेष आधार होता है और सामान्य आध्य होता है, सामान्य नित्य होता है और विशेष अनित्य होता है । इसलिए सामान्य और विशेष एक नहीं हो सकते।

पं. ध./पू./२७१ सामान्यं विधिरूपं प्रतिषेवारमा भवति विशेषश्च ।...। २७१ । —विधिरूप वर्तना सामान्य काल कहलाता है और निषेय स्वरूप विशेष काल कहलाता है। (दे. सप्तभंगी/२/१-स. म.)।

७. सामान्य विशेषके भेदाभेदका समन्वय

आप्त. मी./३४-३६ सामान्यातु सर्वेवयं पृथग्द्रव्यादिभेदतः । भेदाभेदव्यवस्थायामसाधारणहेतुवत् ।३४। विवक्षा चाविवक्षा च विशेष्येऽनन्तर्णामिणी । यतो विशेषणस्यात्र नासतस्तै स्तद्धिभिः ।३५। प्रमाणगोचरौ सन्तौ भेदाभेदौ न संवृती । तावेकत्राविकृद्धौ ते गुणमुख्यविवक्षया ।३६। —सामान्यरूपसे देखने पर सब द्रव्य गुण कर्म
अदिकों में एकत्व है और उनका भेद देखनेपर उनमें भेद है । तहाँ
अभेद विवक्षामें 'सामान्य' और भेद विवक्षामें 'विशेष' ये असाधारण
हेतु हैं ।३४। अनन्त धर्मोंका आधारभूत जो विशेष्य उसमें सत्रूष्प
विशेषणको ही विवक्षा होती है, असत्रूषको नहीं । और यह
विवक्षा बक्ताकी इच्छापर निर्भर है ।३५। इसलिए वस्तुमें भेद व
अभेद दोनों ही प्रमाण गोचर होनेसे प्रमार्थभूत हैं । मुख्य व गौणकी
विवक्षासे ये दोनों स्याद्वाद मतमें अविरुद्ध हैं ।३६।

पं. ध /पू / १०६ जभयोरन्यतरस्योन्मग्नत्वादस्ति नास्तीति । १०६। = इन दोनों मेंसे किसी एककी मुख्य विवक्षा होनेसे कालकृत अस्ति व नास्ति ये दो विकल्प पैदा होते हैं।

सामान्य गुण-दे. गुण/१।

सामान्य ग्राहक दर्शन-दे. दर्शन/१।

सामान्य छल-दे. छत्।

सामान्यतोदृष्ट--दे, अनुमान/१/६।

सामान्य नय न्दे नय/ 1/१/४।

सामान्याधिकरण—

भिन्न प्रवृत्तिनिमित्तानां शब्दानामेक स्मिन्न थे वृत्तिः सामान्याधिकर-ण्यम् । यथा 'तत् त्वमित्त' । स्भिन्न-भिन्न अर्थोकी प्रवृत्तिमें निमित्तभूत जो शब्द उनकी एक ही अर्थ में वृत्ति होना सामान्याधि-करण्य है । जैसे 'तत्त्वमित्त' इस पदमें 'तत् ' का अर्थ अशरीरी ब्रह्म और 'त्वम्' का अर्थ शरीरी ब्रह्म अर्थात् जीवारमा । ये दोनों एक हैं. ऐसे इस पदका अर्थ है । २. हह्य हुक्षण में सामानाधिकरण्य ।

सामान्यावलोकन---दे. दर्शन/१.२।

सामायिक — मुल-दुःल, लाभ-अलाभ, इष्ट-अनिष्ट आदि विषमताओं में राग- होष न करना बिक साक्षी भावसे उनका ज्ञाला दृष्टा
बने हुए समलास्वभावी आत्मामें स्थित रहना, अथवा सर्व सावस्य
योगसे निवृत्ति सो सामायिक है। आवश्यक, चारित्र, झल व प्रतिमा
चारों एक ही प्रकारके लक्षण हैं। अन्तर केवल इतना है कि आवक
उस सामायिकको नियतकालका नियतकाल पर्यन्त धारकर अभ्यास
करता है और साधुका जीवन ही समलामय बन जाता है। धावक
की उस सामायिकको अत या प्रतिमा कहते हैं और साधुकी उस
सार्वकालिक समलाको सामायिक चारित्र कहते हैं।

9 सामायिक सामान्य निर्देश १ समता व साम्यताका लक्षण । * वास्तवमें कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट नहीं ।-- दे. राग/२/४ * समताका महत्त्व । -दे सामायिक/३/७। ₹ सामायिक सामान्यका व्युत्पत्ति अर्थ । ₹ सामायिक सामान्यके रूक्षण । १. समता, २. रागद्वेष निवृत्ति, ३. आत्मस्थिरता, ४. सावद्ययोग निवृत्ति, १. संयम तप आदिका एकत्व **६ॅ. नि**त्य-नै मित्तिक कर्म व शास्त्र । द्रव्यश्रुतका प्रथम अंग बाह्य सामायिक है। दे. अतज्ञान/III/१। प्रतिक्रमण व सामायिकमें अन्तर। * -दे. प्रतिक्रमण/३/१। ४ द्रव्य क्षेत्रादि रूप साभायिकोंके लक्षण । नियत व अनियतकाल सामायिक। —दे, सामायिक/४/२।

सामायिक विधि निर्देश

₹

Ę

ર

₹

8

4

Ę

ሪ

Ş सामायिक विधिके सात अधिकार। सामायिक योग्य काल। ₹ सामायिक विधि। ₹ सामायिक में आसन मुद्रा क्षेत्र आदि । ¥ —दे. शुद्धि । सामायिक मन, वचन, काय शुद्धि । * सामाथिक योग्य ध्येय । ц उपसर्ग आदिमें अचल रहना चाहिए। ξ सामायिकको सिद्धिका उपाय अभ्यास है। —दे अभ्यास ।

सामायिक वत व प्रतिमा निर्देश

सामायिक वृतके छक्षण । १. समता व आर्त रौद्र परिणामोंका स्याग । २. सावद्ययोग निवृत्ति ।

सामायिक प्रतिमाका रुक्षण ।

सामायिक वृत व मितमामें अन्तर । सामायिकके समय गृहस्थ भी साधु तुल्य है । साधु तुल्य होते हुए भी वह संयत नहीं है । सामायिक वृतका मयोजन । सामायिक वृतका महत्त्व । सामायिक वृतको अतिचार । स्मृत्यनुपत्थान व मनःदुष्प्रणिधानमें अन्तर ।

-दे. स्मृत्यनुषस्थान ।

--दे, लक्षण ।

8

सामायिकचारित्र निर्देश

- १ । सामायिक चारित्रका छक्षण ।
- २ नियत व अनियत काल सामायिक निर्देश।
- ३ सामायिक चारित्रमें संयमके सम्पूर्ण अंग ।
- सामायिककी अपेक्षा एक है पर छेदोपस्थापनाकी
 अपेक्षा अनेक रूप है।
 चे. छेदोपस्थापना/२।
- प्रथम व अन्तिम तीर्थमें ही इसकी प्रधानता थी।
 - सम्बद्धानताया। —दे छेदोपस्थापना/२।
- ४ इसीलिए मिथ्यादृष्टिको सम्भव नहीं ।
- 🗯 । सामायिकचारित्रका स्वामित्व ।
 - **दे**. छेदोयस्थापना/४-७ ।
- सामायिक चारित्रमें सम्भव भाव। दे. संयत/२।
- सामायिक चारित्र व गुप्तिमें अन्तर ।
- ६ सामायिक चारित्र व समितिमें अन्तर ।
- सभी मार्गणाओं में आयके अनुसार व्यय ।
 - -दे मार्वणा
 - सामायिक चारित्रके स्वामियोंकी गुणस्थान, मार्गणा-स्थान, जीवसमास आदि २० प्ररूपणाएँ। —दे. सत्।
 - सामायिक चारित्र सम्बन्धी सत्, संख्या क्षेत्र, स्पर्शन,
 - काल, अन्तर, भाव व अल्पबहुत्वरूप आठ मरूपणार । —दे. वह वह नाम ।
- सामायिक चारित्रमें कर्मोंका बन्ध उदय सन्त ।
 - दे, वह बह नाम ।
- * सामायिक चारित्रमें क्षायोपशमिक भाव कैसे।

- दे. संयत/२।

८. सामायिक सामान्य निर्देश

१, समता व साम्यका लक्षण

ज्ञाः /२४/इलो. नं विदि चिल्लभूणै भिवै रिष्टानिष्टतया स्थितै । न सुद्धाति मनो यस्य तस्य साम्ये स्थिति भवेत ।२। आशाः सद्यो विषदान्ते यान्त्यविद्याः क्षयं क्षणात । त्रियते चित्तभोगीन्द्रो यस्य सा साम्यभावना ।११। अशेवपरपर्यायैरन्यद्रव्यै विलक्षणम् । निश्चिनोत्ति यदासमानं तदा साम्ये स्थितिभवेत ।१७।

हाः./२७/१३-१४ कोधिव द्वेषु सत्त्वेषु निर्दित्रशक्त्रकर्मसु । मधुमांससुरानयस्त्रीलुब्धेव्वरयन्तपापिषु ।१३। देवागमयतिनातिन्दकेव्वारमश्रांसषु । नास्तिकेषु च माध्यस्थ्यं यस्त्रीपेक्षा प्रकीतिता ।१४। ==
जिस पुरुषका मन चिद्र (पुत्र-मित्र-कत्त्रत्ति) और अचिद् (धनधान्यादि) इष्ट-खनिष्ट पदार्थीके द्वारा मोहको प्राप्त नहीं होता उस
पुरुषके ही साम्यभावमें स्थिति होती है ।२। जिस पुरुषके समभावकी
भावना है, उसके आशाएँ तो तत्काल नाश हो जाती हैं, अविद्या
क्षणभरमें क्षय हो जाती है, उसी प्रकार चित्तस्त्री सर्प भी मर जाता
है।११। जिस समय यह आस्मा अपनेको समस्त परदव्यों व उनकी

- पर्यामोंसे भिन्नस्वस्तप निश्चय करता है उसी काल साम्यभाव उत्पन्न होता है 1१७। कोधी, निर्दय, क्रूरवर्मी, मद्य, मांस, मधु व परस्त्रियों-में लुब्ध, अस्यन्त पापी, देव गुरु शास्त्रादिकी निन्दा करनेवाले ऐसे नास्तिकों में तथा अपनी प्रशंसा करनेवालों में माध्यस्थ्य भावका होना उपेक्षा कही गयी है 1१३-१४।
- प्र. सा./ता. वृ./४२/३३६/१० अथ यदेव संयततपोधनस्य साम्यलक्षणं भणितं तदेव शामण्यापरनामा मोक्षमार्गो भण्यते । = [राष्ट्र-मित्र व बन्धु वर्गमें, सुख-दुःखमें, प्रशंसा-निन्दामें, लोष्ट्र व सुवर्णमें, जीवन और मरणमें जिसे समान भाव है वह श्रमण है।२४१। (दे. साधु/ ६/१)] ऐसा जो संयत तपोधनका 'साम्य' लक्षण किया गया है वही श्रामण्यका अपर नाम, 'मोक्षमार्ग' कहा जाता है।
- मो. पा./टी./१०/३४२/१२ आत्मस सर्वजीवेषु समभावः समतापरिणामः, यादशो मोक्षस्थाने सिद्धो वर्तते तादश एव ममात्मा शुद्धबुद्धे कस्व-भावः सिद्धपरमेश्वरसमानः, यादशोऽहं केवलज्ञानस्वभावस्तादश एव सर्वोऽपि जीवराशिरत्र भेदो न कर्त्तव्यः। = अपने आत्मामें तथा सर्व जीवोंमें समभाव अर्थात समता परिणाम ऐसा होता है— 'मोक्षस्थानमें जेसे सिद्ध भगवास् हैं वैसे ही मेरा आत्मा भी सिद्ध परमेश्वरके समान शुद्ध-बुद्ध एक स्वभावी है। और जैसा केवलज्ञान-स्वभावी मैं हूँ वैसी ही सर्व जीव राशि है। यहाँ भेद नहीं करना चाहिए।
- दे. धर्म/१/४/१ [मोह क्षोभ हीन परिणामको साम्य कहते हैं।]
- दे. मोक्षमार्ग/२/६ [परमसाम्य मोक्षमार्गका अपर नाम है ।]
- दे, उपेक्षा-[माध्यस्थ्य, समता, उपेक्षा, वैराग्य, साम्य, निःस्पृहता, वैतृष्ण्य, परम शान्ति, ये सन एकार्थवाची नाम हैं।]
- दे. उपयोग/II/२/१ [साम्या, स्वास्थ्य, समाधि, योग, चित्तनिरोध, शुद्धोपयोग, ये सब एकार्धवाची शब्द हैं। किसी प्रकारकी भी आकृति अक्षर वर्णका विकल्प न करके जहाँ केवल एक शुद्ध चैतन्य मात्रमें स्थिति होती है, वह साम्य है।]

२. सामायिक सामान्यका व्युत्पत्ति अर्थ

- स. सि /७/२१/३६०/७ समेकीभावे वर्तते। तद्यथा संगतं घृतं संगत तंत्रिमःयुच्यते एकीभूतमिति गम्यते। एकत्वेन अयनं गमनं समयः, समय एव सामायिकम्। समयः प्रयोजनमस्येति वा विगृह्य सामा-यिकस्। म्र. 'सम' उपसर्गका अर्थ एक रूप है। जैसे घी संगत है, तेत्र संगत हैं', जब यह कहा जाता है तब संगतका अर्थ एकीभूत होता है। सामायिकमें मूल शब्द 'समय' है जिसका अर्थ है एक साथ जानना व गमन करना अर्थात् आत्मा (दे. समय)—वह समय ही सामायिक है। २. अथवा समय अर्थात् एकरूप हो जाना ही जिसका प्रयोजन है वह सामायिक है। (रा. वा./७/२१/७/५४८/३); (गो. क./जी, प्र./४४७/७१३/१८)
- रा, बा./१/१९/१/६१६/२१ आयन्तीत्यायाः अनर्थाः सत्त्वव्यपरोपण-हेतवः, संगताः आयाः समायाः, सम्यग्वा आयाः समाया-स्तेषु ते वा प्रयोजनमस्येति सामायिकमवस्थानम्। = आय अर्थात् अनर्थ अर्थात् प्राणियोको हिंसाके हेतुभृत परिणाम। उस आय या अनर्थका सम्यक् प्रकारसे नष्ट हो जाना सी समाय है। अथवा सम्यक् आय अर्थात् आत्माके साथ एकीभृत होना सो समाय है। उस समायमें हो या वह समाय हो है प्रयोजन जिसका सो सामायिक है। ताल्पर्य यह कि हिंसादि अन्थोंसे सतर्क रहना सामायिक है।
- चा, सा./१६/१ सम्यगेकत्वेनायनं गमनं सम्यः स्वविषयेभयो विनिवृत्त्य कायवाङ्मनःकर्मणामारमना सह बर्तनाद्रव्यार्थेनात्मनः एकत्व-गमनमित्यर्थः। समय एव सामायिकं, समयः प्रयोजनमस्येति वा

सामायिकम्। ज्याच्छी तरह प्राप्त होना अर्थात् एकान्त रूपसे आत्मामें तहीन हो जाना समय है। मन, वचन, कायकी क्रियाओं-का अपने-अपने विषयसे हटकर आत्माके साथ तहीन होनेसे द्रव्य तथा अर्थ दोनोंसे आत्माके साथ एकरूप हो जाना ही समयका अभिप्राय है। समयको ही सामायिक कहते हैं। अथवा समय ही जिसका प्रयोजन है वह सामायिक है।

गो. जी./जो, प्र./३६७/७-६/१० समस् एकत्वेन खात्मिन आयः आगमनं परद्रव्येभ्यो निवृत्त्य उपयोगस्य आत्मिन प्रवृत्तिः समायः, अयमहं ज्ञाता द्रष्टा चेति आत्मिविषयोपयोग इत्यर्थः, आत्मनः एकस्येव ज्ञेयज्ञायकत्वसभवात्। अथवा सं समे रागद्वेषभ्यामनुपहते मध्यस्ये आत्मिन आयः उपयोगस्य प्रवृत्तिः समायः स प्रयोजनमस्येति सामायिकं। = १. 'सं' अर्थात एकत्वपनेसे 'आय' अर्थात आगमन। अर्थात् परद्रव्योसे निवृत्त होकर उपयोगकी आत्मामें प्रवृत्ति होना। 'यह मैं ज्ञाता द्रष्टा हूँ ऐसा आत्मामें जो उपयोग सो सामायिक है। एक ही आत्माः स्वयं ही ज्ञेय है और स्वयं ही ज्ञाता है, इसिलए अपनेको ज्ञाता द्रष्टाक्तप अनुभव कर सकता है। २, अथवा 'सम' का अर्थ राग-द्रेष रहित मध्यस्थ आत्मा है। उसमें आय अर्थात् उपयोगकी प्रवृत्ति सो समाय है। वह समाय ही जिसका प्रयोजन है, उसे सामायिक कहते हैं। (अन. ध/८/१६/७४२)

३. सामायिक सामान्यके लक्षण

१. समता

मू. आ./१२९.१२२.१२६ जं च समो अप्पाणं परं य माद्र्य सक्तमहिलासु। अप्पियपियमाणादिसु तो समणो सो य सामाइयं ११२१।
जो जाणइ समन्त्रायं दक्त्राण गुणाण पज्जपाणं च। सम्भावं
ते सिद्धं सामाइयं उत्तमं जाणे ११२२। जो समो सक्त्रभूदेसु
समेसु थावरेसु य। जस्स रागो य दोसो य वियक्ति ण
जाणंति दु।१२६। =स्व व परमें राग न द्वेष रहित होना, सन
स्त्रियोंको माताके समान देखना, रात्रु-मित्र, मान-अपमान अविमें सम भाव रखना, ये सन अमणके लक्षण हैं। उसे ही सामायिक
भी जानना ११२१। जो द्रव्यों, गुणों और पर्यायोंके सादृश्यको
तथा उनके एक जगह स्वतः सिद्ध रहनेको जानता है, वह उत्तम
सामायिक है।१२१। त्रस स्थावररूप सर्व प्राणियोंमें समान परिणाम
होना [अर्थात् सन्तको सिद्ध समान शुद्ध जानना दे. सामायिक/१/१]
तथा राग-द्वेषादि भावोंके कारण आत्मामें विकार उरपन्न न होना,
वही परम सामायिक है।१२६।

ध. ८/३,४१/२४/१ सत्तु-मित्त-मणि-पाहाण-सुवण्ण-महियासु राग-वेसा-भावो समदा णाम । = शत्रु-मित्र, मणि-पाषाण और सुवर्ण-मृतिका-में राग-द्वेषके अभावको समता कहते हैं। (चा.सा./६६/१)

छा. ग. भा./प/३१ जीवितमरणे योगे वियोगे विषिये प्रिये । शत्रौ मित्रे सुखे दुःखे साम्यं सामायिकं विदुः ।३१। ∞जीवन व मरणमें, संयोग व वियोगमें, अप्रिय व प्रियमें, शत्रु व मित्रमें, मुख व दुःख में समभावको सामायिक कहते हैं ।३१।

भा, पा./टी./७७/२२१/१३ सामाधिकं सर्वजीवेषु समत्वम् । - सर्व जीवोंमें समान भाव रखना सामाधिक है। (विशेष दे, सामा-धिक/१/१)।

२. राग-द्वेषका त्याग

म्. आ./६२३ रागदोसो जिरोहिता समदा सन्वकम्ममु। मुत्तेमु अ परिजामो सामाइयमुत्तमं जाणे १६२३। = सन कार्योमें राग-द्वेषको छोड़कर समभाव होना और द्वादशांग सूत्रोमें श्रद्धान होना उत्तम सामायिक है।६२३। यो, सा./अ./५/४७ यरसर्वद्रव्यसंदर्भे रागद्वेषव्यपोहनस् । आरम-तत्त्वनिविष्टस्य तरसामायिकमुच्यते ।४७। = सर्वद्रव्योमें राग-द्वेषका अभाव तथा आत्मस्वरूपमें सीनता सामायिक कही जाती है। (अन. ४,/६/५४८)

३. आत्मस्थिरता

नि. सा./मू /१४७ आवासं जइ इच्छसि अप्पसहावेसु कुणदि थिरभावं।
तेण दु सामण्यापुणं संपुष्णं होदि जीवस्स ११४७। —यदि तू आवस्यकको चाहता है, तो आत्म-स्वभावमें स्थिरभाव कर, जिससे
कि जीवोंको सामायिक गुण सम्पूर्ण होता है।१४७।

रा. वा./६/२४/११/४३०/१२ चित्तस्यैकरवेत ज्ञानेन प्रणिधानं वा ।

-एक ज्ञानके द्वारा चित्तको निश्चल रखना सामायिक है। (चा.
सा./४४/४)।

४. सावधयोग निवृत्ति

नि. सा./मू./१२६ विरदो सन्वसावको तिगुत्तो पिहिर्दिक्यो। तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ११२६। — जो सर्व सायवमें विरत है, जो तीन गुप्तिवाला है, और जिसने इन्द्रियोंको मन्द किया है, उसे सामायिक स्थायी है।१२६। (मृ. आ./४२४)।

रा. वा./६/२४/११/१३०/११ तत्र सामायिकं सर्वसावधयोगनिवृत्ति-लक्षणं। - सर्व सावद्य योग निवृत्ति ही सामायिकका सक्षण है। (चा. सा./१६/४)।

प. संयम तप आदिके साथ **पक्**ता

म् आः/११६, १२६ सम्मत्तणाणसंजमतविहि जं तं पस्तथसमगमणं।
समयंतु तं तु भणिदं तमेव सामाइयं जाणे।११६। जस्स सण्णिहिदो
अप्पा संजमे णियमे तवे। तस्स सामायियं ठादि इदि केवलिसासणे
११२६। चसम्यवत्व ज्ञान संयम तप इनके द्वारा जीवकी प्रशस्त
प्राप्ति अथवा उनके साथ जीवकी एकता, वह समय है। उसीको
सामायिक कहते हैं १५१६। (अन. घः/८/२०/७४६) जिसका
आत्मा संयम, नियम व तनमें लीन है, उसके सामायिक
तिष्ठती है।१२६।

६. नित्य नैमित्तिक कर्म व शास्त्र

क. पा /१/२,१/६ ८१/६८/६ सीम्रु वि संभामु पक्तमाससंधिदिणेमु वा सिंगिच्छिदवेसामुवा बदर्भतरं गासेसरथेमु संपरायणिरोहो वा सामाइयं णाम । —तीनों हो सन्ध्याओं में या पक्ष और मासके सिन्धिदनों-में या अपने इच्छित समयमें बाह्य और अन्तरंग समस्त पदार्थों में कषायका निरोध करना सामायिक है।

गो, जी./जी. प्र./३६०/७८६/१२ निरयनै मित्तिकानुष्ठानं तत्प्रतिपादकं शास्त्रं वा सामायिकमित्यर्थः । — नित्य-नै मित्तिक किया विशेष तथा सामायिकका प्रतिपादक शास्त्र भी सामायिक नह- नाता है।

४. द्रव्य क्षेत्रादि रूप सामायिकींके लक्षण

क. पा. १/१-१/६०/१ सामाइयं चउळ्विहं. द्व्वसामाइयं खेल-सामाइयं कालसामाइयं भावसामाइयं चेदि । तथ्य सचित्ताचित-रागदोसिणरोहो द्व्वसामाइयं णाम । णयर-खेट-कव्वड-मडंव-पट्टण-दोर्णमुह-जणवदादिषु रागदोसिणरोहो सगावासिवसयसंपरायणिरोहो वा खेत्तसामाइयं णाम । छउदुविसयसंपरायणिरोहो कालसामाइयं । णिरुद्धासेसकसायस्स वंद्धमिच्छत्त्वस्स णयणिउणस्स छद्व्वविसखो नोहो बाहिवविखां माक्सामाइयं णाम । चद्रव्यसामायिक, क्षेत्र-सामायिक, काससामायिक खेर भावसामायिकके भेदसे सामायिक चार प्रकारका है। उनमेंसे सिमृत्त और अचित्त द्वव्योंमें राग और द्वेषका निरोध करका प्रव्यसामायिक है। ग्राम, नगर, खेट, कर्वट, मडम्ब, पहुन, द्रोणमुख, और जनपद आदिमें राग और द्वेषका निरोध करना अथवा अपने निवासस्थानमें कषायका मिरोध करना क्षेत्र-सामायिक है। वसन्त आदि छः त्रुत्विषयक कषायका निरोध करना अर्थात किसी भी ऋतुमें इष्ट-अनिष्ट बुद्धि न करना कालसामायिक है। जिसने समस्त कषायोंका निरोध कर दिया है तथा मिथ्यात्वका वमन कर दिया है और जो नयोंमें निष्ठण है ऐसे पुरुषको बाधा रहित और अस्खित जो छह द्रव्यविषयक ज्ञान होता है वह भाव-सामायिक है। (गो. जी./जी. प्र./३६७/७८६/१५)।

भ. आ./बि./११६/२०४/पंक्ति—तत्र सामायिकं नाम चतुर्विधं नामस्थापनाद्रव्यभावभेदेन ।१०।..चारित्रमोहनीयारूयं कर्म परिप्राप्तश्चयोपशमानस्थं नोआगमसव्यत्वद्वयितिरक्तकर्म। सामायिकं नाम प्रत्ययसामायिकं। नोआगमभावसामायिकं नाम सर्वसावद्ययोगनिवृत्तिपरिणामः। अयमिह गृहीतः ।२४। = सामायिक चार प्रकारकी है—
नामसामायिक, स्थापनासामायिक, द्रव्यसामायिक, भावसामायिक।
[इन समके लक्षण निक्षेपोंवत जानने। विशेषता यह है कि] स्थापशमरूप अवस्थाको प्राप्त हुए चारित्रमोहनोय कर्मको जो कि सामायिकके प्रति कारण है वह नोआगमद्रव्य तद्वयतिरिक्त सामायिक
है। सम्पूर्णसावद्य योगोंसे विरक्त ऐसे आत्माके परिणामको नो
आगमभावसामायिक कहते हैं। यही सामायिक प्रकृत विषयमैं
प्राह्म है।

अन, ध,/८/१८-३६/७४२ नामस्थापनयोर्द्धन्यक्षेत्रयोः कालभावयोः । पृथ-ग्निक्षिष्य विधिवस्साध्याः सामाधिकादयः ।१८। शुभेऽशुभे वा केनापि प्रयुक्ते नास्नि मोहतः।स्त्रमवाग्लक्षणं पश्यन्नरतिं यामि नारतिम् ।२१६ यदिदं स्मरयत्यची न तदप्यस्मि कि पुनः। इदं तदस्यां सुस्थेति घोरसुस्थेति वा न मे ।२२। साम्यागमज्ञतह्वेही तद्विपक्षी च याहशी। तास्शौ स्ता परद्रवये को में स्वद्रव्यवद्वप्रहः ।२३। राजधानीति न प्र'ये नारण्यनीति चोद्विजे । देशो हि रम्योऽरम्यो वा नात्मरामस्य कोऽपि मे ।२४। नामूर्त त्वाद्धिमाचारमा कालः कि तहि पुद्दगलः । क्षयोपचयेते सूर्तस्तस्य स्पृश्यो न जात्बहृम् ।२४। सर्वे वैभाविका भावा मत्तोऽन्ये तेष्वतः कथम् । चिच्चमत्कारमात्रातमा प्रीत्यप्रीती तनोम्यहम्।२६१ जीविते मरणे लाभेऽलाभे योगे विपर्यये । बन्धावरी मुखे दृःखे साम्य-मेवाभ्युपैम्यहम् ।२७। मैत्री मे सर्वभूतेषु वैरं मम न केनचित्। सर्वसावद्यविरतोऽस्मीति सामायिकं श्रयेत् ।३६। ≕नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन छह निक्षेपोंपर सामायिकादि षर् आवश्यकोंको घटित करके व्याख्यान करना चाहिए ।१८। किसी भी शुभ या अशुभ नाममें अथवा यदि कोई मेरे विषयमें ऐसे शब्दोंका प्रयोग करे तो उनमें रित या अरित नहीं करनी चाहिए, क्योंकि शब्द मेरा स्वरूप या लक्षण नहीं है। ११। यह जो सामने वाली प्रतिमा मुफे जिस अईन्तादिरूपका स्मरण करा रही है, मैं उस मूर्तिरूप नहीं हूँ, क्योंकि मेरा साम्यानुभव न तो इस मुर्तिमें ठहरा हुआ है और न ही इससे विपरीत है। (यह स्थापना सामायिक है)।२२। सामायिक शास्त्रका ज्ञाता अनुपयुक्त आत्मा और उसका शरीर तथा इनसे विपक्ष (अर्थात् आयम नोआएम भाविनोआएमव तहचित्रिक्त आदि) जैसे कुछ भी सुभ या अशुभ है, रहें, मुफे इनसे क्या; क्यों कि ये परद्रव्य हैं। इनमें मुभे स्वद्रव्यकी तरह अभिनिवेश कैसे हो सकता है। (यह द्रव्य सामायिक है)।२३। यह राजधानी है, इस लिए मुक्ते इससे प्रेम हो और यह अरण्य है इसलिए मुक्ते इससे द्वेष हो-ऐसा नहीं है। क्यों कि मेरा रमणीय स्थान आत्मस्वरूप है। इसलिए मुक्ते कोई भी बाह्यस्थान मनोज्ञ या अमनोज्ञ नहीं हो सकता। (यह **क्षेत्रसामायिक है) ।२**४१ काल द्रव्य तो अमूर्त है, इसलिए हेमन्तादि ऋतु ये काल नहीं हो सकते, अखिक पुद्दगलको उन-उन पर्यायों में कालका उपचार किया जाता है। मैं कभी भी उसका स्पर्श्य नहीं हो सकता क्यों कि मैं अमुर्त व चित्स्वरूप हूँ। (यह कालसामायिक है।)।२४। औदधिकादि तथा जीवन मरण आदि ये सन वैभाजिक

भाव मेरे भाव नहीं हैं; क्योंकि मुफसे अन्य हैं। अतएव एक चिच-मृत्कार मान्न स्वरूपवाला में इनमें रागद्वेषादिकों कैसे प्राप्त हो सकता हूँ ।२६। जोवन-मरणमें, लाभ-अलाभमें, संयोग-वियोगमें, मिन्न-रान्तुमें, मुख-दुःखमें इन सबमें में साम्यभाव धारण करता हूँ ।२०। सम्पूर्ण प्राणियों में मेरा मेन्नीभाव हो, किसीसे भी मुक्ते वैर न हो। मैं सम्पूर्ण सावदासे निवृत्त हूँ। इस प्रकारके भावोंको धारण करके भावसाम। यिक पर आरुढ़ होना चाहिए।३६।

गो. जी. प्र./३६७/७८६/१३ तच नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावभेदारषड्विधम्। तत्र इष्टानिष्टनामसु रागद्वेषनिवृत्तिः सामायिकमित्यभिधानं वा नामसामायिकम्। मनोज्ञासनोज्ञासु स्त्रीपुरुषाधाकारासु
काष्ठलेण्यिचित्रादिप्रतिमासु रागद्वेषनिवृत्ति इदं सामायिकमिति
स्थाप्यमानं यत् किंचिद्वस्तु वा स्थापनासामायिकस्। — नाम,
स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावके भेदसे सामायिक छह प्रकारकी
है। तहाँ इष्ट व अनिष्ट नामोंमें रागद्वेषकी निवृत्ति अथवा 'सामायिक'
ऐसा नाम कहना सो नामसामायिक है। मनोज्ञ व अमनोज्ञ स्त्रीपुरुष आदिकके अकारोंमें अथवा उनको काष्ठ, लेप्य, चित्र आदि
प्रतिमाओंमें रागद्वेषकी निवृत्ति स्थापना सामायिक है। अथवा
'यह सामायिक है' इस प्रकारसे स्थापी गयी कोई वस्तु स्थापना
सामायिक है। काल द्रव्य व भाव सामायिकके सक्षण सन्दर्भ नं.
१ वत् हैं।]

२. सामायिक विधि निर्देश

१. सामायिक विधिके सात अधिकार

का. अ./मू./३६२ सामाइयस्स करणे खेतं कालं च आसणं विलखो।
मण-वयण-काय-सुद्धी णायव्वा हुंति सत्तेव। —सामायिक करनेके लिए
क्षेत्र, काल, आसन, विलय, मनः शुद्धि, वचनशुद्धि और कायशुद्धि, ये
सात बातों जाननी चाहिए (और भी दे. शीर्षक नं. ३)।

२, सामायिक योग्य काल

का. अ./म्./३६४ पुन्न०हे मज्फण्हें अवरण्हे तिहि नि णालिया-छक्षो । सामाइयस्स कालो सनिणय-णिस्सेस णिहिट्ठो ।३६४। — निनय संयुक्त गणधरदेव आदिने पूर्वाह, मध्याह और अपराह इन तीनों कालों में छह छह घटो सामाधिकका काल कहा है ।३६४। (और भी दे. सामाधिक/२/३ तथा ३/२)।

३, सामायिक विधि

र, क. श्रा./१३६ चतुरावर्त्तितयरचतुः प्रणामस्थितो यथाजातः ।
सामायिको द्विनिषद्यास्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमियनदी ।१३६। = जो
चार दिशाओं में तीन-तीन आवर्त करता है, जार दिशाओं में चार
प्रणाम करता है, कायोत्सर्गमें स्थित रहता है, अन्तरंग महिरंग
परिग्रहकी चिन्तासे परे रहता है, खड्गासन और पद्मासन इन दो
आसनों में से कोई एक आसन संगाता है, मन वचन कायके व्यापारको
शुद्ध रखता है और त्रिकाल (पूर्वाह, मध्याह और अपराह,) बन्दना
करता है वह सामायिक प्रतिमाधारी है।१३६। (का. अ./पू./३७)
(चा. सा./३७/२)।

वसु, शा./२०४-२०६ हो ऊण सुई चेह्य गिहिम्म सगिहे व चेह्या-हिसुहो। अ॰णस्थ सुइपएसे पुठवसुहो उत्तरसुहो वा ।२०४। जिणस्यण-धम्म-चेह्य-परमेट्ठ-जिणालाण णिचचंपि। जं बंदणं तियालं कीरई सामाइयं तं खु ।२०६। = स्नान आदिसे शुद्ध होकर चैत्यालयमें अथवा अपने ही घरमें प्रतिमाके सम्मुख होकर, अथवा अन्य पवित्र स्थानमें पूर्वमुख या उत्तर सुख होकर जिनवाणी, जिनधर्म, जिन-बिम्ब, पंच परमेष्ठी और कृतिम अकृतिम जिनालयोंकी जो निख त्रिकात बन्दना की जातो है वह सामाधिक नामका तीसरा प्रतिमा स्थान है।

दे, सामायिक/३/१/२ (केश, हाथको मुट्ठी व वस्त्रादिको नाँवकर, क्षेत्र व कालको सोमा करके, सर्वसावद्यसे निवृत्त होना सामायिक प्रतिमाहि ।]

४. सामायिक योग्य आसन मुद्रा क्षेत्रादि

दे. कृतिकर्म/३ पर्वयंकासन या कायोदसर्ग आसन इन दो आसनोंसे की जाती है। कमर सीघी व निश्चय रहे, नासाय दृष्टि हो, अपनी गोदमें बायें हाथके ऊपर दाहिना हाथ रखा हो, नेत्र न अधिक खुने हों न मुँदै, निद्धा-आलस्य रहित प्रसन्न बदन हो, ऐसी मुद्रा सहित करें। शुद्ध, निर्जीव व छिद्र रहित भूमि, शिला अथवा तखते मयी पीठपर करें। गिरिकी गुफा, वृशको कोटर, नदीका पुल, श्मशान, जीर्णोचान, श्रून्थागर, पर्वतका शिखर, सिद्ध क्षेत्र, चेश्यालय आदि शान्त व उपद्रव रहित क्षेत्रमें करें। वह क्षेत्र शुद्ध जीवोंकी अथवा गरमी सदीं आदिको बाधाओंसे रहित होना चाहिए। स्त्री, पाखण्डी, तिर्यच, भूत, वेताल आदि, व्याध, सिंह आदि तथा अधिक जन संसर्गसे दूर होना चाहिए। निराकुल होना चाहिए। पूर्व या उत्तर दिशाकी और मुख करके करनी चाहिए। इव्य, क्षेत्र, काल व भावकी तथा मन वचन कायको शुद्धि सहित करनी चाहिए। (और भी दे, सामायिक/१/३)।

५. सामायिक योग्य ध्येय

- र, क. था./१०४ अशरणमशुभमिनत्यं दुःखमनात्मानमावसामि भवं।
 मोक्षस्तिद्विपरीतास्मेति ध्यायन्तु सामयिके।१०४। मो अशरणरूप,
 अशुभरूप, अनित्य, दुःखमय और परस्तप संसारमें निवास करता
 हूँ। और मोक्ष इससे विपरीत है, इस प्रकार सामायिकमें ध्यान
 करना चाहिए।१०४। (और भी दे, ध्येय)।
- का. अ./म./३७२ चितंतो सस्तवं जिणविंबं अहव अक्खरं परमं।
 भायदि कम्मविवायं तस्स वर्य होदि सामइयं १३७२। = अपने
 स्वरूपका अथवा जिनविम्बका, अथवा पंच परमेष्ठीके वाचक
 अक्षरोंका अथवा कर्मविपाकका (अथवा पदार्थोंके यथावस्थित
 स्वरूपका, तीनों लोकका और अक्षरण आदि वैराग्य भावनाओंका)
 चिन्तवन करते हुए ध्यान करता है उसके सामायिक प्रतिमा होती
 है। ३७२। (विशेष दे ध्येय)।
- दे, सामाधिक/२/३ [जिनवाणी, जिनबिम्ब, जिनधर्म, पंच परमेष्ठी तथा कृतिम और अकृत्रिम चैत्यालयका भी ध्यान किया जाता है।]
- दे. सामायिक/३/२ [पंच नमस्कार मन्त्रका, प्रातिहार्य सहित अईन्तके स्वरूपका तथा सिद्धके स्वरूपका ध्यान करता है।]

६. उपसर्ग आदिमें अचल रहना चाहिए

र. क. आ./१०३ शीतोष्ण हंशमशकपरिषह्मुपसर्गमपि च मौनधराः । सामायिकं प्रतिपत्ना अधिकुर्वीरन्नचलयोगाः ११०३। =सामायिकको प्राप्त होनेवाले मौनधारी अचलयोग होते हुए शीत उष्ण डांस मच्छर आदिकी परीषहको और उपसर्गको भी सहन करते हैं।१०३। (चा. सा./१६/३)।

३. सामायिक वृत व प्रतिमा निर्देश

सामायिक व्रतके लक्षण

- समता भारण व आर्तरीद्र परिणामीका त्याग
- पं.वि. ६/- समता सर्वभूतेषु संयमे शुभभावना । आर्तरौद्रपरित्यागस्ति द्व सामायिकं वतस् । । = सन प्राणियों में समता भान (दे. सामायिक/१/१) धारण करना, संयमके विषयमें शुभ विचार रखना, तथा आर्त एवं रौद्र ध्यानोंका स्याग करना, इसे सामायिक नद्व माना है। । ।
 - २. अवधृत कालपर्यन्त सर्व सावद्य निवृत्ति
- र, क. शा./१७-१८ आसमयमुक्तिमुक्तं पञ्चाधानामरोषभावेन। सर्वत्र च सामयिकाः सामायिकं नाम शंसन्ति ।१७। मूर्धरहमुष्टिवासोबन्धं पर्यकन्धनं चापि। स्थानमुपवैशनं वा समयं जानन्ति समयज्ञाः ११६। = मन, वचन, काय, तथा कृत कारित अनुमोदना ऐसे नव-कीटिसे की हुई मर्यादाके भीत्र या बाहर भी किसी नियत समय (अन्तर्मृहूर्त) पर्यन्त पाँचों पापोंका त्याग करनेको सामायिक कहते हैं।१७। ज्ञानी पुरुष चोटीके बाल मुट्ठी व नस्त्रके बाँधनेको तथा पर्यक् आसनसे या कायोत्सर्ग आसनसे सामायिक करनेको स्थान व उपवेशनको अथवा सामायिक करने योग्य समयको जानते हैं।१८। (विशेष दे, सामायिक ।२। व सामायिक ।३।४); (चा. सा./११/३); (सा. ध/४/२८)।
- स.सि./७/१/३४३/६ सर्वसावचितिवृत्तिलक्षणसामायिक। स्तर्व सावधः की तिवृत्ति ही है लक्षण जिसका ऐसा सामायिक वृत (यद्यपि सामायिककी अपेक्षा एक है पर छेदोपस्थापनाकी अपेक्षा १ है। दे. छेदोपस्थापना)।

२. सामायिक प्रतिमाका रूक्षण

- वसु. शा,/२०६-२७० काउसग्गम्हि ठिओ लाहालाहं च सत्तृमित्तं च ।
 संयोय-विष्पजोयं तिणकंचणं चंदणं वासि ।२७६। जो ५स्सइ समभावं
 मणम्मि धरिऊण पंचणवयारं । वरअट्ठपाडिहेरेहिं संजुयं जिलसरूवं
 च ।२७०। सिद्धसरूवं फायइ अहवा फाणुत्तमं ससंवेयं । खणमेवकमिवचलंगो उत्तमसामाइयं तस्स ।२००। जो शावक कायोत्सर्गमें
 स्थित होकर लाभ-अलाभको, शत्रु-मित्रको, इष्टवियोग व अनिष्टसंयोगको, तृण-कंचणको, चन्दन और कुठारको समभावसे देखता है,
 और मनमें पंच नमस्कार मन्त्रको धारण कर उत्तम अष्ट शितहायींसे संयुक्त अर्हन्तिजनके स्वरूपको और सिद्ध भगवान्के स्वरूपको
 ध्यान करता है, अथवा संवेग सिहत अविचत्त अंग होकर एक क्षणको
 भी उत्तम ध्यान करता है उद्धको उत्तम सामायिक होती है।२७६२७८। (विशेष दे. सामायिक/२/३)।
- द्र. सं/टी./४६/१६५/६ त्रिकालसामायिके प्रवृत्तः तृतीयः । ज्ञान (पूर्वाह्न, मध्याह न अपराह्न) ऐसी त्रिकाल सामायिकमें प्रवृत्त होता है तन तीसरी (सामायिक) प्रतिमाधारी होता है।
- सा.घ./७. स्ट म्हानेत्तरगुणयामाध्यासिवशुद्धधीः। भजंस्त्रिसन्ध्यं कृच्छ्र ५ साम्यं सामायिकीभवेत् ११। = जिस श्रावककी बुद्धि निरितिचार सम्यग्दर्शन, निरितिचार मृत्तगुण और निरितिचार उत्तर गुणोंके समृहके अध्याससे विशुद्ध है, ऐसा श्रावक प्रवृक्ति, मध्याह व अपराह इन तीनों कालों में परीषह उपसर्ग उपस्थित होनेपर भी साम्य परिणामको धारण करता है, वह सामायिक प्रतिमोधारी है।१।

Jain Education International

- दे. सामाधिक/२/३ [आवर्त, व नमस्कार आदि योग्य कृतिकर्म युक्त होकर पूर्वाह्न, मध्याह्न, व अपराह्न इन तीन सन्ध्याओं में क्षेत्र व कालकी सीमा बाँधकर जो पंच परमेष्ठी आदिका या आत्मस्वरूपका चिन्तवन करता है वह सामाधिक प्रतिमाधारी है।]
- चा.सा./३७/१ सामाधिकः सन्ध्यात्रयेऽपि भुवनत्रयस्वामिनं वन्दमानो बक्ष्यमाणव्युत्सर्गतपिस कथितक्रमेण। —सामाधिक सवेरे दोपहर और शाम तीनों समय करना चाहिए और वह तीनों लोकोंके स्वामी भगवान् जिनेन्द्रदेवको नमस्कारकर आगे जो व्युत्सर्ग नामका तपश्चरण कहेगे उसमें कहे हुए क्रमके अनुसार अर्थात् कायोरसर्ग करते हुए करना चाहिए।

३. सामायिक वत व प्रतिमामें अन्तर

- चा. सा. / ३७ / ३ अस्य सामायिकस्यानन्तरोक्तशीलसप्तकान्तर्गतं सामायिकवतं शीलं भवतीति । चपिहले वत प्रतिमामें १२ वर्तोके अन्तर्गत सात शीलवतीं सामायिक नामका वत कहा है (दे. शिक्षा वत) वही सामायिक इस सामायिक प्रतिमा पालन करनेवाले आवकके वत हो जाता है जब कि दूसरी प्रतिमावालेके वही शील रूप (अर्थात् अभ्यासरूपसे) रहता है। (सा. ध /७/६)।
- चा, पा./दी./२६/१६/१६ दिनं प्रति एकवारं द्विवारं त्रिवारं वा व्रतप्रति-भायां सामायिकं भवति । यत्त् सामायिकप्रतिभायां सामायिकं प्रोक्तं तत्त्रीत् वारात् निश्चयेन करणीयमिति ज्ञातव्यं । च्वत प्रतिमामें एकवार दोवार अथवा तीनबार सामायिक होती है (कोई नियम नहीं है) जब कि सामायिक प्रतिमामें निश्चयसे तीनवार सामायिक करने योग्य है ऐसा जानना चाहिए।
- ला.सं./७/४-८ ननु वतप्रतियायामेतत्सामायिकव्यतम् । तदेवात्र तृतीयायां प्रतिमायां तु कि पुनः ।४। सत्यं किन्तु विशेषोऽस्ति प्रसिद्धः परमागमे। सातिचारं तु तत्र स्यादत्रातीचारविवर्जितम्। १। किंच तत्र त्रिकालस्य नियमो नास्ति देहिनाम्। अत्र त्रिकालनियमो मुनेमूलगुणादिवत् ।६। तत्र हेतुवशात्ववापि कुर्यात्कुर्यान्त वा ववस्तित् । सातिचारवतस्वाद्वा तथापि न व्रतक्षतिः । ७। अत्रावश्यं त्रिकालेऽपि कार्यसामायिकं जगत । अन्यथा वतहानिः स्यादतीचारस्य का कथा ।= प्रश्न — यह सामायिक नामका वत वतप्रतिमामें कहा है, और वहीं वत इस तीसरी प्रतिमार्ने वतलाया है। सो इसमें क्या विशेषता है ! ।४। उत्तर—ठीक है, जो 'सामायिक' वत प्रतिमामें है बही तीसरी प्रतिमामें है, परन्तु उन दोनोंमें जो विशेषता है, वह आगममें प्रसिद्ध है। वह विशेषता यह है कि १. व्रतप्रतिमाकी सामायिक सातिचार है और सामायिक प्रतिमाकी निरतिचार १६। (दे, आगे इस वतके अतिचार)। २. दूसरी बात यह भी है कि वत प्रतिमामें तीनों काल सामायिक करनेका नियम नहीं, जब कि सामायिक प्रतिमामें मुनियोंके मुलगुण आदिकी भाँति तीनों काल करनेका नियम है। ६। ३. बत प्रतिमावाला कभी सामायिक करता है और कारणवद्य कभी नहीं भी करता है, फिर भी उसका बत भंग नहीं होता, वयों कि वह इस बतको सातिचार पालन करता है। ७। परन्तु तीसरी प्रतिमामें शावकको तीनों काल सामायिक करना आवश्यक है, अन्यथा उसके बतको क्षति हो जाती है, तन अतिचारकी तो बास ही क्या १ । ८।
- दे सामायिक/३/१,२ [सामायिक वतका लक्षण करते हुए केवल उसका स्वरूप ही बताया है, जब कि सामायिक प्रतिमाका लक्षण करते हुए उसे तीन बार अवस्य करनेका निर्देश किया गया।
- दे.सामायिक/२/३ [आवर्त आदि कृति कर्म सहित सामायिक करनेका निर्देश सर्वत्र सामायिक प्रतिमाके प्रकरणमें किया है, सामायिक नामक शिक्षा व्रतके प्रकरणमें नहीं !]

४. सामायिकके समय गृहस्थ मी साधु तुल्य होता है।

- म्,आ,/४३१ सामाइम्हि दु कदे समधी वि सावओ हवदि जम्हा। एदेण कारणेण दु बहुसी सामाइयं कुल्जा। सामायिक करता हुआ श्रावक भी संयमी मुनिके समान हो जाता है, इसलिए बहुत करके सामायिक करनी चाहिए १६३१।
- र. क. शा./१०२ सामाधिके सारम्भाः परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि। चेलोपसृष्ठमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावं।१०२१ = सामाधिकमें आरम्भ सहितके सब ही प्रकार नहीं होते हैं। इस कारण उस समय गृहस्थ भी उस मुनिके तुक्य हो जाता है जिसे कि उपसर्गके रूपमें वस्र ओढ़ा दिया गया हो।१०२।
- स,सि./७/२१/३६०/१ इयित देशे एतावित काले इत्यवधारित सामायिके स्थितस्य महावत्त्वं पूर्वबद्दवेदितव्यम्। कृतः। अणुस्थूलकृतिहसादिन्निकृतेः। = इतने देशमें और इतने काल तक इस प्रकार निश्चित की गयी सीमामें, सामायिकमें स्थित पुरुषके पहिलेके समान (दे. दिग्वत) महावत जानमा चाहिए, क्योंकि इसके सूक्ष्म और स्थूल दोनों प्रकारके हिंसा आदि पापोंका त्याग हो जाता है। (रा.वा./७/२१/२१/४४/२२); (गो.क./गो.प्र./४४७/०१३/१)।
- पु.सि.उ./११० सामायिकश्रितानां समस्तसावद्ययोगपरिहारात्। भवति महाब्रतमेषासुदयेऽपि चारित्रमीहस्य। = इन सामायिक दशाको प्राप्त हुए श्रावकोंके चारित्र मोहके उदय होते भी समस्त पापके योगोंके परिहारसे महाव्रत होता है।१४०।
- चा.सा./१६/४ हिंसादिभ्यो विषयकषायेभ्यश्च विनिवृत्त्य सामायिके वर्तभानो महावती भवति । ⇒विषय और कषायोंसे निवृत्त होकर सामायिकमें वर्तभान गृहस्थ महावती होता है।
- का, अ /१६६५-३६७ बंधिता पर्जंकं अहवा उड्ढेण उद्भक्षो ठिच्चा।
 कालपमाणं किच्चा इंदिय-वाबार-विज्ञदो होउं १३६६। जिणवयणेयग्ग-मणो संबुड-काओ य अंजिल किच्चा। स-सरूवे संलीणो वंदणअत्थ विचितंतो।३६६। किच्चा देसपमाणं सञ्च सावज्ज-विज्ञदो
 होउं। जो कुव्वदि सामइयं सो मुणि-सिरसो हवे ताव १३६७ =
 पर्यंक आसनको बाँधकर अथवा सीधा खड़ा होकर, कालका प्रमाण
 करके (दे, सामायिक/३/१) इन्द्रियोके व्यापारको छोड़नेके लिए
 जिनवचनमें मनको एकाय करके, कायको संकोचकर, हाथको अंजिल
 करके, अपने स्वरूपमें लीन हुआ अथवा वन्दना पाठके अर्थका
 चिन्तवन करता हुआ, क्षेत्रका प्रमाण करके और समस्त सावय
 योगको छोड़ कर जो शावक सामायिक करता है वह मुनिके समान
 है १३६५-३६७।

प. साधु तुल्य होते हुए भी वह संयत नहीं

स. सि./७/२१/३६०/१० संयमप्रसङ्घ इति चेतः; नः तद्धातिकर्मोदय-सद्भावातः महावताभाव इति चेतः। तन्न, उपचाराद्ध राजकुले सर्वगत-चेनाभिधानवदः। =प्रश्न-यदि ऐसा है (अर्थात् यदि सामायिक में स्थित गृहस्थ भी महावती कहा जायेगा) तो सामायिकमें स्थित हुए पुरुषके सकल संयमका प्रसंग प्राप्त होता है ! उत्तर-नहीं, क्योंकि, इसके संयमका घात करनेवाले कर्मोंका उदय पाया जाता है : प्रश्न-तो फिर इसके महावतका अभाव प्राप्त होता है ! उत्तर-नहीं, क्योंकि, जैसे राजकुलमें चेन्नको सर्वगत उपचारसे कहा जाता है उसी प्रकार यहाँ महावत उपचारसे जानना चाहिए। (रा. वा./७/२१/२४-२४/५४६/२४); (चा. सा./१६/४); (गो. क./ जी, प्र/५४७/७१४/१)।

६. सामायिक वतका प्रयोजन

र. क. श्रा./१०१ सामायिकं प्रतिदिवसं यथावद्य्यनलसेन चेत्रव्यं। व्रत-पञ्चकपरिपूर्णकारणमवधानयुक्तेन १९०१। = सामायिक पाँच महावतींके

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

परिपूर्ण करनेका कारण है. इसलिए उसे प्रतिदिन हो आलस्यरहित और एकाग्रवित्तसे यथानियम करना चाहिए।

दे. सामायिक/३/४ - [सामायिक वतसे मुनि वतकी शिक्षाका अभ्यास होता है ।]

७. सामायिक व्रतका महत्त्व

- ज्ञा /१४/रतो. साम्यभावितभावानां स्यारमुखं यन्मनीविणाम् । तन्मन्ये ज्ञानसाम्राज्यसमस्वमवलम्बते ।१४। शास्यन्ति जन्तवः कूरा बद्धवैराः परस्परम् । अपि स्वार्थे प्रवृत्तस्य मुनेः साम्यप्रभावतः ।२०। क्षुभ्यन्ति ग्रह्मक्षकिन्नरनरास्तुष्यन्ति नाकेश्वराः, मुञ्चन्ति द्विपदैरमसिह्शर-भन्यालादयः क्रूरताम् । रुग्बैरप्रतिबन्धविभ्रमभयभूष्टं जगज्जायते, स्याद्योगीन्द्रसमत्वसाध्यमथवा कि कि न सद्यो भुवि । २४। 🗕 साम्य-भावसे पदार्थीका विचार करने वाले बुद्धिमान पुरुषोंके जो सुख होता है सो मैं ऐसा मानता हूँ कि वह ज्ञानस।ब्राज्य (केवलज्ञान)की समताको अवसम्बन करता है अर्थात् उसके समान है।१४। इस साम्यके प्रभावसे अपने स्वार्थमें प्रवृत्त मुनिके निकट परस्पर वैर करनेवाले क्रूर जीव भी साम्यभावको प्राप्त हो जाते हैं।२०। समभाव-युक्त योगीश्वरोंके प्रभावसे प्रह यक्ष किन्तर मनुष्य ये सब क्षोभको प्राप्त नहीं होते हैं और इन्द्रगण हिष्त होते हैं। शत्रु, दैत्य, सिंह, अष्टापद, सर्प इरवादि ऋर प्राणी अपनी ऋरताको छोड़ देते हैं, और यह जगत रोग, वैर, प्रतिबन्ध, विभ्रम, भय आदिकसे रहित हो जाता है। इस पृथियोमें ऐसा कौन-सा कार्य है, जो योगीश्वरोंके समभावोंसे साध्य न हो ।२४।
- दे, सामाधिक/३/४ [सामाधिक कालमें गृहस्थ भी साधु शुक्य होता है।)
- वे. सामायिक/४/३ [एक सामायिकमें सकत वत गर्भित हैं ।]

८. सामायिक वतके अतिचार

त. सू./%। स्योगदुष्प्रणियानानादरसमृत्यनुपस्थानानि । १३। काय-योगदुष्प्रणिधान, वचनयोगदुष्प्रणिधान, मनोयोगदुष्प्रणिधान, अनादर और स्मृतिका अनुपस्थान ये सामाधिक व्रतके पाँच अतिचार हैं । १३। (र. क. व्रा./१०५); (चा. सा./२०/३); (सा. ध./६/३३)।

४. सामायिक चारित्र निर्देश

१. सामायिक चारित्रका लक्षण

१. रागद्वेषादिसे निवृत्ति व समता

- यो. सा./यो /१६-१०० सक्वे जीवा णाणमया जो समभाव मुणेइ। सो सामाइय जाणि फुडु जिगवर एम भणेइ।१६। राघरोस वि परिहरिवि जो समभाउ मुणेइ। सो सामाइय जाणि फुडु केवलि एक भणेइ।१००। —समस्त जीवराशिको ज्ञानमयी जानते हुए उसमें समता भाव रखना (अर्थात् सबको सिद्ध समान शुद्ध जानना—दे, सामा-यिक/१/१) अथवा रागद्वेषको छोड़कर जो समभाव होता है, वह निश्चयसे सामायिक है।१६-१००। (द्र. सं./टी./१४/१४)
- इ. सं./टो./३५/१४०/० स्वशुद्धात्मानुभूतिवलेनार्तरौद्रपरित्यागरूपं वा, समस्तमुखदुःसादि मध्यस्थरूपं वा। = स्व शुद्धात्माकी अनुभूतिके वलसे आर्तरौद्रके परित्यागरूप अथवा समस्त मुख दुःख आदिमें मध्यस्थभाव रखनेह्रप है।

२. रत्नत्रयमें एकाग्रता

स. सा /आ /१५४ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वभावपरमार्थभृतज्ञानभवन-मात्रेकाम् यलक्षणं समयक्षारभूतं सामायिकं प्रतिज्ञायापि ।…। = सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वभाववाला परमार्थभृत जो ज्ञान, उसकी भवनमात्र अथित परिणमन होनेमात्र जो एकायता, वह ही जिसका सक्षण है, ऐसी समय-सारस्वरूप सामायिककी प्रतिज्ञा सेकरके भीः।।

३. सर्व सावद्य निवृत्ति रूप सक्क संयम

- दं. सं./पा./१/१२६ संगहिय-सयलसंजममेयजमणुत्तरं दुरवगम्मं। जीवो समुन्वहंतो सामाइयसंजवो हो इ।१२६। = जिसमें सकल संयम संगु-होत्त हैं, ऐसे सर्वसावद्यके त्यागरूप एकमात्र अनुत्तर एवं दुःखगम्य अभेद संयमको धारण करना, सो सामायिकसंयम है और उसे धारण करनेवाला सामायिक संयत कहलाता है। (ध.१/१,१,१२३/गो.१८७/३७२); (रा. वा./६/९८/२/६१६/२८); (ध.१/१,१,१२३/३६/२८); (गो. जो./मू./४७०/८०६)।
- स्ति, १८/१८१६/६ सामायिकमुक्तम् । वन । 'दिग्देशानर्थदण्डविरति-सामायिक'— इत्यत्र । — सामायिक चारित्रका कथन पहिले दिग्देश आदि बतींके अन्तर्गत सामाधिक ब्रतके नामसे कर दियागया है कि [सर्व सावद्य योगकी निवृत्ति सामायिक है—(दे. सामायिक/ ३/१)]।

२. नियत व अनियतकाळ सामायिक निर्देश

- स.स./१/९८/४२६/३ तह द्विविधं नियतकालमनियतकालं च । स्वाध्या-यपदं नियतकालस् । ईर्यापथाद्यनियतकालस् । = १ -- वह सामायिक चारित्र दो प्रकारका है -- नियतकाल व अनियतकाल । (त. सा./ ६/४४) : (चा. सा./११/२) । २ -- स्वाध्याय आदि [कृतिकर्म पूर्वक आसन आदि लगाकर पंच परमेष्ठी आदिके स्वरूपका या निजारमाका चिन्तवन करना (दे. सामायिक/२)] नियतकाल सामायिक है और ईर्यापथ आदि अनियतकाल सामायिक है।
- रा. वा,/१/१८/२/६१६/२८ सर्वस्य सावद्ययोगस्याभेदेन प्रत्याख्यानमव-सम्बय प्रवृत्तमवधृतकालं वा सामायिकमित्याख्यायते। = सर्व सावद्य योगीका अभेदरूपसे सार्वकालिक त्याग करना अनियत काल सामायिक है और नियत समयतक त्याग करना सो नियतकाल सामायिक है।
- नोट—[यद्यपि चा, सा, में ब्रतके प्रकरणमें सामायिकके ये दो भेद किये हैं। पर वहाँ लक्षण नियतकाल सामायिकका ही दिया है, अनियत काल सामायिकका नहीं। इसलिए दो भेद सामायिक चारित्रके ही हैं, सामायिकवतके नहीं, क्योंकि अभ्यस्त दशामें रहनेके कारण गृहस्थ या अणुवती आवक सार्वकालिक समता या सर्वसावदासे निवृत्ति करनेको समर्थ नहीं है।

सामायिक चारित्रमें संयमके सम्पूर्ण अंग समा जाते हैं

घ. १/१,१,१२३/३६१/१ आसिप्तारोष स्विमित सामान्यमिति कुतोऽव-सीयत इति चेत्सर्वसावद्ययोगोपादानात्। नह्योकस्मित् सर्वशब्दः प्रवर्तते विरोधाद। स्वान्तभी विताशेष संयम विशेष कयमः सामायिक-सुद्धिसं यमः इति यावत्। ... सकल वताना मेकरवमापाद्य एक यमो-पादानाइ द्रव्याधिक नयः। — प्रश्न—यह सामान्य संयम अपने सम्पूर्ण भेदों का संग्रह करने वाला है, यह कैसे जाना जाता है। उत्तर—'सर्वसावद्ययोग' पदके ग्रहण करने से ही, यहाँपर अपने सम्पूर्ण भेदों का सग्रह कर लिया गया है, यह बात जानी जाती है। यदि यहाँपर स्वमके किसी एक भेदकी ही मुख्यता होती तो 'सर्व' शब्दका प्रयोग नहीं किया जा सक्ताथा, क्योंकि, ऐसे स्थलपर 'सर्व' शब्दके प्रयोग करने में विरोध आता है। इस कथनसे यह सिद्ध हुआ कि जिसने सम्पूर्ण संयमके भेदों (बत समिति गुप्ति आदिको) अपने अन्तर्गत कर लिया है ऐसे अभेदरूपसे एक यमको धारण करने वाला जीव सामाग्रिक-शुद्धि-संयत कहलाता है। (उसी-में दो तीन आदि भेद डालना छेदोपस्थापना चारित्र कहलाता है)। सम्पूर्ण इतीको सामान्यकी अपेक्षा एक मानकर एक यमको यहण करनेवाला होनेसे यह द्रव्यार्थिक नयका विषय है। (विशेष दे, छेदोपस्थापना)।

४. इसीलिए मिथ्यादृष्टिको सम्भव नहीं

ध, ६/९,१९२३/३६१/२ सर्वसावद्ययोगाइ विस्तोऽस्मीति सकतसावद्य-योगविरतिः सामायिकशुद्धसंयमो द्रग्याधिकत्वात । एवं विधेकवतो मिथ्यादृष्टिः किं न स्यादिति चेन्न, आक्षिप्राशेषविशेषसामान्यार्थिनो नयस्य सम्यग्दृष्टित्वाविरोधात् । = 'मैं सर्व सावद्ययोगसे विरत हूँ' इस प्रकार द्रव्याधिक नयकी अपेक्षा सकल सावद्ययोगके स्यागको सामायिक-शुद्धि-संयम कहते हैं। प्रश्न—इस प्रकार एक वतका नियमवाणा जीव मिथ्यादृष्टि क्यों नहीं हो जायेगा! उत्तर— नहीं, क्योंकि, जिसमें सम्पूर्ण चारित्रके भेदोंका संग्रह होता है, ऐसे सामान्यप्राही द्रव्याधिक नयको समीचीन दृष्टि माननेमें कोई विरोध महीं आता है।

५. सामायिक चारित्र व गुप्तिमें अन्तर

रा. वा./१/१-/१/६१७/१ स्यादेतत्—निवृत्ति परस्वात्—सामायिकस्य गुम्निप्रसंग इति । तज्ञः, किं कारणम् । मानसप्रवृत्तिभावातः । अत्र मानसप्रवृत्तिपरित निवृत्तिस्यण्यवादः गुप्तेरित्यस्ति भेदः । —प्रव—निवृत्तिपरक होनेके कारण सामायिक चारित्रके गुप्ति होनेका प्रसंग आता है । उत्तर —नहीं क्योंकि सामायिक चारित्रमें मानसी प्रवृत्तिका सद्भाव होता है, जब कि गुप्ति पूर्ण निवृत्तिस्य होती है । यह दोनों में भेद है।

६. सामायिक चारित्र व समितिमें अन्तर

रा. वा./१/९८/४/६९९/४ स्यान्मतस् — यदि प्रवृत्तिरूपं सामायिकं सिमितिलक्षणं प्राप्तामिति; तत्रः, कि कारणस् । तत्र यतस्य प्रवृत्त्यु-पदेशात् । सामायिके हि चारित्रे यतस्य सिमितिषु प्रवृत्तिरूपदिश्यते । अतः कार्यकारणभेदादस्ति विशेषः । — प्रश्न—यदि सामायिक प्रवृत्तिरूप है (दे. शोषक सं. ६) तो इसको सिमितिका लक्षण प्राप्त होता है ! उत्तर—नहीं, क्योंकि, सामायिक चारित्रमें समर्थ व्यक्तिको हो सिमितियोंमें प्रवृत्तिका उपदेश है । अतः सामायिक चारित्र कारण है और सिमित इसका कार्य ।

सामाधिक पाठ-१. आ. अभित गति द्वि. (ई. १०३-१०२३) कृत. १२० संस्कृत पद्यों में बढ़, सामाधिक के स्वस्प तथा विधि का प्रति-पादक ग्रन्थ । (ती./२/४०२)। २, अमितगति ई. १०३-१०२३) कृत ३२ संस्कृत पद्यबद्ध, समताभावोत्पादक तसित पाठ ।

सामीष्य-रा. वा./४/१८/१/२२३/१२ तुल्यजातीयेनाव्यवधानं सामीष्यम्। =तुल्य जातीयाँके बीचमें दूसरे पदार्थोंका न आना सामीष्य है।

साम्य-दे. सामायिक/१/१।

सायणाचार्यं — ई. १३६० के न्यायसूत्रके भाष्यकार अपर नाम् माधनाचार्य (सि. वि./प्र. २० पं. महेन्द्र)।

सार—

नि. सा./मू./३ विवरीयपरिहरतथं भणिदं खलु सार्मिदि वयणं । == (नियम शब्दका अर्थ नियमसे करने योग्य रत्नत्रय है) तहाँ विष-रीतका परिहार करनेके लिए 'सार' ऐसा वचन कहा है।

स- सा/ता. वृ./र/६/१६ सारः शुद्धावस्था। - सार अर्थात शुद्ध अवस्था। सार निवह - विजयार्धकी उत्तर श्रेणीका एक नगर - दे. विद्याधर।

सारसंग्रह — बा पूज्यपाद (ई. श. १) की एक संस्कृत छन्दबद्ध रचना । (के १२/२०) । (दे पूज्यपाद)। सारसमुख्यय-अ, कुलभद्र (ई, १३७) द्वारा रचित ३२० श्लोक बद्ध एक तत्त्व प्रतिपादक ग्रन्थ । (दे, कुलभद्र)।

सारस्वत--१. लोकान्तिक देवोंका एक भेद -दे, लोकान्तिक; २. भरतक्षेत्र पश्चिम आर्थाखण्डका एक देश-दे, मनुष्य/४।

सारस्वत यन्त्र—_{दे, यन्त्र ।}

सारीपुत्र — 'महावग्ग' नामक बौद्ध ग्रन्थके अनुसार; ये महात्मा बुद्धके प्रधान शिष्य थे। पहले जैन साधु थे। 'संजय' नामक एक परिवाजकने इन्हें बुद्धका शिष्य बननेसे मना किया था। (इ.सा./ पृ. २७/पं. नाथूराम प्रेमी)।

सार्धद्वयप्रज्ञित — आचार्य अमितगति (ई.६८३ -१०२३) कृत संस्कृत रत्नोकनद्व, अढाई द्वीप प्ररूपक एक रचना — दे, अमितगति ।

सालवसिल राय—मिन्तिभूपातका अपर नाम। (मो, मा, प्र./ २३। पं. परमानन्द शास्त्री)।

सारिवाहन — भट्टारक जगभूषणके । शष्य जैन कि । वि. १६६६ में हरिवंश पुराण रचा। — हिन्दी जैन साहित्य इतिहास । १०४। सायद्य हिंसा जनक मन वचन कायके व्यापारको सावद्य कहते हैं। पूजा, ब्रह्मचर्य आदि भी यद्यपि कथंचित् सावद्य हैं, परन्तु धर्मके सहकारी व अधिक पुण्योत्पादक होनेसे ग्राह्य है। पर खर कर्म आदि अन्य लौकिक सावद्य व्यापार त्याज्य है।

सावद्ययोग सामान्यका लक्षण

पं, घ /ज /७५०-७५१ सर्वशब्देन तत्रान्तर्ब हिर्च तिर्यदर्थतः। प्राणच्छेदो हि सावद्यं सेव हिंसा प्रकीतिता १७६०। योगस्तत्रोपयोगो वा बुद्धिपूर्वः स उच्यते। सूक्ष्मश्चाबुद्धिपूर्वो यः स स्मृतो योग इत्यपि १७५१। क्ष्मश्चाबुद्धिपूर्वो यः स स्मृतो योग इत्यपि १७५१। क्ष्मश्चावयोग' इस पदमें अर्थकी अपेक्षा 'सर्व' शब्दसे अन्तरंग और बहिरंग प्रवृत्ति अर्थात् मन बचन काय तीनोंकी प्रवृत्ति है। तथा निश्चयसे 'सावद्य' शब्दका अर्थ प्राणच्छेद है। और वही हिंसा कही जाती है।७६०। उस हिंसामें जो बुद्धिपूर्वक या अबुद्धिपूर्वक स्थूस या सूक्ष्म उपयोग होता है वह भी योग शब्दका अर्थ है।७६९।

🛨 सावद्य वचनका छक्षण—हे, बचन/१/३।

२. सावद्य कर्मके भेद

१. असि, मसि आदि रूप आजीविकाकी अपेक्षा

रा. वा /३/३६/२/२००/३२ कर्मार्यास्त्रेधा—सावद्यकर्मार्या अस्पसावद्य-कर्मार्या असावद्यकर्मार्याश्चेति । सावद्यकर्मार्याः षोढा—असि-मसि-कृषि-विद्या-शिल्प-वणिवकर्मभेदात् । =कर्मार्यं तीन प्रकारके हैं— सावद्यकर्मार्यं, अल्पसावद्यकर्मार्यं और असावद्यकर्मार्यं । तहाँ भी सावद्यकर्मार्यं असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प और वणिवकर्मके भेदसे छह प्रकारके हैं।

म. पु./१६/१७६ असिर्मिषः कृषिविद्या वाणिज्यं शिल्पमेव च । कर्माणी-मानि षोढा स्युः प्रजाजीवनहेतवः ।१७६। = असि, मिष, कृषि, विश्वा, वाणिज्य, और शिल्प ये छह कार्य प्रजाकी आजीविकाके कारण हैं।१७६।

२. खरकर्म (क्रूर व्यापार) और उनके १५ अतिचार

सा. ध्./६/२१-२३ व्रतयेत्खरकमित्र मलान् पञ्चवश त्यजेत्। वृत्तिं वनाग्न्यनस्स्फोटभाटकैर्यन्त्रपीडनम् ।२१। निलिञ्छनासतीपोधौ सरः न् शोषं दवप्रदाम् । विषलाक्षादन्तकेशरसवाणिज्यमङ्गिरुक् ।२२। इति केचित्र तच्चारु लोके सावद्यकर्मणाम् । अगण्यत्वात्प्रणेयं वा तद्य्यति-जडान् प्रति ।२३। = शावकोंको प्राणियोंको दुःख देनेवाले खर कर्म अथित् क्रूर व्यापार सब छोड़ देने चाहिए, तथा उनके पन्द्रह अतिचार भी छोड़ने चाहिए। वे १५ कर्म ये हैं - १. वनकोविका, २. अग्नि-

www.jainelibrary.org

जोविका, ३ अनोजीविका (शकटजीविका), ४, स्फोटजीविका, ६, भाटजीविका, ६, यन्त्रपीडन, ७, मिल्लिक्झन, ६ असतीपोष, ६, सरःशोष, १०. दवप्रद, ११, विषवाणिज्य, १२, लाक्षावाणिज्य, १३, दन्तवाणिज्य, १४, केशवाणिज्य और १४, रस वाणिज्य ।२१-२६।

३. असि, मसि आदि कर्मोंके लक्षण

रा.वा /३/३६/२/२०१/१ असिधनुरादिप्रहरणप्रयोगकुशला असिकमीर्याः । द्रव्यायव्ययादिलेखननिपुणा मधीकर्मार्याः। हलकुलिदन्तालकादि-कृष्युपकरणविधानविदः कृषीबलाः कृषिकर्मायाः। आलेख्यगणितादि-द्विसप्ततिकलावदाता विद्याकमियाः चतुष्टिगुणसपन्नाश्च । रज्जक-नापितायस्कारकुलालसुवर्णकारादयः शिल्पकमिर्याः। चन्दनादि-गन्धघृतादिरसञ्चाल्यादिधान्यकार्पासाद्याछादनमुक्तादिनानाद्रव्य -संग्रहकारिणो बहुविधा वणिवकर्मार्याः। = तत्तवार, धनुपादि शस्त्र-विद्यामें निपुण असिकर्मार्य हैं। द्रव्य अर्थात् रुपये-पैसे की आमदनी खर्च आदिके लेलनमें निपुण अथित मुनीमीका कार्य करनेवाले मिषकर्मार्य हैं। हल, कुलि, दान्ती आदिसे कृषि करनेवाले कृषि-कर्मार्य हैं। चित्र खेंचना या गणित आदि ७२ कलाओं में निपुण विद्याकर्मार्य हैं। अथवा ६४ गुण या ऋद्धियोंसे सम्पन्न विद्याकर्म आर्य हैं। धोनी, नाई, छुहार, कुम्हार, भ्रुनार आदि शिरूप कर्मार्य हैं। चन्दनादि सुगन्ध पदार्थीका, घी आदिका अथवा रस व धान्यादिका तथा कपास, वस्त्र, मोती आदि नामा प्रकारके द्रव्योंका संग्रह करनेवाले अनेक प्रकारके विषक कर्मार्थ हैं (म.पू/१६/ १=१-१=२)

४. सावद्य अल्पसावद्य व असावद्य कर्मार्यके लक्षण

रा. वा./३/१६/२/२०१/६ षडण्येते अविरतिप्रवणत्वात साववाकर्मार्याः, अन्यसाववाकर्मार्याः श्रावकाः श्राविकाश्च विरश्यविरतिपरिणतत्वात्, असावद्यकर्मार्याः संयताः, कर्मक्षयार्थोवातविरतिपरिणतत्वात् । चये उपरोक्त असि, मिष आदि छह साववाकर्म करनेवाले सावद्य कर्मार्य हैं, क्योंकि वे अविरति प्रधानी हैं। विरति, अविरति दोनों रूपसे परिणत होनेके कारण श्रावक और श्राविकाएँ अल्प सावद्य कर्मार्य हैं। कर्म क्षयको उद्यत तथा विरति रूप परिणत होनेके कारण मुनि- वत धारी संयत असावद्य कर्मार्य हैं।

५. पन्द्रह खरकमौंके लक्षण

सा.ध./४/२१-२३ की टीका-खरकमे खरं ऋरं प्राणिबाधकं कर्म ठ्यापारं। ···तत्र बनजीविका छित्रस्याच्छित्रस्य वा बनस्पतिसमूहादेविकयैण तथा गोधुमादि धान्यानां "पेष्णेन दसनेन वा वर्तनस् । अग्निजीविका अङ्गारजीविकारच्या । ...अनोजीविका शकटजीविका शकटरथ-सच्चक्रादीनां स्वयं परेण वर्ष निष्पादनम् वाहनेन विक्रयणेन वृत्तिक्षेह्र-भूतप्रामोपमर्दिका गवादीनां च बन्धादिहेतुः। स्फोटजोविका उडादिकर्मणा पृथिवीकायिकाच्यूपमर्दहेतुना जीवनम्। भाटक-शकटादिभारवाहनमूल्येन जीवनम्। यन्त्रपीडाकर्म तिलयन्त्रादिपीडनं तिलादिकं च दस्त्रा तैलादिप्रतिप्रहणस् । • • निर्वाब्छनं निर्वाब्छनकर्म वृषभादेनीसावेधादिना जीविका। निर्ताठछनं नितरा साठछनमङ्गावयवच्छेदः । असतीपोषः प्राणिधन-प्राणिपोषोभाटिग्रहणार्थं दासपोषं च । सरः शोषो धान्यवपनारदार्थ वितरणं तच्च फलनिरपेशतात्पर्याद्वनेचरैर्वह्विज्ञालनं व्यसनज-मुच्यते । पुण्यबुद्धिणं तु यथा ... तृणदाहे सति नवतृणाङ्कुरोद्धवाह-गावश्चरन्तीति वा क्षेत्रं वा सस्यसंपत्तिवृद्धयेऽग्निज्वासनम् । ... विष-बाणिउयं जीत्रध्नवस्तुविकयः। लाक्षावाणिउयं लाक्षाविक्रयणम्। सूक्ष्मत्रसजन्तुघातानन्तकायिकप्रवालजालोपमदीविना-लाक्षायाः भाविना स्वयोनिवृक्षादुद्धरणेन टङ्गगमनःशिलासक्ष्मालिप्रभृतीनां

बाह्यजोवधातहेतुःवेन गुग्गुलिकाया धातकीपुष्पत्वचश्च मराहेतुःवेन तद्भिक्रयस्य पापाश्रयस्वातः । दन्तवाणिज्यं हस्त्यादिदन्त। खनयवानां पुक्तिन्दादिषु द्रव्यदानेन तदुःपत्तिस्थाने नाणिज्यार्थं प्रहणम्। *** अनाकारे तु दन्तादिकयनिकये न दोषः। केशवाणिक्यं द्विपदादि-विक्रयः । "रसवाणिज्यं नवनीतादिविक्रयः । मधुवसामदादौ तु जन्तुवातोद्भवत्वम् । 🖛 प्राणियोंको पीड़ा उत्पन्न करनेवाले व्यापार-को खरकर्म अर्थात् कूरकर्म कहते हैं। वे पन्द्रह प्रकारके हैं-- १. स्वयं टूटे हुए अथवा तोड़कर वृक्ष आदि वनस्पतिका वेचना अथवा गेहूँ आदि धान्योंका पीस-कूटकर व्यापार करना वनजीविका है। २. कोयसा तैयार करना अग्निजीविका है। ३. स्वयं गाड़ी, रथ तथा उसके चक्र वगैरह बनाना अथवा दूसरोंसे बनवाना, गाड़ी जोतनेका व्यापार स्वयं करना अथवा दूसरोंसे करवाना, गाड़ी आदिके बेचनेका व्यापार करना अनोजीविका है। ४, पटाखे व आतिशवाजी आदि भारूदकी चीजोंसे आजीविका करना स्फोट जीविका है। १ गाड़ी, घोड़ा आदिसे बोमा ढोकर जो भाड़ेकी आजीविका की जाती है, वह भाटक जीविका कहताती है। ६, तेस निकालनेके लिए कोल्हू चलाना या सरसों तिल आदिको कोल्ह्में पिलवाना, तिल वगैरह देकर उनके बदते तेल लेना आदि यन्त्र-पीडन जीविका है। ७ बैल आदि पशुअरिके नाक आदि छेदनेका धन्धा करना अथवा शरीरके अवयव छेदनेको निर्साञ्छन कर्म कहते हैं। ५ हिंसक प्राणियोंका पालन-पोषण करना और किसी प्रकारके भाड़ेकी उत्पत्तिके लिए दास और दासियोंका पोषण करना असतीयोव कहलाता है। १. अनाज बोनेके लिए जलाशयों से नाली खोदकर पानी निकालना सरःशोध कहलाता है। १०. वनमें घास वर्गे रहको जलानेके लिए आग लगाना दवप्रद कहलाता है। यह दो प्रकारका है-एक व्यसनज और दूसरा पुण्य बुद्धिज। बिना प्रयोजन-के भीलों द्वारा वनमें अग्ग सगवाना व्यसनज दवप्रद है, और पुण्य~ बुद्धिसे दीपोंमें अग्नि प्रज्वलित करायी जाना पुण्य बुद्धिज दयप्रदा है। तथा अच्छी उपज होनेकी बुद्धिसे घास आदि जलवाना दवप्रदा है। ११. विषका प्राणिघातक व्यापार करना विषवाणिज्य है। १२, तकड़ीके कीड़े जिन छोटे-छोटे पत्तोंपर बैठते हैं. तथा उनमें को सूक्ष्म त्रस होते हैं उनके वातके विना लाख पैदा ही नहीं होती। अतः लाखका और इसी प्रकार टाकनखार, मनसिल, गूगल, धायके फूल व छ।ल जिससे मद्य बनता है आदि पदार्थीका व्यापार साक्षा वाणिज्यमें गर्भित है। १३० भीतों आदिसे हाथी दाँत आदि खरीद करना दन्तवाणिज्य है। जहाँ दाँत आदिका उत्पत्ति स्थान नहीं है वहाँ इस व्यापारका निषेध नहीं है। १४, दासी दास ओर पशुओं के व्यापारको केश वाणिज्य कहते हैं। १५, मनखन, मधु, चरबी, मख, आदिका व्यापार रस वाणिज्य है।

६. ऋषिको लोकमें सर्वोत्तम उद्यम माना जाता है

कुरल काव्य/१०४/१ नरो गच्छतु कुत्रापि सर्व त्रान्नमपेक्षते । तिस्सि दिश्च कृषेत्तस्मात् सुभिक्षेऽपि हिताय सा ११। — आदमी जहाँ चाहे घूमें, पर अन्तर्ने अपने भोजनके लिए उसे हलका सहारा लेना ही पड़ेगा। इसलिए हर तरहकी सस्ती होनेपर भी कृषि सर्वोत्तम उद्यम है।१।

७. दान, प्जा, शील, उपवास भी कथंचित् सावद्य है

क. पा. १/१,१/६~२/१००/२ राणं पूजा सीसमुववासी चेदि चउिवही सावयधम्मी । एसो चउिवही वि छउजीवविराहओ; पयण-पायणिगसूधुक्कण-जालण-सूदि-सूदाणादिवावारेहि जीवविराहणाए विणा दाणाणुवनसीदो । तरुवर्खिदण-खिंदावणिद्वपादण-पादावण-तद्दहण-दहावणादिवावारेण छउजीवविराहणहेउणा विणा जिलभवण-करणकरावणण्डहाणुववसीदो । ण्ह्वणोवसीण-संमुज्जण-छहावण-पु- (फु)ह्यारोवण धूबदहणादिवावारेहि जोबबहाविणाभावीहिविणा पूजकरणाणुववसीदो । कथं सोलरभ्वणं सावज्जं । ण; सदारपीडाए विणा सीलपरिवालणाणुववत्तीदो। कधमुबवासो सावज्ञो। णः सपोद्रत्थपाणिपीडाए विषा उववासाणुनवन्तीदो । =दान, पूजा, शील और उपबास ये चार शावकोंके धर्म हैं। ये चारों ही प्रकारका श्रावक धर्म छह कायके जीवोंकी विराधनाका कारण है। क्यों कि भोजनका पकाना, दूसरेसे पकवाना, अग्निका सुलगाना, अग्निका जलाना, अग्निका खूतना और खुतवाना आदि व्यापारोंसे होनेवाली जीवविराधनाके बिना दान नहीं बन सकता है। उसी प्रकार वृक्षका काटना और कटवाना, इंटका गिराना और गिरवाना, तथा उनको पकाना और पकवाना आदि छह कायके जीवोंकी विराधनाके कारणभूत ब्यापारके विना जिनभवनका निर्माण करना अथवा करवाना नहीं बन सकता है। तथा अभिषेक करना, अवलेप करना, सम्मार्जन करना, चन्दन लगाना, फूल चढ़ाना और धूपका जलाना आदि जीवबधके अविनाभावी व्यापारीके श्रिना पूजा करना नहीं बन सकता है। अपनी स्त्रीको पीड़ा दिये बिना शीलका परिपालन नहीं हो सकता है, इसलिए शीलकी रक्षा भी सावद्य है। अपने पेटमें स्थित प्राणियोंको पीड़ा दिये निना उपवास वन नहीं सकता है, इसलिए उपवास भी सावद्य है।

* सावध होते हुए भी पूजा करना इष्ट हैं--दे. धर्म/k/२।

८. साधुओंको सावद्य योगका निषेध व समन्वय

मू. आ./७६८-८०१ वसुधिमिनिव विहरंता पीडं ण करेंति कस्सइ कथाई। जीवेसु द्यामवण्णा माया जह पुत्तमंडेसु।७६६। तणरुक्व-हरिच्छेदणत्यपत्तपवालकंदमुलाई। फलपुष्फत्रीयघादं ण करिति मुणीण कारिति। ६०१। —सम्ब जीवोंमें द्याको प्राप्त सम्ब साथु पृथिवीपर विहार करते हुए भी किसी जीवको कभी भी पीड़ा नहीं करते हैं। जैसे माता पुत्रके ऊपर हित ही करती है उसी तरह सम्बा हित ही चाहते हैं।७६६। सुनिराज तृण वृश्च हरित इनका छेदन, वल्कल पत्ता कोंपल कन्द मूल इनका छेदन तथा फल, पुष्प, बीज इनका धात न तो आप करते हैं और न दूसरे से कराते हैं। ६०१।

प्र, सा./मू./२४० जिंद कुणिंद कायखेरं वेज्ञावच्चत्थमुज्जदो समणो। ण हवदि हवदि अगारी घम्मी सो सावग्रणं से १२४०।

प्र. सा./ता, वृ./२५०/३४४/१३ इसमत्र तात्पर्यम् — योऽसी स्वपोषणार्थं शिष्यादिमोहेन वा सावद्यं नेच्छति तस्येदं व्याख्यानं श्रीभते यदि पुनरन्यत्र सावद्यमिच्छति वैयावृत्त्यादिस्वकीयावस्थायोग्ये धर्मकार्ये नेच्छति तदा तस्य सम्यव्स्वमेव नास्ति । — यदि (अमण) वैयावृत्तिके लिए उद्यमी वर्तता हुआ छह कायको पीडित करता है तो वह अमण नहीं है, गृहस्थ है; क्योंकि, वह आवकों का धर्म है।२५०। इसका यह तास्पर्य है कि — जो अपने पोषणके लिए या शिष्यादिके मोहसे सावद्यकी इच्छा नहीं करता उसको तो यह उपरोक्त व्याख्यान शोभा देता है, परन्तु यदि अन्य कार्योमें तो सावद्यकी इच्छा न हरे तो उसके सम्यवस्य हो नहीं है।

* श्रावकको सावद्य योगका निषेध—हे. सावद्य/२/२।

सासिन — प्रथमोपशम सम्यक्तिक कालमें छह आवली शेष रहनेपर जीव सम्यक्तिसे गिरकर उतने मात्र कालके लिए जिस गुण-स्थानको प्राप्त होता है उसे सासादन कहते हैं, अगले ही क्षण वह अवस्य मिष्यात्वको प्राप्त हो जाता है। मिष्यात्वका उदय न होनेसे उसे सम्यग्टष्टि कह देते हैं। मिष्यात्वका उदय उपशम व क्षय तोनों ही नहीं हैं, इसलिए इसे पारिणामिक भाव कहा जाता है।

सासादन सामान्य निर्देश ĝ सासादन सम्यग्दृष्टिका लक्षण । 8; मिथ्यादृष्टि आदिसे पृथक् सासादनदृष्टि क्या । ₹ सासादनको सम्यग्दृष्टि व्यपदेश क्यों । ₹. सामादन में तीनों ज्ञान अज्ञान क्यों। ४ सासादन अनन्तानुबन्धीके उदयसे होता है। ų सासादन पारिणामिक भाव कैसे। Ę अनन्तानुबन्धीके उदयसे औद्यिक क्यों नहीं। 9 इसे कथचित् औदयिक भी कहा जा सकता है। Ġ Q सासादन ग्रणस्थानका स्वामित्व । पके, विक. व असंशियोंमें सासादन गुणस्थानकी उत्पत्ति अनुत्पत्ति सम्बन्धी चर्चा । ---दे. जन्म/४ । १० सासादन गुणस्थानमें मारणान्तिक समुद्धात सम्बन्धी कुछ नियम । सासादनके रवामियमिं जीवसमास मार्गणास्थान आदि बीस मरूपणाएँ । सासादन जीवों सम्बन्धी सत् संख्या क्षेत्र स्पर्शन काल अन्तर भाव अल्पबहुत्व रूप आठ मरूपणाएँ । --देवहबहमाम। मार्गणाओं में सासादनके अस्तित्व सम्बन्धी शंका-समाधान । —देः वह वह नाम । सभी गुणस्थानोंमें आयके अनुसार व्यय होनेका नियम । -वे. मार्गणा। इस गुणस्थानमें कर्म प्रकृतियोंका बन्ध उदय सस्य । --दे. यह यह नाम। सासादनके आरोहण व अवरोहण सम्बन्धी ₹ उपराम सम्यक्त्वपूर्वेक ही होता है । ξ प्रथमोपरामके कालमें कुछ अवशेष रहनेपर ₹ -होता **है** । जपशममें शेष बचा काल ही सासादनका ą काल है। उक्त कालसे हीन या अधिक शेष रहने पर सासादनको प्राप्त नहीं होता। सासादन गुणस्थानमें मरण सम्बन्धी। * --वै, मरण/३ । दितीयोपशमसे सामादनकी माप्ति अमाप्ति ų सम्बन्धी दो मत । दितीयोपरामं पूर्वक होनेमें काल आदिके सर्व नियम पूर्वेवत् हैं। --दे. सासादन/२/५। द्वितीयोपशमसे दो बार सासादनकी आप्ति सम्भव **~दे.** अन्तर/२/४ । सासादनसे अवस्य मिथ्यात्वकी प्राप्ति ।

१. सासादन सामान्य निर्देश

१. सासादन सम्यग्द्रष्टिका लक्षण

पं. सं./प्रा./१/६,१६८ सम्मत्तरयणपव्ययसिहरादो मिच्छभावसमिममुहो। णासियसम्मत्तो सो सासणणामो मुणेयव्यो।६। ण य मिच्छत्तं
पत्तो सम्मत्तादो य जो हु परिविष्ठिओ। सो सासणो ति णेओ
सादियपरिणामिओ भावो।१६८। =१, सम्यवस्वरूप रस्तपर्वतके
शिखरसे च्युत, मिथ्याव्यरूप भूमिके सम्मुख और सम्यवस्वके
नाशको प्राप्त जो जीव है, उसे सासादन नामवाला जानना
चाहिए।६। (ध,१/२,१,१०/गा.१०८/१६६), (गो. जो./मू./२०/४६)। २. उपशम सम्यवस्वसे परिपतित होकर जीव जव
तक मिथ्याव्यको प्राप्त नहीं हुआ है तब तक उसे सासादन सम्यग्रहि जानना चाहिए।१६८। (ध.१/१,१,१०/१६३/४)।

रा. बा./१/११११८/९८ अत एवास्यान्वर्थसंज्ञा-आसादनं विराधनम्, सहासादनेत - वर्तत इति सासादनाः, सासादना सम्यग्दृष्टि-यस्य सोऽयं सासादनसम्यग्दृष्टिरिति । = अत्रव 'सासादन' यह अन्वर्थ संज्ञा है । आसादनका अर्थ विराधना है । आसादनके साथ रहे वह सासादन । आसादन सहित समीचीन दृष्टि जिसके वह सासादनसम्यग्दृष्टि है । (ध. १/१.९,१०/१६३/६+१६६/१); (गो. जो./जो. प्र./१०/३१/४)।

२. सिथ्यादृष्टि आदिसे पृथक् सासादन दष्टि क्या

घ. १/१,१,१०/१६३/७ अथ स्यात्र मिध्यादष्टिरयं मिध्यात्वकर्मण उदयाभावात, न सम्यग्दष्टिः सम्यग्रुचेरभावात्, न सम्यग्निथ्या-दृष्टिरुभयविषयरुचेरभावात्। न च चतुर्थी दृष्टिरस्ति सम्यगसम्य-गुभग्रदृष्ट्यातम्बन्बस्तुव्यतिरिक्तबस्त्बनुप्तम्भात् । अतीऽसम् एष गुण इति न, विपरीताभिनिवेशतोऽसद्गदृष्टित्वात् । सर्हि मिथ्यादृष्टि-र्भवत्वयं नास्य सासादनव्यपदेश इति चैन्न, सम्यग्दर्शनचारित्र-प्रतित्रनध्यनन्तानुबन्ध्युदयोत्पादित्विपरीताभिनिवेशस्य तत्र सत्त्वा-द्भवति मिथ्यादृष्टिरपि तु मिथ्यारवकमीदयजनित्विपरीताभि-निवेशाभावात् न तस्य मिथ्यादृष्टिव्यपदेशः, किन्तु सासादन इति व्यपदिश्यते। किमिति मिथ्यादृष्टिरिति न व्यपदिश्यते चैन्न, अनन्तानुबन्धिनां द्विस्वभावस्वप्रतिपादनफलस्वात् । न च दर्शनमोहनीयस्योदयादुपरामारक्षयोपरामाद्वा प्राणिनामुनजायते येन मिध्यादृष्टिः सम्यग्दृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टि-रिति चोच्यते। यस्माच विपरीताभिनिवेशोऽभूदनन्तानुबन्धिनो, न तहर्शनीयं तस्य चारित्रावरणश्वाद् । = प्रश्न—सासादन गुणस्थान वाला जीव मिथ्यात्वका उदय न होनेसे मिथ्यादृष्टि नहीं है, समीचीन रुचिका अभाव होनेसे सम्यग्दष्टि भी नहीं है। दोनोंको विषय करनेवाली सम्यग्मिश्यात्वरूप रुचिका अभाव होनेसे सम्य-ग्मिथ्यादृष्टिभी नहीं है। इनके अतिरिक्त और कोई चौथी दृष्टि है नहीं, क्योंकि, समीचीन असमीचीन और उभयरूप दृष्टिके आसम्बनभूत वस्तुके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु पायी नहीं जाती है। इसलिए सासादन गुणस्थान असत्स्वरूप **है। उत्तर—ऐसा न**हीं है, क्योंकि, सासादन गुणस्थानमें विपरीत अभिप्राय रहता है. इस लिए उसे असइ दृष्टि हो समक्ताचाहिए । प्रश्न—यदि ऐसा है तो इसे मिथ्यादृष्टि ही कहना चाहिए, सासादन संज्ञा देना उचित नहीं है। उत्तर-नहीं, क्योंकि, सम्यग्दर्शन और स्वरूपाचरण चारित्रका प्रतिवन्ध करनेवाली अनन्तानुबन्धी क्रषायके उद्यसे उत्पन्न हुआ विपरीताभिनिवेश दूसरे गुणस्थानमें पाया जाता है, इसिक्सए द्वितीय गुणस्थानवर्ती जीव मिध्यादृष्टि हैं किन्तु मिध्या-त्वकर्मके उदयसे उत्पन्न हुआ विपरोताभिनिवेश वहाँ नहीं पाया

जाता है, इसलिए उसे मिथ्यादृष्टि नहीं कहते हैं। केवल सासादन सम्यग्दृष्टि कहते हैं। प्रश्न — ऊपरके कथनानुसार जब वह मिथ्यादृष्टि ही है तो फिर उसे मिथ्यादृष्टि संझा क्यों नहीं दी गयी है। उत्तर— ऐसा नहीं है, क्योंकि, सासादन गुणस्थानको स्वतन्त्र कहनेसे अनन्तानुबन्धी महत्त्रियोंकी द्विस्वभावताका कथन सिद्ध हो जाता है। दे अनन्तानुबन्धी — दर्शनमोहनीयके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमसे जीवोंके सासादनरूप परिणाम तो उत्पन्न होता नहीं है—(दे, सासादन/१/६) जिससे कि इस गुणस्थानको मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहा जाता। तथा जिस अनन्तानुबन्धी कदयसे दूसरे गुणस्थानमें जो विषशीताभिनिवेश होता है, वह अनन्तानुबन्धी दर्शनमोहनीयका भेद न होकर चारित्रका आवरण करनेवाला होनेसे चारित्रमोहनीयका भेद है। इसलिए दूसरे गुणस्थानको मिथ्यादृष्टि न कहकर सासादनसम्यग्दृष्टि कहा है। (और भी दे, सासादन/१/७,६)

३. सासादनको सम्यग्दृष्टि व्यपदेश क्यों

ध. १/१.१.१०/१६६/१ विपरीताभिनिवेशदूषितस्य तस्य कथं सम्यग्दष्टित्विमिति चेत्र, भूतपूर्वगत्या तस्य तद्वचपदेशोपपत्ते रिति। क्यप्रनसासादन गुणस्थान विपरीत अभिप्रायसे दूषित है (दे, शोर्षक सं.
२). इसलिए इसके सम्यग्दष्टिपना कैसे बनता है! उत्तर-नहीं,
वयोंकि, पहले बह सम्यग्दष्टि था [अर्थात् प्रथमोपशमसे गिरकर ही
सासादन होनेका नियम है-(दे, सासादन/२)] इसलिए भूतपूर्व
न्यायकी अपेक्षा उसके सम्यग्दष्टि संज्ञा बन जाती है। (गो. जी./
जी. प्र./१०/३१/४)

४. सासादनमें तीनों ज्ञान अज्ञान क्यों

रा. वा./१/१/१३/१०१/१६ तस्य मिथ्यादर्शनोदयाभावेऽपि अनन्तानु-बन्ध्युदयात त्रीणि ज्ञानानि अज्ञानानि एव भवन्ति । = मिथ्यात्वका उदय न होनेपर भी इसके तीनों मिति, श्रुत और अवधिज्ञान अज्ञान कहे जाते हैं। (दे. सत्)

धः १/१.१.११६/३६१/३ मिथ्याहण्टेः हेऽप्यज्ञाने भवतां नाम तत्र मिथ्यान् त्वोदयस्य सत्त्वात् । मिथ्यात्वोदयस्यासत्त्वात्त सासादने तयोः सत्त्वमिति न, मिथ्यात्वं नाम विपरीताभिनिवेद्यः स च मिथ्यान्त्वाद्यन्तानुवन्धिनश्चोत्पद्यते । समस्ति च सासादनस्यानन्तानुवन्ध्युदय इति । —प्रश्न—मिथ्यादृष्टि जीवोंके भन्ने ही दोनों (मित व श्रुत) अज्ञान होवें, क्योंकि वहाँ पर मिथ्यात्वका उदय पाया जाता है, परन्तु सासादनमें मिथ्यात्वका उदय नहीं पाया जाता है, परन्तु सासादनमें मिथ्यात्वका उदय नहीं पाया जाता है, इसलिए वहाँ पर वे दोनों ज्ञान अज्ञानरूप नहीं होना चाहिए ! उत्तर —नहीं, वयोंकि, विपरीताभिनिवेदाको मिथ्यात्व कहते हैं। और मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धी इन दोनोंके निमित्तसे उत्पन्न होता है । सासादन गुणस्थानवालेके अनन्तानुवन्धीका उदय तो पाया ही जाता है (दे. शीर्षक नं, २), इसलिए वहाँ पर भी दोनों अज्ञान सम्भव हैं।

५. सासादन अनन्तानुबन्धीके उदयसे होता है

- रा, वा./१/११/१६/५८=/२० तस्य मिथ्यादर्शनस्मोदये निवृत्तं अनन्तानु-विश्वकषायोदयकञ्जूषीकृतान्तरात्मा जीवः सासादनसम्यग्दिष्टिरिया-त्यायते। — मिथ्यादर्शनके उदयका अभाव होने पर भी जिनका आरमा अनन्तानुवन्धीके उदयसे कञ्जूषित हो रहा है वह सासादन-सम्यग्दृष्टि है।
- ल सा./जी.प्र./१६/१२६/१६ तदुपशमनकाले अनन्तानुबन्ध्युदयाभावेन सासादनगुणप्राप्तरभावात् । = दर्शनमोहके उपशमनकालमें अनन्ता-नुबन्धीके उदयका अभाव होनेसे सासादनकी प्राप्तिका अभाव है।

- दे. सासादन/१/२ [यहाँ यद्यपि मिध्यात्वजन्य विपरीताभिनिवेश पाया नहीं जाता, परन्तु अनन्तातुनन्धोजन्य विपरीताभिनिवेश अवश्य पाया जाता है !]
- दै. साक्षादन/१/४ [अनन्तानुबन्धीके उदयके कारण ही इसके ज्ञान अज्ञान कहे जाते हैं।]
- दे. सासादन/१/२ [उपशम सम्यक्तक कालमें छह आवली शेष रह जाने पर अनन्तानुबन्धीका उदय आ जानेसे सासादन होता है ।]

६. सासादन पारिणामिक भाव कैसे

- ष. खं. ४/१,७/सूत्र ३/१६६ सासणसम्मादिष्टि त्तिको भाको, पारिणा-मिओ भावो ।२। = सासादन सम्यग्दिष्ट यह कीन सा भाव है 1 पारिणामिक भाव है। (ष. खं. ७/२,१/सूत्र ७७/१०६); (पं. सं./ प्रा./१/१६८); (ध. १/१,१,१०/गा. १०८/१६६); (गो.जो./मू./२०/४६)
- ध.४/१,७,३/१६६/७ एत्य चोइओ भगदि-भावो पारिणामिओ सि णेह घडदे, अण्णेहितो अणुष्यणस्स परिणामस्स अत्थित्तविरोहा। अह अण्णेहितो उप्पत्तो इन्छिजदि ण सो पारिणामिओ, णिक्कारणस्स सकारणत्तविरोहा इति । परिहारो उच्चते । तं जहा—जो कम्माण-मुदय-जनसम-लङ्य-लओवसमेहि विणा अण्णेहितो उप्पणो परि-णामो सो पारिणामिओ भण्णदि, ण णिक्कारणो कारणमंत्रेणूप्पण-परिणामाभावा। सत्त-पमेयत्तादओ भावा णिवकारणा उवलभंतीदि चे ग, विसेससत्तादिसरूवेण अपरिणमंतसत्तादिसामण्णाणुवलंभा मन्य तदो अप्पिदस्स दंसणमोहणीयस्स कम्मस्स उदएण उवसमेण खएण खओवसमेण वा ण हादि ति णिक्कारणसासणसम्मत्तं। अदो चैव पारिणामियत्तं पि । अणेण णाएण सब्बभावाणं पारिणामिपत्तं पसज्जदीदि च होदु, ण कोइ दोसो, विरोहाभावा। अण्लभावेसु पारिणामियववहारा किण्ण कीरदे । ण, सासणसम्मत्त मोत्तृण अप्पिद कम्मादो गुप्पण्णस्स अण्णस्स भावस्स अणुवलंभा। =प्रश्न-१. 'यह पारिणामिक भाव है' यह बात घटित नहीं होती, क्यों कि दूसरों-से नहीं उत्पन्न होने वाले परिणामके अस्तित्वका अभाव है। यदि अन्यसे उरवित मानी जाये तो पारिणामिक नहीं रह सकता है, वयों कि. निष्कारण वस्तुके सकारणत्वका विरोध है। (अर्थात स्वतः सिद्ध व अहेतुक त्रिकाली स्वभावको पारिणामिक भाव कहते हैं, पर सासादन तो अनन्तानुबन्धीके उद्यसे उत्पन्न होनेके कारण सहेतुक है। इसलिए वह पारिणामिक नहीं हो सकता)? उत्तर-जो कर्नों के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशमके बिना अन्य कारणों से उत्पन्न हुआ परिणाम है वह पारिणामिक कहा जाता है, न कि निष्कारण भावको पारिणामिक कहते हैं, क्यों कि, कारणके बिना उत्पन्न होने वाले परिणामका अभाव है। प्रश्न --सत्त्व, प्रमेयत्व आदिक भाव कारणके बिना भा उत्पन्न होनेवाले पाये जाते हैं ? उत्तर - नहीं, क्यों कि, विशेष सत्त्र आदिके स्वरूपसे नहीं परिणत होनेवाले सत्त्वादि सामान्य नहीं पाये जाते हैं।--- विवाक्षत दर्शन मोहनीयकमंके उदयसे, उपशमसे, क्षयसे अथवा क्षयोपशमसे नहीं होता है अतः यह सासादन सम्यवत्व निष्कारण है और इसी लिए इसके पारिणामिकपना भी है। (ध. १/१,१०/१६५/६):। प्रश्त--३. इस न्यायके अनुसार तो सभो भावोंके पारिणामिकपनेका प्रसग प्राप्त होता है [क्यों कि कोई भी भाव ऐसा नहीं जिसमें किसी एक या अधिक कर्मों के उदय अ:दिका अभाव न हो।] उत्तर--इसमें कोई दोष नहीं है, क्यों कि इसमें कोई विरोध नहीं आता। (दे, पारि-णामिक)। प्रश्न-यदि ऐसा है तो फिर अन्य भावोंमें पारिणामिक-पनेका व्यवहार क्यों नहीं किया जाता! उत्तर-नहीं, क्योंकि, सासादनसम्यव्यवो छोड्कर विवक्षित कर्मसे नहीं होनेत्राला अन्य कोई भाव नहीं पाया जाता है।
- ध. ७/२.१,७७/१०६/६ एसो सासणपरिणामो खईं छो ण होदि, इंसणमोह-क्खएणाणुप्पत्तोदो । ण खओवसमिओ वि, देसघादिफद्रयाणसुद्रण

अणुष्पत्तीए। जबसमिओ विण हो दि, दं सणमो हुवसमेणाणुष्पत्तीदो। थोदह्यो विण हो दि, दं सणमो हस्युद्धणाणुष्पत्तीदो। परिसेसादो परिणामिएण भावेण सासणो हो दि। म्यह सासादन परिणाम क्षायिक नहीं होता, क्यों कि, दर्शनमो हनीय के क्ष्यसे उसकी उत्पत्ति नहीं होतो। यह क्षायो पश्चिक भी नहीं है, क्यों कि, दर्शनमो हनीय के देशवातो रूपर्धकों के उदयसे उसकी उत्पत्ति नहीं होती। औपश्चिक भी नहीं, क्यों कि, दर्शनमो हनीय के उपश्चम उसकी उत्पत्ति नहीं होती वह औदयिक भी नहीं है, क्यों कि दर्शनमो हनीय के उदयसे उसकी उत्पत्ति नहीं होती। अत्रय परिशेष न्यायसे पारिणामिक भावसे ही सासादन परिणाम होता है।

७, अनन्तानुबन्धीके उदयसे औद्यिक क्यों नहीं

घ. ७/२,७७/१०१/१ अणंताणुबंधीणमुदएण सासणगुणसमुबत्तंभादो खोद-इओ भावो किण्ण उच्चदे। ण दंसणमोहणीयस्स उदय-उवसम-खय-खओवसमेहि विणा उप्पज्जदि ति,सासणगुणस्स कारणं चरित्तमोह-णीयं तस्स दंसणमोहणीयत्तविरोहतादो। अणंताणुबन्धीचद्वकं तदुभयमोहणं च । होदु णाम, किंतु णेरमेरथ विवक्तियं। अणंताणु-बंधी चदुवकं चरित्तमोहणीयं चैवेत्ति विवक्खाए सास्रणगुणी पारिण-मिओ त्ति भणिदो।=प्रश्न-अनन्तानुबन्धी कषायोंके उदयसे सासादन गुणस्थान पाया जाता है, अतः उसे औदियिक भाव क्यों नहीं कहते ! उत्तर-नहीं कहते, क्योंकि, दर्शनमोहनीयके उदय. उपश्म, क्षय व क्षयोपशमके त्रिना उत्पन्न होनेसे सासादन, गुणस्थानका कारण चारित्र मोहनीय कर्म ही हो सकता है और चारित्र मोहनीयके दर्शन मोहनीय माननेमें विरोध आता है। प्रश्न-अनन्तानुबन्धी तो दर्शन और चारित्र दोनों में मोह उरेपन्न करनेवाला है ? उत्तर - भले ही वह उभयमोहनीय हो, किन्तु यहाँ वैसी विवक्षा नहीं है। अनन्तानुबन्धी चारित्र मोहनीय ही है, इसी विवक्षासे सासादन गुणस्थानको पारिणामिक कहा है।

ध. १/१,७,३/११७/४ आदिमचदुगुणट्ठाणभावपरूपणाए दंसणमोहवदि॰ रिचसेसकम्मेष्ठ विवस्ताभावा । = आदिके चार गुणस्थानों सम्बन्धी भावोंको प्ररूपणामें दर्शनमोहनीय कर्मके सिवाय शेष कर्मीके उदयकी विवक्षाका अभाव है। (गो. जी./मू. व. जी. प्र./१२/३१)।

८. इसे कथंचित् औदयिक भी कहा जा सकता है

गो. जो./जी./प्र-/१२/३४/१४ अनन्तानुबन्ध्यन्यतमोदयविबस्या तु औदियिकभावोऽपि भवेत्। = अनन्तानुबन्धी चतुष्टयमेंसे अन्यतमका उदय होनेकी अपेक्षा सासादन गुणस्थान औदियिक भाव भी होता है।

९. सासादन गुणस्थानका स्वामित्व

- दे, नरके/४/२.३ [सातों ही पृथिवियों में सम्भव है परन्तु केवल पर्याप्त ही होते हैं अपर्याप्त नहीं।]
- दे तिर्यंच/१/१.२ [पंचेन्द्रिय तिर्यंच व योनिमति दोनोंके पर्याप्त व अपर्याप्तमें होना सम्भव है।]
- दे. मनुष्य/२/१,२ [मनुष्य व मनुष्यितियाँ दोनोंके पर्याप्त व अपर्याप्तमें होना सम्भव है।]
- दे. देव/२/१/२ [भवनवासीसे उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्तके सभी देवों व देवियों में पर्याप्त व अपर्याप्त दोनों अवस्थाओं में सम्भव है।]
- दे. इन्द्रिय/४/४ [एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रियों नहीं होता, संज्ञी पंचेन्द्रियों ही सम्भव है। यहाँ इतनी विशेषता है कि—(दे. अगला सन्दर्भ)]
- दे, जन्म/४ [नरकर्में सर्वथा जन्म नहीं लेता, कर्म ब भोगभूमि दोनोंके गर्भज संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें ही जन्मता है इनसे विषरीतर्में नहीं। इतनी विशेषता है कि असंज्ञियोंमें केवल अपर्याप्त दशामें ही

होता है और संज्ञियोंकी अपर्याप्त व पर्याप्त दोनों दशाओं में दितीयोपशमकी अपेक्षा संज्ञी, संज्ञियों में पर्याप्त व अपर्याप्त दोनों तथा देवों में केवल अपर्याप्त दशामें ही सम्भव है। एकेन्द्रिय व विकले निद्यों में यदि होते हैं तो केवल निवृत्त्यपर्याप्त दशामें ही सम्भव है। वहाँ भी केवल बादर पृथिवी अप व प्रत्येक वनस्पति इन तीन कायों में ही सम्भव है अन्य कायों में नहीं। वास्तवमें एकेन्द्रियों में उत्पन्न नहीं होते, विक्त वहाँ मारणान्तिक समुद्रात करते हैं।]

दे, जन्म/४/१० [सासादन प्राप्तिके द्वितीय समयसे लेकर आवली/असं, कालतक मरनेपर नियमसे देव गतिमें जन्मता है। इसके ऊपर आ./ असं. काल मृतृष्यों में जन्मने योग्य है। इसी प्रकार आगे क्रमसे संझी, असंज्ञी, चृत्तुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय व एकेन्द्रियों में जन्मने योग्य काल होता है।]

दे. संयत/१/६ [सासादन निवृत्यपर्याप्त या पर्याप्त ही होता है लिख अपर्याप्त नहीं ।]

९०. मारणान्तिक समुद्धात सम्बन्धी

- ध. ४/१.४,४/१/६४/२ तैसि सासणगुणपाहम्मेण लोगणालीए बाहिरमुण्यज्ञणसहावाभावाहो। लोगणालीए अन्भंतरे मारणंतियं करेंता
 वि भवणवासियजगमूलादोवरि चैव देव-तिरिक्तसासणसम्मादिटिठणो मारणंतियं करेंति, णो हेट्ठा, कुदो। सासणगुणपाहम्मादो
 चैव। च्िसासादन सम्यग्दिष्टदेव ऐकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक
 समुद्धात करते हैं, परन्तु] उनके सासादन गुणस्थान की
 प्रधानतासे लोक नालीके बाहर उत्पन्न होनेके स्वभावका अभाव है।
 और लोकनालीके भीतर मारणान्तिक समुद्धातको करते हुए भी
 भवनवासी लोकके मूलभागसे ऊगर ही देव या तिर्यंच सासादन
 सम्यग्दिष्ठ जीव मारणान्तिक समुद्धातको करते हैं। इससे नीचे नहीं,
 वयोंकि, उनमें सासादनगुणस्थानकी ही प्रधानता है।
- भ. ४/१.४.४/१६४/७ ईसिपन्मारपुढनीहो जनरि सासणाणमाजकाइएसु
 मारणंतियसंभवादो, अट्ठमपुढनीए एगरन्तुपदरन्भंतरं सन्वमानू रिय
 टिठ्दाए तेसि मारणंतियकरणं पिछ निरोहाभानादो च । = ईपत्थाग्भार पृथिनीसे ऊपर सासादन सम्यग्दृष्टियोंका अपकायिक जीनोंमें
 मारणांतिक समुद्धात सम्भव है, तथा एक रज्जूपतरके भीतर सर्व
 क्षेत्रको न्याप्त करके स्थित आठनीं पृथिनोमें उन जीनोंके मारणांतिक समुद्धात करनेके प्रति कोई निरोध भी नहीं है।
- दे. मरण/श्४-(मेरुतलसे अधोभागवर्ती एकेन्द्रिय जीवोंमें व मारणा-न्तिक समुद्धात नहीं करते।]
- दे. जन्म/४/११—[सासादन सम्यग्दृष्टि जीव वायुकायिकोंमें मारणा-न्तिक समुद्रात नहीं करते।]

२. सासादनके आरोहण व अवरोहण सम्बन्धी

१. उपशमसम्यक्तव पूर्वक ही होता है

ध. ४/१,८.१२/२४०/७ साराणगुणसुवसमसम्मादिद्विणो चैव पश्चिवज्जंति ।
--सासादनगुणस्थानको उपशमसम्बग्दिष्टि द्वी प्राप्त होते हैं।

२. प्रथमोपशमके कालमें कुछ अवशेष रहनेपर होता है

रा. वा./१/११३/६-१/१६ जघन्येन एकसमये उत्कर्षेणाविक्रिकाषट्केऽव-क्रिक्टे यदा अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभमन्यतमस्योदयो भवति तदा सासादनसम्यग्दिष्टिरियुच्यते । —प्रथमोपश्रम सम्यक्त्वके अन्तर्मुहूर्त कालमें जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छष्ट आवली अवशेष रहनेपर, जब अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया ब लोभ इन चारोंमेंमें किसी एकका उदय होता है, तब वह जीव सासादन सम्यग्दिष्ट कहा जाता है। (गो, जी,/मू./११/४४): (ल. सा./मू /१००/१३७); (गो. जी,/जो, प्र./७०४/११४१/१६); (गो. क./जी, प्र./६४४/९६९/१७)

३. उपशममें शेष बचा काल ही सासादनका काल है

- ष, खं, ७/२,२/सू. २००-२०२/१८२ सासणसम्माइट्ठी केविचरं कालादो होदि १२००। जहण्णेण एयसमध्यो १२०१। उनकस्सेण छात्रवियाओ १२०२। =सासादन सम्यग्दष्टि जीव कितने काल तक रहते हैं १ १२००। जबन्य एक समय १२०१। और उत्कृष्ट छह आवली कालतक रहते हैं १२०२। (प. खं. ४/१,५/सृत्र ७-८); (ध. ४/१,८,१२/२५०/२)
- ध. ४/१.६.७/गा, ३१/३४१ उनसमसम्मत्तद्धा जित्त्यमेत्ता हु हो इ अन-सिद्धा। पडिनज्जंता साणं तित्त्यमेत्ता य तस्सद्धा। ३१। = जितना प्रमाण उपशम सम्ययस्वका काल अवशिष्ट रहता है, उस समय सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेबोले जीवका भी उतने प्रमाण ही काल होता है। ३१।
- घ. ७/२,२,२०१/१८२/६ जनसमसम्मत्तद्वाए एगसमयानसेसे सासणं गदस्स सासणगुणस्स एगसमयकालोनलंभादो । जेत्तिया जनसमसम्मत्तद्वा एगसमयादि कादूण जानुक्कस्सेण छानलियाओ त्ति अनसेसा अत्थि तत्तिया चेत्र सासणगुणद्धानियप्पा होति । च्कॉिक, उपशम सम्यक्त्वके,कालमें एकसमयशेषरहनेपर सासादनगुणस्थानमें जानेनाले जीवके सासादनगुणस्थानका एक समय काल पाया जाता है । एक समयसे प्रारम्भ कर अधिकसे अधिक छह आनित्योंतक जितना उपशम सम्यक्त्वका काल शेष रहता है, उतने ही सासादनगुणस्थान-के निकल्प होते हैं।

४, उक्त कालसे हीन या अधिक शेष रहनेपर सासादन-को प्राप्त नहीं होता

- क, पा. मुत्त/१०/गा, १७/६३१ जनसामगी च सब्बोः गिरासाणी। जनसंते भिज्ञिक्वो शीरासको य खीगिम्म ११७० च्लावतक दर्शन-मोहका जपशम कर रहा है तबतक वह सासादन गुणस्थानको प्राप्त नहीं होता है। जसका जपशम हो जानेपर भिज्ञिक्य है, अर्थात् सासादनको प्राप्त हो भी जाता है और नहीं भी। [प्रथमीपशम कालमें एक समयसे छह आवलीतक शेष रहनेपर तो कदाचित् प्राप्त हो जाता है। परन्तु] जस जपशम सम्यक्ष्यका काल समात्र हो जानेपर प्राप्त नहीं होता है। (ध. ६/१.१-५,१/गा. ४/२११); (स. सा./मू./१६/१२६)
- घ. ४/१,४,८/गा. ३२/३४२ जनसमसम्पत्तद्वा जह छावलिया हवेज्ज अवसिट्टा ! तो सासणं पवज्जह णो हेट्टुकट्टकालेष्ट ।३२। उपशम सम्यक्तका छह आवली प्रमाण अवशिष्ट होवे तो जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है, यदि इससे अधिक काल अवशिष्ट रहे तो नहीं प्राप्त होता है ।३२।
- ध. ७/२,२,२०१/१८२/८ उत्रसम्मसकालं संपुण्णमिक्दितो सासणगुणंण पिडविक्जिति कधं णव्यते । एदम्हातो चेव सुसादो, आहरिय-परंपरागदुविदेसादौ वा। = प्रश्न-जो जीव उपशमसम्प्रवस्वके सम्पूर्ण कालतक उपशमसम्यवस्वमें रहा है, वह सासादन गुणस्थानमें नहीं जाता, यह कैसे जाना १ उत्तर-प्रस्तुस सुत्रसे (दे. शोर्षक मं. ३) ही तथा आचार्य परम्परागत उपवेशसे भी पूर्वोक्त नात जानी जाती है।
- ल.,सा./जी. प्र /१६/१३६/१६ उपका-ते दर्शनमोहे अन्तरायामे वर्त मानः
 प्रथमोपश्मसम्यग्रहाः सासादनपुणस्थानप्राप्या भक्तन्यो विकल्पनीयः। कस्यचित्प्रथमोश्चमसम्यन्दवकाले एकसमयादिषडावलिकान्तावशेषे सासादनपुणत्वसंभवात्। उपश्चमसम्यन्दवकाले क्षीणे
 समाप्ते सति निरासादन एव तदा नियमेन निश्यात्वाद्यन्यतमोदयसंभवात्। च्दर्शनमोहके उपशान्त हो जानेपर उस प्रथमोपशम
 सम्यन्दवके अन्तरायाममें वर्तमान प्रथमोपशम सम्यग्रहाः जीव
 सासादनगुणस्थानकी प्राप्तिके लिए भजनीय है, अर्थाद् प्राप्त

करें अथवा न भी करें। तहाँ किसी जीवके प्रथमोपशमके कालमें एक समयसे छह आवली पर्यन्त काल शेष रहनेपर सासादन गुणस्थानका होना सम्भव है। परन्तु उपशम सम्यक्षका काल क्षीण हो जानेपर निरासादन ही है अर्थात् सासादनको विसकुल प्राप्त नहीं हो सकता। तब मिथ्यादि (मिथ्यास्व, सम्यक्षि मिथ्यास्व या सम्यक्षकृति इन तीनों मेंसे किसी एकका उदय सम्भव है।)

दे सम्यग्दर्शन/IV/२/८ [प्रथमोपशमसे गिरकर अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार मिथ्यादृष्टि सासादन, सम्यग्निथ्यादृष्टि अथवा वेदक-सम्यग्दृष्टिमेंसे किसी भी गुणस्थानको प्राप्त हो सकता है।]

५. द्वितीयोपशमसे सासादनकी प्राप्ति अप्राप्ति सम्बन्धी दो मत

ध. ६/१.६-५.१४/३३१/४ एदिस्से उनसमसम्मम्खाए खन्मंतरादो असंजमं पि गच्छेज्ज, संजमासंजमं पि गच्छेज्ज, छम्च आवित्यामु सेसामु आसाणं पि गच्छेज्ज। राष्ट्रसे पाहुडचुण्णिमुत्ताभियाओ। भूदविक्षभयवंतस्मुवएसेण उवसमसेडीदो ओदिण्णो ण सासणत्तं पिडवज्जदि। = १. द्वितीयोपशमसम्यवत्वकासके भीतर असंयमको भी प्राप्त हो सकता है। संयमासंयमको भी प्राप्त हो सकता है। राष्ट्रस्व आवित्योके केष रहनेपर सासादनको भी प्राप्त हो सकता है। राष्ट्र कषायप्राभृत चूर्णिस्त्र (यतिवृषभाचार्य) का अभिप्राय है। (स. सा./मू./३४०): (गो. जो /जी. प्र./११/४१/१); (वे. सम्यव्हान/- IV/३/३ में गो. जी./जी. प्र./७०४)। २. किन्तु भगवाच् भूतविके उपदेशानुसार उपशम्भेणीसे उत्त्वता हुआ सासादन गुणस्थानको प्राप्त नहीं करता। (स. सा./मू./३४१)

ध. ६/१,६,७/११/२ उवसमसेडीको ओविण्णाणं सासणममणाभावादो ।
तं पि कुदो णवदे । एदम्हादो चेव भूदवलीयवयणादो । =उपशम
श्रेणीसे उत्तरनेवाले जीवोंके सासादनगुणस्थानमें गमन कर्नेका अभाव
है। प्रश्न- यह कैसे जाना ! उत्तर- भूतवली आचार्यके इसी वचनसे
जाना [कि सासादन गुणस्थानका जवन्य अन्त एक जीवकी अपेक्षा
परुषोपमके असंख्यातवें भाग है-सूत्र ७, पृ. ह]।

गो. क./जो. प्र./५४८/७१८/१७ अमी प्रथमहितीयोपशमसम्यग्दृष्टयः
स्वभव चरमे स्वसम्यक्त्वकाले जवन्येनीकसमये उत्कृष्टेन वडाव लिन्
मात्रेऽविशिष्टेऽनन्तानुबन्ध्यन्यतमोदयेन सासादना भूत्वा...। च्ये
प्रथमोपशम व हितीयोपशम दोनों सम्यग्दृष्टि अपने भवके चरमन्
समयमें अपने-अपने सम्यव्त्वके कालमें जवन्य एक समय और
उत्कृष्ट छह आवली मात्र अवशेष रहनेपर अनन्तानुबन्धी चतुष्कमेंसे
किसी एक प्रकृतिके उदयसे सासादन होकर (मरते हैं, तब देवगतिको
प्राप्त करते हैं।)

६. सासादनसे अवस्य मिथ्यात्वकी प्राप्ति

रा, बा./१/१/१३/५८१/११ स हि मिण्यादर्शनोदयफलमापादयन् मिण्यादर्शनमेव प्रवेशयति । चयह (अनन्तानुबन्धी कषाय) मिण्यादर्शनके फलोंको उत्पन्न करती है, अतः मिण्यादर्शनको उदयमें आनेका रास्ता खोल देती है।

गो. क./जी. प्र./५४८/७१८/२० सासादनकालमतीस्य मिध्यादृष्ट्य एव भूरवा। = सासादनका काल बीतनेपर नियमसे मिथ्यादृष्टि होकर...।

सहसगति --राजा चक्रांकका पुत्र था। सुगीयकी स्त्रीको प्राप्त करनेके अर्थ इसने विद्यासिख की थी। (प, पु./१०/४,१८)।

साहसी — स्या. म./१८/२४१/६ सहसा अविमश्रात्मकेन बलेन वर्तते साहसिकः । — आगे आनेवाले कष्टोंको विचारे बिना ही अपनी शिर-जोरीसे जो सहसा प्रवृत्त हो उसको साहसी कहते हैं। सिदूर—मध्य लोकके अन्तसे चौदहवाँ द्वीप व सागर—दे. लोक/५/१।
सिधु—१—भरत क्षेत्रकी प्रसिद्ध नदी—दे. मनुष्य/४; लोक/३/११—भरत क्षेत्रकी प्रसिद्ध नदी—दे. मनुष्य/४; लोक/३/११—भरत क्षेत्रस्थ एक कुण्ड जिसमेंसे सिन्धु नदी निकलती है—दे. लोक/३/१० ३- हिमवास् पर्वतस्थ एक क्र्य—दे. लोक/६/४:४—सन्धु कुण्डकी स्वामिनी देवी—दे. लोक३/१०-६—भरत क्षेत्र उत्तर आर्थ खण्डका एक देश्र—दे. मनुष्य/४; ६—वर्तमान सिन्ध् देश। कराची राजधानी है। (म. पु./प्र. ६० पन्नालाल)।

सिंधु कक्ष-विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीका एक नगर-दे, विद्याधर। सिंह-एक ग्रह-दे, ग्रह।

सिंहनिष्क्रीडित स्रत-यह वत जवन्य, मध्यम व उत्कृष्टके भेदसे तीन प्रकारका है!

निम्न प्रस्तारके अनुसार क्रमदाः १, २ आदि उपवास करते हुए ६० उपवास पूरे करें। की चके २० स्थानों में पारणा करे। प्रस्तार - जधन्य प्रस्तारमें मध्यका अंक ५ है। पहलेके अंकों में दो-दो अंकोंकी सहायतासे एक-एक बढ़ाता जाये और घटाता जाये। जैसे—१,२(२-१≖१), (२+१=३),(३-१=२), (३+१= ४), (४-१-३), (४+१=६), (५-१=४); [५+१=६ यह विकरप मध्यवाले पाँच अंकोंको उल्लंघन कर जानेके कारण ग्राह्य नहीं। अतः यहाँ ६ की बजाय ५ का अंक ही रखना] यहाँ तक प्रस्तारका मध्य आया। इसके आगे उलटा क्रम चलाइए अर्थात् ६, ४, ६, ३, ४, २, ६, १, २, १। इस प्रकार अवन्य सिंहनिष्की डित का प्रस्तार है।---१, २, १, ३, २, ४, ३, ६, ४, ६, ६, ४, ६, ३, ४, २, ३,१,२,१∞६०। आप—नमस्कार मन्त्रका त्रिकाल जापकरे। (ह,पु./३४/७७–७८) (ब्रत विधान सं./५६) (किशनसिंह क्रियः-कोषु) विधि जबन्य बत् है, प्रस्तारमें कुछ अन्तर है जो नीचे दिया जाता है। मध्यम-प्रस्तार निकालनेकी विधि जघन्यवद् ही है। केवल मध्यमका अर्क ५ की अध्नाय १ है। अर्थात् १,२,१,३,२,४, ૭, ૪, ૪, ૬, ૧, ૭, ૧, ૮, ૭, ૮, ૧, ૮, ૭, ૦, ૧, ૧, ૧, ૧, ૧, ૧, ૧, ૧, ४,२,३,१,२,१००१६३) नोट—बत विधान संप्रहमें निद्यान वाला आठका अंक नहीं है। १४३ की बजाय १४४ उपनास है। (ह. पु./ ३४/७१-८०) (ब्रत विधान सॅ./४७) (किशनसिंह क्रियाकोष) उरक्कटप्रस्तार विधान जबन्यवत जानना । अन्तर केवल इतना है कि यहाँ मध्यका अंक ५ की बजाय १६ है। शेष सर्व विधि जघन्यवत् है। प्रस्तार—१, २, १, ३, २, ४, ३, ६, ४, ६, ६, ७, ६, ८, ७, ६, ८, ६, ६, ५०, ह, ११, १०, १२, ११, १३, १२, १४, १३, १४, १४, १४, १६; १४, १४, र्थ, १३, १४, १२, १३, १९, १२, १०, १९, ६, १०, ८, ६, ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४, ५, ३, १, २, १ -- ४१६ ; स्थान ६१।

सिहध्यज - विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीका एक नगर-दे. विधाधर ।

सिहनंदि—१. ई. ११२९ के दो शिलालेखों के अनुसार भानुनन्दि के शिष्य आ, सिद्धनन्दि योगीन्द्र गंग राजवंदा की स्थापना में सहायक हुए थे। समय —ई. श.२। (ती./२/४४४)।२, नन्दि संघ बलारकार-गण में भानुनन्दि के शिष्य और बसुनन्दि के गुरु। समय — शक १०८-१२४ (ई. १८६-६१३)। (दे. इतिहास/७/२)। ३. सर्वनन्दि कृत 'सोक विभाग' के संस्कृत स्थान्तर के रचयिता। (ति. प./प्र. १२/-। L. Jain)।

४—गंगवशीय राजमन्तके गुरुके गुरु थे। तथा उनके मन्त्री चासुण्ड-रायके गुरु अजित्सेनाचार्यके गुरु थे। राजा मलके अनुसार इनका समय—वि. सं, १०१०--१०२० (ई. १४३-१७३) आता है। (बाहुबलि चरित/श्लो. ६१११)। १. नन्दि संघ बलारकारणण की सुरत शाखा में मन्त्रिषेण के शिष्य और ह. नेमिदत्त के गुरु। लक्ष्मी चन्द (ई. १४१) के समय में मालवा के भट्टारक थे। आपकी प्रार्थना पर ही भट्टारक श्रुतसागर ने यशस्तित्तक चिन्द्रका नामक टीका लिखी थी। समय — वि. १५५६-१५७६ (ई. १४६६-१५१८)। (ते. इतिहास/ ७/४): (यशस्तितक चम्पू टीका की अन्तिम प्रशस्ति का अन्त)। — दे. इतिहास/७/४। ६. पंच नमस्कार मन्त्र माहारम्य के कर्ता। समय— वि. श. १६ (ई. श. १६)।

सिहपुर-विजयार्धकी उत्तर श्रेणीका एक नगर-दे. विद्याधर ।

सिहपुरी अपर विदेहस्थ सुपद्म क्षेत्रकी प्रधान नगरी — दे. लोकः/१
सिहर्य — १ — जम्बूद्वीप वस्तदेशकी सुसीमा नगरीका राजा था।
संयमी होकर १९ अंगोंका अध्ययन कर, सोलह भावनाओंका
चिन्तकन किया। तथा तीर्थं कर प्रकृतिका बन्ध किया। समाधिमरण
कर सर्वार्धसिद्धिमें अहमिन्द्र हुए। (म. पु./६४/२-१०) यह कुन्थनाथभगवान् का पूर्वका दूसरा भव है। — दे. कुन्थुनाथ। २—
सौदास कापुत्र था। सौदासके नरमांसाहारी होनेपर इसको राज्य
दियागया। (प. पु./१४/१४४-१४४)

सिहल -- भोजवंशकी वंशावलीके अनुसार राजा मुंज व भतृ हिरिके पिताथे। मालवा (मगध) के राजा थे। मुंजके अनुसार इनका समय ई. १००-१४० आता है-दे. इतिहास/३/१।

सिह्यमी कांचीका राजा था। सर्वनिन्दने इसके राज्यके २२वें वर्षमें 'तोक विभाग' नामका एक प्राकृत ग्रन्थ बनाया था। समय— श. ३८० (ई. ४६८)। (ति. प./प्र./१२ ऑ. हीरालाल)।

सिंहसूरि- दे० परिकाण्ट !

सिहसेन १-पुनाट संघकी गुर्वावक्षीके अनुसार आप सुधर्मसेनके शिष्य तथा सुनन्दिषेणके गुरु थे। —दे. इतिहास/१/८ । २- (म.पु./१६/१को, भरत क्षेत्रमें सिंहपुरका राजा था (१४६) इनके मन्त्रीने बैरसे सर्प बनकर इसको खा लिया (१६३) यह मरकर सक्लकी वनमें हाथी हुआ (१६७)। यह संजयन्त मुनिका पूर्वका सातवाँ भव है। —दे. 'संजयन्त'।

सिकन्दर — यूनानके बादशाह फिलिप्सका पुत्र था। मक्रदूनिया इसकी राजधानी थी। अरस्तुका शिष्य था। बड़ा पराक्रमी था। थोड़ी-सी आयुमें अफगानिस्तान, बलोचिस्तान, पंजाब आदि देशोंको जीत लिया था। — ई. पू. ३५६ में इसका जनम हुआ। २० वर्षकी अवस्थामें गद्दी पर बैठा, बैठतें ही देशोंपर विजय प्राप्त करनी प्रारम्भ कर दी। यूनान जीटते समय मार्गमें ही ई. पू. ३२३ में इसकी मृत्यु हो गयी। समय — ई. पू. ३५६ – ३२३।

सिक्तानन अञ्चरकुमार (भवनवासीवेव)-वे अहुर ।

सिक्तिनो भरत आर्थ लण्डकी एक नदी -दे. मनुष्य/४।

सिक्थ--दे, ससिक्थ।

सितपट चौरासी — पं. हेमराज (बि.श. १७ -- १८) कृत भाषा छन्द नद्ध रचना है। जो स्वेताम्बराचार्य यशोविजयके दिरपट चौरासी बोलके उत्तरमें की गयी थी। इसमें स्वेताम्बरमतपरचौरासी आक्षेप किये गये हैं। (दे. हेमराज पाण्डे)।

सिद्ध-दे. मोक्ष/३।

सिद्धवि— दे. परिशिष्ट ।

सिद्ध केवली—हे, केवली/१/३।

सिद्धधक यन्त्र—हे. यन्त्र।

सिद्धचक्र विभान—दे, पुजापाठ ।

सिद्धचक्राष्टक पूजा—हे, पूजापाठ।

सिद्धत्व---१_

पं. घ./उ./१९४२ सिद्धस्यं कूरस्तकर्में म्यः पुंसोऽवस्थान्तरं मृथक् । ज्ञान-हर्शनसम्यवस्ववीयां च्रष्टगुणात्मकम् । १९४२। = आत्माकी सम्पूर्ण कर्मीसे रहित ज्ञान, दर्शन, सम्यवस्य वीर्य आदि आठ गुण स्वरूप मुद्ध अवस्थाका होना हो सिद्धत्व है । २ — जीवका पारिणामिक भाव है — दे पारिणामिक; ३ — स्वभाव व्यंजन पर्याय है — दे. पर्याय/३/१ ।

सिद्ध पक्षाभास - हे_{. 'पक्ष'।}

सिद्धयिनी-भगवान् महाबीरकी शासक यक्षिणी -दे. तीर्थं कर/१/३ । सिद्धसाधन हेत्याभास--दे अकिचिरकर ।

सिद्धसेन इस नाम के लीन आचार्य प्राप्त होते हैं—सिद्धसेन. दिवाकर, सिद्धसेन गणी और सिद्धसेन। १, सिद्धसेन दिवाकर विगम्बर तथा खेताम्बर दोनों आमनायों में प्रसिद्ध हैं। कृतियें—सम्मति स्त्र, कच्याण मन्दिर स्तोत्र और कुछ द्वात्रिशिकायें। समय—लगभग वि ६२६। (ते, परिशिष्ट)। २, सिद्धसेन गणी ययपि खेताम्बर हैं परन्तु किसी कारणवश इन्हें क्यों कि दिगम्बर संख्व का संसर्ग प्राप्त हो गया था इसलिए कुछ दिगम्बर संस्कार भी इनमें पाए जाते हैं। कृतियें— तरवार्थाधिगम भाष्य वृत्ति, आखारांग सूव बृत्ति, न्यायावतार, द्वात्रिशिकायें। समय नि. श्रा. मन्द। (ते, परिशिष्ट)। ३, पुन्ताट संघ की गुविबन्ती के अनुसार अभयसेन प्र. के शिष्य और अभयसेन द्वि. के गुरु। (ते, इतिहास/७/८)।

सिद्धहेम शब्दानुशासन- वे शब्दकोश।

सिद्धान्त—

१. सिद्धान्त सामान्य निर्देश

दे. प्रवचनं/१ आगम, सिद्धान्त और प्रवचन एकार्थक हैं। ध. १/१.९.१/९६/४ अपीरुषैयत्वतोऽनादिः सिद्धान्तः। अअपीरुषेय होनेसे सिद्धान्स अनादि है।

२, भेद व लक्षण

न्या.सू./सू.टी./१/१/२६-३१ तन्त्राधिकरणाभ्युपगमसंस्थितिः सिद्धान्तः ।२६। सर्वतन्त्रप्रतितन्त्राधिकरणाभ्युपगम्संस्थिश्यथन्तिरभावात् ।२७। सर्वतन्त्राविरुद्धस्तनत्रेऽधिकृतोऽर्थः सर्वतन्त्रसिद्धान्तः ।५८। यथा बाणादीनीन्द्रियाणि गन्धादय इन्द्रियार्थाः पृथिक्यादीनि भूतानि प्रमाणैरथेस्य ग्रहणमिति ।—समानतन्त्रसिद्धः परतन्त्रासिद्धः प्रति-तन्त्रसिद्धान्तः ।२१। यस्सिद्धावनयप्रकरणसिद्धिः सोऽधिकरणसिद्धान्तः ।३०। यथा देहेन्द्रियवयतिरिक्तो ज्ञाता ।—अपरीक्षिताम्युपगमात्तद्वि-शेषपरीक्षणमभ्युपगमसिद्धान्तः ।३१। 🗕 शास्त्रके अर्थकी संस्थिति किये गये अर्थको सिद्धान्त कहते हैं। उक्त सिद्धान्त चार प्रकारका है। सर्वतन्त्र सिद्धान्त, प्रतितन्त्र सिद्धान्त, अधिकरण सिद्धान्त, अभ्युष्यम सिद्धान्त ।२६-२७। १. उनमें से जो अर्थ सब शास्त्रोमें अविरुद्धतासे माना गया है उसे सर्वसन्त्र सिद्धान्त वहते हैं। अर्थाद् जिस बातको सर्व शास्त्रकार मानते हैं जैसे घाण आदि पाँच इन्द्रिय, गर्ध आदि उनके विषय तथा, पृथ्वी आदि पाँच भूत और प्रमाण द्वारा पदार्थीका ग्रहण करना इत्यादि सब ही शास्त्रकार मानदे हैं ।२८। २. जो बात एक शास्त्रमें सिद्ध हो, और दूपरेमें असिद्ध हो उसे 'प्रतितन्त्रसिद्धान्त' कहते हैं ।२१। ३. जिस अर्थ के सिद्ध होनेसे अन्य अर्थ भी नियमसे सिद्ध हों उसे अधिकरण सिद्धान्त कहते हैं। जैसे—देह और इन्द्रियोंसे भिन्न कोई जानने बाला है जिसे आत्मा कहते हैं।३०। ४, विनः परीक्षा किये किसी पदार्थ को मानकर उस पदार्थ की विधेष परीक्षा करनेको अभ्युपगम सिद्धान्त कहते हैं। ११।

★ तर्क व सिद्धान्त रूप कथन पद्धति—हे. पद्धति ।

सिद्धान्तसार - १, भावसेन त्रैनिच (ई. श. १३ मध्य) कृत ७०० रतोक प्रमाण प्रन्थ जिस पर प्रभाष्य्य नं. ई. (ई. श.१३ उस.) कृत एक कन्नड़ टीका है। (ती-/१/४५१)। २. जिनचन्द्र (वि. १५०७-१६७१) कृत ७१ गाथा प्रमाण, जीवकाण्ड जिस पर ज्ञानभूषण (बि. १६३४-१६६१) कृत भाष्य है । (की./१/४६३) ।

सिद्धान्तसारसंग्रह — आ. नरेन्द्रसेन (ई. १०६८) द्वारा विर-चित तत्त्वार्थ प्रस्तपेक संस्कृत छन्द बढ़ प्रन्थ है। इसमें १२ अधिकार हैं तथा कुल १६२४ श्लोक प्रमाण है। (ती./२/४३३)।

सिद्धान्तसेन-द्विइसंघेकी गुव्वितीके अनुसार यह गोणसेन्के गुरु तथा अनन्तवीर्यके दादा गुरु थे। (समय. ई.१४०-१०००)-दे. इतिहास/६/३ !

सिद्धाभदेव--भूतकालीन आठवें तीर्थंकर-दे. तीर्थंकर/१।

सिद्धायतन कूट-वर्षधर पर्वत, गजदन्त्, वक्षारगिरि आदि पर्वतों में प्रश्येक पर एक-एक सिद्धायतम कूट है, जिसपर एक-एक जिनमन्दिर स्थित है। - दे, लोक/८/४।

सिद्धार्थ-१. अपर नाम सिद्धायतन-दे सिद्धायतन। २. विज्यार्ध-की उत्तर श्रेणीका एक नगर-दे विद्याधर । ३. मानुषोत्तर पर्वतस्थ अञ्जनमूलकूटका स्वामी भवनवासी सुपर्ण कुमार देव-दे. लोकश्/१० ४, म.पू./६६/श्लो. कौशाम्बी नगरीके राजा पार्थिवके पुत्र थे। (४) अन्त्रमें दीक्षा ले तीर्थं कर प्रकृतिका बन्ध किया (१२-१५) तथा समाधिमरणकर अपराजित विमानमें अहमिन्द्र हुआ (१६) यह निमनाथ भगवात्का पूर्वका दूसरा भव है।-दे, निमनाथ। १, इ, पु./ सर्ग /श्लो, बलदेव (कृष्णका भाई) का छोटा भाई था। यदि मैं देव हुआ तो तुम्हें सम्बोधूँगा वलदेवसे यह प्रतिज्ञाकर दीक्षा ग्रहण की (६१/४१) स्ववचनानुसार स्वर्गसे आकर कृष्णकी मृत्युपर वलदेवको सम्बोधा (६३/६१-७१) ६ भगवान महाबीरके पिता- हे लीग कर/६। 🌭 एक क्षुरुत्तक था जिसने लब व कुशको शिक्षा दी थी (भूपू/१००/ ४७)। ६. श्रुताबतार की पहाबसी के अनुसार आप नागसेन के जिल्हा और धृतियेण के गुरु थे। ११ अर्ग तथा १० पूर्वधारी थे। समय---बी. मि. २४७-२६४। तृतीय दृष्टि से बी. नि. २०७-३२४। (वे. इतिहास/४/४) ।

सिद्धार्था - एक निवा-दे. 'निवा' ।

सिद्धि—सि.वि./मृ./१/२/६/सिद्धिश्चेदुपत्तन्धिमात्रम्। 🗢 उपतन्धि मात्रको सिद्धि कहते हैं।

सिद्धिप्रिय स्तोत्र -- बा. पूज्यपाद (ई. श. १) कृत, २६ संस्कृत पद्धी में बद्ध चतुर्विदासिस्तव । (जै /२/२८०)।

सिद्धिविनिञ्चय-आ. अक्लंक भट्ट (ई. ६२०-६८०) कृत यह न्यायनिषयक ग्रन्थ संस्कृत पद्य बद्ध है। इसपर रघिता कृत हीएक स्वोपज्ञ वृत्ति है। इसमें १२ अधिकार हैं। मूल प्रन्थमें कुल २८ रतीक हैं। इस प्रन्थ पर आ. अनन्तवीय (ई. १७४-१०२४) कृत एक संस्कृत टीका है। यह सर्व गदा पदा व टीका मिलकर २०×३०-- साइज़के मुदित ६६० पृष्ठ प्रमाण है। (ती./२/३०६)

सिरा-- औदारिक शरीरमें सिराओं का प्रमाण - दे औदारिक/१/७)। सिरिपाल चरिउ--१. कृति रहधु(वि.१४६७-१६६६) कृतश्रीपास मैमा मुन्दरी आरूयान । अपर्धश काव्यं । (ती./४/२०३) । 🝳 कवि बह्य दामीदर (वि. कः १६ उत्तरार्घ) कृत अपभंक काठ्य । (ती./ ४/११६) ।

सीता-१. विदेह क्षेत्रकी प्रधान नदी-दे. लोक/१/११ । २. विदेह क्षेत्रस्थ एक कुण्ड जिसमें से सीता नदी निकलती है-दे, लोक; /१/१० । १: नील पर्वतस्थ एक कूट-दे. लोक/६/४ । ४. सीता कुण्ड व सीता क्टकीस्वामिनीदेवी-दे,लोक/३/१०; ४. माल्यवान् पर्वतस्थ एक कूट-दे. लोक/१/४/; ६. हचक पर्वत निवासिनी दिवकुमारी देवी —दे. लोक/४/१३ । ७, वर्तमान पामीर प्रदेशके पूर्वसे निकली हुई यारकन्द नदी है। चातुर्द्वीपक भूगोलके अनुसार यह मेरुके पूर्ववर्ती भद्राश्व महाद्वीपकी नदी है। चीनी लोग इसे अब तक सीतो कहते हैं। यह काराकोरमके शीतान नामक स्कन्धसे निकल कर पामीरके पूर्वकी ओर चीनी तुर्किस्तानमें चली गयी है। उक्त शीतान पुराणीं-की शीतान्त है। तकतामकानकी मरुभूमिमें से होती हुई एक आध और निवयोंके मिल जाने पर 'तारीम' नाम धारण करके लोपनूप नामक खारी महीलमें जिसका बिस्तार आजसे कहीं अधिक था जा गिरती है। इसका वर्णन वायु पुराणमें लिखा है-'कृत्वा द्विधा सिंधुमरून् सीतागात् पश्चिमोदधिम् (४७, ४३) सिन्धुमरु तक्ता-मकानके सिए उपयुक्त नाम है। क्योंकि इसका बाख् समुद्रवत् दीखता है। पश्चिमोदधिसे लोनपुर फीलका तारपर्य है। (ज.प./प्र. 880 A N. Upadhye; H.L. Jain)

रामके द्वारा वरी गयी (२०/२४३) बनवासमें रामके संग गयी (३१/१६१) वहाँपर राम लक्ष्मणकी अनुपस्थितिमें रावण इसे हरकर ले गया (४४/=३-८४)। रावणके द्वारा अनेकों भय देनेपर अपने शीलसे तिनक भी विचलित न होना (४६/८२) रावणके मारे जाने पर सीता रामसे मिली (११/४६)। अयोध्या सीटने पर स्रोकापवाद-से राम द्वारा सीताका परित्याम (१७/१०८१)। सीताकी अग्नि परीक्षा होना (१०६/२६)। विरक्त हो दीक्षित हो गयी। ६२ वर्ष पर्यन्त तपकर समाधिमरण किया। तथा सोलहवें स्वगंमें देवेन्द्र हुई (१०१/१७-१८) ।

सीतीदा-१. विदेह क्षेत्रकी प्रसिद्ध नदी - दे. लीक/३/११/२. विदेह क्षेत्रस्थ एक कुण्ड जिसमेंसे सीतोदा नदी निकलती है—दे.लोक/श्रश्या ३, सीतोदा कूट व सीतोदा कुण्डकीस्वामिनी देवी- दे लोक/३/१०; ४. विद्युत्प्रभविजयार्धका एक कूट-दे, लोक/६/४८६१.अपर विदेहस्थ एक विभंगा नदी - दे. लोक/४/८।

सीदिया-चतुर्द्वीवके भद्राश्वव उत्तरकुरु और सीदिया एक ही बात है। (ज.प./प्र. १४० A.N up; H.L. Jain

सोमंकर—भूतकालीन पञ्चम कुलकर—दे, शलाकापुरुष/६।

सीमंत्तक - प्रथम नरकका प्रथम पटल - दे नरक/१ तथा ररन प्रभा।

सीमंधर—भूतकालीन छठे कुलकर—दे, शलाकापुरुष/६।

सोमा---Boundary, (ध ५/प्र. २८)।

सोमातीतसंख्या—Transfinite number (घ. ४/प्र. २८)।

सुंगयुन-एक चीनी यात्री था। ई. ५२० में इसने भारतकी यात्रा की थी। (सि. प /प्र. १४ हीरालाल)।

सुन्दर--कुण्डल पर्वतस्थ स्फटिक क्टका स्वामी नागेन्द्र-देव. दे, सोक/६/१२ ।

सुन्दरदास - इनको सन्त युन्दरदास कहते थे। पं. बनारसीदास इनकी बहुत प्रशंसा करते हैं। समय-- वि. १६५३-१७४६। (हि. जै. सा, इ./११७/कामता)।

सुन्दरी-भगवान् ऋषभवेवकी प्रत्री थी। विरक्त होकर कुवारीने दीक्षा ग्रहण की । (ह. पु/९२/४२)।

सुक्य--विजयार्घकी दक्षिण श्रेणीका एक नगर-दे. विद्याधर ।

सुकच्छ- पूर्व विदेहका एक क्षेत्र - दे, लोक/५/२ ।

सुकच्छि विजय — पूर्व विदेहस्य चित्रक्ट वक्षारिगरिका एक क्ट व उसका स्वामी देव — दे, लोक/र/४।

सुकुमाल चरित्र — आ सकलकीर्ति (ई. १४०६-१४४२) कृतः संस्कृत परावद्ध ग्रन्थ । (ती./१/३३२)

सुकेतुं म. प्र./११/१ तो. शावस्ती नगरीका राजा था (७२)। जुएमें सर्वस्व हारनेपर दीक्षा ग्रहणकर कठिन तप किया। (५२-८३) कता. चतुरता आदि गुणोंका निदान कर तान्तव स्वर्धमें देव हुआ। (८१) यह धर्म नारायणका पूर्वका दूसरा भव हैं – दे, धर्म।

सुकोशल — १. मध्यप्रदेश। अपरनाम महाकौसल। (म॰ पुः/प्र. ४८ पन्नालाल)। २. प. पुः/सर्ग/श्लोक राजा कीर्तिधरका पुत्र था। (२२/१६६)। मुनि (अपने पिता) की धर्मबाणी श्रवण कर दीक्षा ग्रहण कर ली (२२/४०)। तपश्चरण करते हुए की माताने शेरनी बन कर खा लिया (२२/६०)। जीवनके अन्तिम क्षणमें निर्वाण प्राप्त किया (२२/६८)।

मुख — मुख दो प्रकारका होता है — लौकिक व अलौकिक। लौकिक मुख विषय जितत होनेसे सर्वपरिचित है पर अलौकिक मुख इन्द्रियातीत होनेसे केवल विरागीजनोंको ही होता है। उसके सामने लौकिक मुख दुःख रूप ही भासता है। मोक्षमें विकल्पारमक ज्ञान व इन्द्रियोंका अभाव हो जानेके कारण यद्यपि मुखके भी अभावकी आशंका होती है, परन्तु केवलज्ञान द्वारा लोकालोकको युगपत जानने रूप परमञ्जाता द्रष्टा भाव रहनेसे वहाँ मुखकी सत्ता अवश्य स्वीकर-णीय है, वयोंकि निर्विकरण ज्ञान ही वास्तवमें मुख है।

सामान्य व छौकिक सुख निर्देश

१ | सुखके मेदोंका निर्देश ।

3

- २ | ठौकिक सुस्का छन्नण।
- ३ | छौकिक सुख वास्तवमें दुःख है।
- ४ | ठौकिक सुखको दुःख कह्नेका कारण।
- ५ | लौकिक सुख शत्रु है।
- ६ विषयों में सुख-दुः खकी कल्पना रुचिके अवीन है।
- सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टिके सुखानुभवमें अन्तर ।
 - --दे. मिथ्यादृष्टि/४/१।
- ७ | मुक्त जीवोंको छौकिक सुख दुःख नहीं होता।
- ८ । ठौकिक सुख बतानेका प्रयोजन ।
- सुखमें सम्यग्दर्शनका स्थान । —दे, सम्यग्दर्शन/1/४।
- * े छौकिक सुख दुःखमें वेदनीय कर्मका स्थान।
 - --बेदनीय/३।
- ९ 🕴 सुख व दुःखर्मे कथंचित् क्रम व अक्रम ।

२ अलौकिक सुख निर्देश

- १ अलौकिक सुबका लक्षण ।
- २ अन्याबाध सुखका लक्षण ।
- अतीन्द्रिय सुखसे क्या तात्पर्थ ।

I	*	अलाकक सुखका कारण वदनीय या आठी कर्मका
I		अभाव। —दे, मोक्ष/३/३।
	*	अन्याबाध सुखके अवरोधक कर्म । — दे, मोक्ष/३/३।
	8	सुख वहाँ है जहाँ दुःख्न हो।
Ì	ų	श्रान ही वास्तवमें सुख [े] है।
I		

- ६ अलौकिक सुखमें लौकिकसे अनन्तपनेकी कल्पना ।
- ७ | छद्मस्य अवस्थामें भी अस्त्रीकिक सुखका वेदन होता है।
- ८ सिद्धोंके अनन्त सुखका सङ्गाव।
- मोक्षमें अनन्त सुख अवश्य प्रकट होता है।

—दे, मोश्/६/२।

- सिद्धोंका सुख दुःखाभात्र मात्र नहीं है।
- १० सिद्धोर्मे सुखके अस्तित्वकी सिद्धि ।
- ११ कर्मों के अभावमें सुख भी नष्ट क्यों नहीं होता।
- १२ इन्द्रियोंके बिना सुख कैसे सम्भव है।
- १३ | अञ्जैकिक सुलको श्रेष्ठता ।
- १४ बलौकिक सुखकी प्राप्तिका उपाय ।
 - दोनों सुखोंका भोग एकान्तमें होता है।

--दे, भोग/७।

१. सामान्य व लौकिक मुख निर्देश

1. सुखके भेदीका निर्देश

- न, च. व./३१८ इंदियमणस्स प्समज आदत्थं तह्य सोक्ल चडभेयं।

 1३१८। सुल चार प्रकारका है इन्द्रियज, मनोत्पन्न, प्रशमसे

 उत्पन्न और आत्मोत्पन्न।
- न. च. व./१४ पर फुटनोट इन्द्रियजमतीन्द्रियं चेति सुखस्य द्वौ भेदौ । = इन्द्रियज और अतीन्द्रियज ऐसे सुखके दो भेद हैं।
- त. सा./=/४७ लोके चतुर्विहार्थेषु मुखशब्दः प्रयुच्यते । विषये वेदना-भावे विषाके मोक्ष एव च १४७। — जगत्में मुख शब्दके चार अर्थ माने जाते हैं —विषय, वेदनाका अभाव, पुण्यकर्मका फल प्राप्त होना, मुक्त हो जाना ।

२. लौकिक सुखका स्रक्षण

- स. सि./४/२०/१४१/= सुखमिन्द्रियार्थानुभवः।
- स. सि./५/२०/१८८/१२ सदसद्वेद्योदयेऽन्तरङ्गहेती सति बाह्यद्रव्यादि-परिपाकनिमित्तवशाहुरपद्यमानः प्रीतिपरितापरूपः परिणामः सुल-दु लिमिन्याख्यायते । च्हिन्द्रयोके विषयोके अनुभव करनेको सुल - कहते हैं (रा. वा./४/२०/३/२३६/१६) साता और असाता रूप अन्त-रंग परिणामके रहते हुए बाह्य द्रव्यादिके परिपाकके निमित्तसे जो प्रीति और परिताप रूप परिणाम उरपन्न होते हैं वे सुल और दुःख कहे जाते हैं। (रा. वा./६/२०/१/४०४/२२); (गो. जी./जी.प्र./६०६/ १०६२/१६)।
- न्या. वि./वृ./१/११४/४२८/२० पर उद्दध्त-सुखमाह्नादनाकारम् । = सुख आह्नाद रूप होता है ।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

- ध. १३/४,४,२४/५१/४ किंत्तक्खणमेत्थसुहं। सयलबाहाविरहलक्खणं। --सर्व प्रकारकी बाधाओंका दूर होना, यही प्रकृतमें (ईयापथ आस्रवके प्रकरणमें) उसका (सुखका) लक्षण है।
- ध. १३/५.५.६३/३३४/४ इट्टत्थसमागमो अणिट्टत्थिविजीगो च सह णाम । ---इष्ट अर्थके समागम और अनिष्ट अर्थके वियोगका नाम सुख है ।
- त. सा-/८/४८-४६ मुखो बहिः मुखो बाग्नुविषये ध्विह कथ्यते। दुःखा-भावे च पुरुषः मुखितोऽस्मीति भाषते।४८। पुण्यकर्मविपाकाच्च मुख-मिण्टेन्द्रियार्थजम् । . . । ४६। = १ शीत ऋतुमैं अभ्निका स्पर्श और ग्रीष्म ऋतुमैं हवाका स्पर्श मुखकर होता है। २. प्रथम किसी प्रकारका दुःख अथवा क्लेश हो रहा हो फिर उस दुःखका थोड़े समयके लिए अभाव हो जाये तो जीव मानता है मैं मुखो हो गया।४८। ३ पुण्य-कर्मके विपाकसे इष्ट विषयको प्राप्ति होनेसे जो मुखका संकल्प होता है, वह मुखका तीसरा अर्थ है।४६।
- दे. वेदनोय/ वेदनाका उपशान्त होना, अथवा उत्पन्न न होना, अथवा दुःखोपशान्तिके द्रव्योंकी उपलब्धि होना मुख है।

२. कीकिक सुख वास्तवमें दुःख है

- भ, आ, मू. /१२४८-१२४६ भोगोवभोगसोक्खं जं दुक्लं च भोगणा-सिम्म । एदेसु भोगणासे जातं दुक्लं पिडिविसिट्ठं ।१२४८ । देहे छुहादिमहिदे चले य सत्तस्स होज्ज कह सोक्लं । दुक्लस्स य पिड-यारो रहस्सणं चैव सोक्लं खु ।१२४६ । — भोगताधनात्मक इन भोगोंका वियोग होनेसे जो दुःल उत्पन्न होता है तथा भोगोपभोगसे जो सुल मिलता है, इन दोनोंमें दुःख ही अधिक समफना ।१२४८ । यह देह भूल, प्यास, शोत, उष्ण और रोगोंसे पीड़ित होता है, तथा अनित्य भी ऐसे देहमें आसक्त होनेसे कितना सुल प्राप्त होगा । अर क्ष सुलकी प्राप्त होगी । दुःल निवारण होना अथवा दुःलकी कमी होना ही सुल है, ऐसा संसारमें माना जाता है ।१२४६।
- प्र. सा./सू./६४, ७६ जेसि विसमेसु रदी तैसि दुनस्तं विमाण सन्भावं। जह तंण हि सन्भावं वावारो णित्य विसमत्थं।६४। सपरं वाधान सिह्य विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं। जं इंदिमेंहि तद्धं तं सोनस्तं दुक्तमेव तहा।७६। जिन्हें विषयों में रित है उन्हें दुःख स्वाभाविक जानो, नमों कि मदि बह दुख स्वभाव न हो तो विषमार्थमें व्यापार न हो।६४। जो इन्द्रियों से प्राप्त होता है वह सुख परसम्बन्ध मुक्त, बाधान सिहत विच्छिन्न, बन्धका कारण और विषम है, इस प्रकार वह दुःख ही है। (यो. सा. ख./३/३५); (पं. घ./७./२४६)।
- स्व. स्तो./३ शतहरोन्नेषचलं हि सौल्यं-तृष्णामयाप्यायन-मात्र-हेतुः। तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजसं तापस्तदायासयतीत्यवादीः।३१ —आपने पोडित जगवको उसके दु.लका निदान बताया है कि— इन्द्रिय विषय बिजलीकी चमकके समान चंचल है. तृष्णा रूपी रोगकी वृद्धिका एकमात्र हेतु है, तृष्णाकी अभिवृद्धि निरन्तर ताप उत्पन्न करती है, और वह ताप जगत्को अनेक दुःख परम्परासे पीड़ित करता है। (स्व. स्तो./२०,३१, ८२)।
- इ.ज./सू./६ वासनामात्रमेवैत्तसुलं दुःखं च देहिनास्। तथा ह्युद्वेजयन्त्येते भोगा रोगा इवापदि।६। ⇔संसारी जीवोंका इन्द्रिय सुख वासना मात्रसे जितित होनेके कारण दुःखरूप ही है, क्योंकि आपित कालमें रोग जिस प्रकार चित्तमें उद्वेग उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार भोग भी उद्वेग करनेवाले हैं।६।
- प्र. सा /त. प्र./११,६३ शिखितप्रघृतोपसिकपुरुषो दाहदु खिमत स्वर्गसुखबन्धमवाप्नोति।११। तहदुःखवेगमसहमानानां व्याधिसात्म्यतासुपगतेषु रम्येषु विषयेषु रतिरुपजायते। ततो व्याधिस्थानीयत्वादिन्द्रियाणां व्याधिसात्म्यसमत्वादिषयाणां च छद्मस्थानां न पारमार्थिकं सौरूयम्।६३। = जैसे अग्निसे गर्म किया हुआ घी किसी
 मनुष्य पर गिर जावे तो वह उसकी जलनसे दुःखी होता है, उसी
 प्रकार स्वर्गके सुखस्त बन्धको प्राप्त होता है। अर्थात् स्वर्ग ऐन्द्रियक

सुख-दु:ख ही है। ११। दु:खके वेगको सहन न कर सकनेके कारण उन्हें (संसारी जीवोंको) रम्य विषयोंमें रित उत्पन्न होती है। इस-तिए इन्द्रिय व्याधिके समान होनेसे और विषय व्याधि प्रतिकारके समान होनेसे खद्मस्थोंके पारमाधिक सुख नहीं है। १३।

- यो. सा./अ /२/३६ सांसारिकं मुखं सर्वं दु'खतो न विशिष्यते। यो नैव बुध्यते मूढः स चारित्री न भण्यते ।३६। = सांसारिक मुख-दु:ख ही हैं, सांसारिक मुख व दु:खमें कोई विशेषता नहीं है। किन्तु मूढ़ प्राणी इसमें भेद मानता है वह चारित्र स्वरूप नहीं कहा जाता ।३६। (पं. वि./४/७३)।
- का. आ./मू./६१ देवाणं पिय मुक्खं मणहर-विसएहिं कीरदें जित हि। निसय-वसं जं मुक्खं दुक्खस्स विकारणं तं पि ।६१। =देवोंका मुख मनोहर विषयोंसे उत्पन्त होता है, तो जो मुख विषयोंके अधीन है वह दुःखका भी कारण है।६१।
- दे 'परिग्रहः/४/३ परिग्रह दुःख व दुःखका कारण है।
- पं. ध./२६८ रेहिकं यत्मुखं नाम सर्वं वैषधिकं स्मृतस्। न तत्मुखं मुखाभासं किंतु दुःखमसं शयस्।२३८। = जो लौकिक मुख है, वह सब इन्द्रिय विषयक माना जाता है, इसलिए वह सब केवल मुखा-भास ही नहीं है, किन्तु निस्सन्देह दुःखरूप भी है।२३८।

४. छौकिक सुखको दुःख कहनेका कारण

स, सि./७/१०/३४६/३ ननु च तत्सवं न दुःखमेव; विषयरतिमुल-सद्भावात् । न तत्मुलस्: वेदनाप्रतीकारत्वात्कच्छ्रकण्ड्यमवत् । =प्रश्न-ये हिंसादि सबके सब केवल दुःखरूप ही हैं, यह बात नहीं है, क्योंकि विषयोंके सेवनमें मुख उपलब्ध होता है ! उत्तर-विषयोंके सेवनसे जो मुलाभास होता है वह मुख नहीं है, किन्तु दादको खुजलानेके समान केवल वेदनाका प्रतिकारमात्र है ।

५. लौकिक सुख शत्रु हैं

भ. आ./मू./१२७१ दुवलं उप्पादिता पुरिसा पुरिसस्स होदि जिद सत्त् । अदिदुवलं कदमाणा भोगा सत्त् किह ण हुंती ।१२७१। च्दुःख उत्पन्न करनेसे यदि पुरुष पुरुषके शत्रुके समान होते हैं, तो अतिशय दुःख देनेवाले इन्द्रिय मुख क्यों न शत्रु माने जायेंगे। (अर्थाद् लौकिक मुख तो शत्रु हैं हो)।

विषयों में सुख-दुःखकी कल्पना रुचिके अधीन है

- क. पा./१/१,१३-१४/६२२०/गा. १२०/२७२ तिक्ता च शीतलं तीयं पुत्र(दर्मुद्रिका-(मृद्रीका-) फलम् । निम्बक्षीरं ज्वरार्तस्य नीरोगस्य गुडादयः ।१२०।
- क. पा./१/१,१३--१४/६ २२२/चूर्ग सूत्र/२७४ 'संगह-नवहाराणं सुदस्स च सटबंद ३वं पेउजं।' जंकि चिद्व वर्ष गाम तंस ३वंपेउजं चेत्र; कस्स वि जीवस्स कम्हि वि काले सञ्बदञ्बाणं पेजाभावेण बट्टमाणाणाणमुबस्तंभादो । तं जहा, निसं पि पेज्जं, निमुप्पण-जीवाणं को दियाणं भरणमार णिच्छाणं च हिद-सुह-पियकारण-सादो । एवं पत्थरतर्णिधणग्गिच्छुहाईणं जहासंभवेण पेजाभावो बत्तव्यो । . . विवेकमाणाणं हरिभुष्पायणेण तत्थ (परमाणुम्मि) पि पेज्जभाबुवलंभादो । = १, पित्त ज्वर वालेको कुटकी हित द्रव्य है, प्यासेको ठण्डा पानी सुख रूप है, किसीको पुत्रादि प्रिय दन्य हैं, पित्त-ज्वरसे पीड़ित रोगीको नीम हित और प्रिय द्रव्य है. दूध मुख और प्रिय द्रव्य है। तथानीरोग मनुष्यको गुड़ आ दिक हित, सुल और प्रिय द्रव्य हैं।१२०। २. संग्रह व्यवहार और ऋजुसूत्रकी अपेक्षा समस्त द्रवय पेजलूप हैं। जगमें जो कुछ भी पदार्थ हैं वे सब पेजा ही हैं, क्यों कि किसी न किसी जीवके किसी न किसी कालमें सभी द्रव्य पेजारूप पाये जाते हैं। उसका स्पष्टी-करण इस प्रकार है — निष भी पेजा है, क्यों कि विषमें उरपन्न हुए

जीवोंके, कोड़ो मनुष्योंके और मरने तथा मारनेकी इच्छा रखने वाले जीवोंके विष कमसे हित, सुख और प्रिय भावका कारण देखा जाता है। इसो प्रकार पत्थरे, घास, ईंधन, अग्नि और सुधा आदिमें जहाँ जिस प्रकार पेज्ज भाव घटित हो वहाँ उस प्रकारसे पेज्ज भावका कथन कर लेना चाहिए। ...परमाणुको विशेष रूपसे जानने वाले पुरुषोंके परमाणु हर्षका उत्पादक है।

दे. राग/२/५ मोहके कारण हो पदार्थ इष्ट अनिष्ट है।

पं, ध्राप्तार्पः सहयं वैषयिकिमदं परिमह तदिप न परत्र सापेक्षम्। सित बहिरथेंऽपि यतः किल केषां चिदसुखादिहेतुस्वाद् । ६८१ = यहाँ पर यह संसारी सुख केवल वैषयिक है, तो भी पर विषयमें सापेक्ष नहीं है, क्यों कि निश्चयसे बाह्य पदार्थों के होते हुए भी किन्हीं को वे असुखादिके कारण होते हैं । ६८३।

७. मुक्त जीवोंको छौकिक सुख-दुःख नहीं होते

- प्र. सा./मू./२० सोक्खं वा पुण दुक्खं केवलणाणिस्स णरिथ देहगई। जम्हा अदिदियत्तं जादं तम्हा दु तं णेयं १२०। —केवलज्ञानीके शरीर सम्बन्धी सुख या दुःख नहीं है, क्योंकि अतीन्द्रियता उत्पन्न हुई है, इसिलए ऐसा जानना चाहिए १२०।
- घ. १/१,१,३३/गा. १४०/२४८ ण वि इंदिय-करण-जुदा अवग्गहादीहि गाह्या अत्थे। णेव य इंदिय-सोवला अणिदियाणंत-णाण-भुहा।१४०। —वे सिद्ध जीव इन्द्रियोंके व्यापारसे युक्त नहीं हैं, और अव-ग्रहादि क्षायोपशमिक ज्ञानके द्वारा पदार्थोंका ग्रहण नहीं करते; उनके इन्द्रिय भुख भी नहीं है। क्योंकि उनका अनन्त ज्ञान व मुख अनिन्द्रिय है।१४०। (गो. जी./मू./१७४)।
- स्या, म./८/८६/३ मोक्षावस्थायाम्, सुखं तु वैषयिकं तत्र नास्ति। —मोक्ष अवस्थामें वैषयिक सुख भो नहीं है।

८. लोकिक सुख बतानेका प्रयोजन

द्र. सं./टी./१/२३/१० अत्र यस्यैव स्वाभाविकमुखामृतस्य भोजना-भावादिन्द्रियमुखं भुञ्जानः सन् संसारे प्रिश्नमित तदेवातीन्द्रिय-मुखं सर्वप्रकारेणोपादेयमित्यभित्रायः। = यहाँ पर जिस स्वाभाविक मुखामृतके भोजनके अभावते आत्मा इन्द्रियोंके मुखोंको भोगता हुआ संसारमें भ्रमण करता है, वही अतीन्द्रिय मुख सब प्रकारसे ग्रहण करने योग्य है, ऐसा अभित्राय है।

९. सुख व दुःखमें कथंचित् क्रम व अक्रम

र्षं, घ./उ./३३३-३३६ न चैकतः सुलव्यक्तिरेकतो दुःखमस्ति तत्। एकस्यैकपदे सिद्धमित्यनेकान्तवादिनाम् ।३३३। अनेकान्तः प्रमाणं स्यादर्थादेकत्र वस्तुनि। गुणपर्याययोद्धैतात् गुणमुल्यव्यवस्थया ।३३४। अभिव्यक्तिस्तु पर्यायरूपा स्यादम्खदुख्योः। तदात्वे तन्न तद्धद्वैतं हैतं चेद्द द्वव्यतः वबचित् ।३३६। च्यह कहना ठीक नहीं कि एक खारमाके एक ही पदमें अनेकान्तवादियोंके अंगीकृत किसी एक दृष्टिसे मुखकी व्यक्ति और किसी एक दृष्टिसे दुःख भी रहता है ।३३३। वास्तवमें एक वस्तुमें गौण और मुल्यकी व्यवस्थासे गुण पर्यायोंमें हैत होनेके कारण अनेकान्त प्रमाण है ।३३४। परन्तु सुख और दुःखकी अवस्थामें वे दोनों युगपत् होती है इसलिए उस सुख और दुःखकी अवस्थामें वे दोनों युगपत् नहीं रह सकते। यदि उनमें युगपत् हैत रहता है तो दो भिन्न द्वव्योंमें रह सकते। यदि उनमें युगपत् हैत रहता है तो दो भिन्न द्वव्योंमें रह सकते। वि उपियोंमें नहीं ।३३६।

२. अलौकिक मुख निर्देश

१. अलौकिक सुखका लक्षण

म. पु./४२/११६···मनसो निवृितं सौरूयम् उशन्तीह विचक्षणाः ।११६।
--पिंडत जन मनकी निराकुत्तताको ही सुख कहते हैं। (प्र. सा /
त, प्र./५६)।

- न, च, वृ./३६८००० अनुभवनं भवत्यात्मार्थम् ।३६८। = आत्मार्थमुख आत्मानुभव रूप है । (स्या, म./८/८६/१) ।
- उ. सा./</४६ कर्मवलेशिवमोक्षाच मोले सुखमनुत्तमम्। कर्म जन्य क्लेशोंसे छूट जानेके कारण मोक्ष अवस्थामें जो सुख होता है, वह अनुपम सुख है।
- यो. सा. यो./१७ विजय सयल-वियप्पइं परम-समाहि लहंति। जं विद्दिं साणंदु कि वि सो सिव-सुवल भणंति।१७। रूजो समस्त विकरपोंसे रहित होकर परम समाधिको प्राप्त करते हैं, वे आनन्द का अनुभव करते हैं, वह मोक्ष सुल कहा जाता है।१७।
- झा./२०/२४ अपास्य करणं बामं यदारमन्यात्मना स्वयम् । सेव्यते योगिभिस्तद्धि मुखनाध्यात्मिकं मतम् ।२४। क्लो इन्द्रियोंके विषयोंके विना ही अपने आत्मामें आत्मासे ही सेवन करनेमें आता है उसको ही योगीश्वरोंने आध्यात्मिक मुख कहा है ।२४।

२. अञ्याबाध सुखका रुक्षण

द्र, सं./टो./१४/४३/१ सहजशुद्धस्वरूपानुभवसमुत्पन्नरागादिविभाव-रहितमुलामृतस्य यदेकदेशसंवेदमं कृतं पूर्वं तस्यैव फलभूतमव्या-नाधमुलं भण्यते। स्त्वाभाविक शुद्ध आत्म स्वरूपके अनुभवसे उत्पन्न तथा रागादि विभावोसे रहित मुलक्ष्पी अमृतका जो एक देश अनुभव पहले किया था, उसीके फलस्वरूप अव्यावाध अमन्त-मुख गुण सिद्धोंमें कहा गया है।

३. अतीन्द्रिय सुखसे क्या तात्पर्य

स.सा./आ /४१४/४१०/७ हे भगवन् ! अतीन्द्रियसुखं निरन्तरं व्याख्यातं भवद्भिस्तच जनैर्न ज्ञायते । भगवानाह-कोऽपि देवदत्तः स्त्री-सेवनाप्रभृतिपञ्चे न्द्रियविषयञ्यापारर हितप्रस्तावे निञ्यक्तिस्ताः तिष्ठति, स केनापि पृष्टः भो देवदत्तः मुखेन तिष्ठसि त्वमिति । वेनोक्त सुखमस्तीति तरसुखमतीन्द्रियम् ।---यरपुनः---समस्तविकरूप-जालरहितानां समाधिस्थपरमयोगिनां स्वस वेदनगम्यमतीन्द्रिय-मुख तद्विरोषेणेति । यच मुक्तारमनामतीः न्द्रियमुखं तदनूमानगम्य-मागमगस्य च। =प्रश्न-हे भगवत्। आभने निरन्तर अतीन्द्रिय ऐसे मोक्ष सुखका वर्णन किया है, सो ये जगत्के प्राणी अतीन्द्रिय मुखको नहीं जानते हैं! इन्द्रिय मुखको ही मुख मानते हैं! उत्तर – जैसे कोई एक देवदत्त नामक व्यक्ति, स्त्री सेवन आदि पंचिन्द्रिय व्यापारसे रहित, व्याकुल रहित चित्त अकेना स्थित है उस समय उससे किसोने पूछा कि है देवदत्त. तुम सुखी हो, तन उसने कहा कि हाँ मुखसे हूँ। सो यह मुख अतीन्द्रिय है। (क्यों कि उस समय कोई भो इन्द्रिय विषय भोगा नहीं जा रहा है।) ···और जो समस्त विकल्पं जालसे रहित परम समाधिमें स्थितः परम योगियोंके निर्विकल्प स्वसंवेदनगम्य वह अतीन्द्रिय सुख विशेषतासे होता है। और जो मुक्त आत्माके अतोन्द्रिय सुख होता है, वह अनुमानसे तथा आगमसे जाना जाता है। (प्रा/-री-/२/६) ।

४. सुख वहाँ है जहाँ दुःख न हो

आ। अनु,/४६ स धर्मी यत्र नाधर्मस्तत्सुखं यत्र नासुखम्। ... ।४६। ज्यमं वह है जिसके होने पर अधर्म न हो, सुख वह है जिसके होने पर दुःख न हो...।

पं, घ./उ./२२४ नैवं यतः सुखं नैतत् तत्सुखं यत्र नासुखम्। स धर्मो यत्र नाधर्मस्त च्छ्रमं यत्र नाशुभम्।२४४। च ऐहिक सुख नहीं है, क्यों कि वास्तवमं वही सुख है, जहाँ दुःख नहीं, वही धर्म है जहाँ अधर्म नहीं है, वही शुभ है जहाँ पर अशुभ नहीं है।

५. ज्ञान ही वास्तवमें सुख है

प्र. सा./स्./६० जं केवलं ति णाणं तं सोवलं परिणामं च सो चेव। खेदो तस्स ण भणिदो जम्हा घादी खयं जादा।६०। = जो 'केवलं नामका ज्ञान है, वह सुख है, परिणाम भी वही है। उसे खेद नहीं कहा गया है, वयों कि घाती कर्म क्षयको प्राप्त हुए हैं।६०।

स. सि./१०/४/४६८/१३ झानमयत्वाच मुखस्येति। = मुख झानमय

होता है।

६. अस्रौकिक सुखमें स्रौकिकसे अनन्तपने की कस्पना

भ, आ./मू./२१४८-२१५१ देविदचक्क बट्टी इंदियसीक्तं च जं अणुवर्हति।
सहरसरूव गंध फिरिस प्यमुत्तमं लोए।२१४८। अव्यावाधं च सुहं
सिद्धा जं अणुहवंति लोगगो। तस्स हु अणंतभागो इंदियसोक्तं
तयं होज्ज।२१४६। जं सव्वे देवगणा अच्छरसिह्या सुहं अणुहवंति।
तत्तो वि अणंतगुणं अव्यावाहं सुहं तस्स १२१६०। तिसु वि कालेसुं
सुहाणि जाणि माणुसिति स्ववंवाणं। सव्वाणि ताणिण समाणि
तस्स खणमित्तसोक्षेत्रण १२१६१। = स्वर्श, रस, गन्ध, रूप, राष्ट्रं
इत्यादिकोंसे जो सुख देवेन्द्र चक्रवर्ती वगैरहको प्राप्त होता है, जो
कि इस लोक में श्रेष्ठ माना जाता है, वह सुख सिद्धोंके सुखका
अनन्तवाँ हिस्सा है, सिद्धोंका सुख बाधा रहित है, वह उनको
लोकायमें प्राप्त होता है।२१४८-२१४६। अप्सराओंके साथ जिस
सुखका देवगण अनुभव करते हैं, सिद्धोंका सुख उससे अनन्त गुणित
है, और वाधा रहित है।२१४०। तीन काल में मनुष्य, तिर्यंच और
देवोंको जो सुख मिलता है वे सब मिलकर भी सिद्धके एक क्षणके
सुखकी भी बरावरी नहीं करते।२१६१। (का,/४२/६४-६५)

मृ. आ./११४४ जंच कामग्रहं लोए जंच दिव्वमहाग्रहं। वीतराग-मुहस्सेरे जंतभागंपि जग्धई।११४४। - लोकमें विषयोंसे जो उत्पन्न मुख है, और जो स्वर्गमें महा मुख है, वेसब बीतराग मुखके अनन्तवें भागकी भी समानता नहीं कर सकते हैं।११४४। (ध. १२/६,४,२४/

गा- ५/५१)

प. म./म् /१/११७ जं भुणि लहइ अणंत-सुहु णिय अप्पा भायंतु। तं सुह इंद नि णिन लहइ देनिहिं कोडि रमंतु।११७। -अपनी आत्मा-को ध्यावता परम सुनि जो अनन्तसुख पाता है, उस सुखको इन्द्र भी करोड़ देनियोंके साथ रहता हुआ नहीं पाता।११७।

ज्ञा./२१/३ यरसुलं वीतरागस्य मुनेः प्रशमपूर्वकस्। न तस्यानन्तभागोऽपि
प्राप्यते त्रिदरोष्ट्यरैः १३। = जो सुल वीतराग मुनिके प्रशमरूप विशुद्धता पूर्वकहै उसका अनन्तर्गे भाग भी इन्द्रको प्राप्त नहीं

होता है।३।

त्रि. सा./१६० चिक्ककुरुफणिसुंदिदेवहमिदे जं सुहं तिकालभवं। तत्तो अणंतगुणिदं सिद्धाणं खणसुहं होदि।१६०। = चक्रवर्ती, भोगभूमिज, धरणेन्द्र, देवेन्द्र और ब्रहमिन्द्रके; इनके क्रमशः अनन्तगुणा अनन्तगुण सुल है। इन सबका त्रिकालमें होने वाला अनन्त सुख एक जित करने पर भी सिद्धोंके एक क्षणमें होने वाला सुख अनन्त गुणा है।१६०। (बो. पा./टी./१२/८२ पर उद्दश्त)

७. छन्नस्थ अवस्थामें मी अलीकिक सुखका वेदन होता है

दे. अनुभव/४/३ आत्मरत होने पर तेरे अवश्यमेव वचनके अगोचर अनन्त मुख होगा।

प. प्र./मू./१/११८ अप्पा दंसणि जिणबरहेँ जं मुहु होइ अणंतु । तं मुहु
लहइ विराउ जिउ जाणंतउ सिउ संतु ।११८। —शुद्धात्माके दर्शतमें
जो अनन्त मुख जिनेश्वर देवोंके होता है, वह मुख वीतराग भावनासे
परिणत हुआ मुनिराज निजशुद्धात्मस्वभावको तथा रागादि रहित
शान्त भावको जानता हुआ पाता है ।११८।

- न. च. वृ /४०३ सोक्षं च परागसोक्षं जीवे चारित्तसंजुदे दिट्ठं। वहुइ तां जहवागे अणवरयं भावणालीणे ।४०३। व्चारित्रसे संयुक्त तथा भावना लीन यतिवर्धमें निरन्तर परम मुख देखा जाता है।
- पं . वि./२३/३ एकत्वस्थितये मतिर्यदिनशं संजायते मे तयाप्यानन्दः परमात्मसंनिधिगतः किचित्समुन्मीलति । किचित्कालमवाध्य सैव सकलैः शिलेर्गुणैराशितां । तामानन्दकलां विशालविलसङ्बोधी किच्यत्यसौ ।३। = एकत्वकी स्थितिके लिए जो मेरी निरन्तर बुद्धि होती है, उसके निमित्तसे परमात्माकी समीपताको प्राप्त हुआ आनन्द कुछ थोड़ा सा प्रकट होता है। वही बुद्धि कुछ काल प्राप्त होकर समस्त शीलों और गुणोंके आधारभूत एवं प्रकट हुए उस विपुत्त हुतनसे सम्पन्न आनन्दकलाको उत्पन्न करेगी ।३।

स्या, म./=/८७/२४ इष्टापि विषयनिवृत्तिजं सुखमनुभवसिद्धमेव। म संसार अवस्थामें भी विषयोंकी निवृत्तिसे उत्पन्न होने बाला सुख अनुभवसे सिद्ध है।

प. प्र./टी./१/११ दीक्षाकाले · · · स्वशुद्धारमामुभवने यत्सु खं भवति जिनवराणां वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरतौ जीवस्तत्सु खं नभत इति । च्दीक्षाके समय तीर्थं कर देव निज शुद्ध आत्माको अनुभवते हुए जो निर्विकल्प सुखको पाते हैं, वही सुख रागादि रहित निर्विकल्प समाधिमें जीन विरक्त सुनि पाते हैं। (और भी दे. सुख/१/१०)

८. सिद्धोंके अनन्त सुखका सद्भाव है

रा.वा./१०/४/१०/६४३/१८ यस्य हि मूर्तिरस्ति तस्य तःपूर्वकः प्रोतिपरि-तापसंबन्धः स्यात्, न चामूर्तानां मुक्तानां जन्ममरणद्वन्द्वोपनिपात्-व्याबाधास्ति, अतो निव्याबाधत्वात् परमस्रुखिनस्ते । स्मृत् अवस्थामें ही प्रीति और परितापकी सम्भावना थी । परन्तु अमूर्त ऐसे मुक्त जीवोंके जन्म, मरण आदि द्वन्द्वोंकी बाधा नहीं है । पर सिद्ध अवस्था होंनेसे वे परम सुखी हैं ।

ध. १/१,१,१/गा. ४६/४२ अदिसयमाद-समुत्थं विसयादीदं अणोवम-मणंतं । अव्वुच्छिल्णं च सुहं सुद्धुवजोगो य सिद्धाणं ।४६। ०० अति-शय रूप आदमासे उत्पन्न हुआ, विषयोंसे रहित, अनुपम, अनन्त और विच्छेद रहित सुख तथा शुद्धोपयोग सिद्धोंके होता है।४६।

घ. १/१.१.३३/गा. १४०/२४८ णेव य इंदियसोक्खा अणिदियाणंत-णाण-मृहा ।१४०। = सिद्ध जीवोंके इन्द्रिय मुख भी नहीं हैं, क्योंकि उनका अनन्त ज्ञान और अनन्त मुख अनिन्द्रिय है। (गो. जी./ मृ./१७४)

त. सा./=/४६ संसारिवषयातीतं सिद्धानामव्ययं मुख्यः। अव्यावाध-मिति प्रोक्तं परमं परमार्षभिः। ४६। = सिद्धोका मुख संसारके विषयों-से अतीत, स्वाचीन, तथा अव्यय होता है। उस अविनाशी मुखको अव्यावाध कहते हैं। ४६।

स्या.म./=/=६/३ पर उद्दश्चत रलोक — मुखमात्यन्तिकं यत्र बुद्धिमाह्यमती -नित्रयम् । तं नै मोशं विजानीयाद् दुष्प्रापमकृतात्मभिः । = जिस अवस्थामें इन्द्रियोंसे नाहा केवल बुद्धिसे प्रहण करने योग्य आत्यन्तिक मुख विद्यमान है वही मोश है ।

स्या. म./=/८१/४ मोक्षे निरतिशयक्षयमनपेक्षमनन्तं च सुखं तद्द बाढं विचते । = निरतिशय, अक्षय और अनन्त सुख मोक्षमें विचमान है।

९. सिद्धोंका सुख दुःखाभाव मात्र नहीं है

ध, १३/५.६,१६/२०=/= किमेरथ मुहमिदि घेप्पदे। दुक्खुवसमो मुहं
णाम। दुक्खक्तओ मुहमिदि किण्ण घेप्पदे। ण, तस्स कम्मक्खएणुप्पच्चमाणस्स जीवसहावस्स कम्मजणिदत्तविरोहादो।=प्रश्न-पृत्तमें (वेदनीयकर्म जन्य मुख प्रकरणमें) मुख शब्दका क्या अर्थ लिया
गया है। उत्तर-प्रकृतमें दुःखके उपशम रूप मुख लिया गया है।
प्रश्न-दुःखका क्षय मुख है, ऐसा क्यों नहीं प्रहण करते। उत्तर-नहीं,

क्योंकि, वह कर्मके क्षयसे उरपन्न होता है। तथा वह जीवका स्वभाव है, अतः उसे कर्म जनित माननेमें विरोध आता है।

स्या, म./८/८६/४ न चार्ण मुखशब्दो दुःखाभावमात्रे वर्तते । मुख्यमुख-बाच्यतायां बाधकाभावात । अयं रोगाइ विप्रमुक्तः सुखी जात इत्यादिवाक्येषु च सुखोति प्रयोगस्य पौनरुक्त्यप्रसङ्गाच्च । दुःखाभाव-मात्रस्य रोगाइ विष्रमुक्त इतीयतैव गतःखात्। न च भवदुदीरितो मोक्षः पुंसामुपादेयतया संमतः। को हि नाम शिलाकन्पमपगतसकल-भुलसंबेदनमात्मानमुपपादयित्ं यतेत । दुःलसंबेदनरूपत्वादस्य मुख-दुःलयोरेकस्यामावेऽपरस्यावश्यंभावात् । अतः एव खदुपहासः श्रूयते-वरं वृत्दावने रम्ये क्रोब्ट्रत्वमभिवाध्वितम्। न तु वैशेषिकी मुक्ति गौतमो गन्तु मिच्छति। =यहाँ पर (मोक्षमें) मुलका अर्थ केवल बुःलका अभाव ही नहीं है। यदि सुलका अर्थ केवल दुःलका सभाव ही किया जाये, तो 'यह रोगी रोग रहित होकर मुखी हुआ है' आदि वास्योंमें पुनरुक्ति दोष आना चाहिए। क्योंकि उक्त सम्पूर्ण वास्य न कहकर 'यह रोगी रोग रहित हुआ है', इतना कहनेसे ही काम चल जाता है। तथा शिलाके समान सम्पूर्ण मुखोंके संवेदनसे रहित वैशेषिकोंकी सुक्तिको प्राप्त करनेका कौन प्रयत्न करेगा। क्योंकि वैशेषिकोंके अनुसार पाषाणकी तरह मुक्त जीव भी मुखके अनुभवसे रहित होते हैं। अतएव मुखका इच्छुक कोई भी प्राणी वैशेषिकोंकी मुक्तिकी इच्छान करेगा। तथा यदि मोक्षमें मुखका अभाव हो, तो मोक्ष दुःख रूप होना चाहिए। क्यों कि मुख और दुःखर्ने एकका अभाव होने पर दूसरेका सङ्गाव अवश्य रहता है। कुछ लोगोंने वैशेषिकोंकी मुक्तिका उपहास करते हुए कहा है, ''गौतम ऋषि वैशेषिकोंकी मुक्ति प्राप्त करनेकी अपेक्षा बृन्दावनमें शृगाल होकर रहना अच्छा समभते हैं।"

रा. वा./१०/१/१४/उद्धत श्लो० २४-२१/६५० "स्यादेतदश्ररीरस्य जन्तोर्नष्टाष्टकर्मणः। कथं भवति मुक्तस्य सुखमित्यत्र मे कृणु ।२४। लोके चतुर्ष्विहार्थेषु मुखशब्दः प्रयुज्यते । विषये वेदनाभावे विपाके मोक्ष एव च १२५। मुखो वहिः मुखो वायुविषयेष्टिक कथ्यते। दु खाभावे च पुरुषः सुखितोऽस्मीति भाषते ।२६। पुण्यकर्म विपाकाच्च मुखमिष्टेन्द्रियार्थजम् । कर्मक्लेशविमोक्षाच्च मोक्षे मुखमनुत्तमम् ।२७। मुषुप्तावस्थया तुल्यां केचिदिच्छन्ति निवृतिम्। तद्युक्तं किया-वत्त्वात् सुखानुशयतस्तथा ।२८। श्रमक्तममदव्याधिमदनेभ्यश्च संभ-वातः । महोत्पत्तिर्विषाकाच्च दर्शनध्नस्यकर्मणः । = प्रश्न - अशरीरी नष्ट अष्टकर्मा मुक्त जीवके केंसे क्या मुख होता होगा ! उत्तर-लोकर्में सुख शब्दका प्रयोग विषय वेदना का अभाव, विपाक, कर्मफल और मोक्ष इन चार अथीं में देखा जाता है। 'अग्नि मुखकर है, बायु मुख-कारी है। इत्यादिमें मुख शब्द विषयार्थ क है। रोग आदि दुःखोंके अभावमें भी पुरुष 'मैं सुखी हूँ' यह सममता है। पुण्य कर्मके विपाकमे इष्ट इन्द्रिय विषयोंसे मुखानुभूति होती है और क्लेश के विमोक्षसे मोक्ष का अनुपम सुख प्राप्त होता है 123-२७। कोई इस मुखको मुखुप्त अवस्थाके समान मानते हैं, पर यह ठीक नहीं है, नयों कि उसमें मुखानुभव रूप क्रिया होती है और मुपुप्त अवस्था तो दर्शनावरणी कर्मके उदयसे श्रम, वलम, मद, व्याधि, काम आदि निमित्तोंसे उत्पन्न होती है और मोह विकार रूप है। १८--२६।

३०. सिद्धोंमें सुखके अस्तित्व की सिद्धि

- आ, अनु,/२६७ स्वाधीन्याइदुः लमण्यासी स्मुखं यदि तपस्विनास्। स्वाधीनमुखसंपन्ना न सिद्धाः मुखिनः कथम् = तपस्वी जो स्वाधीनता पूर्वक कायक्लेश आदिके कहको सहते हैं वह भी जब उनको मुखकर प्रतीत होता है, तब फिर जो सिद्ध स्वाधीन मुखसे सम्पन्न हैं वे मुखी कैसे न होंगे अर्थात अवश्य होंगे।
- दे. मुख/र/३ इन्द्रिय व्यापारसे रहित समाधिमें स्थित योगियों को

- वर्तमानमें मुख अनुभव होता है और सिटोंको मुख अनुमान और आगमसे जाना जाता है।
- पं. घ/३०/३४८ अस्ति शुद्धं सुखं ज्ञानं सर्वतः कस्यच्चिथा। देश-तोऽत्यस्मदःदीनां स्वादुमात्रं वत द्वयोः ।३४८। — जैसे किसी जीवके सर्वथा सुख और ज्ञान होने चाहिए वयों कि खेद है कि हम लोगोंके भी उन शुद्ध सुख तथा ज्ञानका एकदेश रूपसे अनुभव मात्र पाया जाता है। (अर्थात् जब हम लोगोंमें शुद्ध सुख का स्वादमात्र पाया जाता है तो अनुमान है किसीमें इनकी पूर्णता अवश्य होनी चाहिए)।३४८।

११. कर्मोंके अभावमें सुख भी नष्ट क्यों नहीं होता

ध, ६/३६/-३६/४ मुह दुक्लाई कम्मेहितो होति, तो कम्मेमु विणट्ठेमु
सुह-दुक्लवज्जएण जीवेण होद्दर्भ 1...जं कि पि दुक्लं णाम तं
असादावेदणीयादो होदि, तस्स जीवसल्वन्ताभावा 1...मुहं पुण ण
कम्मादो उप्पक्षदि, ...ण सादावेदणीयाभावो वि, दुक्लुवसमहेउमुद्द्वसंपादणे तस्स बावारादो । — प्रश्न—यदि मुख और दुःल कमौंसे होते
हैं तो कमौंके विनष्ट हो जाने पर जीवको मुख और दुःल से रहित हो
जाना चाहिए ! उत्तर—दुःल न(मकी जो कोई भी वस्तु है वह असाता
वेदनीय कमीके उदयसे होती है, क्योंकि वह जीवका स्वस्प नहीं
है 1...किन्तु मुल कमी उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि वह जीवका
स्वभाव है (...मुलको जीवका स्वभाव मानने पर साता वेदनीय कर्म
का अभाव भी प्राप्त नहीं होता, क्योंकि, दुःल उपशानन के कारणभूत
मुद्दव्योंके सम्पादनमें साता वेदनीय कर्मका व्यापार होता है।

१२. इन्द्रियोंके बिना सुख कैसे सम्भव है

- द्र. सं./टी./३०/१५१/४ इन्द्रियसुखमेव सुलं, मुक्तात्मनामिन्द्रियश्ररीरा-भावे पूर्वोक्तमतीन्द्रियसुखं कथं घटत इति । सांसारिकसुखं तावत् स्त्रीसेवनादि पञ्चेन्द्रियविषयप्रभवमेव, यत्पुनः पञ्चेन्द्रियविषय-व्यापाररहितानां निव्योकुलंचितानां पुरुषाणां सुखं तदतीन्द्रिय-सुलमनेव दश्यते ।...निर्विकलपसमाधिस्थानां परमयोगिनां रागादि-रहितत्वेन स्वसंवेशमारमसुखं त द्वेषेणातीन्द्रियम् । -प्रश्न-जो इन्द्रियोंसे उत्पन्न होता है वही सुख है, सिद्ध जीवोंके इन्द्रियों तथा शरीरका अभाव है, इस लिए पूर्वोक्त अतीन्द्रिय सुख सिद्धोंके कसे हो सकता है ! उत्तर-संसारी सुख तो ख्रीसेवनादि पाँचों इन्द्रियोंसे ही उत्पन्न होता है, किन्तु पाँचों इन्द्रियोंके व्यापारसे रहित तथा निव्याकुल चित्त वाले पुरुषोंको जो उत्तम सुख है वह अतीन्द्रिय है। वह इस लाकमें भी देखा जाता हैनिर्विकलप ध्यानमें स्थित परम योगियोंके रागादिके अभावसे जो स्वसंवेद्य आत्मिक सुख है, वह विशेष रूपसे अतीन्द्रिय है।
- प्र. सा./मू./६१ पप्पा इट्ठे निसये फासेहि समस्सिदे सहावेण (परिणम-माणो अप्पा सयमेन सुहं ण हवदि देहो ।६५। = स्पर्शादिक इन्द्रियाँ जिसका आश्रय लेती हैं, ऐसे इष्ट निषयोंको पाकर (अपने अशुद्ध) स्वभावसे परिणमन करता हुआ आत्मा स्वयं ही सुख रूप होता है। देह सुख रूप नहीं होती। (त. सा./८/४२-४४)
- वे. प्रत्यक्ष/२/४ में. प्र. सा॰ यह आरमा स्वयमेव अनाकुलता लक्षण मुख होकर परिणमित होता है। यह आरमाका स्वभाव हो है।
- त. अनु । १४१-२४६ नमु चासै स्तदर्थानामनु भोक्तुः सुर्वं भवेत् । अती-न्द्रियेषु सुक्तेषु मोक्षे तरकी इशे सुलम् । २४०। इति चेन्मन्यसे मोहात्तन्न श्रेयो मतं यतः । नाचापि वत्स ! त्वं वेत्सि स्वरूपं सुखदुःखयोः । २४१। आत्मायंत्वं निरावाधमती न्द्रियमनत्त्वरम् । घातिकर्मक्षयोद्द-भूतं यत्त्वन्मोक्षसुखं विदुः । २४२। तन्मोहस्येव माहात्त्यं विषयेभयोऽपि यत्तुखम् । यत्पटोलमपि स्वादु श्लेष्मणस्तद्विजृम्भितम् । २७६। यदत्र चक्रिणां सौर्व्यं यच्च स्वर्षे दिवीकसाम् । कल्यापि न तत्तुष्यं

सुलस्य परमातमाम् १२४६। =प्रश्न—सुल तो इन्द्रियोंके द्वारा उनके विषय भोगनेवालेके होता है, इन्द्रियोंसे रहित मुक्त जीवोंके वह सुल कैसे ! उत्तर—हे वरस, तू जो मोहसे ऐसा मानता है वह तेरी मान्यता ठीक अथवा कर्याणकारी नहीं है क्योंकि तूने अभी तक (वास्तवमें) सुल-दु:लके स्वरूपको ही नहीं समसा है। (२४०-२४१) जो वातिया कर्मोंके क्षयसे प्रादुर्भूत हुआ है, स्वात्माधीन है, निराषाध है, अतीन्द्रिय है, और अनश्वर है, उसको मोक्ष सुल कहते हैं।२४२। इन्द्रिय विषयों से जो सुल माना जाता है वह मोहका ही माहात्म्य है। पटोल (कदु वस्तु) भी जिसे मधुर माञ्चम होती है तो वह उसके रखेष्मा (कफ) का माहारम्य है। ऐसा समसना चाहिए।२४३। जो सुल यहाँ चक्को को प्राप्त है और जो सुल देवों को प्राप्त है वह परमात्माओंके सुलकी एक कलाके (बहुत छोटे अंशके) बराबर भी नहीं है।२४४।

त्रि. सा /११६ एयं सत्थं सव्वं वा सम्ममेरथं जाणंता। तिव्वं तुस्संति
णरा किण्ण समत्थरथतस्वण्ह् ।१५६। एक शास्त्र को सम्यक् प्रकार
जानते हुए इस लोकमें मनुष्य तीव सन्तोष को प्राप्त करते हैं, तो
समस्त तत्त्व स्वरूपके झायक सिद्ध भगवन्त कैसे सन्तोष नहीं पावेंगे?
अर्थात पाते ही हैं ।१५६। (बो, पा,/टो/१२/८२ पर उद्दध्त)

पं. थः/जः/श्लोक नं. नजु देहेन्द्रियाभावः प्रसिद्धपरमाध्मिन । तदभावे सुखं ज्ञानं सिद्धिमुलोयते कथम् ।३४६। ज्ञानानन्दौ चितो घमौ नित्यौ द्रव्योपजीविनौ । देहेन्द्रियाद्यभावेऽपि नाभावस्तइद्वयोशिति ।३४६। ततः सिद्धं शारीरस्य पञ्चाक्षाणां तदर्थं सात् । अस्त्यिकचित्कर्त्वं तिच्चतो ज्ञानं सुखं प्रति ।३५६। —प्रश्व —यदि परमात्मामें देह और इन्द्रियोंका अभाव प्रसिद्ध है तो फिर परमात्माके शारीर तथा इन्द्र्योंके अभावमें सुख और ज्ञान कैसे कहे जा सकते हैं ।३४६। उत्तर—आत्माके ज्ञान और सुख नित्य तथा द्रव्यके अनुजीवी गुण हैं, इसलिए परमात्माके देह और इन्द्रियके अभावमें भी दोनों (ज्ञान और सुख) का अभाव नहीं कहा जा सकता है ।३४६। इसलिए सिद्ध होता है कि आत्माके इन्द्रियजन्य ज्ञान और सुखके प्रति शरीरको पाँचों ही इन्द्रियोंको तथा इन्द्रियविषयोंको अकिचित्कर्त्व है ।३६६।

१३. अलौकिक सुखकी श्रेष्टता

म. आ./मू./१९६६-१२७०/१२२१ अप्पायत्ता अज्भवरदी भागरमणं परायत्तं। भागरदीए चह्दी होदि ण अज्भव्परमणेण ११६६१ भागरदीए णासो णियदो विष्या य होति अदिबहुणा। अज्भव्परदीए सुभाविदाए णासो ण विष्यो वा १२७०। स्थारमानुभवमें रित करनेके लिए अन्य द्रव्यकी अपेक्षा नहीं रहती है, भोग रितमें अन्य पदार्थोंका आश्रय लेना पड़ता है। अतः इन दोनों रितमों में साम्य नहीं है। भोगरितसे आत्मा च्युत होनेपर भी अध्यात्म रितसे श्रष्ट नहीं होता, उतः इस हेन्तसे भी अध्यात्म रित भेष रितसे श्रष्ट नहीं होता, उतः इस हेन्तसे भी अध्यात्म रित भोग रितसे श्रेष्ठ हैं ११२६६। भोगरितका सेवन करनेसे नियमसे आत्माका नादा होता है, तथा इस रितमें अनेक विष्य भी आते हैं। परन्तु अध्यात्म रितका जत्कृष्ट अभ्यास करनेपर आत्मा नादा भी नहीं होता और विष्य भी नहीं आते। अथवा भोगरित नश्वर तथा विष्योंसे युक्त है, पर अध्यात्म रित अविनश्वर और निर्विद्य है।

१४. अलौकिक सुख प्राप्तिका उपाय

स.श./मू./४१ आत्मिवभ्रमजं दुःखमात्मज्ञानात्प्रशाम्यति। = शरीरादिमें आत्मबुद्धिते उत्पन्न दुःख आत्मस्वरूपके अनुभव करनेसे शान्त हो जाता है।

आ. अनु / १८६-१८७ हानेः शोकस्ततो दुःखं लाभाद्रागस्ततः मुख्यः । तेन हानावशोकः सन् मुखी स्यात्सवदा मुधीः ।१८६। मुखी मुख-मिहान्यत्र दुःखी दुःखं समस्तुते । मुखं सकलर्सन्यासो दुःखं तस्य विपर्ययः ११८०। = इष्ट वस्तुकी हानिसे शोक और फिर जससे दुःख होता है तथा उसके लाभसे राग और फिर उससे सुख होता है। इसलिए बुद्धिमाच् मनुष्यको इष्टकी हानिमें शोकसे रहित होकर सदा सुखी रहना चाहिए।१८६। जो प्राणी इस लोकमें सुखी है, वह परलोकमें सुखको प्राप्त होता है, जो इस लोकमें दुःखी है वह परलोक-में दुःखको प्राप्त होता है। कारण कि समस्त इन्द्रिय विषयोंसे विरक्त हो जानेका नाम सुख और उनमें आसक्त होनेका नाम ही दुःख है।१८७।

वे. मुख/र/३ वीतराग भावमें स्थिति पानेसे साम्यरस रूप अतीन्द्रिय सुखका वेदन होता है।

सुलकारण व्रत जिस-किसी मासमें प्रारम्भ करके एक उपवास पारणा क्रमसे ४२ महीने तक ६० उपवास करे। नमस्कार मन्त्रका जिकाल जाप करे। (व्रत विधान संग्रह/पृ. ५४); (किशन सिंह क्रियाकोष)

सुखदुःखोपसंयत—हे. समाचार।

सुखबीय - पं. योगवेब भट्टारक (वि. श. १६-१७) कृत तस्वार्थ सूत्र वृक्ति जो सर्वार्थ सिद्धि का संक्षिप्तीकरण मान्न है। (जी./२/३६०)।

मुखमा काल—हे. काल/४।

सुख शक्ति—स. सा./आ./परि./शक्ति १ अनाकुलत्वलक्षणा सुख-शक्तिः। = आकुलतासे रहितपना जिसका लक्षण है, ऐसी सुख शक्ति है।

सुखसंपत्ति द्वतं - इस बतकी विधि तीन प्रकारसे कही है- उत्तम, मध्यम व जघन्य । उत्तमविधि – १६ महीने तक १ पडिमा, २ दोज, ३ तीज, ४ चौथ, ६ पंचमी, ६ छठ, ७ सप्तमी, न अष्टमी, ६ नवमी, १० दशमी, ११ एकादशी, १२ द्वादशी, १३ प्रयोदशी, १४ चतुर्दशी, १५ पूर्णिमा, १५ अमावस्या; इस प्रकार कुल १३६ दिनके लगातार १३५ उपवास उन तिथियों में पूरे करे। (ब्रत, वि. सं. में १३५ के बकाय १२० उपवास बताये हैं, वियों कि वहाँ पन्द्रहका विकल्प एक बार लिया है। नमस्कार मन्त्रका त्रिकाल जाप करे। (वसु. शा,/-२६५-३७२); (बत विधान सं./पृ. ६६) (किशनसिंह क्रियाकोष) मध्यमविधि - उपरोक्त हो १२० उपवास तिथियोंसे निरपेक्ष पाँच वर्षमें केवल प्रतिमासकी पूर्णिमा और अमावस्थाको पूरे करे। तथा नमस्कार मन्त्रका त्रिकाल जाप करे। (बत विधान सं./६७); (किशनसिह क्रियाकोष) जधन्यविधि-जिस किसो भी मासकी कृ. १ से छु. १ तक १६ उपवास लगातार करे। नमस्कार मन्त्रका त्रिकाल जाप्य। (बतिवधान सं./पृ. ६७); (किशनसिंह क्रियाकोष)।

सुखानुबंध स्त, सि./७/३७/३७२/६ अनुभूतप्रीतिविशेषसमृतिसम-न्वाहारः सुखानुबन्धः । = अनुभवमें आग्रे हुए विविध सुखोंका पुनः-पुनः स्मरण करना सुखानुबन्ध है । (रा. वा./७/३७/६/४४६/७)

रा. वा./हि./७/१०/१८१ पूर्वे मुख भोगेथे तिनि सूं प्रीति विशेषके निमित्त ते वार-वार याद करना तथा वर्तमानमें मुख ही सःहना सो मुखानुबन्ध है।

सुखाञ्चह— अपर विदेहस्य एक वक्षार, उसका एक क्रुट तथा उस क्रुटका स्वामी देव— दे. लोक./६/३।

सुखासन—हे. आसन ।

सुखोदय क्रिया-- ३. संस्कार/२।

सुगंध---१, दक्षिण अरुणाभास द्वीपका रक्षक दैव--दे, व्यन्तर/४/७; २.अरुण समुद्रका रक्षक व्यन्तर देव--दे. व्यन्तर/४/७।

सुगंधदशमी सत - १० वर्षतक भाद्रपद शु. १० को उपवास तथा नमस्कार मन्त्रका त्रिकाल जाप। (वतिषधान संग्रह/पृ. ८०); (किशनसिंह क्रियाकोष)।

सुगंधा-अपर विदेहस्थ एक क्षेत्र। अपरनाम वर्णु/-दे. लोक/स/२।
सुगंधिनी-विजयार्धकी उत्तर श्रेणीका एक मगर-दे. विद्याधर

सुगत — स. श./ही./२/२२३/२ शोभनं गतं ज्ञानं यस्यासी सुगतः, सुष्ठ वा अपुनरावर्त्यगति गतं, सम्पूर्णं वा अनन्तचतुष्टयं गतः प्राप्तः सुगतः। = जिसका ज्ञान शोभाको प्राप्त हुआ है वह सुगत है। अथवा जो उत्तम मोक्ष गतिको प्राप्त हुआ है, अथवा जिसमें सम्पूर्ण अनन्त चतुष्टय प्राप्त हुए हैं, वह सुगत है। (इ. सं./ही./१४/४७)।

सुगात्र—बरांगका पुत्र (वरांग चरित्र/२८/१) ।

सुग्रीव — (प. पु./सर्ग/श्लोक · · किविकन्ध पुरके राजा सूर्यरजका पुत्र था तथा वालीका छोटा भाई था। (१/१०) आयुके अन्तमें दीक्षित हो गया। (१९१/३१)

सुच्यु-१. उत्तर मानुषोत्तर पर्वतका रक्षक व्यन्तर देव-दे. व्यन्तर/४/७। २. नाह्य पुष्करार्धका रक्षक व्यन्तर देव-दे. व्यन्तर/४/७।

सुचरित मिश्र-भीमांस दर्शनके टीकाकार।-दे. मीमांसा दर्शन।

सुतार[-- मुग्रीवकी पत्नी थी। साहसगति नामक विद्याधर उसकी चाहता था। (प. पु./१०/६--११)

सुदर्शन —१. विजयार्धकी उत्तर श्रेणीका एक नगर – दे. विद्याधर; २. सुमेरु पर्वतका अपर नाम-दे. सुमेरु; ३. मानुषोत्तर पर्वतस्थ स्फटिक कुटका स्वामी भवनवासी सुपर्ण कुमार देव-दे. लोक/६/२०; ४. रुचक पर्वतस्थ एक कूट-दे.लोक १/१३.५० नवधे वैयक स्वर्गका प्रथम पटल व इन्द्रक—दे स्वर्गश/३ ६, भगवाचु वीरके तीर्थमें अन्त॰ कृत केवली हुए — दे. अंतकृत; ७. पूर्वभव नं. २ में वीत्रशोका पुरीका राजा था। पूर्व भवमें सहसार स्वर्गमें देव हुआ। वर्तमान भवमें पंचम बलभद्र हुए हैं। (म. पु./६१/६६-६१) विशेष—दे. शलाका पुरुष/ः; ८. चम्पा नगरीके राजा वृषभदासका पुत्र था। महारानी अभयमती इनके ऊपर मोहित हो गयीं. परन्तु ये ब्रह्मचयमें दढ़ रहे। रानीने कृद्ध होकर इनको सुलीकी सजा दिलायी, परन्तू इनके शील-के प्रभावसे एक व्यन्तरने सूलीको सिहासन बना दिया। तब इन्होंने विरक्त हो दीक्षा यहण कर ली। इतनेपर भी छलसे रानीने इनको पडगाह कर तीन दिन तक कुचेष्टा की । परन्तु आप ब्रह्मचयं में अडिग रहे। फिर पीछे वनमें घोर तप किया। उस समय रानीने वैरसे वयन्तरी बनकर घोर उपसर्ग किया। मे उपसर्गको जीत कर मोक्ष धाम पधारे। (सुदर्शन चरित्र)

सुदर्शन चरित्र — १, आ, नवनन्ति (ई. ११६-१०४३) कृत अपभंश काव्य (ती./३/२१४)। २, सकतकीर्ति (ई. १४०६-१४४२) कृत १०० रतीक प्रमाण संस्कृत प्रम्थ (ती./३/३१९)। ३, विचानन्ति भट्टारक (वि. १४३८) कृत संस्कृत प्रम्थ । (ती./३/४०४)।

सुदर्शन वत - हे, दर्शन विश्विद्ध ।

सुवास — यह वै बस्वतयमकी १२ शों पीढ़ी में इक्ष्वाकु बंशी राजा था। वैदों में इसकी बड़ी प्रशंसा की जाती है जनकि जैनागममें इसकी निन्दा की गयी है। समय—ई. पू. २२०० (रामा कृष्ण द्वारा संशो-धित इक्ष्वाकु वंशावली)

सुधर्म- श्रुतावतारकी पट्टावलीके खनुसार आप भगवान् बीरके परचात् दूसरे केवली हुए। अपर नाम लोहार्य था। समय-वी. नि. १८-१४ (ई. पू. १९४-५०३)--वे. इतिहास/४/४४

सुधर्म सेन-पुन्नाट संघकी गुविवतीके अनुसार आप धरसेन (श्रुतावतारसे भिन्न) के शिष्य तथा सिंहसेनके गुरु थे। -दे. इतिहास/अ/= 1

सुधर्मा सौधर्म इन्द्रकी सभा । विशेष-दे, सीधर्म ।

सुनंदिषेण — १, पुन्नाट संघकी गुर्वावलीके अनुसार आप सिंहसेन-के शिष्य तथा ईश्वरसेनके गुरु थे। दें. इतिहास/७/८, २. पुन्नाट संघकी गुर्वावलीके अनुसार आप ईश्वरसेनके शिष्य तथा अभयसेन-के गुरु थे। — दें. इतिहास/७/८।

सुनक्षत्र--महाबीरके तीर्थ में अनुत्तरीपपादक--दे. अनुत्तरोपपादक।

सुनपथ ---- प्रवाससे लोटनेपर अर्जुन इसमें रहने लगा (पा, पु./१६/६) क्यों कि यह कुरुक्षेत्रके निकट है अतः वर्तमान सोनीपत ही सुनपथ है।

सुपद्मा-१. अपर विदेहस्थ एक क्षेत्र-दे. लोक,१/२।२. श्रद्धात्रात् वक्षारका एक कूट व उसका स्वामी देव-दे. लोक/१/४।

सूपर्ण — ध, १३/४,४,१४०/३६१/० मुपर्णा नाम सुभपक्षाकार विकरण-क्रिया। — सुभ पक्षोंके आकार रूप विक्रय करनेमें अनुराग रखनेवाले मुपर्ण कहलाते हैं।

सुपर्ण कुमार---१, भवनवासी देवोंका एक भेर--दे, भवन/१/४, २. सुपर्ण कुमार देवोंका लोकमें अवस्थान--दे. भवन/४।

सुपाइवेनाथ — १. पूर्वभव मं, २ में धातकी खण्डके क्षेमपुर नगरमें नन्दीषेण राजा था। पूर्वभवमें मध्य ग्रैवेयकमें अहमिन्द्र। वर्तमान भवमें सप्तम तीर्थं कर हुए हैं (म. पु./११/२-११) विशेष — दे. तीर्थं कर/१। २. भाविकालीन तीसरे तीर्थं कर। अपर नाम सप्तभु। — दे. तीर्थं कर/१।

सुपादर्वनाथ स्तोत्र अ। विद्यानित (ई. ७०५-०४०) द्वारा रंचित संस्कृत छन्द बद्ध स्तोत्र है। इसमें तीस स्तोक हैं।

सुष्त-- दे निद्रा।

सुप्रकीर्णा - इचक पर्वत निवासिनी दिवकुमारी देवी -दे. लोक/१/१३।

सुप्रणिधि-रुचक पर्वत निवासिनी दिवकुमारी देवी-दे. लोक १/१३

सुप्रतिष्ठ—१. रूचक पर्वतस्थ एक क्ट-वे, लोक १/१३ वे.हस्तिनापुर के राजा श्रीचन्द्रका पुत्र था। दीक्षा लेकर ग्यारह अंगोंका अध्ययन किया। तथा सोलह कारण भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थं कर प्रकृतिका बन्ध किया। समाधिमरणकर अनुत्तर विमानमें अहिमन्द्र पद पाया। (म. पु./७०/११-११) यह नेमिनाथ भगवान् पूर्वका दूसरा भव है। --दे. नेमिनाथ। ३. यह पंचम रुद्र थे—दे. शलाका पुरुष/७।

सुप्रबंध-रचक पर्वतस्थ एक क्ट--दे. लोव/४/१३।

सुप्रबुद्धि—१. मानुषोत्तर पर्वतस्थ प्रवास क्ट व उसका स्वामी भवनवासी सुपर्णकुमार देव—दे, लोकश्वर्ः, नवग्रै वेयकका तृतीय पटल व इन्द्रक—दे. स्वर्ग/६/३।

सुप्रबुद्धा-रुचक पर्वत निवासिनी दिवसुमारी देवी--दे. लोकश्र/१३।

सुप्रभ—१. कुण्डल पर्वतस्थ एक क्ट--दे. लोक/१/१२;२. दक्षिण-घृतदर द्वीपका रक्षक देव--दे. व्यंतर/४/७। ३. उत्तर अरुणीवर द्वीपका रक्षक देव--दे. व्यंतर/४/७। ४. पूर्व भव नं. २ में पूर्व विदेह के नन्दन नगरमें महाबल नामक राजा था। पूर्व भव्य सहस्रार स्वर्णमें देव हुआ। वर्तमान भवमें चौथे बलदेव थे। (म. पु/६०/४--६३)। विशेष परिचय--दे. शलाका पुरुष/३।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

सुप्रयोग-भरत क्षेत्रस्थ आर्धलण्डकी एक नदी.-दे. मनुष्य/४। सुप्रोति क्रिया-दे. संस्कार/२।

सूभग-- १. सुमग व दुर्मग नामकर्मके लक्षण

स. सि /=/११/३६१/११ यदुदयादन्यशितिप्रभवस्तत्सुभगनाम । यदुदयाद्रूपादिगुणोपेतोऽप्यप्रीतिकरस्तद्दुर्भगनाम । = जिसके उदयसे अन्य
जन प्रीतिकर अवस्था होती है वह सुभग नामकर्म है । जिसके उदय
से स्पादि गुणोंसे युक्त होकर भी अप्रीतिकर अवस्था होती है वह
दुर्भग नामकर्म है । (रा. वा./=/११/२२-२४/५७=/३१)। (गो. क.
जी. प्र./३३/३०/१/१४)।

ध ६/१,६-१,२-/६४/१ रथी-पुरिसाणं सोहग्गणिव्यत्तयं सुभगं णाम ।
तेसि चेव दूहवभावणिव्यत्तयं दूहवं णाम । = श्ली और पुरुषोंके
सीभाग्यको उत्पन्न करने वाला सुभग नामकर्म है । उन स्ती पुरुषोके
ही दुर्भग भाव अर्थात् दीर्भाग्यको उत्पन्न करने वाला दुर्भग
नामकर्म है । (ध. १३/४, ४, १०१/३६४/१४) ।

२. एकेन्द्रियोंमें दुर्मंग माच कैसे जाना जाये

ध. ६/१, ६-१, २०/६६/२ एइंदियादिष्ठ अञ्चलचेट्ठेसु कथं सहय-दुह्व-भावा गडजंते । ण, तथ्य तंसिमञ्चलाणमाणमेण अत्थिलसिद्धीदो । -प्रश्न-अञ्चल चेष्टा वाले एकेन्द्रियादि जीवोंमें सुभग और दुर्भग भाव कैसे जाने जाते हैं। उत्तर-नर्शी, वयोंकि एकेन्द्रिय आदिमें अञ्चल रूपसे विद्यमान उन भावोंका अस्तित्व आगमसे सिद्ध है।

सुभट वर्मा — भोजवंशी राजा था। भोजवंशकी वंशावलीके अनुसार यह राजा विन्ध्यवर्मा (विजयवर्मा) के पुत्र और अर्जुनवर्माका पिता था। मालवा देशका राजा था और उज्जैनी व धारा राजधानी थी। समय-वि. १२६७-१२६४ ई. १२००-१२०७ विशेष—दे, इतिहास/२/१।

सुभद्र—१. यक्ष जातिके व्यन्तर देवोंका एक भेद-दे. यक्ष, २. नव ग्रैवेयकका पाँचवाँ पटल व इन्द्रक—दे. स्वर्ग १/३।३. अरुणीवर द्वीप-का रक्षक व्यन्तर देव—दे. व्यन्तर/४/७। ४. सन्दीश्वर द्वीपका रक्षक व्यन्तर देव—दे. व्यन्तर/४/७। ४. रुचक पर्वतस्थ एक कूट-दे. लोक १/१३।६. श्रुतावतारकी पष्टावलीके अनुसार आप भगवान् वीरके पश्चात मूल गुरु परम्परामें दश अंगधारी अथवा दूसरी मान्यतानुसार केवल आचारांग धारी थे। समय —वी. नि. ४६८-४७४ ई. पू. ६१-६३ —दे. इतिहास/४/४।

समित्रा पा. पु./१६/ श्लोक-कृष्णकी नहन थी। (१६/३६) अर्जुनने हरण कर (१६/३६) इसके साथ विवाह किया (१६/६६) इससे अभिमन्युकी उत्पत्ति हुईं (१६/१०१)। अन्तमें दीक्षा से (२६/१६) घोर तप कर सोलहबें स्वर्ग गयी (२६/१४१)।

सुभाषितरत्नसंदोह—१. आ. योगेन्दुदेव (ई. श. ६) कृत 'मुभाषित तन्त्र' नामक आध्यात्मिक ग्रन्थ । (वे. योगेन्दु)। २. आ. अमितगति द्वारा वि. १०४० (ई. ११३) में लिखा गया १२२ संस्कृत क्लोक प्रमाण आध्यात्मिक ग्रन्थ । (जे./१/३८०)।

सुभाषितरत्नावली — आ. शुभवन्द (ई. १४१६-१४५६) द्वारा रिचत एक आध्यात्मिक ग्रन्थ। —हे. शुभवन्द्र।

सुभाषितार्णव — आ. शुभचन्द्र (ई. १६९६-१६६६) द्वारा रचित एक आध्यात्मिक प्रन्थ।

सुभीम राक्षसोंका इन्द्र। इसने सगर चक्रवर्तीके प्रतिद्वन्द्वीके पुत्र

मैघवाहनको अजितनाथ भगवान्के समवसरणमें अभयदानार्थ लंका-का राज्य दिया था। (प. पू./४/१६०)।

मुनीम पूर्व भव नं. २ में भरत क्षेत्रमें भूपाल नामक राजा था।
पूर्व भवमें महाशुक्र स्वर्गमें देव हुआ। वर्तमान भवमें अष्टम चक्रवर्ती
हुआ (म. पु./६४/६१-६६) विशेष परिचय—दे. शलाका पुरुष/२।

सुमिति—१ पूर्व भव नं २ में धातकी खण्डमें पुष्कलावती देशका राजा था । पूर्व भवमें वैजयन्त विमानमें अहमिन्द्र हुआ। वर्तमान भवमें पंचम तीर्थं कर थे (म. पु./११/२-११)। विशेष परिचय—दे. तीर्थं कर/१। २. आप मण्लवादी नं १ के शिष्य थे। समय—वि. ४३६ (ई. ३८३). (सि. वि./प्र. ३४ पं. महेन्द्र)।

सुमितिकीति—निन्द संघ मलारकारगण ईंडर गदी। गुरु परम्परा— पद्मनिन्द, विद्यानिन्द, लक्ष्मीचन्द्र, वीरचन्द, ज्ञानभूषण, सुमिति-कीर्ति। कृतियों—पंचसंग्रह की संस्कृत वृत्ति, ज्ञानभूषण के साथ मिलकर 'कर्म प्रकृति' की टीका। समय—पंचसंग्रह वृत्ति का रचना-काल वि. १६२०। अतः वि. १६१३-१६३०। (जै./१/४५४, ४५७); (ती./१/३७८); (दे. इतिहास/७/४)।

सुमनस-नव ग्रैवेयकका पाँचवाँ पटल व इन्द्रक — दे. स्वर्ग/१/३।

सुमागधी--पूर्वी मध्य आर्थ खण्डकी एक नदी--दे. मनुष्य/४।

सुमार्छी — रावणका दादा था। इन्द्र नामक विद्याधरसे हारकर पाताल लंकामें रहने लगा था (प. पु./७/१३३)।

सुमित्र — म.पु./६१/श्लोक — राजगृह नगरका राजा बहुत बड़ा मल्ल था (१७-१८) राजसिंह नामक मल्लसे हारने पर (१६-६०) मिर्वेद पूर्वक दीक्षा ग्रहण कर ली (६२)। बड़ा राजा बननेका निदान कर स्वर्गमें देव हुआ (६३-६१) यह पुरुषसिंह नारायणका पूर्वका दूसरा भव है। — दे. पुरुषसिंह

सुपुल ह. पु./१४/श्लोक - नरसदेशकी कौशाम्बी नगरीका राजा था (६) एक समय वनमाला नामक स्त्रीपर मोहित होकर (३२-३३) दूती मेजकर उसे अपने घर बुलाकर भोग किया (६४-१००) आहारदानसे भोगभूमिकी आयुका बन्ध किया। वज्रपात गिरनेसे मरकर विद्याधर हुआ (१६/१२-१८) यह आर्थ विद्याधरका पूर्वका भव है। - दे. आर्थ।

सुमुखी-विजयार्घकी दक्षिण श्रेणीका नगर-दे, विद्याधर ।

सुमेधा- अमेरु पर्वतके नन्दन वनमें स्थित निषधकूटकी दिवकुमारी देवी- दे. लोक/१/४।

मुमेर मध्यलोकका सर्व प्रधान पर्वत है। विदेह क्षेत्रके बहुमध्य भागमें स्थित स्वर्णवर्ण व क्टाकार पर्वत है। यह जम्बूद्वीपमें एक, धातकी खण्डमें दो, पुष्करार्ध द्वीपमें दो पर्वत हैं, इस प्रकार कुल ६ मुमेरु हैं। इसमेंसे प्रश्येक पर १६-१६ चैत्यालय हैं। इस प्रकार पाँची मेरुके कुल ५० चैत्यालय हैं। (विशेष—दे. लोक/३/६)।

१. सुमेरका न्युत्पत्ति अर्थ

रा, बा./३/१०/१३/१८१/६ लोकत्रयं मिनातीति मेरः इति । =तीनौं लोकोंका मानदण्ड है, इसिंखए इसे मेरु वहते हैं ।

२. इसके अनेकों अपर नाम

ह, पु./४/३७३-३७६ वजमूनः सबैद्ध्यंचूनिको मणिभिश्चितः। विचित्रा-श्चर्यसंकीर्णः स्वर्णमध्यः प्रुरालयः १६७३। मेरुश्चैव दुमेरुश्च महा-मेरुः सुदर्शनः। मन्दरः शैलराजश्च वसन्तः प्रियदर्शनः १६७४। रत्नोच्चयो दिशामादिलोकनाभिमेनोरमः। लोकमध्यो दिशामन्त्यो दिशामुत्तर एव च १३७४। सूर्याचरणविख्यातिः सूर्यावर्तः स्वयंत्रभः। इत्थं मुरगिरिश्चेति सन्धवर्णेः स वर्णितः । ३७६। — वज्रमुल, सन्देश्यं चूलिक, मणिवित, विचित्राश्चर्यकीर्ण, स्वर्णमध्य, मुरालय, मेरु, मुनरे, महामेरु, मुदर्शन, मन्दर, शैलराज, वसन्त, प्रियदर्शन, रत्नोध्चय, दिशामादि, लोकनाभि, मनोरम, लोकमध्य, दिशामन्त्य, दिशामुत्तर, सूर्याचरण, सूर्यावर्त, स्वयंप्रभ, और सूरगिरि— इस प्रकार विद्वानोंने अनेकों नामोंके द्वारा मुमेरु पर्वतका वर्णन किया है। ३७३-३७६।

* सुमेर पर्वतका स्वरूप-- दे लोक/३/६।

३. वर्तमान विद्वानींकी अपेक्षा सुमेरु

ज. प./प. १३६,१४१ A.N. up, H.L Jain वर्तमान भूगोलका पामीर प्रदेश वही पौराणिक मेरु है। जिसके पूर्व से यारकंद नदी (सीता) निकलतो है और पश्चिम सितोदसरसे जामू दरिया निकलता है। इसके दक्षिणमें दरद (काश्मीरमें बहनेवाली कृष्णगंगा नदी) है। इसके उत्तरमें थियानसानके अंचलमें वसा हुआ देश (उत्तरकुरु), पूर्वमें मूजताग (मूंज) एवं शीतान (शीतान्त) पर्वत, पश्चिममें मदरका (वैद्र्य) पर्वत, और पश्चिम-दक्षिणमें हिंदुकुश (निषध) पर्वत स्थित है। १३६। पुराणोंके अनुसार मेरुकी शरावाकृति है। इधर वर्तमान भूगोलके अनुसार 'पामीर देश' चारों हिन्दुकुश, कारा-कोरम, काशार और अल्लाई पर्वतसे घिरा होनेके कारण दारावाकार हो गया है। इसी पामीर देशको मेरु कहते हैं। पामीरमें शब्द आहित्रष्ट है, क्यों कि यह शब्द सपादमेरुका जन्म है। मेरुके सम्बन्ध-मैं भी 'सपाद मेरु' मेरुके महापादका व्यवहार प्रायः हुआ है। अतः यह व्युत्पत्ति अशंकनीय है। इसी प्रकार काश्मीर शब्द भी मेरुका अंग जान पड़ता है, क्यों कि काश्मीर शब्द कश्यपमेरुका अपभ्रंश है। नीलमत पुराणके भी अनुसार काशमीर कश्यपका क्षेत्र है। और तै तिरीय आरण्यक/१/७ में कहा गया है कि महामेरुको अरण्यक नहीं छोड़ता।

सुवन मानुषोत्तर पर्वतस्थ सौगन्धिक क्रुटका स्वामी भवनवासी सुपर्णकुमार देव-दे. लोक/७.।

सुर्-्ध, १३/५,६,१४०/३६१/७ तत्र अहिंसाचनुष्ठानरतयः धुरा नाम । ⇒जिनकी अहिंसा आदिके अनुष्ठानमें रति है ने सुर कहलाते हैं।

सुरगिरि-भुमेरु पर्वतका अपर नाम-दे. सुमेरु । सुरदेव-भाविकालीन दूसरे तीथँकर-दे. तीथँकर/६ ।

सुरपतिकान्त--विजयार्धकी उत्तर श्रेणीका एक नगर।
-वै. विद्याधर।

सुरमन्यु--सप्त ऋषियोंमें से एक-दे, सप्तऋषि । सुरलोक--दे, स्वर्ग/४ ।

सरस - ब्रह्म स्वर्गका द्वितीय पटल व इन्द्रक - वे. स्वर्ग/१/३।

सुरा ---१. हिमवात् पर्वतपर स्थित एक क्रूट व उसकी स्वामिनीवैवी। —दे, लोकश्/४। २. रुचक पर्वत वासिनी दिवकृमारी।

-दे, लोक/४/१३।

सुरालय--- धुमेरु पर्वतका अपर नाम-दे. सुमेरु।

सुराष्ट्र — १, मालवाका पश्चिम प्रदेश, सुराष्ट्र या सीराष्ट्र या काठियावाड़ कहते हैं। (म. पु./प्र. ४६ पन्नालाल। २. भरतक्षेत्रस्थ पश्चिम आर्यखण्डका एक देश। अपर नाम सोरठ — दे. सोरठ।

सुरेन्द्र यन्त्र-- दे. यन्त्र/१/६।

सुरेश्वर- शंकराचार्यके शिष्य । समय-ई. ८२०-दे, वेदान्त/१/२। सुरुस- देवकुरुके १० द्रहीं मैंसे दो का नाम-दे. लोक/५/६

सुलसा-- चारण युगलकी पुत्री, थी। सगर चकीने षड्यन्त्र रचकर ं इसको विवाहा था। अन्तमें महाकाल द्वारा रचे हिंसायक्षमें यह होमी गयी थी। (म. पु./६७/२१४-३६३)।

सुरुविन-विहायसतिलक नगरका राजा। सगरचक्रीका समुर (प. पु./४/७७-७=)।

सुली चना — म. पु./सर्ग/श्लोक ... पूर्वभव नं. ४ में रितवेण नामक सेठ सुता थी (४६/१०६,५७) तीसरें में रितवेण कब्रुतरी (४६/६६) दूसरें में प्रभावती (४६/१४०) पूर्व भवमें स्वर्गमें देव थी (४६/१६०) वर्तमान भवमें काशी राजाके अकम्पनकी पुत्री थी (४३/१३६)। भरतचक्रोके सेनापति जयसेनसे विवाही गयी (४३/२९६-२२६)। भरतसुत अकंकी तिने इसके जिए जयसेनसे युद्ध किया। परन्तु इसके अनशनके प्रभावसे युद्ध समाप्त हो गया (४४/२-७) तम जयसेनने इसको अपनी पटरानी बनाया (४४/१-१) एक समय देवी द्वारा पितके शीलकी परीक्षा करनेपर इसने उस देवीको भगा दिया (४७/२६-२७३)। अन्तमें पितके दीक्षा लेनेपर शोकचित्त हो स्वयं भी दीक्षा ले ली। तथा घोर तपकर अच्युत स्वर्गमें जन्म लिया। आगामी पर्यायसे मोक्ष होगा। (४७/२-६-२८६)।

सुर्वेश्व — इसके कई रूप मिलते हैं यथा — मुचक्ष, सुबक्ष, एवं सपक्षु।
इसकी उरपित्त मेरुके पश्चिमी सर सितोदसे कही गयी है,
जहाँसे निकलकर 'नानाम्लेच्छ गणे युक्तः' केतुमाल महाद्वीपसे बहती
हुई, यह पश्चिम समुद्रमें चली गयी है। वर्तमान आसू दरिया वा
आक्श्न और वक्श्न, तिक्वती नाम पक्श्न, तथा चीनो नाम पी-रसू वा
फो-रमू, तथा आधुनिक स्थानिक नाम बिख्श बख्श और बंखा
उक्त संस्कृत नामोंसे निकले हैं। प्राचीन कालसे अभी थोड़े दिन
पहले तक पामीरके पश्चिमी भागवाली सिरीकोल फील (क्विटोरिया
लेक) उसका उद्दगम मानी जाती थी, जो पौराणिक सितोद सर
हुई। इन दिनों यह आरालमें गिरती है, किन्तु पहले कैरिपयनमें
गिरती थी। यही चतुर्द्वीपी भूगोलका पश्चिम समुद्र है। (ज. प/प्र१४० A.N. up, H.L. Jain)।

सुवत्साः -- १.सीमनस गजदन्तके कनक क्टकी स्वामिनी दिवकुमारी देवी -- दे. सोम/६/४।

सुवत्सा- र. पूर्व विदेहका एक क्षेत्र-दे, लोक १/२;२, पूर्व विदेहस्य निकूट बक्षारेका एक कूट व उसका स्वामी देव-दे, स्रोक/१/४।

सुवप्र--१, अपर विदेहत्थ एक क्षेत्र --वे, लोक/६/२।२. चन्द्रगिरि बशारका एक क्ष्ट व उसका स्वामी देव--वे, लोक/६/४।

सुविल्यु--१. अपर विदेहस्थ एक क्षेत्र। अपर नाम सुगन्धा-देः लोक १/२।२. नागगिरि वक्षारका एक क्ट व उसका स्वामी देव-दे. लोक/১/४।

सुविधि—म. पु./सर्ग/श्लो महावत्स देशके सुदृष्टि राजाका पुत्र।
(१०/१२१-१२२) पुत्र केशवके मोहसे दक्षिण न लेकर आवकके उत्कृष्ट
बत से कठिन तप किया (१०/१६२)। अन्तर्मे दिगम्बर हो समाधिमरण पूर्वक अच्युत स्वर्गमें देव हुआ। (१०/१६१)। यह ऋषभदेवका
पूर्वका चौथा भव है।—दे, ऋषभदेव।

सुधिर प्रायोगिक शब्द--हे. शब्द/१।

सुषेण — १, वरांग चिरत्र/सर्ग/श्लोक वरांगका सौतेला भाई था।
(११/५४)। वरांगको राज्य मिलनेपर कृपित हो, वरांगको छलसे
राज्यसे दूर भेज स्वयं ग्रज्य प्राप्त किया (२०/७)। फिर किसी शत्रुसे
युद्ध होनेपर स्वयं उरकर भाग गया (२०/११)। २, म. पु./४=/श्लोक
कनकपुर नगरका राजा था (६१)। गुणमंजरी नृत्यकारिणीके अर्थ
भाई विन्ध्यशक्तिसे युद्ध किया। युद्धमें हार जानेपर नृत्यकारिणी
इससे बलात्कार पूर्वक छीन ली गयी (७३)। मानभंगसे दुःखित हो
दीक्षा लेकर कठिन राप किया। अन्तमें वैर पूर्वक मरकर प्राणत स्वर्गमें
देव हुआ (७६-७६)। यह द्विष्ष्ठ नारायणका पूर्वका दूसरा भव है।
— दे द्विष्ठ ।

सुसीमा—पूर्व विदेहस्थ वरसदेशकी मुख्य नगरी—दे, लोक/६/२।
सुस्थित—१. लवणसमुद्रका रक्षक व्यन्तरदेव—दे, व्यन्तर/४।
सुस्थिता—क्वक पर्वत बासिनी दिक्कुमारी । —दे, लोक/६/१३।
सुस्थर—दे, स्वर।

सुहस्ति - रुचक पर्वतस्थ स्वस्तिक क्रूटका स्वामी देव - दे. लोक/७।
सुह्य - १, भरतक्षेत्र आर्थ खण्डका एक देश - दे, मनुष्य/४। २. जिस देशमें कपिशा (कोलिया) नदी बहती है। ताझलियी राज-धानी थी।

सुकरिका - भरत क्षेत्रस्थ आर्थ खण्डकी एक नदी - दे. मनुष्य/४।

सूरिम — जो किसी द्वारा स्वयं वाघित न हों और न दूसरेको ही कोई माधा पहुँचायें, वे पदार्थ या जीव सुक्ष्म हैं और इनसे विपरीत स्थूज या नादर। इन्द्रियग्राह्म पदार्थको स्थूल और इन्द्रिय अग्राह्मको सूक्ष्म कहना व्यवहार है परमार्थ नहीं। सूक्ष्म व नादरपनेमें न अवगाहनाकी हीनाधिकता कारण है न प्रदेशोंकी, विक नामकर्म हो कारण है। सूक्ष्म स्कन्ध व जीव लोकमें सर्वत्र भरे हुए हैं, पर स्थूल आधारके बिना नहीं रह सकनेके कारण त्रस नालीके यथायोग्य स्थानोंमें हो पाये जाते हैं।

१. सूक्ष्मके भेद व लक्षण

* स्टम जीवोंका निर्देश--- दे, इन्द्रिय, काय, समास ।

१. सूक्ष्म सामान्यका लक्षण

१. बाधा रहित

स,सि,/४/१५/२५०/१२/ न ते परस्परेण बादरैश्च व्याहन्यन्त इति।= वे (सूक्ष्म जीव) परस्परमें और बादरोंके साथ व्याघातको नहीं प्राप्त होते हैं। (रा,बा./६/१६/४/४५८/११)।

ध.३/१.२.८७/३३१/२ अण्णेहि पोग्णलेहि अपिडहम्ममाणसरीरो जीवो सहुमो ति घेत्तव्वं। — जिनका शरीर अन्य पुह्नलोसे प्रतिघात रहित है वे सूक्ष्म जीव हैं, यह अर्थ यहाँपर सुक्ष्म शब्दसे लेना।

ध, १३/५,३,२२/२३/१२ पिनसंतपरमाणुस्स परमाणु पिडमंधित, सुहु-मस्स सुहुमेण नादरक्लंधेण वा पिडमंधकरणाणुवनत्तीदो। — प्रवेश करनेवाले परमाणुको दूसरा परमाणु प्रतिबन्ध नहीं करता है, क्योंकि सूह्मका दूसरे सूक्ष्म स्कन्धके द्वारा या नादरके द्वारा प्रतिबन्ध करनेका कोई कारण नहीं पाया जाता है।

का.अ./मू./१२७ ण य तेसि जेसि पिडललण पुढनी तोएहि अग्नि-नाएहि। ते जाण मुहुम-काया इयरा पुण धूलकाया य।१२७। — जिन जीवोंका पृथ्वीसे, जलसे, आगसे और वायुसे प्रतिधात नहीं होता, उन्हें सूक्ष्मकायिक जानो।१२७। गो.जी.प्र/१८४/४१६/१४ आधारानपेक्षितशरीराः जीवाः सूक्ष्मा भवन्ति । जलस्थलरूपाधारेण तेषां शरीरगतिप्रतिष्ठातो नास्ति । अस्यन्तसूक्ष्मपरिणामस्वासे जीवाः सूक्ष्मा भवन्ति । = आधारकी अपेक्षा रहित जिनका शरीर है वे सूक्ष्म जीव हैं। जिनकी गतिका जल, स्थल आधारोंके द्वारा प्रतिष्ठात नहीं होता है। और अत्यन्त सूक्ष्म परिणमनके कारण वे जीव सूक्ष्म कहे हैं।

२. इन्द्रिय अग्राह्य

स.सि./४/२८/२६१/६ सुक्ष्मपरिणामस्य स्कन्धस्य भेदौ सीक्ष्म्यापरि-त्यागादचाक्षुपत्वमेव । स्सूक्ष्म परिणामवाते स्कन्धका भेद होनेपर वह अपनी सुक्ष्मताको नहीं छोड़ता, इसलिए उसमें अचाक्षुषपना ही रहता है । (रा-वा./४/२८/--/४६४/१७)

रा.वा./१/२४/१/४८१/११ लिङ्गेन आत्मानं सूचयित, सूच्यतेऽसी, सूच्यतेऽनेन, सूचनमात्रं वा सूक्ष्मः सूक्ष्मस्य भावः कर्म वा सीक्ष्मयम्। —जो लिंगके द्वारा अपने स्वरूपको सूचित करता है या जिसके द्वारा सूचित किया जाता है या सूचन मात्र है, वह सूक्ष्म है। सूक्ष्मके भाव वा कर्मको सीक्ष्म्य कहते हैं।

प्र,सा./ता.वृ./१६८/२३०/१३ इन्द्रियाप्रहणयोग्यैः सूक्ष्मैः। = जो इन्द्रियोंके ग्रहणके अयोग्य हैं वे सूक्ष्म हैं।

पं.ध./ज./४८३ अस्ति सूक्ष्मस्वमेतेषां लिङ्गस्याक्षेरदर्शनात् ।४८३। क इसके साधक साधनका इन्द्रियोंके द्वारा दर्शन नहीं होता, इसलिए इनमें (धर्मादिमें) सूक्ष्मपना है।

३. स्क्ष्म दूरस्यमें स्क्ष्मका लक्षण

ध. १२/५.६.६१/२१३/२ किमेत्य सुहुमत्तं १ दुगेज्भतं । च्यप्न — यहाँ सूक्ष्म दाब्दका क्या अर्थ है १ उत्तर — जिसका ग्रहण कठिन हो वह सूक्ष्म कहलाता है ।

द्र सं./टी./१०/२१३/११/परचेतोवृत्तयः परमाण्वादयश्च सुक्षम-१दार्थाः । = पर पुरुषोंके चित्तोंके विकल्प और परमाणु आदि सूक्ष्म पदार्थः ।

न्या.दी./२/%२२/४१/१० सूक्ष्माः स्वभाविष्ठकृष्टाः परमाण्वादयः।— सूक्ष्म पदार्थ वे हैं जो स्वभावसे विष्ठकृष्ट हैं—दूर हैं जैसे परमाणु आदि।

रहस्यपूर्ण चिट्ठी/४१३ जो आप भी न जाने केवली भगवात् ही जाने सो ऐसे भावका कथन सुक्ष्म जानना।

२. सूक्ष्मके भेद व उनके रुक्षण

स्ति./६/२४/२६६/१० सौक्ष्म्यं द्विविधं, अन्त्यमापेक्षिकं च । तत्रान्त्यं परमाणूनाम् । आपेक्षिकं विक्यामत्तकबदरादीनाम् । क्षृष्ट्मताके दो भेद हैं -अन्त्य और आपेक्षिक । परमाणुओं में अन्त्य सृक्ष्मत्व है । तथा वेत, आँवता, और वेर आदिमें आपेक्षिक सूक्ष्मत्व है । (रा.वा./६/२४/१०/४८८/३०)

३. सूक्ष्म नामकर्मका लक्षण

स.सि./=/११/३६२/१ सूक्ष्मशरीर निर्वर्तकं सुक्ष्मनाम ! चसूक्ष्म शरीर-का निर्वर्तक कर्म सूक्ष्म नामकर्म है ।

रा.वा./८/११/२६/६७६/७ यदुद्यादन्यजीवानुपग्रहोपधातायोग्यसूक्ष्म-शरीरनिवृत्तिर्भवति तरसूक्ष्मनाम । = जिसके उदयसे अन्य जीवोंके अनुग्रह या उपधातके अयोग्य सूक्ष्म शरीरकी प्राप्ति हो वह सूक्ष्म है। (गो./जी./जो.प्र./३३/३०/१३)

ध.६/१,६-१,२~/६२/१ जस्स कम्मस्स उदएण जीवो सुहुमत्तं पडिवज्जिहि तस्स कम्मस्स सुहुम्मिदि सण्णा। = जिस कर्मके उदयसे जीव (एकेन्द्रिय घ.१३) सुक्ष्मताको प्राप्त होता है उस कर्मकी यह सुक्ष्म संज्ञा है।

४. सिद्धोंके सुक्ष्मत्व गुणका लक्षण

द्र.सं-/टो-/१४/४२/१२सृक्ष्मातीन्द्रियकेवल्लानविषयत्वारिसद्धस्वरूपस्य सृक्ष्मत्वं भण्यते। स्कृष्म अतीन्द्रिय केवल्लानका विषय होनेके कारण सिद्धोंके स्वरूपको अतीन्द्रिय कहा है।

प. प्र./टी./१/६१/६२/२ अतीन्द्रियङ्गान विषयं स्थमत्वम् । = अतीन्द्रिय ज्ञानका विषय होनेसे सुक्ष्मत्व है ।

२. बादरके भेद व लक्षण

बादर जीवोंका निर्देश — दे, इन्द्रिय, काय, समास ।

बादर व स्थूल सामान्यका लक्षण

१. समितियात

स. सि./४/१६/२=०/१० वादरास्तावत्सप्रतिवातशरीराः । व्यादर जीवीं का शरीर तो प्रतिवात सहित होता है । (रा. वा./६/१६/४/८/१०)

ध. १/१,१,४१/२०६/७ नादरः स्थूलः सप्रतिघातः कायो येषां ते बादर-कायाः । - जिन जोवोंका शरीर नादर, स्थूल अर्थात प्रतिघात सहित होता है उन्हें नादरकाय कहते हैं।

ध. ३/१,२,८७/३३१/१ तदो पडिहम्ममाणसरीरो मादरो। चिनका शरीर प्रतिघात युक्त है वे बादर हैं।

गो. जी./मू./१८३...धादसरीरं धूलं != जो दूसरोंको रोके, तथा दूसरों से स्वयं रुके सो स्थूल कहलाता है।

२. इन्द्रिय आह्य

स. सि./१/२८/१६६/१० सौक्ष्म्यपरिणामोपरमे स्थीण्योत्पत्ती चाक्षुषो भवति । = (सूक्ष्म स्कन्धमें से) सूक्ष्मपना निकल कर स्थूलपनेकी उत्पत्ति हो जाती है और इसलिए वह चाक्षुष हो जाता है।

रा. वा./५/२४/१/४८६/१२ स्थुलयते परिवृं हयति, स्थुलयतेऽसी स्थूल-तेऽनेन, स्थूलनमात्रं वा स्थूलः । स्थूलस्य मावः कर्म वा स्थीच्यम् । जो स्थूल होता है, बढ़ता है या जिसके द्वारा स्थूलन होता है या स्थूलन मात्रको स्थूल कहते हैं। स्थूलका भाव या कर्म स्थीण्य है।

प्र. सा./ता. व्,/२६८/२३०/१४ तद्द्यहणयोग्यैर्मादरैः। —जो इन्द्रियोंके ग्रहणके योग्य होते हैं वे बादर हैं।

३. स्थूल के भेद व उनके लक्षण

स. सि./४/२४/२६४/१३ स्थीन्यमिदि द्विविधमन्त्यमापेक्षिकं चिति। त्रवान्त्यं जगद्वव्यापिनि महास्कन्धे। आपेक्षिकं भादरामजकविष्वता-लादिषु। —स्थीन्य भी दो प्रकार का है—अन्त्य और आपेक्षिक। जगव्यापी महास्कन्ध में अन्त्य स्थीन्य है। तथा वेर. आँवजा, और वेल तालआदिमें आपेक्षिक स्थीन्य है। (रा. वा./४/२४/१८/४८८/३३)।

४. बाद्र नामकर्मका छक्षण

स. सि./८/११/३६२/२ अन्यबाधाकरशरीरकारणं बादरनाम । अन्य बाधाकर शरीरका निर्वर्तक कर्म बादर नामकर्म है। (रा. वा./८/ १९/३०/१७९/१०); (गो. क./जो. प्र./३३/३०/१३)।

घ. ६/१.६-१.२-/६१/= जस्स कम्मस्स उदएण जीवो बादरेष्ठ उप्पज्जिति तस्स कम्मस्स वादरमिति सण्णा। — जिस् कमके उदयसे जीव बादर काय वासोंमें उत्पन्न होता है। उस कमे की 'बादर' यह संझा है। (घ. १३/६.६.१०१/३६६/६)।

५. बाद्र कथनका रुक्षण

रहस्य पूर्ण चिट्टी। अपने तथा अन्यके जानने में आ सके ऐसे भावका कथन स्थूल है।

३. सूक्ष्मत्व व बादरत्व निर्देश

१. सुक्ष्म व बाद्रमें प्रतिघात सम्बन्धी विचार

स, सि, १८/४०/१६२/६ स नास्त्यनयो रित्यप्रतिष्ठाते; सूक्ष्मपरि-णामातः अयःपिण्डे तेजोऽनुप्रवेशवत्तैजसकार्मणयोनिस्ति वज्रपट-सादिषु व्याधातः। = इन दोनों (कार्मण व तैजस) शरीरोंका इस प्रकारका प्रतिधात नहीं होता इसस्तिए वे प्रतिधात रहित हैं। जिस प्रकःर सूक्ष्म होनेसे अग्नि (सोहेके गोलेमें) प्रवेश कर जातरे है उसी प्रकार तेजस और कार्मण शरीरका वज्रपटलादिकमें भी व्याधात नहीं होता। (रा वा./२/४०/१४६/६)।

रा. वा./४/१४/४/४५/१४ कथं सहारीरस्यारमनोऽप्रतिघातस्विति चेत् हष्टस्वात् । हरयते हि बालायकोटिमात्रछिद्धरिहिते घनबह्लायसिभित्ति-तले वज्रमयकपाटे बहिः समन्तात् वज्रलेपलिप्ते अपवरके देवदत्तस्य मृतस्य मृतिमञ्ज्ञानावरणादिकर्मतैजसकार्मणकारीरसंबिन्धस्वेऽपि गृहमभित्वेव निर्णमनम्, तथा सूक्ष्मिनिगोदानामप्यप्रतिघातित्वं वेदित्वयम्। - प्रश्न — शरीर सहित आत्माके अप्रतिघातपना कैसे है ! उत्तर — यह बात अनुभव सिद्ध है । निश्छित्र लोहेके मकानसे, जिसमें वज्रके किवाड़ लगे हों और वज्रलेप भी जिसमें किया गया हो, मर कर जीव कार्मणकारीरके साथ निकल जाता है । यह कार्मण शरीर मृतिमान् ज्ञानावरणादि कर्मोंका पिण्डं है । तैजस् शरीर भी इसके साथ सदा रहता है । मरण कालमें इन दोनों शरीरोंके साथ जीव वज्रमय कमरेसे निकल जाता है । और कमरेमें छेद नहीं होता । इस तरह सूक्ष्म निगोद जीवों का शरीर भी अप्रतिघाती है ।

२. सूक्ष्म घ बादरमें चाक्षुपत्व सम्बन्धी विचार

ध. १/९,१,३४/२४६-२६०/६ बादरशब्दः स्थूलपर्यायः स्थूलत्वं चानियतम्, ततो न झायते के स्थूला इति । चक्षुर्याद्याश्चेत्रः, अचक्षुर्याद्याणां
स्थूलानां सृक्ष्मतोपपत्तेः । अचक्षुर्याद्याणामिष बादरत्वे सृक्ष्मबादराणामिवशेषः स्यादिति ।२४६। स्थूलाश्च भवन्ति चक्षुर्याद्याश्च न भवन्ति,
को विरोधः स्यात् । - प्रश्न-जो चक्षु इन्द्रियके द्वारा ग्रहण करने
योग्य हैं. वे स्थूल हैं । यदि ऐसा कहा जावे सो भी नहीं नतता है,
वयोंकि, ऐसा माननेपरः जो स्थूल जीव चक्षु इन्द्रियके द्वारा ग्रहण
करने योग्य नहीं हैं उन्हें सूक्ष्मपनेकी प्राप्ति हो जायेगी । और जिनका
चक्षु इन्द्रियसे ग्रहण नहीं हो सकता है ऐसे जीवोंको बादर मान
लेनेपर सुक्ष्म और बादरोंमें कोई भेद नहीं रह जाता १ उत्तर—ऐसा
नहीं है, क्यों कि स्थूल तो हों और चक्षुसे ग्रहण करने योग्य न हों,
इस कथनमें क्या विरोध है ! (अर्थात् कुछ नहीं) ।

३. सूक्ष्म व बादरमें अवगाहना सम्बन्धी विचार

सूक्ष्मजीवशरीरादसंख्येवगुणं **घ, १/१,१,३४/२५०-२५१/४** बादरम्, तद्वन्तो जीवाश्च बादराः। ततोऽसंख्येयगुणहीनं शरीरं सुक्ष्मस्, तद्वन्तो जीवाश्च सुक्ष्मा उपचारादिस्यपि कल्पना न साध्वी, सवेजवन्यवादराङ्गारसुक्ष्मकर्मि निवे तितस्य सृहमशरीरस्यासंख्येय-गुणस्वतोऽनेकान्तात् ।२४०। तस्मात् (सूक्ष्मात्) अप्यसंख्येयगुण-हीनस्य नादरकर्मनिर्वर्तितस्य शरीरस्योश्लम्भात्। = प्रश्न-सूक्ष्म शरीरसे असंख्यात गुणी अधिक अवगाहनावाले शरीरको बादर कहते हैं, और उस शरीरसे युक्त जीवोंको उपचारसे बादर जीव कहतें हैं। अथवा बादर शरीरसे असंख्यात गुणी हीन अवगाहन।वाले शरीरको सुक्ष्म कहते हैं और उस शरीरसे युक्त जीवोंको उपचारसे सुक्ष्म जीव कहते हैं: उत्तर-यह कल्पना भी ठीक नहीं है, नयों कि, सबसे जघन्य बादर शरीरसे सुक्ष्म नामकर्मके द्वारा निर्मित सुक्ष्म शरीरकी अनगाहना असंख्यातगुणी होनेसे ऊपरके कथनमें दोष आसा है। १५०। सूक्ष्म शरीरसे भी असंख्यात गुणो हीन अवगाहनावाले और बादर नामकर्मके उदयते उत्पन्न हुए बादर शरीरकी उपलब्धि होती है।२५१। और भो—दे. अवगाहना/२।

- धः १२/४ २.१३,२१४/४४३/१३ ण च सुहुमयोगाहणाए बादरोगाहणा सरिसा जणा वा हो दि किं तु असंखेडजगुणा चेत्र हो दि। = बादर जीवकी अवगाहना सूक्ष्म जीवकी अवगाहनाके बराबर या उससे होन नहीं होती है, किन्तु वह उससे असंख्यातगुणी हो होती है।
- ध, १३/५,२,२१/२४/२ सुहुमं णाम सण्णं, ण अविडहण्णमाणिमिदि चे ण, आयासादीणं सुहुमत्ता भावप्यसंगत्तो । = प्रश्न - सूक्ष्मका अर्थ बारीक है। दूसरेके द्वारा नहीं रोका जाना, यह उसका अर्थ नहीं है ! उत्तर - नहीं, क्योंकि सूक्ष्मका यह अर्थ करनेपर महात् आकाश आदि सूक्ष्म नहीं ठहरेंगे।
- गो. जी./जी. प्र./१५४/४९१/११ यदापि बादरापर्याप्तवायुकायिकादीनां जवन्यशरीरावगाहनमन्यम् । ततोऽसंख्येयगुणत्वेन सुक्ष्मपर्याप्तकवायु-कायिकादिपृथ्वीकायिकावसानजीवानां जन्नन्योत्कृष्टशरीरावगाहनानि महान्ति तथापि सूक्ष्मनामकमीदयसामध्यति अन्यतरतेषां प्रतियन्ता-भातात् निष्कम्य गच्छन्ति श्रश्णवस्त्रनिष्कान्तजलिन्दुवत् । बादराणां पुनरज्पशरीरत्वेऽपि बादरनामकर्मोदयवशादन्येन प्रतिघातो भवत्येव श्लक्ष्णवस्त्रानिष्कान्तसर्षपत्रत् । य (द्यपि) चोवं ऋद्धिप्राप्तानां स्थूल-शरीरस्य वज्रशिलादिनिष्कान्तिरस्ति सा कथं। इति चेत् तपोऽति-शयमाहारम्येनेति ब्रूमः, अचिन्त्यं हि तपोविद्यामणिमन्त्रौषधिशक्त्य-तिशयमाहारम्यं दृष्टस्वभावरवात्। 'स्वभावोऽतर्कगोचरः' इति समस्तवादिसंमतत्वात् । अतिशयरहितवस्तुविचारे पूर्वोक्तशास्त्रमार्ग एव बादरसृक्ष्माणां सिक्षः। ज्यद्यपि बादर अपर्याप्त वायुकायिकादि जीवोंकी अवगाहना स्तोक है और इससे लेकर सूक्ष्म पर्याप्त वायुका-यिकादिक पृथियीकाथिक पर्यन्त जीवोंकी जधन्य वा उत्कृष्ट अवगाहना असंख्यातगुणी है, तो भी सूक्ष्म नामकर्मकी सामर्थ्यसे अन्य पर्वतादिकसे भी इनका प्रतिधात नहीं होता है, उनमें वे निकलकर चले जाते हैं। जैसे-जलको बूँद वस्त्रसे रुकती नहीं है निकल जाती है वैसे सुक्ष्म शरीर जानना। बादर नामकर्म कर्मके उदयसे अरुप शरीर होनेपर भी दूसरों के द्वारा प्रतियात होता है जैसे सरसों वस्त्रसे निकलती नहीं है तैसे ही बादर शरीर जानना। यद्यपि ऋद्भिपास मुनियोंका शरीर चांदर है तो भी बख पर्वत आदिकर्मेंसे निकल जाता है, रुकता नहीं है सो यह तशजनित अतिशय को ही महिमा है। क्यों कि तप, विद्या, मणि, मन्त्र, औषधिकी शक्तिके अतिशयका माहारम्य ही प्रगष्ट होता है, ऐसा ही द्रव्यका स्वभाव है। स्वभाव तर्कके अगोचर है, ऐसा समस्त बादी मानते हैं। यहाँ पर अतिशयवानोंका ग्रहण नहीं है, इसलिए अतिशय रहित बस्तुके विचारमें पूर्वोक्त शास्त्रका उपदेश ही बादर सूक्ष्म जीवोंका सिद्ध हुआ।।

४. सूक्ष्म व बादरमें प्रदेशों सम्बन्धी विचार

दे. शरीर/१/४,६ औदारिक, वैक्षियिक, आहारक, तैजस व कार्मण ये पाँचों शरीर यद्यपि उत्तरोत्तर सुक्ष्म हैं परन्तु प्रदेशींका प्रमाण उत्तरोत्तर असंख्यात व अनन्तगुणा है।

स.सि./२/३८/१६२/१० यदो बं, परम्परं (शरीरं) महापरिमाणं प्राप्नोति ।
नैयम्: बन्धविशेषास्परिमाणभेदाभावस्तुलनिष्यायः पिण्डवत् । म प्रश्न – यदि ऐसा है तो उत्तरोत्तर एक शरीरसे दूसरा शरीर महापरिमाणबाला प्राप्त होता है! उत्तर—यह कीई दोष नहीं है, क्यों कि बन्ध-विशेषके कारण परिमाणमें भेद नहीं होता। जैसे, रूईका देर और लोहेका गोला। (रा, वा./२/३८/४/१४८/८)

रा. ना./२/३६/६/१४=/३१ स्यादेतत्-बहुद्रव्योपचित्तवात् तेजसवार्मण-योरुपलव्धिः प्राप्नोतीति । तन्नः कि कारणस् । उक्तमेतद्-प्रचय-विशेषात् सूक्ष्मपरिणाम् इति । = प्रश्न-बहुत परमाणुवाले होनेके कारण तैजस और कामण शरीरकी उपलब्धि (इष्टिगोचर) होना

- प्राप्त है ! उत्तर नहीं, पहले कहा जा चुका है कि उनका अति सधन और सूक्ष्म परिणमन होनेसे इन्द्रियोंके द्वारा उपलब्धि नहीं हो सकतो।
- ध. १३/४,४,२४/१०/४ ण च थूलेण बहुसंखेण चेव होद्विमिटि णियमो अत्थि। थूलेर इरुक्लादो सण्हलोहगोलएगस्व त्तण्णहाणुववत्तिबलेण प्रदेशबहुत्तुवलंभादो। = स्थूल बहुत संख्यावाला हो होना चाहिए, ऐसा कोई नियम नहीं है क्योंकि स्थूल एरण्ड वृक्षसे, सूक्ष्म लोहेके गोलेमें एकरूपता अन्यथा बन नहीं सकती, इस गुक्तिके बलसे प्रदेश-बहुत्व देखा जाता है।

५. सूक्ष्म व बादरमें नामकर्म सम्बन्धी विचार

घ. १/१,१,३४/२४६-२५१/६ न बादरशब्दोऽर्घ स्थूलपर्यायः, अपित् बादरनाम्नः कर्मणो वाचकः । तदुदयसहचरितत्वाज्जीवोऽपि बादरः ।२४१। कोऽनयोः (बादर-सृक्ष्म)कर्मणोरुदययोर्भेदश्चेन्मूर्तेर्न्यैः प्रतिहन्यमानशरीरनिवर्धको बादरकर्मोदयः अप्रतिहन्यमानशरीर-निर्वतंकः सुक्ष्मकर्मोदय इति तयोर्भेदः। सुक्ष्मत्वात्सुक्ष्मजीवानां शरीरमन्यैर्न मूर्तद्रव्यैरभिहन्यते ततो न तदप्रतिघातः सुक्ष्मकर्मको विपाकादिति चेन्न, अन्यैरप्रतिहन्यमानस्वेन प्रतिलब्धसृक्ष्मव्यपदेश्-भाजः सूक्ष्मशरीरादसंख्येयगुणहीनस्य बादरकर्मोदयतः प्राप्तबादर-व्यपदेशस्य सुक्ष्मत्वप्रत्यविशेषतोऽप्रतिचाततापत्तेः। = बादर शब्द स्थूलका पर्यायताची नहीं है, किन्तु नादर नामक नामकर्मका याचक है, इसलिए उस नादर नामकर्मके उदयके सम्बन्धसे जीव भी बादर् कहा जाता है। प्रश्न-सुक्ष्म नामकमेके उदय और बादर नामकर्मके खदयमें क्या भेद हैं १ उत्तर—कादर नामकर्मका खदय दूसरे <u>मू</u>र्त पदार्थोंसे आघात करने योग्य दारीरको उत्पन्न करता है। और सूक्ष्म नामकर्मका उदय दूसरे मूर्त पदार्थींके द्वारा आघात नहीं करने योग्य शरीरको उरपन्न करता है। यही उन दोनोंमें भेद है। पश्न-सूक्ष्म जीवोंका श्रीर सुक्ष्म होनेसे ही अन्य मूर्त द्रव्योंके द्वारा आधातंको प्राप्त नहीं होता है, इसलिए सूर्त द्रव्योंके साथ प्रतिपातका नहीं होता सूक्ष्म नामकम्के उदयसे नहीं भानना चाहिए ! उत्तर-नहीं. क्योंकि, ऐसा मानने पर दूसरे मूर्त पदार्थोंके द्वारा आघातको नहीं प्राप्त होनेसे सुक्ष्म संज्ञाको प्राप्त होने वाले सुक्ष्मशरीरसे असंख्यात गुणी हीन अवगाहनावाले और नामकर्मके उदयसे बादर संज्ञाको प्राप्त होनेवाले शादर शरीरकी सूक्ष्मताके प्रतिकोई विशेषता नहीं रह जाती है, अतरव उसका भी मूर्त पदार्थींसे प्रतिघात नहीं होगा, ऐसी आपत्ति आयेगी।

६. बादर जीव आश्रय से ही रहते हैं

घ. ७/२.६.४८/३३६/१ पुढवीओ चैवस्सिद्रूण बादराणमबद्वाणादो। =पृथिवियोंका आश्रय करके ही बादर जीवोंका अवस्थान है। (घ, ४/१,३,२४/१००/१०) (गो. जी./मू./१८४/४११) (का. अ./ टी./१२२)

७. सूक्ष्म व वादर जीवोंका लोकमें अवस्थान

मू. आ./१२०२ एइं दिया य जीवा पंचिविधा वादरा ये सुहुमा य। देसे हिं वादरा खलु सुहुमेहिं णिरंतरों लोओ ।१२०२। = एकेंन्द्रिय जीव पृथिवीकायादि पाँच प्रकारके हैं और वे प्रत्येक बादर सूक्ष्म हैं. बादर जीव लोकके एक देशमें हैं तथा सूक्ष्म जीवोसे सम लोक ठसाठस भरा हुआ है ।१२०२। (और भी दे, क्षेत्र)

🛨 अन्य सम्बन्धित विषय

१. बादर वनस्पति कायिक जीवाँका लोकमें अवस्थान । —हे. वनस्पति/२/१० ।

- २. बादर तैजस कायिकादिकोंका ठोकमें अवस्थान ।
 - **दे.** काय/२/६ ।
- ३, स्थूल परसे स्क्ष्मका अनुमान । 💛 दे. अनुमान/२/४।
- प्रस्म व स्थूल दृष्टि । —वै. परमाणु/१/६ ।
- ५. स्क्ष्म व बादर जीवों सम्बन्धी गुणस्थान, जीवसमास, मार्गणा स्थान आदि २० प्रहराणाएँ। —दे. सर
- ६. सक्ष्म बादर जोवोंकी सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल,
 अन्तर, भाव व अल्पबहुत्व प्ररूपणाएँ। —दे. वह बह नाम ।
- ७. एइम बादर जीवोंमें कर्मोंका बन्य उदय सत्त्व ।

-दे. वह-वह नामा

८. स्कन्थके सूक्ष्म स्थूल आदि मेद ।

---दे. स्कन्ध/३।

सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय—के, नय/III/६।
सूक्ष्म कृष्टि—के, कृष्टि।
सूक्ष्म किया अप्रतिपत्ति शुक्लध्यान—के, शृक्लध्यान/१/७।
सूक्ष्मजीव—के, श्रिद्ध्य, काय, जीव समास।

१. सृक्ष्म साम्पराय चारित्रका लक्षण

सूक्ष्म सांपराय-

- स. सि./१/१८/४३६/१ अतिसूर्श्मकवास्त्वारसृहमसाम्परायश्वारित्रम् ।
 जिस चारित्रमें कवाय अति सूक्ष्म हो वह सूक्ष्म साम्पराय चारित्र
 है । (रा. वा./१/१८/१/६१७/२१); (ध. १/१,१,१९१/३७९/३);
 (गो.बी./जो. प्र./४४०/७१४/७)
- रं. सं. श्रा. १९/१२२ अणुलोहं वेयंतो जीओ उवसामगो व लवगो था। सो
 सुहुमसंपराओ जहसारणूणको किस्ति ।१३२। मोहकर्मका उपरामन
 या क्षपण करते हुए स्ट्रम सोभका वेदन करना स्ट्रमसाम्पराय
 संयम है, और उसका धारक स्ट्रमसाम्पराय संयत कहलाता है। यह
 स्यम यथारम्यात संयमसे कुछ ही कम होता है। (ध. १/१,१,१२३/गा. १६०/३७३); (गो. जो. /मू./४७४/==२); (त. सा./६/४=)
- रा. बा./१/१-/१/६१७/२१ सूक्ष्मस्यूलसस्ववधपरिहाराप्रमत्तत्वाच अनु-पहतोत्साहस्य अलिण्डतिक्रियाविषेषस्य · कषायिष्यङ्कुरस्य अपच्यामिमुखाकीनस्तोकमोहमीजस्य तत एव परिप्राप्तान्वर्थस्क्ष्म-साम्परायशुद्धसंयतस्य सृक्ष्मसाम्परायचारित्रमाख्यायते। = सूक्ष्म-स्थूल प्राणियोंके वधके परिहारमें जो पूरी तरह अप्रमत्त है. अत्यन्त निर्वाध उरसाहशील, अलिण्डतचारित्र--जिसने कषायके विषांकुरोंको खोंट दिया है, सूक्ष्म मोहनीय कर्मके भीजको भी जिसने नाशके मुखमें दकेल दिया है, उस परम सूक्ष्म लोभभाले साधुके सूक्ष्म साम्पराय चारित्र होता है। (चा. सा./५४/२)
- यो. सा. यो./१०३ सुहुभहें लोहहें जो विलंख जो सुहुमु वि परिणामु। सो सुहुम वि चारित्त मुणि सो सासय-सुह-घामु। = सूक्ष्म लोभका नाश होनेसे जो सूक्ष्मपरिणामीका शेष रह जाना है, वह सूक्ष्म चारित्र है, वह शायवत सुखका स्थान है।
- त्र. सं./टो./३४/१४८/४ स्थाती न्द्रियनिजशुद्धारमसंविश्वित्रेन स्थ्म-स्रोभाभिधानसाम्परायस्य कषायस्य यत्र निरवशेषोपशमनं क्षपणं वा तत्स्थ्मसाम्परायचारित्रमिति । च्स्थ्म अतीन्द्रिय निजशुद्धारमा-के बलसे स्थम लोभ नामक साम्पराय कषायका पूर्ण स्थमे उपशमन वा क्षपण सो सक्षम साम्पराय चारित्र हैं।

२. सूक्ष्म साम्पराय चारित्रका स्वाभित्व

ष. सं. १/९.१/सू. १२७/३७६ सृष्टुम-सांपराइयसुद्धिसंजदा एकमिन चेन सुहुम-सांपराइय सुद्धिसंजदट्ठाणे ११२७। —सूक्ष्म साम्पराय शुद्धि संयत जीव एक सूक्ष्म-साम्पराय-शुद्धि-संयत गुणस्थानमें ही होते हैं ११२७। (गो. जी./मू./४६७); (गो. जी./जी. प्र./७०४/१४०/११); (ब्र. सं./३४/१४८)

े ३. जधन्य उत्कृष्ट स्थानीका स्वामित्व

ष. खं. ७/२.११/स्. १७२-१७३ व. ही./१६व सुहुमसोपराइयसुद्धि-संज्ञमस्स जहण्यिया चिरित्तलद्धी...।१७२।' उवसमसेडीहो खोयरमाण चिरमसमयसुहुमसोपराइयस्स । 'तस्सेव उवकसिया घरित्तलद्धी... ।१७३। चिरमसमयसुहुमसोपराइयखवगस्स । — सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धि संयमकी जवन्य चिरत्र लिच्च...।१७२। 'उपदाम श्रेणीसे उत्तरने वाले अन्तिम समयनर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकके होती है । 'उसी ही सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धि संयमकी उरकृष्ट चारित्र लिख्य...।१७३।'— अन्तिम समयनर्ती सूक्ष्म साम्परायिक क्षपकके होती है ।

४. सूक्ष्म साम्पराय चारित्र व गुप्ति समिति में अन्तर

रा. वा./१/१८/१०/६१७/२६ स्यान्यतम्-गुप्तिसिमित्योरन्यतरत्रान्तर्भवतीरं घारित्रं प्रवृत्तिनिरोधात् सम्यग्यनाच्चेतिः, तत्वः किं कारणम् ।
सद्भावेऽपि गुणविशेषिनिमित्ताश्रयणात् । लोभसंज्वलनार्थ्यः साम्परायः सृक्ष्मो भवतीत्ययं विशेष आश्रितः । --प्रश्न-यह चारित्र
प्रवृत्ति निरोध या सम्यक् प्रवृत्ति रूप होनेसे गुप्ति और समितिमें
अन्तर्भूत होता है ! उत्तर-ऐसा नहीं है वर्योक्ति यह उनसे आगे
बढ़कर है । यह दसवें गुणस्थानमें, जहाँ मात्र सृक्ष्म लोभ टिमटिमाता
है, होता है, अतः यह पृथक् रूपसे निर्विष्ट है ।

६. सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानका कक्षण

- पं. सं./पा./१/२२-२३ कोसंभोजिह राखो अन्मंतरदो य सुहुमरतो य। एवं सुहुमसराओ सुहुमकसाखो त्ति णायक्वो।२२। पुठवापुठव-प्रकृष्ठयज्ञुभागाओ अणंतगुणहोणे। लोहाणुम्मि य द्विअओ हंदि सुहुमसंपराओ य।२३। —जिस प्रकार कुसूमली रंग भीतरसे सूक्ष्म रक्त अर्थात् अस्मन्त कम लालिमा वाला होता है. उसी प्रकार सुक्ष्म राग सहित जीवको सूक्ष्मकषाय वा सूक्ष्म साम्पराय जानना चाहिए ।२२। लोभाणु अर्थात् सुक्ष्म लोभमें स्थित सूक्ष्म-साम्परायसंयत कीकषाय पूर्व स्पर्धक और अपूर्व स्पर्धक अनुभाग राक्तिसे अनन्तगुणो होन होती है।२३। (गो. जी./मू./६८-४६); (ध. २/१, १, १८/गा. १२१/१८८)।
- रा. वा./१/१/२१/४६०/१७ साम्परायः कषायः, स यत्र सृक्ष्मभावेनी-पशान्ति क्षयं च आपवाते ती सृक्ष्मसाम्परायी वेदिलस्यी।-साम्पराय-कषायोंको सूक्ष्म रूपसे भी उपशाम या क्षय करने वाला सृक्ष्मसाम्पराय उपशामक क्षपक है।
- थ. १/१,१,१८-/१८%/३ सुक्ष्मश्चासी साम्परायश्च सुक्ष्मसाम्परायः । तं प्रविष्टा शुद्धिर्मेषां संयतानां ते सुक्ष्मसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयताः ।
- ध. १/१.१.२७/२/१४/३ तदो णंतर-समए सुहुमिकट्ठिसक्वं लोभं वेदंतो णट्ठअणियट्ठि-सण्णो सुहुमसांपराइओ होदि । न्सूक्ष्म कवायको सुक्ष्म साम्पराय कहते हैं उनमें जिन संयतोंकी शुद्धिने प्रवेश किया है जन्हें सूक्ष्म-साम्पराय-प्रविष्ठ-शुद्धि संयत कहते हैं। २, इसके अनन्तर समयमें जो सूक्ष्म कृष्टि गत लोभका अनुभव करता है और जिसने अनिवृत्तिकरण इस संज्ञाको नष्ट कर दिया है, ऐसा जीव सूक्ष्म-साम्पराय संयम वाला होता है।

Jain Education International

द्र. सं./टी./१३/३६/६ सूक्ष्मपरमाहमतत्त्वभावनावलेन सूक्ष्मकृष्टिगत-लोभकषायस्योपशमकाः क्षपकाश्च दशमगुणस्थानवर्तिनो भवन्ति । =सूक्ष्म परमाहम तत्त्व भावनाके बलसे जो सूक्ष्म कृष्टिहरूप लोभ कषायके उपशमक और क्षपक हैं, वे दशम गुणस्थानवर्ती हैं।

\star अन्य सम्बन्धित विषय

१. स्क्ष्म साम्पराय गुणस्थानके स्वामित्व सम्बन्धी गुणस्थान, जीवसमास, मार्गणास्थान आदि २० प्रहृपणाएँ ।

—दे. वह वह नाम ।

२. इस गुजस्थान सम्बन्धी सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्धन, काल, अन्तर, भाव व अल्प-बहुत्वरूप आठ मरूपणार्थ। —दे. बह बह नाम ।

इ. इस गुणस्थानमें कर्मप्रकृतियोंका बन्ध, उदय, व
 सत्त्व प्ररूपणाएँ।
 -दे. वह वह नाम।

४. सभी गुणस्यानीं व मार्गणास्यानींमें आयके अनुसार ही व्यय होनेका नियम। —हे, मार्गणा।

५. इस गुणस्थानमें क्रषाय योगके सङ्गाव सम्बन्धी ।

---दे. वह यह नाम ।

६, इस गुणस्थानमें औपश्चमिक व साथिक भाव सम्बन्धी। ---हे. अनिवृत्तिकरण।

७. स्क्ष्म कृष्टिकरण सम्बन्धी। -- दे, कृष्टि।

८. उपराम व अपन श्रेणी। — दे. श्रेणी।

पुनः पुनः यह गुणस्थान पानेकी सोमा। — -दैः संग्रम/२।

१०. सक्ष्मसाम्पराय व छेदोपस्यापनामें मेदामेदः।

--- दे. छेदोपस्थापना/४ ।

सूक्ष्म स्कंध—हे, स्कन्ध । सूक्ष्मा वाणी—हे. भाषा ।

सूची -- Width (ज. प./प्र. १०६)। २. (Diameter or radius व्यास या वाण १)। ३. सूची निकालनेकी प्रक्रिया। -- दे. गणित/II/७।

४, ध. ३/१,२.१७/१३३/५ अंगुलवरणपूर्त विनलंभसूई हवदि। तं कि भूदिमित युत्ते विदियवरणस्त्राणणेण उवलिखयं। —सूच्यंगुलके प्रथम वर्गमूलमें (अर्थात सूच्यंगुलका आश्रय लेकर विव्कंभसूची होती है। वह सूच्यंगुलका प्रथम वर्गमूल किस रूप है, ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं कि सूच्यंगुलके द्वितीय वर्गमूलके गुणाकार से उपलक्षित है। अर्थात सूच्यंगुलके प्रथम वर्गमूलको उसीके द्वितीय वर्गमूलसे गुणित कर देने पर सामान्य नारक मिध्यादृष्टियोंकी विव्कम्भ सूची होती है। उदाहरण—सूच्यंगुल २×२; उ विव्कम्भ—सूची प, सूच्यंगुलका वर्गमूल २; उ सूच्यंगुलका द्वितीय वर्गमूल २; उ व विव्कम्भम् सूची २; सूच्यंगुलका वर्गमूल २; उ सूच्यंगुलका द्वितीय वर्गमूल २; उ व विव्कम्भमूची। २×२=२

सूच्यंगुल-क्षेत्र प्रमाणका एक भेद-वे. गणित/!/१/३। सूतक-१. सूतक पातक विषयक जुगुप्सा हेय है

म् . आ ./टो ./६४६ जुगुप्सा मही द्विविधा द्विप्रकारा-जौकिकी लोको-त्तरा च । लोकव्यवहारशोधनार्थं सूत्तकादिनिवारणाय लौकिकी जुगुप्सा परिहरणीया तथा परमार्थं लोकोत्तरा च कर्त्तव्येति । -जुगुप्सा या गही दो प्रकारकी है - लौकिकी व लोकोत्तर । लोक व्यवहार शोधनार्थ सूतक आदिका निवारण करनेके लिए जो सौकिकी जुगुप्सा की जाती है वह छोड़ने योग्य है, और परमार्थ या लोकोत्तर जुगुप्सा करनी योग्य है। (और भी देखों निविचिकित्सा)।

२. मोजन शुद्धिमें सूतक पातकके विवेकका निर्देश

भ, आ./बि./२३०/४४४/२० मृतजातसूतकपुक्तगृहिजनेन · · · दीयमाना वसिद्धिकदुष्टा ! — जिसको मरणाशीच अथवा जननाशीच है, ऐसे दोषसे युक्त गृहस्थके द्वारा यदि वसितका दी गयी हो तो वह दासक दोषसे दृष्ट है ।

त्रि. सा./१२४ ... अस्पिस्दगः। कयदाणा वि कुवत्ते जीवा कृणरेष्ट्र जायंते ।१२४। — अपवित्रतासे अथवा मृतादिकका सूत्तकसे संयुक्त जो कृपात्रोंमें दान करता है वह जीव कृमनुष्योंमें उरपक्र होता है ।१२४।

सन, ध. १/३४ शर्वादिनापि "दत्तं दायकदोषभाक् ।३४। उक्तं च—
सूती शौषडी तथा रोगी शबः षण्डः पिशाचवादः पितितोचारनग्नाध रक्ता वेश्या च लिङ्गिनी । = शबको श्मशानमें छोड़कर
आये हुए मृतक सृतकसे युक्त पुरुषों द्वारा दत्त आहार वायक दोषसे
दूषित समभना चाहिए ।३४। — जिसके सन्तान उत्पन्न हुई हो...।

को, पा,/टी./४º/११२ पर उद्द्वस —दीनस्य सूतिकायाश्वःः। —दीन अर्थात दरिद्री, सूतक काली खीके घरका विशेष रूपसे (साधु आहार प्रहण न करें)।

सा. सं./१/२११ सूलकं पातकं चापि यथोक्तं जैनशासने। एषणाशुद्धि-सिद्धमर्थं वर्कयेच्छ्रावकाप्रणीः ।२११। —अधूनती भानकोंको खपने भोजनकी शुद्धि बनाये रखनेके लिए अधना एषणा शुद्धिके सिए यथोक्त सूलक पातकका भी त्याग कर वेना चाहिए। भानार्थ-किसीके सुलक पातकमें भोजन नहीं करना चाहिए।

चर्चा समाधान/१३/१. १० मुनि आहारार्थ स्तक व वृश्वित ऐसे शुद्ध

कुल में भी प्रवेश,न करे।

६. स्तक पातक किसको च कहाँ नहीं कगता

प्रसिष्ठापाठ जयसेन/२६८ यद्वंश्यतीर्थं कर भिम्भमुदीर्य संस्थामुख्या तदीय-कृत्वगोत्र जनिप्रवेशात्। संवृत्तगोत्र चरणप्रतिपादयोगादाशी चमावस्तु नोधभवप्रशस्तम् ।२६८। — जिस वंश बाला यजमान विम्न प्रतिष्ठा करा रहा है, उसके वंश, कृत, गोत्रमें उस दिनसे अशीच नहीं माना जाता अर्थात् जिस दिन नान्दी अभिषेक हो गया उस दिनसे यजमानके कुलमें सूतक तथा सूवा नहीं सगता।२६८।

प्राथश्चित्त संग्रह/३६३ बालत्रणश्चरत्वाज्ज्वलनादिप्रदेशे दीक्षिलैंः । अनशनप्रदेशेषु च मृतकानां खलु सूतकं नास्ति । स्तीन दिनका बालक, युक्कमें मरणको प्राप्त, अग्नि आदिके द्वारा मरणको प्राप्त जिन दीक्षित, अनशन करके मरणको प्राप्त; इनका मरणसूतक नहीं होता ।

भूतक पातक शुद्धि काल प्रमाण

म. पु./१८/६०-६९ बहियानं ततो दियेः मासै स्त्रिचतुरै रुत ।

यथानुक् लिमिटेऽहि कार्यत्यदिमङ्गलैः १६०। ततः प्रभृत्यभी ष्टं
हि शिशोः प्रसववेशमनः । बहिःप्रणयनं माता धात्र्युत्सङ्गतस्य वा
१६९। =तदनन्तर (प्रसूतिके) दो-तीन अथवा तीन चार माहके
बाद किसी शुभ दिन तुरही आदि मांगलिक बाजोंके साथ-साथ
अपनी अनुक्लताके अनुसार वहियानि किया करनी चाहिए। जिस
दिन यह किया की जाये उसी दिनसे माता अथवा धायकी
गोदमें बँठे हुए बालकका प्रसृति गृहसे बाहर से जाना
सम्मत है।

प्रायश्चित्त संग्रह/१४३ नाह्मणक्षत्रियविङ्शूदादिनैः शुद्धयन्ति पञ्चभिः। दश-द्वादशभिः पञ्चादश वा संख्याप्रयोगतः ।१४३। च्लाह्मण पाँच दिनमें, क्षत्रिय दश दिनमें, वैश्य बारह दिनमें, और शूद्ध पन्त्रह दिनोंमें पातकके दोषसे शुद्ध होते हैं।

४. ज्यवहार गत सूतक पातक शुद्धिका काल प्रमाण

अवसर	जन्म	मरण		न्य	मरण
३ पीढ़ी तक ४ " " १ " " ६ " " ६ " " १ " " १ " " १ जी, दासी, दास (अपने घरमें) गाय भेंस आदि (अपने घरमें) अनाचारी स्त्री पुरुषके घर	१० " ६ " ३ " ६ पहर २ "	१२ दिन १० % ३ % ६ % ३ % १ ४ % १ % सदा	१ महीने तकके शालक ८ वर्ष तकका शालक ३ मास तकका गर्भपात इसके पश्चात जितने मासका गर्भपात हो गृह त्यागी, संन्यासी गृहस्थी परदेशमें मरे तो		र दिन ३ , , , , , , , , , , , , , , , , , , ,

५. रजस्वछा स्त्रीका स्पर्श करना योग्य नहीं

अन. ध-/४/३६ में उइधृत -रक्ता वेश्या च लिङ्गिनी । क्रजी मासिक धर्मसे युक्त हो, वेश्या तथा आर्थिका आदिके आहारको दायक दोवसे दुष्ट समफना चाहिए। (अन. ध./४/३४)

त्रि, सा./१२४...पुष्णवर्शस्या कयदाणा वि कुवते जीवा कुणरेष्ठ जायंते ।१२४। = पुष्पवती स्त्रीका संसर्ग कर, जो कुपात्रमें दान देता है, वह कुमानुषीमें उरवज्ञ होता है।

सा- ध./४/३१··। स्पृष्ट्या रजस्यलाशुष्कचर्मास्थिशुनकादिकम्। = वतो गृहस्थ रजस्वला स्त्री, सूखा चमड़ा, हड्डी, कुत्ता आदिके स्पर्श हो जानेपर (भोजन छोड़ दों।)

रजस्वला खीकी गुद्धिका काल प्रमाण

म. पु./३८/७० आधानं नाम गर्भादौ संस्कारो मन्त्रपूर्वकः । परनीमृतु-मतौ स्नातां पुरस्कृत्याई दिज्यया ।७०। = चतुर्थ स्नानके द्वारा युद्ध हुई रजस्वला परनीको आगे कर गर्भाधानके पूर्व अहन्तदेवकी पूजाके द्वारा मन्त्रपूर्वक जो संस्कार किया जाता है उसे आधान क्रिया कहते हैं।

🖈 अन्य सम्बन्धित विषय

 र. नीचादिका अथवा रजस्वकाका स्वर्श होनेपर साधु जल घारा से शुद्धि करते हैं।
 —दे. मिक्षा/६।

सूत्र—१, दे. आगम/७ Formula. (ध. ४/१./२८) सूत्रकृतांग —श्रुतके दृष्टिप्रवाद अंगका दूसरा भेद—दे. श्रुत-ज्ञान/111 (सूत्रपाहुड़—आ. कुन्दकुन्द (ई. १२७-१७६) कृत शास्त्रज्ञान या सम्याज्ञान विषयक २७ प्राकृत गाथाओंबद्ध ग्रन्थ है। इसपर आ. श्रुतसागर (ई. १४७३-१४३३) कृत संस्कृत टोका और पं. जयचन्द छानड़ा (ई. १८६७) कृत भाषा वचनिका उपलब्ध है।

सूत्रमणि - रुचक पर्वतके नित्थोद्योत क्टपर रहनेवाली विद्युश्कुमारी देवी - दे. बोक/८/१३।

सूत्रसम द्रव्य निक्षेप-निक्षेप/१/८।

सूत्र सम्यक्त्य — दे, सम्यन्दर्शन/1/१

सूत्रोपसंयत-दे. समाचार।

सूना — मू. आ./१२६ कंडणी पीसणी चुल्ली उदकुंभं पमज्जणी।
— ओखली, चक्की, चूलि, जल रखनेका स्थान, बुहारी ये पाँच सूना
दोष कहलाते हैं। (अन. ध./४/१२६)

दोष कहलाते हैं। (अन. घ./४/१२६)
स्रिने—भरत क्षेत्र मध्य आर्य खण्डका एक देश – दे. मनुष्य/४।
स्परि—भरतक्षेत्र पश्चिम आर्य खण्डका एक देश।—दे. मनुष्य/४।

सूर्यं — १, इस सम्बन्धी विषय — दे, ज्योतिष/२; २. कृष्णका १७वाँ पुत्र — दे इतिहास१०/१०; ३. छापरविदेहस्थ नागगिरि वक्षारका एक कृट व उसका रक्षक देव — दे. लोक/१/४।

सूर्यगिरि-अपरविदेहस्य एक वक्षार ।-दे. लोक/१/३।

सूर्यंपत्तन-वर्तमान सूरत । (म. पु./प्र. ४१ पं. पन्नानात)।

सूर्यपुर - विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीका नगर-दे. विद्याधर ।

सूर्यंप्रज्ञप्ति - अंग श्रुतका एक भेद-दे, श्रुतज्ञान/III ।

सूर्यं रज म. पु./सर्ग/श्लोक सुधीवका पिता था (१/१) नालीको राज्य दे स्वयं दीक्षित हो गया था (१/११)।

सूर्यवंश—दे. इतिहास१०/१६।

सूर्यं ह्नद-देवकुरुके दस द्रहों मेंसे दोका नाम-दे. लोक/७।

सूर्याचरण-मुमेरु पर्वतका अपर नाम-दे, सुमेरु।

सूर्याभ-१. जीकान्तिक देवोंका एक भेद-दे. जीकान्तिक: २. विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीका एक नगर-दे, विद्याधर।

सूर्यावर्तं - मुनेरु पर्वतका अपर नाम-दे. सुनेरु ।

सृष्टा—हे. कर्म/१/१।

सृष्टि—१. अन्य मत मान्य सृष्टि व प्रलय-दे, वैशेषिक व सांख्य दर्शन; दे, २. प्रलय ।

सेजाधर—१. भ. आ./वि /४२१/६१३/१३ सेजाधरशब्देन त्रयो भण्यन्ते वसित यः करोति । कृतां वा वसित परेण भग्नां पतित्तेक विशां वा संस्करोति । यदि वा न करोति न संस्कारयित केवलं प्रयच्छत्यत्रास्वेति । चजी वसितकाको जनाता है वह, जनायी हुई वसितकाको संस्कार करनेवाला अथवा गिरी हुई वसितकाको सुधारनेवाला , किवा उसका एक भाग गिर गया हो उसको सुधारनेवाला वह एक, जो बनवाता नहीं है, और संस्कार भी नहीं करता है परन्तु यहाँ आप निवास करो ऐसा कहता है वह, ऐसे तीनोंको सेज्जाधर कहते हैं । २. सेज्जाधरके हाथका आहार ग्रहण करनेका निषेध—दे. भिक्षा/३/२।

सेनसंध—दे. इतिहास/६/२५।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

सेना-१. सेनाका उक्षण

प. पू./१६/३-८ अष्टाविमे गताः रूथाति प्रकारा गणनाकृताः। चतुर्णौ भेदमङ्गानां कीर्त्यमानं विकोध्यताम् ।३। पत्तिः प्रथमभेदोऽत्र तथा सेना प्रकीतिहा । सेनामुखं तही गुल्मं बाहिनी पृतना चमुः ।४। अष्ट-मोऽनीकनीसंह्यस्तत्र भेदो बुधैः स्मृतः। यथा भवन्यमी भेदास्तथै-दानी बदामि ते । १। एको रथो गजानी कस्तथा पञ्च पदातयः । त्रयस्तु-रङ्गमाः सैषा पत्तिरित्यभिधीयते । । पत्तिस्त्रिगुणिता सेना तिसः सेनामुखं च ताः। सेन्। मुखानि च त्रीणि गुरमिरयनुकीरयेते। ७। बाहिनी त्रीणि गुरमानि प्रतना बाहिनीत्रयस्। चमुस्त्रिप्रतना ज्ञेया भ्रमृत्रयमनीकिनीम्।८। = हाथी, घोड़ा, रथ और पयादे ये सेनाके चोर अंग कहे गये हैं। इनकी गणना करने के नीचे लिखे आठ भेद प्रसिद्ध हैं।३। प्रथम भेद पत्ति, दूसहा भेद सेना, तीसरा सेनामुख, भौधा गुल्म, पाँचवाँ वाहिनी, छठाँ पृतना, सातवाँ चमू और आठवाँ अनीकिनी। अब उक्त चार अंगोंमें मे जिस प्रकार होते हैं उनका कथन करता हूँ ।४-४। जिसमें एक रथ, एक हाथी, पाँच पयादे और तीन घोड़े होते हैं वह पत्ति कहताता है।६। तीन पत्तिकी सेना होती है, तीन सेनाओंका एक सेनामुख होता है, तोन सेनामुखों का एक गुण्म कहलाता है। ७। तीन गुण्मोंकी एक वाहिनी होती है, तीन वाहिनियोंकी एक पृतना होती है, तीन पृतनाओंकी एक चमु होती है और तीन चमुकी एक अनीकिनी होती है ।८। दस अनीकिनीकी एक अक्षौहिणी होती है। कुल अक्षौ-हिणीका प्रमाण-से, अक्षी हिणी।

* सेनाको १८ श्रेणियाँ — हे. हेणी/१/२ ।

सेनापति—१. सेनापति कहिए सेनाका नायक। (त्र. सा,/टी./-६८३); २, चक्रवर्तीके चौदह रश्नोमेंसे एक—दे. शलाकापुरुष/२।

सेनामुख-सेनाका एक अंग-दे. सेना ।

सेमर-नरकमें होनेवाला एक वृक्ष विशेष (छहढाला/१।

सेवा--- प्र. सा./ता. वृ./२६२/३४४/१२ उपासनं शुद्धात्मभावना सह-कारिकारणनिमित्तं सेवा। -- शुद्धात्मभावनाकी सहकारीकारण उपासना सेवा है।

संघव---भरत क्षेत्रका एक देश। अपर नाम सिन्धु।-- दे, मनुष्य/४। सैतव---भरत क्षेत्रके मध्य आर्थ खण्डका एक देश--दे, मनुष्य/४।

सैद्धांतिकदेव — निन्दसंघके देशीय गण नं. २ की गुर्वावलीके अनुसार आप शुभचन्द्र नं. २ के शिष्य थे। समय—वि. १०७२-१९०३ ई. १०१४-१०४६ (पं. सं./प्रा./प्र./घ. H. L. Jain)—दे. इतिहास/४/१४।

सोपक्रमकाल-३, काल/१/६।

सोम --- भद्रशाल बनस्य पद्मोत्तर दिग्गजेन्द्रका स्वामी देव--दे, लोक/३/६.४।

सोमका यक-१, लोकपात देवोंका एक देव-थे, लोकपात; २, आकाशोपपन्न देव-थे. देव/11/१/३।

सोमकीति काष्ठासंघकी नन्दितर शाखा में भीससेनके शिष्य थे। कृति - प्रद्रुमुन्न चरित्र, चारुदस चरित्र, यशोधर चरित्र, सण्द-व्यसन कथा। समय-वि, १६१८-१६४० (ई. १४६१-१४८३)। (ती,/३/३४४)। सोमदत्त - इन्होंने जिनदत्त सेठसे आकाशगामिनी विद्याको सिद्ध करनेका उपाय प्राप्त किया। परन्तु अस्थिर चित्तके कारण सिद्ध न कर सके। फिर उसको विद्युच्चर चोरने सिद्ध्य किया। (बृहद्ध कथा कोश। कथा ४)।

सीमदेव-१.महातार्किक तथा राजनैतिक-ध्रमणार्थ । यहारेदेव 'के प्रिक्तिम्य, नेमिवेव के शिष्य और महेन्द्र देव के लघु सध्मा । कर्णाटक देश में चालुन्य राज के पुत्र वाद्यराज से रक्षित । कृति—नीति वाद्यामृत, यहास्तिज्ञक चम्पू, अध्यास्म सर्रिगनो, स्याहोदोपनिषद्, प्रण्णवित्रकरण, प्रिवर्ग महेन्द्र मांतिज्ञज्ञ, युक्तिचिन्तामणिस्तव, योगमार्ग । समय—यशस्तिज्ञक का रचनाकाल शक ८८१ । तहनुसार वि. १०००-१०२५ (ई. १४३-१६८) । (ती./३/७१-७३), (जै./१/४२७) । २. खृहद्द कथा सरित सागर के रचयिता एक भट्टारक । समय—ई. १०६१-१०८९ । (जीवन्धर चम्पू/प्र. १८/А, N, Up.) । ३. एक जिन्निम्ब प्रतिष्ठाचार्य गृहस्थ, कृति-धृतमुनि कृत आस्त्व त्रिभंगी का गुजराती भाष्य । समय—वि.श. १४-१६ । (जै./१/४६१-४६३) ।

सीमनाथ--- 'कहयाणकारक' के रचिता एक कल्नड़ आयुर्वेदिक बिद्वान् : समय--- ई. १९६० । (ती./४/३११) ।

सीमप्रभ — म.पु./सर्ग./श्लोक अधान्स राजाका भाई था। भगवाच् ऋषभदैवको सर्व प्रथम आहार दिया (२०/८८)। अन्तमें भगवाच्के समवशरणमें दीक्षा ग्रहणकर (२४/१७४) मुक्ति प्राप्त की (४२/८६)।

सीमयरा-बाहुमतीका पुत्र था। इसीसे सोमवंशकी उत्पत्ति हुई थी। (ह, पु./१३/१-२); (प, पु./११४)। -- दे. इतिहास/१०/२।

सोमवंश-दे.इतिहास/१०/१७।

सोमशर्मा—१. जातिका ब्राह्मण था। जैन मुनिसे प्रभावित होकर हीशा ग्रहण कर ली। परन्तु वर्णका ठीक उच्चारण न होनेसे अन्य किसी आचार्यके पास जाकर चार आराधनाओं का आराधन कर स्वर्गमें देव हुआ। (बृ.क.को /कथा नं. २) २, पुष्पा भजलका पुत्र था। मित्र मुनि वारिषेणको आहार दानके पीछे उनको संघमें पहुँचाने गमा। वहाँ अनिच्छक वृत्तिसे दीक्षा धारण कर ली। बहुत समय परचात् वारिषेण मुनिने इनको पदिविचलित जान कर अपनी शृंगारित १०० सौ रानियोंको दिखाकर इसका स्थितिकरण किया। (बृ.क. को /कथा १०)। ३. विष्णुशर्मा हारा व्यापारार्थ प्रदत्त धनको डाकुओं द्वारा छुट लिया जानेपर दीक्षा ग्रहण कर ली। विष्णुशर्माके धनके लिए जिद करनेपर तपके प्रभावसे उसका धन चुका दिया। तब विष्णुदत्त भी दीक्षित हो गया। (बृ. क.को/कथा १६)।

सीमओं भी - राजा भोजके समय मालवां के आश्रमनगरमें सोम शेणी-के लिए नेमिचन्द्र सैद्धान्तिक देवने द्रव्यसंग्रह रचान समय-वि. श. ११-१२ (ई. ११का उत्तरार्ध) - दे, नेमिचन्द्र ।

सोम्सेन-सेनगणपुष्करगच्छ गुणभद्र भट्टारके के शिष्य, अभय पंडित के गुरु। कृति-राम पुराण, त्रिवणिचार (धर्मे रसिक), शब्द रस्न प्रदीप (संस्कृत कोष)। समय-प्रत्थों का रचना काल वि. १६८६-१६६७। (ती./३/४४३); (वे. इतिहास/७/६)।

सोमिल-भगवाच् वीरके तीर्थमें अन्तकृत केवली हुए थे। दे. अन्तकृत।

सीमेंदवर धारवाडके राजा थे। इन्होंने धर्मगुरु गोवर्धन वेवको सम्यवस्य रस्ताकर चैत्यालयके लिए कुछ दान दिया था। समय-ई. १०४४ (सि.वि./७४ शिलालेख)

सोरठ - भरत क्षेत्रका एक देश । अपर नाम सौराष्ट्र - दे, मनुष्य/४। सोलसा-भगवान् धर्मनाथको शासक यक्षिणी-दे. तीर्थं कर/४/३।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

सोल्य — भरत क्षेत्रस्थ मध्य आर्य खण्डका एक देश — दे. मनुष्य/४
सोकर — विजयार्धकी उत्तर श्रेणीका एक नगर — दे. विद्याधर ।
सोगन्ध — मानुषोत्तर पर्वतस्थ एक क्ट — दे. लोक/ ६/१० ।
सोगन्धिक — मानुषोत्तर पर्वतस्थ एक क्ट — दे. लोक/ ६/१० ।
सोत्रान्तिक — दे. बौद्धदर्शन ।
सोदामिनी — रुचक पर्वत वासिनी दिक्छमारी । — दे. लोक/६/१३ ।
सोदाम — प.यु./१२/१लोक — इक्ष्वाकु वंशी नयुषका युत्र था (१३१)
नरमांसभक्षी होनेके कारण राज्यसे च्युत कर दिया गया (१४४) ।
दैवयोगसे महापुर नगरका राज्य प्राप्त हुआ । इसके अनन्तर युद्धमें

सौधर्म- १. सौधर्मका लक्षण

स.सि./४/१६/२४६/७ सुधर्मा नाम सभा, सास्मिन्नस्तीति सौधर्मः करणः । तदस्मिन्नस्तीति अण् । तत्कम्पसाहचयिन्नदोऽपि सौधर्मः । चसुधर्मा नामकी सभा है वह जहाँ है उस करणका नाम सौधर्म है। यहाँ 'तदस्मिन्नस्ति' इससे अण्, प्रत्यय हुआ है। और इस करणके सम्बन्धसे वहाँका इन्द्र भी सौधर्म कहलाता है।

अपने पुत्रको जीत लिया। अन्तमें दीक्षित हो गया (१४८-१५२)।

२. सुधर्मा सभाका अवस्थान व विस्तार

ति.प./८/४०७-४०८ सक्कस्स मंदिरादो ईसाणिदसे सुधम्मणामसभा।
तिसहस्सकोसउदया चउसयदीहा तदद्धित्यारा।४०७। तीर दुवारछेहो कोसा चउसिंद्र तद्दलं रुंदो। सेसाओ वण्णाओ सक्कप्पासाद —
सरिसाओ १४०८। —सौधर्म इन्द्रके मन्दिरसे ईशान दिशामें तीन
हजार (तीन सौ) कोश ऊँची, चार सौ कोश जम्बी और इससे
आधी विस्तार बाली सुधर्मा नामक सभा है।४०७। सुधर्मा सभाके
द्वारोंकी ऊँचाई चौसठ कोश और विस्तार इससे आधा है। शेष
वर्णन सौधर्म इन्द्रके प्रासादके सहश है।४०८।

त्रि.सा/११४-४१६ अमराविद्युरमज्के धंभिनिहीसाणहो सुधम्मवस्यं।
अहाणमण्डवं सयतहलदीहदु तदुभयदल उदयं १४१४। पृथ्युत्तरदिक्तिणदिस तदारा अहुवास सोलुदया११६। च्यामरावती
नामका इन्द्रका पुर है उसके मध्य इन्द्रके रहनेके मन्दिरसे ईशान
विदिशामें सुधमी नाम सभा स्थान है। वह स्थान सौ योजन लम्बा,
पद्मास योजन चौड़ा और पचहत्तर योजन ऊँचा है।१९६। इस सभा
स्थानके पूर्व, उत्तर, व दक्षिण विदिशामें तीन द्वार हैं, उस एक द्वार
की ऊँचाई सोलह योजन और चौड़ाई आठ योजन है।१९६।

३. सुधर्मा सभा का स्वरूप

तिःसा./११६-१२२ मज्मे हरिसिंहासणपद्येवीणासणं पुरदो १११६। तव्वाहि पुठ्वादिसु सकोयवालाणतुणेरिदिए ११९७। सेणावईणमवरे समाणियाणं तु पवणईसाणे। तणुरक्ताणं भद्दासणाणि चउरिस-गयाणि बहि ११८०। तस्सग्गे इगिनासो छत्तीसुदओ सबीढ वज्ज-मओ। माणत्यंभो गोरुदिवत्थारय वारकोडिजुदो १११६। चिट्ठंति तत्थ गोरुदचरथवित्थारकोसदीहजुदा। तित्थयरा भरणचिदा करंड्या रयणसिककिया।१२०। तुरियजुदविजुदछज्जोयणाणि जविरि अघोवि ण करण्डा। सोहम्मदुगे भरहेरावदित्थयरपडिनद्धा ११२१। साणक्कुमारजुगले पुठ्ववर विदेहित्थ्यर घूसा। ठिवदच्चिया सुरेहि कोडी परिणाह वारंसो ११२२। साधमी सभाके मध्यमें इन्द्रका सिहासन है। और उस सिहासनके आगे आठ पटवेवियोंके आठ सिहासन है।१९६। पटदेवियोंके आसनको पूर्वादि दिशाओंमें चारों लोकपालोंके चार आसन हैं। इन्द्रके आसनसे आग्नेय, यम और नैर्म्ह ति दिशाओंमें तीन जातिके परिषदोंके क्रमसे १२०००,

१४००० और १६००० अ।सन हैं। और त्रयस्त्रिशत देवोंके ३३ अ।सन ने ऋंतिदिशामें हो हैं।५१७। सेना नायकोंके सात आसन पश्चिम दिशामें, सामानिक देवों के वायु और ईशान दिशामें हैं। इनमें चौरासी हजार सामानिकके आसनोंमें ४२००० तो वायु दिशामें, ४२००० ईशान दिशामें जानने। अंगरक्षक देवोंके भद्रासन चारों दिशाओं में हैं तहाँ सौधर्मके पूर्वादि एक-एक दिशामें प्र००० आसन जानने ।५१८। इस मण्डपके आगे एक योजन चौड़ा, छत्तीस योजन ऊँचा, पीठसे युक्त वज्रमय एक-एक कोश विस्तार वाली १२ धाराखाँ-से युक्त एक मानस्तम्भ है ।५१६। तिस म.नस्तम्भमें चौथाई कोश चौड़े, एक कोश लम्बे तीर्थं कर देवके आभरणोंसे भरे हुए रत्नोंकी सांकलमें लटके हुए पिटारे हैं। मानस्तम्भ छत्तीस योजन ऊँचा है। उसमें नी चेसे भौने छह योजन ऊँचाई तक पिटारे नहीं हैं। बीचमें २४ योजनकी ऊँचाईमें पिटारे है, और फिर ऊपर सबा छह योजन की ऊँचाईमें पिटारे नहीं हैं। सौधर्म द्विकमें के मानस्तम्भ भरत ऐरायतके तीर्थंकर सम्बन्धी हैं। १२०-५२१। सनत्कुमार गुगल सम्बन्धी मानस्तम्भोंके पिटारों में पूर्व पश्चिम विदेहके तीर्थं करोंके आभूषण स्थापित करके देवोंके द्वारा पुजनीय हैं।५२२।

🛨 अन्य सम्बन्धित विषय

१. कल्पवासी देवोंका एक मेद निर्देश --दे. स्वर्ग/३ --दे. स्वर्ग/६
२. कल्पवासी देवोंका अवस्थान --दे. स्वर्ग/६
३. कल्प स्वर्गोंका प्रथम कल्प है --दे. स्वर्ग/६/२।

सौभाष्यदशसी वत भादी सुदी दशमी दिन ठान, दश सुहागिनी भोजन दान। (बत विधान सं./१२१) (नवल साहकृत वर्षमान पुराण)।

सोमनस—१, विदेह क्षेत्रस्थ एक गजदन्त पर्वत —दे लोक/१/३; १, विजयार्धको उत्तर श्रेणीका एक नगर—दे विद्याधर; ३. सौमनस गजदन्तका एक क्ट व उसका स्वामी देव —दे लोक/१/४।४. समेरु पर्वतका तृतीय वन, इसमें चार चैत्यालय हैं।—दे लोक/६१. रूचक पर्वतस्थ एक क्ट—दे लोक/१/१३;६. नव ग्रैवेयकका आठवाँ पटल व इन्द्रक—दे. स्वर्ग/१/३।

सौम्या वांचना--- हे. वाँचना ।

सौराष्ट्रा— हे, सुराष्ट्र ।

सीवीर---१. भरत क्षेत्रस्थ उत्तर आर्य खण्डका एक देश।-दे. मनुष्य /४; २. सिन्ध देशका एक भाग। (म. पु./प्र. २० पं. पन्नालाल)।

सौवीरभुक्ति व्रत प्रारम्भ करनेके दिनसे पहिले दिन एक-लठाना (केवल एक बार परोसे हुए भोजनको सन्तोष पूर्वक खाना), अगले दिन एक उपवास करें। पश्चाद एक ग्रास वृद्धि क्रमसे एकसे लेकर १० ग्रास पर्यन्त इस दिन तक भात व इमलीका भोजन करें। पुनः उससे अगले दिनसे एक होनि क्रमसे इसवें दिन १ ग्रास ग्रहण करें। अन्तिम दीपहर पश्चाद उपरोक्तवद एकलठाना करें। चारित्र-सारमें इसीको आचाम्लवर्धनके नामसे कहा है।

स्कंदगुम मगधदेशकी राज्य वंशावलीके अनुसार यह गुप्त वंशाका चौथा राजा था। इसके समयमें हुणवंशी सरदार काफी जोर पकड़ चुके थे। उन्होंने अ.क्रमण भी किया था, जिसे इनने पोछे फेर दिया था। समय—ई. ४१३-४३६—दे. इतिहासाः १४।

स्कंध — Molecule (ज.प./प्र. १०१)

स्किंध - परमाणुओं में स्वाभाविक रूपसे उनके स्निग्ध व रूक्ष गुणोंसें हानि वृद्धि होनी रहती है। विशेष अनुपातवाले गुणोंको शास होनेपर वे परस्परमें मुँध जाते हैं, जिसके कारण सूक्ष्मतमसे स्थूलतम तक खनेक प्रकारके स्कन्ध उत्पन्न हो जाते हैं। पृथिवी, अप्, प्रकाश, छाया आदि सभी पुद्रगल स्कन्ध हैं। लोकके सर्बद्वीप, चन्द्र, सूर्य आदि महात् पृथिवियाँ मिलकर एक महास्कन्ध होता है, क्यों कि पृथक्-पृथक् रहते हुए भी ये सभी मध्यवर्ती सूक्ष्म स्कन्धों के द्वारा परस्परमें कैंधकर एक हैं।

१. स्कन्ध निर्देश

१. स्कन्ध सामान्यका छक्षण

स. सि./४/२६/२६७/७ स्थुलभावेन ग्रहणनिसेपणादिवयापारस्कन्धना-रस्कन्धा इति संज्ञायन्ते । — जिनमें स्थूल रूपसे पकड़ना, रखना आदि व्यापारका स्कन्धन अर्थात् संघटना होती है वे स्कन्ध कहे जाते हैं। (रा. वा./४/२/४६१/२६-)।

रा. बा./१/२१/१६/४६३/६ अन्धो बङ्यते, तं परिप्राप्ताः येऽणवः ते स्कृम्धा इति इमपदेशमई न्ति । चिन परमाणुअॉन परस्पर अन्ध कर लिया है वे स्कन्ध कहलाते हैं।

* पुर्वाक वर्गणा रूप स्कन्ध—हे, वर्गणाः

२. स्कन्ध देशादिके भेद व छक्षण

पं. का./मू./७६ तथं समलसमत्थं तस्स दुं अद्यं भणंति देसो चि। अद्धरः च पदेसो परमाणूं चेव अविभागी ।७६। —सकल—समस्त (पृद्गगल पिण्डात्मक सम्पूर्ण वस्तु) वह स्कन्धःहै, उसके अर्थको देश कहते हैं, अर्थका अर्थ वह प्रदेश है और अविभागी वह सम्रमुच परमाणु है ।७६। (मृ. आ./२३१); (ति. प./१/६६); (ध. १३/६.३, १२/गा. ३/१३); (गो. जी./मू. ६०४/१०६६); (यो. सा. आ./२/१६)।

रा. वा./६/२६/१६/१६३/७ ते (स्कन्धाः) त्रिविधाः स्कन्धाःस्कन्धदेशाः स्कन्धप्रदेशाश्चिति । अनन्तानन्तपरमाणुबन्धविशेषः स्कन्धः। तद्धं देशः। अर्थाधं प्रदेशः। तद्धं देशः पृथिदयप्तेजोवायवः स्पर्शादिक्शाः व्यादिपर्यायाः। — वे स्कन्ध तीन प्रकारके हैं — स्कन्ध, स्कन्धदेश और स्कन्ध प्रदेश। अनन्तानन्त परमाणुओं का बन्ध विशेष स्कन्ध है। उसके आधेको देश कहते हैं और आधेके भी आधेको प्रदेश। पृथ्वी, जल, अग्नि, बायु आदि उसीके भेद हैं। स्पर्शादि और स्कन्धादि उसकी पर्याय है।

३, स्थूल सृक्ष्मकी अपेक्षा स्कन्धके भेद व छक्षण

नि, सा/मू./२१-१४ अइथूलथूलथूलं थूलमुहुमं च मुहुमथूलं च ! सुहुमं अइमुहुमं इदि धरादियं होदि छन्भेयं ।२१। भूपन्वदमादिया भणिदा अइथूलथूलमिदि खंधा। धूला इदि विण्णेया संप्पीजलतेलनादीया। १२१। छायातवमादीया थूलेदरखंधमिदि वियाणाहि। सुहुमधूलेदि भणिया खंधा चउरम्खिलस्या य ।२३! सुहुमा हर्व ति खंधा पाबोग्गा कम्मवगणस्स पुणो। तिन्वनरीया खंधा अइसुहुमा इदि परूवेदि। १२४। —१. भेद- अतिस्थूलस्थूल, स्थूल, स्थूलस्थूम, सूक्ष्मस्थूल, सूक्ष्म और अतिस्थूल, पेट्र के पृथिवी आदि स्कन्धोंके छह भेद हैं ।२१। (म. पु./२४/२४६); (पं. का./त. प्र./७६); (यो, सा. अ./२/२०); (गो, जोः/मू./६०३/१०६६); २. लक्षण —भूमि, पर्वत आदि अतिस्थूलस्थूल स्थूल स्कन्ध कहे गये हैं, घी जल तेल आदि स्थूलस्कन्ध जानना। ।ए२। छाया, आत्म आदि स्थूल-सूक्ष्मस्कन्ध जानना और चार इन्द्रियके विषयभूत स्कन्धोंको सूक्ष्म-स्थूल कहा गया है।२३। और कर्म वर्गणाके योग्य स्कन्ध सूक्ष्म हैं, उन्से विषयीत (अर्थात कर्म वर्गणाके अयोग्य) स्कन्ध अतिसूक्ष्म कहे जाते हैं।२४।

- ध. ३/१.२,१/गा, २/३ पुढनी-जलं च छाया चडरिंदियविसय-कम्म-परमाणु। छिब्बिह भेयं भणियं जिणवरेंहि।२। —पृथिनी, जल, छाया, नेत्र इन्द्रियके अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियोंके विषय, कर्म और परमाणु, इस प्रकार पुद्रगल द्रव्य छह प्रकारका कहा है। (पं. का,/प्रक्षेपक/७३-१/१३०); (न. च. मृ./३२); (गो. जी./मू./६०२/ १०१८); (नि. सा./ता. मृ./२०)।
- म. पु./२४/१६०-१६३ शब्दः स्पर्शो रसी गन्धः सूक्ष्मस्थूली निगचते।
 अचाक्ष्रवस्त्र सत्येषाम् इन्द्रियमाहातेक्षणात्।१६१; स्थूलस्क्ष्माः पुनक्क्षेयाश्क्षायाज्योत्स्नात्पादयः। चाक्ष्रवत्तेऽप्यसंहार्यक्ष्यव्यत्तिकाः।
 ११६२। द्रवद्वयं जलादि स्यात् स्थूलभेदनिदर्शनम्। स्थूलस्थूलः
 पृथिव्यादिभेद्यः स्कन्धः प्रकीतितः।१६६३। =शब्द, रस. गन्ध, स्पर्शः
 सूक्ष्मस्थूल कहलाते हैं, नयों कि यद्यपि इनका चक्षु इन्द्रियके द्वारा
 हान नहीं होता, इसलिए ये सूक्ष्म हैं परन्तु अपनी-अपनी कर्ण आदि
 इन्द्रियों के द्वारा इनका प्रहण हो जाता है इसलिए ये स्थूल भी
 कहलाते हैं १६११। छाया, चाँदनी और आतप आदि स्थूल-सूक्ष्म
 कहलाते हैं १८१। छाया, चाँदनी और आतप आदि स्थूल-सूक्ष्म
 कहलाते हैं परन्तु इनके रूपका संहरण नहीं हो सकता, इसलिए विद्यात
 रहित होनेके कारण सूक्ष्म भी हैं।१६२। पानी आदि तरल पदार्थ जो
 कि पृथक् करनेपर भी मिल जाते हैं स्थूल भेदके उदाहरण हैं और
 पृथिवी आदि स्कन्ध जो कि भेद किये जानेपर फिर मिल न सकें
 स्थूल-स्थूल कहलाते हैं।१६३।

का./त. प्र./७६ तत्र छित्नाः स्वयं स्धानासमर्था काष्ट्रपाषाणादयो बादरबादराः। छिन्नाः स्वयं संधानसमर्थाः क्षीरघृततीलतोयरस-प्रभृतयो बादराः। स्थूलोपलम्भा अपि छेर्सु भेत्तुमादातुमशक्या छायातपतमोज्योत्स्नादयो बादरसूक्ष्माः । सूक्ष्मत्वेऽपि स्थूलोपलम्भाः स्पर्शरसगन्धशन्दाः सुक्ष्मबादराः । सुक्ष्मरवेऽपि हि करणानुप-लभ्याः कर्मवर्गेणादयः सूक्ष्माः । अत्यन्तसूक्ष्माः कर्मवर्गणाभ्योऽधो द्वश्रणुकस्कन्धपयेन्ताः सूक्ष्मसूक्ष्मा इति । - काष्ठ पाषाणादिक जो कि छेदन करनेपर स्वयं नहीं जुड़ सकते वे (घन पदार्थ) बादर-बादर हैं। दूध, घी, तेल, रस आदि जो कि छेदन करनेपर स्वयं जुड़ जाते हैं वे (प्रवाही पदार्थ) बादर हैं। छाया, धूप, अन्धकार, चौंदनी आदि (स्कन्ध) जो कि स्थृत झात होनेपर भी जिनका छेदन, भेदन, अथवा (हस्तादि द्वारा) ग्रहण नहीं किया जा सकता वे बादर-सृक्ष्म हैं। स्पर्श-रस-गंध-शब्द जो कि सृक्ष्म होनेपर भी स्थूल ज्ञात होते हैं (जो चक्षुके अतिरिक्त अन्य चार इन्द्रियोंसे ज्ञात होते हैं) वे सुक्ष्म बादर हैं। कर्म वर्गणादि कि जिन्हें सुक्ष्मपना है सथा जो इन्द्रियों से ज्ञात न हों ऐसे हैं वे सूक्ष्म हैं। कर्म वर्गणासे नीचेके द्विअणुक स्कंध तकके जो कि अत्यन्त सुक्ष्म हैं वे सुक्ष्मसूक्ष्म हैं। (गो. जी./जी. प्र./६०३/१०५६)।

४. महास्कन्ध निर्देश

- ष. खं./१४/१,६/सू, ६४१/४६४ अटु पुढवीओ टंकाणि क्झाणि भवणाणि विमाणाणि विमाणि दियाणि विमाणपरथडाणि णिरइं दियाणि णिरय-परथडाणि गच्छाणि गुम्माणि बङ्कीणि स्वराणि तणवणप्पदि आदीहि ।६४१। — आठ पृथिवियौं, टंक, क्ट, भवन, विमान, विमानेन्द्रक, विमानप्रस्तर नरक, नरकेन्द्रक, नरकप्रस्तर, गच्छ, गुल्म, बङ्की, स्ता और तृण वनस्पति आदि महास्कन्ध स्थान हैं ।६४१।
- गो, जी, प्र./६००/९०६२/४ महास्कन्धवर्गणा वर्तमानकाले एका सा तु भवनविमानाष्टपृथ्वीमेरुकुलशैलादीनामेकीभावरूपा । कथं संख्यातासंख्यातयोजनान्तरितानामेकत्वं । एकमन्धनबद्धसूक्ष्मपुद्दग्रा-स्कन्धेः समवेतानामन्तराभावात् । म्महास्कन्ध वर्गणा वर्तमान कालमें जगत्में एक ही है सो भवनवासियोंके भवन, देवियोंके विमान, आठ पृथिवी, मेरुगिरि, कुलाचल इत्यादिका एक स्कन्ध

स्त हो है। प्रश्न-जिनके संख्यात असंख्यात योजनका अन्तर है, तिनका एक स्कन्ध कैसे संभवता है। उत्तर-जो मध्यमें सूक्ष्म परनाणू हैं, सो वे निमान आदि और सूक्ष्म परमाणू इन समका एक बैंघान है, इसलिए अन्तर नहीं है एक स्कन्ध है। इस एक स्कन्ध-का नाम महास्कन्ध है।

इ. सं./टी./२/चू लिका /७६/२ पुद्द गलद्र व्यं पुनर्लोक रूपमहास्कन्धा पेश्या सर्व गतं, दोषपुद्द गला पेश्या सर्व गतं न भवति । = पुद्द गल द्र व्या लोक व्यापक महा स्कन्धकी अपेशा सर्व गत हैं और शेष पुद्द गलों की अपेक्षा

असर्वगत हैं।

बे. परमाणु /२/७ (महास्कन्धमें कुछ परमाणु त्रिकाल अचल हैं)

दे. वर्गणा/२/२ (जबन्य वर्गणासे लेकर महास्कन्ध पर्यन्त वर्गणाओंकी क्रिमिक वृद्धि)

* वनस्पति स्कन्ध निर्देश—हे. वनस्पति/३/७।

५. स्कन्धोंकी उत्पत्तिका कारण

स. सु./४/२६ भेदसं घातेभ्य उत्पद्यन्ते ।२६।

- स. सि./४/२६/२६=/४ भेदारसंघाताइभेदसंघाताभ्यां च उरपदान्त इति । तराथा –द्वयोः परमाण्नोः संघाताद्व द्विप्रदेशः स्कन्ध उत्पद्यते । द्विप्रदेशस्याणोश्च त्रयाणां हा अणूनां संघातात्त्रिप्रदेशः । द्वयोद्धिप्रदेशयोस्त्रिप्रदेशस्याणोश्च चतुर्णौ वा अणूनां संघाताश्चतुः-प्रदेशः । एवं संख्येयासंख्येयानन्तानामनन्तानन्तानां च संघाता-त्तावस्प्रदेशः। एषामेव भेदात्तावह द्विप्रदेशपर्यन्ताः स्कन्धा उत्प-बन्ते । एवं भेदसंवाताभ्यानेकसमधिकाभ्यां द्विप्रदेशादयः स्कन्धा उरपद्यन्ते । अन्यतो भेदेनान्यस्य संघातेनेति । एवं स्कन्धानामु-रपित्तहेत्रकः। 🕶 भेदसे, संघातसे तथा भेद और संदात दोनोंसे स्कन्ध उत्पन्न होते हैं। प्रश्न-भेद और संघात दो हैं। इसिसए सूत्रमें द्विवचन होना चाहिए। उत्तर-दो परमाणुओं के संघातसे दो प्रदेशवासा स्कन्ध उत्पन्न कोता है। दो प्रदेशवासे स्कन्ध और अणुके संघातसे या तीन अणुओंके संघातसे तीन प्रदेशवाला स्कन्ध उत्पन्न होता है। दो प्रदेशवाले दो स्कन्धोंके संघातसे, तीन प्रदेशवाले स्कन्ध और अणुके संघातसे या चार अणुओं के स्कन्धों के संघातसे. चार प्रदेशवाला स्कन्ध उत्पन्न होता है। इस प्रकार संख्यात, असंख्यात. अनन्त और अनन्तानन्त अणुओंके संघातसे उतने-उतने प्रदेशीयाले स्कन्ध उत्पन्न होते हैं। तथा इन्हीं संख्यात आदि परमाणुवाले स्कन्धोंके भेदसे दो प्रदेशवाले स्कन्ध सर्क स्कन्ध उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार एक समयमें होनेवाले भेद और संवात इन दोनोंसे दो प्रदेशवाले आदि स्कन्ध उत्पन्न होते हैं। तारपर्य यह है कि जब अन्य स्कन्धरे भेद होता है और अन्यका संघात, तम एक साथ भेद और संघात इन दोनोंसे भी स्कन्धकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार स्कन्धोंकी उत्पत्तिका कारण कहा। ु(रा, वा./४/२६/२−४/४६३/२६) ।
- है, वर्गणा/२/३,८,६ (ऊपरकी वर्गणाओं के भेदसे तथा नीचेकी वर्गणाओं-के संघातसे उरपन्न होनेका स्पष्टीकरण)

६. स्कंधोंमें चाक्षुष अचाक्षुष विमाग व उनकी उत्पत्ति

त. स् ///२८ भेदसं घाताम्यां चाश्चवः/२८ ।

स. सि./४/२८/२६१/७ अनन्तानन्तपरमाणुसमुदयनिष्पाद्योऽपि करिष्यं च्याक्षुषः कश्चिद्याक्षुषः। तत्र योऽष्याक्षुषः स कथं पासुषो भवतीति चेदुच्यते —भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः। न भेदादिति। कात्रोपपत्तिरिति चेत्। ब्रूगः; सूहमपरिणामस्य स्कन्धस्य भेदे सौहन्यापरित्यागाद-चाक्षुद्वसमेत्र। सौहन्यपरिणतः पुनरपरः सस्यपि तद्दभेदेऽन्य-संघातान्तरसंयोगारसौहन्यपरिणामोपरमे स्थौष्योस्पती चाक्षुषो भवति। —भेद और संघातसे चाक्षुष स्कन्ध उरपन्न होता है। १८०। अनन्तानन्त परमाणुअंकि समुदायसे निज्पन्न होकर भी कोई
स्कन्ध चाधुष होता है और कोई अचाधुष। उसमें को अचाधुष
स्कन्ध है वह चाधुष कैसे होता है इसी मातके मतलानेके लिए
यह कहा है कि भेद और संधातसे चाधुष स्कन्ध होता है,
केवल भेदसे नहीं, यह सूत्रका अभिप्राय है। प्रश्न - इसका क्या
कारण है। उत्तर - आगे उसी कारणको कहते हैं - सूक्ष्म परिणामवासे
स्कन्धका भेद होनेपर वह अपनी सूक्ष्मताको नहीं छोड़ता
इसलिए उसमें अचाधुषपना ही रहता है। एक दूसरा सूक्ष्म परिणाम
बाला स्कन्ध है जिसका यद्यपि भेद हुआ तथापि उसका दूसर
संघातसे संयोग हो गया अतः सूक्ष्मपना निकलकर उसमें रथूलपनेकी
उत्पत्ति हो जाती है और इसलिए वह चाधुष हो जाता है। (रा.
वा./६/२८/-/४६४/१६)

- * परमाणुर्जोकी हीनाधिकतासे स्कन्ध मोटा व छोटा नहीं होता । —दे. स्रूम/३/४।
- * स्कन्धके प्रदेशोंमें गुणों सम्बन्धी । —हे. पृद्दगत् ।

७. शब्द गन्ध आदि भेद स्कन्धके हैं परमाणुके नहीं

रा. मा./४/२४/२४/४६०/२६ दाव्यात्यस्तु स्कन्धानामेव व्यक्तिस्पेण भवन्ति सीक्ष्म्यवर्ध्या इत्येतस्य विशेषस्य प्रतिपत्त्यर्थं पृथग्योगकरणम्। स्वान्य आदि (अर्थात् शब्द बन्ध, सीक्ष्म्य, स्थीव्य, संस्थान, भेद, तम, और छाया व आत्रप उद्योत ये सम) व्यक्त रूपसे स्कन्धों के ही होते हैं सीक्ष्म्यको छोड़कर, इस विशेषताको वतानेके लिए पृथक् सूत्र बनाया है।

८. कर्म स्कन्ध सूक्ष्म हैं स्थूल नहीं

- स. सि./=/२४/४०२/११ कर्मग्रहण ... योग्याः पुद्गताः सूक्ष्माः न स्थूलाः इति । कर्म रूपसे ग्रहण योग्य पुद्गत सूक्ष्म होते हैं स्थूल नहीं होते । (रा. वा./=/२४/४/४=४/१७)
 - * एक जातिके स्कन्ध युसरी जाति रूप परिणमन नहीं करते। -ते. वर्गणा/२/८।
 - * अनन्तों स्कन्धोंका लोकमें अवस्थान व अवगाह। —दे. आकाश/३/४।

२. पुद्गल बन्ध निर्देश

१. पुद्गल बन्धका लक्षण

रा. वा./२/१०/२/१२४/२४ ब्रव्यवन्धः कर्मनोकर्मपरिणतः पुदृगलद्रवय-विवयः । चनोकर्म रूपसे परिणत पुदृगलकर्म रूप क्षव्यवन्ध है ।

- घ. १३/५.४.८२/३४०/६.१२ दो तिण्णि आदि पोग्गलाणं जो समवाओ सो पोग्गलमंधो णाम ।६। जेण णिद्धन्द्वनखादिगुणेण पोग्गलाणं मंधो होदि सो पोग्गलमंघो णाम । —दो. तीन आदि पृद्वगलोंका जो समवास सम्बन्ध होता है वह पृद्वगल मृध्य कहलाता है। ... जिस स्निग्ध और रूथ आदि गुणके कारण पृद्वगलोंका बन्ध होता है उसकी पृद्वगलमध संज्ञा है।
- प्र. सा./त. प्र./१७७ यस्तावदत्र कर्मणौ स्निम्धरूक्षस्वस्पर्शविशेषेरेकस्य-परिणामः स केवलपुद्गालनन्धः । --कर्मौका जो स्निम्धतारूक्षता रूप स्पर्शविशेषोके साथ एकस्य परिणाम है सो केवल पुद्गाल बन्ध है ।
- ह. सं./टो./१६/४२/१२ मृत्पिण्डादिरूपेण योऽसौ बहुधावन्धः स केयतः पुद्गगतवन्धः । — मिट्टी आदिके पिण्ड रूप जो बहुत प्रकारका वन्ध है वह तो केवल पुद्गगलवन्ध है।

पं. घ./उ./४७ द्रव्यं पौद्दगलिकः पिण्डो बन्धस्तच्छक्तिरैव वा । =कर्म-रूप पौद्दगलिक पिंडका अथवा कर्मको शक्तिका ही नाम द्रव्य बन्ध है ।४७।

२. बन्धका कारण स्निम्ध रूक्षता

त, सू./४/३३ स्निग्धरूक्षत्वाद् बन्धः ।३३।

स. सि./६/३३/३०४/८ द्रयोः स्निग्धरूधयोरण्योः परस्परश्लेषल्यणे निष्धे सित द्वयणुकस्कन्यो भवति । एवं संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशः स्कन्धो योज्यः । = स्निग्धर्य और स्वश्त्वसे बन्ध होद्वा है ।३३। स्निग्ध और स्वभुगवाले दो परमाणुआंका परस्पर संश्लेष लक्षण निध होनेपर द्वयणुक नामका स्वन्ध कमता है । इसी प्रकार संख्यात असंख्यात और अनन्त प्रदेश बाले स्कन्ध उत्पन्न होते हैं । (गो. जो./ मृ./६०६/१०६६)

३. स्निग्ध व रूक्षमें परस्पर बन्ध होने सम्बन्धी नियम

ष. लं. १४/६,६/यू. १४.३६/३१,१३ णिद्धाणिद्धाण वज्मांत न्हुष्यन्हुक्या य पोरणला। णिद्धन्हुक्ला य वज्मांति लवाल्यो य पोरणला।१४। णिद्धस्स णिइयेग तुराहिएण न्हुक्लस्स न्हुक्लेण दुराहिएण। णिद्धस्स न्हुक्लेण हवेदि व्यंथो जहण्यवज्जे विसमे समे वा।३६। = स्निग्ध पुद्दगल स्तिम्ध पुद्दगलोंके साथ नहीं व्यंते। रूस पुद्दगल रूस पुद्दगलोंके साथ नहीं व्यंते किन्तु सहश और विसरश ऐसे स्निग्ध और रूथ पुद्दगल परस्पर व्यंते हैं।३४। स्निग्य पुद्दगलका हो गुग अधिक स्तिम्ध पुद्दगलके साथ और रूथ पुद्दगलका हो गुग अधिक रूथ पुद्दगलके साथ बन्ध होता है। तथा स्निग्ध पुद्दगलका रूथ पुद्दगलके साथ जचन्य गुणके सिवा विषम अथवा सम गुगके रहनेपर वन्ध होता है। ६६। (प्र. सा./त. प्र./१६६ में उद्धृत); (गो. जी./सू./६१०,६१८/१०६=)

प्र. सा./मू /१६६ णिक्ष्तणेण दुगुणो चदुगुणिइधेण बंधमणुभवि । लुक्षेण या तिगुणिदो अणु बज्भिद पंचगुणगुत्तो ।१६६। = स्निष्ध-रूपसे दो अंशव।ला परमाणु चार अंशव!ले स्निग्ध परमाणुके साथ बन्धमो अनुभव करता है अथवा रूप्तरूपसे तीन अंशवाला परमाणु भाँच अंशव।लेके साथ युक्त होता हुआ बँधता है।

त स्./१/३४ ३६ न जबन्यगुणानाम् १३४। गुणसाम्ये सहशानाम् १३६। द्वयधिकादिगुणानां तु १६६। अञ्चलस्य गुणवाले पुद्रगलोंका बन्ध नहीं होता १३४। समान शब्ध्यंश होनेपर तुच्य जातिवालोंका बन्ध नहीं होता १३६। दो अधिक अधि शब्दिश्वालोंका तो बन्ध होता है १३६।

न. च. वृ./२८ णिद्धारी णिद्धिश तहेव रुव्खेण सरिस विसमं वा। बद्भाव दोगुगअहिओ परमाणु जहण्यपुणशहिओ ।२८। च्याघन्य गुणसे रहित तथा दो गुण अधिक होनेपर स्निग्धका स्निग्धके साथ, रूपका लप्तके साथ, स्निग्धका रूपके साथ, और रूपका स्निग्धके साथ परमाणुओं का बन्ध होता है।

* रकन्धोंमें परमाणुओंका एक देश व सर्वहेंश समागम दे अरमाणु/३।

४. पुद्गल बंध सम्बन्धी नियममें दृष्टि भेद

सकेत - सहंश - स्निग्ध + स्विग्ध या कंक्ष + स्वः। विसहश - स्निग्ध + स्वः या रूप + स्तिग्ध ।

ष्टिष्ट नं, १. (घ. खं, १४/स्, व टी./६,६/स्, ३२-३६/३०-३२)। दृष्टि नं, २. (स. सि./६/३४-३६/३०४-३०७); (रा. वा./६/३४-३६/-४६९-४६६); (गो. जो /सू. व जी. प्र./६१२-६१८/१०६०)।

	राण्यं स	दृष्टि	नं०१	दृष्टि नं ० २				
नं •	युणांश	सहश	विसदश	सदश	विसहश			
S G STA PE SCALL AND AND	समान गुणधारी असमान गुणधारी जघन्य + जघन्य जघन्य + जघन्येतर जघन्येतर + सम जघन्येतर जघन्येतर + एकाधिक जघन्येतर जघन्येतर + द्वाधिक जघन्येतर जघन्येतर + द्वाधिक जघन्येतर जघन्येतर + द्वाधिक जघन्येतर	नहीं हों नहीं नहीं नहीं	अरू : ति : क्षेप्ट : : अरू	नहीं है नहीं भ	म कि कि मि			

५. बद्ध परमाणुओंके गुणोंमें परिणमन

त. सू./१/३७ वन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ।३७।

स. सि./६/३७/१०७/११ यथा क्लिन्नो गुडोऽधिकमधुररसः परीतानौ रेण्यादीनां स्वगुणापादनातः भारिणामिकः । तथाऽन्योऽप्यधिवगुणः अल्पीयसः पारिणामिक इति कृत्वा द्विगुणादिस्निग्धरूक्षस्य चतु-र्गुणादिस्निग्धरूपः पारिणामिको भवति । ततः पूर्वावस्थाप्रच्यवन-पूर्वके तार्तीयिकमबस्थान्तरं प्रादुर्भवतीत्येकत्वसुष्पद्यते । इतरथा हि शुक्लकृष्णतन्तुवत् संयोगे सत्यप्यपारिणामिकत्वारसर्वं विविक्त-रूपैणैवावतिष्ठेत्। = बन्धके समय दो अधिक गुणवाला परिणमन करानेवाला होता है। ६७। जैसे अधिक मीठे रमवाला गीला गुड़ उसपर पड़ी हुई ध्रिलिको अपने गुणरूपसे परिणमानेके कारण पारि-णामिक होता है उसी प्रकार अधिक गुणवाला अन्य भी अल्प गुण-वालेका पारिणामिक होता है। इस व्यवस्थाके अनुसार दो शक्तरंश-वाले स्निग्ध या रूध परमाणुका चार श्वत्यंशवाला स्निग्ध या रूस परमाणु पारिणामिक होता है। इससे पूर्व अवस्थाओंका त्याग होकर जनसे भिन्न एक तीसरी अवस्था उत्पन्न होती है। अतः उनमें एक-रूपता आ जाती है अन्यथा सफेद और काले तन्तुके समान संयोग होनेपर भी पारिणामिक न होनेसे सब अलग-अलग ही स्थित रहेगा।

नो. जो./मू./ई१६/१००४ णिद्धीवरगुणा अहिया हीणं परिणामसंति अंधिन्म। संखेडजासंखेडजाणंतपदेसाण खंधाण। स्संख्यात असंख्यात असन्तप्रदेशवाले स्कन्धोंमें स्निग्ध या रूक्षके अधिक गुणवाले परमाणु या स्कन्धों-को अपने रूप परिणमाते हैं। (जैसे एक हजार स्निग्ध या रूक्ष पुणके अंशोंसे मुक्त परमाणु या स्कन्धको एक हजार दो अंशवाला स्मिग्ध या रूक्ष परमाणु या स्कन्धको एक हजार दो अंशवाला स्मिग्ध या रूक्ष परमाणु या स्कन्ध परणमाता है।)

* गुणोंका परिणमन स्वजातिकी सीमाका छंघन नहीं कर सकता—दे० गुण/२/७।

स्कंधशाली महोरग नामा जातिय व्यन्तरदेवोंका एक भेट -- देव महोरग।

स्तंभन यंत्र — हे_{. यंत्र ।}

स्तंभावष्टंभ कायोत्सर्गका एक अतिचार-दे० व्युत्सर्ग/१।

स्तनक चूसरे नरकका प्रथम पटल अथवा (त्रि.सा.की अपेक्षा) द्वितीय नरकका द्वितीय पटल चरे० नरक/१/११। स्तनदृष्टि—कायोत्सर्गका एक अतिचार—दे० व्युत्सर्ग/१। स्तनलोला—दूसरे नरकका ११वाँ पटल—दे० नरक/६/१९। स्तनलोलुक—दूसरे नरकका ११वाँ पटल—दे० नरक/६/११ स्तनलोलुक—दूसरे नरकका ११वाँ पटल—दे० नरक/६/११ स्तनित—१ भवनवासी देवोंका एक भेद —दे० भवन/६/४;२.स्तनित

कुमार देवोंका लोकमें अवस्थान-दे॰ भवन/१।

स्तढध--कायोरसर्गका एक अतिचार--दे० व्युत्सर्ग/१।

स्तव-दे॰ भक्ति/३।

स्तिवुक संक्रमण—दे॰ संक्रमण/१०।

स्तुति—१ पूर्व व पश्चात स्तुति नामक आहारका एक दोष —दे० आहार/II/४। र. स्तुति सम्बन्धी विषय—दे०भक्ति/३। ३. न्या.द /टी. र/१/६४/१००/२५ विधेः फलवादलक्षणा या प्रशंसा सा स्तुतिः संप्रत्ययार्थं स्तूयमानं श्रद्धधीतेति । प्रवित्तिका च फलक्षवणात् प्रवतन्ते सर्व-जिता व देवाः सर्वमजयन् सर्वस्वाप्त्ये सर्वस्य जित्ये सर्वमेवैतेना-प्नोति सर्वं जयतीरयेवमादि । —विधि वाक्यके फल कहनेसे जो प्रशंसा है, उसे स्तुति कहते हैं क्योंकि फलकी प्रशंसा सुननेसे प्रवृत्ति होती है। उदाहरण, जैसे—देवोंने इस यहको करके यहको जीता, इस यहके करनेसे सब कुछ प्राप्त होता है इस्यादि ।

स्तूप — १. म.पु./२२/२६४ जनानुरागास्ताद्भृष्यम् आपन्ना इव ते सभुः । सिद्धाई त्मतिनिम्बीधैः अभितिश्चित्रमूर्तयः । — अईन्त सिद्ध भगवान्की प्रतिमाओंसे वे स्तूप चारोंओरसे चित्रविचित्रंष्ट्रीरहेथे और सुशोभित हो रहेथे मानो मनुष्योंका अनुराग ही स्तूपों रूप हो रहा हो । २६४ । सवशरण स्थिति स्तूप—दे० समशरण २. Pyramid. (ज.प./प्र./१०८)

स्तेनप्रयोग—स.सि /७/२७/३६७/३ मुष्णन्तं स्वयमेव वा प्रयुङ्वते-ऽन्येन वा प्रयोजयित प्रयुक्तमनुमन्यते वा यतः स स्तेनप्रयोगः। — किसीको चीरोके लिए स्वयं प्रेरित करना, या दूसरेके द्वारा प्रेरणा दिलाना या प्रयुक्त किये हुए की अनुमोदना करना स्तेन प्रयोग है। (रा. वा./७/२७/१/४५४/६)।

स्तेनित, -कायोत्सर्गका एक अतिचार -दे० व्युत्सर्ग/१।

स्तैयं—१. त. सू./७/१६ (प्रमत्तयोगात्) अहत्तादानं स्तेयस्।१६। स. सि./७/१६/३६२/१२ आहःनं ग्रहणमदत्तस्यादानमदत्तादानं स्तेय-मित्युच्यते । ...दानादाने यत्र सभवतस्त्तत्रैव स्तेयव्यवहारः। च्च बिना दी हुई वस्तुका लेना स्तेय है।१६। आदान शब्दका अर्थ ग्रहण है। बिना दी हुई वस्तुका लेना अदत्तादान है और यहो स्तेय चोरी कहताता है...जहाँ देना और लेना सम्मव हैं वहीं स्तेयका व्यवहार होता है। (रा,वा./७/१६/२/६४२/१६) २, स्तेय सम्बन्धी विषय—दे० अस्तेय।

स्तेयानन्दी रौद्रध्यान-दे॰ रौद्रध्यान।

स्तोक-कालका प्रमाण विशेष-दे० गणित/1/१/४।

स्तीत्रं — भिन्न-भिन्न आचार्यांने अनेकों स्तोत्र रचे हैं — १, आ० समन्तभद्र (ई. रा. २) कृत देवागम स्तोत्र, स्वयंभुस्तोत्र व जिन-स्तुतिशतक। २, आ० पुज्यपाद (ई. रा. १) कृत शान्त्यष्टकमें शान्ति-ताथ भगनात्का स्तोत्र है। ३, रवेताम्बराचार्य सिद्धसेन दिवाकर (ई. १११) कृत कल्याणमन्दिर स्तोत्र व शास्त्रत जिन स्तुति। ४, आ० पात्रकेशरी (ई. रा. ६ -७) कृत जिनेन्द्र स्तुति या पात्रकेशरी स्तोत्र। १, आ० अकलंक भट्ट (ई. १४०-६ -०) कृत अकलंक स्तोत्र। ६, आ० विद्यानन्दिर (ई. ७०६ - ६०) कृत अकलंक स्तोत्र। ९,

आ० नादिराज (ई. १०००-१०४०) कृत एकीभावस्तोत्र । म. आ० वसुनन्दि (ई. १०४२-१०५३) कृत जिनशतक स्तोत्र । ह. आ० मान-तुंग (ई. १०२१-१०२५) कृत भक्तामर स्तोत्र । १०. १वे० आ० हेमचन्द्र (ई. १०८८-११६३) कृत वीतराग स्तोत्र । ११. पं. आशाघर (१९७३-१२४३) कृत सहस्रनाम स्तव । १२. आ० पद्मनन्दि (ई. १३२८-१३६८) कृत जरापरलोपार्श्वनाथ स्तोत्र । १३. जिनसहस्रनाम स्तोत्र - दे० अईन्त

स्त्यानगृद्धि—हे. निद्रा।

स्त्री धर्मपत्नी, भोगपत्नी, दासीपत्नी, परस्त्री, वेश्यादि भेदसे कित्रयाँ कई प्रकारकी कही गयी हैं। ब्रह्मचर्यधर्मके पालनार्थ यथा-भूमिका इनके त्यागका उपदेश है। आगममें जो स्त्रियों की इतनी निन्दा की गयी है, वह केवल इनके भौतिक रूपपर ग्लानि उत्पन्न करानेके लिए लिए ही जानना अन्यथा तो अनेकों सित्याँ भी हुई हैं जो पूज्य हैं।

१. स्त्री सामान्य व कक्षण

पं. सं /श /१/१०५ छादयित सयं दोसेण जदो छादयित परं पि दोसेण ।
छादणसीला णियहं तम्हा सा विष्णया इत्थी। —जो निध्यात्व
आदि दोषोंसे अपने आपको आच्छादित करे और मधुर संभाषण
आदिके द्वारा दूसरोंको भी दोषसे आच्छादित करे, वह निश्चयसे
यतः आच्छादन स्वभाववाली है अतः 'स्त्री' इस नामसे विषित्त की
गयी है। (घ. १/१,१,१०१/गा. १७०/३४१); (गो. जो /मू./२७४/
४६४); (पं. सं./सं/१/१६६)।

घ. १/१,१,१०१/३४०/६ दोष रात्मानं परं च स्तृणाति छादयतीति स्त्री, स्त्री चासौ वेदश्च स्त्रीवेदः। अथवा पुरुषं स्तृणाति आकाङ्क्षतीति स्त्री पुरुषकाङ्क्षेत्यर्थः। स्त्रियं विन्दतीति स्त्रीवेदः अथवा वेदनं वेदः, स्त्रियो वेदः स्त्रीवेदः। = १. जो दोषोंसे स्वयं अपनेको और दूसरोंको आच्छादित करती है उसे स्त्री कहते हैं। (ध. ६/१.६-१. २४/४६/८); (गो, जो,/जो, प्र,/२०४/६६६/४) और स्त्री रूप जो वेद है उसे स्त्रीवेद कहते हैं। २, अथवा जो पुरुषकी आकांक्षा करती है उसे स्त्री कहते हैं। जो अपनेको स्त्री रूप अनुभव करती है उसे स्त्रीवेद कहते हैं। ३, अथवा वेदन करनेको वेद कहते हैं और स्त्री रूप वेदको स्त्रीवेद कहते हैं। ३, अथवा वेदन करनेको वेद कहते हैं और स्त्री रूप वेदको स्त्रीवेद कहते हैं।

२. स्त्रीवेदकर्मका लक्षण

स. सि./८/१/३८६/२ यदुदयारस्त्रैणानभावानप्रतिपदाते स स्त्रीवेदः।

च्रितसके उदयसे स्त्री सम्बन्धी भावोंकोप्राप्त होता वह स्त्रीवेद है।

(रा. वा./८/१/७४/२०); (पं. ध./उ./१०८१)।

ध. ६/१.६-१;२४/४७/१ जेसि कम्मक्खंधाणमुदएण पुरुसम्मि आकंखा उप्पड्जइ तेसिमित्थिवेदो त्ति सण्णा । = जिन कर्म स्कन्धोंके उदयसे पुरुवमें आकांक्षा उत्पन्न होती है उन कर्मस्कन्धोंकी 'स्त्रीवेद' यह संज्ञा है। (ध. १३/४,४,६६/३६१/६)।

* स्त्रीवेदके बन्ध योग्य परिणाम- हे, मोहनीय/श/६।

३. स्त्रीके अनेकों पर्यायवाची शब्दोंके लक्षण

भ. आ./मू./१७७-१८९/१०४५ पुरिसं वधमुवणेदित्ति होदि बहुंगा णिरुत्तिवादिमि । दोसे संघादिदि य होदि य इत्थी मणुस्सस्स ।१७७। तारिसओ णित्थ अरी णरस्स अण्णेत्ति उच्चदे णारी । पुरिसं सदा पमत्तं कुणदि ति य उच्चदे पमदा ।१७८। गलए कायदि पुरिसस्स अणत्थं जैण तैय विजया सा । जोजेदि णगं दुवखेण तेण जुवदी य जोसा

Jain Education International

य।१७१। अवलत्ति होदि जं से ण दढं हिदयमिम धिदिवलं अरिथ। कुमरणोपायं जं जणयदि तो उच्चदि हि कुमारी १६८०। आलं जाणेदि पुरिसस्स महल्लं जेण तेण महिला सा । एवं महिला णामाणि होति असुभाणि सन्वर्गण १६८१। - स्त्री पुरुषको मारती है इस बास्ते उसको बधू कहते हैं। पुरुषमें यह दोषोंका समुदाय संचित करती है। इस वास्ते इसका 'स्त्री' यह नाम है।१७७। मनुष्यको इसके समान दूसरा शत्रु नहीं है अतः इसको नारी कहते हैं। यह पुरुषको प्रमत्त अर्थात् उन्मत्त बनाती है इसलिए इसको 'प्रमदा' कहते हैं ।६७८। पुरुषके गरेमें यह अनर्थों को बाँधती है अथवा पुरुषको देखकर उसमें लीन हो जाती है अतः इसको विलया कहते हैं। यह स्त्रो पुरुषको दू.खसे संयुक्त करती है अतः युवति और योषा ऐसे दो नाम इसके हैं। १७१। इसके हृदयमें धैर्य रूपी बल इंड रहता नहीं अतः इसको अबला कहते हैं। कुरिसत ऐसा मरणका उपाय उत्पन्न करती है, इस लिए इसको कुमारी कहते हैं। १८०। यह पुरुषके ऊपर दोषारोपण करती है इसलिए उसको महिला कहते हैं। ऐसे जितने स्त्रियोंके नाम हैं वे सब अशुभ है। १८।

४. द्रव्य च मावस्त्रीके लक्षण

स. सि./२/४२/२००/६ स्त्रोवेदोहयात् स्त्यायस्त्यस्यां गर्भ इति स्त्री।
=स्त्रोवेदके उदयसे जिसमें गर्भ रहता है वह (द्रव्य) स्त्री है।
(रा. वा./२/४२/१/४७/४)।

गो, जी, जी, प्र./५७१/१६१/१७ स्त्रीवेदोदयेन पुरुषाभिलाषरूपमेथुन-संज्ञाकान्तो जीवः भावस्त्री भवति । स्त्रीवेदोदयेन निर्माणनामकर्मी-दययुक्ताङ्गोपाक्षनामकर्मोदयेन निर्जोममुख्यस्तनयोन्यादिलिङ्गलक्षित-शरीरयुक्तां जीवो भवप्रथमसमयमादि कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यन्तं द्रव्य(स्त्री) भवति । स्त्रीवेदके उदयसे पुरुषकी अभिलाषा रूपः मैथुन संज्ञाकाधारक जीवभावस्त्री होता है। ... निर्माण नामकर्मके उदयसे युक्त स्त्रीवेद रूप आकार विशेष लिये, अंगोपांग नामकर्मके उदयसे रोम रहित मुख, स्तन, योनि इत्यादि चिह्न संयुक्त शरीरका धारक जीव, सो पर्यायके प्रथम समयसे लगल्यर अन्तसमय पर्यंत द्रव्यस्त्री होता है।

नोट -(और भी देखो भावस्त्रीका संभण स्त्री/१,२)।

५. गृहीता आदि स्त्रियोंके भेद व लक्षण

ला. सं/२/१७८–२०६ देवशास्त्रगुरून्नत्या अन्धुनर्गात्मसाक्षिकम् । परनी पाणिगृहीता स्यासदस्या चेटिका मता।१७८। तत्र पाणिगृहीता या सा द्विधा लक्षणाचया। आरम-ज्ञातिः परज्ञातिः कर्मभूरुहिसाध-नात । १७६। परिणीतारमञ्जातिश्च धर्मपरनीति सैव च । धर्मकार्ये हि सधीची यागादी शुभकर्मणि ।१८०। सः सूतुः कर्मकार्येऽपि गोत्ररक्षा-दिलक्षणे । सर्वेस्रोकाविरुद्धत्वादधिकारी न चेतरः ।१५२। परिणीताना-रमज्ञातिर्या पितृंसाक्षिपूर्वकम् । भोगपरनीति सा ज्ञेया भोगमात्रैक-साधनात् ।१५३। आत्मज्ञातिः परज्ञातिः सामान्यवनिता तु या। पाणिग्रहणञ्जन्या चेच्चेटिका सुरतित्रिया।१८४। चेटिका भोगपरनी च द्वयोर्भागङ्गमात्रतः । लौकिकोक्तिविशेषोऽपि न भेदः पारमाधिकः ।१८५। विशे गेऽस्ति मिथश्चात्र-परस्वैकस्त्रतोऽपि च । गृहीता चागृहीता च तृतीया नगराङ्गा ११६८। गृहीतापि द्विधा तत्र यथाद्या जीव-भर्तृ का । सत्सु पित्रादिवर्गेषु द्वितीया मृतभर्तृ का ११३१। चेटिका या च विरुवाता पतिस्तस्याः स एव हि। गृहीता सापि विरूयाता स्यादगृहीता च तद्वत् ।२००। जीवत्सु बन्धुत्रगेषु रण्डा स्यानमृत-भर्त्का। मृतेषु तेषु सैव स्यादगृहीताच स्त्रैरिणी ।२०१। अस्याः संसर्गवेतायामिङ्गिते नरि वैरिभि'। सापराधतया दण्डो नृपादिभ्यो भवेइध्रुवम् ।२०२। के चिज्जैना वदन्त्येव गृहोत्तेषां स्वत्रक्षणात् ।

नृषादिभिर्गृहीतत्वान्नीतिमार्गानतिक्रभात् ।२०३। विख्यातो नीति-मार्गोऽयं स्वामी स्याज्जगतां नृषः। यस्तुतो यस्य न स्वामी तस्य स्वामी महीपतिः ।२०४। तन्मतेषु गृहीता सा वित्रादौरावृतापि या। यस्याः संसर्गतो भीतिर्जायते न तृशादितः ।२०५। तन्मते द्विधीय स्वैरीः गृहीतागृहीतभेदतः । सामान्यवनिता या स्याइगृहीतान्त-भवितः।२०६। = स्वस्त्रो-देवशास्त्र गुरुको नमस्कारकर तथा अपने भाई बन्धुओंकी साक्षी पूर्व क जिस कन्याके साथ विवाह किया जाता है वह विवाहिता स्त्री कहनाती है. ऐसी विवाहिता स्त्रियोंके सिवाय अन्य सत्र परिनयाँ दासियाँ कहलाती हैं।१९८। विवाहिता परनी दो प्रकारकी होती है। एक तो कर्मभूमिमें रूढिसे चली आयी अपनी जातिकी कन्याके साथ विवाह करना और दूसरी अन्य जातिकी कन्याके साथ विवाह करना १९७६। अपनी जातिकी जिस कन्याके साथ विवाह किया जाता है वह धर्मपरनी कहलाती है। वह ही यज्ञ-पूजा प्रतिष्ठा आदि शुभ कार्योंमें व प्रत्येक धर्म कार्योंमें साथ रहती है। १८०। उस धर्मपत्नीसे उत्पन्न पुत्र ही पिताके धर्मका अधिकारी होता है और योत्रकी रक्षा करने रूप कार्यमें वह ही समस्त लोकका अविरोधी पुत्र है। अन्य जातिकी विवाहिता कन्या रूप परनी से उत्पन्न पुत्रको उपरोक्त कार्योका अधिकार नहीं है। १८२। जो पिताकी साक्षीपूर्वक अन्य जातिकी कन्याके साथ विवाह किया जाता है वह भौगपतनी कहलाती है, क्यों कि वह केवल भोगोपभोग सेवन करनेके काम आती है, अन्य कार्योंमें नहीं ।१८३। अपनी जाति तथा पर जातिके भेदसे स्त्रियाँ दो प्रकारकी हैं तथा जिसके साथ विवाह नहीं हुआ है ऐसी स्त्री दासी वा चेटी कहलाती है, ऐसी दासी केवल भोगाभिलाविणी है। १८४। दासी और भोगपत्नी केवल भोगोपभोगके ही काम आती हैं। लौकिक दृष्टिसे यदापि उनमें थोड़ा भेद है पर परमार्थसे कोई भेद नहीं है। १८६। परस्त्री भी दो प्रकारकी हैं. एक दूसरेके अधीन रहनेवाली और दूसरी स्वतन्त्र रहनेवाली जिनको गृहीता और अगृहीता कहते हैं। इनके सिवाय तीसरी वेश्या भी पर-स्त्री कहलाती है। १९८। गृहीता या विवाहिता स्त्री दो प्रकारकी हैं। एक ऐसी स्त्रियाँ जिनका पति जीता है तथा दूसरी ऐसी जिनका पित तो मर गया हो परन्तु माता, पिता अथवा जेठ देवरके यहाँ रहती हों। १६६। इसके सिवाय जो दासीके नामसे प्रसिद्ध हो और उसका पति ही घरका स्वामी हो वह भी गृहीता कहलाती है। यदि वह दासी किसीकी रक्खी हुई न हो, स्वतन्त्र हो तो वह गृहीता । दासीके समान ही अगृहीता कहलाती है।२००। जिसके भाई बन्धु जीते हों परन्तु पति मर गया हो ऐसी विधवा स्त्रीको भी गृहीता कहते हैं। ऐसी विधवा स्त्रीके यदि भाई बन्धु सब मर जायें तो अगृहीता कहलाती है। २०१। ऐसी स्त्रियोंके साथ संसर्ग करते समय कोई शत्रु राजाको खबर कर देतो अपराधके बदले राज्यकी औरसे भी कठोर दण्ड मिलता है।२०२। कोई यह भी कहते हैं कि जिस स्त्रीका पति और भाई वन्धुसब मर जायें तो भी अगृहोता नहीं कहलाती किन्तु गृहीता ही कहलाती है, क्यों कि गृहीता लक्षण उसमें घटित होता है क्यों कि नीतिमार्गका उल्लंघन न करते हूए राजाओं के द्वारा ग्रहण की जाती हैं इसलिए गृहीता ही कहनाती हैं।२०३। संसारमें यह नीतिमार्ग प्रसिद्ध है कि संसार भरका स्वासी राजा होता है। वास्तवमें देखा जाये तो जिसका कोई स्वामी नहीं होता उसका स्वामी राजा ही होता है। २०४। जो इस नीतिको मानते हैं, उनके अनुसार उसको गृहोता ही मानना चाहिए, चाहे वह माता पिताके साथ रहती हो, चाहे अकेली रहती हो। उनके मता-नुसार अगृहीता उसको समफना चाहिए जिसके साथ संसर्ग करनेपर राजाका डर न हो ।२०६। ऐसे लोगोंके मतानुसार रहनेवाली (कुलटा) स्त्रियाँ दो प्रकार ही समभानी चाहिए। एक गृहीता दूसरी अगृहीता। जो सामान्य स्त्रियाँ हैं वे सब गृहीतामें अन्तर्भृत कर लेना चाहिए (तथा वेश्यार अगृहीता समफनी चाहिए)।२०६।

६. चेतनाचेतन स्त्रियाँ

चा. सा./१४/२ तिर्यग्मनुष्यदेवाचेतनभेटाच्चसुर्विधा स्त्री...। = तिर्यंच, मनुष्य, देव और अचेतनके भेदसे चार प्रकारकी स्त्रियाँ होती हैं। (बो. पा./टो./११९/२६७/२०)

बो. पा./टो./११८/२६७/१६ काष्ठ-पाषाण-लेप्कृतास्त्रियो । = काष्ठ पाषाण और लेप की हुई ये तीन प्रकारकी अचेतन स्त्रियाँ होती हैं।

७. स्त्रीकी निन्दा

भ. आ./मू./गाथा नं. व्यविसचीरअग्गीजलमत्तगयकण्हसप्पसत्तूस्। सो बीसमं गच्छदि जीसमदि जो महिलिया सु १६६२। पाउसकालण-दीनोव्य ताओ णिच्चंपि कलुसहिद्याओ। घणहरणकदमदीओ चोरोव्य सकज्जगूरुयाओ ।१६४। आगास भूमि उदधी जल मेरू बाउणो वि परिमाण । मादुं सक्का ण पुणी सक्का इत्थीण चित्ताई 184३। जो जाणिऊण रत्तं पुरिसं चम्मद्विमंसपरिसेसं । उदाहंति य वडिसामि-सलग्गमच्छं व ।१७१। चंदो हविज्ज उण्हो सीदो सुरो वि थडूनागासं । ण य होज्ज अदोसा भद्दिया वि कुलवालिया महिला । १६०। - जो पुरुष स्त्रियों पर विश्वास करता है वह बाध, विष, चोर, आग, जल प्रवाह, मदवाला हाथी, कृष्णसर्प, और शत्रु इनके ऊपर विश्वास करता है ऐसा समस्तना चाहिए १६५२। वर्षा कालकी नदीका मध्य प्रदेश मिलन पानीसे भरा रहता है और स्त्रियोंका चित्त भी राग. द्वेष, मोह, असुया आदि दुष्ट भावोंसे मलिन है। चोर जैसा मनमें इन लोगोंका धन किस उपायसे ग्रहण किया जाने ऐसा निचार करता है, बैसे ही स्त्रियों भी (रित क्रीड़ा द्वारा) धन हरण करनेमें चतुर होसी है ।६५४। आकाश, जमीन, समुद्र, पानी, मेरु और वायु इन पदार्थी-का कुछ परिमाण है, परन्तु स्त्रीके चित्तका अर्थात् उनके मनमें उत्पन्न होने वाले विकरपोंका परिमाण जान सेना अशक्य है। १६३ । अपनेपर आसक्त हुआ। पुरुष चर्म, हड्डी, और मांस ही शेष वचा हुआ है ऐसा देखकर गलको लगे हुए मत्स्यके समान उसको मार देती है, अथवा घरसे निकाल देती है । १७१। चन्द्र कदाचित् शीतलताको स्यागकर जब्ज बनेगा, सूर्य भी ठंडा होगा, आकाश भी लोह पिण्डके समान धन होगा, परन्तु कुलीन वंशको भी स्त्री कल्याणकारिणी और सरल स्वभावकी धारक न होगी। १६०। (विशेष दे भ, आ,/मू,/६३५-१०३०) ज्ञा./१२/४४.५० भेत्तं श्रुलमसि छेत्तुं कर्तितुं क्रकचं दृढम् । नरान्पीडयितुं यन्त्रं वेधसा विहिताः स्त्रियः । ४४। यदि मूर्त्ताः प्रजायन्ते स्त्रीणा होषाः कथंचन । पूरयेयुस्तदा नूनं नि शेषं भुवनोदरस् । ५०। = अह्याने स्त्रियाँ बनायी हैं वे मनुष्योंको वेधनेके लिए शुली, काटनेके लिए तलवार, कतरनेके लिए करोंत अथना पैलनेके लिए मानो यन्त्र ही बनाये हैं 1881 आचार्य कहते हैं कि स्त्रियोंके दोष यदि किसी प्रकार-से मूर्तिमान् हो जायें तो मैं समफता हूँ कि उन दोशोंसे निश्चय करके समस्त त्रिलोकी परिपूर्ण भर जामेगी। १०। (विशेष विस्तार वे. हा,/१२१-१५५)

🕸 स्त्रीकी निन्दाका कारण उसकी दोषप्रचुरता

--दे. स्त्री/१ ।

८. स्त्री प्रशंसा योग्य भी है

भ. आ./म्./१६६४-१००० कि पुण गुणसहिदाओ इच्छीओ अस्थि विश्य-डजसाओ। णरलोगदेवदाओ देवेहि वि वंदणिङजाओ। १६६४। तिस्थयर चक्कधर वासुदेवमलदेवगणधरवराणं। जणणीओ महिलाओ सुरणर वर्रेहि महियाओ । १६६। एगपदिव्यइकण्णा वयाणि धारिति कित्तिमहिलाओ। वेधव्यतिव्यदुवस्यं आजीवं णिति काओ वि । १६७। सीलवदीवो सुच्चंति महीयले पत्तपाष्टिहेराओ। सावाणु-गगहसमस्थाओ विय काओव महिलाओ। १६८। उपयेण ण बुढाओ

जनंतधोरिंगणा ण दङ्ढाओ । सप्पेहिं सावज्जेहिं वि हरिदा खद्धा ण काओ वि ।१६६। सटबगुणसमस्याणं साहूणं पुरिसपवरसीहाणं। चरमाणं जणणित्तं पत्ताओ हवंति काओ वि ।१०००। = जगत्में कोई-कोई स्त्रियाँ गुणातिशयसे शोभा युक्त होनेसे मुनियोंके द्वारा भी स्तुति योग्य हुई हैं। उनका यश जगत्रमें फैला है, ऐसी स्त्रियाँ मनुष्य लोकमें देवलाके समान पूज्य हुई हैं, देव उनको नमस्कार करते हैं, तीर्थं कर, चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र और गणधरादिकोको प्रसवने वाली स्त्रियाँ देव, और मनुष्यों में प्रधान व्यक्ति हैं। उनसे बन्दनीय हो गयी हैं। कितनेक स्त्रियाँ एक पतित्रत घारण करती हैं, क्तिनेक स्त्रियाँ आजन्म अविवाहित रहकर निम्ल ब्रह्मचर्य वत घारण करती हैं। कितनेक स्त्रियाँ वैधव्यका तीव दुःख आजन्म धारण करती हैं । ११५-११७। शील वत धारण करनेसे कितनेक रित्रयों में शाप देना और अनुग्रह करनेकी शक्ति भी प्राप्त हुई थी। ऐसा शास्त्रोंमें वर्णन है। देवताओं के द्वारा ऐसा स्त्रियों का अनेक प्रकारसे माहारम्य भी दिखाया गया है । १६८। ऐसी शीलवती स्त्रियों को जल-प्रवाह भी बहानेमें असमर्थ है। अग्नि भी उनको नहीं जला सकती है, वह शीतल होती हैं, ऐसी स्त्रियोंको सर्प वयामादिक प्राणी नहीं खा सकते हैं अथवा मुँहमें लेकर अन्यस्थानमें नहीं फेंक देते हैं। १६६। सम्पूर्ण गुणोंसे परिपूर्ण, अष्ठ पुरुषोंमें भी श्रेष्ठ, तद्भव मोक्षणामी ऐसे पुरुषोंको कितनेक शीलवती स्त्रियोंने जन्म दिया है।१०००।

कुरल, | ६/६.८ सर्वदेवाच् परित्यच्य पितदेवं नमस्यति । प्रात्रुरुथाय या नारी तहश्या वारिदाः स्वयस् ।६। प्रसूते या शुभं पुत्रं लोकमान्यं विदावरस् । स्तुवन्ति देवता नित्यं स्वर्गस्था अपि ता मुदारः। चंजो स्त्री दूसरे देवताओंकी पूजा नहीं करती किन्तु विछौनेसे उठते ही अपने पितदेवको पूजती है, जलसे भरे हुए बादल भी उसका वहना मानते हैं ।६। जो महिला लोकमान्य और विद्वाच् पुत्रको जन्म - देती है, स्वर्गलोकके देवता भी उसकी स्तुति करते हैं ।८।

शा./१२/१९-१८ ननु सन्ति जीवलोके काश्चिच्छमशीलसंयमोपेताः।
निजवंशितलकभूता श्रुतसत्यसमन्विता नार्यः १६०। सतीरवेन महत्त्वेन
कृत्तेन विनयेन च । विवेकेन स्त्रियः काश्चिद्ध भूषयन्ति धरातलम्
१६८। = अहो । इस जगतमें अनेक स्त्रियाँ ऐसी भी हैं जो सममाव
और शील संयमसे भूषित हैं, तथा अपने व शमें तिलकभूत हैं, और
शास्त्र तथा सत्य वचन करके सहित भी हैं १६०। अनेक स्त्रियाँ ऐसी
हैं जो पतिव्रतपनसे, महत्त्वसे, चार्त्रिसे, विनयसे, विवेकसे इस पृथिवी
तक्को भृषित करती हैं १६८।

९. स्त्रियोंको निन्दा व प्रशंसाका समन्वय

भ. आ./मू./१००१-१००२/१०५१ मोहोदयेण जीवो सक्वो दुस्सीलमहिलदो होदि। सो पुण सक्वो महिला पुरिसाणं होइ सामण्णा (१००१) तस्मा सा परलवणा पउरा महिलाण होदि अधिकिच्चा। सीलवदीओ भणिदे दोसे किह णाम पावंति ।१००२। —मोहोदयसे जीव कुशील बनते हैं, मिलन स्वभावके धारक बनते हैं। यह मोहोदय सर्व स्त्रियों और पुरुषोंमें समान हैं। जो पीछे स्त्रियोंके दोष (दे स्त्री/७) का विस्तारसे वर्णन किया है वह श्रेष्ठ शीलवती स्त्रियोंके साथ सम्बन्ध नहीं रखता अर्थात् वह सब वर्णन कुशील स्त्रियोंके विषयमें समक्ता चाहिए। क्योंकि शीलवती स्त्रियों गुणोंका पुंजस्वरूप ही हैं। उनको होष केसे छु सकते हैं।१००१-१००२।

ज्ञा./१२/४६ निर्विण्णे भेवसक्षमाच्छ्रुतधरेरेकात्सतो निस्पृहैनियों यद्यपि दूषिताः झमधने ब्राह्मतालम्बिभः । निन्दान्ते न तथापि निर्मलयमस्वाध्यायवृत्ताङ्किताः निर्वेदप्रशमादिपुण्यचरिते योः सुद्धिभ्यता भुवि ।५६। ⇒ जो संसार परिभ्रमणसे विरक्त हैं, शास्त्रोंके पर-गामी और स्त्रियोंसे सर्वथा निस्पृह हैं तथा उपशम भाव ही है धन जिनके ऐसे ब्रह्मचर्यावलम्बी सुनिगणोने यद्यपि स्त्रियोंको निन्दा की

है तथापि जो स्त्रियाँ निर्मल हैं और पित्रत्र यम, नियम, स्वाध्याय, चारित्रादिसे निभूषित हैं और नैराय्य-उपशासि पित्रत्राचरणोंसे पित्रत्र हैं वे निन्दा करने सोग्य नहीं हैं। क्योंकि निन्दा दोषोंकी की जाती है, किन्तु गुणोंकी निन्दा नहीं की जाती १११।

गो. जो./जो.प्र./२०४/६६६/४ यद्यपि तीर्थं करजनन्यादीनां कासांचित् सम्यग्दशीनां एतदुक्तदोषाभावः, तथापि तासां दुर्ज भव्वेन सर्वत्र सुजभ-प्राचुर्यव्यवहारापेस्या स्त्रोलक्षणं निरुक्तिपूर्वकमुक्तम्। व्यवपि तोर्थं द्धरकी माता आदि सम्यग्दशिणी स्त्रियों में दोष नहीं है तथापि वे स्त्रो थोड़ो हैं और पूर्वेक्त दोषोंसे युक्त स्त्री घनी हैं, इसिंजए प्रचुर व्यवहारकी अपेक्षा स्त्रोका ऐसा लक्षण कहा।

* मोक्षमार्गमें स्त्रीत्वका स्थान -- दे वेद/६,७।

१०. स्त्रियोंके कर्तंच्य

कुरत./६/१,६,७ यस्यामस्ति सुपत्नीत्वं सैवास्ति गृहिणो सती। गृह-स्यायमनालोच्य व्ययते न पतिव्रता ।१। आदता पतिसेवायां रक्षणे कीर्तिधर्मयोः। अद्वितीया सतां मान्या पत्नीं सा पतिदेवता ।६। गुप्तस्थाननिवासेन स्त्रीणां नैव सुरक्षणम् । अक्षाणां निग्रहस्तासां केवलो धर्मरक्षकः ।७। = वही उत्तम सहसर्मिणी है, जिसमें सुपत्नीस्वके सम गुण वर्तमान हों और जो अपने पतिकी सामर्थ्यसे अधिक व्यय नहीं करती ।१। वही उत्तम सहधर्मिणी है जो अपने धर्म और प्रशकी रक्षा करती है, तथा प्रेमपूर्वक अपने पतिदेवकी आराधना करती है ।६। चार दिवारीके अन्दर पर्देके साथ रहनेसे क्या लाभ ! स्त्रीके धर्म-का सर्वोत्तम रक्षक उसका इन्द्रिय निग्रह है ।७।

११. स्त्री पुरुषकी अपेक्षा कनिष्ठ मानी गयी है

भ, आ./बिं/४२१/६१६/६ पर उद्द छत — जेणिच्छी हु जघुसिगा परप्पसज्भा य पच्छणिज्जा य। भीरु पररत्स्वणज्जेत्ति तेण पुरिसो भवदि जेट्टो। — स्त्रियौँ पुरुषसे किनष्ठ मानी गयी हैं, वे अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकती, दूसरोंसे इच्छो जाती हैं। जनमें स्वभावतः भय रहता है, कमजोरी रहती है, ऐसा पुरुष नहीं है अतः वह जयेष्ठ है।

१२. धर्मपत्नीके अतिरिक्त अन्य स्त्रियोंका निषेध

ला सं./२/श्लोक नं. भोगपत्नी निषिद्धा स्यात् सर्वतो धर्मवेदिनास्।

ग्रहणस्याविशेषेऽपि दोषो भेदस्य संभवात्।१८०। एतत्सर्वं परिज्ञाय
स्वानुभृतिसमक्षता। पराङ्गनासु नादेया बुद्धिर्धीधनशालिभिः।२००।

—भगपत्नीके सेवनसे अनेक प्रकारके दोष होते हैं, जिनको भगवान्
सर्वज्ञ ही जानते हैं। भोगपत्नीको दासीके समान बताया है। अतः
दासीके सेवन करनेके समान भोगपत्नीके भोग करनेसे भी वज्रके लेपकें

समान पापोंका संचय होता है।१८०। खपने अनुभव और प्रत्यक्षसे इन
सब परिस्त्रियोंके भेदोंको समफ्तकर बुद्धिमानोंको परस्त्रीमें अपनी बुद्धि
कभी नहीं लगानी चाहिए।२०७।

¥ स्त्री सेवन निषेध—दे. ब्रह्मचर्य /३।

स्त्रीकथा—दे. कथा।

स्त्री परिषह—स. सि./६/६/४२२/११ एकान्तेष्वारामभवनादिप्रदे-शेषु नत्रयौवनमदिविभ्रममिदरापानप्रमत्ताष्ठ प्रमदासु वाधमानासु कूर्म-वरसंकृतेन्द्रियहृदयविकारस्य ल.जितिस्मतमृदुकथितसविज्ञासवीक्षण-प्रहसन्मदमन्यरगमनमन्मथश्ररञ्यापारिविफ्लीकरणस्य स्त्रीवाधापरि-षहसहनमवगन्तव्यस् । =एकान्त ऐसे बगीचा तथा भवनादि स्थानी पर नवयौवन, मदविभ्रम और मिदरापानसे धमत्त हुई स्त्रियोंके द्वारा ब धा पहुँचानेपर कछुएके समान जिसने इन्द्रिय और हृदयके विकार-को रोक लिया है तथा जिसने मन्द मुसकान, कोमल सन्भाषण, तिरछी नजरोंसे देखना, हँसना, मदभरी धीमी चालसे चलना और कामबाण मारना आदिको विफल कर दिया है उसके स्त्री बाधा परीषह जय समफनी चाहिए। (रा. वा./१/११/१३/६९०/७); (चा. सा./११६/१)।

स्त्रीवेद-दे. स्त्री।

स्त्री संगति—दे. सगति ।

स्थपति - चक्रवर्तीके चौदह रत्नोंमें-से एक-दे. शनाकापुरुष /२।

स्थलगता चूलिका-अंगशुतज्ञानका एक भेद-दे, शुतज्ञान/III.

स्थिविर कर्प — गो. जी./जी. प्र./६४७/०१४/६ पञ्चमकालस्थिविर-करपालपसंहननसंयमिषु त्रयोदशयोक्तं । — पंचमकालमें स्थिविरकरपी होन संहननके धारी साधुको तैरह प्रकारका चारित्र कहा है ।

स्थविरवादी मत-दे. बौद्धदर्शन ।

स्थान-१. स्थान सामान्यका लक्षण

१. अनुभागके अर्थमें

ध, १/१,७,१/१८६/१ कि ठाणं । उप्पत्तिहेऊ हाणं । = भावकी उत्पत्तिके कारणको स्थान कहते हैं।

ध. ६/१,६-२, १/७६/३ तिष्ठश्यस्यां संख्यायामस्मिन् वा अवस्थाविशेषे प्रकृतयः इति स्थानम् । ठाणं ठिदी अवट्टाणमिदि एयट्टो । = जिसमें-संख्या, अथवा जिस अवस्था विशेषमें प्रकृतियाँ ठहरती हैं, उसे स्थान कहते हैं। स्थान, स्थिति और अवस्थान तीनों एकार्यक हैं।

ध. १२/४,२,७,२००/१११/१२ एगजीविक्स एक्किम्ह समए जो दीसदि कम्माणुभागो तं ठाणं णाम । = एक जीवमें एक समयमें जो कर्मानु-भाग दिखता है उसे स्थान कहते हैं।

गो.क./जी. प्र./२२६/२०२/१० अविभागप्रतिच्छेदसमूहो वर्गः, वर्गसमूहो वर्गणा । वर्गणासमूहः स्पर्धकं । स्पर्धकसमूहो गुणहानिः । गुणहानिः समूहः स्थानमिति ज्ञातव्यम् । = अविभाग प्रतिच्छेदोना समूह वर्ग, वर्गका समूह वर्गणा, वर्गणाका समूह स्पर्धक, स्पर्धकका समूह गुण-हानि और गुणहानिका समूह स्थान है ।

ल. सा./भाषा./२८६/१२ एक जीवकें एक कालविषे (प्रकृति बन्ध, अनुभाग बन्ध आदि) संभवें ताका नाम स्थान है।

२. जगह त्रिशेषके अर्थर्मे

ध. १३/५.५.६४/३३६/३ समुद्रावरुद्धः वजः स्थानं नाम निम्नगावरुद्धं वा। =समुद्रसे अवरुद्ध अथवा नदीसे अवरुद्ध व्यजका नाम स्थान है। अन. ध./≒/घ४ स्थीयते येन तास्थानं वन्दनायो द्विधा मतम्। उद्धी-भावो निषद्या च तत्प्रयोज्यं यथावतम्।८४। = (वन्दना प्रकरणमें) वन्दना करनेवाला शारीरकी जिस आकृति अथवा क्रिया द्वारा एक ही-जगहपर स्थित रहे उसको स्थान कहते हैं...।घ।

२. स्थानके भेद-१. अध्यात्म स्थानादि

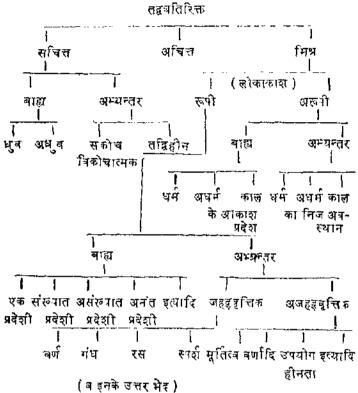
स. सा /मू./१२-११ ... जो अज्भव्यद्वाणा णैव य अणुभायठाणाणि ।१२। जोवस्स णिरिथ केई जोयहाणा ण बंधठाणा ना। णेव य उदयहाणा ण मग्गणठाणया केई ।१३। जो ठिदिनंधट्ठाणा जीवस्स ण सं किलेसठाणा वा। णेव विसोहिट्ठाणा जो संजमल द्विठाणा वा।१४। जेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स । जेण दु एदे सब्वे पुग्गलदब्धस्स परिणामा ।१४। — जीवके अध्यादम स्थान भी नहीं हैं और अनुभाग स्थान भी नहीं हैं ।१२। जीवके योगस्थान भी नहीं, जदयस्थान भी नहीं, कोई मार्गणास्थान भी नहीं, दियस्थान भी नहीं, अथवा संवत्तेश स्थान भी नहीं, विश्वद्धि स्थान भी नहीं, अथवा संवत्तेश स्थान भी नहीं, विश्वद्धि स्थान भी नहीं, अथवा संयम लिध स्थान भी नहीं है। १४। और जीवके जीव स्थान भी नहीं अथवा गुणस्थान भी नहीं है।

For Private & Personal Use Only

क्यों कि ये सब पुद्गल द्रञ्यके परिवास हैं १६६। अर्थात् आगममें निम्न नामके स्थानों का उल्लेख यञ्जन मिलता है।)

२. निक्षेप रूप स्थान

नोट-नाम, स्थापना, आदिके भेद दे निक्षेप /१/२ (ध १०/४,२,४, १७६/४३४/८)।



३, निक्षेप रूप भेदोंके लक्षण

भाव निक्षेप रूपभेद-दे, भाव।

ध.१०/२,४,४,१९६/४३४/१० जं त्तं धुवं तं सिद्धाणमोगाहणट्ठाणं : कुदो।
तेसिमोगाहणाए बिट्ढ-हाणीणमभावेण धिरसस्त्वेण अवट्ठाणादो।
जं तमइधुवं सिच्चत्ट्ठाणं तं संसारत्थाण जीवाणमोहणा । कुदो।
तत्थ विद्वहाणीणमुवलंभादो । ...ज तं संकोच-विकोचणप्यमन्भंतरसिच्चत्ट्ठाणं तं सन्वेसि सजोगजीवाणं जीवदन्व । जं तं तिववहीणमन्भंतरं सिच्चत्ट्ठाणं तं केवलणाण-दंसणहराणं अमोवखद्विदबंधपरिणयाणंतिद्धाणंअजोगिकेवलं,णंया जीवदन्वं। न्जि धुवसिच्तः
स्थान है वह सिद्धोंकाअवगाहनास्थानहै,क्योंकि वृद्धिव हानिकाअभाव
होनेसे उनकी अवगाहना स्थिर स्वस्त्रासे अवस्थित है। जो अधुव
सिच्तस्थान है वह संसारो जीवांकी अवगाहना है, क्योंकि उनमं
वृद्धि और हानि पायी जाती है। ... संकोच विकोचात्मक अभ्यन्तर
सिच्त स्थान है वह योग युक्त सव जीवोंका जीव दन्य है। जो तिद्विहोन अभ्यन्तर सिच्च स्थान है वह केवलहान व केवलदर्शनको
धारण करनेवाले एव मीक्ष व स्थितिवन्धसे परिणत ऐसे सिद्धाँ
अथवा अयोगकेवलियोंका जीव दन्य है।

नोट- शंष निक्षेप रूप भेदों के लक्षण - दे. निक्षेप (

* अन्य सम्बन्धित विषय

१. अध्यात्म आदि स्थानीके लक्षण — दे. वह वह नाम ।
 २. जीव स्थान — दे. समात ।

३, स्वस्थान र वस्थान व विहारवत्स्व-स्वस्थान —दे.सेत्र/१।

स्थानकवासी--दे श्वेताम्बर ।

स्थानांग हादशांगका तीसरा अंग- दे. थुतज्ञान/III ।

स्थानाह पद्धति—Place Value notation, system.

स्थापना-१. हे. धारणा/१ घरणी, धारणी, स्थापना, कोष्ठा और प्रतिष्ठा एकार्थ याची हैं।

ध. १२/६,६,४/२४३/११ स्थाप्यते अनया निर्णीतरूपेण अर्थ इति स्थापना। -जिसके द्वारा निर्णीत रूपमे अर्थ स्थापित किया जाता है वह स्थापना है। २. पूजाने स्थापनाका विधि निषेध—दे. पूजा/६!

स्थापनाअक्षर--दे, अवर 1

स्थापना नय—हे, नय/1/5/३ ।

स्थापना निक्षेप--हे. निक्षेप/४।

स्थापना सत्य -- दे. सत्य/१।

स्थापित-- १. आहारका एक दोष - दे. आहार/११/४/४। २. वस-तिकाका एक दोष - दे, वसतिको ।

स्थावर - वर्धमान भगवान्या पूर्वका १८ वाँ भव- दे, वर्धमान ।

स्थायर — पृथिको अप आदि कामके एकेन्द्रिम जीव अपने स्थान पर स्थित रहनेके कारण अथवा स्थावर नामकर्मके उदमसे स्थावर कह-लाते हैं। ये जीव सुक्ष्म व बादर दोनों प्रकारके होते हुए सर्व लोकर्में पाये जाते हैं।

३. स्थावर जीवोंका लक्षण

स.सि./२/१२/१७१/४ स्थावरनामकर्भोदयवद्यवितः स्थावराः । =स्था-वर नामकर्मके उदयसे जीव स्थावर वहलाते हैं । (रा.वा./२/१२/३/ १२६/२८) ।

ध.१/१,१,३३/गा.१३६/२३६ आणि द पस्सि भूंजित सेवित पस्सितिएण एक्केण । कुणित य तम्सामित्तं थावरु एइंदिओ तेण १९३६। =स्थावर जीव एक स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा ही जानता है, देखता है, खाता है, सेवन करता है और उसका स्वामीपना करता है, इसिलए उसे एकेन्द्रिय स्थावर जीव कहा है १९३६।

ध १/१,१.३६/२६६/६ एसे पञ्चापि स्थावरा स्थावरनामकर्मीदयज्ञित-विशेषत्वात् । = स्थावर नामकर्मके उदयमे उत्पन्न हुई विशेषसाके कारण ये पाँची ही स्थावर कहसाते हैं।

२.स्थावर नामकर्मका लक्षण

स.सि./८/११/३६१/१० यन्त्रिमित्त एकेन्द्रियेषु प्रादुर्भावस्तत्स्थावर-नाम। = जिसके उदयसे एकेन्द्रियों से उत्पत्ति होती है वह स्थावर नामकर्म है। (रा.वा./ π /११/२२/५० π /२२); (गो.क./जो.प्र./३३/३०/१३)।

ध.६/१,६-१.२८/६.१/६ जस्स कम्मम्स उदण्ण जीवो थावरसं पहिवज्जिति
तस्स कम्मस्म थावरसण्णा । जित् थावरणामकम्मं ण होज्ज, तो
थावरजीवाणमभावो हाज्ज । ण च एवं तेसिमुबलभा । = जिस
वर्मके उदयमे स्थावरपनेको प्राप्ता होता है, उस कर्मकी स्थावर यह
संज्ञा है। यदि स्थावर नात्रमं न हो, तो स्थावर जीवोंका अभाव
हो जायेगा। विन्तु ऐमा नहीं है। (ध. १२/६,६,१०१/३६६/४)।

* स्थावर नामकर्भके असंख्यातीं भेद सम्भव हैं

--दे. नामकर्म।

* स्थावर नामकर्मकी बन्ध उदय व सख् प्ररूपणाएँ

दे. वह वह नाम ।

३. स्थावर जीवोंके भेद

पं.का./मू./१९० पुढ्वी य उदगमगणी वाज वणप्फिद जीवसंसिदा काया। ११९०। = पृथ्वीकाय, अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय, और वनस्पतिकाय यह कार्ये जीव सहित हैं १११०। (मू.आ./२०५); (न.च.वृ./१२३); (का.आ./१२४); (द्र.सं./मू./१९)। (स्या.म./२६/ ३२६/२३)।

४. स्थावर जीव एकेन्द्रिय ही होते हैं

पं.का./मू./११० दें ति खलु मोहबहुलं फासं बहुगा वि ते तैसिं।११०। = (गाँचों स्थावर जीवोंको अवान्तर जातियोंकी अपेक्षा) उनकी भारी संख्या होनेपर भी वे सभी उनमें रहनेवाले जीवोंको वास्तवमें अत्यन्त मोहसे संयुक्त स्पर्श देती हैं (अर्थात् स्पर्श ज्ञानमें निमित्त होती हैं ।)

भ.१/१,१,२३/गा.१३६/२३६ जाणित पस्सित भुंजित सेवित परिसितिएण एक्केण । कुणित य तस्सामित्तं थावरु एइंतिओ तेण ।१३६। = नग्नों कि स्थावर जीव एक स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा ही जानता है, देखता है, खाता है, सेवन करता है और उसका स्वामीपना करता है, इसलिए उसे एकेन्द्रिय स्थावर जीव कहा गया है।१३६।

५. स्थावर जीवोंमें जीवत्वकी सिद्धि

पं.का./मू.व.प्र./११३ अंडेसु पवह्र्ंता गन्भाःथा माणुसा य सुच्छग्या।
जारिसया तारिसया जीवा एगेंदिया णेया।११३। एकेन्द्रियाणां
चैतन्यास्तित्वे दृष्टान्तोपन्यःसोऽयस्। अण्डान्तर्जीनानां, गर्भस्थानां,
सूच्छितानां च बुिल्पूर्वकव्यापारादर्शनेऽपि येन प्रकारेण जीवत्वं
निश्चीयते, तेन प्रकारेणैकेन्द्रियाणामिष, उभयेषामिष बुिल्पूर्वकव्यापारादर्शनस्य समानत्वादिति। —अण्डेमें वृद्धि पानेवाले प्राणी,
गर्भमें रहे हुए प्राणी और सूच्छा प्राप्त ममुष्य, जैसे हैं, वैसे एकेन्द्रिय
जीव जानना ।११३। यह एकेन्द्रियोंको चैतन्यका अस्तित्व होने
सम्बन्धी दृष्टान्तका कथन है। अण्डेमें रहे हुए प्राणी, गर्भमें रहे हुए
और सूच्छा पाये हुएके जीवत्वका, उन्हें बुद्धि पूर्वक व्यापार नहीं
देखा जाता तथापि, जिस प्रकार निश्चय किया जाता है, उसी
प्रकार एकेन्द्रियोंके जीवत्वका भी निश्चय किया जाता है; वर्योंकि
दोनोंमें बुद्धि पूर्वक व्यापारका अदर्शन है।

रा.वा./१/४/१४-१६/२६/१७ यद्योवं वनस्पत्यादीनामजीवत्वं प्राप्नोति तदभावात् । ज्ञानादीनां हि प्रवृत्तित उपलब्धिः, न च तेषां तत्पूर्विका प्रवृत्तिरस्ति हिताहितप्राप्तिपरिवर्जनाभावात्। उक्तं च—बुद्धिपूर्वा क्रियां इष्ट्वा स्वदेहेऽन्यत्र तद्प्रहात्। मन्यते बुद्धिसद्भावः सान येषु न तेषु धीः । [सन्ताना,सि.श्लो,] इति नैषः दोषः; तेषामिष ज्ञानादयः सन्ति सर्वज्ञप्रत्यक्षाः, इतरेषामागमगम्याः। आहारला-भालाभयोः पुष्टिम्लानादिदर्शनेन युक्तिगम्याश्च। अण्डगर्भस्थ-मुस्छितादिषु सत्यपि जीवत्वे तत्पूर्वकप्रवृत्त्यभावात् हेत्व्यभि-चारः। - प्रश्न - (जिसमें चेतनता न पायी जाये सो अजीव है) यदि ऐसा है तो वनस्पति आदिकों में अजीवत्यकी प्राप्ति होती है। क्यों कि उनमें चेतनताका अभाव है। ज्ञानादिकी प्रवृत्तिसे ही उसकी उपं-लब्धि होती है। परन्तु वनस्पति आदिमें बुद्धि पूर्वक प्रवृत्ति नहीं देखी जाती, क्यों कि उनमें हितके ग्रहण व अहितके रघामका अभाव है। कहाभी है— अपने शरीरमें बुद्धि किया बुद्धिके रहते ही देखी जाती है, वैसी क्रिया यदि अन्यत्र हो तो वहाँ भी बुद्धिका सङ्गाव मानना चाहिए, अन्यथा नहीं ? उत्तर--यह कोई दोष नहीं है, क्यों कि वनस्पति आदिमें ज्ञान। दिका सद्भाव है। इसको सर्वज्ञ तो अपने प्रत्यक्ष ज्ञानसे जानते हैं और हम लोग आगमसे। स्वान पान आदिके मिलने पर पृष्टि और न मिलने पर मिलनता देखकर उनमें चैतन्यका अनुमान भी होता है। गर्भस्थ जीव सूर्व्छित और

अण्डस्थ जीवमें बुद्धि पूर्वक स्थूल क्रिया भी दिखाई नहीं देती, अतः न दीखने मात्रसे अभाव नहीं किया जा सकता।

स्या. म./२६/३३०/१० पृथिव्यादीनां पुनर्जीवरविमत्थं साधनीयम्। यथा सारिमका विद्युमशिलादिकपा पृथिवी, छेदै समानधात्त्थानाइ, अर्रोऽङ्करवत्। भौग्मम्भोऽपि सात्मकम्, शतभूसजातीयस्य स्यभा-बस्य संभवात्, शाजूरवत्। आन्तरिक्षमपि सात्मकम्, अभादि-विकारे स्वतः संभूय पातात्, मरस्यादिवत् । तेजोऽपि सात्मकस्, आहारोपादानेन वृद्धचादिविकारोपलम्भात् , पुरुषाङ्गवत् । वायुरपि सारमकः, अपरप्रेरितरवे तिर्घरगतिमत्याइ गोवत । वनस्पतिरपि सारमकः छेदादिभिम्लन्यिदिदर्शनात्, पुरुषाङ्गवत्। केषांचित् स्वापाङ्गनोपश्लेषादिविकाराच । अप्रकर्षतस्चैतन्याह वा सर्वेषां सात्मकत्वसिद्धिः। आप्तवचनाच्च । त्रसेषु च कृमिपिपीलिकाभ्रमर-मनुष्यादिषु न केषांचित् सात्मकत्वे विगानमिति।=१. मूंगा पाषाणादि रूप पृथिबी सजीव है, क्यों कि डाभके अंकुरकी तरह पृथियोंके काटनेपर वह फिरसे ऊग आती है। २. पृथिवीका जल सजीव है, क्यों कि मैंडककी तरह जलका स्वभाव खोदी हुई पृथिवीके समान है। आकाशका जल भी सजीव है, क्यों कि मछली की तरह बादलके विकार होने पर यह स्वतः ही उत्पन्न होता है। ३. अग्नि भो सजीव है, क्यों कि पुरुषके अंगों की तरह आहार आदिके प्रहण करनेसे उसमें बृद्धि होती है। ४, बायुमें भी जीव है, क्योंकि गौकी तरह वह दूसरेसे प्रेरित, होकर गमन करती है। १. वनस्पितमें भी जीव है, क्यों कि पुरुषके अंगोंकी तरह छेदनेसे उसमें मिलनता देखी जाती है। कुछ वनस्पतियोंमें खियोंके पादाधात आदिसे निकार होता है, इसलिए भो वनस्पतिमें जीव है। अथवा जिन जीवोंमें चेतना घटती हुई देखी जाती है, वे सब सजीब हैं। सबझ भगवान्ने पुथियी आदिको जीव कहा है। ६ कृमि, विषीतिका, भ्रमर, मनुष्य आदि त्रस जोवोंमें सभी लोगोंने जीव माना है।

६. स्थावरोंमें कथंचित् त्रसपना

पं, का./मू. व. ता. वृ./१११ तित्थावरतणुजोगा अणिलाणकाध्याय
तेसु तसा । निर्शास अय व्यवहारेणाग्निवातकायिकानां त्रसत्वं
वर्शयति—पृथिव्यव्वनस्पत्यस्त्रयः स्थावरकाययोगात्संबन्धात्स्थावरा
भण्यन्ते अनलानिककायिकाः तेषु पञ्चस्थावरेषु मध्ये चलनक्रियां दृष्टुा,
व्यवहारेण त्रसा भण्यन्ते। = अव व्यवहारसे अग्नि और वातकायिकोंके
त्रसत्व दर्शाते हैं -पृथिवी, अप् और वनस्पति ये तीन तो स्थावर
अर्थात स्थिर योग सम्बन्धके कारण स्थावर कहे जाते हैं। परन्तु
अग्नि व वायुकायिक उन पाँच स्थावरों ऐसे हैं जिनमें चलन
क्रिया देखकर व्यवहारसे त्रस भी कह देते हैं।

७. स्थावरके लक्षण सम्बन्धी शंका समाधान

रा. वा./२/१२/४-६/१२७/१ स्थादेतत्-तिष्ठन्तीरयेवं शीलाः स्थावरा इति । तन्नः किं कारणम् । वाय्वादीनामस्थावरत्वप्रसंगात् । वायुतेजोऽम्भसां हि देशान्तरप्राप्तिदर्शनादस्थावरत्वं स्यात् । कथं तर्ह्यस्य
निष्पत्तिः—'स्थानशीलाः स्थावराः' इति । एवं क्रहिविशेषवललाभात् । वविदेव वर्तते ।४। अथ मतमेतत् — इष्टमेव वाय्वादीनामस्थावरत्वमितिः तन्नः किं कारणम् । समयार्थानववोधात् । एवं
हि समयोऽयस्थितः सत्प्रक्षपणायां कायानुवादे "त्रसा नाम
द्वीन्द्रियादारम्य आ अयोगिकेवित्ताः (ष. त्वं, १।१०१। स्वु४४/१७६) ।'' तस्मान्न चलनाचलनापेशं त्रसस्थावरत्वं कर्मोद्यापेक्षमेवेति स्थितम् । —प्रश्न—'जो ठहरे सो, स्थावर' ऐसा वर्यो नहीं
कहते ! उत्तर—नहीं, वर्योकि, वायु आदिकोंमें अस्थावरत्वका प्रसंग
आता है । वायु अग्नि और जलकी देशान्तर प्राप्ति देखी जातो है ।
इससे वे अस्थावर समके जायेंगे । प्रश्न—फिर इस स्थावर शब्द
की 'जो ठहरे सो स्थावर' ऐसी निष्पत्ति कैसे हो सकती है !

उत्तर-पह तो रूढि विशेषके बलसे क्यनित देखनेमें आता है। प्रश्न-मायु आदिक अस्थावर होते हैं तो हो जाओ, क्योंकि यह तो हमें इष्ट है! उत्तर-ऐसा नहीं है, क्योंकि आगमके साथ विरोध आता है। षट् खण्डागम सत्यरूपणांके कायानुवादमें ऐसा वचन अवस्थित है कि 'द्वोन्द्रियसे लेकर अयोग केविल तक जीवोंको त्रस कहते हैं।'' अतः वायु आदिकोंको स्थावरकी कोटिसे निकालकर त्रस कोटिमें लाना उवित नहीं है। इसलिए वचन और चलनकी अपेक्षा त्रस और स्थावर नहीं किया जा सकता। (स. सि./२/१२/-१९९/४); (ध. १/९,१,३६/२६/६/६)

ध. १/१,१,२४/२७६/१ स्थावरकमणः कि कार्यमिति चेदेकस्थानावस्थाप-कत्वम्। तेजोवाय्वप्कायानां चलनात्मकानां तथा सत्यस्थावरत्वं स्यादिति चेत्र. स्थास्नूनां प्रयोगतश्च चिख्यप्रणानामिव गतिपर्याय-परिणतसमीरणाव्यतिरिक्त शरीरत्वतस्तेषां गमनाविरोधात्। = प्रश्न—स्थावर कर्मका वया कार्य है। उत्तर—एक स्थानपर अवस्थित रखना स्थावर कर्मका कार्य है। प्रश्न—ऐसा मानने पर, गमन स्वभाववाले अग्निकायिक वायुकायिक और जलकायिक जीवों-को अस्थावरपना प्राप्त हो जायगा। उत्तर—नहीं, वयोंकि, जिस प्रकार वृक्षमें लगे हुए पत्ते वायुसे हिला करते हैं और दूरनेपर इधर-उधर उड़ जाते हैं, उसी प्रकार अग्निकायिक और जलकायिकके प्रयोगसे गमन माननेमें कोई विरोध नहीं आता है। तथा वायुके गति पर्यायसे परिणत शरीरको छोड़कर कोई दूसरा शरीर नहीं पाया जाता है इसलिए उसके गमन करनमें भी कोई विरोध नहीं आता है।

८. त्रल व स्थावरमें भेद बतानेका प्रयोजन

द्र, सं./टी./११/२६/६ अयमत्रार्थः — विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मस्वरूवभावनोत्पन्नपारमाधिकसुलमलभमाना इन्द्रियसुलासक्ता
एकेन्द्रियादिजीवानां वधं कृत्वा त्रसस्थावरा भवन्तीत्युक्तं पूर्व
तस्मात्त्रसस्थावरोत्पित्तिवनाशार्थं सत्त्रैव परमात्मिन भावना
कर्त्तव्येति । — सारांश यह है कि निर्मल, ज्ञान, दर्शन स्वभाव निज
परमात्म स्वरूपकी भावनासे उत्पन्न जो पारमाधिक सुल है उसकों
न पाकर जीव इन्द्रियोंके सुलमें आसक्त होकर जो एकेन्द्रियादि
जीवोंकी हिंसा करते हैं उससे त्रस तथा स्थावर होते हैं, ऐसा पहले
कह चुके हैं, इस कारण त्रस स्थावरोंमें उत्पत्ति होती है, सबकी
मिटानेके लिए उसी पूर्वोक्त प्रकारसे परमात्माकी भावना करनी
चाहिए।

* स्थावरोंको सत् संख्या क्षेत्र स्पर्शन काल अन्तर माव अस्प बहुख रूप आठ प्ररूपणाएँ-दे, वह वह नाम ।

* स्थावरोंमें गुणस्थान जीवसमास, मार्गणास्थानोंके स्वामित्व विषयक २० प्ररूपणाएँ स्व. सत्।

* मार्गणा प्रकरणमें भाव मार्गणाकी इष्टता तथा वहाँ भाय व व्ययका संतुलन--३, मार्गणा।

★ स्थावर जीवोंमें प्राणोंका स्वामित्व—हे, प्राण/१।

९, स्थावर लोक निर्देश

ति. पः/४/४ जा जोवपोग्गलाणं धम्माधम्मप्पनद्ध आयासे। होति हु
गदागदाणि तात्र हो थात्ररा लोओ ।१। = धर्म व अधर्म द्रव्यसे सम्बनिधत जित्तने आकाशमें जीव और पुद्रगलोंका जाना-आना रहता है
छत्ना स्थावर लोक है।१।

का. अ./मू./१२२ एइंदिएहिं भरिदी पंच-पयारेहिं सन्वदी लोओ।...। १२२। च्यह लोक पाँच प्रकारके एकेन्द्रियोंसे सर्वेत्र भरा हुआ है। दे, काय/२/५ बादर, अर्. तेज व वनस्पति काधिक जीव अबोलोककी आठों पृथिवियों व भवनवासियों के विमानों में भी पाये जाते हैं।

स्थित द्रव्य निक्षेप—दे, निक्षेप /६/८।

स्थिति — अवस्थान कालका नाम स्थिति है। बन्ध कालसे लेकर प्रतिसमय एक एक करके कर्म उदयमें आ आकर खिरते रहते हैं। इस प्रकार जब तक उस समयमें बन्धा सर्ब द्रव्य समाप्त हो, उतना उतना काल उस कर्मकी स्थिति है। और प्रतिसमय वह खिरने-वाला इव्य निषेक कहलाता है। सम्पूर्ण स्थितिमें एक एकके पीछे एक स्थित रहता है। सबसे पहिले निषेकमें सबसे अधिक द्रव्य हैं, पीछे कम पूर्वक घटते घटते अन्तिम निषेकमें सर्वत्र स्तोक द्रव्य होता है। इसलिए स्थिति प्रकरणमें कर्म निषेक्रोंका यह त्रिक्रोण यन्त्र बन जाता है। कथाय आदिको तीव्रताके कारण संवतेश परिणामोंसे अधिक और विशुद्ध परिणामोंसे होन स्थित बन्धती है।

3 भेद व ऌक्षण स्थिति सामान्यका रुक्षण । ₹ स्थिति बन्धका लक्षण । स्थिति बन्ध अध्यवसाय स्थान । 💝 —दे अध्यवसाय । उत्कृष्ट व सर्व रियतिके रूक्षण । उत्ऋष्ट व सर्वे स्थिति आदिमें अन्तर। -- दे. अनुयोग/३/२ । Ϋ́ अप्र व उपरितन स्थितिके लक्षण । ч सन्तर व निरन्तर स्थितके छक्षण । भथम व दितीय स्थितिके छक्षण । सादि अनादि स्थितिके रूक्षण । विचार स्थानका लक्षण : जीवींकी स्थिति। — दे आधु⊦ ₹ स्थितिबन्ध निर्देश ŧ स्थितिबन्धमें चार अनुयोग द्वार । भवरिथति व कायश्यितिमै अन्तर । ₹ एकसमयिक बन्धको बन्ध नहीं कहते । स्थिति व अनुभाग वन्धकी प्रधानता । स्थितिबन्धका कारण कषाय है। — दे. बन्ध५/१। रियति (काल) की ओव आदेश प्ररूपणा।

निषेक रचना

₹

१ निषेक रचना ही कर्मीकी स्थिति है।

२ स्थितिबन्धमें निषेकोंकी त्रिकोण रचना सम्बन्धी।

| निषेकोंकी त्रिकोण रचनाका आकार 1 - दे, उदय/३।

३ कर्म व नोकर्मकी निषेक रचना सम्बन्धी विज्ञेष स्वी।

उत्ऋष्ट व जन्नम्य स्थितिबन्ध सम्बन्धी नियम

* जधन्य स्थितिमें निषेक्ष प्रधान हैं और अत्कृष्ट स्थितिमें काल। —हे. सहव/२/५।

मरण समय उत्हृष्ट बन्ध सम्भव नहीं।

– वे, काल/५,ई।

- २ स्थितिबन्धमें संक्लेश विशुद्ध परिणामीका स्थान।
- ३ मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिबन्धक कौन ।
- ४ जन्कृष्ट अनुभागके साथ उत्कृष्ट स्थिति बन्धकी व्याप्ति ।
- रिर्थात व प्रदेश बन्धमें अन्तर —दे प्रदेश बन्ध ।
- 🥞 । उत्कृष्ट रिथति बन्धका अन्तरकाल ।
- ६ जवन्य स्थितियन्थर्ने गुणहानि सस्भव नहीं ।
- भाता व तीर्थंकर प्रकृतियोंका ज. उ. स्थितिबन्ध सम्बन्धी दृष्टि मेद ।
- ईर्यापथ कर्मकी स्थिति सम्बन्धी —दे ईर्यायथ।
- जधन्य व उत्कृष्ट स्थिति सत्त्रके स्वामी

—–दे, स⊤व/२ ।

८ | उरकृष्ट अनुभागके साथ अनुरकृष्ट स्थितिबन्ध सेसे ।

५ श्थितिबम्ध सम्बन्धी शंका समाधान

- १ साताके जबन्य स्थितित्रन्थ सम्बन्धो ।
- २ | उत्कृष्ट अनुभागके साथ अनुत्कृष्ट स्थितिवन्थ कैसे ।
- विग्रह गतिमें नारको संशोका सुजगार स्थिति-बन्ध कैसे ?

६ स्थितिबन्ध प्ररूपणा

- १ मूलोत्तर प्रक्लितयोंकी जन्नन्योत्कृष्ट आवाधा व स्थिति तथा उनका स्वामित्त्र ।
- २ | इन्द्रिय मार्गणाकी अपेक्षा प्रकृतियों की छ. ज. रिश्रतिकी सारणी।
- ३ उत्कृष्ट व जवन्य स्थिति, प्रदेश व अनुभागके वन्धोंकी प्ररूपणा
- 🐰 अन्य प्रस्यणाओं सम्बन्धी मुची ।
 - मूलोत्तर प्रकृतिकी रियतिबन्ध न बन्धकों सम्बन्धी संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काळ, अन्तर, भाव व अल्पबद्धत्व रूप आठ प्ररूपणार्स।

-दे. वह वह नाम।

१. भेद व लक्षण

१. स्थिति सामान्यका लक्षण

१ स्थितिका अर्थ गमनरहितता

- रा. वा /४/९%/२/४६०/२४ तद्विपरीता स्थितिः ।२। द्रव्यस्य स्वदेशाद-प्रच्यवनहेतुर्गतिनवृत्तिरूपा स्थितिरवगन्तव्या ।≈गतिसे विपरीत स्थिति होती है । अर्थात् गतिकी निवृत्ति रूप स्वदेशसे अगस्युतिको स्थिति कहते हैं । (स.सि./६/९%/२९१/१२/
- रा. वा,/६/८/१६/४६१/१२ जीयप्रदेशानाम् उद्भवनिधन्नपरिस्पन्दस्या-प्रवृत्तिः । = जीवके प्रदेशोंकी उथल-पुथनको अस्थिति तथा उथल-पुथन न होनेको रिथन्नि कहते हैं।

र. स्थितिका अर्थकाल

- स. सि./१/७/२२/४ स्थितिः कालपरिच्छेदः । -- जितने काल तक वस्तु रहती है वह स्थिति है । (रा. वा. /१/७/-/३८।३)
- रा. वा. /१/८/६/४२/३ स्थितिमतोऽयिषपरिच्छेरार्थं कालोपादानम् ।६। किसी क्षेत्रमें स्थित पदार्थकी काल मयादी निश्चय करना काल (स्थिति) है /
- क. पा. ३/६३६८/१६२/६ कम्मसरूबेण परिणदाणं कम्मइग्रपोग्गल-व्यवंधाण कम्मभावमछं डिय अच्छाणकालो हिदीणाम । = कर्म रूपसे परिणत हुए पुद्धाल कर्मस्कन्धोंके कर्मपनेको न छोड्कर रहनेके कालको स्थिति कहते हैं।
- क. पा. ३/३-२२/१६१४/२६२/६ सयलिंगसेयगयकालपहाणी अद्धाछेदो, सयलिंगसेगपहाणा द्विदि स्ति । सर्विनिषेकगत काल प्रधान अद्धा-च्छेद होता है और सर्विनिषेक प्रधान स्थिति होती है।
- गो. जी. /भाषा/ पृ. ३१०/२ अन्य ,काय ते आकर तेजसकाय विषे जीव उपज्या तहाँ उरकृष्टपने जेते काल और काय न धरे, तेजसकायनिकों धराकरे तिस कालके समयनिका प्रमाण (तेजसकायिककी स्थिति) जानना ।

३. स्थिति का अर्थ आयु

स. सि /४/२०/२५१/० स्वोपात्तस्यायुष उदयात्तिस्तनभवे शरीरेण सहाव-स्थानं स्थितिः । = अपने द्वारा प्राप्त हुई आयुके उदयसे उस भवमें शरीरके साथ रहना स्थिति कहलाती है । (रा.वा./४/२०/१/२६५/११)

२. स्थिति बन्धका लक्षण

- स. सि. /८/३/३७६/४ तत्स्वभावादप्रच्युतिः स्थितिः । यथा अजागीमहिष्यादिक्षीराणां माधुर्यस्वभावादप्रच्युतिः स्थितिः । तथा ज्ञानावरणादीनामर्थावगमादिस्वभावादप्रच्युतिः स्थितिः । = जिसका जो
 स्वभाव है उससे च्युत न होना स्थिति है । जिस प्रकार बक्री, गाय
 और भैंस आदिके दूधका माधुर्य स्वभावसे च्युत न होना स्थिति है ।
 उसी प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मौंका अर्थका ज्ञान न होने देना आदि
 स्वभावसे च्युत न होना स्थिति है । (पं. सं. /पा./४/६१४-६१६);
 (रा. वा./=/३/४/६६०/७); (ब. सं. / टी. /३१/६३/६); (पं. सं/सं. /४/३६६-३६७)
- ध . ६/१, ६-६, २,१४६/१ जोगवसेण कम्मस्सरूबेण परिणदाणं पोरमसर्वं । धाणं कसायवसेण जीवे एगसरूबेणावहाणकालो द्विदी णाम । = योगके वशसे कर्मस्वरूपसे परिणत पुद्रगल स्कन्धोंका कथायके वशसे जीवमें एक स्यरूपसे रहनेके कालुको स्थिति कहते हैं।

३. उत्कृष्ट व सर्व स्थितिके लक्षण

- क पा, ३/३-२२/\$२०/१५/२ 'तत्थतणसन्त्रणिसेयाणं समृहो सन्त्रिति जाम । = (अद्ध कर्मके) समस्त नियेकोंके या समस्त नियेकोंके कालको उरकृष्ट स्थिति विभक्ति कहते हैं ।
- दे, स्थिति /१/६ वहाँ पर (उत्कृष्ट स्थितिमें) रहनेवाले (बद्ध कर्मके) सम्पूर्ण निषेकोंका जो समूह वह सर्व स्थिति है ।
- क. पा. ३/३-२२/१२०/१५ पर विशेषार्थ (बद्ध कर्मके) अन्तिम निषेकका जो काल है वह (उस कर्मकी) उत्कृष्ट स्थिति है। इसमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होनेपर प्रथम निषेक्से लेकर अन्तिम निषेक तककी सथ स्थितियों का ग्रहण किया है। उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होनेपर को प्रथम निषे कसे लेकर अन्तिम निषेक तक निषेक रचना हेती है वह सर्व स्थिति विभक्ति है।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

४. अग्र व उपरितन स्थितिके लक्षण

१. अग्र स्थिति

ध, १४/४,६,३२०/३६७/४ जहण्णणिव्यत्तीर चरिमणिसेओ अग्गंणाम । तस्स द्विदी जहण्णिया अग्गद्विदि कि घेत्तव्या । जहण्णणिव्यत्ति ति भणिदं होदि । — जघन्य निवृत्तिके अन्तिम निषेककी अग्रसंझा है । उसकी स्थिति जघन्य अग्रस्थिति है । . . . जघन्य निवृत्ति (जघन्य आयुवन्ध) यह उक्त कथनका तार्पर्य है ।

२. उपरितन स्थिति

- मो. जी./भाषा,/६७/१७६/१० वर्तमान समय ते लगाइ उदयावलीका काल, ताक पीछे गुण भेणी आयाम काल, ताके पीछे अवशेष सर्व स्थिति काल, अन्त विषे अतिस्थापनावली बिना सो उपरितन स्थितिका काल, तिनिके निषेक पूर्वे थे तिनि विषे मिलाइए है। सो यह मिलाया हुआ द्रव्यपूर्व निषेकिक साथ उदय होइ निर्जरे है, ऐसा भाव जानना। (ल. सा./भाषा./६९/१०४)।
- गो, जो -/अर्थ संइष्टि/पृ, २४ ताके (उदयावली तथा गुण श्रेणीके) ऊपर (बहुत काल तक उदय आने योग्य) के जे निषेक तिनिका समूह सो तो उपरितन स्थिति है।

५. सान्तर निरन्तर स्थितिके लक्षण

- गो. क./भाषा./१४४.१४६/२०४४-२०४४ सान्तरस्थिति उत्कृष्ट स्थिति तै लगाय-ज्ञचन्य स्थिति पर्यन्त एक-एक समय घाटिका अनुक्रम लिये जो निरन्तर स्थितिके भेद…(१४४/२०४४)। सान्तर स्थिति— भान्तर कहिए एक समय घाटिके नियम करि रहित ऐसे स्थिति-
- स. सा./भाषा/६८३/६६६/१६ गुण श्रेणि आयामके ऊपरवर्ती जिनि प्रदेशनिका पूर्वे अभाव किया था तिनिका प्रमाण रूप अन्तर-स्थिति है।

६. प्रथम व द्वितीय स्थितिके रूक्षण

- स्, सा./भाषा./१८३/६६६/१७ ताके उपरिवर्ती (अन्तर स्थितिके उपरिवर्ती) अवशेष सर्व स्थिति ताका नाम द्वितीय स्थिति है।
- दे. अन्तरकरण/१/२ अन्तरकरणसे नीचेकी अन्तर्मुहूर्तप्रमित स्थितिको प्रथम स्थिति कहते हैं और अन्तरकरणसे ऊपरकी स्थितिको द्वितीय-स्थिति कहते हैं।

७. सादि अनादि स्थितिके लक्षण

पं. सं । पा. । ही । प्र । १४ १२६ सादि स्थितिवन्धः, यः अवन्धं स्थितिवन्धः भध्नाति स सादि वन्धः । अनादि स्थितिवन्धः , जीवकर्मणोरनादि वन्धः स्यात् । = विविक्षित कर्मकी स्थितिके वन्धका अभाव होकर पुनः उसके व प्रवेतको सादि स्थितिवन्धः कहते हैं । गुणस्थानों में बन्ध व्युच्छित्विके पूर्वतक अनादि कालसे होनेवाले स्थितिवन्धको अनादिस्थितिवन्धक वहते हैं ।

८. विचार स्थानका कक्षण

ध. ६/१,६—६,६/१६० पर उदाहरण वीचारस्थान च (उत्कृष्ट स्थिति — जघन्य स्थिति) या अवाघाके भेद—१

तहाँ अनाधाके भेद = (उत्कृष्ट स्थिति - जधन्यस्थिति + १) आवाधा काण्डक

अवाधा काण्डक = उत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्ट आवाधा

जैसे यदि उत्कृष्ट स्थिति = १४; जघन्य स्थिति = ४६:

जरकृष्ट आमाधा १६; आमाधा काण्डक **≔ ६४** ≕४

तो ६४-६१ तक ४ स्थिति भेदों का एक आवाधा काण्डक

- (ii) \$0-60
- (iii) kŧ-kŧ
- (iv) ६२-४६ .. ., ., ., ., ., .,

आनाधाके भेद - ¿×४ - २०

वीचार स्थान = २०-१ = १६ या ई४-४५ = १६

२. स्थितिबन्ध निर्देश

१. स्थितिबन्धमें चार अनुयोग द्वार

ष खं/११/४,२,६/सू. ३६/१४० एसो मूलपमडिद्विदिबंधे पुटवं गमणिडले तत्थ इमाणि चत्तारि आणियोगद्दाराणि द्विदिबंधट्ठाणप्रस्तवणा णिसे-यपस्त्वणा आबाधाकंडयपस्तवणा अन्पाबहुए ति ।३६१ = आगे मूल प्रकृति स्थितिमन्ध पूर्वमें ज्ञातव्य है। उसमें ये चार अनुयोगद्वार हैं --स्थिति बन्धस्थान प्रस्त्पणा, निषेक-प्रस्त्पणा, आबाधा काण्डक प्रस्त्पणा, और अन्य बहुत्व।

२. भवस्थिति व कायस्थितिमें अन्तर

रा. वा./३/१८/६/२९०/३ एकभविषया भवस्थितिः। कायस्थिति-रेककायापरित्यागेन नानाभवग्रहणविषया। = एक भवकी स्थिति भवस्थिति कहलाती है और एक कायका परित्याग किये विना अनेक भवविषयक कायस्थिति होती है।

३. एकसमिथक यन्धको बन्ध नहीं कहते

ध. १३/४.४८,२४/५४/६ टि्ठ दि - अणुभाग नंधाभावेण मुक्क बुडु पिक्तित्तवा -लुवमुटि्ठ ठव जीवसंबंध विदियसमए चैव णिवदंतस्स बंधववएस-विरोहादो । -- स्थिति और अनुभाग बन्धके बिना शुष्क भीतपर फैंको गयी मुट्ठीभर बालुकाके समान जीवसे सम्बन्ध होनेके दूसरे समयमें ही पतित हुए सातावेदनीय कर्मको बन्ध संज्ञा देनेमें विरोध आता है।

४. स्थिति च अनुमाग बन्धकी प्रधानता

रा. बा./६/३/७/६०७/३१ अनुभागबन्धो हि प्रधानभूतः तन्निमित्तत्वात् सुखबु:खबिपाकस्य । — अनुभागबन्ध प्रधान है, बही सुख-दुःख रूप फलका निमित्त होता है।

Jain Education International

गो. क./जो. प./-००/६७६/- ऐतेषु पट्सु सरसु जीवो ज्ञानदर्शनावरणद्वयं भूयो वध्नाति-प्रचुरवृत्त्या स्थित्यनुभागौ वध्नातीरयर्थः। — इन छह (प्रत्यनीक आदि) कार्योंके होते जीव ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मको खिक बाँधता है अर्थात् ज्ञानावरण व दर्शनावरण कर्मको स्थित व अनुभागको प्रचुरता लिये बाँधे हैं।

पं.धः/उ /१३७ स्वार्थिक यासमर्थोऽत्र बन्धः स्याइ रससंक्षिकः। शेषत्रन्धिति-को ऽप्येष न कार्यकरणक्षमः ।१३७। च्केवल अनुभाग नामक बन्ध ही बाँधने रूप अपनी क्रियामें समर्थ है। तथा शेषके तीनों बन्ध

आत्माको बाँधने रूप कार्य करनेमें समर्थ नहीं हैं।

३. निषेक रचना

१. निषेक रचना ही कमौंकी स्थिति है

ध, ६/१,६-७,४३/१००/१० ठिदिबंधे णिसेयविरयणा पस्तिदा। ण सा पदेसेहि बिणा संभवदि, बिरोहादो। तदो तत्तो चेव पदेसमंधो वि सिद्धो। = स्थिति बन्धमें निषेकोंकी रचना प्ररूपण की गयी है। वह निषेक रचना प्रदेशोंके जिना सम्भव नहीं है, क्यों कि, प्रदेशोंके बिना निषेक रचना माननेमें विरोध अता है। इसलिए निषेक रचनासे प्रदेश बन्ध भी सिद्ध होता है।

२. स्थिति वन्धमें निषेकोंका त्रिकोण रचना सम्बन्धी नियम

- गो. क./मू./१२०-१२१/११०४ लॉमाहं मोलाविय पढमणिसैगिम्म देय महुर्ग तु। तत्तो विसेसहीण विदियस्सादिमणिसेओ ति।१२०। विदियं विदियणिसेने हाणी पुठ्विक्तहाणि अइधं तु। एवं गुण्हाणि पिंड हाणी अइद्धयं होदि।१२१। कर्मोंकी स्थितिमें आधाधा कालके पिछे पहले समय प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकमें नहुत द्रव्य दिया जाता है। उसके ऊपर दूसरी गुणहानिका प्रथम निषेक पर्यंत एक-एक चय घटता-घटता द्रव्य दिया जाता है।१२०। दूसरी गुणहानिके दूसरे निषेक-उस हीके पहले निषेकमें एक चय घटता द्रव्य जानना। जो पहिलो गुणहानिमें निषेक-निषेक प्रति हानि रूप चयथा, तिसते दूसरी गुणहानिमें हानि रूप चयका प्रमाण आधा जानना। इस प्रकार ऊपर-ऊपर गुणहानि प्रति हानि रूप चयका प्रमाण आधा-आधा जानना।
- गो. क./मू./६४०/११३६ उक्कस्सिट्ठिदिवधे सयलावाहा हु सब्विठिदि-रयणा। तक्काले दोस्रित तो धोघो वंघिट्ठिदीणं च। — विविक्षत प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थिति बन्ध होनेपर उसी कालमें उत्कृष्ट स्थितिको आवाधा और सब स्थितिको रचना भी देखी जाती है। इस कारण उस स्थितिके अन्तके निषेकसे नीचे-नीचे प्रथम निषेक पर्यंत स्थिति बन्ध रूप स्थितियोंकी एक-एक समय हीमता देखनी चाहिए।

१. कर्म व नोकर्मकी निषेक रचना सम्बन्धी विशेष सूची

- १. चौदह जीवसमासोंमें मूळ प्रकृतियोंकी अन्तरोपनिधा परस्परो-पनिधाकी अपेक्षा पूर्णिरिथतिमें निषेक रचना
 - ==(म. र्व. २/४-१**६/६**-१२) ।
- २. उपरोक्त विषय उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा

(म. बं. २/१६-२८/२२८-२२६)।

३. नोकर्मके निषेकों की समुत्कीर्तना

(ष. खं /२/४,६/सू./२४६--२४=/३३१)।

४. उत्कृष्ट व जघन्य स्थितिबन्ध सम्बन्धी नियम

९. मरण समय उल्क्रष्ट स्थितिबन्ध सम्भव नहीं

घ. १२/४.२,१३.१/३७८/१२ चरिमसमये उक्कस्सिट्ठिंदवधाभावादो । —(नारक जीवके) अन्तिम समयमें उत्कृष्ट स्थितिभन्धका अभाव है।

२. स्थितिबन्धमें संक्लेश विश्वद्ध परिणामोंका स्थान

- पं. सं./प्रा./४/४२१ सम्बट्ठिशीण मुझस्साओ दु उक्तरससं विलेसेण । विबर् रीओ दु जहण्णो आउगतिगं बज्ज सेसाणं ।४२६। — आयु त्रिकको छो हुकर शेष सर्व प्रकृतियोंकी स्थितियोंका उरकृष्ट बन्ध उरकृष्ट संबत्तेशसे होता है और उनका अधन्य स्थितिबन्ध विपरीत अर्थात सबसेशके कम होनेसे होता है। यहाँ पर आयु त्रिकसे अभिप्राय सरकायुके बिना शेष तीन आयुसे है। (गो. क /पू./१३४/१३२); (पं. सं./सं./४/२३६); (स. सा./भाषा/१७/३)।
- गो.क./जी.प./१३४/१३२/१७ तत्त्रयस्य तु उत्कृष्टं उत्कृष्टिवशुद्धपरिणा-मेन जधन्यं तिद्विपरीतेन भवति । स्तीन आग्रु (तिर्थग्, मनुष्य व देवायु) का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध उत्कृष्ट विश्वद्ध परिणामोंसे और जधन्य स्थितिबन्ध उससे विपरीत अर्थात् कम संवतेश परिणामसे होता है।

३. मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिबन्धक कौन

क.पा.६/३-२२/६१२/१६/१ तथ खोषेण उक्कस्सिट्ठियी कस्स । अण्ण-दरस्स, जो चडट्ठाण्यि जवमज्भस्स उवित खंतोकोडाकोडि बंधंतो अच्छिदो उक्कस्ससंकितेसं गद्दो । तदो उक्कस्सिट्ठिदी पबद्धा तस्स उक्कस्स्यं होदि । —जो चसुस्थानीय यवमध्यके उपर अग्तःकोड़ा-कोड़ी प्रमाण स्थितिको वाधता हुआ स्थित है और अनग्तर उस्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर जिलने उत्कृष्ट-उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है, ऐसे किसी भी जीवके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है।

४. उत्कृष्ट अनुमागकं साथ उत्कृष्ट स्थितिवन्धकी ज्यासि

- ध. १२/४.२.१३,३१/६६०/१३ जित उनकस्सिट्ठिदीए सह उनकस्स-संकितेमेण उनकस्सिविसेसपच्चएण उनकस्साणुभागो पहाती तो कासवैयणाए सह भावो ति उनकस्सी होदि। उनकस्सिविसेस-पच्चयाभावे अणुनकस्सामो चेव। च्यदि उत्कृष्ट स्थितिके साथ उत्कृष्ट विशेष प्रत्ययस्य उत्कृष्ट संवलेशके द्वारा उत्कृष्ट अनुभाग व्यामा है तो काल देदना (स्थितिकस्प) के साथ भाव (अनु-भागी) भी उत्कृष्ट होता है। और (अनुभाग सम्बन्धी) उत्कृष्ट विशेष प्रत्ययके अभावमें भाव (अनुभाग) अनुत्कृष्ट ही होता है। (ध. १२/ ४,२,१३,४०/३६३/४)।
- ध, १२/४,२.१३.४०/३६३/६ उवकस्साणुभाग बंधमाणो णिच्छएण उककस्सियं चेव द्विति बंधिति, उवकग्ससंकिलेसेण विणा उवकस्राणु-भागसंधामाबादो । = उरकृष्ट अनुभागको साँधनेत्राला जीव निश्चयसे उत्कृष्ट स्थितिको ही बाँधतां है, वयों कि उत्कृष्ट संक्षि-लेशके बिना उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध नहीं होता है।

५. उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल

क पा./१/३-२२/%१३८/३१६/३ कम्माणसुक्कस्सिट्ठिवर्वधुवसंभादो । दोण्हमुक्कस्सिट्ठिदोणं विचालिमअणुक्कस्सिट्ठिदिबंधकालो तासिमंतरं ति भणिदं होदि । एगसमओ जहण्णतरं किण्ण होदि । ण उझस्स-दिठिदं बंधिय पिंडहरगस्स पुणो अंतोमुहुत्तेण विणा उछस्सिद्ठिदि-वधासंभवादो । चक्मोंकी उरकृष्ट स्थितिको बाँधनेवाला जीव अनुरकृष्ट स्थितिका कमसे कम अन्तर्गृहूर्त काल तक बन्ध करता है उसके अन्तर्गृहूर्त के बाद पुनः पूर्शोक्त पूर्वोंकी उरकृष्ट स्थितिका बन्ध पाया जाता है। प्रश्न — जधन्य अन्तर एक समय क्यों नहीं होता ! उत्तर — नहीं, क्योंकि उरकृष्ट स्थितिको बाँधकर उससे च्युत हुए जोबके पुनः अन्तर्गृहूर्त कालके बिना उरकृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता, अतः जधन्य अन्तर एक समय नहीं है।

६, जचन्य स्थितियन्धमें गुणहानि सम्मव नहीं

ध.६/१.६-७.६/१८-३/१ एरय गुगहाणीओ णित्य, पिलदोबमस्स असं-खेडजदि भागमेत्तिहिट्दीए विणा गुणहाणीए असंभवादो। = इस जवन्य स्थितिमें गुणहानियाँ नहीं होती हैं, क्योंकि, प्रयोपमके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिके विना गुणहानिका होना अस-मभव है।

७. साता च तीर्थंकर प्रकृतियोंकी ज. उ. स्थितिवन्ध सम्यन्धी दृष्टिभेद

- ध, ११/४,२.६,१०९/३२१/६ उविरमणाणागुणहाणिसलागाओ सेडिछेदणाहितो बहुगाओ त्ति के वि आइरिया भणित । तेसिमाइरियागमहिष्पाएण सेडीए असंखेउजिदभागमेत्ता जीवा डविर तष्पाओग्गासंखेउजगुणहाणीओ गंतूण होंति । ण च एवं वक्खाणे अण्णोण्णाञ्मस्थरासिस्स पिलदोवमस्स असंखेउजिदभागतुवलंभादो । (साता
 वेदनीयके द्वि स्थानिक यव मध्यसे तथा असाता वेदनीयके चतुस्थानिक यव मध्यसे उपरकी स्थितियों जीवोंकी) 'नाना गुणहानि
 शलाकाएँ श्रेणिके अर्घच्छेदोंसे बहुत हैं ऐसा कितने ही आचार्य
 कहते हैं । उन आचार्योंके अभिप्रायसे श्रेणिके असंख्यातवें भाग
 प्रमाण जोव आगे तत्प्रायोग्य असंख्यात गुणहानियाँ जाकर हैं ।
 परन्तु ऐसा नहीं है, वर्योंकि इस व्याख्यानमें अन्योन्याभ्यस्तं राशि
 पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण पायी जाती है ।
- ध. १२/४,२,१४,३०/४६४/१२ आदिमंतिमदोहि वासपुधत्तेहि ऊणदो-पुज्यकोडीहि सादिरैयतेत्तोकसागरोवममेत्ता तित्थयरस्स समयपनद्ध-ट्ठदा होदि ति के वि आइरिया भणंति। तण्ण घडदे। कुदो। आहारदुगस्स संखेजजनासमेत्ता तित्थयरस्स सादिरैयतेत्तीससागरो-वममेता समयपनद्धट्ठदा होंति ति सुत्ताभावादो। स्आदि और अन्तके दो वर्ष पृथवरवोंसे रहित तथा दो पूर्व कोटि अधिक तोर्थं कर प्रकृतिकी तैतीस सागरोपम मात्र समय प्रवद्धार्थता होती है, ऐसा कितने हो आचार्य कहते हैं। परन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि, आहारकद्विका संख्यात वर्ष मात्र और तीर्थं कर प्रकृतिकी साधिक तेतीस सागरोपम प्रमाण समय प्रवद्धार्थता है, ऐसा कोई सुन्न नहीं है।

५. स्थितिबन्ध सम्बन्धी शंका-समाधान

९. साताके जघन्य स्थिति बन्ध सम्बन्धी

थ. ६/१.६-७.६/१८६/१ तीसियस्स दंसणावरणीयस्स अंतोमुहुत्तमे-त्तद्विदं वंधमाणे मुहुमसांपराइयो तीसियवेदणीयभेदस्स सादावेद- णीयरस पण्णारससागरीवमकोडाकोडी उवनस्सिट्डिव्अस्स वधं वारसमुहुत्तियं जहण्णिट्ठित वंधवे। ण, दंसणावरणादो मुहस्स सादावेदणीयस्स विसोधीदो मुट्डु ट्ठिव्वंधोवहणाभावा। ⇒तीस कोड़ाकोड़ी सागरीपमकी उत्कृष्ट स्थितिवाचे दर्शनावरणीय दर्मकी अन्तर्मृहुर्त मात्र जघन्य स्थितिको बाँधनेवाला सुस्म साम्पराय संयत्त तीस कोड़ाकोड़ी सागरीपमकी उत्कृष्ट स्थिति वाले वेदनीयकर्मके भेदस्वरूप पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरीपम प्रमित उत्कृष्ट स्थितिवाचे साता वेदनीय कर्मकी बारह मुहूर्त वाली जधन्य स्थितिको कैसे बाँधता है ! उत्तर – नहीं, क्योंकि, दर्शनावरणीय वर्मकी अपेक्षा धुभ प्रकृति रूप साठावेदनीय कर्मकी विशुद्धिके द्वारा स्थितिबन्ध-की अधिक अपवर्तनाका अभाव है।

२. उ. अनुभागके साथ अनुत्कृष्ट स्थिति बन्ध कैसे

ध.१२/४,२,१३,४०/३१३/६ उक्कस्साणुभागं बंधमाणो णिच्छएण उक्क-सियं चेव ट्ठिर्द बंधदि. उनकस्ससंकिलेसेण विणा उनकस्साणु-भागवंधाभावादो । एवं संते कधमुक्तस्साणुभागे णिरुद्दश्चे अणुक्तस्स-ट्ठदीए संभवी चि । ण एस दोसी, उक्षस्साणुभागेण सह उक्षस्स-द्विदि वंधिय पडिभगास्स अधिद्विदिगलणाप उक्कासद्विदी हो समज्ज्ञणादिवियम्पुक्लभादी । ण च अणुभागस्स अद्वधद्ठिविगलणाए घादो अत्थि, सरिसधणिय परमाणुणं तत्थुवलंभादो ।...पांडभरग-पढमसमयप्पह्र डिजाव अंतो मुहूत्तका लो गरो ताव अणुभागखंड्य-घादाभावादो। ≈प्रश्त-च्रॅंकि उत्कृष्ट अनुभागको बाँधनेवाला जीव निरम्यसे उत्कृष्ट स्थितिको ही बाँधता है, क्योंकि उत्कृष्ट संक्लेशके बिना उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध नहीं होता; अतएव ऐसी स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभागकी विवक्षामें अनुत्कृष्ट स्थितिकी सम्भावना कैसे हो सकती है। उत्तर – यह कोई दोष नहीं है, क्यों कि उत्कृष्ट अनुभागके साथ उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर प्रतिभान हुए जीवके अधः-स्थितिके गलनेसे उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय हीन आदि स्थिति विकल्प पाये जाते हैं। और अधास्थितिके गलनेसे अनुभागका धात कुल नहीं होता है. क्यों कि, समान धनवाले परमाण वहाँ पाये-जाते हैं। ... प्रतिभान होनेके प्रथम समयसे लेकर जब तक अन्तर्मृहर्त काल नहीं अति जाता है तब तक अनुभाग काण्डक धात सम्भव नहीं है।

२. विग्रह गतिमें नारकी संज्ञीका भुजगार स्थितिबन्ध कैसे

क.पा.४/३-२२/९५१/२०/७ संकिलेसनखएण निया सिव्यसमए कथं सिंग टि्ट्डि बंधि । य संकिलेसेण निया सिंग चियसमए कथं सिस्स्प टि्ट्डि बंधि । य संकिलेसेण निया सिंग चियसमि क्यों मिस्स्प टि्ट्डि बंधि । य से किलेसेण निया सिंग चियसमें मिस्स्प टि्ट्डि बंधि च हिर उन मिस्से कह (नरक गतिको प्राप्त करने निता) जीव संझीकी (भुजगार) स्थितिको कैसे बाँधिता है ? उत्तर - क्यों कि संक्लेशके निना संझी पंचेन्द्रिय जातिके निमित्तसे उसके स्थितिकनध्में वृद्धि पायी जाती है ।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

६. स्थितिबन्ध प्ररूपणा---

१. मुळोत्तर प्रकृतियोंकी जघन्योरकुष्ट भावाधा, व स्थिति तथा उनका स्वामित्व---(त. मू./=/१४-३०), (मू. आ./१२३७-१२३६), (पं. मं./मा./४/१६६-४४०),(पं. मं./सं./४/ (मो. क./१२५८-१३३, १३६-१४०, १२६-१३२, १४०-१४१), (मो. क./जो. म./२६२/-(4. 6/846-882), (4. 82/880-880), (4. 4. 4. 3/88/80), संकेत- * - पन्य/असं, से हीन। (शतक/५४-६४), 488/3), (त. सा./५/४३-४६) 188-340).

				र साम्पराय		न्द्रिय प.					के किंद्र, प				म सुपक			म्.आ.)		मेन्द्रि, प्	•		•		
	स्वामित्व	िभनर्ग		अनिवृत्तिकरण कादर साम्पराय	•	सर्वविशुद्ध का, एकेन्द्रिय प	×	×		•	सर्व विशुद्ध मा. एक निष्ट, प.		:	;	अनिवृत्ति करण सपक	\$;	(सृक्ष्म साम्पराय मृ. आ.)		सर्व विशुद्ध वा, एकेन्द्रि, प्	ş	:	.	r I	: 5
		<u> ιτ\. Ικ έτ</u> . έ	 	38	-,-	30 W.	:	-			:		:	ŧ	ارا الله الله	*	F	-		30	÷		;	:	<i>*</i>
अधन्य		4, t/g.				ន្ទ					رو در		£	\$	£			i)		४६४ ४३४	-	፡	£	\$	F
19		स्यिति		अन्तर्भृहत	,	१/७ सा.* १९५० ४३४	.	<u>.</u>			%/७ सा.		F	\$	२ मास	१ मास	१ पक्ष	अन्तर्मृहत्		२/७सा	:	:	<i>;</i>	£	F
	माल	खानाधा		अन्त्रमृहत्	;	.		:			अन्तर्भृष्ट्त		2	;	£	=	;	:		;	ī	£	ī	÷	2
		गोमट्टसार मूलाचार													ग्ते/१३०		*		-		-				
	<u> </u>	4. t/1.				Ψ.V	•• 10	*					Ξ	£	ה ה	÷	-	=		<i>‱</i>	:	*	F	F	-
	स्वामित्र	क्रिवर्ण		(मिथीव दे स्थिति/४/३)		चारों गतिमें उ.व म, संब्लेश	ः सुन्य			\$	चारों गतिके उत्तम मध्यम	संबद्धेश	=	÷	s	£	£	£		:	ŧ	;	£	r	ŧ
p/		गुज स्थान		~				:			=		:	-	;	<u>-</u> -		Ξ.			±	•	\$	f	<u> </u>
उरकृष्ट	\\	111, 111, is. i		20		<u>-</u>				<u>_</u>					\$	=		<u> </u>		=	<i></i>	<u>.</u>	_ - _	<u>.</u>	*
	1	स्यिति	का.का.सा,	စိ				<u>.</u>			<i>‡</i>			\$	£	*	£	<i>.</i>		°.	°	8	:	· t	
	कस्ति	आनाथा	सहस्र वर्ष	9		;	.	;		%	;		÷	\$; 	\$;	;		۵	~	~		:	
	} 	ष. १२ / षू.					# df ₹			ल सा २२≈/२७६			; ,	;	ŧ	Ŧ	<u>.</u>	:		880			;		2
		·h/) 'k			1	9			न न		an.			F	<u> </u>	Ł	*	*		1Y **	F	er Cr	÷		;
	प्रकृति		मोहनीय –	क्ष	स् र्शनम्।हनीय	मिश्यात्म प्र.	स्त्यक्ष प्र.	सम्बद्ध, मि.	चारित्र मोहनीय-	थ भ	अन. चतु,		क्षत्र. चतुः	प्रत्या, चतु,	सं. ऋोध	सं, मान	सं. माया	सं, लोभ	नोकषाय –	हास्य	रति	अ र्सत	याोक	भय	નુ મુપ્સ!
<u> </u>	i c		38			•	~	67			<u>?</u> .		ħ	8	m'	20	*	w		~	~	(a)-	20	-X	•

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	ner	विनरण	सर्व विश्वद्ध मा, एकेन्द्रिय प,	अनिवृत्तिकरण क्षपक	सर्व विशुद्ध ला. एकेन्द्रिय प्		रुष्य तिर्मञ्ज	मि. संजी पेचें, ति. संक्लेश	परिणत या सर्विषयुद्ध संझी	-	कभेभूमिया मनुष्यंव तियंव संस्तेश यक्त	9 #	ो तियाँच	सर्वमिशुद्ध अरस्त्री तिर्यंच या	सन्बर्धिक सहा पयाप्त				संझी पंचे प.
	स्वामित्व						कर्म भूमिज मनुष्य हिर्यञ्च	मि. सज़ी पंचे	परिणत या र			<u> </u>	संज्ञी व असंज्ञी दियँच	_	- जिल के के के		<u>.</u>		संनेशयुक्त असंझी
ਕ		<u>т.ү.ткј. њ.</u> г	११३ ४३४	30 60.	४६५ ४३४		% % 5°	. .			30 UP 20	_ \$	20 50	82					% % % % % %
जधन्य	-	'b/) 'b						- P.					- <u>**</u>						
		िस्थिति		n 10 10	३/७ सा.*		अन्त्रमृह्म	र ज्यूठठ वर्ष			क्षुद्रभव्	*	१०,००० वर्ष ११३४			· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	त म	ر ا	२/७ सा.*
	काल	आनाधः	अन्तर्मे हत		· 		£	ŧ	_		.								<i></i>
		गोम्मटसार मृलाचार		मो/१४०			;	:			\$	\$	£				:	:	
	<u> </u>	ď. €/ą.	22	्रव	33			47 47			**************************************	\$:	:					22
	स्यामित्व	लिवरण	चारों गतिके उत्तम मध्यम संक्षेश	5	•	,	ŗ.	मनुष्य व संझी प. पंचे.			÷	\$	प्रमन्त संयत						मनु. य ति. संक्षी पं. पंचे.
bo		ग्रेव स्थान	~	•	<u>:</u>		•~	•			*		س	· 			O-/	——-	<u></u>
वर्रकेह	1	<u>ır\.1R\.‡.</u> .Þ	28	•			30 84 84				<u> </u>		95%						% %
		स्थिति	को.को.सा. १५	°\$	8	.	m er				३ प्रथ		23 HI				8		8
	কাল	छानाधः	सहस्र वर्ष १५	•	er.		१/३ पु. को.				<i>:</i>	=		:			64		<u></u> -
		ष. १२/पृ.	8	<i>:</i>	÷		गोम्मरसार मुलाचार												% %
	<u> </u>	.g/; .₽	232	8 3	£ ₹			473.			W.	:	413 414 44	· -					65.
:	प्रकृति		ह्यो वेद	पुरुष वेद	नर्पंसक वेद	आयु -	भूष	नरकायु			तिमैचायु	मनुख्यायु	देव प	9		नाम –	व	, di	- - - - - - - - - - - - - - - - - - -
	læ*		9	IJ	w.	3		•			6*	a۲	20			(

प्र. १२/पू. आबाधा किया ४६२ १ ४६२ १ ४६३ १ ४६३ १ ४६३ १ ४६३ १ ४६३ १ ४६३ १ ४६३ १ ४६३ १ ४६३ १ ४६३ १ ४६३ १ ४६३ १ ४६३ १ ४६३ १ ४६३ १ ४६५ १ ४६० १ ४६० १ ४६० १ ४६० १ ४६० १ <tr< th=""><th>स्बामित्व</th><th></th><th></th><th>-</th><th></th><th></th></tr<>	स्बामित्व			-		
अवशाया स्थिति स. वर्ष स. वर्ष स. वर्ष स्थाप्त स्थाप्		ļ	क्षां	<u>-</u>		स्यामित्व
स. मुद्ध २ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १	वि वर्ष	हुं गोम्मरसार जंमुलाचार	थानाधा	feusta E.	<u>т. т. т. Б.</u> р	िनवरण
			<u></u>			
و و و و و و و و و و و و و و و و و و و	१ देव, नारकी	०३४	अन्तर्भहत	२/७ सा. 🤘	१६२४	सर्व विशुद्ध ना. एकेन्द्रिय, पर्याप्त
* & & ; ; & & ;	, वारों गतिके उसम मध्यम संन्सेश	<u> </u>	F	*	*	8 H H
د مهر د د د د د د د د د د د د د د د د د د د	., महु, ब दि. संझी पं, प्	%& &		\$	858 838	सर्व विशुद्ध असंज्ञी पंचीन्द्रथ
क्षेत्र : : द क्ष	", ईशान देव	o w	, :	<u></u>	183	समें विश्वाद्य मा. एकेन्द्रिय प
: ; w	" मनुः, दि. पं. पर्याप्त	·	:			£ = = = = = = = = = = = = = = = = = = =
; w w ;	;		=	5	- #	: :
e e :	£	<u>-</u>	÷	F		2
<i>8</i> ÷	., बारों गतिके उत्तम मध्यम संबर्धेश					
ş ÷						
ş ÷		-				
*	१ देव, नारकी	\$20	5		\$53	F
_	१ मनु. व दि. संज्ञी पं. प.	838	F	<u> </u>	858 833	सर्व बिशुद्ध असंझी पंचे,
४६१ अन्त- अन्तर्मेहृत ४२७	७ क्ष्रमत	११७ मो/१४०	अन्त्रमृहत् ख	अन्त को.को. १६७ ४३३	5 5 2 5 5	अपूर्वकरण क्षपकके १-७ भाग तक
क्षेत्र के कि	१ बारों गतिके उ. म. संन्लेश	ું કે ક	*	र्सान्द श्रुकसाः* र	हरू १३ ३	सर्व विद्युद्ध वा, एकेन्द्रिय प.
:	÷		;	<u> </u>	:	;

i					ַ לוּ 	उस्मि			 ¦			12	जहन्य			
H ể	प्रकृति	<u> </u>		काल			ļ	स्त्रामिख	<u> </u> 		भाव		<u>, , , , , </u>	1	स्वामित्व	
		A' €\A'	ध, १२/पृ.	थानाधा	स्यिति	ाग १११, कि. हे नाषत्र गणुर	Lilby 1-8	विवरण	.₹/₹.	गोमट्टसार. मुलाचार	आमाधा	स्मिति	4, E/y.	<u>тг.тг/ ѣ.г</u>	विषर्ण	
20	श्रंगोपांग —															
	औदारिक	65 45 45	પ્રકર	r	ç	20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 2		देब,नारकी	888		अन्तर्मृहत	२/७ सा.*	888233	38.55 58 58.55 58 58 58 58 58 58 58 58 58 58 58 58 5	सर्वविशुद्ध मा एकेन्द्रि, प्	
	दे क्रियक	•	<u>.</u>	F	;			मनु. व ति, संद्यी पं. प.	833	•	\$:	हरू हु <u>र</u>	26.	सर्व विशुद्ध असंज्ञी पंचे,	
	आहारक	2860 *	१७४ गो. मु. जा.	अन्त.	अन्तर्मृहत	2000		अप्रमत	933		ŧ	अन्तः को.को. ११७४३३ सागर	2	30 63.	अपूर्व करण श्रयक्के १-७ भाग तक	
34	निर्माण	m w o	४६४	r	8.	£ 33	<u>م</u>	षारों गतिके उ, म, संबद्येश	es.		2	३/७ सा.*	858 533	38.88	स्वैषिशुद्ध वादेर एकेन्द्रि, प.	
445	बन्धन		1	ı	ı	1	1	l	kē-	कारीरवत	1	l	1	l	i	 -
9	संघात		ı	l	1	1	<u> </u>	ı	₩.	क्षरीरवद 		1	J	1	l	
v	संस्थान	····		•										<u></u>		
	समचतुरस	** **	e 3/2	s.	\$	<i>F</i>	-	=	êz.		अन्तर्भृहत	२∫७ सा.*	85 SS SS SS SS SS SS SS SS SS SS SS SS SS	30 W.	सर्व विशुद्ध ना, एके न्द्रिय, प,	
	न्यग्रोध परि.	2	87° 40' 20	g- 5 g√	8. (s.	-		F	:		£	.	*	=	t	
	स्वाह्नि	2	£3.29	ar 5	≫ •~	-	<u> </u>	ř.			£	\$	÷	<u> </u>	.	
	न्त्र हो हो	392	:	พเร	*\r\ &*	-		:	<u>.</u>		=	:	ş		\$	
	मामन	3	2	مه ماعر -	ñ.		;	F	<u> </u>		;		*	£	÷	
	#60 #000	40. 63.	સ્ક્ર	ar.	જ	;		.	<u> </u>		.		£	=	:	
w	संहत्त -				_									_		
	बज्र ऋषभ्र नाः	(63	\$ 3°	D/*	°.		<u> </u>	=			;	:	\$:	;	
	वज्ञनाराच	200	F	مره مره	Š.	ž	<u>. </u>	*			ŧ	:	:	‡	;	
	नाराच	19 19	*	%	8	:	-	*	‡		;	<i>:</i>	;		•	
	_		•		-	-	-		.		~		` -	-		۱,

	1	, 														<u></u>				
	स्वामित्व	विवर्ण	सर्व विशुद्ध मा, एकेन्द्रिय प.	£	F	£	•	ŗ	#		संक्तेश युक्त असंज्ञी पंचे, प.	सर्व विशुद्ध ना. एके. प.	11 11 11	सर्व विशुद्ध असंश्री पंचे, प	" "वा. एकेन्द्रिय प्	** ** **	:	** ** **		: :
H .		JF 181, F. P	853	-	<u> </u>	7		*	:		888833		£	8 t 8 8 3 3	=	:	=		-	
अवस्य	ļ	# \$\d.		2		;		*	;		<u> </u>	82	:	<i>₩</i>	233		<u>.</u>		<u>.</u>	
	!	स्यिति	२/७ सा.*	\$	*	:		:	‡		३ ० सा.	:	.	:	:	\$		<i>-</i>		.
	काल	आमाधो	अन्तर्भृष्ट्रत	:	<u>,</u>	2	=	£	.		अन्तर्भृक्त	*	.	:	.	.	*	•		:
		गोमट्टसार म्बुलाचार													•					
		'£/à 'a	°2≥	Ŧ	£	:	Ę	ţ	£		22	ŵ	£	32	83	ŗ	F	F	<u> </u>	£
	स्वामित्व	विवर्ण	चारों गिष्ठिके छ, म, संक्लेश	5	देव,नारकी	चारों गतिके उ. म. संबंधेश	\$	ş	*		मनु. व ति, संझी पं. प	वेब,मारकी	चारों गतिके छ, म. संक्षेश	मनु, व ति, संझी पं, प्	चारों गतिके ड, म. संक्लेश	\$	7	ईशान देव	देव,मारको	वारों गतिके उ. म. संक्लेश
N		गुणस्थान	~~	<u> </u>		- F	:		<u> </u>			_ <u>\$</u>	<u> </u>	••	~	£	;	‡ ~	\$	=
24 के क		.IP.,IR\ <u>, 1</u> 5. Ч	\$0 tu.		*	30 01 01		. F			90°	<u> </u>	30 W.	% %	23.3	_ <u>÷</u>		30		% %
,		स्यित	413°	ñ	8	‡	£	;			જ	; 	*	2	85	ş	\$	ŗ	; 	*
	काल	खानाधा	ะ การ การ	کامز حامز	or_	F	*	ŧ	F		œ	;	ক ক্ৰাফ	~	ſ۲	ar .	;	;	£	:
		घ. १३/पृ.	हो . अ	દુર	25%	ŧ	£	:	‡		द्रश्र	;	के दे र	I	883	÷	ŧ	\$;	:
<u> </u>		E' (/4'	25	\$ \$	1	<i>.</i>	F	*			Wr ?	2	مر بېر آز	₩ ₩	4	e. 2.	ż	; ·	:	
	प्रकृति		अर्थनाराच	कीसित	असंप्राप्त स्	स्पर्श (बाठों)	रस (पाचौ)	गन्ध (होनों)	वर्ण (वर्षियो)	बानुधूवर् —	नरक	हिं यँच	मनुष्य	स्	अगुरुतायु —	डपघात	पर भात	आत्प	डबोत	उच्छ गास
	l∉.					ေ	2	8	€	33					<i></i> ¥	an.	9	Ş	w.	ê.

				`									-				•		
				सर्विशुद्ध मा, एकेन्द्रिय प	ŧ	=	÷	£	‡	*	ŧ	t		;	\$	ξ	*	ŝ	ŧ
]	विवरण		, एके हि	£	ŧ	5 '	=	z	÷	ŧ	\$	\$:	:	ŧ	=	2	ş
	स्वामित्व			जी स्थ	:	I	=	£	=	£	‡	ŧ	=	•	ī	£	2	2	=
				र्विक्		-		:	.		<i>F</i>	‡		:	:	•	=		*
		d, et ./st.m.		% % ₩	- : - :			<u> </u>		- -	;	<u> </u>		<u> </u>	<i>‡</i>	<u>.</u>	*		<u> </u>
अव न्य	} _	'À/à 'k		888 838	2	5	<u> </u>	Ξ.	*	÷	z	7	£	ŧ	;	\$	٤.	7	*
15 1		स्थिति		२० सा.	F	ž	;	;	F	۶	ŧ	:	÷	:	\$	£	*	३/७ सा.*	· .
	काल	आनाधा		अन्तर्भहत	;		£	ŧ	£	F	:	.	ī	;	*	\$;	ş	<u>.</u>
		गोम्मटसार मूलाचार																***	,
		'h/) 'h		33	2	£	F		F		<u>۽</u>	F	-	<u> </u>	:	ŧ.	ŧ	-	5
	स्वामित्व	िवंबरण		चारों गतिके उ.म. संक्लेश			मनु. व ति, संजी पं. प	मारी गतिके उ.म. संक्लेश	ईयान देव	मारों गतिके उ. म. संक्लेश	£	ŗ	*	£	£	मित्रु, य संजीति. प्	चारों गतिके उ. म. संक्लेश	Ş.	ममु. व ति. संजी पंचे. प्
بر دو		मेधस्याम		<u>**</u>	-	*	927	<u> </u>	•~	:	:			_ <u>.</u>	<u> </u>	• <u>*</u>	<u>~</u>	:	<u> </u>
उत्कृष्ट		.11112\. 15 .1		70 20			90°	≫ 5.	\$0 \$0	0° 0°		-	<u>.</u>		*	\$0 67*	% %		₩ 20
 -		स्थिति	-	\$	e-	:	ñ	8	*	<u>.</u>	န	~	ê.	%	8	ñ.	8		<u>~</u>
	भाव	अमित		•-	œ	ţ	ट ब्र ~	ts.	‡	6 ~	œ	•~	er	s	er	کام س ہ	ar	\$)0[5 0~
		घ, १२/पृ,		50 50 80	દક્ક	\$	883	838	=	\$\$ \$\$	8 8 8	30 80 80	કે જે	% %	30 20	# 3 %	883	:	£ 20 20
		'6/3 'h		***	00. 40.0-	:	2	<u> </u>		**************************************	W.	arc. Lv.	# P		₩.	89	**	27. 11.	603
	प्रकृति		विहायोगति—	प्रश्रस्त	अप्रशस्त	प्रस्येक	साधारम	1	स्थाबर	मुभग	दुभग	सस्वर	दुःस्बर्	धुम	बहुम	सुस्म	नादर	पर्याप्त	अष्याप्त
	kć	t	*			er.	60.	20 00	₹	W.	2	X	w	0	67	ar m	44)+. U.p.,	30	ar ar

<u> </u>	1	1													,			<u> </u>
	स्द्रामित्व ~	मिनरण		सर्विशुद्ध वा एके. प.	5	:	2	सू. सा. क्षषकका अन्तिम समय	सर्व विशुद्ध ना. एके. प.	अपू. श्रुषकका १-ड भाग तक		:	सू, सा, क्षपकका अन्तिम समय	सर्व विशुद्ध ना, एके, प.		सु. सा. क्ष्यकका अन्तिमसमय	;	
जंधन्य		<u>। मि. जि. मि</u>		20			<u> </u>	E	\$0 \$0	es.			33	- 232		\$5 \$3 \$3	:	····
हें		·6/5 ·B		888	:			££8 733	श्रदेश १ ३३	<u> </u>			१ १ ४३३	१६० ४३%			\$23	
	h-	स्यिति		२/७ सा.*	:	£	£	त सुद्धत	3/6 सा.*	अन्त्र कोको, ११७४३३ सागर		८ सुद्धत		२/७ सा.*		अन्तर्मृङ्गत	<i>f</i>	
	काल	आमाधा		अन्तर्मृहत	ŧ	1,	*	7		;		*	;			*•	; 	
	<u> </u>	.ξ/ą. μ		23€		-		±2.	°	9. 9.			800 R	°3≥			52	
	स्वामित्व	निषर्ण		चारों गतिके उत्तम म. संश्लेश	÷	5	F	£	2	अविरत्त सम्यन्त्रष्टि	**	भारी गतिके छ, म. संबिध	=	£		r.	:	
₂₀		गुण स्थान		<u>~</u>		<u> </u>			-	7 0	·	~	•		·		\$	
उरकृष्ट		,10,11\;	.'	30 81 61	<u> </u>	5				858		% %				<u>.</u>	.	
	-	स्थिति	को. को, सा.	\$	ક	\$ <u></u>	ů,	2	8	अन्तर्भहत		0	<u>\$</u>	e 	,	0	by.	
	काल	अन्धा	सहस्र वर्ष	~	~	•	~	۵.۰	~	त्युं ल		es.	•~	or 		er	ør	होन
		घ, १२/पृ.		50 60/ 50/	8838	£3,8	c 32	\$5.3°	કેર્જ	में १८१०			93% 8	=		20 n n		* पस्यके असं. से हीन
		A' €\Ã*		65. (5.	40. (U.		ØY 4ur o√	3	er w	39	-		(* '&'	47. 61.	-		\$86	- 10 5 . *
	क्रकृति			स्थिर	अस्थिर	थादेय	थनादेय	यशःकीर्ति	अ यशःकीर्ति	तीर्थकरत्व	गोंत्र –	क	त्रम्	नीच	अन्तराय —	व	प देव हैं	H H
_	l s			typ.	ar a	n)	m	သိ	20	20	9	·	~	æ	ü			

२. इन्द्रिय मार्गणाकी अपेक्षा प्रक्रुतियोंका उ. ज. स्थितिकी सारणी---(रा. बा./८/१४-२०); (म. ब. २/२४/१७-२१); (घ. ६/११६)।

क. पकृति प	1	ı	
महाति प्रकेशियम सहित्य प्रकार सार्थ प्रकृष्ठ प्रकार सहित्य प्रकृष्ठ प्रकार प्रकृष्ठ प्रकार सहित्य प्रकार सार्थ सार्य सार्थ सार्य सार्थ सार्य सार्थ सार्थ सार्थ सार्थ सार्थ सार्थ सार्य सार्य सार्थ सार्थ सार्थ सार्य सार्य सार्थ सार्य सार्थ सार्य सार्य सार्य सार्य सार्थ स	िचेन्टिय	अध÷य	등 - -
स्कृति (क्षेप्रेट्स समित होतिय ने स्वित्य ने स्वित्य ने स्वित्य ने स्वित्य ने स्वित्य ने स्वित्य ने स्वित्य ने स्वित्य ने स्वित्य ने स्वित्य ने स्वित्य ने स्वित्य ने स्वित्य ने स्वित्य ने स्वित्य ने स्वित्य ने स्वित्य ने स्वित्य ने स्व	संझी प	विक्रम	स्ताम् ५० को. को. को. को. को. को. को. को. को. को.
सकृति एकेह्र बच्च्य उरकृष्ट जच्च्य उरकृष्ट जच्च्य उरकृष्ट जच्च्य उरकृष्ट जच्च्य उरकृष्ट जच्च्य उरकृष्ट जच्च्य उरकृष्ट जच्च्य उरकृष्ट जच्च्य उरकृष्ट जच्च्य उरकृष्ट जच्च्य उरकृष्ट उरकृष्ट उरकृष्ट	पं <i>चे निद्रय</i>	ন্ধন্	१०००-पक्य/असं. १०००-पक्य/असं. १०००-पक्य/असं. १००० १००० १००० १००० १००० १००० १०००
सकृति स्किन्यिय द्वीरिय्य स्वितियम् सार्गत सागर सागर सागर सागर सागर सागर सागर सागर	असंजी	36. 30.	\$000 \$ \$000 \$ \$000 \$ \$ \$000 \$ \$ \$ \$ \$ \$
कहात पंकित्रिय व्रोक्किय व्रोक्किय व्रोक्किय जरकृष्ट जप्कर जपक्ष जपक्ष जपक्ष जपक्ष जपक्ष जपक्ष जपक्ष जपका जपका जा <	रिन्दिय	जिष्टस	
मकृति एकेन्द्रिय ब्रोन्सिय ब्रोन्सिय विद्युद्ध अधन्म दरकृष्ट अधन्म दरकृष्ट अधन्म दरकृष्ट अधन्म दरकृष्ट अधन्म दरकृष्ट अधन्म दरकृष्ट अधन्म दर्भ स्थान स	चंद्र	उत्कृष्ट	\$000 \$000 \$ \$000 \$ \$000 \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$
ब्राह्मित प्रकेटिंडम डोस्विय नी स्वाप्त मागर सागर सागर सागर सागर सागर सागर सागर स	म् इय	जबन्य	
मकृति एकेन्द्रिय उरकृष्ट मार्गर सागर हानावरणीय १ १-पच्याअसं. १५ १८ वि चि चि चि चि चि चि चि चि चि चि चि चि चि	भी	द्वक्छ	सागर १५०/७ १००/७ १००/७ १६०/७
प्रकृति प्रकृतिय उरकृष्ट अवन्य उरकृष्ट सागर सागर सागर हानावरणीय १ १-परुय/असं. १५ वर्षन्तिय अर्थ केदनीय १८० वर्षन्तिय ११ १-परुय/असं. १६ वर्षन्तिय ११ १-परुय/असं. १६०।० वर्षम् अर्थ १८०।० वर्षम्य १८० वर्षम् अर्थ १८०।० वर्षम् अर्थ १८० वर्षम् अर्थ १८० वर्षम् अर्थ १८० वर्षम् अर्थ १८० वर्षम् अर्थ १८० वर्षम् अर्थ १८० वर्षम् अर्थ १८० वर्षम् ४०० वर्षम् ४०० वर्षम् ४०० वर्षम् ४०० वर्षम् ४०० वर्षम् ४०० वर्षम् ४०० वर्षम् ४०० वर्षम् ४०० वर्षम् ४०० वर्षम् ४०० वर्षम् ४०० वर्षम् ४०० वर्षम् ४०० वर्षम् ४०० वर्षम् ४०० वर्षम् ४०	ोन्दिय	जद्गन्य	सागर २५-पक्य/असं. ७ -नक्य/असं. १०० ६० -, । । । ६० -, । । । ६० -, । । ।
प्रकृति	`hts	डक्छ	साम समाम रहे हैं है है है है है है है है है है है है है
प्रकृति	एकेन्द्रिय	जवन्य	सागर् सागर् क्रिक्य/असं क्रिक्य/असं क्रिक्य/असं क्रिक्य/असं
		बुक्केड	IN
the or or mos some of the	प्रकृति		ह्यानावरणीय दर्शनावरणीय वेदनीय इर्शन मोहनीय क्षायु नाम आञ्च अन्तराय
	H C		~ ~ ~ ~ » · · ·

इ. उत्कृष्ट व जवन्य स्थिति, प्रदेश व अनुभागके बन्धकोंकी प्ररूपणा—

- १. सारणीमें प्रयुक्त संकेतोंका अर्थ
- मारणान्तिक समुद्धात रहित सप्तम पृथियो की ६०० धनुष अवगाहना-बाला अन्तिम समयवर्ती गुणित कर्माशिक नारकी।
- २. सप्तम पृथिवोके प्रति मारणान्तिक समुद्धात गत महामस्स्य।
- ३. सूक्ष्म साम्परायके अन्तिम समय तथा आगेके सर्वस्थान।
- द्विचरम वा त्रिचरम समयके पहले अन्तर्मुहूर्त काल तक स्थित सप्तम पृथिवीका मिध्यादृष्टि नारको।
- लोकपूर्ण समुद्धात गत केवसी ।
- पूर्वकोटिके त्रिभाग प्रमाण आयुकी आबाधा करके सप्तम नरककी आयु बाँधनेवाला महामरस्य ।
- उत्कृष्ट मनुष्यायु सहित अयु बन्धके प्रथम समय गत प्रमत्त संयत /७-११ गुणस्थान. मनुष्य यदि पूर्व कोटिके त्रिभागमें देवायु-

को वाँधे।

864

- ८. त्रिसमयवर्ती आहारक व तद्भवस्थ होनेके तृतीय समयमें वर्तमान जघन्य योगवाला सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्त जीव।
- क्षित कर्मीशिक क्षीणकषायी १२वें गुणस्थानके अन्तिम समयवर्ती संयत ।
- १०. चरम समयवर्ती क्षपित कर्माशिक अयोग केवली।
- ११, चरम समयवर्ती सामान्य कर्माशिक अयोग केवली ।
- १२. असाता वेदनीयके उदय सहित क्षपक श्रेणीपर चढ़ा हुआ अन्तिम समधवती अयोग केवली।
- १३, संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक, ५०० धनुष अवगाहनावाला यदि तिर्यंच आयु वाँधे, नारकी जीव तेतीस सागरके भीतर असं-गुणहानियाँ-को गलाकर दीपशिखाकारसे स्थित । (घ. १२/४६२/१७)।
- १४. तिर्यंचायु वाँधनेवाला अपर्याप्त ।
- १६- क्षिपित कर्मीशिक सर्विविशुद्ध सुक्ष्म निगोद त्रि चरमसमय स्थित।
- १६. नादर तेज व नायुकायिक पर्याप्त ।

ध. १२/४, २, १३, ७/१, सं.

प्रकृति	प्रदेः	द्रवय श न न्ध		बन्धकं ज	क्षेत्र विकी अ	वगाहुना	अस्	काल धकी सि	4ति —		भाव अनुभाग	
	प्रमाण	ज _.	ਰ,	प्रमाण	ं ज ़	ਭ.	प्रमाण	জ,	ज,	प्रमाण	ज,] उ
ज्ञानावरणी	366-88€	3	ę	30€	۷	२	3 <20	8	!	938	8	8
दर्शनावरणी	३६५	1,	,,	384	9 7	! } *ን	\$5.	17	,,,	३६५	19	,,
वेदनीय	३१४-४४६	१०	,,	७३इ	**	, k	४०१	११	,,	४०२	१२	ষ
मोहनीय	इंहर	ξ	*	३६५	۷	२	¥8¥	Ę	R	₹8	3	8
अ !यु	४०५	23	Ę	४०५	11	4	४०६	१०	9	४११	१ ४	ঙ
नाम	४०४	११	१	808	**	٠,,	યુવ્ય	११	१	૪૦૪	१६	. ३
गोत्र	४०४	1,	,,	४०४	79	1,	४०४	,1	**	४०४	१६	,,
अन्तराय	384	3	٠,,	₹84	17	1 2 ·	384	3	,,,	३६५	Ę	8

४. अन्य प्ररूपणाओं सम्बन्धी सूची — $(\mu_{r} \neq 1/2, \neq 1/2, \frac{\$ \neq 1}{3 \cdot 4})$

		मूल		মিল-মিল ব	होंकी अपेक्षा प्रमाण	
新.	प्रकृति	वा उत्तर	विषय	ज. च,स्थिति	भुजगारादि पद	संख्यात भागआदि वृद्धिः
१	अष्ट कर्म	मूल	सन्निकर्ष	२/ १२६-१ ३४		
			भंग विचय	\$\ \frac{-20}{638-680}	२ / १६७-१ ६	₹ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \ \
		डत्तर	सन्निकर्ष ,	३/ <mark>१-१४१ -</mark> १ <mark>-१०२ -</mark>		
!			भंगविचय	३/ २०२-२०४	\$3\xi^2\xi^2\xi^2\xi^2\xi^2\xi^2\xi^2\xi^2	\$\\\ 888-888 \\\ \\ \\ \\ \\ \\ \\ \\ \\ \\ \\ \\ \\
नोट—	। -साता असाताके द्वि त्रि च	। द्वि. स्थार्न	ोय अनुभाग बन्धक जीवं	। १की अपेक्षाज. उ. स्थिति	। अन्धका स्वामित्त्र व उनः	ा का अरुपबहुत्व

—(घ. ११/३१६-३३२)

स्थितिकरण—१, स्थितिकरण अंगका सक्षण

१. निश्चय

- स. सा./मू./२३४ जम्मगां गन्छंतं सगं पि मग्गे ठवेदि जो चेदा। सो ठिदिकरणाजुत्तो सम्मादिट्ठी मुणेयव्यो। जो चेतियता जन्मार्गमें जाते हुए अपने आत्माको भी मार्गमें स्थापित करता है वह स्थिति-करण युक्त सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।
- रा. बा./६/२४/१/६२६/१४ कवायोदयादिषु धर्मपरिभ्रंशकारणेषु उपस्थि-तेष्वातमनो धर्माप्रच्यवनं परिपालनं स्थितिकरणस् । - कवायोदय आदिसे धर्म भ्रष्ट होनेके कारण उपस्थित होनेपर भी अपने धर्मसे परिचयत नहीं होना, उसका वरावर पालन करना स्थितिकरण है।
- पु. सि. ज./२८ कामकोधमदादिषु चलियतुमुदितेषु वर्श्यनो न्यायात् ।
 श्रुतमारमनः परस्य च युक्त्या स्थितिकरणमि कार्यम् ।२८। = काम,
 क्रोध, मद, लोभादिक भावोंके होनेपर न्याय मार्गसे च्युत करनेको
 प्रगट होते हुए अपने आत्माको---जिस किस प्रकार धर्ममें स्थित करना
 भी कर्तव्य है। (पं. ध./ज./७६४)
- का. था./मू./४२० धम्मादो चलमाणं जो अण्णं संठवेदि धम्मम्मि । अप्पाणं पि मुदिहयदि ठिदिकरणं होदि तस्सेव ।४२०। — जो धर्मसे चलायमान---अपनेको धर्ममें इढ करता है उसीके स्थितिकरण गुण होता है ।
- द्र. सं./टी/४१/१७६/७ निश्चयेन पुनस्तेनैव व्यवहारेण स्थितिकरणगुणेन धर्मदृढत्वे जाते सित्र-रागादिनिकण्पजालत्यागेन निजपरमारम्-स्वभावभावनोरपन्नपरमानन्दैकजक्षणमुखामृतरसास्वादेन तन्जय-तन्मयपरमसमरसीभावेन चित्तस्थिरीकरणमेव स्थितिकरणमिति । —व्यवहार स्थितिकरणगुणसे धर्ममें दृढता होनेपर...रागादि विकल्पों के स्याग द्वारा निज परमाश्म स्वभाव भावको भावनासे उत्पन्न परम आनन्द सुखामृत्वे आस्वाद रूप परमाश्मामें जीन अथवा परमाश्म स्वरूपमें समरसी भावसे चित्तका स्थिर करना, निश्चयसे स्थितिकरण है।

२. व्यवहार

- मू. आ./२६२ दंसणचरणुवभट्ठे जीवे दट्ठूण धन्मबुद्धीए । हिदिनिदम-वयूहिय ते खिट्ट तत्तो णियत्ते । १६६२। — सन्यरदर्शन झानचारित्रसे भ्रष्ट हुए जीवोंको देख धर्म बुद्धिकर मुखके निमित्त हितमित वचनोंसे उनके दोषोंको दूर करके धर्ममें दृढ करता है वह शुद्धसम्यवस्वी स्थितिकरण गुणवाला है।
- र. क. श्रा./१६ दर्शनाच्चरणाद्वापि चलता धर्मवत्सलेः। प्रत्यवस्थापनं प्राच्चैः स्थितिकरणमुच्यते ।१६। = सम्प्रग्दर्शन वा चारित्रसे डिगते हुए पुरुषको जो जसीमें स्थिर कर देना है सो विद्वानोंके द्वारा स्थिति । करण अंग कहा गया है।
- का. अ./मू./४२० धम्मादो चलमाणं जो अण्णं संठवेदि धम्मम्मि । · · ठिदि-करणं होदि तस्सेव ।४२०। = जो धर्मसे चलायमान अन्य जीव-को धर्ममें स्थिर करता है । · · · उसीके स्थितिकरण गुण होता है ।
- द्र, सं./टो./४१/१७६/३ चातुर्वर्णसङ्घरम मध्ये यदा कोऽपि दर्शनचारित्रमहोदयेन दर्शनं ज्ञानं चारित्रं वा परित्यवत्ं वाञ्छति तदागमाविरोधेन-यथाशक्त्या धर्मश्रवणेन वा अर्थेन वा सामर्थ्येन वा केनाप्युपायेन
 यद्भमें स्थिरत्वं क्रियते तह्व्यवहारेण स्थितिकरणमिति । —चार
 प्रकारके संधमेंसे यदि कोई दर्शन मोहनीयके उदयसे दर्शन-ज्ञानको
 या चारित्र मोहनीयके उदयसे चारित्रको छोड़नेकी इच्छा करे तो
 यथाशक्ति शास्त्रानुक्त धर्मोपदेशसे, धनसे या सामर्थ्यसे या अन्य
 किसी उपायसे उसको धर्ममें स्थिर कर देना, वह व्यवहारसे स्थितिकरण है।

पं. ध/उ./प०२ मुस्थितिकरणं नाम परेषां सदनुग्रहात । भ्रष्टानां स्वप-दात्तत्र स्थापनं तत्पदे पुनः ।प०२। ध्यस्य व पर स्थितिकरणोंमें अपने पदसे भ्रष्ट हुए अन्य जीवोंको जो उत्तम दया भावसे उनके पदमें फिरसे स्थापित करना है वह परिस्थितिकरण हैं।८०२।

२. स्वधमेवाधक परका स्थितिकरण करना योग्य नहीं

पं. ध./उ./५४ धर्मादेशोपदेशाभ्यां कर्तव्योऽनुग्रहः परे। नात्मवतं विहासास्तु तत्परः पररक्षणे । ५०२। = धर्मके आदेश वा उपदेशसे ही दूसरे जीवोपर अनुग्रह करना चाहिए। किन्तु अपने वतको छोड़कर दूसरोंके वतोंकी रक्षा नहीं करनी चाहिए। ६०२।

स्थितिकल्प--साधुके १० स्थितिकल्प । दे, साधु/२/३ ।

स्थितिकांडक घात--दे. अपकर्षण/४।

स्थितिबंधापसरण—दे. अपकर्षण/३।

स्थितिबंधोत्सरण—ते. उत्कर्षण/१।

स्थितिभोजन-साधुका एक मूलगुण-दे, साधु/२/२।

स्थितिसत्त्वापसरण - दे. अपकर्षण/३।

स्थिर---कुण्डल पर्वतस्थ अंक कूटका स्वामी देव-दे. लोक/१/१२ा

स्थिर-१. स्थिर व अस्थिर नामकर्मका लक्षण

- स. सि./८/११/३६२/१ स्थिरभावस्य निर्वर्तकं स्थिरनाम । तद्विपरीतम-स्थिरनाम । — स्थिर भावका निर्वर्तक कर्म स्थिर नामकर्म है, इससे विपरीत अस्थिर नामकर्म है ।
- रा. बा./-/११/३४-३६/१७६/२२ यदुरयात दुष्करोपवासादितपस्करणेऽपि
 अङ्गोपाङ्गानां स्थिरत्वं जायते तत् स्थिरनाम ।३४। यदुदयादीषदुपवासादिकरणात् स्ववपशीतोष्णादिसंबन्धाच्च अङ्गोपाङ्गानि कृशीभवन्ति तदस्थिरनाम । ∞िजसके उदयसे दुष्कर उपवास आदि तप
 करनेपर भी अंग-उपांग आदि स्थिर बने रहते हैं, कृश नहीं होते वह
 स्थिर नामकर्म है। तथा जिससे एक उपवाससे या साधारण शीत
 उष्ण आदिसे ही शरीरमें अस्थिरता आ जाय, कृश हो जाय वह
 अस्थिर नामकर्म है।
- ध. १३/५.५.१०१/३६४/१० जस्स कम्मस्सुद्रण रसादीणं सगसरूवेण केत्तियं पि कालमबद्ठाणं होदि तं थिरणामं । जस्स कम्मस्सुद्रण रसादीणसुवरिमधादुसरूवेण परिणामो होदि तमथिरणामं । जिस कमंके उदयसे रसादिक धातुओंका अपने रूपसे कितने ही कालतक अवस्थान होता है वह स्थिर नामकर्म है। जिस कमंके उदयसे रसादिकोंका आगेकी धातुओं स्वरूपसे परिणमन होता है वह अस्थिर नामकर्म है। (६.६/१,६-१,२९/६३/३); (गो. जी./जी.प्र./३३/२०/३)।

२. सप्त भातु रहित विग्रह गतिमें स्थिर नामकर्मका क्या कार्य है

- ध. ६/१.६-१, २-/६४/६ सत्तघाउविरहिदविग्गहगदीए वि थिराथिराण-मुदयदंसणादो गेदासि तस्य वाबारो ति णासंकणिऊजं, सजोगिकेविल-परघादस्सेव तत्य अञ्ज्ञसोदएण अवर्ठाणादो । = प्रश्न – सप्त धातुओंसे रहित विग्रहगितमें भी स्थिर और अस्थिर प्रकृतियोंका उदय देखा जाता है. इसलिए इनका वहाँ पर ज्यापार नहीं मानना चाहिए ! उत्तर – ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि सयोगकेवली भगवान्में परधात प्रकृतिके समान विग्रहगितमें उन प्रकृतियोंका अव्यक्त उदयरूपसे अवस्थान रहता है।
 - * स्थिर नामकर्मकी वन्ध उद्य सत्त्व प्ररूपणाएँ व तत्सम्बन्धी शंका समाधान—हे. वह वह नाम।

स्थूणा--- औदारिक शरीरमें स्थूणाओं काष्रमाण-दे. औदारिक १/७। स्थूल--दे. सृक्ष्म।

स्थूल मद्व — आचार्य भद्रवाहु प्रथम (पंचम श्रुतकेवली) के हिल्य थे। १२ वर्षीय दुभिक्षके अवसरपर आपने उनकी वातको अस्वीकार करके दक्षिणकी और विहार न किया और उन्जैनीमें ही रह गये। दुर्भिक्ष आनेपर उनके संघमें शिधिलाचार आया और वे 'अर्घ फालक' (दे. श्वेताम्बर) बन गये। भद्रवाहु स्वामीकी दक्षिणमें ही समाधि हो गयी, परन्तु दुर्भिक्षके समाप्त होनेपर उनके शिष्य विशाखा-चार्य आदि लौटकर पुनः उन्जैनीमें आये। उस समय आप (स्थूल भद्र) ने अपने संघको शिथिलाचार छोड़ पुनः शुद्धाचरण अपनानेको कहा। इसपर संघने रुष्ट होकर इन्हें जानसे मार दिया। ये एक व्यन्तर अनकर संघपर उपद्रव करने लगे। जिसे शान्त करनेके लिए संघने कुलदेवताके रूपमें इनको पूजा करनी प्रारम्भ कर दी। इनके अपर नाम स्थूलाचार्य व रामक्य भी थे। इस कथाके अनुसार इनका समय भद्रवाहु तृतीयसे लेकर विशाखाचार्यके कुछ काल पश्चाद तक वी. नि १३३-१६७ (ई. पू. ३६४-३६०) आता है।—दे. श्वेताम्बर ।

स्यूलाचार्य-अवर नाम स्थूलभद्र -दे. स्थूलभद्र ।

स्नातक--- १. स्नातक साधुका कक्षण

स्र-सि./१/४६/४६०/१९पश्लीणवातिकर्माणः केवलिनो द्विविधाः स्नातकाः।
— जिन्होंने चार घातिया कर्मोंका नाश कर दिया है, ऐसे दोनों
प्रकारके केवली स्नातक कहलाते हैं। (रा. चा./१/४६/१/६३६/३।);
(चा. सा./१०२/२)।

त, सा./-/२४ ततः शीणचतुष्कमित्राप्तोऽथारुयातसंयमघ् । बीजबन्धन-निर्मुक्तः स्नातकः । चारौं घातियाकमं नष्ट होते ही यथारुयात संयमकी प्राप्ति होती हैं। बीजके समान बन्धनका निर्मूत नाश होनेसे बन्धन रहित हुए योगी स्नातक कहाने सगते हैं।

* स्नातक साधु सम्बन्धी विषय—हे, साधु/१।

स्नान--अस्नान मूळगुणका ळक्षण

म्, आ./३१ ण्हाणादिवज्जणेण य विजित्तजन्तमंग्लसेदसर्व्यं । अण्हाणं घोरगुणं संजमदुगपालयं सुणिणो १३१। च्जलसे नहाना रूप स्नानादि क्रियाओं के छोड़ देनेसे जग्ज मन्त स्वेद रूप देहके मैलकर जिप्त हो गया है सब अंग जिसमें ऐसा अस्नान नामक महागुण साधुके होता है।

अन. घ./१/१८ न महाचारिणामथी विशेषादात्मदिशिनाम्। जलशुद्धवाथवा यावदीषं सापि मताईतैः। १८ । चन्नद्यचारी तथा विशेषकर आरम-दिशियोंको जो कि स्वयं पवित्र हैं उनके लिए स्नान किस प्रयोजन-का ! किन्तु अस्पर्श्य दोष होनेपर उसकी शृद्धिके लिए उसकी आवश्यकता है।

२. साधुके अस्नान गुण सम्बन्धी शंका समाधान

भ आ ./वि /१२/२२६-२२०/२० स्नानमनेकप्रकारं शिरोमात्रप्रक्षालनं, शिरो मुक्रवा अन्यस्य वा गात्रस्य, समस्तस्य वा । तत्र शीतोदकेन क्रियते स्थावराणां त्रसानां च बाधा माधूदिति । . . . जण्णोदकेन स्नाया-दिति चेत्र. तत्र त्रसस्थावरबाधावस्थितै व । . . . न चास्ति प्रयोजनं स्नानेन सप्तधातुम्यस्य देहस्य न शुचिता श्वया कर्तुं। ततो न शौचप्रयोजनं । न रोगापहृत्ये रोगपरीषहसहनाभावप्रसंगात । न हि भूषाये विराग-द्वात् । घृततैलादिभिरभ्यक्षनमपि न करोति प्रयोजनाभावादुक्तेन प्रकारेण घृतादिना क्षारेण स्पृष्टा भूम्यादिजन्तवो बाध्यन्ते । त्रसारच तत्रावलग्नाः । — स्नान अनेक प्रकार है — जलसे केवल मस्तक धोनाः अथवा मस्तक छोड़कर अन्य अवयवींको धोना अथवा समस्त अवयवींको धोनाः, परन्तु त्रसं और स्थावर जीवोंको बाधान होवे इसलिए मुनि श्रीतल जलसे स्नान नहीं करते हैं। ... प्रश्न-ठंडे जलसे स्नान नहीं करते तो गरम पानीसे क्यों नहीं करते हैं। उत्तर-नहीं, गरम जलसे स्नान करनेसे भी त्रस स्थावर जीवोंको नाधा होती ही है। ... मुनियोंको जलस्नानकी आवश्यकता ही नहीं है। क्योंकि, जल स्नानसे सप्त धातुमय देह पवित्र नहीं होता। इस बास्ते शृचिताके लिए स्नान करना भी योग्य नहीं है, रोग परिहारके लिए भी स्नानकी आवश्यकता नहीं है, यदि वे स्नान करेंगे तो रोग परीषद सहन करना व्यर्थ होगा। शरीर सौन्दर्य गुक्त होनेके लिए भी वे स्नान नहीं करते, क्योंकि वे वीतराग हैं। सुनि, धी, तैल इत्यादिकोंसे अभ्यंगस्नान भो कुछ प्रयोजन न होनेसे करते नहीं हैं। घृतादि क्षार पदार्थोंका स्पर्श होनेके भूम वगैरहमें गहने वाले जन्तुओं को पीड़ा होती है, भूमिपर चिपके हुए जीव इधर उधर होते है. गिरते हैं, तब उनको एक स्थानसे दूसरे स्थान पर जाते समय नाधा पहुँचती है।

३ स्नान के भेद

सा, ध./२/३४ पर फुटनोट— पादजानुकटिग्रीवाशिरः पर्यतसंत्रयं । स्नानं पश्चविधं इत्यं यथा दोषं शरीरिणा = स्नान पाँच प्रकारका मानना चाहिए — केवल पाँच धोना, धुटने तक घोना, कमर तक घोना, कण्ठ तक घोना और शिर तक स्नान करना

४. गृहस्थ व साधुकी स्नान विधि

सा. ध./२/३४ स्त्र्यारम्भसेवासं विलष्टः, स्नात्वा कण्ठमथाशिरः । स्वयं यजेताहरपादानस्नातोऽन्येन याजयेत् । म्ह्यी सेवन और खेती आदि करनेसे दूषित है मन जिसका ऐसा गृहस्य कण्ठ पर्यन्त अथवा शिर पर्यन्त स्नान कर अर्हन्त देवके चरणोंको पूजे और अस्नात व्यक्ति दूसरे स्नातं व्यक्ति पूजा करावे ।

सा. ध./२/३३,३४ पर फुटनोट—नित्यं स्नानं गृहस्थस्य देवार्चनपरिग्रहे । ब्रह्मचर्योपपञ्चस्य निवृत्तारम्भकर्मणः। यहातहा भवेरस्नानमन्त्यमन्यस्य तु द्वयम् । — जिन पूजा आदि करनेको गृहस्थका नित्यमभ्स्नान करना चाहिए। जो ब्रह्मचारो हैं, और जो खेती आदि आरम्भसे निवृत्त हैं उनको पाँचोंमेंसे इच्छानुसार स्नान कर लेना चाहिए। परन्तु गृहस्थोंको कण्ठ तक वा शिर तक दो ही स्नान करना चाहिए।

प. जलाशयमें डुवकी लगाकर स्नान करनेका निर्देश

सा. ध./२/३४ पर फुटनोट—वातातपादिसंस्पृष्टे भूरितोये जलाशयी।
अवगाह्याचरेन्स्नानमतोऽन्यद्वगालितं भजेत्। चिक्तः जलाशयमें
पानी बहुत हो और उसपरसे भारी पवनका भकोरा निकल गया हो
अथवा धूप पड़ रही हो तो उसमें डुबकी मारकर स्नान करना
चाहिए। यदि ऐसे जलाशय न मिर्लेतो छने हुए पानीसे स्नान
करना चाहिए।

* शूत्रसे छूनेपर साधुकी स्नान विधि । - हे, भिक्षा/३/३। ६. आतम स्नान ही यथार्थ स्नान है

द्र. सं./टी./३६/१०६/१२ विशुद्धारमनदीस्नानमेन परमशुचित्वकारणं न च लौ किकगङ्गादितीय स्नानादिकम्। आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा सत्यावणाहा शीलतटा दयोमिः। तन्नाभिषेकं कुरु पण्डुपुत्र न वारिणा शुद्धध्यति चान्तरात्माः - विशुद्ध आत्मा रूपी शुद्ध नदीमें स्नान करना ही परम पवित्रताका कारण है, लौ किक गंगा आदि तीथोंमें स्नानका करना शुचिका कारण नहीं है। संयम रूपी जलसे भरी, सत्य रूपी प्रवाह, शील रूप तट और दयामय तरङ्गोंकी घारक तो आत्मा रूपी नदी है।

स्नायु औदारिक शरीरमें हनकाप्रमाण - वें. औदारिक/१/७।

स्निम्ब स्. सि./६/३३/३०४/६ बाह्याभ्यन्तरकारणवद्यात् स्नेहप-र्यायावभवित् स्निह्यते स्मेति स्निग्धः ।...स्निग्धःवं चिक्कणगुण-रक्षणः पर्यायः । = बाह्य और आभ्यन्तर कारणसे जो स्नेह पर्याय उत्पन्न होती है उससे पुद्गाल स्निग्ध कहलाता है। ...स्निग्ध पुद्गालका धर्म स्निग्धाल है।

स्नेहातिचार—दे. अतिचार/३।

स्पर्धक कर्म स्कन्धमें उसके, अनुभागमें, जीवके कथाय व योगमें तथा इसी प्रकार अन्यत्र भी स्पर्धक संज्ञाका ग्रहण किया जाता है। किसी भी द्रव्यके प्रदेशों में अथवा उसकी शक्तिके अंशों में ज्ञ्ञन्यसे उत्कृष्ट पर्यन्त जो क्रिमक वृद्धि या हानि होती है उसीसे यह स्पर्धक उत्पन्न होते हैं। ज्ञ्चन्यसे उत्कृष्ट पर्यन्त समान अविभाग प्रतिच्छेदों के समूहसे एक वर्ग बनता है। (दे. वर्ग) समान अविभाग प्रतिच्छेद वाले वर्गों के समूहसे एक वर्गणा बनती है (दे. वर्गणा) इस प्रकार ज्ञ्चन्यसे लेकर उत्कृष्ट पर्यन्त एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद के अन्तरसे वर्गणाएँ प्राप्त होती हैं, इनके समूहको स्पर्धक कहते हैं। तहाँ भी विशेषता यह है कि जहाँ तक एक एक अविभाग प्रतिच्छेद के अन्तरसे वे प्राप्त होतो चली जायें तहाँ तक प्रथम स्पर्धक है। प्रथम स्पर्धक से दुगुने अविभाग प्रतिच्छेद प्राप्त होनेपर दितीय स्पर्धक और तृतीय आदि प्राप्त होनेपर तृतीय आदि स्पर्धक बनते हैं। इसीका विशेष क्रमसे स्पष्टीकरण यहाँ किया गया है।

१, स्पर्धक सामान्यका लक्षण

रा. वा /२/५/४/१०७/११ पङ्क्त्यः कृता यावदेकाविभागप्रतिरुखेदाधि-कलाभम् । तदलाभे अन्तरं भवति । एवमेतासां पड्कीनां विशेष-हीनानां क्रमवृद्धिक्रमहानियुक्तानां समुदयः स्पर्धकमित्युच्यते। सत उपरि द्वित्रिचतुःसंरुधेयासंरुथेयगुणरसा न सभ्यन्ते अनन्तगुणरसा एव । तत्रैकप्रदेशो जघन्यगुणः परिगृहीतः, तस्य चानुभागाविभाग-प्रतिच्छेदाः पूर्ववस्कृताः । एवं समगुणा वर्गाः समुदिता वर्गणा भवति । एकाविभागप्रतिच्छेदाधिकाः पूर्ववद्विरसीकृता वर्गा वर्गणाश्च भवन्ति यावदन्तरं भवति तावदेकं स्पर्धकं भवति । एवमनेन समेण विभागे क्रियम।णेऽभव्यानामनन्तगुणानि सिद्धानामनन्त्रभागप्रमाणानि स्पर्धकानि भवन्ति। -- (पहले दे. वर्ग व दर्गणा) इस तरह एक-एक अनिभाग प्रतिच्छोद आहाकर वर्ग और वर्गणा समृह रूप वर्गणाएँ तवतक बनानी चाहिए जब तक १५ अधिक अविभाग प्रतिच्छेद मिलता जाये। इन कम हानि और कम वृद्धि वाली वर्गणाओं के समुदायको स्पर्धक कहते हैं। इसके बाद दो तीन चार संख्यात और असंख्यात गुणअधिक अविभागप्रतिच्छेद नहीं मिलते किन्तु अनन्तगुण अधिक वाले ही मिलते हैं। फिर उनमें से पूर्वोक्त क्रमसे समगुण वाले वर्गीके समुदाय रूप वर्गणा बनानाचाहिए। इस तरह जहाँ तक ५९ - अधिक अविभाग प्रतिच्छेद कालाभ हो वहाँ तककी वर्गणाओं के समूहका दूसरा स्पर्धक वनता है। इसके आगे दो, तोन, चार संख्यात असंख्यात गुणअधिक अविभाग प्रतिच्छेद २ ही मिलते हैं।इस तरह सम-गुण्वाले वर्गों के समुदाय रूप वर्ग णाओं के अमूह रूप स्पधक एक उदय स्थानमें अभव्योंसे अनन्तगुणे तथा सिखोंके अनन्त भाग प्रमाण होते है। (घ. १२/४.२,७.२०४/१४६/६); (घ. १४/६.६.६०६/४६३/६); (गो. जो,/भाषा./५१/१४५/६); (गो. क./भाषा/२२१/३१२)

क. पा. १/४-२२/९१/०३-१/०४/२४४-३४६/१६ एवं दो अविभागपिड च्छेन्
दुत्तरितिणिण वातारि. एच. छ. सत्तादि अविभागपिड च्छेनुत्तरकमेण
अविद्विश्वणंतपरमाण् चेत्त्ण तदणुभागस्य पण्य च्छेन्ल्यं काञ्जण
अभविद्विएहिं अणंतागुणं सिद्धाणमणंतभागमेत्तवग्गणाओ उप्पाद्य
उविर उविर रचेदव्वाओ । एवमेत्तियाहि वग्गणाहि एगं फद्द्यं
होदि अविभागपिड च्छेदे हि कमवड्ढीए एगेगपंति पडुच्च अविद्वदतादो । उविरमपरमाण् अविभागपिड च्छेदसंखं पेनित्वद्रणं वमहाणीए
अभावेण विरुद्धाविभागपिड च्छेदसंखतादो वा ।६०३। पुणो प्रदमफद्द्यचरिमवग्गणाए एगवग्गाविभागपिड च्छेदेहिंतो स्गविभागपिड च्छेदेहिंतो एगविभागपिड च्छेदेशुत्तरपरमाणु णत्थि, किंत् सक्व-

जीवेहि अणंतगुणाविभागपिडन्छेरेहि अहिययरपरमाणु तत्थ चिरं-तणपुरुजे अतिथ । ते घेत्रुण पढमफद्मयउप्पाइदकमेण विदियफद्य-मुप्पाएयव्यं। एवं तदियादिकमेण अभवसिद्धिएहि अणंतगुणं सिद्धा-गमणंतभागमेताणि फह्याणि उप्पाएदव्याणि । एवमेत्तियफद्य-समृहेण सुहुमणिनोदजहण्णाणुभागट्ठाणं होदि । = (पहले देखो वर्ग व वर्गणा) इस प्रकार दो अविभाग प्रतिच्छेद अधिक तीन, चार, पाँच, छह और सात आदि अविभाग प्रतिच्छेद अधिक के क्रमसे अवस्थित अनन्त परमाणुओंको लेकर उनके अनुभागका बुद्धिके द्वारा छेदन करके अभव्य राशिसे अनन्तगुणी और सिद्ध राशिके अनन्तवें भाग प्रमाण वर्गणाओंको उत्पन्न करके उन्हें उत्पर उत्पर स्थापित करो। इस प्रकार इतनी वर्गणाओं का एक स्पर्धक होता है, वयों कि वहाँ अविभाग प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा एक एक पंक्तिके प्रति क्रमवृद्धि अवस्थित रूपसे पायी जाती है, अथवा ऊपरके परमाणुओं में अबि-भाग प्रतिच्छेदोंकी संख्याको देखते हुए वहाँ ऋम हानिका अभाव होनेसे इसके विरुद्ध अविभाग प्रतिच्छेदोंकी संख्या पायी जाती है। पुनः प्रथम स्पर्धकं अन्तिम वर्गणाके एक वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंसे एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक बाला परमाणु आगे नहीं है, किन्तु सब जीवोंसे अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेद अधिक वाले परमाणु उस चिरंतन परमाणु पुंजमें मौजूद हैं। उन्हें लेकर जिस क्रमसे प्रथम स्पर्धककी रचनाकी थी उसी क्रमसे दूसरा स्पर्धक उत्पन्न करना चाहिए। इसो प्रकार तीसरे आदि स्पर्धकों के क्रमसे अभव्य राशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागमात्र स्पर्धक उत्पन्न करने चाहिए। इस प्रकार इतने स्वर्धकसमूहसे सूक्ष्म निगोदिया जीवका जघन्य अनुभाग स्थान बनता है।

क.पा./५/४-२२/ ९५७४/३४५ पर विशेषार्थ — एक परमाणुमें रहनेवाले उन अविभाग प्रतिच्छेदोंको वर्ग कहते हैं अधित प्रत्येक परमाणु एक एक वर्ग है। उसमें पाये जाने वाले अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण संदृष्टि-के लिए पकरणना करना चाहिए। पुनः पुनः उन् परमाणुओं में से प्रथम परमाणुके समान अविभाग प्रतिच्छेद वाले दूसरे परमाणुको लो और पूर्वोक्त वर्गके दक्षिण भागमें उसकी स्थापना कर देनी चाहिए— । व्या ऐसा तब तक करना चाहिए जब तक जधन्य गुणवासे सब पर-माणु समाप्त न हों । ऐसा करने पर भी अभव्य राशिसे अनन्तगुणे और सिद्ध राशिके अनन्तवें भाग प्रमाण वर्ग प्राप्त होते हैं। उनका प्रमाण संदृष्टि रूपमें इस प्रकार है— ८८८८। द्रव्याधिक नयकी अपेक्षा इन सभी वर्गोंकी वर्गणा संज्ञा है, बयों कि वर्गोंके समूहको वर्गणा कहते हैं। तरपरचात् फिर एक परमाणु लो जिसमें एक अधिक अविभाग प्रतिच्छेद पाया जाता है उसका प्रमाण संदृष्टिमें १ है। इस कमसे उस परमाणुके समान अविभाग प्रतिच्छेदवाले जित्तने परमाणु पाये जार्ये. उनका प्रमाण इस प्रकार है— १६१। यह दूसरी वर्गणा है। इसको प्रथम वर्गणाके आगे स्थापित करना चाहिए। इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पाँचत्री आदि वर्गणाएँ, जो कि एक एक अधिक अविभाग प्रतिच्छेदको लिये हुए हैं उत्पन्न करनी चाहिए। इन वर्गणाओं का प्रमाण अभव्य राशिसे अनन्तगुणा और सिद्ध राशिके अनन्तर्वे भाग प्रमाण है। इन सत्र वर्गणाओंका एक जघन्य स्पर्धक होता **है,** क्योंकि परमाणुओं के समूहको स्पर्धक कहते हैं। इस प्रथम स्पर्धकको पृथक् स्थापित करके पूर्वोक्त परमाणु पुंजनेंसे एक परमाणुको लेकर बुद्धिके द्वारा उसका छेदन करनेपर द्वितीय स्पर्धककी प्रथम बर्गणाके प्रथम वर्ग उत्पन्न होता है। इस वर्गमें पाये जाने वाले अविभाग प्रतिन्छेदों-का प्रमाण संदृष्टि रूपसे १६ है। इस क्रमसे अभव्य राशिसे अनन्त गुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागमात्र समान अविभाग प्रतिच्छेद वाले परमाणुओं को लेकर उतने ही वर्ग उत्पन्न होते हैं। इन वर्गीका समु-दाय दूसरे स्वधंककी प्रथम वर्गणा कहलाता है, इस प्रथम वर्गणाको प्रथम स्पर्धकको अन्तिम वर्गणाके आगे अन्तरास देकर स्थापित करना चाहिए। इस क्रमसे वर्ग, वर्गणा और स्पर्धकको जानकर तब उनकी

उत्पत्ति करनी चाहिए जबतक पूर्वोक्त परमाणुओंका प्रमाण समाप्त नहीं होता है। इसाप्रकार स्पर्धकोंकी रचना करने पर अभव्यशाशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भाग प्रमाण स्पर्धक और बगणाएँ उत्पन्न होती हैं। इनमेंसे अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणा-के एक परमाणुमें जो अनुभाग पाया जाता है उसे ही जवन्य स्थान कहते हैं। इसकी संदृष्टि इस प्रकार है—

प्रथमस्प-	द्धि.स्प्-	तृ, स्प.	चतु-स्प,	पं. स्प.	ष,स्प,
۷	१ ६	२४	३२	Яo	84
3	१७	ર ક	\$3	પ્રદ્	38
१०	१=	२६	३ ४	४२	২ ০
११	38	২্৩	38	83	4१
	ک 3 90	८ १६ ६ १७ १० १=	८ १६ २४ ६ १७ २५ १० १= २६	८ १६ २४ ३२ ६ १७ २४ ३३ १० १= २६ ३४	८ १६ २४ ३२ ४० ६ १७ २४ ६३ ४१ १० १= २६ ३४ ४२

२. स्पर्धकके भेद--

रा.वा./२/६/३/१०६/३० द्विविधं स्पर्धकम्-देशधातिस्पर्धकं सर्वधाति-स्पर्धकं चेति । स्पर्धक दो प्रकारके होते हैं देशधाति स्पर्धक और सर्वधाति स्पर्धक। (इसके अतिरिक्त जयन्य स्पर्धक व द्वितीय स्पर्धक (गो.जी./भाषा/६९/१६६/६) पूर्वस्पर्धक तथा अपूर्व स्पर्धकका निर्देश आगममें यत्र तत्र पाया जाता है।)

३. देशघाति व सर्वघाति स्पर्धकका कक्षण

इ. सं/टो./३४/११/४ सर्वप्रकारेणारमगुणप्रच्छा दिकाः कर्म शक्तयः सर्व चातिस्पर्द्धकानि भण्यन्ते, विवक्षितै करेशेनारमगुणप्रच्छा दिकाः शक्तयो देशघातिस्पर्द्धकानि भण्यन्ते। ऋसर्व प्रकारसे आरमाके गुणोंको आच्छादन करनेवाली जो कर्मोंकी शक्तियाँ हैं उनको सर्व-धाति स्पर्द्धक कहते हैं। और विवक्षित एक देशसे जो आरमाके गुणोंका आच्छादन करनेवाली कर्मशक्तियाँ हैं वे देशचातिस्पर्द्धक कहलाती हैं।

४. पूर्व व अपूर्व स्पर्धकके लक्षण

क्ष. सा./भाषा./४६४/४४०/१६ संसार अवस्थामें वेशवाति व सर्वघाति प्रकृतियोंका जधन्यसे उत्कृष्ट पर्यन्त जो अनुभाग रहता है, उससे युक्त स्पर्केक पूर्वस्पर्धक कहलाते हैं।- जैसे मोहनीयमें सम्मक् प्रकृतिका अनुभाग केवल देशघाति होनेके कारण जवन्य लता भागसे दारु भागके असंख्यात पर्यन्त ही है। ताती उत्पर मिश्र मोहनीयका अनुभाग जवन्यसे उत्कृष्ट पर्यन्त मध्यम दारु भावस्वप ही रहता है। और इससे भी ऊपर मिथ्यास्त्रका अनुभाग अपर दारुसे लेकर उत्कृष्ट रील भागतक रहता है। इत्तावरणीय, दर्शनावरणीयकी केवल ३ व ४ से रहित संज्वलन चतुष्क, नव नोकवाय, पाँच अन्तराय, इन , २४ प्रकृतियोंका अनुभाग जधन्यसे लेकर उत्कृष्ट देशधाती पर्यन्त तो लता भागसं दारु के असं.भाग पर्यन्त और जवत्य सर्वधातीसे सेकर उरकृष्ट सर्वैत्राती पर्यन्त दारु के असं भाग से उस्कृष्ट की लुभाग पर्यन्त वर्ते है। केवल झानावरण, केवल दर्शनावरण, पाँच निद्रा और प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान, अनन्तानुबन्धीकी १२ इन १६ सर्वेवाती प्रकृतियोंका अनुभाग जघन्य सर्वधातीसे उत्कृष्ट सर्वधाती पर्यन्त वारु के असं,भाग से उत्कृष्ट शैल भागपर्यन्त है। वेदनीय, आयु, नाम व

गोत्र इन चार अघातियाका अनुभाग जवन्य देशघातीसे उत्कृष्ट सर्वघाती पर्यन्त जवन्य लता भागसे उत्कृष्ट देश भाग पर्यन्त रहता है।

स्न. सा./४६६/५४२ चारित्रमोहकी स्पणा विधिमें सभी प्रकृतियों के द्रव्यमें कुछ निषेकों के अनुभागको अपकर्षण द्वारा घटाकर अनन्त गुणा घटता करे हैं। अर्थात उन उनके योग्य पूर्व स्पर्धकों में जो सर्व जवन्य अनुभागके स्पर्धक संसार अवस्था विषे पहिले थे। उनसे भी अनन्तगुणा घटता (अनुभाग जो पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ था) सिहत अपूर्व स्पर्धकको रचना करे हैं। तहाँ पूर्व स्पर्धकनिकी जघन्य वर्गणासे भी अपूर्व स्पर्धककी उरकृष्ट वर्गणा विषे अनुभाग अनन्त भाग मात्र है। ऐसे अपूर्व स्पर्धकों का प्रमाण अनन्त होता है। तहाँ अपूर्व स्पर्धकों भी जवन्य अनुभागमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। अश्वकर्ण करणके प्रथम समयसे लगाय उसके अन्तिम समय पर्यन्त बराबर यह अपूर्व स्पर्धक बनानेका कार्य चलता रहता है। अर्थात अश्वकर्णका अन्तर्भृहूर्त प्रमाण काल ही इसकी विधिका काल है। इसके ऊपर कृष्टिकरणका काल प्रारम्भ होता है। (स. सा./४८०)।

- ★ योग स्पर्धकका कक्षण—हे, योग/१।
- * स्पर्धक व कृष्टिमें अन्तर---दे. कृष्टि।

स्पर्श — स्पर्शनका अर्थ स्पर्श करना या छुना है। यहाँ इस स्पर्शानु-योग द्वारमें जीवोंके स्पर्शका वर्णन किया गया है अर्थात् कौन-कौन मार्गणा स्थानगत पर्याप्त या अपर्याप्त जीव किस-किस गुणस्थानमें कितने आकाश क्षेत्रको स्पर्श करता है।

- १ | भेद व रुक्षण
- १ | स्पर्श गुणका रूक्षण ।
- २ स्पर्श नाम कर्मका लक्षण ।
- ३ स्पर्शनानुयोग दारका लक्षण ।
- ४ स्पर्शके मेद
 - १, स्पर्श गुण व स्पर्श नामकर्मके भेद ।
 - २. निक्षेपोंकी अपेक्षा भेद दिव्ह नं. १ व दिव्ह नं. २।
- ५ | निक्षेप रूप मेदोंके रूक्षण ।
- * अग्नि आदि सभीमें स्वर्श गुण्ता
- --वे. पुहगस/१०।
- स्पर्शन नामकर्म कास्पर्श देतुत्वः
- दे. वर्ण/४।
- स्वर्भ नामकर्मकी बन्ध उदय सत्त्व प्ररूपणाएँ।
 - दे. बह बह नाम ।
- २ स्पर्श सामान्य निर्देश
 - परमाणुओंमें परस्पर एकदेश व सर्वदेश स्पर्श।
 --दे. परमाण्/३।
- १ अमूर्तसे मूर्तका स्पर्श कैसे सम्भव है।
- श्लेष्ठ व कालका अन्तर्भाव द्रव्य स्पर्शमें क्यों नहीं होता।
- * क्षेत्र व स्पर्शमें अन्तर। -वे. क्षेत्र/२/२।

Jain Education International

ŧ

*

₹

₹

Ş

ų

स्पर्श विषयक प्ररूपणाएँ

स्पर्शन प्रस्थणा सम्बन्धी नियम । —दे. क्षेत्र/३ । सारणियोंमें प्रयुक्त संकेत सूची ।

जीवोंके वर्तमान काल स्पर्शकी ओव प्ररूपणा । जीवोंके अतीत कालीन स्पर्शकी ओव प्ररूपणा ।

जोवोंके अतीत कालीन स्पर्शकी अदिश मरूपणा । अष्ट कर्मोंके चतुबन्धकोंकी ओव आदेश मरूपणा । मोहनीय सत्कार्मिक बन्धकोंकी ओव आदेश मरूप० ।

अन्य मरूपणाओकी सूची ।

१. भेद व लक्षण

१. स्पर्श गुणका सक्षण

स. सि./६/२१/२६३/९९ स्पृश्यते स्वर्शनमात्रं वा स्वर्शः ।

- स, सि./२/२०/१७८/१ सपृश्यत इति स्पर्शः। ...पर्यायश्राधान्यविवक्षायां भावनिर्देशः । स्पर्शनं स्पर्शः । म् १. जो स्पर्शन किया जाता है जसे या स्पर्शनमात्रको स्पर्श कहते हैं । २. इव्यकी अपेक्षा होनेपर कर्म निर्देश होता है । जैसे जो स्पर्श किया जाता है सो स्पर्श है । ...सथा जहाँ पर्यायकी विवक्षा प्रधान रहती है तब भाव निर्देश होता है जैसे स्पर्शन स्पर्श है । (रा. वा./२/२०/१/१३२/३१) ।
- ध, १/.१.२३/२३७/८ यदा वस्तुप्राधान्येन विवक्षितं तदा इन्द्रियेण वस्त्वेव विषयीकृतं भवेद्व बस्तुव्यतिरिक्तस्पर्शाद्यभावात्। एतस्यां विवक्षायां स्पृत्रयत इति स्पर्शो वस्तु । यदा तु पर्यायः प्राधान्येन विवक्षायां स्पृत्रयत इति स्पर्शो वस्तु । यदा तु पर्यायः प्राधान्येन विवक्षितस्तदा तस्य ततो भेदोपपत्तरौदासीन्यावस्थितभावकथना- आवसाधनत्वमध्यविरुद्धम् । यथा स्पर्श इति । जिस समय इव्याधिक नयकी अपेक्षा प्रधानतासे वस्तु ही विवक्षित होतो है, उस समय इन्द्रियके द्वारा वस्तुका ही प्रहण होता है, व्याधिक वस्तुको छो इकर स्पर्शादि धर्म पाये नहीं जाते हैं इसलिए इस विवक्षामें जो स्पर्श क्रिया जाता है उसे स्पर्श कहते हैं, और वह स्पर्श वस्तु रूप ही पड़ता है। तथा जिस समय पर्यायाधिक नयकी प्रधानतासे पर्याय विवक्षित होती है, उस समय पर्यायका प्रव्यक्ष भेद होनेके कारण उदासीन रूपसे अवस्थित भावका कथन किया जाता है। इसलिए स्पर्शने भाव साधन भी वन जाता है। जैसे स्पर्शन ही स्पर्श है।

२ स्पर्श नामकर्मका लक्षण

- स. सि./८/१९/३६०/८ यस्योदयात्स्वरात्रादुर्भावस्तास्वर्शनाम । = जिसके उदयसे स्पर्शकी उत्पत्ति होती है वह स्पर्श नामकर्म है । (रा. वा./ ८१९/१०/१७७/१४); (ध. १/४,१,१०१/३६४/८); (गो. क./जी. प्र./ ३३/२६/१४)।
- ध. ६/१,६-१,१८/१६ जस्स कम्मक्लंधस्स उदएण जीवसरीरे जाइपडि-णियदो पासो उप्पज्जदि तस्स कम्मक्लंधस्स पाससण्णा कारणे कङ्जु-वयारादो । — जिस कर्मस्कन्धके उदयसे जीवके दारोरमें जाति

प्रतिनियत स्पर्श उरपन्न होता है, उस कर्म स्कन्धकी कारणमें कार्यके उपचारसे स्पर्श यह संज्ञा है।

३. स्पर्शनानुयोग द्वारका रुक्षण

- स. सि./१/व/२६/७ तदेव स्पर्शनं त्रिकालगोचरस् । = त्रिकाल विषयक निवासको स्पर्श कहते हैं। (रा. वा /१/५/४१/३०)
- ध. १/१.१.७/गा./१०२/१६८ अरिथत्तं पुण संतं अरिथत्तस्य य तहेब परिमाणं । पच्चुप्पण्णं खेत्तं अदीद-पदुप्पण्णणं फुसणं ११०२।
- ध. १/१,१,७/१६ निष्ट्रियो वल्रद्ध-संस-पमाण खेलाण अदीय-काल-विसिट्टफासं परुवेदि फोसणाणुगमो । —१ अस्तिरवका प्रतिपादन करनेवाली प्रह्मपणाको सरप्ररूपणा कहते हैं। जिन पदार्थों के अस्तिरव-का ज्ञान हो गया है ऐसे पदार्थों के परिमाणका कथन करनेवाली संख्या प्रह्मपणा है, वर्तमान क्षेत्रका वर्णन करनेवाली क्षेत्र प्ररूपणा है। अतीस स्पर्श और वर्समान स्पर्शका वर्णन करनेवाली स्पर्शन प्रह्मपणा है। ११०२। २. उक्त सीनों अनुयोगों के द्वारा जाने हुए सत् संख्या और क्षेत्रह्म द्वस्मों के असीत्काल विशिष्ट वर्तमान स्पर्शका स्पर्शनानुयोग वर्णन करता है।
- ध. ४/१,४.१/१४४/ अस्पर्शि स्पृश्यत इति स्पर्शनम् । जो भूसकासमें स्पर्शिकया है और वर्शमानमें स्पर्शिकया जा रहा है वह स्पर्शन कहनाता है।

४. स्पर्शके भेद

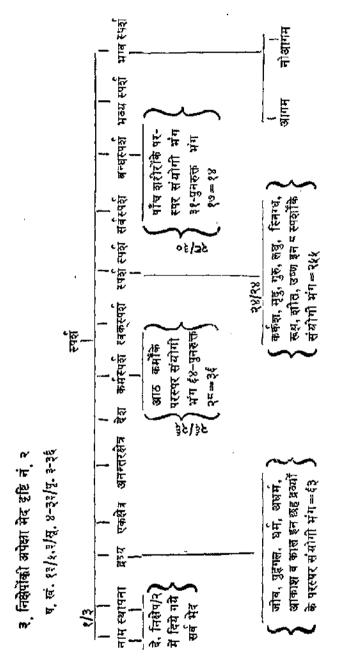
- १. स्पर्शगुण व स्पर्श नामकर्मके भेद
- ष, खं. १/२.१.१/सू. ४०/७६ जं तं पासणामकम्मं तं अहिवहं. कपखडणामं मखवणामं गुरुअणामं सहुअणामं णिद्धणामं छुवखणामं सीदणाम
 उम्रुणणामं चेदि।४०। —जो स्पर्श नामकमं है वह आठ प्रकारका
 है —कर्कश्चामकर्म, मृदुकनामकर्म, गुरुकनामकर्म, सघुकनामकर्म,
 स्निग्धनामकर्म, रूसनामकर्म, शीतनामकर्म और उष्णनामकर्म।
 (ष. खं. १३/६.३/सू. ११३/३७०); (स. सि./८/११/३६०/८); (पं. सं./प्रा./२/४/३६/८); (गो. क / खी. प्र./३३/२६/१४)।
- स. सि./१/२३/२१३/११ सोऽष्टविधः; मृबुक्र हिनगुरुलघुकोतोष्णस्मिग्ध-स्थभेदात् । क्कोमल, कठोर, भारी, हत्तका, ठंडा, गरम, स्निग्ध और स्थके भेदसे वह स्पर्श आठ प्रकारका है। (रा. वा./१/२३/७/ ४८४); (गो, जो./जी. प्र./८८११); (द्र. सं./टी./७/१६); (प. प्र./ टी./१/१६)।

२ निक्षेपोंकी अपेक्षा भेद दृष्टि नं १

नोट--(माम, स्थापना आदि भेद कदे, निक्षेप)।

ध. ४/१,४,१/१४३/२ मिस्सयदञ्बफोसणं छण्हं दञ्बाणं संजोएण एसूण-सहिनेयभिण्णं । स्मिश्रद्रव्यस्पर्शन चेतन अचेतन स्वरूप छहीं द्रव्योंके संयोगसे उनसठ भेदवाला होता है।

विशेषार्थ—मिश्र तद्वयितिरिक्त नोआगम द्रव्य स्पर्शके सिश्चित्त व अचित्त स्वय छह द्रव्योके ६५ संयोगी भंग निम्न प्रकार है। एक संयोगी भंग—छह द्रव्योका पृथक्-पृथक् ग्रहण करनेसे—६। द्विसंयोगी भंग—(६×६)+(१×२)—३०/२ —१६। त्रिसंयोगी भंग—(६×६×४)+ (१×२×३)—१२०/६ —२०। चतुसंयोगी भंग—(६×६×४)+(१×२×३×४)=१६०/२४=१६। पंचसंयोगीभंग—(६×६×४×३×२)+(१×२×३×४४)=७२०/६३०—६। छह संयोगी भंग-(६×६×४×३×२×१) + (१×२ × ३×४×६×६)
= ७२०/७२० = १ १
जीवके साथ जीव के स्पर्श रूप बन्ध का भंग = १
पृह्रगलके साथ पुह्रगल के स्पर्श रूप बन्ध का भंग = १
(गो. क./मू./-००)।



ध. १३/१,३,२४/२६/२ एरथ के नि आइरिया करलडा दिकासाणं पहाणीक्याणं एगा दिसंजोगे हि फासभंगे उप्पायंति, तण्ण घडदे; गुणाणं
णिस्सहावणं गुणे हि फासाभावादो । अधवा स्वत्स देसामा सियत्ते । स्मृती क्रिल्या सेसिव सेसंतराण महण्णं फासाणं संजोएण दुसद-पंचवंचासभंगा उप्पाएयव्या । स्यहाँ कितने ही खाचार्य प्रधानताको
प्राप्त हुए ककशे आदि स्पर्शों के एक आदि संयोगों हारा स्पर्श भंग
उत्पन्न कराते हैं; परन्तु वे बनते नहीं; क्यों कि गुण निस्वभाव होते हैं, इसलिए उनका अन्य गुणों के साथ स्पर्श नहीं इन सवता । । अधवा सूत्रदेशाम के होता है । अतएव अपने भीतर जितने विशेष
प्राप्त होते हैं, उन सबके साथ आठ स्पर्शों के संयोग से दो सी पवपन
भंग उत्पन्न कराने चाहिए।

५. निक्षेप रूप भेदोंके लक्षण

ष.खं. व धवला टो,/१३/४,३,/सूत्र नं./पृ.नं. 'जं दव्वं दव्वेण पुसदि सो सञ्बोदन्यफासो णाम। (१२/११)' 'जं दन्वमेयवखेलेण पुसदि सो सब्बो एयक्खेलफासो णाम (१४/१६)' एकाम्हि आगासपदेसे टिठदअर्गताणंतपोग्गलक्षंघाणसम्बारण संजोरण त्रा जो फासौ सो एयक्लेत्तफासो णाम । श्रह्याणं दन्वाणं अक्रमेण एयक्खेत्तपुसण-दुवारेण वा एयक्खेत्तफासो बत्तव्यो। — 'जं दव्यमणं तरक्खेत्तेण पुसदि सो सन्त्रो अणंतरवखेलफासो णाम (१६/१७)' तुपरेसट्ठददव्याण-मण्णेहि दो आगासपदेस ट्रिट्ट दव्वेहि जो फासो सो अणंतरव खेत्र फासो णाम। ... एवं संते समाणोगाहण खंधाणं जो फासो सो एयव खेल-फासी णाम । असमाणीगाहणखंधाणं को फासी सी अणंतरखेत्तकासी णाम । कधमणंतरत्तं । समागासमाणनखेत्राणमंतरे स्नेतंतराभावादो । एवमणंतरखेलफासपरूपणा गदा।—'जं दब्बदेसं देसेण पुसदि सो सब्बो देसफासो णाम (१८/१८)' एगस्स दब्धरस देसं अवयवं जिद [देसेण] अण्णदञ्बदेसेण अप्पणो अवयवेण पुसदि तो देसफासो सि दश्हब्बो। - जंदब्बं तथं वा णोतयं वा पुसदि सो सब्बो तयफासो णाम (२०/१६)' एसी तमफासी दटनफासे अंतन्भावं किण्ण गच्छरे। ण, तम-जोतमाणं खंधिम्ह समन्देराणं पुष दञ्बत्ताभाषादो । खंध-तय-णोत्तयाणं समूहो दव्यं । ण च एकम्हि दव्ये दव्यकासो अरिथ, विरो-हादो । . . तयफासो देसफासे किण्ण पविसदि। ण, णाणदञ्जविसए देसफासे एगदञ्जनिसयस्स तयफासस्स पवेसिवरोहादो । - जं दट्ज सन्बं सन्बेण फुसदि, तहा परमाणुदन्वमिदि, सो सन्बो सन्बकासो णाम । (२२/२१)' 'सो अट्ठिवहो-कवलङफासो मउवफासो गरुब-फासो लहुबकासो णिद्धफासो छुबखकासो सीदकासो उण्ह्फासो। सो सब्बो फासफासो णाम (२४/२४)' स्पृश्यत इति स्पर्शः कर्क-शादिः । स्रुष्ट्यस्यनेनेति स्पर्शस्त्वगिन्द्रयं । तयोर्द्वयोः स्पर्शयोः स्पर्शः स्पर्शस्पर्शः।--'सो अट्ठिवहो--णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेयणीय-मोहणीय-आउख-णामा-गोद-अंतराइय-वम्मफासो । सन्तो कम्मफासो णाम (२६/२६)' अट्ठकम्माणं जीवेण विस्सा-सोवचएहिय णोकम्मेहिय जो फासो सो दव्यफांसे पददि ति एत्थ ण बुद्धदे, कम्भाणं कम्नेहिजो फासो सो कम्मफासो ति एरथ घेतन्त्रो।--'सो पंचितहो-अोरालियसरीरअधकासो एवं वेउँ विवय-आहार-तेया कम्मइयसरीरबंधकासो। सो सब्बो बंधकासो णाम । (२८/३०)' वध्नातीति बन्धः। औदारिकशरीरमेव बन्धः औदारिक-शरीरबन्धः। तस्स बंधस्स फासो ओरासियसरीरवंधफासो णाम। एवं सम्बसरीरबंधफासाणं पि बत्तव्यं।— 'जहा विस कूड-जंत-पंजर-कंदय- वरगुरादीणि कत्तारी समोदियारी य भवियो फुसणवार जो य पुण ताब तं फुसदि सो सच्ची भवियकासो णाम (२०/३४)' 'उवजुत्तो पाहुडजाणओ सो सब्बो भावफासो णाम (३२/३४) 🗝 १. एक द्रव्य दूसरे द्रव्यसे स्पर्शको प्राप्त होता है वह सब द्रव्यस्पर्श है । १२। २. जो द्रव्य एक क्षेत्रके साथ स्पर्श करता है वह स**य एक क्षे**त्र-स्पर्श है ।१४। एक आकाश प्रदेशमें स्थित अनन्तानन्त पुद्दगल स्कन्धोंका समबाय सम्बन्ध या संयोग सम्बन्ध द्वारा जो स्पर्श होता है वह एक क्षेत्रस्पर्श कहलाता है। अथवा बहुत द्रव्योंका युगपत एक क्षेत्रके स्पर्शन द्वाराएक क्षेत्र स्परं कहना चाहिए। ३. जो द्रव्य अनन्तर द्रव्यके साथ स्पशं करता है वह सन अनन्तरक्षेत्र स्पर्श है। १६। दो प्रदेशों में स्थित द्रव्यों का दो आकाशके प्रदेशों में स्थित अन्य द्रव्योंके साथ जो स्पर्श होता है वह अनन्तर क्षेत्रस्पर्श है।... इस स्थितिमें (एक शब्द संख्यावाची नहीं समानवाची है) समान अवगाहना बाले स्कन्धोंका जो स्पर्श होता है वह एक क्षेत्रस्पर्श है और असमान अवगाहना वाले स्कन्धोंका जो स्पर्श होता है वह अनन्तरक्षेत्र स्पर्श है। क्यों कि समान और असमान क्षेत्रों के मध्यमें अन्य क्षेत्र नहीं उपलब्ध होता. इसलिए इसे अनन्तरपना प्राप्त है। ४. जो द्रव्य एकदेश एकदेशके साथ स्पर्श करता है वह सम देशस्पर्श

है। १८। एक द्रव्यका देश अर्थात् अवयव यदि अन्य द्रव्यके देश अर्थात उसके अन्यवके साथ स्पर्श करता है तो वह देशस्पर्श जानना चाहिए। (दो परमाणुओंका दो प्रदेशावगाही स्कन्ध अननेमें जो स्पर्श होता है वही देशस्पर्श है।) १, जो द्रव्य स्वचाया नोस्वचा को स्पर्श करता है यह सब स्वक्त्यर्श है ।२०। प्रश्न- यह खब्द स्पर्श द्रव्य स्पर्शमें क्यों नहीं अन्तर्भावको प्राप्त होता ! उत्तर--नहीं, क्योंकि रबचा और नोरबचा स्कन्धमें समवेत है, अतः उन्हें पृथक द्रवय नहीं माना जा सकता । स्कन्ध, स्वचा और नोस्वचाका समुदाय द्रव्य है । पर एक द्रव्यमें द्रव्यस्पर्श नहीं बनता, क्यों कि ऐसा माननेमें बिरोध आता है। प्रश्न-त्वक्रपर्श देशस्पर्शमें क्यों नहीं अन्तर्भृत होता है ! उत्तर-नहीं, क्यों कि नाना द्रव्यों को विषय करनेवाले देश स्पर्शमें एक द्रव्यको विषय करनेवासे त्वक् स्पर्शका अन्तर्भाव माननेमें विरोध आता है। है, जो इव्य सबका सब सबस्मिना स्पर्श करता है, यथा परमाणु द्रवय, वह सब सर्वस्पर्श है । २२। ७. स्पर्शस्पर्श आठ प्रकारका है-कर्कशस्पर्श, मृद्रपर्श, गुरुस्पर्श, लघुस्पर्श, स्निग्ध-स्पर्श, स्वश्नस्पर्श, शीतस्पर्श और उच्न स्पर्श है वह सम स्पर्शस्पर्श है। २४। जो स्पर्श किया जाता है वह स्पर्श है, यथा कर्कश आदि । जिसके द्वारा स्पर्श किया जाय वह स्पर्श है, यथा त्वचा इन्द्रिय। इन दोनों स्पर्शीका स्पर्श स्पर्शस्पर्श कहलाता है। य. वह आठ प्रकारका है--ज्ञानाबरणीय कर्मस्पर्श, दर्शनावरणीय कर्मस्पर्श, वेदनीय कर्मस्पर्श, मोहनीय कर्मस्पर्श, आयुकर्मस्पर्श, गोत्र कर्मस्पर्श धीर अन्तराय कर्मस्पर्श । वह सन कर्मस्पर्श है। २६। आठ कर्मीका जीवके साथ. विस्तरोपचयोंके साथ और नोकर्मीके साथ जो स्पर्श होता है वह सब द्रव्य स्पर्शमें अन्तर्भृत होता है: इसलिए वह यहाँ नहीं कहा गया है। किन्तु कर्मीका कर्मों के साथ जो स्पर्श होता है वह कर्मरूपर्श है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। १. बहु पाँच प्रकारका है---औदारिक शरीर बन्धस्पर्शः । इसी प्रकार वैक्रियक, आहारक, सैजस और कार्मण शरीर नन्धस्पर्श। यह सब बन्ध-स्पर्श है।२०। जो गाँधता है वह मन्य कहलाता है, औदारिक शरीर औदारिक शरीर मन्ध है, उस मन्धका स्पर्श औदारिकशरीरमन्ध-स्पर्श है। इसी प्रकार सर्वे शरीरवन्ध स्पर्शीका भी कथन करना चाहिए। १०, विष, कूट, यन्त्र, पिजरा, कन्दक और पशुको वाँधने-का जाल आदि तथा इनके करनेवाले और इन्हें इच्छित स्थानों में रखनेवाले स्पर्शनके योग्य होंगे परन्तु अभी उन्हें स्पर्श नहीं करते: वह सब भन्य स्पर्श है ।३०। ११, जो स्पर्श प्राभृतका जाता उसमें जपद्रक्त है वहःसम भाव स्पर्श है १३२।

ध. ४/१,४,१/१४३-१४४/३,२ सेसद्वाणमागासेण सह संजोको खेत्तको-सणं/१४३/३/ कालद्वास्स अण्णद्वेहि जो संजोको सो कालकोसणं णाम । —१२, शेष द्वयोंका आकाश द्रव्यके साथ जो संयोग है, बह क्षेत्र स्पर्शन कहलाता है। १३. कालद्वव्यका जो अन्य द्रव्योंके साथ संयोग है खसका नाम कालस्पर्शन है।

२. स्पर्शे सामान्य निर्देश

१. अमूर्तसे मूर्तका स्पर्श कैसे सन्भव है

घ. ४/१,४,९/१४३/३ अमुत्तेण आगासेण सह सेसदव्वाणं मुत्ताणममुत्ताणं वा कर्षं पोसो। ण एस दोसो, अवगेज्भावगाहभावस्सेव जवयारेण फासववएसाहो, सत्त-पमेयत्तादिणा अण्णोण्णसमाणत्त्रणेण वा ।... अमुत्तेण कालदञ्येण सेसदव्वाणं जदि वि पासो णित्थ, परिणामिज्ज-माणाणि सेसदव्वाणि परिणत्तेण कालेण पुसिदाणि त्ति जवयारेण कालफोसणं बुच्चदे। —प्रश्न-अमूर्तआकाशके साथ शेष अमूर्त और मूर्त द्रव्योंका स्पर्श केसे सम्भव है। उत्तर-यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अवगाहा अवगाहक भावको हो उपचारसे स्पर्श संज्ञाप्ताप्त है, अथवा सत्त्व प्रमेयत्व आदिके द्वारा मूर्त द्रव्यके साथ अमूर्त प्रवय-की परस्पर समानता होनेसे भी स्पर्शका व्यवहार बन जाता है।... यथि अमूर्तकालद्रव्यके साथ शेष द्रव्योंका स्पर्शन नहीं है, तथापि परिणमित होने वाले शेष द्रव्य परिणामत्वकी अपेक्षा कालसे स्पर्शत परिणमित होने वाले शेष द्रव्य परिणामत्वकी अपेक्षा कालसे स्पर्शत है, इस प्रकारसे उपचारसे काल स्पर्शन कहा जाता है।

२. क्षेत्र व काल स्पर्शका अन्तर्माव द्रव्य स्पर्शमें क्यों नहीं

३. स्पर्श विषयक प्ररूपणाएँ

१. सारणीमें प्रयुक्त संकेत सूची

भाग

- भाग

× पुना

S किंचिद्रण

८/१४/लोक. लोकका ८/१४ भाग

अप. अपयक्ति

असं. असंख्यात

r, चतुलोक (मनुष्य लोक रहित सर्वलोक)

ज. प्रं. जगन्त्रतर

ति, तिर्थक् लोक

त्रि. त्रिलोक या सर्व लोक

क्रि. उद्भव अधो ये दो लोक

प. पर्याप्त

पृ. पृथिकी

मा, मादर

म. मनुष्य लोक (अदाई द्वीप)

ब. इनस्पति

सर्व, सर्व लोक (३४३ घन राजू)

सं. संख्यात

सं.घ. संख्यात घनांगुस

सा. सामान्य

तेअस आहारक न ति उपपाद केवलि समुद्रघात		मारणास्थिकभव	अवस	:	ति./सं., मारणान्तिकवद	:	:	# 1	:	:	दण्ड== च./असं., म×असं. कपाट—	कायोत्सर्भे = ४५००,००० योध्र १ ज. म.	उपिषष्ट == १०००,००० यो×१ ज.प्र. प्रतर == बात्तबलय ११९त सर्व होकपूरण == सर्व	:
मारणान्त्रिक सम्बद्धात		न प्र	ष./जमे., मश्यसं.	:	त्रि./असं., ति./सं., म≪असं,	<u>.</u>	च_/यसं.,म×वसं.		; ;	•				
वै क्रियिक समुद्दवात		ति./अर्च., ति./सं. म×असं.	च /असं, म×ंअसं.	£	ति./अस्. ति./स्. म×असं.	<i>:</i>	च./असं., म./सं.		:	:	:			:
मेरमा कृषाव समुद्ध्यात	(ફેલ્કે -ફે	् म प्र	म./थसः, मन्द्रसं,	•	त्रि./असं, तिः/सं. म×असं.	<i>‡</i>	च,/असं., म./सं.	:	:	:	:			:
विहारकेत् स्वस्थान	२. जीबोंके वरेमान काछ स्पर्शकी ओघ प्ररूपणा—(घ. ४/१,४,२-१०/१४५-१७३)	ति./बसं., ति./सं., मध्यसं.	च्र/असं, मध्यसं.	;	त्रि./असं., ति./सं., म×द्यसं.	.	च./असे., म./से.		: :	i	च./असं., मः/सं.			:
स्वस्थान स्वस्थान	कि ओघ प्ररूपण	- 1	च./यसं., मः× असं.		क्रि./असं. रि./सं.,म×असं.	;	च /असं,म-/सं.		= 4		*			;
मुण- स्थान	16	•	ŕ	#Pr	20		#10°	9	2		etr •			25
गुणस्थान	विके बत्तमान का	मिध्याद्धि	सासादन	सम्यम्मिद्यादृष्टि	असंयत सम्याद्दीष्ट	संयतासंबत	प्रमन्त संयत	F	443EHB	क्षमञ्	सयोगकेवती			अयोगकेन्सी
<u></u> 발생 및.	⊤ छ ≈*	ت (م	200	100°	417 487	øy ev	စ္မွ		2 2		co_			<u>ده</u>

800

प्रमाण स.४/ पृ.	गुणस्यान	मुख- स्थान	स्बस्थानस्बस्धान	मिष्टारबत् स्वस्थान	वेदना कषाय समुद्धात	ने क्रियक समुद्धात	मारणाम्तिक समुद्दवात	डक्पाद	तैजस आहारक क केवती समुद्धात
હાં' 'જ	विके भतीत कार्छ	ो स्	कि ओच प्ररूपण	३. जोबोंके अतीत कास्तीन स्पर्शको ओघ प्ररूपणा(घ. ४/१. ४, २-१०/१४५.१७३)	(Ba) 78)	,			
, X	្រីពេលមេមិ	•	HI C lat	ऽ'ष बोस	च प्रम	ડ લો લો	ele H	मारणार्नितक्ष	:
	सासादन	٠, ٨	ति,/सं.,	्र स्थान	ऽ ट लोक	چ ام	्राङ्क इंद्रि	ऽ रू	:
** ** ** ** **			मरुखत.						
-333	सम्यनिमध्याद्वीद्व	bus.	:	*	F		•	•	:
9	असंयत सम्यग्दष्टि	26	.· •	ī	:		ऽ हुर सोक	ऽ १४ सोक	Ī
र्दृट	संयतासंयत		जि./असंति./सं मध्यसं.	ਤਿ./ਕਰ, ਜਿ./ਜ., ਸ×ਕਰ	ष्पि,/जसं. कि./सं., मरूअसं.	भि./असं., ति./सं., म.४असं,	ऽ क्ष्रे सोक	. :	<i>.</i>
<u> خون</u>	प्रमत्त संयत	٠.,	च./असं., म./सं•	ਥ•/ਕਰੰ., ਸ./ਦੋ	च,/असं., म./सं,	सर्व मनुष्य लोक	च /बसं., मप्रवसं.	तैजस्य आहारक =	तैजस = सर्व ममुख्य सोक हिएक ==
;	अप्रमत्त संघत	9	÷	*	*	6 1 8			τ
<u>.</u>	उपशामक	ř	*	:	4	:	f	:	:
*	क्षतक	4-43	;	:	•	:	:		:
8	सयोग केमली	S.	ष्,/असं., म./सं.	ष./असं., म./सं.	:	•	:		= च /सित्, मरुख्त.
<u> </u>								कपाट — कायोस्सर्ग=	कपाट — कायोत्सर्ग = ४१००,००० योश्र ९ ज.त
	-							ल्लिम्ड	उद्गिष्ट= १०००,००० यो,४१व.प.
	:							प्रतर — म सोकप्रूरण —	प्रतर् मातवस्य राह्त सर्वे कपूरणः सर्वे
3	ष्योग केवली	22	च /असं., म./सं.	:	:	•	:	: :	:
_	_	_							

ΪD
70
-
20
<u> 1</u> 2
9
8 == (Q, Ed. 8/2, 2, E
9/
H
E
16
Ã
K
· 🖺
ক
جن
7
2
¥
। अतीत काळीन स्पर्शकी आदेश प्ररूपणा
من
8
to
4 <u>≒</u>
뚰
100
100
' 0
Æ.
8. जीवोंके
øě

~	ड. जावक अतात काळान स्पशका आद्दा प्ररूपणा	क्षान क	(शक। आंदुश प्रह		१ - (ष. ष. ४/१, ४, सूत्र ११-१८६/ १७३-३०६):		२=(र्ष. तं. ७/२, ७. मृ. १-२०१/३६७-४६१)	\$38-8\$	
प्रमाण म.१ ने.६ पृ. पृ.	ज मार्गणा मु.	मुण स्थान	स्बस्थान स्वस्थान	बिहारबद् स्वस्थान	बेदना क षाय समुद्धात	वे कि.यिक समुद्धात	मार्गान्तिक समुद्धात	खमपाइ	तैजस-आहारक व केवती समुद्धात
	१. गति मार्गेषा— १ नस्य गटि								
m.	३६= सामान्य		ति./असं.	कि./असं.	च/असं., म×असं.	च/अंसं., म×असं.	। संस्थात सहस्र-६/१४ योजन मार्णान्तिकथत	अन मार्णान्तिकथत	:
<u>n</u> r	३७० प्रथम पृथिनो		च./बसं., म×असं.	क्/असं., मध्यसं.	म्यसं, मर्यसं.	च/असं., मध्यसं.	त्रियसं. क्षिसं. म×असं	.	:
<u>nv</u> _	३७३ २-७ पृथिको		£	£	सर्व/अस.	सर्वे/असं.	(कुछ कमक्षान्त्र, वंड	;	•
		. <u>— -</u>					द्रें द्र, वर्षे , वर्षे हैं ।		
9	सामान्य	<u>م</u>	च./असं., म×धासं.	च/अस्., म×क्षसं	च/असं, मध्यसं,	च/असं. म×असं.	ऽ इंड्रेस् सोक	•	:
0 0 0 0 0 0 0	-	or (•	ş ş	. 4	:	.ar 2	:	:
2		no- (‡	: \$	a ;	٠, ۽	× .	į	:
:	4	3 0	:	R 1	.	, F	च्यायसं, मरुखसं.	मारणान्तिकवत्	:
) 1 1	प्रथम पृत्यक्त	•-	ŗ		Ŧ	<i>‡</i>	मिशवसं, ति/सं, मध्यसं,	च्/बर्स, म्रूथसं	:
υν ή U 1 9√ 1		r	:	F 1	\$	f	•		ž
ช ช		————́— M.	۶.	\$	F	\$:		:
Σ.	<i>C</i>	> -		*	\$	<u>;</u>	म्/अस, म×अस	मार्णारिन्तकवत्	:
22	र-६ प्रथम	~	5	F	.	ŧ	कम्ण वृष्टा वृष्ट्र, ब्रुष्ट्र क	:	•
ه ۲	<u>.</u>			\$	7		न हैं हैं हैं हैं हैं		
· •		Y	\$	-, -	: :	£	÷	:	:
ي ز		m 	•	· ·	£ '	5	:	÷	:
, ,	d 4	⊅	7	÷ '	ĸ		च/असं. मरुखत	:	:
ů Ž	্ডন্দ্যিকা 	~	:	* 1	s 1	ţ	ऽ क्रुंश लोक	मारणान्तिकवत्	:
	० जिस्से समाप्ति	<u>~</u>		¥	s	•	×		:
	३७६ सामान्य		स	न्नि/असं, स्ति/सं., म×असं	वी ² उस	ित्र/असं. दि×असं.	स	मारणान्तिकवत	:
63	३७६ ५ में न्द्रिय तिये. प.		जि./असं. ति/सं	त्रि./अस., ति,मं.	त्रिश्यमं, ति/सं.,	त्रि/असं., ति/सं.,		,	:
			म्रजसं.	म्रूअसं.	中文以此,	म्रथम्.			
	*		:	7	2	ŧ	•		:
(t)	३७८ , तिर्मे अप.		=	×	·2	ŧ		:	:
82	सामान्य	or	स	जिंथमं, तिसं, मरअसं	म	त्रिवसं, तिमं, म्लबसं	न्त्र स्म	:	:
RIV CV BV		er	त्रि,/असं., कि./सं. म×असं	त्रि/यस ति/सं मध्यस	त्रि/असं. जिसं. मरुखसं	त्रि/असं., कि/सं. म×असं.	ऽ कु लोक (पृ. २०४)	रेडे सेडे लोक (मृ.२०५)	;

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

सामाय रिवरं के कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि कि									-
ह जिज्ञका, जि. जि. जि. जि. जि. जि. जि. जि. जि. जि.	माग्या	Ē.,	स्वस्थान स्वस्थान	विहारवत् स्वस्थान	वेदना व कषाय	वैक्रियिक समुद्धात	मारणान्तिक समुद्धात		तंजस, आहारक
ह जिल्ला, जिलें कि जिलं के जिलें कि		स्यान	,		समुद्धात		,		केवनी सभुद्धात
ह मध्यस्य भयस्यस्य मध्यस्य भयस्यस्य भयस्यस्य मध्यस्य भयस्यस्य भयस्यस्य भयस्यस्य भयस्यस्यस्य भयस्यस्य भयस्यस्य भयस्यस्य भयस्यस्यस्य भयस्यस्यस्य भयस्यस्यस्यस्यस्यस्यस्यस्यस्य	ान्य तिर्धंच	gr-	त्रिशसं ति.सं.	म्मि असं., फिसं.	त्रिअसं., तिसं.	त्रियमं., ति/सं.	*	:	
र	•		मंत्र्यस्	HX SIT.	म् अस्	此文经行,	•		
१		>>	;	£	;	*		त्रियसं., ति/सं, मध्यसं.	:
र		٠	F	ţ	r.	\$	44		:
२	न्द्रयत्तियंच प.	~	;	÷	:	•	्व स	मारणाभित्यकवत	:
2 विशेष्टमें विशेष पर्याखव विशेष्टमें विशेष पर्याखव विशेष्टमें विशेष पर्याखव विशेष्टमें विशेष पर्याखव विशेष्टमें विशेष पर्याखव विशेष्टमें विशेष पर्याखव विशेष्टमें विशेष पर्याखव		~	ţ.	\$	*	:		१४ बोक	÷
१		tus.	;	ţ	<i>‡</i>	F	449	;	÷
११ पंची प्रमा तिया प्राप्तिय प्		20	:	£	•		120	भिषसं, ति/सं, म×बसं	i
२.६ — — — — — — — — — — — — — — — — — — —		ىد.	\$	£	, ;	,	i	:	:
8-६ — — — — — — — — — — — — — — — — — — —	.रैतर्थ-योजिमति		1		₩ .	िद्रय तियैच पर्याप्तवद	1	1	:
र निजयर, तिन्स निजयर, तिन्स सर्व (पु. २१६) सर्व (पु.			1		_		1	;	:
म्भुखरं, मोसं. कुछ कम मनुष्य लोक कुछ कम मनुष्य ने कुछ कम मनुष्य लोक कुछ कम मनुष्य लोक कुछ कम मनुष्य लोक कुछ कम मनुष्य लोक कुछ कम मनुष्य लोक कुछ कम मनुष्य लोक कुछ कम मनुष्य लोक कुछ कम मनुष्य क	ें, तिये, अप,	•	त्रिअसं, क्षिसं.	•	त्रिंग असं., ति/सं.	:	सर्व (पृ. २१६)	सर्वे (पृ. २१६)	:
क्ष कम मनुष्य सोक कुछ कम मनुष्य सोक कुछ कम मनुष्य सोक सर्व मार्गुष्य सोक सर्व मार्गुष्य सोक सर्व मार्गुष्य सोक स्वा स्व सार्गितिक सर्व सार्गितिक स्व स्व स्व स्व सार्गितिक स्व स्व स्व स्व स्व स्व स्व स्व स्व स्व	natu afti-		मुक्रायम्,	-	म×अस.				
१ क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, च्येत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, संवेद्धं, मोसं, स्वेद्धं, मोसं, स्वेद्धं, मोसं, स्वेत्रसं, मोसं, स्वेत्यसं, मोसं, स्वेत्यसं, मोसं, स्वेत्	नुष्ट न साथा तन्य व प्रयोध		क्रिक्स, भिसं.	कुछ कम मनुष्य लोक	कुछ कम मनुष्य लोक	कुछ कम मनुष्य सोक	संब	मारणान्तिकवत्	मूलको बदस
१ क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, क्षेत्रसं, मोसं, स्विध्यत्	Todail			, ,	' :	- -	F.F.	÷	:
२ सुबस, मोसं, भोबं, मोसं, चोबसं, मोसं. चाबसं, मोसं	ाच्य अपयोप्त		ī	:	*	:	£	£	:
२	ान्य व पर्याप्त	~	क्/अस्, म/सं,	क्षेत्रसं. म्यतं.	च/ असं., म/सं.	म् अस, म/स	76	•	:
१		(v	:	;	*	\$	्र स्ट्रेस	त्रियसं, ति/सं, मेर्थ्यसं.	:
8 तिश्वसं, सिसं, म्भ्यसं मार्थान्तिकवत् सिसंघवत् स्वोधवत् स्वोधवत् स्वोधवत् मनुष्य पर्याववत् स्वोधवत्		or	· .	:	•	F		;	į
६-१४ सुक्षोधवद्		20	F	;	ŗ		जियम, मिस मर्गम	मारणगिन्तकव्	:
१-१४ — सुसोषवत् मुन्य पर्याप्तवत् सुन्य व्याप्तवत् सुन्य व्याप्तवत् सुन्य व्याप्तवत् सुन्य व्याप्तवत् सुन्य व्याप्तवत् सुन्य सुन्य व्याप्तवत् सुन्य स		æ	F	•	*	+	क्ष्यंत, म×अस	:	:
8-६ — — — — — — मनुष्य पयमित्रद् 8-१४ — — — — — — — — — — — — — — — — — — —		& - -\$	i	1	\	मुलोघनत्		1	Į
8-६ — — — — — — — — — — — — — — — — — — —	नुष्यणी	€-¥	1	1		मनुष्य पर्याप्तबंद	*	ı	1
७-१४ — — — — — — मुलोधवत् — सर्वे सर्वे सर्वे सर्वे सर्वे सर्वे सर्वे		₩ %	1	i		‡	1		1
१ चा/असं, मानं, सन सन सन		8)-9	1	1	1	मुलोघवत्	1	l '	1
	नुष्यं अप.	3 /	चं/असं, मं/सं.	:	च/असं, म/सं	:	संब	च	:
		. <u>.</u> .				,	<u> </u>		

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

हा सि. २ ए. स. १ ए.	म	युक- स्थान	स्बस्थान-स्वस्थान	बिहार वह स्वस्थान	नेदना कषाय समुद्रवात	वै क्रि भिक्रसम्बद्ध्यात	मारणान्दिक समुद्ध्यास	डमधान	तैजस आहारक ब केवली समुद्रवात
<u></u>	४. देव मति						,		
es.	२ सामान्य		त्रि∡/असं., ति./सं., म×असं.	사2℃ 원 분	ऽ १४ नोक	ऽ १४ सोक	ऽ १ ८ ९८ वोक	ऽ १४ वोक १४	:
ሙ ከ ጋረ	५ भवनवासी		च./असं., ति./सं., स्वनिमित्तक ऽ म×असं.	이 사이 이 이 이 이 이 이 이 이 이 이 이 이 이 이 이 이 이	स्वतिमि.चऽ श्रुद्ध लोक पर्गतिमि.चऽ हुः ,,	स्वनिमि.=ऽ हुँ बोक परिनिमि.=ऽ हुँ "	ऽ इ.स.सोक	त्रि./असं., ति./सं., म≪असं.	ŧ
<u> </u>	व्यन्तर स्योतिषी		•	दोनरे अपेक्षा "	कोनों अपेक्षा "	दोनों अपेक्षा	*	F	÷
ช.ว. ก ก	न सौधर्म ईशान		च./असं., म×असं.	क्षमेण टूर १८ १४ सोक	क्रमेण : ऽ <u>८</u> ऽ <u>१</u> ४ लोक	क्रमेणःऽ <u>५</u> ,ऽ १ <u>४</u> लोक	क्रमेण: ऽ है। ऽ शिक	ऽ स् बोक	:
6 2	: पाँच युगलों में प्रथिक		<i>‡</i>	ऽ हुँ नोक	N % 조 전 환	v) द्धी सो	क्र	क्रमेण : ऽ क्षि	:
iv er	्र अगित-धच्युत (२ युगलोमें प्रत्येक)		सर्वे./अस्.	त्र स्टब्स् स्टब्स् स्टब्स्	ν. <u>μ</u> ε ε	ऽ १४ तोक	ات عال عال عال عال عال عال عال عال عال عال	क्रमण : S रि	:
er er	३१२ नवग्नेवेयक-अपराजित		च./असं., म×असं.	च.∫बसं, म×बसं.	च,/अस्, मरूबस्	च./असं., म×असं.	च./असं., म×असं.	च./थसं., म×असं,	:
<u> </u>	सर्वार्थासिद्ध		Ŧ	*	*	÷	:	:	4
888	सामान्य	•	त्रि,/थसं. कि./सं., म∾जसं.	ड दूर नोक	ऽ <u>१</u> ४ सोक	ऽ 🕏 वोक	ऽ रू सोक	क्ष्म अ S	:
98.		or	· •			£	ī	;	i
£		m	F	ŗ	*	.	:	:	ï
<u>. </u>		20	.	*	ŧ	£	ऽ क्ष सोक	S लोक	:
							•		

भा० ४-६१

प्रमाण सं,श्रमः य प्र. प्र.									
. tr	मार्गणा	मुण- स्थान	स्वस्थान स्वस्थान	किहारवत् स्वस्थान	वेसना कथाय समुद्रघात	वै कि यिक समुद्धात	मारकान्त्रिक समुद्धधात	खनवाद	टैजस आहारक ब केवली समुद्रघात
	भवनदासी	•	व./असं ति./सं., स्वनिमित्तकऽ <u>३६</u> म×असं. परनिमित्तक =ऽ <u>.६</u>	# (a)		स्यनिमि.=ऽ हेह सोक परनिमि.=ऽ क्षेत्र	S हैं हैंअ सोक	त्रि,/असं., ति./सं मध्यसं.	;
330		~	.		दोनों अपैहा	. F	£	:	:
in m	·	m >	‡	g - 1	£		क्रोजी अपरेशा	: :	<u>:</u>
		,	:	:	÷	<u>.</u>	विकियकवत		
35.	व्यन्तर उयो,तिषी	•~	ţ.	÷	\$		ऽ १३ चोक	त्रि,/बसं., ति./सं., म×असं.	:
- ;	1 to be 1	œ	7	:	*		f	ţ	÷
ny or or		lib.	7	\$	i <u>+</u>	•	: ;	:	:
;		20	5	F	•	\$	दोनों अपेक्षा	:	:
0°	सौधर्म हैशान	~ ¢	;	ऽ १४ नोक	ड हैं शु	० १८ वोक	ब्रोक्सम बद् ऽ <u>१</u> ४ लोक	ऽ <u></u> सोक १८	:
<u>;</u>		r m	;	£	. \$	£ .		: :	:
		r 20	<i>;</i> ;	;	· :	. :	#(H) 7 S	श्र	: :
900	सनरकुमार-सहसार	8.5.8	ł	•	स्व आधन्द्	↑	్!	² I	l
= 1		י אמי	1	↓ ".	737	ı	وله	1	[
1 fr	कारता-कामन्त्रय कारता-कामन्त्रय	Ľ	ਚ./ਕੋਲ,, ਨਿ./ਲ., ਸ×ਕੋਲ,	12 28 28 28 28 28 28 28 28 28 28 28 28 28	N S S S S S S S S S S S S S S S S S S S	र इ.स. स्	S E	द./थस., ग्त./स., म×असं.	:
357		m	£	<i>‡</i>	**			:	:
 ;	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	2 0	*	*	ŕ		ऽ हुँ सोक	新草: 5	:
-	नबग्ने वेषक	Ţ	त्रि./असं., ति./सं.		त्रि./असं., दिः/सं.,	त्रि/असं., ति./सं.,	. ति./सं.,		÷
	•	prìr			1×50.	, page 2	• 12 5 5 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4 4		,
: 5		>>	. .	: :	£ £	: £	ति /असं., ति.,सं.,		ŧ
087	अनु दिश्व से स्वक्ता जिन	>	क./असं, म×असं,	च./असं, म×असं.	च / असं., म×असं.	च./असं., मरुअसं.	म्रथतः व./यसं., म्रथसं.	न->अतः च-/असः, म×असः	÷
:	सर्वायं सिद्ध	20	म./सं.	म./सं.	म,/सं.	म.(सं.	1	•	ŧ

तैजम आहारक व केबती समुद्धात	: : :		1	: !	: ::	: :
द्भवदाद	स इ. इ. व्य	* :	111	* HE * CHE	2 2 2	´F &
मार्णान्तिक समुद्धपात	स्य इ. इ. इ. इ.	F = 1 1	1 1 1	* life	8 2 2	2 2
वे क्रियिक समुद्रवात	सर्व/ सं. जि./सं., ति.प्रअसं म.रु असं,	े डि.स. स्ट्रेस इ.स. १८ हो है ।		 कि/असं., वि./स मञ्ज्ञमं	त्रि./असं., ति./सं., म∘×असं.	: :
वेदमा व कवाय समुद्रश्रात	सर्व " कि./सं ति.×असं म-× असं. जि./बसं ति./सं	5 हुई. लीक वि./असी., ति./सी. मञ्जास. स्व खोधवत्	स्य अधि यनत भूलौधनत स्य अधिवत्	्र सु	त्रि-/असं ति./सं म∙×असं. 	: :
िबहारत्रत् स्वस्थान	 कि./असं., ति./सं., ग×तम	88. 88.		: :	: ::	: :
स्बस्थान स्बस्थान	सर्व /सं. वि./सं., तिप्रअसं., मध्यसः वि./असं. ति./सं., सध्यमं	. : :		ू स	त्रि,/असं., दि./सं., म×असं. ", सर्वे	त्रि./असं ति./सं म×असं. "
मुण- हथान		~ ~	% \ ~			
मार्गला	२. इन्द्रिय मार्गेणा— ३१.इ. एकेन्द्रिय सा. प. अप. ", सू. प. अप. ", बा. प. अप. ३१.६. विक्लेन्द्रिय सा.प.अप.	पंचेन्द्रिय सा. प. ., अप. एकेन्द्रियके सर्व विकल्प विकत्तिस्य ., ,,	%% पंचेन्द्रिय सा, प. ४५ पंचेन्द्रिय आ. ४६ पंचेन्द्रिय अप. ३. काय मार्गणाः—	पृ.अप् भागु.सा, बसु. प्.अत, तेजं, सृ. अप. तेज, सा. बसु. प.	पृ. अप. तेज वा. प्.अप. बाधु.बा.प्.अप. बन, निगोद सा. मू.	५, अ५, बन, नियोद बा, प. अप. बन,अप्रतिष्ठित्।अप.
प्रमाण सं. १ सं. २ प्. १		9 00 00 00 00 00 00 00 00 00 00 00 00 00	388 388 388 3. mid	20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 20 2	20 2	\$ 2

																				~		·		
तैजस, आहारक व केवती समुद्रघात	l	:	:	:	:	:		:	:	:		;		:	:	:		:	:	:	;		:	l
डवपाह	!	r la H	:	: 1	: 1	;	:	:	=	÷		:		F	*	ŗ.		;	. :	;	Ξ		;	l
मारणा=ितक समुद्धात	l	म प्र	•	;	. =	=		÷	÷		•	•		F	•	ş		:	: ‡	e P	;		£	1
नैक्तियक समुद्द्रभात	\uparrow	;	•		:	:		•		चि/असं, तिरुसं,	म×अस्.	जिम्बसं, ति×सं,	म्रूजस्ं,	;	:	:	,	;	:	•	:		ऽ हैं सोक	
वेदना कषाय समुद्धात	ष्चेत्रियवत्	ात प्र			त्रि/असं, तिरसं,	मरूजतः त्रिस्तः तिरूजसः	म×असं.	14 6 43 10 8 42, 18 8 44.	***	: =		कि/सं, ति×असं,	म×अस्,,	सम	ī	त्रि/असं, क्रिसं,	म×असं,	7	:	;	त्रियसं, तिमसं,	मूरुअसं,	ऽ ्र सोक	मुखोचवत
विहारअत्स्वस्थान	<u> </u>	:	:	•	÷	ŧ			;	:		•		;	: ,	i		;	;	:	:		ऽ जिसीक	
स्बस्थानस्बस्यान	ı	£1.	F	F	त्रि/असं, ति×सं,	म×असं. ऋ√सं, ति×असं,	म×असं त्रिश्वमं, तिश्रमं,	म्रज्यस	=	£		त्रि/सं, तिश्वासः,	म्रस्	संब	य	त्रिश्यासं, तिस्सं,	म्र्यस्	ŗ	•	F	त्त्र/असं, ति/सं,	म्रथसं	:	1
मुक्ष हथान	:	₩	~	•~	~	~	•		~	₩		~		•	•~	•~		~	9. /	~	₩		۰.	82-68
मार्गाः	त्रसकाय प. अप.	वृ.अय.सा.सू.प.अय	बायु	त्यं : : :	पृ. अप, ना, अप.	मायु मा. अप.	तेस बा. थय		मृ. अप. मा. प.	क्षेत्र वा. प.		बाधु ला. प.	í.	बन. निगोद सु. अप.	बन निगोद सू. प.	दम बा अप	<u>,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,</u>	* *	बन अप्रति प्रत्येक अप	; ; ; q.	त्रस अपयोष		त्रस वर्याद्य	
प्रमाण मं.१ सं.२ पु. पु.	% %		०५१	<u>.</u>	3%0	385	98 2		% %	<u> </u>		२५३		343	<u>.</u>	582		8×8	9 %	348	***			:
1. pt. [1.1]		~	e.		íď	~	<u>. 79</u>		_~~``	-		ñ'		~	· ·	~		~	منج	ď	~			

तेजस, आहारक व केवली समुद्रघात	केबल तै., आ.मुलोघवत्	मूलोघवत	केवत समु. मुलोधवत	:	:	च/असं, म/सं.	÷	: .	:		:	:	l	:	1		;		•	:
अवदाह		सम	म् :	:	1	:	;	:	:		:	:	1	ੇ ਰਿ ਹਿ	-	:	;	:	:	1
मारणान्तिक सम्बद्धात	स्रव	;	÷ =	र स्था १४ सोक	:	•	:	:	न स		S १४ लोक	:	1	संबं	!	E E	ऽ हुई सोक	. 4	رة رقاعة	هِ ا
नै कियिक समुद्धात	ऽ <u>८</u> बोक	F (जिथम, जिस. मुख्य	ऽ १४ लोक	÷	i	:	:	ऽ १४ तोक		ī	Ŧ,		े ड <u>इ</u> सोक	^	मिथसं, सिसं, मरबसं	त्रिवसं, ति/सं, म×असं	;	:	^
वेदना कषाय समुद्द्यात	ऽ हु हो स	स्य	: ;	ऽ <u>८</u> सोक १४ सोक	स्वस्थान बद् (नारकियों में)	च/असं, म/सं	•	*	ऽ हुए लोक		F	.	मुलोघनत	हैं प	मूलोघवत	स्र	ल्खसः मरुखसः त्रियसं, कि/सं, मरुखसं त्रि/बसं, लिसं, मरुखसं	;	:	मूलोधवद
विहारबत्तस्यान	ऽ १४ सोक	:	जिथम, लिम, मर्थम	ऽ १८ सोक		क्शिंसं, म्रसं	;	स	ऽ हुँ सोक		•	ŧ	-	S है सोक		त्रि/असं, तिः/सं,	क्रअस. त्रि/असं, ति/सं, म×असे	:	÷	
स्वस्थानस्बस्थान	मिथसं, लिसं, मध्यमं	e la company	 F F	त्रि/असं, क्षिसं, म× असं	;	क् असं, मिसं	:	ᄪ	ति./असं, स्मियं.,	मरुखस्.	F	:	!	म	1	सम	मिश्यमें, ति/सं., म×थसं		÷	1
मुण स्थान			···-	,,					~		3,8,5	K *	# 1 m	~	-K-	~	ex	m	* %	£-63
मार्गणा	४. योग मार्गणाः— ४१२ पाँचों मन बचन योग	काय योग सामान्य	औदारिक काथ योग " क्लिश्र "	is.	४१७ वै क्रियिक्तिष्य ,,	जाहारक काय योग	., मिश्र ,	कार्माण	पौंबों मन बबन सोस	•		•		काय योग सामान्य		औदारिक काषयोग				
प्रमाण सं.१स.२ पृ. पृ.	- % - ~	% %	% % % % % %	3Y 20	9 3 %	» n	388	8	***											

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

स्वस्यानस्वस्थान विहास्यस्तिस्थान
- जिल्ह
ति-/असं, सि/सं,
म्रअसं
त्रि./असं, ति/सं,
म×असः
:
त्रि./बसं. ति/सं, S
म×खतः.
•

च् असं, म्रस्थसं
क्षेयसं, म्यंसं क्षेत्रं, म्यंसं
ŧ

:
:
:

मृान्	मार्गणा	गुज स्थान	स्वस्थान-स्वस्थान	विहारत्रत्-स्वरथान	भेदना कषास व समुद्धात	^{के} कि ग्रिक समुद्धात	मारणाम्त्यिक समुद्धात	उपमाद	तेजस-आहारक व केवली समुद्धात
i 1									
४२० सीवेद (ह	४२० सीवेट (देगीप्रधान)		त्रि./असं.ति. ं., म×असं.	ऽ ॐ सोम	ऽ १४ सोक	ऽ ८ लोक	सर्वया है लोक	त्रि/असं, ति/सं., र्ट.लोक	:
$\overline{}$	पुरुषवेद (देव. ")			£	£	F		≫ ÷	तै, ब आा, मूलोधचत्
16	नपुंसक वेद		त्व	त्रि/असं, ति/सं, म×असं.	सम्		संब	्ता च	•
E	अपगत बेद		त्रि./असं., म/सं.	त्रि/असं म/सं	•	28 :: 28 ::	म∤असं., म×असं.	;	केवल समुद्धात व्योघवत्
ह्यी वेर	L	a	ति./असं ,ति./सं.,	र स्था स्था	श्रीक	% लोक	जं - पा	स	:
		œ	म×अंस,	ऽ हु सोक	८ है बोब	. ८ लोक १४	ऽ हुई सोक	ऽ १४ १४	•
		m	F	k	ŗ	ŗ	:	E	:
	3	>∞	\$	ŧ.	F	*	ऽ रूथ सोक	ऽ १९ खोक	ŧ
		×	त्रि./असं., ति./सं., मरुवानं	ति,/बस ति./सं., त्रि/असं, ति/सं म×असं म×नम	त्रि/असं , ति/सं., मर्ज्याः	त्रि,/बसं., ति/सं.,	ऽ १४ सोक	:	:
		415	न्रुष्यः च/असं, म/सं.	च/बसं., म/सं,	न्रज्यः, म/सं. च/असं., म/सं.	न^अत. च/असं, म/सं.	च/असं∴ म×असं	:	
ीं	पुरुष वेद	مر خد	1		स्रोबेद बत्		l	i	I I
			1		स्त्रीवेदः भत्		l	1	तैजस न थाहा. अधिवत्त
		.w 0	ı		स्त्री वेर्गत्		ţ	1	1
 6	नर्षसक वेद		स्	त्रि/बसं, ति/सं., म×बसं	हा [े] प्र	हु या १ तोक	संस	ুল ক	÷
		~	त्रि./असं., ति/सं म×असं	त्रि/असं., ति/सं. म×असं.	चि/असं.• ति/सं म×खसं.	त्रि,/असं., ति /सं. म×असं	१२ १४ नोक १४	ड १४ बोक	:
		m	*	ţ	.	· •	11.2	:	:
		>∞	:	F	‡	:	ऽ १५४ व्योक	च/असं., म×असं	:
		٠	.	;	:	•	. *	i	:

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

1	मार्पेणा	गुण- स्थान	स्बर्थान स्वर्थान	चिहारत्रस् स्वस्थान	वेदना कषाय समुद्रपात	वैक्रियिक समुद्धात	म।रणान्तिक समुद्देषात	उपवाद	पैजस आहारक ब केगिल समुद्द्यात
		w.	च./जसं., म/सं.	म, लोक	म वोक	म. लोक	च./असं, मश्यसं.	•	:
	अपगत बेर	20	1	\		मूलोषयस्		^	1
	६, क्षायमागेणा— '४२४ चारों कषाय		व े स	त्रिअसं, ति।सं, मध्यसं	यः	ऽ रहे	प प	सर्	ते, न था. ओषनत्
	अक्षाय		ı	•		— अषगतवेदीवत —	:	^	l
	चारों कषाय	83-2	ŀ			— मूलोघबत् -		1	******
	একণ্যে	82-22	1	V		मुलोघनद	,	1	1
	७. शानमार्गणा		-					. -	
	४२६ मतिश्रुत अञ्चान ४२७ विभेग ज्ञान		सर्व त्रि,/असः, स्मियः	्र हुए सोक ऽ म सोक १४	ड सब १४ सोक	्र स्ट्रांस इंड्रांसिक	सर्व देवनारको १३ लोक	· # :	: :
	४२१ मित, भ्रुत अनिधज्ञान		म्रूअस्.	;	:		तिसं मनुष्य=सन - जिल्लाम	45 \ S.	है. आ, ओघबत
	मन पर्यय ज्ञान		क्अंसं., मरूथसं.	च./ग्रसं., म×असं. <	च./असं म∺असं.	च./असे. म×असं. अपगत वेदवेत	व/थसं, म×असं.	:	۱ ۶
	कबत्हान मतियुत अज्ञान	~ r	सर्व त्रि/असै, ति.(सं.		सर्व १८ लोक	्टूट हिंदु १४ बोक १४ वोक	स्य सम्बद्धा	श्रु सर्वे हर्	: :
	किंभंग झान	، به	म×बस.	ऽ १ <u>४</u> लोक	ऽ है सोक	ऽ १४ सोक	र १२ वर्ष १४ वर्ष स्रोत	: :	: :
	मति अत अवधि	2-63	<i>-</i> 1		=	मूलोधवत	Į.) !
	मन.पयय ज्ञान केबल ज्ञान	20 mm	1 [मुलाघनत् मुलाघनत्			

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

४३१ संयम मार्गणा— मिश्वसः, म्मृसः सामाधिक छेदोः च्यंतसं, म्मृक्तः, म्मृक्तः मुस्म साम्पराय म्रद्धसं, स्मृसं ४३२ संयतासंयत म्रद्धसं, स्मृसं ४३४ असंयत ६-१४ — ५६ सामाधिक छेदोण, ६-१ — ५६ सामाधिक छेदोण, ६-१ ५६ सामाधिक छेदोण, ६-१ ५६ ५६ ५० ५० ५०
अस सामान्य सामायिक छेदोप. परिष्टार विश्वृद्धि "
असं यत संग्रम सामान्य सामायिक छेदोप. परिष्ठार विष्ठुद्धि भूक्ष्म साम्पदाय यथात्त्यात

भा० ४-६२

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

मार्गा सार्गा स्थाप स्			
स्ते मार्ग्या स्थाप स्थाप स्थाप स्थाप स्थाप स्थाप विद्वार सरकार में केटन क क्या स्थाप क्षित क्षित का मार्ग्या स्थाप स्याप स्थाप स्याप स्थाप स्य	तेजस आहारक ब केबली समुद्धात	ਲਿ ਭ ਦ ਹ ਹ ਅ	
सिर्म मार्गणा ह्यान स्वस्थान स्वस्थान किहारवतहब्धान बेहना व क्षायसमुद्धात वै किरियक समुद्धात हिम्म सम्बद्धात ह्यान मार्गणा हिम्म स्वस्थान स्वस्थान किहारवतहब्धान वि किरियक समुद्धात हिम्म मार्गणा हिम्म स्वस्थान हिम्म	उपवृद्धि	(सिध्यक्त) अपेक्षा) १४ । । । । । । ।	ऽ रेट दोक १८ दोक सर्वाहितकवत् मारणाहितकवत्
मार्गणा ह्यान स्वस्थान स्वस्थान विहारवतस्वरथान वेहना व क्या समुद्रतत हर्जन मार्गणा ह्यान स्वस्थान स्वस्थान विहारवतस्वरथान वेहना व क्या समुद्रतत १३७ जबकु दर्शन (मार्गणा ह्यान १९-१२ - स्व ज्ञावन विहारवतस्वरथान वेहना व क्या समुद्रतत १३० जबकु दर्शन १९-१२ - स्व ज्ञावन विहारवतस्वरथान वेहना व क्या समुद्रत १३० जबकु दर्शन १९-१२ - स्व ज्ञावन विहारवत्वर व्यावन विहारवतस्वर्थान विहारवतस्वर्थान विहारवत्वर्थान विहारविह्ना विह्ना विहारविह्ना व	मारणान्तिक सम्रह्मात	·# {	ऽ १४ सोक ऽ १४ सोक १४ सके सर्व १४ १ १४ सोक व अस. मध्यसं
सि. मार्गणा स्थान स्थान स्वस्थान स्वस्थान विद्यार विद्या स्थान स्			
सं.२ दर्शन मार्गणा स्थान स्वस्थान स्वस्थान दर्शन मार्गणा स्थान स्थित मि., प्रश्च खब्ध दर्शन स्थान स्थान स्थान प्रश्च खब्ध दर्शन १-१२ अबब्ध दर्शन १-१२ अबब्ध दर्शन १-१२ अबब्ध दर्शन १३-१४ अबब्ध दर्शन १३-१४ अब्ध क्र्या मार्गणा ठेश्या मार्गणा १३-१४ अध्य क्र्या नील कापोत १३-१४ सम्ध्यसः, ति./सं., मध्यसः, ति./सं., मध्यसः, ति./सं., मध्यसः, ति./सं., मध्यसः, ति./सं., न्रा क्र्या नोल कापोत १ सर्व क्र्या नोल कापोत १ सर्व क्र्या नोल कापोत १ सर्व क्र्या नोल स्था १ स्थ	बेदना व क्षाय समुद्धात	5 हुँ लोक नपुंसक्वेदबद अवधि ज्ञानेबद् केबल ज्ञानबद् स्व ओष्ठबद सूलोधबद् स्वोधबद् अवधि ज्ञानबद् केबल ज्ञानबद्	नप्सक बेदबत् ८ लोक १४ लोक १४ लोक १४ सर्ब सर्व भिक्तः सर्व भिक्तः
सं.२ सं.२ पु. दर्शन मार्गणा स्थान पु. पु. पु. पु. पु. पु. पु. पु. पु. पु.	विहारवतस्वस्थान	ऽ हुर बोक	S हुए लोक हुए लोक हुए लोक हिम्, बाक मिरुखसं, सि, सिं, मुख्यसं,
सं.२ सं.२ पु. दर्शन मार्गणा ४३४ चसु दर्शन ४३७ खबसु दर्शन ४३७ खबसु दर्शन अबसु पुरुष्ट अस्र पुरुष्ट कृष्ण नोल कापोत	स्बस्थान स्वस्थान	l	
सं.२ सं.२ पु. दर्शन मार्गणा ४३४ चसु दर्शन ५३४ चसु दर्शन अचल मार्गस मार्गणा	मुण स्थान	2	er 17 m 20 30
1	·	म म म म म	·- ,
	प्रमाण इ.५सं.३ १.५	\$ 17 17 1 1 10 0	2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

		स्यान	रंबस्यान-स्वस्थान	विद्वारत्रत्स्वस्थान	वेदना व कषाय समुद्धात	वे कि यिक समुद्धात	मारणान्तिक समुद्धात	द्भवर्धः	त जल आहारक व केत्रसी समुद्रात
_	कागोत	30	त्रि.(अस्., ति/स्., मश्र्यस्	च /बसः, भ×वसं,	च,/बर्स, म×असं,,	कि./असं., ति./स म×असं.	ति. सि. सि. सि., मध्यसं,	त्रि./असं., ति./सं., म×असं.	::
43E	 ₽	Ţ	त्रि./असे., ति./सं मध्यसं	n 35	हैं ह	्ट्रीय स	のな	१ १८ १८	•
	Ju	m- 50		र १४ लोक १४	ऽ इ.स.चीक क	ऽ १४ सोक	n	. w. j	: :
40°			त्रि-/बासं., ति./सं म×असं.	त्रि./असं. सि/सं म-×असं.	त्रि,/बसं.,/सि./सं., म×असं.	 त्रि./असं., ति/सं., म×असं.	त्र प्र इ.स.च्या इ.स.च्या	25 ::	÷
93 ×	* * . Ta	9 r	 कि./असं., दि./सं.,	ऽ ह सोक	मृखः घवत ऽ <u>८</u> तोक	ऽ हु नोक	ठ हुई बीक	्र १४ सोक	1 :
	***	mr 20	, , , , , , , , , , , , , , , , , , ,		; ; ; ;	£ .	े डिस्	. २१% स्थाप	: :
iii F		× ?	त्रि./थतं.,वि.सं म×थतं.	त्रि,/अस., ति./स., म×असं.	क्रि.थसं., ति.सि., म×असं. मूलोधवद	त्रि./अस., ति./स., म×अस.	त्र डो बो	i Ì	: 1
33 :	\$ \$6 \$3	Ţ ~	त्रि,/असं., ति/सं म×असं	त्र हिं स्	्र (४ सोक १४ सोक	ऽ ^{(%} बो	ري ها مي ما	च./असं., म×असं.	: :
. 00		>> ××	". त्रि./असं., ति./स.,	 त्रि/बसे., ति./सं.,	" त्रि-/असं., ति./सं.,	 त्रि./असं., दि./सं.,	ऽ १८८ सोम सोम	मारणान्तिकवत्	: :
	- <u>'</u>	47. 50	मध्यवस	म् अंत्रम्	म×अस. मूलोधबद	मरवस्.	ľ	I	1

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

प्रमुख्य मार्गणा स्थान स्पर्सणा स्थान स्पर्सणा स्थाप सञ्जदात सांप्रकस्तुद्वात सांप्रणास्त्रक सञ्जदात स्थाप स्थापी स्थाप स्थापी स्थाप स्थापी स्थाप स्थापी स्थाप स्थापी स्थाप स्थापी स्थाप स्थापी स्	प्रमाव		न्त		4		i A			तैजस आहारक ब
2012 मध्य मार्गणा— सर्व मार्गणा	म.१स.२ पृ. पृ.		स्थान	स्वस्थान स्वस्थान	बहु रंब तुरंब रंथ न	बर्ना भ क्षाय समुद्रात	न कि यिन समुद्धात	मारणान्तिक समुद्धात	्राच्या क	केवली समुद्धाद
82b भग्न भग्न सर्व प्रक्रिक्त प्	- 2	व्य भागेणा		-						
282 सम्बद्ध सम्बद्ध <td>27 70 70</td> <td>भव्य</td> <td>:</td> <td>स्र</td> <td>्र १४ लोक</td> <td>म</td> <td>त्रि./असं., ति./सं., क्रश्यमं</td> <td>संब</td> <td>व व े</td> <td>मूलोघनत</td>	27 70 70	भव्य	:	स्र	्र १४ लोक	म	त्रि./असं., ति./सं., क्रश्यमं	संब	व व े	मूलोघनत
अभव्य १ स्ट स्ट स्ट स्ट स्ट स्ट स्ट स्ट स्ट से स्ट से स्ट से से से से से से से से से से से से से	<i>‡</i>	अभव्य	:	=	Ē	*	5 5 6 7	:	;	:
अपन्य सार्गणा	306	भक्य	22-0			मूलोयबद्	^	: 1	: 1	l
222 सामान्य (केशिह्यमा) जिन्नसा, ति./से. 5 क्ष्रकांक 5 क्ष्रक 5 क्ष्रकांक 5 क्ष्रकांक 5 क्ष्रक 5	<i>F</i>	अभव्य	~	ক্ষ	रहें लोक	सब्	१४ स <i>ो</i> क	सुव	स	·
828 सामान्य(वेवाप्ट्रया) मि.अस., ति./सं., 5 हुं लोक 5 हुं लोक 5 हुं लोक 5 हुं लोक 829 (वार्यक (वेवाप्ट्रया) १९८ लोक 5 हुं लोक 5 हुं लोक 5 हुं लोक 1 कि. सं., ति./सं., त		म्यक्त्व मार्गजा								
१८२७ (सापिक (देन नाएकी) मध्यमं. ति.(सं., वि.)(सं.) २ हे लोक <	라 ?> ^>	सामान्य(देशपेक्षया)	:	त्रि/असं., ति./सं मरुअसं.,					च∮असं , म×असं.	:
826 (शायिक (देव नारकी) कि. जि.सी. कि. कि. कि. कि. कि. कि. कि. कि. कि. कि	20.20	,, (मन. ति, अमेक्षा)	:	;	•	त्रि./असं., ति./सं., स×असं	त्रि./असं., ति./सं., क्र∾शमं	रहें बोक	मारणान्तिक बद	मुलोयत
१२६ मिश्यसं, ति./सं., वि	٠ ٠ ٠	क्षाधिक (देव नारकी)		F	ŧ	र हुत्सोक १४ सम्ब	रूप्तुत्त. ऽ <u>म</u> बोक १४	ऽ न	त्रि,/अस., ति,/स., मध्यम	÷
824 सासादन <u>5 दें</u> सोक <u>5 दें सोक 5 दे सोक 5 दें सोक 5 दें सोक 5 दें सोक 5 दें सोक 5 दें सोक 5 दें सोक 5 दें सोक 5 दें सोक 5 दें सोक 5 दें सोक 5 दें सोक 5 दें सोक 5 दे सोक 5 दें सोक 5 दे सोक 5 दें सोक 5 दे सोक 5 दें सोक 5</u>	373			£		ਤਿ,/ਕਸੰ., ਕਿ./ਸੰ.,	ਭਿ./ਕਜ., ਨਿ./ਜ., 	त्रि./असं., ति./सं.,	नुरुषा निसंकेष्	मूलोघशत्
४६६ सासादन ऽ ६६ लोक ऽ ६ लोक ऽ ६८ लोक अस्. मुरु लोक १६ लोक असं. मुरु लोक १६ लोक १६ लोक	er 34 36	क क		F	r	ऽ त्राचीम	मर्थ्यस् ऽत्रीतिसोक	.	च्यसं मरुअसं.	तैजस य आहारक योघनन
844 सासादन हुन स्थानोंको प्रधानता नहीं हुन स्थानोंको प्रधानता नहीं हुन स्थानोंको प्रधानता नहीं हुन स्थानोंको प्रधानता नहीं स्थानाव्य सामाव्य अ-१४ सुनोष्ठाव्य ट्राको हुन सोक हुन सोक हुन सोक हुन सोक हुन सोक हुन सोक हुन सोक हुन सोक हुन सोक हुन सोक हुन सोक हुन सोक हुन सोक हुन सोक हुन सोक हुन सोक से अहमाग क्ष्रे असं. म्हेसं. कहमाग क्ष्रे असं. म्हेसं. कहमाग क्ष्रे असं. म्हेसं. कहमाग क्ष्रे असं. म्हेसं. कहमाग क्ष्रे असं. म्हेसं. कहमाग क्ष्रे असं. म्हेसं. कहमाग क्ष्रे असं. महेसं. कहमाग क्ष्रे असं. महेसं. कहमाग क्ष्रे असं. महेसं. कहमाग क्ष्रे असं. महेसं. कहमाग क्ष्रे असं. महेसं. कहमाग क्ष्रे असं. महेसं. कहमाग क्षे असं. महेसं. कहमाग क्ष्रे असं. महेसं. कहमाग का क्ष्रे असं. महेसं. कहमाग का क्ष्रे असं. महेसं. कहमाग का क्ष्रे असं. कहमाग का क्ष्रे असं. क्ष्रे असं. कहमाग का क्ष्रे असं. क्ष्रे असं	3. 5.	उपश्म		ŧ				च्/असं म्रूअसं.	क्याम, मध्यम	<u> </u>
824 सम्यमिष्णात्त्र इन स्थानोंकी प्रधानता नहीं सम्यानिक प्रधानता नहीं सम्यानिक प्रधानका नहीं स्थानिक सम्यानिक स्थानिक	٠ ١ ١ ١	सासादन		£		۵,5	; ÷	्र स्था स्थान	तियंचमें उरदन्त नारकी	:
ह्न स्थानोंकी प्रधानता नहीं सम्यामिक्यादोह निध्यादोह निध्यादोह निध्यादोह सामान्य हुन स्थानोंकी प्रधानता नहीं सामान्य हुन सामान्य सुनोध्यत् हुन सामान्य		,							÷ 410.	:
सामन्य 8-१४ — मुलोधवत — मुलोधवत — मुलोधवत — मुलोधवत — मुलोधवत — मुलोधवत — मुलोधवत — सुलोधवत — सुलोधवत — सुलोधवत — सुलोधवत — म	2. A	सम्यमिग्ध्यात्त्र			:	। इन स्थानोंकी प्रधानतान	संदर्भ	;	\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\	÷
शायिक 8 त्रि/असं., स्प्रिसं., ट्रेलोक <u>ट</u> लोक <u>ट</u> लोक हुन् लोक हुन हुन् लोक हुन् लोक हुन् लोक हुन् लोक हुन् लोक हुन् लोक हुन् लोक हुन् लोक हुन् लोक हुन् लोक हुन् लोक हुन् लोक हुन् लोक हुन् लोक		Tragette menen	3	1	-	न्धं सक्षेत्रवत् -	1	l	[1
र चांथसं. मंसं. चंदमाग चांथसं. मंसं. बहुभाग चांथसं. मंसं. बहुभाग चांथसं. मंसं. बहुभाग चांथसं. मंसं. वहुभाग चांथसं. मं है-९४ -७ -७ -७ -०० -००००००००००००००००००००००००	<u> </u>	सायि क साथिक	» »	 त्रिः/असं., स् भृतं.,	टू १४ लोक	मुलाध्यत द लोक १४ लोक	रू लोक	्र स्र	न्न,/असं , ति./सं	1 :
वेदक 8-७ — स्लोघबत — मुलोघबत — — — — — — — — — — — — — — — — — — —	\$03		->4	म्ब्रुक्तः, म् _{र्} सं.	क्यंबर्ट, म्यंसं, बहुभाग	च/असं., म्र/सं. बहुभाग	च्भेअसं म∮सं.		₽ ₹ *	:
, — — — — — — — — — — — — — — — — — — —	: 32	को स्य	20 - 20 20 - 20 20 - 20	1 !		'मूखोषवत् सत्त्रोधक्ष		I 1	1	1 1
		•	<u> </u>	-		त्रीकाचन		_		

तैजस आहारक व केबली समुद्द्यात		į	l	{	ı ļ	मूलोषन्त	l	ļ	l :	मुलोधवत	केबली = मूलो वबत	1 :	•		:	ı
उपमाद	मारणागित्सयत्	· :	I	I	1 1	मारणाम्तिकवद्	ı	l	ब ैं।	क प्र		जि./असं हि./सं., मध्यसं.		मिर्धितः, १६./६.म् मह्स्यस्	;	1
मारणाम्तिक समुद्धघात	च /असं. म×सं.	च,/असं., म×सं.	l	l	1 1	संज्ञोसे असंज्ञी= ऽ १९६ असंज्ञीसे संज्ञी= सर्व	1	1	ब प्र	÷le ∰	:	ड हुए सोक ब र ट्रिया		ک در قام این های ها	ड हैं हुआ जोक	1
वै कि यिक समुद्धात	ऽ हु सोक	ति./असं., ति/सं., मध्यमं	*	^		<u>त्र</u> क्रीक	^	^	१४ लोक	त्रि./असं कि./सं		ऽ हिस्स	•	*	त्रि,/असं., ति./सं., म.×असं.	\
वेदना कषाय समुद्धात	ऽ १४ लोक	ति /जसं , ति./सं., मध्यमं	गुर्लो घवत् मुलो घवत्	;	: :	n] 55 (E	मुप्तक केरबत	स्व अधिवत्	मूल) धवत् सब सब	म	:	मुन्तीषवत २ है लोक १५ लोक	:	:	त्रि,/असं. ति,/सं., मध्यसं.	मूलो घवत्
किहारवत्-स्वस्थान	ह है सोक	त्रि./असं., दि./सं., कश्यां		*		त १२ अक्र	-	\ \ \	6. वि./असं., वि./सं., मञ्जर्सं.	हैं स्ट्रा स्ट्रि	:	र इह सोक		*	त्रि,/थसं ति./सं म.×असं.	\ \ \
स्बस्थान-स्बस्थान	जि./असं. स ./सं.,ड मध्यसं	त्रि./असं., ति./सं., मध्यम	1	1	[-	त्रि./असं., ति./सं म×असं.	ı		्यं ।	र क्षि स्प	F	ि /असं., ति./सं., क्राज्यमं	*	ī.	ति,/असं., ति /सं., म×असं.	. (
गुण- स्थान	\$ 0	<i>S</i>	\$ }-\$	œ	or ex	:	:	~	200	:	:	~ ~	lus.	30	3 4	4-63
मार्गणा	उपश्म			सासादन	सम्यानमध्यात्त्र मिष्यादर्शन	१३. संज्ञी मार्गवा ४६६ संज्ञी		संखी	थसंजी	१४. आहारक मार्गणा ४६१ आहारक	अनाहारक	आहारक				
प्रमाण स १स.२ पृ. पृ.	20 0 0	- 37 60 61		40° C)	- :	8 3 3 5 E	20	40	80 ·	Ø \$ \$	ş	308:		-	<i>-</i>	

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

	स्यस्यान-स्वस्थान विहारवत् स्वस्थान	बद्दा व कथान समुद्रधात	व कियिक समुद्रैयात	याते समुद्धपात समुद्धपात	<u>ख</u> यवाद	सैंजस आहारक ब क्रेबल समुद्धात
: : : : : : : : : : : : : : : : : : :		で : : : : : : : : : : : : : : : : : : :	:::::	: : : :	सम् सम् १८८ तम् सम् सम्बद्धाः	
	:			:	सर्व/असं,	P
प्रकृति		13. Est	स्यिति	अनुभाग	गाम	মধ্য
4	उत्तर प्रकृ ति	मृत प्रकृति	उत्तर प्रकृति	मूल प्रकृति	उत्तर प्रकृति	मूल प्रकृति जिसर प्र कृति
देश प्ररूप १/११२-३	बन्धकोंकी भोघ आहेश प्ररूपणां—(म, ब,(g,) १/२१२-३३१/१११-२३१ २/ २/	19.18.19) 2/200-2=6/200-20 2/200-20/20-20 2/200-20/20-20 2/20-20/20-20	\$98-778/\$\$3/2 \$98-9\$\$/R39-769/E E84-68/84/35-798/E	8/40=-48/638-638/8 8/40=-48/638-638/8	क्रिया-४०४/१४९-११६ ४/४१४-४४६/२८६-२०१	\$ / P.23- \$24/64-62
मोहनीय सत्कर्मिक बन्धकोंकी ओघ आदेश प्ररूपणा-	इपणा(क,पा./१	чт./3,/§/q)				
\$2-898/8 ROR-332/3=8-898/	श्वर्व-१६१/३३१-४५४१					
14-848/2 18-848/2 14-86-6	4/406-848/866-848 8/848-848/866-848 8/406-848/866-806	3/205-38//26-506/8 3/205-382/86-530/8 3/205-382/86-50	\$/\$24-\$8@/\$\$E-3E@ 8/\$9E-828/\$0-\$@ 8/\$9E-800/534-38@	४/१०३-१२१/६४-७४ ४/११६/१०३-१०४	858-838/078-838/8 838-838/008-038/8 888-888/088-388/8	
				;		
र्वोच शरीरके योग्फ पुद्रगत स्कन्योंकी ज. उ. संघातन पि पाँच शरीरके स्वामियोंके २, ३, ४ आदि भंगोंकी अपेक्षा— २३ प्रकार वर्गणाओका जघन्य स्वर्शे –	रशातन कृति	र्वांच शरीरके योग्फ पुदुगस स्कन्धोंकी ज. उ. संघातन परिशातन कृतिके स्वामियोंकी अपेक्षा—दे. घ. १/३७०-३५०। गाँच शरीरके स्वामियोंके २,३,४ आदि भंगोंकी अपेक्षा— २३ प्रकार वर्गणाओंका जघन्य स्वर्ध —	-दे. प. १/३७०-३५०। -दे. प. १४/२५६-२६७। -दे. प. १४/१४६/२०।			

स्पर्शन इन्द्रिय — दे. इन्द्रिय। स्पर्शन क्रिया — दे. क्रिया/३/३।

स्पष्ट - न्या, वि./टी./८६-८६/८१६ कि पुनरिदं स्पष्टरवं नाम। साक्षारकरणमिति चेत् (८६/८) ततो निर्मलप्रतिभासस्वमेव स्पष्टरवस्। =साक्षात् रूपसे देखना स्पष्टरव है।८६/८। निर्मल प्रतिभासका नाम स्पष्टरव है।

स्पृहा---म्या, सू./टी./टी./४/१/३/२३०/१२ अस्वपरस्वादानेच्छा स्पृहा। == धर्मसे अविरुद्ध किसी पदार्थके पानेकी इच्छा करनी स्पृहा कहलाती है।

स्फिटिक — १. सीधर्म स्वर्गका १८वाँ पटल व इन्द्रक — दे. स्वर्ग १/३; २. गन्धमादन निजयार्धका एक कूट — दे. लोक १/४;३. मानुषोत्तर पर्व तस्थ एक कूट — दे. लोक १/१०; ४. कुण्डल पर्व तस्थ एक कूट — दे. लोक ११/१२; १. रुचक पर्व तस्थ एक कूट — दे. लोक १५/१३।

स्फटिकप्रभ - कुण्डन पर्वतस्थ एक कूट - दे. लोक/१/१२।

रफोट---१. मीमांसक मान्य एक अयापक तस्य जिसके द्वारा ध्वस्यात्मक शब्द में अर्थ प्रकाशन की सामर्थ्य अभिवयक्त होती है। २. रा. वा /५/२४/५/४८६/१ अपरे मन्यन्ते ध्वनयः क्षणिकाः क्रम-जन्मानः स्वरूपप्रतिपःदनादेवीपशीणशक्तिका नाथन्तिरमवनोधयि-तुमलस्। यदिसमर्थाः स्युः पदेभ्यः इव पदार्थेषु प्रतिवर्णं वर्णार्थेषु प्रत्ययः स्यात्। एकेन चार्थे कृते वर्णान्सरोपादानमनर्थकं स्यात्। नापि क्रमजन्मनां सहभावः संघातोऽस्ति योऽर्थेन युज्यते। अत-स्तेम्योऽर्थप्रतिपादने समर्थशन्दारमा अमूर्तो निरमोऽतीन्द्रियो निरवयवो निष्कियो ध्वनिभिरभिन्यङ्ग्य इत्यभ्युपगन्तव्य इति; एतच्चानुपपन्नम्; कुतः । व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावानुपपत्तेः । · · किच स ध्वनिवर्यञ्जकस्फोटस्य वा उपकारं कुर्यात्, श्रोत्रस्य, उभयस्य वा। ...किंच, न ध्वनयः स्फोटाभिव्यक्तिहेतवो भवन्ति उत्पत्तिक्षणादुध्व-मनबस्थानात् उरपत्तिक्षणे चासत्त्वात्। ... किंच, स्फोटध्वनेरन्यो बास्यात, अनन्यो वा ।...किच व्यङ्ग्यत्वे सति अनित्यत्वं स्यात् स्फोटस्य घटादिवत् विज्ञानेन व्यङ्ग्यत्वात् । . . . महदादिवत् इति चेत्; न साध्यसमस्यात्।--न चामूर्तः कश्चित्रित्यो निरवयवो मृर्तिमतानित्येन सावयवेन व्यङ्ग्यो दृष्टः, तद्भावात् साध्यसिद्धय-भावः। = स्फोटवादी मीमांसकोंका मत है कि ध्वनियाँ क्षणिक हैं, कमशः उत्पन्न होती हैं और अनन्तर क्षणमें विनष्ट हो जाती हैं। वे स्वरूपके कोध करानेमें ही शीणशक्ति हो जाती हैं अतः अर्थान्तरका ज्ञान करानेमें समर्थ नहीं हैं। यदि ध्वनियाँ ही समर्थ होती हैं तो पर्रेंसे पदार्थीकी तरह प्रत्येक वर्णसे अर्थबोध होना चाहिए। एक वर्णके द्वारा अर्थबोध होनेपर वर्णान्तरका उपादान निरर्थक है। क्रमसे उत्पन्न होने वाली ध्वनियोंका सहभावरूप संघात भी सम्भव नहीं है, जिससे अर्थबोध हो सके। अतः उन ध्वनियोंसे अभिव्यक्त होने वाला अर्थ प्रतिपादनमें समर्थ, अमूर्त, निस्य, अतीन्द्रिय, निरवयव और निष्क्रिय श्बरफोट स्वीकार करना चाहिए। उनका यह मत ठीक नहीं है, क्यों कि ध्वनि और स्फोटमें व्यंग्यव्यञ्जक भाव नहीं बन सकता। ... किंच ध्वनियाँ स्फोटकी व्यञ्जक होती हैं तो वे स्फोटका उपकार करेंगी या श्रोत्रका या दोनोंका।... किंच, जब ध्वनियाँ उत्यक्तिके बाद ही नष्ट हो जाती हैं तब वे स्फोटकी अभिव्यक्ति कैसे करेंगी ! ... किंच, स्फोट यदि ध्वनियोंसे अभित्र है !... किंच, यदि स्फोटको व्यंग्य मानते हो तो उसमें घटादिकी तरह अनित्यता भो आ जानी चाहिए।.. महान् अहं कार आदि सांख्यमत तत्त्वोंका दशान्त देना ठीक नहीं है, नयों कि जैसे स्फोटकी अ्यंग्यता असिद्ध है उस तरह उन तत्त्रोंको भो।...फिर ऐसा कोई. दृष्टान्त नहीं मिलता जो अमूर्त नित्य और निरवयत्र होकर मूर्त अनित्य, और सात्रयत्रहे व्यंग्य

होता हो। इसके अभावसे साध्यकी सिद्धिका अभाव है। अतः शब्द ध्विन रूप हो है और नित्यानित्यात्मक है ऐसा स्वीकार करना चाहिए। (सि. वि./टी./११/५/७०२/२२); (न्या. वि./टी./३/४६/ २२८/३२); (क. पा. १/११३,१४/६१८/६६/४)

स्फोट कर्म-दे, सावव/६।

स्फोटित — गणितकी व्यकलन विधिमें मूल राशिमें ऋण राशि करि स्फोटित कहा जाता है। — दे. गणित/11/१/४।

स्मरणाभास— प. पु./६/ अतिस्मस्तिदिति ज्ञानं स्मरणाभासम्: जिनदत्ते स देवदत्तो यथा । या = देखे व सुने पदार्थको कालान्तरमें उसका स्मरण न होकर उसकी जगह दूसरेका स्मरण होना स्मरणा-भास है। जिस प्रकार पूर्व अनुभूत जिनदत्तको जगह देवदत्तका स्मरण स्मरणाभास है।

स्मृति--१. दे, मतिज्ञान / १/२, मति, स्मृति, चिन्ता, संज्ञा और। अभिनिमोध में एकार्थ वाची हैं।

स. सि./१/१३/१०६/४ स्मरणं स्मृतिः। =स्मरण करना स्मृति है। (ध १३/६.५.४१/२४४/३)

धः १३/६.६.१३/३३२/४ विट्ठ-सुदाणुभूदट्ठविस्मणाणिवसेसिदजीवो सदी णाम । = दष्ट, श्रुत और अनुभूत अर्थको विषय करनेवाले ज्ञानसे विशेषित जीवका नाम स्मृति है ।

म.पु./२१/२२६ स्मृतिजींवादितत्त्वानां याथारम्यानुस्मृतिः स्मृता। गुजा-नुस्मरणं वा स्थाव सिद्धाईत्परमेष्ठिनाम् । =जीवादि तत्त्वीका अथवा अईद सिद्धका गुणस्मरण स्मृतिः है।

प. मु./२/२-४ संस्कारोद्वाधिनमन्धमा तदित्याकारा समृतिः।३। स देवदत्तो यथा ४। - पूर्व संस्कारकी प्रकटतासे 'वह देवदत्त' इस प्रकारके स्मरणको समृतिज्ञान कहते हैं।३-४। (न्या, दी./२/४४/६२/६); (स. म./२८/३२१/२२)

न्या. दी, १३/१८/१६/१३ तत्ती क्लेखिज्ञानं स्मरणम्। = 'बह' का उक्लेखी ज्ञान स्मरण है। २, स्मृति व प्रत्यभिज्ञानमें अन्तर — दे. मितज्ञान/३। ३. स्मृति आदि ज्ञानोंकी उत्पत्तिका क्रम व स्मृति आदि भेदोंकी सार्थकताकी सिद्धि — दे, मितज्ञान/३।

स्मृत्यन्तराधानम् ।८। अनुस्मरणम् परामर्शनं प्रश्यवेक्षणमित्यनर्थात्रम् स्मृत्यन्तराधानम् ।८। अनुस्मरणम् परामर्शनं प्रश्यवेक्षणमित्यनर्थात्रम्, इदमिदं मया योजनादिभिरभिज्ञानं कृतमिति, तदभावः
स्मृत्यन्तराधानम् । = मर्यादाका स्मरण न रखना स्मृत्यन्तराधान है।
(स. सि./७/३१/३६१/६) अनुस्मरण, परामर्शन और प्रत्यवेक्षण ये
एकार्थवाची हैं। यह यह मैंने योजनादिका प्रमाण किया था, उसका
भूल जाना स्मृत्यन्तराधान है। २. दिग्वतका एक अतिचार है। - दे.
दिग्वत।

स्मृत्यनुपस्थाना नि-१, सामायिक व्रतका एक अतिचार -दे. सामायिक; २, प्रोषधोपवास व्रतका एक अतिचार -दे. प्रोषधोपवास । ३, स. सि./७/३२/३७०/६ अने काउयं स्मृत्यनुपस्थानं ।

रा. वा./०/२३/४-४/६६०/१३ अनैकाय्यमसमाहितमनस्कृता स्मृत्यनुप-स्थानिमत्याख्यायते ।४। स्यादेतत्-स्मृत्यनुपस्थानं तन्मनोदुःप्रणिधान-मेवेति तस्य ग्रहणमनर्थकिमितिः तन्नः किं कारणम्। तत्रान्याचिन्तनात् । तत्र हि अन्यत् किंचित् अचिन्तयतिश्चन्तयत एवाविषये क्रोधा-द्यावेदाः औदासोन्येन वावस्थानं मनसः, इह पुनः परिस्पन्दनात् चिन्ताया ऐकाय्येणावस्थानमिति विस्पष्टमन्यत्वम् । रात्रिन्दिवीयस्य वा प्रमादाधिकस्य सचित्यानुपस्थानम् । —चित्तको एकाग्रता न होना और मनमें समाधिरूपताका न होना स्मृत्यनुपस्थान है। प्रशन—स्मृत्यनुपस्थान तो मनदुष्प्रिधान हो है, इसलिए इसका कथन करना व्यर्थ है ? उत्तर—ऐसा नहीं है, क्योंकि, मनोदुष्पणि-धानमें अन्य विचार नहीं आता, जिस विषयका विचार किया जाता है, उसमें भी क्रोधादिका आवेश आ जाता है, किन्तु स्मृत्यनुपस्थान-में चिन्ताके विकल्प चलते रहते हैं और चित्तमें एकाग्रता नहीं आती । अथवा रात्रि और दिनकी निस्य क्रियाओंको ही प्रमादकी अधिकतासे भूल जाना स्मृत्यनुपस्थान है। (चा. सा./२०/४)

स्यन्दन — ध. १४/६,६,४२/३६/१ चक्कबिट-चलदेवाणं चढणजोग्गा सञ्बाउहाबुण्णा णिमणपवणवेगा अच्छे भंगे वि चक्कबडणगुणेण अपिडिहयगमणा संदणा णाम । — जो चक्रवर्ती और बलदेवोंके चढ़ने योग्य होते हैं, जो सर्व आयुधोंसे परिपूर्ण होते हैं, जो पवनके समान वेगबाले होते हैं और धुग्के दूट जानेपर भी जिनके चक्कोंकी इस प्रकारकी रचना होती है जिस गुणके कारण जिनके गमनागमनमें माधा नहीं पड़ती वे स्यन्दन कहलाते हैं।

स्यात्—१. स्यात् शब्दका लक्षण

तेनेतर्निवृत्तिप्रसङ्गे तत्संभवप्रदर्शनार्थः रा, वा./४/४२/१४/२४३/११ स्याच्छब्दप्रयोग', स च लिङन्तप्रतिरूपको निपातः। तस्यानेकान्त-विधिविचारादिषु बहुष्वर्धेषु संभवत्सु इह विवक्षावद्यात् अनेकान्तार्थी गृह्यते ।...अथवा, स्प्राच्छब्दोऽयमनेकान्तार्थस्य खोतकः । खोतकश्च वाचकप्रयोगसन्तिधिमन्तरेणाभिष्रेताथविद्योतनायः तद्वाटयधमधाराथिभिधानायेतरपदप्रयोगः क्रियते । अथ केनोपात्तो-Sनेकान्तार्थः अनेन योत्यते । उन्तमेतत् - अभेदनृत्या अभेदोपचारेण वा प्रयुक्तशब्दवाच्यतामेवास्कन्दन्ति इतरे धर्मा इति । #इससे इतर धर्मीकी निवृत्तिका प्रसंग होता है, अतः उन धर्मीका सङ्गाव चोतन करनेके लिए 'स्थात' शब्दका प्रयोग किया गया है। स्यात् शब्द लिङन्त प्रतिरूपक मिपात है। इसके अनेकान्त विधि विचार आदि अनेक अर्थ हो सकते हैं। परन्तु विवक्षावश यहाँ अनेकान्त अर्थ लिया गया है।...अथवा स्यात शब्द अनेकान्तका बोतक होता है। जो द्योतक होता है वह किसी वाचक शब्दके द्वारा कहे गये अर्थका ही द्योतन कर सकता है अतः उसके द्वारा प्रकाश्य धर्मकी सूचनाके लिए इतर शब्दोंका प्रयोग किया गया है। प्रश्न-इसके द्वारा किस कारणसे अनेकान्तार्थका द्येतन होता है। उत्तर-यह बात पहले भी कही जा चुकी है कि अभेद वृत्ति वा अभेदोपचारके द्वारा प्रयुक्त शब्दोंकी बाच्यता हो इतने धर्मोंका प्रहण करती है। (स.भं.त./ 38/80)

श्लो. वा./२/१/६/५०/४५६/१ स्यादिति निपातोऽयमनेकान्तविधिवि-चारादिषु बहुष्वर्थेषु वर्तते । स्यात यह तिडतप्रतिरूपक निपात ं अनेकान्त, विधि, विचार, और विद्या आदि बहुत अर्थोंमें वर्त रहता है। (विशेष दे. स्याद्वाद/५/२)।

अष्टसहस्रो/टिप्पणी/पृ, २८६ विधि-आदिष्त्रर्थेषु अपि लिङ्लकारस्य स्यादिति क्रियारूपं पदं सिद्धवति । परन्तु नायं स कृष्दः निपात इति विशेष्योक्तत्वात् । —स्यात शब्द विधि आदि अर्थोमें लिङ् लकारकी क्रिया रूप पदको सिद्ध करता है, परन्तु यह स्यात शब्द निपात नहीं है। क्योंकि विशेषता पहले कह दी गयी है।

२. स्यात् नामक निपात शब्द द्योतक व वाचक दोनों है

आप्त. मी./भाषा/१/१४/२३ (सप्त भंगीमें) सव आदि शब्द हैं ते तौ अनेकान्तके वाचक है और कथं चित् शब्द है सो अनेकान्तका द्योतक है। बहुरि इसके आगे एवकार शब्द है सो अवधारण कहिये नियम के अधि हो इहै। बहुरि यह कथं चित्र शब्द है सो याका पर्याय शब्द स्यात् है।

स. भं. त./२३/१ न च निपातानां द्योतकरवादेवकारस्य वाचकरवं न संभवतीति वाच्यम्। निपातानां द्योतकरवपक्षस्य वाचकरवपक्षस्य च शास्त्रे दर्शनात्। 'द्योतकाश्च भवन्ति निपाताः' इत्यम्न च शब्दा-द्ववाचकाश्च इति व्यारूपानात्। —कद्याचित् यह कहो कि निपातोंको द्योतकता है नैकि वाचकताका सम्भव है। सो ऐसा नहीं है, क्योंकि निपातोंका द्योतकरव तथा वाचकरव दोनों शास्त्रोंमें देखे गये हैं। 'द्योतकाश्च भवन्ति निपाताः' निपात द्योतक भी होते हैं इस वाक्यमें च शब्दसे वाचकताका भी व्यारूयान किया गया है।

३. स्यात् शब्दकी अर्थं विवक्षा

स. भं तः /३०/१ स्याच्छ स्वस्य चाने कान्तिविधिविचार। दिष्ठु बहुष्वधेषु संभवत्सु इह विवक्षावशादनेकान्तार्थो गृह्यते। — यद्यपि अनेकान्त, विधि, विचार आदि अनेक अर्थ स्यात्कारके सम्भव हैं तथापि यहाँ वक्ताको विशेष इच्छासे अनेकान्तार्थ वाचक ही स्यात्कार शब्दका प्रहण है।

४. स्यात् शब्दका अर्थे अनियमितता

ध. १३/४,४,२६/०८/१० तिम्ह चेत्र अत्थे गुणस्स पज्जायस्स वा संकमित । पुव्चित्रतानेगादो जोगंतरं पि सिया संकमित । — (पृथवत्व वितर्क वीचार सुक्बध्यान अन्तर्मुहूर्त तक एक ही अर्थको ध्यानेके परचात्) अर्थान्तरपर नियमसे संक्रामित होता है। और पूर्व योगसे स्यात (अनियमित रूपसे) योगान्तरपर संक्रमित होता है।

\star स्यात् शब्दकी प्रयोग विधि व उसका महत्त्व

—दे. स्याद्वाद/४,५ ।

स्याद्वाद--आ, शुभभद (ई. १६१६-१८६६) द्वारा रचित एक न्याय विषयक ग्रन्थ।

स्याद्वाद अनेकान्तमयी वस्तु (दे. अनेकान्त) का कथन करनेकी पद्धित स्याद्वाद है। किसी भी एक शब्द या वाक्यके द्वारा सारोकी सारी वस्तुका गुगपद कथन करना अशक्य होनेसे प्रयोजनवश कभी एक धर्मको मुख्य करके कथन करते हैं और कभी दूसरेको। मुख्य धर्मको मुक्त हुए श्रोताको अन्य धर्म भी गौण रूपसे स्वीकार होते रहें उनका निषेध न होने पावे इस प्रयोजनसे अनेकान्तवादी अपने प्रयोज वावयके साथ स्यात् या कथं चित्त शब्दका प्रयोग करता है।

१ स्याद्वाद निर्देश

- १ स्याद्वादका रूक्षण ।
- २ विवक्षाका ठीक-ठीक स्वीकार ही स्यादादकी

सत्यता है।

- ३ स्याद्वादके प्रामाण्यमें हेतु।
- स्यात् पद का अर्थ।

--दे, स्याद् ।

अपेक्षा निर्देश

₹

- १ सामेक्ष व निर्पेक्षका अर्थ ।
- विवक्षा एक ही अंश पर छागू होती है अनेक-पर नहीं।
- 🔾 विवक्षाकी प्रयोग विधि ।

ሄ विवक्षाकी मयोग विधि प्रदर्शक सारणी । बस्तुमें अनेकों विरोधी धर्म व उनमें कथंचित् —दे, अनेकान्त/४/४। अनेकों अपेक्षासे वस्तुमें मेदामेद - दे. सप्तमंगी/१। * * भेद व अभेदका समन्त्रय -- दे. द्रव्य/४। नित्यानित्यत्वका समन्वय -- दे. उरपाद/२। ч अपेक्षा प्रयोगका कारण वस्तुका जटिल स्वरूप । Ę पक अंशका छोप होनेपर सबका छोप हो जाता है। 9 अपेक्षा प्रयोगका प्रयोजन । मुख्य गौग व्यवस्था ŧ ₹ मुख्य व गौणके रूक्षण मुख्य गौण व्यवस्थासे ही वस्तु स्त्ररूपकी सिद्धि है । ₹ ₹ सप्तर्भगीमें मुख्य गीण व्यवस्था । X विवक्षा वश मुख्यता व गौणता होती है । ч गौणका अर्थ निषेध करना नहीं। B स्यात् व कथंचित् शब्द प्रयोग विधि १ स्यारकारका सम्यक् प्रयोग हो कार्यकारी है। ą व्यवहारके साथ ही स्यास्कार आवश्यक है निइचयके साथ नहीं। स्यात्कारका सच्चा प्रयोग प्रमाण ज्ञानके * पदचात् ही सम्यक् होता है। —दे. नय/II/१० I ş स्यास्कारका प्रयोग धर्मोंमें होता है गुणींमें नहीं। स्यात्कार भावमें आवश्यक है शब्दमें नहीं। X स्यात् शब्दकी मधीग विधि -दे सप्तर्भगी/२/६;६ ! * कथंचित् शब्दके प्रयोग ।

स्यास्कारका कारण व प्रयोजन

स्यात्कार प्रयोगका प्रयोजन एकान्त निषेध।

स्यात् शब्दसे ही नय सम्यक् होती हैं।

२ स्यात्कार प्रयोगके अन्य प्रयोजन ।

* स्याद्वादका प्रयोजन हेयोपादेय बुद्धि

—दे, अनेकान्त/३/२ ।

सप्त भंगीमें स्थात् शब्द प्रयोगका पछ ।

| एवकार् व स्यास्कारका समन्वय ।

१. स्याद्वाद निर्देश

4

₹

*

₹

९. स्याद्वादका लक्षण

न. च. व./२४१ जियमणिसेहणसीको जिपादणादो य जोहु खलु सिद्धो ।
सो सियसहो भणियो जो साबेश्वं पसाहेदि ।२४१। = जो नियमका
निषेध करनेवाला है, निपातसे जिसकी सिद्धि होती है, जो सापेक्षता
की सिद्धि करता है वह स्यात शब्द कहा गया है।

- स्व. स्तो./मू./१०२-१०३ [सर्वथा नियमत्यागी यथादृष्टमपेक्षकः ।
 स्याच्छाव्यस्तावके न्याये नान्येषामाश्मिवद्विषाम् ।१०२। अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाणन्यसाधनः । अनेकान्तः प्रमाणासे तदैकान्तीऽपितान्नयात् ।१०३।
- स. सा./ता. वृ./स्याद्वाद अधिकार/१११/११/ पर उद्धत—धर्मिणोऽनन्तरूपस्वं धर्माणां न कथंचन। अनेकान्तोऽप्यनेकान्त इति जैनमतं ततः।

 —१. सर्वथा रूपसे—सत् ही है, असत् ही है इत्यादि रूपसे प्रतिपादनके नियमका त्यागी और यथाइष्टको—जिस प्रकारसे वरतु
 प्रमाण प्रतिपन्न है उसको अपेक्षामें रखनेवाला जो स्यात शब्द है वह
 आपके न्याय (मत) में है। दूसरोंके न्यायमें नहीं है जो कि आपके
 वैरी हैं।१०२। आपके मत्में अनेकान्त भी प्रमाण और नय साधनोंको लिये हुए अनेकान्त स्वरूप है, प्रमाणकी दृष्टिसे अनेकान्त स्वरूप
 दृष्टिगत होता है और विवक्षित नयकी अपेक्षासे अनेकान्तमें एकान्त
 रूप सिद्ध होता है।१०३। (स. सा/स्याद्वाद अधिकार/ता. वृ./
 ११६/६)। २, धर्मी अनेकान्त रूप है क्योंकि वह अनेक धर्मोका
 समूह है परन्तु धर्म अनेकान्त रूप ह क्योंकि वह अनेक धर्मोका
 समूह है परन्तु धर्म अनेकान्त रूप कराचित् भी नहीं क्योंकि एक
 धर्मके आश्रय अन्य धर्म नहीं पाया जाता (इस प्रकार अनेकान्त
 भी अनेकान्त रूप है अर्थात अनेकान्तात्मक वस्तु अनेकान्त रूप भी है।
- स. सा./ता. वृ. स्याद्वाद अधिकार/६१३/१७ स्यात्कथं चित् विवक्षित-प्रकारैणानेकान्तरूपेण वदनं वादो जन्मः कथनं प्रतिपादनमिति स्याद्वादः । — स्यात् अर्थात् कथं चित् या विवक्षित प्रकारसे अनेकान्त रूपसे वदना, वादं करना, जन्म करना, कहना प्रतिपादन करना स्याद्वाद है।
- स्व. स्तो,/टी./१३४/२६४ उत्पाद्य त उत्पाद्यते येनासौ वादः, स्यादिति वादो वाचकः शब्दो यस्यानेकान्तवादस्यादौ स्याद्वादः। = 'उत्पा-द्यते' अर्थात जिसके द्वारा प्रतिपादन किया जाये वह वाद कहलाता है। स्याद्वादका अर्थ है वह वाद जिसका वाचक शब्द 'स्यात' हो अर्थात् अनेकान्तवाद है।

२. विवक्षाका ठीक-ठीक स्वीकार ही स्याद्वादकी सत्यता है

स. सा /पं. जयचन्द/३४४/४७३ आत्माके कर्तृ त्व-अकतृ त्वकी विवक्षा-की यथार्थ मानना ही स्याद्धादकी यथार्थ मानना है।

३. स्वाद्वादके प्रामाण्यमें हेतु

न्या. वि./२/१६/१६४ स्याद्वादः श्रवणज्ञानहेतुत्वाच्छुरादिवत् । प्रमा प्रसितिहेतुत्वारप्रामाण्यमुपगम्यते ।८११ ≔शब्दको सुननेका कार्य वाच्य पदार्थका ज्ञान है उसके कारण हो स्याद्वादकी स्थिति है। इसलिए भगवत्प्रवचन रूप शाब्दिक स्याद्वाद उपचारसे प्रमाण है पर तःज्ञानित ज्ञान रूप स्याद्वाद धश्च आदि ज्ञानवत् मुख्यतः प्रमाण है, व्योंकि उसकी हेतु प्रमाकी प्रमिति है।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

Jain Education International

२. अपेक्षा निर्देश

१. सापेक्ष व निरपेक्षका अर्थ

न. च. तृ./२६० अवरोप्परसावेक्खं णयिक्सयं अह पमाण विसर्यं ना। तं सावेक्खं तत्तं णिरवेक्खं ताण विवरीयं। = प्रमाण व नयके विषय परस्पर एक दूसरेको अपेक्षा करके हैं अथवा एक नयका विषय दूसरी नयके विषयकी अपेक्षा करता है, इसीको सापेक्ष तत्त्व कहते हैं। निरपेक्ष तत्त्व इससे विपरीत है।

२. विवक्षा एक ही अंशपर लागू होती है अनेकपर नहीं

पं. घ./पू./३०० निह किंचिद्विधिरूपं किंचित्तच्छेषतो निषेधांशस्। आस्तां साधनमस्मिन्नाम हैतं न निविशेष्त्वात्। १००। = कुछ विधि रूप और उस विधिसे शेष रहा कुछ निषेध रूप नहीं है तथा ऐसे निरंपेक्ष विधि निषेध रूप सत्के साध्य करनेमें हेतुका मिलना तो दूर, विशेषता न रहनेसे हैत भी सिद्ध नहीं हो सकता है।

३. विवक्षाकी प्रयोग विधि

रा.वा.वि/११११/१३१/८३१/८ स्पर्शनादीमां करणसाधनस्त्रं पारतन्त्रयास कर्नं साधनस्त्रं च स्वातन्त्र्याह बहुलबचनात्। ११ ...कुतः पारतन्त्र्यात्। इन्द्रियाणां हि लोके पारतन्त्र्येण दिवक्षा विद्यते, आरमनः स्वातन्त्र्य-विवक्षायां यथा 'अनेन चश्चषा सुष्ठु पश्यामि, अनेन कर्णेन सुष्ठु शृणोमि' इति। ...कर्नु साधनं च भवति स्वातन्त्र्याम्ववक्षायाम्। ...यथा इदं मैऽक्षि सुष्ठु पश्यति, अयं मे कर्णः सुष्ठु शृणोतीति। च्रातंत्र आदिक इन्द्रियोंका परतन्त्र विवक्षासे करण साधनस्व और स्वतन्त्र विवक्षासे कर्नु साधनस्त्र दोनों निष्पन्न होते हैं। १। केसे १ सो ही बतातेहैं च्रात्र्यांकी लोकपरतन्त्रताके द्वारा विवक्षा होती है और अपनेमें स्वतन्त्र विवक्षा होनेसे जैसे—'इस चक्षके द्वारा में अच्छा देखता हूँ और इस कर्ण द्वारा में अच्छा सुनता हूँ। स्वतन्त्र विवक्षामें कर्नु साधन भी होता है जैसे—'यह मेरी आँख अच्छा देखती है, यह मेरे कान अच्छा सुनते हैं इस प्रकार। (स. सि./२/१६/७७/३)

पं. का./ता. वृ./१८/३८/१७ जीनमते पुनरनेकस्वभावं वस्तु तेन कारणेन द्रव्याधिकनयेन द्रव्यरूपेण नित्यत्वं घटते पर्याधिकनयेन पर्यायरूपेणानित्यत्वं च घटते । तौ च द्रव्यपर्यायौ परस्परं सापेशौ । = जीन मतमें वस्तु अनेकस्वभावी है इसलिए द्रव्याधिक नयसे द्रव्यरूपसे नित्यत्व घटित होता है, पर्याधाधिक नयसे पर्याय रूपसे अनित्यत्व घटित होता है। दोनों ही द्रव्याधिक व पर्यायाधिक नय परस्पर सापेश हैं। (दे. उत्पाद/२)

दे, द्रव्य/३/१ धर्मादिक चार शुद्ध द्रव्य व्यंजन पर्यायके अभावसे अपरिणामी वा नित्य कहताते हैं, परन्तु अर्थ पर्यायको अपेक्षा सभी पदार्थ परिणामी कहताते हैं। और व्यंजन पर्याय होनेके कारण जीव व पुद्दगत नित्य भी।

४. विवक्षाकी प्रयोग विधि प्रदर्शक सारणी

न- च /गद्य श्रुत/पृ. ६६-६७

₹.	अपेक्षा	प्रयोग	प्रयोजन
₹	स्यादस्ति	स्वरूपेणास्तित्व- मिति	अनेकस्वभावाराधस्य
	स्यान्नास्ति	इतिः पररूपेणैव	संस्कारादि दोष रहितत्व
2	स्यान्नित्यस्व	द्रव्यरूपेण निस्येति	चिरकाल स्थायित्व
	स्याद नित्यत्व	इति पर्यायरूपेणैव	निज हेतुओं के द्वारा
			अनिस्यत्व स्वभावी कर्मन
			का प्रहण त्याग होता है।
3	स्यादेकस्व	सामान्यरूपेगेति	सामान्यपनेमें समर्थ है।
	स्यादनेकरव	इति विशेषरूपेणैव	अनेक स्वभाव दर्शकरव
8	स्याइभेदत्व	सङ्भूत व्यवहार	व्यवहारकी सिद्धि
		रूपेणे ति 	
	स्यादभेदत्व	इतिद्रव्यार्थिकेनैव	परमार्थकी सिद्धि स्वपर्याय पंरिणामित्व
Ł	स्याइभव्यत्व	स्वकीयरूपेण भवनादि	स्वपयाय पारणामस्व
	स्यादभव्यत्व	भवना। ६ इति परस्यपेणीय	परपर्याय त्यागित्व
	रवायभ्यवस्य	इस्त <u>उ</u> रस्थान कुर्याद	153919 (411-154
ŧ	स्याच्चेतन	क्षेत्रनस्यभाव चित्रनस्यभाव	कर्मकी हानि
 	(-210 1)(1	प्रधानत्वेत	
	स्यादचेतन	इति व्यवहारेणैव	कर्मका ग्रहण
৩	स्यान्मूर्त	असद्भूत व्यव-	कर्म बन्ध
l) 	हारेणे ति	
l	स्यादमुर्त	इति परमभावेनैव	स्वभावका अपरित्याम
۷	स्यात्परम	पारिणामिक	स्वभावमें अचलश्वति
		स्वभावत्वेनेति	
	स्यादपरम	विभाव इति कर्मज	स्वभावमें विकृति
	, ,	रूपेणीव	
3	स्यादेकभ ्दे शत्व	भेदकरपना निर्पे-	निश्चयसे एकत्व
		क्षत्वेनेति 	अनेक कार्यकारित्व
	स्यादनेक- प्रदेशस्व	इतिव्यवहारेणैव	. अनिक काश का। रख
.	। प्रदश्य स्याच्छद्ध	। केवल स्वभाव	स्वभाव प्राप्ति
१०	Yes i egster	¦ प्रधानत्वेनेति	
-	स्यादशुद्धत्व	इति मिश्रभावेनैव	तद्विपरीत
११	स्याद्रपचरित	स्वभावस्याप्य-	पर(भाव)को जानना
]``		न्यत्रोपच:रादिति	, ,
l	स्यादनुषचरित	इति निश्चयादेव	सद्विपरीत

नोट-ये तथा अन्य भी अनेकों विधि निषेधातमक अपेक्षाएँ एक ही पदार्थ में उसके किसी एक ही गुण या पर्यायके साथ अनेकों भिन्न दृष्टियोंसे लागू की जानी सम्भव है। ऐसा करते हुए उनमें विरोध भी नहीं आता।

५. अपेक्षा प्रयोगका कारण वस्तुका जटिल स्वरूप

न. च. वृ /७४ इदि पुट्युत्ता धम्मा सियसावेनखा ण गेहणाए जो हु। सो हू मिच्छाइट्ठी णायट्वो पवयणे भणिओ ।७४। = इस प्रकार पूर्वोत्त धर्मोंको जो सापेक्ष रूपसे ग्रहण नहीं करता है उसे मिथ्यादृष्टि जानो । ऐसा आगममें कहा है। का, अ./मू./२६१ जं वत्यु अणेयंतं एयंतं तं पि हो दि सिविषेवसं। सुय-णाणेण णएहि य णिरवेवसं दीसदे णेव ।२६। = जो वस्तु अनेकान्त रूप है वही सामेश दृष्टिसे एकान्त भी है। शुत्रज्ञानकी अपेक्षा अनेकान्त रूप है और नयकी अपेक्षा एकान्त रूप है। बिना अपेक्षा के बस्तुका स्वरूप नहीं देखा जा सकता।

दे, अनेकान्त/४/४ वस्तु एक नयसे देखनेपर एक प्रकार दिखाई देती है.

और दूसरी नयसे देखनेपर दूसरी प्रकार ।

य. घ./पू /६११ नैवमसंभवदोषाचतो न किस्चिन्नयो हि निरपेक्षः। सित च विधौ प्रतिषेधः प्रतिषेधे सित विधेः प्रसिद्धस्त्रात्।६११। = असम्भव दोषके आनेसे इस प्रकार कहना ठीक नहीं (कि केवल निश्चय नयसे काम चल जावेगा) व्योंकि निश्चयसे कोई भी नय-निरपेक्ष नहीं है। परन्तु विधि होनेमें प्रतिषेध और प्रतिषेध होनेमें विधिकी प्रसिद्धि है।

एक अंशका छोप होनेपर सबका छोप हो जाता है

स्व. स्तो./२२ अनेकमेकं च तदेव तत्त्वं भेदान्वयद्यानिमदं हि सरयम्। मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे तन्छेषलोपोऽपि ततोऽनुपा-रुथम्।२२१ = वह सुग्रुक्तिनीत वस्तुतत्त्व भेदाभेद ज्ञानका विषय है और अनेक तथा एक रूप है। और यह वस्तुको भेद-अभेद-रूपसे ग्रहण करनेवाला ज्ञान ही सत्य है। जो लोग इनमेंसे एकको ही सत्य मानकर दूसरेमें उपचारका व्यवहार करते हैं वह मिथ्या है क्योंकि दोनोंमेंसे एकका अभाव माननेपर दूसरेका भी अभाव हो जाता है, दोनोंका अभाव हो जानेसे वस्तुतत्त्व अनुपाख्य-निःस्वभाव हो जाता है।

पं.ध./पू./१६ तज्ञ यतो द्रव्याधिकपर्यायाधिकनयात्मकं वस्तु। अन्य-तरस्य विज्ञापे शेषस्यापीह लोप इति दोषः १९६१ व्यह ठीक नहीं (कि एक नयसे सत्ताकी सिद्धि हो जाती है) क्योंकि वस्तु द्रव्याधिक और पर्यायाधिक, इन दोनोंके विषय मय है। इनमेंसे किसी एकका लोप होनेपर दूसरे नयका भी लोप हो जायेगा। यह दोष आवेगा।

७. अपेक्षा प्रयोगका प्रयोजन

का, अ /मू./२६४ णाणाधम्मयुदं पि य, एग्रं धम्मं पि बुद्धदे अत्थं 1 तस्सैयविववलादो णित्थ विववलादा हु सेसाणं ।२६४। →अनेक धमौंसे युक्त पदार्थ है, तो भी उन्हें एक धर्म युक्त कहता है, नयोंकि जहाँ एक धर्मकी विवक्षा करते हैं वहाँ उसी धर्मको कहते हैं शेष धर्मौंकी विवक्षा नहीं कर सकते हैं।

३. मुख्य गोण व्यवस्था

१, सुख्य व गौणकं रुक्षण

स्व- स्तो./१३ विविधितो मुख्यं इतीष्यतेऽन्यो गुणोऽविवधो। चलो विविधित होता है वह मुख्य कहलाता है, दूसरा जो अविविधित होता है वह भौण कहलाता है। (स्व-स्तो./२१)

स्या. म./०/६३।२२ अन्यभिचारी मुख्योऽविकलोऽसाधारणोऽन्तरङ्गश्च । विपरीतो गौणोऽर्थः सित मुख्ये धीः कथं गौणे । = अन्यभिचारी, अविकल, असाधारण और अन्तरंग अर्थको मुख्य कहते हैं और उससे विपरीतको गौण कहते हैं । सुख्य अर्थके रहनेपर गौण बुद्धि नहीं हो सकती।

२. मुख्य गौण व्यवस्थासे ही वस्तु स्वरूपकी सिद्धि है

कल्पतः ।६२। = विधि और निषेध दोनों कथं चित् इष्ट हैं। विवक्षा-से उनमें मुख्य गौणकी व्यवस्था होती है ।२४। जिस प्रकार एक-एक कारक शेष अन्यको अपना सहायक रूप कारक अपेक्षित करके अर्थ-की सिद्धिके लिए समर्थ होता है उसी प्रकार आपके मतमें सामान्य और विशेषसे उत्पन्न होनेवाले जो नय हैं वे मुख्य और गौणकी कल्पनासे इष्ट हैं।६२।

३. सप्तमंगीमें मुख्य गौण व्यवस्था

रा. वा./४/४२/१५/२५३/२१-२६ गुलप्राधान्यव्यवस्थाविशेषप्रतिपादनार्थ-त्वात सर्वेषां भड्गानां प्रयोगोऽर्थवान्। तद्यथा, द्रव्याथिकस्य प्राधान्ये पर्यायगुणभावे च प्रथमः । पर्यायार्थिकस्य प्राधान्ये द्रव्यगुण-भावे च द्वितीयः । तत्र प्राधान्यं शब्देन विवक्षितत्वाच्छब्दाधीनम्, शब्देनानुपात्तस्यार्थतो । गम्यमानस्याप्राधान्यम् । तृतीये तु युगपद्भावे उभयस्याषाधान्यं शब्देनाभिधेयत्यानुपात्तत्वात्। चतुर्थस्तूभेय-प्रधानः क्रमेण उभयस्यास्त्यादिशब्देन उपात्तत्वात्। तथोत्तरे च भङ्गा वश्यन्ते । =गौण और मुख्य विवक्षासे सभी भंगोंकी सार्थ-कता है। द्रव्यार्थिककी प्रधानता तथा पर्यायार्थिककी गौणतामें प्रथम भंग सार्थक है और इट्यार्थिककी गीगता और पर्यायार्थिक-की प्रधानतामें द्वितीय भंग। यहाँ प्रधानता केवल शब्द प्रयोगकी है, वस्तुतो सभी भंगों में पूरी ही ग्रहण की जाती है। जो शब्द से कहा नहीं गया है अर्थात् गम्य हुआ है वह यहाँ अप्रधान है। तृतीय भंगमें युनयत विवक्षा होनेसे दोनों ही अप्रधान हो जाते हैं नयों कि दोनोंको प्रधान भावसे कहनेवाला कोई शब्द नहीं है। चौथे भंगमें क्रमशः उभय प्रधान होते हैं ।

४, विवक्षावश मुख्य व गौणता होती है

पं. का./ता. वृ./१८/३१/१८ द्रव्याधिकपर्यायाधिकनययोः परस्परगौण-मुख्यभावव्याख्यानादेकदेवदत्तस्य जन्यजनकादिभावंवत् एकस्यापि द्रव्यस्य नित्यानित्यत्वं घटते नास्ति विरोध इति ।

पं. का./ता. वृ./१६/४१/१ स एव नित्यः स एवानित्यः कथं घटत इति चेत् । यथैकस्य देवदत्तस्य पुत्रविवक्षाकाले पितृविवक्षा गौणा पितृ-विवक्षाकाले पुत्रविवक्षा गौणा, तथै.कस्य जीवस्य जीवद्रव्यस्य बा द्रव्यार्थिकनयेन निरयत्वविवक्षाकाले पर्यायरूपेणानित्यत्वं गौणं पर्यायरूपेणानित्यत्वविवक्षाकाले द्रव्यरूपेण नित्यत्वं गौणं । कस्मात् विवक्षितो मुरुष इति वचनात्। ≔द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंमें परस्पर गीण और मुख्य भावका व्याख्यान होनेसे एक ही देवदत्तके पुत्र व पिताके भावकी भाँति एक ही द्रव्यके नित्यत्व व अनित्यत्व ये दोनों घटित होते हैं इसमें कोई विरोध नहीं है। प्रश्न-वह ही नित्य और वही अनित्य यह कैसे धटित होता है। उत्तर-जिस प्रकार एक ही देवदत्तके पुत्रविवक्षाके समय पितृ-विवक्षा गौण होती है और पितृविवक्षाके समय पुत्रविवक्षा गौण होती है, उसी प्रकार एक ही जीवके वा जीव द्रव्यके द्रव्यार्थिक नयसे निरयत्वकी विवक्षाके समय पर्यायरूप अनिस्यत्व गौण होता है, और पर्यायरूप अनित्यत्वकी विवक्षाके समय द्रव्यरूप नित्यत्व गौण होता है। क्यों कि 'विवक्षा मुख्य होती है' ऐसा बचन है।

पं.का./ता.वृ./१०६/१६६/२२ विवक्षितो मुख्य इति वचनात् । = 'विवक्षा ् मुख्य होती हैं' ऐसा वचन है ।

५. गौणका अर्थ निषेध करना नहीं

स्त्र. स्तो./मू./२३ सतः कथंचित्तदसत्त्वशक्तिः—खे न।स्ति पुष्पं तरुषु प्रसिद्धम् । =जो सद् है उसके कथंचित असत्त्व शक्ति भी हैं -जैसे पुष्प वृश्नोपर तो अस्तिस्वको लिये हुए है परन्तु आकाशपर उसका अस्तिस्व नहीं है, आकाशकी अपेक्षा नह असद रूप है।

- दे एकांत/३/३ कोई एक धर्म विवक्षित होनेपर अन्य धर्म विवक्षित नहीं होते।
- स. भं. त./१/० प्रथमभङ्गादायसत्त्वादीनां गुणभावमात्रं, न तु प्रति-धेधः। =प्रथम भङ्ग 'स्यादस्त्येव घटः' आदिसे लेकर कई भंगोंमें जो असत्त्व आदिका भान होता है वह उनकी गीणता है न कि निषेश।

४. स्यात् व कथंचित् शब्द प्रयोग विधि

१. स्यात्कारका सम्यक् प्रयोग ही कार्यकारी है

प्र. सो./त, प्र./११६ सप्तमिक्षिनेवकारिश्यान्तमश्रान्तसमुद्धार्यमाण-स्यात्कारामोधमनत्रपदेन समस्तमिष विप्रतिषेधविषमोहमुदस्यति । —सप्तभंगी सतत सम्यक्तया उद्यारित करनेपर स्यात्काररूपी अमोध मन्त्र पदके द्वारा 'एवं कारमें रहनेवाले समस्त विरोध विषके मोहको दूर करती है ।

२. व्यवहार नयके साथ ही स्यात्कार आवश्यक है निरुचयके साथ नहीं

न च./शूत/३१-३६ स्याच्छब्दरहितत्वेऽपि न चास्य निश्चयाभासत्व-मुपनयरहितत्वात्। कथमुपनयाभावे स्याच्छब्दस्याभाव इति चेत्. स्याच्छब्दप्रधानस्वेनोपनयो हि व्यवहारस्य जनकत्वात्। यदा तु निश्चयनयेनोपनयः प्रलयं नीयते तदा निश्चय एव प्रकाशते।... किमर्थं व्यवहारोऽसरकस्पनानिवृत्त्यर्थं सहरत्नत्रयसिध्यर्थं च ।... निश्चयं गृह्णत्रपि अन्ययोगव्यवछेदनं करोति ।३१। (यथा) भेदेन अन्यत्रीपचारात् उपचारेण स्याच्छन्दमपेक्षते तथा व्यवहारेऽपि ! सर्वथा भेदे तयोर्द्रव्याभावः। अभेदे तु व्यवहारविलोपः तथोप-चारेऽपि सकरादिदोषसंभवात् । अन्यथा कर्त् त्वादिकारकरूपाणामनु-रपत्तितः स्यादेवं व्यवहारविलोपापत्तिः ।३६। = १, स्यात् पदसे रहित होनेपर भी इसके निश्चयाभासपना नहीं है। क्यों कि यह उपनयसे रहित है। उपनयके अभावसे 'स्यात्' पदका अभाव किस तरह हो सकता है ? इस प्रकार कोई पूछे तो उत्तर यह है कि स्यात् पदकी प्रधानताके द्वारा उपनय ही व्यवहारका जनक है। किन्तु जब निश्चय नयके द्वारा उपनय प्रलयको प्राप्त करा दिया जाता है तब निश्चय ही प्रकाशित होता है।...प्रश्न-यदि ऐसा है तो अर्थका व्यवहार किस लिए होता है ! उत्तर — असत् कल्पना निवारण करनेके लिए और सम्यग् रत्नत्रयकी सिद्धिके लिए अर्थका व्यवहार होता है। -- निश्चयको ग्रहण करते हुए भी अन्यके मतका निषेध नहीं करता। २, अन्यत्र भेदके द्वारा उपचार होनेसे उपचारसे स्याद शब्दकी अपेक्षा करता है। उसी प्रकार व्यवहार करने योग्यमें भी सर्वथा भेद माननेपर उन दोनोंके द्रव्यपनेका अभाव होता है। इतना विशेष है कि सर्वथा अभेद मान लैनेपर व्यवहारके माननेपर भी संकर वर्षेरह दोष सम्भव है। ऐसान माननेपर कर्जा कारक वगैरहकी उरपत्ति नहीं होती है इस प्रकार व्यवहार लोपका प्रसंग आता है।

३. स्याकारका प्रयोग धर्मोंमें होता है गुणोंमें नहीं

स्या. म./२६/२६५ स्यान्निशि नित्यं सहशं विरूपं वाच्यं न वाच्यं सदसत्तरेत्र। निपश्चितां नाथ निपीततत्त्वसुधोइगतोइगारपरम्परेयम् १२६१ = हे विद्वह्-शिरोमणि ! अपने अनेकान्त रूपी अमृतको पीकर् प्रत्येक वस्तुको कथंचित् अनित्य, कथंचित् नित्य, कथंचित् सामान्य, कथंचित विशेष, 'कथंचित् वाच्य, कथंचित् अवाच्य, कथंचित् सत्त और कथंचित् असत्का प्रतिपादन किया है।२६। तथा इसी प्रकार सर्वत्र हो 'स्यारकार'का प्रयोग धर्मोंके साथ किया है, कहीं भी अनुजोवी गुणोंके साथ नहीं किया गया है (वे, सप्तभंगी)। श्लो. वा. २/भाषा/१/६/५६/४६३/१३ स्याद्वाद प्रक्रिया आपेक्षिक धर्मों में प्रवर्तती है । अनुजीवो गुणों में नहीं ।

४. स्यात्कार भावमें आवश्यक है शब्दमें नहीं

- यु, अनु./४४ तथा प्रतिज्ञाशयतोऽप्रयोगः । । = स्यात् शब्दके प्रयोगकी प्रतिज्ञाका अभिप्राय रहनेसे 'स्यात्' शब्दका अप्रयोग देखा जाता है।
- क. पा. १/१.१३-१४/६२७२/३०८/६ दब्बिम्म अबुत्तासेसयम्माण घडाव-णट्ठ सियासहो जोजेयव्यो । मुत्ते किमिदि ण पउत्तो । ण; तहापइं-जासयस्स पओआभावे वि सदस्थावगमो अस्थि त्ति दोसाभावादो । उत्तं च — तथाप्रतिज्ञाशयतोऽप्रयोगः ।१२६। च्द्रव्यम् अनुक्त समस्त धर्मोंके घटित करनेके लिए 'स्यात् 'शब्दका प्रयोग करना चाहिए । प्रश्न — 'रसकसाओ' इत्यादि सुत्रमें स्यात् शब्दका प्रयोग क्यों नहीं किया है । उत्तर — नहीं, क्यों कि स्यात् शब्दके प्रयोगका अभिप्राय रखनेवाला वक्ता यदि स्यात् शब्दका प्रयोग न भी करे तो भी उसके अर्थका ज्ञान हो जाता है अतएव स्यात् शब्दका प्रयोग नहीं करनेपर भी कोई दोष नहीं है, कहा भी है— स्यात् शब्दके प्रयोगकी प्रतिज्ञाका अभिप्राय रखनेसे 'स्यात' शब्दका अप्रयोग देखा जाता है ।
- ध. १/४,१,४६/१८१/६ न चैतेषु सप्टस्विप वाश्येषु स्याच्छब्दप्रयोग-नियमः, तथा पतिज्ञाशयादप्रयोगोपलम्भान् । = सातीं ही वाब्धोंमें (सप्तभंगी सम्बन्धी) 'स्याद' शब्दके प्रयोगका नियम नहीं है, क्योंकि वैसी प्रतिज्ञाका आशय होनेसे अप्रयोग पाया जाता है।
- दे. स्याद्वाद/४/२ स्याद्व पदसे रहित होनेपर भी निश्चय नयके निश्चयाभासपता नहीं है क्यों कि यह उपनयसे रहित है।
- श्लो. वा. २/१/६/ श्लो. ६६/४६७ सोऽप्रयुक्तोऽपि वा तज्ज्ञोः सर्वत्राथित्य-तीयते । तथैवकारो योगादिव्यवच्छेदप्रयोजनः १६६। स्यात् शब्द प्रत्येक वावय या पदमें नहीं बोला गया भी सभी स्थलों पर स्याद्वादको जाननेवाले पुरुषों करके प्रकरण आदिकी सामर्थ्यसे प्रतीत कर लिया जाता है । जैसे कि अयोग अन्ययोग और अस्यन्तायोगका व्यवच्छेद करना है प्रयोजन जिसका ऐसा एवकार बिना कहे भी प्रकरणवश समफ लिया जाता है । (स्था. म./२३/२७६/६), (स. मं. त. ३१/२ पर उद्दक्षत)।

५. कथंचित् शब्दके प्रयोग

स्व. स्तो, /मू. /४२ तरेव च स्यान्त तरेव च स्यात् तथा प्रतीतेस्तव तत्कथा चल ॥ नात्यन्तमन्यत्वमनन्यता च विधेनिषेशस्य च शून्यदोषात् ।४२। = आपका वह तत्त्व कथं चित् तद्भूष (सद्भूष) है और कथं चित् तद्भूष नहीं है. क्यों कि वैसी ही सत्-असत रूपकी प्रतीति होती है। स्वरूपादि-चतुष्ट्य रूप विधि और पररूपादि चतुष्ट्य रूप निषेधके परस्परमें अध्यन्त भिन्नता तथा अभिन्मता नहीं है क्यों कि सर्वथा ऐसा माननेपर शून्य दोष आता है।४२।

रा. ना./२/८/१८/१२२/१६ सर्वस्य वागर्थस्य विधिप्रतिपेधातमकत्वात,
न हि किचिद्वस्तु सर्वनिषेधगम्यमस्ति। अस्ति त्वेतत् उभयात्मकस्,
यथा कुरवका रक्तश्वेतव्युदासेऽपि नावर्णा भवन्ति नापि रक्ता एव
श्वेता एव वा प्रतिषिद्धत्वात। एवं वस्त्विप प्रात्मना नास्तीति
प्रतिषेधेऽपि स्वात्मना अस्तीति सिद्धः। तथा चोक्तम्-अस्तित्वमुपलिधश्च कथं चिदसतः समृतेः। नास्तितानुपलिधश्च कथं चित्सतः
एव ते।१। सर्वथैव सतो नेमौ धर्मी सर्वात्मदोषतः। सर्वथैवासतो
नेमौ वाचां गोचरताप्रत्ययात्।२। =िजतने भी पदार्थ राव्दगोचर
हैं वे सन विधि-निषेधात्मक हैं। कोई भी वस्तु सर्वथा निषेध गम्य
नहीं होती। जैसे कुरवक पुष्प लाल और सफेद दोनों रंगोंका होता
है। न केवल रक्त हो होता है, न केवल श्वेत ही होता है और न ही
वह वर्णश्चन्य है। इस तरह परकी अपेक्षासे वस्तुमे नास्तित्व होनेपर
भी स्व दिख्ते उसका अस्तित्व प्रसिद्ध ही है। कहा भी है—

कथं चित् असतको भी उपलब्धि और अस्तित्व है और कथं चित् सत्की भी अनुपलब्धि और नास्तित्व। यदि सर्वथा अस्तित्व और उपलब्धि मानी जाये तो घटकी पटादि रूपसे भी उपलब्धि होनेसे सभी पदार्थ सर्वात्मक हो जायेंगे और यदि परकी तरह स्व रूपसे भी असत्त्व माना जाये तो पदार्थका ही अभाव हो जायेगा और वह शब्दका विषय न हो सकेगा।

- प्र. सा./त.प्र./३४,१०६ सर्वेऽर्था ज्ञानवर्तिन एव कथंचिइ भवन्ति ।३४। अतएव च सत्ताद्रव्ययोः कथंचिद्दनर्थान्तरत्वेऽपि सर्वयैक्तवं न शङ्कतीयम्। = १० समस्त पदार्थ कथंचित् ज्ञानवर्ती ही हैं। २. यद्यपि सत्ता द्रव्यके कथंचित् अनर्थान्तरत्व है तथा उनके सर्वधाएकत्वंहोगा ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए।
- स. सा./आ./३३१/क. २०४ कमें व प्रवित्तर्भयकर्तृ हतकेः क्षिप्रवारमनः कर्तृ ताम् । कर्तारमेष कथं चिदित्यचित्ता कैश्चिक्र्रुतिः कोषिता । चकोई आत्म घातक कर्मको ही कर्ता विचार कर आत्माके कर्तृ त्व-को उड़ाकर, यह आत्मा कथंचित् कर्ति हैं ऐसी कहनेवाली अचलित श्रुत्तिको कीपित्त करते हैं।
- प्र. सा./ता. वृ./२०/३०/६ यदि पुनरेकान्तेन ह्यानमारमेति भण्यते तदा इतानमुणमात्र एवारमा प्राप्तः सुखादिधमाणानवकाशो नास्ति ।... तस्मारकथंचिज्ञानमारमा न सर्वथेति । = यदि एकान्तसे ज्ञानको हो आत्मा कहते हैं तो तब ज्ञान गुणमात्र हो आत्मा प्राप्त होती है सुखादि धर्मोंको अवकाश नहीं है ।...इसलिए कथंचित ज्ञानमात्र आत्मा है सर्वथा नहीं।
- पं.ध,/पू./११ द्रव्यं ततः कथं चित्केनचिदुत्पद्यते हि भावेन। व्येति तदन्येन पुनर्नेतइद्वितयं हि वस्तुत्या १११ = निश्चयसे द्रव्य कथं चित्त किसी अवस्था रूपसे उत्पन्न होता है और किसी अन्य अवस्थासे नष्ट होता है किन्तु परमार्थसे निश्चय करके ये दोनों ही महीं हैं।

५. स्यात्कारका कारण व प्रयोजन

१. स्यात्कार प्रयोगका प्रयोजन एकान्त निषेध

- आप्त, मी./१०२-१०४ वानयेष्वनेकान्तद्योती गम्यं प्रति विशेषणम् ।
 स्य त्विपातोऽर्थयोगित्वात् तव केविलनामपि ।१०३। स्याद्वादः सर्वथैकान्तव्यागार्तिक चिद्विधिः । सप्तभड्गनयापेश्चो हैयादेयिवशेषकः
 ।१०४। = स्यात् ऐसा शब्द है यह निपात या अव्यय है। वान्धोमें
 प्रयुक्त यह शब्द अनेकान्त खोत्तक वस्तुके स्वरूपका विशेषण है।१०३।
 स्याद्वाद अर्थात् सर्वथा एकान्तका त्याग होनेसे किचित् ऐसा अर्थ
 बतानेवाला है। सप्त भंगरूप नयकी अपेक्षावाला तथा हैय व उपादेयका भेद करनेवाला है।१०४।
- रा. वा. 1813 श १९० १६० ११६ ननु च सामान्याथि विच्छेदेन विशेषण-विशेष्यसंबन्धावयोतनार्थे एककारे सित तदवधारणादितरेषां निवृत्तिः प्राप्तोति । नैष दोष'; अवाष्यत एव स्याच्छन्दप्रयोगः कर्तव्यः 'स्यादस्त्येव जीवः' इत्यादि । कोऽर्यः । एवकारेणेतरिन-वृत्तिप्रसङ्गे स्वात्मलोपात् सकलो लोपो मा विज्ञायीति वस्तुनि यथावस्थितं विविश्वतधमस्वरूपं तथैव द्योत्यति स्याच्छन्दः । 'विविश्वतार्थवागङ्गम्' इति वचनात् । =प्रश्न-जन्न आप विशेषण-विशेष्यके नियमनको एवकार देते हो तब अर्थात् ही इतरकी निवृत्ति हो जाती है । जदासीनता कहाँ रही ? उत्तर-इस्रिल शेष धर्मीके सद्भावको द्योतन करनेके लिए 'स्यात्' शन्दका प्रयोग किया जाता है । एवकारसे जब इतर निवृत्तिका प्रसंग प्रस्तुत होता है तो सकत लोग न हो जाय इसलिए 'स्याइ' शन्द विविश्वत धर्मके साथ ही साथ अन्य धर्मी के सद्भावको सूचना दे देता है ।
- दे स्यात/१ स्यात शन्द अनेकान्तका चोतक होता है।

- दे. स्याद्वाद/१/१ नियमका निषेध करना तथा सापेक्षताकी सिद्धि करना स्याद्वादका प्रयोजन है।
- श्लो. वा. २/१/६/४४/४४४/४ तत्त्वतोऽस्तित्वादीनामेकत्र वस्तुन्येवमभेद-वृतेरसंभवे कालादिभिभिज्ञात्मनामभेदोपचारः क्रियते । तदेवास्याम-भेदवृत्त्यभेदोपचारास्यामेकेन शब्देनैकस्य जीवादिवस्तुनोऽनन्तः धमित्मकस्योपात्तस्य स्यात्कारो चोतकः समवतिष्ठते ।
- श्लो. वा. २/१/६/५५/४५ स्याच्छव्दादण्यनेकान्तसामान्यस्यावकोधने । . . । १५। = १. जब कि वास्तिक रूपसे अस्तित्व, नास्तित्व आदि धर्मीकी एक वस्तुमें इस प्रकार अभेद वृत्तिका होना असम्भव है तो अन काल, आत्मरूप आदि करके भिन्न-भिन्न स्वरूप हो रहे। धर्मीका अभेद रूपसे उपचार किया जाता है। तिस कारण इन अभेद वृत्ति और अभेदोपचारसे एक शब्द करके ग्रहण किये गये अनन्तधर्मात्मक एक जोव आदि वस्तुका कथन किया गया है। उन अनेक धर्मीका चोतक स्यात्कार निमात भन्ने प्रकार व्यवस्थित हो रहा है। २, स्याद् शब्द से भी सामान्य रूपसे अनेक धर्मीका चोतन होकर ज्ञान हो जाता है। १६।
- धः १२/४,२,६,२/२६४/१० सिया सहा दोण्णि-एकको किरियाए वाययो, अवरो णइवाहियो ।...सञ्ज्ञहाणियमपरिहारेण सो सञ्जरथ परूवछो, पमाणाणुसारित्तादो ।= त्यात शब्द दो हैं — एककियाबाचक व दूसरा अनेकान्त बाचका । उक्त स्थात शब्द 'सर्वथा' नियमको छोड़कर सर्वत्र अर्थको प्रस्ताणा करनेवाला है, क्योंकि वह प्रमाणका अनुसरण करता है।
- न, च. व./२४१ पर उद्घृत सिद्धमन्तो यथा लोके एकोऽनेकार्थ दायकः ।
 स्याच्छ्रव्दोऽपि तथा होय एकोऽनेकार्थसाधकः । जिस प्रकार लोकमें
 सिद्ध किया गया मन्त्र एक व अनेक पदार्थीको देनेवाला होता है,
 उसी प्रकार 'स्यात' शब्दको एक तथा अनेक अर्थोंका साधक जानना
 चाहिए।
- पं. का./त. प्र./१४ अत्र सर्वथात्विनिषेठकोऽनेकान्त्योत्तकः कथंचिद्रथें स्याच्छव्दो निपातः। = यहाँ। सप्तमंगीमें) सर्वथापनेका निषेधक, अनेकान्तका योतक 'स्यात्' शब्द कथंचित ऐसे अर्थमें अव्यय रूपसे प्रयुक्त हुआ है। (स.भं.त./३०/१०)।

२. स्यात्कार प्रयोगके अन्य प्रयोजन

'स्व.स्तो./मू.४४ अनेकमेकं च पदस्य वाच्यं, बृक्षा इति प्रत्ययव-रप्रकृत्याः आकाङ्किणः स्यादिति वै निपातो गुणानपेक्षे नियमेऽपवादः १४४। = पद (अव्द) का बाच्य प्रकृतिसे एक और अनेक दोनों रूप है। 'वृक्षाः' इस पद ज्ञानकी तरह। अनेकान्तात्मक वस्तुके अस्तित्वादि किसी एक धर्मका प्रतिपादन करनेपर उस समय गौण-भूत नास्तित्वादि दूसरे धर्मके प्रतिपादनमें जिसकी आकांक्षा है, ऐसी आकांक्षा (स्याद्वादी) का स्याद्य यह निपात गौणको अपेक्षा न रखने-वाले नियममें निश्चय रूपसे वाधक होता है।४४। न. च. शुत /६६ यथा स्वरूपेणास्तिस्वं तथा परस्तपेणान्यस्तित्वं माधू-दिति स्थाच्छ्व्दः । . . . यथा द्रव्यस्तपेण नित्यत्वं तथा पर्यायस्तपेणे व नित्यत्वं माधूदिति स्थाच्छ्व्दः । — जिस प्रकार स्वस्वस्पसे है उसी प्रकार प्रस्वस्पसे भी है, इसी प्रकारकी आपित्तका निवारण करना स्यात शब्दका प्रयोजन है। . . . जिस प्रकार द्रव्य स्त्यसे नित्य है उसी प्रकार प्रयोग स्त्यसे नित्य न हो यह स्यात शब्दका प्रयोजन है।

स्या. म./११/२६४/३ यथाविध्यतपदार्थप्रतिपादनोपियकं नान्यदिति ह्यापनार्थम् । अनन्तधर्मात्मकस्य सर्वस्य वस्तुनः सर्वनयारमकेन स्याद्वादेन विना यथावद्गृहीतुमशन्यत्वात् । न्यथाविध्यत पदार्थ-का प्रतिपादन करनेका अन्य कोई उपाय नहीं है।...न्यों कि प्रत्येक वस्तुमें अनन्तस्वभाव हैं, अत्यव सम्पूर्ण नय स्वरूप स्याद्वादके विना किसी भी वस्तुका ठीक-ठीक प्रतिपादन नहीं किया जा सकता।

🔎 🤄 सप्तमंगीर्मे 'स्यात्' शब्द प्रयोगका फल

क. पा. १/१.१३-१४/§२७३/३०८/८ सिया कसाओ, सियाओ एत्यतण-सियासहो [णोकसायं] कसायं कसायणोकसायविसय अत्थपजनाए च दव्यम्मि घडावेइ। सिया अवत्तव्यं 'कसायणोकसायविसयअस्थ-पज्जाय सहत्वेण, एत्थतण-सिया-सहो कष्यणोकसायविसमवंजण-'पङ्जाए ढोएइ। 'सिया कसाओ च णोकसाओ च' एत्थतण-सियासही कसाय जोकसायविसयअस्थपज्जाए दक्षेण सह होएइ। 'सिया कसाओं च अवसञ्बंधों च' एत्यतंग सियासहो जोकसायसं घडावेड् (' सिया णोकसाओ च अवतव्यओ च' एत्यतणसियासहो कसायसं घडावेह। 'सिया कसाओ च णोकसाओ च अवत्तव्वओ च' एरध-त्रणसियासहो कषायणोकषाय-अवत्तवत्रधम्माणं तिण्हं पि कमेण भण्णमाणाणं दब्बम्मि अवकमर्शात्तं सुचैदि । = १. प्रव्य स्यात् कषाय रूप है, (यहाँ कषायका प्रकरण है) २. प्रव्य स्यात् अकवाय रूप है। इन दोनों भंगों में विद्यमान स्यात् शब्द क्रमसे नोकदाय और कषायको तथा कषाय और नोकषाय विषयक अर्थपर्यायोंको द्रव्यमें घरित करता है। ३. कषाय और नोकषाय विषयक अर्थ पर्याय रूपसे द्रव्य स्याद् अवक्तव्य है। इस भंगमें विद्यमान स्यात् शब्द कषाय और नोकषाय विषयक व्यञ्जन पर्यायोंको द्रव्यमें घटित करता है। ४. द्रव्य स्यात् कषाय रूप और अकषाय रूप है। इस चौथे भंगमें विद्यमान स्यात् शब्द कषाय और नोकषाय विषयक अर्थ पर्यायों में घटित करता है। ५. द्रव्य स्यात कषाय रूप और अवक्तव्य है। इस पाँचवें भंगमें विद्यमान स्वाद् शब्द द्रव्यमें नोकषायपनेको घटित करता है। ६. 'द्रवय स्याद अकषाय रूप और अवक्तव्य है। इस छठे भंगमें विचमान स्थात् शब्द द्रव्यमें क्षायपनेको घटित करता है। ७. द्रव्या स्यात् कषाय रूप, अकषाय रूप, और अवक्तव्य है। इस सातवें भंगमें विद्यमान स्याद शब्द क्रमसे कहे जानेवाले कवाय, नोकवाय और अवक्तव्य रूप तीनों धर्मोंकी द्रव्यमें अक्रम वृत्तिको सूचित करता है।

४. एवकार व स्यारकारका समन्वय

श्लो.ना, २/१/६/ रलो, ५२-५४/४३१, ४४८ नानयेऽनधारणं तानविनिष्ठार्थ-निवृत्तये । कर्त न्यमन्यथानुक्तसमत्वात्तस्य कुत्रस्ति ।५३। सर्वथा तत्त्रयोगेऽपि सत्वादिप्राप्तिनिच्छदे । स्थादकारः संप्रयुज्येताने-कान्तद्योत्तक्ष्वतः ।५४। = नाक्यमें एनकार ही ऐसा जो नियम किया जाता है, वह तो अवश्य अनिष्ट अर्थकी निवृत्तिके लिए करना ही चाहिए। अन्यथा कहीं-कहीं वह नाक्य महीं कहा गया सरीला सममा जाता है ।५३। उस एनकारके प्रयोग करनेपर भी सभी प्रकारसे सत्त्व आदिकी प्राप्तिका निच्छेद करनेके लिए नाक्यमें स्यादकार शब्दका प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि वह स्यात शब्द अनेकान्तका द्योत्तक है ।६४। क पा./१/१,१३-१४/६२७१-२७२/३०६/६ सत्तेण अउत्तो सियासहो कथमेत्य उच्चदे । णः, सियासहपद्मीएण विणा सव्वपञ्जोञाणं अउत्त-तुल्लक्तप्पसंगादो । ते जहा, कसायसदो पश्चिवन्त्रत्थं सगस्यादो ओसारिय सगर्थं चेव भणदि पईंदो व्य दुस्सहावत्तादो । अत्रोपयोन निनौ श्लोकौ —अन्तर्भू तैवकारार्थाः विरः सर्वाः स्वभावतः । एवकार-प्रयोगोऽयमिष्टतो नियमाय सः ।१२३। निरस्यन्ती परस्यार्थं स्वार्थं कथयति श्रुतिः । तमो विधुन्वती भास्यं यथा भासयति प्रभा ।१२४। एवं चेव होंदु चे; ण: एक्किम चेत्र माहुर्लिगफले तित्त-कडुवंबिल-मधुर-रसाणं रूव-गंध-फास संठाणाईणमभावप्पसंगादो। एदं पि होड चे; ण; दब्बलक्लणभावेण दब्बस्स अभावप्पसंगादो। =प्रश्न-'स्यात' शब्द सूत्रमें नहीं कहा है फिर यहाँ क्यों कहा है ! उत्तर-क्यों कि यदि 'स्यात्' शब्दका प्रयोग न किया जाय तो सभी वचनों के व्यवहारको अनुक्त तुरुयत्वका प्रसंग प्राप्त होता है। जैसे-यदि कवाय शब्दके साथ स्यात् शब्दका प्रयोग न किया जाय तो वह कवाय शब्द अपने बाच्यभूत अर्थसे प्रतिपक्षी अर्थौका निराकरण करके अपने अर्थको हो कहेगा, क्योंकि वह दीपक की तरह दो स्वभाववासा है (अर्थात् स्वप्रकाशक व प्रतिपक्षी अन्धकार विनाशक स्वभाव-वाला) इस विषयमें दो उपयोगी श्लोक दिये जाते हैं।--जितने भी शब्द हैं उनमें स्वभावसे हो एवकारका अर्थ छिपा हुआ रहता है, इसलिए जहाँ भी एवकारका प्रयोग किया जाता है वहाँ वह इष्टके अवधारणके लिए किया जाता है। १२३। जिस प्रकार प्रभा अन्धकार-का नावा करती है उसीप्रकार शब्द दूसरेके अर्थका निराकरण करता है और अपने अर्थको कहता है।१२४। (तारपर्ययह है कि 'स्यात' शब्दमें रहित केवल कषाय शब्दका प्रयोग करनेपर उसका बाह्य भूत द्रव्य केवल कषाय रसवालाही फलित होता है) प्रश्न-ऐसा होता है तो होओ ? उत्तर – नहीं क्यों कि ऐसा मान लिया जाये तो एक हो बिजौरेके फलमें पाये जानेवाले कषाय रसके प्रतिपक्षी तीते, कड़ ए, खट्टे और मीठे रसके अभावका तथा रूप, गन्ध, स्पर्श और आकार आदिके अभावका प्रसंग प्राप्त होता है। प्रश्न - होता है तो होओ। उत्तर-नहीं, क्योंकि वस्तुमें विवक्षित स्वभावको छोड़कर दोष स्वभावोंका अभाव माननेपर द्रव्यके सक्षणका अभाव हो जाता है। उसके अभाव हो जानेसे द्रव्यके भी अभावका प्रर्श्य प्राप्त होता है।

स्याः मः/२३/२०१/६ वाक्येऽवधारणं ताबदिनिष्टार्धिनिवृत्तये। कर्त्वय-मन्यथानुक्तसमस्वात तस्य कुत्रचित् । प्रतिनियतस्वरूपानुपपितः स्यात् । तस्प्रतिपत्तये स्याद् इति शब्दप्रयुज्यते । = किसी वाक्यमें 'एव' का प्रयोग अनिष्ठ अभिप्रायके निराकरणके लिए किया जाता है, अन्यथा अनिवक्षित अर्थ स्वीकार करना पड़े ।...वस्तु स्वचतुष्टय-की अपेशा ही कथं चित् अस्ति रूप है, परचतुष्टयकी अपेशा नहीं, इसी भावको स्पष्ट करनेके लिए 'स्यात' शब्दका प्रयोग किया गया है।

स्याद्वादभूषण— आ, अकलंक (ई. १२०-१८०) कृत सघीय-स्त्रयपर आ, अभयचन्द्र (ई. श. १३) कृत चृत्ति । —दे. अभयचन्द्र।

स्याद्वादमंत्ररी — हेमचन्द्र सूरि (ई.१०८८-११७३) कृत अयोग व्यवच्छेद नामक प्रन्थकी टोका रूपमें आ. मिललपेण सं. ३ (ई. १२६२) द्वारा रचित एक न्याय विषयक प्रन्थ। —दे, हेमचन्द्रः।

स्याद्वादमंजूषां - श्वेताम्बराचार्य यशोविजय (ई. १६३८-१६६८) द्वारा संस्कृत भाषामें रचित न्याय विषयक प्रनथ । - दे. यशोविजय!

स्याद्वादरत्नाकर - दे. प्रमाणनय तत्त्वालंकार ।

स्याद्वादवदनविदारण — आ. शुभचन्द्र (ई. १४१६-१४५६) हारा रचित न्यायविषयक ग्रन्थ। —दे. शुभचन्द्र ।

स्याद्वादसिद्धि - आ. वादीभसिंह (ई॰ ११०३) द्वारा संस्कृत भाषामें रचित न्यायविषयक ग्रन्थ है। -देः वादीभसिंह।

स्याद्वादोपनिषद् आ. सोमदेव (ई. १४३-१६८) कृत स्याद्वाद न्यायका प्रकारक संस्कृत भाषामें रचित ग्रन्थ । —दे.सोमदेव।

स्वक्षेत्र — दे. क्षेत्र/१।

स्वगणानुस्थापनप्रायिचस्-- दे, परिहार ।

स्वगुरु वापि क्रिया—दे. संस्कार/२।

स्वचतुष्टय-दे, चतुष्टय।

स्वचारित्र--हे. चारित्र/१।

स्वच्छंद - १. स्वच्छंद परिग्रह ग्रहणका निराकरण-हे. अपवाद/४; २. स्वच्छन्द आहार ग्रहणका निराकरण-हे. आहार/11/२/७।

स्वच्छंद साधु---

१. स्वच्छन्द साधुका लक्षण

भ. आ./मृ.१३०८-१३१२ सिद्धिपुरमुवरुतीणा वि केइ इंदियकसायची-रेहिं। पबिछुत्तचरणभंडा उवहदमाणा णिवट्टंति ।१३०८। तो ते सीलदरिहा दुश्लमणंतं सदा वि पानंति।…।१३०१। सो होदि साधुसत्थादु णिग्गदो जो भन्ने जधार्खदो। उस्युत्तमणुन्नदिट्टं च जधिज्छाए विकल्पंती ।१३१०। जो होदि जधाळंदां हु तस्स धणिदंपि संजामितस्स । णरिथ दु चरणं चरणं खु होदि सम्यत्तसहचारी 1१३११। इंदियकसायगुरुगत्तणेण सुत्तं पमाणमनरंतो । परिमाणेदि जिणुत्ते अत्थे सन्छंदरो चेत्र ।१३१२। = मोक्ष मगरके समीप जाकर भी कितनेक मुनि इन्द्रिय और कषाय रूपी चोरोंसे जिनका चारित्र रूपी भांडवस खुटा गया है तथा संयमका अभिमान जिनकः नष्ट हुआ है ऐसे होकर मिथ्यात्मको प्राप्त होते हैं। १३० पा वे जील दरिदी मुनि हमेशा तीव दुःखको प्राप्त होते हैं।१३०६। जो मुनिसाधु सार्थको छोड़कर स्वतन्त्र हुआ है। जो स्बेच्छाचारी बनकर आगम विरुद्ध और पूर्वाचार्य अकथित आचारों-की करपना करता है वह स्वच्छन्द नामक भ्रष्ट मुनि समफना चाहिए।१३१०। यथेष्ट प्रवृत्ति करनेवाले उस भ्रष्ट मुनिने यदापि घोर संयन किया होगा तथापि सम्यक्त्त्र न होनेसे उसका संयम च (रित्र नहीं कहा जाता है। १३११। इन्द्रिय और कथायों में आधीन होनेसे यह भ्रष्टमुनि जिनप्रणीत सिद्धान्तको प्रमाण नहीं मानता है और स्वच्छन्दाचारी बनकर सिद्धान्तका स्वरूप अन्यथा समऋता है तथा अन्यथा विचारमें लाता है ।१३१२।

भ. आ /वि /१९६०/१०२३/१ स्वच्छन्दसंपर्कास्वयम्पि स्वच्छन्दवृत्तिः।

यथाच्छन्दो निरूप्यते-उत्स्वमनुपिदण्टं स्वेच्छाविकल्पितं यो

निरूप्यति सोऽभिधीयते यथाच्छन्द इति । तद्यथा वर्षे पत्ति

जलधारणमसंयमः । क्षुरकर्तिकादिभिः केशापनयनप्रशंसनम् आत्म
विराधनान्यथा भवतीति । भूमिशय्यातृणपुष्ठजे वसतः अवस्थिताना
मानाधिति, उद्देशिकादिके भोजनेऽदोषः भ्रामं सक्तं पर्यटतो महती

जीवनिकायिवराधनेति, गृहामत्रेषु भोजनमदोष इति कथनं, पाणि
पात्रिकस्य परिशातनदोषो भवतीति निरूपणा, संप्रति यथोक्तकारी

विद्यत इति च भाषणं एवमादिनिरूपणापराः स्वच्छन्दा इत्युच्यन्ते।

—स्वच्छन्द मुनिके भंसर्गसे मुनि स्वच्छन्द वनते हैं। यथाच्छन्द

मुनिका वर्णन करते हैं—जो मुनि आगमके विरुद्ध आगममें न कहा

हुआ और स्वेच्छा किएपत पदार्थों का स्वस्य कहते हैं उनको यथा-च्छन्द मुनि कहते हैं। वर्षाकालमें जो पानी गिरता है उसको धारण करना वह असंयम है। उस्तरा और कैंचोसे केश निकालना ही योग्य है। केशलोंच करनेसे आस्म-विराधना होती है। सचित्त तृणपुंजपर बैठनेसे भी भूमि शय्या मूलगुण पाला जाता है। तृणपर बैठनेसे भी जीवोंको बाधा नहीं पहुँचती। उद्देशादि दोष सहित भोजन करना दोषास्पद नहीं है। आहारके लिए सब ग्राममें घूमतेसे जीवोंकी विराधना होती है। घरमें (बसतिका) में ही भोजन करना अच्छा है। हाथमें आहार लेकर भोजन करनेसे जीवोंको बाधा पहुँचती है। ऐसा वे उत्सूत्र कहते हैं। इस कालमें यथोक्स आचरण करनेवाले मुनि कोई नहीं हैं। ऐसा कथन करना इत्यादि प्रकारसे विरुद्ध भाषण करनेवाले मुनियोंको यथाछन्द अर्थात् स्वच्छन्दमुनि कहते हैं।

चा. सा./१४४/२ त्यक्तपुरुकुल एकाकित्वेन स्वच्छन्दिवहारी जिनवचन-दूषको मृगचारित्रः स्वच्छन्द इति वा। = जो अकेले ही स्वच्छन्द रीतिसे विहार करते हैं और जिनेन्द्र देवके वचनोंको दूषित करने-वाले हैं उनको मृगचारित्र अथवा स्वच्छन्द कहते है। (भा. पा./ टी./१४/१३७/२२)।

स्वच्छत्व शक्ति—स. सा./आ./परि./शक्ति ११ नीरूपात्मप्रदेश-प्रकाशमानलोकालोकाकारमेचकोपयोगलक्षणा स्वच्छत्वशक्तिः। = अम् तिक आत्मप्रदेशोमें प्रकाशमान लोकालोकके आकारोंसे मेचक (अर्थात् अनेक-आकाररूप) ऐसा उपयोग जिसका लक्षण है ऐसा स्वच्छत्व शक्ति। (जैसे दर्पणकी स्वच्छत्व शक्तिसे उसकी पर्यायमें घटपटादि प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार आत्माकी स्वच्छत्व शक्तिसे उपयोगमें लोकालोकके आकार प्रकाशित होते हैं।

स्वजातिउपचार- दे. उपचार/१।

स्वतन्त्रता १ द्रव्यकी स्वतन्त्रता दे. द्रव्य/६। २. गुणोंकी स्वतन्त्रता दे. प्रणांकी स्वतन्त्रता दे. प्रणांकी स्वतन्त्रता दे. प्रणांकी ४. आत्मद्रव्य अनीश्वर नयसे स्वतन्त्रता भोगने वाला है। हिरणको स्वतन्त्रता पूर्वक पकड़कर खा जानेवाले सिंहकी भाँति दे. नय/1/६/४।

स्वधर्मं व्यापकत्व शक्ति—स.सा./आर./परिशक्ति/११। स्वशरी-रैकस्वरूपारिमका स्वधर्मव्यापकत्वशक्तिः ।२१। स्वर्म श्रीरोमें एक स्वरूपात्मक ऐसी स्वधर्मव्यापकत्व शक्ति (शरीरके धर्मरूप न होकर अपने-अपने धर्मोमें व्यापने रूप शक्ति) सो स्वधर्म व्यापकत्व शक्ति है।

स्वदारसःतोषवत-दे. महावर्ध/१/३।

स्वद्रव्य मो.पा./पू./१८ हुद्दुद्वस्मरहियं अणोवमं णाणिवागहं-णिच्चं। सुद्धं जिणेहिं कहियं अप्पाणं हवइ सद्दुव्वं।१८। च्दुष्ट कर्मीते रहित हैं, तथां अनुपम ज्ञान ही है दारीर जिसके ऐसी अविनाशी, विकार रहित केवलज्ञानमयी आत्मा जिन भगवान्ने कही है सो स्वद्रव्य है।

स्वनिमित्त-दे. निमित्त/१/१।

स्वरम---

१. भेद व लक्षण

म.पु./४९/६६-६१ ते च स्वप्ना द्विधाम्नाताः स्वस्थास्वस्थारमगोचराः। समैस्तु धातुभिः स्वस्था विषमैरितरे मताः । ५१। तथ्याः स्युः स्वस्य संदृष्टा मिथ्या स्वप्ना विपर्ययात् । जगत्प्रतीतमेतृद्धि विद्धि स्वप्न-विमर्कानम् । ६०। स्वप्नानां द्वेतमस्त्यन्यहोषदैवसमुद्ग्भवम् । दोष-प्रकोपजा मिथ्या तथ्याः स्युर्देवसंभवाः।६१। = स्वप्न दो प्रकारके हैं-स्वस्थ अवस्थावाले, अस्वस्थ अवस्थावाले। जो धातुओंकी समानता रहते दोखते हैं वे स्वस्थ अवस्थावाले हैं, और जो धातुओं-की असमानतासे दीखते हैं ने अस्बस्थ अवरथावाले हैं। ५१। स्वस्थ अवस्थामें दीखनेवाले स्वप्न सत्य और अस्वस्थ अवस्थामें दीखनेवाले स्वप्न असत्य होते हैं। ६०। स्वप्नोंके और भी दो भेद हैं--एक दैवसे उरपन्न होने वाले, दूसरे दोषसे उत्पन्न होने वाले। दैवसे उत्पन्न होनैबाले स्वप्न सत्य तथा दोषसे उत्पन्न होने वाले असत्य हुआ करते हैं । ६१। दे. निमित्त/२/३ (वात, पित्तादिके प्रकोपसे रहित व्यक्ति सूर्यचन्द्रमा आदिको देखता है व शुभस्वप्र तथा गर्मभ, ऊँट आदि पर चढ़ना, व प्रदेश गमनादि देखता है वह अशुभ स्वप्न है। इसके फलरूप सुख-दुः स्वादिको बताना स्वनिमित्त है। स्वप्नमें हाथी आदिका दर्शन मात्र चिह्न स्वय्न हैं। और पूर्वापर सम्बन्ध रखने बालेको माला स्वप्त कहते हैं।

२. स्वप्नके निमित्त

स्या. म./१६/२१६-२१६/३० स्वप्तज्ञानमप्यतुभूतदृष्टाद्यर्थविषयस्वानन निरालम्बनम् । तथा च महाभाष्यकारः — अणुह्यदिट्ठचितिय सुयपयइवियारदेवयाणूवा । सुमिणस्स निमित्ताइं पुण्णं पार्वं च णा-भावो । — स्वप्नमें भी जायत् दशामें अनुभूत पदार्थों का ही ज्ञान होता है, इसलिए स्वप्न ज्ञान भी सर्वथा निर्विषय नहीं है। जिन-भद्रपणि क्षमाश्रमणने कहा है — ''अनुभव किये हुए, देखे हुए, विचारे हुए, सुने हुए, पदार्थ, वात, पित्त आदि प्रकृतिके विकार, दैविक और जत प्रधान प्रदेश स्वप्नमें कारण होते हैं। सुख निद्रा आनेसे पुण्य रूप और सुख निद्रा न आनेसे पाप रूप स्वप्न दिखाई देते हैं। बास्तवमें स्वप्न सर्वथा अवरत्न नहीं हैं।

३. तीर्थंकरकी माताके १६ स्वप्न

म.पु./१२/१६६-१६१ शृणु देवि महान् पुत्रो भविता ते एजेसणात् ।
समस्तभुवनज्येष्ठो महानृषभदर्शनात् ।१६६। सिहेनानन्तवीर्योऽसौ
दाम्ना सद्धमतीर्थकृत् । लक्ष्म्याभिषेत्रमाष्ठासौ मेरोमूध्नि सुरोत्तमैः
।१६६। पूर्णेन्दुना जनाह्वादी भास्त्रता भास्त्ररखुतिः । कुम्भाभ्यां
निधिभागी स्यात् सुखी मरस्ययुगेक्षणात् ।१६७। सरसा लक्षणोद्धासौ
सोऽव्धिना केवली भवेत् । सिहासनेन साम्राज्यम् अवाष्ट्यति
जगद्दगुरुः ।१६८। स्विभानावलोकेन स्वगृदिवतिरूष्यति । फणीन्दभवनालोकात् सोऽत्रधिज्ञानलोचनः ।१६६। गुणानामाकरः प्रोद्यदत्तनराशिनिशामनात् । कर्मेन्धनधगण्येष निर्धृमज्वलनेक्षणात् ।१६०।
वृषभाकारमादाय भवरयास्यप्रवेशनात् । त्वद्दगर्भे वृषभो देव स्वमाधास्यति निर्मले ।१६१। =(नाभिराय मरुदेवीसे वहते है) हे देवी !
सुन, १, हाथोके देखनेसे जत्म पुत्र होगा, २, जत्तम बैलके देखनेसे

समस्त लोकमें ज्येष्ठ, ३, सिंहके देखनेसे अनन्त बलसे युक्त, ४, मालाओं के देखनेसे समीचीन धर्मका प्रवर्तक, ४, लक्ष्मीके देखनेसे सुमेरु पर्वतके मस्तक पर देवोंके द्वारा अभिषेकको प्राप्त, ६, पूर्ण चन्द्रमाको देखनेसे लोगोंको आनन्द देनेवाला, ७, सूर्यको देखनेसे देदीप्यमान प्रभाका धारक; ५. दो कलश युगल देखनेसे अनेक निधिको प्राप्त, और १, मछलियोंका युगल देखनेसे सुखी होगा।१६५-१६७। १०, सरोवरको देखनेसे अनेक लक्षणोंसे शोभित, ११ समुद्रको देखनेसे केवली और, १२, सिहासन देखनेसे जगद्दगुरु होकर साम्राज्य प्राप्त करेगा।१६८। १३, देवोंका विमान देखनेसे स्वर्गमे अवतीर्ण, १४, नागेन्द्रका भवन देखनेसे अवधिज्ञानसे युक्त, १६, चमकते रत्नोंकी राशि देखनेसे गुणोंकी खान, १६, निर्धूम अग्न देखनेसे कर्मरूपी ईधनको जलाने वाला होगा।१६६-१६०। तुम्हारे मुखमें चृषभने प्रवेश किया है इसलिए तुम्हारे गर्भमें चृषभदेव प्रवेश करेंगे।१६१।

४. चक्रवर्तीकी माताके ६ स्वप्नोंका फल

म.पु./११/१२३-१२६ त्वं देवि पुत्रमाप्तासि गिरीन्द्रात् चक्रवितिम् । तस्य प्रतापितामकः शास्तीन्द्रः कान्तिसंपदम् ।१२३। सरोजाक्षि सरोहर्टः असौ पङ्कजवासिनीम् । वोढा व्यूढोरसा पुण्यलक्षणाङ्कितविष्ठः ।१२४। महीयसनतः कृरस्नां महीं सागरवाससम् । प्रतिपालियता देवि विश्वराट् तव पुत्रकः ।१२६। सागराच्चरमाङ्गोऽसौ तरिता जन्मसागरम् । ज्यायान्पुत्रशतस्यायम् इक्ष्वाकुकुलनन्दनः ।१२६। स् (भगवाद् ऋष्भ देव यशस्वतीके स्वप्नोंका फल कहते है) हे देवी! सुमेरु पर्वत देखनेसे तेरे चक्रवर्ती पुत्र होगा । सूर्य उसके प्रतापको और चन्द्रमा उसको कान्तिको सूचित कर रहा है ।१२३। सरोवरके देखनेसे पवित्र लक्षणोंसे युक्त शरीर वाला होकर अपने विरत्त वक्षस्थले पर लक्ष्मी-को धारण करेगा ।१२४। पृथ्वीका ग्रसा जाना देखनेसे चक्रवर्ती होकर समस्त पृथ्वीका पालन वरेगा ।१२६। और समुद्र देखनेसे चरम-शरीरी होकर संसार समुद्रको पार करेगा । इसके अतिरिक्त इक्ष्वाकु-वंशको आनन्द देनेवाला वह पुत्र तेरे १०० पुत्रोमे ज्येष्ठ होगा ।१२६।

५. नारायणकी माताके सात स्वप्त

ह. पु./१६/१३-१६ ज्वबह्व्ह्ज्ज्वालहुताशमुच्चैः मुरध्वणं रत्नम्रीचिचक्रम्। मृगाधिपं चाननमानिशन्तं निशाम्य सौम्या बुबुधे
सकम्पा।१३। अपूर्वमुस्वम्नविलोकनारसा सिवस्मया हृष्ठतन्त्रहातान्।
जगौ प्रभाते कृतमङ्गलाङ्गा समेरय पत्येऽभिदधे स विद्वान्।१४।
प्रतापविध्वस्तरिष्ठः मुतस्ते प्रियोऽतिसौभाग्यमुतोऽभिषेको। दिवोऽवतीयितिरुचिः स्थिरोऽभीभविष्यति सिप्रमिनो जगत्याः।१६। च (वमुदेव अपनो राती देवकीसे कृष्णके गर्भसे पूर्व देखे गये स्वमौंका
फल कहते हैं) — हे प्रिये। जो समस्त पृथ्वीका स्वामी होगा ऐसा
तेरे पुत्र होगा। १. सूर्य देखनेसे शत्रु-विध्वसक प्रतापसे मुक्त होगा,
२. चन्द्रमाको देखनेसे सबका प्रिय होगा, ३. दिग्गजों द्वारा लक्ष्मीका
अभिषेक देखनेसे सौभाग्यशासो एवं राज्याभिषेकसे मुक्त होगा,
४. आकाशसे नोचे आता विमान देखनेसे स्वर्गसे अवतीर्ण होगा,
६. देवीष्यमान अग्नि देखनेसे अत्यन्त कान्तिसे मुक्त होगा, ६. रतनराशिकी विरणसे मुक्त देखनेसे जिथ्य होगा।११-१६।

६. मरत चक्रवर्तीके १६ स्वप्न--

म.पु. /४१/६३-७६।

सं,	प्रमाण श्लो.सं	स्ब ^{ध्} न	फल
१	€3	पर्वत पर २३ सिंह	बीरके अतिरिक्त २३ तीर्थ- करोंके समय दुष्ट नधोंकी उत्पत्तिका अभाव
२	Ęķ	सिंहके साथ हिरणों का समृह	वीरके तीर्थ में अनेकों कुलि- गियोंकी उत्पत्ति
3	ĘĘ	बड़े बोफसे फुकी पीठवाला घोड़ा	पंचम कालमें तपश्चरणके समस्त गुणोसे रहित साधु होंगे
8	ξ=	शुष्क पत्ते खानेवाते वकरों- का समूह	आगामी कालमें दुराचारी मनुष्योंकी उत्पत्ति
4	\$ 8	हाथीके ऊपर बैठे बानर	क्षत्रिय वंश तष्ट हो जायेंगे
٤	90	अन्य पक्षियों द्वारा त्रास किया हुआ उल्लुक	धर्मकी इच्छासे मनुष्य अन्य मतके साधुओं के पास जायेंगे
Jo	७१	आनन्द करते भूत	व्यन्तर देशोंकी पूजा होगी
4	ં ૭૨	मध्य भागमें सुला हुआ तालान	आर्घ खण्डमें धर्मका अभाव
3	७३	मलिन रत्नराशि	ऋद्भिधारी मुनियोंका अभाव
ξo	৬४	कुत्तेका नैवेद्य आदिसे सक्कार करना	गुणी पात्रोंके समान अवती। जाह्मणोंका सत्कार होगा
११	ુ _ફ	, जवान बेल	तरुण अवस्थामें ही मुनिपद होगा
१२	७६	मण्डलसे युक्त चन्द्रमा	अवधि व मनःपर्यय ज्ञानका अभाव होगा
१३	છ૭	शोभानष्ट दो जैल	एकाकी विहारका अभाव होगा
88	৩ন	मेघोंसे आवृत सूर्य	केवलज्ञानका अभाव होगा
१४	30	झाया रहित सूखा वृक्ष	स्त्री-पुरुषोंका चारित्र भ्रष्ट होगा
9.6	•	जीर्ज पत्तोंका समृह	महौषधियोंका रस नष्ट होगा

७. राजा श्रेयांसके सात स्वप्न

म, पु./२०/३४-४० सुमेरुमैशतो तुङ्गं हिरण्मयमहातनुम् । कलपद्वमं च द्वाखायलिम भूषणभूषितम् ।३४। सिहं संहारसन्ध्याभकेसरो दृधुर-कन्धरम् । गुङ्गायलग्नमृत्स्नं च मृषभं क्लमुद्रुजम् ।३६। सूर्येन्द्र सुवन-स्येव नयने प्रस्पुरहृद्युती । सरस्वन्तमि प्रोच्चेबीचि रत्नाचि-ताणंसम् ।३६। अष्टमङ्गलधारीणि भूतस्त्वाणि चावतः । सोऽपश्यद् भगवरपाददर्शने कफलानिमान् ।३७। सप्रध्यमधासाच प्रभाते प्रीत-मानसः । सोमप्रभाय तान् स्वप्नान् यथादण्टं न्यवेद्यत् ।३८। ततः पुरोधाः कण्याणं फलं तेषामभाषत । प्रसरहृशनज्योत्स्नाप्रधौतक-कृवन्तरः ।३६। मेरुसंदर्शनाह् वो यो मेरुरित सूत्रतः । मेरी प्राप्ताभिषेकः स गृहमेण्यति नः स्पुटस् ।४०। चराजा श्रेयांसने भगवान्को आहार-दानसे पूर्व प्रथम स्वप्नमें सुमेरु पर्वत देखा । फिर क्रमसे आभूषणोंसे सुशोभित कलपनृथ, किनारा उखाड्ता हुआ बेल, सूर्य-चन्द्रमा, लहरों और रत्नींसे सुशोभित समुद्र, और सात्वों स्वप्नमें अष्ट मंगल द्वय लिये हुए वयन्तर देवोंकी मूर्तियाँ देखी ।३४-३७। मेरुके देखनेसे यह फल प्रकट होता है कि जिसका सुमेरु पर अभिषेक हुआ है, ऐसा देव (ज्ञृषभ भगवान्) अवश्य आज हमारे घरमें आवेगा १४०। और ये अन्य स्वप्न भी उन्होंके गुणोंको सूचित करते हैं ।४१।

स्वप्नातिचार—दे. अतिचार/३।

स्वभाव — वस्तुके स्वयंसिद्ध, तर्कागोचर, नित्य शुद्ध अंशका नाम
स्वभाव है। वह दो प्रकारके होते हैं — वस्तुभूत और आपेक्षिक । तहाँ
वस्तुभूत स्वभाव दो प्रकार के हैं — सामान्य व विशेष । सहभावी गुण
सामान्य स्वभाव है और क्रमभावी पर्याय, विशेष स्वभाव है।
आपेक्षिक स्वभाव अस्तित्व, नास्तित्व, नित्यत्व-अनित्यत्व आदि
विरोधी धर्मोंके रूपमें अनन्त हैं, जिनकी सिद्धि स्थाद्वाद रूप सप्तभंगी द्वारा होती है। इन्हींके कारण वस्तु अनेकान्त स्वरूप है।

	> >
å	स्वमावके भेद लक्षण व विभाजन
8	स्वभाव सामान्यका रूक्षण् ।
	१, स्वभावका निरुक्तवर्थ ।
'	२. स्वभावका अर्थ अन्तरंग भाव । ३. स्वभावका लक्षण गुण पर्यायों में अन्वय परिणाम ।
	४. स्त्रभाव व शक्तिके एकार्थनाची नाम ।
ર	स्वभाव सामान्यके भेद ।
ą	सामान्य व विशेष स्वभावींके भेद ।
*	प्रत्येक द्रव्यके स्वभावदे वह-वह द्रव्य।
*	जीव पुद्गलका जध्व अधोगति स्वभाव
	–दे गति/१/३-६।
*	वस्तुमें अनेकों विरोधी धर्मीका निर्देश
	—दै, अनेकान्त/४।
*	जीवके क्षायोपशमिकादि स्वभाव
	— दे, भाव तथा वह-वह नाम ।
*	वस्तुमें अनन्तों धर्म होते हैं -दे.गुण/३/६-११।
४	उपचरित स्वमावके मेद व रुक्षण ।
۲,	प्रत्येक द्रव्यमें स्वभावींका निर्देश ।
દ્	वस्तुमें कल्पित व वस्तुभूत धर्मोंका निर्देश
२	स्वभाव व शक्ति निर्देश
१	स्वभाव परकी अपेक्षा नहीं रखता।
₹ ₹	स्वभावमें तर्क नहीं चलता ।
ą	क्षक्ति व व्यक्तिकी परोक्षता मत्यक्षता।
*	शक्तिका व्यक्त होना आवश्यक नहीं दे, भव्य/३/३।
*	अशुद्ध अवस्थामें स्वभावको शक्तिका अभाव
	रहता है -दे. अगुरुतधु।
४	स्वभाव या धर्म अपेक्षाकृत होते हैं।
ų	गुणको स्वभाव कह सकते हैं पर स्वभावको
ļ	गुण नहीं।
ફ	धर्मीकी सापेक्षताको न माने सो अज्ञानी .
*	स्वभाव अनन्त चतुध्य —दे, चतुष्टय।
*	स्वभाव विभाव सम्बन्धी —दे, विभाव।
*	स्वभाव व विभाव पर्याय 💛 🗕 दे. पर्याय/३।
*	वस्तु स्वभावके भानका सम्यग्दर्शनमें स्थान
	— दे. सम्यग्दर्शन/II/३।

१. स्वभावके भेद लक्षण व विभाजन

१, स्वभाव सामान्यका लक्षण

स्वभावका निरुक्ति अर्थ

रा. वा./७/१२/२/५३६/८ स्वेनात्मना असाधारणेन धर्मेण भवनं स्वभाव इत्युच्यते। चस्त्र अर्थात् अपने असाधारण धर्मके द्वारा होना सो स्वभाव कहा जाता है।

स.सा./आ./७१ स्वस्य भवनं तुस्वभावः। = 'स्व' का भवन अर्थात् होना वह स्वभाव है।

का. अ./मू./४७८ धम्मी बत्थुसहावो । = बस्तुके स्वभावको धर्म कहते हैं। (भाव संग्रह /३७३)

त. अनु./१३ वस्तुस्बरूपं हि प्राहुर्धर्मं महर्षयः ।१३। = बस्तुके स्वरूपको ही महर्षियोंने धर्म कहा है।

स. श./टी./१/२२६/१८ स्वसंवेद्यो निरुपाधिकं हि रूपं वस्तुतः स्व-भावोऽभिधीयते। ⇒स्वसंवेद्य निरुपाधिक ही वस्तुका स्वरूप है, बही वस्तुका स्वभाव है।

२. स्वभावका छक्षण अन्तरंग भाव

क, पा. १/४,२२/६६२२/३८७/३ की सहावी। अन्तरङ्गकारणं। = अन्तरंग कारणको स्वभाव कहते हैं।

ध. ७/२,४,४/२३८/७ को सहाबो णाम। अन्भंतरभाषोः = आभ्यन्तर भावको स्वभाव कहते हैं। (अर्थात वस्तु या वस्तुस्थितिकी उस अवस्थाको उसका स्वभाव कहते हैं जो उसका मीतरी गुण है और बाह्य परिस्थिति पर अवलम्बित नहीं है।)

३. स्वभावका छक्षण गुण पर्यायोमें अन्वय परिणाम

प्र. सा./त. प्र./१६५.१६ स्वभावोऽस्तित्वसामान्यान्वयः ११६० स्वभावस्तु द्रव्यस्य भौव्योत्पादोच्छेदैक्यात्मकपरिणामः ११६१ व्यव्यका स्वभाव वह अस्तित्व सामान्य रूप अन्वय है ११६० स्वभाव द्रव्यका भौव्य-उत्पादविमादाकी एकता स्वरूप परिणाम है ११६०

प्र. सा./ता. वृ./=७/११०/१२ द्रव्यस्य कः स्वभाव इति पृष्टे गुणपर्या-याणामारमा एव स्वभाव इति । =प्रश्न-द्रव्यका क्या स्वभाव है ! उत्तर-गुण पर्यायोंकी आरमा ही स्वभाव है ।

४. स्वभाव व शक्तिके स्कार्थवाची नाम

दे. तत्त्व/१/१ तत्त्व, परमार्थ, द्रब्य, स्वभाव, परमपरम, ध्येय, शुद्ध और परम ये सम एकार्थवाची हैं।

दे. प्रकृति बन्ध १/१ प्रकृति, शक्ति, लक्षण, विशेष, धर्म, रूप, गुण तथा शील व आकृति एकार्थवाची हैं।

२, स्वभाव सामान्यके भेद

न.च.बृ /४६ को उत्थानिका--स्त्रभावाद्विविधाः --सामान्या विशेषाश्च। =स्त्रभाव दो प्रकारके हैं--सामान्य, विशेष। (पं. ध./पू./२०)

३. सामान्य व विशेष स्वभावींके भेद

न, च. वृ./१६-६० अतिथत्ति णारिथ णिच्चं आणिच्चमेगं अणेगभेदिदरं भवना भवनं परमं सामण्णं सक्वदक्वाणं १६६। चेदणमचेदणं पि हु मुत्तममुत्तं च एगबहुदेसं। मुद्रामुद्रविभावं उत्तयरियं होइ कस्सेव ।६०। अस्तित्व, नास्तित्व, नित्य, अनित्य, एक, अनेक, भेद, अभेद, भव्य, अभव्य और परम। ये ११ सर्व द्रव्योंके सामान्य स्वभाव हैं।१६। चेतन, अचेतन, मूर्त, अमूर्त, एकप्रदेशी, बहुप्रदेशी, सुद्ध, अशुद्ध, विभाव और उपचरित ये १० स्वभाव द्रव्योंके विशेष स्वभाव हैं। [इस प्रकार कुत २१ सामान्य व विशेष स्वभाव हैं। (न. च. वृ./७०)]; (आ, प./४), (न. च. शुत/६१)

का. अ,/३१२ पं जयचन्द-वे धर्म (स्वभाव) अस्तिरव, नास्तित्व, एकत्व, अनेकत्व, नित्यत्व, अनिरयत्व, भेदत्व, अभेदत्व, अपेद्राव, अन्तर्भारव, देवसाध्यत्व, पौरुषसाध्यत्व, हेतुसाध्यत्व, आगम साध्यत्व, अन्तरंगत्व, बहिरंगत्व, इत्यादि तो सामान्य हैं। बहुरि द्रव्यत्व, पर्यायत्व, जीवत्व, अजीवत्व, स्पर्शत्व, रसत्व, गम्धत्व, वर्णत्व, राज्दत्व, शुद्धत्व, अशुद्धत्व, सूर्तत्व, असूर्तत्व, संसारित्व, सिद्धत्व, अवगहत्व, गति-हेतुत्व, स्थिति हेतुत्व, वर्षनाहेतुत्व इत्थादि विशेष धर्म हैं।

४, उपचरित स्वभावके भेद व लक्षण

जा. प./६ स्वभावस्याप्यन्यत्रोपचारादुपचरितस्वभावः। स द्वेधा-कर्म-जस्वाभाविकभेदात्। यथा जीवस्य मूर्तरवमचैतन्यस्वं, यथा सिद्धानां परज्ञता परदर्शकरवं च। एवमितरेषां द्रव्याणासुपचारो यथासंभवो ह्येयः। = स्वभावका भी अन्यत्र उपचार करनेसे उपचरित स्वभाव होता है। वह उपचरित स्वभाव कर्मज और स्वाभाविकके भेदसे दो प्रकारका है। जैसे जीवका मूर्तत्व और अचेतनस्व कर्मजस्वभाव है। और सिद्धोंका परको देखना, परको जानना स्वाभाविक स्वभाव है। इस प्रकार दूसरे द्रव्योंका उपचार भी यथासम्भव जानना चाहिए।

दे. पारिणामिक/२ अस्तिरव, अन्यत्व, कर्नुत्व, भोक्तृत्व, पर्यायत्व, असर्वगतत्व, अनाविसन्तिति बन्धरव, प्रदेशवस्व, अरूपरव, नित्यत्व आदि भाव च शब्दसे समुच्चय किये गये हैं।

स.सा./आ./परि./४७ शक्तियाँ — जीव द्रव्यमें ४७ शक्तियों का नाम निर्देश किया गया है, यथा — १, जीवत्व, २, चितिशक्ति, ३, ह्विशिक्ति, ४, ज्ञानशक्ति, ६, सुखशक्ति, ६, बीर्यशक्ति, ७, प्रभुत्व, द. विभुत्व, ६, सर्वदिशित्व, १०, सर्वज्ञत्व, ११, स्वच्छत्व, ११, परिणम्य११, असंकुचितिकशशस्व, १४, अकार्यकारण, १६, परिणम्यपरिणामकत्व, १६, रयागोपादानश्च्यत्व, १७, अगुरुत्वष्ठत्व, १८, उत्पाद्वययधौद्यत्व, १६, परिणाम, २०, अमूर्तत्व, २१, अकर्तृत्व, २२, अमर्तत्व, २१, सर्वधर्मव्यापकत्व, २३, निष्क्रियत्व, २४, नियतप्रवेशत्व, २६, सर्वधर्मव्यापकत्व, २६, साधारणासाधारणधर्मत्व, २७, अनन्तधर्मत्व, २८, विरुद्धधर्मत्व, २६, तत्त्वशक्ति, ३०, अतत्त्वशक्ति, ३१, एकत्व, ३२, अनेकत्व, ३३, भावशक्ति, ३४, अभावशक्ति, ३६, भावभावशक्ति, ३६, भावभावशक्ति, ३६, भावभावशक्ति, ३६, भावभावशक्ति, ३६, भावभावशक्ति, ३१, कर्तृशक्ति, ३१, सम्प्रदानशक्ति, ४१, कर्मशक्ति, ४२, कर्तृशक्ति, ४३, करणशक्ति, ४४, सम्प्रदानशक्ति, ४६, अपादानशक्ति, ४६, अधिकरणशक्ति, ४७, सम्बन्धशक्ति।

५. प्रत्येक द्वब्यमें स्वभावींका निर्देश

न. च. बृ./७० हगवीसं तु सहावा दोण्हं तिण्हं तु सोडसा भणिया।
पंचदसा पुण काले दब्बसहावाय णायद्वा १७०१ = जीव पुद्रगलके
२१ स्वभाव हैं, धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्यके १६ स्वभाव कहें
गये हैं। तथा काल द्रव्यके ११ स्वभाव जानना चाहिए।

स. सा./पं. जयचन्द/आ./क. २ वस्तुमें अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशस्य, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तिकत्व, अम्तिकत्व इत्यादि तो गुण हैं। ... एकत्व, अनेकर्य, नित्यत्व, अनित्यत्व, भेदत्व, अभेदत्य, शुद्धत्व, अशुद्धत्व, आगेदत्व, विवयत्व, मेदत्व, अभेदत्य, शुद्धत्व, अशुद्धत्व आदि अनेक धर्म हैं। वे सामान्य रूप तो वचनके गोचर हैं, किन्तु अन्य विशेष रूप धर्म वचनके विषय नहीं हैं। किन्तु वे ज्ञानगम्य हैं। आत्मा भी एक वस्तु है उसमें भी अनन्त धर्म हैं।

स. सा./पं जयचन्द/४०४ आत्मामें अनन्तधर्म है, कितने तो छ्यस्थके अनुभव गोचर ही नहीं हैं, कितने ही धर्म अनुभव गोचर हैं। कितने ही तो अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्वादि तो अन्य द्रव्योंके साथ सामान्य और कितने ही पर द्रव्यके निमित्तसे हुए हैं।

६. वस्तुमें कल्पित व वस्तुभूत धर्मोंका निर्देश

क्लो, बा. २/१/७/१/१२६/२७ किन्यतानां वस्तुभूतानां च धर्माणां वस्तुनि यथाप्रमाणोपपन्नत्वात्। =वस्तुनें प्रमाणोंकी उत्पत्तिकः अतिक्रम नहीं करके कल्पित, अस्ति, नास्ति आदि सप्तभंगीके विषय-भूत धर्मोंको और वस्तुभूत वस्तुत्व, द्रञ्यत्व, ज्ञान, मुख, रूप, रस आदि धर्मोंको सिद्धि हो रही है।

२. स्वभाव व शक्ति निर्देश

१. स्वभाव परकी अपेक्षा नहीं रखता

न्या. वि./टी./१/११६/४८८ पर प्रमाण वार्तिकसे उद्गृत - अर्थान्तरा-नपेक्षत्वात् स स्वभावोऽनुवर्णितः । चतूसरे पदार्थकी अपेक्षा न होनेसे वह स्वभाव कहा गया है ।

- स. सा./आ./११६ न हि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्यते। ...न हि वस्तुशक्तयः परमपेशन्ते। म्ल(वस्तुमें) जो शक्ति स्वतः न हो उसे अन्य कोई नहीं कर सकता। वस्तुकी शक्तियाँ परकी अपेशा नहीं रखती।
- प्र. सा./तः प्र./१६.६६,१८ स्त्रभावस्य तु परानपेक्षत्त्रात् ।१६। स्वभावः तरपुनरन्यस।धनिनरपेक्षत्वादनाद्यनन्तत्या हेतुक्रयैकरूपया · · · ।६६। सर्वद्रव्याणां स्वभावसिद्धत्व।त् स्वभावसिद्धत्वं तु तेषामनादिनिधन्त्वात् । अनादिनिधनं हि न साधनान्तरमपेक्षते ।१८। =स्त्रभाव-परसे अनपेक्ष है ॥१६॥ स्वभाव अन्य साधनसे निरपेक्ष होनेके कारण अनादि अनन्त होनेसे तथा अहेतुक, एकरूप वृत्तिसे ।१६६। वास्तवमें सर्व द्रव्य स्वभावसिद्ध हैं। स्वभावसिद्धता तो उनकी अनादिनिधनतासे है, क्योंकि अनादिनिधन साधनान्तरकी अपेक्षा नहीं रखता ।१८।

२. स्वभावमें तर्क नहीं चलता

घ. १/१,१,२९/१६६/२ न हि स्त्रभावाः परपर्यानुयोगार्हाः। =स्त्रभाव दूसरोंके प्रश्नोंके योग्य नहीं हुआ करते हैं। (ध. ६/४,१,४४/१२१/२), (और भी दे. आगम/६/३)।

ध. ६/१,६,७८/६६/७ ण च सहावे जुत्तिवादस्स पवेसी अत्थि।

स्वभावमें युक्तिवादका प्रवेश नहीं है।

गो. जी /जी. प्र./१८४४११/२० स्वभावोऽतर्कगोचरः इति समस्त-वादिसंमतक्ष्वात्। == स्त्रभावमें तर्क नहीं चलता. ऐसा समस्तवादी मानते हैं (रलो, वा. २/भाषा/१/६/३८/३६३/१२); (पं.ध/ड/५३,४८८)।

३. शक्ति व ज्यक्तिकी परीक्षता प्रत्यक्षता

न्या, वि./वृ./२/१८/२७ पर उद्दधृत — शक्तिः कार्यानुमेया हि व्यक्तिः दर्शनहेतुका। — शक्तिका कार्यपरसे अनुमान किया जाता है और व्यक्तिका प्रस्यक्ष दर्शन होता है।

४. स्वमाव या धर्म अपेक्षा कृत होते हैं

स्था. म,/२४/९८६/२१ नन्वेते धर्माः परस्परं विरुद्धाः तत्कथमेकत्र बस्तुन्येषां समावेशः संभवति । उपाध्योऽवच्छेदकाः अंशप्रकाराः तेषां भेदो नानारवम्, तेनोपहितमपितम् । असत्त्वस्य विशेषणमेतत् । उपाधिभेदोपहिलं सदर्थेष्ठस्तत्त्वं न विरुद्धम् । ज्यप्रन--अस्तित्व, नास्तित्व और अवक्तव्य परस्पर विरुद्ध हैं, अतएव ये किसी वस्तुमं एक साथ नहीं रह सकते । उत्तर--वास्तवमं अस्तित्वादिमं विरोध नहीं है । क्यों कि अस्तित्वादि किसी अपेशसे स्वीकार किये गये हैं। पदार्थों अस्तित्व, नास्तित्वादि नामाधर्म विद्यमान हैं । जिस समय हम पदार्थोंका अस्तित्व सिद्ध करते हैं, उस समय अस्तित्व धर्मकी प्रधानता और अन्य धर्मकी गौणता रहती है । अतएव अस्तित्व, नास्तित्व धर्ममें परस्पर विरोध नहीं है । दे. स्वभाव/१/६ सप्तर्भगीके विषयभूत अस्तित्व नास्तित्व आदि धर्म वस्तुमें किन्पत हैं।

५. गुणको स्वभाव कह सकते हैं पर स्वभावको गुण नहीं

आ.प./६ धर्मापेक्ष्या स्वभावा गुणा न भवन्ति । स्वद्रव्यचतुष्टयापेक्ष्या परस्परं गुणा; स्वभावा भवन्ति । अधर्मोकी अपेक्षा स्वभाव गुण नहीं होते हैं। परन्तु स्व द्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा परस्पर गुण स्वभाव होते हैं।

६. धर्मौकी सापेक्षताको न माने सो अञ्चानी

न, च. वृ./७४ इति पुट्युत्ता धम्मा सियसावेवला ण गेहर जो हु। सो इह मिच्छाइही णायव्यो पत्रयणे भणिखो ।७४। — जो पूर्वमें कहे हुए धमोंको कथंचित परस्परमें सापेक्ष ग्रहण नहीं करता है वह मिध्यादृष्टि जानना चाहिए। ऐसा वचनमें कहा है ।७४।

स्वभाव नय-दे. नय/1/६/४।

स्वभाववाद मो. क./मू/८८३ को करइ कंटयाणं तिक्खसं मियविहंगमादीणं। विविहत्तं तु सहाओ इदि सन्वंपि य सहाओ ति । १८०३। चकाँटेको आदि लेकर जो तीक्षण वस्तु हैं उनके तीक्षणपना कीन करता है। तथा मृग और पक्षी आदिकोंके अनेकपना कीन करता है। इस प्रश्नका उत्तर मिलता है कि सबमें स्वभाव ही है। ऐसे सबको कारणके विना स्वभावसे ही मानना (मिथ्या) स्वभाव वादका अर्थ है।

नि. सा./ता. वृ./१७० ज्ञानं तावज्जीवस्वरूपं भवति, ततो हेतोरखण्डादेतस्वभावनिरतं निरतिशयपरमभावनासनाथं मुक्तिमुन्दरीनाथं
बहिव्यवितकीत्तृहर्णं निजपरमारमानं जानाति कश्चिदात्मा भव्यजीव इति अयं खलु स्वभाववादः । — ज्ञान वास्तवमें जीवका स्वरूप है, उस हेतुसे जो आवण्ड अद्वेत स्वभावमें जीन है, जो निरतिशय परम भावना सहित है, जो मुक्ति मुन्दरीका नाथ है और बाह्ममें जिसने कौतृहल व्यावृत किया है ऐसे निज परमारमाको कोई आरमा-भव्य जीव जानता है । ऐसा वास्तवमें (निश्चय) स्वभाववाद है।

स्वभावविरुद्धानुपलब्धिहेतु—_{दे, हेतु ।} स्वभावानित्य पर्यायाशिक नय—_{दे, नय/IV/४।}

स्वमुखोदय-दे, उदय/१।

स्वयंत्रभे—१. भाविकालीन चोथे तीर्थंकर—दे. तीर्थंकर/१। २. म. पु./सर्ग/श्लोक ऐशात स्वर्गका एक देव था। (१/१६६) यह श्रेयांस राजाका पूर्वका छठा भव है। —दे. श्रेयांस। ३. सुमेरु पर्वतका अपर नाम—दे. सुमेरु। ४. रुचक पर्वतस्थ एक इट —दे. लोक/१/१३।

स्वयं प्रभा — म. पु./सर्ग/श्लोक स्वर्गमें लिलतांगदेव (ऋषभदेवके नवमें भव) की अति प्रिय देवी थी (१/१८६)। यह लिलतांगदेवके 'स्वर्गसे च्युत होनेपर अति दुली हुई (६/१०)। अन्तमें पंचपरमंग्ठीके स्मरण पूर्वक स्वर्गसे च्युत हुई (६/१६-१७)। यह श्रेयांस राजाका पूर्वका पाँचवाँ भव है — दे. श्रेयांस।

स्वयं कुद्ध- १, इस सम्बन्धी विषय- दे. बुक्ष । २० म. पु./सर्ग/ श्लोक यह राजा महाबल (खुवभरेवका पूर्वका नवमा भव) का मन्त्री था (४/१६१) इसने तीन मिथ्यादृष्टि मन्त्रियों द्वारा मिथ्या-वादोंकी स्थापना करनेपर उनका खण्डनकर आस्तिक्यभावकी स्थापना की (४/८६)। एक समय मेरुकी बन्दनार्थ गया (४/१६१) वहाँ मुनियोंसे राजाकी दसवें भवमें मुक्ति जानकर हर्षित हुआ (१/१६८-२००)। आयुका अन्त जानकर राजाका समाधि पूर्वक मरण कराया। (१/२२६) अन्तमें राजाके वियोगसे दीक्षा ग्रहण कर ली। तथा समाधिपूर्वक स्वर्गमें रत्नचूल देव हुआ (१/९०६)।

स्वयं सु — १. म. पु./६१/ श्लोक पूर्व भव सं. २ में पश्चिम विदेहमें मिन्ननन्दी राजा था (६३) पूर्व भवमें अनुत्तर विमानमें अहिमन्द्र था (७०)। वर्तमान भवमें तृतीय नारायण हुए हैं। विशेष परिचय — च्दे. शलाकापुरुष/४। २. भाविकालीन उन्नीसवें तीर्थं कर हैं। — दे, तीर्थं कर/६। ३. योगदर्शनके आद्य प्रवर्तक हिरण्यगर्भका अपर नाम— दे. योगदर्शन। ४. अपभ्रंशके प्रथम कवि हैं। इनके पिताका नाम मारुत देव, और माताका नाम पश्चिनी था। आप्का निवास स्थान कर्णाटक अथवा कन्नीज। सेठ धनक्जय अथवा धवलह्या द्वारा रक्षित। कृतियें — पचन चरिज, रिट्टणेमि चरिज, स्वयम्भुखन्द, स्वयम्भु ठ्याकरण, पंचिम चरिज, हरिषंश पुराण। समय— ई. ७३८-८४०। (ती./४/६४)।

स्वयंभू- १. स्वयंभूका लक्षण

निक्षेप/४/८/६ आचार्योंकी अपेक्षा न करके संयमसे उत्पत्न हुए श्रुत ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे स्वयंबुद्ध होते हैं।

- पं. का./ता. व./१५२/२२०/१२ तथा चोक्तम्-श्रीपूज्यपादस्वामिभि-निश्चयध्येयव्यात्व्यानम् । आत्मानमात्मा आत्मन्येवात्मनासौ क्षण-सुपजनयन्सन् स्वयंभूः प्रवृत्तः । =श्रीपूज्यपाद स्वामीने भी निश्चय ध्येयका व्याख्यान किया है कि—आत्मा आत्माको आत्मामें आत्माके द्वारा उस आत्माको एक क्षण धारण करता हुआ स्वयं हो जाता है ।
- प्र. सा./त.प्र./१६ स्वयमेव घट्कारकीरूपेणोपजायमानः, उत्पत्तिव्यपेक्षमा द्रव्यभावभेदिभिन्नवातिकमिण्यपास्य स्वमेवाविभूतित्वाद्वा स्वयंभूरिति निर्दिश्यते । —स्वयं ही घट्कारक रूप होता है, इस-लिए वह स्वयंभू कहलाता है । अथवा अनादि कालसे अतिदृढ वंधे हुए द्रव्य तथा भाव घाति कर्मीको नष्ट करके स्वयमेव आविभूत हुआ है, अर्थात् किसीकी सहायताके विना अपने आप ही स्वयं प्रगट हुआ इसलिए स्वयंभू कहलाता है।
- स्या. म./१/१/३ स्वयम्-आत्मनैव, परोपदेशनिरपेक्षतयावगततस्वो भव-तितीति स्वयंभूः — स्वयंसंबुद्धः । = जिसने दूसरैके उपदेशके विना स्वयं ही तत्त्वोंको जान तिया है, वह स्वयभू कहसाता है।
- स्व. स्तो./टी./१ स्वयं परोपदेशमन्तरेण मोक्षमार्गमबबुद्धव अनुष्ठाय वा अनन्तं भवतीति स्वयंभः। = स्वयं ही बिना किसी दूसरेके उपदेशके मोक्षमार्गको जानकर तथा उसका अनुष्ठान करके आरम्बिकासको प्राप्त हुए थे, इसलिए स्वयम्भू थे।
 - * जीवको स्वयम्भू कहनेकी विवक्षा—दे, जीव/१/३।

स्वयंभू छन्द-किव स्वयम्भू (ई ७३४-८४०)कृत = अध्यायो बाला अवभंश खन्द शास्त्र । (ती./४/१०१) ।

स्वयं सूरमण-१. मध्यलोकका अन्तिम सागर व द्वीप-दे, लोक /४/८। २. स्वयम् भूरमण द्वीप व समुद्रका लोकमें अवस्थान व विस्तार-दे. लोक/२/१९। ३. इस द्वीप व समुद्रमें काल वर्तन आदि सम्बन्धी विशेषताएँ -दे. काल/४/१५।

स्वयं सूरतोत्र - आ. समन्तभद्र (ई. श.२) कृत यह ग्रन्थ संस्कृत अन्दों ने रचा गया है। इसमें २४ तोर्थं करों का स्तवन किया है, और बह भी न्यायपूर्वक अनेकान्तकी स्थापना करते हुए। २, ३ के अति-रिक्त सभी तीर्थं करोंके स्तवनमें ५,५ श्लोक हैं। कुल श्लोक १४३ हैं।

स्वयंशोधातिचार—हे, अतिचार/३।

स्थर--- १. स्वरनामकर्म निर्देश

स. सि./प/११/३६१/१२ यित्रिमित्तं मनोज्ञस्वरिनर्वतंनं तत्सुस्वरनाम । विद्विपरीतं दुःस्वरनाम । ⇒िजसके निमित्तसे मनोज्ञ स्वरकी रचना होतो है वह सुस्वर नामकर्म है। इससे विपरीत दुःस्वर नामकर्म है। (रा. वा./प/११/१६-२६/६७६/१); (घ ६/१, ६-१,१८/६६/३); (गो क./जी. प्र/३६/३०/६)।

ध. १३/५ ६.१०१/३६६/१ जस्स कम्मस्सुद्धण कण्णसुही सरो होदि तं सुस्सरणामं। जस्स कम्मस्सुद्धण खरोड्डाणं व कण्णसुहो सरो ण होदि तं दुस्सरणामं। = जिस कर्मके उदयसे कानोंको प्यारा सगनेवासा स्वर होता है वह सुस्वर नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे गधा एवं ऊँटके समान कर्णोंको प्रिय लगनेवासा स्वर नहीं होता है वह दुःस्वर नामकर्म है।

२. षड्ज आदि स्वर निर्देश

निषादर्भगान्धारषड्जमध्यमधेवताः। का. अ./टी./१८६/१२३/१ पञ्चमश्चेति सप्तैते तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः ।१। कण्ठदेशे स्थितः षड्जः शिरःस्थऋषभस्तथा। नासिकायां च गान्धारो हृदये मध्यमो भवेत ।२। पञ्चनश्च मुखे ज्ञेयस्तालुदेशे तु धैवतः। निषादः सर्वगात्रे च ज्ञेयाः सप्तस्वरा इति ।३। निषादं कुञ्जरो विक्ति बृते गौ ऋषभं तथा। अजा बदित गान्धारं पड्जं ब्रुते भुजङ्गभुक् ।४। बबीति मध्यमं क्रौब्चो धैयतं च तुरंगमः। पुष्पसंधारणे काले पिकः कूजति पञ्चमम्।१। - निषाद, ऋषभ. गान्धार, षड्ज, मध्यम, घैवत और पंचम ये सात स्वर तन्त्री रूप कण्ठसे उत्पन्न होते हैं। १। जो स्वर कण्ठ देशमें स्थित होता है, उसे पद्धज कहते हैं। जो स्वर शिरोदेशमें स्थित होता है उसे ऋषभ कहते हैं। जो स्वर नासिका देशमें स्थित होता है उसे गान्धार कहते हैं। जो स्वर हृदय देशमें स्थित होता है उसे मध्यम कहते हैं।२। मुख देशमें स्थित स्वरको पंचम कहते हैं। तालु देशमें स्थित स्वरको धैवत कहते हैं और सर्व शरीरमें स्थित स्वरको निवाद कहते हैं। इस तरह ये सात स्वर जानने चाहिए।३। हाथीका स्वर निवाद है। गौका स्वर वृषभ है। अकरीका स्वर गान्धार है और गरुड़का स्वर षड्ज है। क्रींच पक्षीका शब्द मध्यम है। अश्वकास्वर धैवत है और वसन्त ऋतुमें कोयल पंचम स्वरसे कूजती हैं।

\star अन्य सम्बन्धित विषय

१. स्वरोंकी अपेक्षा अक्षरके भेद-प्रभेद । — दे. अक्षर ।

विक्रलेन्द्रियमें दुःस्वर ही होता है तथा तत्सम्बन्धी
 वंका-समाधान।

स्वर निमित्तः ज्ञान-दे. निमित्त/२।

स्वरूप — भूत जातिके व्यन्तर देवोंकाइन्द्र । दे. भूत, व्यन्तर /२/१ । स्वरूप यक्ष — यक्ष जातिके व्यन्तर देवोंका एक भेद — दे. यह । स्वरूप विपर्यय — दे. विपर्यय ।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

स्वरूप संबोधनि—१. आ अक्लंक भट्ट (ई. ६२०-६८०) कृत २५ श्लोक प्रमाण आध्यारिमक ग्रन्थ, जिस पर नयसेन के शिष्य महासेन (बि. श ७-८)। (जै/२/१८८)। २, शुभचन्त्र (ई. १५१६-१५१६) कृत । (दे. शुभचन्ट)।

स्वरूपाचरण चारित्र — असंयतादि गुणस्थानों में सम्यक्त्वके कारण परिणामों में जो निर्मलता या आंशिक साम्यता जागृत होती है, उसीको आगममें स्वरूपाचरण या सम्यक्त्व चारित्र कहते हैं। मोक्षमार्गमें इसका प्रधान स्थान है। व्रतादि रूप चारित्रमें इसके साथ वर्त ते हुए ही सार्थक है अन्यथा नहीं।

१. स्वरूपाचरण चारित्र निर्देश

चा. पा./मू./ तं चेव गुणविसुद्धं जिणसम्मत्तं सुमुक्खठाणाय। जं चरह णाणजुतं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं। — निःशंकित आदि गुणोंसे निशुद्ध अरहन्त जिनदेवको श्राद्ध होकर, यथार्थ ज्ञान सहित आचरण करें सो प्रथम स्वरूपाचरण चारित्र है। सो यह मोक्षमार्गमें कारण है।८।

पं. भ्रां, ज्रां, ७६४ कर्मा दान कियारोधः स्वरूपाचरणं च यत्। धर्मः शुद्धी-पयोगः स्यारसेष चारित्रसंज्ञकः ।७६४। च्लो कर्मोकी आसव रूप कियाका रोधक है वही स्वरूपाचरण है, वही चारित्र नामधारी है, शुद्धोपयोग है, वही धर्म है। (ला. सं./४/२६३)।

२. चारित्रका उद्य स्वरूपाचरणमें बाधक नहीं

पं. धः /उः /६६०-६६२ कार्यं चारित्रमोहस्य चारित्राच्च्युतिरात्मनः।
नारमदृष्टेस्तु दृष्टित्वान्त्यायादितरदृष्टिवत् ।६६०। यथा चक्षुः प्रसन्नं
वै कस्यचिद्दैवयोगतः। इत्रत्राक्षत्।पेऽपि दृष्टाध्यक्षत्र तस्क्षतिः ।६६९।
कषायाणामनुबेकश्चारित्रं ताबदेव हि। नानुबेकः कषायाणां चारित्राच्च्युतिरात्मनः ।६६९। — न्यायसे तो चारित्रसे आत्माको च्युत करना
ही चारित्र मोहका कार्य है किन्तु इत्रकी दृष्टिके समान शुद्धात्मानुभवसे च्युत करना चारित्र मोहका कार्य नहीं ।६६०। जैसे प्रत्यक्षमें
देवयोगसे किसोको आँखमें पीड़ा होनेपर भो किसी दूसरेकी आँख
प्रसन्न भी रह सकती है। वैसे हो चारित्रमोहसे चारित्रगुणमें विकार
होनेपर भी शुद्धात्मानुभवकी क्षति नहीं ।६६१। निश्चयसे जितना
कषायोंका अभाव है उत्तना हो चारित्र है और जो कषायोंका उदय
है वही चारित्रसे च्युत होता है।६६१।

🛨 अन्य सम्बन्धित विषय

१. अल्प मृशिकामें भी कथंचित् शुद्धोपयोग इत्प स्वरूपाचरण चारित्र अवस्य होता है। —हे. अनुभव/६।

र. निन्दन गर्हण ही अविरत सम्यग्दृष्टिके स्वरूपा-चरण चारित्रका चिह्न है। —हे. सम्यग्दृष्टि/४।

इ. स्वरूपाचरणचारित्र ही मोक्षका प्रथान कारण है।
 —वे चारित्र/२/२।

४. लौकिक कार्य करते भी सम्यग्दृष्टिको झान चेतना रहती है। —दे, सम्यग्दृष्टिको आन चेतना

स्वरूपाभाव — हे. अभाव। स्वरूपासिद्ध — हे. असिद्ध। स्वरूपास्तित्व — हे. अस्तित्व। स्वर्गं — देवों के चार भेदों में एक वैमानिक देश नामका भेद है। ये लोगं उद्ध्वलोक के स्वर्ग विमानों में रहते हैं तथा बड़ी विभ्रति व ऋद्धि आदिको घारण करनेवाले होते हैं। स्वर्ग के दो विभाग हैं — कल्प व कल्पातीत। इन्द्र सामानिक आदि रूप कल्पना भेद युक्त देव जहाँ तक रहते हैं उसे कल्प कहते हैं। वे १६ हैं। इनमें रहनेवाले देव कल्पवासी कहलाते हैं। इसके उपर इन सब कल्पायों से अतीत, समान ऐश्वर्य आदि प्राप्त अहमिन्द संज्ञावाले देव रहते हैं। वह कल्पातीत है। उनके रहनेका सब स्थान स्वर्ग कहलाता है। इसमें इन्द्रक व श्रेणी- बद्ध आदि विमानों की रचना है। इनके अतिरिक्त भी उनके पास घूमने फिरनेको विमान है, इसी लिए वैमानिक संज्ञाभी प्राप्त है। बहुत अधिक पुण्यशाली जीव वहाँ जन्म लेते हैं, और सागरों की आयु पर्यन्त दुर्लभ भोग भोगते हैं।

वैमानिक देवोंके भेद व लक्षण वैमानिकाव कल्पके रूक्षण । १-२ कल्प व कल्पातीत रूप मेद व उनके रूक्षण । ₹ कल्पातीत देव सभी अहमिन्द्र होते हैं । ሄ सौधर्म ईशान आदि भेद । -दे. स्वर्ग/४/२। वैमानिक देव सामान्य निर्देश ₹ मोक्ष जानेकी योग्यता सम्बन्धी नियम । 8 मार्गणा व गुणस्थान आदि २० मरूपणाएँ - दे. सत । * सत् संख्या क्षेत्र आदि आठ मरूपणाएँ । — दे. वह-वह नाम । अवगाहना व आयु । --दे. वह∽वह नाम । सम्भव कषाय, वेद, छेश्या, पर्याप्ति । --दे. वह-वह नाम। सम्भव कर्मीका बन्ध उदय सत्त्व । - दे. वह-वह नाम । जन्म, शरीर, आहार, सुख, दु:ख आदि । —दे. देव/II/२ । कहाँ जन्मे और क्या गुण प्राप्त करे। — दे, जनम/६। वैमानिक इन्द्रोंका निर्देश ŧ नाम व संख्या आदिका निर्देश। ₹ ₹ दक्षिण व उत्तर इन्द्रोंका विभाग। इन्द्री व देवेंकि आहार व श्वासका अन्तराल । ₹ विमानोंके भेद-वैकियक व स्वामाविक -दे. विमान। इन्द्रोंके चिह्न व यान विमान । К इन्द्रों व देवोंकी शक्ति व विक्रिया। ч वैमानिक इन्द्रोंका परिवार । १, सामानिक अ। दि देशोंकी अपेशा। २. देवियों की अपेशा। इन्द्रोंके परिवार देवोंकी देवियों । इन्द्रोंके परिवार, देवोंका परिवार विमान आदि। वैमानिक देवियोंका निर्देश इन्द्रोकी प्रधान देवियोंके नाम 🚛 ₹

देवियोंको उत्पत्ति व गमनागमन सम्बन्धी नियम ।

4

ą

ų

v

ł٥

११

स्वर्गछोकका निर्देश

१ स्वर्गछोक सामान्य निर्देश। स्वरुप व कल्पातीत विभाग निर्

कल्प व कल्पातीत विभाग निर्देश ।

स्वर्गोंमें स्थित पटलोंके नाम व उनमें स्थित

इन्द्रक व श्रेणीबद्ध ।

४ श्रेणीवडोंके नाम ।

स्वर्गीमें विमानींकी संख्या ।

१ बाग्ह इन्द्रीकी अपेक्षा।

२, चौदह इन्द्रोंकी अपेक्षा।

६ विमानोंके वर्ण व उनका अवस्थान।

दक्षिण व उत्तर कल्पोमें विमानीका विभाग।

८ दक्षिण व उत्तर इन्द्रोंका निश्चित निवास स्थान ।

इन्द्रोंके निवासभूत विमानींका परिचय ।

कल्पविमानी व इन्द्र भवनीके विस्तारादि ।

इन्द्र नगरोंका विस्तार आदि ।

ब्रह्म स्वर्गका छौकान्तिक छोक ।

--(दे. लीकान्तिक)।

१. वैमानिक देवोंके भेद व लक्षण

१. वैमानिकका रुक्षण

स, सि/४/१६/२४८/४ विमानेषु भवा वैमानिकाः । = जो विमानों में होते हैं वे वैमानिक हैं । (रा. वा./४/१६/१/२२२/२६)।

२. कल्पका लक्षण

स सि./४/३/२३८/६ इन्द्रादयः प्रकारा दश एतेषु करपयन्त इति करपाः ।
भवनवासिषु तत्करपनासंभवेऽपि रूढिवशाद्धैमानिकेष्वेव वर्तते
करपशब्दः । चित्रमें इन्द्र आदि दस प्रकार करपे जाते हैं वे करप कहलाते हैं । इस प्रकार इन्द्रादिकी करपना ही करप सज्जाका कारण है । यद्यपि इन्द्रादिकी करपना भवनवासियों में भी सम्भव है, फिर भी रूढ़िसे करप शब्दका अववहार वैमानिकों में ही किया जाता है । (रा. वा./४/३/३२१२/८)।

३. कल्प व कल्पातीत रूप भेद व लक्षण

त सू/ ४/१७ कश्योपपन्नाः कल्पातीताश्च ११७। च्चे दो प्रकारके हैं -कल्पोपपन्न और कल्पातीत । (विशेष दे स्वर्ग/४)।

स. सि/४/१०/२४८/१ कल्पेष्पपन्नाः कल्पोपपन्नाः कल्पानतीताः कल्पान तीताश्च । = जो कल्पोंमें उत्पन्न होते हैं वे कल्पोपपन्न कहताते हैं और जो कल्पोंके परे हैं वे कल्पातीत कहलाते हैं। (रा. ना/४/१०/—/२२३/२)।

४. कल्पातीत देव सभी अहमिनद्र हैं

रा. वा/४/१७/१/२२/४ स्यान्मतस् नवग्रेवेयका नवामुदिशाः पञ्चानुत्तराः इति च कल्पनासंभवात् तेषामि च कल्पस्वप्रसङ्ग इति: सन्नः;
कि कारणम् । उस्तरवात् । उत्तमेतत्-इन्दादिदशत्यकल्पनासद्भावात्
कल्पा इति । नवग्रेवेयकादिषु इन्द्रादिकल्पना नास्ति तेषामहमिन्दस्वात् । —प्रश्न — नवग्रेवेयकः, नव अनुदिश और पंच अनुत्तर
इस प्रकार संख्याकृत कल्पना होनेसे उनमें कल्पत्वका प्रसंग आता है 1

उत्तर—नहीं, क्योंकि, पहिले ही कहा जा चुका है कि इन्द्रादि दश प्रकारको कल्पनाके सद्भावसे ही कल्प कहलाते हैं। नव ग्रैवेयकादिकमें इन्द्रादिको कल्पना नहीं है, वयोंकि, वे श्रहमिन्द्र हैं।

२. वैमानिक देव सामान्य निर्देश

१. वैमानिक देवोंमें मोक्षकी योग्यता सम्बन्धी नियम

त. सू/अ/२६ विजयादिषु द्विचरमाः ।२६। स्विजयादिकमें अर्थात् विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामके अनुत्तर विमानवासी देव द्विचरम देही होते हैं। [अर्थात् एक मनुष्य व एक देव ऐसे दो भव बीचमें लेकर तीसरे भव मोक्ष जायेंगे (दे, चरम)]।

स. सि/४/२६/२६७/१ सर्वार्थ सिद्धिप्रसंग इति चेत्। नः तेषां परमो-रकृष्टत्वात, अन्वर्थ संज्ञात एकचनरमस्व सिद्धेः। — प्रश्न— इस (ह्यप्रोक्त सूत्रसे) सर्वार्थ सिद्धिका भी ग्रहण प्राप्त होता है ? उत्तर— नहीं, क्योंकि, वे परम उत्कृष्ट हैं; उनका सर्वार्थ सिद्धि यह सार्थक नाम है, इसलिए वे एक भवावतारी होते हैं। अर्थात अगले भवसे मोक्ष जायेंगे। (रा. वा./४/२६/१/२४४/१८)।

दे. लीकान्तिक-[सब लीकान्तिक देव एक भवावतारी हैं।]

ति. प/=/६७६-६७६ कप्पादीदा दुचरमदेहा हर्नति केई सुरा। सकको सहरमहिसी सलीयवालो य दिनलणा इंदा।६७६१ सन्बद्धसिद्धवासी लोगंतियणामधेयसब्बसुरा। णियमा दुचरिमदेहा सेसेसु णित्य णियमो य ।६७६१ = कल्पवासी और कल्पातीतों मेंसे कोई देव दिचरम- शरीरी अर्थात आगामी भवमें मोक्ष प्राप्त करनेवाले हैं। अप्रमहिषी और लोकपालों से सहित सौधर्म इन्द्र, सभी दक्षिणेन्द्र, सर्वार्थसिद्धि-वासी तथा लौकान्तिक नामक सब देव नियमसे दिचरम शरीरी हैं। शेष देवों में नियम नहीं है।६७६-६७६।

३. वैमानिक इन्द्रोंका निर्देश

१. वैमानिक इन्होंके नाम व संख्या आदिका निर्देश

स. सि./४/१९/२५०/३ प्रथमी सीधर्मेशानकवर्षी, तयोरुपरि सनत्क्रमार-माहेन्द्री, तयोरुपरि ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरी, तयोरुपरि लान्तवकापिष्ठी. तयोरुपरि शुक्रमहाशुक्तौ, तयोरुपरि शतारसहस्रारौ, तयोरुपरि आनतप्राणती, तयोरुपरि आरणाच्युती। अध उपरि च प्रत्येक-मिन्द्रसंबन्धो वेदितव्यः। मध्ये तु प्रतिद्वयम् । सौधर्मेशानसानत्कुमार-माहेन्द्राणां चतुर्णा चत्वार इन्द्राः। ब्रह्मलोक्त्वहोत्तरयोरेको ब्रह्मा नाम । ज्ञान्तवकापिष्ठयोरेको ज्ञान्तवारूयः। शुक्रमहाशुक्रयोरेकः शुक्रसञ्जः । शतारसहस्रारयोरेको शतारनामा । आनतप्राणतारणा-च्युतानां चतुण्णौ चत्वारः । एवं करण्यासिनां द्वादश इन्द्रा भवन्ति । - सर्वप्रथम सौधर्म और ऐशान करूप युगल है। इनके ऊपर क्रमसे-सनस्कमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रार, आनत-प्राणत, और आरण अच्युत; ऐसे १६ स्वर्गीके कुल आठ ग्रुगल हैं। नीचे और ऊपरके चार-चार करूपोंमें प्रत्येकमें एक-एक इन्द्र, मध्यके चार युगलों में दो-दो कल्पों के अथित एक-एक युगतके एक-एक इन्द्र हैं। तात्वर्थ यह है, कि सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार और माहेन्द्र इन चार कल्पोके चार इन्द्र हैं। ब्रह्मस्रोक और ब्रह्मोत्तर इन दो कश्योंका एक ब्रह्म नामक इन्द्र है। लान्तव और कापिष्ठ इन दो कल्पों में एक लान्तव नामक इन्द्र है। शुक्र और महाशुक्रमें एक शुक्र नामक इन्द्र है। शतार और सहसार इन दो करपोंमें एक शतार नामक इन्द्र है। तथा आनत, प्राणत, आरण, अच्यत इन चार कल्पोंके चार इन्द्र हैं। इस प्रकार कल्पवासियोंके १२ इन्द्र होते हैं। (रा. वा./४/१६/६-७/२२६/४): (त्रि. सा./४६२-४६४): (और भी दे. स्वर्ग/६/२)

www.jainelibrary.org

ति. प./प/४६० इदाणं चिण्हाणि पत्तेकं ताव जा सहस्सारं । आणद-आरणजुगले चोदसठाणेष्ठ बोच्छामि १४६०। = सौधर्मसे लेकर सहस्रार पर्यन्तके १२ कल्पोंमें प्रत्येकका एक-एक इन्द्र है । तथा आनत, प्राणत और आरण-अच्युत इन दो युगलोंके एक-एक इन्द्र हैं । इस प्रकार चौदह स्थानोंमें अर्थात चौदह इन्द्रोंके चिक्कोंको कहते है ।

रा. वा./४/११/२३/२१—त एते लाकानुयोगोपदेशेन चतुर्दशेन्द्रा उक्ताः।
इह द्वादशेष्यन्ते पूर्वोक्तिन क्रमेण ब्रह्मोत्तरकािष्ठमहाशुक्रसहसाः
रेन्द्राणां दक्षिणेन्द्रानुवृक्तित्वात आनतप्राणतकल्पयोश्च एकैकेन्द्रत्वात्। = ये सत्र १४ इन्द्र (दे. स्वर्ग/६/६ में रा. वा.) लोकानुयोगके
उपदेशसे कहे गये हैं। परन्तु यहाँ (तत्त्वार्थ सुत्रमें) १२ इन्द्र अपेक्षित
हैं। क्योंकि १४ इन्द्रोंमें जिनका पृथक् प्रहण किया गया है ऐसे
ब्रह्मोत्तर, कािषष्ठ, शुक्र और सहसार ये चार इन्द्र अपने-अपने
दक्षिणेन्द्रोंके अर्थात् ब्रह्म, लान्तव, महाशुक्र और शतारके अनुवर्ती
हैं। तथा १४ इन्द्रोंमें युगलरूप प्रहण करके जिनके केवल दो.इन्द्र
माने गये हैं ऐसे आनताित्व चार कल्पोंके पृथक्-पृथक् चार इन्द्र हैं।
[इस प्रकार १४ इन्द्र व १२ इन्द्र इन दोनों मान्यताओंका समन्वय
हो जाता है।]

२. बैमानिक इन्द्रोंमें दक्षिण व उत्तर इन्द्रोंका विभाग

दे. स्वर्ग/४/६ में -(ति. प./८/३३६-३४१), (रा./वा./४/१६/८/पृष्ठ/-- पंक्ति), (ह. पु./६/१०१-९०२), (ति. सा./४=३)

1	१२ इन्द्रोंब	की अपेक्षा	१२इन्द्रों	ही अपेशा	१४ इन्द्रोंकी अपेक्षा		
再,	ति पृवित्रि.सा,		ह.	g.	रा. वा,		
<u> </u>	द क्षिण	उत्तर	दक्षिण	उत्तर	द्रक्षिण	उत्तर	
?	सौधर्म	ईशान	सौधर्म	ईशान .	सौधर्म	ईशान	
2	सनस्कृ.	माहेन्द्र	सनस्कु.	माहेन्द	सनरकु,	माहेन्द्र	
₹	वह्म	×	त्रह्म	×	व्रह्म	वहात्तर	
8	सान्तव	×	×	लान्तव	लान्त्रव	कापिष्ठ	
ų	×	महाशुक	महाशुक	×	शुक	महाशुक्र	
Ę	×	सहसार	×	शतार	शता र	सहसार	
છ	आनत	, प्राणत	आनत	प्राणत	×	×	
5	आरण	अच्युत	आरण	अच्युत	आरण	अच्युत	

३. वैमानिक इन्द्रों व देवोंके आहार व स्त्रासका अन्तराल

मू. आ /११४६ जिदि सागरोपमाऊ तिदि वाससहस्सियादु आहारो।
पक्खेहि दु उस्सासो सागरसमयेहिं चैव भवे।११४६। चितने सागरकी आयु है उतने ही हजार वर्षके बाद देवोंके आहार है और उतने
हो पक्ष बीतनेपर श्वासोच्छ्वास है। ये सब सागरके समयोंकर होता
है।(जि. सा./४८४);(ज. प./११/३६०)

ति. प./=/६६२-६५६ — जेन्तियजनणिहि उवमा जो जीविद तस्स तेति-एहिं च । वरिससहरसेहि हवे आहारो पणुदिणाणि पछमिदै ।६६२१ पडिइंदाणं सामाणियाण तेन्तिसप्तरमणं । भीयणकः लपमाणं णिय-णिय-इंदाण सारिच्छं ।६६३। इंदप्पहुदिच उनके देवीणं भीयणिम जो समओ । तस्स पमाणपरूवण उवएसो संपहि पणहो ।६६४। सोह- मिंददिगिंदे सोमिम्म जयिम भोयणावसरो। सामाणियाण ताणं पत्तेवकं पंचवीसदलदिवसा। १६६। — जो देव जितने सांगरीपम काल तक जीवित रहता है उसके उतने ही हजार वर्षोमें आहार होता है। पत्य प्रमाण काल तक जीवित रहनेवाले देवके पाँच दिनमें आहार होता है। १६२। प्रतीन्द्र, सामानिक और त्रयिखंश देवोंके आहारकालका प्रमाण अपने-अपने इन्द्रोंके सहश है। १६३। इन्द्र आदि चारकी देवियोंके भोजनका जो समय है उसके प्रमाणके निरूपणका उपदेश नष्ट हो गया है। १६४। सौधर्म इन्द्रके दिवपालों में से सोम व यमके तथा उनके सामानिकों में से प्रत्येकके भोजनका अवसर १२२ दिन है। १६४।

दे. देव/11/२-(सभी देवोंको अमृतम्यी दिव्य आहार होता है।)

४. इन्द्रोंके चिह्न व यान विमान

ति, प./४/-४-१७ का भावार्थ - (मन्दीश्वरद्वीपकी वन्दनार्थ सौधर्मा-दिक इन्द्र निम्न प्रकारके यानोंपर आरूढ़ होकर आते हैं। सौधर्मेन्द्र = हाथी; ईशानेन्द्र = वृष्पे; सनरकुमार = सिह; माहेन्द्र = अरव; ब्रह्मेन्द्र = हंस; ब्रह्मोत्तर = कौंच; शुक्रेन्द्र = चक्रवाक; महा-शुक्रेन्द्र = तोता; शतारेन्द्र = कोश्रल; सहस्रारेन्द्र = गरुड़; खानतेन्द्र = गरुड़; प्राणतेन्द्र = पद्म विमान; आरणेन्द्र = कुमुद विमान; अन्धुतेन्द्र = मयूर।)

ति. प./-/४३८-४४० का भावार्थ — [इन्द्रोंके यान विमान निम्न प्रकार हैं —सौधर्म = बालुक; ईशान = पुष्पक; सनत्कुमार = सौमनस; माहेन्द्र = श्रीनृक्ष; बद्ध = सर्वतोभद्र; जानतव = प्रीतिवर; शुक्र = रम्यक; शतार = मनोहर; आनत = सक्ष्मी; प्राणत = मादिन्ति (१); आरण = विमल; अच्युत = विमल]

ति, प./प/४४--४६० का भावार्थ — [१४ इन्द्रवाली मान्यताकी अपेक्षा प्रत्येक इन्द्रके क्रमसे निम्न प्रकार सुकुटों में नौ चिह्न हैं जिनसे कि वे पहिचाने जाते हैं – श्रूकर, हरिणी, महिष, मत्स्य, भेक (मेंडक); स्प्, छागल, वृषभ व कल्पतर ।]

ति. प./प/४५१ का भावार्थ — [दूसरो दृष्टिसे उन्हों १४ इन्द्रों में कमसे— शुकर, हरिणी, महिष, मत्स्य, कुर्म, भेक (मेंढक), हय, हाथी, चन्द्र, सर्प, गवय, छगल, वृषभ और कल्पतरु ये १४ चिह्न मुकुटों में होते हैं।) (त्रि. सा./४८६-४८७)

५. इन्द्रों व देवोंकी शक्ति व विकिया

ति,प्/८/६६०-६६६ एकपित्विवामाळ उप्पाद्धेतुं धराए छक्छंडे। तग्गदणरितिरियणणे मारेवुं पोसेवुं सक्को।६६०। उविहउनमाणजीवी
पछ्डिंदुं च जंबुदीवं हि। तग्गदणरितिरियाणं मारेवुं पोसिवुं सक्को
।६६८। सोहिन्मिदो णियमा जंबुदीवं समुविखविद एवं। केई आइरिया
इय सित्तिसहावं परूर्वति।६६६। = एक पवयोपम प्रमाण आयुवाता
देव पृथिवीके छह खण्डोंको उखाइनेके लिए और उनमें स्थित
मनुष्यों व तिर्यंचोंको मारने अथवा पोषनेके लिए समर्थ हैं।६६०।
सागरोपम प्रमाण काल तक जीवित रहनेवाला देव जम्बूद्वीपको भी
पलटनेके लिए और उसमें स्थित तिर्यंचों व मनुष्योंको मारने अथवा
पोषने लिए समर्थ है।६६८। सौधर्म इन्द्र नियमसे जम्बुद्वीपको
फोंक सकता है, इस प्रकार कोई आचार्य शक्ति स्वभावका निरूपण
करते हैं।६६६।

त्रि. सा./१२७ दृष्ठ-दृष्ठ तिचक्केष्ठ य णवचोद्दसगे विगुब्बणा सत्ती।
पढमिलवीदो सत्तमिलिदिपेरंतो ति अवहो य १५२७। च्दो स्वर्गीमें
दूसरी नरक पृथिबी पर्यन्त चार स्वर्गीमें तीसरी पर्यन्त, चार स्वर्गीमें,
चौथी पर्यन्त, चार स्वर्गीमें पॉचबीं पर्यन्त, नवग्रैवेयकोंमें छठीं
पर्यन्त और अनुदिश अनुत्तर विमानोंमें सातवीं पर्यन्त, इस प्रकार
देवोंमें क्रमसे विक्रिया शक्ति व अविध ज्ञानसे जामनेकी शक्ति है
(विशेष—दे. अविध ज्ञान/१)।

६. बैमानिक इन्द्रोंका परिवार

१ सामानिक आदि देवोंकी अपेक्षा

(ति. प./८/२१८-२४६), (रा. वा./४/१६/-/२२६-२३६), (त्रि. सा./४६४,४६६,४६८), (ज. पं./१६/२३६-२४२, २७०-२७८) ।

]		₩	}	पारिषद्			ज	सप्त अ	ानीक∜
इन्द्रोंके नाम	प्रतीन्द्र	सामानिक	त्राथित्वश	अभ्यन्तर समिति	मध्य समिति	नाह्य समिति	अात्मरक्ष	तोकपाल	प्रत्येक अनीक	कुल अनीक
									सहस	सहस्र
सीधर्म	₹	≥8000	33	१२०००	१ ४०००	१६०००	इंद्€०००	8	१०६६=	ඉදිලදී
ईशान	१	₹0 000	\$ ₹	१००००	१२०००	88 000	३२ ०००	8	१०१६०	७११२०
सनत्कु.	₹	७२०००	\$3	, 6000	१००००	१२ ० ००	र्यद ०००	8	६१४४	\$8000
माहेन्द्र	1 8	90000	३३	€000	۵00 م	१००००	260 000	8	८ द१०	६२२३०
बह्य	१	€0000	३३	8000	င်္ ၀၀၀	□ 000	780000	8	ष्ट६२०	१ ३३४०
लान्तव	· १	<u> </u> £0000.	33	२०००	8 000	- ξ 000	200000	8	६३५०	888६०
महाशुक्र	8	80000	38	१०००	२०००	8000	१ ६०००	8	Ãoco	३५६६०
सहस्रार	2	30000	३३	५००	१०००	₹ 600	१२००००	8	३८१०	२६६७०
आनत	१	२००००	22	२५०	k00	१०००	60 000	8	२५४०	१७७८०
प्राणस	R	20,000	३३	२५०	ų oo	१ ०००	٥٥ ٥٥٥	8	•1	,,
आर्ग	१	२०००७	33	१२४	६००	१०००	\0000 0	8	11	,,
अच्युत	१	30,000	23	१२४	န့်ဝဝ	8000	20000	ષ્ટ	19	,,

" नौट—[वृषभ तुरंग आदि सात अनीक सेना है। प्रत्येक सेनामें सात-सात कक्षा हैं। प्रथम कक्षा अपने सामानिक प्रमाण है। द्वितीयादि कक्षाएँ उत्तरोत्तर दूनी-दूनी हैं। अतः एक अनीकका प्रमाण = सामानिकका प्रमाण × १९७। कुल सातों अनोकोंका प्रमाण = एक अनीक×७-- (दे. अनीक): (ति. प./८/२३४-२३७)]

२. देवियोंकी अपेक्षा

(ति. प./=/३०६-३९६ + ३७६-१८६); (रा. वा./४/९६/=/२२६-२३६); त्रि. सा./६०६-६९३) ।

र्क.	इन्द्रका नाम	उयेष्ठ देनिय ँ	प्रस्पेक ज्येष्ठ देवीकी परि बार देवियाँ	वक्लभिका	अग्र देवियाँ	प्रत्येक देवीके वैक्रियक रूप
१	सौधर्म	Ę	६६०००	३ २०००	१६०,०००	१६०००
२	ईशान	5	१६०००	३२०००	१६०,०००	१६००० .
3	सनत्कु,	=	6000	6000	७२,०००	32000
R	माहेन्द्र	5	۷۰۰۰	۷۰۰۵	७२,०००	३२०००
ķ	গন্তু	۷	Soco i	2000	\$8,000	€8000
Ę	ला≓तब	۷	२०००	६००	१६५००	१२८०००
ঙ	महाशुक्त	5	१०००	२५०	८२५०	२५६०००
6	सहस्रार	۷	400	१२६	४१२५	६१२०००
3	अानत	۲	२५०	4 3	२०६३	१०२४०००
१०	प्राणत	=	**	11	7,	,,,
११	आरण	~	17	**	11	,,
१२	अच्युत	=	! +7	11	1,	11

बैमानिक इन्द्रोंके परिवार देवोंकी देवियाँ

(ति, प./प/३११-३३०); (रा, बा,/४/११/प/२२४-२३४)।

			कल्प इन्द्रोंके नाम्					
परिवार देव	देवीका पद	सौधर्म ईशान	सनस्कुमार माहेन्द्र	ब्रह्म ब्रह्मोत्तर	सान्तव कार्पिष्ठ	शुक महाशुक	शतार सहस्रार	आनत-प्राणत आरण-अ ≈ युत
(प्रतीन्द	अप्र देवी			अपने	्इन्द्रॉके सम	ान ←-	-	
सामानिक न्नायस्त्रिया	परिवार दे वी 	8000	२०००	१०००	400	२ ५०	१२५	43,62
र्व प्रस्थेक- लोकपाल	अग्र देवी	~-	→ ₹\$,00,00,	000	←	<u></u>		
अभ्यन्तर पारिषद	প্রয় "	¥00	800	300	२००	१००	५०	1 ૨ ૬
मध्य ,,	अग्र "	ξoo	400	8eo	300	२००	१००	ųо
गह्य ,,	अध "	৩০০	ξοο	\$00	Soo	300	२००	१००
अनीक मह	अग्र "	ξ 00		ξοο	ξ 00	€00	ξoo	ξ≎o
अनीक-	अप्र ५ ∤	२००	२००	२००	₹00	500	700	२००
आत्म्रक्ष	ज्येष्ठ "	१	?	९	(१	१	8	१
,,	वरतभा 🗤	ξ	१)	१	2	*	ę	*
,, प्रकीर्ण क	!		 	उपदेशनष्ट		>	-	_
आदि	i (ļ			
·	i		1		· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	<u> </u>	! 	<u> </u>

८. वैमानिक इन्द्रोंके परिवार, देवोंका परिवार व विमान आदि

ति. प./८/२६६-३०४ का भावार्थ-प्रतीन्द्र, सामानिक व श्रायस्त्रिशमें प्रत्येकके १० प्रकारके परिवार अपने-अपने इन्हों के समान हैं। २०६। सौधर्मादि १२ इन्द्रोंके लोकपालोंमें प्रत्येक सामन्त क्रमसे ४०००, ४०००,१०००,१०००, ५००,४००, ३००, २००,१००, १००,१००,१०० 1२६७-२८८। समस्त दक्षिणेन्द्रोंमें प्रत्येकके सोम व यम खोकपालके अभ्यन्तर आदि तीनों पारिषदके देन क्रमसे ६०,४०० व ६०० हैं।२८६। वक्षके ६०,५००,६०० हैं तथा बुबेरके ७०, ६००,७०० हैं।२८०। उत्तरेन्द्रोमें इससे विपरीत क्रम करना चाहिए।२१०। सोम आदि लोकपालीकी सात सेनाओं में प्रत्येककी प्रथम कथा २८००० और द्वितीय आदि ६ कक्षाओं में उत्तरोत्तर दुग्नी है। इस प्रकार बृषभादि सेनाओं में से प्रत्येक सेनाका कुल प्रमाण २८०००×१२७∞३६५६००० है ।२१४। और सातों सेनाओंका कुल प्रमाण २४४६०००×७=२४८१२००० है। १६६। सौधर्म सनत्कुमार व बहा इन्द्रों के चार-चार लोकपाली में से प्रत्येकके विभागोंकी संख्या ६६६६६ है। शेषकी संख्या उपलब्ध नहीं है। २६७, २६६, ३०२। सौधर्मके सोमादि चारों लोकपालों के प्रधान विमानों के नाम क्रमसे स्वयंप्रभ, अरिष्ट, चलप्रभ और वनगुप्रम हैं। २६८। शेष दक्षिणेन्द्रोंमें सोमादि उन लोकपालोंके प्रधान विमानों-के नाम क्रमसे स्वयंप्रभ, वरज्येष्ठ, अंजन और वन्ग् है।३००। उत्तरेन्द्रोंके लोकपालोंके प्रधान विमानोंके नाम क्रमसे सोम (सम). सर्वतोभद्र, सुभद्र और अमित हैं।३०१। दक्षिणेन्द्रों के सोम और ग्रम समान मृद्धिवाले हैं; उनसे अधिक वरुण और उससे भी अधिक कुबेर है।३०३। उत्तरेन्द्रोंके सोम और यम समान ऋद्विवाले हैं। उनसे अधिक कुबेर और उससे अधिक वरुण होता है 1३०४1

४. वैमानिक देवियोंका निर्देश

बैसानिक इन्द्रों की प्रधान देवियोंके नाम

ति. प्/प/३०६-३०७,३१६-३१८ बलमाणा अञ्चिणिया ताओ सर्विवद-सरिसणामाओ । एक्केक्रउत्तरिंदे तम्मेत्ता जेट ठदेवीओ।३०६। किण्हा या ये पुराई रामावइरामरिक्खदा वसुका। वसुभित्ता वसुधम्मा वसंधरा सञ्बद्दं समणामा १३०७। विषयसिरिकणयमालापउमाणदामुसीम-जिणदत्ता । एक्ने क्षद्र क्लिणिदे एक्ने का पाणवन्त्र हिया ।३१६। एक्ने क्ष-उत्तरिदे एवनेका हो दि हेममाला म । फिलुप्पलिनसुदया पाँदावइल-बलणादो जिलदासी 13१७। समसिदवन्तभाणं चत्तारि महत्तरीओ पत्तेवकं कामा कामिणिआओ पंकयगंधा यलंबुणामा य 13१८। ≈सभी दक्षिणेनदोंकी द उपेष्ठ देवियों के नाम समान होते हुए कमसे पदा, शिवा, शबी, अंजुका, रोहिणी, नवमी, बला और अचिनिकी ये हैं और सभी उत्तरेन्द्रोंकी आठ-आठ ज्येष्ठ देवियोंके नाम. मेघराजी, रामापति, रामरक्षिता, वसुका, वसुमित्रा, वसुधर्मा और बसुन्धरा ये हैं।३०६-३०७। छह दक्षिणेन्द्रोंकी प्रधान बल्लभाओके नाम क्रमसे विनयधी, कनकमाला, पद्मा, नन्दा, सुसीमा, और जिनदत्ता में हैं 1३१६। छह उत्तरेन्द्रोंकी प्रधान वल्लभाओंके नाम हैममाला, नीसोरपला, विश्वा, नन्दा, वैलक्षणा और जिनदासी ये हैं।३१७। इन वल्लभाओं मेंसे प्रत्येकके कामा, कामिनिका, पंकजगन्धा और अतम्बु नामकी चार महत्तरिका होती हैं ।३१८।

त्रि. सा./१०६,११०-१११ ताओ चउरो सभी कामा कामिणि य पडमगंथा
य। तो होदि अलंबुसा सर्विवदपुराणमेस कमो १६०६। सचि पडम
सिव सियामा कार्विदीसुलसअउजुकाणामा भागुत्ति जेट्ठदेवी सब्वेसि
दिक्खिणिदाणं १६१०। सिरिमति रामा सुसीमा पभावदि जयसेण णाम य

स्रसेणा । वसुमित वस्थर वरदेशोओ उत्तरिंदाणं । १११ = सौधर्मादि स्वर्गमें कामा, कामिनी, पद्मणन्धा, अलंबुसा ऐसी नामवाली चार प्रधान गणिका हैं। १०६। छह दक्षिणेन्द्रोंकी आठ-आठ ज्येष्ठ देवियोंके नाम क्रमसे शची, पद्मा, शिवा, श्यामा, कालिन्दी, सुलसा, अज्जुका और भानु ये हैं। ११०। छहां उत्तरेन्द्रोंकी आठ-आठ ज्येष्ठ देवियोंके नाम क्रमसे श्रीमती, रामा, सुसीमा, प्रभावती, जयसेना, सुषेणा, वसुमित्रा, और वसुन्धरा ये हैं। १११।

२. देत्रियोंकी उत्पत्ति व गमनागमन सम्बन्धी नियम

मु. आ./११३१-११३२ आईसाणा कप्पा जववादो हो इ देवदेवीणं। तत्तो परंतु णियमा जववादो हो इ देवाणं।११३१। जावतु आरण-अच्युद गमणागमणं च हो इ देवीणं। तत्तो परंतु णियमा देवीणं 'णिष्धसे गमणं।११३२। = [भवनवासीसे तेकर] ईशान स्वर्ग पर्यन्त देव व देवी दोनोंको उत्पत्ति होतो है। इससे आगे नियमसे देव हो उत्पन्न होते हैं, देवियाँ नहीं।११३१। आरण अच्युत स्वर्ग तक देवियोंका गमनागमन है, इससे आगे नियमसे उनका गमनागमन नहीं है।११३२। (ति. प | न।४६६)।

ति, प./=/गा. सोहम्मीसाणेसुं उप्पंजजंते हु सव्वदेवीओ । उबरिमकप्पे ताणं उप्पत्ती गिर्ध कह्या वि ।३३१। तेसुं उप्पणाओ देवीओ भिण्ण- ओहिणाणेहिं। णावूणं णियकप्पे णेति हु देवा सरागमणा ।३३३। णविर विसेसो एसो सोहम्मीसाणजाददेवीणं। वच्चंति सूलदेहा णियणियकप्पामराण पासम्मि।५१६। — सब (कल्पवासिनी) देवियाँ सीधर्म और ईशान कल्पोमें ही उत्पन्न होतो हैं, इससे उपरिम कल्पोमें उनको उत्पत्त नहीं होती ।३३१। उन कल्पोमें उत्पन्न हुई देवियोंको भिन्न अवधिज्ञानसे जानकर सराग मनवासे देव अपने कल्पोमें ले जाते हैं।३३४। विशेष यह है कि सौधर्म और ईशान कल्पोमें उत्पन्न हुई देवियोंके मृत शरीर अवने-अपने कल्पोंके देवोंके पास जाते हैं।५६६।

ह. पु./६/११६-१२१ दक्षिणाशारणान्तानां देग्यः सौधर्ममेत्र त । निजान्तारेषु जायन्ते नीयन्ते च निजास्पदम् ।११६। उत्तराशास्युतान्तानां देवानां दिव्यमूर्तयः । ऐशानकष्पसंभूता देव्यो यान्ति निजान्श्रयम् ।१२०। सुद्धदेवीयुतान्याहुितमानानि मुनीस्वराः । षट्लक्षास्तु चतुर्लक्षाः सौधर्मेशानकष्पयोः ।१२१। — आरण स्वर्गपर्यन्ते दक्षिण दिशाके देवोंको देवियाँ सौधर्म स्वर्गमें ही अपने-अपने उपपाद स्थानोंमें उत्पन्न होती हैं और नियोगी देवोंके द्वारा यथा स्थान ले जायी जाती हैं।११६। तथा अच्युत स्वर्गपर्यन्त उत्तर दिशाके देवोंको सुन्दर देवियाँ ऐशान स्वर्गमें उत्पन्न होती हैं, एवं अपने-अपने नियोगी देवोंके स्थानपर जाती हैं।१२०। सौधर्म और ऐशान स्वर्गमें शुद्ध देवियों युक्त विमानोंको संख्या क्रमसे ६००,००० और ४००,००० बतायो हैं। अर्थात् इतने उनके उपपाद स्थान हैं।१२१। (ति. सा./५२४-५२६); (त. सा./२/=१)।

भ १/१.१,६८/२३८/२ सनत्कुशारादुपरि न स्त्रियः समुत्पधान्ते सौधर्मा-दाविव तदुत्पत्त्वप्रतिपादनात । तत्र स्त्रीणामभावे कथं तेषां देवानाम-तुपशान्तत्तरसंतापानां मुखमिति चेत्र, तत्स्त्रीणां सौधर्मकन्पोपपत्तेः । प्रथन - सनत्कुमार स्वर्गसे लेकर ऊपर स्त्रियाँ उत्पन्न नहीं होती हैं, क्यों कि सौधर्म और ऐशान स्वर्गमें देवांगनाओं के उत्पन्न होनेका जिस प्रकार कथन किया गया है, उसी प्रकार आगेके स्वर्गोमें उनकी उत्पत्तिका कथन नहीं किया गया है इसलिए वहाँ स्वियोंका अभाव होनेपर, जिनका स्त्रो सम्बन्धी सन्ताप शान्त नहीं हुआ है, ऐसे देवोंके उनके बिना मुख केसे हो सकता है ! उत्तर - नहीं, क्यों कि . सनत्कुमार आदि कल्प सम्बन्धी स्त्रियोकी सौधर्म और ऐशान स्वर्गमें उत्पत्ति होती है।

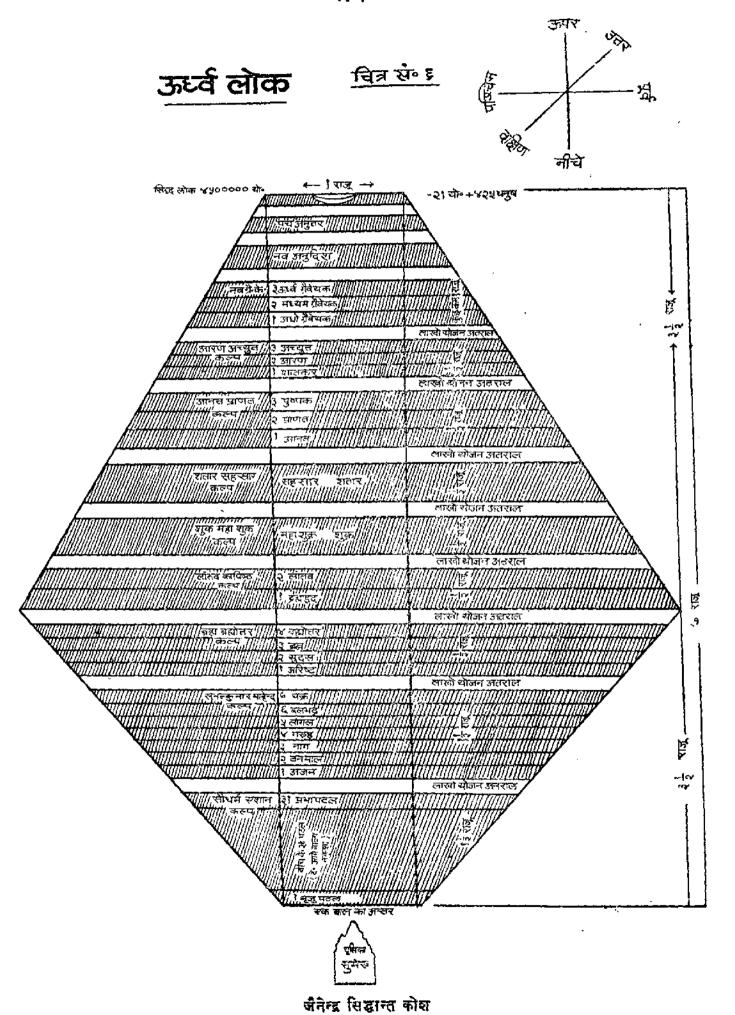
५. स्वर्ग लोक निर्देश

१. स्वर्ग लोक सामान्य निर्देश

ति. प./=/६-१० उत्तरकुरुमणुवाणं एक्केणूर्णेणं तह य बालीणं। पणवीसु-त्तरचडसहकोसयदंडेहि विहीणेणं ।६। इगिसट्ठीअहिएणं सन्खेणं जोयणेण ऊणाओ । रज्जुओ सत्त गयणे उड्ढूड्ढं णाकपडलाणि । अ कणयदिच्चलिउवरि उत्तरकुरुमणुवएकवालस्स । परिमाणेणंतरिदौ चेट्ठेदि हु इंदओ पढमो ।८। सोमसिहरादु हेट्ठा च उसय पणवीसं चावमाणाणि । इशिवीस जोयणाणि गंतूर्ण इंदओ चरिमो । हा सेसा य एकसट्ठी एदाणं इंदयाण विचाले। सठवे अणादिणिहणा र्यण-मया इंदया होति ।१०। = उत्तरकुरुमें स्थित मनुष्यों के एक बाल हीन चार सौ पचीस थनुष और एक लाख इकसठ योजनोंसे रहित सात राजू प्रमाण आकाशमें ऊपर-ऊपर स्वर्ग पटल स्थित हैं ।६-७। मेरुकी चूलिकाके ऊपर उत्तरकुरु क्षेत्रवर्ती मनुष्यके एक बालमात्रके अन्तरसे प्रथम इन्द्रक स्थित है।८। लोक शिखरके नीचे ४२४ धनुष और २१ योजन मात्र जाकर अन्तिम इन्द्रक स्थित है । हो प्रेप इकसठ इन्द्रक इन दोन्। इन्द्रकोंके कीचमें हैं। ये सम रत्नमय इन्द्रक विमान अनादिनिधन हैं।१०। (स. सि./४/११/२५१/१), (ह. पु./६/३६), (घ. ४/१, ३, १/६/२); (त्रि. सा./४७०) ।

२. कल्प व कल्पातीत विभाग निर्देश

ति. प./८/११६-१२८ कप्पाकप्पातीचं इदि दुविहं होदि ।११४। बारस कप्पा केइ केइ सोलस वरंति आइरिया। तिविहाणि भासिदाणि कप्पातीयाणि पडलाणि ।११६। हेट्टिम मज्भे उवरि पत्तंबनं ताण होंति चत्तारि । एवं बारसकप्पा सोलस उड्डुड्डमट्ट जुगलाणि १११६। गेवज्जमणुद्दिसयं अणुत्तरं इय हुवंति तिविहप्पा । कप्पासीदा पडला गैवज्जं णवविद्धं तेम्रु ।११७। सोहम्मीसाणसणवकुमारमाहि-दबम्हलं तबया । महसुक्षसहस्सारा आणदपाणदयआरणच्चुदया । ।१२०। एवं नारस कष्पा कष्पातीदेषु णव य गेवेउना ।***।१२१। आइस-इंदयस्स य पुट्यादिमु ...चतारो वरविमाणाई ।१२३। पद्दणयाणि य चत्तारो तस्स णादव्वा ।१२४। विजयंतः पुव्वावरदिवखणुत्तर-दिसाए । १२४। सोहम्मो ईसाणो सणक्कुमारो तहेव माहिदो । नम्हा-बम्ह्तर्यं लतेवकापिट्ठमुक्कमहसुका ११२७। सदरसहस्साराणद-पाणद्यारणप्रअच्चुदा णामा । इय सोलस कष्पाणि मण्णंते केइ आइरिया ।१२८। = १. स्वर्गमें दो प्रकारके पटल हैं - करण और कल्पातीत ।११४। कल्प पटलोंके सम्बन्धमें इष्टिभेद हैं । कोई १२ कहता है और कोई सोलह, कल्पातीत पटल तीन हैं।११६। १२ करपकी मान्यताके अनुसार अधी, मध्यम व उपरिम भागमें चार-चार कल्प हैं (दे, स्वर्ग/३/१) और १६ कल्पोंकी मान्यताके अनुसार ऊपर-ऊपर आठ युगलोंमें १६ करप हैं।११६। ग्रेंबेयक, अनुदिश व अनुत्तर ये तीन कल्पातीत पटल हैं।११७। सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तव, महाशुक, सहसार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत ये बारह करूप हैं। इनसे ऊपर कल्पातीत विमान हैं। जिनमें नय ग्रेंबेयक, नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमान हैं ।१२०-१२४। (त. सू./४/१६-१८,२३)+ (स्वर्ग/३/१) । २, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, बहा, ब्रह्मोत्तर, सान्तव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहसार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत नामक ये १६ कल्प हैं, ऐसा कोई आचार्य मानते हैं ।१२७-१२८। (त. सू./४/१६), (ह. पु./६/-(दे. अगले पृष्ठ पर चित्र सं, ६) ३६-३७)।



३. स्वर्गोंमें स्थित पटलोंके नाम व उनमें स्थित इन्द्रक व श्रेणीबद्ध

है. स्वर्ग/६/१ (मेरुकी चूलिकासे लेकर ऊपर लोकके अन्त तक ऊपर-ऊपर ६३ पटल या इन्द्रक रिथत हैं।)

ति. प./-/११ एवनेक इंदयस्स य विचालमसंखजीयणाण समं। एदाणं णामाणि वीच्छोमी आणुपुन्वीए।११। = एक-एक इन्द्रकका अन्त-राल असंख्यात योजत प्रमाण है। अब इनके नामोंको अनुक्रमसे कहते हैं।११। (दे आगे कोष्ठक)।

रा. बा./४/११/८/२४/१४ तयोरेकत्रिशह विमानप्रस्ताराः । —उन सौधर्म व ईशान करपोंके ३१ विमान प्रस्तार हैं। (अर्थात् जो इन्द्रक का नाम हो वही पटलका नाम है।) कोष्ठक सं• १-४ म् (ति. प./८/१२-१७); (रा. बा./४/१६/=/पृष्ठ)-पंक्ति -२२६/१४ + २२७/३० + २२६/१४ + २३०/१२ + २३१/७ + २३१/-३६ + २३३/३०); (ह. प्र./६/४४-६४); (त्रि. सा./४६४-४६६)।

कोष्ठक सं. ६-७=(ति. प./८/८२-८४); (रा. वा./४/१६/८/पृष्ठ/-वंक्ति = २२४/१७+२२७/२६+२२६/१४+२३०/१२+२३१/६+२३१/-३४+२३२/२८); (ह. पु./६/४३); (त्रि. सा./४७३-४७४)।

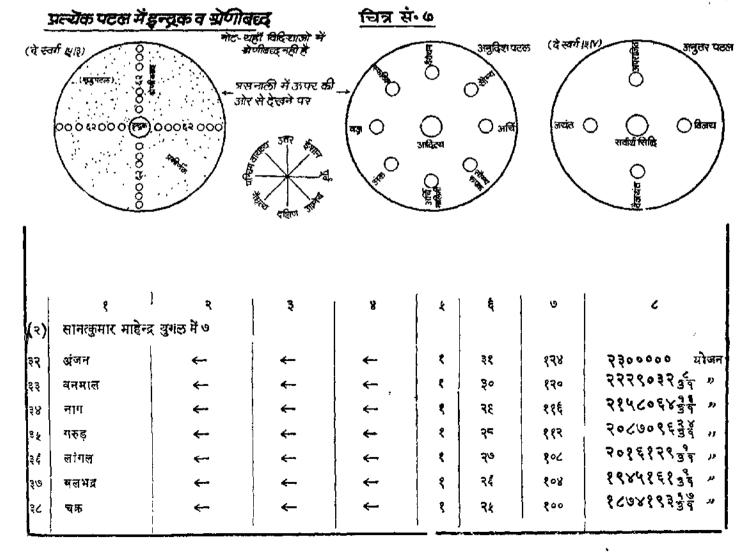
नोट-(ह. पु. में ६२ की बजाय ६३ श्रेणीबद्धसे प्रारम्भ किया है।)

कोष्ठक नं ८-(ति. प./८/१८-८१); (त्रि. सा./४७२)।

संकेत - इस ओर बाला नाम = ←

좌.			प्रत्येक स्वर्गके इन्द्रक या पटल		्रिक् इ. इ. इ. इ. इ. इ. इ. इ. इ. इ. इ. इ. इ. इ		बद्ध	८ इन्द्रकोंका विस्तार
^{sp} . 	१ ति, प.	रा, वा,	₹, ५.	प्ट त्रि, सा,	प्रस्येक पटल	६ प्रति दिशा	ु कुल योग	श्रुन्द्रकाका ग्रन्थार थोजन
(₹)	सौधर्म ईशान युः	गळ में ३१			:	-		
१	भृदु	←	←	←	१	€ ₹	२४=	४५०००० मोजः
٦	विमल	घन्द्र	विमल	विमत्त	१	ęξ	રુષ્ઠ	४४२ ९०३ २ <u>३</u> ५ "
3	चन्द्र	विमन्त	च ् द	चन्द्र	8	ξo	२४०	४३५८०६४ ^५ *
૪	वल्गु	←	←	←	8	48	२३६	४२८७०९६ <u>३४</u> »
¥	वीर	←	←	←		4=	२३२	४२१६१२९ _{३९} "
Ę	अरु ण	←	←	←		မွ	२२ न	४१४५ १ ६१ _३ ६ "
اوا	नन्दन	_ ←	←	←	8	र्द १	२२४	४०७४१९३ <u>३</u> ५ भ
۷	न लिन	←	←	←	,	**	220	४००३२२५ <u>३५</u> "
٤	कं चन	! लोहित	कांचन	काचन	9	88	२ १६	३९३२२५८ _३ "
80	रुधिर	कौचन	रोहित	रोहित	1 8	43	२१२	३८६१२९०३६ »
	(रोहित)	ļ						
(१	चंचत्	वंचन	चंचत्ल	चंचस	,	५२	२०८	३७९०३२२३५ "
१२	मरुत	←	←	←	8	48	२०४	३७ १९ ३५४ ३ ॥
१३]	সং ৱী হা	←	←	-	1	40	२००	३६४८ ३८७ ३ "
१४ }	वैडूर्य	←	←	! ←	8	38	१६६	३५७७४१९ <u>३</u> "
१५	रुचक	←	←	←	8	28	१हर	३५०६४५१३६ "
१६	रुचिर	←	←	←	,	૪૭	१८८	३४३५४८३ <u>३७</u> "
१७	अंक	←	অর্ক	अंक	1 8	ષ્ટ¢	828	३३६४५१६ हुई ॥
१८	स्फ टिक	←	←	←	,	88	१८०	३२९३५४८१३ "
33	तपनीय	←	← -	←	2	88	१७ई	३२२२५८०डुँ६ "
} ₀	मेघ	←	←	←	8	หร	१७२	३१५१६१२डेइ ॥

	प्रत्येक स्वर्गके इन्द्र	क्ष्या पटन		पटल- देक ^	भेगीबद्ध		۷
१ ति, प.	२ रा. ला,	₹ ₹. पु.	प्र त्रि. सा	प्रत्येक में हन	६ प्रति दिशा	ु कुल योग	इन्द्रक विस्तार योजन
अभ	[←	←	8	४२	१६=	३०८०६४५ ५ न्योजन
हारिद्र	←	←	इरित	8	४१	१६४	३०० ९६ ७७ <u>३३</u> "
पद्ममाल	দর	पद्म	पदा		् ४० 	१६०	२९३८७०९ <u>३</u> ९ "
सोहित	। लोहिताक्ष	सोहिताक्ष	सोहित	१	38	१४६	२८६७७४१३६ "
वज्र	ا ←	←	←,	१	इन	१६२	२७९६७७४ <u>३</u> "
नन्दावर्त	←	←	←	१	ક્છ	१४८	२७२५८०६३४ "
प्रभंकर	←	←	←	ę	35	१४४	२६५४८३८३३ "
দৃ ন্তক	पिष्टक	সম্ভক	पृष्ठक	₹	3.6	१४०	२५८३८७० <u>३०</u> "
गज	←	←	←	8	28	१३ €	२५१२९०३७ "
শি ন্ন	मस्तक	শি স	। मित्र	8	39	१३२	२४४१९६७३३ "
प्रभ (दे०चिं	 चित्रप्रभा त्रसं्७)	प्रभ	प्रभ	१	३२	१२८	२३७०९६७३३ %
	अभ हारिद पद्ममाल लोहित बज नन्दावर्त प्रभंकर पृष्ठक गज मित्र प्रभ	ति, प. रा. बा. अभ्र हारिद्र पद्ममाल पद्म लोहित लोहिताक्ष बज्र नन्दावर्त ← प्रभंकर ← पृष्ठक पिष्टक गज ← महतक	 ति, प. रा. बा. ह. पु. अप्र स्वा. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व. स्व.	ति, प. रा. वा, ह. पु. ति. सा. अप्र	प्रत्येक स्वगंके इन्द्रक या पटल	प्रत्येक स्वगंके इन्द्रक सा पटल र ति, प. रा. वा. ह. पु. ति, प. रा. वा. ह. पु. ति. सा. प्रि. में प्रति दिशा प्रमाल पद्म पद्म पद्म पद्म पद्म वज्र स्वाहताक्ष लोहिताक्ष लोहिताक्ष लोहिताक्ष लोहिताक्ष लोहिताक्ष लोहिताक्ष लोहिताक्ष लोहिताक्ष लोहिताक्ष लोहिताक्ष लोहिताक्ष लोहिताक्ष लोहिताक्ष लोहिताक्ष लोहिताक्ष लोहिताक्ष लोहिताक्ष लोहिताक्ष लोहिताक्ष नन्द्यावर्त स्वज्ञ स्वज्ञ स्वज्ञ स्वज्ञ स्वज्ञ प्रकृक पृष्ठक प्राह्णक प्राहणक प्राह्णक प्राह्णक प्राह्णक प्राह्णक प्राह्णक प्राह्णक प	प्रत्येक स्वगंके क्ट्नक या पटल रित, प. रा. वा. ह. पु. ति. प. रा. वा. ह. पु. ति. सा. हे पु. ति. सा. हे पु. ति. सा. हे पु. पति दिशा कुल योग यथ ८६६ हारिद्र स्वांके स्वांके हे पु. हिताहा हिताहा पदा पदा पदा पदा पदा पदा पदा



		प्रत्येक स्वर्गके इन्द्र	क या पटल		कि पटल- हन्द्रक	श्चेणी	ৰত্ত্	٤
琢. ├-	१ ति, प.	३ रा, वा.	३ ह. धु.	४ त्रि, सा,	प्रत्येक पटल- में इन्द्रक	र्द प्रतिदिशा	७ कुल योग	इन्द्रक विस्तार योजन
(₹)	ब्रह्म ब्रह्मोत्तर युगर	5 में ¥						
3.5	अरिष्ट	←	←	←	8	२४	१ ई	१८०३२२५^{२५} योजन
४०	सुरसमिति	देवसमि ति	देवसंमति	सुरस	१	२३	धर	१७३२२५८ _{उदे} "
38	ब्रह्म	←	←		*	२२	۷٤ ا	१६६१२९० 📆 🤻 🥦
८ २ ∣	ब्रह्मोत्तर ।	4-	←	←	१	२ १	ረሄ	१५९०३२२५६ "
(*)	लांतेत्र कापिष्ठ युग	छ में र	}	1]	
४३	जहाहृदय -	←	←	←	₹	२०	€0	१५१९३५४ ^{२ ६} "
કજ	स्तिव	← ,	←	-	₹	. १8	હ દ	१४४८३८७ <u>३</u> »
(५)	शुक्र महाशुक्र यु ग	ा ठ में <i>र</i>						
3 %	महाशुक्र	←	शुक्र	शुक	8	१८	৬২	१३७७४१९३३ "
(ξ)	शतार सहस्रार र	। गुगलमें १						•
] }≰ (सहस्रार	←	হাৱাক্ষ	शतार	١	१७	崔乙	१३०६४५१३६ ।
(6)	आनतादि चार में	'६						
કુંહ	आनत	←	←	←	1 3	₹4	4 8	१२३५४८३ <u>३७</u> "
35	प्राण त	←	←	←	*	१ १	ξo	११६४५१६ <u>३</u> न "
કદ	पुष्पक	←	←	←	*	६४	技术	१०९३५४८३३ "
ķ٥	शान्तकर	सातक	सानुकार	सातक	१	१३	५ २	१०२२५८० <u>३०</u> "
१र	आरण	←	←	→	*	१२	86	९५१६१२३इ "
५२	अच्युत	←	←	←	१	११	88	८८०६४५ ३५ »
(4)	नव धैनेयक में ९	•						
٤ş	सुदर्शन	←	←	← -	٩	80	. 80	८०९६७७ <u>२३</u> "
૪૪	अमोध	←	←-	← -	१	\$	₹6	७३८७०९३३ "
44	सुप्रबुद्ध	←	←	←	१	ς.	इ२	६६७७४१३६ "
५६	यशोधर	←	←		१	છ	₹=	५९६७७४ <u>इ</u> "
k .9	ਸ਼ੁਮਵ	←	←	← /	8	€	રષ્ટ	५२५८०६ बुर्ने "
ء م	सुविशास	←	} ←	←	₹	\$	२०	४५४८३८३३३ "
५१	सुमनस	<u></u>	←	←	१	8	१६	३८३८७०डु६ "
င့်ဝ	सौमनस	←	←	←	१	\$	१२	३१२९०३ <u>७</u> ॥
६१	प्रीतिकर	←	←	←	१	2	6	२४१९३५ 🖁 ५
(९)	सब अनुदिश व	iचअनुत्तर में १						
६२	आदित्य	←	←	←	₹	१	ક	१७०९६७३३ 🕈
Ęą	सर्वार्थसि.	←	←	←	8			१००००० <i>"</i>

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

४. श्रेणी बद्धोंके नाम निर्देश

ति. प./८/८७-१०० णियणियमाणि सेढिबद्धे सुं । पढमेसुं पहमजिकम-आवत्तिविसिंद्रजुत्ताणि । १६। उड्डइंदयपुब्बादी सेहिगया जे हुवंति बासट्टी। तार्णं विदियादीणं एक्कदिसाए भणामो णामाई ।१०। संठियणामा सिरिवच्छबद्दणामा य कुमुमजावाणि । छत्तंजणकेलसाः १९६। एवं चलसु दिसासुं णामेसुं दिन्छणादियदिसासुं । सैढिगदाणं णामा पीदिकरइंदर्य जाव। १८। आइच्चइंदययस्स य पुन्नादिसु लच्छि-लिखिमालिणिया। बहरावहरावणिया चत्तारो वर्विमाणाणि १६६। विजयंतवइजंयंत जयंतमपराजिदं च चलारो । पुट्यादिसु माणाणि ठिदाणि सन्बद्दसिदिस्स । १००। = १, ऋतु आदि सर्व इन्द्रकींकी चारों दिशाओं में स्थित श्रेणी बढ़ों में से प्रथम चारका नाम उस-उस इन्द्रके नामके साथ प्रभ, मध्यम, आवर्तन विशिष्ट ये चार शब्द जोड़ देनेसे बन जाते हैं। जैसे-शृतुप्रभ, ऋतु मध्यम, ऋतु आवर्त और मृतु विशिष्ट । २. ऋतु इन्द्रके पूर्वादि दिशाओं में स्थित, शेष द्वितीय आदि ६१-६१ विमानों के नाम इस प्रकार हैं। एक दिशाके ६९ विमानोंके नाम-संस्थित, श्रीवरस, वृत्त, कुसुम, चाप, छत्र, अंजन, कलश आदि हैं। शेष तीन दिशाओं के नाम बनाने के लिए इन नामोंके साथ 'मध्यम', 'आवर्त' और 'विशिष्ट' ये तीन शब्द जोड़ने चाहिए। इस प्रकार नवग्रैवेयकके अन्तिम प्रीतिकर विमानतकके श्रेणी बद्धोंके नाम प्राप्त होते हैं। ३. आदिख इन्द्रककी पुर्वादि दिशाओं में लक्ष्मी, लक्ष्मीमालिनी, वज्र और बज्राविन ये चार विमान हैं। विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित ये चार विमान सर्वार्थसिद्धिकी पूर्वादि दिशाओं में हैं।

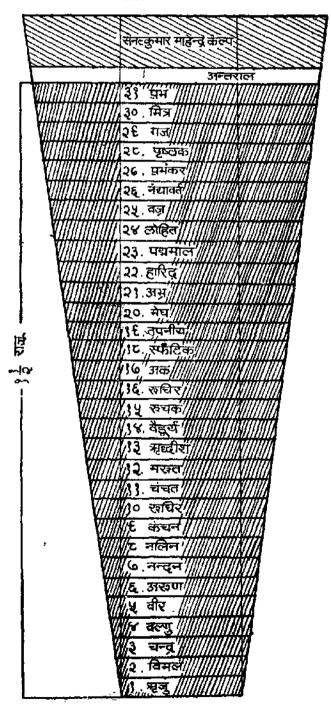
ह. पु./६/६३-६५ अचिरान्यं परं ख्यातमिन्नानित्यभिरूयया। वजं वैरोचनं चैव सौम्यं स्थारसौम्यरूप्यकम्।६३। अङ्कंच स्फुटिकं चैति दिशास्त्रमुदिशानि तु। आदित्यारूपस्य वर्तन्ते प्राच्याः प्रभृति सक्रमम् ।६४। विजयं वैजयन्तं च जयन्तमपराजितम् । दिश्व सर्वार्धसिद्धेस्तु विमानानि स्थितानि वै।६४। — अनुदिशों में आदित्य नामका विमान वीचमें है और उसकी पूर्वादि दिशाओं तथा विदिशाओं में क्रमसे—अर्चि, अर्चिमानिनी, वज्र, वैरोचन, सौम्य, सौम्यरूपक, अंक और स्फटिक ये आठ विमान हैं। अनुत्तर विमानों में सविधिसिद्धि विमान वीचमें है और उसकी पूर्वादि चार दिशाओं में विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित ये चार विमान स्थित हैं।

ज. प्./११/३३८-३४० अची य अचिमालिणी दिव्यं नइरोयणं पभासं

च। पुन्नावरदिक्षण उत्तरेण आदिक्षशे होंति । ३३०। विजयं च वेजयंतं जयंतमपराजियं चणामेण। सन्बद्दस्स दु एदे चदुसुिव य दिसासु चत्तारि । ३४०। = अर्चि, अर्घिमालिनी, दिन्य, वैरोचन और प्रभास ये चार विमान आदित्य पटलके पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तरमें हैं। ३३०। विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित ये चार विमान सर्वार्थपटलकी चारों ही दिशाओं में स्थित है। ३४०।

सोधर्म युगल के ३१ पटल

(पटलों के नामों में अन्वर-दे-स्वर्ग/५/३) चित्र सं• ट



५. स्वर्गोंमें विभानोंकी संख्या

१. १२ इन्द्रोंकी अपेक्षा

 $\{fa. \ \Psi/\Psi/\Psi \in \Psi \in \Psi \in \Psi : \{x_1, x_2\} \neq \{x_3, x_4\} = \{x_4, x_4\} = \{x$

(त्रि. सा/४६६-४६२ + ४७३-४७६) ।

है सीधर्म ३१ ४३७१ ३१६६६६ ३२ लाख हि स्तिरकुमार ७ ६८८ ४६६ ४६८ १२ लाख हि स्तिरकुमार ७ ६८८ ४६६ ४६८ १२ लाख हि स्तिरकुमार ७ ६८६ ७६६८४० ५२ लाख हि	ब अस न युक्त - -
२ ईशान — १४४७ २७६८४४३ २० लाख क्ष ३ सनत्कुमार ७ ६८८ ११६६४०४ १२ लाख क्र ४ माहेन्द्र — ११६ ७६६८०४ प्रसाख क्रि	युक्त ।
प्र वहा ४ ३६० ३६६६६६ ४ लाख है है है जान्तव २ १६६ ४६ ४६ ४०,००० है है है ए००० है है है ए००० है है है ए००० है है है ए००० है है है ए००० है है है ए००० है है है ए००० है है है ए००० है है है ए००० है है है ए००० है है है ए००० है है है ए००० है है है ए००० है है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए००००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०००० है है ए०० है है ए०० है है एक है है है एक है है है एक है है है एक है है है एक है है है एक है है है एक है है है एक है है है एक है है है एक है है है एक है है है एक है है है है एक है है है एक है है है है एक है है है एक है है है एक है है है एक है है है एक है है है एक है है है है है है है है है है है है है	युक्त है और बेष असंस्थात योजन बिस्तार युक्त

२, १४ इन्द्रोंकी अपेक्षा

१. (ति. पं./८/१७८-१८६); (ह. पू./६/४४-६२+६६-८८)।

ਜਂ.	कल्पका नाम्	इन्द्रक	श्रेणीब द्व	प्रकीर्णक	कुत्त योग	संख्यात, यो, युक्त
१	सौधर्म	३१	४४६६		३२ लख्ब	క్రభం,ఇంం
२	ईशान	_	१४८८		२ष "	६०८,०००
3	सनत्कुमार	ى	" ६१६	ব ি অ	१२ ";	२४०,०००
8	माहेन्द्र		२०३	র ব	۷ ,, ز	१६०,०००
ķ	ब्रह्म	8	२४६	की	२१६०००	
ξ	ब्रह्मोत्तर	_	ક્ષ્ક્ર	44	१०४०००	\$ 40,000
৩	सान्तव (२	१२५	इंटा ह	२५०४२	}
5	का पिष्ठ,	-	४१	41 2	२४१६८	}
3	शुक	-	१८	संस्व्या	२००२०	8000
१०	महाशुक्र	₹.	98	<u>₩</u>	१११८०	3000
११'	शतार		**	अणीबद्धकी	3908	} ,,,,,
l i	सहस्रार	₹	१५	श्रुवं	२६⊏१	े १२००
Į.	आनत-प्राणत्	3	१६५	च्च चे	880	15 C
१४	आरण- अभ्युत	3	१५६	से इन्द्रक	२ई०	४ २
१४	અાધો ગ્રૈ.	3,	१ १३	राशिमेसे	१११	
१६	मध्य ग्रै.	3	বঙ	जुरा	१०७	
१७	-	3	६ १	ঞ	εq	
१८	अनुदिश	१	=	•	3	
११	अनुत्तर	ζ	8.	ļ	ų	

६. विमानींके वर्ण व उनका अवस्थान[ः]

{ ति. प./प/२०३-२०७); (रा. वर/४/११/ १२३६/३), (ह. पु/६/१८-१००): (त्रि. सा./४८१-४वर) ।

कल्पका नाम	वर्ण	आधार	करपका नाम	वर्ण	आधार
सौधर्म ईशान	} पंच वर्ण .,	} धन वात	महाशुक सहस्रार	} स्वेत व हरित	जल व वायु दोनों
सनस्कु. माहेन्द्र	हुष्ण रहित ४	केवल- प्वन जल्लाव	अ ानतादि चार	} श्वेत	्रे शुद्ध आकाश
नहा लान्तव	कृ. नीस रहित ३	नायु दोनों	ग्रैवेयक आदि	} "	} "

ह. प्र/६/११ सर्वश्रेणीविमानानामहर्धमुर्ध्वमितोऽपरम् । अन्येषां स्ववि-मानाधं स्वयंभूरमणोदधेः। ११! = समस्त श्रेणीबद्ध विमानीकी जो संख्या है, उसका आधा भाग तो स्वयमभूरमण समुद्रके उत्पर है और आधा अन्य समस्त होप समुद्रोंके ऊपर फैला हुआ है।

त्रि. सा/ ४७४ उड्डमेढोबढदलं सयंभुरमणुदहिपणिधिभागिम्ह । आह्ल-तिण्णि दीवे तिण्णि समुद्दे य सेसा हु ।४७४। 🛏 सौधर्मके प्रथम ऋतू इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्धोंका एक दिशा सम्बन्धी प्रमाण ६२ है, उसके आधे अर्थात् ३१ श्रेणीवद्ध तो स्वयम्भूरमण समुद्रके उपरिमभागमें स्थित हैं और अवशेष विमानों में से १५ स्वयम्भूरमण द्वीपके ऊपर आठ अपनेसे लगते समुद्रके ऊपर, ४ अपनेसे लगते द्वीपके ऊपर, २ अपनेसे सगते समुद्रके ऊपर, १ अपनेसे लगते द्वीपके जनर तथा अन्तिम १ अपनेसे लगते अनेक द्वीपसमुद्रोंके ऊपर है।

७. दक्षिण व उत्तर कल्पोंमें विमानोंका विमाग

ति. प/८/१३७-९४८ का भावार्थ -- जिनके पृथक्-पृथक् इन्द्र है ऐसे पहिले व पिछले चार-चार करपोंमें सौधर्म, सनस्कुमार, आनत व आरण ये चार दक्षिण करूप हैं। ईशान, माहेन्द्र, प्राणत व अच्युत ये चार उत्तर विमान हैं, क्यों कि, जैसा कि निम्न प्ररूपणासे विदित्त है इनमें क्रमसे दक्षिण व उत्तर दिशाके श्रेणीवद्ध सम्मिलित हैं। तहाँ सभी दक्षिण कल्पोंमें उस-उस युगल सम्बन्धी सर्व इन्द्रक, पूर्व, पश्चिम व दक्षिण दिशाके श्रेणीबद्ध और नैर्क्नरय व अग्नि दिशाके प्रकीर्णक सम्मिलित हैं। सभी उत्तर करूपोंमें उत्तर दिशाके श्रेणीबद्ध तथा वायुव ईशान दिशाके प्रकीर्णक सम्मिलित हैं। बीचके ब्रह्म आदि चार युगल जिनका एक-एक हो इन्द्र माना गया है, उनमें दक्षिण व उत्तरका विभाग न करके सभी इन्द्रक, सभी श्रेणीब्रह्न व सभी प्रकीर्णक सम्मिलित हैं। (त्रि. सा/४७६); (ज. प/१९/२/२–२९८) ।

८. दक्षिण च उत्तर इन्द्रोंका निश्चित निवास स्थान

ति. प/प/३६१ छज्जुगतसंसएसुं अट्ठारसमन्मि से दिनद्धेसुं। दोहीण-कम दक्खिण उत्तरभागम्मि हाँति देविदा ।३५१। 😑 छह युगलाँ और श्रेष कल्पोंमें यथाक्रमसे प्रथम युगलमें अपने अन्तिम इन्द्रकसे सम्बद्ध अठारहवें श्रेणीबद्धमें, तथा इससे आगे दो हीन कमसे अथात् १६वें. १४वे, १२वें, १०वें, व्वें और ६ठें श्रेणीबद्धमें, दक्षिण भागमें दक्षिण इन्द्र और उत्तर भागमें उत्तर इन्द्र स्थित है।३४१।, (त्रि. सा/४८३)। ति, प/प/२३६-३५० का भावार्थ-(अपने-अपने पटलके अस्तिम इस्ट्रक-की दक्षिण दिशावासे श्रेणीनद्धेरेमें से १८वें, १६वें, १४वें, १२वें, ६ठे,

और पुनः ६ठें श्रेणोबद्ध विमानमें क्रमसे सौधर्म, सानत्कुनार, श्रक्ष, लांतव, आनत और आरण ये छह इन्द्र स्थित हैं। उन्हीं इन्द्रकोंकी उत्तर दिशावाले श्रेणोबद्धोंमें से १८वें, १६वें, १०वें, ६वें, १०वें, ६वें और पुनः ६ठें श्रेणीबद्धोंमें क्रमसे, ईशान, माहेन्द्र, महाशुक्त, सहस्रार, प्राणत और अच्युत ये छह इन्द्र रहते हैं।] (ह. पृ/६। १०१~१०२)

नोट-[हुपु, में लान्तवके स्थानपर शुक्र और महाशुक्रके स्थानपर लान्तव दिया है। इस प्रकार वहीं शुक्रको दक्षिणेन्द्र और लान्तवको उत्तरेन्द्र कहा है।]

रा. वा/४/१६/८/पृ/ पंक्तिका भावार्थ-सौधर्म युगलके अन्तिम इन्द्रककी दक्षिण दिशाबाले श्रेणीबद्धोंमेसे १८वोंमें सीधर्मेन्द्र (२२५/२१)। उसीके उत्तर दिशावाले १८वें श्रेणीबद्धमें ईशानेन्द्र (२२७/६)। सनरकुमार युगलके अन्तिम इन्द्रककी दक्षिण दिशावाले १६वें शेणी बद्धमें सनत्कुमारेन्द्र (२२७/३२)। और उसीकी उत्तर दिशावाले १६ वें भेणीमसमें माहेन्द्र (२२८/२५)। ब्रह्मयुगलके अन्तिम इन्द्रककी दक्षिण दिशावाले १२वें श्रेणीबद्धमें ब्रह्म न्द्र (२२६/१७)। और उसी-की उत्तर दिशावाले १२वें श्रेणीबद्धमें ब्रह्मोत्तरेन्द्र (२३०/२)। लान्तव युगलके अन्तिम इन्द्रककी दक्षिण दिशावाले हवें श्रेणीवद्धमें लान्त-बेन्द्र (२३०/१२) और उसीकी उत्तर दिशावाले हवें श्रेणीबद्धमें कापिष्ठेन्द्र (२३०/३४) । शुक्र युगलके एक ही इन्द्रककी दक्षिण दिशावाले १२वें श्रेणीबद्धमें शुक्रेन्द्र (२३१/८) और उसीकी उत्तर दिशावाले १२वें श्रेणीबद्धमें महाशुक्रेन्द्र (२३१/२६) । शतार युगलके एक ही सहसार इन्द्रककी दक्षिण दिशाबाले हवें श्रेणीबद्धमें शतारेन्द्र (२३१/३६) और उसीकी उत्तर दिशावाले हवें श्रेणीबद्धमें सह-सारेन्द्र (२३२/१८) । आनतादि चार कक्पोंके आरण इन्द्रककी दक्षिण दिशावाले ६ठें श्रेणीबद्धमें आरणेन्द्र (२३२/३१) और अच्युत इन्द्रककी उत्तर दिशावाले ६ठे श्रेणीबद्धमें अच्युतेन्द्र (२३३/१४)। इस प्रकार ये १४ इन्द्र क्रमसे स्थित हैं।

९. इन्द्रोंके निवासभूत विमानीका परिचय

ति प्राटीगा, का भावार्थ-१- इन्द्रक श्रेणीबृद्ध और प्रकीर्णक, इन तीनों प्रकारके विमानोंके ऊपर समचतुष्कोण व दीर्घ विविध प्रकारके प्रासाद स्थित हैं ।२०८। ये सब प्रासाद सात-आठ-नौ-दस भूमियोंसे भूषित हैं। आसनशाला, नाट्यशाला व कोडनशाला आदिकाँसे शोभायमान हैं। सिहासन, गजासन, मकरासन आदिसे परिपूर्ण हैं। मणिमय शब्याओंसे कमनीय हैं। अनादिनिधन व अक्रतिम विरा-जमान हैं।२०१--२१३। २ प्रधान प्रासादके पूर्व दिशाभाग आदिमें चार-चार प्रासाद होते हैं ।३१६। दक्षिण इन्द्रोंमें वैद्धर्य, रजत, अशोक और भृषत्कसार तथा उत्तर इन्द्रोंमें रुचक, मन्दर, अशोक और सप्तच्छद मे चार-चार प्रासाद होते हैं।३१७। (त्रि.सा./४८४-४८६) । ३. सौधर्म व सनत्कुमार युगलके प्रहोंके आगे स्तम्भ होते हैं, जिनपर तीर्यंकर मालकोंके वश्वाभरणोंके पिटारे लटके रहते हैं।३६८-४०४। सभी इन्द्र मन्दिरोंके सामने चैत्य वृक्ष होते हैं ।४०४-४०६३ सौधर्म इन्द्रके प्रासादके ईशान दिशामें सुधर्मा सभा, उपपाद सभा और जिनमन्दिर हैं।४०७−४११। (इस प्रकार अनेक प्रासाद व पुष्प वाटिकाओं आदिसे -युक्त ने इन्द्रोंके नगरोंमें) एकके पीछे एक ऊँची-ऊँची पाँच ने दियाँ होती हैं। प्रथम वेदीके बाहर चारों दिशाओं में देवियों के भवन, द्वितीयके बाहर चारों दिशाओं में पारिषद, ततीयके बाहर सामानिक और चौथीके बाहर अभियोग्य आदि रहते हैं। ४१३-४२८। पाँचवी बेदीके माहर वन हैं और उनसे भी आगे दिशाओं में लोकपालों के १४२८-४३३। और विदिशाओं में गणिका महत्त्रियोंके नगर हैं ।४३६। इसी प्रकार करपातीलोंके भी विविध प्रकारके प्रासाद, उपपाद सभा, जिनभवन आदि होते हैं ।४५१-४५४।

१०. करुप विमानों च इन्द्र भवनोंके विस्तार आदि

नाट-सभा प्रमाण याजनाम बताय गय हु।										
	कस्प विमान	। इन्द्रोंके	देशि	देवियों के भवन						
इन्द्रोंके नाम	ति. प /4/१६८-२०२ ह. पु /4/१२-१३ जि. सा./४=०	£. 3.	1, ≂ 3%; (4–8k¢ {\$ 88–8	ति. प./=/४१४–४१७						
	मोटाई	सम्बाई	चौड़ाई	ऊँचाई	लम्बाई	म इंग्डे	ऊँचाई			
सौधर्म यु. सनत. यु. ब्रह्म यु. सान्तब यु.	११ २१ १०२२ ६२३ =२४	१२० १० ० १० ८०	६० ४० ४०	४०० ४४० १००	१०० ६० ८० ७०	४० ४४ ४० ३४	३५० ४०० ४०० १००			
महाशुक्रयु, सहस्रार युः आनतादि ४ अधो ग्रै.	७२१ ६२ <i>६</i> ५२७ ४२ ^८	४० ६० ४०	३ ३० २ २ २०	३५० ३०० २४० २००	80 80 80	३० २ <u>४</u> २०	३०० २४० २००			
मध्य ग्रै. उपरि ग्रै. अनुदिश अनुत्तर	३ २ ६ २३० १३१ १२१	३० २० १० ६	र ४ १० ४ च	१६० १०० १० २६						

११. इन्द्र नगरोंका विस्तार आदि

नोट-सभी प्रमाण योजनोंमें जानने

	नग	प र	नगर	(कोट	नगर द्वार त्रि,सा./ ४१२-४१३		
इन्द्रोंके नाम	त्रि. स	T/8≥£		सा. / -४६ १			
	तम्बाई	चौड़ाई	ऊँचाई	मोटाई व नीव	संख्या ब ऊँचाई	चौड़ाई	
सौधर्म	⊏8000	∠ 8000	300	\$0	800	१००	
ईशान	20000	50000	14	19	٠,,	,,	
सनन्कुमार	७२०००	७२०००	२५०	२५	300	ξο	
माहेन्द्र	30,000	90000	,,	99	71	11	
ब्रह्म ब्रह्मोत्तर	€0,000	ਵੈ 0000	२००	१२३	२००	~ ο	
लान्तव काविष्ठ	ķ0,000	40000	१६०	६ <mark>१</mark>	१६०	৩০	
शुक्र महाशुक्र	80,000	80000	१२०	8	१४०	ķο	
शतार सहस्रार	₹0,000	३००००	१००	₹	१२०	So	
अनितादि ४,	20,000	२००००	ده ا	२३	çoo	şo	

स्वर्ण---१, तोलका प्रमाण विशेष । अपरनाम कंस -- देः गणित/1/१); २. विजयार्धको दक्षिण श्रेणीका एक नगर -- दे. विद्याधर ।

स्वर्णक्ला-१, हैरण्यवत् क्षेत्रकी एक नदी -दे. लोक/३/१०; २, हैरण्यवत् क्षेत्रस्थ एक कुण्ड -दे. लोक/३/१०; ३, स्वर्णक्ला कुण्डकी स्वामिनी देवी -दे. लोक/३/१०;

स्वर्णनाभ - विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीका एक नगर-दे. विचाधर।

स्वर्णभव --- विजयार्ध पर्वतका एक क्ट व उसका रक्षक देव -- दे लीक/७।

स्वर्णं मध्य-सुमेरु पर्वतका अपर नाम – दे. सुमेरु ।

स्वर्णरेखां —सौराष्ट्र देशमें गिरनार पर्वतसे निकली है। इसके रेतमें सोनेका सूक्ष्म अंश अब भी पाया जाता है। सुबरणा नामसे प्रसिख है। (नेमिचरित प्रस्तावना/प्रमोजी)।

स्वर्णवती-भुरतक्षेत्रके बरुण पर्वतस्थ एक नदी -वे. मनुष्य/४।

स्वयचन बाधित-दे. बाधित।

स्ववचन विरोध—हे. विरोध।

स्ववश्च — ति. सा./पू./१४६ परिचत्ता परभावं अप्पाणं मादि णिम्मल सहावं। अप्पवसो सो होदि हु तस्स दु कम्मं भणंति आवासं।१४६। — जो परभावको त्यागकर निर्मलस्त्रभाव वाले आत्माको ध्याता है, वह वास्तवमें आत्मवश है और उसे आवश्यक कर्म (जिन) कहते हैं। भ. आ./वि./८४/२१७/६ सञ्वरथ सर्व स्मिन्देशे आत्मवशता। स्वेच्छ्या आस्ते, गच्छति; शेले वा। इहासनादिकरणे इदं मम विनश्यति वस्ति तदनुरोधकृता परतन्त्रता नास्ति संगतस्य। — सर्वश्च आत्मवशता-परिग्रहके त्यागसे संयतके यह गुण भी श्राप्त होता है। मुनिके पास कोई परिग्रह न होनेसे वे स्वेच्छासे बैठते हैं, जाते हैं. सोते हैं। बैठने-उठनेमें मेरी अमुक वस्तु नष्ट हुई, अमुक वस्तु मेरेको चाहिए इस प्रकारकी चिन्ता उनके नहीं होती।

स्वसंवेदन् नि दे. अनुभव्।

स्व समयं---१. दे. समयं; २. स्व-समय और पर-समयके स्वाध्याय-का क्रम --दे. उपदेश/३/४-४।

स्वस्तिक---१. विदेह क्षेत्रमें स्थित भद्रशाल बनमें एक दिग्गजेन्द्र पर्वत --दे. लोक/१/३१२. विद्युत्त्रभ गजदन्तस्थ एक क्रूट--दे. लोक/१/४१३. कुण्डल पर्वतस्थ मणिप्रभ क्र्टका स्वामी नागेन्द्र देव---दे. लोक/१/१२१४. रुचक पर्वतस्थ एक क्रूट--दे. लोक/१/१३१

स्विस्तिमति—प. पु./११/१लोक क्षीरकदम्बकी स्त्री । पर्वत, बसु ब नारदको गुरुमाता थी (१४) इसने 'अजैर्यष्टठग्रम्'का विपरीत समर्थन करनेके लिए वसुराजाको प्रेरित किया था (१६)।

स्वस्त्रो - दे. जी/१।

स्वस्थान अप्रमत्ते—हे. संयत/१/४।

स्वस्थान सत्त्व—दे, सत्त्व/१।

स्वस्थान सन्निकर्षं — दे सन्निकर्ष।

स्वहस्त क्रिया-वे. क्रिया/३/१।

स्वाति—१, एक नक्षत्र —दे, नक्षत्र । २, मानुषोत्तर पर्वतस्थ तपनीय कृटका स्वामी भवनवासी गरुड़ कुमार देव--दे, लोक/६/१०।

स्वाति संस्थान-दे संस्थान।

स्वात्मिन क्रिया विरोध— दे, विरोध।

स्याद्य — मू. जा./६४४ सार्वति सादियं भणियं ।६४४। - जिससे मुखका स्वाद किया जाये. इलायची आदि स्वाच कहा है ।

अन ध./७/१३ स्वाध' ताम्बूलादि । -पान, सुपारी, इलायची आदि तथा अनार, सन्तरा, ककड़ी आदि भक्ष्य पदार्थ स्वाध है। ला. सं/२/१६ स्वार्क तु भोगार्थ ताम्बूलादि यथागमात् ...।१६। =भोगों-के लिए आगमानुकूल ताम्बूल आदि पदार्थ स्वाद्य कहलाते हैं।

स्वाध्याय सत्शास्त्रका वांचना, मनन करना, या उपदेश देना आदि स्वाध्याय कहा जाता है जो सर्वोत्तम तप माना गया है। मोक्षमार्गमें इसका बहुत ऊँचा स्थान है। यथा विधि यथा काल ही स्वाध्याय करना योग्य है। सूर्यप्रहण आदि काल स्वाध्यायके लिए अयोग्य समके जाते हैं।

ş स्वाध्याय निर्देश स्वाध्याय सामान्यका लक्षण । ₹ निश्चय स्वाध्यायके अपर नाम ।—दे. मोक्षमार्ग/२/६। स्वाध्यायके भेदा। ş स्वाध्यायमें सम्यक्तको मधानता । स्तुति आदि परिवर्तन रूप भी स्वाध्याय है। X स्वाध्यायमें विनयका महत्त्व । --दे, विनय/२/६। प्रयोजन व अप्रयोजनभूत विषय । V, चारों अनुयोगोंकी स्वाध्यायका क्रम । निश्चय व व्यवहार विषयक स्वाध्यायका ऋम । ---वे उपदेश/३/४-५। स्वपर समय विषयक स्वाध्यायका ऋम । ---वै, उपदेश/३/४-५ । स्वाध्याय सर्वोत्तम तप है। છ स्वाध्यायको अपेक्षा वैयावृत्यको प्रधानता । ~-दे, वैयावस्य/६। स्वाध्यायका लोकिक व अलोकिक फल । L स्वाध्यायका फल गुणश्रेणी निर्जरा व संतर । ፄ स्वाध्यायमें फलेच्छाका निवेध । 🕒 दे, राग/४/४-६ । स्वाध्यायका प्रयोजन व महत्त्व । ŧο पठित शानके संस्कार साथ जाते हैं।-दे. संस्कार/१/२। स्वाध्याय विधि ₹ स्वाध्यायमें द्रव्य क्षेत्रादि शुद्धिका निर्देश --दे शुद्धि। स्वाध्याय योग्य काल व उसका विभाजन । ₹ स्त्राध्याय योग्य कालमें कुछ अपनाद । ₹ ₹ स्वाध्यायके अयोग्य द्रव्य क्षेत्र काल । अयोग्य द्रव्यादिमें स्वाध्याय करनेसे हानि । ጻ स्त्राध्याय प्रतिष्ठापन व निष्ठापन विधि । ц स्वाध्याय प्रकरणमें कायोत्सगेका काल प्रमाण । --दे व्युरसर्ग∤१ । स्वाध्यायसे शेष बच्चे समयमें क्या करे। --दे. कृतिकर्म/४/१ । विशेष शास्त्रोंके प्रारम्म व समाप्ति आदिपर Ę उपवासादिका, निर्देश । नियमित व अनियमित विधि युक्त पढ़े जाने 4 योग्य कुछ ग्रन्थ । शास्त्र अवण व पठनके योग्यायोग्य पत्र --दे, श्रोता । कैसे व्यक्तिको कैसा शास्त्र पढ़ना चाहिए।-इ. श्रोता । कैसे जीवको कैसा उपदेश दे । ---दे, उपदेश/३।

१. स्वाध्याय निर्देश

१. स्वाध्याय सामान्यका रुक्षण

१. निरुचय

- स. सि./१/२०/३३१/७ ज्ञानभावनातस्यत्यागः स्वाध्यायः ।= आतस्य त्यागकर ज्ञानकी आराधना करना स्वाध्याय तप है ।
- चा. सा./१४९/५ स्वस्मै हिलोऽध्यायः स्वाध्यायः। = अपने आत्माकाः हित करनेवाला अध्ययन करना स्वाध्याय है।

२. व्यवहार

- सू. आ./१११ नारसंगं जिणक्लाइं सउभायं कथितं बुधें।-। = नारह अंग चौदहपूर्व जो जिनदेवने कहे हैं उनको पण्डितजन स्वाध्याय कहते हैं।
- ध. १३/४,४,२६/६४/१ अंगंगवाहिरआगमवायणपुच्छणाणुगेहा परि-यट्ठण-धन्मकहाओ सङ्भायो णाम । = अंग और अंगवाह्य आगम-की वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, परिवर्तन और धर्मकथा करना स्वाध्याय नामका तप है (अन. ध./६/४)।
- चा, सा./४४/३ स्वाध्यायस्तत्त्वज्ञानस्याध्ययनमध्यापनं स्मरणं च। ≕तत्त्वज्ञानको पढना, पढ़ाना, स्मरण करना आदि स्वाध्याय है।
- का. अ /मू./४६२ पूयादिसु णिरवेक्खो जिण-सत्थं जो पढेइ भूती, कम्म-मल सोहणट्ठं सुय-लाहो सुहयरो तस्स = जो सुनि अपनी पूजादिसे निरपेक्ष, केवल कर्ममल शोधनके अर्थ जिन शास्त्रोंको भक्तिपूर्वक पढ़ता है, उसका श्रुतलाभ सुखकारो है।

२. स्वाध्यायके भेद

- म् आ./३६३ परियहणाय नायण पिडन्छणाणुपेहया य धम्मकहा।

 थु तिमंगलसंजुत्ता पंचित्रहो हो इ सज्भाओ ।३६३। पढ़े हुए ग्रन्थका
 पाठ करना. वाचन-- व्याख्यान करना. पृच्छना शास्त्रीके अर्थको
 किसी दूसरेसे पूछना, अनुप्रेक्षा बारम्बार शास्त्रका मनन करना,
 धमंकथा त्रेशठ शलाका पुरुषोंका चारित्र एढ़ना ये पाँच प्रकारका
 स्वाध्याय मुनि देव वन्दना मंगल सहित करना चाहिए।३६३। (दे.
 ऊपरवाले शीर्षकर्में ध./१३), (अन. ध./७)।
- त. सू./१/२१ वाचनाप्रच्छतानुप्रेक्षम्नायधर्मोपदेशाः ।२१। ⇒वाचना, पृच्छना,अनुप्रेक्षा, अस्ताय, और धर्मोपदेश यह पाँच प्रकारका स्वाध्याय है । ।२१। (चा. सा./११२/१); (अन. ध.७/८३-८७)।
- दे. वांचना चार प्रकार है -- नन्दा, भद्रा, जया और साम्या।

३. स्वाध्यायमें सम्यक्त्वकी प्रधानता

- भा. या./मू./न्ह सयलो णाणज्यमयणो णिरत्यओ भानरहियाणं । = भान-रहित श्रमणोंका सकल ध्यान और अध्ययन निरर्धक हैं।
- ध. १/४.१.१/६/३ ण च सम्मतेण विरहिषाणं णाणकाणाणमसंखेजनगुणसेडीकम्मणिज्जराए अणिमित्ताणं णाण काणववएसो पारमित्यखो
 अत्थि, अवगयद्ठ सहङ्गणणो त्वाव्यवएसक्ष्यवगमे संते खर्ण्प- '
 सगादो।=सम्यवत्वसे रहित ज्ञान ध्यानके असंख्यात गुणी श्रेणी '
 रूप कर्म निर्कराके कारण न होनेसे 'ज्ञानध्यान' यह संज्ञा वास्तविक
 नहीं है। खोंकि अर्थ अद्धानसे रहित ज्ञान ग्में वह संज्ञा स्वीकार
 करनेमें अतिप्रसंग दोष आता है।
- यो. सा. अ./७/४४ संसारो निदुषां शास्त्रमध्यात्मरहितानां ।४४। = जो निद्वान् हैं - शास्त्रों का अक्षराभ्यास तो कर चुके हैं परन्तु आत्म-ध्यानसे श्रुन्य हैं उनका संसार शास्त्र है।

४. स्तुति आदि परिवर्तन रूप मी स्वाध्याय है

- अन्. ध./७/६२ अर्ह द्ववानपरस्यार्हन् शं को दिश्यात्सदारतु वः। शान्ति-रित्यादिरूपोऽपि स्वाध्यायः श्रेयसे मतः।६२। ⇒जो साधु निरन्तर अर्हन्त भगवान्के ध्यानमें लोन रहता है उसके 'अर्हन् शं वो दिश्यात्' अर्थात् अर्हन्त भगवान् तुम्हारा कल्याण करें। तथा 'सदास्तु वः शान्तिः' अर्थात् मुक्ते सदा शान्ति बनी रहे इत्यादि वचनोंको भी स्वाध्याय ही कहना चाहिए। क्योंकि पूर्वाचार्योने इसके द्वारा भी कल्याण और परम्परा मोक्षकी सिद्धि मानी है।
- दे. स्वाध्याय/१/२ ये पाँच प्रकारका स्वाध्याय मुनि देव वन्दना मंगल सहित करना चाहिए।

५. प्रयोजन व अप्रयोजन भूत विषय

मो. मा. प्र./७/३१७/२१ मोसमार्ग विषे देव, गुरु, धर्म व जीवादि तस्त्र वा बन्ध मोसमार्ग प्रयोजनभूत हैं।...द्वीप समुद्रादिका कथन अप्रयोजनभूत है।

६. चारों अनुयोगोंके स्वाध्यायका क्रम

- मो. मा, प्र./७/३४७/१८ पहला सच्चा तत्त्व ज्ञान हो (द्रव्यानुयोग), पीछे पुण्य पापके फलको जाने (प्रथमानुयोग) शुद्धोपयोगसे मोक्ष माने (चरणानुयोग) और गुणस्थानादि जीवका व्यवहार निरूपण जाने (करणानुयोग) इत्यादि जैसे हैं वैसे श्रद्धान करके उसका अर्थात् (आगमका) अभ्यास करे तो सम्यक्ज्ञान होय।
- मो. मा. प्र./८/पृ./पंक्ति सं. करणानुयोग विषे भी किसी ठिकाने उप-देशकी सुरूयता पूर्वक व्याख्यान होता है। उसे सर्वथा वैसा ही न मानना (४०७/२) सुरूयपने तो निचली दशामें प्रव्यानुयोग कार्यकारी है। गौणपने जाकों मोशमार्गकी प्राप्ति होति न जानियें ताकों पहले कोई बतादिका उपदेश दीजिए है। ताते ऊँची दशा बालोंको अध्यादम अभ्यास-योग्य है। (४३१/७)

७. स्वाध्याय सर्वोत्तम तप है

भ. आ./मू./१०७-१०६ वारसिवहिम्स य तिवे सन्भंतरवाहिरे कुसलदिट्ठे। ण वि अध्य ण वि य होहिदि सज्भायसमं त्वो कम्मं।

११०७। जं अण्णाणीकम्मं खवेदि भवसयसहस्सकोडोहि। तं णाणीतिहिं गुत्तो खवेदि अंतोमुहुत्तेण ११०८। छट्टहमदसमदुवालसेहिं अण्णाणियस्स जा सोही। तत्तो बहुगुणदिया होज्ज हु जिमिदस्स णाणिस्स।

११०६। == १. सर्व इ देवकर उपदेशे हुए अम्यन्तर और बाह्य भेद सहित
वारह प्रकारके तपमेंसे स्वाध्याय तपके समान अन्य कोई न तो हैं
और न होगा।१०७। (मू आ./४०६,६७०) २. सम्मण्झानसे रहित
जीव लक्षाविध कोटि भवेंमें जितने कर्मोंके क्षय करनेमें समर्थ
होता है, ज्ञानी जीव गुप्तिगुप्त होकर उतने कर्मोंका क्षय अन्तर्मृहृत्में
कर देता है।१०८। (प्र. सा./मू./२३६); (ध.६/६,६,६०/गा.२३/२८१)
एक, दो, तीन, चार वा पाँच, अथवा पक्षोपवास व मासोपवास करनेवाले सम्यग्हान रहित जीवसे भोजन करनेवाला स्वाध्यायमें तत्पर
सम्यग्दृष्टि परिणाभोंकी ज्यादा विशुद्धि कर सेता है।१०६।

८. स्वाध्यायका छौकिक व अछौकिक फल

ति. १/१/६६-४२ वुविहो हवेदि हेदू तिलोयपण्णतिगंधयउभयणे।
जिणवरवयणुद्धिर्ठोपच्चक्खंपरोक्खभेएहि।३६। सक्खापच्चक्षवर्रभ्यक्खा दोण्णि होदि पद्धक्खा। अण्णाणस्य विणासं णाणदिवायरस्स
उप्पत्ती।३६। देवमणुस्सादी हिं संततमन्भचणप्पयाराणि। पिष्टसमयमसं खेळागुणसे किकम्मणि ज्यार्णे।३०। इय सक्खापच्चक्खं पच्चक्ख परंपरं च णाद्क्बं। सिस्सपिष्ठसिस्सपहुदी हिं सददमन्भचणयारं ।३५। दोभेदं च परोक्खं अभुदयसोक्खाईं मोन्दसोब्खाई सारादिविविहसु र्रसत्यकम्माते व्याणुभागउदएहि । ३६। ददिगिदय तेत्तीसामररसमाणपहृदिग्रहं । राजाहिराजमहराज-द्धमं डलिमं डलयाणं महमंडलियाणं अद्भविकचकहरि-१४०१ तित्थयरसोक्त । अट्टारसमेत्ताणं सामी सेसाणं भत्तिजुताणं ।४१। वररमण मउडधारी सेवयमाणाण वित्त तह अट्ठं। देंता हवेति राजा जितसक्तू समरसंघट्ठे ।४२। = त्रिलोक प्रज्ञप्तिप्रन्थके अध्ययनमें, जिनेन्द्रदेवके वचनोंसे उपदिष्ट हेतु, प्रत्यक्ष और परोक्षके भैदसे दो प्रकारका है।३५। १. प्रत्यक्ष हेतु साक्षात् और परम्पराके भेदसे दो प्रकारका है। अज्ञानका विनाश, ज्ञानरूपी दिवाकरकी उत्पत्ति, देव और मनुष्यादिकोंके द्वारा निरन्तर की जानेवाली विविध प्रकारकी अभ्यर्थना, और प्रत्येक समयमें होनेवाली असं-रूपात गुणी रूपसे कर्मोंकी निर्जरा, इसे साक्षात प्रध्यक्ष हेत् सममना चाहिए। और शिष्य-प्रशिष्य आदिके द्वारा निरन्तर अनेक प्रकारसे की जानेवाली पूजाको परम्परा परोक्ष हेतु समम्मना चाहिए।३६-३८। २, परोक्ष हेतु भो दो प्रकारका है--एक अम्युदय और दूसरा मोक्ष मुख । सातावेदनीय आदि मुत्रशस्त कर्मों के तीव अनुभागके उदयसे प्राप्त हुआ इन्द्र, प्रतीनद्र, दिगिन्द्र, त्रायस्त्रिश, व सामानिक आदि दैवोंका सुख तथा राजा, अधिराज, महाराज, मण्डलीक, अर्धमण्ड-लीक, महामण्डलीक, अर्धचकी, चक्रवर्ती और तीर्थंकर इनका सुख अभ्युद्य सुख है। जो भक्तियुक्त अठारह प्रकारकी सेनाओंका स्वामी है, उत्कृष्ट रत्नोंके मुकुटको धारण करनेवाला है, सेवकजनोंको वृत्ति अर्थात् भूमि तथा अर्थ (धन) प्रदान करनेवासा है, और समरके संघषेमें शत्रुओं को जीत बुका है, वह राजा है।३६-४२। (भ. १/१. १,१/६६/१) ।

ध. १/१,१,१/गा ४७-५१/५६ भिवय-सिद्धांताणं दिणयर कर-णिम्मलं हबइ णाणं । सिसिर-यर-कर सिच्छं हबइ चरित्तं स-वस चित्तं ।४७३ मेरु व्व णिक्कंप णट्ठट्ठ मलं तिमुढ उम्मुक्कं। सम्मइदंसणमणु-वमसमुप्पज्जइ पवयणब्धासा ।४८। तत्तो चेव मुहाइं सयलाइं देव-मणुत्रलयराणं । उम्मू लियट्ठ कम्मं फुड सिद्ध-सुहं पि पवयणदो । १४६। जियमोहिधण-जन्नणो अण्णाण् तमध्यार-दिणयरओ। कम्म-मलकलुसपुसओ जिलवयणिमबोबही सुह्ओ।६०। अण्णाण-तिमिर-हरणं सुभविय-हिययारविद-जोहणयं । उज्जोइय-सयत बद्धं सिद्धंत-दिवायर भजह १६१। = जिन्होंने सिद्धान्तका उत्तम प्रकारसे अभ्यास किया है ऐसे पुरुषोंका ज्ञान सूर्यकी किरणोंके समान निर्मल होता है और जिसने अपने चित्तको स्वाधीन कर लिया है ऐसा चन्द्रमाकी किरणोंके समान निर्मल चरित्र होता है। ४०। प्रवचनके अभ्याससे मेरके समान निष्कम्प, आठ मल रहित, तीन मुख्ता रहित समयग्दर्शन होता है १४८। देव, मनुष्य और विद्याधरों के सुख प्राप्त होते हैं और आठ कर्नों के उन्मू लिल होनेपर प्रवचनके अम्याससे विशद सिद्ध सुख भी प्राप्त होता है। ४६। जिनागम जीवों के मोहरूपी इंधनको अग्निके समान, अज्ञानरूप अन्धकारके विनाशके लिए सूर्यके समान और इन्य व भाव कर्मके मार्जनके लिए समुद्रके समान है। ५०। अज्ञानरूपी अन्धकारके विनादाक भव्यजीवोंके हृदयको विकसित करनेवाले, मोक्षपथको प्रकाशित करनेवाले सिद्धान्तको भजो ।५१।

९. स्वाध्यायका फल गुणश्रेणी निर्जरा व संवर

थ. १/१,१,१/६६/३ कर्मणामसंख्यातगुणश्रीणिनिर्जरा केषां प्रत्यक्षेति चेत्र, अवधिमनःपर्ययज्ञानिनां सूत्रमधीयानानां तत्प्रत्यक्षतायाः समुप-लम्भात् । जप्तर—कर्मोकी असंख्यातगुणित-श्रेणी रूपसे निर्जरा होती है, यह किनको प्रत्यक्ष है । उत्तर—ऐसी शंका ठीक नहीं है, क्योंकि, सूत्रका अध्ययन करनेवालोंकी असंख्यात गुणित श्रेणी रूपसे प्रतिसमय कर्म निर्जरा होती है, यह भात अवधिज्ञानी और मनः-पर्ययज्ञानियोंको प्रत्यक्ष रूपसे उपलब्ध होती है।

- ध. १/४,१,१/३/१ उसहसेणादिगणहरदेवेहि निर्ध्यसद्दर्यणादो दव्ब-सुसादो तप्पढण-गुणणिकरियावावदाणं सव्बजीवाणं पिडसमयमसंखे-वेजजगुणसेढोए पुव्यसचिदकम्मणिकारा होदि सि । —वृषभसेनीदि गणधर देवों द्वारा जिनकी शब्द रचना की गयी है, ऐसे द्वय सूत्रोंसे उनके पदने और मनन करने रूप क्रियामें प्रवृत्त हुए सब जीवोंके प्रति समय असंख्यात गुणित श्रेणीसे पूर्व संचित कर्मोंकी निर्जरा होती है।
- भ, ह/६,६,६०/२०१२ किमर्थं सर्वकालं व्याख्यायते । श्रोतुव्या-ल्यातुश्च असंख्यातगुणश्रेण्या कर्मनिर्जरणहेतुरवात् । प्रश्न - इसका सर्वकाल किस लिए व्याख्यान करते हैं १ - उत्तर - क्योंकि वह व्याख्याता और श्रोताके असंख्यात गुणी श्रेणी रूपसे होनेवाली कर्म निर्जराका कारण है।

३०, स्वाध्यायका प्रयोजन व महस्व

- भ. आ./मू./१०४-१०६ सज्मार्य कुट्वंतो पंचिद्यस्ंवुडो तिगुत्तो य । हवदि य एयग्मणो विणएण समाहिदो भिक्खू।१०४। जह जह सुदमोग्गाहिद अदिसयरसपस्यमसुदपुट्वं तु । तह तह पण्हादिष्कदि नव-नवसंवेगसङ्हाए ।१०६। आयापायविदण्ह दंसणणाणतवसंजमें ठिचा। विहरिद विसुज्भमाणो जावज्जीवं दु णिवकंपो।१०६। जो साधु स्वाध्याय करता है वह पाँचों इन्द्रियोंका संवर करता है, मन आदि गुप्तियोंको भी पालनेवाला होता है और एकाग्रचित हुआ विनयकर संयुक्त होता है ।१०४। (मू. आ./४१०) जिसमें अतिराय रसका प्रसार है और जो अश्रुतपूर्व है ऐसे श्रुतका वह जैसे-जेसे अवगाहन करता है वैसे ही वैसे अतिराय नवीन धर्म भद्धासे संयुक्त होता हुआ परम आनन्दका अनुभव करता है। (ध, १३/६/६/६/०/गा.२१-२२/२०१) स्वाध्यायसे प्राप्त आदम विशुद्धिके द्वारा निष्कम्य तथा हैयो-पादेयमें विचक्षण बुद्धि होकर यावज्ञीवन रत्तत्रयमार्गमें प्रवर्तता है।१०६।
- प्र.सा. मू /=६, २३२-२३७ जिणसत्थादो अट्ठे पञ्चवस्वादी हिं बुजमत्वो णियमा । खीयदि मोहोबचयो तम्हा सत्थं समधिदव्वं । ५६। ९यग्गगदो समणो एयग्गं णिच्छिदस्स अत्थेसु । णिच्छित्ती आगमदो आगमचेद्वा त्दो जेट्ठा ।२३२। आगमहीणो समणो णेवप्पाण पर वियाणादि । अविजाणंती अट्ठे खबेदि कम्माणि किथ भिन्खू ।२३३। आगमचनखू साहू इंदियचक्खूणि सब्बभ्दाणि । देवा य ओहिचक्खू सिद्धा पुण सञ्बद्धो चक्खु । २३४। सञ्बे आगमसिद्धा अत्था गुणपज्जरहि चित्तेहि । जार्णति आगमेण हि पेच्छिता ते वि ते समणा। २३५। आगमपुट्या दिट्ठी ण भवदि जस्सेह संजमो तस्स । णरथीदि भणदि सुत्तं असंजदो हो दि किंध समणो ।२३६। ण हि आगमेण सिउमदि सदहणं जिह वि णिरिथ अत्थेसु ।२३७। - जिन शास्त्र द्वारा प्रत्यक्षादि प्रमाणींसे पद्धिको जानने वालेके नियमसे मोह समूह क्षय हो जाता है इस-लिए शास्त्रका सम्यक्षकारसे अध्ययन करना चाहिए।८६। (म.च. वृ /३१७ पर उद्दध्त) । अमण एकाप्रताको प्राप्त होता है, एकाप्रता पदार्थीके निश्चयवान्के होती है, निश्चय आगम द्वारा होता है, इस्तिए अगमके व्यापार मुख्य हैं। २३२। अगमहीन श्रमण आरमा-को और परको नहीं जानता, पदार्थोंको नहीं जानता हुआ भिक्षु कर्मोको किस प्रकार क्षय करे । ।२३३। साधु आगम चक्षु हैं, सर्वप्राणी इन्द्रिय चक्षुवाले हैं, देव अवधि चक्षु वाले हैं और सिद्ध सर्वतः चक्षु हैं।२३४। समस्त पदार्थ विचित्र गुण पर्यायों सहित अ।गम सिद्ध हैं उन्हें भी वे श्रमण आगम द्वारा वास्तवमें देखकर जानते हैं। १३६०। (यो सा अ /६/१६-१७) । इस लोकमें जिसकी आगम पूर्वक दृष्टि नहीं है उसके संयम नहीं है इस प्रकार सूत्र कहता है, और असंयत वह श्रमण कैसे हो सकता है। २३६। आगमसे यदि पदार्थीका श्रद्धान न हो तो सिद्धि नहीं होती।२३७।

र. सा./ह१,ह५ पनयण सारक्यासं परमण्याजभाणकारणं जाणं। कम्मक्लवणणित्तं कम्मक्लवणिहि मोक्लसोक्लंहि।ह१। अजमयणमेव
भाणं पचेदियणिः हं कसायं पि। तत्ते पंचमकाले पवयणसारक्यासमेव
कुज्जा हो।ह६। = प्रवचनके सारका अभ्यास ही परब्रह्म परमारमाके
ध्यानका कारण है। विशुद्ध आत्माके स्वस्तपका ध्यान हो कर्मोका
नाश व मोक्षमुलकी प्राप्तिका प्रधान कारण है।ह१। प्रवचनसार
(जिनागम) का अभ्यास पठन-पाठन और वस्तुविचार हो ध्यान है।
उसीसे इन्द्रियोंका निग्रह, मनका वशीकरण व कथायोंका उपशम
होता है। इस पचम कालमें जिनागमका अभ्यास करना हो जिनागम
है।ह६।

स्वाध्याय

- डं.पाः /मू /१७ जिगवयणमोसहिमणं विसयसहिवरेयणं अमिरभूयं। जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सव्बदुक्लाणा। व्यह जिनवचन रूप औषधि इन्द्रिय विषयसे उत्पन्न सुखको दूर करनेवाला है। तथा जन्म-मरण रूप रोगको दूर करनेके लिए अमृत सदश है और सर्व दुःखोंके क्षयका कारण है।१७।
- सू.पा./मू./३ सत्तुम्मि जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि । सूईं जहां सम्रता णासदि मुत्ते सहा णो वि ।३। ≔जो पुरुष सूत्रका जान-कार है वह भव्का नाश करता है, जैसे सूई डोरे सहित हो तो नष्ट नहीं होती, यदि डोरेसे रहित हो तो नष्ट हो जाती है।
- स.सि./१/२५/४४२/६ प्रज्ञातिकायः प्रशस्ताध्यवसायः परमसंवेगस्तभौवृद्धिरतिचारिवशुद्धिरित्येवमाद्यर्थः। रूप्रज्ञामें अतिकाय लानेके
 लिए, अध्यवसायको प्रशस्त करनेके लिए, परम संवेगके लिए, तप
 वृद्धि व अतिचार शुद्धिके लिए, (संश्रयोच्छेद व परवादियोंको
 कांकाका अभाव रा.वा.) आदिके लिए स्वाध्याय तप आवश्यक है।
 (रा.वा./१/२५/६/६२४/२०)।
- ति.प./१/११ कणयधराधरधीरं मुहत्तयिवरिहदं हयट्ठमलं । जायिद पवयणपढणे सम्मद्दराणमणुवसाणं ।११। = प्रत्रचन अर्थात् परमागमके पढनेपर सुमेरु पर्वतके समान निश्चल लोक्मूढता, वेबसूढता. गुरु-मूढतासे रहित, शंका आदि आठ दोषोंसे युक्त अनुपम सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है।
- दे. स्वाध्याय/१/६ में ध./१ जिनागम जीवोंके मोहरूपी ईंधनके जलानेके लिए अग्निके समान, अज्ञानको विनाशके लिए सूर्यके समान, तथा कर्मीके मार्जनके लिए समुद्रके समान है।
- न.च.तृ./३६४ पर उद्दश्त व ३४८ द्वसुयादो भावं भावदो होह सवव-सण्णाणं । संवेयणसंकि त्ति केवलणाणं तदो भणियो ।१। गहिओ सो सुदणाणे पच्छा संवेयणेण भायद्वो । जो णहु सुदमवलंबह सो मुज्भह अप्पसन्भावे ।३४८। = द्रव्यशुत्तसे भावशृत होता है फिर क्रमसे सम्यग्हान, संवेदन, आरम संवित्ति, तथा केवलज्ञान होते हैं, ऐसा कहा गया है। (न.च.व/२६०) श्रुतज्ञानको प्रहण करके पश्चात् आरम-संवेदनते ध्याना चाहिए। जो श्रुतज्ञानका अवलम्बन नहीं लेता वह आरम सद्भावमे मोह करता है।३४८।
- स.सा./आ./२०४ स किल गुणः श्रुताध्ययनस्य यद्विविक्तवस्तुशृतज्ञानः मयात्मज्ञानम् । = जो भिन्त वस्तु शृत ज्ञानमय आत्माका ज्ञान वह शास्त्र पठनका गुण है ।
- आ.अतु./१०० अने हान्तातमार्थप्रसम्भणतभारातिविनते वचः पणिकीणें वियुननप्रशाखाशतयुते । समुत्तुङ्गे सम्यक्ष्रतस्तिम् ते प्रतिदिनं श्रुतस्कन्धे घोमान् रमयतु मनोमर्कटममुम् ११००। = जो श्रुतस्कन्ध रूप वृस् अनेक धर्मात्मक पदार्थ रूप फूल एवं फलोंके भारसे अतिशय भुका हुआ है. वचनों रूपी पत्तोंसे द्याप्त है, विस्तृत नयों रूप सेकड़ों शाखाओंसे युक्त है, उन्नत है, तथा समीचीन एवं विस्तृत मतिह्यान रूप जड़से स्थिर है, उस श्रुत स्कन्ध रूप वृक्षके उपर बुद्धिमान् साधुके लिए अपने मनरूपी बन्दरको सदा रमाना चाहिए।

प.प्र./टी./२/१६१ निजशुद्धारमैवोपादेय इति मस्वा तत्परिञ्चानसाधकं व पठित तदा परम्परया मोक्षसाधकं भवति । = जो निज शुद्धात्मा-को उपादेय जानकर, ...ज्ञानको प्राप्तिका उपाय जो शास्त्र, उनको पढ़ता है, तो परम्परा मोक्षका साधक होता है।

२. स्वाध्याय विधि

१. स्वाध्याय योग्य काल व उसका विमाजन

- दे कृतिकर्म/४/६ प्रात को स्वाध्याय सूर्योदयसे दो घड़ी पश्चाच प्रारम्भ करके मध्याहमें दो घड़ी बाको रहनेपर समाप्त कर देना चाहिए। अपराह्मका स्वाध्याय मध्याहके दो घड़ी पश्चात्से प्रारम्भकर सूर्यान्त-से दो घड़ी पूर्व समाप्त कर देना चाहिए। यही कम पूर्व राजिक व वैराजिक स्वाध्यायमें अपनाना चाहिए।
- घ.९/४,१,५४/गा. १११-११४/२६८ प्रतिपद्येकः पादो उमेष्ठा मुलस्य पौर्णमास्यां तुः सावाचना विमोक्षे छाया पूर्वाह्ववेतायाम् ।१११। सेवापराहकाले वेला स्याद्वाचनाविधी विहिता। सप्तपदी पूर्वाद्वापरा-ह्रयोर्घ हण-मोक्षेषु ।११२। ज्येष्ठामूलात्परतोऽप्यापौषाइद्वबङ्गुला हि वृद्धिः स्याद् । मासे मासे विहिता क्रमेण सा वाचनाछाया।११३। एवं क्रमप्रवृद्धवा पादद्वयमत्र होयते पश्चात्। पौषादाज्येष्ठान्ताद् द्वयङ्गुरुमेवेति विद्येयम् ।११४। = उयेष्ठ मासकी प्रतिपदा एवं पूर्णमासीको पूर्वहिकालमें बाचनाकी समाप्तिमें एक पाद अर्थात् एक वितस्ति प्रमाण (जाँघोंकी) वह छाया कही गयी है अर्थात् इस समय पूर्वाह्न कालमें बारह अंगुल प्रमाण छात्राके रह जानेपर अध्ययन समाप्त कर देना चाहिए। १९११ वही समय अपराह्न कालमें वाचना प्रारम्भ करनेमें कहा गया है। पूर्वाह्न कालमें बाचना प्रारम्भ करके अपराह कालमें उसे छोड़नेमें सात पाद प्रमाण छाया कही गयी है 1१९२। ज्येष्ठ माससे आगे पौष मास तक प्रत्येक मासमें दो अंगुल प्रभाग वृद्धि होती है, यह कमसे वाचना समाप्त करनेकी छायाका प्रमाण कहा गया है। ११३। इस प्रकार क्रमसे वृद्धि होनेपर पौष मास तक दो पाद हो जाते हैं। पश्चात् पौष माससे उथेष्ठ मास तक दो अंगुल ही क्रमशः कम होते जाते हैं, ऐसा जानना चाहिए ।१९४। (और भी दे.काल/१/१०)।

२. स्वाध्याय योग्य कालमें कुछ अपवाद

भ आ ./मू ./२०६२/१७०४ वायणपरियट्टणपुच्छणाओ मोतूण तथ य धमस्युदि । मुत्तस्स पोरिसीसि वि सरेदि मुत्तस्थमेयमणो ।२०६२। = (सल्खखना गत साधु) वाचना, पृच्छना, परिवर्तना व धर्मांपदेशको छोड़कर सूत्र और अर्थका एकाप्रतासे स्मरण करते हैं। अथवा दिन-का पूर्व, मध्य, अन्त तथा अर्धरात्रि ऐसे चार समयों में तीर्थकरोंको दिव्य ध्वनि खिरती है। ये काल स्वाध्यायके नहीं हैं, परम्तु ऐसे समयों में भी वे अनुप्रेक्षारमक स्वाध्याय करते हैं।

३. स्वाध्यायके अयोग्य द्रव्य क्षेत्र काल

ध्र.१४,१,६४/गा.६६-११४/२६६० यमपटहरवशवणे रुधिरसावेऽज्ञतोऽितचारे च । दातृष्वशुद्धकायेषु भुक्तवि चापि नाध्येयम् ।६६।
तिल पलल-पृथुकलाजाधूपादिक्षिण्धसुरिभगन्धेषु । भुक्तेषु भोजनेषु च
दवाग्निधूमे च नाध्येयम् ।६७। योजनमण्डलमात्रे संन्यासिवधौ
महोपवासे च । आवश्यकिक्षियायौ केशेषु च लुख्यमानेषु ।६८। सप्तदिनान्यध्ययनं प्रतिषिद्धं स्वर्गगते अमणसूरौ । योजनमात्रे दिवसित्ततयं
रविदूरतो दिवसम् ।६६। प्राणिनि च तीबदुःखान्त्रियमाणे स्फुरित चात्तिवेदनया । एकनिवर्त्तनमात्रे तियंशु चरस्मु च न पष्ट्यम् ।१००।
तावनमात्रे स्थावरकायश्यवर्माण प्रवृत्ते च । क्षेत्रासुद्धौ दुर्गन्धे
वातिकुणपे वा ।१०१। विगतार्थागमने वा स्वश्रदीरे शुद्धवृत्तिविरहे
वा । नाध्येयः सिद्धान्तः शिवमुखफलिमच्छता वितना ।१०२।
प्रमिति-व्यन्तरभेरीताडन-तत्पूजासंकटे कर्षणे वा । संमृक्षण-संमाज्जनसमीपचाण्डालवालेषु ।१०६। अग्निजलरुधिरदीपे मासास्थिप्रजनने
तु जीवानाम् । क्षेत्रविशुद्धिनं स्थाध्यथोदितं सर्वभावक्षैः ।१०६। युक्रया · समधीयानो वक्षणकशाद्यमस्पृशन् स्वाङ्गम् । यत्नेनाधीत्य पुनर्यथाश्रुतं बाचनां मुञ्चेत् ।१०८। तपिस द्वादशसंख्ये स्वाध्यायः श्रेष्ठ उच्यते सद्भिः । अस्वाध्यायदिनानि ज्ञेयानि ततोऽत्र विद्वद्भिः ।१०६। पर्वेसु नन्दीश्वरवरमहिमादिवसेषु चोपरागेषु । सूर्याचन्द्रमसोरपि नाघ्येयं जानता ब्रतिना १९१०। अष्टम्यामध्ययनं गुरुशिष्यद्वयवियोगमा-वहति। कलहं तु पौर्णमास्यां करोति विध्नं चतुर्दश्याम् ।१११। कृष्णचतुर्वश्यां यद्यधीयते साधवो ह्यमावस्याम्। विद्योपवास-विधयो विनाशवृत्ति प्रयान्त्यशेषं सर्वे ।११२। मध्याह्ने जिनस्रपं नाश्चवति करोति संध्योच्यधिम् । तुष्यन्तोऽप्यप्रियतां मध्यमरात्रौ समप्यान्ति । ११३। अतितीबदुःखितानां रुदतां सदर्शने समीपे च । स्तनसिंत्नुविद्युदभ्रेष्ट्रतिवृष्ट्या उल्कनिघति ।११४। = द्रव्य-सम पटहका शब्द सुननेपर, अंगसे रक्तसावके होनेपर, अतिचारके होने-पर तथा दाताओं के अशुद्धकाय होते हुए भोजन कर लेनेपर स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।१६। तिलमोदक, चिउड़ा, लाई और पुआ आदि चिक्कण एवं सुगन्धित भोजनोंके खानेपर तथा दावानल-का धुँआ होनेपर अध्ययन नहीं करमा चाहिए।१७। एक योजनके घेरें में संन्यासविधि, महोपवास विधि, आवश्यकक्रिया एवं केशोंका लोंच होनेपर तथा आचार्यका स्वर्गवास होनेपर सात दिन तक अध्ययन करनेका प्रतिषेध है। उक्त घटनाओं के एक योजन मात्रमें होने पर तीन दिन तक तथा अत्यन्त दूर होने पर एक दिन तक अध्ययन नहीं करना चाहिए। १८-११। प्राणीके तीव दुःखसे मरणासञ्च होनेपर या अत्यन्त वेदनासे तड़फड़ानेपर तथा एक निवर्तन (एक जीवा) भात्रमें तिर्यंचोंका संचार होनेपर अध्ययन नहीं करना चाहिए।१००। २. क्षेत्र-उतने मात्र स्थावर काय जीवींके घात रूप कार्यमें प्रवृत्त होनेपर, क्षेत्रकी अशुद्धि होनेपर, दूरसे दुर्गन्ध आनेपर अथवा अत्यन्त सड़ी गन्धके आनेपर, ठीक अर्थ समभमें न आनेपर (!) अथवा अपने शरीरसे शुद्धिसे रहित होनेपर मोक्ष सुखके चाहनेवाले बती पुरुषको सिद्धान्तका अध्ययन नहीं करना चाहिए ।१०१-१०२। व्यन्तरोंके द्वारा भेरी ताड़न करनेपर, उनकी पूजाका संकट आनेपर, कर्षक्रके होनेपर, चाण्डाल बालकोंके समीप भाड़ा-बुहारी करनेपर, अग्नि, जल व रुधिरकी तीवता होनेपर, तथा जीवोंके मांस व हड्डियोंके निकाले जानेपर क्षेत्रको विशुद्धि नहीं होतो ।१०५-१०६। ३, काल--साधु पुरुषोंने बारह प्रकारके तपमें स्वाध्यायको श्रेष्ठ कहा है। इसलिए विद्वान को स्वाध्याय न करनेके दिनोंको जानना चाहिए ।१०६। पर्वदिनों, नन्दीश्वरके श्रेष्ठ महिम दिवसों और सूर्य, चन्द्र ग्रहण होनेपर विद्वात् वतीको अध्ययन नहीं करना चाहिए।११०। अष्टमीमें अध्ययन गुरु और शिष्य दोनोंका वियोग करनेवाला होता है। पूर्णमासीके दिन किया गया अध्ययन कलह और चलुदेशी के दिन किया गया अध्ययन विघ्नको करता है।१०७। यदि साधुजन कृष्ण चतुर्दशी और अमावस्याके दिन अध्ययन करते हैं तो विद्या और उपनास निधि सन निनाशबृत्तिको प्राप्त होते हैं ।१०८। मध्याह्र कालमें किया गया अध्ययन जिन रूपको नष्ट करता है, दोनों सन्ध्या कालोंमें किया गया अध्ययन व्याधिको करता है, तथा मध्यम रात्रिमें किये गये अध्ययनसे अनुरक्त जन भी द्वेषको प्राप्त होते हैं। ११३। अतिशय तीव दुःखसे युक्त और रोते हुए प्राणियोंका देखने या समीपमें होनेपर, मेघोंकी गर्जना व विजलीके चमकनेपर और अतिवृष्टिके साथ उल्कापात होनेपर (अध्ययन नहीं करना चाहिए) ।११४। (और भी दे• काल/१/१०) ।

४. अयोग्य द्रच्यादिमें स्वाध्याय करनेसे हानि

घ. १/४,१,५४/गा, १११/२५१ दव्यादिवदिवकमणं करैदि सुचत्थसिनख-लोहेण। असमाहिमसज्भागं कलहं वाहि वियोगं च ।१११। समूत्र और अर्थकी शिक्षाकं लोभसं किया गया द्रव्यादिका अतिक्रमण असमाधि अर्थात् सम्यक्त्वादिकी विराधना, अस्वाध्याय अर्थात् अलाभ, कलह, व्याधि और वियोगको करता है ।१९६।

५. स्वाध्याय प्रतिष्ठापन व निष्ठापन विधि

- घ है/४,१,४४/गा. १००-१०८/२४६ क्षेत्रं संशोध्य पुनः स्वहस्तपादी विशोध्य शुद्धमनाः। प्राशुकदेशावस्थो गृह्धीयाद्व वाचनां पश्चात् ।१००। युवरया समधीयानो वक्षणकक्षाद्यमस्पृश्चात् स्वाङ्गस्। यत्नेना-धीत्य पुनर्यथाश्चुतं वाचनां मुञ्चेत् ।१००। = क्षेत्रकी शुद्धि करनेके पश्चात अपने हाथ और पैरोंको शुद्ध करके तदनन्तर विशुद्ध मन युक्त होता हुआ प्रायुक्त देशमें स्थित होता हुआ वाचनाको ग्रहण करे।१००। नाजू और कांख आदि अपने अंगका स्पर्शन करता हुआ उचित रोतिसे अध्ययन करे और प्रत्मपूर्वक अध्ययनके पश्चात् शास्त्र विधिसे वाचनाको छोड़ दे।१००।
- दे. कृतिकर्म/४/३ [स्वाध्यायका प्रारम्भ दिन और रात्रिके पूर्वाह, अपराह चारों ही वेलाओं में लघु शुत भक्ति, और आचार्य भक्तिका पाठ करके करना चाहिए, नियत समय तक स्वाध्याय करके लघु श्रुतभक्ति पूर्वक निष्ठापना करनी चाहिए। ये सम पाठ योग्य कृतिकर्म सहित किये जाते हैं।

६. विशेष शास्त्रोंके शारम्भ व समाप्तिपर उपवासादि-का निर्देश

म्. आ - रिन्० छह स समुद्दे से अणुणायणए अ हों ति पंचित । अंगसुदर्खं ध भेणुत्रदेसा विस्न पदिविभागो स । १८०। = बारह अंग चौदह पूर्व बस्तु प्राभृत-प्राभृत इनके पाद विभागके प्रारम्भमें वा समाप्तिमें वा गुरुओं की अवज्ञा होनेपर पाँच-पाँच छपत्रास अथवा प्रायश्चित्त अथवा कासोरसर्ग कहे हैं । १८०।

७. नियमित व अनियमित विधि युक्त पढ़े जाने योग्य

कुछ शास्त्र

मु, आ./२०७-२०१ मुत्तं गणधरकि धिदं तहेव पत्ते यबुद्धिकि थिदं च ।

मुद्देक लिणा कि घदं अभिण्णदसपु वक धिदं च ।२००। तं पिढदु
मस उमाये णो कप्पिदं विरद इिथ्य गमस्स । एत्तो अण्णो गंथो कप्पिद्दं अस उमाए ।२०८। आराहणणि जुत्ती मरणि मस्ती य संगहत्यु दि ओ । पच्च कर्ताणावास यध्म मकहाओ य एरिस ओ ।२०६।

— अंग पूर्व वस्तु प्राभृत रूप सूत्र गणधर कि धित श्रुत्ते वसी कि थित अभिन्न दशपूर्व कि थित होता है ।२००। वे चार प्रकारके सूत्र काल
शुद्धि आदिके बिना संयमियों को तथा आर्थिकाओं को नहीं पढ़ने चाहिए । इनसे अन्य अन्य कालशुद्धि आदिके न होनेपर भी पढ़ने योग्य माने गये हैं ।२००। सम्यग्दर्शनादि चार आराधनाओं का स्वस्य कहनेवाला अन्य, सत्रह प्रकारके मरणको वर्षन करनेवाला प्रन्थ, पच संग्रहग्रन्थ, स्तोत्र अन्य, आहारादिके स्थागका उपदेश करनेवाला ग्रन्थ, सामायिकादि छह आवश्यकों को कहनेवाला ग्रन्थ, महापुरुषों के चारित्रको वर्णन करनेवाला ग्रन्थ, कालशुद्धि आदि न होनेपर भी पढ़ना चाहिए।

स्वानुभव--दे, अनुभवा

स्वानुभव दर्पण — आ. योगेन्दुदेव (ई. श. ६) द्वारा विरचित अध्यातम विषयक प्राकृत गाथा बद्ध प्रनथ है। इसमें १०६ गाथाएँ हैं।

स्वामित्व-१. स्वामित्वका स्वक्षण

स. सि./१/७/२२/३ स्वामित्वमाधिपत्यम् ।

स- सि./१/२६/१३२/४ स्वामी प्रयोक्ता।=स्वामीका अर्थ अधिष्ठाता है (रा.वा./१/७/-/३८/२). (अवधि व मनःपर्यय झानके अर्थमें) स्वामीका अर्थ प्रयोक्ता है (रा.वा./१/२६/-/८६/१)।

२. अष्टकर्म बन्धके स्वामियोंकी ओघ आदेश प्ररूपणा

प्रकृति	विषय .	उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट	भुजगार आदि पद	ज, उ. वृद्धि हानि	असंख्यात भागादि वृद्धि	सामान्य
१, प्रकृति	 					
मूल उत्तर	बन्धक सामान्य					म./१/ <u>३३</u> -२८
२, स्थिति	ਕਿਵ ਮ	İ	l L			
भूत- " उत्तर मूल उत्तर	काल सामान्य ओष आदेश १९ १९ साता असाताके २,२,४ स्थानीय अनुभाग बंधक जीवोंकी अपेक्षा	घ. ११/८७-१३६ म./२/५३ म./२/५६ घ. ११/३१६	म./२/ <u>२७३</u> म./३/ <u>७</u> ९७ म./३/७९७	म./२/३४५ म./३/५३५४	म./२/३६३ म./३/५६	घ. ११/८७
३. अनुभाग	' बन्ध-─		}	ĺ		
मूल	ओघ आदेश	म./४/ ^{कु ५} व	म./४/ <u>२७०</u>	म. ४/ <u>३१२</u>	म./४/ <u>३५६</u>	
उत्तर	*, *,	म./४/ ४०४	$\pi . / 4 / 3 \frac{3}{5} \frac{3}{5}$	म./५/ <u>५६४</u>	म./५/ $\frac{1}{3}$ है $\frac{9}{5}$	
*1 17	बन्धकके भाव कालों में अरुपबहुत्व स्थानों ,, ,,	ध. १२/१३	7 7 8 6 1		ध. १२/२११ ष. स्वं./१२/२५६- २६७/२१४	
४, प्रदेश बन	খ—			i	44.0.44.0	
मूल उत्तर	ओघ आदेश	म./६/ $\frac{28}{98}$ म./६/ $\frac{992}{92}$	म,/६/ <u>१०३</u>	म,/६/ <u>-८०</u>		
५. विशेष-	.	विषय	उत्कृष्ट	अनुत्कृष्ट	जघन्य	अजघन्य
ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय वेदनीय मोहनीय	म् _{र्} ल	प्रदेश संचय """	घ. १०/३१	घ. १०/२१०	घ, १०/२६८ घ, १०/३१२ घ, १०/३१६ घ, १०/३१२	घ, १०/२६६ घ. १०/३१४ घ. १०/३२७ घ. १०/३१४
आयु नाम, गोत्र अन्तराय))))	37 31 33 31 13 37	घ. १०/२२६	घ, १०/२५१	ध. १०/३३० ध. १०/३३० ध. १०/३१२	घ. १०/३३६ घ. १०/३३० घ. १०/३१४

प्रकृति	বিষ্	उत्कृष्ट	अनुरकृष्ट	जघन्य	अजघ≠स
१ ज्ञानावरणी मूल	क्षेत्रया अवगाहना	घ, १९/१४	घ. ११/२३	घ, ११/३३	ध ११/३३
२,४,८ दर्शना., मोहनीय अन्तराय मूल	***	ध. १९/२१	घ. ११/२१	घ, ११/५३	ध-११/६३
३ वेदनीय मूल	***	ध. ११/ २६	ध. ११/ ३३	. 1	31
५-७. आयु, नाम, गोत्र	•1	ध. ११/३ ३	ष∙ ११/३३	19	ļ , ,

३. मोहनीय कर्म सत्त्रके स्वामित्व विषयक औघ भादेश प्ररूपणा — (क. पा./पु. सं./ पु.सं.

सं.	मूल या उत्तर	विषय	उरकृष्टानुदकृष्ट	भुजगारादि पद	ज, उ. वृद्धि हानि	षट् स्थान वृ द्धि -हानि	स्वामित्व सामान्य
₹,	प्रकृति सत्त्व	r					
१ [रागवद्वेष भाव			ļ		१/\$३६६
	सामान्य	कर्मसत्ताव					3/8×3
	मूल	असत्ता सामान्यः कर्म सत्त्व असत्त्व		<u> </u>			२/§३६
!	उत्तर	,,] !		2/8990
	**	परस्पर सङ्गिकर्ष					२/\$१४३
	,,	२८, २४, २३ आदि स्थानोंकी समुस्कीर्तना	२/\$३३०	२ /\$₹₹ €	२/ §충충퉅	२/\$४५ व	२/ § ३ <u>२२</u>
٦,	स्थिति सत्त्	7	•				
?]	म्ल		३/ <u>\$२२</u>	3/5959	३/\$३३०	3/8435]
ર ∣	उत्तर		३/ <u>§४६५</u>	8/890	४/ <u>६९६</u>	8/\$ 3\$0	
₹.	३. अनुभाग सत्त्व —						
ا و ا د	मृ्ल		4/\$ 9 8	4\8 4 3 5	역/§= 등본	4/\$ 993	
२	उत्तर	/	५/ <u>§३३६</u>	५/ <u>६४७४</u>	4/§ 3 95		

४. अष्ट कर्म उदीरणाके स्वामित्व विषयक ओच् आहेश ५. अष्टकर्मीद्य स्वामित्व सम्बन्धी ओघ आहेश प्ररूपणा (ध. १५/पृष्ठ सं.)

(ध. १६/पृष्ठ सं.)

				<u> </u>					1,1,3	4150 m	/				
跅.		मृत व उत्तर	जघन्य उत्कृष्ट	भुजगारा <i>दि</i> पद	जा उ. वृद्धि हानि	स्वामिस्ड सामान्य	भंगों या स्थानोंका स्वामित्व	ਚ	प्रकृति	मूल व उत्तर	उत्कृष्टानु- - स्कृष्ट	भुजगारादि प <u>द</u>	ज. उ. मृद्धि हानि	षट् स्थान बृद्धि-हानि	स्वामित्व सामान्य
₹	. प्रकृति उदीः	[ण]					1	8 3	कृति उद य -	_					
*	अष्टकर्म	मूल	४६-४=	५ १	43	४४-४६	8=	أيأ	अष्टकर्म	मूल					२८५
₹	झाना,दर्शना	उत्तर	⊏१~ ⊏३	33-03	१००	५४-६१		, ,	-10 / 1	उत्तर	<u> </u>	·		!	ર=ફ-
- '	वेदनीय मोह	,,	٠,	٠,,	31		=१-५३	֓֞֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓֓	स्थिति उदय) '] 1	२्८८
ß	आयु, नाम		८६-१६	33-03	१००		८४-्८३	1		ı	200	200	264	367	!
ķ	गोत्र, अन्तरा	l	હ3	21	**		द्द-ह द	8	अष्टकमे	मृल उत्तर	१६०	ર દેઇ : ર દેધ	२ १ २ १ ५	२ <i>६५</i> २ ६५	¦ i
		उत्तर					७३			""		,,,		'\\	,
२	स्थिति उदीर	_! षा —						ą	अनुभाग उद	य —			İ		
₹	1 .	मृत	\$08~					*	अष्टकर्म	मृस उत्तर	२ १ ५ २१५-	२ ६ ५ २ ६ ५-	२ ह५ २ह५-	२१ <i>५</i> २१ <i>५</i> -	
ą	। अनुभाग उदी	 रणा—	११=	 							388	38	२१६	२१€	
*	अष्टकर्म	मृत	१७६-		२३७-			8	: प्रदेश उदय-	!	<u> </u> 				
8	। प्रदेश उदीरण	ι Γ —	\$50		२४६		,		अष्टकर्म	मूल	२१६	२ ६ ई	325	२१६	
१		मूल	२५३-		२६४-			1	অহল-	्र द्वा उत्तर	२८५ २८७-	२८५ ३२६	२ ६ ६ ३३२-	X	
'	•	44	२६१		२७१			1	}		308	\ \ \	338		

प्ररूपणा

६. अन्य विषयोंके स्वामित्व सम्बन्धी ओघ आदेश

प्ररूपणा (ध. १४/५४ सं,)

		11 141 60 11				
	सं प्रकृति	विषय	जघन्योत्कृष्ट पद	भुजगारादि पद	ज. उ. बृद्धि हानि पद	स्वामित्व सामान्य
Ī	र मूलोत्तर प्रकृति-	उपश्मना	}	२८०		२७६-
l	- 4		ļ			२७≂
ł		संक्रमण	→	२८३-२८४	←	,
ŀ	२ मूलोत्तर स्थिति –	उपश्मना	→	२८१		
l		संक्रमण	→	२८३-२५४	← !	
ŀ	३ मूलोत्तर अनुभाग	उपशमना	→	२६२	← -	
Ì		संक्रमण	->	२=३-२८४	←	
١	४ मूलोत्तर पदेश —	उपशमना	→	२८२	←-	
l		संक्रमण	>	२८३-२८४	}	j
	३ मूलोत्तर अनुभाग	संक्रमण उपशमना संक्रमण उपशमना	→	२८३-२४४ २ ^८ २ २ ^८ ३-२८४ २८२	1 1 1	

७. अन्य सम्बन्धित विषय

पाँचों शरीरकी जघन्योत्कृष्ट संवातन परिशातन कृतिके स्वामित्वन

की ओघादेश मरूपणा —(ष. खं/१/सू. ७१/३२१~३४६)।

र. पाँच शरीरोंमें बन्धको प्राप्त वर्गणाओंमें ज. उ. विस्तसीप चर्योके स्वामित्वकी ओघ आदेश मरूपणा ---(घ. १४/५५६-५६२)।

स्वार्थे — स्व. स्तो./मू./३१ स्वास्थ्यं यदात्यन्तिकमेष पंसां स्वार्थी न भोगः परिभङ्गुरात्मा । तुषोऽतुषङ्गात्र च तापशान्तिरितीदमारूथ-द्भगवान् भुपार्श्वः ।३१। = यह जो आत्यन्तिक स्वास्थ्य है वही पुरुषोंका स्वार्थ है, क्षणभंपुर भोग स्वार्थ नहीं है, क्यों कि इन्द्रिय विषय सुख सेवनसे उत्तरोत्तर तृष्णाको वृद्धि होती है तापकी शान्ति नहीं होती। यह स्वार्थ और अस्वार्थका स्वरूप शोभन पाश्वींके धारक भगवात सुवार्श्वने बताया है।३१।

स्या. म /१/१५/२१ तेवां (ज्ञानिनां) हि परार्थस्यैव स्वार्थत्वेनाभिम-तरबात्। 🖚 महारमा सोग दूसरेके स्वार्थको अपना स्वार्थ समभति हैं।

अन. ध्/४/४४ मौनमेव सदा कुर्यादार्यः स्वार्थेकसिद्धये। स्वैकसाध्ये परार्थे वा ब्रुयातस्वाध विरोधतः । ४४। - परोपकारकी अपेक्षा न करके आतम करवाणके लिए निरन्तर भीन धारणा चाहिए। परोपकारका कार्य ऐसा हो जो कि एक अपने द्वारा ही सिद्ध होता हो तो आत्म करुयाणमें विरोध न आवे इस तरह बोलना चाहिए।४४।

स्वार्थे प्रमाण —हे, प्रमाण/१/२।

स्वार्थानुमान—_{दे, अनुमान/१।}

स्वास्तिक - रुचक पर्वतस्थ एक क्ट-दे. लोक/७।

स्वास्थ्ये— १. स्वास्थ्यका लक्षण

स. श./३६ यदा भोहात्प्रजायेत रागद्वेषी तपस्विनः । तदैव भावयेतस्व-स्थमारमानं शाम्यतः क्षणात् ।३६। = जिस समय तपस्वीके मोहके उर्यसे रामद्वेष उरवन्न हो जावें, उस समय तपस्त्री अपने स्वास्थ्य (आतम स्वरूप) की भावना करें, इससे वे क्षणभरमें शान्त हो

भ आ./बि./७/३७/९७ बन्बरहिता निर्जरा स्वास्ट्यं प्रापयति नेतरा बन्धसहभाविनीति। = बन्ध रहित निर्जरा ही स्वास्थ्य अर्थात् मोश प्रदान करती है, परन्तु बन्धशहभाषिनी निर्जरा मुक्तिका कारण नहीं।

सामाधिक पाठ/अभित./२४ न सन्ति बाह्याः मम केचनार्थाः भवामि तेषां न कदाचनाहम् । इत्थं विनिश्चिन्त्य विमुच्य बाह्याः स्वस्थं तदा त्वं भव द्व मुक्त्यै ।२४। =कुछ भी बाह्य पदार्थ मेरे नहीं है, और मैं भी उनका कभो नहीं हूँ। ऐसा सोचकर तथा समस्त बाह्यको छोड़कर, हे भद्र ! तू मुक्तिके लिए स्वस्थ हो जा।

दे. स्वार्थ में सं् स्तो. आत्मोपयोग ही स्वास्थ्य है।

पं. वि./४/६४ साम्यं स्वास्थ्यं समाधिशच योगश्चेतो निरोधनम् । शुद्धो-पयोग इत्येते भवत्येकार्थवाचकाः (६४।=साम्य, स्वास्थ्य, समाधि, योग, चित्तनिरोध, और शुद्धोपयोग एकार्थवाची हैं।

\star अन्य सम्बन्धित विषय

१. परम स्वास्थ्यके अपर नाम

-दै, मोक्षमाग/२/४।

२. स्वास्थ्यनाधक पदार्थ अभक्ष्य हैं।

--दे, मध्याभक्ष्य/१/३।

स्वाह।—भ् आ,/बि./१७३१/१४६६/४ स्वाहाकारान्ता तद्रहित-मन्त्रस्य। = जिसके अन्तर्मे स्वाहाकार है, वह विद्या है। मन्त्र स्वाहाकारसे रहित होता है।

स्वोदय बंधी प्रकृतियाँ --- दे. उदय/७/२।

स्वोपकार—दे. व्यकार ।

[衰]

हैंस-१, प. प्र./टी./२/१७० अनन्तज्ञान।दिनिर्मलगुणयोगेन हंस इव हंस परमात्मा । - अनन्तज्ञानादि निर्मल गुण सहित हंसके समान उज्ज्वल परमात्मा हंस हैं। २. परमहंसके अपर नाम-दे. मोक्षमार्ग/२/५ ।

हंसगर्भ — विजयार्धकी उत्तर श्रेणीका नगर –दे, विद्याधर ।

हड्डी-दे, अस्य।

हर्त गिणतकी गुणकार विधिमें गुण्य राशिको गुणकार करि हत किया गया कहलाता है।—दे. गणित/II/१/४।

हतसमुपतिक- दे, अनुभाग/१/७।

हत्या--१. दे. हिंसा, २. आश्महत्या दे, मरण/४।

हिनन---गणित विधिमें हो राशियोंको परस्पर पुणा करना/दे. गणिस/11/१/५ ।

हनुमंत चरित्र-- व रायमण्त (ई. १६७६ - १६६३) कृत भाषा प्रन्थ ।

हनुमान् ---१, मानुषोत्तरपर्वतस्थ वज्रकृटका स्वामी भवनवासी सुपर्णकुमार देव – दे. लोक ६/१०। २. प. पु./सर्ग/श्लोक पूर्वभव सं. ६ में दमयन्त, पाँचवें में स्वर्गमें देव (१७/१४२-१४८) चौथेमें सिहचन्द्र नामक राजपुत्र (१७/१५१) तीसरेमें स्वर्गमें देव (१७/१५२) दूसरेमें सिंहवाहन राजपुत्र (१७/१५४) और पूर्वभवमें लान्तव स्वर्गमें देव था (१७/१६२) वर्त भान भवमें पवनं जयका पुत्र था (१७/१६४,३०७)। क्यों कि विमानमें से पाषाण शिलापर गिरनेपर इसने पश्यरको चूर्ण-चूणं कर दिया इसलिए इनका नाम श्री हैस भी था। (१७/४८२) रामायण युद्धमें रामकी बहुत सहायता की । अन्तमें मेरुकी बन्दनाको जाते समय उक्कापातमे विरक्त होकर दीक्षा ले लो (११२/७६); (१९३/३२); तथा क्रमसे मोक्ष प्राप्त किया (१९१/४४-४४) ।

हनुरुहद्वीप-हनुमाध्की माता अंजनाके मामा प्रतिसूर्यका राज्य। (प. पु./१७/३४६) ।

हरण-भरत क्षेत्रकी एक नहीं-वै. मनुष्य/४।

हिरि-- १. चम्पापुरके राजा आर्यका पुत्र था । इसीके नामपर हरिवंशकी उत्पत्ति हुई (ह. पु./१६/६७-६८)—दे, इतिहास१०/१८ । निषध पर्वतस्थ एक कूट व उसका स्वामी देव - दे. लोक/६/४;

.३. विद्युत्प्रभ गजदन्तका एक कूट व उसका रक्षक देव— दे. लीकश/४;

४. मादयवात्तपवतस्थ एक कूट व उसकी स्वामिनी देवी ! —दे लोक/६/४।

हरिकांत-१, हरि क्षेत्रमें स्थित एक कुण्ड जिसमें से हरिकान्ता नरी निकतती है। -दे, लोकश/१०। २. हैमवत पर्वतस्थ एक कूट व उसका स्वामी देव-दे. लोक/१/४।

भा० ४-६७

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

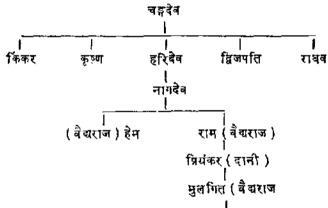
हरिकांता —हिर क्षेत्रकी एक प्रसिद्ध नदी—दे. लोक/३/१०।

हिरिक्षेत्र—रा. वा./३/१०/८/१७२/२७ हरिः सिंहस्तस्य शुक्तस्तप-रिणामित्वात् तद्वर्णमनुष्याद्य षितत्वाद्धरिवर्षः इत्याख्यायते । —हिरि अर्थात् सिंहके समान शुक्त रूपवाले मनुष्य इसमें रहते हैं अतः यह हरिवर्ष कहलाता है। (यह अदाई द्वीपोमें प्रसिद्ध तीसरा क्षेत्र है)। २. इस क्षेत्रका अवस्थान व विस्तारादि —दे. लोक/३/३।३. इस क्षेत्रमें काल वर्तान आदि सम्बन्धी विशेषताएँ — दे, काल/३/१६।

हिरिचन्द्र—नोमक वंशके कायस्थ आर्द्रदेव नामक श्रेष्ठी के पुत्र आचारशास्त्र के वैत्ता जैन कि गृहस्थ । कृति—धर्मशर्माध्युद्धय, जौवन्धर चम्पू । समय – ई. श. १० का मध्य । (ती./४/१४) । २. 'अणस्थमियकहा' के रचिता एक अपश्रंश कवि गृहस्थ । समय – वि. श. १४ का मध्य । (ती./४/२२२) ।

हरित — १. हरिक्षेत्रकी प्रसिद्ध नदी—दे. लोक/३/११। २. हरिक्षेत्रमें स्थित एक कुण्ड जिसमें-से कि हरित नदी निकलती है। —दे लोक/३/१०; ३. निषध पर्वतस्थ एक झूट—दे. लोक/६/४; ४. हरित कुण्डन हरित कुण्डनी स्वामिनी देवी—दे, लोक/३/१०।

हरिदेव-चगदेव की सप्तम पीढ़ी में उत्पन्न, मयणपराजय चरिल के स्वायता एक सङ्गृहस्य अपभ्रंश कवि ।



समय -ई, श.१४का अस्तिम चरण । नागदेन (ती./४/२१८)।

हरिद्वती --- भरत क्षेत्र बरुण पर्वतस्थ एक नदी-दे. मनुष्य/४।

हिरिभेद्रे--र् महातार्किक तथा दार्शनिक प्रसिद्ध स्वेताम्बरादार्थ। कृतियें--पड्दर्शन समुच्चय, जंबूदीन संघायणी, लीला विस्तार टीका। समय--वि. १८१ में स्वर्गवास । अतः ई, ४८०-१२८। (द. सा. प्र. २८/प्रेमीजी) । २. याकिनीसृतु के नाम से प्रसिद्ध स्वेताम्बरावार्य। कृति--तत्त्वार्थाधिगम भाष्य की स्वोपक्क टीका इत्यादि सेकड़ों ग्रन्थ। समय--वि. श. ८-१। (जै./२/३००, ३७१)। ३. मानवदेव उपाध्याय के शिष्य स्वेताम्बरावार्य। समय--वि. १९७२। (जै./१/४३२)।

हरिमश्रु - एक क्रियावादी - दे. क्रियावाद।

हिरियंश सुमुख राजाने बीरक नामक श्रेष्ठीकी स्त्रीका हरणकर उससे भोग किया। ये दोनों फिर आहार दानके प्रभावसे हरिक्षेत्रमें उत्पन्न हुए। पूर्व वैरके कारण वीरकने देव बनकर इसको (सुमुखके जीवको) भरत क्षेत्रमें रख दिया। चूँकि यह हरिक्षेत्रसे आया था इसलिए इसके वंशका नाम हरिवश हुआ। (प. पु./२१/२-७२; ४८-१४); (ह. पु./११/१८)। —दे० इतिहास /१०/१८। हिरिवंश पुराण पुन्नाटसंघीय आ. जिनसेन (ई. ७८३) कृत है इ सर्ग तथा १०,००० श्लोक संस्कृत काव्य! (ती./३/४)। २. किंव धवल (वि. श. ११-१२) कृत अपभंश काव्य! (ती./४/११६)। ३. ब्र. जिनदास (ई. १३६३-१४६८) कृत ४० सर्ग प्रमाण संस्कृत काव्य! (ती./३/२४०)। ४. किंव रह्यु (वि. १४४७-१४३६) कृत अपभंश काव्य (दे. रह्यु)। ६. सकलकीति (ई. १४०६-१४४२) कृत संस्कृत काव्य। (दे. सकलकीति)।

हिरिवर्मा — अंगदेशके चम्पापुर नगरका राजा था। दीक्षा घारण कर १९ अंगोंका अध्ययन किया। दर्शनविशुद्धि आदि भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थं कर प्रकृतिका बन्ध किया। अन्तर्मे समाधि मरणकर प्राणत स्वर्गमें इन्द्र हुआ। (म. पु/६७/२-१५) यह मुनिसुवत नाथ भगवात्का पूर्वका दूसरा भव है।—दे मुनिसुवत।

हरिवर्ष — १. हिमनाच् पर्वतस्थ एक क्ट-दे. लोक १/४२. हिरात वस्तीसे तात्पर्य है जिसका पर्वत महामेरु शु खलाके अन्तर्गत निषध (हिन्दुकुश) है जो मेरु तक पहुँच जाता है। अवेस्तामें इसका नाम 'हरिवरजो' प्रसिद्ध है। (ज. प./प. १३६)।

हिरिषेण — १. साकेत नगरीके स्वामी वज्रसेनका पुत्र था। दीक्षा धारणकर आयुके अन्तमें महासुक्त स्वर्गमें देव हुआ। (म. पु./७४/२३२-२३४) यह वर्धमान भगवान्का पूर्वका सातवाँ भव है। — दे. वर्धमान २, पूर्वभव सं. २. में अनन्तनाथ भगवान्के तीथं में एक बड़ा राजा था। पूर्व भवमें स्वर्गमें देव था। (म. पु./६७/६९) वर्तमान भवमें दसवाँ चक्रवर्ती था। विशेष— दे, शलाकापुरुष/२: ३. काठियावाडके वर्धमानपुर नगरवासी पुन्नाटसंधी आचार्य। कृति वृहत्कथा कोष। समय — ग्रन्थ रचनाकाल शक ५५३ (ई. ६३१)। (ती./३/६४)। ४. चित्तीड़ वासी अपभंश किन। कृति—धम्मपरिक्षा। समय — ग्रन्थ रचनाकाल वि. १०४४। (ती./४/१२०)।

हर्षे वर्धन-१, स्थानेश्वरके राजा थे। समय-वि, ६६७-७०७ (ई. ६१०-६६०); (क्षत्र चूड़ामणि प्र./प्रेमी)। २, एक चीनी यात्री था। भारतमें ई. ७०० में आया था। समय-ई, ७००।३० भीज वंशीराजा मुञ्ज के पिता। समय-ई. १४०-११४ (दे. इतिहास/११)।

हिस्ति—१. एक नक्षत्र—दे. नक्षत्र; २. क्षेत्रका प्रभाव विशेष । अपर नाम π हाथ —दे. गणित/I/१/३।

हस्तकर्म — भ. आ./बि.६१३/प्१२/६ छेदनं भेदनं, पेषणमिष्ठातो, व्यवनं, खननं, मन्धनं, स्फाटनं, प्रक्षालनं, रञ्जनं, वेष्टनं, प्रन्थनं, पूरणं, समुदायकरणं, लेपनं, क्षेपणं आलेखनिमस्याद्यि संक्षिष्ट हस्तकर्म। = छेदन करना, भेदन करना, पीसना, आधात करना, चुभना, खोदना, बाँधना, फाड़ना, धोना, रँगाना, वेष्टन करना, पूँथना, पूर्णं करना, एकत्र करना, लेपन करना, फेंकना, चित्र बनाना आदि कार्यको संवित्तष्ट हस्तकर्म कहते हैं।

हस्तनागपुर-कुरुजांगन देशका एक नगर-दे. मनुष्य/४।

हस्तिनायक — विजयार्धकी उत्तर श्रेणीका एक नगर—दे. विद्याधर।

हस्तप्रहेलित-कालका एक प्रमाण विशेष-दे, गणित/।/१/४।

हस्तिपानी - भरत क्षेत्रस्थ आर्य खण्डकी एक नदी-दे, मनुष्य/४।

हस्तिमल्लं — सेनसंघी आचार्य एक संस्कृत नाटककार। कृति — निकान्त कौख, मॅथिलो कन्याणम्, अञ्जना पवनञ्जय, आदि पुराण, उदयनराज आदि। समय—वि.१३४७ (कर्नाटक कवि चरिते)। ई. ११६१-१९८५ (ती./३/२८०)।

हाथ - क्षेत्रका प्रमाण विशेष । अपर नाम हस्त - दे. गणित/I/१ ।

9

₹

₹

ሄ

3

۶

ą

₹

ø

ሪ

8

₹

₹

हानि — १. दो गुणहानि, ड्योढ गुणहानि – दे, मणित/11/६। षट्गुण हानि वृद्धि – दे, षद्।

हार-१, शास्त्रार्थमें हार जीत सम्बन्धी-दे. न्याय/२। २, गणित-की भागहार विधिमें जिस राशिसे भाग दिया जाता है सी हार है।-दे, गणित/II/१/६।

हारित-एक क्रियावादी-दे, क्रियावादी।

हारिद्र-सीधर्म स्वर्गका २२ वाँ पटल व इन्द्रक-दे. स्वर्ग/४/३।

हारी-एक विद्या-दे. विद्या।

हार्य गिणतको भागाहार विधिमें जिस राशिका भाग किया जाये सो हार्य है। - से, गणित/ 11/१/६।

हाव-- मुख विकार-दे. विश्रम ।

हास्तिन — विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीका एक नगर-दे, विद्याधर ।

हास्तिविजय - विजयार्धकी उत्तर श्रेणीका नगर।-दे. विद्याधर।

हास्य - १. हास्य प्रकृतिका उक्षण

स. सि./८/१/१८१/१२ यस्योदयाद्धास्याविभावस्तद्धास्यम्। = जिसके उदयसे हेंसी आती है वह हास्य कर्म है। (रा. वा./८/१/४/५७४/१७); (गो, क./जो, प्र./३१/२७)।

ध. ६/१.६-२४/४७/४ हसनं हासः । जस्स कम्मक्लंधस्स उदएण हस्स-णिमित्तो जीवस्स रागो उपपज्जह, तस्स कम्मक्लंधस्स हास्सी ति सण्णा, कारणे कज्जुवयारादो । = हँसनेको हास्य कहते हैं । जिस कर्म-स्कन्धके उदयसे जीवके हास्य निमित्तक राग उत्पन्न होता है उस कर्म-स्कन्धकी कारणमें कार्यके उपचारसे हास्य संझा है।

ध. १३/५.६.६६/३६१/८ जस्स कम्मस्स उदएण अणेयिवही हासो समु-प्पज्जिदि तां कम्मं हस्सं णाम । = जिस कर्मके उदयसे अनेक प्रकारका परिहास उत्पन्न होता है वह हास्य कर्म है।

* अन्य सम्बन्धित विषय

१. हास्य राग है।

– दे, कषाय/४।

२. हास्य प्रकृतिकी बन्ध उदय सत्त्व प्ररूपणा ।—दे. वह वह माम ।

३. हास्य प्रकृतिके बन्ध योग्य परिणाम । -दे, मोहनीय/३/६।

हाहांग- कालका प्रमाण विशेष । - दे. मणित/1/१/४।

हारा - १. गन्धर्व नामा व्यन्तर जातिका भेद - दे. गन्धर्व। २. कालका एक प्रमाण विशेष। - दे. गणित//१/४।

हिंगुल---मध्य लोकके अन्तका ग्यारहवाँ सागर व द्वीप ।

—दे. सोक/k/१।

हिंसा — स्व व परके अन्तरंग व बाह्य प्राणीका हनन करना हिंसा है। जहाँ रागादि तो स्व हिंसा है और षट् काय जीवोंको मारना या कष्ट देना पर हिंसा है। पर हिंसा भी स्व हिंसा पूर्वक होनेके कारण परमार्थ से स्व हिंसा हो है। पर निचली भूमिकाकी प्रत्येक प्रवृत्ति में पर हिंसा न करनेका विवेक रखना भी अत्यन्त आवश्यक है।

हिंसाके भेद व लक्षण

१ हिसा सामान्यके भेद ।

२ | पारितापि आदि हिंसा निर्देश ।

🔾 संकल्पी आदि हिसा निर्देश।

४ असत्यादि सर्व अविरति भाव हिसा रूप है।

∗ | आखेट ।

🗕 दे. आखेट ।

🕶 । सावद्य योग ।

-- दे. साबद्य ।

वर्मबन्धके प्रत्ययोंके रूपमें हिसा। —दे, प्रत्यय/१/२।

🛂 | एक समयमें छह कायकी हिसा सम्भव है।

६ | हिसा अत्यन्त निन्दा है।

७ | हिंसकके तपादिक सर्व निरर्थक हैं।

निश्चय हिंसाकी प्रधानता

१ स्व हिंसा ही हिंसा है।

२ अशुद्धोपयोग व कवाय ही हिसा है ।

निश्चय हिंसा ही प्रधान है व्यवहार नहीं।

मैं जीवोंको मारता हूँ ऐसा कहने वाला अशानी है।

व्यवहार हिंसाकी कथंचित् गौणता व सुरूयता

कारणवश या निष्कारण भी जीवोंका घात हिंसा है।

वेद प्रणीत हिंसा भी हिंसा है।

खिलौने तोड़ना भी हिंसा है।

हिंसक आदि जीवोंकी हिंसा भी योग्य नहीं।

५ पर्मार्थं भी हिंसा करनी योग्य नहीं।

६ छोटे या बड़े किसीकी भी हिंसा योग्य नहीं।

सक्ष्म भी त्रस जीवोंका वथ हिंसा है। -दे. मांस/४।

निगोद जीवको तीव्र वेदना नहीं होती ।

—दे. वेदना समुद्धात/३।

संकल्पी हिंसाका निषेध।

विरोधी हिसाकी कथंचित् आज्ञा।

९ | बाह्य हिसा, हिंसा नहीं।

निश्चय व्यवहार हिंसा समन्वय

१ निरुवय हिंसाको हिंसा कहनेका कारण।

निश्चय हिसाको हिसा कहनेका प्रयोजन । 🕛

व्यवहार हिंसाको हिसा कहनेका प्रयोजन।

४ जीवसे प्राण भिन्न है, उनके वियोगसे हिंसा क्यों।

व्यवहार हिसाको न माने तो जोवोंको भरमवत्
 मरु दिया जायेगा।
 नदे. विभाव/४/६।

हिंसा व्यवहार मात्रसे हैं निश्चयसे तो नहीं।

६ मिन्न प्राणोंके बातसे न दुःख है न हिंसा ।

निश्चय व्यवहार हिंसा समन्वयः — दे. हिंसा/४/१।

१. हिंसाके भेद व लक्षण

१. हिंसा सामान्यके भेद

१. निरुचय

- क, पा. १/१,१/६८३/ गा. ४२/१०२ तेसि (रामादीणं) चे उप्पत्ती हिंसेति जिणेहि णिद्दिहा १४२। —रामादिककी उत्पत्ति ही हिंसा है, ऐसा जिनदेवने कहा है। (स. सि./७/२२/३६३ पर उद्घष्टत) (भ. आ/वि./८०१-८०२) (पु. सि. उ./४४); (अन. घ./४/२६/३०८)
- प्र. सा./त. प्र./२१६,२१७ अशुद्रोपयोगो हि छेदः...स एव च हिंसा ।२१६। अशुद्रोपयोगो अन्तरङ्गछेदः।२१७। = बास्तवमें अशुद्रोपयोग छेद है और वही हिंसा है।२१६। अशुद्रोपयोग अन्तरंग छेद है।
- प, प्र./टी./२/१२५ रागाद्युत्पत्तिस्तु निश्चश्रो हिंसा । ≔रागादिकी उत्पत्ति वह निश्चय हिंसा है।
- अन. ध./४/२६ परं जिनागमस्येदं रहस्यमत्रधार्यताम् । हिंसा रागाखुरप-त्तिरहिंसा तरनुद्भवः ।२६। = जिनागमके इस परमोरकृष्ट रहस्यको हो हृदयमें धारण करो कि रागादि परिणामोंका प्रादुर्भाव होना हिंसा है...।२६।
- पं. ध./उ./७५५ अथिदागादयो हिंसा चास्त्यधर्मो वतच्युतिः १७५४। = रागादिका नाम ही हिंसा, अधर्म और अवत है 1001

२. व्यवहार

- त. सू./७/१३ प्रमत्तयोगात्त्राणव्यवरोपणं हिंसा ।१३। =प्रमाद योगसे किसी जीवके प्राणीका व्यवरोपण करना अर्थाद पीड़ा देना हिंसा है ।
- प्र, सा./त. प्र./३/१७ प्राणव्यपरोपी हि बहिरङ्गव्छोदः। = प्राणींकर व्यपरोपण बहिर ग छेद है।
- पु. सि. उ./४३ यरललु योगात्प्राणानां द्रव्यभावरूपाणाम्। व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति साहिंसा १४३। व्यक्षाय रूप परिणमा जो मन वचन काय योग तिसके हेतु है द्रव्य भाव स्वरूप दो प्रकार प्राणों-का पोड़ना या व।त करना, निश्चय करि वही हिंसा है।

२. पारितापिकी आदि हिंसा निर्देश

भ. था./मू./८०० पादोसिय अधिकरणीय कायिय परिदावणादिवादाए। एदे पंचपंथोगा किरियाओ होति हिंसाओ। = द्वेषिकी, कायिकी, प्राणघातिकी, पारितापकी, क्रियाधिकरणी ऐसे पाँच प्रकारकी क्रियाओंको हिंसा क्रिया कहते हैं १८०७।

३. संकल्बी आदि हिंसा निर्देश

नोटः — [हिंसा चार प्रकारकी होती है — संकल्पी, उद्योगी, आरम्भी व विरोधी। विना किसी उद्देश्यके संकल्प प्रमादसे की जानेवाली हिंसा संकल्पी है। भोजन आदि बनानेमें, घरकी सफाई आदि करने रूप धरेलू कार्यों में होनेवाली हिंसा आरम्भी है। अर्थ कमाने रूप व्यापार धन्धेमें होनेवाली हिंसा उद्योगी हैं। तथा अपनी, अपने आश्रितों की अथवा अपने देशकी रक्षा के लिए युद्धादिमें की जानेवाली हिंसा विरोधी हैं।

४. असत्यादि सर्वे अविरति भाव हिंसा रूप हैं

पु. सि. उ./श्लोक सं. सर्व स्मित्रप्य स्मिन्त्रमत्त्रयोगै कहेतुकथनं यत्। अनृतव चनेऽपि तस्मान्नियतं हिंसा समन्तरति १६६। अवतीर्णस्य ग्रहणं परिप्रहस्य प्रमत्त्रयोगाचात् । तत्त्रत्येयं स्तेयं सेव च हिंसा वधस्य हेतुत्वात् ।१०२। अर्था नाम य एते प्राणा एते बहिश्चराः पुंसास् । हरति स तस्य प्राणान् यो यस्य जनो हरत्यर्थान् ।१०३। यक्षेदरागयोगान्मै युनमभिषीयते तदब्हा । अवत्रति तत्र हिंसा वधस्य

सर्वत्र सहभावात् ।१०७। हिस्यन्ते तिसनाल्यां तप्रायसि विनिष्ठिते तिला यद्वत् । बहवो जीवा योनौ हिस्यन्ते मैथुने तद्वत् ।१०८। हिसा पर्यायत्वात्सिद्धाः हिंसान्तरङ्गसङ्गेषु । बहिरङ्गेषु तु नियतं प्रयातु मुर्छेन हिंसात्वम् ।१११। रात्री भुञ्जानानां यस्मादनिवारिता भवति हिंसा। हिंसा विरतैस्तस्मात्त्यक्तव्या रात्रिभुक्तिरपि ।१२६। 🗝 १, क्यों कि इस सम्पूर्ण असत्य बचनमें एक प्रमाद योग ही कारण है इसलिए असत्य बचन बोलने वालेमें अवश्य ही हिंसा होती है, क्योंकि हिंसाका कारण एक प्रमाद ही है। (अन. ध./४/३६) २. प्रमादके योगसे बिना दिये हुए स्वर्ण वस्त्रादिक परिग्रहका ग्रहण करना चोरी कहते हैं वही चोरी हिंसा है, क्योंकि वह प्राणघातका कारण है। १०२। ये जितने भी स्वर्ण आदि पदार्थ है वे सब पुरुषके भाह्य प्राण हैं। इसलिए जो जिसके इन पदार्थीका हरण करता है यह उसके प्राणोंको हो हरता है ।१०३। (ज्ञा,/१०/३) (अन. ध./४/४९); २. स्त्री पुरुष आदि वेद भावके परिणमन रूप रागसे सहित योगको मैथुन कहते हैं। वही अबहा है। तिस विषै हिंसा अवसार धरे है. क्योंकि कुशील करने तथा करानेवालेके सर्व हिंसाका सद्भाव है।१०७। जैसे तिलोसे भरी हुई नलीमें तपे हुए लोहेकी सलाई डालनेपर उस मलीके समस्त तिल जल जाते हैं; इसी प्रकार स्त्री अंगमें पुरुषके अंगसे मेथून करनेपर योनिगत समस्त जीव तत्काल मर जाते हैं। १०=। ४. अन्तरंग चौदह प्रकार परिग्रहके सभी भेद हिसाके पर्यायवाची होनेके कारण हिसा रूप ही सिद्ध है। और बहिरंग परिप्रहिंबिषे मुच्छा या ममत्व भाव ही निश्चयसे हिंसापनेको प्राप्त होता है ।११६। ५. रात्रिमें भोजन ,करनेवालोंको क्योंकि अनिवारित रूपसे हिसा होती है, इसलिए अहिंसा वतधारी जनोंको रात्रि भोजन त्याग अवश्य करना चाहिए।१२६।

५. एक समयमें छह कायकी हिंसा सम्मव है

गो. क./भाषा/७१४/१६६/४ छह कायकी हिंसा विषे एक जीवके एके काल एक कायकी हिंसा होय, वा दो कायकी हिंसा होय, वा तीनकी वा चारकी, वा पाँचकी वा छहकी हिंसा होय।

६. हिंसा अत्यन्त निन्दा है

शा /=/१६,६० हिंसैव दुर्गतेद्वरिं हिंसैव दुरितार्णवः। हिंसैव नरकं धोरं हिंसैव गहनं तमः १९६। यहिंकचित्सं सारे शरीरिणां दुःखशोक-भयवीजम्। दीर्भाग्यादि-समस्तं तिद्धसासंभवं श्लेमम् १६८। — हिंसा ही दुर्गतिका द्वार है, पापका समुद्र है, तथा हिंसा ही घोर नरक और महान्धकार है।१६। संसारमें जीवोंके जो कुछ दुःख-शोक व भयका बीज रूप कर्म है तथा दीर्भाग्यादिक हैं वे समस्त एकमात्र हिंसासे उत्पन्न हुए जानो १६८।

७. हिंसकके तपादिक सब निरर्थक हैं

ज्ञा./८/२० निःस्पृहत्वं महत्त्वं च नैराश्यं दुष्करं तपः। कायवलेशश्व दानं च हिंसकानामपार्थकम् ।२०। ⇒जो हिंसक पुरुष हैं उनकी निस्पृष्टता, महत्ता, आशारहितता, दुष्कर तप करना, कायवलेश और दान करना आदि समस्त धर्म कार्यव्यर्थ हैं अर्थात निष्फल हैं।२०।

२. निश्चय हिंसाकी प्रधानता

१. स्वहिंसा ही हिंसा है

भ . आ./मू. ८०३, १३६३ अत्ता चेत्र अहिंसा अत्ता हिंसत्ति णिच्छओ समये। जो होदि अप्यमत्तो अहिंसगो हिंसगो इंदरो नि०३। तथ रोसेण सयं पुटनमेव उठभदि हु कत्तकलेणेव। अण्णस्स पुणो दुनस्वं

- करिज्ज रहो ण य करिज्जा। १३६३। आत्मा हिंसा है और आत्मा ही अहिंसा है ऐसा जिनानमों निश्चय किया है। अप्रमत्तको अहिं-सक कहते हैं और प्रमत्तको हिंसक १५०३। तम्र कोहेंके समान क्रोधो मनुष्य प्रथम स्वयं सन्तम होता है, तदनन्तर वह अन्य पुरुषको सन्तम कर सकेगा अथवा नहीं भो, नियमपूर्वक दु'खी करना इसके हाथमें नहीं। १३६३।
- स्, सि./७/१३/३४२ पर उद्धृत स्वयमेत्रातमानं हिनस्तातमा प्रमादवान् । पूर्वं प्राण्यन्तराणां तु पश्चातस्याद्वा न वा वधः । = प्रमादसे युक्त आत्मा पहिले स्वयं अपने धारा ही अपना घात करता है इसके बाद दूसरे प्राणियोंका वध होवे या मत हो । (रा. वा./ ७/१३/१२/५४१ पर उद्दृष्त) ।
- ध. १४/४,६,६३/गा.६/६० वियोजयित चासुभिन च वधेन संयुज्यते शिवं च न परोपमदंपरुषस्मृतेविद्यते । वधोपनयमभ्युपैति च पराननिध्नन्ति त्वयायमतिदुर्गमः प्रश्नमहेतुरुद्योतितः ।६। =कोई प्राणी दूसरोंको प्राणोंसे वियुक्त करता है फिर भी वह बन्धसे संयुक्त नहीं होता। तथा परोपपातसे जिसकी स्मृति कठोर हो गयी है, अर्थात् जो परोपघातका विचार करता है उसका कल्याण नहीं होता। तथा कोई दूसरे जीवोंको नहीं मारता भी हिंसकपनेको प्राप्त होता है। इस प्रकार है जिन! तुमने यह अति गहन प्रश्नमका हेतु प्रकाशित किया है।
- पु, सि, उ./४६-४७ व्युत्थानावस्थायां रागादीनां वशप्रवृत्तायाम्। वियतां जीवो मा वा धावत्यप्रे धुवं हिंसा १४६। यस्मात्सकवायः सन् हन्त्यात्मा प्रथममात्मनात्मानम्। पश्चाज्जायेत न वा हिंसा प्राण्यन्तराणां तु १४७। — रागादि प्रमाद भावोंके वशसे उठने-बैठने आदि क्रियाओं में, जीव मरो अथवा न मरो निश्चयसे हिंसा है ही १४६। वयों कि कथाय युक्त अत्मा पहिले अपने द्वारा अपनेको ही धाततां है पीछे अन्य जीवोंका घात हो अथवा न हो १४७।
- प्र.सा./त. प्र./१४६ कराचित्परस्य द्रव्यप्राणानावाध्य कदाचिदनावाध्य स्वस्य भावप्राणानुपरक्तत्वेन वाधमानो ज्ञानावरणादीनि कर्माण व्याति। चकदाचित् पर द्रव्यके प्राणींको बाधा करके और कराचित् वाधा नहीं करके अपने भाव प्राणींको तो उपरक्तपनेके द्वारा बाधा करता हुआ ज्ञानावरणादि कर्मींको (राग-द्वेषादिके कारण) बाँधता ही है।
- प्र. सा./ता वृ./१४६/२११/१० यथा कोऽिष तम्र त्रा हिपण्डेन परं हन्तुकामः सम् पूर्व तावदात्मानमेव हिन्त परचादन्यवाते नियमो नास्ति, तथायमज्ञानी जीवोऽिष ... मोहादिपरिणामेन परिणतः सन् पूर्व ...
 स्त्रकायसुद्धप्राणं हिन्ति पश्चादुत्तरकाले परप्राणवाते नियमो नास्ति ।
 जिस प्रकार कोई व्यक्ति तम्न लोहेके गोले द्वारा किसीको मारनेकी कामना रखता हुआ पहले तो अपनेको ही मारता (हाथ जलाता) है, पीछे अन्यका वात होने भी अथवा न भी होने, कोई नियम नहीं। उसी प्रकार यह अज्ञानी जीव भी मोहादि परिणामोंसे परिणत होकर पहले तो स्वकीय शुद्ध प्राणींका वात करता है, पश्चाद उत्तर कालमें अन्यके प्राण वातका नियम नहीं।
- अन. ध./४/२४ प्रमत्तो हि हिनस्ति स्वं प्रागातमातङ्गतायनात्। परो नु चित्रतां मा वा रागाचा हारयोऽङ्गिनः ।२४। च्हुष्कर्मोका संचय तथा व्याकुतता रूप दुःखको उत्पन्न करनेके कारण प्रमत्त जीव पहले तो अपना घात हो कर लेता है, दूसरा जीव मरो वा मत मरो। क्योंकि जीवोंके वास्तिकि वैरो तो कषाय ही हैन कि दूसरोंका प्राणवध।

२. अजुद्धोपयोग व कषाय ही हिंसा है

स. सा./आ./२६२ की उत्थानिका-हिंसाध्यवसाय एव हिंसा। = अध्यवसाय ही बन्धका कारण है अतः यह हिंसाका अध्यवसाय ही हिंसा है।

- प्र.सा./त. प्र./२१६ अशुद्धोषयोगो हि छेदः शुद्धोषयोगरूपस्य धामण्यस्य छेदनात्, तस्य हिसनात् सः एव च हिसा। = शुद्धोषयोग रूप धामण्यका छेद करनेके कारण अशुद्धोपयोग ही छेद है और उस धामण्यका नाश करनेके कारण वह ही हिसा है। (प्र.सा./त.प्र./ ३१८); (यो. सा. अ./ ५/२८); (प्र. सि. ज./४४)।
- पु. सि. ज./६४ अभिमानभयजुगुन्साहास्यरित बोककामकोपाद्याः । हिंसायाः पर्याया सर्वेऽपि । अअभिमान, भय, जुगुन्सा, हास्य, रित, शोक, काम, क्रोध आदि हिंसाकी पर्यायें हैं।
- प्र. सा./ता.वृ./२१%/प्रक्षेपक/२/२१२/२१ सूक्ष्मजन्तुघातेऽपि यावतांशेन स्वस्वभावचलनरूपा रागादिपरिणतिलक्षणभावहिसा तावतांशेन बन्धो भवति, न च पादसंघट्टनमात्रेण...। = वीतराणी मुनियोंको ईर्यासमिति पूर्वक चलते हुए, सूक्ष्म जन्तुओंका घात होनेपर भो जितने अंशमें स्वस्वभावसे चलन रूप अर्थात् अशुद्धोपयोग रूप रागादि परिणति लक्षणवाली भाव हिंसा है, उतने अंशमें ही बन्ध होता है, केवल पादकी रगड़ मात्रसे नहीं...।
- आचारसार/श्/१० स्वयं हाहिंसा स्वयमेव हिंसनं न तत्पराधीनिमह द्वयं भवेत् । प्रमादहीनोऽत्र भवत्यहिंसकः प्रमादयुक्तस्तु तदैव हिंसकः ११०। ⇒िनश्चयसे जीव स्वयं हिंसा है और स्वयं ही हिंसन है। यह दोनों हिंसा व हिंसन व घातं पराधीन नहीं है। प्रमाद रहित जीव अहिंसक होता है और प्रमाद युक्त सदैव हिंसक।
- प. प्र./टी./२/१२१ रागाइयुत्पत्तिस्तु निश्चयहिंसा । तदपि कस्मात् ।
 निश्चयशुद्धप्राणस्य हिंमाकारणात् । = रागादिककी उत्पत्ति ही
 निश्चय हिंसा है । वयों कि वह निश्चय शुद्ध चैतन्य प्राणोंकी
 हिंसाका कारण होनेसे...।
- पं. घ / उ / ०६० सरसु रागा विभावेषु बन्धः स्यारकर्मणां बतात् । तश्पा-कादात्मनो दुःखं तिरसद्धः स्थारमनो वधः ।७६०। चरागादि भावोंके होनेपर बत्तपूर्वक कर्मोंका बन्ध होता है। और उन कर्मोंके उदयसे आत्माको दुःख होता है इसलिए रागादि भावोंके द्वारा अपनी आत्माका वध या हिंसा सिद्ध होती है। ०६७।

३. निरुचय हिंसा ही प्रधान है व्यवहार नहीं

- भ. आ./मू./प०६ जिद सुद्रस्स य बंधो होहिदि बाहिरंगवत्थुजोगेण।
 णित्थिदु अहिंसगो णाम होदि नायादिनधहेदु ।प०६। = यदि रागद्वेष रहित आत्माको भी बाह्य वस्तुके सम्बन्धसे बन्ध होगा तो
 जगत्में कोई भी अहिंसक नहीं है, ऐसा मानना पड़ेगा, क्योंकि
 शुद्ध मुनि भी वायुकायादि जीवोंके बधका हेतु है।
- घ. १४./५.६.६३/६०/२ जेग विषा जंग होदि चेग तंतस्स कारणं। तम्हा अंतरंगर्हिसा चेन सुद्धणएण हिंसा ण नहिरंगा ति सिद्धम्। = जिसके निना जो नहीं होता वह उसका कारण है, इससिए सुद्ध नयसे अन्तरंग हिंसा ही हिंसा है नहिरंग नहीं।
- प्र. सा./त. प्र./२१७ अशुद्धोपयोगोऽन्तरङ्गस्छेदः, परप्राणव्यपरोपो बहिरङ्गः ।...अन्तरङ्ग एव छेदो बलीयाच् न पुनर्बहिरङ्गः । = अशुद्धो-पयोग तो अन्तरङ्ग छेद है और परप्राणोका घात बहिर्र गछेद हैं ।... तहाँ अंतर ग छेद ही बलवाच् है वहिरङ्ग नहीं।
- अन. ध./श्री२३ रागाद्यसंगतः प्राणव्यपरोपेऽष्यहिसकः। स्यात्तदव्यप-रोपेऽपि हिंस्रो रागादिसंश्रितः। =यदि जीव रागादिसे आविष्ट नहीं है तो प्राणोंका व्यपरोपण हो जानेपर भी वह अहिसक है और यदि रागद्वेषादि कषायोंसे युक्त है तो प्राणोका वियोग न होनेपर भी हिंसक है।

४. मैं जीवोंको मारता हूँ ऐसा कहनेवाला अज्ञानी है

स.सा./सू./२४७ जो मण्णिव हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं। सो मुद्धो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ।२४७। च्लो पुरुष ऐसा मानता है कि मैं पर जीवको मारता हूँ और पर जीवों द्वारा में मारा जाता हूँ वह पुरुष मोही है, अज्ञानी है, और इससे विपरीत है वह ज्ञानी है।२४७। (यो सा./अ./४/१२)।

स.सा./आ./२६६/क,१६८ सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीयकर्मोदयानम-रणजीवितदुः खसौरूयम् । अज्ञानमेति दिह यत्तु परः परस्य कुर्यात पुमान् मरणजीवितदुः खसौरूयम् । = इस लोकमें जीवोंके जो जीवन मरण दुःख मुख हैं वे सभी सदा काल नियमसे अपने-अपने कर्मके उदयसे होते हैं । ऐसा, होनेपर पुरुष परके जीवन मरण मुख दुःखको करता है यह मानना अज्ञान है।

३ व्यवहार हिंसाकी कथंचित् गौणता व मुख्यता

9. कारणवंश वा निष्कारण सी जीवोंका घात हिंसा है

पु.सि.उ./५०-५१ धर्मो हि देवताभ्यः ।८०। पूज्यनिमित्तं घाते ।५१। बहुसत्त्वघातजनितादशनाद्वरमेकसत्त्वघातात्थम् । दशः प्रवति ,बहुनामेकेंस्य वास्य जीवहरणेन ।...हिंससत्त्वानाम् ।८३। शरीरिणो हिसा १८४१ बहुदु'खासंज्ञपिताः...दुःखिषो १८४। मुखिनो हताः मुखिन एन । इति तर्के ... सुखिनां घाताय... । ८६। उपलब्धिसुगतिसाधन-समाधि -- स्वगुरोः शिष्येण शिरो न कर्त्तनोयम्। ५७। मोक्षं श्रद्धोय नैव ।८८। परं पुरस्तादशनाय·····निजमांसदानरभसादः सभनीयो न चात्मापि ।८१। = देवताके अर्थ हिसा करना धर्म है ऐसा मानकर ।८०। या पूज्य पुरुषोंके सरकारार्थ हिंसा करनेमें दोष नहीं है ऐसा मानकर ।८१। शाकाहारमें अनेक जीवोंकी हिसा होती है और मांसाहारमें केवल एककी, इसलिए मांसाहारको भला जानकर ।८२। हिंसक जीवी-को मार देनेसे अनेकोंकी रक्षा होती है ऐसा मानकर हिंसक जीवोंकी हिंसा ।८३। तथा इसी प्रकार हिंसक मनुष्योंकी भी ।८४। दुःखी जीवौं-को दुःलसे छुड़ानेके लिए मार देना रूप हिंसा । प्रा सुखीको मार देनेसे पर भवमें उसको सुख मिलता है, ऐसा समभकर सुखी जीवको मार देना ।=६। समाधिसे सुगतिकी प्राप्ति होती है, ऐसा मानकर समाधिस्थ गुरुका शिष्य द्वारा सिर काट देना । ५७। या मोक्षकी श्रद्धा करके ऐसा करना। ६६ । दूसरेको भोजन वरानेके लिए अपना मांस देनेको निज शरीरका घात करना । ८१। ये सभी हिंसाएँ करनी योग्य नहीं हैं।

हा /८/१८, २७ शान्त्यर्थं वेबपूजार्थं यहार्थमथवा नृभिः । कृतः प्राणभृतां घातः पातयत्यविलिम्बितम् ।१८। चरुमन्त्रीषधानां वा हेतोरन्यस्य वा वयचित । कृतः सती नरें हिंसा पातयत्यविलिम्बतम् ।२७। = अपनी शान्तिके अर्थ अथवा देवपूजाके तथा यह्नके अर्थ जो मनुष्य जीवधात करते हैं वह घात भी जीवोंको शीव ही नरकमें डालता है ।१८। देवता-की पूजाके लिए रचे हुए नैवेद्यसे तथा मन्त्र और औषधके निमित्त अथवा अन्य किसी भी कार्यके लिए की हुई हिंसा जीवोंको नरकमें ले जाती है ।२८।

२. वेद प्रणीत हिंसा भी हिंसा है

रा.ना./=/१/१३-२६/६६२-६६४ आगमप्रामाण्यात प्राणिवधो धर्महेतुरिति चेत्: नः तस्थागमस्वासिद्धः ११३। सर्वेषामिवशेषप्रसङ्गात ।२०। यदि हिंसा धर्मसाधनं मत्स्यवन्थ (वधक) शाकृतिकशौकरिकादीनां सर्वेषामिविशिष्ठाधर्मावाप्तिः स्यात ।... यज्ञारकर्मणोऽन्यत्र वधः पापायेति चेतः नः उभयत्र तुज्यस्वात ।२१। 'तादर्थात्
सर्गस्येति चेत्' ।२२। 'यज्ञार्थं पश्वः सृष्टाः स्वयमेव स्वयभुवा
(मनुस्मृति/६/१६/इति) इति । अतः सर्गस्य यज्ञार्थस्वात् न तस्य
विनियोक्तः पापमिति तन्नः कि कारणम् । साध्यस्वात् । 'मन्त्रप्राधान्याददोष इति चेतः ।२४। यथा विषं मन्त्रप्रधान्यादृषयुज्यमानं न मरणकारणम्, तथा पश्वधोऽपि मन्त्रसंस्कारपूर्वकः कियमाणो न पापहेतुरिति । तत्र, कि कारणम् । प्रत्यक्षविरोधात् ।...यदि
मन्त्रेभ्यो एव केवलेभ्यो याञ्चे कर्मणि पश्चान्त्रपात्यन्तः दृश्येरन् मन्त्र-

बलं श्रद्धीयेत, दश्यते तु रज्जनादिभिर्मारणम्। तस्मात् प्रत्यक्षविरोधात् मन्यामहे न मन्त्रसामध्यमिति । - हिंसादोषाविनिवृत्तेः ।२६। ••• नियतपरिणामःनिमित्तस्यान्यथाविधिनिषेधासंभवात् ।२६। प्रश्न-आगम प्रमाणसे प्राणी वध भी धर्म समक्षा जाता है ? उत्तर-नहीं, क्योंकि ऐसे आएमको आगमपना ही सिद्ध नहीं है।१३। यदि हिंसाको धर्मका साधन माना जायेगा तो मछियारे भील खादि सर्वे हिंसक मनुष्य जातियों में अविरोधरूपसे धर्मकी व्याप्ति चली आयेगी।२०। प्रश्न - ऐसा नहीं होता, क्योंकि यज्ञके अतिरिक्त अन्य कार्थीमें किया जानेवाला वध पाप माना गया है! उत्तर-ऐसा भेद नहीं किया जा सकता, क्योंकि हिंसाकी दृष्टिसे दोनों तुल्य हैं। २२। प्रश्न—यज्ञके अर्थ ही स्वयम्भूने पश्जॉकी सृष्टि की है, अतः यज्ञके अर्थ वध पापका हेतु नहीं हो सकता ! उत्तर-यह पक्ष असिद्ध है। क्यों कि पशुओं की सृष्टि ब्रह्माने की है, यह दात अभी तक सिद्ध नहीं हो सकी है। २२। प्रश्न--मन्त्रकी प्रधानताके कारण यह हिंसा निर्दोष है। जिस प्रकार मन्त्रकी प्रधानतासे प्रयोग किया विष मृत्यु-का कारण नहीं उसी प्रकार मन्त्र संस्कार पूर्वक किया पश्वध भी पाप का हेत् नहीं हो सकता ! उत्तर-नहीं, क्यों कि ऐसा माननेपर प्रत्यक्ष विरोध आता है – यदि केवल मन्त्र बलसे ही यज्जवेदीपर पशुओं का घात देखा जाता तो यहाँ मन्त्र बलपर विश्वास किया जाता। परन्तु वह वध तो रस्सी आदि नाँधकर करते हुए देखा जःता है। इसलिए प्रत्यथमें विरोध होनेके कारण मन्त्र सामर्थ्यकी कल्पना उचित नहीं है।२४। अतः मन्त्रोंसे पशुवध करनेवाले भी हिंसा दोषसे निवृत्त नहीं हो सकते ।२५। शुभ परिणामोसे पुण्य और अशुभ परिणामोंसे पाप बन्ध नियत है, उसमें हेर-फेर नहीं हो सकता।

३. खिलौने तोड़ना भी हिंसा है

सा.ध./३/२२ वस्त्रनाणकपुस्तादि न्यस्तजीविच्छदादिकस्। न कुर्यास्य-क्तपापद्धिस्तद्धि लोकेऽपि गर्हितस् ।२२। = शिकास्व्यसनका स्याग करनेवाला श्रामक वस्त्र शिक्षा और काष्ठ पाषाणादि शिव्पमें निकासे गये या बनाये गये जीवोंका छेदनादिकको नहीं करे. क्योंकि वस्त्रादिक-में स्थापित किये गये जीवोंका छेदन भेदन केवल शास्त्रमें ही नहीं किन्तु लोकमें भी निन्दित है।

४. हिंसक आदि जीवोंकी हिंसा मी योग्य नहीं

पु.सि.ज./प्र-प्र्रक्षा भवति बहूनामेकस्यैवास्य जीवहरणेन । इति मरवा कर्तव्यं न हिंसनं हिस्सस्वानाम् ।८३। बहुसस्ववातिनोऽमो जीवन्त उपार्जयन्ति गुरु पापम् । इत्यनुक्रम्पां कृरवा न हिंसनीयाः शरीरिणो हिंसां ।प्रे। बहुदुःखासंज्ञपिताः प्रयान्ति श्विचरेण दुःख-विच्छित्तिम् । इति वासनाकृपाणीमादाय न दुःखिनोऽपि हन्त्व्याः ।प्रे। च्लक जीवको मारनेसे बहुतसे जीवाँकी रक्षा होती है, ऐसा मानकर हिंसक जीवोंका भी घात न करना ।प्र्या बहुत जीवोंके मारनेवाले यह प्राणी जीता रहेगा तो बहुत पाप उपजायेगा इस प्रकार दया करके भी हिंसक जीवको मारना नहीं चाहिए ।प्रश यह प्राणी बहुत दुःख करि पीड़ित है यदि इसको मारिये तो इसके सम दुःख नष्ट हो जायेगे ऐसी खोटी वासना रूप तल्वार को अंगीकार कर दुःखी जीव भी न मारना ।प्रे।

सा.ध./२/८१,८३ न हिस्यात्सर्वभूतानीत्यार्ष धर्मे प्रमाणयत्। सागसोऽपि सदा रक्षेच्छवत्या कि नु निरागसः।८१। हिस्रदुः सिम्नुखिप्राणि-छातं कुर्यात्र जातुचित्। अतिप्रसङ्ग्यभाति-मुखोच्छेदसमीक्षणात्। क्र सम्पूर्ण त्रस स्थावर जीवों में-से किसी भी जोवकी हिंसा नहीं करनी चाहिए। इस प्रवारके त्रृषि प्रणीत शास्त्रको भद्धा पूर्वक माननेवाला धार्मिक गृहस्थ धर्मके निमित्त सदा अपनी शक्तिके अनुसार अपराधी जीवोंकी रक्षा करे और निरपराधी जीवोंका तो कहना ही क्या है। ।८१। कव्याणार्थी गृहस्थ अति-प्रसंग रूप दोष नरक सम्बन्धी दुःख मुखका कारण होनेसे हिंसक दुःखी और मुखी प्राणियों के घातको कभी न करे। पश्

५. धर्मार्थ मी हिंसा करनी योग्य नहीं

- प्र.सा./मू./२६० जिंद कुणिंद कायखेदं वेउजावच्चत्थमुउजदो समणो।
 ण हवदि हवदि अगारी धम्मो सो सावयणं। चयदि (अमण)
 वैयावृत्तिके लिए उद्यमी वर्तता हुआ छह कायको पीड़ित करेतो
 बह श्रमण नहीं है। गृहस्थ है, (वयोंकि) वह छह कायको विराधना
 सहित वैयावृत्त्य है। ११६०।
- इ.उ./१६ त्यागाय श्रेयसे विक्तमिवक्तः संचिनोति यः । स्वश्रीरं स पङ्केन स्नास्यामीति विलिम्पति ।१६। = जो निर्धन मनुष्य पात्रदान आदि प्रशस्त कार्योंके लिए पुण्य प्राप्ति तथा पाप विनाशके अनेक सावद्यों द्वारा धन उपार्जन करता है, वह मनुष्य निर्मल शरीरमें पीछे स्नान करके निर्मल होनेकी आशासे कीचड़ सपेटता है।
- पु.सि.ड./८०-८१ धर्मी हि देवताभ्यः प्रभवति ताभ्यः प्रदेयमिति सर्वम् । इति दुविवेककलितां धिषणां न प्राप्य देहिनो हिंस्याः १८०। पूज्य-निमित्तधाते छागादीनां न कोऽपि दोषोऽस्ति । इति संप्रधायं कार्यं दातिथये सत्त्वसंज्ञपनम् १८११ — देवताको प्रसन्न करनेते धर्म होता है इसलिए इस लोकमें उस देवताके सत्र कुछ देने योग्य है। जीवको उनके लिए बलि कर देना धर्म है। ऐसी अविवेक बुद्धि से प्राणी घात योग्य नहीं ।८०। अपने गुरुके वास्ते बकरा आदि मारनेमें कोई दोष नहीं ऐसा मानकर अतिथिके अर्थ जीव वध करना योग्य महीं।
- दे.हिंसा ३/१ देवताकी पूजाके लिए जीवघात करना नरकमें डालता है।

६. छोटे या बड़े किसीकी भी हिंसा योग्य नहीं

म्.आ./१९६८,८०१ वसुधिमिनि विहरंता पीडं ण करेंति कस्सइ कयाई।
जीवेसु दयावण्णा माया जह पुत्तभंडेसु १७६८। तणरुक्खहरिच्छेदणतयपत्तपवासकंदम्बाइं। फलपुष्फनीयधादंण करिति सुणी ण कारेंति १८०१। — सन जीवोंके प्रति दयाको प्राप्त सन साधु पृथिवीपर विहार करते हुए भी किसी जीवको कभी भी पीड़ा नहीं करते। जैसे माता पुत्रका हित हो करती है उसी तरह सनका हित चाहते हैं।७६८। मुनिराज तृण, जूब, हरित इनका छेदन, नकुल, पत्ता, कोंपन, कन्दमूल, इनका छेदन, तथा फल, पुष्प बीज इनका घात न तो आप करते हैं, न दूसरोंसे कराते हैं।८०१।

७. संकल्पी हिंसाका निषेध

सा,ध /२/=२ आरम्भेऽपि सदा हिंसां, सुधीः सांकविनकीं त्यजेत्। हनतोऽपि कर्षकादुच्चैः, पापोऽध्नन्नपि धीवरः। च्युद्धिमान् मनुष्य खेती आदि कार्योमें भी संकर्शी हिंसाको सदैव छोड़ देवें, क्योंकि असंकर्श पूर्वक बहुत्तसे जीवोंका घात करनेवाला किसानसे जीवोंको मारनेका संकर्श करके उनको नहीं मारनेवाला भी धीवर विशेष पापी होता है। ५२।

८. विरोधी हिंसाकी कथंचित् आज्ञा

सा.ध./४/१ की टीकामें उद्दश्त-दण्डो हि केवलो लोकिमम चामुं च रक्षति । राजा शत्री च पुत्रे च यथा दोषसमं धृतः । ज्युत्र व शत्रुमें समता रूपसे क्षत्रियों द्वारा किया गया दण्ड इस लोक और परलोक-की रक्षा करता है, यह शास्त्र वचन है।

९. बाह्य हिंसा, हिंसा नहीं

भ.आ./मू./८०६ जिंद मुद्धस्स य बंधो होहिदि बाहिरगवत्थुजोगेण।
णित्य दु अहिंसगो णाम होदि वायादिवधहेदु ।८०६। = यदि रागदेष रहित आत्माको भी मात्र बाह्य वस्तुके सम्बन्धसे बन्ध होगा

- तो जगदमें कोई भी अहिंसक नहीं, ऐसा मामना पड़ेगा। क्योंकि मुनि भी वायुकायादि जीवोंके वधका हेतू हैं। द०ई।
- प्र.सा./म् /२१७ मरदु वा जियदु जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा ।
 पयदस्स णिद्ध वंधो हिंसामेत्तेण सिमदस्स ।२१७। = जीव मरे या
 जीये अप्रयत आचारवालेके हिंसा निश्चित है, प्रयतके सिमितिवानके
 (वहिरंग) हिंसामात्रसे बन्ध नहीं है ।२१७। (स.सि./५/१३/३५९ पर
 जद्दधृत); (ध.१४/६,६,६३/गा.२/६०); (रा.वा./५/१३/१२/५४० पर
 जद्दधृत।
- प्र.सा./मू./१७/प्रक्षेपक १-२/२१२ उच्चालियम्हि पाए इरियासमिदसस णिग्ममस्थाए। आबाधेउज कुलिंगं मरिज्ज तं जोगमासेज्ज ।१। ण हि तस्स तिण्णिमित्तो बंधो सुहुमो य देसिदो समये। सुच्छापरिग्गहो च्चिय अज्मप्पपमाणदो दिद्धो ।२। =ईर्यासमितिसे युक्त साधुके अपने पैरके उठानेपर चज्जनेके स्थानमें यदि कोई शुद्र प्राणी उनके परसे दम जाये और उसके सम्बन्धसे मर जाये तो भी उस निमित्तसे थोड़ा भी बन्ध आगममें नहीं कहा है क्योंकि और अध्यात्म दृष्टिसे सुच्छाको हो परिश्रह कहा है बैसे यहाँ भी रागादि परिणामोंको हिंसा कहा है। (स.सि./७/९४/३५१/ पर उद्द्धत); (रा,वा,७/१३/१२/ ५४० पर उद्द्धत)।
- स.सि./०/१३/३५१/४ 'प्रमत्तयोगात' इति विशेषणं केवलं प्राणव्यपरोपणं नाधमियिति ज्ञापमार्थम्। चकेवल प्राणोंका विद्योग करनेसे अधर्म नहीं होता, यह बतलानेके लिए सूत्रमें 'प्रमत्तयोगरे' यह पद दिया है।
- घ. १४/६.६,६२/८६/१२ हिंसा णाम पाण-पाणिवियोगो। तं करें ताणं कथमहिंसालवलणपंचमहञ्चयसंभवो। ण, बहिरंगहिंसाए आसव-ताभावादो। = प्रश्न-पाण और प्राणियोंके वियोगका नाम हिंसा है। उसे करने वाले जोवोंके अहिंसा लक्षण पाँच महावत कैसे हो सकते हैं। उत्तर-नहीं, क्योंकि बहिरंग हिंसा आसव रूप नहीं होती।
- पु.सि. ७./४६ युक्ताचरणस्य सतो रागाद्यावेशमन्तरेणापि। न हि भवति जातु हिंसा प्राणव्यपरोपणादेव ।४६। च युक्ताचारो सत्पुरुषके रागादि भावोके प्रवेश विना केवल पर जीवोंके प्राण पीड़ते ही तैं कदाचित्र हिंसा नहीं होती है।

नि.शा./ता.वृ/४६ तेषां मृतिर्भवतु वा न वा, प्रयत्नपरिणाममन्तरेण सावद्यपरिहारो न भवति । च्छन (जीवोंका) मरण हो अथवा न हो, प्रयत्न रूप परिणामके विना सावद्यका परिहार नहीं होता।

अनः घ /४/२३ रागाद्यसङ्गतः प्राणव्यपरोपेऽप्यहिसकः। स्मास्वस्य-परोपेऽपि हिस्सो रागाविसंश्रितः। २३। = जीन यदि राग होष मोह रूप परिणामोंसे आविष्ठ नहीं है तो प्राणोंका व्यपरोपण हो जानेपर भी अहिंसक है। और यदि रागादि कषायोंसे युक्त है तो प्राणोंका वियोग न होनेपर भी हिंसक है।

४. निश्चय व्यवहार हिंसा समन्वय

१. निरूचय हिंसाको हिंसा कहनेका कारण

रा.वा. 10/१३/१२/१४०/३३ नतु च प्राणव्यपरोपणाभावेऽपि प्रमत्त्योगमात्रादेव हिंसेष्यते। एकं च -1...(प्राणव्यपरोपणनिर्देश अनर्थकम्)। नैष दोषः, तत्रापि प्राणव्यपरोपणमस्ति भावलक्षणम्। तथा
चोक्तम्—स्वयमेवारमनात्मानं हिनस्त्यारमा प्रमादवान्। पूर्व प्राण्यनतराणां तु पश्चात्स्याद्वा न वा वधः। ११इति। एवं कृत्वा यैरुपालम्भः
क्रियते—सोऽत्रावकार्शं न लभते। भिक्षोक्चनिध्यानपरायणस्य प्रमत्तयोगाभावात्। =प्रश्न-प्राणव्यपरोपणके अभावमें भी केवल प्रमत्तः
योगसे ही हिंसा स्वीकारी गयी है। वहा भी है कि-[जीव मरो
या जीओ अयत्नाचारीके निश्चित रूपने हिसा है। बाह्य हिसा मात्रसे बन्ध नहीं होता (दे.हिसा/३/१) अतः सूत्रमें 'प्राणव्यपरोपण' शब्द व्यर्थ है। १ उत्तर-यह कोई दोष नहीं है, व्योंकि भावलक्षण

वाला अन्तरंग प्राण्ड्यपरोपण अर्थात् स्वहिंसा वहाँ भी (प्रमत्तयोग-में भी) है हो। कहा भी है—'प्रमादसे युक्त आत्मा पहले स्वयं अपने हारा ही अपना बात करता है, इसके बाद दूसरेका घात होवे अथवा न होवे।' ऐसा माननेपर यह दोष भी नहीं आता है कि—'जलमें, थलमें, आकाशमें सब जगह जन्तु ही जन्तु हैं। इस जन्तुमय जगत्में भिक्षुक अहिसक कैसे रह सकता है ? क्योंकि ज्ञान ध्यान परायण अप्रमत्त भिक्षुकको मात्र प्राणि वियोगसे हिंसा नहीं होती।

- भ,१४/६,६,११ तदभावे (बहिरइ हिंसाभावेऽपि) वि अंतरंग हिंसादो चेव सित्थमच्छस्स बंधुवलंभादो। जेण विणा जंण हो दि चेव तं तस्स कारणं। तम्हा अंतरंगहिसा चेव मुद्धणएण हिसा ण वहिरंगा सि सिद्धम्। —क्योंकि बहिरंग हिंसाका अभाव हो नेपर भी केवल अन्तरंग हिंसासे सिक्थ मरस्यके बन्धकी उपलब्धि होती है। जिसके बिना जो नहीं होता है वह उसका कारण है, इसलिए शुद्धनयसे अन्तरंग हिंसा ही हिंसा है, बहिरंग नहीं; यह बात सिद्ध होती है।
- दे.हिंसा/२/२-३ चैतन्य परिणामोंकी घातक होनेसे अन्तरंग हिंसा ही हिंसा है।

२. निइचय हिंसाको हिंसा कहनेका प्रयोजन

प्र.सा./ता.व./२१८/२६३/१३ शुद्धोपयोगपरिणतपुरुषः षड्जीवकुते लोके विचरत्रिप यद्यपि विहरङ्गद्रव्यहिंसामात्रमस्ति तथापि निश्चयहिंसा नास्ति । ततः कारणाच्छ्रद्रपरमारमभावनावलेन निश्चयहिंसैव सर्व-तारपर्येण परिहर्त्तव्येति । चशुद्धोपयोग रूप परिणत जीवको इस जीवोंसे भरे हुए लोकमें विचरण करते हुए यद्यपि बहिरंग हिंसा मात्र होती है । अंतरंग नहीं इस कारणसे शुद्ध परमात्म भावनाके वल द्वारा निश्चय हिंसा ही सर्व प्रकार त्यागने योग्य है ।

३. बहिरंग हिंसाको हिंसा कहनेका प्रयोजन

अन./घ./४/२० हिंसा यद्यपि पुंसः स्यान्न स्वन्पाप्यन्यवस्तुतः । तथापि हिंसायतनाद्विरमेद्रावशुद्धये ।२०। स्यद्यपि पर वस्तुके सम्बन्धसे प्रमत्त परिणामौके बिना केवल बाह्य द्वव्यके ही निमित्तसे जीवको जरा भी हिंसाका दोष नहीं लगता, तो भी भावविशुद्धिके लिए भावहिंसाके निमित्तभूत बाह्य पदार्थसे मुभुक्षुओंको विरत होना चाहिए ।२०।

४. जीवसे प्राण भिन्न हैं, उनके वियोगसे हिंसा क्यों हो ?

. सा./ता. व/२३३-४४४/४२३/२२ किश्चदाह जीवास्त्राणा भिन्ना अभिन्न ला । यद्यभिन्नास्तदा यथा जीवस्य विनाशो नास्ति तथा प्राणाना-मिष विनाशो नास्ति कथं हिंसा । अथं भिन्नास्ति हैं जीवस्य प्राणधाते-ऽपि किमायातम्। तन्नापि हिसा नास्तीति । तन्न. [दे. काय २।३] = पश्च-कोई कहता है कि जीवसे प्राण भिन्न हैं कि अभिन्न ! यदि अभिन्न हैं तो जीवका विनाश ही नहीं हो सकता, तन प्राणोंका भी विनाश नहीं हो सकता । फिर हिंसा कैसे हो सकती हैं । यदि प्राण जीवसे भिन्न हैं तो जीवका प्राण धात होना ही कैसे प्राप्त होता है ! इसलिए ऐसा माननेपर भी हिंसा सिद्ध नहीं होतो ! उत्तर—ऐसा नहीं है; कायादि प्राणोंके साथ कथं चित्र जीवका भेद भी है और अभेद भी । वह कैसे सो बताते हैं [तप्त लोह पिण्डसे जैसे अग्नि पृथक् नहीं की जा सकती वैसे ही वर्तमानमें शरीर आदिसे जीवको पृथक् नहीं किया जा सकता, इस कारणसे व्यवहारसे दोनों अभेद है । परन्तु निरुचयसे भेद है वयों कि मरणकालमें शरीरादिक प्राण जीवके साथ नहीं जाते । [दे, प्राण/२/३]

- प, प्र./हो./२/१२७ प्राणा जीवादिभिज्ञा भिन्ना वा, यद्यभिन्नाः तिह जीववत्प्राणानां विनाशो नास्ति, अय भिन्नास्ति प्राणवधेऽपि जीवस्य
 वधो नास्त्यनेन प्रकारेण जीविहिसैय नास्ति कथं जीववधे पापवन्धो
 भविष्यतीति । परिहारमाह । कथंचित्र दाभेदः । तथाहि स्वकीयप्राणे
 हते सति दुःखोरपत्तिदर्शनाइ०यवहारेणाभेदः सैव दुःखोरपत्तिस्तु हिंसा
 भण्यते तत्रच पापवन्धः । —प्रश्न—प्राण जीवसे भिन्न है या अभिन्न ?
 यदि अभिन्न है तो जीवकी भाँति प्राणोंका भी विनाश नहीं हो सकता ।
 यदि भिन्न है तो प्राण वध होनेपर भी जीववध नहीं हो सकता और
 इस प्रकार जीव हिंसा ही नहीं होती फिर जीव वधसे पापका बन्ध
 कैसे हो सकेगा ! उत्तर ऐसा न कहो क्योंकि जीव और प्राणोंमें
 कथंचित् भेदाभेद हैं । वह इस प्रकार कि अपने प्राणोंके हरण होनेपर
 दुःखकी उत्पत्ति देखी जाती है, इस कारण व्यवहारसे इनमें अभेद हैं ।
 वह दुःखोरपत्ति हो वास्तत्रमें हिंसा कहवाती है और उससे पाप बन्ध
 होता है ।
- दे. विभाव/१/१/१ यदि निश्चयकी भाँति व्यवहारसे भी हिंसा न हो तो जीवोंको भस्मवत् मलनेसे भी हिंसा न होगी। और इस प्रकार मोक्षमार्गके ग्रहणका अभाव हो जानेसे मोक्षमार्गका ही अभाव होगा।

५. हिंसा व्यवहार मात्रसे है निश्चयसे तो नहीं

- पु.सि.ज./१० निरचयमबुद्धयमानो यो निरचयतस्तमेव संश्रयते। नाश-यति करणचरणं स बहिःकरणालसो शालः। — जो जीव निरचयके स्वरूपको न जानकर उसको ही निरचयके श्रद्धानसे अंगीकार करता है, याने अन्तरंग हिसाको ही हिंसा मानता है वह मूर्ख बाह्य क्रियामें आलसी है और बाह्य क्रिया रूप आचरणको नष्ट करता है।
- प.प्र./टी./२/१९७ ननु तथापि व्यवहारेण हिंसा जाता पापबन्धोऽपि न च निश्चमेन इति। सत्यमुक्तं त्वया, व्यवहारेण पापं तथैव नारका दि-दुःलमिप व्यवहारेणिति। तदिष्टं भवतां चेत्ति हिंसां कुरुत य्य-मिति। = प्रश्न फिर भी यह प्राणघात रूप हिंसां व्यवहारमात्रसे हैं और इसी प्रकार पापबन्ध भी निश्चयसे तो नहीं है। उत्तर तुम्हारी यह बात बिलकुल सत्य है, परन्तु जिस प्रकार पापबन्ध व्यवहारसे हैं, उसी प्रकार नरकादिके दुःख भी व्यवहारसे हो हैं, यदि वेदुःख तुम्हें अच्छे लगते हैं तो हिसा खूब करो।

६. भिन्न प्राणींके घातसे न दुःख है न हिंसा

रा.वा./७/१३/८-११/५४०/१३ अन्यस्वादधर्माभावः इति चेतः नः तद्ददः-खोत्पादकरवात् । भ शरीरिणोऽन्यस्वात् दुःखाभाव इति चेतः नः पुत्रकलत्रादिवियोगे तापदर्शनात् । हा बन्धं प्रत्येकस्वाच्च । १०। य**द्यपि** शरीरिशरीरयोः सक्षणभेदात्रानात्वम्, तथापि वन्धं प्रस्येकस्वात् तद्वियोगपूर्वकदुःखोपपत्तेरधर्माभाव इत्यनुपालम्भः । वादिनौ तदनुपपत्तिर्वन्धाभाव।त् ।११। = प्रश्न - प्राण आस्मासे भिन्न हैं अतः उनके वियोगसे अधर्म नहीं हो सकता।=उत्तर—नहीं, वयाँ-कि प्राणोंका वियोग होनेपर जीवको ही दुःख होता है। = प्रश्न-श्रीरी आतमा प्राणोंसे भिन्न है अतः उनके वियोगसे उसे दुःख भी नहीं होना चाहिए।=उत्तर -नहीं, क्योंकि पुत्र-कलत्रादि सर्वथा भिन्न पदार्थी-के वियोग होनेपर भी ताप देखा जाता है। १५ दूसरे, यदापि इसीर शरीरीमें लक्षण भेदसे नानात्व है फिर भी बन्धके प्रति दोनों एक हैं अतः शरीर वियोग पूर्वक होने वाला दुःख आत्माको ही होता है। अतः हिंसा और अधर्मका अभाव हो ऐसा नहीं कहा जा सकता।१०। आत्माको नित्य शुद्ध माननेवाले एकान्तवादियोंके मतमें तो ठीक है कि प्राण वियोगसे दुःखोत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि वह आरमा और श्रीरका बन्ध स्वीकार नहीं करते । परन्तु अनेकान्तमतमें ऐसा मान्य नहीं हो सकता।

For Private & Personal Use Only

हिंसादान— दे. अनर्थदण्ड ।

हिंसानंदी रौद्रध्यान-- ३. रौद्रध्यान ।

हिजरी संवत् - दे. इतिहास/२।

हित- १. हितका कक्षण

रा. वा /१/१/१/१४/१७ मोक्षपदप्रापणप्रधानफलं हितम् । तहहि विधम् स्वहितं परहितं चेति । = मोक्षपदकी प्राप्ति रूप प्रधान वा मुख्य फल भिलता है, उसको हित कहते हैं। वह दो प्रकारका है, एक स्वहित दूसरा परहित । (चा. सा./६६/१)

क.पो./१/१, १३-१४/६२१६/२७१/६ व्य ध्युपशमनहेतुर्द्धव्यं हितस् । यथा पित्तज्वराभिभूतस्य तदुपशमनहेतुकदुकरोहिण्यादिः । क्रव्याधिके उपशमनका कारणभूत द्वव्य हित कहलाता है । जैसे, पित्त ज्वरसे पीडित पुरुषके पित्त ज्वरकी शान्तिका कारण कड़की कुटकी त्ंबड़ी आदिक द्वय हित रूप हैं।

* ज्ञानी व अज्ञानीकी हिताहित बुद्धिमें अन्तर

दे. मिथ्यादृष्टि /४।

२. हिताहित जाननेका प्रयोजन

भ.आ./मू./१०३ जाणंतस्सादहिदं अहिदणियत्तीय हिदपवत्तीय। होदि य तो से,तम्हा आदिहदं आगमे दव्वं ।१०३। = जो जीव आत्माके हित-को पहिचानता है वह अहितसे परावृत्त होकर हितमें प्रवृत्ति करता है। इस बास्ते हे भव्यजन ! आत्महितका आप परिज्ञान कर स्रो।१०३।

मो. पा./मू./१०२ गुणगणिवह सियंगो हैयोपादेय णिच्छिओ साहू।
माणज्ञस्यणे सुरदो सो पावइ उत्तमं ठाणं ।१०२। क्यो मूल व उत्तर
गुओंसे विभूषित है. और हैयोपादेय तत्त्वका जिसको निश्चय है, तथा
ध्यान और अध्ययनमें जो भले प्रकार लीन है, ऐसा साधु उत्तम
स्थान मोक्षको प्राप्त करता है।१०२।

★ स्व पर हित सम्बन्धी—दे. उपकार।

हित संभाषण—हे. सस्य/२।

हितोपदेश—हे, उपदेश/२,३।

हिमपुर विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीका एक नगर-वे. विद्याधर ।

हिमवत् - कुण्डल पर्वतस्थ एक कूट--दे. लोक/७।

हिमवान्—१. रा. वा./३/११/१/१८८/६ हिममस्यास्तीति हिमबानिति व्यपदेशः। अन्यत्रापि तत्संबन्ध इति चेत्। रूढिविशेषवनलाभात्तत्रैव वृत्तिः। = (भरत क्षेत्रके उत्तरमें स्थित पूर्वापर लम्बायमान वर्षधर पर्वत है। अपर नाम पञ्चशिखरी है।] हिम जिसमें
पाया जाय सो हिमबान्। चंकि सभी पर्वतोंमें हिम पाया जाता है
अतः रूढिसे ही इसकी हिमबान् संज्ञा समभनी चाहिए। २. हिमबान्
पर्वतका अवस्थान व विस्तारादि। --दे. लोक/१/४। ३. हिमबान्
पर्वतस्थ क्ट व उसका स्वामी देव।--दे. लोक/१/४, प्रमहरके
वनमें स्थित एक कूट--दे. लोक/१/७।

हिम शीतल कर्तिंग देशके राजा थे। अकर्त्तक देवने इनकी सभामें शास्त्रार्थ किया था। समय- ई. श. ८ का पूर्वार्ध (सि. वि./१४ पं. महेन्द्र) हिरण्य स्ति। १०/२१/३६८/८ हिरण्यं रूप्यादिन्यवहारतन्त्रम् । = जिसमें रूप्य आदि न्यवहार होता है वह हिरण्य है। (द. पा./टी./१४/१३)

हिरण्यकशिपु — इक्ष्वाकुव शी एक राजा । दे. इतिहास/७/२ ।

हिरण्यगर्भे—१. मुकौशल मुनिका पुत्र था। अन्तर्मे नघुष पुत्रको राज्य देकर दीक्षा ले ली। (५. पु./४/१०१-११२) २. योग दर्शनके आच प्रवर्तक --दे. योगदर्शन।

हिरण्यनाभ--जरासंधका सेनापति । युद्धमे युधिष्ठिर द्वारा मारा गया (पा. पु./१६/१६२-१६३)।

हिर्ण्योत्कृष्ट जन्मता क्रिया—हे, संस्कार/२ ।

हो--दे, एव।

हीन — १. गणितकी व्यकलन प्रक्रियामें मूल राशिको ऋण राशिकरि होन कहा जाता है। — दे. गणित/11/१/४। २. कायोत्सर्गका एक अतिचार – दे. व्युत्सर्ग/१।

होनयान-दे, भी सदर्शन।

होनाधिकमानोन्मान—स. सि./७/२७/३६७/६ तत्र हाक्पमूक्य-लम्यानि महार्घ्याणि द्रत्याणीति प्रयरनः । प्रस्थादि मानम्, तुलाखुन् नमानम् । एतेन न्यूनेनान्यसमै देयमधिकेनारमनो प्राह्मिन्येवमादि-क्टप्रयोगो हीनाधिकमानोन्मानम् । स्मान पदसे प्रस्थादि मापनेके बाट आदि लिये जाते हैं, और उन्मान पदसे तौलनेके तराजू आदि बाट लिये जाते हैं। कमती माप तौलनेसे दूसरोंको तेना, बढती माप तौलनेसे स्वयं लेना, इत्यादि कुटिलतासे लेन-देन करना हीनाधिक मानोन्मान है। (रा. वा /७/२०/४/१४४/१४) [इसमें मायाका दोष आता है। —दे. माया/२।

होयमान-अवधिज्ञानका एक भेद-दे. अवधिज्ञान/१।

हीराचंद यह पंचास्तिकाय टीकाके रचियता एक पण्डित थे। जहानाबादके रहनेवाले थे। समय वि. स. १७-१८, (पं. का./प्र./३ पं. पत्रालाल वाकलीवाल)।

हीरानंद सुप्रसिद्ध जगत सेटके वंशज तथा ओसवाल जैन थे। वि. १६६१ में सम्मेद शिखरके लिए संघ निकाला था। शाहजादा सलीमके कृपापात्र और जौहरी था (हिं. जै. सा इ./१३२ कामता)।

होलित - काधोरसर्गका एक अतिचार-दे. व्युश्सर्ग/१।

हुं डक संस्थान-दे, संस्थान।

हुं डावसर्विणी--दे. काल/४/१३।

हुँ एक राज — अगर नाम हुल्लप था। यह वाजिबंशके यक्षराज और लोक बिम्बके पुत्र थे। तथा यदुवंशी राजा नरसिंहके मन्त्री थे। जैन-धर्मके श्रद्धालु थे। अनेकों शिलालेखों में इनका उल्लेख पाया जाता है। श.सं. १०८६ (ई. १९६३); श.सं. १०८७ में कोप्प महातीर्थ में जनमुनि संघको दान दिया। समय — श.१००६ – १०६० (ई. १९६३ – १९६०); (ध. २/प्र./६ H.L. Jain)

हूनवंश- यही कल्की राजाओंका वंश था।-दे इतिहास/३/४।

हूँहूँ --- १, गन्धर्व नामा व्यन्तर जातिका एक भेद-- दे, गन्धर्व । २. कालका एक प्रमाण विशेष---दे, गणित/।/ १/४।

भा० ४–६८

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

हूहुअंग -- कातका प्रमाण विशेष - दे. गणित/ I/१/४।

ह्रदयंगम - किनर नामा व्यन्तर जातिका एक भेव-दे किनर।

हैं जि अनुमान प्रमाणके अंगों में हेतुका सर्व प्रधान स्थान है, क्यों कि इसके बिना केवल विज्ञास व उदाहरण आदिसे साध्यकी सिद्धि नहीं हो सकती। अन्य दर्शनकारोंने इस हेतुके सीन लक्षण किये हैं, पर स्याद्वादमतावल निवयों को 'अन्यथा अनुपपत्ति' रूप एक लक्षण ही इष्ट व पर्यास है। इस लक्षणकी विपरीत आदि रूपसे वृत्ति होनेपर वे हेतु स्वयं हेत्वाभास बन जाते हैं।

१. भेद व लक्षण

१. हेतु सामान्यका लक्षण

- १. अविनाभात्रीके अर्थमें
- ध. १३/५,५,६०/२८७/३ हेतुः साध्याविनाभावि तिङ्गः अन्यथानुपपत्त्ये-कत्तक्षणोपलक्षितः । = जो तिंग अन्यथानुपपत्तिस्तप लक्षणते उपलक्षित होकर साध्यका अविनाभावी होता है, उसे हेतु कहते हैं।
- प. मु /३/१६ साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः ११६। को साध्यके साथ अविनाभाविपनेसे निश्चित हो अर्थात् साध्यके विना न रहे, उसको हेतु कहते हैं।
- न्याः दो./३/§३१/७६/४ साध्यःविनाभावि साधनवचनं हेतुः । यथा-धूमकत्त्रकान्ययानुपपत्तेः इति-तयेव धूमकत्त्वोपपत्तेः इति वा ।
- न्या. दी./3/83६/8०/१६ साध्यान्यथानुष्पत्तिमत्त्वे सति निश्चयपथ-प्राप्तत्वं खल्ल हेतोल्क्षणम्। = १. साध्यके अविनामानी साधनके कोलनेको हेतु कहते हैं। जैसे — धूमवाला अन्यथा नहीं हो सकता, अथवा अग्निके होनेसे ही धूमवाला है। २० साध्यके होनेषर हो होता है अन्यथा साध्यके जिना नहीं होता तथा निश्चय पथको प्राप्त है अर्थात जिसका निश्चय हो चुका है वह हेतु है। (और भी दे. साधन)।

न्या. सू./सू./१/१/३४-३५ जदाहरणसाधस्यिविसाध्यसाधन हेतुः १३४। तथा नैधम्यति १३६१ = उदाहरणकी समानताके साध्यके धर्मके साधनको हेतु कहते हैं १३४। अथवा उदाहरणके विपरीत धर्मसे जो साध्यका साधक है उसे भी हेतु कहते हैं। (न्या. सू./भाष्य/१/१/३६/ १८/११)।

२. स्वपक्षसाधकत्वके अर्थमें

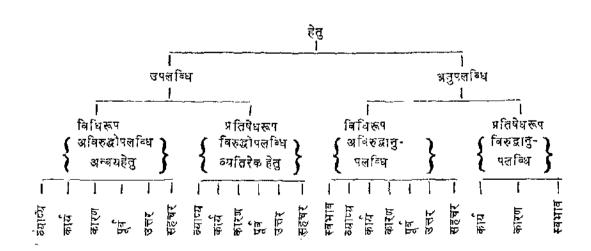
घ.१३/६.४.५०/२८०/४ तत्र स्वपक्षसिद्धये प्रयुक्तः साधनहेतुः । = स्वपक्षकी सिद्धिक जिए प्रयुक्त हुआ हेतु साधन हेतु है । (स, मं, तं/१०/३) ।

३. फलके अर्थमें

- पं, का./ता, नृ/१/६/१८ हेतु: फलं, हेतुशब्देन फलं कथं भण्यत इति चेत्। फलकारणात्फलसुपचारात् । = फलको हेतु कहते हैं। प्रश्न — हेतु शब्दसे फल कैसे कहा जाता है। उत्तर — फलका कारण होनेसे उपचारसे इसको फल कहा है।
- * साधनका **उक्षण** हे. साधन।
- * साध्यका लक्षण -दे_{. पश}।
- ★ कारणके अथंमें हेतु—हे, कारण/1/१/२।

२. हेतुके भेद---१. प्रत्यक्ष परोक्षादि

- ति. प./१/३६-३६ दुविहो हवेदि हेदू...। पचवरवपरोवरवभेएहि ।३६१ सक्तापचनरवा पर पचकरवा दोण्णि होदि पचकरवा ।...।३६१ = हेतु प्रत्यक्ष और परोक्षके भेदसे दो पकार है ।६१ प्रत्यक्ष हेतु साक्षात प्रत्यक्ष और परम्परा प्रत्यक्षके भेदसे दो प्रकार है ।३६। (ध. १/१.१,१/ ६६/१०)।
- दे, कारण/1/१/२ [हेतु दो प्रकार है -अभ्यन्तर व बाहा । बाहा हेतु भी दो प्रकारका है -आत्मभूत, अनात्मभूत।
 - २. अन्वय व्यक्तिरेकी आदि
- प. मु./३/६७-व्हं । न्या. दी./३/४२-६८/८८-१६ ।



३. नैयायिक मान्य भेद

न्या. दी,/३/९४२/८८/१२ ते मन्यन्ते त्रिविधो हेतु:-अन्वय-व्यत्तिरेकी, केवलान्वयी, केवलव्यतिरेकी चेति । सनैयायिकोंने हेतुके तीन भेद माने हैं--अन्वयव्यत्तिरेकी, केवलान्वयी और केवलव्यत्तिरेकी ।

३, असाधारण हेतुका लक्षण

श्लो. वा./३/१/१०/३३/१६/२३ यदारमा तत्र व्याप्रियते तदेव तत्कारणं नात्यदा इत्यसाधारणो हेतुः। = नित्य भी आत्मा जिस समय उस प्रमितिको उत्पन्न करनेमें व्यापार कर रहा है तब ही उस प्रमाका कारण है। इस प्रकार आत्मा असाधारण हेतु है।

४. उपलब्धि रूप हेतु सामान्य व विशेषके लक्षण

प मु./३/६६-७७ परिणामी शब्दः कृतकरवात, य एवं, स एवं दृष्टो, यथा घटः, कृतकश्चायं, तस्मात्परिणामी, यस्तु न परिणामी स न कृतको दृष्टी यथा बन्ध्यास्तनंधयः, कृतकश्चायं तस्मात्रिरिणामी।६१। अस्त्यत्र देहिनि बुद्धिव्यहारादेः। ६६। अस्त्यत्र छाया छत्रात । ६७। **उदेष्यति शकटं** कृतिकोदयात् । ६८। उदगाद्भरणिः प्राक्तत एव । ६६। अस्त्यत्र मातुलिङ्गे रूपं रसात् ।७०। नास्त्यत्र शीलस्पर्शाखौष्ण्यात् 1921 नास्त्यत्र शीतस्पर्शो धूमात् 1931 नास्मित् शरीरिणि मुखमस्ति इदयश्वयात् ।७४। नोदेष्यति मुह्तन्ति शकटं रैवरयुदयात् 10x1 नोदगाद्धरणिर्मूहृतित्युवं पुष्योदयात् 1041 नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावोऽवरिभागदर्शनात् ।७७। = विश्विरूप--१. शब्द परि-णामी है क्योंकि वह किया हुआ है, जो-जो पदार्थ किया हुआ होता है वह-वह परिणामी होता है जैसे-घट। शब्द किया हुआ है इसलिए परिणामी है, जो परिणामी नहीं होता वह-वह किया हुआ भी नहीं होता जैसे-बाँभका पुत्र । यह शब्द किया हुआ है, इसलिए बह परिणामी है। ६६। २. इस प्राणीमें बुद्धि है, क्यों कि यह चलता आदि है।६६। ३, यहाँ छाया है क्योंकि छायाका कारण छत्र मौजूद है। ६७। ४, मुहूर्तके पश्चात् शकट (रोहिणी) का उदय होगा स्योंकि इस समय कृत्तिकाका उदय है। ६८१ १. भरणीका उदय हो चुका क्यों कि इस समय कृत्तिकाका उदय है। ईश ई. इस मातुर्लिंग (पपीता) में रूप है क्यों कि इसमें रस पाया जाता है। ७०। प्रतिषेध रूप--१, इस स्थानपर शीतस्पर्श नहीं है अयों कि उष्णता मौजूद है। ७२। यहाँ शीतस्पर्श नहीं है नयों कि शीतस्पर्श रूप साध्यसे विरुद्ध अग्निका कार्य यहाँ धूँआ मीजूद है।७३। (प. मु./३/६३) ३. इस प्राणीमें सुख नहीं, क्योंकि सुखसे विरुद्ध दुःखका कारण इसके मानसिक व्यथा माखूम होती है। ७४। ४. एक मुहूर्तके बाद रोहिणीका उदय न होगा, क्यों कि इस समय रोहिणीसे विरुद्ध अश्विमी नश्चिसे पहले उदय होनेवाले रेवती नक्षत्रका उदय है। ७५। ५. मुहुर्तके पहले भरणीका उदय नहीं हुआ क्यों कि इस समय भरणीसे विरुद्ध पुनर्व सु-के पीछे होनेवाले पुष्यका उदय है ।७६। ६. इस भि चिमें उस अरिके भागका अभाव नहीं है क्योंकि उस ओरके भागके साथ इस ओरका भाग साफ दीख रहा है। 🗸

न्या. दी. ११/६५२-६६/६५-६६/६ यथा-पर्वतीऽयमिनमान् धूम्वत्ता-न्यानुपपत्तेः इत्यत्र धूमः । धूमो ह्यग्नेः कार्यभूतस्तरभावेऽनुपपद्यमाः -नोऽनिन गमपति । कश्चिरकारणरूपः, यथा--वृष्टिभिविष्यति विशिष्ट-मेधान्यथानुपपत्तेः ' इत्यत्र मेधिवशेषः । मेथिवशेषो हि वर्षस्य कारणं स्त्रकार्यभूतं वर्षं गमयति ।६२। कश्चिहिशेषरूपः, यथा--वृशोऽयं शिशपात्वान्यथानुपपत्तेरित्यत्र [शिशपा] शिशपा हि वृक्षविशेषः सामान्यभूतं वृशं गमयति । न हि वृक्षभावे वृक्षविशेषो घटत इति । कश्चिरपूर्वचरः, यथा-- उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयरन्यथानुपपत्तेरित्यत्र कृतिकोदयः । कृत्तिकोदयानन्तरं सुहूत्तन्ते नियमेन शकटोदयो जायत इति कृतिकोदयः पूर्वचरो हेतुः शकटोदयं गमयति । कश्च- दुत्तरचरः, यथा--उइग्गद्भरणिः प्राक् कृत्तिकोदयादित्यत्र कृत्तिको-दयः । कृत्तिकोदयो हि भरण्युदयोत्तरचरस्तं गमयति । कश्चित्सहचरः, यथा मातुलिङ्गरूपबद्धवितुमहिति रसवत्त्वान्यथानुवपत्तेरित्यत्र रसः। रसो हि नियमेन रूपसहचरितस्तदभावेऽनुपपद्यमानस्तह्गमयति 168। स यथा--नास्य मिथ्यात्वम्, आस्तिक्यान्यथोपपत्तेरिस्यत्रा-स्तिक्यम् । आस्तिक्यं हि सर्वज्ञवीतरागप्रणीतजीवादितत्त्वार्थरुचि-लक्षणम् । तन्मिध्यात्ववतो न संभवतीति मिध्यात्वाभावं साधयति ।१६। अस्त्यत्र प्राणिनि सम्यक्त्वं विपरीताभिनिवेशाभावात्। अत्र विपरोताभिनिवेशाभावः प्रतिषेध्रूपः सम्यव्यवसद्भावं साधय-तीति प्रतिषेधरूपो विधिसाधको हेतुः ।५८। नास्त्यत्र घूमोऽरन्यनुप-लब्धेरित्यत्रारन्यभावः प्रतिषेध रूपो घूमाभावं प्रतिषेधरूपमेव साधय-तीति प्रतिषेधरूपः प्रतिषेधसाधको हेतुः । = विधिसाधक-१. कोई कार्यरूप है जैसे यह पर्वत अग्निवाला है, क्यों कि धूमवाला अन्यथा नहीं हो सकता 'यहाँ धूम' कार्यरूप हेतु है। कारण धूम अग्निका कार्य है, और उसके विनान होता हुआ अग्निका झान कराता है। २. कोई कारण रूप है जैसे-'वर्षा होगी, वयों कि विशेष बादल अन्यया नहीं हो सकते, यहाँ 'विशेष बादल' कारण हेतु है। क्यों कि विशेष बादल वर्षाके कारण हैं और वे अपने कार्यभूत वर्षाका बोध कराते हैं। ६२। ३. कोई बिशेष रूप हैं। जैसे--'यह वृष्ट्र है', क्यों कि शिशपा अन्यथा नहीं हो सकती; यहाँ 'शिशपा' विशेष रूप हेतु हैं। क्यों कि शिशपा वृक्षविशेष है, वह अपने सामान्य भूत वृक्षका ज्ञापन कराती है। कारण, वृक्ष विशेष वृक्ष सामान्यके बिना नहीं हो सकता है। कोई पूर्वचर है, जैसे—'एक मुहूर्त के बाद शकटका उदय होगा; क्यों कि कृत्तिकाका उदय अन्यथा नहीं हो सकता। यहाँ कृत्तिकाका उदय' पूर्वचर हेतु है; क्योंकि कृत्तिकाके उदयके बाद मुहूर्त्तके अन्तमें नियमसे शकटका उदय होता है। और इसलिए कृत्तिकाका उदय पूर्वचर हेतु होता हुआ इन्कटके उदयको जनाताहै। ४. कोई उत्तरचर है, जैसे-एक मुहूर्तके पहले भरणीका उदय हो चुका है। नयों कि इस समय कृत्तिकाका उदय अन्यथा नहीं हो सकता' यहाँ कृत्तिकाका उदय उत्तरचर हेतु है। कारण, कृत्तिकाका उदय भरणीके उदयके बाद होता है और इसलिए वह उसका उत्तरचर होता हुआ उसको जानता है। ६. कोई सहचर है, जैसे-भातु लिंग (पपीता) रूपवान् होना चाहिए, क्यों कि रसवान् अन्यथा नहीं हो सकता', यहाँ 'रस' सहचर हेतु है। कारण रस, नियमसे रूपका सहचारी है और इसलिए वह उसके अभावमें नहीं होता हुआ उसका ज्ञापन कराला है १५४। निषेध साधक—९, सामान्य-इस जीवके मिथ्यास्व नहीं है, क्यों कि आस्तिकता अन्यथा नहीं हो सकती । यहाँ आस्तिकता निषेध साधक है, क्यों कि आस्तिकता सर्वज्ञ बीतरागके द्वारा प्रतिपादित तत्त्वार्थोंका श्रद्धान रूप है, वह श्रद्धान मिध्यात्व-वाले जीवके नहीं हो सकता, इसलिए वह विवक्षित जीवमें मिध्यास्वके अभावको सिद्ध करता है। १६। २, विधिसाधक-इस जीवमें सम्यक्त है, क्यों कि मिथ्या अभिनिवेश नहीं है। यहाँ मिथ्या अभिनिवेश नहीं है' यह प्रतिषेत्र रूप है और वह सम्यग्दर्शनके सद्भावको साधता है, इसिलए वह प्रतिषेध रूप विधि साधक हेतु है। ३. प्रतिषेध साधक - 'यहाँ धूँआ नहीं है, क्यों कि अग्निका अभाव है 'यहाँ अग्निका अभाव' स्वयं प्रतिषेध रूप है और वह प्रतिषेधरूप ही धूमके अभावको सिद्ध करता है, इसलिए 'अग्निका अभाव' प्रतिषेध रूप प्रतिषेध साधक हेतु है ।

५. अनुपलब्धि रूप हेतु सामान्य व विशेषके लक्षण

प मु./३/७६-प६ नास्त्यत्र भूतले घटोऽनुगलब्धेः ।७६। नास्यत्यत्र शिश्रपानुसानुपलब्धेः ।प०। नास्त्यत्र प्रतिबद्धसामध्योऽिरनर्धूमानुपन् सब्धेः ।पर। नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेः ।पर। न भविष्यति मुहूतन्ति शकटं कृत्तिकोदयानुपलब्धेः ।प३। नोदगाद्धरणिर्मृहूतिस्त्राक्तत एव ।प४। नास्त्यत्र समतुलाथामुद्रामो नामानुपलन्धेः ।८५। प्राणिति व्याधिविशेषोऽस्ति निराम्यचेष्टानुपलन्धेः।८७। अस्त्यत्र देहिनि दु.खमिष्टसंयोगाभावात् ।८८। अनेकान्तारमकं वस्त्वेकान्तस्व-रूपानुपल्लब्धेः । पर्। =िवधिरूप-१. इस भूतलपर घड़ा नहीं है क्यों कि उसका स्वस्तप नहीं दीखता । ७१। २. यहाँ शिशपा नहीं क्यों कि कोई किसी प्रकारका यहाँ वृक्ष नहीं दीखता । दें। ३. यहाँ-पर जिसकी सामर्थ्य किसी द्वारा रुकी नहीं ऐसी अगिन नहीं है, क्यों कि यहाँ उसके अनुकूत धुआँ रूप कार्य नहीं दोखता है। ८१। ४, यहाँ धुआँ नहीं पाया जाता क्यों कि उसके अनुकृत अग्नि रूप कारण यहाँ नहीं है 14२ । १. एक महर्तके बाद रोहिणीका उदय न होगा, नयों कि इस समय कृत्तिकाका उदय नहीं हुआ। प्रश ६. मुहूर्त के पहले भरणीका उदय नहीं हुआ है क्यों कि इस समय कृत्तिकाका उदय नहीं पाया जाता। 🖙। ७, इस त्ररावर पलड़ेवाली तराजुमें (एक पक्लेमें) ऊँचापन नहीं वयों कि दूसरे परलेमें नीचापन नहीं पाया जाता । प्रा प्रतिषेध रूप-१. जैसे इस प्राणीमें कोई रोग विशेष है नयों कि इसकी चेष्टा नीरोग माञ्चम नहीं पड़ती। नथ २ यह प्राणी दु:खी है क्योंकि इसके पिता माता आदि प्रियजनींका सम्बन्ध छूट गया है १८०० वर्षक पदार्थ नित्य, अनित्य आदि अनेक धर्मवाला है क्यों कि केवल नित्यत्व आदि एक धर्मका अभाव है। ८६।

६. अन्वय व्यतिरेकी आदि हेतुओंके लक्षण

न्या. दी./३/१४२-४४/८१-१०/१ तत्र पञ्चस्योपपननोऽन्वयव्यतिरेकी । यथा-'शब्दोऽनित्यो भवितुमई ति कृतकरवात्, यद्यत्कृतकं तत्तदनित्यं यथा घटः, यदादिनित्यं न भवति तत्तत्कृतकं न भवति यथाकाशम्. तथा चायं कृतकः, तस्मादिनत्य एवेति।' अत्र शब्दं पश्लीकृत्यानित्यत्वं साध्यते । तत्र कृतकरवं हेतुस्तस्य पशीकृतशब्दधमेरवारपक्षधमेरव-मस्ति। सपक्षे घटादौ वर्तमानस्वाद्विपक्षे गगनादाववर्तमानस्वा-दम्बयव्यतिरेकित्वम् ।४२। पश्सपश्वृत्तिर्विपश्ररहितः केवलान्वयी । यथा – 'अदृष्टाद्यः कस्यचित्प्रत्यक्षा अनुमेयत्वात्, यद्यदनुमेयं तत्तत्कस्यचित्रत्यभ्म्, यथागन्यादि' इति। अत्रादद्यादयः पक्षः, कस्यचित्प्रत्यशृत्वं साध्यम्, अनुमेयत्वं हेतुः, अग्न्याचन्वयदृष्टान्तः १४३। पसवृत्ति विपसञ्यावृत्तः सपप्तरहितो हेतुः केवलव्यतिरेकी । यथा-'जोवच्छरीरं सात्मकं भवितुमहिति प्राणादिमत्त्वात् यच-रसात्मकं न भवति तत्तरप्राणादिमन्न भवति यथा सोष्ठम्' इति। अत्र जीवच्छरीरं पक्षः, सात्मकत्वं साध्यम्, प्राणाविमस्त्वं हेतुः. लोष्ठादिव्यतिरेकदृष्टान्तः ।४४। = १. जो पाँच रूपोंसे सहित है वह अन्वयव्यतिरेकी है। जैसे-शब्द अनित्य है, क्यों कि कृतक है, जो-जो किया जाता है वह-बह अनित्य है जैसे घड़ा, जो-जो अनित्य नहीं होता वह-वह किया नहीं जाता जैसे--आकाश। शब्द किया जाता है, इसलिए अनित्य ही है। यह शब्दका पक्ष करके उसमें अनित्यता सिद्धकी जारही है, उस अनित्यताके सिद्ध करनेमें 'किया जाना' हेतु है वह पक्षभूत शन्दका धर्म है। अतः उसके पश्चमत्त्र है। सप्थ घटादिमें रहने और विपश् आकाशादिकमें न रहनेसे सप्ससत्व और विपस्च्यावृत्ति भी है, हेतुका विषय 'अनित्यतः रूप साध्य' किसी प्रमाणसे बाधित न होनेसे अवाधित विषयत्त्र और प्रतिपक्ष साधन न होनेसे असत्प्रतिपक्ष भी विद्यमान है। इस तरह किया जाना हेतु पाँच रूपोंसे विशिष्ट होनेके कारण अन्त्रयज्यतिरेकी है।४२। २. जो पक्ष और सपक्षमें रहता है तथा विगलसे रहित है वह केवलान्वयो है। जैसे – अदृष्ट (पुण्य-पाप) आदिक किसीके प्रत्यस हैं, क्योंकि वे अनुमानसे जाने जाते हैं। जो-जो अनुमानसे जाने जाते हैं वह वह किसोके प्रत्यक्ष हैं जैसे अग्नि आदि। यहाँ 'अष्टष्ट आदिक' पक्ष है, 'किसीके प्रत्यक्ष'साध्य है परन्तु अनुमानसे जाना जाना हेतु है और अग्नि आदि अन्वय दृष्टान्त है।४३। ३. जो पक्षमें रहता है, विपक्षमें नहीं रहता और सपक्षसे रहित है वह हेतु केवलव्यतिरेकी है। जैसे— जिन्दा शरीर जीव सहित होना चाहिए, क्यों कि वह प्राणादिवाला है जो-ओ जीव सहित नहीं होता है बह-बह प्राणादि वाला नहीं होता है जैसे लोष्ठ। यहाँ जिन्दा शरीर पक्ष है, जीव सहितत्व साध्य है, 'प्राणादिक' हेतु है और लोषादिक व्यतिरेकी दृष्टान्त है।

७. अतिशायन हेतुका लक्षण

आप्त मी./१/४ दोपावरणयोहीनिर्निःशेषास्त्यतिशायनात् । क्विचयथा स्वहेतुम्यो बहिरन्तरमल्थयः ।४। चक्वित् अपने योग्य ताप आदि निमित्तोंको पाकर जैसे सुवर्णको कालिमा आदि नष्ट हो जाती है उसी प्रकार जीवमें भी कर्शचित् कदाचित सम्पूर्ण अन्तरंग व बाह्य मलोंका अभाव सम्भव है, ऐसा अतिशायन हेतुसे सिद्ध है।

८. हेतुबाद व हेतुमत्का लक्षण

ध, १३/४,६,६०/२००/५ हिनोति गमयति परिच्छिनत्यर्थमारमानं चेति प्रमाणपञ्चकं वा हेतु। स उच्यते कथ्यते अनेनेति हेतुवादः धुतज्ञानम् । म्लो अर्थ और आत्माका 'हिनोति' अर्थात् ज्ञान कराता है उस प्रमाण पंचकको हेतु कहा जाता है। उक्त हेतु जिसके द्वारा 'उच्यते' अर्थात् कहा जाता है वह श्रुतज्ञान हेतुवाद कहलाता है।

स्. पा./पं. जयचन्द/६/५४ जहाँ प्रमाण नय करि वस्तुकी निवधि सिद्धि जामें करि मानिये सो हेतुमल है।

२. हेतु निर्देश

९. अन्यथानुपपत्ति ही एक हेतु पर्याप्त है

सि. वि./मू./६/२३/३६१ सतर्केणोद्धाते रूपं प्रत्यक्षस्येतरस्य वा । अन्य-थानूपपन्नत्व हेतोरेकलक्षणम् ।२३।

सि. वि./टी./१/११/३४६/२१ विषक्षे हेतुसद्भाववाधकप्रमाणव्यावृत्तौ हेतुसामध्यमन्यथानुषपत्तरेद । अरस्यक्ष या आगमादि अन्य प्रमाणीं के द्वारा प्रहण किया गया साधन अन्यथा हो नहीं सकता, इस प्रकार अहापोह स्वप ही हेतुका लक्षण है।२३। प्रश्न-विषक्षमें हेतुके सद्भावके वाधक प्रमाणकी व्यावृत्ति हो जानेपर हेतुकी अपनी कौन सी शक्ति है जिससे कि साध्यको सिद्धि हो सके। उत्तर-यह साधन अन्यथा हो नहीं सकता, इस प्रकारको अन्यथानुषपत्तिकी ही सामध्ये है।

च्या. बि./मू./२/१५४/१७७ अन्यथानुपपन्नस्वं यत्र तत्र त्रयेण किस् ? नान्यथानुपपत्रस्वं यत्र तत्र त्रयेण किस् १.११४। = अन्यथा अनुपपत्रस्वके घटित हो जानेपर हेतुके अन्य तीन सक्षणसे क्या प्रयोजन और अन्यथानुपपत्रस्वके घटित न होनेपर भी उन तीन सक्षणोंसे क्या प्रयोजन है १९७०।

प. सु /३/६४.६० व्युराज्ञप्रयोगस्तु तथोपपत्यान्यथानुपपत्त्यैव वा १६४। तावता च साध्यसिद्धिः १६७। = व्युरपञ्च प्रकावे लिए तो अन्यथा अनुपपत्ति रूप हेनुका प्रयोग ही पर्याप्त है १६४। वे लोग तो उदाहरण आदिके प्रयोगके किना ही हेतुके प्रयोगसे ही व्याप्तिका निश्चय कर सेते हैं १६७।

२. अन्यथानुपपत्तिसे रहित सत्र हेत्वामास है

न्या, वि./मू./२/२०२/२३२ अन्यथानुपपन्नत्वरहिता थे त्रिलक्षणाः। अकिचित्करान् सर्वान् तान् वर्षः संगिरामहे ।२०२। = अन्यथा अनुपपन्नत्वसे झून्य जो हेतुके तीन लक्षण किये गये हैं वे सब अकिचित्कर हैं। उन सबको हम हेत्वाभास कहते हैं।२०२। (न्या, वि/मू./२/१७४/२१०)

३. हेतु स्वपक्ष साधक व परपक्ष दूषक होना चाहिए

प. मु./६/७३ प्रमाणतदाभासौ दुष्टतयोद्धाषितौ परिहृतापरिहृतदोषौ वादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो दुष्ण भूषणे च १०६१ — प्रथम वादी के हाराप्रयुक्त प्रमाणको प्रतिवादी हारा दुष्ट बना दिया जानेपर, यदि वादी उस दूषणको हटा देता है तो वह प्रमाण वादीके लिए साधन और प्रतिवादीके लिए दूषण है। यदि वादी साधनाभासको प्रयोग करे, और पीछे प्रतिवादी हारा दिये दूषणको हटा न सके तो वह प्रमाण वादीके लिए दूषण और प्रतिवादीके लिए भूषण है। यही स्वपक्ष साधन और परपक्ष दूषणको व्यवस्था है।

स. भं. तः/१०/३ हेतुः स्वपशस्य साधकः परपक्षस्य दूषकश्च । = हेतुः स्वपशका साधक और परपक्षका दूषक होना चाहिए।

४. हेतु देनेका कारण व प्रयोजन

- प, मु,/अन्तिम श्लोक परीक्षामुखमादर्श हैयोपादेयतत्त्वयोः। संविदे मादशो बालः परीक्षादक्षबद्दञ्यधाम्।१। =परीक्षा प्रवीण मनुष्यकी तरह मुक्त बालकने हेय उपादेय तत्त्वोंको अपने सरीखे बालकोंको उत्तम रीतिसे समफानेके लिए दर्पणके समान इस परीक्षामुख प्रन्थकी रचना की है।
- स. भं. त./१०/२ स्वेष्टार्थसिद्धिनिच्छता प्रवादिना हेतुः प्रयोक्तव्यः, प्रतिज्ञामात्रेणार्थसिद्धरभावात्। = अपने अभीष्ट अर्थकी सिद्धि चाहने वाले प्रौढ वादीको हेतुका प्रयोग अवश्य करना चाहिए। क्योंकि केवल प्रतिज्ञा मात्रसे अभिलिष्ति अर्थकी सिद्धि नहीं होती।
 - ★ जय-पराजय व्यवस्था —३, न्याय/२।

-३. हेत्वाभास निर्देश

१. हेरवामास सामान्यका लक्षण

न्या. वि./म्./२/१७४/२१० अन्यथानुपपन्नत्वरहिता ये विडम्बिताः ।१७४। हेतुत्वेन परेस्तेषां हेत्वाभासत्वमीक्षते।=अन्यथानुपपन्नत्वसे रहित अन्य एकान्तवादियोंके द्वारा जो हेतु नहीं होते हुए भी, हेतुरूपसे ग्रहण किये गये हैं वे हेत्वाभास कहे गये हैं।

न्या. दी./३/९४०/८८/६ हेतुलश्रणरहिता हेतुवदवभासमानाः खलु हेरवाभासाः । = जो हेतुके सक्षणसे रहित हैं, और कुछ रूपमें हेतुके समान होनेसे हेतुके समान प्रतीत होते हैं वे हेरवाभास हैं। (न्या. दी./३/९६०/१००/१) (न्या. सू. भाषा./१/१/४/४४)

२. हेत्वामासके भेद

न्या, मृ /२/१०१/१२६ विरुद्धासिद्धसंदिग्धा अकिचित्करविस्तराः इति ।१०१। = विरुद्ध, असिद्ध, सन्दिग्ध और अकिचित्कर ये चारों ही अन्यथानुपपन्नत्व रूप हैतुके लक्षणसे विकल होनेके कारण हेत्वा-भास हैं। (न्या. वि. मृ./२/१६७/१२५)

सि. वि /मू./६/३२/४२६ एकलक्षणसामध्यि देवाभासा निवर्तिताः। विरुद्धानेकान्तिकासिद्धाञ्चाताकिञ्चित्करादयः ।३२। = अन्यथानु-पपत्ति रूप एक लक्षणकी सामध्यसे ही विरुद्ध, अनैकान्तिक, असिद्ध अञ्चात व अकिचित्कर आदि हैत्वाभास उत्पन्न होते हैं। अर्थात् उत्तरोक्त लक्षणको वृत्ति विपरोत आदि प्रकारोंसे पायी जानेके कारण ही ये विरुद्ध आदि हैत्वाभास हैं।

श्लोः वा. ४/न्या./२७३/४२६/७ पर भाषामें उद्गधत—सञ्यभिचारविरुद्ध-प्रकरणसमसाध्यसमातोतकालाः हेत्वाभासाः । = सञ्यभिचारी, विरुद्ध, प्रकरणसम, साध्यसम, अतीतकाल ये पाँच हेत्वाभास हैं। (न्या. सू./ मू. १/४/४४) न्या. दी./३/६४०/८६/४ पश्च हेर्नाभासा असिद्धविरुद्धनैकान्तिककाला-त्ययापदिष्ठप्रकरणसमाख्याः संपन्ताः । = हेत्नाभास पाँच हैं— असिद्ध, विरुद्ध, अनेकान्तिक, कालत्ययापदिष्ठ और प्रकरणसमे।

प. मु./६/२१ हेत्वाभासा असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकि चित्कराः। = हेत्वाभासके चार भेद हैं -- असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक और अकिचित्करा

स. म./१४/१ विरोधस्योपलक्षणस्वात् वैयधिकरणम् अनवस्था संकरः व्यतिकरः संशयः अप्रतिपत्तिः विषयव्यवस्थाहानिरितिः = सप्त
भंगी वादमें विरोध, वैयधिकरण्य, अनवस्था, संकर, व्यतिकर, संशय, अप्रतिपत्ति और विषयव्यवस्था हानि ये आठ दोष आते हैं।

- * हेतुओं व हेत्वामासोंके मेदोंका चित्र-हे, न्याय/१ :
- हेन्वाभासके भेदोंके लक्षण—हे. वह-वह नाम ।

हेतुवाद—दे, हेतु/१।

हेतु विचय धर्मध्यान—दे. धर्मध्यान/१/६/१० 1

हेत्वन्तर—न्या, सू./मू. व. टी./४/२/६/३११ अविशेषोक्ते हेती प्रतिषिद्धे विशेषमिच्छतो हैत्वन्तरम् । है। निदर्शनम् एकप्रकृतीदं व्यक्तमिति प्रतिज्ञा कस्माद्धे तोरेकप्रकृतीनां विकाराणां परिमाणाह् मृत्यूर्वकाणां शराबादीनां इष्टं परिमाणं यावान्प्रकृतेवर्धहो भवति ताबान्विकार इति दृष्टं च प्रतिविकारं परिमाणम्। अस्ति चेदं परिमाणं प्रतिब्यक्तं सदेकप्रकृतीनां विकाराणां परिमाणात् पश्याभी व्यक्तिमद्नेकप्रकृतीति। अस्य व्यभिचारेण प्रत्यवस्थानं नानाप्रकृतीनां च विकाराणां दृष्टं परिमाणमिति ।तिददमपि शेषोक्ते हेतौ प्रतिषिद्धे निरोपं अनुवतो हेरवन्तरं भवति। = विरोपोंका सक्ष्य नेहीं करके सामान्य रूपसे हेतुके कह चुकनेपर पुनः प्रतिवादी द्वारा हेतुके प्रतिषेध हो जानेपर विशेष अंशको विवक्षित कर रहे चादीका हैरवन्तर निप्रहस्थान हो जाता है।ई। उदाहरण--जैसे व्यक्त एक प्रकृति है यह प्रतिज्ञा है, एक प्रकृति वाले विकारोंके परिणामसे यह हेतु है। मिट्टीसे बने शराव आदिकोंका परिमाण दृष्ट है, जितना प्रकृतिका व्यूह होता है उतना हो विकार होता है और यह परिमाण प्रतिब्यक्त है। वह एक प्रकृति वाले विकारों के परिमाण से देखा जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि व्यक्त एक प्रकृति है। (श्लो.वा./४/ न्या. १११/३७१/६ में इसपर चर्चा।

हेत्वाभास-दे. हेतु/३।

हैमग्राम अध्यत् मिललनाथ चक्रवर्ती एम. ए. एल. टी.ने अपमे प्रवचनसारकी प्रस्तावनामें लिखा है कि मदास प्रेसीडेन्सीके मलाया प्रदेशमें 'पोन्तूरगाँव' को ही प्राचीन कालमें हेमग्राम कहते थे। (कुरल काव्य/प्र. २१)।

हैमचंद - १. काष्ठा संघकी गुर्वावलीके अनुसार (दे. इतिहास) आप कुमारसेन (काष्ठा संघके संस्थापक) के शिष्य तथा पद्मनित्के गुरु थे। समय-वि. १५०, (ई. १२३)—दे. इतिहास/७/१। २. गुजरातके धंधुप्राममें चचनामक वैश्यके पुत्र थे। वचपनका नाम चंगदेव था। पाँच वर्षकी आयुमें देवचन्द्र गणीसे दीक्षा ग्रहण की। तब इनका नाम हेमचन्द्र रखा गया और सोमदेवकी उपाधिसे विभूषित हुए। ये श्वेताम्चराचार्य थे। कृतियाँ—गुजराती व्याकरण, सिद्ध हेम शब्दानु-शासन, प्राकृत व्याकरण, अभिधान चिन्तामणि कोष (हैमी नाम-माला), अनेकार्थसंग्रह, देशीनाममाला, काव्यानुशासन, छन्दानुशासन, प्रमाणमीमांसा, अन्ययोग व्यवच्छेद (द्वाविश्रतिका स्याद्वाद मञ्जरी) अयोग व्यवच्छेद द्वाविश्रतिका, अध्यात्मोपनिषद्ध, योगशास्त्र, द्वाश्रय महाकाव्य, निघंदुशेष, वीतरागस्तीत्र, अन्तरश्लोक (द्वादशानु-

प्रेक्षा), त्रिषष्टि पुरुष चरित । समय—ई, १०८८-११७३ । (सि, वि./ ४२ पं. महेन्द्र) (प. प्र./प्र ७४,११७, A. N. Up.) (का. अ./प्र. १७ A. N. UP.) ।

हेमराज (पांडे) — यह पण्डित रूपचन्दके शिष्य थे। कृति — प्रवचनसार टीका, पञ्चास्तिकाय टीका, भाष्य भक्तामर, गोम्मटसार वचनिका, नयचक वचनिका, सितपट चौरासी बोल (श्वेताम्बरियों-पर आक्षेप) समय --वि. श. १७-१८ (पं. का. प्र /२पं. पञ्चालाल): (हि. जै. सा. इ./१३१ कामता)।

हैमवत — १. पहले भारतवर्षका ही दूसरा नाम रहा है। यथा — इमं हैमवतं वर्ष भारतं नाम विश्रुत्तम्। (मरस्य/११२/२०) = आगे चलकर वह स्वतन्त्र एक वर्ष मान लिया गया है। यथा — इसं तु भारतं वर्ष ततो है मवतं परम्। (भारत भोष्म/६/७); (ज. प./प./१४२ A. N. Up.)। २. रा. वा./३/१०/१/१७२/१७ हिमवन्नाम पर्वतः तस्यादूरभवः सोऽिसन्नस्तीति वाणि सित्त हैमवतो वर्षः। = [अडाई द्वोपोंमें स्थित प्रसिद्ध द्वितीय क्षेत्र है] हिमवाच् नामके पर्वतके पासका क्षेत्र, या जिसमें हिमवाच् पर्वत है वह हैमवत है। २. हैमवत इस क्षेत्रका अत्रस्थान व विस्ताराहि — दे. लोक/६/३; ३. हैमवत क्षेत्रमें काल वर्तनादि सम्बन्धी — दे. काल; ४, हिमवाच् पर्वतस्य कृट व उसका स्वामी देव — दे. लोक/६/४, ६. रुचक पर्वतस्थ एक कृट — दे. लोक/६/१३।

हैमी नाममाला—हे. शब्दकोष।

हैरण्यवतः --- १, रा.वा./३/१०/१७/१८१/१६ हिरण्यवात् रुविमनामा पर्वतस्तस्यादूरभवत्वाद्धरण्यवत्तव्यपदेशः। -- [अढाई द्वीपस्थ प्रसिद्ध छठा क्षेत्र है] रुक्मिके उत्तर शिखरीके दक्षिण तथा पूर्व पश्चिम समुद्राँ-के भीच हैरण्यवत क्षेत्र है । २. हैमबत क्षेत्रका अवस्थान व विस्ताराहि— दे. लोक/३/३। ३. हैमबतक्षेत्रमें काल वर्तन आदि सम्बन्धो विदो-षता—दे. काल/४/१६। ४, रुक्मि पर्वतस्थ एक कूट व उसका स्वामी देव—दे. लोक/४/४:६/शिखरी पर्वतस्थ एक कूट व उसका स्वामी देव— दे. लोक/४/४:

होटसल यह नगर कर्नाटक (दक्षिण) में है। यहाँके राज्यके आधीन ही जैनियोंका प्रसिद्ध स्थान मुडबिद्धी रहा है (ध्रावाप्रस्थी।

होलोरेणुका चरित — पं. जिनदास द्वारा वि. १६५० में बिखित ७ अध्याय ५४३ रतोक प्रमाण पंचनमस्कार महातम्य प्रदर्शक संस्कृत काव्य। (ती./४/८४)।

ह्य नसांग — एक चीनी यात्री था। राजा हर्षवर्धनके समय भारतमें आया। समय — ई. ६२०-६४६ (न्यायावतार । प्र. २ सतीश चन्द-विद्याभूषणके अनुसार वह ई. ३२६ में भारत आया था। (वर्तमान भारतका इतिहास)।

हर्स्य — ध./१३/४, ४, ४७/२४=/३। एकमात्रो हस्यः। = एक मात्रा वाला वर्ण हस्य होता है।

हरव स्वर—दे. अक्षर 1

हिंगि १. हैमनत पर्नतस्थ एक कूट--दे. लोक/६/४,२, हैमनत पर्नतस्थ महापद्म हद तथा होकूटकी स्नामिनी देवी-- दे. लोक/६/४,३,रूचक पर्वतस्थ निवासिनी दिक्कुमारी देवी--दे. लोक/६/१३।

हीमंत-राजगृहमें स्थित एक पर्वत--दे. मनुष्य/प्र।

इति चतुर्थः खण्डः

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

[परिशिष्ट]

शतक — इस नाम के दो प्रन्थ प्राप्त हैं। १. 'कर्म प्रकृति' नामक श्वेतास्वर प्रनथ के वड़े भाई के रूप में प्रसिद्ध इस प्रनथ के रचियता भी 'कम प्रकृति' के कर्ता आ. शिवशर्म सूरि (वि. ५००) ही बताये जाते हैं। गाथा संस्था १०७ होने से इसका 'शतक' नाम सार्थक है, और कमों के बन्ध उदय अधिका प्ररूपक होने से 'बन्ध शतक' कहलाता है। ३१३। दृष्टिवाद अंग के अष्टम पूर्व 'कर्म प्रवाद' की बन्ध विषयक गाथाओं का संग्रह होने से इसे 'बन्ध समास' भी कहा जा सकता है। ३१४। गाथा संख्या १०६ में इसे 'कर्म प्रवाद' आ'ग का संक्षिप्त स्यन्द यासार कहागयाहै। ३१२ । चूर्णिकार चन्द्रिष महत्तर ने इसकी उत्पत्ति दृष्टिवाद अंग के 'अग्रणी' नामक द्वि. पूर्व के अन्तर्गत 'महाकर्म प्रकृति प्राभृत' के 'बन्धन' नामक अष्टम अनु-थोग द्वार से बताई है। ३६८। इसके पूर्वाधे भाग में जीव समास, गुणस्थान, मार्गणा स्थान आदि से समवेत जीवकाण्डका, और अप-रार्घभाग में कर्मों के बन्ध उदय सच्च की व्युक्तिस्वित विषयक कर्मकाण्ड का विवेचन निबद्ध है। ३१२। रचयिता ने अपने 'कर्म प्रकृति' नामक ग्रन्थ में सर्वत्र 'शतक' के स्थान पर 'ब्रन्ध शतक' का नामां रतेस्व किया है । २१३ । समय – वि. ५०० । 🖼 /१/पृष्ठ) । इसपर अनेकों चूर्णियां लिखी जा चुकी है। (दे, कोष ॥ में परिशिष्ट १/चूर्णि) ।

२. उपर्युक्त ग्रन्थको ही कुछ अन्तरके साथ श्री देवेन्द्र सूरिने भी लिखा है जिसपर उन्हीं की एक स्थोपझ टीका भी है। समय— वि. श. १३ का अन्त। (जै./१/४३६)।

शिवशर्म सूरि एक प्राचीन श्वेताम्बराचार्य। नन्दीसूत्र आदि के पाठ का अवलोकन करने से अनुमान होता है कि आप सम्भवतः देव द्विगणी क्षमाश्रमण से भी पूर्ववर्ती हैं और दशपूर्वधारी भी हैं। ३०३। इष्टिवाद अंग के अंशभूत 'मृहाकर्म प्रकृति प्राभृत' का ज्ञान इन्हें आचार्य परम्परा से प्राप्त था। उच्छित्र हो जाने की आशंका से अपने उस झान को 'कर्म प्रकृति' नामक प्रम्थ में निबद्ध कर दिया था। (पीछे 'कन्ध शतक' के नाम से उसी का कुछ विस्तार किया)। श्वेताम्बरामनाथ में वयों कि इष्टिवाद अंग बी. जि. १००० तक जीवित रहा माना जाता है, इस्तिये आपको वि, १०० के आसपास स्थापित किया जा सकता है। ३०४। (जै./१/पृष्ठ)।

मुभनित्व रिवनित्व इन्द्रनन्दी कृत श्रुतावतार श्लोक १७१-१७३ के अनुसार आपको आचार्य परम्परा से घट्रकण्डागम विषयक सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त था। इनके समीप में श्रवण करके ही आ. वप्पदेव ने घट्रकण्डागम तथा कथायपाहुड़ पर व्याख्या सिखी थी। प्राचीन श्रुतघरों की श्रेणी में बैठाकर यद्यपि डा. नेमिचन्द ने इन्हें वी. नि. श. १-६ (ई. श. १) में स्थापित करने का प्रयस्न किया है, परन्तु उनकी यह कल्पना इसस्तिये कुछ संगत प्रतीत नहीं होती 'क्योंकि घट्रकण्डागम के रचितता आ. भूतवलि के कास की प्रविविध वी. नि. ६६३ से उत्पर किसी प्रकार भी से जायी जानी सम्भव नहीं है। (दे. कोष ।/परिशिष्ट २)।

षद्वण्डांगम---भगवान् महावीर से आचार्य परम्परा द्वारा आगत श्रुतज्ञान का आंश होने से क्षायपाहुड के पश्चात घट्रकण्डागम ही दिगम्बर आमनाय का द्वितीय महनीय प्रस्थ है। अग्रायणी नामक

द्वितीय पूर्व के 'महारूम्मं प्रकृति' नामक चौथे प्राभृत का विवेचन इसमें निषद्ध है (जें./१/६१)। इसका असली नाम क्या था यह आज ज्ञात नहीं है। जीवस्थान आदि छः खण्डों में विभक्त होने के कारण इसका 'घट्खण्डागम' नाम असिद्ध हो गया है। (जै./१/४१) । इसके प्रत्येक खण्ड में अनेक-अनेक अधिकार है। जैसे कि जीवस्थान नामक प्रथम खण्डमे सरप्ररूपणा, द्रव्य प्रमाणानुगम आदि आठ अधिकार है। इसके रचियता के विषय में धवलाकार श्री वीरसेन स्वामी ने यह लिख। है कि "आ, पुष्पदन्त ने 'बीसदि' नामक सूत्रों की रचना की, और उन सूत्रों को देखकर आ, भूतविल ने द्रव्य प्रमाणानुगम अपूरि विशिष्ट ग्रन्थ की रचना की"। (घ. १/पृष्ठ ७१)। इस 'अविशिष्ट' हाब्द पर मे यह अनुमान होता है कि आ.. पुष्पदन्त (ई.६६-१०६) द्वारा रचित 'बीसदि' सूत्र ही जीवस्थान नामक प्रथम खण्ड का सरप्ररूपणा नामक प्रथम अधिकार है जिसमें बीस प्ररूपणाओं का विवेचन नित्रद्ध है। इस खण्ड के शेष सात अधिकार तथा उनके आगे शेष पांच खण्ड आर् भृतकलि की रचनाहै। यदि इन दोनों ने आर् धरसेन (वी. नि. ६३०) के पास इस सिद्धान्त का अध्ययन किया है तो इस ग्रन्थ के आदा तीन खण्डों की रचना वी, नि, ६५० (ई, १२३) के आसपास स्थापित की जासकती है (जै./२/१२३) और ये तीन खण्ड टीका सिखने के सिये आ. कुन्द कुन्द (ई. १२७) को प्राप्त हो

इन छ : खण्डों में से 'महाबन्ध' नामक अन्तिम खण्ड को छोड़-कर शेष ६ खण्डों पर अनेकों टीकायें लिखी गयी हैं। यथा--१. आदा तीन खण्डों पर आ, कुन्दकुन्द (ई. १२७) कृत 'परिकर्म' टीका। २. आदा ६ खण्डों पर आ, समन्त भन्द्र (ई. श. २) टीका। कुछ बिद्वानों को यह बात स्वीकार नहीं है)। ३. आदा पांच खंडों पर आ. शामकुण्ड (ई. श. ३) कृत 'पद्धति' नामक टीका। ४. तम्बूला-चार्य (ई. श. १-४) कृत 'चूड़ामणि' टीका। ६, आ, बण्पदेव (ई. श ई-७) कृत 'ट्याल्या प्रकृष्ठि' टीका। (जै./१/२६३ पर उद्धृत इन्द्रनन्दि श्रुतावतार)।

सरकार्म इन्द्रनिद कृत श्रुताबतार के अनुसार यह ग्रन्थ पर्एंडागम के छः खंडों के अतिरिक्त वह अधिक खंड है. जिसे कि आक्र अपने (ई. इं. ६-७) कृत उपर्युक्त 'व्याख्या प्रश्निष्ठि' की टीका के रूप में आ, वीरसेन स्वामी (ई. ७७०-८२७) ने रचा है। (से. व्याख्या प्रश्निष्ठि)। षद्खंडागम के 'वर्गणा' नामक पंचम खंड के अन्तिम सूत्र को देशामशंक मानकर उन्होंने निचन्धनादि अठारह अधिकारों में विभक्त इसका धवला के परिशिष्ट रूपेण ग्रहण किया है। मुद्रित षट्खंडागम की १६ वीं पुस्तक में प्रकाशित है। (ती./१/६६); (और भी दे, आगे 'सरकर्म पष्जिका')।

सत्कर्म पिठजिका - धवला के परिशिष्ट रूप से गृहीत 'सरकर्म'

प्ररूपणा के निवन्धन आदि अठारह योगद्वारों या अधिकारों में से

प्रथम वार पर रिचत यह एक ऐसी टीका है जिसे लेखक ने स्वयं,
तथा आचार्यों ने भी 'सु-महार्थ' अथवा 'महार्थ' कहा है। उन-उन
अधिकारों की पूरी टीका न होकर यह केवल उन विषयों का
खुलासा करती है जो कि उन अधिकारों में अतिदूर अवगाहित
प्रतीत होते है। पर्खंडागमके 'महाबन्ध' नामक षष्टम खड की ताड़पत्रीय प्रति के आदा २७ पत्रों पर यह अंकित है। (कै./१/२-४-२६)।

इसके रचिता के काल तथा नाम का स्पष्ट उन्तेख कहीं उपलब्ध नहीं है, परन्तु 'महाबन्ध' की ताडपत्रीय प्रति पर लिखा होने से तथा इसके कितपय उन्लेखों का अवलाकन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी रचना सम्भवतः धवलाकार श्री बोरसेन स्वामी के सामने (ई. ७७०-८२०) में अथवा उनके पश्चात् तत्काल ही हो गयी थी। इसलिये बहुत सम्भव है कि उनके शिष्य श्री जिनसेन स्वामी ने श्रीपाल, पहमसेन तथा देवसेन नाम वाले जिन तीन विद्वानों का नामोन्लेख किया है और इस हेतु से जो उनके गुरु भाई प्रतीत होते हैं, उनमें से ही किसी ने इसकी रचना की हो। (जै./१/२६२)।

सम्तिकां — कमों के बन्ध उदय सस्व विषयक चर्चा करने वाला, श्वेताम्बर आम्नाय का यह ग्रन्थ ७० गाथा युक्त होने के कारण प्राकृत भाषा में 'सत्तिर' नाम से प्रसिद्ध है। संस्कृत में इसे 'सम्तितका' भी कहा जा सकता है। ३१८। प्रद्याप गाथा १ में इसके रचयिता ने इसे शिन्दार्म सूरि कृत 'शतक' की भांति दृष्टिवाद आंग का संक्षिप्त स्थन्द या सार कहा है. तदिप यह उससे भिन्न है, वयों कि शिवशमं सूरि की हो वूसरी कृति 'कर्म प्रकृति' के साथ कई स्थलों पर मतभेद पाया जाता है। ३२१। इस पर रचित एक चूर्ण (दे, कोष ॥/परि-शिष्ट) के अतिरिक्त आ अभयदेव सूरि (वि. १०८०-११३५) तथा आ, मलयगिरि (वि. श. १२) कृत टीकायों भी उपलब्ध हैं। आ जिनमद्र गणी के विशेषावश्यक भाष्य (वि. ६५०) में क्यों कि 'कर्म प्रकृति' तथा 'शतक' की भाँति इसकी गाथायों भी उद्धृत हुई मिलती हैं, इसिलये इसे हम वि. श. ७ के पश्चात् का नहीं कह सकते। (जै./१/पृष्ठ)।

सिहस्रि —तत्त्वार्थाधियम भाष्य के वृत्तिकार सिद्धसेन गणी के दादा गुरु (दे. आगे सिद्धसेन गणी)। ये श्वेताम्बराचार्य महलवादी कृत— 'तय चक' के वृतिकार माने जाते हैं। ३३०। इनकी इस वृत्ति में एक ओर तो विशेषावश्यक भाष्य (वि. ६६०) के कुछ बावय उद्धृत पाये जाते हैं और दूसरी ओर बौद्धाचार्य धर्मकीर्त्त (वि. ६२२-७०७) का यहां कोई उच्लेख प्राप्त नहीं होता, जबकि इनके प्रशिष्य सिद्धसेन गणी ने अपनी 'तत्त्वार्थभाष्य वृत्ति' में उनका पर्याप्त आश्य लिया है। इस्लिये इन्हें हम वि. श. ७ के मध्य में स्थापित कर सकते हैं। (जे /१/३३०-३६४); (जे./२/३०९)।

सिद्धीय -- जिप्तानि भव प्रपञ्च कथा के रचयिता एक श्वेतान्मरा -चार्य। उक्त प्रनथ के अनुसार सूर्याचार्य के शिष्य छेल महत्तर और उनके स्वामी दुर्गा स्वामी हुए। इन दुर्गा स्वामी ने ही इनको तथा इनके शिक्षा गुरु गर्ग स्वामी को दीक्षित किया था। समय - प्रनथ रचना काल वि. १६२ (ई. १०६)। (जै./१/३६१)।

सिद्धसेन दिवाकर — हिगम्बर आचार्य आप दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दौनों आम्नायों में प्रसिद्ध है। दिवाचर की उपाधि इन्हें श्वेताम्बर वार्ग अभयदेव सूरि (वि. श. १२) ने सन्मति सूत्र की अपनी टीकामें प्रदान की हैं जो दिगम्बर आम्नाय में प्राप्त नहीं है। दिगम्बर आम्नाय में प्रदान की हैं जो दिगम्बर आम्नाय में प्राप्त नहीं है। दिगम्बर आम्नाय में इन्हें सन्मति सूत्र के साथ-साथ करपाण मन्दिर स्तोत्र जैसे कुछ भक्तिपरक यन्थों के भी रचिवता माना गया है, अवाक श्वेताम्बर आम्नाय में इन्हें न्यायावतार तथा द्वात्रिशिकाओं आदि के कर्ता कहा जाता है। २१२। यं जुगल किशोर जी सुख्तार के अनुसार ये दोनों व्यक्ति भिन्न हैं। द्वात्रिशिकाओं आदि के कर्ता सिद्धसेन गणी हैं जो श्वेताम्बर थे। उनकी चर्चा आगे की जायेगी। सन्मति सूत्र के कर्ता सिद्धसेन दिगम्बर हैं। आ, जिनसेन ने आदि-

पुराण तथा हरिनंशपुराण में इनकी मुक्त कण्ठ से प्रश्नसा की है। २०६। आ. समन्त भद्र की भौति इनके विषय में भी यह कथा प्रसिद्ध है कि कल्याण मन्दिर स्तीज के प्रभाव से इन्होंने रुद्र लिंग को फाइ-कर राजा विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त द्वि.) को सम्बोधित किया था। १२०७-२०६।

गुरु-आप उज्जैनी मे देवर्षि ब्राह्मण के पुत्र और वृद्धवादि के शिष्य थे। २०६। धर्माचार्य को भी इनका गुरु बताया जाता है 1२०७। कृतियें—सन्मति सूत्र, कल्याण मन्दिर स्तोत्र, तथा द्वात्रि-शिकाओं में से कुछ इनकी हैं। २१०। समय – इनके समय के विषय में भी मतभेद पाया जाता है। कट्टरपंथी श्वेताम्बर आचार्य इन्हें कुन्दकुन्द से भी पहले मि. श. १ में स्थापित करते हैं, परन्तु स्वेता-म्भर के प्रसिद्ध विद्वान् पं. सुखलाल जी मालवणिया आ - पूज्यपाद (बि. इा. ६ पूर्वार्घ) कृत सर्वार्थ सिद्धि में तथा क्रेनेन्द्र ब्याकरण में इनके कतिपय सूत्र तथा वात्रय उद्धृत देखकर इनका काल वि, श. 🛊 का प्रथम पाद और वि. श. ४ का अन्तिम पाद कल्पित करते हैं ।२०१। दिगम्बर विद्वानीं में मुख्तारसाहब इन्हें पूज्यपाद (बि. श्. ६) और अकलंक भट्ट (बि श. ७) के मध्य वि. ६२६ के आसपास स्थापित करते हैं। इस विषय में इनका हेतु यह है कि एक ओर तो इनके द्वारा रचित सन्मति भूत्र के बाक्य विशेषावश्यक भाष्य (वि. ६५०) में तथा धवला जय धवला (वि. ७१३-७६३) में उद्धत पाये जाते हैं और दूसरी ओर सन्मति सुत्र में कथित ज्ञान तथा दर्शन उपयोग के अभेदबाद की चर्चा जिस प्रकार अकर्न क (बि. श. ७) कृत राजवार्तिक में पाई जाती है उस प्रकार पूज्यपाद (वि. श. ६) कृत सर्वार्थ सिद्धि में नहीं पायी जाती/२११। (तीः/२/पृष्ठ)।

सिद्धसेन (गणी) - श्वेताम्बर आचार्य थे। मूल आगम प्रन्थों को प्राकृत से संस्कृत में खपान्तरित करने के विचार मात्र से इन्हें एक नार श्वेताम्बर संघ से १२ वर्ष के लिये निष्कासित कर दिया गया था। इस काल में ये दिगम्बर साधुओं के सम्पर्क में आये और इन्हों दिनों उनसे प्रभावित होकर इन्होंने भक्तिपरक द्वाविशिकाओं की रचना की। दिगम्बर संघ में इनका प्रभाव बढ़ता देख क्षेताम्बर संघ ने इनके प्रायश्चित की अवधि घटा दी और ये पुनः श्वेताम्बर संघ में आगए। (ती,/२/२१०)। आ, शीलांक (वि, श. १-१०) ने अपनी 'आचारांग सुत्रवृत्ति' में इनका 'गन्धहस्ती' के नाम से उक्लेख किया है (दे, गन्ध इस्ती)। यद्यपि श्वेताम्बर लोग इन्हों ही मित सूत्र का कर्ता मानते हैं, परन्तु मुख्तार साहब की अपेक्षा ये उनसे भिन्न हैं (दे, सिद्धसेन दिवाकर)।

गुरु—हस्वाधिधिम भाष्य पर लिखित अपनी वृत्ति में आपने अपने को दिन्न गणी के शिष्य सिंह सृरि (नि. श. ७ का अन्त) का प्रशिष्य और भारनामी का शिष्य घोषित किया है (जै./१/३२१) कृतियें—तस्वाधिधिम भाष्य पर बृहद् वृत्ति, न्यायाक्तार तथा भक्तिपरक कुछ द्वानिशिकार्थे। (ती./१/२१२) समय— एक ओर तो आपकी तस्वाधिधिम वृत्ति में बौद्धाचार्य धर्मकीर्ति (वि. श. ७ का अन्त) का और अक्लंक भट्ट (वि.श.७) कृत 'सिद्ध विनिश्चय का उक्लेख उपनथ्ध होता है.और दूसरी ओर प्रभावक चास्त्रिति श.८) में आपका नामोक्लेख पाया जाता है, इसिलये आपको वि. श. ५ के पूर्वाध में स्थापित किया जा सकता है (जै./२/३३१)। आपके दादा-पृष्ठ सिहसूरि का काल क्योंकि वि. श. ७ निर्धारित किया जा सुका है (दे. इससे पहले सिहसूरि') इसिलये उनके साथ भी इसकी संगति केठ काती है। पं. सुखलाल जी मालवणिया ने इनके काल की अपरावध्य वि. श. ६ निर्धारित की है। (जै./१/६६४)।

- समाप्त